हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

छठा भाग

['प' से 'प्लुर' तक, शब्दसंख्या—१६,०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट — रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह — जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन — रामचंद्र वर्मा
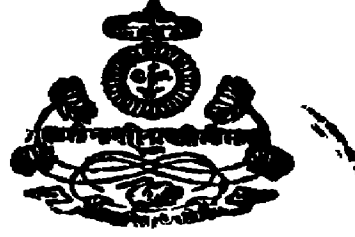
संपादकमंडल

संपूर्णानंद (स्वर्गीय) — कमलापति त्रिपाठी
नगेंद्र — धीरेंद्र वर्मा
रामधन शर्मा — हरवंशलाल शर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड़ (स्वर्गीय) — शिवनंदनलाल दर
शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' (सह० संपा०) — सुधाकर पांडेय

करुणापति त्रिपाठी (संयोजक संपादक)

सहायक संपादक

विश्वनाथ त्रिपाठी

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

हिंदी शब्दसागर के संशोधन संपादन का संपूर्ण तथा प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशन का साठ प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण

शकाब्द १८९१ सं० २०२६ वि० १९६९ ई०

मूल्य २१), संपूर्ण दस भागों का २००)

आवश्यक संशोधन

पृष्ठसंख्या २३१६ के बाद कृपया २३१७, २३१८ आदि पढ़ें। आठ पृष्ठों के बाद पुन. भूल से २३३३, २३३४ आदि छप गया है, इन्हें २३२५, २३२६ आदि पढ़ें। पृ० २६३६ के बाद से अंत तक की पृष्ठसंख्या भी अशुद्ध छप गई है, जिन्हें कृपया २६३७, २६३८ आदि पढ़ें; अंतिम पृष्ठसंख्या २७२४ होगी।

शंभुनाथ वाजपेयी
द्वारा
नागरी मुद्रण, वाराणसी
में मुद्रित

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र मे भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तंभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुन. अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही, किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही, हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है।... हिंदी मे एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणत पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयो का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम मे अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुन संपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ।४—३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों मे, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबध में देश के विभिन्न क्षेत्रो के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमडल के अनेक सदस्यो का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानो की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानो तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुन संपादन का कार्य लगातार होता रहा, परतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आग और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की संस्तुति दी जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुन: उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ मे पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी दो खडो तक भारत सरकार ने वहन किया है. इसी लिये यह ग्रथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षामंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के संमुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की और हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथो के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना सभव नही हुआ। फिर भी यह कहने में हमें सकोच नही कि अद्यतन प्रकाशित कोशो में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों मे अतुलनीय है, और इस क्षेत्र मे काम करनेवाले प्राय. सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदीजगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और सशोधन के लिये कोशशिल्प सबंधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस सशोधित प्रवर्धित रूप में शब्दों की संख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल सत एवं सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनदन एवं पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह संशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खड पौष, सवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग मे ३ पौष, सं० २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को भव्य रूप से सजे हुए पंडाल मे काशी, प्रयाग एवं अन्यान्य स्थानो के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियों, पत्रकारों तथा गण्यमान्य नागरिकों की उपस्थिति में सपन्न हुआ। समारोह मे उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री पं० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री पं० सुमित्रानंदन जी पत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस सशोधित संवर्धित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य मे इसके समस्त सपादकों को एक एक फाउंटेन पेन, ताम्रपत्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा : 'सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस सस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अनूठे ग्रंथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र मे यह सभा अप्रतिम है'।

प्रस्तुत छठे खड मे 'प' से लेकर 'प्युर' तक के शब्दों का सचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, यौगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य सामग्री 'विशेष' से सबलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग १६,००० है। अपने मूल रूप में यह अंश कुल ३७५ पृष्ठो मे था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित सशोधित सस्करण मे लगभग ५१० पृष्ठो मे आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण मे योग दिया है। स्व० श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड नियमित रूप से नित्य सभा मे पधारकर इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देते थे और पं० करुणापति त्रिपाठी ने इसके सपादन और सयोजन में प्रगाढ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य सपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हो, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहे क्योकि ऐसे ग्रंथ का कार्य अस्थायी नही, सनातन है।

अंत मे शब्दसागर के मूल सपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुंदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह सकल्प हम पुन. दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र मे यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया सस्करण और भी अधिक प्रभोज्वल होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी
अनंत चतुर्दशी, २०२६ वि०

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं।]

संकेताक्षर	विवरण
अँधेरे०	अँधेरे की भूख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७
अखिलेश (शब्द०)	अखिलेश कवि
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वाँ सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०
अनुराग बाग (शब्द०)	अनुराग बाग
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्रप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अमिट०	अमिट स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, [५ खंड] संपा० आर० शामशास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९११ ई०
अर्ध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अष्टांग (शब्द०)	अष्टांगयोगसंहिता
अष्टांग०	अष्टांगयोग संहिता
आँधी	आँधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी विताम, वाराणसी, प्र० सं०
आत्रेय अनु-क्रमणिका (शब्द०)	आत्रेय अनुक्रमणिका
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं०, १९५३ ई०
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनंदघन (शब्द०)	कवि आनंदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद्, इलाहाबाद, प्र० सं०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यों०	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा०, ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
इति०	इतिहास और आलोचना, नामवर सिंह
इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ सं०
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय,' प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
इनशा (शब्द)	इनशा अल्ला खाँ
इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०

एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०
कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढ़ी०	कढ़ी में कोयला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० सं०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर मं०	कबीर मंसूर [२ भाग], वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदड़ी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर० श०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग] बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, सन् १९०८
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
कविंद (शब्द०)	कविंद कवि
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१–४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कादंबरी (शब्द०)	कादंबरी ग्रंथ
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ९वाँ सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला,' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०

काव्य० य० प्र०	काव्य : यथार्थ और प्रगति, डा० रांगेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद. प्र० सं०
कासीराम (शब्द०)	कासीराम कवि०
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
किशोर (शब्द०)	किशोर कवि
कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्रं०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूंट
कोई कवि (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कुलार्णव तंत्र (शब्द०)	कुलार्णव तंत्र
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चंद हसीनों के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ सं०
खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक
गंग ग्रं०	गंग कवित्त [ग्रंथावली], संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गदाधर सिंह (शब्द०)	गदाधर सिंह
गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ सं०
गालिब०	गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड़, वाराणसी, प्र० सं०
गि० दा०, गि० दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंवर (शब्द०)	गुंवर कवि
गुलाब (शब्द०)	गुलाब सिंह

संकेत	ग्रंथ
गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
गोपालभट्ट (शब्द०)	गोपालभट्ट, वाल्मीकि रामायण के अनुवादक
गोरख०	गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि
चंद	चंद हसीनों के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
चरण (शब्द०)	चरणदास
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ 'अश्क', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणाक्य नीति
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति
चिता	[illegible], अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, " " "
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला,' किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंद०	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
छीत०	छीत स्वामी, संपा० व्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, संवत् २०१२
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जनानी०	जनानी ड्योढ़ी, अनु० यशपाल, अशोक प्रकाशन, लखनऊ
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
जायसी ग्रं० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०

ढोला०	ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
तिथितत्व (शब्द०)	तिथितत्व निर्णय
तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०
तुरसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६,१९११
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर
तेज०	तेजोबिंदूपनिषद्
तोष (शब्द०)	कवि तोष
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
दयानिधि (शब्द०)	दयानिधि कवि
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०
दश०	दशरूपक, संपा० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध
दहकते०	दहकते अंगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद
दादू०	श्री दादूदयाल की बानी, सं० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रंथावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर.' उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्रं०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०, दीप ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ 'अश्क,' नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग
दुर्गाप्रसाद (शब्द०)	दुर्गाप्रसाद
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
देव (शब्द०)	देव कवि
देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)
देशी०	देशी नाममाला
दैनिकी	दैनिकी, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९९९ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरोली, प्रथम सं०
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
द्वि० अभि० ग्रं०	द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
द्विज (शब्द०)	द्विज कवि
द्विजदेव (शब्द०)	अयोध्या नरेश महाराजा मानसिंह 'द्विजदेव'
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०, धरम०	धरमदास की शब्दावली
ध्रुव०	ध्रुवस्वामिनी, प्रसाद
धूप०	धूप और धुआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर,' अजंता प्रेस, लि०, पटना ४
नंद० ग्रं०, नंददास ग्रं०	नंददास ग्रंथावली, संपा० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३
नट०	नटनागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
नया०	नया साहित्य : नए प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
नरेश (शब्द०)	'नरेश' कवि
नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि
नाथ (शब्द०)	नाथ कवि
नाथसिद्ध०	नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
नाभादास (शब्द०)	नाभादास संत
नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास
निबंधमालादर्श (शब्द०)	निबंधमालादर्श (म० प्र० द्विवेदी)
नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, पं० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९६१ वि०

पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झाँसी, प्र० सं०
पजनेस०	पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० सं०
पदमावत	पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगांव, झाँसी, प्र० सं०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, संपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्रं०	पद्माकर ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
परमानंद०	परमानंदसागर
परमेश (शब्द०)	परमेश कवि
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
पलटू०	पलटू साहब की बानी [१-३ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०
पारिजात०	पारिजातहरण
पार्वती	पार्वती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पूर्ण (शब्द०)	पूर्ण कवि
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सं० कविराव मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्र० सा०	प्रगतिशील (वादी) साहित्य।
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, संपा० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबंध०	प्रबंधपद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला,' सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूर्णसिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रांगेय राघव, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १९५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बंदन०	बंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४१ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बलबीर (शब्द०)	बलबीर कवि
बलभद्र (शब्द०)	बलभद्र कवि
बाँकी० ग्रं०, बाँकीदास ग्रं०	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० रामनारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बांगेदरा	बांगेदरा
बापू	बापू, कवितासंग्रह
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०

संक्षेप	विवरण
बिसराम (शब्द०)	बिसराम कवि
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बी० रासो	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बीसल० रास	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपालसिंह ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बृहत्०	बृहत्संहिता
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला,' हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मिणी री, सं० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा
ब्रज०	ब्रजविलास, संपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्रं०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, संपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०
ब्रह्म (शब्द०)	ब्रह्म कवि (बीरबल)
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत रसिक
भट्ट (शब्द०)	बालकृष्ण भट्ट
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ वि०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, नवम सं०
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं० १९८७ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्रं०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, पं० सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्रं०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी
भीखा श०,	भीखा शब्दावली प्र० सं०
भुवनेश (शब्द०)	भुवनेश कवि
भूषण ग्रं०	भूषण ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र०सं०
मति० ग्रं०	मतिराम ग्रंथावली, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवंशराय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मनविरक्त०	मनविरक्तकरन गुटका सार (चरणदास)
मनु०	मनुस्मृति
मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
मलूक० बानी	मलूकदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महावीर प्रसाद(शब्द०)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ सं०
माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १९११ ई०

मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव	मानव, कवितासंकलन, भगवतीचरण वर्मा
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०
मुंशी, अभि० ग्रं०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, संपा० डा० विश्वनाथ-प्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
मृग०	मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु,' समता प्रकाशन, पटना—४, प्र० सं०
मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० सं०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंड प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० सं०
योग०	योगवाशिष्ठ (वैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगा-विष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापा खाना, कल्याण, बंबई, सं० १९६७ वि०
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतांरो, संपा० महताबचंद खारेड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रघु० दा० रघुनाथदास (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १९८२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नपरीक्षा (शब्द०)	रत्नपरीक्षा
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०
रस०	रसमीमांसा, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, संपा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम रसखान
रस र०, रसरतन	रसरतन, संपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० सं०
रा० रू०	राजरूपक, संपा० पं० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रा० वि०	राजविलास, संपा० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ सं०
राम०	रामचरितमानस, संपा० विजयानंद त्रिपाठी, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं० १९७३ वि०
रामकवि (शब्द०)	राम कवि
राम० चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, संपा० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चोकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्मसंग्रह, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चोकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, संपा० पीतांबर-दत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय. पटना, प्र० सं०

रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू (शब्द०)	लल्लूलाल
लवकुश चरित्र (शब्द०)	लवकुश चरित्र
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
लाल (शब्द०)	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्ण०, वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, संपा० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टीका० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अंबिकादत्त व्यास
ब्रज (शब्द०)	ब्रज (शब्द०)
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शंकर (शब्द०)	शंकर कवि
शंकर०	शंकरसर्वस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एंड संस, आगरा, प्र० सं०
शंभु (शब्द०)	शंभु कवि
शकु०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०
शाहजहाँनामा (शब्द०)	शाहजहाँनामा
शार्ङ्गधर सं०	शार्ङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, संवत् १९७१
शिखर०	शिखर वंशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १९८५
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि
शुक्ल० अभि० ग्रं०	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन
शृं० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई
शृंगार सुधाकर (शब्द०)	शृंगार सुधाकर
शेर०	शेर ओ सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
शैली	शैली, कमलापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रद्धानंद (शब्द०)	स्वामी श्रद्धानंद
श्रीधर (शब्द०)	श्रीधर कवि
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक
श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, संपा डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी
संचिता	संचिता (कविता संग्रह),
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ, हरिद्वार, प्र० सं०
संतबाणी०, संत०सार०	संतबाणी सार संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
संन्यासी,	संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
संपूर्णा० अभि० ग्रं०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी
स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सत्य०	कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान [महाभारत]
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
सरस्वती (शब्द०)	सरस्वती, मासिक पत्रिका
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, पं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, संपा० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
साम०	सामधेनी, रामधारीसिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, द्वि० सं०

सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०
सा० लहरी	साहित्यलहरी, संपा० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
साहित्य०	साहित्यालोचन
सिद्धांतसंग्रह (शब्द०)	सिद्धांतसंग्रह
सीताराम (शब्द०)	सीताराम कवि
सुंदर० ग्रं०	सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता
सुंदरीसिंदूर (शब्द०)	सुंदरीसिंदूर
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
सुखदेव (शब्द०)	कवि 'सुखदेव'
सुधाकर (शब्द०)	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० स०
सुंदर (शब्द०)	सुंदर कवि
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूरसागर [दो भाग], ना०प्र० सभा, द्वितीय सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर० (राधा०)	सूरसागर, संपा० राधाकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि
सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०
सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
सौ अजान० (शब्द०)	सौ अजान और एक सुजान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वाधीनता (शब्द०)	स्वाधीनता
स्वामी हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक
हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)
हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
ह० रासो०	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४९ ई०
हर्ष०	हर्षचरित् : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना. प्र० सं०, १९५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती भंडार, प्रयाग, १९४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना
हिंदी का०	हिंदी काव्य की अंतश्चेतना
हिं० का० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिं० ना०	हिंदी के नाटक
हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हित हरिवंश (शब्द०)	वैष्णव संत हित हरिवंश
हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०

हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०	हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
		हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी	जी०, जीवन०	जीवनचरित्
अ०	अरबी	ज्या०	ज्यामिति
अक० रूप	अकर्मक रूप	ज्यो०	ज्योतिष
अनु०	अनुकरण शब्द	डिं०	डिंगल
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक	त०	तमिल
अनु० मू०	अनुकरणार्थमूलक	तर्क०	तर्कशास्त्र
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप	ति०	तिब्बती भाषा
अप०	अपभ्रंश	तु०	तुर्की
अर्ध मा०	अर्धमागधी	दू०	दूहा या दूहला
अल्पा०	अल्पार्थक	दे०	देखिए
अव०	अवधी	देश०	देशज
अव्य०	अव्यय	देशी	देशी
इब०	इबरानी	धर्म०	धर्मशास्त्र
उ०	उदाहरण	नाम०	नामधातु
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ	ना० धा०	नामधातुज क्रिया
उड़ि०	उड़िया	नामिक धातु	नामिक धातु
उप०	उपसर्ग	ने०	नेपाली
उभय०	उभयलिंग	न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र
एकव०	एकवचन	पं०	पंजाबी
कहावत	कहावत	परि०	परिशिष्ट
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र	पा०	पाली
[को०], (को०)	अन्य कोश	पु०	पुंलिंग
कोंक०	कोंकणी	पुर्त०	पुर्तगाली
क्रि०	क्रिया	पु० हिं०	पुरानी हिंदी
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक	पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग	पृ०	पृष्ठ
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	प्रत्य०	प्रत्यय
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक	प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
क्व०	क्वचित्	प्रा०	प्राकृत
गीत	लोकगीत	प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
गुज०	गुजराती	फ०	फरांसीसी भाषा
ची०	चीनी भाषा	फकीर०	फकीरों की बोली
छं०	छंद	फा०	फारसी
जापा०	जापानी	बंग०	बँगला भाषा
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	बरमी०	बरमी भाषा

बहुव०	बहुवचन	वै०	वैदिक
बुं० खं०	बुंदेलखंड की बोली	व्या०	व्याकरण
बोल०	बोलचाल	(शब्द०)	शब्दसागर
भाव०	भाववाचक संज्ञा	सं०	संस्कृत
भू०	भूमिका	संयो०	संयोजक अव्यय
भू० कृ०	भूत कृदंत	संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
मरा०	मराठी	स०	सकर्मक
मल०	मलयाली या मलयालम भाषा	सक० रूप	सकर्मक रूप
मला०	मलायलम भाषा	सधु०	सधुक्कड़ी भाषा
मि०	मिलाइए	सर्व०	सर्वनाम
मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त	स्पे०	स्पेनी भाषा
मुहा०	मुहावरा	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
यू०	यूनानी	स्त्री०	स्त्रीलिंग
यौ०	यौगिक	हिं०	हिंदी
राज०	राजस्थानी	ⓟ	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
लश०	लशकरी	>	व्युत्पन्न
ला०	लाक्षणिक	†	प्रांतीय प्रयोग
लै०	लैटिन	‡	ग्राम्य प्रयोग
व० कृ०	वर्तमान कृदंत	√	धातुचिह्न
वि०	विशेषण	*	संभाव्य व्युत्पत्ति
वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक	?	अनिश्चित व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

प

प—हिंदी वर्णमाला में स्पर्श व्यंजनों के अंतिम वर्ग का पहला वर्ण। इसका उच्चारण ओठ से होता है इसलिये शिक्षा में इसे ओष्ठ्य वर्ण कहा गया है। इसके उच्चारण मे दोनो ओठ मिलते हैं इसलिये यह स्पर्श वर्ण है। इसके उच्चारण में शिक्षा के अनुसार विवार, श्वास, घोष और अल्पप्राण नामक प्रयत्न लगते हैं।

पंक—संज्ञा पुं० [सं० पङ्क] १. कीचड। कीच।

यौ०—पंकज। पंकरुह।

२. पानी के साथ मिला हुआ पोतने योग्य पदार्थ। लेप। उ०—श्याम अंग चंदन की आभा नागरि केसरि अंग। मलयज पंक कुमकुमा मिलिकै जल जमुना इक रंग।—सूर (शब्द०) ३. पाप (को०)। ४. बडा परिमाण। घनी राशि (को०)।

पंककर्वट—संज्ञा पुं० [पङ्ककर्वट] जलयुक्त कीचड़ (को०)।

पंककीर—संज्ञा पुं० [सं० पङ्ककीर] टिटिहरी नाम की चिड़िया।

पंकक्रीड़[1]—वि० [सं० पङ्कक्रीड] कीचड़ में खेलनेवाला।

पंकक्रीड़[2]—संज्ञा पुं० सूअर।

पंकक्रीडनक—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कक्रीडनक] दे० 'पंकक्रीड'।

पंकगड़क—संज्ञा पुं० [पङ्कगडक] एक प्रकार की छोटी मछली।

पंकग्राह—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कग्राह] मगर।

पंक्चर—संज्ञा पुं० [अं० पंक्चर] छेद। छिद्र। पंचर। उ०—हमें न चहिए डनलप टायर, पंकचर ले शैतान सँभाल।—बदन०, पृ० १४५।

पंकच्छिद—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कच्छिद] एक प्रकार का वृक्ष। निर्मली (को०)।

पंकज[1]—वि० [सं० पङ्कज] कीचड में उत्पन्न होनेवाला।

पंकज[2]—संज्ञा पुं० १. कमल।

यौ०—पंकज बन = (१) कमल का बन। उ०—तू भूल न री पंकजबन में, जीवन के इस सूनेपन में, ओ प्यार पुलक से भरी ढुलक।—लहर, पृ० २। सारस पक्षी (को०)।

पंकजजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कजजन्मन्] ब्रह्मा, जो कमल से उद्भूत हैं (को०)।

पंकजन्म—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कजन्मन्] कमल (को०)।

पंकजन्मा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कजन्मन्] कमल।

पंकजन्मा[2]—वि० [सं० पङ्कजजन्मन्] कीचड़ से पैदा होनेवाला (को०)।

पंकजनाभ—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कजनाभ] विष्णु (को०)।

पंकजराग—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कजराग] पद्मराग मणि। उ०—परिजन सहित राय रानिन कियो मज्जन प्रेम प्रयाग। तुलसी फल चार को ताके मनि मरकत पंकज राग।—तुलसी (शब्द०)।

पंकजवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पङ्कजवाटिका] तेरह अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक भगण, एक नगण, दो जगण और अंत में एक लघु होता है। इसे एकावली और कंजावली भी कहते हैं। जैसे,—श्री रघुवर तुम हौ जगनायक। देखहु दशरथ को सुखदायक। मोदर सहित पिता पदपावन। बदन किय तब ही मनभावन।—केशव (शब्द०)।

पंकजात—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कजात] कमल।

पंकजासन—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कजासन] ब्रह्मा।

पंकजित्—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कजित्] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

पंकजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पङ्कजिनी] १. पद्माकर। कमलाकर। २. कमलिनी। कमलवृक्ष।

पंकण—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कण] चांडाल का निवासस्थान (को०)।

पंकत—स्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० पङ्क्ति] दे० 'पंक्ति'। उ०—(क) बक पंकत रद नीर, गरजण गाज पिछाँण।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १७। (ख) चंडीसूल पार जात मराला पंकतो चगी।—रघु०, रू०, पृ० २४६।

पंकदिग्ध—वि० [सं० पङ्कदिग्ध] पंकयुक्त। जिसपर मिट्टी पोती गई हो (को०)।

पंकदिग्धशरीर—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कदिग्धशरीर] एक दानव का नाम।

पंकदिग्धांग[1]—वि० [सं० पङ्कदिग्धाङ्ग] वह जिसके अंगों पर कीचड़ का लेप किया गया हो (को०)।

पंकदिग्धांग[2]—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कदिग्धाङ्ग] कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

पंकधूम—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कधूम] जैनियों के एक नरक का नाम।

पंकपर्पटी—संज्ञा स्त्री० [सं० पङ्कपर्पटी] सौराष्ट्रमृत्तिका। गोपीचंदन।

पंकप्रभा—संज्ञा पुं० [सं० पङ्कप्रभा] कीचड से भरे हुए एक नरक का नाम।

पंकभाक्—वि० [सं० पङ्कभाज्] कीचड़ में डूबा हुआ। पंकिल (को०)।

पंकभारक—वि० [सं० पङ्कभारक] कीचवाला। पंकिल। जिसमे कीचड़ भरा हो (को०)।

पंकमडूक—[स० **पङ्कमण्डूक**] १. घोंघा। २. छोटी सीप। सुतही।

पंकरुह—संज्ञा पुं० [स० **पङ्केरुह**] कमल। उ०—पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि। बोली गिरिजा वचन बर मनहु प्रेम रस सानि।—मानस, १।११९।

पंकवारि—संज्ञा स्त्री० [स० **पङ्कवारि**] काँजी।

पंकवास—संज्ञा पुं० [स० **पङ्कवास**] केकड़ा। कर्कट।

पंकशुक्ति—संज्ञा स्त्री० [स० **पङ्कशुक्ति**] १. ताल में होनेवाली सीप। सुतही। २. घोंघा।

पंकशूरण—संज्ञा पुं० [स० **पङ्कशूरण**] कमल की जड़। [को०]।

पंकसूरण—संज्ञा पुं० [स० **पङ्कसूरण**] दे० 'पंकशूरण' [को०]।

पंकार—संज्ञा पुं० [स० **पङ्कार**] १. एक पेड़ जो गड्ढों के कीचड़ों में होता है। इस पौधे में स्त्री और पुरुष दो अलग जातियाँ होती हैं। २. जलकुब्जक। ३. सिंघाड़ा। ४. सेवार। ५. पुल। ६. बाँध। सेतु। ७. सीढ़ी।

पंकिल[1]—वि० [स० **पङ्किल**] जिसमे कीचड़ हो। कीचडवाला। उ०—उतरकर पर्वत से निर्झरी भूमि पर पंकिल हुई, सलिल देह कलुषित हुआ।—अनामिका, पृ० ७।

पंकिल[2]—संज्ञा पुं० बडी नाव। बजडा।

पंकिलता—संज्ञा स्त्री० [स० **पङ्किलता**] कीचयुक्त होने की अवस्था या भाव। २. मैल। गंदगी। ३ कालिमा। कलुष [को०]।

पंकेज—संज्ञा पुं० [स० **पङ्केज**] दे० 'पंकज'।

पंकेरुह—संज्ञा पुं० [स० **पङ्केरुह**] १. पंकरुह। कमल। २. सारस (हि०)।

पंकेशय—वि० [स० **पङ्केशय**] कीचड में निवास करनेवाला [को०]।

पंकेशया—संज्ञा स्त्री० [स० **पङ्केशया**] जोंक।

पंक्चर—संज्ञा पुं० [अं०] (रबड़ के) ट्यूब या ब्लैडर में किसी नोकदार चीज के चुभने से होनेवाला छेद। उ०—मोटरकार के पिछले दोनों पहियों मे पंक्चर हो गए।—नारिका, पृ० १५४।

पंक्ति—संज्ञा स्त्री० [स० **पङ्क्ति**] १. ऐसा समूह जिसमें बहुत सी (विशेषतः एक ही या एक ही प्रकार की) वस्तुएँ एक दूसरे के उपरांत एक सीध मे हों। श्रेणी। पाँती। कतार। लाइन। २. चालीस अक्षरों का एक वैदिक छंद जिसका वर्ण नील, गोत्र भार्गव, देवता वरुण और स्वर पंचम है। ३. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में पाँच पाँच अक्षर अर्थात् एक भगण और अंत मे दो गुरु होते हैं। ४. दस की संख्या। ५. सेना मे दस दस योद्धाओं की श्रेणी। ६. कुलीन ब्राह्मणों की श्रेणी।

यौ०—पंक्तिच्युत। पंक्तिपावन।

७. भोज मे एक साथ बैठकर खानेवालों की श्रेणी। जैसे,—उनके साथ हम एक पंक्ति में नहीं खा सकते।

यौ०—पंक्तिभेद।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार पतित आदि के साथ एक पंक्ति मे बैठकर भोजन करने का निषेध है।

८. (जीवों या प्राणियों की) वर्तमान पीढ़ी (को०)। ९. पृथ्वी (को०)। १०. प्रसिद्धि (को०)। ११. पाक (को०)।

पंक्तिकंटक—वि० [स० **पङ्क्तिकण्टक**] पंक्तिदूषक।

पंक्तिका—संज्ञा स्त्री० [स० **पङ्क्तिका**] पंक्ति। लाइन [को०]।

पंक्तिकृत—वि० [स० **पङ्क्तिकृत**] श्रेणीबद्ध।

पंक्तिग्रीव—संज्ञा पुं० [स० **पङ्क्तिग्रीव**] रावण।

पंक्तिचर—संज्ञा पुं० [स० **पङ्क्तिचर**] कुरर पक्षी।

पंक्तिच्युत—वि० [स० **पङ्क्तिच्युत**] किसी कलंक, दोष आदि के कारण जाति की श्रेणी से बाहर किया हुआ। बिरादरी से निकाला हुआ।

पंक्तिदूष—वि० [स०] दे० 'पंक्तिदूषक' [को०]।

पंक्तिदूषक[1]—वि० [स० **पङ्क्तिदूषक**] पंगत को दूषित करनेवाला। नीच। कुजाति। जिसके साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन नहीं कर सकते।

पंक्तिदूषक[2]—संज्ञा पुं० ऐसे ब्राह्मण जिनको मनु आदि के मत से श्राद्ध में भोजन कराना या दानादि देना निषिद्ध माना गया है।

विशेष—इनकी गणना मनुस्मृति अध्याय ३ मे दी गई है।

पंक्तिपावन—संज्ञा पुं० [स० **पङ्क्तिपावन**] १. वह ब्राह्मण जिनको यज्ञादि मे बुलाना, भोजन कराना और दान देना श्रेष्ठ माना गया है।

विशेष—मनु आदि स्मृतियो मे ऐसे ब्राह्मणो की गणना दी गई है। शास्त्रो का कथन है कि ऐसा ब्राह्मण यदि एक भी मिले तो वह ब्राह्मणो की पंक्ति को पवित्र कर देता है।

२. वह गृहस्थ जो पंचाग्नियुक्त हो।

पंक्तिबद्ध—वि० [स० **पङ्क्तिबद्ध**] श्रेणीबद्ध। पाँति मे लगा हुआ। कतार मे बँधा हुआ।

पंक्तिबाह्य—वि० [स० **पङ्क्तिबाह्य**] पंगत से निकाला हुआ। जातिच्युत।

पंक्तिबीज—संज्ञा पुं० [स० **पङ्क्तिबीज**] १. बबूल। २ उरगा। ३. कर्णिकार।

पंक्तिरथ—संज्ञा पुं० [स० **पङ्क्तिरथ**] राजा दशरथ।

पंक्ती(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० **पङ्क्ति**] एक वर्णिक छंद। दे० 'पंक्ति'३। उ०—भाग गुनै को। नारि नरा को। नाहि लखती। अक्षर पंकी।

पंखयज(पु)†—संज्ञा पुं० [स० **पङ्कज**] दे० 'पंकज'। उ०—सिव सनकादिक नारदा, ब्रह्म लिया निज बास जी। कहैं कबीर पद पंखयजा, अब नेडा चरण निवास जी।—कबीर ग्रं०, पृ०९८।

पंख—संज्ञा पुं० [स० पक्ष, प्रा० पक्ख] १. पर। डैना। वह अवयव जिससे चिड़िया, फतिंगे आदि हवा में उड़ते हैं। उ०—(क) पंख छता परबस परा सूआ के बुधि नाहि।—कबीर (शब्द०)। (ख) काटेसि पंख परा खग धरनी।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—पंख जमना = (१) न रहने का लक्षण उत्पन्न होना। भागने या चले जाने का लक्षण देख पड़ना। जैसे,—इस नौकर

को भी अब पख जमे, अब यह न रहेगा। (२) इधर उधर घूमने की इच्छा देख पडना। बहकने या बुरे रास्ते पर जाने का रग ढंग दिखाई पडना। जैसे,—इस लड़के को भी अब पंख जम रहे हैं। (३) प्राण खोने का लक्षण दिखाई देना। शामत आना।

विशेष—बरसात मे चीटो, चीटियो तथा और कीड़ों को पर निकलते हैं और वे उड़ उड़कर मर जाते हैं, इससे यह मुहावरा बना है।

पंख लगना=पक्षी के समान वेगवान् होना। पंख लपेटे सिर धुनना=मधु के लोभ से मधु की मक्खी सा बनना। स्वय ही परेशानी मे डालकर पछताना। उ०—पख लपेटे सिर धुनै, मनही मन पछताय।—धरनी०, पृ० ८४।

२. तीर के आगे दोनो ओर निकला हुआ फल।

पखराउ(पु)—सज्ञा पु० [स० पक्षिराज] गरुड़। उ०—अरवागूँ के साँचे पखराउ सीधाव। —रघु० रू०, पृ० २४०।

पंखरी—सज्ञा पु० [स० पक्ष, हिं० पख+री (स्वा० प्रत्य०)] दे० 'पंखड़ी'। उ०—सब जग छेली काल कसाई कर्द लिए कँठ काटै। पच तत्त की पच पखरी खड खंड करि बाटै।—दादू०, पृ० ३६४।

पंखा—सज्ञा पु० [हिं० पंख] [स्त्री० अल्पा० पखी] वह वस्तु जिसे हिलाकर हवा का झोंका किसी ओर ले जाते है। बिजना। बेना। उ०—अवनि मेज पखा पवन अब न कछू परवाह।—पद्माकर (शब्द०)।

विशेष—यह भिन्न भिन्न वस्तुओ का तथा भिन्न आकार और आकृति का बनाया जाता है और इसके हिलाने से वायु चलकर शरीर मे लगती है। छोटे छोटे बेनो से लेकर जिसे लोग अपने हाथो मे लेकर हिलाते है, बड़े बड़े पखो तक के लिये, जिसे दूसरे हाथ मे पकड़कर हिलाते है, या जो छत मे लटकाए जाते है और डोरी के सहारे से खींचे जाते है या जिन्हे चर्खी मे चलाकर या बिजली आदि से हिलाकर वायु मे गति उत्पन्न की जाती है, सबके लिये केवल 'पखा' शब्द से काम चल सकता है। इसे पख के आकार का होने के कारण अथवा पहले पख मे बनाए जाने के कारण पखा कहते है।

क्रि० प्र०—चलाना।—खीचना।—झलना।—हिलाना।—डुलाना।

मुहा०—पंखा करना=पखा हिला या डुलाकर वायु संचारित करना।

२. भुजमूल का पार्श्व। पखुआ। पखुरा।

पंखाकुली—सज्ञा पु० [हिं० पंखा+कुली] वह कुली जो पखा खीचने के लिये नियत किया गया हो।

पंखाज—संज्ञा पु० [स० पक्षवाद्य, हिं० पखावज, पखाउज] दे० 'पखावज'।

पंखापोश—सज्ञा पु० [हिं० पंखा+फ़ा० पोश] पखे के ऊपर का गिलाफ।

पंखापोस(पु)—सज्ञा पु० [हिं० पंखा+फ़ा० पोश] दे० 'पंखापोश'। उ०—पिहित पराई बात इगित सो बोध करै पी को देखि श्रमित उतारयो पंखापोस है।—दूलह (शब्द०)।

पंखाल(पु)†—सज्ञा पु० [स० पंखालु] गिद्ध आदि पक्षी। उ०—बरंगा राल बरमाल सुरा बरै। त्रिपत पंखाल दिल खुले ताला।—रघु० रू०, पृ० २०।

पंखि(पु)—सज्ञा पु० [स० पक्षी] दे० 'पक्षी'। उ०—ककनूँ पाखि जैस सर साजा। सर चढि तबहिं जरा वह राजा। —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५८।

पंखी[1]—सज्ञा पु० [स० पक्षी, पा० पक्खी] १. पक्षी। चिड़िया। उ०—पगे पगै भुईं चंपत आवा। पखिन देखि सबन डर खावा।—जायसी (शब्द०)। २. कबूतर के पख से बँधी हुई सूत की बत्ती जिसे ढरकी के छेदों में अँटकाते हैं। (जुलाहे)। ३. पाँखी। फतिगा। ४. एक प्रकार का ऊनी कपड़ा जो भेड़ के बाल से पहाड़ो मे बुना जाता है। ५. वह पतली पतली हलकी पत्तियाँ जो साखू के फल के सिरे पर होती हैं। ६. पँखड़ी।

पंखी[2]—सज्ञा स्त्री० [हिं० पंखा] छोटा पखा।

पंखीसेल—सज्ञा पु० [हिं० पंखी+अं० सेल] चौकोर पाल जो मस्तूल से तिरछे एक तिहाई निकला रहे।

पंखुरी(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पखडी'। उ०—बोलता मध्ये मे बसे हीरा बरन सरूप। सात पखुरी सुरत की किंचित वस्तु अनूप।—कबीर (शब्द०)।

पंग[1]—वि० [स० पङ्गु] १. लँगड़ा। २. स्तब्ध। बेकाम। उ०—नख सिख रूप देखि हरि जू के होत नयन गति पग।—सूर (शब्द०)।

पंग[2]—सज्ञा पु० [देश०] एक पेड जो आसाम की ओर सिलहट कछार आदि मे होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और मकानो में लगती है। इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है। लकड़ी से एक प्रकार का रग भी निकलता है।

पंग[3]—सज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का नमक जो लिवरपूल से आता है।

पंग[4](पु)—सज्ञा पु० [हिं०] जयचद की एक उपाधि। दलपगुर। जयचंद, कन्नौज का राजा। उ०—भूल्यौ नृप इन रग मंहि, पग चढ्यो हम पुट्ठि। सुनि सुंदर बर बज्जने अई अपुब्ब कोइ दिट्ठ।—पृ० रा०, ६१।११४७।

यौ०—पंगजा=पंग की पुत्री। संयोगिता।

पंगई—सज्ञा स्त्री० [?] नाव खेने का छोटा डाँडा जिसका एक जोडा लेकर एक ही आदमी नाव चला सकता है। हाथ हलेसा। चमचा। बैठा। चप्पू (लश०)।

पंगत, पंगति—सज्ञा स्त्री० [स० पंक्ति, पा० पंति] १. पाँती। पक्ति। उ०—बरदंत की पंगति कुंद कली अधराधर पल्लव खोलन की। चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की। घुँघुराली लटै लटकै मुख ऊपर कुडल लोल कपोलन

की। निवछावर प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की। —तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र० - जोड़ना।

२. भोज के समय भोजन करनेवालों की पंक्ति।

क्रि० प्र० - बैठना।—उठना।—लगना।

३. भोज।

क्रि० प्र० - करना। लगाना। होना। देना।

४. समाज। सभा। ५. जुलाहों के करघे का एक औजार जो दो सरकंडों से बनाया जाता है।

विशेष—इसे कैंची की तरह स्थान स्थान पर गाड़ देते हैं। इनके ऊपरी छेदों पर ताने के किनारे के सूत इसलिये फँसा दिए जाते हैं जिसमे ताना फैला रहे।

पंगरण(५)† संज्ञा पुं० [सं० प्रावरण, प्रा० पंगुरण] वस्त्र। कपड़ा। उ०—बिहद कोर गोटे बगे, पातर रे पोसाक। परणी फाटे पंगरण, वेली फाटे वाक।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६।

पंगा वि० [सं० पङ्गु] [वि० स्त्री० पंगी] १. लँगड़ा। २. स्तब्ध। बेकाम। उ० नागरी मकरन सकेत आकासिनी गनत गुनगनन मति होत पंगी। नागरीदास (शब्द०)।

पंगानी(५) संज्ञा स्त्री० [हिं०] कोई वस्तु जो पग संबंधी हो। उ०—जिन मंत्री कैमास बध बध्यौ पंगानी।—पृ० रा०, ५७।६६। २. पग की पुत्री। संयोगिता।

पगायत† संज्ञा पुं० [हिं० पग] पायताना। गोड़वारी।

पंगास संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की मछली।

पंगो¹ संज्ञा स्त्री० [सं० पङ्क, हिं० पाँक] धान के खेत मे लगनेवाला एक कीड़ा।

पंगो(५)†² संज्ञा स्त्री० [देश०] कीर्ति। यश। उ० पंगी गंग प्रवाह, निरमल तन धोयो नही। लिख्त ययूँ रावे चाह तिके सरग पावण तणी। बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ४६।

पंगु¹ वि० [सं० पङ्गु] जो पैर से चल न सकता हो। लँगड़ा। उ० (क) मूक होइ बाचाल पंगु चढ गिरिवर गहन। जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलिमल दहन।—मानस, १।१। (ख) मति भारति पंगु भई जो निहारि बिचारि फिरी उपमा न पवै।—तुलसी (शब्द०)।

पंगु²—संज्ञा पुं० १. शनैश्चर। २. एक रोग। यह मनुष्य के पैरो मे और जाँघों मे होता है।

विशेष—यह वात रोग का भेद है। वैद्यक का मत है कि कमर में रहनेवाली वायु जाँघों की नसो को पकड़कर सिकोड़ देती है जिससे रोगी के पैर सिकुड़ जाते हैं और वह चल फिर नहीं सकता।

३. एक प्रकार का साधु जो भिक्षा वा मलमूत्रोत्सर्ग के अतिरिक्त अपने स्थान से उठकर किसी और काम के लिये दिन भर मे एक योजन से बाहर नही जाता।

पंगुगति—संज्ञा स्त्री० [सं० पङ्गुगति] वर्णिक छंदों का एक दोष।

विशेष—जब किसी वर्णिक छंद में लघु के स्थान में गुरु या गुरु के स्थान में लघु आ जाता है तब यह दोष माना जाता है। जैसे,—'फूटि गए श्रुति ज्ञान के केशव आँखि अनेक विवेक की फूटी। इसमें ज्ञान के साथ 'के' और विवेक के साथ 'की' गुरु हैं। यहाँ नियमानुसार लघु होना चाहिए था।

पंगुग्राह—संज्ञा पुं० [सं० पङ्गुग्राह] १. मगर। २. मकर राशि।

पंगुड़ा वि० [सं० पङ्गुला] पति के पीछे पीछे चलनेवाली। उ०—किसकी ममा चचा पुनि किसका पंगुड़ा जोई। यह ससार बजार मँड्या है, जानेगा जन कोई।—कबीर ग्र०, पृ० १२०।

पंगुता—संज्ञा पुं० [सं० पङ्गुता] १. लँगड़ापन। २. स्तब्धता (को०)।

पंगुर(५) वि० [सं० पङ्गुल] दे० 'पंगुल'। उ०—(क) जैसे नर पंगुरो विन सु अगुरी न चल्ल हि। आधारित अंगरी हरूवह वत्त न चल्लहि।—पृ० रा०, ६१। १०२८। (ख) सब पंगुर किहि विधि कहत यह जयचंद सु इव।—पृ० ६१। १०२७।

पंगुल¹—संज्ञा पुं० [सं० पङ्गुल] १. अंडी का पेड। २. सफेद घोड़ा जो सफेद काँच के रंग का हो। ३. सफेद रंग का घोड़ा।

पंगुल²—वि० [सं० पङ्गु] पंगु। लँगड़ा। उ०—पंगुला मेरु सुमेर उड़ावे, त्रिभुवन माही डोले।—कबीर श०, भा० २, पृ० २६।

पंगुल्यहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० पङ्गुल्यहारिणी] बगोनी।

पंगो—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँक] मिट्टी जो नदी अपने किनारे बरसात बीत जाने पर डालती है।

पंघरना‡ —क्रि० अ० [हिं० पिघलना] द्रवित होना। पिघलना। भावाभिभूत होना। उ० —तपा जी तुम्हारे बचन सुण कर मोम की न्याई पंघर गए हाँ जी।— प्राण०, पृ० २६२।

पंच¹—वि० [सं० पञ्चन्] पाँच। जो सख्या मे चार से एक अधिक हो।

यौ० —पंचपात्र। पंचनख। पंचानन। पचामृत। पंचशर। पंचेंद्रिय। पंचअसनान=सत्य, शील, गुरु के वचन का पालन, शिक्षा देना, और दया करना ये पाँच प्रकार के स्नान।—गोरख०, पृ० ७६।

पंच²—संज्ञा पु० १. पाँच या अधिक मनुष्यो का समुदाय। समाज। जनसाधारण। सर्वसाधारण। जनता। लोक। जैसे,—पंच कहै सिव सती बिवाही। पुनि अवडेरि मरायनि ताही।—तुलसी (शब्द०)। (ख) साँई तेली तिलन सो कियो नेह निर्वाहि। खोंटि पटकि ऊजर करी दई बडाई ताहि। दई बडाई ताहि पंच महँ सिगरे जानी। दै कोल्हू मे पेरि करी एकत्तर घानी।—गिरिधर (शब्द०)।

मुहा० - पंच की भीख=दस आदमियों का अनुग्रह। सर्वसाधारण की कृपा। सबका आशीर्वाद। उ०—और ग्वाल सब गृह आए गोपालहि बेर भई।···राज करै वे धेन तुम्हारी नँदहि कहति सुनाई। पंच की भीख सूर बलि मोहन कहति जसोदा माई।—सूर (शब्द०)। पंच की दुहाई=

३. पाँच वा अधिक आदमियों का समाज जो किसी झगड़े या मामले को निबटाने के लिये एकत्र हो। न्याय करनेवाली सभा।

क्रि० प्र०—बुलाना।

यौ०—सरपंच। पंचनामा।

मुहा०—(किसी को) पंच मानना या बदना=झगड़ा निबटाने के लिये किसी को नियत करना। झगड़ा निबटानेवाला स्वीकार करना। उ०—दोनों ने मुझे पंच माना।—शिव-प्रसाद (शब्द०)।

४. वह जो फौजदारी के दौरे के मुकदमे में दौरा जज की अदालत में मुकदमे के फैसले में जज की सहायता के लिये नियत हो। ५. दलाल। (दलाल)। ६. किसी विषय विशेष में मुख्यता प्राप्त करनेवाला व्यक्ति।

पंच[3]—वि० [सं० पञ्च] विस्तृत। फैला हुआ।

पंचक—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चक] १. पाँच का समूह। पाँच का संग्रह। जैसे, इंद्रियपंचक, पद्यपंचक। २. वह जिसके पाँच अवयव या भाग हों। ३. पाँच सैकड़े का ब्याज। ४. धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्र जिसमें किसी नए कार्य का आरंभ निषिद्ध है। (फलित ज्यो०)। पचखा। ५. शकुन शास्त्र। ६. पाशुपत दर्शन में गिनाई हुई आठ वस्तुएँ जिनमें प्रत्येक के पाँच पाँच भेद किए गए हैं। ये आठ वस्तुएँ ये हैं—लाभ, मल, उपाय, देश, अवस्था, विशुद्धि दीक्षा, कारिक और बल। ७. पाँच प्रतिनिधियों की सभा। पंचायत। ८. युद्धक्षेत्र। रणभूमि (को०)।

पंचकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चकन्या] पुराणानुसार पाँच स्त्रियाँ जो सदा कन्या ही रहीं अर्थात् विवाह आदि करने पर भी जिनका कन्यात्व नष्ट नहीं हुआ। अहल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी ये पाँच कन्याएं कही गई हैं।

पंचकपाल—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकपाल] वह पुरोडाश जो पाँच कपालों में पृथक् पृथक् पकाया जाय।

पंचकपाल[2]—वि० पाँच कपालों में तैयार किया हुआ।

पंचकर्प, पंचकर्पट—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकर्प, पञ्चकर्पट] महाभारत के अनुसार एक देश जो पश्चिम ओर था और जिसे नकुल ने राजसूय यज्ञ के समय जीता था।

पंचकर्म—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकर्मन्] १. चिकित्सा की पाँच क्रियाएँ। वमन, विरेचन, नस्य, निरूहवस्ति और अनुवस्ति (अनुवासन)। कुछ लोग निरूहवस्ति और अनुवस्ति (अनुवासन) के स्थान में स्नेहन और स्वेदीकरण मानते हैं। २. वैशेषिक के अनुसार पाँच प्रकार के कर्म—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन प्रसारण और गमन।

पंचकल्याण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकल्याण] वह घोड़ा जिसका सिर (माथा) और चारों पैर सफेद हों और शेष शरीर लाल, काला या किसी रंग का हो। ऐसा घोड़ा शुभ देनेवाला माना जाता है।

पंचकवल—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकवल] पाँच ग्रास अन्न जो स्मृति के अनुसार खाने के पूर्व कुत्ते, पतित, कोढ़ी, रोगी, कौए आदि के लिये अलग निकाल दिया जाता है। यह कृत्य बलिवैश्वदेव का अंग माना जाता है। अग्राशन। अगरासन। उ०—पंचकवल करि जेवन लागे। गारि गान करि अति अनुरागे।—तुलसी (शब्द०)।

पंचकषाय—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकषाय] तंत्र के अनुसार इन पाँच वृक्षों का कषाय—जामुन, सेमर, खिरेंटी, मौलसिरी और बेर।

विशेष—यह कषाय छाल को पानी में भिगोकर निकाला जाता है और दुर्गा के पूजन में काम आता है।

पंचकाम—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकाम] तंत्रसार के अनुसार पाँच कामदेव जिनके नाम ये हैं—काम, मन्मथ, कंदर्प, मकरध्वज और मीनकेतु।

पंचकारण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकारण] जैनशास्त्र के अनुसार पाँच कारण जिनसे किसी कार्य की उत्पत्ति होती है। वे ये हैं—काल, स्वभाव, नियति, पुरुष और कर्म।

पंचकी(पु)—वि० [पञ्चक] १. पंचेंद्रियों से संबंध रखनेवाली। २. दुनिया की। लोगों की। उ०—घट की माँनि प्रनीति सब मन की मेटि उपाधि। दादू परहर पंचकी राम कहै ते साध।—दादू०, पृ० ४१०।

पंचकृत्य—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकृत्य] १. ईश्वर या महादेव के ये पाँच प्रकार के कर्म सृष्टि, स्थिति, ध्वंस, विधान और अनुग्रह (सर्वदर्शनसंग्रह)। २. पखौड़ वृक्ष। पखौड़े का पेड़।

पंचकृष्ण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकृष्ण] सुश्रुत के अनुसार एक कीट का नाम।

पंचकोण[1]—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकोण] १ पाँच कोने। २. कुंडली में लग्न से पाँचवाँ और नवाँ स्थान।

पंचकोण[2]—वि० जिसमें पाँच कोने हों। पंचकोना।

पंचकोल—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकोल] पीपल, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल और सोंठ। वैद्यक में इन्हें पाचन, रुचिकर तथा गुल्म और प्लीहा रोगनाशक माना है।

पंचकोश—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकोश] उपनिषद् और वेदांत के अनुसार शरीर संगठित करनेवाले पाँच कोश (स्तर)।

विशेष—इनके नाम और उनकी परिभाषा ये हैं—अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनंदमय कोश। इनमें स्थूल शरीर को अन्नमय कोश, पाँचों कर्मेंद्रियों सहित प्राण को प्राणमय कोश, पाँचों ज्ञानेंद्रियों के सहित मन को मनोमय कोश, पाँचों ज्ञानेंद्रियों के सहित बुद्धि को विज्ञानमय कोश तथा अहंकारात्मक या अविद्यात्मक को आनंदमय कोश कहते हैं। पहले को स्थूल शरीर, दूसरे को सूक्ष्म शरीर और तीसरे, चौथे और पाँचवें को कारण शरीर कहते हैं।

पंचकोष—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकोश] दे० 'पंचकोश'।

पंचकोस—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चकोश] [स्त्री० पञ्चकोसी] पाँच कोस की लंबाई और चौड़ाई के बीच बसी हुई काशी की पवित्र भूमि। काशी। उ०—पंचकोस पुन्य को सुआरथ

परमारथ को जानि आप अपने सुपास बास दियो है। —तुलसी (शब्द०)।

पंचकोसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पञ्चकोश] १. काशी की परिक्रमा। २. वह व्यक्ति जो पाँच कोस दूर का हो। उ०—मगर सुना पंचकोसी आदमी अगर आए तो सारा भेद खुल जाय। नहीं पाँच कोस के उधर का आदमी अगर आए तो उसपर जादू का असर खाक न हो।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २०।

पंचक्रोश—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चक्रोश] पंचकोस। काशी। उ०—स्वारथ परमारथ परिपूरन पचक्रोश महिमा सी।—तुलसी (शब्द०)।

पंचक्लेश—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चक्लेश] योगशास्त्रानुसार अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक पाँच प्रकार के क्लेश।

पंचक्षारगण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चक्षारगण] वैद्यक के अनुसार पाँच मुख्य क्षार या लवण—काचलवण, सैंधव, सामुद्र, विट् और सौवर्चल।

पंचखट्व—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चखट्व] पाँच खाटों का समूह [को०]।

पंचखट्वी—संज्ञा स्त्री० [पञ्चखट्वी] पाँच छोटी खाटें [को०]।

पंचगंग—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगङ्ग] पाँच नदियों का समूह। दे० 'पंचगंगा'—१।

पंचगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चगङ्गा] १. पाँच नदियों का समूह—गंगा, यमुना, सरस्वती, किरणा और धूतपापा। इसे पंचनद भी कहते हैं। २. काशी का एक प्रसिद्ध स्थान जहाँ गंगा के साथ किरणा और धूतपापा नदियाँ मिली थीं। ये दोनों नदियाँ अब पटकर लुप्त हो गई हैं।

पंचगण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगण] वैद्यकशास्त्रानुसार इन पाँच ओषधियों का गण—विदारीगंधा, बृहती, पृश्निपर्णी, निदिग्धिका और कूष्मांड।

यौ०—पंचगणयोग।

पंचगत—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगत] बीजगणित के अनुसार वह राशि जिसमें पाँच वर्ण हों।

पंचगव्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगव्य, प्रा० पंच + गव्व] दे० 'पंचगव्य'। उ०—पञ्चगव्व अस्नान करि सीस सहस घट मंडि। दीपदान घृत सहस सिव कुसुमंजलि मिर छंडि।—पृ० रा०, ७१२।

पंचगव—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगव] पाँच गायों का समूह [को०]।

पंचगव्य—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगव्य] गाय से प्राप्त होनेवाले पाँच द्रव्य—दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र जो बहुत पवित्र माने जाते हैं और पापों के प्रायश्चित्त आदि में खिलाए जाते हैं।

विशेष—पंचगव्य में प्रत्येक द्रव्य का परिमाण इस प्रकार कहा गया है—घी, दूध, गोमूत्र एक एक पल, दही एक प्रसृति (पसर) और गोबर तीन तोले।

पंचगव्यघृत—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगव्यघृत] आयुर्वेद के अनुसार बनाया हुआ एक घृत जो अपस्मार (मिरगी) और उन्माद में दिया जाता है।

विशेष—गाय का दूध, घी, दही, गोबर का रस और गोमूत्र चार चार सेर और पानी सोलह सेर सबको एक साथ एक दिन पकाने पर यह बनता है।

पंचगीत—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगीत] श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध के अंतर्गत पाँच प्रसिद्ध प्रकरण जिनके नाम हैं, वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत और महिषीगीत।

पंचगु—वि० [सं० पञ्चगु] पाँच गाएँ देकर विनिमय किया हुआ [को०]।

पंचगुण[1]—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगुण] १. शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध—ये पाँच गुण। २. आयुर्वेदोक्त एक प्रकार का वातनाशक तैल।

पंचगुण[2]—वि० पाँचगुना [को०]।

पंचगुणी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चगुणी] जमीन। पृथ्वी [को०]।

पंचगुप्त—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगुप्त] १. कछुवा। २. चार्वाक दर्शन जिसमें पचेंद्रिय का गोपन प्रधान माना गया है।

पंचगुप्तिरसा—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चगुप्तिरसा] प्रसवरग। स्पृक्का।

पंचगौड़—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चगौड़] देशानुसार विंध्य के उत्तर बसनेवाले ब्राह्मणों के पाँच भेद—सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल और उत्कल।

विशेष—यह विभाग स्कंदपुराण के सह्याद्रि खंड में मिलता है और किसी प्राचीन ग्रंथ में नहीं मिलता। दे० 'गौड़'।

पंचग्रामी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चग्रामी]पाँच गाँवों का समाहार [को०]।

पंचग्रास—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चग्रास] पाँच ग्रास। पाँच कौर। उ०—केचित् करहि कष्ट तन भारी। भोजन पचग्रास आहारी।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६१।

पंचघात—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चघात] संगीत में प्रयुक्त एक ताल [को०]।

पंचचक्र—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चचक्र] तंत्रशास्त्रानुसार पाँच प्रकार के चक्र जिनके नाम ये हैं—राजचक्र, महाचक्र, देवचक्र, वीरचक्र और पशुचक्र।

पंचचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चचक्षुस्] गौतम बुद्ध का एक नाम [को०]।

पंचचत्वारिंश—वि० [सं० पञ्चचत्वारिंश] पैंतालीसवाँ।

पंचचत्वारिंशत्—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चचत्वारिंशत्] पैंतालीस।

पंचचामर—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चचामर] एक छंद का नाम। इसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण, जगण, रगण, जगण और अंत में गुरु होते हैं। इसे नाराच और गिरिराज भी कहते हैं। दे० 'नाराच'।

पंचचीर—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चचीर] एक बुद्ध। मंजुघोष [को०]।

पंचचूड़—वि० [सं० पञ्चचूड़] पाँच कलँगियोंवाला। पाँच चोटियोंवाला [को०]।

पंचचूड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चचूड़ा] एक अप्सरा। (रामायण)।

पंचचोल—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चचोल] हिमालय पर्वत पर एक भाग [को०]।

पंचजन—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चजन**] १. पाँच वा पाँच प्रकार के जनों का समूह। २. गंधर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस। ३. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद। ४. मनुष्य। जनसमुदाय। ५ पुरुष। ६ मनुष्य जीव और शरीर से संबंध रखनेवाले प्राण आदि। ७. एक प्रजापति का नाम। ८. एक असुर जो पाताल में रहता था।

विशेष—यह कृष्णचंद्र के गुरु संदीपनाचार्य के पुत्र को चुरा ले गया था। कृष्णचंद्र इसे मारकर गुरु के पुत्र को छुड़ा लाए थे। इसी असुर की हड्डी से 'पाचजन्य' शख बना था जिसे भगवान् कृष्णचद्र बजाया करते थे।

९. राजा सगर के पुत्र का नाम।

पंचजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **पञ्चजनी**] १. पाँच मनुष्यों की मंडली। पंचायत। २. विश्वरूप की कन्या का नाम (भागवत)।

पंचजनीन—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चजनीन**] १. भाँड। नकल करनेवाला। २. नट। स्वाँग बनानेवाला। अभिनेता।

पंचजन्य—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चजन्य**] एक प्रसिद्ध शख जिसे कृष्णचंद्र बजाया करते थे। यह एक राक्षस की हड्डी का था जिसका नाम पंचजन था। वि० दे० 'पंचजन'—८।

पंचमजाती(पु) —संज्ञा स्त्री० [हिं० **पाँच** + अ० जमाअत + ई(प्रत्य०)] पाँच ज्ञानेंद्रियाँ। उ०—दादू काया मसीति करि, पंच जमाती मनहीं मुलां इमामं। आप अलेख इलाही आगे तह सिजदा करै सलाम।—दादू०, पृ० १२८।

पंचज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चज्ञान**] १. वह जो पाँच प्रकार के ज्ञान से युक्त हो। २. बुद्ध का एक नाम।

पंचतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चतन्त्र**] संस्कृत की एक प्रसिद्ध पुस्तक जिसमें विष्णुगुप्त द्वारा नीतिविषयक कथाओं का संग्रह है।

विशेष—इसमें पाँच तंत्र हैं जिनके नाम क्रमश मित्रलाभ, सुहृद्भेद, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षित कारक हैं।

पंचतंत्री[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **पञ्चतन्त्रिन्**] एक प्रकार की वीणा जिसमें पाँच तार लगते हैं।

पंचतंत्री[2]—वि० जिसमें पाँच तार हों। पाँच तार का बना हुआ।

पंचतत्व—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चतत्त्व**] १. पंचभूत। पृथ्वी जल, तेज, वायु और आकाश। उ०—पश्चाद्वर्ती भारतीय दार्शनिकों ने पंचतत्व का प्रतिपादन किया है।—सं० दरिया (भू०), पृ० ५४। २. वाम मार्ग के अनुसार मद्य, मास, मत्स्य, मुद्रा, और मैथुन। इन्हे 'पाँच प्रकार' भी कहते हैं। ३. तंत्र के अनुसार गुरुतत्व, मंत्रतत्व, मनस्तत्व, देवतत्व और ध्यानतत्व।

पंचतन्मात्र—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चतन्मात्र**] सांख्य में पाँच स्थूल महाभूतों के कारणरूप, सूक्ष्म महाभूत जो अतींद्रिय माने गए हैं। इनके नाम हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। तन्मात्र ये इस कारण कहलाते हैं कि ये विशुद्ध रूप में रहते हैं अर्थात् एक में किसी दूसरे का मेल नहीं रहता। स्थूल भूत विशुद्ध नहीं होते। एक भूत में दूसरे भूत भी सूक्ष्म रूप में मिले रहते हैं।

विशेष—दे० 'तन्मात्र'।

पंचतप—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चतप**] पंचाग्नि (को०)।

पंचतपा—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चतपस्**] पंचाग्नि तापनेवाला तपस्वी। चारों ओर आग जलाकर धूप में बैठकर तप करनेवाला।

पंचतय—वि० [सं० **पञ्चतय**] पँचगुना (को०)।

पंचतरु—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चतरु**] पाँच वृक्ष—मंदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन।

पंचता—संज्ञा स्त्री० [सं० **पञ्चता**] १. पाँच का भाव। २. शरीर घटित करनेवाले पाँचों भूतों का अलग अलग अवस्थान। मृत्यु। विनाश।

पंचताल—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चताल**] अष्टताल का एक भेद। इस भेद में पहले युगल, फिर एक, फिर युगल और अंत में शून्य होता है।

पंचतालेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चतालेश्वर**] शुद्ध जाति का एक राग।

पंचतिक्त—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चतिक्त**] आयुर्वेद में इन पाँच कड़ुई ओषधियों का समूह—गिलोय (गुरुच), कंटकारि (भटकटैया), सोंठ, कुट और चिरायता (चक्रदत्त)।

विशेष—पंचतिक्त का काढ़ा ज्वर मे दिया जाता है। भावप्रकाश में पंचतिक्त ये हैं—नीम की जड की छाल, परवल की जड़, अड़ूसा, कंटकारि (कटैया) और गिलोय। यह पंचतिक्त ज्वर के अतिरिक्त विसर्प और कुष्ठ आदि रक्तदोष के रोगों पर भी चलता है।

पंचतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चतीर्थ**] पाँच तीर्थों का समूह। दे० 'पचतीर्थी'। उ०—फिर पचतीर्थ को चढ़े सकल गिरिमाला पर, है प्राण चपल।—तुलसी०, पृ० २५।

पंचतीर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं० **पञ्चतीर्थी**] पाँच तीर्थ स्थान। पाँच तीर्थ।

विशेष—ये तीर्थ भिन्न भिन्न स्थानों में विभिन्न नाम के हैं। काशी खंड के अनुसार काशी की पंचतीर्थी निम्नांकित है—ज्ञानवापी, नंदिकेश, तारकेश, महाकालेश्वर और दंडपाणि। वाराह पुराण के अनुसार विश्रांति, शौकर, नैमिष, प्रयाग और पुष्कर ये पाँचतीर्थ।

पंचतृण—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चतृण**] इन पाँच तृणों का समूह—कुश, काँस, शर (सरकंडा), दर्भ (डाभ) और ईख। भावप्रकाश के मत से शालि (धान), ईख, कुश, काश और शर।

पंचतोलिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का झीना महीन कपड़ा।

पंचतोरिया(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का झीना महीन कपड़ा। पंचतोलिया। उ०—सेत जरतारी की उज्यारी कंचुकी को कसि अनियारी डीठि प्यारी पेन्ही पचतोरिया।—देव (शब्द०)।

पंचत्रिंश—वि० [सं० **पञ्चत्रिंश**] पैंतीसवाँ।

पंचत्रिंशत्—वि० [सं० **पञ्चत्रिंशत्**] पैंतीस।

पंचत्व—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चत्व**] १. पाँच का भाव। २. शरीर

संघटित करनेवाले पाँचों भूतों का अलग अलग अवस्थान। मृत्यु। विनाश।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा० —पंचत्व प्राप्त होना = मरना।

पंचथु—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चथु] कोयल।

पंचदश—वि० [सं० पञ्चदशन्] पंद्रह।

पंचदश—संज्ञा पुं० पंद्रह की संख्या।

पंचदशी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चदशी] १ पूर्णमासी। २. अमावस्या। ३. वेदांत का एक प्रसिद्ध ग्रंथ।

पंचदेव—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चदेव] पाँच प्रधान देवता जिनकी उपासना आजकल हिंदुओं में प्रचलित है—आदित्य, रुद्र, विष्णु, गणेश और देवी।

विशेष—इन देवताओं मे यद्यपि तीन वैदिक हैं तथापि सबका ध्यान और सबकी पूजा पौराणिक और तांत्रिक पद्धति के अनुसार होती है। इन देवताओं में प्रत्येक के अनेक विग्रह हैं जिनके अनुसार अनेक नाम रूपों से उपासना होती है। कुछ लोग तो पाँचो देवताओं की उपासना समान भाव से करते हैं और कुछ लोग किसी विशेष संप्रदाय के अंतर्गत होकर किसी विशेष देवता की उपासना करते हैं। विष्णु के उपासक वैष्णव, शिव के उपासक शैव, सूर्य के उपासक सौर और गणपति के उपासक गाणपत्य कहलाते हैं।

पंचद्रविड़—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चद्रविड] उन ब्राह्मणों के पाँच भेद जो विंध्याचल के दक्षिण बसते हैं—महाराष्ट्र, तैलंग, कर्णाट, गुर्जर और द्रविड़।

पंचधा—क्रि० वि० [सं० पञ्चधा] पाँच प्रकार से। पाँच ढंग का (को०)।

पंचनख—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चनख] १. वह पशु जिसके हाथ और पैरों मे पाँच पाँच नख होते है। जैसे, बंदर। २. हाथी (को०)। ३. कच्छप। कूर्म (को०)। ४. बाघ। व्याघ्र (को०)।

विशेष—स्मृतियों मे इनके मांस खाने का निषेध है।

पंचनखराज—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चनखराज] दे० 'पंचनखी' (को०)।

पंचनखी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चनखी] गोह। पेड़ों पर रहनेवाली बड़ी छिपकली (को०)।

पंचनद—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चनद] १. पाँच नदियों का समाहार। पंजाब की वे प्रधान पाँच नदियाँ जो सिंधु में मिलती हैं—सतलज, व्यास रावी, चनाब और झेलम। २. पंजाब प्रदेश जहाँ उक्त पाँच नदियाँ बहती हैं। ३. काशी के अंतर्गत एक तीर्थ जिसे पचगंगा कहते हैं।

पंचनवत—वि० [सं० पञ्चनवत] पचानबेवाँ।

पंचनवति—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चनवति] पंचानवे की संख्या।

पंचनाथ—संज्ञा पुं० [सं० पञ्च + नाथ] बदरीनाथ, द्वारकानाथ, जगन्नाथ, रंगनाथ, और श्रीनाथ। उ०—पंचनाथ कलिपावन जोई। निरखे नर नारायण होई।—गोपाल (शब्द०)।

पंचनामा—संज्ञा पुं० [हिं० पंच + फा० नाम] वह कागज जिसपर पंच लोगों ने अपना निर्णय या फैसला लिखा हो।

पंचनिंब—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चनिम्ब] नीम के पाँच अवयव—पत्ता, छाल, फूल, फल और मूल।

पंचनी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० पक्षिणी, प्रा० पंक्खणी] पक्षिणी। उ०—चालंत कटक गोरी प्रबल भूपी चाली पंचनिय।—पृ० रा०, ११।५।

पंचनी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चमी] १. कपड़े की बनी पासा खेलने की बिसात। २. शतरंज की बिसात (को०)।

पंचनीराजन—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चनीराजन] पाँच प्रकार की आरती (को०)।

पंचपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चपक्षिन्] एक प्रकार का शकुन शास्त्र जिसमें अ, इ, उ, ए और ओ इन पाँच वर्णों को पक्षी कल्पना करके शुभाशुभ विचार किया जाता है।

पंचपत्र—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चपत्र] एक पेड़। चंडाल कंद।

पंचपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चपदी] १. पाँच कदम या डग। २. थोड़ी देर का संबंध। ३. एक प्रकार की ऋचा (को०)।

पंचपनड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पचौली'।

पंचपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखी नाम का पौधा।

पंचपर्व—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चपर्वन्] अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या और सूर्य की संक्रांति (को०)।

पंचपल्लव—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चपल्लव] इन पाँच वृक्षों के पल्लव—आम, जामुन, कैथ, बिजौरा (बीजपूरक) और बेल। कोई कोई आम, वट और मौलसिरी के पल्लवों को पंचपल्लव में लेते हैं। पूजा मे घट के ऊपर रखने के लिये पंचपल्लव का प्रयोजन पड़ता है। विभिन्न पद्धतियों में विभिन्न प्रकार के पल्लवों का उल्लेख मिलता है।

पंचपात—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चपत्र] पँचौली नाम का पौधा। पचपनड़ी।

पंचपात्र—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चपात्र] १. गिलास के आकार का चौड़े मुँह का एक बरतन जो पूजा मे जल रखने के काम में आता है। इसके मुँह का घेरा पेंदे के घेरे के बराबर ही होता है। २. पार्वण श्राद्ध। ३. पाँच पात्रों का समूह (को०)।

पंचपाद[१]—वि० [सं० पञ्चपाद] पाँच पैरोवाला (को०)।

पंचपाद[२]—संज्ञा पुं० एक संवत्सर (को०)।

पंचपिता—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चपितृ] पिता, आचार्य श्वसुर, अन्नदाता और भय से रक्षक।

पंचपितृ—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चपितृ] दे० 'पंचपिता'।

पंचपित्त—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चपित्त] वैद्यक शास्त्र के अनुसार वराह, छाग, महिष, मत्स्य और मयूर का पित्त।

पंचपीरिया—संज्ञा पुं० [हिं० पाँच + फा० पीर] मुसलमानों के पाँचों पीरों की पूजा करनेवाला।

पंचपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चपुष्प] देवी पुराणानुसार ये पाँच फूल-

जो देवताओं को प्रिय है—चंपा, आम, शमी, कमल और कनेर।

पंचप्रस्थ—वि० [सं० पञ्चप्रस्थ] पँचगुनी ऊँचाईवाला [को०]।

पंचप्राण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चप्राण] पाँच प्राण या वायु—प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान।

पंचप्रासाद—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चप्रासाद] १. वह प्रासाद जिसमें पाँच शृंग या गुंबद हों। २. एक प्रकार का देवगृह जिसे 'पंचरत्न' या 'पँचरतन' कहते हैं।

पंचबंध—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चबन्ध] मिताक्षरा के अनुसार एक प्रकार का अर्थदंड जो खराब हुई वस्तु के मूल्य का पंचमांश हो [को०]।

पंचबटी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चवटी] दे० 'पंचवटी'।

पंचबला—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चबला] वैद्यक के बला, अतिबला, नागबला, राजबला और महाबला नामक ओषधियों का समूह।

पंचबाइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चवायु] दे० 'पंचवायु'। उ०—पंचबाइ जे सहजि समावै, ससिहर के घरि आणें सूर।—सीतल मिलै सदा सुखदाई अनहद शब्द बजावै तूर। दादू०, पृ० ६७४।

पंचबाण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चबाण] दे० 'पंचवाण'।

पंचबान(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। पंचबाण। उ०—कहै पद्माकर प्रपंची पंचबान हू के सुकानन के मौन पै परी त्यों घोर घानें सी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४६४।

पंचबाहु—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चबाहु] शिव [को०]।

पंचबिंदुप्रसृत—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चबिन्दु प्रसृत] एक प्रकार की नृत्यमुद्रा [को०]।

पंचबिस(पु)—वि० [सं० पञ्चविंश] पच्चीसवाँ। पच्चीस की संख्यावाला। उ०—अब मुनि पर्चबिस अध्याई। पचबिस निमल ह्वै जाई।—नंद ग्रं०, पृ० ३०७।

पंचबिडाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चबिडाल] बौद्ध शास्त्रों में निरूपित आलस्य, हिंसा, काम, विचिकित्सा और मोह ये पाँच प्रतिबंध। उ०—काया तरुवर पंचबिडाल। इतिहास, पृ० १२।

पंचबीज—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चबीज] ककड़ी, खीरा, अनार, पद्मबीज और पानीबीज—ये पाँच प्रकार के बीज [को०]।

पंचभद्र—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चभद्र] १. वैद्यक में एक ओषधिगण जिसमें गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता और सोंठ हैं। २. पंचकल्याण घोड़ा।

पंचभद्र—वि० १. पाँच गुणों से युक्त (व्यंजन आदि)। २. पापी। दुष्ट [को०]।

पंचभर्तारी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्च + भर्तार + हिं० ई (प्रत्य०)] द्रौपदी।

पंचभागी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चभागिन्] पंच महायज्ञों की पाँच देवियाँ [को०]।

पंचभुज[1]—वि० [सं० पञ्चभुज] पाँच भुजाओंवाला [को०]।

पंचभुज[2]—संज्ञा पुं० १. पाँच भुजाओंवाला क्षेत्र या कोण। २. गणेश का एक नाम [को०]।

पंचभूत—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच प्रधान तत्व जिनसे संसार की सृष्टि हुई है—आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथिवी। उ०—लेन उठी सुख माधव नामा। पचभूत मैं किय विश्रामा।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २१८।

विशेष—दे० 'भूत'।

पंचभृंग—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चभृङ्ग] पाँच वृक्ष जिनके नाम हैं—देवदाली, शमी, भंगा, निर्गुंडी और तमालपत्र [को०]।

पंचमंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चमण्डली] पाँच भलेमानसों की सभा। पंचायत।

विशेष—चंद्रगुप्त द्वितीय के साँचीवाले शिलालेख में यह शब्द आया है।

पंचम[1]—वि० [सं० पञ्चम] [स्त्री० पंचमी] १. पाँचवाँ। जैसे, पंचम वर्ण, पंचम स्वर। २. रुचिर। सुंदर। ३. दक्ष। निपुण।

पंचम[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सात स्वरों में पाँचवाँ स्वर।

विशेष—यह स्वर पिक या कोकिल के अनुरूप माना गया है। संगीत शास्त्र में इस स्वर का वर्ण ब्राह्मण, रंग श्याम, देवता महादेव, रूप इंद्र के समान और स्थान क्रौंच द्वीप लिखा है। यमली, निर्मली और कोमली नाम की इसकी तीन मूर्च्छनाएँ मानी गई हैं। भरत के अनुसार इसके उच्चारण में वायु नाभि, उरु, हृदय, कंठ और मूर्धा नामक पाँच स्थानों में लगती है, इसलिये इसे 'पंचम' कहते हैं। संगीत दामोदर का मत है कि इसमें प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान एक साथ लगते हैं इसीलिये यह 'पंचम' कहलाता है। स्वरग्राम में इसका संकेत 'प' होता है।

२. एक राग जो छह प्रधान रागों में तीसरा है।

विशेष—कोई इसे हिंडोल राग का पुत्र और कोई भैरव का पुत्र बतलाते हैं। कुछ लोग इसे ललित और वसंत के योग से बना हुआ मानते हैं और कुछ लोग हिंडोल, गांधार और मनोहर के मेल से। सोमेश्वर के मत से इसके गाने का समय शरदऋतु और प्रातःकाल है और विभाषा, भूपाली, कर्णाटी, वडहंसिका, मालश्री, पटमंजरी नाम की इसकी छह रागिनियाँ हैं, पर कल्लिनाथ त्रिवेणी, स्तंभतीर्था, आभीरी, ककुभ, वराटी और सौवीरी को इसकी रागिनियाँ बतलाते हैं। कुछ लोग इसे ओड़व जाति का राग मानते हैं और ऋषभ, कोमल पंचम और गांधार स्वरों को इसमें वर्जित बताते हैं।

३. वर्ग का पाँचवाँ अक्षर—ङ, ञ, ण, न और म। ४. मैथुन।

पंचमकार—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चमकार] वाम मार्ग के अनुसार मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन।

पंचमतान—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चमतान] मीठी आवाज। उ०—

शिथिल आज है कल का कूजन पिक की पंचमतान।—अनामिका, पृ० ६४।

पंचमवेद—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमवेद**] पाँचवाँ वेद—महाभारत, पुराण एवं नाट्य।

पंचमहापातक—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमहापातक**] पाँच प्रकार के महापाप।

विशेष—मनुस्मृति के अनुसार ये पाँच महापातक हैं—ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरु की स्त्री से व्यभिचार और इन पातकों के करनेवालों के साथ संसर्ग।

पंचमहाभूत—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमहाभूत**] दे० 'पंचभूत'। उ०—पंचमहाभूत अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश उत्पन्न हुए और इन पंचभूतों से समस्त संसार हुवा।—कबीर मं०, पृ० ३०१।

पंचमहायज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमहायज्ञ**] स्मृतियों और गृह्य सूत्रों के अनुसार वे पाँच कृत्य जिनका नित्य करना गृहस्थों के लिये आवश्यक है।

विशेष—गृहस्थों के गृहकार्य से पाँच प्रकार से हिंसा होती है जिसे धर्मशास्त्रों में 'पंचसूना' कहते हैं। इन्हीं हिंसाओं के पाप से निवृत्ति के लिये धर्मशास्त्रों में इन पाँच कृत्यों का विधान है। वे कृत्य ये हैं

(१) अध्यापन—जिसे ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। संध्यावंदन इसी अध्यापन के अंतर्गत है।

(२) पितृतर्पण—जिसे पितृयज्ञ कहते हैं।

(३) होम—जिसका नाम देवयज्ञ है।

(४) बलिवैश्वदेव वा भूतयज्ञ।

(५) अतिथिपूजन—नृयज्ञ वा मनुष्ययज्ञ।

पंचमहाव्याधि—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमहाव्याधि**] वैद्यकशास्त्र के अनुसार ये पाँच बड़े रोग—अर्श, यक्ष्मा, कुष्ठ, प्रमेह और उन्माद।

पंचमहाव्रत—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमहाव्रत**] योगशास्त्र के अनुसार ये पाँच आचरण—अहिंसा, सूनृता, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

विशेष—पतंजलि जी ने इन्हें 'यम' माना है। जैन यतियों के लिये इनका ग्रहण जैन शास्त्र में आवश्यक बतलाया गया है।

पंचमहाशब्द—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमहाशब्द**] पाँच प्रकार के बाजे जिन्हें एक साथ बजवाने का अधिकार प्राचीन काल में राजाओं महाराजाओं को ही प्राप्त था। इसमें ये पाँच बाजे माने गए हैं—शृंग (सींग), तम्मट (खँजड़ी ?), शंख, भेरी और जयघंटा।

पंचमहिष—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमहिष**] सुश्रुत के अनुसार भैंस से प्राप्त पाँच पदार्थ—मूत्र, गोबर, दही, दूध और घी।

पंचमांग—संज्ञा पुं० [पुं० **पञ्चमाङ्ग**] पाँचवाँ भाग या अंग।

पंचमांगी—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमाङ्गिन्**] दूसरे (शत्रु) देशों से गुप्त संबंध स्थापित कर अपने देश को हानि पहुँचानेवाला व्यक्ति। देशद्रोही। भेदिया। उ०—सरकार की दृष्टि में समर्थक बनने के लिये एक ओर तो वे पंचमांगियों का कार्य करते रहे।—नेपाल०, पृ० १२१।

पंचमास्य[१]—वि० [सं० **पञ्चमास्य**] पाँच महीने का। पाँच महीने पर होनेवाला।

पंचमास्य[२]—संज्ञा पुं० कोकिल।

पंचमी—संज्ञा स्त्री० [सं० **पञ्चमी**] १. शुक्ल या कृष्णपक्ष की पाँचवीं तिथि।

विशेष—व्रत आदि के लिये चतुर्थीयुक्ता पंचमी तिथि ग्राह्य मानी गई है।

२ द्रौपदी। ३ एक रागिनी। ४. व्याकरण में अपादान कारक। ५. एक प्रकार की ईंट जो एक पुरुष की लंबाई के पाँचवें भाग के बराबर होती थी और यज्ञों में वेदी बनाने में काम आती थी। ६ तंत्र में एक मंत्रविधि। ७. एक प्रकार की बिसात जिसपर गोटियाँ खेलते थे (को०)।

पंचमुख[१]—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमुख**] १. शिव। २. सिंह। ३. एक प्रकार का रुद्राक्ष जिसमें पाँच लकीरें होती हैं। ४. पाँच फलोंवाला बाण (को०)।

पंचमुख[२]—वि० पाँच मुखोंवाला। जैसे, पंचमुख गणेश। पंचमुख शिव। [को०]।

पंचमुखी[१]—वि० [सं० **पञ्चमुखिन्**] पाँच मुखवाला।

पंचमुखी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वासा। अडूसा। २. जवा। गुड़हल का फूल। ३ सिंही। सिंह की मादा। ४ पार्वती।

पंचमुद्रा—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमुद्रा**] तंत्र के अनुसार पूजनविधि में पाँच प्रकार की मुद्राएँ—आवाहनी, स्थापनी, सन्नीधापनी, सबोधिनी, सम्मुखीकरणी।

पंचमुष्टिक—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमुष्टिक**] वैद्यक में एक औषध जो सन्निपात में दी जाती है।

विशेष—जौ, बेर का फल, कुलथी, मूँग और काष्ठामलक एक एक मुट्ठी लेकर अठगुने पानी में पकाने से यह बनती है।

पंचमूत्र—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमूत्र**] गाय, बकरी, भेंड़, भैंस और गधी इन पाँच पशुओं का मूत्र [को०]।

पंचमूल—संज्ञा पुं० [सं० **पञ्चमूल**] वैद्यक में एक पाचन औषध जो औषधियों की जड़ लेकर बनती है।

विशेष—औषधिभेद से पंचमूल कई हैं जैसे—बृहत्, स्वल्प, तृण, शतावर्त, जीवन, बला, गोखुर इत्यादि।

बृहत्पंचमूल—बेल, सेनापाठा (श्योनाक), गँभारी, पाँडर और गनियारी।

स्वल्पपंचमूल—शालपर्णी, पृश्निपर्णी (पिठवन), बड़ी भटकटैया, छोटी भटकटैया और गोखरू।

तृणपंचमूल—कुश, काश, शर, इक्षु और दर्भ।

पंचमूली—संज्ञा स्त्री० [सं० **पञ्चमूलिन्**] स्वल्प पंचमूल।

पंचमेल—वि० [हिं० पाँच + मेल या मिलाना] १. जिसमें पाँच प्रकार की चीजें मिली हों। जैसे, पंचमेल मिठाई। २. जिसमें

सब प्रकार की चीजें मिली हों। मिला जुला ढेर। ३. साधारण।

पंचमेली—वि० [हिं० पंचमेल] पाँच चीजों की मेलवाली (मिठाई आदि)। मिश्रित।

पंचमेवा—संज्ञा पुं० [हिं पाँच + मेवा] किसमिस, बदाम, गरी, छुहाड़ा और चिरौंजी यह पाँच प्रकार का मेवा।

पंचमेश—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चमेश] फलित ज्योतिष के अनुसार पाँचवें घर का स्वामी।

पंचयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चयज्ञ] पचमहायज्ञ।

पंचयाम—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चयाम] दिन।

विशेष—शास्त्रों मे दिन के पाँच पहर और रात के तीन पहर माने गए हैं। रात के पहले चार दड और पिछले चार दड दिन मे लिए गए हैं।

पंचरंग—वि० [हिं० पाँच + रंग] १ पाँच रंग का। अनेक रगों का। रंग बिरंग का।

पंचरक्षक—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चरक्षक] पखोडा वृक्ष।

पंचरत्न—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चरत्न] पाँच प्रकार के रत्न।

विशेष—कुछ लोग सोना, हीरा, नीलम, लाल और मोती को पचरत्न मानते हैं और कुछ लोग मोती, मूँगा, वैक्रांत, हीरा और पन्ना को। २. महाभारत के पाँच प्रसिद्ध आख्यान—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति और गजेंद्र-मोक्ष (को०)।

पंचरश्मि—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चरश्मि] सूर्य [को०]।

पंचरसा—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चरसा] आमला।

पंचरात्र—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चरात्र] १. पाँच रातों का समूह। २. एक यज्ञ जो पाँच दिन में होता था। ३ वैष्णव धर्म का एक प्रसिद्ध ग्रंथ। ४ भास कवि का एक नाटक।

पंचराशिक—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चराशिक] गणित में एक प्रकार का हिसाब जिसमे चार ज्ञात राशियों के द्वारा पाँचवीं अज्ञात राशि का पता लगाया जाता है।

पंचरीक—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चरीक] सगीत शास्त्र के अनुसार एक ताल।

पंचल—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चल] शकरकंद।

पंचलक्षण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चलक्षण] पुराण के पाँच चिह्न या लक्षण जो ये हैं, 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्'; अर्थात्—सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, देवताओं की उत्पत्ति और परंपरा, मन्वंतर मनु के वंश का विस्तार।

पंचलवण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चलवण] वैद्यक शास्त्रानुसार पाँच प्रकार के लवण—काँच, सेंधा, सामुद्र, विट और सोंचर।

पंचलांगलक—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चलाङ्गलक] एक महादान जिसमें पाँच हल के जोत के बराबर भूमि दी जाती है [को०]।

पंचलोकपाल—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चलोकपाल] पाँच संरक्षक देव—विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश और अश्विनीकुमार [को०]।

पंचलोह—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चलोह] दे० 'पंचलौह'।

पंचलोहक—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चलोहक] दे० 'पंचलौह'।

पंचलौह—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाँच धातुएँ—सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा और राँगा। २. पाँच प्रकार का लोहा—वज्रलोह, कांतलोह, पिंडलोह और क्रौंचलोह।

पंचवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवक्त्र] दे० 'पंचमुख' [को०]।

पंचवक्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चवक्त्रा] दुर्गा [को०]।

पंचवट—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवट] यज्ञोपवीत [को०]।

पंचवटी—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवटी] रामायण के अनुसार दडकारण्य के अंतर्गत एक स्थान जहाँ रामचंद्र जी वनवास में रहे थे। यह स्थान गोदावरी के किनारे पर नासिक के पास है। सीता हरण यही हुआ था। २. पाँच वृक्षों का वह समूह जो ये हैं—अश्वत्थ, बिल्व, वट, धात्री और अशोक।

विशेष—हेमाद्रि व्रतखंड में इनके लगाने की विधि का वर्णन है और कहा गया है कि ऐसे स्थान पर तपस्या और मंत्रसिद्धि होती है।

पंचवदन—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवदन] शिव।

पंचवर्ग—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवर्ग] १. पाँच वस्तुओं का समूह। जैसे, पाँच प्रकार के घर, पाँच हड्डियाँ। २. पंच महाभूत—क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर (को०)। ३. पाँच ज्ञानेंद्रियाँ (को०)। ४. पंचमहायज्ञ (को०)। ५, पाँच प्रकार के गुप्तचर—कापटिक, उदास्थित, गृहपति व्यंजन, वैदेहिक व्यंजन और तापस व्यंजन, (को०)।

पंचवर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवर्ण] १. प्रणव के पाँच वर्ण अर्थात् अ, उ, म, नाद और विंदु। २. एक वन का नाम। ३. एक पर्वत का नाम।

पंचवर्षदेशीय—वि० [सं० पञ्चवर्षदेशीय] लगभग पाँच वर्ष पुराना। पाँच वर्ष का [को०]।

पंचवर्षीय—वि० [सं० पञ्चवर्षीय] पाँच वर्ष का। पाँच वर्ष तक चलनेवाला। जैसे, पंचवर्षीय योजना।

पंचवल्कल—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवल्कल] वट, गूलर, पीपल, पाकर और बेत या सिरिस की छाल।

पंचवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [पञ्चवल्लभा] द्रौपदी का नाम [को०]।

पंचवाण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवाण] १ कामदेव के पाँच वाण जिनके नाम ये हैं—द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन। कामदेव के पाँच पुष्पवाणों के नाम ये हैं—कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल। २. कामदेव।

पंचवातीय—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवातीय] राजसूय के अंतर्गत एक प्रकार का होम। उ०—शुनासीरीय और पंचवातीय याग अनुष्ठान हुआ।—वैशाली०, पृ० ४१३।

पंचवाद्य—संज्ञा पुं० [पुं०] तंत्र, आनद्ध, सुषिर, घन और वीरो का गर्जन।

पंचवान –संज्ञा पुं० [सं० पञ्चबाण ?] राजपूतों की एक जाति ।

पंचवायु –संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवायु] शरीरस्थ पाँच वायु जिनके नाम हैं प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान । उ०—अन्नमय कोश सु तौ पिंड है प्रगट यह प्रानमय कोश पंचवायु हू बखानिये । —सुंदर ग्रं०, भा० २ पृ० ५६८ ।

पंचवार्षिक वि० [सं० पञ्चवार्षिक] हर पाँचवें वर्ष होनेवाला [को०] ।

पंचविंश[1] वि० [सं० पञ्चविंश] पच्चीसवाँ [को०] ।

पंचविंश[2] संज्ञा पुं० (पच्चीस तत्वों से युक्त) विष्णु (को०) ।

पंचविंशति–वि० [सं० पञ्चविंश] पच्चीस [को०] ।

पंचविध–वि० [सं० पञ्चविध] १. पँचगुना । २ पाँच प्रकार का [को०] ।

यौ०—पंचविधप्रकृति=शासन के पाँच अवयव—अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, अर्थ, और दंड ।

पंचवृक्ष –संज्ञा पुं० [सं० पञ्चवृक्ष] पाँच देववृक्ष जिनके नाम हैं—मंदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन [को०] ।

पंचशब्द—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशब्द] १ पाँच मंगलसूचक बाजे जो मंगल कार्यों में बजाए जाते हैं - तंत्री, ताल, झाँझ, नगारा और तुरही । 'पंचमहाशब्द' । २ व्याकरण के अनुसार सूत्र, वार्तिक, भाष्य, कोश और महाकवियों के प्रयोग । ३. पाँच प्रकार की ध्वनि- वेदध्वनि, बंदीध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि और निशानध्वनि ।

पंचशर- संज्ञा पुं० [सं०] १ कामदेव के पाँच बाण । २. कामदेव ।

पंचशस्य संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशस्य] देवकार्य मे प्रयुक्त होनेवाले धान, मूँग, तिल, उड़द, और जौ ये पाँच अन्न [को०] ।

पंचशाख—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशाख] १ हाथ । २. पनसाखा । ३. हाथी (को०) ।

पंचशारदीय—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशारदीय] एक प्रकार का यज्ञ [को०] ।

पंचशिख संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशिख] १. सिंघा बाजा । २. एक मुनि जो महाभारत के अनुसार महर्षि कपिल के पुत्र थे ।

विशेष—सांख्य शास्त्र के ये एक प्रधान आचार्य थे । सांख्य सूत्रों में इनके मत का उल्लेख मिलता है । इनको लोग द्वितीय कपिल कहते हैं । ये कपिल की शिष्यपरंपरा के आसुरि के शिष्य थे । ३ सिंह (को०) ।

पंचशीर्ष संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशीर्ष] एक प्रकार का सर्प [को०] ।

पंचशील –संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशील] १. बौद्ध धर्म के अनुसार शील या सदाचार के पाँच सिद्धांत जिनका आचरण प्रत्येक धर्मशील व्यक्ति के लिये आवश्यक बताया गया है—(१) अस्तेय (चोरी न करना); (२) अहिंसा (हिंसा न करना), (३) ब्रह्मचर्य (व्यभिचार न करना), (४) सत्य (झूठ न बोलना) और (५) मादक द्रव्यों का भोग न करना । २. पाँच राजनीतिक सिद्धांत जो सन १९५४ के बांदुग संमेलन मे एशिया और अफ्रीका के प्रमुख देशों द्वारा शांति बनाए रखने के उद्देश्य से स्थिर किए गए हैं । ये इस प्रकार हैं ।—(१) राज्य की अखंडता और प्रभुता के प्रति परस्पर संमान, (२) परस्पर अनाक्रमण का आश्वासन, (३) आतरिक मामलों मे अहस्तक्षेप, (४) परस्पर समानता का भाव और (५) शांतिमय सहअस्तित्व ।

पंचशूरण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशूरण] वैद्यक मे पाँच विशेष कंद—अत्यम्लपर्णी, काडवेल, मालाकंद, सूरन, सफेद सूरन ।

पंचशैरीषक—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशैरीषक] सिरिस वृक्ष के पाँच अंग जो औषध के काम आते हैं—जड़, छाल, पत्ते, फूल और फल ।

पंचशैल —संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशैल] पुराणों मे वर्णित एक पर्वत [को०] ।

पंचष -वि० [सं० पञ्चष] पाँच या छह [को०] ।

पंचषष्टि[1] –संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चषष्टि] पैंसठ की संख्या ।

पंचषष्टि[2]—वि० पैंसठ ।

पंचसंधि - संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चसन्धि] व्याकरण में संधि के पाँच भेद—स्वर संधि, व्यंजनसंधि, विसर्गसंधि, स्वादिसंधि और प्रकृति भाव । २. रूपक की प्रकृति तथा अवस्थाओं के संमिश्रण से होनेवाली पाँच संधियाँ । ये इस प्रकार हैं—मुख प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण (को०) ।

पंचसप्तति[1]—स्त्री० सं० [सं० पञ्चसप्तति] पचहत्तर की संख्या ।

पंचसप्तति[2]—वि० पचहत्तर ।

पंचसबद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशब्द] दे० 'पंचशब्द' । उ०—(क) इतने सुभट्ट सजि जुद्ध धार । बाजे पंचसबद बाजे करार ।—पृ० रा०, ८।१५ । (ख) पंचसबद धुनि मंगल गाना । पट पावड़े परहिं बिधि नाना ।—तुलसी (शब्द०) ।

पंचसर[1]—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशर] कामदेव । दे० 'पंचशर' । उ०— मदन मनोभव पंचसर मयन कुसुमसर मार । —अनेकार्थ०, पृ० १८ ।

पंचसर[2]—संज्ञा पुं० [सं० पञ्च+स्वर या देश०] दे० 'पंचशब्द' । उ०—मुरधर प्रगट थयो महराजा । बाजै सु सुर पंचसर बाजा । रा० रू०, पृ० ३०१ ।

पंचसिक—वि० [हिं० पचीस+एक] पचीस । उ०—एक कोट पचसिक द्वारा पचे मागहिं हाला ।—कबीर ग्र०, पृ० २७३ ।

पंचसिद्धांती—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चसिद्धान्ती] ज्योतिष संबंधी सूर्य सिद्धांत आदि पाँच सिद्धांत [को०] ।

पंचसिद्धौषधि—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चसिद्धौषधि] वैद्यक मे ये पाँच औषधियाँ—तालिव मिस्री, बराहीकंद, रोदंती, सर्पाक्षी और सरहटी ।

पंचसुगंधक—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चसुगन्धक] वैद्यक में ये पाँच सुगंध औषधियाँ—लौंग, शीतलचीनी, अगर, जायफल, कपूर, अथवा कपूर, शीतलचीनी, लौंग, सुपारी और जायफल ।

पंचसूना —संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चसूना] मनु के अनुसार पाँच प्रकार की हिंसा जो गृहस्थों से गृहकार्य करने में होती है । वे पाँच काम जिनके करने में छोटे छोटे जीवों की हिंसा होती है ।

विशेष—वे पाँच काम ये हैं—चूल्हा जलाना, आटा आदि पीसना, झाड़ू देना, कूटना और पानी का घड़ा रखना । इन्हें मनु ने

चुल्ली, पेषणी, उपस्कर, कंडनी और उदकुंभ लिखा है। इन्ही पाँच प्रकार की हिंसाओं के दोषों की निवृत्ति के लिये पचमहायज्ञों का विधान किया गया है। दे० 'पचमहायज्ञ'।

पंचसूरण—सज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चसूरण] दे० 'पचशूरण'।

पंचस्कंध—सज्ञा पुं० [सं० पञ्चस्कन्ध] बौद्ध दर्शन मे गुणो की समष्टि जिसे स्कंध कहते हैं।

विशेष—स्कंध पाँच हैं—रूपस्कंध, वेदनास्कध, सज्ञास्कंध संस्कार स्कध और विज्ञानस्कध रूपस्कध का दूसरा नाम वस्तुतन्मात्रा है। इस स्कध के अंतर्गत ४ महाभूत, ५ ज्ञानेंद्रिय, ५ तन्मात्राएँ, २ लिंग (स्त्री और पुरुष), ३ अवस्थाएँ (चेतना, जीवितेंद्रिय और आकार), चेष्टा, वाणी, चित्तप्रसादन, स्थितिस्थापन, समता, समष्टि, स्थायित्व, श्रेयत्व और परिवर्तनशीलता नामक २८ गुण माने जाते हैं। रूपस्कंध से ही वेदनास्कंध की उत्पत्ति होती है। यह वेदनास्कध पाँच ज्ञानेंद्रियो और मन के भेद से छह प्रकार का होता है, जिनमे प्रत्येक के रुच, अरुचि, स्पृहशून्यता ये तीन तीन भेद होते हैं। सज्ञास्कंध को अनुमिति-तन्मात्रा भी कहते है। इद्रिय और अतःकरण के अनुसार इसके छह भेद है। वेदना होने पर ही सज्ञा होती है। चौथा संस्कारस्कंध है जिसके ५२ भेद हैं—स्पर्श, वेदना, सज्ञा, चेतना, मनसिकार, स्मृति, जीवितेंद्रिय, एकाग्रता, वितर्क, विकार, वीर्य, अधिमोक्ष, प्रीति, चड, मध्यस्थता, निद्रा, तद्रा, मोह, प्रज्ञा, लोभ, अलोभ, उत्ताप, अनुताप, ह्री, अह्री, दोष, अदोष, विचिकित्सा, श्रद्धा, दृष्टि, द्विविध प्रसिद्धि (शारीर और मानस), लघुता, मृदुता, कर्मज्ञता, प्राज्ञता, उद्योतना, साम्य, करुणा, मुदिता, ईर्ष्या, मात्सर्य, कार्कश्य, औद्धत्य और मान। पाँचवाँ विज्ञान स्कध है। हिंदू शास्त्रो में कहे हुए चित्त, आत्मा और विज्ञान इसके अंतर्भूत हैं। इस स्कध के चेतना के धर्माधर्म भेद से ४९ भेद किए गए हैं। बौद्ध दर्शनों के अनुसार विज्ञानस्कध का क्षय होने से ही निर्वाण होता है।

पंचस्नेह—सज्ञा पुं० [सं० पञ्चस्नेह] घी, तेल, चरबी, मज्जा और माम।

पंचस्रोतस्—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चस्रोतस्] १. एक तीर्थ का नाम। २. एक यज्ञ।

पंचस्वेद—सज्ञा पुं० [सं० पञ्चस्वेद] वैद्यक के अनुसार लोष्टस्वेद, बालुकास्वेद, वाष्पस्वेद, घटस्वेद और ज्वालास्वेद।

पंचहजारी—संज्ञा पुं० [फ़ा० पंजहज़ारी] १. पाँच हजार की सेना का अधिपति। २. एक पदवी जो मुगल साम्राज्य मे बड़े बड़े लोगो को मिलती थी।

पंचांग[1]—सज्ञा पुं० [सं० पञ्चाङ्ग] १. पाँच अंग या पाँच अगो से युक्त वस्तु। २. वृक्ष के पाँच अग—जड़, छाल, पत्ती, फूल और फल (वैद्यक)। ३. तत्र के अनुसार ये पाँच कर्म—जप, होम, तर्पण, अभिषेक और विप्रभोजन जो पुरश्चरण में किए जाते है। ४. ज्योतिष के अनुसार वह तिथिपत्र जिसमें किसी संवत् के वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करण ब्योरेवार दिए गए हों। पत्रा। ५. राजनीतिशास्त्र के अंतर्गत सहाय, साधन, उपाय, देश-काल-भेद और विपद्-प्रतिकार। ६. प्रणाम का एक भेद जिसमे घुटना, हाथ और माथा पृथ्वी पर टेककर आँख देवता की ओर करके मुँह से प्रणामसूचक शब्द कहा जाता है। ७. तांत्रिक उपासना में किसी इष्टदेव का कवच, स्तोत्र, पद्धति, पटल और सहस्र नाम। ८. वह घोड़ा जिसके चारो पैर टाप के पास सफेद हो और माथे पर सफेद टीका हो। पचभद्र। पचकल्याण। ९. कच्छप। कछुवा।

यौ०—**पंचांग मास** = पत्रा के अनुसार चलनेवाला महीना। **पंचांग वर्ष** = संवत्। **पंचांग शुद्धि** = ज्योतिष मे वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करण की शुद्धता।

पंचांग[2]—वि० पाँच अगोवाला [को०]।

पंचांगिक—वि० [सं० पञ्चाङ्गिक] पाँच अगोवाला [को०]।

पंचांगुल[1]—वि० [सं० पञ्चाङ्गुल] [स्त्री० पंचांगुला, पंचांगुली] जो परिमाण मे पाँच अगुल का हो या जिसमे पाँच उँगलियाँ हों।

पंचांगुल[2]—सज्ञा पुं० १. एरड। रेंड़। अडी। २. तेजपत्ता। ३. पंजे के आकार का एक उपकरण (को०)।

पंचांगुलि—वि० [सं० पञ्चाङ्गुलि] पाँच अगुलियोंवाला [को०]।

पंचांगुली—सज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चाङ्गुली] तक्राह्वा नामक क्षुप [को०]।

पंचांतरीय—सज्ञा पुं० [सं० पञ्चान्तरीय] बौद्ध मत के अनुसार पाँच प्रकार के पातक—माता, पिता, अर्हंत और बुद्ध का घात और याजको के साथ विवाद।

पंचान(पु)—सज्ञा पुं० [सं० पञ्चानन] सिंह। पचानन। उ० —भालि नीर वाराह हक्क बज्जी चावद्दिसि मुक्कि थान पचान मिले संमूह सूर धसि। —पृ० रा०, १७।१।

पंचांश—सज्ञा [सं० पञ्चांश] पाँचवाँ हिस्सा। पाँचवाँ भाग [को०]।

पंचाइण(पु)†—सज्ञा पुं० [सं० पञ्चानन] सिंह। पचानन। उ०— पचाइण नइं पाखरघउ मइगल नइ मद कीध। मोहण बोली मारुइ कत पेम रस पीध।—ढोला०, दू० ५५४।

पंचाइत—सज्ञा स्त्री० [हिं० पंचायत] दे० 'पचायत'।

पंचाक्षर[1]—वि० [सं० पञ्चाक्षर] जिसमें पाँच अक्षर हो। जैसे, पचाक्षर मंत्र, पचाक्षर शब्द, पचाक्षर वृत्ति।

पंचाक्षर[2]—सज्ञा पुं० १. प्रतिष्ठा नामक वृत्ति जिसमे पाँच अक्षर होते हैं। २. शिव का एक मत्र जिसमे पाँच अक्षर है—ॐ नमः शिवाय।

पंचाग्नि[1]—सज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चाग्नि] १. अन्वाहार्य पचन, गार्हपत्य, आहवनीय, आवसथ्य और सभ्य नाम की पाँच अग्नियाँ। २. छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार सूर्य, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष और योषित्।

यौ०—**पचाग्नि विद्या** = छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार सूर्य, बादल, पृथ्वी, पुरुष और स्त्री संबंधी तात्विक विज्ञान।

३. एक प्रकार का तप जिसमे तप करनेवाला अपने चारो ओर

अग्नि जलाकर दिन मे धूप में बैठा रहता है। यह तप प्रायः ग्रीष्म ऋतु मे किया जाता है। ४. आयुर्वेद के अनुसार चीता खिचड़ी, भिलावाँ, गंधक और मदार नामक ओषधियाँ जो बहुत गरम मानी जाती हैं।

पंचाग्नि[2]—वि० १. पंचाग्नि की उपासना करनेवाला। २. पंचाग्नि विद्या जानेवाला। ३. पंचाग्नि तापनेवाला।

पंचाज—संज्ञा पु० [सं० पञ्चाज] बकरी से प्राप्त होनेवाला पाँच पदार्थ —दूध दही, घी, पुरीष (लेंड़ी) और मूत्र [को०]।

पंचातप—संज्ञा पु० [सं० पञ्चातप] चारो ओर आग जलाकर ग्रीष्मऋतु मे बैठकर तप करना। पंचाग्नि।

पंचातिग—वि० [सं० पञ्चातिग] मुक्त [को०]।

पंचात्कोप संज्ञा पु० [सं० पञ्चात्कोप] कौटिल्य के अनुसार राजा के विजय के लिये आगे बढ़ने पर राज्य में विद्रोह फैलाना।

पंचात्मक वि० [सं० पञ्चात्मक] जिसमे पाँच तत्व हों। पाँच तत्वों से युक्त, जैसे शरीर [को०]।

पंचात्मा —संज्ञा पु० [सं० पञ्चात्मन्] पंचप्राण।

पंचानन[1]—वि० [सं० पञ्चानन] जिसके पाँच मुँह हों। पंचमुखी।

पंचानन[2]—संज्ञा पु० १. शिव। २ सिंह। उ०—सबै सेन अवसान मुक्कि लग्यो बर तामस। तब पचानन हक्कि धक्कि चहुआना पामिस।—पृ० रा०, १७।८।

विशेष—(१) सिंह को पंचानन कहने का कारण लोग दो प्रकार से बतलाते हैं। कुछ लोग तो पाँच शब्द का अर्थ विस्तृत करके पंचानन का अर्थ 'चौड़े मुँहवाला' (पंचं विस्तृत आननं यस्य) करते हैं। कुछ लोग चारों पंजों को जोड़कर पाँच मुँह गिना देते हैं।

(२) विषय और अध्ययन की दृष्टि से सर्वोच्चता एवं गुरुत्व तथा श्रेष्ठता का बोध कराने के लिये इस शब्द का प्रयोग नाम आदि के साथ भी होता है। जैसे, न्यायपचानन, तर्कपंचानन।

३. संगीत में स्वरसाधन की एक प्रणाली। आरोही—सा रे ग म प। रे ग म प ध। ग म प ध नि म प ध नि सा। अवरोही सा नि ध प म। नि ध प म ग। ध प म ग रे। ग म ग रे सा। ४. ज्योतिष मे सिंह राशि (को०)। ५. वह रुद्राक्ष जिसमें पाँच रेखाएँ हों (को०)।

पंचाननी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चाननी] १. दुर्गा। २. सिंह की मादा। शेरनी (को०)।

पंचानबे—वि० [सं० पञ्चनवति, प्रा० पंचनवइ] नब्बे और पाँच। पाँच कम सौ।

पंचानबे[2]—संज्ञा पु० नब्बे से पाँच अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९५।

पंचाप्सर—संज्ञा पु० [सं० पञ्चाप्सरस्] रामायण और पुराणो के अनुसार दक्षिण में पंपा नामक तालाब जहाँ शातकर्णि मुनि तप करते थे। इनके तप से भय खाकर इंद्र ने इनको तप से च्युत करने के लिये पाँच अप्सराएँ भेजी थी। रामायण में शातकर्णि को माडकर्णि लिखा है। पंपासर।

पंचामरा—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चामरा] वैद्यक में दूर्वा, विजया, बिल्वपत्र निर्गुंडी और काली तुलसी।

पंचामृत[1]—संज्ञा पु० [सं० पञ्चामृत] १. एक प्रकार का स्वादिष्ट पेय द्रव्य जो दूध, दही, घी, चीनी और मधु मिलाकर बनाया जाता है। पुराण, तंत्रादि के अनुसार यह देवताओ को स्नान कराने और चढ़ाने के काम मे आता है। २. वैद्यक मे पाँच गुणकारी ओषधियाँ—गिलोय, गोखरू, मुसली, गोरखमुंडी और शतावरी।

पंचामृत[2]—वि० पाँच वस्तुओं के योग से निर्मित [को०]।

पंचाम्नाय—संज्ञा पु० [सं० पञ्चाम्नाय] तंत्र में वे पाँच शास्त्र जो शिव के पाँच मुखों से उत्पन्न माने जाते हैं [को०]।

पंचाम्र — पु० [सं० पञ्चाम्र] अश्वत्थ आदि पाँच वृक्ष [को०]।

पंचाम्ल – संज्ञा पु० [सं० पञ्चाम्ल] वैद्यक में ये पाँच अम्ल या खट्टे पदार्थ—अम्लवेद, इमली, जँभीरी नीबू, कागदी नीबू और बिजौरा। मतांतर से—बेर, अनार, बिषावलि, अम्लवेद और बिजौरा नीबू।

पंचायत—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चायतन] १. किसी विवाद, झगड़े या और किसी मामले पर विचार करने के लिये अधिकारियो या चुने लोगों का समाज। पंचों की बैठक या सभा। कमेटी। जैसे —(क) बिरादरी की पंचायत। (ख) उन्होने अदालत मे न जाकर पंचायत से निपटारा कराना ही ठीक समझा।

क्रि० प्र०—बैठना।—बैठाना।—बटोरना।

२. बहुत से लोगों का एकत्र होकर किसी मामले या झगड़े पर विचार। पंचों का वाद विवाद।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—पंचायत घर=वह स्थान जहाँ समाज के लोग पंचों के साथ बैठकर किसी मामले के संबंध मे निर्णय करते हैं।

३. एक साथ बहुत से लोगों की बकवाद।

पंचायतन—संज्ञा पु० [सं० पञ्चायतन] [स्त्री० पंचायतनी] पाँच देवताओं की प्रतिमा। वह स्थान जहाँ पंचदेव की प्रतिमाएँ हो [को०]।

पंचायती—वि० [हिं० पंचायत] १. पंचायत का किया हुआ। पंचायत का। २. पंचायत संबंधी। ३. बहुत से लोगों का मिला जुला। साझे का। जिसपर किसी एक आदमी का अधिकार न हो। जो कई लोगों का हो। जैसे,—पचायती अखाड़ा। ४. सब पचों का। सर्वसाधारण का।

यौ०—पंचायती राज=जनता का राज्य। बहुत से लोगों का मिला जुला शासन। जनतंत्र।

पंचारी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चारी] चौसर, शतरंज आदि की बिसात [को०]।

पंचार्चि—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चार्चिस्] बुध ग्रह [को०]।

पंचाल—संज्ञा पु० [सं० पञ्चाल] १. एक देश का प्राचीन नाम जो

ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रंथों से लेकर पुराणों तक मे पाया जाता है ।

विशेष—इस देश की सीमा भिन्न भिन्न कालों में भिन्न भिन्न रही है। यह देश हिमालय और चंबल के बीच गंगा नदी के दोनों ओर माना जाता था। गंगा के उत्तर प्रदेश को उत्तर पंचाल और दक्षिण प्रदेश को दक्षिण पंचाल कहते थे। इस देश को देवपंचाल से भिन्न समझना चाहिए जो सौराष्ट्र देश का एक भाग था। इस देश का पंचाल नाम पडने के संबंध में पुराणों में यह कथा है. महाराज हर्यश्व अपने भाई से लड़कर अपनी ससुराल मधुपुरी चले गए और अपने ससुर मधु की सहायता से उन्होंने अयोध्या के पश्चिम के देशों पर अधिकार कर लिया। जब लोगों ने आकर उनसे अयोध्या के राजा के आक्रमण की बात कही तब उन्होंने पाँच पुत्रों (मुदगल, सृंजय, बृहदिषु, प्रवीर और कांपिल्य) की ओर देखकर कहा कि ये पाँचो हमारे राज्य की रक्षा के लिये अलम् (पंचालम्) हैं। तभी से उनके अधिकृत देश का नाम पंचाल पड़ा।

हरिवंश में लिखा है कि हर्यश्व ने सौराष्ट्र देश में आनर्तपुर नामक नगर बसाया था। इसी आधार पर कुछ लोग देवपंचाल को ही पंचाल कहते हैं। पर महाभारत में हिमालय के अंचल से लेकर चंबल तक फैले हुए गंगा के उभयपार्श्वस्थ देश का ही वर्णन पंचाल के अंतर्गत आया है। पांडवो के समय में इस देश का राजा द्रुपद था जिससे द्रोणाचार्य ने उत्तरपंचाल छीन लिया था। महाभारत में उत्तरपचाल की राजधानी अहिच्छत्रपुर और दक्षिण की कंपिल लिखी है। द्रौपदी यहीं के राजा की कन्या होने के कारण 'पांचाली' कही गई है।

२. [स्त्री० पंचाली] पचाल देशवासी। ३. पचाल देश का राजा। ४. एक ऋषि जो वाभ्रव्य गोत्र के थे। ५ महादेव। शिव। ६. एक छद जिसके प्रत्येक चरण मे एक तगण (ऽऽ।) होता है। ७. दक्षिण देश की एक जाति। इस जाति के लोग बढ़ई और लोहार का काम करते हैं और अपने को विश्वकर्मा के वंश का बतलाते हैं। ये जनेऊ पहनते हैं। ८. एक सर्प का नाम। ९. एक विषैला कीड़ा।

पंचालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चालिका] १ पुतली। गुड़िया। २. नटी। नर्तकी। उ०—नचति मंच पंचालिका कर संकलित अपार।—केशव (शब्द०)।

पंचालिस—वि० [हिं० पंच+चालिस] दे० 'पैंतालिस'।

पंचालिस्ठ—वि० [?] दे० 'पैंतालिस'।

पंचाली—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चाली] १. पुतली। गुड़िया। २. पांचाली। द्रौपदी। ३. एक प्रकार का गीत। पाञ्चाली। ४. चौसर की बिसात। पंचारी :

पंचावयव—वि० [सं० पञ्चावयव] पाँच अवयव अर्थात् अंगोंवाला [को०]।

पंचावस्थ[1]—वि० [सं० पञ्चावस्थ] पाँचवीं अवस्था' मे पहुँचा हुआ अर्थात् मृत।

पंचावस्थ[2]—संज्ञा पुं० पंचत्व। शव। मुर्दा [को०]।

पंचाविक—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चाविक] भेड से प्राप्त होनेवाले पाँच पदार्थ—दूध, दही, घी, पुरीष और मूत्र [को०]।

पंचावी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चावी] वह गाय जिसके तले ढाई वर्ष का बच्चा हो।

पंचाश—वि० [सं० पञ्चाश] पचासवाँ

पंचाशत्—वि० [सं० पञ्चाशत्] पचास।

पंचाशिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चाशिका] १. वह पुस्तक जिसमें पचास श्लोक कवित्त आदि हो। जैसे, चौरपंचाशिका। २. पचास का समूह (को०)।

पंचाशीत—वि० [सं० पञ्चाशीत] पच्चासीवाँ।

पंचाशीति—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चाशीति] पच्चासी की संख्या।

पंचास—वि० [सं० पञ्चाश] दे० 'पचास'। उ०- प्रसन चंद सम जतिय दिश्न इक मत्र इस्ट जिय। इह आराधत भट्ट प्रगट पंचास बीर विय।—पृ० रा०, ६।२६।

पंचास्य[1]—वि० [सं० पञ्चास्य] पाँच मुँहवाला।

पंचास्य[2]—संज्ञा पुं० १ सिंह। विशेष—दे० 'पंचानन'। २. शिव।

पंचाह—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चाह] १. एक यज्ञ का नाम जो पाँच दिन में होता था। २. सोमयाग के अंतर्गत वह कृत्य जो सुत्या के पाँच दिनों मे किया जाता है।

पंचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चिका] पाँच अध्यायों या खंडों का समूह। २. एक प्रकार का जूआ जो पाँच गोटियो से खेला जाता है (को०)। ३. रजिस्टर। खाता। बही। लेखा (को०)।

पंचीकरण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चीकरण] वेदात में पंचभूतों का विभाग विशेष।

विशेष—वेदांतसार के अनुसार प्रत्येक स्थूल भूत में शेष चार भूतों के अंश भी वर्तमान रहते है। भूतों की यह स्थूल स्थिति पचीकरण द्वारा होती है जो इस प्रकार होता है। पाँचों भूतों को पहले दो बराबर बराबर भागो में विभक्त किया, फिर प्रत्येक के प्रथमार्द्ध को चार चार भागो में बाँटा। फिर इन सब बीसों भागों को लेकर अलग रक्खा। अंत मे एक एक भूत के द्वितीयार्ध में इन बीस भागों मे से चार चार भाग फिर से इस प्रकार रक्खे कि जिस भूत का द्वितीयार्ध हो उसके अतिरिक्त शेष चार भूतो का एक एक भाग उसमें आ जाय।

पंचीकृत—वि० [सं० पञ्चीकृत] (भूत) जिसका पचीकरण हुआ हो।

पंचूरा —संज्ञा पुं० [हिं० पानी+चूना] लड़कों के खेलने का मिट्टी का एक बरतन या खिलौना जिसके पेंदे मे बहुत से छेद होते हैं। पानी भरने से वह छेदो मे से होकर टपकने लगता है।

पंचेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चेन्द्रिय] पाँच ज्ञानेंद्रियाँ जिनके द्वारा प्राणियो को बाह्य जगत् का ज्ञान होता है। दे० 'इंद्रिय'।

पंचेषु—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चेषु] कामदेव (जिसके पाँच इषु या शर हैं)।

पंचो—संज्ञा पुं० [देश०] गुल्ली डंडे के खेल में डंडे से गुल्ली को मार-

कर दूर फेंकने का एक ढंग। इसमें गुल्ली को बाएँ हाथ से उछालकर दाहिने हाथ से मारते हैं।

पंचोपचार—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पञ्चोपचार] पूजा में प्रयुक्त होनेवाले या साधन रूप पाँच द्रव्य। गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य—ये पाँच देवपूजन में प्रयुक्त होनेवाले पदार्थ [को॰]।

पंचोपविष—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पञ्चोपविष] हड, मदार, कनेर, जलपीपल और कुचला - ये पाँच कृत्रिम और सामान्य विष [को॰]

पंचोषण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पञ्चोष्ण] पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, मिर्च और चित्रक नामक पाँच ओषधियाँ।

पंचोष्मा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पञ्चोष्मन्] शरीर के भीतर, भोजन पचानेवाली पाँच प्रकार की अग्नि।

पंचौदन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पञ्चौदन] एक यज्ञ का नाम।

पंचौबान(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पञ्चबाण] पंचबाण। कामदेव। उ॰—पंचागनि कहा साधै पचौबान हमैं दाधै हरे बेदरद होय अगिन मांझ धर दै।—ब्रज॰ ग्रं॰, पृ॰ १३२।

पंचौली[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पञ्च+आवलि] एक पौधा जो पश्चिम भारत, मध्यप्रदेश, बंबई और बरार में मिलता है। पचपात। पंचपानडी।

विशेष—इसकी पत्तियों और डंठलों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकलता है जिसका व्यवहार यूरोप के देशों में होता है। इसकी खेती पान के भीटों में की जाती है। पौधे दो दो फुट की दूरी पर लगाए जाते हैं। एक बार के लगाए हुए पौधों से दो बार छह छह महीने पर फसल काटी जाती है। दूसरी फसल कट जाने पर पौधे खोदकर फेंक दिए जाते हैं। डंठल सूख जाने पर बड़े बड़े गट्ठों में बाँधकर बिक्री के लिये भेज दिए जाते हैं। इन डंठलों से भभके द्वारा तेल निकाला जाता है। ९६ सेर लकड़ी से लगभग बारह से पंद्रह सेर तक तेल निकलता है। यूरोप में इस तेल का व्यवहार सुगंध द्रव्य की भाँति होता है। इसे 'पचपात' और 'पचपानडी' भी कहते हैं।

पंचौली[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पञ्चकुल, पञ्चकुली] वंशपरंपरा से चली आती हुई एक उपाधि।

विशेष—प्राचीन समय में किसी नगर या गाँव में व्यवस्था रखने और छोटे मोटे झगडों को निपटाने के लिये पाँच प्रतिष्ठित कुल के लोग चुन लिए जाते थे जो 'पंच' कहलाते थे।

पंछा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पानी+छाल] १. पानी की तरह का एक स्राव जो प्राणियों के शरीर से या पेड़ पौधों के अंगों से चोट लगने पर या यों ही निकलता है। २. छाले, फफोले, चेचक आदि के भीतर भरा हुआ पानी।

पंछाला—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पानी+छाला] १. फफोला। २. फफोले का पानी। उ॰—केतकी ने कहा काँटा अड़ा तो अड़ा और छाला पड़ा तो पड़ा पर निगोड़ी तू क्यों पंछाला हुई।—इनशा॰ (शब्द॰)।

पंछिराज(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पक्षिराज] दे॰ 'पक्षिराज'।

पंछी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पक्षी] चिड़िया। पक्षी। उ॰—भई यह सौंझ सबन सुखदाई। मानिक गोलक सम दिनमणि मनु संपुट दियो छिपाई। अलसानी दृग मूँदि मूँदि कै कमल लता मन भाई। पंछी निज निज चले बसेरन गावत काम बधाई।—हरिश्चंद्र (शब्द॰)।

पंज—वि॰ [फा॰] पाँच [को॰]।

यौ॰—पंजआयत। पंजगंज। पंजगुना = पँचगुना। पंजगोशा = पंचकोण युक्त। पँचकोना। पंजतन। पंजनोश। पंजहजारी।

पंजआयत—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] कुरान की पाँच छोटी छोटी आयतें जो प्रायः गमी या फातिहे के समय पढ़ी जाती हैं [को॰]।

पंजगंज—संज्ञा पुं॰ [फ़ा] पाँचेंद्रिय समूह। पाँच इंद्रियाँ [को॰]।

पंजतन—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] पाँच व्यक्ति।

पंजनोश—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] १. मंडूर, लोह, ताँबा, अभ्रक और पारद का रासायनिक मिश्रण। २. लोहे का मैल। मंडूर [को॰]

पंजर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पञ्जर] १. शरीर का वह कड़ा भाग जो अणुजीवों तथा बिना रीढ के और क्षुद्र जीवों में कोश या आवरण आदि के रूप में ऊपर होता है और रीढ़वाले जीवों में कड़ी हड्डियों के ढाँचे के रूप में भीतर होता है। हड्डियां का टट्टर या ढाँचा जो शरीर के कोमल भागों को अपने ऊपर ठहराए रहता है अथवा बंद या रक्षित रखता है। ठठरी। अस्थिसमुच्चय। कंकाल। २. पसलियों से बना हुआ परदा। ऊपरी धड़ (छाती) की हड्डियों का घेरा। पार्श्व, वक्षस्थल आदि की अस्थिपंक्ति। उ॰—जान जान कीने जो तैं नेहिन ऊपर वार। भरे जो नैन कटाच्छ के खंजर पंजरफार।—रसनिधि (शब्द॰)। ३. शरीर। देह। ४. पिंजड़ा। उ॰—पंजर भग्न हुआ, पर पक्षी अब भी अटक रहा है प्राण।—साकेत, पृ॰ ३९६।

यौ॰—पंजरशुक = पालतू तोता। पालतू सुग्गा। पिंजड़े में पालित सुग्गा।

५. गाय का एक संस्कार। ६. कलियुग। ७. कोल कंद।

पंजरक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पञ्जरक] १. खाँचा। झाबा। बेंत या लचीले डंठलों आदि का बुना हुआ बड़ा टोकरा। २. पिंजरा। पिंजर (को॰)।

पंजरना(पु)—क्रि॰ अ॰ [सं॰ प्रज्वल] दे॰ 'पजरना'।

पंजराखेट—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पञ्जराखेट] एक प्रकार का झाबा या जाल जो मछली पकड़ने में काम आता है [को॰]।

पंजरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पञ्जर (= ठठरी)] अर्थी। टिकठी।

पंजरोजा—वि॰ [फ़ा॰ पंजरोजह्] पाँच दिनों का। चंद दिनों का। अस्थायी [को॰]।

पंजवाँ(पु)—वि॰ [सं॰ पञ्चमी] पाँच की संख्यावाली। पाँचवाँ। उ॰—पंजवीं नाड़ि इंद्री की करी। नानक किसे विरले सोझी परी।—प्राण॰, पृ॰ १६।

पंजशाखा—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ पंजशाखह्] एक तरह की मशाल। एक तरह की बैठकी (दीपाधार) जिसमें पाँच शाखाओं पर दीप या मोमबत्ती जलाई जाती है। दे॰ 'पनसाखा' [को॰]।

पंजहजारी—संज्ञा पुं० [फा० **पंजहजारी**] एक उपाधि जो मुसलमान राजाओं के समय में सरदारों और दरबारियों को मिलती थी। ऐसे लोग या तो पाँच हजार सेना रख सकते थे अथवा पाँच हजार सेना के नायक बनाए जाते थे।

पंजा—संज्ञा पुं० [फा० **पंजह्** तुलनीय वि० सं० **पंचक**] १. पाँच का समूह। गाही। जैसे, चार पंजे आम। २. हाथ या पैर की पाँचो उँगलियो का समूह, साधारणतः हथेली के सहित हाथ की और तलवे के अगले भाग के सहित पैर की पाँचों उँगलियाँ। जैसे, हाथ या पैर का पंजा, बिल्ली या शेर का पंजा।

मुहा०—**पंजा फेरना या मोड़ना** = पंजा लड़ाने में दूसरे का पंजा मरोड़ देना। पंजे की लड़ाई में जीतना। **पंजा फैलाना या बढ़ाना** = लेने या अधिकार मे करने के लिये हाथ बढ़ाना। हथियाने का डौल करना। लेने का उद्योग करना। **पंजा मारना** = लेने के लिये हाथ लपकाना। झपाटा मारना। **पंजे झाड़कर पीछे पड़ना या चिमटना** = हाथ धोकर पीछे पड़ना। जी जान से लगना या तत्पर होना। सिर हो जाना। **पंजे में** = (१) पकड़ में। मुट्ठी में। ग्रहण में। जैसे, पंजे में आया हुआ शिकार। (२) अधिकार मे। कब्जे मे। वश में। ऐसी स्थिति में जिसमे जो चाहे किया जा सके। जैसे,—अब तो तुम हमारे पंजे में फँस गए (या आ गए) हो; अब कहाँ जाते हो? **पंजे में कर लेना** = अधिकार में कर लेना। उ०—हित ललक से भरी लगावट ने, कर लिया है किसे न पंजे में।—चोखे०, पृ० २०। **पंजे से** = पकड़ से। मुट्ठी से। अधिकार से। कब्जे से। जैसे, पंजे से छूटना, पंजे से निकलना। **पंजा लड़ाना** = एक प्रकार की कसरत या बलपरीक्षा जिसमे दो आदमी एक दूसरे की उँगलियाँ फँसाकर मरोड़ने का प्रयत्न करते हैं। उ०—भैरवी मेरी तेरी झंझा। तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझसे पंजा।—अपरा, पृ० १३३। **पंजा लेना** = पंजा लड़ाना। **पंजों के बल चलना** = बहुत ऊँचा होकर चलना। इतराना। गर्व करना। जमीन पर पैर न रखना।

३. पंजा लड़ाने की कसरत या बलपरीक्षा।

क्रि० प्र०—**करना**।—**होना**।

मुहा०—**पंजा ले जाना** = पंजा लड़ाने में जीत जाना। दूसरे का पंजा मरोड़ देना।

४. उँगलियों के सहित हथेली का संपुट। चंगुल। जैसे, पंजा भर आटा। ५. जूते का अगला भाग जिसमें उँगलियाँ रहती हैं। जैसे,—इस जूते का पंजा दबाता है। ६. बैल या भैंस की पसली की चौड़ी हड्डी जिससे भंगी मैला उठाते हैं। ७ पंजे के आकार का बना हुआ पीठ खुजलाने का एक औजार। ८. मनुष्य के पंजे के आकार का कटा हुआ टीन या और किसी धातु की चद्दर का टुकड़ा जिसे लंबे बाँस आदि में बाँधकर झंडे या निशान की तरह ताजिए के साथ लेकर चलते हैं। ९. पुट्ठे के ऊपर का माँस (चिक या कसाई)। १०. ताश का वह पत्ता जिसमें पाँच चिह्न या बूटियाँ हों। जैसे, ईंट का पंजा। ११. जुए का दाँव जिसे नक्की भी कहते हैं।

मुहा०—**छक्का पंजा** = दाँव पेंच। चालबाजी। उ०—नीकी चाल काहू की सिखाई जो न मानै औ न जानै भली भाँति चलिबे को व्यवहार है। छक्का पंजा बद कामादिक कै न चूकै सौ न जीवन के रंग बदरंग को प्रचार है।—चरण चंद्रिका (शब्द०)।

पंजातोड़ बैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० पजा + तोड़ना + बैठक] कुश्ती का एक पेंच जिसमे सलामी का हाथ मिलाते हुए जोड़ के पंजे को तिरछा लेते हैं, फिर अपनी कुहनी उसके पेट के नीचे रख पकड़े हुए हाथ को अपनी गर्दन या कधे पर से ले जाकर बगल मे दबाते हैं और झटके के साथ खीचकर जोड़ को चित गिराते है।

पंजाब—संज्ञा पुं० [फा०] [वि० **पजाबी**] भारत के उत्तरपश्चिम का प्रदेश जहाँ सतलज, ब्यास, रावी, चनाब और झेलम नाम की पाँच नदियाँ बहती हैं।

विशेष—प्राचीन ग्रंथो मे इसका नाम पंचनद आया है। विद्वानों की धारणा है कि ऋग्वेद मे जिस सप्तसिंधु का उल्लेख है वह यही प्रदेश है। उसमे अंशुमती, असिक्नी, अग्निनभा, अशमन्वती असिक्नी, ककुभा (काबुल नदी), क्रमु, शुतुद्री, वितस्ता, शिफा, शर्यणावती, सरस्वती, सुवास्तु (स्वात) इत्यादि जिन बहुत सी नदियो का उल्लेख है वे प्रायः सब पंजाब की ही हैं। सरस्वती के किनारे का सारस्वत प्रदेश वैदिक काल मे बहुत पुनीत माना जाता था और वहाँ अनेक बड़े बड़े यज्ञ हुए हैं। मनुसंहिता का ब्रह्मर्षि देश भी पंजाब के ही अंतर्गत था। महाभारत में आए हुए मद्र, आरट्ट, सिंधु, गांधार आदि देश पजाब में ही पड़ते थे। महाभारत मे मद्र देश के वासियो का आचार व्यवहार निंदित कहा गया है।

पंजाबल—संज्ञा पुं० [हिं० पजा + बल] पालकी के कहारो की बोली, यह सूचित करने के लिये कि आगे की भूमि ऊँची है।

विशेष—यह वाक्य अगले कहार पिछले कहारो की सूचना के लिये बोलते हैं।

पंजाबी[1]—वि० [फा०] पंजाब संबंधी। पंजाब का। जैसे, पंजाबी घोड़ा, पजाबी भाषा, पंजाबी जूता।

पंजाबी[2]—संज्ञा पुं० [अं० **पंजाबिन**] पजाब का रहनेवाला। पजाब निवासी।

पंजारा—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जा (रुई) अथवा पिञ्जकार] १. रुई से सूत कातनेवाला। २. रुई धुननेवाला। धुनिया।

पंजाह—वि० [फा०, तुल सं० पञ्चाशत्] पचास (को०)।

पंजि—संज्ञा स्त्री० [सं० **पञ्जि**] १. रुई की पिउनी या गोल पहल जिसे हाथ मे लेकर काता जाता है। २. आलेख। बही।

रजिस्टर। ३ पंचांग। पत्रा। जंत्री [को०]।

यौ०—पंजिकार। पंजिकारक।

पंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्जिका] १. पंचांग। २. शब्दशः व्याख्या करनेवाली टीका। विस्तृत टीका। ३. बही खाता (को०)। ४. यम का वह खाता जिसमें प्राणी के कर्मों का लेखा रहता है (को०)। ५. पूनी। पिउनी (को०)।

पंजिकारक—संज्ञा पुं० [सं० पञ्जिकारक] १. पंचांगनिर्माता। २. लेखक। बहीखाता लिखनेवाला। ३. एक जाति। कायस्थ [को०]।

पंजी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्जी] दे० 'पंजि'।

पंजीकरण—संज्ञा पुं० [सं० पञ्जीकरण] १. लेख आदि का बही या रजिस्टर पर लिखा जाना। २. रजिस्टर होना। रजिस्टर में लिखकर पक्का करना।

पंजीकार—संज्ञा पुं० [सं० पञ्जीकार] १. पंजी या बही लिखनेवाला व्यक्ति। लेखक। मुनीम। २. पंचाग का निर्माता। ज्योतिषी।

पंजीरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँच+जीरा] एक प्रकार की मिठाई जो आटे को घी मे भूनकर उसमें धनिया, सोंठ, जीरा आदि मिलाकर बनाई जाती है।

विशेष—इसका व्यवहार विशेषतः नैवेद्य मे होता है। जन्माष्टमी के उत्सव तथा सत्यनारायण की कथा में पंजीरी का प्रसाद बँटता है। पजीरी प्रसूता स्त्री के लिये भी बनती है और पठावे मे भी भेजी जाती है।

पंजीरी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण का एक पौधा जो मालाबार, मैसूर तथा उत्तरी सरकार मे होता है और ओषधि के काम में आता है। यह उत्तेजक, स्वेदकारक और कफनाशक होता है। जुकाम या सर्दी मे इसकी पत्तियो और डंठलों का काढ़ा दिया जाता है। संस्कृत में इसे इंदुपर्णी और अजपाद कहते हैं।

पंजुम—वि० [फ़ा०] पंचम। पाँचवाँ। उ०—पंजुम ख्वाब देखा जो है इक शहर। मर्द जन वहाँ को रहे घर ब घर। —दक्खिनी०, पृ० ३०१।

पंटलि(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पटल] आवरण। पद। उ०—परगृह जाय न देखे चचलि। गुरुमुखि त्यागे माया पंटलि।—प्राण०, पृ० ११।

पंड¹—संज्ञा पुं० [सं० पण्ड] १. नपुंसक। हिजड़ा। २. वह (पेड़) जिसमे फल न लगे।

पंड(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डव] दे० 'पांडव'। उ०—सँग्राम पंड कैरवे कि खंड बाण सोणिवं। रा० रू०, पृ० ६०।

पंड³—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड] दे० 'पिंड'। उ०—वसै अपंडी पंड में ता गति लखै न कोइ।—कबीर ग्रं०, पृ० १८।

पंडक—संज्ञा पुं० [सं० पण्डक] दे० 'पंड'।

पंडग—संज्ञा पुं० [सं० पण्डग] खोजा। नपुंसक।

पंडरा—संज्ञा पुं० [हिं० पानी+ढरना (ढरा)] परनाला। पनाला। नाबदान।

पंडल¹—वि० [सं० पाण्डुर] पांडु वर्ण का। पीला। उ०—(क) लोने मुख पंडल पै मंडल प्रकाश देव, जैसे चंद्र मंडल पै चंदन चढ़ाइयतु।—देव (शब्द०)।

पंडल²—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड, हिं० पंड+ल] पिंड। शरीर। उ०—(क) आसा एकहि नाम की जुग जुग पुरवै आस। ज्यों पंडल कोरी रहै बसे जो चंदन पास।—कबीर (शब्द०)। (ख) पंडल पिंजर मन भँवर अरथ अनूपम बास। एक नाम सींचा अमी फल लागा विश्वास।—कबीर (शब्द०)।

पंडव, पंडवा—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डव] दे० 'पांडव'।

पंडा¹—संज्ञा पुं० [सं० पण्डित] [स्त्री० पंडाइन] १. किसी तीर्थ या मंदिर का पुरोहित या पुजारी। तीर्थ पुरोहित। मंदिर का पुजारी। घाटिया। पुजारी। उ०—माया महा ठगिन हम जानी। तिर्गुन फाँस लिए कर डोलै बोलै मधुरी बानी। केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भई भवानी। पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी। —कबीर (शब्द०)। २. रोटी बनानेवाला ब्राह्मण। रसोइया।

पंडा²—संज्ञा स्त्री० [सं० पण्डा] १. विवेकात्मिका बुद्धि। विवेक। ज्ञान। बुद्धि। २. शास्त्रज्ञान।

पंडाइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० पंडा] १. पंडा की स्त्री। २. रसोइया की स्त्री या रसोई बनानेवाली औरत।

पंडापूर्व—संज्ञा पुं० [सं० पण्डापूर्व] मीमांसा शास्त्रानुसार वह धर्माधर्मात्मक अदृष्ट जो अपने कर्म का फल देने में अयोग्य हो।

विशेष—मीमांसा का मत है कि प्रत्येक कर्म के करते ही, चाहे वह अधर्म हो या धर्म एक अदृष्ट उत्पन्न होता है। इस अदृष्ट में अपने कर्म के शुभाशुभ फल देने की योग्यता होती है। पर कितने कर्मों के शुभाशुभ फल तो मिलते हैं और उनके फलों के मिलने का वर्णन अर्थवाद वाक्यों मे भी है पर कितने ऐसे भी कर्म हैं जिनका फल नहीं मिलता। ऐसे कर्मों की विधि तो शास्त्रों में है पर उनका अर्थवाद नहीं है। इस प्रकार के कर्मों के करने से जो अदृष्ट उत्पन्न होता है उसे 'पंडापूर्व' कहते हैं। मीमांसकों का मत है कि ऐसे अदृष्टों मे स्पष्ट फल देने की योग्यता नहीं होती पर वे पाप और पुण्य का क्षय करते हैं। नैयायिक इस प्रकार के अदृष्ट को नहीं मानते।

पंडाल—संज्ञा पुं० [अं०] किसी भारी समारोह के लिये बनाया हुआ विस्तृत मंडप। जैसे, संमेलन का पंडाल। कांग्रेस का पंडाल।

पंडावत—वि० [सं० पण्डावत] बुद्धिमान या पढ़ा लिखा [को०]।

पंडित¹—वि० [वि० स्त्री० पण्डित] [पंडिता, पंडिताइन पंडितानी] १. विद्वान्। शास्त्रज्ञ। ज्ञानी।

विशेष—लोक में 'पंडित' शब्द का प्रयोग पढ़े लिखे ब्राह्मणों ही के लिये होता है। शिष्टाचार में ब्राह्मणों के नाम के पहले यह शब्द रखा जाता है।

२. कुशल। प्रवीण। चतुर। ३. संस्कृत भाषा का विद्वान्।

पंडित²—संज्ञा पुं० १. पढ़ा लिखा शास्त्रज्ञ ब्राह्मण। २. वह जो सदसद् के विवेकज्ञान से युक्त हो। शास्त्रज्ञ विद्वान्। ३. ब्राह्मण। ३. एक प्रकार का गंधद्रव्य। सिह्लक (को०)।

पंडितक¹—संज्ञा पुं० [सं० पण्डितक] १. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। २. विद्वान् व्यक्ति (को०)।

पंडितक²—वि० शास्त्रज्ञ। विद्वान्। शिक्षित [को०]।

पंडितजातीय—वि० [सं० **पण्डितजातीय**] अल्प चतुर। कुछ कुशल [को०]।

पंडितमंडल—संज्ञा पुं० [सं० **पण्डितमण्डल**] [स्त्री० **पण्डितमंडली**] पंडितों की गोष्ठी। विद्वानों की मंडली [को०]।

पंडितमानिक—वि० [सं० **पण्डितमानिक**] दे० 'पंडितम्मन्य' [को०]।

पंडितमानी—वि० [सं० **पण्डितमानिन्**] दे० 'पंडितम्मन्य' [को०]।

पंडितम्मन्य—वि० [सं० **पण्डितम्मन्य**] अपने को विद्वान् माननेवाला। पांडित्याभिमानी। मूर्ख।

पंडितराज—संज्ञा पुं० [सं० **पण्डितराज**] १. प्रकांड विद्वान्। बहुत बड़ा पंडित। २. संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसगंगाधर' के रचयिता विद्वान् जगन्नाथ की उपाधि [को०]।

पंडितवादी—वि० [सं० **पण्डितवादिन्**] पंडित होने का स्वाँग या ढोंग करनेवाला [को०]।

पंडिता—वि० स्त्री० [सं० पण्डिता] विदुषी। उ०—तू तो आप बड़ी पंडिता है, मैं तुझे क्या समझाऊँगी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३५।

पंडिताइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पंडित**] दे० 'पंडितानी'।

पंडिताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पंडित + आई** (प्रत्य०)] विद्वत्ता। पांडित्य। वैदुष्य।

पंडिताऊ—वि० [हिं० **पंडित**] पंडितों के ढंग का। जैसे, पंडिताऊ हिंदी।

पंडितानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पंडित**] १. पंडित की स्त्री। २. ब्राह्मणी।

पंडितिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० **पण्डितिमन्**] पांडित्य। विद्वत्ता [को०]।

पंडी⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० **पङ्क्ति**] दे० 'पंक्ति'। उ०—छुटी कि नाग चंदन। चढ़ंत द्रुद्ध पंडियं।—पृ० रा० २५।३१०।

पंडु—वि० [सं० **पाण्डु**] १. पीलापन लिए हुए मटमैला। २. श्वेत। सफेद। ३. पीला। ४. पाँच की संख्या का वाचक। —रघु० रू०, पृ० ५०।

पंडुक—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डु**] [स्त्री० पंडुकी] कपोत या कबूतर की जाति का एक पक्षी जो ललाई लिए भूरे रंग का होता है। उ०—इस सुंदर तथा छेमाभार वृक्ष पर शुक, मयूर, पंडुक इत्यादि सहस्त्रों प्रकार के पक्षियों का निवास है।—कबीर मं०, पृ० ४६६।

विशेष—यह प्रायः जंगली झाड़ियों और उजाड़ स्थानों में होता है। नर की बोली कड़ी होती है और उसके गले में कंठा सा होता है जो नीचे की ओर अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता है पर ऊपर साफ नहीं मालूम होता। पंडुक दो प्रकार का होता है, एक बड़ा दूसरा छोटा। बड़े का रंग भूरा और खुलता होता है। छोटे का रंग मटमैला लिए ईंट सा लाल होता है। कबूतर की तरह पंडुक जल्दी पालतू नहीं होता। पंडुक और सफेद कबूतर के जोड़ से कुमरी पैदा होती है।

पर्या०—पिंडुक। पेंडकी। फाख्ता।

पंडुरा¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. पानी में रहनेवाला साँप। डेड़हा। उ०—ऐसे हरि सौं जगत लरतु है। पंडुर कतहूँ गरुड़ धरतु है।—कबीर (शब्द०)।

पंडुर⑤²—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुर**, प्रा० **पंडुर**] पीलापन। (भय आदि के कारण) शरीर का पीला या सुफेद हो जाना। पांडुर। उ०—स्वेद बचन तन वेद सुतन पंडुर चढ़ि आइय। उष्ट धरद्धर कंपि सु तन आक्रम जंभाइय।—पृ० रा०, १। २७५।

पंडोह¹—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + दह] नाबदान। परनाला। पनाला।

पंढ़—संज्ञा पुं० [सं० **पण्ड, पण्डक**] वह जो वात रोग से ग्रस्त हो। पंगु आदमी। २. हिजड़ा [को०]।

पंता—संज्ञा, पुं० [सं० **पन्थ**] मार्ग। रास्ता। उ०—जेथ बरफ बरसै जमै, परबत सिखराँ पंत।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ५७।

पंती⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० **पङ्क्ति**, प्रा० **पंतिय**] श्रेणी। पाँत। पंक्ति। उ०—अग्गे सुदंति पंतिय विरूर। पलकंत अद्ध मत झरत भूर।—पृ० रा०, १।६२४।

पंथ¹—संज्ञा पुं० [सं० **पन्थ**] १. मार्ग। रास्ता। राह। उ०—(क) बरनत पंथ विविध इतिहासा। विश्वनाथ पहुँचे कैलासा।—मानस, १।५८। (ख) जो न होत अस पुरुष उँजारा। सूझि न परत पंथ अँधियारा।—जायसी (शब्द०)। (ग) बिरहिन ऊभी पंथ सिर पंथी पूँछे धाय। एक शब्द कहो पीव का कब रे मिलैंगे आय।—कबीर (शब्द०)। २. आचारपद्धति। व्यवहार का क्रम। चाल। रीति। व्यवस्था।

यौ०—कुपंथ। उ०—रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरै न काऊ।—मानस, १।२३१। सुपंथ।

मुहा०—**पंथ गहना** = (१) रास्ता पकड़ना। चलने के लिये रास्ते पर होना। चलना। उ०—बिछुरत प्रान पयान करेंगे रहौ आजु पुनि पंथ गहौ।—सूर (शब्द०)। (२) चाल पकड़ना। ढंग पर चलना। विशेष प्रकार के कम में प्रवृत्त होना। आचरण ग्रहण करना। **पंथ करना** = दे० 'पंथ गहना' उ०—क्रम क्रम ढोला पंथ कर, ढाण म चूके ढाल।—ढोला०, दू० ४४०। **पंथ दिखाना** = (१) रास्ता बताना। (२) धर्म या आचार की रीति बताना। उपदेश देना। उ०—गुरु सेवा जेइ पंथ दिखावा। बिनु गुरु जगत् को निर्गुन पावा?—जायसी (शब्द०)। **पंथ देखना या निहारना** = रास्ता देखना। बाट जोहना। प्रतीक्षा करना। इंतजार करना। उ०—(क) तुमरो पंथ निहारौं स्वामी, कबहिं मिलौगे अंतर्यामी।—सूर (शब्द०)। (ख) माखन खाव लाल मेरे आई। खेलत आज अबार लगाई।.........मैं बैठी तुम पंथ निहारौं। आवो तुम पै तन मन वारौं।—सूर (शब्द०)। **पंथ न सूझना** = रास्ता न दिखाई पड़ना। उ०—आगे चलो पंथ नहिं सूझै पीछे दोष लगावै।—कबीर सा० सं०, पृ० ४६। **पंथ में या पंथ पर पाँव देना** = (१) चलना। चलने के लिये पैर उठाना या बढ़ाना। (२) रीति या ढंग पर चलना। विशेष प्रकार के कर्मों में प्रवृत्त होना। आचरण ग्रहण करना। जैसे,—भूल कर भी बुरे पंथ में पाँव न देना। **पंथ पर लगना** = (१)

रास्ते पर होना। (२) चाल ग्रहण करना। **किसी के पंथ लगाना** - (१) किसी के पीछे होना। अनुसरण करना। अनुयायी होना। (२) किसी के पीछे पड़ना। बराबर तंग करना। लगातार कष्ट देना। उ०—किन्नर, सिद्ध, मनुज, सुर नागा। हठि सबही के पथहिं लागा।—तुलसी (शब्द०)। **पथ पर लाना या लगाना** - (१) ठीक रास्ते पर करना। (२) अच्छी चाल पर ले चलना। उत्तम आचरण सिखाना। धर्मोपदेश करना। उ०—अगुआ भयउ सेख बुरहानू। पंथ लाय मोहि दीन्ह गियानू।—जायसी (शब्द०)। **पंथ सेना या सेवना** - राह देखना। बाट जोहना। आसरा देखना। उ०—हारिल भई पथ मैं सेवा। अब तोहि पठवौं कौन परेवा।—जायसी (शब्द०)।

३ धर्ममार्ग। संप्रदाय। मत। जैसे, कबीरपंथ, नानकपंथ, दादूपंथ। उ०—सैयद असरफ पीर पियारा। जिन मोहि पंथ दीन उजियारा।—जायसी (शब्द०)।

पंथ²—संज्ञा पुं० [सं० **पथ्य**] वह हलका भोजन जो रोगी को लंघन या उपवास के पीछे शरीर कुछ स्वस्थ होने पर दिया जाता है। जैसे, मूँग की दाल आदि।

पंथक—वि० [सं० **पन्थक**] मार्ग में पैदा हुआ। मार्ग में पैदा होनेवाला [को०]।

पंथकी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **पथिक**] राही। पथिक। राह चलता मुसाफिर। उ०—(क) मंदिरन्ह जगत दीप परगसी। पथकि चलत बसेरन बसी।—जायसी (शब्द०)। (ख) कौन हो? कितते चले? कित जात हो? केहि काम? जू। कौन की दुहिता, बहू कहि कौन का यह दाम, जू। एक गाँव रहौ कि साजन मित्रबंधु बखानिए। देश के? परदेश के? किधो पंथकी? पहिचानिए।—केशव (शब्द०)।

पंथड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० **पंथ + ड़ा** (प्रत्य०)] मार्ग। रास्ता। पथ। उ०—पथड़े जाय पाँव नहिं तोड़ूँ घर बैठा अधि पाऊँगा।—राम० धर्म०, पृ० १८।

पंथवान—संज्ञा पुं० [सं० **पन्थ** + हिं० **वान** (प्रत्य०)] पथिक। मुसाफिर। उ०—पथवान पूछयो नदी उत्तरि तिन आइकय।—पृ० रा०, ७।७२।

पंथा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **पन्थ**] दे० 'पथ'। उ०—करहिं पयान भोर उठि नितहिं कोस दस जाहिं। पथी पथा जो चलहिं ते का रहन ओनाहिं।—जायसी (शब्द०)।

पंथान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **पन्थ या पथ**] मार्ग। उ०—एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना।—रघुपति भगति केर पंथाना।—तुलसी (शब्द०)।

पंथिका—संज्ञा पुं० [सं० **पथिक**] दे० 'पथिक'। उ०—पंथिक सो जो दरब सो रुसै। दरब समेटि बहुत अस मूसे।—जायसी ग्रं०, पृ० २२१।

पंथिनी—वि० [सं० **पन्थ** + **हिं० इनी** (प्रत्य०)] राह पर चलनेवाली। उ०—मैं मानूँगी अधिक उनमें हैं महामोह मग्ना। तो भी प्रायः प्रणयपंथ की पंथिनी ही सभी हैं।—प्रिय०, पृ० २४६।

पंथी—संज्ञा पुं० [सं० **पंथिन्**] १. राही। बटोही। पथिक। उ०—(क) बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे छाँह खजूर। पंथी छाहैं न बैठही फल लागा तो दूर।—कबीर (शब्द०)। (ख) करहिं पयान भोर उठि नितहिं कोस दस जाहिं। पंथी पंथा जो चलहिं ते कित रहैं ओनाहिं।—जायसी (शब्द०)। २. किसी संप्रदाय का अनुयायी। जैसे, कबीरपंथी, दादूपंथी इत्यादि।

पंद¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शिक्षा। सीख। उपदेश। उ०—नफस नाँव सो मारिए गोसमाल दे पंद। दूई है सो दूरि करि तब घर मे आनंद।—दादू (शब्द०)।

पंद²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'फंदा'। उ०—जगमग दिवारी है कि दामिनी उज्यारी है कि, देवता सवारी है कि मद हाम पंद है।—ब्रज ग्रं०, पृ० १५०।

पंद्रह¹—वि० [सं० **पञ्चदश**, पा० **पण्णरस**, प्रा० **पण्णरह**] जो संख्या में दस और पाँच हो।

पंद्रह²—संज्ञा पुं० दस और पाँच की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१५।

पंद्रहवाँ—वि० [फा० **पंद्रह**] [वि० स्त्री० **पंद्रहवीं**] जो पंद्रह के स्थान पर हो। जिसका स्थान चौदह और पदार्थों के पीछे हो।

पंदार—वि० [फा० **पंद**] सुझाव या शिक्षा लेनेवाला [को०]।

पंद्रह—संज्ञा पुं० [हिं० **पंद्रह**] दे० 'पंद्रह'। उ०—पंद्रह दश इकीहि सत्त, मन मैं धरे परोय।—प्राण०, पृ० ५५।

पंधलाना—क्रि० स० [देश०] फुसलाना। बहलाना।

पंना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **पन्ना**] एक रत्न। दे० 'पन्ना'। उ०—पदि पंना मानिक मँगवाए। गोमोदिक लीजागन ल्याए।—प० रासो, पृ० २२।

पंप—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह नल जिसके द्वारा पानी ऊपर खींचा या चढ़ाया जाता है अथवा एक ओर से दूसरी ओर पहुँचाया जाता है। २ पिचकारी। हवा भरने की पिचकारी।

क्रि० प्र०—करना।

३ एक प्रकार का हलका अँगरेजी जूता जिसमें पंजे से इधर का भाग ढँका रहता है।

पंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० **पम्पा**] दक्षिण देश की एक नदी और उसी से लगा हुआ एक ताल और नगर जिनका उल्लेख रामायण और महाभारत में है।

विशेष—रामायण में लिखा है कि पंपा नदी से लगा हुआ ऋष्यमूक पर्वत है। ये दोनों कहाँ हैं इसका ठीक ठीक निश्चय नहीं हुआ है। विल्सन साहब ने लिखा है कि पंपा नदी ऋष्यमूक पर्वत से निकलकर तुंगभद्रा नदी में मिल गई है। रामायण से इतना पता तो और लगता है कि मलय और ऋष्यमूक दोनों पर्वत पास ही पास थे। हनुमान ने ऋष्यमूक

से मलयगिरि पर जाकर राम से मिलने का वृत्तांत सुग्रीव से कहा था। आजकल त्रावंकोर (तिरुवांकुर) राज्य में एक नदी का नाम 'पंबे' है। यह पश्चिम घाट से निकलती है जिसे वहाँवाले 'अनमलय' कहते हैं। अस्तु यही नदी पंपा नदी जान पड़ती है और ऋष्यमूक पर्वत भी वही हो सकता है जिससे यह नदी निकली है।

पंपाल(पु)—वि० [सं० पापालु] पाप या बुरे कर्म करनेवाला। पापी।

पंपासर—संज्ञा पुं० [सं० पम्पासर] दे० 'पंपा'। उ०—पंपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई।—मानस, ३।३०।

पंवा—संज्ञा पुं० [फा० पुंबा (=कपास)] एक प्रकार का पीला रंग जो ऊन रँगने में काम आता है।

विशेष—४ छटाँक मोखा हलदी की बुकनी १½ छटाँक गंधक के तेजाब में मिलाई जाती है। हल हो जाने पर उसे ६ सेर उबलते हुए पानी में मिला देते हैं। इस जल में धुला हुआ ऊन एक घंटे तक छाया में सुखाया जाता है। यह रंग कच्चा होता है पर यदि हलदी की जगह अकलबीर मिलाया जाय तो रंग पक्का होता है।

पंमार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पँवार] पँवार नाम की क्षत्रिय जाति। दे० 'परमार'। उ०—सपनानुराग बढ्यौ नृपति अरु सोतानन राग भय। पंमार मोहि छोरै सलष अनष एन आबू सुलय।—पृ० रा०, १२।१३।

पंसाखा†—संज्ञा पुं० [हिं० पनसाखा] एक प्रकार का मशाल। पाँच शाखाओं का दीपस्तंभ या दीपाधार। पनसाखा। उ० -हम खींच खींचकर चर्बी पंशाखा बालेंगे।—भारतेंदु ग्रं० भा० १ पृ० २६६।

पंसा(पु)†—अव्य० [सं० पार्श्व, हिं० पास] दे० 'पास'। उ०—जैसा देह सँवारी हंसा। तैसी लेहु हमारे पंसा।—कबीर सा०, पृ० ५६५। (पु) २. दे० 'पासा'।

पंसारी—संज्ञा पुं० [सं० पण्यशाली] हलदी, धनिया आदि मसाले तथा दवा के लिये जड़ी बूटी बेचनेवाला बनिया।

पंसासार—संज्ञा पुं० [सं० पाशक, हिं० पासा + सारि (= गोटी)] पासे का खेल। उ०—अनिरुद्ध जी और राजकन्या निद्रा से चौंक पंसासार खेलने लगे।—लल्लू (शब्द०)।

पंसासारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पाशक, हिं० पासा + सारि(- गोटी)] पासे का खेल। उ०—कोउ खेलत कहुँ पसासारी। खेलन कौतुक की बलभारी।—सबलसिंह (शब्द०)।

पंसेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँच + सेर] पाँच सेर की तौल।

पँखड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पखड़ी'।

पँखिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० पंख] १. भूसे या भूसी के महीन टुकड़े। पाँकी। २. पखड़ी। उ०—देत कछु अपनो बस ना रस लालच लाल चितै भइ चेरी। बेगि ही बूड़ि गई पँखिया अँखियाँ मधु की मखियाँ भइ मेरी।—इतिहास, २६६।

पँखुआ†—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष, हिं० पंख] मनुष्य के शरीर में कंधे के पास का वह भाग जहाँ हाथ जुड़ा रहता है। पखोरा। कंधे और बाँह का जोड़।

पँखुड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पंख] फूल का दल। पखड़ी। उ०—कमल सूख पँखुड़ी भइ रानी। गलि गलि के मिलि छार झुरानी।—जायसी (शब्द०)।

पँखुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पंख] दे० 'पँखुडी'। उ०—(क) मैं बरजी कै बार तू इत कित लेति करौट। पँखुरी गड़ै गुलाब की परिहै गात खरौट।—बिहारी (शब्द०)।

पँखुरा—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष, हिं० पंख] दे० 'पँखुड़ा'।

पँखेरू—संज्ञा पुं० [सं० पक्षालु] दे० 'पखेरू'। उ०—भएउ अचल ध्रुव जोगि पँखेरू। फूलि बैठ थिर जैस सुमेरू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१२।

पँगा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उपंग'।

पँगरा—संज्ञा पुं० [देश०] १ मझोले आकार का एक प्रकार का कँटीला वृक्ष। ढोलढाक। ढाक। मदार।

विशेष—यह वृक्ष प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। शीत ऋतु मे इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इसकी लकडी बहुत मुलायम, पर चिमड़ी होती है और तलवार की म्यान या तख्ते आदि बनाने के काम मे आती है।

पँगला—वि० [सं० पङ्गु + ल (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० पँगली] पंगु। लंगड़ा।

पँगुला(पु)—वि० [सं० पङ्गुल] दे० 'पँगुल'। उ०—गूँगा हुआ बावरा, बहिरा हुआ कान। पाँयन से पँगुला हुआ, सतगुरु मारा बान।—कबीर सा० सं०, पृ० ६।

पँचकल्यान—संज्ञा पुं० [हिं० पंचकल्यान] दे० 'पचकल्यान'। उ०—खिंग मदली बोरता, चगर मिराजी हुंस। पँचकल्यान कुमैत हय रोहालिक महिया बस।—प० रासो, पृ० १३८।

पँचकुरा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँच + कूरा] एक प्रकार की बँटाई जिसमे खेत की उपज के पाँच भागो मे से एक भाग जमीदार लेता है।

पँचगोटिया—संज्ञा पुं० [हिं० पाँच + गोटी] वह खेल जो ५-५ गोटियों से खेला जाय।

पँचतोरिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वस्त्र। पचतोलिया। उ०—सहज सेत पँचतोरिया पहिरे अति छबि देत।—बिहारी (शब्द०)।

पँचमेल—वि० [हिं० पाँच + मेल] दे० 'पचमेल'।

पँचमेली—वि० [हिं० पँचमेल] १ पाँच चीजों की मेलवाली (मिठाई आदि)। २. मिश्रित। उ०—पँचमेली भाषा लिखि जात बरन उन माहीं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१६।

पँचरँग—वि० [हिं० पाँच + रंग] १. पाँच रंग का। उ०—पँचरँग सारी मँगाओ। बधुजन सब पहरावो।—सूर (शब्द०)। २. अनेक रंगों का। रंगबिरंग। ३. पांचभौतिक (लाक्ष०)। उ०—चारु पिछोरी साजि पँचरँग नव चोली है।—द० ग्रं०, पृ० ३८६।

पँचलड़ा—वि० [हिं० पाँच + लड़] पाँच लड़ों का। जैसे, पँचलड़ा हार।

पँचलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँच + लड़] गले में पहनने की पाँच लड़ों की माला।

पँचलरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पँचलड़ी'।

पँचवान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चबाण ?] राजपूतों की एक जाति। उ०—परी औ पँचवान बघेले। अगरपार चोहान चंदेले।—जायसी (शब्द०)।

पँचसर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चशर] दे० 'पचशर'। उ०—जब कोउ या तन तनक निहारे। ताकौं निधरक पँचसर मारे।—नंद० ग्रं०, पृ० १२०।

पँचहरा†—वि० [सं० पञ्च + स्तर] १. पाँच तह या पर्त का। २. पाँच बार का किया हुआ।

पँचालिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्चालिका] १. नटी। नर्तकी। उ०—नाचति मंच पँचालिका कर मकलित अपार।—केशव (शब्द०)।

पँछिराज—संज्ञा पुं० [सं० पक्षिराज] दे० 'पक्षिराज'। उ०—अब कहना कछु नाही, मस्ट भलो पँछिराज।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६८।

पँजड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्च, फा० पंज] चौसर के एक दाँव का नाम।

पँजना—क्रि० क० [सं० पञ्ज (= बंद होना, रुकना)] धातु के बरतन में टाँके आदि द्वारा जोड़ लगना। झलना। झाल लगना।

पँजनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] 'पैजनी'। उ०—बजनी पँजनी पायलौ मन भजनी फुर बाम। रजनी नींद न परति है सजनी बिन घनस्याम।—राम० धर्म०, पृ० २३७।

पँजरना†—क्रि० अ० [सं० प्रज्वलन] दे० 'पजरना'।

पँजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्जर] १ पसली। पंजर। २ अरथी जिसपर जलाने के लिये शव ले जाते हैं।

पँडरा—संज्ञा पुं० [?] दे० 'पँडवा'।

पँडरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पड़ना] वह भूमि जो ईख बोने के लिये रखी गई हो। उखाड़। पँडुवा।

क्रि० प्र०—रखना। छोड़ना।

पँडला—संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० पँडरी] दे० 'पँडवा'।

पँडवा—संज्ञा पुं० [?] भैंस का बच्चा।

पँडुवा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पड़ना] दे० 'पँडरी'।

पँतीजना†—क्रि० स० [सं० पिञ्जन (= धुनकी)] रूई से बिनौले निकालकर अलग करना। रूई ओटना। पींजना।

पँतीजी—संज्ञा स्त्री० [सं० पिञ्जन (= धुनकी)] रूई धुनने की धुनकी। उ०—बरस पँतीजी बरस चढ़ि ज्यों ढाँकत जग सूत।—वृंद (शब्द०)।

पँत्यारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] पंक्ति। श्रेणी। कतार।

पँदरोहा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पंडोह'।

पँवड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पँवाड़ा'। उ०—उर विज्ञान जन साथ राम पँवड़ा भर लीजै। निर्भर नित आनंद अगम घर आसण कीजै।—राम धर्म०, पृ० २४५।

पँवनारि—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्मनाल] पद्मनाल। कमलदंड। उ०—भुज उपमा पँवनारि न पूजी खीन भई तिहि चित।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९५।

पँवर[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पँवरी'।

पँवर(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रभार] सामान। सामग्री। उ०—असम गंग लोचन अहि डमरू, पचतत्व सूचक अस भौरू। हर के बस पाँचउ यह पँवरू, जिनसे पिंड उरेह।—देवस्वामी (शब्द०)।

पँवरना†—क्रि० अ० [सं० प्लवन] १. तैरना। २. थाह लेना। पता लगाना। उ०—सूकर स्वान सियार सिंह सरप रहहिं घट माहिं। कुंजर कीरी जीव सब पँवरहिं जानहिं नाहिं।—कबीर (शब्द०)।

पँवरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुर (= घर), या पुरस (= आगे)] प्रवेशद्वार या गृह। वह फाटक या घर जिससे होकर किसी मकान में जायँ। ड्योढ़ी। उ०—(क) पँवरि पँवरि गढ़ लाग केवारा। औ राजा सों भई पुकारा।—जायसी (शब्द०) (ख) उघरी पँवरि चला सुलताना।—जायसी (शब्द०)। (ग) पँवरिहि पँवरि सिंह लिखि काढ़े।—जायसी (शब्द०)।

पँवरिया—संज्ञा पुं० [हिं० पँवरी, पौरि] १. द्वारपाल। दरबान। ड्योढ़ीदार। २ पुत्र होने पर या किसी और मंगल अवसर पर द्वार पर बैठकर मंगलगीत गानेवाला याचक।

पँवरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पौरि] दे० 'पँवरि'।

पँवरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँव] खड़ाऊँ। पादत्राण। पाँवरी। उ०—पायन पहिरि लेहु सब पँवरी। काट न चुभै गड़ै अँकरौरी।—जायसी (शब्द०)।

पँवाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाद] १ लंबी चौड़ी कथा जिसे सुनते जी ऊबे। कल्पित आख्यान। कहानी। दास्तान। २. बढ़ाई हुई बात। व्यर्थ विस्तार के साथ कही हुई बात। बात का बतक्कड़। ३. एक प्रकार का गीत जिसमें वंश की कीर्ति और शौर्य का वर्णन रहता है।

पँवार संज्ञा पुं० [सं० परमार] राजपूतों की एक जाति। दे० 'जाति'।

पँवारना†—क्रि० स० [सं० प्रवारण (= रोकना)] हटाना। दूर करना। फेंकना। उ०—(क) सावज न होइ भाई सावज न होइ। वाकी मासु भखै सब कोइ। सावज एक सकल संसारा अविगति वाकी बाता। पेट फारि जो देखिए रे भाई आहि करेज न आँता। ऐसी वाकी मांस रे भाई पल पल मांसु बिकाई। हाड़ गोड़ ले घूर पँवारे आगि धुवाँ नहिं खाई।—कबीर (शब्द०)। (ख) सुआ मनाक कठोर पँवारी। वह कोमल तिल कुसुम सँवारी।—जायसी (शब्द०)। दे० 'पवारना'।

पँवार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाल] प्रवाल। मूँगा। उ०—देखि दशा सुकुमारि की युवती सब धाई। तरु तमाल, बूझत फिरैं कहि कहि मुरझाई। नँदनंदन देखे कहूँ मुरली करवारी। कुंडल मुकुट बिराजई तनु कुंडल भारी। लोचन चारु बिलास है नासा अति लोनी। अरुन अधर दसनावली छवि बरनै

कीनी। बिब पँवारे लाजहीं दामिनि दुति थोरी। ऐसे हरि हमको कहो कहूँ देखे हो री।—सूर (शब्द०)।

पँवारा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाद] १ कीर्ति की गाथा। वीरता का आख्यान। उ०—बीर बडो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो। सो हनुमान हनी मुठिका, गिरि गो गिरिराज ज्यों गाऊ को मारो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६१। दे० 'पँवाड़ा'।

पँवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] लोहारों का एक औजार जिससे लोहे मे छेद किया जाता है।

पँसरहट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० पंसारी+हट्ट, हाट] वह बाजार जहाँ पंसारियो की दूकाने हो।

पँसियाना†—क्रि० स० [हिं० पासा] पासे से मारना।

पँसुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पँसुली'।

पँसुली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पसली'।

पँह—अव्य० [सं० पार्श्व] १ पास। समीप। नजदीक। २. से।

प[१]—वि० [सं०] १. पीनेवाला। जैसे,—द्विप, अनेकप, मद्यप। २ रक्षा या शासन करनेवाला। जैसे, क्षितिप, नृप।

प[२]—संज्ञा पु० १. वायु। हवा। २ पत्ता। ३ अंडा। ४ पीने की क्रिया। ५. संगीत मे पंचम स्वर का संकेत (को०)।

पइ(पु)†—अव्य० [सं० प्रति, प्रा० पडि, पइ, हिं० पं] पास। समीप। उ०—एक दिवस पूगल सहर मउदागर आवत। तिण पइ घोडा अति घणा बेच्या लाख लहन।—ढोला०, दू० ८३।

पइआल(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पाताल] दे० 'पाताल'। उ०—मनल खंड महि रहै अखंड सुरग पइआल अरु ब्रह्मांड।—प्राण०, पृ० ६।

पइग‡—संज्ञा पु० [सं० पग] दे० 'पैग', 'पग'।

पइज‡—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिज्ञा] दे० 'पैज'।

पइठ‡—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रविष्टि] दे० 'पैठ'।

पइठना‡—क्रि० अ० [सं० प्रविष्ट से धातुरूप] दे० 'पैठना'। उ०—झाबकि पइठी झालि, मुंदरि काइ न मलपलइ। बोलइ नहीं ज बाल घण अंधूरणी ओढ्इउ।—ढोला०, दू० ६०३।

पइता—संज्ञा पुं० [देश०] एक छद जिसे पाइता भी कहते हैं। इसमे एक भगण, एक नगण और सगण होता है। जैसे,—ताके दोनों कुल गनिए औ दोनों लोचन मनिये। जेते नारी गुण गनियो। सो है नागे श्रुति सुनियो।

पइना‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पैना'।

पइभर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पदाति+भट] दे० 'पैदल'। उ०—गज बाजि रथ्थ पइभर गहर सजिय सेन सनमुख चलिय।—पृ० रा०, १।६१८।

पइयाँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] जंगली बेरी। उ०—पइयों की प्रसन्न पंखड़ियाँ उडती थी पिछवारे। महक रहे थे नीबू, कुसुमों मे रजगंध सँवारे।—अतिमा, पृ० १५।

पइया—संज्ञा पु० [देश०] वह धान जिसके दाने नष्ट हो जाते हैं, पर छिलका जैसे का तैसा रहता है। खोखला धान। कीड़े से खाया हुआ बेकार धान। उ०—पइया करम ध्यान सों फटको जोग जुक्ति करि सूपे।—भीखा श०, पृ० २०।

पइरना(पु)†—क्रि० स० [हिं० पैरना] तैरना। पैरना। उ०—पइरि मोमें अइलिहुँ तरनि तरग। लाँघल माए सहस भुजग। विद्यापति, पृ० २५८।

पइलइ(पु)—वि० [हिं० परला] उस ओर का। दूसरी तरफ का। दे० 'परला'। उ०—कूँझँडियाँ कलिअल कियउ, सरवर पइलइ तीर। निसि भरि सज्जण सल्लियाँ, नयणे वूहा नीर।—ढोला०, दू० ५९।

पइला†—संज्ञा पुं० [देश०] अनाज मापने का एक बरतन जिसमें पाँच सेर अनाज आता है।

पइसा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रविश, प्रा० पइस] पैठ। प्रवेश। गति। रसाई। पहुँच।

पइसना†—क्रि० अ० [सं० प्रविश] दे० 'पैसना'। उ०—(क) हियडइ भीतर पइसि करि, ऊगउ सज्जण रूख। नित सूकइ नित पल्हवइ, नित नित नवला दूख।—ढोला०, दू० १८। (ख) खेलां पइसइ मॉडली। आखर आखर आणजे जोडि। बी० रासो, पृ० ४।

पइसार†—संज्ञा पु० [हिं० पइसना] पैठ। प्रवेश। उ०—अति लघु रूप धरौं निसि नगर करउँ पइसार।—तुलसी (शब्द०)।

पइहरना(पु)†—क्रि० स० [हिं० पहनना] पहनना। पहिरना। धारण करना। उ०—(क) गलि पइहरउ मोतीय को हार।—बी० रासो, पृ० ७२। (ख) जान तणी साजति करउ, जीरह रंगावली पइहरज्यो टोप।—बी० रासो, पृ० ११

पई[१](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पद, प्रा० पय, पइ] पैर। पाँव। उ०—अष्टजाम चित लगै रहतु है प्रभु जी के परसुँ पई।—गुलाल०, पृ० ४२।

पई[२]—संज्ञा पुं० [देशी पइअ] पहिया। रथचक्र। उ०—बडकै ओघरण बंधिया, पैमे पई पताल। सोच करे नह सागडी धवल तणी दिस भाल।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३८।

पउँआ‡(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पद्म, प्रा० पउम] दे० 'पद्म'। उ०—पउँम नाल अइयपल भल भेल। रात परीहन पल्लव देल। विद्यापति, पृ० १६५।

यौ०—पउअनाल = पद्मनाल। पंवनार।

पउँरि, पउँरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ड्योढ़ी। दे० 'पौरि'।

पउड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पँवरि] प्रवेशद्वार। ड्योढ़ी। उ०—ऊची पउडी लै गगननरि चढ़ीआ। अनहद बीचारु चमकी जोतीड़ीआ।—प्राण०, पृ० २२३।

पउढना—क्रि० अ० [देशी पवड्ड] शयन करना। पौढ़ना। उ०—ढोलउ मारू पउढिया, रमसइँ चतुर सुजाँण। च्यारे दिसि चउकी फिरइ मोहत भूप जुवाँण।—ढोला०, दू० ५९९।

पउवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ढक्कनदार टोकरी। मंदूकची। उ०—नानी को सीको से पउवी, बिजनी, पान सुपारी रखने का

डिब्बा, घुघरी, पउती, बिडहाड़ा, रिकाबी, डलिया, चँगेरी फुलडाली बनाने का भारी शौक था। —नई०, पृ० ११२।

पउनारी—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्मनाल] दे० 'पौनार'।

पउनी– संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटा पौना।

पउरुस(पु)**†**—संज्ञा पु० [सं० परुष] दे० 'परुष'। उ०—पियामनों पउरुस ककेतोजे बोलतए, जिह तोरि टुटि न पड़ली।—विद्यापति, पृ० १००।

पउला—संज्ञा पुं० [सं० पौर, प्रा० पउर, हिं० पोल (= दरवाजा)। दरवाजा। ड्योढ़ी। प्रवेशद्वार। उ०—जोगी बईठो पउलइ जाई, बभूत सरी सी पोल कराई।—बी० रासो, पृ० ७१।

पउला—संज्ञा पुं० [हिं० पावँ + ला (प्रत्य०)] भद्दे प्रकार की खड़ाऊँ जिसमें खूंटी के स्थान पर ऊँगलियाँ फँसाने के लिए रस्सी लगी रहती है। पवाई।

पउवा(पु)**†**[1]—वि० [हिं० पाना] पानेवाला। प्राप्त करनेवाला। उ०—पउवा प्रेम पगर जो नावे उनमुनि जाय गगन घर धावे।—गुलाल०, पृ० ५८।

पउवा[2]—संज्ञा पुं० [सं० पाद] दे० 'पौवा'।

पएदा‡—संज्ञा पु० [फा० प्यादा] दे० 'प्यादा'। उ०—मब्बस्म मराब षराब कह ततत कबाबा दाम अविवेक करीबी कहजो का पाछा पएदा लेले भम। - कीर्ति०, पृ० ४०।

पएर(पु)**†**—संज्ञा पु० [हि० पैर] दे० 'पैर'। उ०—पएर पखाल रोसे नहि खाए। अधरा हाथ भेटल दूर जाए।--विद्यापति, पृ० ३१३।

पकठोस†—वि० [देश०] पक्का और ठोस। प्रौढ़ आयु का। उ०—पंद्रह साल की कच्ची छोकरी पचास साल के पकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी।—नई०, पृ० २६।

पकड़—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रकृष्ट, प्रा० पक्कड] १ पकडने की क्रिया या भाव। धरने का काम। ग्रहण। जैसे,—तुम उसकी पकड से नही छूट सकते।

यौ०—धर पकड।

मुहा०—**पकड में आना** = (१) पकडा जाना। गृहीत होना। मिलना। हाथ लगना। (२) दाँव पर चढ़ना। घात मे आना। वश मे होना।

२. पकडने का ढंग। ३ लड़ाई या कुश्ती आदि मे एक एक बार आकर परस्पर गुथना। भिडंत। हाथापाई। जैसे,—(क) हमारी तुम्हारी एक पकड हो जाय। (ख) वह कई पकड लड चुका है। ४ दोष, भूल आदि ढूंढ़ निकालने की क्रिया या भाव। जैसे,—उसकी पकड़ बड़ी जबरदस्त है, उसने कई जगह भूलें दिखाई। उ०—जहाँ शब्दो की ही पकड है और बात बात में वितर्क होता है वहाँ निश्चित रूप से किसी सिद्धात का मक्षिप्तीकरण सुलभ नही।—रस क०, पृ० २४। ५. रोक। अवरोध। बधन। उ०—इतना न चमत्कृत हो बाले! अपने मनका उपकार करो। मैं एक पकड़ हूँ जो कहती ठहरो कुछ सोच विचार करो।—कामायनी, पृ० १००। ६. समझ। ७. किसी राग का परिचायक स्वरग्राम।

पकड़ धकड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० पकड] दे० 'धर पकड़'।

पकड़ना—क्रि० स० [सं० प्रकृष्ट, + प्रा० पक्कड्ड] १. किसी वस्तु को इस प्रकार दृढ़ता से स्पर्श करना या हाथ में लेना कि वह जल्दी छूट न सके अथवा इधर उधर जा या हिल डोल न सके। धरना। थामना। गहना। ग्रहण करना। जैसे,—(क) छड़ी पकड़ना। (ख) उसका हाथ पकड़े रहो, नहि तो वह गिर पड़ेगा। (ग) किसी वस्तु को उठाने के लिये चिमटी से पकड़ना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. छिपे हुए या भागते हुए को पाना और अधिकार में करना। काबू मे करना। गिरफ्तार करना। जैसे, चोर पकडना। ३. गति या व्यापार न करने देना। कुछ करने से रोक रखना। स्थिर करना। ठहराना। जैसे, बोलते हुए की जबान पकड़ना, मारते हुए का हाथ पकड़ना।

संयो० क्रि०—लेना।

४ ढूंढ निकालना। पता लगाना। जैसे, गलती पकड़ना, चोरी पकडना। ५ कुछ करते हुए को कोई विशेष बात आने पर रोकना। टोकना। जैसे,—जहाँ वह भूल करे वहाँ उसे पकड़ना। ६ दौड़ने, चलने या और किसी बात में बढ़े हुए के बराबर हो जाना। जैसे,—(क) दौड मे पहले तो दूसरा आगे बढ़ा था पर पीछे इसने पकड़ लिया। (ख) यदि तुम परिश्रम से पढ़ोगे तो दो महीने में उसे पकड़ लोगे। ७ किसी फैलनेवाली वस्तु में लगकर उनका अपने में संचार करना। जैसे, फूस का आग को पकड़ना, कपड़े का रंग पकड़ना। ८. लगकर फैलना या मिलना। संचार करना। जैसे आग का फूस को पकड़ना। ६. अपने स्वभाव या वृत्ति के अंतर्गत करना। धारण करना। जैसे, चाल पकड़ना, ढंग पकडना। १० आक्रांत करना। ग्रसना। छोपना। घेरना। जैसे, रोग पकड़ना, गठिया पकडना।

पकड़वाना—क्रि० स० [हिं० पकड़ना का प्रे०रूप] पकडने का काम दूसरे से कराना। ग्रहण करना। जैसे, चोर को सिपाही से पकड़वाना।

संयो० क्रि०—देना। —मँगाना।

पकड़ाना—क्रि० स० [हिं० पकड़ना का प्रे०रूप] १ किसी के हाथ मे देना या रखना। थमाना। जैसे,—यह किताब उन्हें पकडा दो। २. पकड़ने का काम कराना। ग्रहण कराना। जैसे, चोर पकड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।

पकना—क्रि० अ० [सं० पक्व, हिं० पक्का, पका + ना (प्रत्य०)] १. पक्वावस्था को पहुँच जाना। कच्चा न रहना। अनाज, फल आदि का पुष्ट होकर काटने या खाने के योग्य होना। ऐसी अवस्था को पहुँचना जिसमें स्वाद, पूर्णता आदि आ जाती है। जैसे, आम पकना, खेत में अनाज पकना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—बाल पकना = (बुढापे के कारण) बाल सफेद होना।

२. आँच या गरमी खाकर गलना या तैयार होना। सिद्ध होना। सीझना। रिंधना। चुरना। जैसे, दाल पकना, रोटी पकना, रसोई पकना।

मुहा०—(मिट्टी का) बरतन पकना = आँवे में तैयार होना। कलेजा पकना = जी जलना। संताप होना।

३ फोड़े, फुंसी, घाव, आदि का इस अवस्था में पहुँचना कि उनमें मवाद आ जाय। पीब से भरना। ४. चौसर में गोटियों का सब घरों को पार करके अपने घर में आ जाना। ५. कीमत ठहरना। सौदा पटना। मामला तै होना।

पकमान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **पक्वान्न**] दे० 'पकवान'। उ०—चीर कपूर पान हमे माजल, पाग्रस आग्रो पकमाने।—विद्यापति, पृ० ३२५।

पकरना(पु)†—क्रि० स० [हिं० **पकड़ना**] दे० 'पकडना'। उ०—नट नायक नँदलाल को मन पकरि नचावै।—घनानंद०, पृ० ४५५।

पकराना(पु)†—क्रि० स० [हिं० **पकड़ाना**] दे० 'पकड़ाना'। उ०—चीर लपेटि सु पिय पकराए।—नंद० ग्रं०, पृ० १३।

पकरिया‡—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० **पर्कटी, हिं० पाकर + इया (प्रत्य०)**] दे० 'पाकर'। उ०—उम्र तो दस साल की, बस; तोलता दिल कि चढ़कर पकरिए पर बोलता।—कुकुर०, पृ० ६४।

पकला—संज्ञा पुं० [हिं० **पकना**] फोड़ा।

पकवान—संज्ञा पुं० [सं० **पक्वान्न**] घी में तलकर बनाई हुई खाने की वस्तु। जैसे, पूरी, कचौरी आदि। उ०—दादू एकै अलह राम है, समरथ साँई सोइ। मैदे के पकवान सब, खातों होय सो होइ।—दादू०, पृ० ३५।

पकवाना—क्रि० स० [हिं० **पकाना का प्रे०रूप**] १. पकाने का काम कराना। पकाने में प्रवृत्त करना। २ आँच पर तैयार कराना। जैसे, रसोई पकवाना।

पकसना†—क्रि० अ० [हिं० **पकना**] किसी वस्तु (फल आदि) का पकने की ओर अग्रसर होना।

पकमालू—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह पूर्व और उत्तर बंगाल, आसाम, चटगाँव तथा बरमा में होता है। पानी भरने के लिये इसके चोंगे बनते हैं। छाता बनाने के काम में भी यह आता है। इसकी पतली फट्टियों से टोकरे भी बनते हैं।

पकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पकाना**] १. पकाने की क्रिया या भाव। २ पकाने की मजदूरी।

पकाना—क्रि० स० [हिं० **पकना**] १ फल आदि को पुष्ट और तैयार करना। जैसे, पाल में आम पकाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

२. आँच या गरमी के द्वारा गलाना या तैयार करना। रीधना। सिझाना। जैसे, खाना पकाना, रोटी पकाना।

मुहा०—(मिट्टी का) बरतन पकाना = आँवें में आँच के द्वारा कड़ा और पुष्ट करना। कलेजा पकाना = जी जलाना। संताप पहुँचाना।

३. फोड़े, फुंसी, घाव आदि को इस अवस्था में पहुँचाना कि उसमें पीब या मवाद आ जाय। ४. मात्रा पूरी करना। सौदा पूरा करना। लगाना। जैसे,—चार रुपए का गुड़ पका दो (बनिये)।

पकार—संज्ञा पुं० [सं० **प+कार**] 'प' अक्षर।

पकाव—संज्ञा पुं० [हिं० **पकना**] १. पकने का भाव। २. पीब। मवाद।

पकावन—संज्ञा पुं० [सं० **पक्वान्न**] दे० 'पकवान'। उ०—दूती बहुत पकावन साधे। मोतिलाडू औ खेरौरा बाँधे।—जायसी (शब्द०)।

पकौड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० **पका + बरी, बड़ी**] [स्त्री० **अल्पा० पकौड़ी**] घी या तेल में पकाकर फुलाई हुई बेसन या पीठी की बट्टी, बड़ी।

पकौड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पकौड़ा**] दे० 'पकौड़ा'।

पक्कण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चांडाल की झोपड़ी या घर। २. चांडालों की बस्ती [को०]।

पक्वरस—संज्ञा पुं० [सं०] मदिरा।

पक्ववारि—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

पक्का—वि० [सं० **पक्व**] [वि० **स्त्री० पक्की**] अनाज या फल जो पुष्ट होकर खाने के योग्य हो गया हो। जो कच्चा न हो। पका हुआ। जैसे, पक्का आम। २ जिसमें पूर्णता आ गई हो। जिसमें कसर न हो। पूरा। जैसे, पक्का चोर, पक्का धूर्त। ३. जो अपनी पूरी बाढ़ या प्रौढ़ता को पहुँच गया हो। पुष्ट। जैसे, पक्की लकड़ी।

मुहा०—पक्का पान = वह पान जो कुछ दिन रखने से सफेद और खाने में स्वादिष्ट हो गया हो।

४. जिसके संस्कार या संशोधन की प्रक्रिया पूरी हो गई हो। साफ और दुरुस्त। तैयार। जैसे, पक्की चीनी, पक्का शोरा। ५ जो आँच पर कड़ा या मजबूत हो गया हो। जैसे, मिट्टी का पक्का बरतन। ६ जिसे अभ्यास हो। जो मँज गया हो। जो किसी काम को करते करते जमा या बैठा हो। पुख्ता। जैसे पक्का हाथ। ७ जिसका पूरा अभ्यास हो। जो अभ्यस्त वा निपुण व्यक्ति के द्वारा बना हो। जैसे, पक्का खत, पक्के अक्षर। ८ अनुभवप्राप्त। तजरुबेकार। निपुण। दक्ष। होशियार। जैसे,—हिसाब में अब वह पक्का हो गया। ९. आँच पर गलाया या तैयार किया हुआ। आँच पर पका हुआ।

मुहा०—पक्का खाना या पक्की रसोई = घी में पका हुआ भोजन। जैसे, पूरी कचौरी, मालपुआ आदि। पक्का पानी = (१) औटाया पानी। (२) स्वास्थ्यकर जल। निरोग और पुष्ट जल।

१०. दृढ़। मजबूत। टिकाऊ। जैसे,—इस मदिर का काम बहुत पक्का है, यह जल्दी गिर नहीं सकता।

मुहा०—**पक्का काम** = असली चाँदी सोने के तार के बने बेल बूटे का काम। असली कारचोबी का काम। जैसे,—इस टोपी पर पक्का काम है। **पक्का घर या मकान** = सुरखी चूने के मसाले और ईटों से बना हुआ घर। **पक्का रंग** = न छूटनेवाला रंग। बना रहनेवाला रंग।

११ स्थिर। दृढ़। न टलनेवाला। निश्चित। जैसे, पक्की बात, पक्का इरादा, विवाह पक्का करना। १२ प्रमाणों से पुष्ट। प्रामाणिक। जिसे भूल या कसर के कारण बदलना न पड़े या जो अन्यथा न हो सके। ठीक जँचा हुआ। नपा तुला। जैसे,—(क) वह बहुत पक्की सलाह देता है। (ख) पक्की दलील।

मुहा०—**पक्का कागज** = वह कागज जिसपर लिखी हुई बात कानून से दृढ़ समझी जाती है। स्टांप का कागज। **पक्की बही या खाता** = वह बही जिसपर ठीक जँचा हुआ या तै किया हुआ हिसाब उतारा जाता है। **पक्का चिट्ठा** = ठीक ठीक जँचा चिट्ठा।

१३ जिसका मान प्रामाणिक हो। टकसाली। जैसे, पक्का मन, पक्की तोल, पक्का बीघा।

यौ०—**पक्का गवैया** = पक्का गाना गानेवाला। शास्त्रीय संगीत गानेवाला। **पक्का गाना** = शास्त्रीय संगीत। **पक्का पानी** = (शरीर आदि का) गेहुआँ वर्ण।

पक्काइत—संज्ञा स्त्री० [**हिं० पक्का**] दृढ़ता। मजबूती। निश्चय। पोढ़ाई।

पक्खर(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [**हिं० पाखर**] दे० 'पाखर'।

पक्खर[२]—वि० [सं० **पक्व, प्रा० पक्क**] पक्का। पुख्ता। उ०—लक्खन में पक्खर निक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं।—तुलसी (शब्द०)।

पक्खा†—संज्ञा पुं० [**हिं० पाखा**] दे० 'पाखा'। उ०—पानी पक्खा पीस जन अपना आप गवाउ।—प्राण०, पृ० २५६।

पक्तपौड—संज्ञा पुं० [सं०] पखौड़ा नाम का एक पेड़।

पक्तव्य—वि० [सं०] पकाने लायक। २. पचाने योग्य। [को०]।

पक्ता[१]—वि० [सं० **पक्तृ**] पकानेवाला। पचा सकनेवाला [को०]।

पक्ता[२]—संज्ञा पुं० १. जठराग्नि। २ वह जो रसोई बनाता हो। रसोइया [को०]।

पक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रसोई तैयार करना। भोजन पकाना। भोजन पकाने की क्रिया। २. जठराग्नि जिसमे खाया हुआ अन्न पचता है। ३ फल आदि का पक्वावस्था प्राप्त करना। पकना। ४ गौरव। यश। ख्याति। ५ भोजन की थाली।

यौ०—**पक्तिनाशन** = पाचन क्रिया को खराब करनेवाला। **पक्तिशूल** = पाचन की गड़बड़ी से पेट में होनेवाला दर्द। **पक्तिस्थान** = जहाँ भोजन पचता है। पाचनस्थान।

पक्त्रिम—वि० [सं०] १ पक्व। पका हुआ। २ पकाया हुआ। ३. उबालने से प्राप्त। पकाने से प्राप्त। जैसे, नमक [को०]।

पक्व[१]—वि० [सं०] १ पका हुआ। २. पक्का। ३. परिपुष्ट। दृढ़। ४. सेंका हुआ। पकाया हुआ (को०)। ५. पूरी तरह से विकसित (को०)। ६. श्वेत। सफेद। जैसे, पक्व केश (को०)।

पक्व[२]—संज्ञा पुं० पकाया हुआ भोजन या अन्न [को०]।

पक्वकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ पकानेवाला। सूपकार। २ (फोड़े आदि को पकानेवाली) नीम।

पक्वता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पक्व होने का भाव। पक्कापन।

पक्वरस—संज्ञा पुं० [सं०] मदिरा। मद्य [को०]।

पक्ववारि—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी। काँजिक [को०]।

पक्वश—संज्ञा पुं० [सं०] एक अंत्यज नीच जाति।

पक्वातीसार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अतीसार। आमातीसार का उलटा।

विशेष—आमातीसार में मल के साथ आँव गिरती है, पक्वातीसार मे नहीं।

पक्वाधान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पक्वाशय' [को०]।

पक्वान—संज्ञा पुं० [सं० **पक्वान्न**] दे० 'पक्वान्न'।

पक्वानहटा‡—संज्ञा पुं० [सं० **पक्वान्न + हट्ट**] मिठाई बाजार। पकवान की दूकाने। उ०—मधुर पौरजन पदसम्हार सहीन्न धनहटा, सोनहटा, पनहटा, पक्वानहटा, मछरहटा करेओ सुखरव कथा कहते।—कीर्ति०, पृ० ३०।

पक्वान्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ पका हुआ अन्न। २ घी पानी आदि के साथ आग पर पकाकर बनाई हुई खाने की चीज। पकवान।

पक्वाशय—संज्ञा पुं० [सं०] पेट में वह स्थान जहाँ आमाशय से ढीला होकर अन्न जाता है और यकृत् और क्लोम ग्रंथियों से आए हुए रस से मिलता है। यह वास्तव मे अंत्र का ही एक भाग है।

विशेष—थूक के साथ मिलकर खाया हुआ भोजन अन्न की नली मे होकर नीचे उतरता है और आमाशय में जाता है जो मशक के आकार की थैली सा होता है। इस थैली मे आकर भोजन इकट्ठा होता है और आमाशय के अम्लरस से मिलकर तथा मांस के आकुंचन प्रसारण द्वारा मथा जाकर ढीला और पतला होता है। जब भोजन अम्लरस से मिलकर ढीला हो जाता है तब पक्वाशय का द्वार खुल जाता है और आमाशय बड़े वेग से उसे उस ओर ढकेलता है। पक्वाशय यथार्थ मे छोटी आँत के ही प्रारंभ का बारह अंगुल तक का भाग है जिसके तंतुओं में एक विशेष प्रकार की कोष्ठाकार ग्रंथियाँ होती हैं। इसमें यकृत् से आकर पित्त रस और क्लोम से आकर क्लोम रस भोजन के साथ मिलता है। क्लोम रस में तीन विशेष पाचक पदार्थ होते हैं जो आमाशय से कुछ विश्लेषित होकर आए हुए (अधपचे) द्रव्य का और सूक्ष्म अणुओं में विश्लेषण करते हैं जिससे वह घुलकर श्लेष्ममयी कलाओं से होकर रक्त में पहुँचने के योग्य

हो जाता है। पित्त रस के साथ मिलने से क्लोम रस में तीव्रता आती है और वसा या चिकनाई पचती है।

पक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी स्थान या पदार्थ के वे दोनों छोर या किनारे जो अगले और पिछले से भिन्न हों। किसी विशेष स्थिति से दहिने और बाएँ पड़नेवाले भाग। ओर। पार्श्व। तरफ। जैसे, सेना के दोनों पक्ष।

विशेष—'ओर', 'तरफ' आदि से 'पक्ष' शब्द मे यह विशेषता है कि यह वस्तु के ही दो अंगों को सूचित करता है, वस्तु से पृथक् दिक् मात्र को नहीं।

२. किसी विषय के दो या अधिक परस्पर भिन्न अंगो मे से एक। किसी प्रसंग के संबंध में विचार करने की अलग अलग बातों में से कोई एक। पहलू। जैसे,—(क) सब पक्षो पर विचार कर काम करना चाहिए। (ख) उत्तम पक्ष तो यही है कि तुम खुद जाओ। ३. किसी विषय पर दो या अधिक परस्पर भिन्न मतो में से एक। वह बात जिसे कोई सिद्ध करना चाहता हो और जो किसी दूसरे की बात के विरुद्ध हो। जैसे,—(क) तुम्हारा पक्ष क्या है? (ख) तुम शास्त्रार्थ में एक पक्ष पर स्थिर नहीं रहते।

यौ०—उत्तम पक्ष। पूर्वपक्ष। पक्षखंडन। पक्षग्रहण। पक्षमंडन। पक्षसमर्थन।

मुहा०—पक्ष गिरना = मत का युक्तियो द्वारा सिद्ध न हो सकना। शास्त्रार्थ या विवाद मे हार होना। पक्ष निर्बल पड़ना = मत का युक्तियो द्वारा पुष्ट न हो सकना। पक्ष प्रबल पड़ना = मत का युक्तियों द्वारा पुष्ट होना। दलील मजबूत होना। पक्ष सँभालना = किसी मत या बात का खंडन होने से बचाना। पक्ष में = मत या बात के प्रमाण में। कोई बात सिद्ध करने के लिये।

४. दो या अधिक बातों में से किसी एक के संबंध मे (किसी की) ऐसी स्थिति जिससे उसके होने की इच्छा, प्रयत्न आदि सूचित हो। अनुकूल मत या प्रवृत्ति। जैसे,—तुम देने के पक्ष में हो कि न देने के?

मुहा०—किसी बात के पक्ष में होना = किसी बात का होना ठीक या अच्छा समझना।

५. ऐसी स्थिति जिससे एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न करनेवालों मे से किसी एक की कार्यसिद्धि की इच्छा या प्रयत्न सूचित हो। झगड़ा या विवाद करनेवालों में से किसी के अनुकूल स्थिति। जैसे,—इस मामले में वह हमारे पक्ष में है।

मुहा०—(किसी का) पक्ष करना = दे० 'पक्षपात करना'। पक्ष ग्रहण करना = पक्ष लेना। (किसी का) पक्ष लेना = (१) (झगड़े में) किसी की ओर होना। किसी की सहायता मे खड़ा होना। सहायक होना। (२) पक्षपात करना। तरफदारी करना।

६. निमित्त। लगाव। संबंध। जैसे,—ऐसा करना तुम्हारे पक्ष में अच्छा न होगा। ७. वह वस्तु जिसमें साध्य की प्रतिज्ञा करते हैं। जैसे, 'पर्वत वह्निमान है'। यहाँ पर्वत पक्ष है जिसमें साध्य वह्निमान की प्रतिज्ञा की गई है (न्याय)। ८ किसी की ओर से लड़नेवालों का दल या समूह। फौज। सेना। बल। ९. सहायकों या सवर्गों का दल। साथ रहनेवाला समूह। उ०—अग पक्ष जाने बिना करिय न बैर बिरोध।—(शब्द०)।

यौ०—केशपक्ष = बालो का समूह।

१० सहायक। सखा। साथी। ११ किसी विषय पर भिन्न भिन्न मत रखनेवालों के अलग अलग दल। विवाद या झगड़ा करनेवालों की अलग अलग मंडलियाँ। वादियो प्रतिवादियो के अलग अलग समूह। जैसे,—(क) दोनो पक्षो को सावधान कर दो कि झगड़ा न करें। (ख) तुम कभी इस पक्ष में मिलते हो कभी उस पक्ष में। १२. चिड़ियों का डैना। पख। पर। १३ शरपक्ष। तीर मे लगा हुआ हुआ पर। १४ एक महीने के दो भागो में से कोई एक। चाद्रमास के पंद्रह पद्रह दिनो के दो विभाग। पंद्रह दिन का समय। पाख।

विशेष—पक्ष दो होते हैं—कृष्ण और शुक्ल। कृष्ण प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक कृष्ण पक्ष कहलाता है क्योंकि उसमें चद्रमा की कला प्रतिदिन घटती जाती है, जिसमें रात अँधेरी होती है। शुक्ल प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक शुक्ल पक्ष कहलाता है क्योंकि उसमें चद्रमा की कला प्रतिदिन बढ़ती जाती है जिससे रात उजेली होती है। कृष्ण पक्ष मे सूर्यास्त मे और शुक्ल पक्ष में सूर्योदय से तिथि की जाती है।

१५. गृह। घर। १६ चूल्हे का छेद। १७ हाथ मे पहनने का कड़ा। २०. महाकाल। शिव। २१ नीव। भित्ती। दीवार (को०)। २२ पड़ोस (को०)। २३. दीवार का ताख। पाख (को०)। २४. शुद्धता। पूर्णता (को०)। २५ स्थिति। दशा (को०)। २६ शरीर (को०)। २७. सूर्य (को०)। २८ दो की संख्या का सूचक शब्द (को०)।

पक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पार्श्व द्वार। २ खिड़की। चोर दरवाजा। ३. ओर। पक्ष। ३. सहायक। तरफदार। ४ पखा (को०)।

पक्षका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बगल की दीवार (को०)।

पक्षगम—वि० [सं०] पंखों से उड़नेवाला [को०]।

पक्षग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] दो मे से कोई एक पक्ष या दल चुनना। किसी पक्ष का समर्थन करना [को०]।

पक्षघात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पक्षाघात'।

पक्षचर—संज्ञा पुं० [सं०] १ झुंड से बहका हुआ हाथी। २ चद्रमा। ३. सेवक। भृत्य [को०]।

पक्षच्छिद्—संज्ञा पुं० [सं०] (पर्वतों के पंख काटनेवाला) इंद्र का एक नाम [को०]।

पक्षज—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा।

पक्षजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० पक्षजन्मन्] दे० 'पक्षज' [को०]।

पक्षति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा। २ पंख की जड। पखना। डैना [को०]।

पक्षद्वय—संज्ञा पुं० [सं०] विवाद के दोनों दल या पक्ष। २ दो पाख। महीना [को०]।

पक्षद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] खिड़की। चोर दरवाजा।

पक्षधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्ष का आदमी। तरफदार। २. पक्षी। चिड़िया। ३. चंद्रमा (को०)। ४. समूह से भटका हुआ हाथी (को०)।

पक्षधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष में हेतु के होने का अनुमान [को०]।

पक्षनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंख की खोखली डंडी जिससे कलम तैयार की जाती है [को०]।

पक्षनिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पक्ष या विवाद में डालने की क्रिया। २. पंख गिराना [को०]।

पक्षपात—संज्ञा पुं० [सं०] बिना उचित अनुचित के विचार के किसी के अनुकूल प्रवृत्ति या स्थिति। तरफदारी। २. रुचि। इच्छा (को०)। ३ अनुराग। आसक्ति (को०)। ४ (चिड़ियों के) पंखो का गिरना (को०)।

पक्षपातिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पक्षपाती होने की क्रिया या भाव। पक्षग्रहण। २. मित्रता। ३. पंखो का संचालन (को०)।

पक्षपातित्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पक्षपातिता' [को०]।

पक्षपाती—वि० [सं० पक्षपातिन्] तरफदार। बिना उचित अनुचित के विचार के किसी के अनुकूल प्रवृत्त होनेवाला।

पक्षपालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पक्षद्वार। खिड़की [को०]।

पक्षपुट—संज्ञा पुं० [सं०] पंख। पर। डैना [को०]।

पक्षपोषण—वि० [सं०] कोई एक पक्ष लेनेवाला। झगड़ा करानेवाला [को०]।

पक्षप्रद्योत—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य मे हस्तमुद्रा का एक भेद [को०]।

पक्षबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० पक्षबिन्दु] दे० 'पक्षबिंदु' [को०]।

पक्षभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १ काँख। पसली और कूल्हे के बीच का मांसवाला भाग। २. हाथी का पार्श्व [को०]।

पक्षभुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दूरी जो सूर्य एक पखवारे में पूरी करता है [को०]।

पक्षभेद—संज्ञा पुं० [सं०] किसी विवाद का दो पक्षों में बँटवारा [को०]।

पक्षमूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ डैना। पर। २. प्रतिपदा तिथि।

पक्षरचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के पक्षसाधन के लिये रचा हुआ आयोजन। षडयंत्र। चक्र।

पक्षरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की क्रीड़ा। एक खेल [को०]।

पक्षरूप—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

पक्षवंचितक—संज्ञा पुं० [सं० पक्षवञ्चितक] नृत्य में हाथ की एक विशेष मुद्रा [को०]।

पक्षवध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पक्षाघात' [को०]।

पक्षवर्धिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पक्षवर्द्धिनी] वह द्वादशी तिथि जो सूर्योदय से लेकर सूर्योदय तक रहे।

पक्षवाद—संज्ञा पुं० [सं०] एकपक्षीय बयान। एकतरफा बयान [को०]।

पक्षवान्[1]—वि० [सं० पक्षवत्] [वि० स्त्री० पक्षवती] १. पक्षवाला। परवाला। २. उच्च कुल में उत्पन्न।

पक्षवान्[2]—संज्ञा पुं० पर्वत।

विशेष—पुराणों में कथा है कि पहले पर्वतों को पंख होते थे और वे उड़ते थे। पीछे इंद्र ने उनके पर काट लिए। इसी से इंद्र का एक नाम 'पक्षच्छिद' भी है।

पक्षवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] चिड़िया। पक्षी।

पक्षविंदु—संज्ञा पुं० [सं० पक्षबिन्दु] कंक पक्षी।

पक्षव्यापी—वि० [सं०] किसी विवाद पर छा जानेवाला [को०]।

पक्षसुंदर—संज्ञा पुं० [सं० पक्षसुन्दर] लोध्र।

पक्षहत—वि० [सं०] जिसका एक पार्श्व लकवे के आघात से बेकाम हो गया हो [को०]।

पक्षहर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी। २. दगाबाज। विश्वासघाती [को०]

पक्षहोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक पखवारे तक चलनेवाला यज्ञ [को०]।

पक्षांत—संज्ञा पुं० [सं० पक्षान्त] १. अमावस्या। २. पूर्णिमा। ३ सैन्यदल का अंतिम छोर [को०]।

पक्षांतर—संज्ञा पुं० [सं० पक्षान्तर] दो पक्षो मे से कोई एक पक्ष। दूसरा पक्ष [को०]।

पक्षाघात—संज्ञा पुं० [सं०] अर्धांग रोग जिसमें शरीर के दाहिने या बाएँ किसी पार्श्व के सब अंग (जैसे, हाथ पैर, कधा, इत्यादि) क्रियाहीन हो जाते हैं। आधे अंग का लकवा। फालिज।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इस रोग मे कुपित वायु शरीर के अर्धांग मे भरकर और उसकी शिराओं और स्नायुओं का शोषण करके संधिबंधनों और मस्तिष्क को शिथिल कर देती है जिससे उस पार्श्व के सब अंग निष्क्रिय और निश्चेष्ट हो जाते हैं। डाक्टरों के अनुसार पक्षाघात दो प्रकार का का होता है, एक तो वह जिसमे अंगों की गति मारी जाती है, दूसरा वह जिसमें संवेदना नष्ट हो जाती है और अंग सुन्न हो जाते हैं।

पक्षाभास—संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धांताभास।

पक्षालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमार की अनुचरी मातृका।

पक्षालु—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

पक्षावसर—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्णिमा।

पक्षाहार—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पखवारे मे एक बार भोजन करे [को०]।

पक्षि—वि० [सं० पक्षिन्] पंखवाला। डैनेवाला [को०]।

पक्षिकीट—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी चिड़िया [को०]।

पक्षिणी[1]—वि० [सं०] पक्षवाली।

पक्षिणी[2]—संज्ञा स्त्री० १. चिड़िया। मादा चिड़िया। २. पूर्णिमा। ३. दो दिन और एक रात का समय (स्मृति)। ४ बालघातिनी पूतना (को०)।

पक्षितीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक तीर्थ।

विशेष—प्राचीन काल में यह तीर्थ हिंदुओं और बौद्धों के बीच प्रसिद्ध था। यह मदरास से १६-१७ कोस दक्षिण पड़ता है। आजकल इसका नाम 'तिरुक्कड्डुकुनरम्' है।

पक्षिपति—संज्ञा पुं० [सं०] संपाति का नाम [को०]।

पक्षिपानीयशालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पक्षियों के पानी पिलाने के लिये निर्मित पात्र या हौज [को०] ।

पक्षिपाल—वि० [सं० पक्षिपालक] चिड़िया पालनेवाला । उ०—पक्षिपाल ना पायहु अंडा । सो लौ धर्म रचै नव खंडा ।—कबीर सा०, पृ० ७ ।

पक्षिपुंगव—संज्ञा पु० [सं० पक्षिपुङ्गव] १. जटायु । २ गरुड [को०] ।

पक्षिमार्ग—संज्ञा स्त्री० [सं०] वायु [को०] ।

पक्षिराज—संज्ञा पु० [सं०] १. पक्षियों का राजा, गरुड़ । २.जटायु । ३. एक प्रकार का धान ।

पक्षिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'पक्षिलस्वामी' । २ मददगार । सहायक । सहयोगी ।

पक्षिलस्वामी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य । हेमचद्र के मत से वात्स्यायन ही का नाम पक्षिल स्वामी है ।

पक्षिशार्दूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य [को०] ।

पक्षिशाला—संज्ञा पुं० [सं०] १ घोंसला । २. पिंजरा । पिंजर । ३. चिड़ियाघर [को०] ।

पक्षींद्र—संज्ञा पुं० [सं० पक्षीन्द्र] गरुड [को०] ।

पक्षी—संज्ञा पुं० [सं० पक्षिन्] १. चिड़िया । २. तरफदार । ३. बाण (को०) । ४. शिव (को०) ।

पक्षी[२]—वि० १. पक्षवाला । पंखवाला । २ पक्ष विशेष का समर्थक । तरफदार [को०] ।

पक्षीपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पक्षिपति' ।

पक्षीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ [को०] ।

पक्षीय—वि० [सं०] (समस्त के अंत में) किसी पक्ष, समूह आदि से संबंध रखनेवाला । जैसे, कुरुपक्षीय ।

पक्षेष्टि[१]—वि० [सं०] एक पक्ष में होनेवाला । पाक्षिक ।

पक्षेष्टि[२]—संज्ञा पुं० [सं०] पाक्षिक याग । वह यज्ञ जो प्रति पक्ष किया जाय ।

पक्ष्म—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष्मन्] १. आँख की बिरनी । बरौनी । २. महीन धागा । धागे का कोना (को०) । ३. पंख (को०) । ४ फूल की पंखुड़ी (को०) । ५ पशुओं के मुख का बाल । मूँछ । जैसे, सिंह, बिल्ली आदि के (को०) । ६ पशुओं के शरीर का बाल (को०) ।

पक्ष्मकोप—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की बिरनी या पलकों का एक रोग ।

पक्ष्मल—वि० [सं०] १. लंबी और सुंदर बरौनियोंवाला । २. रोमश । बालोंवाला । ३ मुलायम । चिकना [को०] ।

पक्ष्य[१]—वि० [सं०] १. पखवारे में होने या घटनेवाला । २. प्रत्येक पाख में बदलनेवाला । ३ पक्षपात करनेवाला [को०] ।

पक्ष्य[२]—संज्ञा पुं० तरफदार । पक्ष लेनेवाला [को०] ।

पखंड—संज्ञा पुं० [सं० पाखण्ड] दे० 'पाखंड' । उ०—आसन वासन मानुस अंडा । भए चौखंड जो ऐस पखंडा ।—जायसी (शब्द०) ।

पखंडी[१]—वि० [हिं० पखंड + ई (प्रत्य०)] दे० 'पाखंडी' ।

पखंडी[२]—संज्ञा पुं० [हिं० पाखंडी] वह जो कठपुतलियाँ नचाता हो । कठपुतली का नाच दिखानेवाला व्यक्ति । उ०—कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा । कतहुँ पखंडी काठ नचावा ।—जायसी (शब्द०) ।

पख—संज्ञा स्त्री० [सं० पक्ष, प्रा० पक्ख] १ वह बात जो किसी बात के साथ जोड़ दी जाय और जिसके कारण व्यर्थ कुछ और श्रम या कष्ट उठाना पड़े । ऊपर से व्यर्थ बढ़ाई हुई बात । तुर्रा । जैसे,—मैं आऊँगा अवश्य पर साथ में लाने की पख न लगाइए ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

२. ऊपर से बढ़ाई शर्त । बाधक नियम । अड़ंगा । जैसे,—दस्तहान की पख न होती तो ये उस जगह पर हो जाते । ३ झगड़ा । बखेड़ा । झंझट । हैरान करनेवाली बात । जैसे,—तुमने मेरे पीछे अच्छी पख लगा दी है यह रुपयों के लिये बराबर मुझे घेरा करता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—फैलाना ।—मचाना ।

४. दोष । त्रुटि । नुक्स । जैसे,—वे इस हिसाब में यह पख निकालेंगे कि इसमे अलग अलग ब्योरा नही है ।

पखड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० पक्ष्म] फूलों का रंगीन पटल जो खिलने के पहले आवरण के रूप मे गर्भ या परागकेसर को चारों ओर से बंद किए रहता है और खिलने पर फैला रहता है । पुष्पदल । जैसे, गुलाब की पखड़ी, कमल की पखड़ी ।

पखतूट—संज्ञा पुं० [देश०] डिंगल मे एक प्रकार का काव्यदोष ।—रघु० रू०, पृ० १४ ।

पखनारी—संज्ञा स्त्री० [सं० पक्ष + नाल] चिड़ियों के पंखों की डंठी जिसे ढरकी के छेद में तिली रोकने के लिये लगाते है (जुलाहे) ।

पखपान—संज्ञा पुं० [हिं० पग + पान] पैर में पहनने का एक गहना जिसे पाँवपोश भी कहते हैं ।

पखरना(५)—क्रि० स० [हिं० पखारना] प्रक्षालन करना । धोना । पखारना ।

पखरवाना—क्रि० स० [हिं० पखारना] दे० 'पखराना' ।

पखराना—क्रि० स० [हिं० पखारना का प्रे०रूप] धुलवाना । पखारने का काम कराना ।

पखरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'पाखर' । २. दे० 'पंखड़ी' ।

पखरैत—संज्ञा पुं० [हिं० पाखर + ऐत (प्रत्य०)] वह घोड़ा या बैल या हाथी जिसपर लोहे की पाखर पड़ी हो ।

पखरौटा—संज्ञा पुं० [हिं० पखड़ी + औटा (प्रत्य०)] सोने या चाँदी के वर्क से लपेटा हुआ पान का बीड़ा ।

पखवाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष + वार] दे० 'पखवारा' ।

पखवारा—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष + वार] १. चांद्रमास का पूर्वार्ध या उत्तरार्ध । महीने के पंद्रह पंद्रह दिन के दो विभागों मे से कोई एक । २. पंद्रह दिन का काल । उ०—परखेसु मोहिं एक पखवारा । नहिं आवौं तो जावेसु मारा ।—मानस ४।६ ।

पखा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष] १ दाढ़ी । श्मश्रु । २. पंख । उ०—मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माल गरे पहिरौंगी । —रसखान०, पृ० १३ ।

पखाउज—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पखावज' ।

पखाटा—संज्ञा पुं० [देश०] धनुष का कोना ।

पखान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाषाण] दे० 'पाषाण' । उ०—नहीं चंद्र मनि जो द्रवै यह तेलिया पखान । —दीनदयाल (शब्द०) ।

पखाना(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० उपाख्यान] कहावत । कहनूत । कथा । मसल । उ०—बालापन ते निकट रहत ही सुन्यो न एक पखानो ।—सूर (शब्द०) ।

पखाना†[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पाखाना' ।

पखापखी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पक्षापक्षि ?] निरंतर किसी न किसी एक पक्ष के स्वीकरण की स्थिति या क्रिया । उ०—दादू पखापखी संसार सब निरपख बिरला कोई । —दादू० पृ० ३१६ ।

पखारना—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन, प्रा० पक्खालन] पानी से मैल आदि साफ करना । धोना । जैसे, पैर पखारना । उ०—(क) पाँव पखारि निकट बैठारे समाचार सब बूझे ।—सूर (शब्द०) । (ख) जो प्रभु पार अवसि गा चहहू । तौ पद पदुम पखारन कहहू । —तुलसी (शब्द०) ।

पखाल—संज्ञा स्त्री० [सं० पय (=पानी) + हिं० खाल] १. बैल के चमड़े की बनी हुई बड़ी मशक जिसमें पानी भरा जाता है । उ०—भीतर मैला बाहेरी चोखा, पाणी प्यंड पखाले धोना । —दक्खिनी०, पृ० ३४ । २ धौंकनी ।

पखालना(पु)†—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन] दे० 'पखारना' । उ०—पएर पखाल रोसे नहि लाए, अंधरा हाथ भेटल हर जाए । विद्यापति, पृ० ३१३ ।

पखाल पेटिया—संज्ञा पुं० [हिं० पखाल + पेट] १. वह जिसका पेट पखाल की तरह बड़ा हो । बड़े पेटवाला । २ बहुत खानेवाला आदमी । पेटू ।

पखाली—संज्ञा पुं० [हिं० पखाल] पखाल या मशक में पानी भरनेवाला । भिश्ती ।

पखावज—संज्ञा स्त्री० [सं० पक्ष + वाद्य] एक बाजा जो मृदंग से कुछ छोटा होता है ।

पखावजी—संज्ञा पुं० [सं० पखावज + ई (प्रत्य०)] पखावज बजानेवाला ।

पखिया—संज्ञा पुं० [हिं० पख + इया (प्रत्य०)] झगड़ालू । बखेड़ा मचानेवाला ।

पखी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पक्षिन्] दे० 'पक्षी' ।

पखीरी(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पक्षी' ।

पखुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पंख = पख] दे० 'पखड़ी' ।

पखुरा—संज्ञा पुं० [सं० पक्षमूल] दे० 'पखुवा'

पखुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पख] दे० 'पखड़ी' । उ०—मनहुँ खिलायो कमल कछु प्रात अरुण ने आय । नैक पखुरिन बीच में अंतर परत लखाय ।—शकुंतला, पृ० १३६ ।

पखुवा—संज्ञा सं० [सं० पक्ष, हिं० पक्ख] बाँह का वह भाग जो किनारे या बगल में पड़ता है । पखुरा । भुजमूल का पार्श्व । पार्श्व । बगल ।

मुहा०—**पखुवे से लगकर बैठना** = बगल में सटकर बैठना ।

पखेरुवा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पखेरू' ।

पखेरू—संज्ञा पुं० [सं० पक्षालु, प्रा० पक्खालु] पक्षी । चिड़िया । उ०—मधुबन तुम कत रहत हरे । बिरह बियोग श्याम सुंदर के ठाड़े क्यों न जरे ? ...... ससा स्यार औ बन के पखेरू धिक धिक सबन करे ।—सूर (शब्द०) ।

पखेव—संज्ञा पुं० [देश०] वह खाना जो भैंस या गाय को, बच्चा जनने पर, छह दिनों तक दिया जाता है । इसमें सोंठ, गुड़, हलदी, मँगरैला और उर्द का आटा होता है ।

पखोड़ा—संज्ञा पुं० [सं०] पत्तपोड़ वृक्ष । एक पेड़ का नाम ।

पखौआ†—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष] पंख । पर । उ०—कारे रँग के काग पखौआ, पटियन जात उनारे । ककरिजिया खो ओढ ईसुरी खकल कलेजे डारे ।—शुक्ल० अभि० ग्रं०, पृ० १५७ ।

पखौटा—संज्ञा पुं० [हिं० पख] १. डैना । पर । २ मछली का पर ।

पखौड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पखौरा] दे० 'पखौरा' ।

पखौरा—संज्ञा पुं० [पक्ष + हिं० औरा (प्रत्य०)] कंधे और भुजदंड की संधि । कंधे पर की हड्डी ।

पक्खर(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाखर] दे० 'पाखर' । उ०—सजे डंबरं अंबरं साज बाजं । बनी पक्खरं बाजि साजं समाजं । —ह० रासो, पृ० ३४ ।

पग—संज्ञा पुं० [सं० पदक, प्रा० पअक, पक] १ पैर और पाँव । २ चलने में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैर रखने की क्रिया की समाप्ति । डग । फाल । ३. चलने में जिस स्थान से पैर उठाया जाय और जिस स्थान पर रखा जाय दोनों के बीच की दूरी । डग । फाल ।

मुहा०—**पग परना** = पैरों पर सिर रखकर प्रणाम करना । पाँव लगना या छूना । उ०—अस कहि पग परि पेम अति सिय हित बिनय सुनाइ ।—मानस, २।२८४ । **पग फूँककर धरना** = सावधान होकर और सोच समझकर कदम रखना । उ०—धनमानों को प्रति पग फूँककर धरना पड़ता है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७६ । **पग रोपना** = कोई प्रतिज्ञा करके किसी जगह दृढ़तापूर्वक पैर जमाना ।

पगचंपी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पग + चाँपना] पैर दबाने की क्रिया । पैर दबाना । उ०—नारायण देवा मही, ज्यूं नारायण चंद । कमला पगचंपी करे बंक संक तज बंद ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४० ।

पगडंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पग + डंडी] जंगल या मैदान में वह पतला रास्ता जो लोगों के चलते चलते बन गया हो ।

पगड़ा(पु)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० पगाह] प्रभात । दे० 'पगरा' । उ०—सघली रैनि आनंदघन बरस्या पगड़े म्हाँ पर छाया । —घनानंद, पृ० ३८६ ।

पगड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पटक, हिं॰ पाग + ड़ी (प्रत्य॰)] वह लंबा कपड़ा जो सिर लपेटकर बाँधा जाता है। पाग। चीरा। साफा। उष्णीष।

क्रि॰ प्र॰—बँधना।—बाँधना।

मुहा॰—(किसी से) **पगड़ी अटकना** = बराबरी होना। मुकाबला होना। **पगड़ी उछलना** = दुर्गति होना। बुरी नौबत आना। **पगड़ी उछालना** = (१) बेइज्जती करना। दुर्दशा करना। (२) उपहास करना। हँसी उड़ाना। **पगड़ी उतरना** = मान या प्रतिष्ठा भंग होना। बेइज्जती होना। **पगड़ी उतारना** = (१) मान या प्रतिष्ठा भंग करना। बेइज्जती करना। (२) वस्त्रमोचन करना। ठगना। लूटना। धन संपत्ति हरण करना। (किसी को) **पगड़ी बँधना** = (१) उत्तराधिकार मिलना। वरासत मिलना। (२) उच्च पद या स्थान प्राप्त होना। सरदारी मिलना। अधिकार प्राप्त होना। (३) प्रतिष्ठा मिलना। सम्मान प्राप्त होना। (किसी को) **पगड़ी बाँधना** = (१) उत्तराधिकार देना। गद्दी देना। (२) उच्च पद या अधिकार देना। सरदार बनाना। (किसी के साथ) **पगड़ी बदलना** = भाई चारे का नाता जोड़ना। मैत्री करना। (किसी की) **पगड़ी रखना** = मानरक्षा करना। इज्जत बचाना। (किसी के आगे) **पगड़ी रखना** = बहुत नम्रता करना। गिड़गिड़ाना। हा हा खाना।

पगतरी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ पग + तल] जूता।

पगदासी†(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ पग + दासी] १. जूता। २ खड़ाऊँ उ॰—देखि द्वार भीर, पगदासी कटि बाँधी बीर, कर सो उछीर करि, चाहैं पद गाइयै।—भक्तमाल (प्रिया॰), पृ॰ ४८६।

पगना—क्रि॰ स॰ [सं॰ पाक] १ शरबत या शीरे में इस प्रकार पकना कि शीरा चारो ओर लिपट और घुस जाय। रस के साथ परिपक्व होकर मिलना। जैसे, पेठे का चीनी मे पगना २ किसी लसलसे पदार्थ के साथ इस प्रकार मिलना कि वह उसमें भर जाय। सनना। रस आदि के साथ ओतप्रोत होना। ३. बहुत अधिक अनुरक्त होना। किसी के प्रेम में डूबना। मग्न होना। उ॰—कहैं पद्माकर पगी यो पतिप्रेम ही में, पदमिनी तोसी, तिया तोही पेखियत है।—पद्माकर(शब्द॰)।

संयो॰ क्रि॰—जाना।

पगनियाँ†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पग + नियाँ (प्रत्य॰)] जूती। उ॰—लामिया न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न घामैं घुमराती छोड़ि सेजिया सुखन की।—भूषण (शब्द॰)।

पगपान—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पग + पान] पैर में पहनने का एक भूषण जिसे पलानी या गोड़सकर भी कहते हैं। उ॰—पगपान चाँदी को चरन पहिनन लागी सोभा देखि रंभा रति गर्वहू गरत सो।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ८२४।

पगरखी(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ पग+रखी] खड़ाऊँ। पादत्राण। पगतरी। उ॰—इनको अच्छी प्रकार से अंग मांज मांज के स्नान कराकर, पगरखी तथा कमली आदि नई मँगवा दी।—भक्तमाल (प्रिया॰), पृ॰ ५६२।

पगरना—संज्ञा पुं॰ [देश॰] सोने चाँदी के नक्काशों का एक औजार जो नक्काशी करते समय छोटा गड्ढा बनाने के काम में आता है।

पगरा¹(पु)†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पग+रा (प्रत्य॰)] पग। डग। कदम। उ॰—सूर सनेह ग्वारि मन अटको छाँड़िहु दिए परत नहिं पगरो। परम मगन ह्वै रही चितै मुख सबही ते भाग याहि को अगरो।—सूर (शब्द॰)।

पगरा²—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ पगाह (= सबेरा)] यात्रा आरंभ करने का समय। प्रभात। चलने का समय। सबेरा। तड़का। उ॰—(क) पौ फाटी पगरा हुआ जागे जीवा जून। सब काहू को देत हैं चोच समाना चून।—कबीर (शब्द॰)। (ख) कबिरा पगरा दूर है, बीच परी है राति। ना जाने क्या होयगा ऊगंता परभात।—कबीर (शब्द॰)।

पगरी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ पाग] दे॰ 'पगड़ी'। उ॰—प्यार पगी पगरी पिय की धर भीतर आपने सीस सँवारी।—मति॰ ग्रं॰, पृ॰ ३४५।

पगला—वि॰ पुं॰ [हिं॰] [वि॰ स्त्री॰ पगली] दे॰ 'पागल'।

पगवाह†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पग+सं॰ वाहन] पैदल सेना। उ॰—वानी सी विचित्री पगवाहाँ।—रा॰ रू॰, पृ॰ ३३४।

पगहा†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रग्रह, प्रा॰ पग्गाह] [स्त्री॰ पगही] वह रस्सी जिससे पशु बाँधा जाता है। गिरावँ। पघा।

पगा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पाग] १ पटका। दुपट्टा। उ॰—झगा झगा अरु पाग पिछौरी ढाढ़िन को पहिराए।—सूर (शब्द॰)। २. पाग। पगड़ी। पाग। उ॰—सीस पगा न झगा तन में प्रभु जाने को आहि बसै किहि ग्रामा।—कविता कौ॰, भा॰ १, पृ॰ १४६।

पगा²—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रग्रह] दे॰ 'पघा'। उ॰—तृण दशनन नै मिलु दसकंधर कंठहिं मेलि पगा।—सूर (शब्द॰)।

पगा³—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पगरा] दे॰ 'पगरा'।

पगाना—क्रि॰ स॰ [सं॰ पक्व या पाक] १ पागने का काम कराना। २ अनुरक्त करना। मग्न करना। उ॰—का कियो योग अजामिल जू गनिका कबही मति प्रेम पगाई।—तुलसी (शब्द॰)।

पगार(पु)¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्राकार] गढ़, प्रासाद या बाग बगीचे के रक्षार्थ बनी हुई चहारदीवारी। रखवाली के लिये बनी हुई दीवार। ओट की दीवार। उ॰—(क) बीथिका बजार प्रति अटनि अगार प्रति पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिए।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) नौबती पगारन नगारन की धमकै।—भूषण (शब्द॰)।

पगार²—संज्ञा पु॰ [हिं॰ पग + गारना] १ पैरों से कुचली हुई मिट्टी, कीचड़ वा गारा। २. ऐसी वस्तु जिसे पैरों से कुचल सकें। ३ वह पानी वा नदी जिसे पैदल चलकर पार कर सकें। पायाब। उ॰—गिरि तें ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार। वहै सदा पसु नरन कों प्रेम पयोधि पगार।—(शब्द॰)।

पगार³—संज्ञा पुं॰ वेतन। तनख्वाह।

पगारा[४]—संज्ञा पुं० [हिं० पग] मार्ग। रास्ता। उ०—छडक पगारा नोर छित, घुरे नगारा घोर।—रघु० रू०, पृ० ६४।

पगारना—क्रि० स० [हिं० पगार+ना ?] फैलाना।

पगाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] यात्रा आरंभ करने का समय। भोर। तड़का। दे० 'पगरा'।

पगिआ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाग+इया (प्रत्य०)] दे० 'पगड़ी'। उ०—जटा फटके लटके पगिआ घट ना परचो रस रहत जो भीने।—सं० दरिया, पृ० ६३।

पगिआना†(पु)—क्रि० स० [हिं० पगाना] दे० 'पगाना'।

पगिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाग+इया (प्रत्य०)] दे० 'पगड़ी'। उ०—कुटिल अलक समात नहिं पगिया, आलस सो झलमले। नंद० ग्रं०, पृ० ३५३।

पगियाना—क्रि० स० [हिं० पगाना] दे० 'पगाना'।

पगु(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० पग] दे० 'पग'। उ०—राम सकल कुल रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा।—मानस, १।२५।

पगुराना†—क्रि० अ० [हिं० पागुर] १. पागुर करना। जुगाली करना। २ हजम कर जाना। डकार जाना। ले लेना।

पगेरना—संज्ञा पुं० [देश०] कसेरों की एक प्रकार की छेनी जो बरतनों पर नकाशी करने के काम मे आती है।

पग्गा†—संज्ञा पुं० [हिं० पागना या पकाना] पीतल या ताँबा गलाने की घरिया। पागा।

पग्घ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं पाग] पाग। पगड़ी। उ०—गज गही दौंर सिर पग्घ सुंड।—पृ० रा०, ५।२५।

पघरना†—संज्ञा पुं० [हि० पिघलना] दे० 'पिघलना'। उ०—ज्यौ पाले का पिंड पघरना। समुझि देषि निश्चै करि मरना।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३३४।

पघा—संज्ञा पुं० [सं० प्रग्रह, प्रा० पग्गह] वह रस्सा जो गायों, बैलों आदि चौपायों के गले में बाँधा जाता है। ढोरों को बाँधने की मोटी रस्सी। पगहा।

पघाल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत कड़ा लोहा।

पघिलना†—क्रि० अ० [हिं० पिघलना] दे० 'पिघलना'।

पघिलाना—क्रि० स० [हिं० पघिलना] दे० 'पिघलाना'।

पघैया†—संज्ञा पुं० [हिं० पग (= पैर, पैदल) +इया (प्रत्य०)] गावों आदि में घूम घूमकर माल बेचनेवाला व्यापारी।

पच[१]—वि० [सं० पञ्च] हिंदी पाँच का समासगत रूप। जैसे, पचकल्यान, पचमेवा, पचरतन, पचतोरिया, पचगुना आदि।

पच[२]—वि० [सं०] पाकर्ता। पाचक [को०]।

पचक—संज्ञा पुं० [सं०] रसोइया [को०]।

पचकना—क्रि० अ० [हि०] दे० 'पिचकना'।

पचकल्यान—संज्ञा पुं० [हिं० पंच + कल्यान] दे० 'पंचकल्याण'।

पचकल्यानी‡—वि० [हिं०] पाँच का कल्याण करनेवाला। धूर्त। भाड़यां। (व्यंग्य)।

पचखना[१]—वि० [हिं पाँच+खंड] पाँच खंडोंवाला या पँचमंजिला (मकान आदि)।

पचखना[२]—क्रि० अ० [सं० पिच्च (= दबना)] दे० 'पिचकना'।

पचखा‡—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चक] दे० 'पंचक-४'।

पचगुना—वि० [सं० पञ्चगुण] पाँच बार अधिक। पाँचगुना।

पचग्रह—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चग्रह] मंगल, बुद्ध, गुरु, शुक्र, और शनि का समूह।

पचड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पच (= पँच = पंच = प्रपंच)+ड़ा (प्रत्य०)] १. झंझट। बखेड़ा। पँवाडा। प्रपंच। उ०—आज ब्राह्मणों में ऐसी मारपीट हुई कि नहीं कह सकता। वह बड़ा पचड़ा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३५२।

क्रि० प्र०—निकालना।—फैलाना।

२. एक प्रकार का गीत जिसे प्रायः ओझा लोग देवी आदि के सामने गाते हैं। ३. लावनी या खयाल के ढंग का एक प्रकार का गीत जिसमें पाँच पाँच चरणों के टुकड़े होते हैं। ऐसे गीतों में प्राय: कोई कथा या आख्यान हुआ करता है।

पचत[१]—वि० [सं०] १. पकाया हुआ। २. पका हुआ। परिपक्व।

पचत[२]—संज्ञा पुं० १. अग्नि। २ सूर्य। ३. इंद्र का नाम। ४. पकाया हुआ भोजन या खाद्य पदार्थ [को०]।

पचताना‡—क्रि० अ० [हिं० पछताना] दे० 'पछताना'। उ०—खावते जुग सब चलि जावे खटा मिठा फिर पचतावे।—दक्खिनी०, पृ० १०५।

पचतावा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पछतावा] दे० 'पछतावा'। उ०—साजनि आगे कि बोलब आओ। आगे गुनि जे काज न करए पाछे हो पचताओ।—विद्यापति, पृ० ८८।

पचतूरा—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० पंच तूर्य (= पंचसबद)] एक प्रकार का बाजा।

पचतोरिया—संज्ञा पुं० [सं० पञ्च+तार या सं० पट+तार] एक प्रकार का कपड़ा। उ०—(क) पीरे पचतोरिया लसित अतलस लाल, लाल रद चंद मुखचंद ज्यों शरद को।—देव (शब्द०)। (ख) सेत जरतारी की उज्यारी कंचुकी की कसि अनियारी डीठि प्यारी उठि पैन्ही पचतोरिया।—देव (शब्द०)।

पचतोला†—संज्ञा पुं० [हिं० पचतोरिया] एक प्रकार का कपड़ा। जरी का कपड़ा। उ०—हूमन भावज रानी, अबसे बड़ी स्यानी बादल पो का पानी, पचतोला से छानी।—दक्खिनी०, पृ० ३६२।

पचतोलिया—संज्ञा पुं० [हिं० पाँच+तोला+इया (प्रत्य०)] पाँच तोले का बाट।

पचतोलिया[२]—वि० पाँच तोले की अर्थात् हलकी। वजन में न मालूम पड़नेवाली। उ०—ऐसे पचतोलिया पाग नरायनदास प्रतिवर्ष श्री गुसाँई जी को पठावते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १३१।

पचतोलिया[३]—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'तौलिया'।

पचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पकाने की क्रिया या भाव। पाक। २. पकने की क्रिया या भाव। ३. पकाने का सामान। पकाने का

साधन, पात्र, ईंधन आदि (को०)। ४. अग्नि। ५. वह जो पकाता हो। पकानेवाला।

पचना—क्रि० अ० [सं० पचन] १. खाई हुई वस्तु का जठराग्नि की सहायता से रसादि मे परिणत होना। भुक्त पदार्थों का रसादि में परिणत होकर शरीर में लगने योग्य होना। हजम होना। जैसे,—(क) रात का भोजन अभी तक नहीं पचा। (ख) जरा सा चूरण खा लो, भोजन पच जायगा। २. क्षय होना। समाप्त या नष्ट होना। जैसे, बाई पचना, शेखी पचना, मोटाई पचना। ३. किसी चीज का मालिक के हाथ से निकलकर अनुचित रूप से किसी दूसरे के हाथ में इस प्रकार चला जाना कि फिर कोई उससे ले न सके। पराया माल इस प्रकार अपने हाथ मे आ जाना कि फिर वापस न हो सके। हजम हो जाना। जैसे,—उनके यहाँ अमानत में हजारो रुपए के जेवर रखे थे, सब पच गए। ४. अनुचित उपाय से प्राप्त किए हुए धन या पदार्थ का काम में आना। जैसे—उन्होंने लावारसी माल ले तो लिया पर पचा न सके, सब चोर चुरा ले गए। ५ बहुत अधिक परिश्रम के कारण शरीर, मस्तिष्क आदि का गलना, सूखना या क्षीण होना। ऐसा परिश्रम होना जिससे शरीर क्षीण हो। बहुत हैरान होना। दु.ख सहना। उ०—ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा० - पच मरना = किसी काम के लिये बहुत अधिक परिश्रम करना। जीतोड मिहनत करना। परेशान होना। हैरान होना। उ०—जगत भेख माया के कारण पच्च मरै दिन रात रे। अंत बेर नागा हुय चालै ना कोई संग न साथ रे।—राम० धर्म०, पृ० २१९।

६ एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ मे पूर्ण रूप से लीन होना। खपना। जैसे,—जरा से चावल मे सारा घी पच गया।

पचनागार—संज्ञा पुं० [सं०] पाकशाला। रसोईघर। बावरचीखाना।

पचनाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] जठराग्नि। पेट की आग जिससे खाया हुआ पदार्थ पचता है।

पचनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़ाही।

पचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिहारी नीबू। जंगली नीबू।

पचनीय—संज्ञा पुं० [सं०] पचने योग्य। जो पच सकता हो।

पचपच[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. पचपच शब्द होने की क्रिया या भाव। २ कीचड़।

पचपच[2]—संज्ञा पुं० शिव का एक नाम (को०)।

पचपचा—वि० [हिं० पचपच] वह अधपका भोजन जिसका पानी ठीक तरह से सूखा या जला न हो।

पचपचाना—[हिं० पचपच] १. किसी पदार्थ का आवश्यकता से अधिक गीला होना। कीचड़ होना (क्व०)।

पचपन[1]—वि० [सं० पञ्चपञ्चाशत्, प्रा० पंचपण्णास] पचास और पाँच। पाँच कम साठ।

पचपन[2]—संज्ञा पुं० पचास और पाँच की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५५।

पचपनवाँ—वि० [हिं० पचपन + वाँ (प्रत्य०)] क्रम मे पचपन के स्थान पर पड़नेवाला। जो गिनने में चौवन के बाद पचपन की जगह पड़े।

पचपल्लव—संज्ञा पुं० [सं० पञ्च पल्लव] दे० 'पंचपल्लव'।

पचबीस‡—संज्ञा पुं० [हिं० पच्चीस] बीस और पाँच का जोड। २५ की संख्या। पचीस प्रवृत्तियाँ। उ०—रहै पचबीस का पहरा।—घट०, पृ० ३०६।

पचमेल—वि० [हि० पाँच + मेल] जिसमें कई या सब प्रकार (के पदार्थ आदि) हों। जिसमें कई या सब मेल (की चीजें) हों। जैसे पचमेल मिठाई।

पचरंग[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पाँच रंग] चौक पूरने की सामग्री। मेहदी का चूरा, अबीर, बुक्का, हल्दी और सुरवाली के बीज।

विशेष—इस सामग्री में सर्वत्र ये ही ५ चीजें नहीं होतीं। इनमें से कुछ चीजों के स्थान पर दूसरी चीजें भी काम में लाई जाती हैं।

पचरंग[2]—वि० दे० 'पचरंगा'।

पचरंगा[1]—वि० [हिं० पाँच + रंग] [वि० स्त्री० पचरंगी] १. जिसमें भिन्न भिन्न पाँच रंग हो। पाँच रंग का या पाँच रंगों वाला। २. (कपड़ा) जो पाँच रंगो से रँगा या पाँच रंगो के सूतों से बुना हुआ हो। ३. जिसमें कई या बहुत से रंग हों। कई रंगों से रंजित। उ०—अजब एक फूल पचरंगा।—घट०, पृ० २४७।

पचरंगा[2]—संज्ञा पुं० नवग्रह आदि की पूजा के निमित्त पूरा जानेवाला चौक जिसके खाने या कोठे पचरंग के पाँच रंगों से भरे जाते हैं।

पचरा—संज्ञा पुं० [हिं० पचड़ा] दे० 'पचड़ा'—२। उ०—गावहिं पचरा मूढ़ कँगावहिं, बोरलहिं सकल कमाई हो।—गुलाल०, पृ० २२।

पचलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँच + लड़ी] माला की तरह का एक आभूषण जिसमें पाँच लड़ियाँ होती हैं।

विशेष—यह गले में पहना जाता है और इसकी अंतिम लड़ी प्रायः नाभि तक पहुँचती है। कभी कभी प्रत्येक लड़ी के और कभी कभी केवल अंतिम के बीचों बीच एक जुगनू लगा रहता है। इसके दाने सोने, मोती अथवा किसी अन्य रत्न के होते हैं।

पचलोना—संज्ञा पुं० [सं० पञ्च, हिं० पाँच + लोन (= लवण)] १ जिसमें पाँच प्रकार के नमक मिले हो। उ०—मेरा पाचक है पचलोना, जिसको खाता श्याम सलोना।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६२। २. दे० 'पंचलवण'।

पचवई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पचवाई'।

पचवना(पु)—क्रि० स० [हिं० पचाना] दे० 'पचाना'। उ०—बिसखाय राय सो बीर जानि। पचवंत जहर जनु दूध पानि।—पृ० रा०, ६।७३।

पचवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँच + वाई] एक प्रकार की देशी शराब जो चावल, जौ, ज्वार आदि से चुआई जाती है।

पचहत्तर[1]—वि० [सं० पञ्च सप्तत, प्रा० पंचहत्तर] सत्तर और पाँच। अस्सी से पाँच कम।

पचहत्तर[2]—संज्ञा पु० सत्तर और पाँच के जोड़ने से बननेवाली संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७५।

पचहत्तरवाँ—[वि० पचहत्तर+वाँ (प्रत्य०)] गिनने में पचहत्तर के स्थान पर पड़नेवाला। क्रम में जिसका स्थान पचहत्तर पर हो।

पचहरा—वि० [हिं० पाँच + हरा] १. पाँच परतों या तहोंवाला। पाँच बार मोड़ा या लपेटा हुआ। पाँच आवृत्तियोंवाला। २ पाँच बार किया हुआ (अप्रयुक्त)।

पचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पकाने या पकने की क्रिया [को०]।

पचानक—संज्ञा पु० [देश०] एक पक्षी जिसका शरीर एक बालिश्त लंबा होता है। इसके डैने और गर्दन काली होती हैं। दक्षिण भारत और बंगाल इसके स्थायी आवासस्थान हैं पर अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में भी यह पाया जाता है।

पचाना—क्रि० स० [हिं० पचना] १ पचना का सकर्मक रूप। पकाना। आँच पर गलाना। २. खाई हुई वस्तु को जठराग्नि की सहायता से रसादि मे परिणत कर शरीर में लगने योग्य बनाना। जीर्ण करना। हजम करना जैसे,—तुम चार चपातियाँ भी नही पचा सकते।

संयो क्रि०— जाना।— डालना।— लेना।

३ समाप्त या नष्ट करना। जैसे, बाई पचाना, मोटाई पचाना आदि।

क्रि० प्र०— डालना।—देना।

३ किसी की कोई वस्तु अनुचित या अवैध उपाय से हस्तगत कर सदा अपने अधिकार मे रखना। पराए माल को अपना कर लेना। हजम कर जाना। उगलने का उलटा। जैसे,—किसी का माल चुराना सहज है पर पचाना सहज नहीं है।

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।— लेना।

४ अवैध उपाय से हस्तगत वस्तु को अपने काम मे लाकर लाभ उठाना। जैसे,— ब्राह्मण का धन है, ले तो लिया पर तुम पचा न सकोगे। ५. अत्यधिक परिश्रम लेकर या क्लेश देकर शरीर मस्तिष्क आदि को गलाना सुखाना या क्षय करना। जैसे, —(क) तपस्या करके देह पचा डाली। (ख) बेवकूफ से बहस करके कौन व्यर्थ माथा पचावे?

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

६. एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ को अपने आपमें पूर्ण रूप से लीन कर लेना। खपाना। जैसे,—यह चावल बहुत घी पचाता है।

पचापच—संज्ञा स्त्री० [हिं० पचपच] बार बार मुख से थूकने का भाव। उ०—जैसी ही उनको पान सुरती की पचापच से नफरत है वैसी इधर चुरुट के धूम्र से।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ६६५।

पचाय‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० पचवाई] एक प्रकार की शराब। पचवाई। उ० —जब पीएगा तो पचाय ही।— मैला०, पृ० २४३।

पचायन†—संज्ञा पु० [सं० पञ्चानन] सिंह। उ०—कोइक काल अभूत के पचायन भारे।—पृ० रा०, २४।३४५।

पचार†—संज्ञा पु० [हिं० पच्चर] बाँस या लकड़ी का वह छोटा डंडा जो जुए में बाईं और होता है और सीढ़ी के डंडे की तरह उसके ढाँचे में दोनो ओर ठुका रहता है।

पचारना†—क्रि० स० [सं० प्रचारण] किसी काम के करने के पहले उन लोगो के बीच उसकी घोषणा करना जिनके विरुद्ध वह किया जानेवाला हो। ललकारना। जैसे, हाँक पचारकर कोई काम करना। उ० —कोप कीन पंगुर कुवर हके बीर पचार।—प० रासो, पृ० १४२।

पचाव†—संज्ञा पु० [हिं० पचना+आव (प्रत्य०)] पचने की क्रिया या भाव।

पचास[1]—वि० [सं० पञ्चाशत्, प्रा० पञ्चासा] चालीस और दस। चालीस से दस अधिक। साठ से दस कम।

पचास[2]—संज्ञा पु० वह संख्या या अंक जो चालीस और दस के जोड से बने। चालीस और दस की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५०।

पचासवाँ—वि० [हिं० पचास+वाँ (प्रत्य०)] गणना में पचास के स्थान पर पड़नेवाला।

पचासा—संज्ञा पु० [हिं० पचास] १. एक ही प्रकार की पचास वस्तुओं का समूह। जैसे, पजनेस पचासा (पचास पद्यों का समूह)। २. जेलखाने का घंटा। घड़ियाल। उ०—बजे पर पचासा तीन ठे रोटियै के रहिगै आसा रामा।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३६०।

पचासी[1]—वि० [सं० पञ्चाशीति, प्रा० पंचासीइं, पच्चासी] अस्सी और पाँच। अस्सी से पाँच अधिक। पाँच ऊपर अस्सी।

पचासी[2]—संज्ञा पुं० वह संख्या या अंक जो अस्सी और पाँच के जोड़ से बने। अस्सी और पाँच के योग की फलस्वरूप संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८५।

पचासीवाँ—वि० [हिं० पचासी+वाँ (प्रत्य०)] गणना में पचासी के स्थान पर पड़नेवाला। जो क्रम में पचासी के स्थान पर हो।

पचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पकाने की क्रिया या भाव। पाचन। २. अग्नि। आग।

पचित—वि० [सं० पचित (= पचा हुआ, अच्छी तरह घुलामिला हुआ)] १. पच्ची किया हुआ। जड़ा हुआ। बैठाया हुआ (क्व०)। उ०—हरी लाल प्रबाल पिरोजा पंगति बहुमणि पचित पचावनो।— सूर (शब्द०)। २. भली भाँति पचा

हुआ। भली भाँति जिसका पाक हो गया हो। उ०—चर्वित उसका विज्ञान ज्ञान वह नहीं पचित। भौतिक मद से मानव आत्मा हो गई विजित।—ग्राम्या, पृ० ६५।

पचो—संज्ञा स्त्री० [सं० पचित] दे० 'पच्ची'।

पचीस¹—वि० [सं० पञ्चविंशति, पा० पंचवीसति, अपभ्रंश प्रा० पचीस] पाँच और बीस। बीस से पाँच अधिक। पाँच ऊपर बीस।

पचीस²—संज्ञा पुं० वह संख्या या अंक जो पाँच और बीस के जोड़ने से प्रकट हो। ५ और २० के योगफल का संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है २५।

पचीसवाँ—वि० [हिं० पचीस + वाँ (प्रत्य०)] गणना मे पचीस के स्थान पर पड़नेवाला। जो क्रम में पचीस के स्थान पर हो।

पचीसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पचीस] १ एक ही प्रकार की २५ वस्तुओं का समूह। जैसे, वैताल पचीसी (पचीस कहानियो का संग्रह)। २ किसी की आयु के पहले २५ वर्ष। जैसे,—अभी तो उन्होंने पचीसी भी नहीं पार की। ३ एक विशेष गणना जिसका सैकड़ा पचीस गाहियों अर्थात् १२५ का माना जाता है। आम, अमरूद आदि सस्ते फलों की खरीद बिक्री मे इसी का व्यवहार किया जाता है। ४. एक प्रकार का खेल जो चौसर की बिसात पर खेला जाता है।

विशेष—इसकी गोलियाँ भी उसी की सी होती हैं और उसी की तरह चली जाती हैं। अंतर केवल यह है कि इसमे पासे की जगह ७ कौड़ियाँ होती है जो खड़खड़ाकर फेंकी जाती हैं। चित और पट कौड़ियों की संख्या के अनुसार दाँव का निश्चय होता है।

पचूका—संज्ञा पुं० [हिं० पिच से अनु०] पिचकारी।

पचेल पुं†—संज्ञा स्त्री० [हिं पछेली] पछेली नामक हाथ का आभूषण जो पीछे की ओर पहना जाता है। उ०—भूषण देति जसोमति पहुँची पाँच पचेल। टीका टीर टिकावली, हीरा हार हमेल।—छीत०, पृ० २५।

पचेलिम¹—वि० [सं०] १. शीघ्र पकनेवाला। आगे आप पकनेवाला। स्वयं परिपक्व होनेवाला [को०]।

पचेलिम²—संज्ञा पुं० १. अग्नि। २. सूर्य [को०]।

पचेलुक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो भोजन बनाता हो। रसोइया [को०]।

पचोतर—वि० [सं० पञ्चोत्तर] (किसी संख्या से) पाँच अधिक। पाँच ऊपर। जैसे, पचोतर सो।

पचोतर सो—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चोत्तरशत] सौ और पाँच की संख्या या अंक। एक सौ पाँच। यह अंकों मे इस प्रकार लिखा जाता है—१०५।

पचोतरा—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चोत्तर] कन्या पक्ष के पुरोहित का एक नेग जिसमें उसे दायज मे, विशेषकर तिलक के समय वर पक्ष को मिलनेवाले रुपयों आदि मे से सैकड़े पीछे पाँच मिलता है।

पचौआ—संज्ञा पुं० [देश०] किसी कपड़े पर छींट छप चुकने के पीछे ८ या १२ दिन तक उसे धूप मे खुला रखना।

विशेष—ऐसा करने से छापते समय सारे स्थान पर जो धब्बे आ जाते हैं वे छूट जाते है।

पचौनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पाचन] १. पाचन। पाचक। २ आमाशय जहाँ खाए अन्न का पाचन होता है।

पचौर—संज्ञा पुं० [हिं० पंच या पचौली] गाँव का मुखिया। सरदार। सरगना। उ०—पहुँचे जाइ पचौर प्रवीन। छत्रसाल सो मुजरा कीन।—लाल (शब्द०)।

पचौली¹—संज्ञा पुं० [हिं० पाँच+कुली] गाँव का मुखिया। सरदार। पच।

पचौली²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो मध्यभारत तथा बंबई में अधिकता से होता हैं। इसकी पत्तियों से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है जो विलायती सुगंधियो (एसेंस आदि), मे पड़ता है।

पचौवर—वि० [हिं० पाँच + सं० आवर्त] जिसकी पाँच तहें की गई हो। पाँच परत का। पाँच तह या परत किया हुआ। पचहरा। उ०—चौबर पचौवर के चादर निचोरे है।—(शब्द०)।

पच्चड़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पच्चर'।

पच्चर—संज्ञा स्त्री० [सं० पचित या हिं० पच्ची] काठ का पैबंद। लकड़ी या बाँस की वह कट्टी या गुल्ली जिसे चारपाई, चौखट आदि लकड़ी की बनी चीजो में साल या जोड़ को कसने के लिये उसमे छूटे हुए दरार या रंध्र मे ठोंकते हैं।

विशेष—छेद या खाली जगह भरने के लिये इसके एक सिरे को दूसरे से कुछ पतला कर लेते हैं। परंतु जब इससे दो लकड़ियों को जोड़ने का काम लेना होता है तब इसे उतार चढ़ाव नहीं बनाते, एक फट्टी या गुल्ली बना लेते हैं।

२ लकड़ी की बड़ी मेख या खूँटा (लश०)।

क्रि० प्र०—ठोंकना।—देना।—करना।

मुहा०—**पच्चर अड़ाना** = बाधक होना। बाधा खड़ी करना। रुकावट डालना। अड़गा डालना। जैसे,—तुम नाहक इस काम में क्यों पच्चर अड़ाते हो। **पच्चर ठोंकना** = किसी को कष्ट पहुँचाने या पीड़ित करने के लिये कोई उपाय करना। ऐसा काम करना जिससे किसी को बहुत कष्ट पहुँचे या वह खूब तंग और परेशान हो। खूँटा ठोकना। जैसे,—घबड़ाते क्यों हो, ऐसी पच्चर ठोकूँगा कि सारी आई बाई पच जायगी। **पच्चर मारना** = होते हुए काम को रोकना। बनती हुई बात को बिगाड़ देना। भाँजी मारना। जैसे,—अगर तुम पच्चर न डालते तो यह संबंध अवश्य बैठ जाता।

पच्चरी—वि० [सं० पचित] धारण किए हुए। उ०—इक सूही दूजी सोहणी, तीजी सो भावंती नारि। सुहने रूप पचवरी, नानक बिनु नावै कुड़चार।—संतवाणी०, पृ० ६८।

पच्ची—संज्ञा स्त्री० [सं० पचित] १. ऐसा जड़ाव या जमावट जिसमे जड़ी या जमाई जानेवाली वस्तु उस वस्तु के बिलकुल समतल

हो जाय जिसमे वह जड़ी या जमाई जाय। किसी वस्तु के फैले हुए तल पर दूसरी वस्तु के टुकड़े इस प्रकार खोदकर बैठाना कि वे इस वस्तु के तल (सतह) के मेल में हो जायँ और देखने या छूने में उभरे या गड़े हुए न मालूम हो तथा दरज या सीम न दिखाई पड़ने के कारण आधार वस्तु के ही अंग जान पड़ें। जैसे, संगमर्मर पर रंगबिरंग के पत्थर के टुकड़ों को जड़ना। २. किसी धातुनिर्मित पदार्थ पर किसी अन्य धातु के पत्तर का जड़ाव। जैसे, किसी फर्शी या जस्ते की किसी चीज पर चाँदी के पत्तरों का जड़ाव।

मुहा०—(किसी में) **पच्ची हो जाना** = बिलकुल मिल जाना या वही हो जाना। लीन हो जाना। हल हो जाना। जैसे,—वह कबूतर जब जब उड़ता है तब तब आसमान में पच्ची हो जाता है।

पच्चीकार—संज्ञा पुं० [हिं० **पच्ची** + फा० **कार**] पच्ची का काम करनेवाला व्यक्ति।

पच्चीकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पच्ची**+फा० **कारी** (= **करना**)] पच्ची करने की क्रिया या भाव। जड़ने जोड़ने की क्रिया या भाव।

पच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **पक्ष**, प्रा० **पच्छ**] दे० 'पक्ष'। उ०—**मनु** जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ४५५।

पच्छकट—संज्ञा पुं० [देश०] आल की मफोली जड़ जो रँगाई के काम में आती है।

पच्छघात—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पक्षाघात'।

पच्छताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **पक्षता**] दे० 'पक्षपात'।

पच्छति(पु) -अव्य० [सं० **पश्चात्**] पश्चात्, बाद में। उ०—उर मंदोदरि सुंदरिय, तिन पच्छति इच्छिनि सुमरयं। इनि दष्षिया कग्गर वच्चिनिय, तहां जैतकुमार उठधौ सुनिय।—पृ० रा०, १२।३७।

पच्छधर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **पक्ष**+**धर**] पक्षधर। पक्षी। उ०—तनु विचित्र कायर वचन, अहि अहार, मन घोर। तुलसी हरि भए पच्छधर ताते कह सब मोर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९४।

पच्छपात†-संज्ञा पुं० [सं० **पक्षपात**] दे० 'पक्षपात'। उ०—तुलसी मत सत यहि मत भाखा। या में पच्छपात नहिं राखा।—घट०, पृ० २२६।

पच्छपाय(पु)—वि० [सं० **पश्चात्**+**पद**] पीछे हटा हुआ। पीछे पैर देनेवाला। उ०—भई फौज चालुक्क की पच्छपाय। तबै चालुका राइ वीनी सहायं।—पृ० रा०, १।४५३।

पच्छम—संज्ञा पुं० [सं० **पश्चिम**] दे० 'पश्चिम'।

पच्छाघात†-संज्ञा पुं० [सं० **पक्षाघात**] दे० 'पक्षाघात'।

पच्छि[1]—संज्ञा पुं० [सं० **पक्षी** प्रा० **पच्छी**] दे० 'पक्षी'। उ०—करैं गान तान पसू पच्छि मोहैं।—ह० रासो, पृ० ३७।

पच्छि[2]—संज्ञा पुं० [सं० **पक्ष**] दे० 'पक्ष'। उ०—तप सिद्धि मास मरु बहुत पच्छि। ऋतु सिसिर द्वादसी तिथि सुरच्छि।—ह० रासो, पृ० २९।

पच्छिउँ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **पश्चिम**] दे० 'पश्चिम'। उ०—पच्छिउँ कर बर पुरुष क बारी।—जायसी ग्रं०, पृ० ११६।

पच्छिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **पक्षिणी**] दे० 'पक्षिणी'।

पच्छिम[1]—संज्ञा पुं० [सं० **पश्चिम**] दे० 'पश्चिम'। उ०—पुब्बे सेना सज्जिअइ, पच्छिम हुअऊँ पयान।—कीर्ति०, पृ० ६२।

पच्छिम[2]—वि० [सं० **पश्चिम**] पिछला। पीछे का (डिं०)।

पच्छियान(पु)—वि० [सं० **पश्चिम**] दे० 'पिछला'। उ०—रही जाम एक निसा पच्छियान। बजे नद्द नीसान बीसान जान।—पृ० रा०, १।६३१।

पच्छिराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **पक्षिराज**] गरुड़। उ०—पक्षिराज जच्छिराज प्रेतराज जातुधान।—केशव (शब्द०)।

पच्छिवँ—संज्ञा पुं० [सं० **पश्चिम**] दे० 'पश्चिम'।

पच्छी—संज्ञा पुं० [सं० **पक्षी**] दे० 'पक्षी'।

पच्छैं—अव्य० [सं० **पश्च**] दे० पीछे'। उ०—बीर देव सम बीर लरि भग्गि सेन कमधज्ज। ता पच्छैं सोमेस पर उड्डि मार बजरज्ज।—पृ० रा०, १।६५५।

पछ[1]—वि० [सं० **पश्च**, हिं० **पच्छ**, **पछ**] पीछे।

विशेष—यौगिक पदों में ही यह रूप प्राप्त होता है। जैसे,—अग-पछ, पछलगा, पछलत्ता।

पछ(पु)†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० **पक्ष**] पक्ष। तरफदारी। उ०—दीनानाथ दयाल भक्त की पछ करी।—धरम०, पृ० २३।

पछ[3]—संज्ञा पुं० [सं० **पक्ष**] पख। पर। उ०—एक भरोसा पाय दिया सिर आइ लराई। पछी को पछ गया रहा इक नाम सहाई।—पलटू०, भा० १, पृ० ७०।

पछइ(पु)†—अव्य० [हिं०] दे० 'पीछे'। उ०—प्रीतम बीछुड़िया पछई, मुई न कहिजइ काइ।—ढोला०, पृ० ४०३।

पछटो(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार। (डिं०)।

पछड़ना—क्रि० अ० [हिं० **पछाड़**] १. लड़ने मे पटका जाना। पछाड़ा जाना। २. दे० 'पिछड़ना'।

पछताना—क्रि० अ० [हिं० **पछताव**] किसी किए हुए अनुचित कार्य के संबंध मे पीछे से दुखी होना। किसी की हुई बात पर पीछे से खिन्न होना या खेद प्रकट करना। पश्चाताप करना। पछतावा करना। उ०—दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।—अपरा, पृ० ६६।

पछतानि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० **पश्चात्ताप**] पछताने का भाव। पछतावा। पश्चात्ताप।

पछताव†—संज्ञा पुं० [सं० **पश्चात्ताप**] दे० 'पछतावा'।

पछतावना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पछताना'।

पछतावा—संज्ञा पुं० [सं० **पश्चात्ताप**, प्रा० **पच्छाताव**] वह संताप या दुःख जो किसी की, की हुई बात पर पीछे से हो। अपने किए को बुरा समझने से होनेवाला रंज। पश्चात्ताप। अनुताप।

उ०—गैल जौवन पुनु पलटि न आयए केवल रह पछतावे ।—विद्यापति, पृ०, १६५ ।

पछना¹—संज्ञा पुं० [हिं० पाछना] १ वह अस्त्र आदि जिससे कोई चीज पाछी जाय । पाछने का औजार । २ वह उस्तरा जो सिंगी लगाने से पहले शरीर में घाव करने के काम आता है । ३. शरीर में से रक्त निकालने की क्रिया । फसद ।

पछना²—क्रि० अ० पाछा जाना । पाछने की क्रिया होना ।

पछमन(पु)—क्रि० वि० [हिं०] पीछे । अगमन या अगुमन का उलटा । दे० 'पीछे' ।

पछरना†—क्रि० अ० [हिं०] पिछड़ जाना । पीछे पड़ना । २ पश्चात्पद होना । वापस होना । लौटना ।

पछरा†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पछाड़' । उ०—'हरीचंद' पिय बिनु अति व्याकुल मुरि मुरि पछरा खात ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४०० ।

पछलगा—संज्ञा पुं० [हिं० पछ+लगना] दे० 'पिछलगा' । उ०—हौं पंडितन केर पछलगा । किछु कहि चला तबल देइ डगा ।—जायसी (शब्द०) ।

पछलागू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पिछलागू' । उ०—अगुआ केर होहु पछलागू ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३६ ।

पछवत—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीछे+वत] वह चीज जो फसिल के अंत में बोई जाय ।

पछवाँ¹—वि० [सं० पश्चिम] पश्चिम की । पश्चिम दिशा की । पश्चिमी । पश्चिम दिशा संबंधी ।

पछवाँ²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाछा] अँगिया का वह हिस्सा जो पीठ की तरफ मोढ़े के पीछे रहता है ।

पछवाँ³—वि० दे० 'पछुआँ' ।

पछाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पहचान' । उ०—केतक दिवस कूँ यूँ हुआ यो जवाँ । सो रई बाप हँगाम उसका पछाँ ।—दक्खिनी०, पृ० ७८ ।

पछाँई†—वि० [हिं० पछाँह] पश्चिमी । पश्चिम का । पश्चिम मे पैदा होने या रहनेवाला । उ०—वह पछाँई गाय लेगा ।—गोदान, पृ० ३ ।

पछाँह—संज्ञा पुं० [सं० पश्चात्, प्रा० पच्छा] पश्चिम मे पड़नेवाला प्रदेश । पश्चिम की ओर का देश ।

पछाँहिया—वि० [हिं० पछाँह+इया (प्रत्य०)] पछाँह का । पश्चिम प्रदेश का ।

पछाँहो—वि० [हिं०] दे० 'पछाँई' ।

पछाड़¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाछा] बहुत अधिक शोक आदि के कारण खड़े खड़े बेसुध होकर गिर पड़ना । अचेत होकर गिरना । मूर्छित होकर गिरना ।

मुहा०—पछाड़ खाना = खड़े खड़े अचानक बेसुध होकर गिर पड़ना । उ०—परति पछाड़ खाइ छिन ही छिन अति आतुर ह्वै दीन । मानहु सूर काढ़ि है लीनी वारि मध्य ते मीन ।—सूर (शब्द०) ।

पछाड़²—संज्ञा पुं० [हिं० पछाड़ना] कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—जब शत्रु सामने रहता है तब एक हाथ उसकी जाँघों के नीचे से निकालकर पीछे की ओर से उसका लँगोट पकड़ते हैं और दूसरा हाथ उसकी पीठ पर से घुमाकर उसकी बगल मे अड़ाते हैं और इस प्रकार उसे उठाकर चित फेंक देते हैं । इसमे अधिक बल की आवश्यकता होती है ।

पछाड़ना—क्रि० स० [हिं० पछाड़] १ कुश्ती या लड़ाई मे पटकना । गिराना । २ वाद विवाद मे हराना । किसी क्रिया या काम में मात करना । पराजित करना । उ०—भारतीय मुसलमानो के बीच, विशेषत सूफियो की परंपरा मे, ऐसी अनेक कहानियाँ चली, जिनमे किसी पीर ने किसी सिद्ध या योगी को करामात में पछाड़ दिया ।—इतिहास, पृ० १५ ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

पछाड़ना²—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन, प्रा० पक्खालन, पच्छाडन] धोने के लिये कपड़े को जोर से पटकना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

पछाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिछाड़ी' ।

पछान†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पहचान' । उ०—जो आशिक का जिसकूँ अछेगा निशान । तो माशूक कूँ वाई चलेगा पछान ।—दक्खिनी०, पृ० १५२ ।

पछानना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पहचानना' । उ०—ज्यों ज्यों संपे त्यों विपत्ति पछाने, बेगम महिल लड़ावै ।—प्राण०, पृ० ६६ ।

पछाया—संज्ञा पुं० [हिं० पाछा] किसी वस्तु के पीछे का भाग । पिछाड़ी । जैसे, मँगिया का पछाया ।

पछार†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पछाड़' ।

पछार²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पछारना] पछारने की क्रिया या भाव ।

पछारना¹—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन, प्रा० पच्छाडन] कपड़े को पानी से साफ करना । धोना ।

पछारना(पु)²—क्रि० स० [हिं० पछाड़] दे० 'पछाड़ना' । उ०—पुनि रिसान गहि चरन फिरायो । महि पछारि निज बल देखरायो ।—मानस, ६।७३ ।

पछालना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन] पखारना । धोना । उ०—जावक रचि क अँगुरियन मृदुल सुठारी हो । प्रभु कर चरन पछालत अति सुकुमारी हो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५ ।

पछावर, पछावरि—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेय । (मट्ठा, कढ़ी, काँजी या पना और दूध आदि) जो रसेदार होता है । पछियावर । उ०—(क) जेइ अघाने जठर पर जल पिय फेरत पानि । तुच्छ छुधा पाछे रही तब लई पछावरि बानि । पृ० रा०, ६३।१०१ । (ख) पुनि भारि सो हुँ विधि स्वाद बने । विधि दोइ पछावरि सात बने ।—केशव (शब्द०) ।

पछाहीं—वि० [हिं० पछाँह] पछाँह का । पश्चिम प्रदेश का । जैसे, पछाहीं पान, पछाहीं आदमी ।

पछिआना†—क्रि० स० [हिं० पाछे+आना] १. पीछे हो लेना ।

पीछे पीछे चलना। पीछा करना। उ०—लीनो व्यासदेव पछिग्राई। बारहि बार पुकारत जाई।—रघुराज (शब्द०)। २. किसी को पीछे छोड़ देना। अपने से पीछे कर देना।

पछिउँ†—संज्ञा पुं० [सं० पश्चिम, प्रा० पच्छिउँ] दे० 'पश्चिम'।

पछिता(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पश्चात्ताप] दे० 'पछतावा'। उ०—केहि कारन पछिता करो भयो रैन परभात।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २७६।

पछिताना†—क्रि० अ० [हिं० पछताना] दे० 'पछताना'। उ०—ध्रुव धनु देखि मदन पछिता रे। हर के समय समर किन भायो।—नंद० ग्रं०, पृ० १२२।

पछितानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पछिताना] पछताने का भाव। पछतानि। पछतावा। उ०—प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई।—मानस, २।१०।

पछिताव—संज्ञा पुं० [सं० पश्चात्ताप] दे० 'पछताना'। उ०—मुनि सीतापति सील सुभाव।...सिला साप संताप बिगत भइ परसत पावन पाव। दई सुगति सो न हेरि हरख हिय चरन छुए कोप छिताव।—तुलसी (शब्द०)।

पछितावना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० पछिताव] दे० 'पछताना'। उ०—जानति हौं पछितावत हो मन, लखि मो अँगन ग्रोरे ही। रूप रसिक बिधना के सारे सबन होत बरजारे ही।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २६४।

पछिनावा†—संज्ञा पुं० [देश०] पशुओं का एक रोग।

पछिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० पश्चिम] दे० 'पछुवाँ'। उ०—चल रहे ग्राम कुंजो मे पछिया के झकोर, दिल्ली लेकिन ले रही लहर पुरवाई मे।—दिल्ली, पृ० २२।

पछियाई† —संज्ञा स्त्री० [हिं० पछिया] दे० 'पछुँवा'। उ०—रत्नों के फूल जड़े, लता चढ़ी जड़ पकड़े। लहरी पछियाई लहरों की खाड़ी।—आराधना, पृ० ७५।

पछियाउरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पछावरि'। एक प्रकार का पेय। सिखरन या शरबत। उ०—पुनि जाउरि पछियाउरि आई। घिरित खाँड़ कै बनी मिठाई।—जायसी ग्रं०, पृ० १२४।

पछियाना—क्रि० स० [हिं० पीछे] दे० 'पछिआना'।

पछियाव—संज्ञा पुं० [हिं० पच्छिउँ+वाउ] पच्छिम की हवा।

पछियावर—संज्ञा स्त्री० [देश० या हिं० पीछे] १. दे० पछियाउरि'। २. छाछ से बना हुआ एक प्रकार का पेय पदार्थ जो भोजनादि मे परोसा जाता है। इससे भोजन शीघ्र पचता है। दे० 'पछावरि'।

पछिल(पु)—क्रि० वि० [हिं० पीछे] दे० 'पीछे'। उ०—बीरहिं अत्र अपार बंदेले बीर हैं। पछिल न धारहिं पाय महा रनधीर हैं।—प० रासो०, पृ० ७।

पछिलगा†—संज्ञा पुं० [हिं० पीछे+लगना] दे० 'पिछलगा'।

पछिलना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पिछड़ना'।

पछिला—वि० [हिं० पीछे] [वि० स्त्री० पछिली] दे० 'पिछला'। उ०—(क) भूलिगा वह शब्द पछिला मति मदरस पागी।—जग० बानी, पृ० ३६। (ख) वेदहु हरि के रूप स्वाँस मुख ते जो निसरे। कर्म क्रिया आसक्ति सबै पछिले सुधि बिसरे—नंद० ग्रं०, पृ० १७७।

पछिवँ†—संज्ञा स्त्री० [सं० पश्चिम] दे० 'पश्चिम'। उ०—जनु ससि उदौ पुरुब दिसि कीन्हा। औ रवि उठी पछिवँ दिसि लीन्हा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५३।

पछिवाँ[1] —वि० [हिं० पच्छिम] पश्चिम की (हवा)।

पछिवाँ[2] —संज्ञा स्त्री० पश्चिम की हवा।

पछीत[1] —संज्ञा स्त्री० [सं० पश्चात्, प्रा० पच्छा] १. घर का पिछवाड़ा। मकान के पीछे का भाग। उ०—छानि बरेडि औ पाट पछीति मयारि कहा किहि काम के कोरे।—अकबरी०, पृ० ३५४।

पछीत[2] —क्रि० वि० पीछे। पीछे की ओर। उ०—आइ अगीत, पछीत गई, नित टेरत मोहिं सनेह के कूकन।—ठाकुर०, पृ० १।

पछुवाँ[1] —वि० [हिं० पच्छिम] पच्छिम की (हवा)।

पछुवाँ[2] —संज्ञा स्त्री० पच्छिम की हवा।

पछुवा—संज्ञा पुं० [हिं० पाछा] कड़े के आकार का पैर मे पहनने का एक गहना।

पछेड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० पाछ] पीछा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

पछेलना†—संज्ञा पुं० [हिं० पाछ+एलना (प्रत्य०)] पीछे डालना। पीछे छोड़ना। आगे बढ़ जाना।

पछेला† —संज्ञा पुं० [हिं० पाछ+एला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० पछेली] १ हाथ मे एक साथ पहने जानेवाले बहुत से चिपटे कड़ों मे से पिछला जो अगलो से बड़ा होता है। पीछे की मठिया। २. हाथ मे पहनने का स्त्रियों का एक प्रकार का कड़ा जिसमे उभरे हुए दानो को पक्ति होती है।

पछेला[2] —वि० पीछे का। पिछला।

पछेलिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पछेल] दे० 'पछेली'।

पछेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० पछेल] दे० 'पछेला'। उ०—जाके चोप की चुनरी, ज्ञान पछेली चमक रही।—कबीर श०, पृ० ११।

पछेव (पु)—अव्य० [हिं० पीछा, प्रा० पच्छए] दे० 'पीछे'। उ०—फिरि व्यास कहै सुनि अनग राइ। भवतव्य बात मेटी न जाय। रघुनाथ हाथ त्रैलोक देव। ते कनक मृग लागे पछेव।—पृ० रा०, ३।३४।

पछै(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'पीछे'। उ०—आदि अगम अबिकार एक ईस्वर अविणासी। पछै प्रकृति ततपंच विविध सुर ईलजवासी।—रा० रू०, पृ० ७।

पछोड़ना—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन, प्रा० पच्छाडन] १. सूप आदि में रखकर (अन्न आदि के दानों को) साफ करना। फटकना।

२. झटकारना। उ०—हाथ पछोड़ि गुरु बिन ओह रोता। —प्राण, पृ० ४७।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—फटकना पछोड़ना = उलट पलटकर परीक्षा करना। खूब देखना भालना। उ०—सूर जहाँ लौं श्यामगात हैं देखे फटकि पछोरी।—सूर (शब्द०)।

पछोरना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पछोड़ना'। उ०—कहो कौन पै कढ़ै कनूका भुस की रास पछोरे।—सूर (शब्द०)।

पछौरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पिछौरा'।

पछ्छ ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पीछे'। उ०—सरकि सेन सबक खरकि, पछ्छ जंगल भए ठड्ढ।—पृ० रा०, २४।११८।

पछ्छिलाⓟ—वि० [हिं०] दे० 'पिछला'। उ०—पछ्छिलो वलन सुरतान दिषि, सिंघ लोक अविलर कपो।—पृ० रा०, २४।२०५।

पछ्धावर†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का सिखरन या शरबत। उ०—भूतल के सब भूपन को मद भोजन तो बहु भाँति कियोई। मोद सो तारकनंद की मेद पछ्धावरि पान सिरायो हियोई।—केशव (शब्द०)।

पजमुर्दगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पजमुर्दगी] उदासीनता। खिन्नता [को०]।

पजमुर्दा—वि० [फ़ा० पजमुर्दा] शिथिल। उदास। मुरझाया हुआ। उ०—कहाँ हथेली पर सिर रक्खे हक पर लड़नेवाले योद्धा। कहाँ हथेली से सिर ढाँपे पजमुर्दा माटी के धोधा।—बंगाल, पृ० ५४।

पजर†—संज्ञा पुं० [सं० प्रक्षरण] १ चूने या टपकने की क्रिया। २ झरना।

पजरनⓟ—क्रि० अ० [सं० प्रज्वलन] जलना। दहकना। सुलगना। उ०—(क) पजरि पजरि तनु अधिक दहत है सुनत तिहारे बैन। —सूर (शब्द०)। (ख) याके उर औरै कछू लगी बिरह की लाय। पजरै नीर गुलाब के पिय की बात सिराय। —बिहारी (शब्द०)।

पजहर—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का पत्थर जो पीलापन या हरापन लिए सफेद होता है और जिसपर नक्काशी होती है।

पजामा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पायजामा'।

पजारनाⓟ—क्रि० स० [हिं० पजरना] जलाना। प्रज्वलित करना। दहकाना। सुलगाना।

पजावना—क्रि० स० [हिं० पजारना] हटाना। उजाड़ना। उ०—(क) गो अजमेर मियाँ तज गुम्मर। आयो दुंरग पजावे ऊपर।—रा० रू०, पृ० ३२३। (ख) जोधाणे उत्तर दिस जेती। अहनिस राम पजावै एती।—रा० रू०, पृ० २१६।

पजावा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पज़ावा] आवाँ। ईंट पकाने का भट्ठा।

पजूसण—संज्ञा पुं० [देश०] जैन मत का एक व्रत।

पजोखा—संज्ञा पुं० [?] किसी के मरने पर उसके संबंधियों से शोक-प्रकाश। मातमपुरसी।

पजोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पाजी+ओड़ा (प्रत्य०)] पाजी। दुष्ट।

पजौड़ापन—संज्ञा पुं० [हिं० पजोड़ा + पन (प्रत्य०)] पाजीपन। कमीनापन। उ०—जी हाँ खुदावद, क्या मानी, जो बात है वही पजौड़ेपन की।—सैर कु०, पृ० २३।

पज्ज—संज्ञा पुं० [सं० पद्य, या पज्ज] शूद्र।

पज्जर—संज्ञा पुं० [सं० पञ्जर] दे० 'पंजर'।

पज्झटिका—संज्ञा पुं० [सं० पज्झटिका] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ इस नियम से होती हैं कि ८वीं और छठी मात्रा पर एक एक गुरु होता है। इसमें जगण का निषेध है।

पझर—संज्ञा पुं० [सं० प्रसर (= फैलाव या वेग)] प्रसार। फैलाव। उ०—दहम एक चश्मा है लब खुश्क तर, गिर्द उसके पानी की भीगी पझर।—दक्खिनी०, पृ० ३०२।

पटंतर—वि० [हिं० पटतरना] उपमा। समानता। बराबरी। सादृश्य। उ०—रामनाम के पटंतरे देवे को कुछ नाहिं। क्या ले गुरु संतोषिए हौंस रहो मन माहिं।—कबीर ग्रं०, पृ० १।

पटंबरⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट (= पाट) + अम्बर] रेशमी कपड़ा। कौषेय। उ०—जहँ देखौ जहँ पाट पटंबर, ओढ़न अंबर चीर।—धरम०, पृ० २७।

पटंभरⓟ‡—संज्ञा पुं० [हिं० पटतर] सादृश्य। समानता। तुलना। उ०—सो बिरला संसार पटंभर उनका ऐसा। मिसरी जैहैर समान जैहैर है मिसरी जैसा।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३०।

पट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्त्र। कपड़ा। २. पर्दा। चिक। कोई आड़ करनेवाली वस्तु।

क्रि० प्र०—उठाना।—खोलना।—हटाना।

३ लकड़ी धातु आदि का वह चिकना चिपटा टुकड़ा या पट्टी जिसपर कोई चित्र या लेख खुदा हुआ हो। जैसे, ताम्रपट। ४. कागज का वह टुकड़ा जिसपर चित्र खींचा या उतारा जाय। चित्रपट। उ०—लौटी ग्राम वधू पनघट से, लगा चितेरा अपने पट से।—आराधना, पृ० ३७। ५. वह चित्र जो जगन्नाथ, बदरिकाश्रम आदि मंदिरों से दर्शनप्राप्त यात्रियों को मिलता है। ६ छप्पर। छान। ७. सरकंडे आदि का बना हुआ वह छप्पर जो नाव या बहली के ऊपर डाल दिया जाता है। ८. चिरौंजी का पेड़। पियार। ९. कपास। १०. गंधतृण। शरवान। ११. रेशम। पट्ट।

यौ०—पटबस्तर = पट्टवस्त्र। पट्टांशुक। रेशमी वस्त्र। उ०—नहाते त्रिकाल रोज पंडित अचारी बड़े, सदा पटबस्तर सूत अंग ना लगाई है।—पलटू०, भा० २, पृ० १०९।

पट²—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट] १. साधारण दरवाजों के किवाड़।

क्रि० प्र०—उघड़ना।—खुलना।—खोलना।—देना।—बंद करना।—भिड़ाना।—भेड़ना।

मुहा०—पट उघड़ना = मंदिर का दरवाजा इसलिये खुलना कि लोग मूर्ति के दर्शन पा सकें। दर्शन का समय प्रारंभ होना। पट खुलना = दे० 'पट उघड़ना'। पट बंद होना = मंदिर का दरवाजा बंद हो जाना। दर्शन का समय बीत जाता।

२ पालकी के दरवाजे के किवाड़ जो सरकाने से खुलते और बंद होते हैं।

यौ०—पटदार = वह पालकी जिसमें पट हो।

क्रि० प्र०—खुलना।—खोलना।—देना।—बंद करना।—सरकाना।

मुहा०—पट मारना = किवाड़ बंद कर देना।

३. सिंहासन। राज्यसिंहासन। उ०—इन नछिन्न चहुआन को पट अभिषेक समान।—पृ० रा०, ७।१७०।

यौ०—पटरानी।

४. किसी वस्तु का तलप्रदेश जो चिपटा और चौरस हो। चिपटी और चौरस तलभूमि। ५ रंगमंच का पर्दा। पर्दा।

यौ०—पटपरिवर्तन।

पट[3]—संज्ञा पुं० [देश०] १ टाँग।

मुहा०—पट खुलना = दे० 'पट लेना'। पट लेना = पट नामक पेंच करने के लिये जोड़ की टाँगें अपनी ओर खींचना।

२. कुश्ती का एक पेंच जिसमें पहलवान अपने दोनों हाथ जोड़ की आँखों की तरफ इसलिये बढ़ाता है कि वह समझे कि मेरी आँखों पर थप्पड़ मारा जायगा और फिर फुरती से झुककर उसके दोनों पैर अपने सिर की ओर खींचकर उसे उठा लेता और गिराकर चित्त कर देता है। यह पेंच और भी कई प्रकार से किया जाता है।

पट[4]—वि० ऐसी स्थिति जिसमें पेट भूमि की ओर हो और पीठ आकाश की ओर। चित का उलटा। औंधा।

मुहा०—पट पड़ना = (१) औंधा पड़ना। (२) कुश्ती में नीचे के पहलवान का पेट के बल पड़कर मिट्टी थामना। (३) मंद पड़ना। धीमा पड़ना। न चलना। जैसे—रोजगार पट पड़ना, पासा पट पड़ना, आदि। तलवार पट पड़ना = तलवार का औंधा गिरना। उस ओर से न पटना जिधर धार हो।

पट[5]—क्रि० वि० चट का अनुकरण। तुरत। फौरन। जैसे, चट मँगनी पट ब्याह।

पट[6]—[अनु०] किसी हलकी छोटी वस्तु के गिरने से होनेवाली आवाज। टप। जैसे, पट पट बूँदे पड़ने लगीं।

विशेष—खटपट, धमधम आदि अन्य अनुकरण शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ क्रियाविशेषण-वत् ही होता है। संज्ञा की भाँति प्रयोग न होने के कारण इसका कोई लिंग नहीं माना जा सकता।

पटइनी, पटइनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटवा] पटवा जाति की स्त्री। पटहार जाति की स्त्री। उ०—पटइनि पहिरि सुरँग तन चोला। औ बरइनि मुख खात तमोला।—जायसी ग्रं० पृ० ८१।

पटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूती कपड़ा। २. शिविर। तंबू। खेमा ३. आधा गाँव (को०)।

पटकन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटकना] १. पटकने की क्रिया या भाव। २. चपत। तमाचा।

क्रि० प्र०—देना।

३ छोटा डंडा। छड़ी।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।

पटकना[1]—क्रि० स० [सं० पतन+करण या अनु०] १. किसी वस्तु को उठाकर या हाथ में लेकर भूमि पर जोर से डालना या गिराना। जोर के साथ ऊँचाई से भूमि की ओर झोंक देना। किसी चीज को झोंके के साथ नीचे की ओर गिराना। जैसे, हाथ का लोटा पटक देना, मेज पर हाथ पटकना। २ किसी खड़े या बैठे व्यक्ति को उठाकर जोर से नीचे गिराना। दे मारना। उ०—पुनि नल नीलहिं अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट मारेसि—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

विशेष—'पटकना' में ऊपर से नीचे की ओर झोंका देने या जोर करने का भाव प्रधान है। जहाँ बगल से झोंका देकर किसी खड़ी या ऊपर रखी चीज को गिरावें वहाँ ढकेलना या गिराना कहेंगे।

मुहा०—(किसी पर, किसी के ऊपर या किसी के सिर) पटकना = कोई ऐसा काम किसी के सुपुर्द करना जिसे करने की उसकी इच्छा न हो। किसी के बार बार इनकार करने पर भी कोई काम उसके गले मढ़ देना। जैसे,—भाई तुम यह काम मेरे ही सिर क्यों पटकते हो किसी और को क्यों नहीं ढूँढ़ लेते।

२. कुश्ती में प्रतिद्वंद्वी को पछाड़ना, गिरा देना या दे मारना। जैसे,—मैं उन्हें तीन बार पटक चुका।

पटकना[2]—क्रि० अ० १. सूजन बैठना या पचकना। वरम या आमास का कम होना। २. गेहूँ, चने, धान आदि का सील या जल से भीगकर फिर सूखकर सिकुड़ना।

विशेष—ऐसी स्थिति को प्राप्त होने के पश्चात् अन्न में बीजत्व नहीं रह जाता। वह केवल खाने के काम में आ सकता है, बोने के नहीं।

३ पट शब्द के साथ किसी चीज का दरक या फट जाना। जैसे,—हाँड़ी पटक गई।

पटकनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटकना] पटकने की क्रिया या भाव। उ०—तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कछतारन की। लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की।—नंद० ग्रं०, पृ० २२।

पटकनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटकना] १. पटकने की क्रिया या भाव। पटकान।

क्रि० प्र०—देना।

२. पटके जाने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—खाना।

३. भूमि पर गिरकर लोटने या पछाड़े खाने की क्रिया या अवस्था। लोटनिया। पछाड़।

क्रि० प्र०—खाना।

पटकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटकना] १. पटकने की क्रिया या भाव। जैसे,—पहली ही पटकनी मे बचा को छठी का दूध याद आ गया।

क्रि० प्र०—देना।

२ पटके जाने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—खाना।

३. भूमि पर गिरकर लोटने या पछाड़ें खाने की क्रिया या अवस्था।

क्रि० प्र०—खाना।

पटकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल।

पटकर्म—संज्ञा पुं० [सं० पटकर्मन्] कपड़ा बुनने का काम। जुलाहे का धंधा [को०]।

पटका—संज्ञा पुं० [सं० पट्टक] १. वह दुपट्टा या रूमाल जिससे कमर बाँधी जाय। कमरबंद। कमरपेच। उ०—खैंचि कमर सौं बाँध्या पटका। अब पति हुआ बैठकर पटका।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३५१।

क्रि० प्र०—बाँधना।

मुहा०—पटका बाँधना = कमर कसना। किसी काम के लिये तैयार होना। पटका पकड़ना = किसी को कार्यविशेष के लिये उत्तरदायी या अपराधी मानकर रोकना। कार्यविशेष से अपना असबंध बनाकर जान बचाने का प्रयत्न करनेवाले को रोक रखना और उस काम का जिम्मेदार ठहराना। दामन पकड़ना।

२ दीवार में वह बंद या पट्टी जो सुंदरता के लिये जोड़ी जाती है।

पटकान—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटकना] १ पटकने की क्रिया या भाव। जैसे,- मेरी एक ही पटकान में उसके होश ठिकाने हो गए।

क्रि० प्र०—देना।

२ पटके जाने की क्रिया या अवस्था।

क्रि० प्र०—खाना।

३. भूमि पर गिरकर लोटने या पछाड़ खाने की क्रिया या अवस्था।

क्रि० प्र०—खाना।

पटकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपड़ा बुननेवाला। जुलाहा। २ चित्र-पट बनानेवाला। चित्रकार।

पटकुटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पट + कुटी] रावटी। छोलदारी। खेमा (डिं०)।

पटकूल—संज्ञा पु० [सं०] रेशमी वस्त्र। उ०—सब सहर नारि शृंगार कीन। अप अप्प झुंड मिलि चलि नवीन। थपि कनक थार भरि द्रव्य दूब। पटकूल जरफ जरकसी ऊब।—पृ० रा०, १,७१३।

पटखनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटकन] दे० 'पटकनी'। उ०—रियासतों के नामी गरामी शहसवार इसपर सवार हुए और सवार होते ही पटखनी खाई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१।

पटचित्र—संज्ञा पु० [सं० पट + चित्र] १. कपड़े पर बनाया हुआ चित्र। २ सिनेमा की फिल्म। उ० उसके बाद सुनीता ने कुछ न कहा और मुँह मोड़कर पटचित्र ही देखती रही। सुनीता, पृ० १३४।

पटच्चर—संज्ञा पु० [सं०] १ जीर्ण वस्त्र। पुराना कपड़ा। उ०—तब लपेट तैलाक्त पटच्चर आग लगाई रिपुओं ने।—साकेत, पृ० ३९०। २. चोर। तस्कर। ३. महाभारत और पुराणों मे वर्णित एक प्राचीन देश।

विशेष—महाभारत के टीकाकार नीलकंठ के मत से यह देश प्राचीन चोल है। पर महाभारत सभापर्व मे सहदेव का दिग्विजय प्रकरण पढ़ने से इसका स्थान मत्स्य देश के दक्षिण चेदि के निकट कहीं पर जान पड़ता है। जैन हरिवंश के मत से यह मत्र देश का ही अंशविशेष है।

पटड़ा†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'पटरा'।

पटड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पटरी'।

पटण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पत्तन] दे० 'पत्तन'। उ०—हाट पटण देखि रह्या हैरान। नानक एह गढ़ छूटे निदान।—प्राण०, पृ० २८।

पटतर(पु)—संज्ञा पु० [हिं० सं० पट्ट (= पटरी) + तल (= पटरी के समान चौरस)] १ समता। बराबरी। तुल्यता। समानता। उ०—महामधुर कमनीय जुगल बर। इनही को दीजै इन पटतर।—घनानंद, पृ० ४१। २. उपमा। सादृश्य कथन। तशबीह।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—लहना।

पटतर²—वि० जिसकी सतह ऊंची नीची न हो। चौरस। समतल। बराबर।

पटतरना—क्रि० स० [हिं० पटतर] बराबर ठहराना। उपमा देना। उ०—जो पटतरिअ तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया।—मानस, १।२४७।

पटतारना¹—क्रि० स० [हिं० पटा + तारना (= अंदाजना)] खड्ग भाले आदि को उस स्थिति मे पकड़ना जिसमे उनसे वार किया जाता है। खाँड़ा, भाला आदि शस्त्रों को किसी पर चलाने के लिये पकड़ना या खीचना। सँभालना। उ०—फिर पठान सो जग हित चल्यो सेल पटतारि।—सूदन (शब्द०)।

पटतारना²—क्रि० स० [हिं० पटतर] ऊँची नीची जमीन को चौरस करना। टीले को काटकर उसकी मिट्टी को इधर उधर इस प्रकार फैला देना कि जहाँ वह फैलाई जाय वहाँ का तल चौरस रहे। पड़तारना।

पटताल—संज्ञा पुं० [सं० पट+ताल] मृदंग का एक ताल।

विशेष—यह ताल १ दीर्घ या २ ह्रस्व मात्राओं का होता है। इसमें एक ताल और एक खाली रहता है। इसका बोल यो
+ ०
है—धा, केटे दि ता, धा।

पटत्क—संज्ञा पुं० [सं०] तस्कर। चोर (को०)।

पटद¹—संज्ञा पुं० [सं०] कपास।

पटधारी¹—वि० [सं० पटधारिन्] जो कपड़ा पहने हो।

पटधारी²—संज्ञा पुं० तोशाखाने का मुख्य अफसर। उ०—बोलि सचिव सेवक सखा पटधारि भँडारी। तेहु जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी।—तुलसी (शब्द०)।

पटन¹—संज्ञा पुं० [सं० पत्तन प्रा० पट्टण पटण] दे० 'पत्तन' उ०—धर्म पुरी एक नगर सुहावा। हाट पटन बहु देखि बनावा।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २०५।

पटन²—संज्ञा पुं० [सं०] गुजरात देश, जहाँ की राजधानी का नाम पट्टन या पाटन था। उ०—अवतार लियो प्रिथिराज पहु ता दिन दान अनंत दिय। कनवज्ज देस गज्जन पटन किलकिलंत कालंकनिय।—पृ० रा०, १।६८७।

पटना¹—क्रि० अ० [हिं० पट (=जमीन के सतह के बराबर)] १. किसी गड्ढे या नीचे स्थान का भरकर आस पास की सतह के बराबर हो जाना। समतल होना। जैसे,—वह झील अब बिलकुल पट गई है। २. किसी स्थान में किसी वस्तु की इतनी अधिकता होना कि उससे शून्य स्थान न दिखाई पड़े। परिपूर्ण होना। जैसे,—रणभूमि मुर्दों से पट गई। ३. मकान, कुएँ आदि के ऊपर कच्ची या पक्की छत बनाना। ४. मकान की दूसरी मंजिल या कोठा उठाया जाना। ५. सींचा जाना। सेराब होना। जैसे,—वह खेत पट गया। ६. दो मनुष्यों के विचार, भाव, रुचि या स्वभाव में ऐसी समानता होना जिससे उनमें सहयोगिता या मित्रता हो सके। मन मिलना। बनना। जैसे,—हमारी उनकी कभी नहीं पट सकती। ७ विचारों, भावों या रुचियों की समानता के कारण मित्रता होना। ऐसी मित्रता होना जिसका कारण मनों का मिल जाना हो। जैसे,—आजकल हमारी उनकी खूब पटती है। ८. खरीद, बिक्री, लेन देन आदि में उभय पक्ष का मूल्य, सूद, शर्तों आदि पर सहमत हो जाना। तै हो जाना। बैठ जाना। जैसे, सौदा पट गया, मामला पट गया, आदि। ९. (ऋण या देना) चुकता हो जाना। (ऋण) भर जाना। पाई पाई अदा हो जाना। जैसे,—ऋण पट गया।

संयो० क्रि०—जाना।

पटना²—संज्ञा पुं० [सं० पट्टन] दे० 'पाटलिपुत्र'।

पटनिया, पटनिहा—वि० [हिं० पटना + इया या इहा (प्रत्य०)] १. वह वस्तु जो पटना नगर या प्रदेश में बनी हो। जैसे, पटनिया एक्का। २. पटना नगर या प्रदेश से संबंध रखनेवाला।

पटनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाटना] वह कमरा जिसके ऊपर कोई और कमरा हो। कोठे के नीचे का कमरा। पटौंहा।

पटनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटना (= तै होना)] १. जमींदारी का वह अंश जो निश्चित लगान पर सदा के लिये बंदोबस्त कर दिया गया हो। वह जमीन जो किसी को इस्तमरारी पट्टे के द्वारा मिली हो।

यौ०—पटनीदार।

विशेष—यदि काश्तकार इस जमीन या इसके अंशविशेष को वे ही अधिकार देकर जो उसे जमींदार से मिले हैं, दूसरे मनुष्य के साथ बंदोबस्त कर दे तो उसे 'दरपटनी' और ऐसे ही तीसरे बंदोबस्त के बाद उसे 'सिपटनी' कहते हैं।

२ खेत उठाने की वह पद्धति जिसमें लगान और किसान या असामी के अधिकार सदा के लिये निश्चित कर दिए जाते हैं। इस्तमरारी पट्टे द्वारा खेत का बंदोबस्त करने की पद्धति। ३ दो खूँटियों के सहारे लगाई हुइ पटरी जिसपर कोई चीज रखी जाय।

पटपट¹—संज्ञा स्त्री० [अनु० पट] हलकी वस्तु के गिरने से उत्पन्न शब्द की बार बार आवृत्ति। 'पट' शब्द अनेक बार होने की क्रिया या भाव। पट शब्द की बार बार उत्पत्ति।

पटपट²—क्रि० वि० बराबर पट ध्वनि करता हुआ। 'पटपट' आवाज के साथ। जैसे, पटपट बूँदे पडने लगी।

पटपटाना—क्रि० अ० [हिं० पटकना] भूख प्यास या सरदी गरमी के मारे बहुत कष्ट पाना। बुरा हाल होना। २. किसी चीज से पटपट ध्वनि निकलना। जैसे,—ये चने खूब पटपटा रहे हैं।

पटपटाना²—क्रि० स० १ किसी चीज को बजा या पीटकर पटपट शब्द उत्पन्न करना। जैसे,—व्यर्थ क्या पटपटा रहे हो? २. खेद करना। शोक करना।

पटपर¹—वि० [हिं० पट + अनु० पर] समतल। बराबर। चौरस। हमवार।

पटपर²—संज्ञा पुं० १ नदी के आसपास की वह भूमि जो बरसात के दिनों में प्रायः सदा डूबी रहती है। इसमें केवल रबी की खेती की जाती है। २ ऐसा जंगल जहाँ घास, पेड़ और पानी तक न हो। अत्यंत उजाड़ स्थान।

पटबंधक—संज्ञा पुं० [हिं० पटना + सं० बन्धक] एक प्रकार का रेहन जिसमें महाजन या रेहनदार रखी हुई संपत्ति के लाभ में से सूद लेने के बाद जो कुछ बच जाता है उसे मूल ऋण में मिनहा करता जाता है और इस प्रकार जब सारा ऋण वसूल हो जाता है तब संपत्ति उसके वास्तविक स्वामी को लौटा देता है।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।—रखना।

पटबिजना—संज्ञा पुं० [हिं० पट + बिज्जु] दे० 'पटबीजना'। उ०—शून्य बिजन के पटबिजना से, चाँद सितारे आसमान के, जरा मरण से मुक्त न देखे, देखा—अपने ही समान थे।—हंस०, पृ० ५४।

पटबीजना†—संज्ञा पुं० [हिं० पट (= बराबर) + बिज्जु (= बिजली)] जुगुनू। खद्योत।

पटभाख—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक यंत्र जिससे आँख को देखने में सहायता मिलती थी।

पटमंजरी—संज्ञा पुं० [सं० पटमञ्जरी] संपूर्ण जाति की एक शुद्ध रागिनी जो हिंडोल राग की स्त्री है।

विशेष—हनुमत के मत से इसका स्वरग्राम यह है—प ध नि सा रे ग म प। इसका गान समय ६ दंड से १० दंड तक है। एक और मत से यह श्री राग की रागिनी है और इसका गान समय एक पहर दिन के बाद है।

कोई कोई इसे संकर रागिनी भी मानते है। इसमे से कुछ के मत से यह नट और मालश्री के मिलाने से बनी है। दूसरे इसे मारू, धूलश्री, गांधारी और धनाश्री के संयोग से बनी हुई मानते हैं।

पटमंडप—संज्ञा पुं० [सं० पटमण्डप] तंबू। खेमा। शिविर।

पटम[1]—वि० [हिं० पटपटाना] वह जिसकी आँखें भूख से पटपटा या बैठ गई हों। जो भूख के मारे अंधा हो गया हो।

पटम(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० पटु] धोखा। छल। छद्म। पाखंड। पटुता। इन बातन मोंहि अचिरज आवै। पटम किए पिव कैसे पावै।—संतबानी० पृ० १०।

पटमय[1]—वि० [सं०] कपड़े से बना हुआ (को०)।

पटमय[2]—संज्ञा पुं० तंबू। खेमा।

पटरक—संज्ञा पुं० [सं०] पटेर। गोंदपटेर।

पटरा—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट + हिं० रा (प्रत्य०) अथवा सं० पटल] [स्त्री० अल्पा० पटरी] १ काठ का लंबा चौकोर और चौरस चीरा हुआ हुआ टुकड़ा जो लंबाई चौडाई के हिसाब से बहुत कम मोटा हो। तख्ता। पल्ला।

विशेष—काठ के ऐसे भारी टुकड़े को जिसके चारो पहल बराबर या करीब करीब बराबर हों अथवा जिसका घेरा गोल हो 'कुंदा' कहेंगे। कम चौड़े पर मोटे लंबे टुकड़े को 'बल्ला' या बल्ली कहेंगे। बहुत ही पतली बल्ली को छड़ कहेंगे।

मुहा०—**पटरा कर देना** = (१) किसी खड़ी चीज को गिराकर पटरी की तरह जमीन के बराबर कर देना। (२) मनुष्य, वृक्ष आदि को काटकर गिरा देना। मार काट कर फैला। देना या बिछा देना। जैसे,—शाम तक उसने सारे का सारा जंगल काट कर पटरा कर दिया। (३) चौपट कर देना। तबाह कर देना। सर्वनाश कर देना। जैसे,—इस वर्ष के अकाल ने तो पटरा कर दिया। **पटरा होना** = मरकर गिर जाना। मर जाना। नष्ट हो जाना। स्वाहा हो जाना। जैसे,—इस साल हैजे से हजारों पटरा हो गए।

२. धोबी का पाट। ३. हेंगा। पाटा।

मुहा०—**पटरा फेरना** = किसी के घर को गिराकर जुते हुए खेत की तरह चौरस कर देना। ध्वंस कर देना। तबाह कर देना। **पटरा हो जाना** = मर कटकर नष्ट हो जाना।

पटरागिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पटरानी'। उ०—पटरागिनि पौवार रूप रंभा गुन जुब्बन। प्रमुदा प्रान समान नहीं बिसरत्त एक छन।—पृ० रा०, १।३७०।

पटरानी—संज्ञा स्त्री० [सं० पट्ट + रानी] वह रानी जो राजा के साथ सिंहासन पर बैठने की अधिकारिणी हो। किसी राजा की विवाहिता रानियों में सर्वप्रधान। राजा की सबसे बड़ी रानी। राजा की मुख्य रानी। पट्टरानी। पाटमहिषी।

पटरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटरा] १. काठ का पतला और लंबोतरा तख्ता।

मुहा०—**पटरी जमना** = घुड़सवारी में जीन पर सवार का रानों को इस प्रकार चिपकाना कि घोड़े के बहुत तेज चलने या शरारत करने पर भी उसका आसन स्थिर रहे। रान बैठाना या जमाना। **पटरी बैठना** = मन मिलना। मित्रता होना। मेल होना। पटना। जैसे,—हमारी उनकी पटरी कभी न बैठेगी।

२. लिखने की तख्ती। पटिया। ३. वह चौड़ा खपड़ा जिसपर नरिया जमाते हैं। ४ सड़क के दोनो किनारो का वह कुछ ऊँचा और कम चौड़ा भाग जो पैदल चलनेवालो के लिये होता है। ५. नहर के दोनो किनारो पर के रास्ते। ६. बगीचो में क्यारियों के इधर उधर के पतले पतले रास्ते जिनके दोनों ओर सुंदरता के लिये घास लगा दी जाती है। रविश। ७. सुनहरे या रुपहले तारों से बना हुआ वह फीता जिसे साड़ी, लहँगे या किसी कपड़े की कोर पर लगाते हैं। ८. हाथ में पहनने की एक प्रकार की पट्टीदार चौड़ी चूड़ी जिसपर नक्काशी बनी होती है। ९. जंतर। चौकी। ताबीज।

पटल—संज्ञा पुं० [सं०] १. छप्पर। छान। छत। २ आवरण। पर्दा। आड़ करने या ढकनेवाली कोई चीज। ३. परत। तह। तबक। ४ पहल। पार्श्व। ५. आँख की बनावट की तहें। आँख के पर्दे। ६. मोतियाबिंद नामक आँख का रोग। पिटारा। ७. लकड़ी आदि का चौरस टुकड़ा। पटरा। तख्ता। ८ पुस्तक का भाग या अंशविशेष। परिच्छेद। ९ माथे पर का तिलक। टीका। १०. समूह। ढेर। अंबार। ११ लाव लश्कर। लवाजमा। परिच्छद। १२ वृक्ष। पेड़ (को०)। १३. पिटक। पिटारी (को०)। १४ पुस्तक। ग्रंथ (को०)। १५. वृंत। डंठल (को०)।

पटलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आवरण। पर्दा। झिलमिली। बुरका। २. कोई छोटा संदूक, डलिया या टोकरा। ३. समूह। राशि। ढेर। अंबार।

पटलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पटल का काम। २. अधिकता। उ०—जौन अंग ढिग ह्वै कढी हुई छैल की छाँह। अजहूँ लौं अवलोकिये, पुलक पटलता ताह।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३०५।

पटलप्रांत—संज्ञा पुं० [सं० पटलप्रान्त] छप्पर का सिरा या किनारा।

पटला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भीमा के आकार की नौका। ६४ हाथ लंबी, ३२ हाथ चौड़ी और ३२ हाथ ऊँची नाव। (युक्ति कल्पतरु)।

पटली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पटल] १. छप्पर। छान। छत। २. वृक्ष (को०)। ३. डंठल। वृंत (को०)। ४. समूह। झुंड। पंक्ति। उ०—नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना।—मानस, ३।३४।

पटली†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पटरी'। उ०—उत्तम पटली प्रेम की रे डोरी सुरति लगाई।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८२६।

मुहा०—**पटली बैठना** = मित्रता होना। मन मिलना। पटरी बैठना। उ०—पटली है बैठने की गोरे की साँवले से।—बेला, पृ० ६०।

पटवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पाट+वाह (प्रत्य०)] [स्त्री० पटइन] रेशम या सूत में गहने गूथनेवाला। पटहार। उ०—कतहुँ तमोलिय पान भुलाने। कहुँ पटवा पाटहिं अरुझाने।—इंद्रा०, पृ० १५।

पटवा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बैल जिसका रंग नारंगी का सा होता है। यह बैल मजबूत और तेज चलनेवाला होता है।

पटवा[3]—संज्ञा पुं० [सं० पाट] पटसन की जाति का एक प्रकार का पौधा। लाल अंबारी।

विशेष—यह पौधा बंगाल मे अधिकता से बोया जाता है। कही कही यह बागो मे शोभा के लिये भी लगाया जाता है। इसमें एक प्रकार की कलियाँ लगती हैं जो खाई जाती है। इसके तनों से एक प्रकार का रेशा निकलता हैं और इसके फल तथा बीज कहीं कहीं ओषधि रूप में काम में आते हैं।

पटवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] झाँझ के आकार का एक प्राचीन बाजा जिससे ताल दिया जाता था।

पटवाना[1]—क्रि० स० [हिं० पाटना का प्रे० रूप] १. पाटने का काम दूसरे से कराना। २. आच्छादित कराना। छत डलवाना जैसे, घर पटवाना। ३. गड्ढे आदि को भरकर आसपास की जमीन के बराबर कराना। भरवा देना। पूरा करा देना। जैसे, गड्ढा पटवा देना। †४ सिंचवाना। पानी से तर कराना। ५. ऋण आदि अदा करा देना। चुकवा देना। पटाना। दाम दाम दिला देना। जैसे—उसने अपने मित्र से वह ऋण पटवा दिया।

पटवाना[2]—क्रि० स० [हिं० पटाना का प्रे० रूप] (पीड़ा या कष्ट) दूर कर देना। मिटाना। बंद करना। शांत करना।

पटवाप—संज्ञा पुं० [सं०] खेमा। तंबू (को०)।

पटवारगिरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटवारी+फ़ा० गरी] १. पटवारी का काम। जैसे,—इन्होंने २० साल तक पटवारगिरी की है। २. पटवारी का पद। जैसे,—उस गाँव की पटवारगिरी इन्हीं को मिलनी चाहिए।

पटवारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट+कार, हिं० वार] गाँव की जमीन और उसके लगान का हिसाब किताब रखनेवाला एक छोटा सरकारी कर्मचारी।

पटवारी(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पट+हिं० वारी (प्रत्य०)] कपड़े पहनानेवाली दासी। उ०—पानदानवारी केती पीकदानवारी चौंरवारी पखावारी पटवारी चलीं आय कै।—रघुराज (शब्द०)।

पटवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्त्रनिर्मित गृह। शिविर। तंबू। २. वह वस्तु या चूर्ण जिससे वस्त्र सुगंधित किया जाय। वे सुगंधियाँ या चूर्ण जिनसे कपड़ा वासित (सुगंधित) करने का काम लिया जाय। उ०—जल थल फल फूल भूरि, अंबर पटवास धूरि, स्वच्छ यच्छ कर्दम हिय देखन अभिलाषे।—केशव (शब्द०)। ३. लहँगा। साया।

पटवासक—संज्ञा पुं० [सं०] पटवास चूर्ण। वस्त्र बसानेवाली सुगंधियों का चूर्ण।

पटवेश्म—संज्ञा पुं० [सं० पटवेश्मन] खेमा। तंबू (को०)।

पटसन—संज्ञा पुं० [सं० पाट+हिं० सं० शरण. सन] १. एक प्रसिद्ध पौधा जिसके रेशे से रस्सी, बोरे, टाट और वस्त्र बनाए जाते हैं।

विशेष—यह गरम जलवायुवाले प्रायः सभी देशों में उत्पन्न होता है। इसके कुल ३६ भेद हैं जिनमे से ८ भारतवर्ष मे पाए जाते हैं। इन ८ में से दो मुख्य हैं और प्रायः इन्हीं की खेती की जाती है। इसके कई भेद अब भी वन्य अवस्था में मिलते हैं। दो मुख्य भेदों में से एक को 'नरछा' और दूसरे को 'वनपाट' कहते हैं। 'नरछा' विशेषतः बंगाल और आसाम में बोया जाता है। वनपाट की अपेक्षा इसके रेशे अधिक उत्तम होते हैं। नरछे का पौधा वनपाट के पौधे से ऊँचा होता है। और पत्ती तथा कली लबी होती है वनपाट की पत्तियाँ गोल, फूल नरछे से बड़े और कली की चोंच भी नरछे से कुछ अधिक लंबी होती है। पटसन की बोआई भदई जिन्सो के साथ होती है और कटाई उस समय होती है जब उसमें फूल लगते हैं। इस समय न काट लेने से रेशे कड़े हो जाते हैं। बीज के लिये थोड़े से पौधे खेत में एक किनारे छोड़ दिए जाते हैं, शेष काटकर और गट्ठों में बाँधकर नदी, तालाब या गड्ढे के जल में गाड़ दिए जाते हैं। तीन चार दिन बाद उसे निकालकर डंठल से छिलके को अलग कर लेते हैं। फिर छिलकों को पत्थर के ऊपर पछाड़ते हैं और थोड़ी थोड़ी देर के बाद पानी मे धोते हैं जिससे कड़ी छाल कटकर धुल जाती है और नीचे की मुलायम छाल निकल आती है। छिलके या रेशे अलग करने के लिये यंत्र भी है, परंतु भारतीय किसान उसका उपयोग नही करते। यंत्र द्वारा अलग किए हुए रेशों की अपेक्षा सड़ाकर अलग किए हुए रेशे अधिक मुलायम होते हैं। छुड़ाए और सुखाए जाने के अनंतर रेशे एक विशेष यंत्र में दबाए अथवा कुचले जाते हैं। जबतक यह क्रिया होती रहती है, रेशों पर जल और तेल के छींटे देते रहते हैं जिससे उनकी रुखाई और कठोरता दूर होकर, कोमलता, चिकनाई और चमक आ जाती है। आजकल पटसन के रेशों से तीन काम लिए जाते हैं—मुलायम, लचीले रेशों से कपड़े तथा टाट बनाए जाते हैं, कड़े रेशों से रस्से,

रस्सियाँ और जो इन दोनों कामों के अयोग्य समझे जाते हैं उनसे कागज बनाया जाता है। रेशों की उत्तमता, अनुत्तमता के विचार से भी पटसन के कई भेद हैं। जैसे, उत्तरिया, देसवाल, देसी, धयौरा या डौरा, नारायनगंजी, सिराजगजी आदि। इनमें उत्तरिया और देसवाल सर्वोत्तम हैं। पटसन के रेशे अन्य वृक्षों या पौधों के रेशों से कमजोर होते हैं। रंग इसके रेशों पर चाहे जितना गहरा या हलका चढ़ाया जा सकता है। चमक, चिकनाई आदि में पटसन रेशम का मुकाबला करता है, जिस कारखाने मे पटसन के सूत और कपड़े बनाए जाते हैं उनको जूट मिल और जिस यंत्र में दाब पहुँचाकर रेशों को मुलायम और चमकीला बनाया जाता है उसे 'जूट प्रेस' कहते हैं।

२. पटसन के रेशे। पाट। जूट।

विशेष—(क) पटसन से रस्से, रस्सियाँ टाट और टाट ही की तरह का एक मोटा कपड़ा तो बहुत दिनों से लोग बनाते रहे हैं, पर उसका बारीक रेशम तुल्य सूत और उनसे बहुमूल्य वस्त्र तैयार करने की ओर उनका ध्यान नहीं गया था। अब उसका खूब महीन सूत भी बनने लग गया है। (ख) कुछ लोगों का यह अनुमान है कि नरछा नामक उत्तम जाति के पटसन के बीज भारत मे चीन से लाए गए हैं। बगाल और आसाम के जिन जिन भागों में नरछे की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है वहाँ की जलवायु में चीन की जलवायु से बहुत कुछ समानता है।

पटसाली—संज्ञा पुं० [सं० पट्टशाली] धारवाड़ प्रांत की जुलाहों की एक जाति जो रेशमी वस्त्र बुनती है।

पटहंसिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह रागिनी १७ दंड से २० दंड तक के बीच में गाई जाती है।

पटह—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुंदुभी। नगाड़ा। डंका। आडंबर। २. बड़ा ढोल। ३. समारंभ। किसी कार्य को आरंभ करना (को०)। ४. हिंसन। नुकसान पहुँचाना (को०)।

पटहघोषक—संज्ञा पुं० [सं०] ढोल पीटकर घोषणा करनेवाला व्यक्ति।

पटहभ्रमण— संज्ञा पुं० [सं०] (लोगो को एकत्र करने के लिये) घूम घूमकर डुग्गी या ढोल पीटना (को०)।

पटहवेला—संज्ञा पुं० [सं०] डुग्गी पीटे जाने का समय।

पटहार, पटहारा[1]— वि० [पाट + हिं० हार (प्रत्य०)] रेशम के डोरे बनानेवाला। रेशम के डोरो से गहना गूँथनेवाला।

पटहार, पटहारा[2]— संज्ञा पुं० [स्त्री० पटहारिन या पटेरिन] एक जाति जो रेशम या सूत के डोरे से गहने गूँथती है। पटवा।

पटहारिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटहार] १ पटहार की स्त्री। २. पटहार जाति की स्त्री।

पटा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पट] प्राय: दो हाथ लंबी किर्च के आकार की लोहे की फट्टी जिससे तलवार की काट और बचाव सीखे जाते हैं। उ०—पटा पवड़िया ना लहै, पटा लहै कोई सूर।—दरिया०, पृ० १५।

पटा(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट] पीढ़ा। पटरा। उ०—चोका चौकी पीढी पटा भारी पनिगह, पलइठि तेआए आसन।—वर्णरत्नाकर, पृ० १२।

मुहा०—पटाफेर = विवाह की एक रस्म जिसमें वर वधू के आसन परस्पर अदल बदल दिए जाते हैं। **पटा बांधना** = पटरानी बनाना। उ०—चौदह सहस तिया में तोको पटा बँधाऊँ आज।—सूर (शब्द०)।

२. (पट की तरह समतल होने के कारण) गंडस्थल। जैसे, कनपटा, कनपटी।

यौ०—पटाकर।

पटा(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट] १. अधिकारपत्र। सनद। पट्टा। उ०—(क) विधि के कर को जो पटो लिखि पायो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सतगुरु साह साध सौदागर भक्ति पटो लिखवइयो हो।—धरम०, पृ० ११। २. पगड़ी या कलंगी की तरह का एक भूषण जो पहले राजाओ द्वारा किसी विशिष्ट कार्य में सफलता प्राप्त करने या श्रेष्ठ वीरता-प्रदर्शन पर सामतों को दिया जाता था। उ०—सिर पटा छाप लोहान होइ। लग्गें सु तरह सग पाइ लोइ।—पृ० रा०, ५।१५।

पटा(पु)[4]—संज्ञा पुं० [हिं० पटना] लेन देन। क्रय विक्रय। सौदा। उ०—मन के हटा मे पुनि प्रेम को पटा भयो।—पद्माकर (शब्द०)।

पटा[5]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. चौड़ी लकीर। धारी। २. लगाम की मुहरी। ३. चटाई। ४. दे० 'पट्टा'।

पटाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटाना] पटाने की क्रिया या भाव। सिंचाई। आबपाशी। उ०—दूधे पटाइअ सीचीअ नीत, सहज तजे करइला तीत।—विद्यापति, पृ० २१३। २. सिंचाई की मजदूरी।

पटाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाटना] १. पाटने की क्रिया या भाव। २. पाटने की मजदूरी।

पटाक[1]—[अनु०] किसी छोटी चीज के गिरने का शब्द। जैसे,—वह पटाक से गिरा।

विशेष—चटाक, धड़ाम आदि अनुकरण शब्दो के समान इसका व्यवहार भी सदा 'से' विभक्ति के साथ क्रियाविशेषणवत् होता है। संज्ञा की भाँति प्रयुक्त न होने के कारण इसका कोई लिंग नहीं माना जा सकता।

पटाक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी (को०)।

पटाका[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पट (अनु०)] १. पट या पटाक शब्द। २. पट या पटाक शब्द करके छूटनेवाली एक प्रकार की आतशबाजी।

क्रि० प्र०—छोड़ना।

३. पटाके की ध्वनि। कोड़े या पटाके की आवाज। ४. तमाचा। थप्पड़। चपत।

क्रि० प्र०—जमाना।—देना।—लगाना।

पटाका[2]—संज्ञा स्त्री० युवती अथवा कम अवस्थावाली स्त्री (बाजारू)।

पटाका[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पताका' [को०]।

पटाक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] पर्दा गिरना या गिराना। जवनिका गिराना। जवनिकापात [को०]।

पटाखा—संज्ञा पुं० [हिं० पट अनुध्व०] दे० 'पटाका'।

पटाझर(पु)†—वि० [हिं० पटा + झरना] मदस्रावी। मतवाला (हाथी)। उ०—बस नहिं होत सुजान पटाझर गज है जैसे। कमल नाल के तंतु बँधे रुकि रहिहै कैसे।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ७०।

पटान—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाटना] पाटने की क्रिया या भाव। पटाव।

पटाना—क्रि० स० [हिं० पट (= समतल)] १. पाटने का काम कराना। गड्ढे आदि को भरकर आसपास की जमीन के बराबर कराना। २. छत को पीटकर बराबर कराना। ३. पाटन बनवाना छत बनवाना। जैसे, कोठा पटाना। ४. ऋण चुका देना। अदा कर देना। जैसे,—मैंने उनका सब पावना पटा दिया। ५. बेचनेवाले को किसी मूल्य पर सौदा देने के लिये राजी कर लेना। मूल्य तै कर लेना। जैसे, सौदा पटाना † ६. सींचना। जल से सिंचित करना। जैसे, खेत पटाना।

पटाना[2]—क्रि० अ० शांत होकर बैठना। चुपचाप बैठना।

पटापट[1]—क्रि० वि० [अनु० पट] लगातार बारबार 'पट' ध्वनि के साथ। निरंतर पट पट शब्द करते हुए। 'पट पट' की ऐसी आवृत्ति जिसमें दो ध्वनियों के मध्य बहुत ही कम अवकाश हो और एक सम्मिलित ध्वनि सी जान पड़े। तेजी से। जैसे,—पटापट मार पड़ी। उ०—प्रेम की घटा मे बुंद परे पटापट।—पलटू०, पृ० २७।

पटापट[2]—संज्ञा स्त्री० निरंतर पटपट शब्द की आवृत्ति। ऐसी 'पटपट' ध्वनि जिसमे दो ध्वनियों के बीच इतना कम अवकाश हो कि अनुभव मे न आ सके। जैसे,—इस पटापट से तो तबीअत परेशान हो गई।

पटापटी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह वस्तु जिसमें अनेक रंगों के फूल पत्ते कढ़े हों। वह वस्तु जो कई रंगों से रंगी हुई हो। चित्र विचित्र वस्तु। उ०—सारी जरतारी भारी उत पटापटी की लागी जामै गोट तमामी पटापटी की।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६।

मुहा०—पटापटी का पर्दा = वह पर्दा जिसमें रंग बिरंग के फूल पत्ते या समोसे आदि कढ़े हों। पटापटी की गोट = वह रंग बिरंगी गोट जिसमें सिंघाड़े आदि कढ़े हों।

पटार—संज्ञा स्त्री० [सं० पिटक] १. पिटारा। पेटी। मंजूषा। २. पिंजड़ा। ३. रेशम की रस्सी का निवार। ४. कनखजूरा। (बुंदेलखंडी)।

पटालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक। जलौका।

पटाव—संज्ञा पुं० [हिं० पाटना] १ पाटने की क्रिया। २. पाटने का भाव। ३ पटा हुआ स्थान। पाटकर चौरस किया हुआ स्थान। ४. दीवारों के आधार पर पाटकर बनाया हुआ ऊँचा स्थान। पाटन। ५. लकड़ी का वह मजबूत तख्ता जिसे दरवाजे के ऊपरी भाग पर रखकर उसके ऊपर दीवार उठाते हैं। भरेठा।

पटि—संज्ञा स्त्री० [सं० पटी] १. कोई छोटा वस्त्र या वस्त्रखंड। २. जलकुंभी। ३. रंगमंच का पर्दा (को०)। ४. कनात (को०)।

पटिआ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पटिया'।

पटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई छोटा वस्त्र या वस्त्रखंड।

पटिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] यवनिकापात। रगमंच का पर्दा गिराना [को०]।

पटिया[1]†—संज्ञा स्त्री० [सं० पट्टिका] १ पत्थर का प्राय चौकोर और चौरस कटा हुआ टुकड़ा जिसकी मोटाई लंबाई चौड़ाई के हिसाब से बहुत कम हो। चिपटा चौरस शिलाखंड। फलक। उ०—जहाँ मणिजटित पटिया बिछी है यही माधवी कुंज है।—शकुंतला, पृ० ११२। २. काठ का छोटा तख्ता। ३. खाट या पलंग की पट्टी। पाटी। ४. पटरी। फुटपाथ। उ०—एक युवक पुल की लकड़ी से पटिया पर खड़ा पोस्ट आफिस की ओर मुख किए इस दृश्य को देख रहा था।—पिंजरे०, पृ० १६। ५. माँग। पट्टी। उ०—समुझ की पटिया पारो सजनी चुटिया गुहौ सम्हार हो।—कबीर श०, भा० २, पृ० १३४।

क्रि० प्र०—काढ़ना।—पारना।—सँवारना।

६ हेंगा। पाटा। ६. कंबल या टाट की एक पट्टी। ७. लिखने की पट्टी। तख्ती। ८ सँकरा और लंबा खेत।

पटिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाटना + इया (प्रत्य०)] चिपटे तले की बड़ी और ऊपर से पटी हुई नाव जो बंदरगाहों में जहाज से बोझ उतारने और चढ़ाने के काम में आती है (लश०)।

पटियैत†—संज्ञा पुं० [सं० पटि + ऐत (प्रत्य०)] दायाद। पट्टीदार। उ०—आज अखाड़े जाते हुए पहलवान रामसिंह के पड़ोसी पटियैत से चार आँखें हुईं, शीलवान मनोहर को उन्होंने चग पर चढ़ाया, कहा जोर कराने जा रहे हो।—काले०, पृ० २।

पटी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पटि' [को०]।

पटी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पट] १. कपड़े का पतला लंबा टुकड़ा। पट्टी। उ०—मीत बिरह की पीर को सकै न पलटुग कोय। रूप कपूर लगाइ कै प्रीति पटी सो बाँध।—रसनिधि (शब्द०)। २. पटका। कमरबंद। उ०—पीट पटी लपटी कटि मे अरु साँवरो सुंदर रूप सँवारे।—देव (शब्द०)।

पटीमा—संज्ञा पुं० [हिं० पट्टी] छीपियों का वह तख्ता जिसपर वे छापते समय कपड़े को बिछा लेते हैं।

पटीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चंदन। उ०—सावति बीर पटीर घसि ज्यों ज्यों सीरे नीर। त्यों त्यों ज्वाल जगै दई या मृदु बाल सरीर।—स० सप्तक पृ० २३०। २. कत्था। ३. कत्थे या खैर का वृक्ष। ४. मूली। ५ वटवृक्ष। उ०—जटिल पटीर कृपाल बट रक्तफला न्यग्रोध। यह बंसीबट देखु बलि सब सुख निरुपम बोध।—नंददास (शब्द०)। ६ कंदुक। गेंद (को०)। ७. कामदेव (को०)। ८. केश (को०)। ९. मेघ। बादल (को०)। १०. वातरोग (को०)। ११. प्रतिश्याय। ठंढक। जुकाम (को०)। १३. क्यारी (को०) १४ ऊँचाई। उच्चता (को०)। १५. उदर (को०)।

पटीर[२]—वि० १ सुंदर। सौंदर्ययुक्त। २. ऊँचा। [को०]।

पटीरजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० पटीरजन्मन्] चंदन का वृक्ष [को०]।

पटीरमारुत—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन के संपर्क से सुगंधित हवा [को०]।

पटीलना—क्रि० स० [हिं० पटाना] १ किसी को उलटी सीधी बातें समझा बुझाकर अपने अनुकूल करना। ढंग पर लाना। हत्थे चढ़ाना। उतारना। २. अर्जित करना। कमाना। प्राप्त करना। ३. ठगना। छलना। ४ मारना। पीटना। ठोंकना। ५. परास्त करना। नीचा दिखाना। ६. सफलतापूर्वक किसी काम को समाप्त करना। खतम करना। पूर्ण करना।

सयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

पटीला(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] चिपटा कड़ा। पछेला। पटेला। उ०—चाल की चुरिया पहिरो सजनी परख पटीला डार हो।—कबीर, श०, भा० २, पृ० १३४।

पटु[१]—वि० [सं०] १. प्रवीण। निपुण। कुशल। दक्ष। उ०—नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका।—मानस, १।४१। २. चतुर। चालाक। होशियार। ३. धूर्त। छलिया। मक्कार। फरेबी। ४ निष्ठुर। अत्यंत कठोर हृदयवाला। ५. रोगरहित। तंदुरुस्त। स्वस्थ। ६ तीक्ष्ण। तीखा। तेज। ७ उग्र। प्रचंड। ८. स्फुट। प्रकाशित। व्यक्त। ९. सुंदर। मनोहर। उ०—(क) रघुपति पटु पालकी मँगाई। तुलसी (शब्द०)। (ख) पौढाये पटु पालने सिसु निरखि मगन मन मोद।—तुलसी (शब्द०)।

पटु[२]—संज्ञा पुं० १. नमक। २ पांशुलवण। पाँगा नोन। ३ परवल। ४. परवल के पत्ते। ५. करेला। ६. चिरचिटा नाम की लता। ७ चीनी कपूर। ८. जीरा। ९ बच। १० नकछिकनी। ११. छत्रक। कुकुरमुत्ता (को०)।

पटुआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पटुवा १ और २'।

पटुक—संज्ञा पुं० [सं०] परवल।

पटुकल्प—वि० [सं०] कुछ कम पटु। जो पूर्ण कुशल या चालाक न हो। कामचलाऊदक्ष।

पटुका—संज्ञा पुं० [सं० पटिका] १ दे० 'पटका'। उ०—हरीचंद पिय मिले दो पग परि गहि पटुका समझाऊँ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४६३। २. चादर। गले में डालने का वस्त्र। उ०—कटि काछनि सिर मुकुट बिराजत, काँधे पर सोहै पटुका लहरिया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४३५। ३. धारीदार चारखाना।

पटुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कमरबंद। पटका। पटुका। उ०—कोउ नगधर बर पिय की गहि रहि परिकर पटुकी। जनु नवघन ते सरकि दामिनी छटा सु अटकी।—नंद० ग्रं०, पृ० २०।

पटुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पटु होने का भाव। प्रवीणता। निपुणता। होशियारी। २. चतुराई। चालाकी।

पटुतूलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक घास। लवणतृण।

पटुतृणक—संज्ञा पुं० [सं०] लवणतृण नाम की घास।

पटुत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक पारिभाषिक शब्द जिससे तीन नमकों का बोध होता है—बिड़ नोन, सेंधा नोन और काला नोन।

पटुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] पटुता।

पटुपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटे चेंच का पौधा।

पटुपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कटेहरी।

पटुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कटेहरी। सत्यानाशी। कटेहरी। स्वर्णक्षीरी। भँड़भाँड़।

पटुमात्—संज्ञा पुं० [सं०] आंध्रवंश का एक राजा। किसी किसी पुराण में इसका नाम पटुमान् या पटुमायि मिलता है।

पटुरूप—वि० [सं०] अत्यंत चतुर [को०]।

पटुली—संज्ञा स्त्री० [सं० पट्ट] १. काठ की पटरी जो झूलों के रस्सों पर रखी जाती है। तख्ता। पटल। उ०—दोऊ हाथन की हथेली ताकी पटुली को भाव करे तामें श्रीठाकुर जी को डोल झुलाए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२९। २. चौकी पीढ़ी। उ०—पटुली कनक की तिहीं बानक की बनी मनमोहनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७५। ३. गाड़ी या छकड़े में जड़ा हुआ लंबा चिपटा डंडा।

पटुवा(पु)[१]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पटवा'। उ०—पटुवन्ह चीर आनि सब छोरे। सारी कंचुकी लहुरि पटोरे।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४४।

पटुवा[२]—संज्ञा पुं० [सं० पाट] १ पटसन। जूट। २. एक साग। करेमू।

पटुवा[३]—संज्ञा पुं० [हिं० पटला] गून के सिरे पर बँधा हुआ डंडा जिसको पकड़े हुए माँझी लोग गून खींचते हैं।

पटुवा[४]—संज्ञा पुं० [देश०] तोता। शुक।

पटूका(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पट या देश०] दे० 'पटका'।

पटेबाज—संज्ञा पुं० [हिं० पटा + फा० बाज] १ पटा खेलनेवाला। पटे से लड़नेवाला। पटैत। २. एक खिलौना जो हिलाने से पटा खेलता है। ३ छिनाल स्त्री। कुलटा परंतु चतुरा स्त्री (बाजारू)। ४. व्यभिचारी और धूर्त पुरुष (बाजारू)।

पटेर—संज्ञा स्त्री० [सं० पटेरक] पानी में होनेवाली सरकंडे की जाति की एक प्रकार की घास। गोंद पटेर। उ०—फटत

पटेरहिं लागत बार । अस कछु कीनों नंदकुमार ।—नंद ग्रं०, पृ० २५८ ।

विशेष—इसके पत्ते प्रायः एक इंच चौड़े और चार पाँच फुट तक लंबे होते हैं। पत्ते बहुत मोटे होते हैं और पत्तों में से नए पत्ते निकलते हैं। इन पत्तों से चटाइयाँ आदि बनाई जाती हैं। इसमें बाजरे की बाल की तरह बालें लगती हैं, जिनके दानों का आटा सिंध देश के दरिद्र निवासी खाते हैं। वैद्यक में यह कसैली, मधुर, शीतल, रक्तपित्तनाशक और मूत्र, शुक्र, रज तथा स्तनों के दूध को शुद्ध करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—गुंद्र । पटेरक । रच्छ । श्रृंगवेराभमूलक ।

पटेरा—संज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'पटेला' । २. दे० 'पटैला' ।

पटेल¹—संज्ञा पुं० [हिं० पट्टा + (प्रत्य०) ऐल (= वाला)] १. गाँव का नंबरदार (मध्यप्रदेश) । २. गाँव का मुखिया । गाँव का चौधरी । एक प्रकार की उपाधि ।

विशेष—यह उपाधि धारण करनेवाले प्रायः मध्य और दक्षिण भारत में होते हैं ।

पटेल (सरदार)—संज्ञा पुं० स्वतंत्र भारत के प्रथम गृहमंत्री जिनका पूरा नाम वल्लभ भाई पटेल था ।

पटेलना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पटीलना' ।

पटेला—संज्ञा पुं० [हिं० पाटला स्त्री० अल्पा० पटेली] १. वह नाव जिसका मध्य भाग पटा हो । बैल घोड़े आदि को ऐसी ही नाव पर पार उतारते हैं । २. एक घास जिसकी चटाइयाँ बनाते हैं । वि० दे० 'पटेर' । ३ हेंगा । ४ सिल । पटिया । ५. कुश्ती का पेंच जिससे नीचे पड़े हुए जोड़ को चित किया जाता है ।

विशेष—इसमें बाएँ हाथ से जोड़ की गरदन पर कलाई जमाकर उसकी दाहिनी बगल पकड़ लेते और दाहिने हाथ से उसकी दाहिनी ओर का जाँघियाँ पकड़कर स्वयं पीछे हटते हुए उसे अपनी ओर खींचते हैं जिससे वह चित हो जाता है ।

†६. हाथ का कड़ा । पछेला । पछेली ।

पटेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटेला] छोटा पटेला नाव ।

पटेवा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पटवा' । उ०—मोराहिरे अँगना पाकडी सुनु बालहिया । पटेवा अउस बास परम हरि बालहिया । पटेवा भइया हीत नीत सुन बालहिआ । चोलरि एक बिनि देहि परम हरि बालहिआ ।—विद्यापति, पृ० ५५४ ।

विशेष—इस उदाहरण से ज्ञात होता है कि गहना गूँथने के साथ ये लोग वस्त्र (रेशमी) बुनने का व्यवसाय भी करते थे ।

पटैत—संज्ञा पुं० [हिं० पटा + ऐत (प्रत्य०)] पटा खेलने या लड़नेवाला पटेबाज ।

पटैला—संज्ञा पुं० [हिं० पटरा] १. लकड़ी का बना हुआ चिपटा डंडा जो किवाड़ों को बंद करने के लिये दो किवाड़ों के मध्य आड़े बल लगाया जाता है । इसे एक ओर सरकाने से किवाड़ बंद होते और दूसरी ओर सरकाने से खुलते हैं । डंडा । ब्योंड़ा । २. दे० 'पटेला' । उ०—कोई पटैले पर बाँसों के ठाट ठाटे हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११३ ।

पटोटज—संज्ञा पुं० [सं० पट + उटज] १. तंबू । खेमा । २ कुकुरमुत्ता [को०] ।

पटोर—संज्ञा पुं० [सं० पटोल] १. पटोल । २. कोई रेशमी कपड़ा । उ०—पुनि पट पीत पटोरन पोंछत, धरि आगे समुहाइ ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६ । ३. परवल ।

पटोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पाट + ओरी (प्रत्य०)] १. रेशमी साड़ी या धोती । २. रेशमी किनारे की धोती । उ०—घसि चंदन इक चोली कीनी कंचुकि पहिरि पटोरी लीनी ।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० १६१ ।

पटोल(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्राचीन काल में गुजरात में बनता था ।

यौ०—पाटपटोल । उ०—दीन्हउ सोनउ सोलहउ पाट पटोला बीड़ा पान ।—बी० रासो, पृ० ६ ।

२. परवल की लता । मोथा औ पटोल दल आनी । त्रिफला औ त्रीकुटा समानी ।—इंद्रा०, पृ० १५१ । ३. परवल का फल ।

पटोलक—संज्ञा पुं० [सं०] सीपी । शुक्ति । सुतही ।

पटोलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की पोई । २. परवल की लता का पत्र ।

पटोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद फूल की तुरई या तरोई ।

पटोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'पटोलिका' । २. (पु) चादर । पटोरी उ०—फाडि पटोली धुज करों कामलडी फहराय । जेहि जेहि भेषे पिय मिलै सोइ सोइ भेष कराय ।—कबीर सा० सं०, पृ० ४१ ।—

पटोसिर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पट + हिं० सिर] पगड़ी । साफा । उ० उ०—घन धावन, बगपाँति पटोसिर बैरख तड़ित सोहाई ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४४१ ।

पटौनी—संज्ञा पुं० [देश०] माँझी । मल्लाह ।

पटौहाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० पाटना + औहा (प्रत्य०)] १. पटा हुआ स्थान । २ पटाव के नीचे का स्थान । ३. वह कमरा जिसके ऊपर कोई और कमरा हो । ४. पटबंधक ।

पट्ट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीढ़ा । पाटा । २. पट्टी । तख्ती । लिखने की पटिया । ३. ताँबे आदि धातुओं की वह चिपटी पट्टी जिसपर राजकीय आज्ञा या दान आदि की सनद खोदी जाती थी । ४. किसी वस्तु का चिपटा या चौरस तल भाग । ५. शिला । पटिया । ६. घाव पर बाँधने का पतला कपड़ा । पट्टी । ७. वह भूमि संबंधी अधिकारपत्र जो भूमिस्वामी की ओर से असामी को दिया जाता है और जिसमें वे सब शर्तें लिखी होती हैं जिनपर वह अपनी जमीन उसे देता है । पट्टा । ८. ढाल । ६. पगड़ी । १०. दुपट्टा । ११. नगर । चौराहा । चतुष्पथ । १२. राजसिंहासन ।

यौ०—पट्टमहिषी ।

४. रेशम। १५. लाल रेशमी पगड़ी। १६. पाट। पटसन। १७. लड़ाई का वह पहनावा या कवच जिससे केवल धड़ ढका रहे और दोनों बाहें खुली रहें (कौटि०)। १८. उत्तम और बारीक रंगीन वस्त्र (को०)।

पट²—वि० [सं०] मुख्य। प्रधान।

पट्ट³—वि० [देश०] दे० 'पट' २।

पट्ट⁴—[अनु०] दे० 'पट' १।

पट्टक—संज्ञा पुं० [?] १. लिखने की पट्टी या पटिया। तख्ती। २ ताम्रपट्ट पर खुदी हुई राजाज्ञा या अन्य विषय। ४. दस्तावेज। इकरारनामा। ५. वह रेशमी वस्त्र जिसकी पगडी बनाई जाय। ६. घाव पर बाँधने की पट्टी। ७ पटका। कमरबंद।

पट्टकीट—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम का कीड़ा (को०)।

पट्टज—संज्ञा पुं० [सं०] टसर का कपडा। रेशमी वस्त्र।

पट्टण—संज्ञा पुं० [सं० पत्तन] दे० 'पट्टन'। उ०—काया माँहै पट्टण गाँव, काया माहै उत्तम ठाँव। —दादू० ६४५।

पट्टदेवी—संज्ञा पुं० [सं०] राजा की प्रधान रानी। पटरानी।

पट्टदोल—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपड़े का बना हुआ झूल या पलना।

पट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नगर। २. बड़ा नगर।

पट्टनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगरी। पुरी। (को०)।

पट्टमहिषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटरानी। प्रधान रानी।

पट्टरंग—संज्ञा पुं० [सं० पट्टरङ्ग] पटंग। बक्कम।

पट्टरंजक—संज्ञा पुं० [सं० पट्टरञ्जक] दे० 'पट्टरंग'।

पट्टरंजन—संज्ञा पुं० [सं० पट्टरञ्जन] दे० 'पट्टरंग'।

पट्टरंजनक—संज्ञा पुं० [सं० पट्टरञ्जनक] दे० 'पट्टरंग'।

पट्टराज—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट] महाराष्ट्र के उन ब्राह्मणों की उपाधि जो पुजारी का काम करते हैं।

पट्टराज्ञी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटरानी।

पट्टला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जनपद। जिला (को०)।

पट्टवस्त्र—वि० [सं०] रंगीन वस्त्र या रेशमी वस्त्र पहननेवाला [को०]।

पट्टवासा—वि० [सं० पट्टवासस्] दे० 'पट्टवस्त्र'।

पट्टशाक—संज्ञा पुं० [सं०] पटुवा।

पट्टांशुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का प्राचीन पहनावा। २. रेशमी कपड़ा (को०)।

पट्टा—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट, पट्टक] १ किसी स्थावर संपत्ति विशेषतः भूमि के उपयोग का अधिकारपत्र जो स्वामी की ओर से असामी, किरायेदार या ठेकेदार को दिया जाय।

विशेष—मालिक अपनी जायदाद जिस काम के लिये और जिन शर्तों पर देता है और जिनके विरुद्ध आचरण करने से उसे अपनी वस्तु वापस ले लेने का अधिकार होता है वे इसमें लिख दी जाती हैं। साथ ही उसकी संपत्ति से लाभ उठाने के बदले असामी से वह वार्षिक या मासिक धन या लाभांश उसे देने की जो प्रतिज्ञा करता है उसका भी इसमें निर्देश कर दिया जाता है। पट्टा साधारणतः दो प्रकार का होता है—(१) मियादी या मुद्दती और (२) इस्तमरारी। मियादी पट्टे के द्वारा मालिक एक विशेष अवधि तक के लिये असामी को अपनी चीज से लाभ उठाने का अधिकार देता है और उस अवधि के बीत जाने पर उसे उसको (असामी को) बेदखल कर देने का अधिकार होता है। इस्तमरारी, दवामी, या सर्वकालिक पट्टे से वह असामी को सदा के लिये अपनी वस्तु के उपभोग का अधिकार देता है। असामी की इच्छा होने पर वह इस अधिकार को दूसरों के हाथ कीमत लेकर बेच भी सकता है। जमीदारी का अधिकार जिस पट्टे के द्वारा एक निर्दिष्ट काल तक के लिये दूसरे को दिया जाता हैं उसे ठेकेदारी या मुस्ताजिरी पट्टा कहते हैं। असामी जिस पट्टे के द्वारा असल मालिक से प्राप्त अधिकार या उसका अंशविशेष दूसरे को देता है उसे शिकमी पट्टा कहते हैं। पट्टे की शर्तों का स्वीकृतिसूचक जो कागज असामी की ओर से लिखकर मालिक या जमीदार को दिया जाता है उसे कबूलियत कहते हैं। पट्टे पर मालिक के और कबूलियत पर असामी के हस्ताक्षर या सही अवश्य होनी चाहिए।

क्रि० प्र०—लिखना।

२. कोई अधिकारपत्र। सनद। ३ चमड़े या बानात आदि की बद्धी जो कुत्तों, बिल्लियों के गले मे पहनाई जाती है।

मुहा०—पट्टा तोड़ना या तोड़ाना = कुत्ते या बिल्ली का अपने पालनेवाले के यहाँ से भागकर अन्यत्र चला जाना।

४. एक गहना जो चूड़ियों के बीच मे पहना जाता है। ५. पीढ़ा। ६. कामदार जूतियों पर का वह कपड़ा जिसपर काम बना होता है। ७. घोड़े के मुँह पर का वह लंबा सफेद निशान जो नथुनों से लेकर मत्थे तक होता है। ८. घोड़ों के मस्तक पर पहनाने का एक गहना। ९ पुरुषों के सिर के बाल जो पीछे की ओर गिरे और बराबर कटे होते हैं। १०. चपरास। ११. वह वृत्ताकार पट्टी जिसमे चपरास टँकी रहती है। १२ कन्यापक्ष के नाई, धोबी, कहार आदि का वह नेग जो विवाह मे वरपक्ष से उन्हे दिलवाया जाता है।

क्रि० प्र०—चुकाना।—चुकवाना।

विशेष—देहात के हिंदुओं में यह रीति है कि नाई, धोबी, कहार, भंगी आदि की मजदूरी मे से उतना अंश नही देते जितना लड़की के अविवाहिता कन्या के हिस्से पडता है। कन्या का विवाह हो जाने पर यह सारी रकम इकट्ठी वर के पिता से उन्हे दिलवाई जाती है।

१५ महाराष्ट्र देश मे काम मे लाई जानेवाली एक प्रकार की तलवार।

पट्टाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण देश मे बसनेवाले प्राचीन पंडितो की उपाधि।

पट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश।

पट्टारक—वि० [सं०] पट्टार में उत्पन्न ।

पट्टाही—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटरानी ।

पट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी तख्ती । पटिया । २. छोटा ताम्रपट या चित्रपट । ३. कपड़े की छोटी पट्टी । ४. एक बिना लवा कपड़ा । ५. रेशम का फीता । ६. पठानी लोध । ७ पट्टी । घाव आदि पर बाँधने की पट्टी (को०) । ८. दस्तावेज । इकरारनामा (को०) ।

पट्टिकाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध ।

पट्टिकालोध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध । पट्टिकाख्य ।

पट्टिल—संज्ञा पुं० [सं०] पूतिकरंज । पलँग ।

पट्टिलोध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध ।

पट्टिलोध्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पट्टिलोध्र' ।

पट्टिश—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्राचीन शस्त्र या खाँड़ा ।

विशेष—इसकी लबाई की तीन मापें थीं । उत्तम ४ हाथ, मध्यम ३॥ हाथ और अधम ३ हाथ लबा होता था । मुठिया के ऊपर चलानेवाले की कलाई के बचाव के लिये लोहे की एक जाली बनी होती थी । धार इसमें दोनो ओर होती थी । आजकल जिसे 'पटा' कहते हैं वह इससे केवल लंबाई में कम होता है और सब बातें दोनों मे समान हैं ।

पट्टिशी—संज्ञा पुं० [सं०] १ पट्टिश बाँधनेवाला । २. पट्टिश से लड़नेवाला ।

पट्टिस—संज्ञा पुं० [सं०] पट्टिश । पट्टा ।

पट्टी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० **पट्टिका**] १ लकड़ी की वह लंबोतरी, चौरस और चिपटी पटरी जिसपर प्राचीन काल में विद्यार्थियों को पाठ दिया जाता था और अब प्रारंभिक छात्रों को लिखना सिखाया जाता है । पाटी । पटिया । तख्ती ।

मुहा०—**पट्टी पढ़ना** = गुरु से पाठ प्राप्त करना । सबक पढ़ना । **पट्टी पढ़ाना** = छात्र को पट्टी पर लिखकर पाठ देना । सबक पढ़ा देना ।

२. पाठ । सबक । जैसे,—मैने यह पट्टी नही पढ़ी है ।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।—पढ़ाना ।

३. उपदेश । शिक्षा । सिखावन । जैसे,—(क) यह पट्टी तुम्हें किसने पढ़ाई थी ? (ख) आजकल तुम किसकी पट्टी पढ़ते हो जी ? ४. वह शिक्षा जो बुरी नियत से दी जाय । वह उपदेश जो उपदेशक स्वार्थसाधन के लिये दे । बहकानेवाली शिक्षा । बहकावा । भुलावा । चकमा । झाँसा । दम । जैसे,—तुम उनको जरा पट्टी पढ़ा देना, फिर मेरा काम बन जायगा ।

क्रि० प्र०—देना ।—पढ़ाना ।

मुहा०—**पट्टी में आना** = किसी धूर्त के गुप्त अभिप्राय को न समझकर जो कुछ वह कहे उसे मान लेना । किसी के चकमे में आ जाना । किसी के दम में आ जाना ।

५. लकड़ी की वह बल्ली जो खाट के ढाँचे की लंबाई में लगाई जाती है । पाटी । ६. धातु, कागज या कपड़े की धज्जी ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—काटना ।—तराशना ।

७. कपड़े की वह धज्जी जो घाव या अन्य किसी स्थान में बाँधी जाय ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

८. पत्थर का पतला, चिपटा और लंबा टुकड़ा । ९. लकड़ी की लंबी बल्ली जो छत या छाजन के ठाठ में लगाई जाती है । १०. ठाठ की ओर की बल्लियों की पाँती । ११. सन की बुनी हुई धज्जियाँ जिनके जोड़ने से टाट तैयार होते हैं । १२. कपड़े की कोर या किनारी । १३. वह तख्ता जो नाव के बीचों बीच होता है । १४. एक प्रकार की मिठाई जिसमें चाशनी में अन्य चीजें जैसे चना, तिल आदि मिलाकर जमाते और फिर उसके चिपटे, पतले और चौकोर टुकड़े काट लिए जाते हैं । १५. सूती या ऊनी कपड़े की धज्जी जिसे सर्दी और थकावट से बचने के लिये टाँगों में बाँधते हैं ।

विशेष—यह चार पाँच अंगुल चौड़ी और प्राय. पाँच हाथ लंबी होती है । इसके एक सिरे पर मजबूत कपड़े की एक और पतली धज्जी टँकी रहती है जिससे लपेटने के बाद ऊपर की ओर कसकर बाँध देते हैं । अन्य लोग इसे केवल जाड़े में बाँधते हैं, पर सेना और पुलिस के सिपाहियों को इसे सभी ऋतुओं में बाँधना पड़ता है ।

१६. पंक्ति । पाँती । कतार । १७ माँग के दोनों ओर के कंघी से खूब बैठाए हुए बाल जो पट्टी से दिखाई पड़ते हैं । पाटी । पटिया । उ०—तेल औ पानी से पट्टी है सँवारी सिर पर । मुँह पै माँझा दिये जल्लादो जरी आती है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ७९० ।

विशेष—पट्टी अच्छी तरह बैठाने के लिये कुछ स्त्रियाँ बालों में भिगोया हुआ गोंद, अलसी का लुआब अथवा तेल और पानी भी लगाती हैं ।

क्रि० प्र०—बैठाना ।—सँवारना ।

मुहा०—**पट्टी जमाना** = माँग के दोनों ओर के बालों को गोंद या लुआब आदि की सहायता से इस प्रकार बैठाना कि वे सिर में बिलकुल चिपक जायँ और पट्टी से मालूम होने लगें । पट्टी बैठाना या सँवारना ।

१८ किसी वस्तु, विशेषत: किसी संपत्ति का, एक एक भाग । हिस्सा । भाग । विभाग । पत्ती । १९ ऐसी जमींदारी का एक भाग जो एक ही मूल पुरुष के उत्तराधिकारियों या उनके द्वारा नियत किए हुए व्यक्तियों की संयुक्त संपत्ति हो । किसी जमींदारी का उतना भाग जो एक पट्टीदार के अधिकार में हो । पट्टीदारी का एक मुख्य भाग । थोक का एक भाग । हिस्सा ।

यौ०—पट्टीदार । पट्टीदारी ।

मुहा०—**पट्टी का गाँव** = पट्टीदारी गाँव । वह गाँव जिसके बहुत से मालिक हों और इस कारण उसमे सुप्रबंध का अभाव हो । उ०—पट्टी का गाँव और टट्टी का घर अच्छा नहीं होता ।

२०. वह अतिरिक्त कर जो जमींदार किसी विशेष प्रयोजन के

निमित्त आवश्यक धन एकत्र करने के लिये असामियों पर लगाता है। नेग। अबवाब।

पट्टी²—संज्ञा स्त्री० [सं० पट] घोडे की वह दौड जिसमें वह बहुत दूर तक सीधा दौड़ता चला जाय। लंबी और सीधी सरपट। जैसे,—घोड़े को पट्टी दो।

पट्टी³—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पठानी लोध। २ एक शिरोभूषण। एक गहना जो पगड़ी मे लगाया जाता है। ३ तलसारक। तोबड़ा। ४ घोडे की तंग। †५ एक आभूषण। उ०—बाहों में बहु बहुटे, जोशन बाजूबंद, पट्टी बाँध सुषम, गहने ले गँवारियो के धन।—ग्राम्या, पृ० ४०।

पट्टीदार—संज्ञा पुं० [हिं० पट्टी + फ़ा० दार] १ वह व्यक्ति जिसका किसी संपत्ति मे हिस्सा हो। वह जो किसी संपत्ति के अंश का स्वामी हो। हिस्सेदार। २. पट्टीदारी के मालिकों में से एक। संयुक्त संपत्ति के अंशविशेष का स्वामी। ३ वह व्यक्ति जिसे किसी संपत्ति में हिस्सा बँटाने का अधिकार हो। हिस्सा बँटाने के लिये झगड़ा करने का अधिकार रखनेवाला। ४. वह व्यक्ति जो किसी विषय मे दूसरे के बराबर अधिकार रखता हो। वह व्यक्ति जिसकी राय की उपेक्षा न की जा सकती हो। बराबर का अधिकारी। समान अधिकारयुक्त। जैसे,—क्या आप कोई मेरे पट्टीदार हैं कि जो मैं करूँ वह आप भी करें।

पट्टीदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पट्टीदार] १. पट्टी होने का भाव। बहुत से हिस्से होना। किसी वस्तु का अनेक की संपत्ति होना। जैसे,—इस गाँव मे तो खासी पट्टीदारी है। २. पट्टीदार होने का भाव। बराबर अधिकार रखने का भाव। हिस्सेदारी।

मुहा०—**पट्टीदारी अटकना** = ऐसा झगड़ा उपस्थित होना जिसका कारण पट्टी हो। पट्टीदारी विषयक या पट्टीदारी के कारण कोई झगड़ा खड़ा होना। पट्टीदारी के कारण विरोध होना। जैसे,—मेरे आपके कोई पट्टीदारी थोड़े ही अटकी है। **पट्टीदारी करना** = (१) किसी के बराबर अधिकार जताना। पट्टीदार होने के कारण किसी के काम मे रुकावट करना। पट्टीदारी के बल पर किसी का विरोध करना। पट्टीदारी के हक पर अड़ना। जैसे,—आप तो बात बात मे पट्टीदारी करते हैं। (२) बराबरी करना। जो कोई एक करे उसे आप भी करना।

३ वह जमींदारी जो एक ही मूल पुरुष के उत्तराधिकारियों या उनके नियत किए हुए व्यक्तियों की संयुक्त संपत्ति हो। वह जमींदारी जिसके बहुत से मालिक होने पर भी जो अविभक्त संपत्ति समझी जाती हो। भाई चारा।

विशेष—पट्टीदारी जमींदारी मे अनेक विभाग और उपविभाग होते हैं। प्रधान विभाग को 'थोक' और उसके अंतर्गत उपविभागों को 'पट्टी' कहते हैं। प्रत्येक पट्टी का मालिक अपने हिस्से की जमीन की स्वतंत्र व्यवस्था करता है और सरकारी कर देता है। पर किसी एक पट्टी में मालगुजारी बाकी रह जाने पर वह सारी जायदाद से वसूल की जा सकती है। प्राय: प्रत्येक थोक मे एक एक 'लंबरदार' होता है। जिस पट्टीदारी की सारी जमीन हिस्सेदारों मे बँट गई हो उसे मुकम्मल या पूर्ण पट्टीदारी और जिसमें कुछ जमीन तो उनमें बाँट दी गई हो पर कुछ सरकारी कर और गाँव की व्यवस्था का खर्च देने के लिये साझे में ही अलग कर ली गई हो उसे नामुकम्मल या अपूर्ण पट्टीदारी कहते हैं। नामुकम्मल पट्टीदारी में जब कभी अलग की हुई जमीन का मुनाफा सरकारी कर देने के लिये पूरा नहीं पडता तब पट्टीदारो पर अस्थायी कर लगाकर वह पूरा किया जाता है।

पट्टीवार¹—क्रि० वि० [हिं० पट्टी + फा० वार] प्रत्येक पट्टी का अलग अलग। पट्टी के भेद के अनुसार या साथ। इस प्रकार जिसमें हर पट्टी का हिसाब अलग अलग आ जाय। जैसे,—मुझे एक पट्टीवार जमाबंदी तैयार कराना है।

पट्टीवार²—वि० (बही) जिसमे प्रत्येक पट्टी का हाल या हिसाब अलग अलग हो। (बही या लेख) जो पट्टी के भेद को ध्यान में रखकर तैयार किया गया हो। जैसे,– (क) पट्टीवार खतौनी या जमाबंदी। (ख) पट्टीवार वासिल बाकी।

पट्टीश, पट्टीस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पट्टिश' [को०]।

पट्टू¹—संज्ञा पुं० [हिं० पट्टी] १ एक ऊनी वस्त्र जो पट्टी के रूप में बुना जाता है। काश्मीर, अल्मोड़ा आदि पहाड़ी प्रदेशों में यह बनता है। यह खूब गरम होता है पर ऊन इसका कडा और मोटा होता है। उ०—डाकुओं ने सत्तू और पट्टू (ऊनी चादर) देखकर उसे छोड दिया। —किन्नर०, पृ० १०५। २. एक प्रकार का चारखाना जिसमे धारियाँ होती हैं।

पट्टू²—संज्ञा पुं० [देश०] सुआ। तोता। शुक।

पट्टेदार—वि० [हिं० पट्टा+दार] सँवारे सजाए हुए (बाल)। पट्टी से युक्त। पट्टी काट कर सजाए हुए। उ०—पट्टेदार बालों पर तेल मे भरी पुरानी काली टोपी, कुटिलता मे भरी गोल गोल आँखें किसी विकट भविष्य की सूचना दे रही थीं।—तितली पृ० ११८।

पट्टेपछाड़—संज्ञा पुं० [हिं० पट + पछाड़ना] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यह पेंच उस समय चित्त करने के लिये काम मे लाया जाता है जिस समय जोड़ कुहनियाँ टेककर पट पड़ा हो और इस कारण उसे चित्त करने में कठिनाई पडती हो। इसमें उसके एक हाथ पर जोर से थाप मारी जाती है और साथ ही उसकी जाँघ को इस जोर से खींचा जाता है कि वह उलटकर चित हो जाता है। यदि थाप दाहिने हाथ पर मारी जाय तो बाईं जाँघ और यदि बाएँ हाथ पर मारी जाय तो दाहिनी जाँघ खींचनी पडेगी।

पट्टेबैठक—संज्ञा पुं० [हिं० पट + बैठक] कुश्ती का एक पेच जिसमे जोड़ का एक हाथ अपनी जाँघो मे दबाकर और अपना एक हाथ उसकी जाँघो में डालकर अपनी छाती का बल देते हुए उसे चित फेंक दिया जाता है।

पट्टैत¹—संज्ञा पुं० [हिं० पटैत] १. पटैत। २. बेवकूफ।

पट्टैत²—संज्ञा पुं० [हिं० पट्टा + ऐत (प्रत्य०)] वह कबूतर जो बिलकुल लाल, काला या नीला हो और जिसके गले में सफेद कंठा हो।

पट्ठमान(पु)—वि० [सं० पठ्यमान] पढ़ने योग्य। जिसका पढ़ना उचित हो। उ०—अपट्ठमान पापग्रंथ पट्ठमान वेद वै।—केशव (शब्द०)।

पट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० पुष्ट, प्रा० पुट्ठ] [स्त्री० पठिया] १. जवान। तरुण। पाठा।

यौ०—जवान पट्ठा।

२. मनुष्य, पशु आदि चर जीवों का वह बच्चा जिसमें यौवन का आगमन हो चुका हो पर पूर्णता न आई हो। नवयुवक। उदंत। जैसे,—अभी तो वह बिलकुल पट्ठा है।

विशेष—चौपायों में घोड़े. पक्षियों में कबूतर, उल्लू और मुर्ग तथा सरीसृपों में साँप के यौवनोन्मुख बच्चे को पट्ठा कहते हैं।

३ कुश्तीबाज। लड़ाका। जैसे,—उस पहलवान ने बहुत से पट्ठे तैयार किए है। ४. ऐसा पत्ता जो लंबा, दलदार या मोटा हो। जैसे, घीकुवार या तंबाकू का पट्ठा। ५. वे तंतु जो मांसपेशियों को परस्पर और हड्डियों के साथ बाँधे रहते हैं। मोटी नस। स्नायु।

मुहा०—पट्ठा चढ़ना = किसी नस का तन जाना। नस पर नस चढ़ना। पट्ठों में घुसना = गहरी दोस्ती पैदा करना। मत रंग बनना।

६. एक प्रकार का चौड़ा गोटा जो सुनहला और रुपहला दोनों प्रकार का होता है। उ०—झूठे पट्ठे की है मुवाफ पड़ी चोटी में। देखते ही जिसे आँखों में तरी आती है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७६०। ७. अतलस, सासनलेट आदि की पट्टी पर बेल बुनकर बनाई हुई गोट। ८. पेड़ू के नीचे कमर और जाँघ के जोड़ का वह स्थान जहाँ छूने से गिल्टियाँ मालूम होती है।

पट्ठापछाड़—वि० [हिं० पट्ठा + पछाड़ना] इतनी बलवती (स्त्री) जो पुरुष को पछाड़ दे। खूब हृष्टपुष्ट और बलवती (स्त्री)। जैसे,—वह तो खासी पट्ठेपछाड़ औरत है।

पट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पट्ठा] दे० 'पठिया'।

पठगा†—संज्ञा पुं० [देश०] अवलंब। आश्रय। सहारा। उ०—तीन लोक रिसियाय सकल सुरनर और नारी। मोर न बाँके बार पठगा पाया भारी।—पलटू०, भा० १, पृ० ५।

पठंत—वि० [सं० पठन] जिसमें पर रचित और कंठस्थी कृत काव्य आदि का पाठ हो। उ०—पठंत कविसंमेलन आदि की सहायता से छात्रों को काव्य पढ़ने और कविता कंठस्थ करने के लिये प्रोत्साहित और प्रेरित किया जा सकता है।—भाषा शि०, पृ० ६६।

पठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाठ] वह जवान बकरी जो ब्याई न हो। पाठ।

पठक¹—संज्ञा पुं० [सं०] पढ़नेवाला। पाठ करनेवाला।

पठक²—संज्ञा पुं० [सं० पट्टकृत] तहसील। तालुका। उ०—भुक्तिय अथवा प्रदेश कई विषयों (जिलों) में बँटे रहते थे, और विषय फिर कई पठकों (तहसील अथवा तालुको) मे विभाजित थे।—आदि०, पृ० ४४५।

यौ०—पठकपति = तहसीलदार। तालुकेदार। उ०—विषयो मुख्य अधिकारी विषयपति तथा पठकों के पठकपति कहलाते थे।—आदि०, पृ० ४४५।

पठन—संज्ञा पुं० [सं०] पढ़ने की क्रिया। पढ़ना।

यौ०—पठन पाठन = पढ़ना पढाना।

पठनीय—वि० [सं०] पढ़ने योग्य।

पठनेटा—संज्ञा पुं० [हिं० पठान + एटा (= बेटा) (प्रत्य०)] पठान का लड़का। वह जो पठान जाति में उत्पन्न हुआ हो उ०—परे रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत हैं।—भूषण (शब्द०)

पठमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पठमञ्जरी] श्री राग की चौथी रागिनी। इसका गान समय एक पहर दिन के बाद है विशेष—दे० 'पटमंजरी'।

पठरा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पटरा'। उ०—जहाँपर रेतक लोहदंड को तितर बितर किया था—उस स्थान पर पठ उग पड़े।—कबीर म०, पृ० २४५।

पठवना†—वि० [प्रा० पट्ठवण] पठाया हुआ। प्रेषित।

यौ०—अठवन पठवन† = स्थानिक और भेजा या पठाया हुआ प्रेत आदि। उ०—सतगुरु शब्द सहाई। निकट गए तन रो न ब्यापै पाप ताप मिट जाई। अठवन पठवन दीठ न ला उलटे तेहि घर खाई।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८।

पठवना†—क्रि० स० [सं० प्रस्थान] भेजना। रवाना करना।

पठवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० पठाना का प्रे० रूप] भेजवाना भेजने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को भेजने मे प्रवृत्त करना।

पठान¹—संज्ञा पुं० [पश्तो पुख्ताना] एक मुसलमान जाति जो अफगानिस्तान के अधिकाश और भारत के सीमांत प्रदेश पंजाब तथा रुहेलखंड आदि में बसती है। इस जाति के लोग कट्टर, क्रूर, हिंसाप्रिय और स्वाधीनताप्रिय होते हैं।

विशेष—यह जाति अनेक संप्रदायों और शाखाओं में विभक्त है जिनमें से प्रत्येक के नाम के साथ वंश या संप्रदाय का सूचक 'खेल', 'जई' आदि कोई न कोई शब्द लगा रहता है। जैसे उनका खेल; गिलजई आदि। प्रत्येक संप्रदाय में एक सरदार होता है जिसको 'मलिक' कहते हैं। सीमात प्रदेश के पठानों मे यही सरदार शासक होता है। सीमात प्रदेश के पठान प्रायः असभ्य हैं। आखेट, चोरी और डकैती ही उनकी जीविका के साधन हैं। अफगानिस्तान के पठान अपेक्षाकृत सभ्य हैं। भारत के पठान उपर्युक्त दोनों ही स्थानों के पठानों से अधिक सभ्य हैं और प्रायः खेती या नौकरी करके अपनी जीविका चलाते हैं। धर्म की अपेक्षा रूढ़ि और सभ्यता की अपेक्षा स्वाधीनता पठानों को अधिक प्रिय है।

नीति अनीति का वे बहुत कम विचार करते हैं। पठान प्रायः लंबे चौड़े, डील डौलवाले, गोरे और क्रूराकृति होते हैं। जातिबंधन इनमें विशेष दृढ़ है। एक संप्रदाय के पठान का दूसरे में ब्याह नहीं हो सकता। स्त्रियों की सतीत्वरक्षा का इन्हें बहुत ज्यादा ख्याल रहता है। इनके आपस के अधिकांश झगड़े स्त्रियों ही के लिये होते हैं। इनके उत्तराधिकार आदि के झगड़े कुरान के अनुसार नहीं, वरन् रूढ़ियों के अनुसार फैसल होते हैं, जो भिन्न भिन्न संप्रदायों में भिन्न भिन्न हैं।

पठानों का प्राचीन इतिहास अनिश्चयात्मक है। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिकांश उन हिंदुओं के वंशज हैं जो गांधार, कांबोज, वाह्लीक आदि में रहते थे। फारस के मुसलमान होने के बाद इन स्थानों के निवासी क्रमशः मुसलमान हुए। इनमें से अधिकांश राजपूत क्षत्रिय थे। परमार आदि बहुत से राजपूत वंश अपनी कई शाखाओं को सिंधपार बसनेवाले पठानों में बतलाते हैं। पूर्वज कहाँ से आए और कौन थे, इस विषय में कोई कल्पना अधिक साधार नहीं है। इनकी भाषा 'पश्तो' प्रायः प्राकृत ही से निकली है। पीछे तुर्क और यहूदी जातियाँ भी अफगानिस्तान में आकर बस गईं और पुराने पठानों से इस प्रकार हिल मिल गईं कि अब किसी पठान का वंश निश्चय करना प्रायः असंभव हो गया है। पठान शब्द की व्युत्पत्ति भी अनिश्चयात्मक है। इस विषय में अधिक ग्राह्य कल्पना यह है कि पहले पहल अफगानिस्तान के 'पुख्ताना' स्थान में बसने के कारण इस जाति को 'पुख्तून' और इसकी भाषा को 'पुख्तू' कहते थे। फिर क्रमशः जाति को पठान और भाषा को पश्तो कहने लगे।

पठान³—संज्ञा पुं० [?] जहाज या नाव का पेंदा। (लश०)।

पठाना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रस्थान, प्रा० पट्ठान] भेजना।

पठानिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० पठान + इन (प्रत्य०)] दे० 'पठानी'।

पठानी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पठान] १. पठान जाति की स्त्री। पठान स्त्री। २. पठान होने का भाव। ३ पठान जाति की चरित्रगत विशेषता। क्रूरता, शूरता, रक्तपातप्रियता आदि पठानों के गुण। पठानपन।

पठानी²—वि० [हिं० पठान] १. पठानों का। जैसे, पठानी राज्य। २. जिसका पठान या पठानों से संबंध हो। पठानों से संबंध रखनेवाला।

पठानीलोध—संज्ञा पुं० [सं० पट्टिकालोध्र] एक जंगली वृक्ष जिसकी लकड़ी और फूल औषध के और पत्तियाँ और छाल रंग बनाने के काम में आती हैं।

विशेष—यह उगाया या रोपा नहीं जाता, केवल जंगली रूप में पाया जाता है। इसकी छाल को उबालने से एक प्रकार का पीला रंग निकलता है जो कपड़ा रँगने के काम में लाया जाता है। बिजनौर, कुमाऊँ और गढ़वाल के जंगलों में इसके वृक्ष बहुतायत से पाए जाते हैं। चमड़े पर रंग पक्का करने और अबीर बनाने में भी इसकी छाल का उपयोग किया जाता है। लोध के दो भेद होते हैं। एक को 'पठानी लोध' और दूसरे को केवल 'लोध' कहते हैं। औषध के काम में 'पठानी लोध' ही अधिक आता है। दोनों लोधों को वैद्यक में कसैला, शीतल, वातकफनाशक, नेत्रहितकारी, रुधिर और विष के विकारों का नाशक कहा है। लोध का फूल कसैला, मधुर, शीतल, कड़ुवा, ग्राहक और कफपित्तनाशक माना गया है।

पर्या०—पट्टिकालोध्र। क्रमुक। स्थूलवल्कल। जीर्णपत्र। बृहत्पत्र। पट्टी। लाक्षाप्रसादन। पट्टिकाख्य। पट्टिलोध्र। पट्टिका। पट्टिलोध्रक। वल्कलोध्र। बृहद्दल। जीर्णबुध्न। बृहद्वल्क। शीर्णपत्र। अक्षिभेषज। शावर। श्वेतलोध्र। गालव। बहुलत्वच्। लाक्षाप्रसाद। वल्क।

पठार¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी जाति।

पठार²—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तार] ऊँचा और लंबा चौड़ा मैदान जिसके नीचे का भाग ढालवाँ होता है। उ०—तीसरा भाग दक्षिण का पठार कहलाता है। यहाँ पुराने समय से ही विभिन्न शासक राज्य करते थे।—पू० म० भा०, पृ० ६।

पठावन†—संज्ञा पुं० [हिं० पठावा] वह जो किसी के भेजने से कहीं जाय। वह मनुष्य जो किसी का भेजा हुआ कहीं गया या आया हो। दूत। संदेशवाहक।

पठावनि, पठावनी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पठाना] १. किसी को कहीं भेजने का भाव। किसी को कहीं कोई वस्तु या संदेश पहुँचाने के लिये भेजना। २ किसी के भेजने से कहीं जाने का भाव। किसी के भेजने से कहीं कुछ लेकर जाना। ३. भेजने या पहुँचाने की मजदूरी। उ०—तेई पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु ख्वैहों न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै।—तुलसी (शब्द०)।

पठावर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

पठि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पढ़ने की क्रिया। पठन। पढ़ना। अध्ययन [को०]।

पठित—वि० [सं०] १. पढ़ा हुआ (ग्रंथ)। जिसे पढ़ चुके हों। अधीत। २ जिसने पढ़ा हो। पढ़ा लिखा। शिक्षित।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार कुछ लोग करते हैं। जैसे, पठित समाज। परंतु वास्तव में यह ठीक नहीं है।

पठियर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाट] वह बल्ली या पटिया जो कुएँ के मुँह पर बीचोबीच या किसी एक ओर इसलिये रख दी जाती है कि पानी निकालनेवाला उसी पर पैर रखकर पानी निकाले। इसपर खड़े होकर पानी निकालने से घड़े के कुएँ की दीवार से टकराने का भय नहीं रहता।

पठिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० पट्ठा + इया (स्त्रीबोधक प्रत्य०)] यौवनप्राप्त स्त्री। युवती और हृष्टपुष्ट स्त्री। जवान और तगड़ी स्त्री। युवती मादा।

पठोर—संज्ञा स्त्री० [हिं० पट्ठा + ओर (प्रत्य०)] १. जवान पर बिना ब्याई। २. जवान पर बिना ब्याई मुर्गी।

पठौनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पठाना + औनी (प्रत्य०)] १. किसी को कुछ देकर कहीं भेजने की क्रिया या भाव। कोई वस्तु या

संदेश पहुँचाने के लिये कहीं भेजना। उ०—खेल ले नैहरवाँ दिन चार। पहिली पठौनी तीन जने आए नौवा बाम्हन बार।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४।

क्रि० प्र०—भेजना।

२. किसी की कोई चीज लेकर कहीं जाने की क्रिया या भाव। किसी के भेजने से कहीं जाना।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।

पठ्य—वि० [सं० पाठ्य] दे० 'पाठ्य'।

पठ्यमान पु—वि० [सं० पाठ्य+मान (प्रत्य०)] पढ़ा जाने के योग्य। सुपाठ्य।

पड़कुलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] पंडुक पक्षी। पेंडुकी। उ०—चीड़ों की उर्ध्वंग भुजाएँ भटका सा पड़कुलिया का स्वर।—इत्यलम्, पृ० ६६।

पड़छती—संज्ञा पुं० [सं० पटच्छदि] १ वह छोटा छप्पर या टट्टी जिसे बरसात के आरंभ मे कच्ची दीवार पर इसलिये लगा देते हैं कि बौछार से वह कट न जाय। भीत की रक्षा के लिये लगाया जानेवाला छप्पर या टट्टी।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

२. कमरे आदि के बीच मे लकड़ी के खंभों पर या दो दीवारों के बीच मे तख्ते या लट्ठे आदि ठहराकर बनाई हुई पाटन जिसपर चीज असबाब रखते हैं। टाँड़।

पड़छत्ती—संज्ञा पुं० [सं० पटच्छदि] दे० 'पड़छती'।

पड़त पु—संज्ञा स्त्री० [हिं० पड़ना] दे० 'पड़ता'।

पड़ता—संज्ञा पुं० [हिं० पड़ना] १. किसी वस्तु की खरीद या तैयारी का दाम। किसी माल को खरीदने, तैयार कराने या लाने आदि मे पड़ा हुआ खर्च। लागत। सर्फे की कीमत।

मुहा०—पड़ता खाना या पड़ना=लागत और अभीष्ट लाभ मिल जाना। खर्च और मुनाफा निकल जाना। जैसे,—(क) आपके साथ सौदा करने में हमारा पड़ता नहीं खायगा। (ख) इतने पर इस वस्तु के बेचने मे हमारा पड़ता नहीं खाता। पड़ता फैलाना=किसी चीज को तैयार करने, खरीदने और मँगाने आदि में जो खर्च पड़ा हो उसे देखते हुए उसका भाव निश्चित करना। वस्तु की संख्या और उसके प्राप्त करने में पड़े हुए खर्च की रकम देखते हुए एक एक वस्तु का मूल्य मालूम करना। पड़ता निकालना या बैठाना=दे० 'पड़ता फैलाना'।

२ दर। शरह। ३. भूकर की दर। लगान की शरह। ४. सामान्य दर। औसत। औसत शरह। एक एक वस्तु या एक एक निश्चित काल का मूल्य या आमदनी जो सब वस्तुओं के मूल्य या पूरे काल में वस्तु की संख्या या कालविभाग की संख्या को भाग देने से निकले। जैसे,—कलकत्ते में आपकी आय का क्या पड़ता है।

मुहा०—पड़ता रहना=औसत होना।

पड़ताल—संज्ञा स्त्री० [सं० परितोलन] १ पड़तालना क्रिया का भाव। किसी वस्तु की सूक्ष्म छानबीन। भली भाँति जाँच या देख भाल। गौर के साथ किसी चीज की जाँच। अन्वीक्षण। अनुसंधान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विशेष—इस अर्थ मे यह शब्द प्रायः 'जाँच' के साथ यौगिक रूप में बोला जाता है, अकेले क्वचित् प्रयुक्त होता है। जैसे,—वे हिसाब की जाँच पड़ताल करने आए थे।

२. गाँव अथवा नहर के पटवारी द्वारा खेतों की एक विशेष प्रकार की जाँच।

विशेष—यह जाँच खरीफ, रबी और फस्ल जायद नामक तीनों कालों के लिये अलग अलग तीन बार होती है। खेत में कौन सी चीज बोई गई है, किसने बोई है, खेत सींचा गया है या नहीं, सींचा गया है तो कहाँ से जल लाकर सींचा गया है, आदि बातें इस जाँच में लिखी जाती हैं। गाँव का पटवारी प्रत्येक पड़ताल के बाद जिंसवार एक नकशा बनाता है। इस नकशे से माल के अधिकारियों को यह मालूम होता है कि इस वर्ष कौन सी चीज कितने बीघे बोई गई है, उसकी क्या अवस्था है और वह कितनी उपजेगी, आदि।

३. मार। (क्व०)।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुधा बालकों को ही मारने पीटने के संबंध में होता है।

पड़तालना—क्रि० स० [हिं० पड़ताल+ना (प्रत्य०)] पड़ताल करना। जाँचना। अनुसंधान करना। छान बीन करना।

पड़ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० पड़ना] बिना जुती हुई भूमि। पड़ी हुई जमीन। भूमि जिसपर कुछ काल से खेती न की गई हो।

विशेष—माल के कागजात में पड़ती के दो भेद किए जाते हैं—पड़ती जदीद और पड़ती कदीम। जो भूमि केवल एक साल से न जोती बोई गई हो उसको पड़ती जदीद और जो एक से अधिक सालों से न जोती बोई गई हो उसको पड़ती कदीम मानते हैं।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—पड़ना।—रखना।

मुहा०—पड़ती उठना=(१) पड़ती का जोता जाना। पड़ती पर खेती होना। जैसे,—यह पड़ती बहुत दिनों पर उठी है। (२) पड़ती के जोते जाने का प्रबंध होना। पड़ती खेत का बंदोबस्त हो जाना। जैसे,—इस साल हमारी बहुत सी पड़ती उठ गई। पड़ती उठाना=(१) पड़ती को जोतना। पड़ती पर खेती आरंभ करना। जमींदार का इस आशा पर किसी पड़ती को खेती के योग्य बनाना और उसपर खेती आरंभ करना कि दो एक साल के बाद कोई असामी उसे ले लेगा। जैसे,—इस साल मैंने अपनी बहुत सी पड़ती उठाई है। (२) पड़ती का बंदोबस्त कर देना। पड़ती को लगान पर काश्तकार को देना। पड़ती छोड़ना=किसी खेत को कुछ समय तक यों ही छोड़ना, उसे जोतना बोना नहीं जिसमें उसकी

उर्वरा शक्ति बढ़ जाय। जैसे,—इस साल इस गाँव में बहुत सी जमीन पडती छोड़ी गई है।

पड़दक्षिणा†—सज्ञा स्त्री० [सं० प्रदक्षिणा] दे० 'प्रदक्षिणा'। उ०—दे पड़दक्षिणा चढ़े अकाश। पारस परसु मिले प्रभ तास।—प्राण०, पृ० १६८।

पड़दार†—वि० [सं० प्रतिहार या देश०] सुनहली छडीवाले चोबदार। छडीदार। आसा बरदार। उ०—मत मिलतां आदर अदब, करे कमंध विण पार। सेव खड़ा गिण देवसम, गुरजदार पड़दार।—रा० रू०, पृ० १०६।

पड़दा🔘†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परदा'। उ०—पड़दा जरी बाफतं कै बनाए। ध्वजा तोरणं सर्व कै गेह छाए।—ह० रासो, पृ० १६।

पड़ना—क्रि० अ० [सं० पतन, प्रा० पडन] एक स्थान से गिरकर, उछलकर अथवा और किसी प्रकार दूसरे स्थान पर पहुँचना या स्थित होना। कही से चलकर कही, प्रायः ऊँचे स्थान से नीचे आना। गिरना। पतित होना। जैसे,—जमीन पर पानी या ओला पड़ना, सिर पर पत्थर पडना, चिराग पर हाथ पड़ना, साँप पर निगाह पड़ना, कान में आवाज पड़ना, कुरते पर छींटा पड़ना, बिसात पर पासा पड़ना आदि।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—'गिरना' और पड़ना के अर्थों में यह अंतर है कि पहली क्रिया का विशेष लक्ष्य गति व्यापार पर और दूसरी का प्राप्ति या स्थिति पर होता है। अर्थात् पहली क्रिया वस्तु का किसी स्थान से चलना या रवाना होना और दूसरी क्रिया किसी स्थान पर पहुँचना या ठहरना सूचित करती है। जैसे—पहाड़ के पत्थर गिरना और सिर पर पत्थर पड़ना।

२. (कोई दुःखद घटना) घटित होना। अनिष्ट या अवांछनीय वस्तु या अवस्था प्राप्त होना। जैसे, डाका पड़ना, अकाल पड़ना, मुसीबत पड़ना, ईश्वरीय कोप पड़ना, इत्यादि।

मुहा०—(किसी पर) पड़ना = विपत्ति या मुसीबत आना। सकट या कठिनाई प्राप्त होना। जैसे,—(क) जैसी मुझ पर पड़ी ईश्वर वैसी किसी पर न डाले। (ख) जिसपर पड़ती है वही जानता है।

३. बिछाया जाना। फैलाया जाना। रखा जाना। डाला जाना। जैसे, दीवार पर छप्पर पड़ना, जनवासे में बिस्तर या भोज में पत्तल पडना। ४ छोड़ा या डाला जाना। पहुँचना या पहुँचाया जाना। दाखिल होना। प्रविष्ट होना। जैसे, पेट मे रोटी पड़ना, दाल में नमक पडना, कान में शब्द या आँख में तिनका पडना, दूध में पानी पड़ना, किसी के घर में पड़ना (= ब्याही जाना), फेर मे पड़ना, इत्यादि।

संयो० क्रि०—जाना।

५. बीच में आना या जाना। हस्तक्षेप करना। दखल देना। जैसे,—तुम चाहे जो करो, हम तुम्हारे मामले में नही पडते। ६. ठहरना। टिकना। विश्राम करने या रात बिताने के लिये अवस्थान करना। डेरा डालना। पडाव करना (बरात या सेना के लिये बोलते हैं)। जैसे,—आज बरात कहाँ पड़ेगी ?

मुहा०—पड़ा होना = (१) एक स्थान में कुछ समय तक स्थित रहना। एक ही जगह पर बने रहना। जैसे,—(क) वे तीन रोज तक तो वहीं पडे हुए थे, आज गए हैं। (ख) वह दस रुपए महीने पर बरसों से पड़ा है (२) एक ही अवस्था मे रहना। रखा रहना। धरा रहना। अव्यवहृत रहना। जैसे,—यह किताब तुम्हारे पास एक महीने से पडी है, पर शायद तुमने एक पन्ना भी न उलटा होगा। (३) बाकी रहना। शेष रहना। जैसे,—(क) सारी किताब पढ़ने को पडी है। (ख) अभी ऐसे सैकडो लोग पड़े होंगे जिनके कानों में यह शुभ सदेश नही पडा।

७ विश्राम के लिये सोना या लेटना। कल लेना। आराम करना। जैसे,—थोड़ी देर पड़े रहो तो तबीअत हलकी हो जायगी।

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।

मुहा०—पड़े रहना या पड़ा रहना = बराबर लेटे रहना। बिना कुछ काम किए लेटे रहना। लेटकर बेकारी काटना। निकम्मा रहना। जैसे,—दिन भर पड़े रहते हो, क्या तुम्हारी तबीअत भी नही घबराती ?

८. बीमार होना। खाट पर पड़ना। जैसे,—(क) अबकी तुम किस बुरी साइत मे पड़े कि अबतक न उठे। (ख) मै तो आज चार रोज से पडा हूँ, तुमने कल बाजार मे मुझे कैसे देखा ?

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।

९. मिलना। प्राप्त होना। जैसे,—तुम यह किताब लोगे, तभी तुम्हें चैन पड़ेगा।

संयो० क्रि०—जाना।

१०. पड़ता खाना। जैसे,—(क) चार आने मे नहीं पड़ता, नहीं तो बेच न देता। (ख) हमें वह आलमारी १२) में पड़ी है। (ग) इकट्ठा सौदा सस्ता पडता है।

सं० क्रि०—जाना।

११ आय, प्राप्ति आदि का औसत होना। पडता होना। जैसे,—यहाँ मुझे एक रुपए रोज से अधिक नही पडता।

सं० क्रि०—जाना।

१२. रास्ते में मिलना। मार्ग में मिलना। जैसे,—(क) तुम्हारे रास्ते में चार नदियाँ और पाँच पड़ाव पडेगे। (ख) घर से निकलते ही काना पड़ा, देखे कुशल से पहुँचते हैं या नही। १३. उत्पन्न होना। पैदा होना। जैसे,—बाल मे दाने पड़ना। फल में कीड़े पड़ना। १४ स्थित होना। जैसे—(क) बगीचे मे डेरा पड़ा है। (ख) इस कुंडली के सातवे घर में मगल पड़ा है। १५. सयोगवश होना।

उपस्थित होना। प्रसंग में आना। जैसे, बात पड़ना, मौका पड़ना, साथ पड़ना, काम पड़ना, पाला पड़ना, साबिका पड़ना, इत्यादि। जैसे,—जब कभी बात पड़ती है वे तुम्हारी तारीफ ही करते हैं।

विशेष- जिन जिन स्थलों में 'होना' क्रिया बोली जाती है उनमें से बहुत से स्थलों मे 'पड़ना' का भी प्रयोग हो सकता है। 'पड़ना' के प्रयोग मे विशेषता यही होती है कि इससे व्यापार का अधिक संयोगवश होना प्रकट होता है। 'साथ हुआ' और 'साथ पडा' में से पिछला क्रियाप्रयोग व्यापार मे संयोग का भाव सूचित करता है।

१६. जाँच या विचार करने पर ठहरना। पाया जाना। जैसे,—(क) दोनों मे लाल घोड़ा कुछ मजबूत पडता है। (ख) यह धान उससे कुछ बीस पड़ता है। १७. (देशांतर या अवस्थातर) होना। (पहली स्थिति या दशा त्यागकर नई स्थिति या दशा को) प्राप्त होना। (बदलकर) होना। जैसे, नरम पड़ना, ठंढा पड़ना, ढीला पड़ना, इत्यादि।

विशेष—'पड़ना' के प्रयोग से जिस दशांतर की प्राप्ति सूचित की जाती है वह प्राय. पूर्वदशा से अपेक्षाकृत हीन या निकृष्ट होती है। जहाँ पहली स्थिति से अच्छी स्थिति में जाने का भाव होता है वहाँ इसका व्यवहार कम स्थलो पर होता है।

१८. मैथुन करना। संभोग करना (पशुओं के लिये)। जैसे,—यह घोड़ा जब जब किसी घोड़ी पर पडता है तब तब बीमार हो जाता है। १९. अत्यत इच्छा होना। धुन होना। चिंता होना। जैसे,—तुम्हे तो यही पड़ रही है कि किस प्रकार इस साल बी० ए० हो जायँ।

मुहा०—**क्या पड़ी है**=क्या प्रयोजन है। क्या मतलब है। जैसे,—तुमको क्या पड़ी है जो तुम उसके लिये इतना कष्ट उठाते हो। उ०—परी कहा तोहि प्यारि पाप अपने जरि जाहीं।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह क्रिया अनेक क्रियाओ विशेषत अकर्मक क्रियाओं से संयुक्त होती है। यह जब धातुरूप के साथ सयुक्त होती है तब मुख्य किया के व्यापार में आकस्मिकता या संयोग सूचित करती है; जैसे, कह पडना, दे पडना, आ पड़ना, जा पड़ना आदि। और जब धातुरूप के बदले पूरी क्रिया ही से सयुक्त होती है तब उसके करने मे कर्ता की बाध्यता, विवशता या परतंत्रता प्रकट करती है; जैसे, कहना पडा, देखना पड़ा, सहना पडा, आना पडा, जाना पड़ा इत्यादि। इसके अतिरिक्त कभी कभी किसी शब्द के साथ लगकर यह क्रिया कुछ विशेष अर्थ देने लगती है। जैसे,—(क) कुछ रुपया तुम्हारे नाम पडा है। (ख) कई दिन से तुम उनके पीछे पडे हो। (ग) सरदी के मारे गले पड गए हैं। (घ) अब तो यह किताब हमारे गले पड़ी है, आदि। ऐसी दशा मे यह महाविरे का रूप धारण कर लेती है। ऐसे अर्थों के लिये मुख्य शब्द अथवा संज्ञाएँ देखो। जिस प्रकार व्यापार के घटित होने के लगभग या सदृश व्यापार सूचित करने के लिये क्रिया का रूप भूतकालिक करके तब उसके साथ 'जाना' लगाते हैं (जैसे, हाथ जला जाता है पैर कटा जाता था, चीज हाथ से गिरी जाती है) उसी प्रकार 'पड़ना' भी लगाते हैं, जैसे,—छड़ी हाथ से गिरी पडती है। उ०—चूनरि चारु चुई सी परै चटकीली हरी अँगिया ललचावै।—(शब्द०)।

पड़पड़[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. निरंतर पड़पड़ शब्द होना। २. दे० 'पटपट'।

पड़पड़[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] पूँजी। मूलधन।

पड़पड़ाना—क्रि० अ० [अनु०] १. पड़पड़ शब्द होना। २. मिर्च, सोंठ आदि कड़वे पदार्थों के स्पर्श मे जीभ पर जलन सी मालूम होना। अत्यंत कड़वे पदार्थ के भक्षण या स्पर्श से जीभ पर किंचित् दु.खद तीक्ष्ण अनुभूति होना। चरपराना। जैसे,—तुमने ऐसी मिर्च खिलाई कि अब तक जीभ पड़पड़ा रही है।

पड़पड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पड़पड़ाना**] पड़पड़ाने की क्रिया या भाव। चरपराहट। जैसे,—ऐसी तेज मिर्च खाई कि अबतक पड़पडाहट नहीं मिटी।

पड़पण†—संज्ञा स्त्री० [देश०] सहायता। उ०—जो राजा ऊपर खड़ जाऊँ पड़पण खान सुजायत पाऊँ।—रा० रू०, पृ० ३०७।

पड़पोता—संज्ञा पुं० [सं० प्रपौत्र] [स्त्री० **पड़पोती**] पुत्र का पोता। पोते का पुत्र। लड़के के लड़के का लड़का। प्रपौत्र।

पड़म—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा सूती कपड़ा जो प्राय: खेमे वगैरह बनाने मे काम आता है।

पड़रू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पँड़वा'।

पड़वज†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा। उ०—तुरक सुजायतखान री, सात करॉ गूँ बात। दाखे लिखे दुरग नूँ, पड़वज सझ प्रभात।—रा० रू०, पृ० २४४।

पड़वा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिपदा, प्रा० पडिवआ] प्रत्येक पक्ष की प्रथम तिथि।

पड़वा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पँड़वा'।

पड़वा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] घाट पर रहनेवाली वह नाव जो यात्रियों को पार ले जाती है। घटहा। (लश०)।

पड़वाना—क्रि० स० [हिं० **पड़ना**] गिरवाना। पडने का काम दूसरे से कराना।

पड़वी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईख जो बैसाख या जेठ में बोई जाती है।

पड़सादा†—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिशब्द; प्रा० **पडिसद्द, पडिसाद**] प्रतिशब्द। प्रतिध्वनि। उ०—(क) मारू तोइण कणमणइ सल्लह कुमर बहु साद। दासी तद दीवाघरी सौंमलिया पड़साद।—ढोला०, दू० ६०५। (ख) वाँगा विदल बराबर वादे विड गाजियो गयण पड़सादे।—रा० रू०, पृ० २५३।

पड़हा†—संज्ञा पुं० [सं० **पटह**] दे० 'पटह'। उ०—(क) साँमही चाली छइ आरती। वाजइ पड़ह पखावज भेर।—बी० रासो, पृ० ६४। (ख) सज्जण चाल्या हे सखी, पड़हउ वाज्यउ ढंग।—ढोला० दू० ३५१।

पड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पड़वा'।

पड़ाइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँडे] दे० 'पँड़ाइन'।

पड़ाका†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'पटाका'।

मुहा०—पड़ाके की गोट = दे० 'पटापटी' में 'पटापटी की गोट'।

पड़ाना[1]—क्रि० स० [हिं० पड़ना का सक० रूप] गिराना। झुकाना। दूसरे को पड़ने में प्रवृत्त करना।

पड़ाना[2]†—क्रि० स० [हिं० फाड़ना का प्रे० रूप] फाड़ने का काम दूसरे से कराना। उ०—कन्न पड़ाय न मुंड मुड़ाया। घरि घरि फिरत न भूकगु वाया।—प्राण०, पृ० १११।

विशेष—योगी, विशेषत नाथपंथी अपनी दीक्षा के क्रम में कान की ललरी को चिरवाकर उसमे कुंडल पहनते हैं। इसी लिये इन योगियों को कनफटा भी कहा जाता है।

पड़ापड़[1]—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'पटापट'।

पड़ापड़[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'पटापट'।

पड़ाव—संज्ञा पुं० [हिं० पड़ना+आव (प्रत्य०)] सेना अथवा किसी यात्रीदल के यात्रा के बीच में प्राय: रात बिताने के लिये कहीं ठहरने का भाव। यात्रीसमूह का यात्रा के बीच में अवस्थान। जैसे,—आज यहीं पड़ाव पड़ेगा।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

२. वह स्थान जहाँ यात्री ठहरते हों। वह स्थान जो यात्रियों को ठहरने के लिये निर्दिष्ट हो। चट्टी। टिकान। जैसे,—आज हम लोग अमुक पड़ाव पर विश्राम करेंगे।

मुहा०—पड़ाव मारना = (१) पड़ाव डाले हुए किसी यात्रीदल को लूटना। कारवान या काफिला लूटना। (२) कोई बड़ा साहसपूर्ण कार्य करना। भारी शौर्य प्रकट करना। जैसे,—कौन सा पड़ाव मार आए हो?

३. चिपटे तले की बड़ी और खुली नाव जो जहाज से बोझ उतारने और चढ़ाने के काम में आती है।

पड़ाशी—संज्ञा स्त्री० [सं० पलाशी] ढाक का पेड़।

पड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० पँड़वा, पड़वा] भैंस का मादा बच्चा।

पड़ियाना[1]†—क्रि० स० [हिं० पड़िया+आना (प्रत्य०)] भैंस का भैंसे से संयोग हो जाना। भैंसाना।

पड़ियाना[2]—क्रि० स० भैंस का भैंसे से संयोग कराना। भैंस को मैथुनार्थ भैंसे के समीप पहुँचाना।

पड़िवा†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिपदा, प्रा० पड़िवआ] प्रत्येक पक्ष की प्रथम तिथि। पड़वा। प्रतिपदा।

पड़ीहार†—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिहार] दे० 'प्रतिहार'। उ०—गई कहई सुणि हो पड़ीहार। वेगि पलाणि भलाई तुखार।—बी० रासो, पृ० १२८।

पड़ुआ—संज्ञा पुं० [देश०] ऊख का खेत।

पड़ेरू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पड़रू'।

पड़ोरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परवल'।

पड़ोस—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवेश या प्रतिवास, प्रा० पड़िवेस, पड़िवास] १. किसी के घर के आसपास के घर। किसी के घर के समीप के घर। प्रतिवेश।

यौ०—पास पड़ोस = आसपास। समीपवर्ती स्थान।

मुहा०—पड़ोस करना = पड़ोस में बसना। पड़ोसी होना। जैसे,—पड़ोस तो मैंने आपका किया है, माँगने किससे जाऊँ।

२. किसी स्थान के आसपास के स्थान। किसी स्थान के समीपवर्ती स्थान। जैसे,—घर के पड़ोस में चमार बसते हैं।

पड़ोसण†, पड़ोसिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० पड़ोस] पड़ोस की रहनेवाली स्त्री। उ०—पाँच पड़ोसण बैठी छड़ आय।—बी० रासो, पृ० ६४।

पड़ोसिया†—संज्ञा पुं० [हिं० पड़ोस] दे० 'पड़ोसी'। उ०—हम जुवति पति गेलाह विदेस। लगनहिं बसए पड़ोसिया कलेस।—विद्यापति, पृ० १८६।

पड़ोसी—संज्ञा पुं० [हिं० पड़ोस + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० पड़ोसिन] वह मनुष्य जिसका घर पड़ोस में हो। पड़ोस में रहनेवाला। जिसका घर अपने घर के पास हो। प्रतिवासी। प्रतिवेशी। हमसाया।

यौ०—अड़ोसी पड़ोसी = पड़ोसी इत्यादि।

पड़ौसी†—संज्ञा पुं० [हिं० पड़ोस] दे० 'पड़ोसी'।

पढ़ंत—संज्ञा स्त्री० [हिं० पढ़ना + अंत (प्रत्य०)] १. पढ़ने की क्रिया या भाव। २. मंत्र। जादू। ३. निरंतर पढ़ने की क्रिया। पठन। बराबर पढ़ना। जैसे, पढ़ंत कविसमेलन।

पढ़ंता—वि० [हिं० पढ़ना] पढ़नेवाला। पाठ करनेवाला। उ०—वेद पढंता पाँड़े मारे पूजा करते स्वामी हो।—कबीर (शब्द०)।

पढ़न—संज्ञा स्त्री० [सं० पठन] पढ़ने की क्रिया या भाव।

पढ़ना[1]—क्रि० स० [सं० पठन] १. किसी लिखावट के अक्षरों का अभिप्राय समझना। किसी पुस्तक, लेख आदि को इस प्रकार देखना कि उसमें लिखी बात मालूम हो जाय। जैसे,—इस पुस्तक को मैं तीन बार पढ़ गया।

संयो० क्रि०—जाना। डालना। –लेना।

२. किसी लिखावट के शब्दों का उच्चारण करना। उच्चारणपूर्वक पाठ करना। बाँचना। किसी लेख के अक्षरों में सूचित शब्दों को मुँह से बोलना। जैसे,—जरा और जोर से पढ़ो कि हमको भी सुनाई दे।

संयो० क्रि०—जाना।—देना।

३. उच्चारण करना। मध्यम या धीरे स्वर से कहना। जैसे,—तुम कौन सा मंत्र पढ़ रहे हो।

संयो० क्रि०—जाना।—देना।

४. स्मरण रखने के लिये किसी विषय का बारबार उच्चारण करना। रटना। जैसे, पहाड़ा पढ़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।

५ मंत्र फूँकना। जादू करना।

संयो० क्रि०—देना।

६. तोते, मैना आदि का मनुष्यों के सिखाए हुए शब्द उच्चारण करना। जैसे,—बूढ़ा तोता भला क्या पढ़ेगा। ७. विद्या पढ़ना। शिक्षा प्राप्त करना। अध्ययन करना। जैसे,—इस लड़के का मन पढ़ने में खूब लगता है।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

यौ०—पढ़ना लिखना = शिक्षा पाना। पढ़ना पढ़ाना। पढ़ने लिखने या पढ़ने पढ़ाने का काम। पढ़ा लिखा = शिक्षित। जिसने शिक्षा प्राप्त की हो।

८ नया पाठ प्राप्त करना। नया सबक लेना। जैसे,—तुमने आज पढ़ लिया या नहीं?

संयो० क्रि०—लेना।

पढ़ना[2]—संज्ञा पुं० [सं० पाठीन] एक प्रकार की मछली। विशेष—दे० 'पढ़िना'।

पढ़नी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान।

पढ़नी उड़ी—संज्ञा स्त्री० [पढ़नी (?) + उड़ी (= उड़ान)] कसरत में एक प्रकार का अभ्यास जिसमें आदमी, टीला या अन्य कोई ऊँची चीज उछलकर लाँघी जाती है।

विशेष—इस अभ्यास के दो भेद हैं—एक में सामने की ओर और दूसरे में पीछे की ओर उछलते हैं। उछलनेवालों के अभ्यास के अनुसार टीला एक, दो या तीन हाथ तक ऊँचा होता है।

पढ़वाना—क्रि० स० [हिं० पढ़ना तथा पढ़ाना का प्रे० रूप] १. किसी से पढ़ने की क्रिया कराना। किसी को पढ़ने में प्रवृत्त करना। बँचवाना। जैसे,—यह पत्र तुमने किससे पढ़वाया? २ किसी से पढ़ाने की क्रिया कराना। किसी के द्वारा किसी को शिक्षा दिलाना। जैसे,—मैंने अमुक पंडित से अपने लड़के को पढ़वाया है।

पढ़वैया†—संज्ञा पुं० [हिं० √पढ़ + ऐया (प्रत्य०)] पढ़नेवाला। शिक्षार्थी।

पढ़ाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पढ़ना + आई (प्रत्य०)] १ पढ़ने का काम। विद्याभ्यास। अध्ययन। पठन। २. पढ़ने का भाव। जैसे,—तुम्हारी पढ़ाई हमको तो ऐसी ही वैसी मालूम होती है। ३ वह धन जो पढ़ने के बदले में दिया जाय।

पढ़ाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पढ़ाना + आई (प्रत्य०)] १ पढ़ाने का काम। अध्यापन। पाठन। पढ़ौनी। २. पढ़ाने का भाव। ३. पढ़ाने का ढंग। अध्यापनशैली। जैसे,—अमुक स्कूल की पढ़ाई बहुत अच्छी है। ४ वह धन जो पढ़ाने के बदले में दिया जाय।

पढ़ाकू—वि० [सं० पठ हिं० √पढ़ + आकू (प्रत्य०)] बहुत पढ़नेवाला। जो पढ़ते न थके। उ०—उनके विद्यालय के साथियों ने उन्हें पढ़ाकू की उपाधि दे रखी थी।—प्ररस्तू०, पृ० ३।

पढ़ाना—क्रि० स० [हिं० पढ़ना का प्रे० रूप] शिक्षा देना। पुस्तक की शिक्षा देना। अध्यापन करना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

यौ०—पढ़ाना लिखाना।

२. कोई कला या हुनर सिखाना। उ०—(क) कुलिस कठोर कूर्म पीठि ते कठिन अति हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है। तुलसी सो राम के सरोज पानि परसत टूट्यो मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) परम चतुर जिन कीन्हे मोहन अल्प बयस ही थोरी। बारे ते जेहि यहै पढ़ायो बुधि, बल कल बिधि चोरी।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

३. तोते, मैना आदि पक्षियों को बोलना सिखाना। उ०—सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पींजरन राखि पढ़ाए।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

४. सिखाना। समझाना। उ०—जेहि पिनाक बिन नाक किए नृप सबहि बिषाद बढ़ायो। सोइ प्रभु कर परसत टूट्यो जनु हुतो पुरारि पढ़ायो।—तुलसी (शब्द०)।

पढ़िना—संज्ञा पुं० [सं० पाठीन] एक प्रकार की बिना सेहरे की मछली जो तालाब और समुद्र सभी स्थानों में पाई जाती है।

विशेष—यह मछली प्रायः अन्य सब मछलियों से अधिक दीर्घजीवी और डील डौलवाली होती है। किसी किसी पढ़िने का वजन दो मन से भी अधिक होता है। यह मांसाशी है और मछलियो के अतिरिक्त अन्य छोटे छोटे जीव जंतुओं को भी निगल लिया करती है। इसके सारे शरीर के मांस में बारीक बारीक काँटे होते हैं जिन्हे दाँत कहते हैं। वैद्यक में इसे कफ पित्तकारक, बलदायक, निद्राजनक, कोढ़ और रक्तदोष पैदा करनेवाला लिखा है।

पर्या०—पाठीन। सहस्रदंष्ट्र। बोदालक। वदालक। पढ़ना। पढ़िना।

पढ़ैया†—संज्ञा पुं० [हिं० पढ़ना + ऐया (प्रत्य०)] पढ़नेवाला। पढ़वैया। पाठक। वह जो पढ़ सके। उ०—घोषाला कुराना का पढ़ैया नै बुलाया।—शिखर०; पृ० ६३।

पढ़ौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पढ़ाना] दे० 'पढ़ाई'। उ०—बाचो की अम्मा का पड़ोस की बस्ती में जाकर यह पढ़ौनी करना बड़ा ही अखरा था।—नई०, पृ० ११५।

पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोई खेल जिसमें हारनेवाले को कुछ परिमित धन अथवा कोई निर्दिष्ट वस्तु जीतनेवाले को देनी पड़े। कोई कार्य जिसमें बाजी बदी गई हो। जूआ। द्यूत। २. प्रतिज्ञा। शर्त। मुआहिदा। कौल करार। संधि। उ०—मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझनेवाला पुरुष उसके लिये प्राणों का पण लगा सके।—ध्रुव०, पृ० २५। ३. वह वस्तु जिसके देने का करार या शर्त हो। जैसे, किराया, भाड़ा, पारिश्रमिक आदि। ४. मोल। कीमत। मूल्य। ५. फीस। शुल्क। ६. धन। संपत्ति। जायदाद।

७. क्रय विक्रय की वस्तु । सौदा । ८. व्यवहार । व्यापार । व्यवसाय । ९. स्तुति । प्रशंसा । १० किसी के मत से ११ और किसी के मत से २० मासे के बराबर ताँबे का टुकड़ा जिसका व्यवहार सिक्के की भाँति किया जाता था । ११ मद्यविक्रेता । कलाल (को०) । १२. गृह । घर । वेश्म (को०) । १३. प्राचीन काल की एक विशेष नाप जो एक मुट्ठी अनाज के बराबर होती थी ।

पणग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० पणग्रन्थि] बाजार । हाट ।

पणच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] अँगूठा काटने का दंड ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में दूसरी बार गाँठ कतरने के अपराध में जो राजकर्मचारी पकड़े जाते थे, उनका अँगूठा काट दिया जाता था ।

पणजित दास—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपने को जूए के दाँव पर रखकर हारा और दास हुआ हो ।

पणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कीमत । दाम । मूल्य (को०) ।

पणत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पणता' ।

पणन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खरीदने की क्रिया या भाव । २. बेचने की क्रिया या भाव । ३ शर्त लगाने या बाजी बदने की क्रिया या भाव । ४. व्यापार या व्यवहार करने की क्रिया या भाव ।

पणनीय—वि० [सं०] १. धन देकर जिससे काम लिया जा सके । २. जिसे खरीदा या बेचा जा सके ।

पणफर—संज्ञा पुं० [सं०] कुंडली में लग्न से २रा, ३रा, ५वाँ ८वाँ और ११वाँ घर ।

पणबंध—संज्ञा पुं० [सं० पणबन्ध] बाजी बदना । शर्त लगाना । शर्तबंदी ।

पणयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिक्कों का चलाना (कौटि०) ।

पणव—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा नगाड़ा । २ छोटा ढोल । ढोलकी । उ०—शंख भेरी पणव मुरज डक्का बाद घनित घंटा नाद बीच बिच गुंजरत ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६०५ । २. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे एक मगण एक नगण, एक यगण और अंत में एक गुरु होता है । प्रत्येक चरण में १६, १६ मात्राएँ होने के कारण यह चौपाई के भी अंतर्गत आता है । उ०—मानो योग कथित तैं मोरा । जीतोगे अर्जुन जी कोरा ।

पणवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पणव' ।

पणवानक—संज्ञा पुं० [सं०] नगाड़ा ।

पणवी—संज्ञा पुं० [सं० पणविन्] शिव का एक नाम (को०) ।

पणस—संज्ञा पुं० [सं०] क्रय विक्रय की वस्तु । सौदा ।

पणसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पणसुन्दरी] बारवनिता । बाजारी स्त्री । रंडी । वेश्या ।

पणस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] रंडी । वेश्या ।

पणास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौड़ी । कपर्दक ।

पणांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० पणाङ्गना] वेश्या (को०) ।

पणाश—संज्ञा पुं० [सं० प्रणाश] विनाश । नाश ।

पणाशी—वि० [सं० प्रणाशी] विनाशक । नष्ट करनेवाला ।

पणाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्यूत । जूवा । २ व्यापार का लाभ । ३ स्तुति । ४. बाजार । ५. व्यापार (को०) ।

पणायित—वि० [सं०] १. खरीदा । बेचा हुआ । ३. जिसकी स्तुति की गई हो । स्तुत (को०) ।

पणार्पण—संज्ञा पुं० [सं०] संधि । शर्तनामा (को०) ।

पणि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक संहिता कालीन एक जाति और उस जाति का आदमी । —प्रा० भा० प० (भू०), पृ० 'स' ।

पणि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाजार । २ दूकान ।

पणि[3]—वि० १. कंजूस । २ पाप करनेवाला (को०) ।

पणिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूकानदारी । मोलभाव । उ०—पणिकता जगवणिक की है, राशि जैसे कणिक की है ।—अर्चना, पृ० ६३ ।

पणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पण । (कौटि०) ।

पणित—वि० [सं०] जिसकी प्रशंसा की गई है । प्रशंसित । स्तुत । २ क्रीत । ३. विक्रीत । ४. बाजी । ५. जुआ ।

पणितव्य—वि० [सं०] १. खरीदने योग्य । २. बेचने योग्य । ३. व्यवहार करने योग्य । ४. प्रशंसा करने योग्य ।

पणिता—संज्ञा पुं० [सं० पणितृ] व्यापारी । सौदागर (को०) ।

पणिहार—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिहार] क्षत्रियों की एक जाति । उ०—तीन पुरुष उपजे तहाँ चालुक प्रथम पँवार । दूजै तीजै ऊपजे, क्षत्र जाति पणिहार ।—ह० रासो, पृ० १० ।

पणी[1]—संज्ञा पुं० [सं० पणिन्] क्रय विक्रय करनेवाला ।

पणी[2]—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम (को०) ।

पण्य[1]—वि० [सं०] १ खरीदने योग्य । २. बेचने योग्य । ३ व्यापार या व्यवहार करने योग्य । ४. प्रशंसा करने योग्य ।

पण्य[2]—संज्ञा पुं० १ सौदा । माल । २. व्यापार । व्यवसाय । रोजगार । ३ बाजार । हाट । ४ दूकान ।

पण्यदासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन लेकर सेवा करनेवाली स्त्री । लौंडी । मजदूरनी । बाँदी । सेविका ।

पण्यनिचय—संज्ञा पुं० [सं०] बिक्री का माल इकट्ठा करना ।

विशेष—इसमें भी चंद्रगुप्त के समय में धान्य के एकत्र करने के सदृश ही नियम प्रचलित था ।

पण्यनिर्वाहण—संज्ञा पुं० [सं०] बिना चुंगी का महसूल दिए चोरी चोरी से माल निकाल ले जाना (कौटि०) ।

पण्यपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ भारी व्यापारी । बहुत बड़ा रोजगारी । २. बहुत बड़ा साहूकार । नगरसेठ ।

पण्यपत्तन—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के माल आकर बिकते हों । मंडी । (कौटि०) ।

पण्यपत्तन चरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] मंडी में प्रचलित नियम (कौटि०)।

पण्यपत्तन चरित्रोपघातिका—वि० स्त्री० [सं०] (वह नाव) जिसने बंदरगाह के नियमों का पालन न किया हो (कौटि०)।

पण्यपरिणीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुरैतिन। रखेली [को०]।

पण्यफल—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यापार में प्राप्त लाभ। मुनाफा। नफा।

पण्यफलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] मुनाफा [को०]।

पण्यभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थान जहाँ माल या सौदा जमा किया जाता हो। कोठी। गोदाम। गोला।

पण्ययोषित—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी [को०]।

पण्यविलासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

पण्यवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रय विक्रय का स्थान। बाजार। हाट।

पण्यशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूकान। वह घर जिसमें चीजें बिकती हों।

पण्यसंस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] माल रखने का गोदाम (कौटि०)।

पण्यसमवाय—संज्ञा पुं० [सं०] थोक बेचा जानेवाला माल।

पण्यस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

पण्यांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० **पण्याङ्गना**] दे० 'पण्यस्त्री'।

पण्यांधा—संज्ञा स्त्री० [सं० **पण्याधान्य या पण्याम्नधान्य**] कँगनी नाम का धान्य।

पण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी।

पण्याजीव—संज्ञा पुं० [सं०] व्यापार से जीविका करनेवाला। रोजगारी। व्यापारी।

पण्योपघात—संज्ञा पुं० [सं०] बिक्री के माल का नुकसान।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि व्यापारियों को चंद्रगुप्त के राज्य से सहायता मिलती थी। जब उनके माल का नुकसान हो जाता था, तब उन्हें राज्य की ओर से सहायता मिलती थी।

पतखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगला, जिसे 'पतोखा' कहते हैं।

पतंग[१]—संज्ञा पुं० [सं० **पतङ्ग**] १. पक्षी चिड़िया। २. शलभ। टिड्डी। ३. परवाना। पाँखी। भुनगा। फतिंगा। ४ कोई परदार कीड़ा। उड़नेवाला कीड़ा। ५. सूर्य। ६. एक प्रकार का धान। जड़हन। ७. जलमहुआ। जलमधूक वृक्ष। ८ एक प्रकार का चंदन। ९. कंदुक। गेंद। उ०—करहिं गान बहु तान तरंगा। बहु विधि क्रीड़हि पानि पतंगा।—मानस, १।१२६। १० पारद। पारा। ११. जैनों के एक देवता जो वाणव्यंतर नामक देवगण के अंतर्गत हैं। १२. एक गंधर्व का नाम। १३. एक पहाड़ का नाम। १४. तन। शरीर। जिस्म (अने०)। १५ नौका। नाव (अने०)। १६. चिनगारी। १७ कृष्ण या विष्णु (को०)। १८. अश्व। घोड़ा (को०)।

पतंग[२]—संज्ञा पुं० [सं० **पत्राङ्ग**] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिससे लाल रंग बनाते हैं।

विशेष—यह वृक्ष मध्यभारत तथा कटक प्रांत में अधिकता से होता है। बैसाख जेठ में जमीन को अच्छी तरह जोतकर इसके बीज बो दिए जाते हैं। प्रायः २० वर्ष में जब इसके पेड़ चालीस फुट ऊँचे हो जाते हैं तब काट लिए जाते हैं। इसकी लकड़ी को छोटे छोटे टुकड़ों में काटकर प्रायः दो पहर तक पानी में उबालते हैं, जिससे एक प्रकार का बहुत बढ़िया लाल रंग निकलता है। पहले इस रंग की खपत बहुत होती थी और यह बहुत अधिक मान में भारत से विदेशों को भेजा जाता था, परंतु जबसे विलायती नकली रंग तैयार होने लगे तबसे इसकी माँग बहुत घट गई है। आजकल कई प्रकार के विलायती लाल रंग भी 'पतंग' के नाम से ही बिकते हैं। कुछ लोग इसको 'लालचंदन' ही मानते हैं, परंतु यह बात ठीक नहीं है। इसको 'बक्कम' भी कहते हैं।

पतंग[३]—वि० उड़नेवाला।

पतंग[४]—संज्ञा पुं० [सं० **पतङ्ग** (= उड़नेवाला)] हवा में ऊपर उड़ाने का एक खिलौना जो बाँस की तीलियों के ढाँचे पर एक ओर चौकोना कागज और कभी कभी बारीक कपड़ा मढ़कर बनाया जाता है। गुड्डी। कनकौवा। चंग। तुक्कल। तिलंगी।

विशेष—इसका ढाँचा दो तीलियों से बनता है। एक बिलकुल सीधी रखी जाती है पर दूसरी को लचाकर मिहराबदार कर देते हैं। सीधी तीली को 'ढड्ढा' और मिहराबदार को 'कमाँच' या 'काँप' कहते हैं। ढड्ढे के एक सिरे को 'पुछल्ला' और दूसरे को 'मुड्ढा' कहते हैं। पुछल्ले पर एक तिकोना कागज और मढ़ दिया जाता है। कमाँच के दोनों सिरे 'कुब्बे' कहलाते हैं। ढड्ढे पर कागज की दो छोटी चौकोर चकतियाँ मढ़ी होती है। एक उस स्थान पर जहाँ ढड्ढा और कमाँच एक दूसरे को काटते हैं, दूसरी पुछल्ले की ओर कुछ निश्चित अंतर पर। इन्हीं में सूराख करके 'कन्ना' अर्थात् वह डोरा बाँधा जाता है जिसमें चरखी या परेते की डोरी का सिरा बाँधकर पतंग उड़ाया जाता है। यद्यपि देखने में पतंग के चारो पार्श्वों की लंबाई बराबर जान पड़ती है, तथापि मुड्ढे और कुब्बे का अंतर कुब्बे और पुछल्ले के अंतर से अधिक होता है। जिस डोरी से पतंग उड़ाया जाता है वह नख, बाना, रील आदि कई प्रकार की होती है। बाँस के जिस विशेष ढाँचे पर डोरी लपेटी रहती है। उसके भी दो प्रकार है—एक 'चरखी' और दूसरा 'परेता'। विस्तारभेद से पतंग कई प्रकार का होता है। बहुत बड़े पतंग को 'तुक्कल' कहते हैं। बनावट का दोष, हवा की तेजी आदि कारणों से अक्सर पतंग हवा में चक्कर खाने लगता है। इसे रोकने के लिये पुछल्ले में कपड़े की एक धज्जी बाँध देते हैं, इसको भी 'पुछल्ला' कहते हैं। भारतवर्ष में केवल मनोरंजन के लिये पतंग उड़ाया जाता है परंतु पाश्चात्य देशों में इसका कुछ व्यावहारिक उपयोग भी किया जाने लगा है।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—बढ़ाना।

यौ०—पतंगबाज।

मुहा०—पतंग काटना = अपने पतंग की डोरी से दूसरे के पतंग की डोरी को रगड़कर काट देना। पतंग उड़ाना = डोरी ढीली करके पतंग को हवा में और ऊपर या आगे बढ़ाना।

पतंगछुरी†—स्त्री० [सं० पतङ्ग (= उड़नेवाला अथवा चिनगारी) + हिं० छुरी] पीठ पीछे बुराई करनेवाला। दो व्यक्तियों या दलों में झगड़ा करानेवाला। चुगुलखोर। पिशुन। चवाई।

पतंगबाज—संज्ञा पुं० [हिं० पतंग + फा० बाज़] १. वह जिसको पतंग उड़ाने का व्यसन हो। वह जिसका प्रधान कार्य पतंग उड़ाना हो। वह जिसका अधिकांश समय पतंग उड़ाने में जाता हो। २. पतंग से क्रीड़ा करनेवाला। पतंग उड़ाकर मनोरंजन करनेवाला। पतंग का शौकीन।

पतंगबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पतंगबाज] १. पतंगबाज होने का भाव। पतंग उड़ाने की क्रिया या भाव। पतंग उड़ाना। २. पतंग उड़ाने की कला। जैसे,—पतंगबाजी में वह अपना जोड़ नहीं रखता।

पतंगम—संज्ञा पुं० [सं० पतङ्गम] १. पक्षी। चिड़िया। २. पतंगा। सूर्य। ३. शलभ। पतंगा।

पतंगसुत—संज्ञा पुं० [सं० पतङ्ग (= सूर्य) + सुत] १. सूर्य के पुत्र अश्विनीकुमार। २. यम। ३. शनि। ४. सुग्रीव। ५. कर्ण। राधेय। उ०—भजु पतंगसुत आदि कहूँ मृत्युंजय और अंत। तुलसी पुष्कर जयकर चरन पांसु इच्छत।—स० सप्तक, पृ० १९।

पतंगा—संज्ञा पुं० [सं० पतङ्ग] १. पतंग। कोई उड़नेवाला कीड़ा मकोड़ा। फतिंगा या पाँखी आदि। २. परदार कीड़ों की जाति का एक विशेष कीड़ा जो प्राय. घासों अथवा वृक्ष की पत्तियों पर रहता है। फतिंगा। ३. चिनगारी। स्फुलिंग। अग्निकण। ४. दीए की बत्ती का वह अंश जो जलकर उससे अलग हो जाता है। फूल। गुल।

पतंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पतङ्गिका] १ मधुमक्खियों का एक भेद। बड़ी मधुमक्खी। पुत्तिका। २ छोटी चिड़िया (को०)। ३. दे० 'पतंचिका' (को०)।

पतंगी[1]—वि० स्त्री० [सं० पतङ्ग] रंग बिरंगी या महीन। उ०—गोरे तन पहिरि पतंगी सारी झपकि झपकि गावै गारी, भिजावैं आनंदघन पिय इसरंग।—घनानंद, ४४२।

पतंगी[2]—संज्ञा पुं० [सं० पतङ्गिन्] पक्षी [को०]।

पतंगेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० पतङ्गेन्द्र] पक्षिराज। गरुड।

पतंचल—संज्ञा पुं० [सं० पतञ्चल] एक ऋषि का नाम [को०]।

पतंचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पतञ्चिका] धनुष की डोरी। कमान की ताँत। चिल्ला।

पतंजलि—संज्ञा पुं० [सं० पतञ्जलि] १. एक प्रसिद्ध ऋषि जिन्होंने योग सूत्र की रचना की। २. एक प्रसिद्ध मुनि जिन्होंने पाणिनीय सूत्रों और कात्यायन कृत उनके वार्तिक पर 'महाभाष्य' नामक बृहद् भाष्य का निर्माण किया था। एक किंवदंती के अनुसार चरक संहिता के रचयिता और संगृहीता के रूप में पतंजलि का नाम लिया जाता है, पर यह मत ऐतिहासिकों को मान्य नहीं है।

विशेष—इनकी माता का नाम गोणिका और जन्मस्थान गोनर्द था। डा० सर रामकृष्ण भांडारकर के मत से आधुनिक गोंडा ही प्राचीन गोनर्द है। गोणिकापुत्र, गोनर्दीय आदि इनके नाम मिलते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये कुछ समय तक काशी में भी रहे थे। जिस स्थान पर इनका रहना माना जाता है उसे आजकल नागकुआँ कहते हैं। नागपंचमी के दिन वहाँ मेला होता है और बहुत से संस्कृत के पंडित और छात्र वहाँ एकत्र होकर व्याकरण पर शास्त्रार्थ करते हैं। ये अनंत भगवान् अथवा शेषनाग के अवतार माने जाते हैं। अन्य सभी सूत्रग्रंथों की व्याख्याएँ भाष्य कही गई है, केवल पतंजलिकृत भाष्य को महाभाष्य की संज्ञा और प्रतिष्ठा मिली।

बहुत से लोग दर्शनकार पतंजलि और भाष्यकार पतंजलि को एक ही व्यक्ति मानते हैं। परंतु यह मत विवादास्पद और अनिर्णीत है। योग सूत्रकार पतंजलि भाष्यकार पतंजलि से बहुत पूर्व के माने गए हैं। महाभाष्य के रचनाकाल से सैकड़ों वर्ष पहले कात्यायन ने पाणिनीय सूत्रों पर अपना वार्तिक बनाया था। कहते हैं कि उसमें योगसूत्रकार पतंजलि का उल्लेख है। कात्यायन के वार्तिक पर पतंजलि का भाष्य है। इस आधार पर कहा जाता है कि योग सूत्रकार पतंजलि महाभाष्यकार पतंजलि से पहले के हैं। उनका समय भी निश्चित हो चुका है। वे शुंगवंश के संस्थापक पुष्यमित्र के समय में वर्तमान थे। मौर्य राजा को मारकर जब पुष्यमित्र राजा हुआ तब उसने पाटलिपुत्र में अश्वमेध यज्ञ किया। इस यज्ञ में पतंजलि जी ने भी भाग लिया था।

पत[1]†—संज्ञा पुं० [सं० पति] १. पति। खसम। खाविंद। २. मालिक। स्वामी। प्रभु।

पत[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिष्ठा] १. कानि। लज्जा। आबरू।

विशेष—दे० 'पति'। उ०—मुख मेरा चूमत दिन रात। होठों लागत कहत न बात। जासे मेरी जग में पत। ए सखी साजन ना सखी नथ।—खुसरो (शब्द०)। २. प्रतिष्ठा। इज्जत। उ०—भोला है तुझे गम है ऊँटों का, कुछ गम नईं पत रहमाँ का।—दक्खिनी०, पृ० २२३।

क्रि० प्र०—खोना।—गँवाना।—जाना।—रखना।

यौ०—पतपानी = लज्जा। आबरू।

मुहा०—पत उतारना = किसी की प्रतिष्ठा नष्ट करनेवाला काम करना। दस आदमियों के बीच में किसी का अपमान करना। बेइज्जती करना। आबरू लेना। पत रखना = प्रतिष्ठा भंग न होने देना। इज्जत बनी रहने देना। इज्जत बचाना। पत लेना = दे० 'पत उतारना'।

पत[3]—संज्ञा पुं० [सं० पत्र, प्रा० अप० पत्त, पत] पत्ता। पत्र। जैसे, पतझर।

पतई†—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्र] पत्ती। पत्र।

पतउआ†—संज्ञा पुं० [सं० पत्र, प्रा० पत्त] पत्ता। पर्ण। उ०—एक

बान बेग ही उड़ाने जातुधान जात, सूखि गए गात हैं पतउम्रा भए वाय के ।—तुलसी (शब्द०) ।

पतउड़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पति + उडु] चंद्रमा ।—(हिं०) ।

पतखोपन—संज्ञा पुं० [हिं० पत+खोवन (= खोनेवाला)] वह जो अपने या अन्य के मान संभ्रम की रक्षा न कर सके । वह जो प्राय: ऐसे कार्य करता फिरे जिससे अपनी या दूसरे की बेइज्जती हो ।

पतग—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी । चिड़िया । पखेरू । उ०—द्विज, सकुंत, पक्षी, शकुनि, अंडज, विहग, विहंग । वियग, पतत्री, पत्ररथ, पत्री, पतग, पतंग ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०१ ।

पतगेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० पतगेन्द्र] पक्षिराज । गरुड़ ।

पतचौली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पौधा ।

पतजिव†—संज्ञा पुं० [देश०] जिया पोता । पुत्रजीवक ।

पतझड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० पत (=पत्ता) + झड़ना] १. वह ऋतु जिसमें पेड़ों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं । शिशिर ऋतु । माघ और फाल्गुन के महीने । कुंभ और मीन की संक्रांतियाँ ।

विशेष—इस ऋतु में हवा अत्यंत रूखी और सर्राटे की हो जाती है, जिससे वस्तुओं के रस और स्निग्धता का शोषण होता है और वे अत्यंत रूखी हो जाती हैं । वृक्षों की पत्तियाँ रूक्षता के कारण सूखकर झड़ जाती हैं और वे ठूँठे हो जाते हैं । सृष्टि का सौंदर्य और शोभा इस ऋतु में बहुत घट जाती हैं, वह वैभवहीन हो जाती है । इसी से कवियों को यह अप्रिय है । वैद्यक के मतानुसार इस ऋतु में कफ का संचय होता है और पाचकाग्नि प्रबल रहती है जिससे स्निग्ध और भारी आहार इसमें सरलता से पचता है और पथ्य है । हलके, वातवर्धक और तरल भोजनद्रव्य इसमें अपथ्य हैं ।

सुश्रुत के मत में माघ और फाल्गुन ही पतझड़ के महीने हैं, पर अन्य अनेक वैद्यक ग्रंथों ने पूस और माघ को पतझड़ माना है । वैद्यक के अतिरिक्त सर्वत्र माघ और फाल्गुन ही पतझड़ माने गए हैं ।

२. अवनतिकाल । खराबी और तबाही का समय । वैभवहीनता या कंगाली का समय ।

पतझर†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पतझड़' ।

पतझल†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पतझड़' ।

पतझाड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० पतझड़] दे० 'पतझड़' । उ०—पतझाड़ के पीछे नवल दल यथा देत वसंत है ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२२ ।

पतझार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पतझड़] दे० 'पतझड़' । उ०—संसार वाटिका में जो बहार और पतझार के अनुसार नाना प्रसूनों के प्रस्फुटित और रहित होने के कारण शोभा का प्रकाश और ह्रास होता है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४६८ ।

पतड़ो—संज्ञा पुं० [सं० पत्र, हिं० पत्रा] पत्रा । पंचांग । उ०—पांड्या तोहि बोलावइ हो राय, ले पतड़ो जोसी बेगो तूं आइ ।—बी० रासो०, पृ० ६ ।

पतत्¹—वि० [सं०] १. गिरता हुआ । उतरता हुआ । नीचे को जाता या आता हुआ । २. उड़ता हुआ ।

पतत्²—संज्ञा पुं० पक्षी । चिड़िया ।

पतत्पतंग—संज्ञा पुं० [सं० पतत्पतङ्ग] डूबता हुआ सूर्य । वह सूर्य जो अस्त हो रहा हो ।

यौ०—पतत्पतंगप्रतिम = नीचे की ओर गिरते हुए सूर्य के समान ।

पतत्प्रकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में एक प्रकार का रसदोष ।

पतत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्ष । पंख । डैना । २. पर । ३. वाहन । सवारी ।

पतत्रि—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी । चिड़िया ।

पतत्रिकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

पतत्रिराज—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ । पक्षिराज [को०] ।

पतत्री—संज्ञा पुं० [सं० पतत्रिन्] पक्षी । उ०—वियग (= विहग) पतत्री पत्ररथ पत्री पतग पतंग ।—अनेकार्थ०, पृ० २५ । २. बाण । तीर (को०) । ३. अश्व (को०) ।

पतद्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिग्राह । पीकदान । २. वह कमंडलु जिसमें भिक्षुक भिक्षान्न लेते हैं । भिक्षापात्र । कासा ।

पतद्भीरु—संज्ञा पुं० [सं०] बाज पक्षी । श्येन ।

पतन्—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी । चिड़िया ।

पतन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिरने या नीचे आने की क्रिया या भाव । गिरना । २. नीचे जाने, धँसने या बैठने की क्रिया या भाव । बैठना या डूबना । ३. अवनति । अधोगति । जवाल । तबाही । जैसे,—दुष्टों की संगति करने से पतन अनिवार्य हो जाता है । ४. नाश । मृत्यु । जैसे,—अमुक युद्ध में कुल दो लाख सैनिकों का पतन हुआ । ५. पाप । पातक । ६. जातिच्युति । पातित्य । जाति से बहिष्कृत होना । ७. उड़ने की क्रिया या भाव । उड़ान । उड़ना । ८. किसी नक्षत्र का अक्षांश ।

पतन²—वि० १. गिरता हुआ या गिरनेवाला । २. उड़ता हुआ या उड़नेवाला ।

पतनधर्मी—वि० [सं० पतनधर्मिन्] गिरने के स्वभाववाला । नश्वर [को०] ।

पतनशील—वि० [सं०] जिसका पतन निश्चित हो । जो बिना गिरे न रह सके । गिरनेवाला ।

पतना—संज्ञा पुं० [देश०] योनि का तट भाग । योनि का किनारा ।

पतनारा—संज्ञा पुं० [हिं०] परनाला । नाबदान । मोरी ।

पतनाला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पतनारा' । उ०—झर लगता था और वहीं पर बूँदें नाचा करती थीं । बाजे से बजते पत-नाले, सड़क लबालब भरती थी ।—मिट्टी०, पृ० ६८ ।

पतनी(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्नी] दे० 'पत्नी' । उ०—गुरु पतनी पठए तब कानन ।—नंद० ग्रं०, पृ० २१४ ।

पतनी²—संज्ञा पुं० [देश०] वह आदमी जो घाट पर की नाव इस पार से उस पार ले जाता और उस पार से इस पार ले आता हो । घाट पर से पार उतारनेवाला घटहा या माझी । (लश०) ।

पतनीय[1]—वि० [सं०] १. जिसका गिरना अथवा अधोगत होना संभव हो। गिरने अथवा नष्ट, पतित या अधोगत होने के योग्य। गिरनेवाला। पतित होनेवाला। २. पतित करनेवाला या अधोगत करनेवाला [को०]।

पतनीय[2]—संज्ञा पुं० वह पाप जिसके करने से जाति से च्युत होना पड़े। पतित करनेवाला पाप।

पतनोन्मुख—वि० [सं०] जो गिरने की ओर प्रवृत्त हो। जो गिरने के मार्ग पर लग चुका हो या बढ़ रहा हो। जिसका पतन, अधोगति या विनाश निकट आता जाता हो।

पतपच्छी†—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिपक्षी] विरोधी। शत्रु। उ०— पतपच्छी जुग पाणि सरोरुह पल्लवाँ। —बाँकी०, ग्रं०, भा० ३, पृ० ३७।

पतपानी—संज्ञा पुं० [हिं० पत + पानी] १. प्रतिष्ठा। मान। इज्जत। २. लाज। आबरू।

पतम—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्र। २. पक्षी। ३. फतिंगा।

पतयानाⓊ†—क्रि० स० [हिं० पतियाना] दे० 'पतियाना' या 'पत्याना'। उ०—नेकि पठै गिरिधर कौं मैया। रही भिलसाई पतयाइ न औरें, इनके हाथ लगी मेरी गैया।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३४।

पतयालु—वि० [सं०] पतनशील। गिरनेवाला।

पतयिष्णु—वि० [सं०] पतनशील। पतयालु [को०]।

पतरⓊ†—वि० [सं० पत्र] १. पतला। कृश। २. पत्ता। पर्ण। उ०—पेट पतर जनु चंदन लावा। कुंकुँह केसर बरन सुहावा। —जायसी (शब्द०)। (ख) घड़ा ज्यों नीर का फूटा। पतर जैसे डार से टूटा।—कबीर मं०, पृ० १७३। ३. पत्तल। पनवारा।

पतरज—संज्ञा पुं० [सं० पत्रज] तेजपात। पत्रज। उ०—अजमोदा चितकरना पतरज बायबिरंग। सेंधा सोंठ त्रीफला, नासहि मारुत अंग।—इंद्रा०, पृ० १५१।

पतरा†[1]—संज्ञा पुं० [सं० पत्र] १. वह पत्तल जिसे तँबोली लोग पान रखने के टोकरे या डलिया में बिछाते हैं। २. सरसों का साग। सरसो का पत्ता।

पतरा[2]—वि० दे० 'पतला'।

पतराई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पतला + ई (प्रत्य०)] पतलापन। सूक्ष्मता। उ०—खाँडे चाहि पौनि पैनाई। बार चाहि पातरि पतराई।—पदमावत, पृ० १५०।

पतरिंग, पतरिंगा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पक्षी, जिसका सारा शरीर हरा और ठोर पतली तथा प्रायः दो अंगुल लंबी होती है। यह मकड़ियों को पकड़कर खाता है। इसकी गणना गानेवाले पक्षियो मे की जाती है।

पतरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्री] दे० 'पत्तल'। उ०—बिरचत पतरी अरु दोने अपने कर सुंदर। —प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४६।

पतरंगा—संज्ञा पुं० [देश०] पतरिंगा पक्षी।

पतरोल†— [अं० पेट्रौल] गश्त लगानेवाला सिपाही।

पतला—वि० [सं० पात्रट, प्रा० पात्तड, अथवा सं० पत्र, हिं० पत्तर] [वि० स्त्री० पतली] १. जिसका घेरा, लपेट अथवा चौड़ाई कम हो। जो मोटा न हो। जैसे, पतली छड़ी, पतला बल्ला, पतला खंभा, पतली रस्सी, पतली धज्जी, पतली गोट, पतली गली, पतला नाला।

विशेष—बहुत पतली वस्तुओं को महीन, बारीक, या सूक्ष्म, भी कह सकते हैं, जैसे, पतला तार, पतला सूत, पतली सुई। इसी प्रकार कम चौड़ी बड़ी वस्तुओ के लिये पतला के स्थान पर 'संकीर्ण' या 'सँकरा' भी कह सकते हैं, जैसे, सँकरी गली, सँकरा नाला आदि।

२. जिसके शरीर के इधर उधर का विस्तार कम हो। जिसकी देह का घेरा कम हो। जो स्थूल या मोटा न हो। कृश। जैसे, पतला आदमी।

यौ०—**दुबला पतला** = जो मोटा ताजा न हो। कृश शरीर का।

३ (पटरी, पत्तर या तह के आकार की वस्तु) जिसका दल मोटा न हो। दबीज का उलटा। झीना। हलका। जैसे, पतला कपड़ा या कागज। ४ गाढ़े का उलटा। अधिक सरल। जिसमे जलांश अधिक हो, जैसे, पतला दूध या रसा।

मुहा०—**पतली चीज या पदार्थ** = कोई तरल पदार्थ। कोई प्रवाही द्रव्य।

५ अशक्त। असमर्थ। कमजोर। निर्बल। हीन। जैसे,—भाई सभी मनुष्य मनुष्य ही हैं, किसी को इतना पतला क्यों समझते हो ?

मुहा०—**पतला पड़ना** = दुर्दशाग्रस्त होना दैन्यग्राप्त होना। अशक्त या निर्बल पड़ जाना। **पतला हाल** = दुःख और कष्ट की अवस्था। शोचनीय या दयनीय दशा। करुणाजनक स्थिति। बुरा हाल। दुर्दशाकाल। दुर्दिन।

पतलाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पतला + ई (प्रत्य०)] पतला होने का भाव। पतलापन।

पतलापन—संज्ञा पुं० [हिं० पतला + पन (प्रत्य०)] पतला होने का भाव।

पतली—संज्ञा स्त्री० [लश०] जुआ। द्यूत।

पतलून—संज्ञा पुं० [अं० पैंटलून] वह पाजामा जिसमें मियानी नहीं लगाई जाती और पावँचा सीधा गिरता है। अंग्रेजी पाजामा।

पतलूननुमा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पतलून + फा० नुमा (= दर्शक)] वह पाजामा जो पतलून से मिलता जुलता होता है।

पतलूननुमा[2]—वि० पतलून की तरह का। पतलून सा।

पतलो—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ सरकंडे की पताई। सरपत की पताई। २ सरकंडा। सरपत।

पतवर—क्रि० वि० [सं० पङ्क्ति = पंति + हिं० पाँत + वार (प्रत्य०)] पंक्तिवार। पंक्तिक्रम से। बराबर बराबर। उ०—'हौबोरन' की झाड़ी छाया जासु मनोहर। परी भई पीठिन की पंगति पतवर पतवर।—श्रीधर (शब्द०)।

पतवा—संज्ञा पुं० [हिं० **पत्ता + वा** (प्रत्य०)] एक प्रकार का मचान, जिसपर बैठकर शिकार खेलते हैं।

विशेष—यह लकड़ी का बनाया जाता है और चार हाथ ऊँचा तथा उतना ही चौड़ा होता है। लंबा इतना होता है कि ४ आदमी रहकर निशाना मार सकें। चारों ओर पतली पतली लकड़ियों की टट्टियाँ लगी रहती हैं जिनमे निशाना मारने के लिये एक एक बित्ता ऊँचे और चौड़े सूराख बने रहते हैं। टट्टियों के ऊपर हरी हरी पत्तियो समेत टहनियाँ रख दी जाती हैं जिसमें बाघ आदि शिकारियो को न देख सके।

क्रि० प्र०—बाँधना।

पतवार—संज्ञा स्त्री० [सं० **पत्रवाल, पात्रपाल**, प्रा० **पात्तपाड**] नाव का एक विशेष और मुख्य अंग जो पीछे की ओर होता है। इसी के द्वारा नाव मोड़ी या घुमाई जाती है। कन्हर। कर्ण पतवाल। सुकान।

विशेष—यह लकड़ी का और त्रिकोणाकार होता है। प्राय: आधा भाग इसका जल के नीचे रहता है और आधा जल के ऊपर। जो भाग जल के ऊपर रहता है उसमें एक चिपटा डंडा जड़ा रहता है जिसपर एक मल्लाह बैठा रहता है। पतवार को घुमाने के लिये यह डंडा मुठियो का काम देता है। यह डंडा जिस ओर घुमाया जाता है उसके विपरीत ओर नाव घूम जाती है।

पतवारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पाता, पत्ता**] ऊख का खेत।

पतवारी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पतवार**] दे० 'पतवार'।

पतवाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पतवार**] दे० 'पतवार'।

पतवास—संज्ञा स्त्री० [सं० **पतत् या पतत्री** (= चिड़िया) + **वास**] पक्षियों का अड्डा। चिक्कस।

पतस—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी। २. फतिंगा, टिड्डी आदि। ३. चंद्रमा।

पतसर—संज्ञा पुं० [सं० **शरपत्र**] सरपत। उ०—चारो ओर फैले पतसर के जंगल।—भस्मावृत०, पृ० १०६।

पतसाई—संज्ञा स्त्री० [फा० **पादशाही**] बादशाह का अधिकार। राज्य। उ०—कोटि करै वारै पतसाई।—राम० धर्म०, पृ० १६६।

पतसाह(पु)—संज्ञा पुं० [फा० **पादशाह**] सम्राट्। नृपति। उ०—इती जो न अब करूँ तो न पतसाह कहाऊँ।—ह० रासो, पृ० ६४।

पतसाही—संज्ञा पुं० [हिं० **पादशाही**] दे० 'पादशाही'। उ०—सरू थया मारग सगला ही। सोच दलाँ मिटियो पतसाही।—रा० रू०, पृ० २६२।

पतस्वाहा—संज्ञा पुं० [हिं०] अग्नि।

पता[1]—संज्ञा पुं० [सं० **प्रत्यय**, प्रा० **पत्तअ** (= ख्याति), या सं० **प्रत्यायक**, प्रा० **पत्ताअअ** > **पताअ** > हिं० **पता**] १. किसी विशेष स्थान का ऐसा परिचय जिसके सहारे उस तक पहुँचा अथवा उसकी स्थिति जानी जा सके। किसी वस्तु या व्यक्ति के स्थान का ज्ञान करानेवाली वस्तु, नाम या लक्षण आदि। किसी का स्थान सूचित करनेवाली बात जिससे उसको पा सकें। किसी का अथवा किसी के स्थान का नाम और स्थिति परिचय जैसे,—(क) आप अपने मकान का पता बतावें तब तो कोई वहाँ आवे। (ख) आपका वर्तमान पता क्या है।

क्रि० प्र०—जानना।—देना।—बताना।—पूछना।

यौ०—**पता ठिकाना** = किसी वस्तु का स्थान और उसका परिचय।

२ चिट्ठी की पीठ पर लिखा हुआ वह लेख जिससे वह अभीष्ट स्थान को पहुँच जाती है। चिट्ठी की पीठ पर लिखी हुई पते की इबारत।

क्रि० प्र०—लिखना।

३. खोज। अनुसंधान। सुराग। टोह। जैसे,—आठ रोज से उसका लड़का गायब है, अभी तक कुछ भी पता नहीं चला।

क्रि० प्र०—चलना।—देना।—मिलना।—लगना।—लेना।

यौ०—**पता निशान** = (१) खोज की सामग्री। वे बातें जिनसे किसी के संबध मे कुछ जान सकें। जैसे,—अभी तक हमको अपनी किताब का कुछ भी पता निशान नही मिला। (२) अस्तित्वसूचक चिह्न। नामनिशान। जैसे,—अब इस इमारत का पता निशान तक नहीं रह गया।

४. अभिज्ञता। जानकारी। खबर। जैसे,—आप तो आठ रोज इलाहाबाद रहकर आ रहे हैं, आपको मेरे मुकदमें का अवश्य पता होगा।

क्रि० प्र०—चलना।—होना।

५. गूढ़ तत्व। रहस्य। भेद। जैसे,—इस मामले का पता पाना बड़ा कठिन है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।

मुहा०—**पते की** = भेद प्रकट करनेवाली बात। रहस्य खोलनेवाली बात। रहस्य की कुंजी। जैसे,—वह बहुत पते की कहता है। **पते की बात** = भेद प्रकट करनेवाली बात। रहस्य खोलनेवाला कथन।

पता[2]—संज्ञा पुं० [सं० **पत्र**] दे० 'पत्ता'। उ०—(क) मंजु वंजुल की लता और नील निचुल के निकुंज जिनके पता ऐसे सघन जो सूर्य की किरनों को भी नहीं निकलने देते।—श्यामा०, पृ० ४१। (ख) आनँदघन ब्रजजीवन जेंवत हिलिमिलि ग्वार तोरि पतानि ढाक।—घनानंद, पृ० ४७३।

पताई—संज्ञा स्त्री० [सं० **पत्र**] किसी वृक्ष या पौधे की वे पत्तियाँ जो सूखकर झड़ गई हों। झड़ी हुई पत्तियों का ढेर।

मुहा०—**पताई लगाना** = दहकाने के लिये आग में सूखी पत्तियाँ झोंकना। (किसी के) **मुँह में पताई लगाना** = (किसी का) मुँह फूँकना। (किसी के) मुँह में आग लगाना। (स्त्रियों की गाली)।

पताक(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **पताक**] दे० 'पताका'। उ०—मीच न सोहत मंच पर महि मैं सोहत मीं। काकं न सोह पताक पै सजै हंस सर तीर।—दीन ग्रं०, पृ० ७९।

पताकरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष जो बंगाल आसाम और पश्चिमी घाट में होता है। इसकी लकड़ी सफेद रंग की और मजबूत होती है और गृहनिर्माण में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। इसके फल खाए जाते हैं।

पताकांक—संज्ञा पुं० [सं० पताकाङ्क] दे० 'पताकास्थान'।

पताकांशु, पताकांशुक—संज्ञा पुं० [सं०] झंडा। झंडी। पताका। पताका का कपड़ा।

पताका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लकड़ी आदि के डंडे के एक सिरे पर पहनाया हुआ तिकोना या चौकोना कपड़ा, जिसपर कभी कभी किसी राजा या संस्था का खास चिह्न या संकेत चित्रित रहता है। झंडा। झंडी। फरहरा। विशेष—दे० 'ध्वज'। उ०—धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२।

विशेष—साधारणतः मंगल या शोभा प्रकट करने के लिये पताका का व्यवहार होता है। देवताओं के पूजन में भी लोग पताका खड़ी करते या चढ़ाते हैं। युद्धयात्रा, मंगलयात्रा आदि में पताकाएँ साथ साथ चलती हैं। राजा लोगों के साथ उनके विशेष चिह्न से चित्रित पताकाएँ चलती हैं। कोई स्थान जीतने पर राजा लोग विजयचिह्न स्वरूप अपनी पताका वहाँ गाड़ते हैं।

पर्या०—कंदुली। कदली। कदलिका। जयंती। चिह्न। ध्वजा। वैजयंती।

क्रि० प्र०—उड़ना।—उड़ाना।—फहराना।

मुहा०—(किसी स्थान में अथवा किसी स्थान पर) **पताका उड़ना** = अधिकार होना। राज्य होना। जैसे,—कोई समय था जब इस सारे देश में राजपूतों की ही पताका उड़ा करती थी। समकक्षरहित होना। सर्वप्रधान होना। सबसे श्रेष्ठ माना जाना। जैसे,—आज व्याकरण शास्त्र में अमुक पंडित की पताका उड़ रही है। (किसी वस्तु की) **पताका उड़ना** = प्रसिद्ध होना। धूम होना। जैसे,—(क) आपकी दानशीलता की पताका चारों ओर उड़ रही है। **पताका उड़ाना** = अधिकार करना। विजयी होना। जैसे,—घबराने की बात नहीं, आज नहीं तो कल आप अवश्य ही इस दुर्ग पर अपनी पताका उड़ावेंगे। **पताका गिरना** = हार होना। पराजय होना। जैसे,—दिन भर शत्रुओं के नाकों चने चबवाने के पीछे अंत को सायंकाल पराक्रमी राजपूतों की पताका गिर गई। **पताकापतन** या **पताकापात** = पताका गिरना। **पताका फहराना** = (१) पताका उड़ना। (२) पताका उड़ाना। **विजय की पताका** = विजयी पक्ष की वह पताका जो विजित पक्ष की पताका गिराकर उसके स्थान पर उड़ाई जाय। विजयसूचक पताका।

२. वह डंडा जिसमें पताका पहनाई हुई होती है। ध्वज। ३. सौभाग्य। ४ तीर चलाने में उँगलियों का एक विशेष न्यास या स्थिति। ५. दस खर्ब की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जायगी—१०,००,००,००,००,०००।

६. नाटक में वह स्थल जहाँ किसी पात्र के चिंतागत भाव या विषय का समर्थन या पोषण आगंतुक भाव से हो।

विशेष—जहाँ एक पात्र एक विषय में कोई बात सोच रहा हो और दूसरा पात्र आकर दूसरे संबंध में कोई बात कहे, पर उसकी बात से प्रथम पात्र के चिंतागत विषय का मेल या पोषण होता हो वहाँ यह स्थल माना जाता है। विशेष दे० 'नाटक'।

७ पिंगल के ६ प्रत्ययों में से नवाँ जिसके द्वारा किसी निश्चित गुरुलघु वर्ण के छंद अथवा छंदों का स्थान जाना जाय।

विशेष—उदाहरणार्थ, प्रस्तार द्वारा यह मालूम हुआ कि ८ मात्राओं के कुल ३४ छंदभेद होते हैं और मेरु प्रत्यय द्वारा यह भी जाना गया कि इनमें से ७ छंद १ गुरु और ६ लघु वर्ण के होंगे। अब यह जानना रहा कि ये सातों छंद किस किस स्थान के होंगे। पताका की क्रिया से यह ज्ञात होगा कि १३वें, २१वे, २६वें, २९वें, ३१वें, ३२वें, ३३वे, स्थान के छंद १ गुरु और ६ लघु के होंगे।

८ नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रासंगिक कथावस्तु के दो भेदों में से एक। वह कथावस्तु जो सानुबंध हो और बराबर चलती रहे। प्रासंगिक कथावस्तु का दूसरा भेद 'प्रकरी' है।

पताकादंड—संज्ञा पुं० [सं० पताकादण्ड] पताका का डंडा। झंडे का डंडा। ध्वजदंड।

पताकास्थान—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक में वह स्थान जहाँ पताका हो। दे० 'पताका—६'।

पताकास्थानक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पताकास्थान'।

पताकिक—संज्ञा पुं० [सं०] पताकाधारक। झंडाबरदार। झंडी उठानेवाला।

पताकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सेना। ध्वजिनी। २. एक देवी।

पताकी—संज्ञा पुं० [सं० पताकिन्] [स्त्री० पताकिनी ?] १. पताकाधारी। झंडी उठानेवाला। २. रथ। ३. एक योद्धा जो महाभारत में कौरवों की ओर से लड़ा था। ४ झंडा। ध्वज। ५. फलित ज्योतिष में राशियों का एक विशेष वेध जिससे जातक के अरिष्ट काल की अवधि जानी जाती है।

पतापत—वि० [सं०] अतिशय पतनशील। बहुत गिरा हुआ [को०]।

पताभी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव।

पतार[1]†—संज्ञा पुं० [सं० पाताल] १ दे० 'पाताल'। उ०—विक्रम धर्मा पेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा।—पदमावत, पृ० २७६। २. जंगल। सघन वन। उ०—निकसि ताड़का बन ते रघुपति निरख्यो दूरि पहारा। ताके निकट मेघ इव मलिन देख्यो श्याम पतारा।—रघुराज (शब्द०)।

पतारी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] बत्तख की जाति का एक जलपक्षी।

विशेष—यह उत्तर भारत में जलाशयों के किनारे पाया जाता है। ऋतु के अनुसार यह अपने रहने के स्थान में परिवर्तन करता रहता है। इसका शिकार किया जाता है।

पतारी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्रावली] लताकुंज । पत्रावली । उ०—तैसी झुकी रही लतारी । तैसे सोभित नवल पतारी । तामैं अटकि रहे सारी । तेहि आप छुड़ावत प्यारी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १२४ ।

पताल—संज्ञा पुं० [सं० पाताल] दे० 'पाताल' । उ०—ल्यावै आसमान तें पताल तें पकरि, पारावार तें कढ़ावै थाह लेत न थकत है । —हम्मीर०, पृ० ११ ।

पताल आँवला—संज्ञा पुं० [सं० पातालआमलकी अथवा भूम्यामलकी] औषध के काम मे आनेवाला एक पौधा (क्षुप) ।

विशेष—यह बहुत बड़ा नहीं होता । पत्ते के नीचे पतली डंडी निकलती है । इसी मे फल लगते हैं । वैद्यक के अनुसार यह कड़वा, कसैला, मधुर, शीतल, वातकारक, प्यास, खाँसी, रक्तपित्त, कफ, पांडुरोग, क्षत और विष का नाशक तथा पुत्र-प्रदायक है ।

पर्य्या०—भूम्यामलकी । शिवा । ताली । क्षेत्रामली । तामलकी । सूक्ष्मफला । अफला । अमला । बहुपुत्रिका । बहुवीर्या । भूधात्री, आदि ।

पतालकुम्हड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पताल + कुम्हड़ा] एक प्रकार का जंगली पौधा जिसकी बेल शकरकंद की लता की तरह जमीन पर फैलती है और शकरकंद ही की तरह जिसकी गाँठों से कंद फूटते हैं । कंदों का परिमाण एक सा नहीं होता, कोई छोटा और कोई बहुत बड़ा होता है । यह दवा के काम में आता है ।

पतालदंती—संज्ञा पुं० [सं० पातालदन्ती] वह हाथी जिसका दाँत नीचे की ओर झुका हो । वह हाथी जिसके दाँत का झुकाव भूमि की ओर हो । ऐसा हाथी ऐबी समझा जाता है ।

पतावर—संज्ञा पुं० [हिं० पत्ता] पेड़ के सूखे हुए पत्ते ।

पतासी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बढ़इयों का एक औजार । छोटी रुखानी ।

पतिंग—संज्ञा पुं० [सं० पतङ्ग] पतंग । फतिंगा । भुनगा । उ०—इहाँ देखत अभ गए हारी । तुम पतिंग को अहौ भिखारी । जायसी (शब्द०) ।

पतिंवरा—वि० [सं० पतिम्वरा] १ (स्त्री) जो अपना पति स्वयं चुने । स्वेच्छा से पति का वरण करनेवाली (स्वयंवरा) । २. काला जीरा । कृष्णजीरक ।

पति[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पत्नी] १. किसी वस्तु का मालिक । स्वामी । अधिपति । प्रभु । जैसे, भूमिपति, गृहपति आदि । २. स्त्री विशेष का विवाहित पुरुष । किसी स्त्री के संबंध में वह पुरुष जिसका उस स्त्री से ब्याह हुआ हो । पाणिग्राहक । भर्ता । कंत । दूल्हा । शौहर । खाविंद ।

विशेष—साहित्य में पति या नायक चार प्रकार के होते हैं—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ । 'अनुकूल' वह पति है जो एक ही स्त्री पर पूर्णरूप से अनुरक्त हो और दूसरी की आकांक्षा तक न रखता हो । 'दक्षिण' वह है जिसके प्रणय का आधार अनेक स्त्रियाँ हों, पर जिसकी उन सबपर समान प्रीति हो अथवा जो अनेक स्त्रियों का समान प्रीतिपात्र हो । 'धृष्ट' वह है जो तिरस्कार और अपमान सहकर भी अपना काम बनाता है, जिसके लज्जा और मान नहीं होता । 'शठ' वह कहलाता है जो छल कपट में निपुण हो, जो वचनचातुरी से या झूठ बोलकर अपना काम निकाले । इनके अतिरिक्त किसी-किसी आचार्य ने 'अनभिज्ञ' नाम से पति का पाँचवाँ भेद भी माना है । यह हाव भाव आदि शृंगार चेष्टाओं का अर्थ समझने में असमर्थ होता है ।

३ पाशुपत दर्शन के अनुसार सृष्टि, स्थिति और संहार का वह कारण जिसमे निरतिशय, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति हो और ऐश्वर्य से जिसका नित्य संबंध हो । शिव या ईश्वर । ४. मर्यादा । प्रतिष्ठा । लज्जा । इज्जत । साख । दे० 'पत' । उ०—(क)अब पति राखि लेहु भगवान । —सूर (शब्द०) (ख) तुम पति राखी प्रह्लाद दीन दुख टोरा ।—गणेश प्रसाद (शब्द०) । ५. मूल । जड़ । ६. गति । गमन (को०) ।

पति[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिष्ठा] दे० 'पत' ।

यौ०—पतिपानी = दे० 'पतपानी' । उ०—सुमिरौं मैहर कै भवानी तूँ पतिपानी राखउ मोर ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०१ ।

पतिआ†—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्रिका] पत्र । चिट्ठी । उ०—के पतिआ लए जाएत रे मोरा पियतम पास ।—विद्यापति, पृ० ३६५ ।

पतिआना†—क्रि० स० [सं० प्रत्यय, प्रा० पत्तय + हिं० आना (प्रत्य०)] विश्वास करना । सच मानना । प्रतीत करना । एतबार करना । मानना ।

पतिआर(पु)[१]—संज्ञा पुं० [हिं० पतिआना] पतिआने का भाव । विश्वास । खास । एतबार । मातबरी ।

पतिआर[२]—वि० दे० 'पतियार' ।

पतिक—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिक] कार्षापण नाम का एक प्राचीन सिक्का ।

पतिकामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पति की अभिलाषा करनेवाली (स्त्री) । पतिप्राप्ति की इच्छा रखनेवाली (स्त्री) ।

पतिखेचर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव [को०] ।

पतिग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पातक] पाप । कलमष । उ०—गंगा गया छै तीरथ योग, वाणारसी तिहाँ परसजे, तिणि दरसण जाई पतिग न्हामि ।—बी० रासो, पृ० ३५ ।

पतिघातिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पति की हत्या करनेवाली स्त्री । पति को मार डालनेवाली स्त्री । २. वह स्त्री, जिसका ज्योतिष या सामुद्रिक के अनुसार विधवा हो जाना संभव हो । वैधव्य योग अथवा लक्षणवाली स्त्री ।

विशेष—कर्कट लग्न अथवा कर्कटस्थ चंद्रमा में मंगल के तीसवें अंश मे जन्म ग्रहण करनेवाली, जिसकी हथेली पर अँगूठे के निचले भाग से छिगुनी के निचले भाग तक सीधी रेखा हो, जिसकी आँखें लाल हों अथवा जिसकी नाक के सिरे पर काला मसा हो, जिसकी छाती अधिक उभरी या फैली हुई हो, जिसके ऊपर के ओंठ पर रोएँ हों—ऐसी सब स्त्रियाँ पतिघातिनी कही गई हैं ।

३. वैधव्यसूचक एक विशेष हस्तरेखा। स्त्री की हथेली पर वह रेखा जो अँगूठे की जड़ से छिगुनी की जड़ तक होती है।

पतिघ्न—वि० [सं०] वैधव्यसूचक लक्षण का योग।

पतिघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतिघ्न योग या लक्षणवाली स्त्री।

पतिजिया†—संज्ञा स्त्री० [स० पुत्रजीवा] जीयापोता नामक वृक्ष।

पतित—वि० [सं०] १. गिरा हुआ। ऊपर से नीचे आया हुआ। २. आचार, नीति या धर्म से गिरा हुआ। आचारच्युत। नीतिभ्रष्ट या धर्मत्यागी। ३. महापापी। अतिपातकी। नरकदायक पाप का कर्ता। ४. जाति से निकाला हुआ। समाज द्वारा बहिष्कृत। जातिच्युत। जाति या समाज से खारिज।

विशेष—हिंदू धर्मशास्त्रों के अनुसार आपद्काल न होने पर भी स्वधर्म के नियमों का उल्लंघन करनेवाला पतित होता है। आग लगानेवाला, विष देनेवाला, दूसरे का अपकार करने की नीयत से फाँसी लगाकर, डूबकर या जलकर मर जानेवाला, ब्रह्महत्याकारी, सुरा पान करनेवाला, गुरुपत्नी-गामी, नास्तिक, चोर, मद्यप, चांडाल स्त्री से मैथुन करने अथवा चांडाल का दान लेने या अन्न खानेवाला ब्राह्मण तथा किसी अन्य महा या अतिपातक का कर्ता पतित माना जाता है। शुद्धितत्व के अनुसार पतित का दाह, अंत्येष्टिक्रिया, अस्थिसंचय, श्राद्ध यहाँ तक कि उसके लिये आँसू बहाना तक अकर्तव्य है। पतित का संसर्ग, उसके साथ भोजन, शयन या बातचीत करनेवाला भी पतित होता है। पर पतितसंसर्ग के कारण पतित व्यक्ति का श्राद्ध, तर्पण आदि निषिद्ध नहीं है। माता के अतिरिक्त अन्य सब व्यक्ति पतित दशा में त्याज्य हैं। गर्भधारण और पोषण के कारण माता किसी दशा में त्याज्य नहीं है। प्रायश्चित्त करने से पतित व्यक्ति की शुद्धि होती है।

५. अत्यंत मलीन। महा अपावन। ६. युद्धादि में पराजित या हारा हुआ (को०)। ७. अति नीच। अधम।

यौ०—पतितउधारन। पतितपावन।

पतितउधारन(पु)[1]—वि० [सं० पतित + हिं० उधारना (सं० उद्धरण)] जो पतित का उद्धार करे। पतितों को गति देनेवाला।

पतितउधारन[2]—संज्ञा पु० १. ईश्वर। २ सगुण ईश्वर। पतित जनों के उद्धार के लिये अवतार लेनेवाला ईश्वर।

पतितता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पतित होने का भाव। जाति या धर्म से च्युत होने का भाव। २. अपवित्रता। ३. अधमता। नीचता।

पतितत्व—संज्ञा पुं० [सं० पतितत्व] पतित होने का भाव।

पतितपावन[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पतितपावनी] पतित को पवित्र करनेवाला। पतित को शुद्ध करनेवाला।

पतितपावन[2]—संज्ञा पुं० १. ईश्वर। २. सगुण ईश्वर।

पतितवृत्त—वि० [सं०] पतित दशा में रहनेवाला। जातिच्युत हो-कर जीवन बितानेवाला।

पतितव्य—वि० [सं०] पतन के योग्य। गिरनेवाला।

पतितसावित्रीक[1]—वि० [सं०] जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो या विधिपूर्वक न हुआ हो। सावित्रीभ्रष्ट (क्षत्रियादि)।

पतितसावित्रीक[2]—संज्ञा पु० प्रथम तीन प्रकार के व्रात्यों में से एक।

पतित्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वामी, प्रभु या मालिक होने का भाव। स्वामित्व। प्रभुत्व। २ पाणिग्राहक या पति होने का भाव। पाणिग्राहकता। वरत्व।

पतिदेव(पु)—वि० स्त्री० [सं० पतिदेवा] दे० 'पतिव्रता'। उ० —तेरे सुनील सुभाव भद्र, कुल नारिन को कुलकानि सिखाई। नेही जनो पतिदेवत के गुन गौरि सबै गुनगौरि पढ़ाई।—मति० ग्रं०, पृ० २७५।

पतिदेवता—वि० [सं०] जिस (स्त्री) के लिये केवल पति ही देवता हो। जिस (स्त्री) का आराध्य या उपास्य एक-मात्र पति हो। पतिव्रता। उ०—पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।—तुलसी (शब्द०)।

पतिदेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पतिदेवता'।

पतिधर्म—संज्ञा पु० [सं०] १. पति का धर्म। स्वामी का कर्तव्य। २ पति के प्रति स्त्री का धर्म। पति के संबंध में पत्नी के कर्तव्य।

पतिधर्मवती—वि० [सं०] पतिसंबंधी कर्तव्यों का भक्तिपूर्वक पालन करनेवाली (स्त्री)। पति की भक्ति भाव से सेवा शुश्रूषादि करनेवाली (स्त्री)। पतिव्रता।

पतिध्रुक—वि० [सं०] पति को न चाहनेवाली (स्त्री)।

पतिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्नी] दे० 'पत्नी'। उ० —पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ता के तंदुल खाए हो। संपति दै वाकी पतिनी कौं मन अभिलाष पुराए हो।—सूर०, १।७।

पतिप्राणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतिव्रता स्त्री।

पतिबरता†—वि० [सं० पतिव्रता] दे० 'पतिव्रता'। उ० —सब समर्थ पतिबरता नारी इन सम और न आन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १. पृ० ६७६।

पतिब्रत(पु)—संज्ञा पु० [सं० पतिव्रत] दे० 'पातिव्रत'। उ० —रानी रमा को बिसारि पातिब्रत दै मन गोपी सनेह बिसाहौ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६६।

पतिभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पति की सेवा करना।

पतिभरता(पु)—वि० स्त्री० [सं० पतिव्रता] दे० 'पतिव्रता'। उ०—हम पतिभरता पुरुष बिन, कौन दिसा चित को धरै।—ह० रासो, पृ० १२०।

पतिमती—वि० स्त्री० [सं०] सधवा। पतिवती (को०)।

पतिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्रिका] पत्री। चिट्ठी। उ०—रानी पतिया पठाय, जीव जनि मारिया।—धरम०, पृ० ४।

पतियान—वि० [सं०] पति का पदानुसरण करनेवाली। पति की अनुगामिनी।

पतियाना†—क्रि० स० [सं० प्रत्यय + हिं० आना (प्रत्य०)]

विश्वास करना। सच मानना। प्रतीत करना। उ०—प्रिय विना प्रिया से रहा नहीं जाता था। पर उनको उसका हृदय न पतियाता था।—शंकु०, पृ० १५।

पतियार†—वि० [हिं० पतियाना] विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय। उ०—तीन लोग भरि पूरि रहो है नाहीं है पतियार। कबीर (शब्द०)।

पतियारा पु—संज्ञा पुं० [हिं० पतियाना] पतियाने का भाव। विश्वास। एतबार। उ०—तुमसों और पास नहि कोऊ मानहु करि पतियारे। हरीचंद खोजत तुमही को बेद पुरान पुकारे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३३।

पतियारीपु—संज्ञा स्त्री० [हिं० पतियारा] विश्वास। एतबार। उ०—वेद पुरान सिधारौं तहाँ 'हरिचंद' जहाँ तुम्हारी पतियारी। मेरे तो साधन एक ही हैं जग नंदलला वृषभानु दुलारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७६।

पतिरिपु—वि० [सं०] पति से द्वेष करनेवाली (स्त्री)। पति से बैर रखनेवाली।

पतिलंघन—संज्ञा पुं० [पुं० पतिलङ्घन] १. पति को लाँघना। पति के रहते अन्य से विवाह कर लेना। २. पति की आज्ञा का उल्लंघन करना [को०]।

पतिलीन पु वि० [हिं० पति (= प्रतिष्ठा) + सं० लीन] संमानहीन। प्रतिष्ठाहीन। उ०—अति दीनन की गतिहीनन की पतिलीनन की रति के मन हौ। सब ही विधि जान करौ सुखदान, जिवावन प्रान कृपातन हौ।—घनानंद, पृ० ११०।

पतिलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पति को प्राप्त स्वर्ग जो पतिव्रता स्त्री को प्राप्त होता है। पतिव्रता स्त्री को मिलनेवाला वह स्वर्ग जिसमें उसका पति रहता है।

पतिवंती वि० [सं० पतिवत्नी] पतिवती। सधवा। सभर्तृका।

पतिवती—वि० [सं० पति + हिं० वती (प्रत्य०)] सधवा (स्त्री)। सौभाग्यवती।

पतिवत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौभाग्यवती स्त्री [को०]।

पतिवरत पु—संज्ञा पुं० [सं० पतिव्रत] दे० 'पतिव्रत'। उ०—जनवा काज नरूली जादम। धूर ऊठी पतिवरत नरी भ्रम।—रा० रू०, पृ० १७।

पतिवर्त पु—संज्ञा पुं० [सं० पतिव्रत] दे० 'पतिव्रत'।

पतिवर्तापु—[सं० पतिव्रता] दे० 'पतिव्रता'।

पतिवेदन¹—वि० [सं०] जो पति को प्राप्त करावे। पति का लाभ करानेवाला।

पतिवेदन²—संज्ञा पुं० महादेव। शिव।

पतिव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] पति में (स्त्री की) अनन्य प्रीति और भक्ति। पति में निष्ठापूर्वक अनुराग। पातिव्रत्य।

पतिव्रता—वि० [सं०] पति में अनन्य अनुराग रखनेवाली और यथाविधि पतिसेवा करनेवाली (स्त्री)। जिस (स्त्री) का प्रेमपात्र और उपास्य एकमात्र पति हो। सब प्रकार पति के अनुकूल आचरण करनेवाली (स्त्री)। सती। साध्वी। सच्चरित्रा। उ०—विमुख हुई मौनव्रत लेकर उस खल के प्रति पतिव्रता।—साकेत, पृ० ३८६।

विशेष—मन्वादि स्मृतियों के अनुसार पतिव्रता स्त्री को आजन्म पति की आज्ञा का अनुसरण करना चाहिए। कोई ऐसी बात न करनी चाहिए जो पति को अप्रिय हो। पति कितना ही दुश्शील क्यों न हो, पतिव्रता को सदा सर्वदा उसे अपना देवता मानना चाहिए। जो बातें पति को अप्रिय हों उसकी मृत्यु के पश्चात् भी वे पतिव्रता के लिये अकर्तव्य हैं। पति की मृत्यु के अनंतर पतिव्रता स्त्री को फल, मूल आदि खाकर पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए। पति के विदेश होने की दशा में उसे शृंगार, हासपरिहास, क्रीड़ा, सैर तमाशे में वा दूसरे के घर जाना आदि कार्य त्याग देना चाहिए। संपूर्ण व्रत, पूजा, तपस्या और आराधना त्यागकर पतिसेवा में रत रहना ही पतिव्रता के लिये एकमात्र धर्म है। पुत्र की अपेक्षा पति को सौगुना अधिक प्यार करे। पति उसे सब पापों से छुड़ा देता है। परपुरुष पर प्रेम कर पातिव्रत का उल्लंघन करनेवाली स्त्री शृगालयोनि में जन्म पाती है।

पतिष्ठ—वि० [सं०] अत्यंत पतनशील। गिरनेवाला।

पतिसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पति की सेवा। पतिभक्ति [को०]।

पतिस्याहपु—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पातशाह'। उ०—बादित खाँ पतिस्याह सों, करी सलाम सु आय। —ह० रासो पृ० ८१।

पतिहारीपु—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिहारी] दे० 'पटतर'। उ०—रंगभूमि बहु भाँति सँवारी। ताल मिलाइ करै पतिहारी। —माधवानल०, पृ० १६४।

पती—संज्ञा सं० [सं० पति] दे० 'पति'।

पतीजनापु—क्रि० अ० [हिं० प्रतीत + ना (प्रत्य०)] पतिआना। एतबार करना। भरोसा करना। विश्वास करना। प्रतीत करना। उ० (क) तब देवकी दीन ह्वै भाख्यो नृप को नाहिं पतीजै। —सूर (शब्द०)। (ख) बोल्यो विहँग विहँसि रघुबर बलि कहौ सुभाव पतीजै।—तुलसी (शब्द०)।

पतीननापु—क्रि० स० [हिं० प्रतीत + ना (प्रत्य०)] विश्वास करना। सच मानना। यकीन करना। उ०- देवै गर्भ भई है कन्या राइ न बात पतीनी हो। —सूर (शब्द०)।

पतोर†—संज्ञा स्त्री० [सं० पङ्क्ति] पाँति। कतार। पंक्ति।

पतोरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चटाई।

पतोला†—वि० [हिं० पतला] दे० 'पतला'।

पतोला‡—वि० [हिं०] दे० 'पतला'।

पतीली—संज्ञा स्त्री० [सं० पातिली (= हाँड़ी)] ताँबे या पीतल की एक प्रकार की बटलोई जिसका मुँह और पेंदी साधारण बटलोई की अपेक्षा अधिक चौड़ी और दल मोटा होता है। देगची।

पतुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० पातिली] हाँड़ी। उ०—पतुकी धरी स्याम

खिसाइ रहे उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ८३।

पतुरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० पातिली (=स्त्री विशेष)] १. नाचने गाने का व्यवसाय करनेवाली स्त्री। वेश्या। रंडी। २. व्यभिचारिणी स्त्री। छिनाल स्त्री।

पतुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] कलाई में पहनने का एक आभूषण जिसको अवध प्रांत की स्त्रियाँ पहनती हैं।

पतुही—संज्ञा स्त्री० [हिं० पत्ता] मटर की वह फली जिसके दाने, रोग, आधिदैविक बाधा या समय से पहले तोड़ लिए जाने के कारण यथेष्ट पुष्ट न हो सके हों। नन्हे नन्हें दानोवाली छीमी।

पतूख—संज्ञा स्त्री० [हिं० पतोखा] दे० 'पतोखी'।

पतूखी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पतोखी'। उ०— अँखिया हरि दरसन की भूखी। ······बारक वह मुख आनि दिखावहु दुहि पय पियत पतूखी।—सूर०, १०। ३५५७।

पतेना—संज्ञा स्त्री० [देश०] पक्षी विशेष। उ० —सुनाती है बोली, नहीं फूल सुँघनी, पतेना महेली लगाती हैं फेरे।—हरी घास०, पृ० १३६।

पतोई—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह फेन जो गुड़ बनाते समय खौलते रस में उठता है।

पतोखद[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्रौषध] वह ओषधि जो किसी वृक्ष, पौधे या तृण का पत्ता या फूल आदि हो। घासपात की दवाई। खरबिरई।

पतोखद[२]—संज्ञा पुं० [सं० ओषधिपति] चंद्रमा। (डिं०)।

पतोखदी—संज्ञा स्त्री० [सं० पौत्रौषधि] दे० 'पतोखद[१]'।

पतोखा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० पत्त] [अल्पा० पतोखी] पत्ते का बना पात्र। दोना।

पतोखा[२]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगला जो मलंग बगले से छोटा और किलचिया से बड़ा होता है। इसका पर खूब सफेद, नरम, चिकना और चमकीला होता है। टोपियों आदि के बनाने में प्राय: इसी के पर काम में लाए जाते हैं। पतना।

पतोखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पतोखा] १. एक पत्ते का दोना। छोटा दोना। २ पत्तों का बना छोटा छाता। घोघी।

पतोरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पत्योरा'।

पतोहू†—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्रवधू] दे० 'पतोहू'।

पतोहरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० पयोधरा] क्षीण कटिवाली स्त्री। उ० — सखिजन प्रेरते. हास हेरंते राआनी लाक्षमी पातरी, पतोहरी, तरुणी, तरहट्टी वन्हो विअक्खणी परिहास पेसणी सुंदरी साथ जवे देखिअ।—कीर्ति०, पृ० ४। †२. पुत्रवधू।

पतोहू†—संज्ञा स्त्री०[सं० पुत्रवधू प्रा० पुत्तबहू] बेटे की स्त्री। पुत्रवधू।

पतौआ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पत्र, हिं० पत्ता] पत्ता। पर्ण।

पतौवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पतौआ'। उ०—(क) जाने, बिनु जाने, कै रिसाने, केलि कबहुँक सिवहिं चढ़ाए ह्वै हैं बेल के पतौवा द्वै।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२८। (ख) झारिकै पतौवा गए बाहिर लै डारिबे के देखी भीर भार, रहे बैठिये रसाल हैं।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४५८।

पत्तंग—संज्ञा पुं० [सं० पत्तङ्ग] पतंग नामक लकड़ी। बक्कम।

पत्त(पु)†[१]—संज्ञा पुं० [सं० पत्र, प्रा० पत्त] दे० 'पत्र'। उ०—पत्त पुरातन झरिग पत्त अकुरिग उट्ठ तुछ। ज्यों सैसव उत्तरिय चढ़िय सैसव किसोर कुछ।—पृ० रा०, २५।६६।

पत्त[२]—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट या पत्र (=लेखाधार)] पट्ट। पटरी। उ०—सुनि हंस बैन उर लगी बत्त। विधिना लिषंत क्यों मिटै पत्त।—पृ० रा०, २५।१२०।

पत्त(पु)[३]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पति'। उ०—माहाँ ऊथप थप्पणौ। यह नरनाहाँ पत्त राह दुहुँ हद रक्खणौ अभैसाह छतपत्त।—रा० रू०, पृ० १०।

पत्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ नगर। शहर।

विशेष—प्राचीन समय में नगरों के नाम के साथ इस शब्द का प्रयोग होता था। जैसे, प्रभासपत्तन। अब इसका अपभ्रंश पाटन या पट्टन अनेक नगरों के नाम के साथ संयुक्त है। जैसे, झालरापाटन, विजगापट्टन, मुसलीपट्टन आदि। कभी कभी इस शब्द का प्रयोग उस नगर के लिये भी होता था जहाँ बंदरगाह होता था और जो समुद्री यात्रियों और व्यापारियों के कारण छोटा नगर हो जाता था।

यौ०—पत्तनवणिक=नगर का वणिक। शहर का व्यापारी।

२. मृदंग।

पत्तनाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बंदरगाह का अध्यक्ष या प्रधान अधिकारी (कौटि०)।

पत्तर—संज्ञा पुं० [सं० पत्र] १. धातु का ऐसा चिपटा लंबोतरा टुकड़ा जो पीटकर तैयार किया गया हो और पत्ते की तरह पतला होने पर भी कड़ा हो तथा जिसकी तह या परत की जा सके। धातु की चादर। जैसे,—(क) मंदिर के शिखर पर सोने का पत्तर चढ़ा है। (ख) यंत्र बनाने के लिये ताँबे का एक पत्तर ले आओ।

विशेष—कागज की तरह महीन पत्तर जो झट मोड़ा और तह किया जा सके 'वर्क' कहलाता है।

२ दे० 'पत्तल'।

पत्तल—संज्ञा स्त्री०[सं० पत्र, हिं० पत्ता] १ पत्तों को सीकों से जोड़कर बनाया हुआ एक पात्र जिससे थाली का काम लिया जाता है।

विशेष—पत्तल प्राय. बरगद, महुए या पलास आदि के पत्तों की बनाई जाती है। इसकी बनावट गोलाकार होती है। व्यास की लंबाई एक हाथ से कुछ कम या अधिक होती है। हिंदुओं के यहाँ बड़े भोजों में इसी पर भोजन परसा जाता है। अन्य अवसरों पर भी इसका थाली के स्थान पर उपयोग किया जाता है। जंगली मनुष्य तो सदा इसी में खाना खाते हैं।

मुहा०—एक पत्तल के खानेवाले=परस्पर घनिष्ठ सामाजिक

संबंध रखनेवाले। परस्पर रोटी बेटी का व्यवहार करनेवाले। अत्यंत सवर्गीय या सजातीय। **किसी की पत्तल में खाना** = किसी के साथ खानपान आदि का संबंध करना या रखना। जैसे,—बला से वह बुरा है, पर किसी के पत्तल में खाने तो नही जाता। **जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना** = उपकारक का अपकार करना। जिससे लाभ उठाना उसी की हानि करना। कृतघ्नता करना। जैसे,—दुष्टों का यह स्वभाव ही है कि जिस पत्तल में खायें उसी में छेद करें। **पत्तल पड़ना** = भोजन के लिये पत्तल बिछना। भोज के समय लोगों के सामने पत्तलो का रखा जाना। **पत्तल परसना** = (१) भोजन के सहित पत्तल सामने रखना। (२) पत्तल में भोजन की वस्तुएँ रखना। पत्तल में खाना परसना। **पत्तल लगाना** = दे॰ 'पत्तल परसना'।

२. पत्तल में परसी हुई भोजन सामग्री। जैसे,—(क) उसने ऐसी बात कही कि सबके सब पत्तल छोड़कर उठ गए। (ख) पंडित जी तो आए नही, उनके घर पत्तल भेज दो।

मुहा॰—**पत्तल खोलना** = वह कार्य कर डालना जिसके करने के पहले भोजन न करने की शपथ हो। बँधी पत्तल खोलना। **पत्तल बाँधना** = कोई पहेली कहकर उसके बूझने के पहले भोजन न करने की शपथ देना। उ॰—बाँधी पत्तल जो कोई खावे। मूरख पंचन माँह कहावे। (कहावत)।

विशेष—कही कही विवाह मे बरातियों के सामने पत्तल परस जाने के पीछे कन्या पक्ष की कोई स्त्री एक पहेली कहती या प्रश्न करती है और जबतक बरातियो में से कोई एक उसको बूझ न ले अथवा उसका उत्तर न दे दे तबतक उनको भोजन न करने की कसम देती है। इसी को पत्तल बाँधना कहते हैं।

यौ॰—**झूठी पत्तल** = उच्छिष्ट। जूठा।

३. एक आदमी के खाने भर भोजन सामग्री जो किसी को दी जाय या कही भेजी जाय। पत्तल भर दाल, चावल या पूरी, लड्डू आदि। परोसा। जैसे,—अमुक मंदिर से उसे प्रतिदिन चार पत्तले मिलती हैं।

पत्ता[1]—संज्ञा पु॰ [सं॰ **पत्र, पत्रक**] [स्त्री॰ **पत्ती**] १ पेड़ या पौधे के शरीर का वह हरे रंग का फैला हुआ अवयव जो कांड या टहनी से निकलता है और थोड़े दिनो के पीछे बदल जाता है। पलास। पत्रक। पर्ण। छदन। छादन। बर्ह। बर्हन।

विशेष—पत्ते के बीच की जो मोटी नस होती है वह पीछे की ओर टहनी से जुड़ी होती है। वह नस आगे की ओर उत्तरोत्तर पतली होती जाती है। इस नस के दोनों ओर अनेक पतली नसें निकलती हैं। ये खड़ी और आड़ी नसें ही पत्ते का ढाँचा होती हैं। नसों का यह जाल हरे आच्छादन से ढका होता है। बहुत से वृक्षों और पौधों के पत्तों का अंतिम भाग नोकदार अथवा कुछ कुछ गावदुम होता है, पर कुछ के पत्ते बिलकुल गोल भी होते हैं। नया निकला हुआ पत्ता हरापन लिए हुए लाल होता है। इस अवस्था में उसे 'कोपल' कहते हैं। कुछ पेड़ों के पत्ते प्रतिवर्ष पतझड़ के दिनों में झड़ जाते हैं। इस समय वे प्राय: वर्णहीन होते हैं। इन दो अवस्थाओं के अतिरिक्त अन्य सब समय पत्ता हरा ही होता है। पत्ता वृक्ष या पौधे के लिये बड़े काम का अंग है। वायु से उसे जो आहार मिलता है। वह इसी के द्वारा मिलता है। निरिंद्रिय आहार को सेंद्रिय द्रव्य में परिवर्तित कर देना पत्ते ही का काम हैं। कुछ वृक्षों के पत्ते हाथ का भी काम देते हैं। इनके द्वारा पौधे वायु में उड़नेवाले कीड़ों को पकड़कर उनका रक्त चूसते हैं।

मुहा॰—**पत्ता खड़कना** = किसी के पास आने की आहट मिलना। कुछ खटका या आशंका होना। आशंका की कोई बात होना। जैसे,—पत्ता खड़का, बंदा भड़का।—(कहावत)। **पत्ता तोड़कर भागना** = बड़े वेग से दौड़ते हुए भागना। सिर पर पैर रखकर भागना। **पत्ता न हिलना** = हवा में गति न होना। हवा का बिलकुल बंद होना। हब्स होना। जैसे,—आज सारे दिन पत्ता न हिला। **पत्ता लगना** = पत्ते मे सटे रहने के कारण फल में दाग पड जाना वा उसका कुछ अंश सड़ जाना। **पत्ता हो जाना** = इतनी तेजी से दौड़कर जाना कि लोग बाग देख न सकें। क्षणमात्र में अदृश्य हो जाना। उड़न छू हो जाना। काफूर हो जाना। उड़ जाना।

२ कान में पहनने का एक गहना जो बालियों में लटकाया जाता है। ३. मोटे कागज का गोल या चौकोर खंड। जैसे, ताश का पत्ता, गंजीफे का पत्ता, तागे का पत्ता। ४. धातु की चादर। पत्तर। ५. नाव के डाँड़े का वह अगला भाग जिसमें तख्ती जड़ी रहती है और जिसकी सहायता से पानी काटा जाता है। फन। (लश॰)।

पत्ता[2]—वि॰ बहुत हलका।

पत्ति[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पैदल सिपाही। प्यादा। २. पैदल चलनेवाला। पत्तिक। पदातिक। ३. शूरवीर पुरुष। योद्धा। बहादुर।

पत्ति[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. प्राचीन काल में सेना का सबसे छोटा विभाग जिसमें एक रथ, एक हाथी, तीन घोड़े और पाँच पैदल होते थे। किसी किसी के मत से पैदलों की सख्या ५५ होती थी। २. गति (को॰)।

पत्तिक[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. प्राचीन काल में सेना का एक विशेष विभाग जिसमें १० घोड़े, १० हाथी, १० रथ और १० प्यादे होते थे। २. उपर्युक्त विभाग का अफसर।

विशेष—प्राचीन काल में दस पत्तिक की संज्ञा 'सेना' थी जिसका नायक सेनापति कहाता था। ऐसी १० सेनाओ का नाम 'बल' था। इसके अधिकारी को 'बलाध्यक्ष' कहते थे।

पत्तिक[2]—वि॰ पैदल चलनेवाला।

पत्तिकाय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पैदल सेना।

पत्तिगणक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्राचीन सेना में एक विशेष अधिकारी जिसका कर्तव्य पैदल सैनिकों की गणना करना तथा उन्हें एकत्र करना होता था।

पत्तिप—संज्ञा पुं० [सं०] पत्तिपाल।

पत्तिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच या छह सिपाहियों के ऊपर का अफसर।

विशेष—प्राचीन काल में सिपाहियों का पहरा बदलना इसी का काम होता था।

पत्तिय—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्री] चिट्ठी। पत्रिका। उ०—पत्तिअ नहि लिखि अल्ह कह, कहिय जुबानिय सत्त। म्हाँ पर सैन सु डारिया रीस नयन करि रत्त।—प० रासो, पृ० १३६।

पत्तिव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें आगे कवचधारी सैनिक और पीछे धनुर्धर हों। (कौटि०)।

पत्ती[1]—संज्ञा पुं० [सं० पत्तिन्] १. पैदल चलनेवाला व्यक्ति। पैदल यात्री। २. पदाति सैनिक। पैदल सिपाही। प्यादा [को०]।

पत्ती[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पत्ता + ई (प्रत्य०) अल्पार्थक] १. छोटा पत्ता। २. भाग। हिस्सा। साझे का अंश। जैसे,—इस दुकान में मेरी भी एक पत्ती है।

यौ०—पत्तीदार = साझीदार। हिस्सेदार।

३ फूल की पँखड़ी। दल। ४ भाँग। ५ पत्ती के आकार की लकड़ी, धातु आदि का कटा हुआ कोई टुकड़ा जो प्रायः किसी स्थान में जड़ने, लगाने या लटकाने आदि के काम में आता है। पट्टी। ६. दाढ़ी बनाने के काम में प्रयुक्त होनेवाला लोहे का छोटा धारदार पत्तर जिसे अंग्रेजी में ब्लेड कहते हैं।

पत्ती[3]—संज्ञा पुं० [?] राजपूतों की एक जाति। उ०—पत्ती औ पँवनान बघेले। अगरवार चौहान चँदेले।—जायसी (शब्द०)।

पत्तीदार—संज्ञा पुं० [हिं० पत्ती + फा० दार (= रखनेवाला)] जिसका किसी व्यवसाय में किसी के साथ साझा हो। साझीदार। हिस्सेदार।

पत्तूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शालि नामक शाक। शालिंच नामक शाक २. जलपीपल। ३ पाकड़ का वृक्ष। ५. पतंग की लकड़ी। ६. लाल चंदन (को०)।

पत्थ(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० पथ्य, प्रा० पत्थ] दे० 'पथ्य'।

पत्थ(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० पार्थ] पृथा के पुत्र, अर्जुन। उ०—हैमत हीत अग्गलौ पीथौ पत्थ प्रमाण—रा० रू०, पृ० २७७।

पत्थर—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तर, प्रा० पत्थर] [वि० पथरीला, क्रि० पथराना] १. पृथ्वी के कड़े स्तर का पिंड या खंड। भूद्रव्य का कड़ा पिंड या खंड।

विशेष—भूगर्भ शास्त्र के अनुसार पृथ्वी की बनावट में अनेक स्तर या तहें हैं। इनमें से अधिक कड़ी कलेवरवाली तहों का नाम पत्थर है। पत्थरों के मुख्य दो भेद हैं—आग्नेय और जलज। आग्नेय पत्थरों की उत्पत्ति, भूगर्भस्थ ताप के उद्भेद से होती है। पृथ्वी के गर्भ से जो तरल पदार्थ अत्यंत उत्तप्त अवस्था में इस उद्भेद द्वारा ऊपर आता है वह कालांतर में सर्दी से जमकर चट्टानों का रूप धारण करता है। इस रीति पर पत्थर बनने की क्रिया भूगर्भ के भीतर होती है। उपर्युक्त तरल पदार्थ भूगर्भ स्थित चट्टानों से टकराकर अथवा अन्य कारणों से भी अपनी गरमी खो देता और पत्थर के रूप में ठोस हो जाता है। जलज पत्थर जल के प्रवाह से बनते हैं। मार्ग में पड़नेवाले पत्थर आदि पदार्थों को चूर्ण करके जलधारा कीचड़ के रूप मे उन्हे अपने प्रवाह के साथ बहा ले जाती है। जिस कीचड़ के उपादान में कड़े परमाणु अधिक होते हैं वह जमने पर पत्थर का रूप धारण करता है। जलज पत्थरों की बनावट प्रायः तह पर तह होती है पर आग्नेय पत्थरों की ऐसी नही होती।

उपादान के भेद से भी पत्थरों के कई भेद होते हैं, जैसे आग्नेय में संगखरा, शालिग्रामी या संगमूसा आदि और जलज में बलुआ, दुधिया, स्लेट का पत्थर, संगमरमर, स्फटिक आदि। आग्नेय और जलज के अतिरिक्त अस्थिज पत्थर भी होता है। घोंघे आदि सामुद्रिक जीवों की अस्थियाँ विश्लिष्ट होने के पश्चात् दबाव के कारण पुन. घनीभूत होकर ऐसे पत्थर की रचना करती हैं। खड़िया मिट्टी इसी प्रकार का पत्थर है। जिस प्रकार साधारण कीचड़ कठिन होकर पत्थर के रूप मे परिवर्तित हो जाता है उसी प्रकार साधारण पत्थर भी दबाव की अधिकता और आसपास की वस्तुओं तथा जलवायु के विशेष प्रभाव के कारण रासायनिक अवस्थांतर प्राप्तकर स्फटिक अथवा पारदर्शी पत्थर या मणि का रूप धारण करता है।

पत्थर मानव जाति के लिये अत्यंत उपयोगी पदार्थ है। आज जो काम विविध धातुओं से लिए जाते हैं आदिम अवस्था में वे सभी केवल पत्थर से लिए जाते थे। जबतक मनुष्यों ने धातुओं की प्राप्ति का उपाय और उनका उपयोग नही जाना था तबतक उनके हथियार, औजार, बरतन भाँड़े सब पत्थर के ही होते थे। आजकल पत्थर का सबसे अधिक उपयोग मकान बनाने के काम मे किया जाता है। इससे बरतन, मूर्तियाँ, टेबुल, कुर्सी आदि भी बनती हैं। संगमरमर आदि मुलायम और चमकीले पत्थरों से अनेक प्रकार की सजावट की वस्तुएँ और आभूषण आदि भी बनाए जाते हैं। भारतवासी बहुत प्राचीन काल से ही पत्थर पर अनेक प्रकार की कारीगरी करना सीख गए थे। बढ़िया मूर्तियाँ, बारीक जालियाँ, अनेक प्रकार के फूल पत्ते आदि बनाने मे वे अत्यंत कुशल थे।

बौद्धों के समय में मूर्तितक्षण और मुगलों के समय मे जाली, बेलबूटे आदि बनाने की कलाएँ विशेष उन्नत थीं। यद्यपि मुगल काल के बाद मे भारत के इस शिल्प का बराबर ह्रास हो रहा है, फिर भी अभी जयपुर में संगमरमर के बरतन और आगरे मे अलंकार आदि बड़े साफ और सुंदर बनाए जाते है। भारत के पहाड़ों में सब प्रकार के पत्थर मिलते हैं। विंध्य पर्वत इमारती पत्थरों के लिये और अरावली पर्वत संगमरमर के लिये प्रसिद्ध हैं। विशेष दे० 'संगमरमर'।

बोलचाल में पत्थर शब्द का प्रयोग अत्यंत कड़ी अथवा भारी, गतिशून्य अथवा अनुभूतिशून्य वस्तु, दयाकरुणाहीन, अत्यंत

जड़बुद्धि अथवा परम कृपण व्यक्ति आदि के संबंध के होता है ।

पर्या०—पाषाण । ग्रावन् । उपल । अश्मन् । दृषद् । पादारुक कायक । शिला ।

यौ०—पत्थरकला । पत्थरचटा । पत्थरफोड़ा ।

मुहा०—**पत्थर का कलेजा, दिल या हृदय** = अत्यंत कठोर हृदय । वह हृदय जिसमें, दया, करुणा, आदि कोमल वृत्तियों का स्थान न हो । किसी के दुख पर न पसीजनेवाला दिल या हृदय । **पत्थर का छापा** = (१) छपाई का वह प्रकार जिसमें ढले हुए अक्षरों से काम नहीं लिया जाता, बल्कि छापे जानेवाले लेख की एक पत्थर पर प्रतिलिपि उतारी जाती है और उसी पत्थर के ऊपर कागज रखकर छापते हैं । लीथोग्राफ । लीथो की छपाई । विशेष दे० 'प्रेस' । (२) पत्थर के छापे में छपा हुआ विषय या लेख । पत्थर के छापे का काम । पत्थर के छापे की छपाई । जैसे,—(किसी पुस्तक की छपाई के विषय में) यह तो पत्थर का छापा है । **पत्थर की छाती** = कभी न टूटनेवाली हिम्मत अथवा कभी न हारनेवाला दिल । असफलता या कष्ट से विचलित न होनेवाला हृदय । बलवान् और दृढ़ हृदय । मजबूत दिल । पक्की तबीयत । जैसे—सचमुच उस मनुष्य की पत्थर की छाती है, इतना भारी दुख सह लिया, आह तक नहीं की । **पत्थर की लकीर** = सदा सर्वदा बनी रहनेवाली (वस्तु) । सर्वकालिक । अमिट । पक्की । स्थायी । जैसे,—ओछों की मित्रता पानी की लकीर और सज्जनों की मित्रता पत्थर की लकीर है । (कहावत) । **पत्थर को जोंक लगाना** = अनहोनी या असंभव बात करना । वह कार्य करना जो औरों के लिये असाध्य हो । जैसे, अत्यंत कृपण से दान दिलाना, अत्यंत निर्दय के हृदय में दया उत्पन्न कर देना, वज्र मूर्ख को समझा देना, आदि । **पत्थर चटाना** = पत्थर पर घिसकर धार तेज करना । छुरी, कटार, आदि की धार पत्थर पर रगड़कर तेज करना । **पत्थर तले हाथ आना** = ऐसे संकट में फँस जाना जिससे छूटने का उपाय न दिखाई पड़ता हो । बुरी तरह फँस जाना । भारी संकट में फँस जाना । **पत्थर तले हाथ दबना** = दे० 'पत्थर तले हाथ आना' । **पत्थर तले से हाथ निकालना** = संकट या मुसीबत से छूटना । **पत्थर निचोड़ना** = (१) जो वस्तु जिससे मिलना असंभव हो वह वस्तु उससे प्राप्त करना । किसी से उसके स्वभाव के अत्यंत विरुद्ध कार्य कराना । (२) अनहोनी बात या असंभव कार्य करना । (**विशेष**—इस मुहावरे का प्रयोग विशेषतः कृपण के मन में दान की इच्छा या निर्दय के हृदय में दया का भाव उत्पन्न करने के अर्थ में होता है ।) **पत्थर पर दूब जमना** = अनहोनी बात या असंभव काम होना । ऐसी बात होना जिसके होने की आशा सर्वथा छोड़ दी गई हो । जैसे, बंध्या समझी जानेवाली के पुत्र होना आदि । **पत्थर पसीजना** = अनहोनी बात होना । अत्यंत कठोर चित्त में नरमी, कृपण के मन में दानेच्छा, अत्याचारी के मन में दया उत्पन्न होना, आदि । जैसे,—तीन वर्ष की तपस्या से यह पत्थर पसीजा है । **पत्थर पिघलना** = दे० 'पत्थर पसीजना' । **पत्थर मारे भी न मरना** = मरने का कारण या सामान होने पर भी न मरना । बेहयाई से जीना । निहायत सख्त जान होना । **पत्थर सा खींच या फेंक मारना** = बहुत बड़ी बात कहना या उत्तर देना । ऐसी बात कहना जो सुननेवाले को असह्य हो । लट्ठमार बात कहना या उत्तर देना । **पत्थर से सिर फोड़ना या मारना** = असंभव बात के लिये प्रयत्न करना । व्यर्थ सिर खपाना । अत्यंत मूर्ख को समझाने में श्रम करना ।

२ सड़क के किनारे गड़ा हुआ वह पत्थर जिसपर मील के संख्यासूचक अंक खुदे होते हैं । सड़क की नाप सूचित करनेवाला पत्थर । मील का पत्थर । जैसे,—तीन घंटे से हमलोग चल रहे हैं, लेकिन सिर्फ चार पत्थर आए हैं ।

३. ओला । बिनौली । इंद्रोपल ।

क्रि० प्र०—गिरना ।—पड़ना ।

मुहा०—**पत्थर पड़ना** = (१) चौपट हो जाना । नष्टभ्रष्ट हो जाना । जैसे,—तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गया है । (२) कुछ न पाना । मनोरथ भंग होने का सामान मिलना । सियापा पड़ जाना या पड़ा पाना । जैसे,—भाग्य की बात है कि जहाँ जहाँ जाता हूँ वहीं पत्थर पड़ जाते हैं । **पत्थर पड़े** = चौपट हो जाय । मारा जाय । ईश्वर का कोप पड़े । (अभिशाप और अक्सर तिरस्कार या निंदा के अर्थ में भी बोलते है । जैसे,—पत्थर पड़े ऐसी ओछी समझ पर ।) **पत्थर पानी** = महाभूतों की प्रतिकूलता अथवा प्रकोप का काल । आँधी पानी आदि का काल । तूफानी समय । जैसे,—भला इस पत्थर पानी में कौन जान देने जायगा ?

४. रत्न । जवाहिर । हीरा, लाल, पन्ना आदि । ५. पत्थर का का सा स्वभाव रखनेवाली वस्तु । पत्थर की तरह कठोर, भारी अथवा हटने, गलने आदि के अयोग्य वस्तु । जैसे, अत्याचारी का हृदय, जडबुद्धि का मस्तिष्क, बड़ा ऋण, दुर्जर भोज्य, आदि ।

क्रि० प्र०—बनना ।—बन जाना ।—होना ।

३. कुछ नहीं । बिलकुल नहीं । खाक । (तुच्छता या तिरस्कार के साथ अभाव सूचित करता है) । जैसे,—(क) तुम इस किताब को क्या पत्थर समझोगे । (ख) वहाँ क्या पत्थर रखा है ?

पत्थर कला—संज्ञा पुं० [हिं० + पत्थर कल] पुरानी चाल की बंदूक जिसमें बारूद सुलगाने के लिये चकमक पत्थर लगा रहता था । तोड़ेदार या पलीतेदार बंदूक । चाँपदार बंदूक ।

विशेष—दे० 'बंदूक' ।

पत्थरचटा¹—संज्ञा पुं० [हिं० पत्थर + अनु० चट चट या हिं० चाटना] १ एक प्रकार की घास जिसकी टहनियाँ नरम और पतली होती हैं । इसकी पत्ती को लड़के मुट्ठी के गड्ढे के मुँह पर मारते हैं तो चट चट शब्द होता है । २. एक प्रकार का साँप जो पत्थर चाटता है । ३. एक प्रकार की

मछली जो सामुद्रिक चट्टानों से चिपटी रहती है। ४. कंजूस। मक्खीचूस।

पत्थरचटा²—वि० जो घर की चारदीवारी से बाहर न निकला हो। कूपमंडूक।

पत्थरचूर—संज्ञा पुं० [हिं० पत्थर + चूर] एक प्रकार का पौधा।

पत्थरपानी—संज्ञा पुं० [हिं० पत्थर + पानी] दुर्भिक्ष। विनाश। मटियामेट।

पत्थरफूल—संज्ञा पुं० [हिं० पत्थर + फूल] छरीला। शैलाख्य।

पत्थरफोड़—संज्ञा पुं० [हिं० पत्थर + फोड़ना] १. हुदहुद पक्षी। २. बहुत छोटी जाति की वनस्पति।

विशेष—यह प्रायः वर्षा ऋतु में दीवारों या पत्थर के जोड़ों के बीच से निकलती है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं जो प्रायः फोड़ों को पकाने के लिये उनपर बाँधी जाती हैं। इसमें सफेद रंग के बहुत छोटे छोटे फूल भी लगते हैं।

पत्थरफोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पत्थर + फोड़ना] पत्थर तोड़ने का पेशा करनेवाला। संगतराश।

पत्थरबाज—संज्ञा पुं० [हिं० पत्थर + फा० बाज़ (= खेलनेवाला)] १. पत्थर फेंककर किसी को मारनेवाला। २. वह जो प्रायः पत्थर या ढेला फेंका करे। ३. वह जिसे पत्थर फेंकने का अभ्यास हो। ढेलवाह।

पत्थरबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पत्थरबाज] पत्थर फेंकने की क्रिया। पत्थर फेंकाई। ढेलवाही।

पत्यर—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तर] दे० 'पत्थर'।

पत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विधिपूर्वक विवाहिता स्त्री। वह स्त्री जिसके साथ किसी पुरुष का शास्त्रानुसारी रीति से विवाह हुआ हो।

पर्या०—जाया। भार्या। दयिता। कलत्र। वधू। सहधर्मिणी। दारा। दार। गृहिणी। पाणिगृहीता। क्षेत्र। जनि। सहचरी। गृह।

पत्नीमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० पत्नीमन्त्र] एक वैदिक मंत्र।

पत्नीयूप—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में देवपत्नियों के लिये निश्चित स्थान।

पत्नीव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त और किसी स्त्री से गमन न करने का संकल्प या नियम।

पत्नीशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ में वह गृह जो पत्नी के लिये बनाया जाता है। यह यज्ञशाला के पश्चिम ओर होता है।

पत्नीसंयाज, पत्नीसंयाजन—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के पश्चात् होनेवाला एक वैदिक कर्म।

पत्न्याट—संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर। पत्नी का वासगृह [को०]।

पत्य—संज्ञा पुं० [सं०] पति होने का भाव। जैसे, सैनापत्य।

पत्याना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पतिआना'। उ०—दरसत अति सुकुमार तन परसत मन न पत्यात।—बिहारी (शब्द०)।

पत्यारा—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पतिआरा'। उ०—(क) नैनन ते निचुरयो परै नेह रुखाई के बैनन कौन पत्यारो।—देव (शब्द०)। (ख) पी को उठाय कह्यो हिय लाय कै है कपटीन को कौन पत्यारो।—देव (शब्द०)।

पत्यारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पङ्क्ति] पंक्ति। कतार। उ०—(क) चूनरी सी छिति मानो बिछी इमि सोहति इंद्रबधू की पत्यारी।—द्विजदेव (शब्द०)। (ख) अवलोकति इंद्रबधू की पत्यारी, बिलोकति है खिन कारी घटा।—द्विजदेव (शब्द०)।

पत्योरा—संज्ञा पुं० [हिं० पत्ता + औरा (प्रत्य०)] एक पकवान जो अरुई के पत्तों को पीठी में लपेटकर घी या तेल में तलने से तैयार होता है। एक प्रकार का रिकवच।

पत्रंग—संज्ञा पुं० [सं० पत्राङ्ग] पतंग नाम की लकड़ी या पेड़। बक्कम।

पत्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वृक्ष का पत्ता। पत्ती। दल। पर्ण।

यौ०—पत्रपुष्प।

२. वह वस्तु जिसपर कुछ लिखा हो। लेखाधार। लिखा हुआ कागज।

विशेष—कागज का आविष्कार होने के पहले बहुत दिनों तक भारतवर्ष में ताड़ के पत्तों पर लेख, पुस्तकें आदि लिखी जाती थीं। इसी अभ्यासवश लेखयुक्त कागज, ताम्रपट आदि को भी लोग पत्र कहने लगे।

३. वह कागज या ताम्रपट आदि जिसपर किसी विशेष व्यवहार के प्रमाणस्वरूप कुछ लिखा गया हो। वह कागज जिसपर किसी खास मामले की सनद या सबूत के लिये कुछ लिखा हो। जैसे, दानपत्र, प्रतिज्ञापत्र आदि।

क्रि० प्र०—लिखना।

४. वह लेख जो किसी व्यवहार या घटना के प्रमाण या सनद के लिये लिखा गया हो। कोई वसीका, पट्टा या दस्तावेज।

क्रि० प्र०—लिखना।

५. चिट्ठी। पत्री। खत।

क्रि० प्र०—लिखना।

६. समाचारपत्र। खबर का कागज या अखबार।

क्रि० प्र०—चलाना।—निकालना।

यौ०—पत्रसंपादक।

७. पुस्तक या लेख का एक पन्ना। पृष्ठ। सफा। पन्ना। ८. धातु की चद्दर। पत्तर। वरक। जैसे, स्वर्णपत्र। ९. तीर या पक्षी के पंख। पक्ष। १०. तेजपात। ११. चिड़िया। पखेरू। १२. कोई वाहन या सवारी। जैसे, रथ, बहल, घोड़ा, ऊँट आदि। १३. कस्तूरी, केशर, चंदन आदि द्रव्यों से कपोल या स्तनों की सजावट (को०)। १४. शस्त्र की धार। असि या कुठार आदि का फल (को०)। १५. कटार। छुरा (को०)।

पत्र⁴—संज्ञा पुं० [सं० पत्रपुट] दे० 'पात्र'। उ०—पत्र सुधारे जोगणी माल सुधारे रंभ थंभ चलेवी सोमरवि देखे व्योम अचंभ। —रा० रू०, पृ० ३६।

पत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पत्ता। २. पत्तों की लड़ी। पत्रावली। ३. शालिशाक। ४. तेजपत्ता। ५. दे० 'पत्रभंग'।

पत्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो किसी सार्वजनिक समाचारपत्र या पत्रिका का संचालन करता हो। वह जो किसी अखबार को चलाता हो, संवाददाता हो, फीचर लिखता हो आदि पत्रसंचालक। पत्रसंपादक। अखबारनवीस। एडीटर। जरनलिस्ट। २. वह जो किसी समाचारपत्र या अखबार में नियमित रूप से लिखता हो। रिपोर्टर।

पत्रकारिता, पत्रकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] पत्रकार का काम या व्यवसाय।

पत्रकाहला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंख फड़फड़ाने या पत्तों के फड़कने की ध्वनि [को०]।

पत्रकृच्छ्र—संज्ञा [सं०] एक व्रत जिसमें पत्तों का काढ़ा पीकर रहा जाता है।

पत्रगान—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ के पत्तो से उत्पन्न ध्वनि। मर्मर शब्द। उ०—करुणा के दान पान, फूटे नव पत्रगान। —अर्चना, पृ० ५६।

पत्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] तिधारा। थूहर। त्रिकटक।

पत्रघना, पत्रघ्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेहुँड़। थूहर।

पत्रज—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपात।

पत्रझंकार—संज्ञा पुं० [सं० पत्रझङ्कार] नदी का वेग। नदी का प्रवाह [को०]।

पत्रतंडुली—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्रतण्डुली] यवतिक्ता लता।

पत्रतरु—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गंध खैर।

पत्रता—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्र+ता (प्रत्य०)] पत्तापन। उ०—डालियाँ बहुत सी सूख गईं। उनकी न पत्रता हुई नई। —आराधना, पृ० २२।

पत्रतालक—संज्ञा पुं० [सं०] वंसपत्र। हरताल।

पत्रदारक—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी चीरने का आरा [को०]।

पत्रद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

पत्रनाडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्ते की नस।

पत्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णकार की छेनी [को०]।

पत्रपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जा। संकोच [को०]।

पत्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] लंबा छुरा या कटार।

पत्रपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाण का पिछला भाग। शरपुंख। २. कैंची। कतरनी।

पत्रपाश्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] माथे पर का एक आभूषण विशेष। टीका [को०]।

पत्रपिशाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्तों से बनाई गई छतरी [को०]।

पत्रपुट—संज्ञा पुं० [सं०] पत्तों का पात्र। दोना [को०]।

पत्रपुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ९६ हाथ लंबी, ४८ हाथ चौड़ी और ४७ हाथ ऊँची नाव (युक्तिकल्पतरु)।

पत्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल तुलसी। २. एक विशेष प्रकार की तुलसी। जिसकी पत्तियाँ छोटी छोटी होती हैं। ३. किसी के सत्कार या पूजा की बहुत मामूली सामग्री। लघु उपहार। छोटी भेंट। उ०—मेरा पत्रपुष्प स्वीकार कर मुझे कृतार्थ कीजिए (शब्द०)।

पत्रपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र।

पत्रपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तुलसी। २. छोटे पत्ते की तुलसी।

पत्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० पत्रबन्ध] फूलों का शृंगार।

पत्रबाल—संज्ञा पुं० [सं०] डाँड़ा [को०]।

पत्रभंग—संज्ञा पुं० [सं० पत्रभङ्ग] १. वे चित्र या रेखाएँ जो सौंदर्यवृद्धि के लिये स्त्रियाँ, कस्तूरी, केसर, आदि के लेप अथवा सुनहले, रुपहले पत्तरों के टुकड़ों से भाल, कपोल, आदि पर बनाती हैं। माथे और गाल पर की जानेवाली चित्रकारी अथवा बेलबूटे। साटी। २. पत्रभंग बनाने की क्रिया।

पत्रभंगि—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्रभङ्गि] दे० 'पत्रभंग'।

पत्रभंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्रभङ्गी] दे० 'पत्रभंग'।

पत्रभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

पत्रमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्रमञ्जरी] एक प्रकार का तिलक जो पत्रयुक्त मंजरी के आकार का होता है।

पत्रमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेत। बेतस [को०]।

पत्रयौवन—संज्ञा पुं० [सं०] नया पत्ता। पल्लव। कोपल।

पत्ररचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्रभंग।

पत्ररथ—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया। उ०—विहग पतत्री पत्ररथ पत्री पतग पतंग। —अनेकार्थ०, पृ० २५।

यौ०—पत्ररथेंद्र = गरुड। पत्ररथेंद्रकेतु = विष्णु।

पत्ररेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पत्ररचना'।

पत्रलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह लता जिसमें प्राय: पत्ता ही पत्ता हो। २. पत्रभंग। साटी। ३. लंबी छुरी (को०)।

पत्रलवण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नमक जो एरंड, मोरवा, अड़ूसा, कंज, अमिलतास और चीते के हरे पत्तों से निकाला जाता है।

विशेष—इन सब पत्तों को खरल में कूटकर घी या तेल के किसी बरतन में रखते हैं और ऊपर से गोबर लीपकर आग मे जलाते हैं। यह नमक वात रोगों में लाभदायक होता है।

पत्रल¹—वि० [सं०] पत्तोंवाला। घने पत्तोंवाला।

पत्रल²—संज्ञा पुं० हिली डुली या पतली दही [को०]।

पत्रलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्रभंग। साटी।

पत्रवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्रभंग। साटी।

पत्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शंकरजटा। २. पान। ३. पलासी लता। ४. पर्णलता। ५. पत्रभंग (को०)।

पत्रवाज—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी। चिड़िया। २. बाण। तीर।

पत्रवाल—संज्ञा पुं० [सं०] डाँड़ा। चप्पू [को०]।

पत्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरकारा। चिट्ठीरसाँ। २. बाण। तीर ३. पक्षी। चिड़िया।

पत्रवाहक—संज्ञा पुं० [सं०] पत्र ले जानेवाला। चिट्ठीरसाँ। हरकारा।

पत्रविशेषक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिलक। २ पत्रभंग। साटी।

पत्रविष—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्रों से निकलनेवाला विष।

पत्रवृश्चिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा उडनेवाला कीड़ा जिसके काटने से बड़ी जलन होती है। पतबिछिया। पतबिछिया।

पत्रवेष्ट—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरकी। ताटंक। २. करनफूल नाम का कान में पहनने का गहना।

पत्रव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] चिट्ठी लिखते और उत्तर पाते रहने की क्रिया या भाव। चिट्ठी आने जाने का क्रम। पत्राचार। लिखापढ़ी। खत किताबत। जैसे,—साल भर से मैं उनसे पत्रव्यवहार कर रहा हूँ।

पत्रशबर—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक अनार्य जाति।

पत्रशाक—संज्ञा पुं० [सं०] पत्तों का साग। वह पौधा जिसके पत्तों का साग बनाकर खाया जाता हो। जैसे, पालक, चौलाई, आदि।

पत्रशिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्ते की नस।

पत्रशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्रशृङ्गी] मूसाकानी नाम की लता।

पत्रश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूसाकानी। २. पत्तों की पंक्ति। पत्रावली।

पत्रश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रेष्ठ हैं पत्ते जिसके अर्थात् बेल। बिल्व। २. पत्तों में प्रधान। बेल का पत्ता। बिल्वपत्र।

पत्रसूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] काँटा। कंटक।

पत्रांक—संज्ञा पुं० [सं० पत्र+अङ्क] पत्तों की गोदी। पल्लव का मध्यभाग। वृंत। उ०—जूही की कली, दृग बंद किए, शिथिल पत्रांक में।—अपरा, पृ० ४।

पत्रांग—संज्ञा पुं० [सं० पत्राङ्ग] १. लालचंदन। २. पतंग। बक्कम। ३. भोजपत्र। ४. कमलगट्टा।

पत्रांगुलि—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्राङ्गुलि] पत्रभंग। पत्ररचना [को०]।

पत्रांजन—संज्ञा पुं० [सं० पत्राञ्जन] १. स्याही। २. काजल [को०]।

पत्रा—संज्ञा पुं० [सं० पत्रक, पत्रिका] १. तिथिपत्र। जंत्री। पंचांग। उ० —पत्रा ही तिथि पाइए वा घर के चहुँ पास।—बिहारी (शब्द०)। २. पन्ना। वर्क। पृष्ठ। सफहा।

पत्राख्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपात। २. तालीशपत्र।

पत्राचार—संज्ञा पुं० [सं०] पत्रव्यवहार।

पत्राढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीपलामूल। २. पर्वततृण। ३. तृणाख्य। ४. पतंग। बंकम। ५. नरसल। ६. तालीसपत्र।

पत्राम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पतंग। २. लालचंदन।

पत्रालु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कासालु। २. इक्षुदर्भ।

पत्रावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पत्तों की श्रेणी या कतार। २. गेरू। ३. पत्ररचना, जो पुराने समय में नारियों के मुख पर सौंदर्यवृद्धि के लिये रची जाती थी। उ०—रचि पत्रावलि माँग सिंदूरी। भरि मोतिन औ मानिक पूरी।—जायसी (शब्द०)।

पत्रावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पत्ररचना। साटी। २. दुर्गापूजन में प्रयुक्त एक द्रव्य जो पीपल के नवीन कोपलों, मधु और यव से तैयार करते हैं। ३. गेरू। ४. पत्तों की पंक्ति या श्रेणी।

पत्राहार—संज्ञा पुं० [सं०] पत्तियों का आहार।

पत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चिट्ठी। खत। २. लिखने के लिये कागज का पन्ना (को०)। ३. कोई छोटा लेख या लिपि। जैसे, जन्मपत्रिका, लग्नपत्रिका आदि। ४. कोई सामयिक पत्र या पुस्तक। समाचारपत्र। अखबार। रिसाला। ५. जातिपत्री या जायपत्री (को०)। ६. एक प्रकार का कर्णाभूषण (को०)।

पत्रिकाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कपूर। पर्णकपूर। पानकपूर।

पत्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा पत्ता। पल्लव। कोंपल।

पत्री[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चिट्ठी। खत। २. कोई छोटा लेख या लिपिपत्रिका। जैसे, जन्मपत्री, लग्नपत्री। ३. दोना ४. धमासा। हिंगुवा। जवासा। ५. खैर का पेड़। ६. ताड़। ७. महा तेजपत्र।

पत्री[2]—वि० [सं० पत्रिन्] जिसमें पत्ते हों। पत्रयुक्त। पत्रविशिष्ट।

पत्री[3]—संज्ञा पुं० १. बाण। तीर। उ०—लव के उर मे उरझ्यो वह पत्री। मुरझाइ गिरयो धरणी महँ छत्री।—रामचं० पृ० १७४। २. पक्षी। चिड़िया। ३. श्येन। बाज। ४ वृक्ष। पेड़। ५. रथी। ६. पर्वत। पहाड़। ७. ताड़। ८ कमल। उ०—पत्री तरु पत्री कमल पत्री बहुरि बिहंग। पत्री सर कर बिस जिमि, इमि सेवहु श्रीरंग।—अनेकार्थ०, पृ० १३९।

पत्री[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पत्तर] हाथ में पहनने का जहाँगीरी नाम का गहना।

पत्रोपस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] कसौंदी।

पत्रोर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सोनापाठा।

पत्रोल्लास—संज्ञा पुं० [सं०] अँखुवा। अंकुर [को०]।

पत्सल—संज्ञा पुं० [सं०] पंथ। मार्ग [को०]।

पथ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मार्ग। रास्ता। राह। २. व्यवहार या कार्य आदि की रीति। विधान। उ०—व्यास सुमन पथ अनुसरे सोई भले पहिचानिहै।—नाभादास (शब्द०)।

पथ[2]—संज्ञा पुं० [सं० पथ्य] रोग के लिये उपयुक्त हलका आहार। पथ्य। जुस। उ०—मोहन जो दृग जिहि मतन उझकाई दै जाय। ज्यौं चोरी पथ देत हैं वैद रोगियै आय।—रसनिधि (शब्द०)।

पथक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पथ जानने या बतलानेवाला। २. प्रांत।

पथकल्पना—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजाल। जादू का खेल।

पथगामी—संज्ञा पुं० [सं० पथगामिन्] रास्ता चलनेवाला। पथिक।

पथचारी—संज्ञा पुं० [सं० **पथचारिन्**] रास्ता चलनेवाला ।

पथत्—संज्ञा पुं० [सं०] मार्ग । पथ । रास्ता [को०] ।

पथदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] राह दिखानेवाला । रास्ता बतलानेवाला । उ०—जग के अनादि पथदर्शक वे, मानव पर उनकी लगी दृष्टि । —युगांत, पृ० १३ ।

पथनार†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पाथना**] १. गोबर के उपले बनाना या थापना । पाथना । २. पीटने या मारने की क्रिया ।

पथप्रदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] मार्गदर्शक । रास्ता दिखानेवाला ।

पथभ्रांत—वि० [सं० **पथभ्रान्त**] राह से भटका हुआ । भूला हुआ । उ०—ऐसी स्थिति में उसकी प्रवृत्ति कुछ तो पीछे की ओर मुड़ने की हुई और कुछ पथभ्रांत होने की ।—हिं० का० प्र०, पृ० ३२ ।

पथर†—संज्ञा पुं० [सं० **प्रस्तर** हिं० **पत्थर, पाथर**] पत्थर । पाषाण । उ०—धरम दास के साहेब कबीरा, पथर पूजै तो पूजन दे । —धरम०, पृ० ६८ ।

पथरकट—वि० [हिं० **पत्थर + काटना**] पत्थर काटने का काम करनेवाला । उ०—कनेत का चस्मा गढ़े पत्थर का बँधा हुआ कुंडला है, उससे नातिदूर लोहार का चस्मा भी कुछ उसी तरह का है; इसमें लोहार का पथरकट होना भी सहायक हुआ ।—किन्नर०, पृ० ४७ ।

पथरकला—संज्ञा पुं० [हिं० **पत्थर या पथरी + कल**] एक प्रकार की बंदूक या कड़ाबीन जो चकमक पत्थर के द्वारा अग्नि उत्पन्न करके चलाई जाती थी । वह बंदूक जिसकी कल या घोड़े में पथरी लगी रहती हो । इस प्रकार की बंदूक का व्यवहार पहले होता था ।

पथरचटा—संज्ञा पुं० [हिं० **पत्थर + चाटना**] १. पाषाणभेद या पखानभेद नाम की ओषधि । २. एक प्रकार की छोटी मछली जो भारत और लंका की नदियों में पाई जाती है । इसकी लंबाई प्रायः एक बालिश्त होती है ।

पथरना¹—क्रि० स० [हिं० **पत्थर+ना** (प्रत्य०)] औजारों को पत्थर पर रगड़कर तेज करना ।

पथरना—संज्ञा पुं० [हिं० **या** सं० **प्रस्तरण**] बिछौना । शय्या । उ०—अंबर ओढ़न भूमि पथरना । समुझि देखि निश्चै करि मरना ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३३५ ।

पथराना—क्रि० अ० [हिं० **पत्थर से नामिक धातु**] १. सूखकर पत्थर की तरह कड़ा हो जाना । २. ताजगी न रहना । नीरस और कठोर हो जाना । ३ स्तब्ध हो जाना । सजीव न रहना । जैसे, आँखें पथराना ।

पथराव—संज्ञा पुं० [हिं० **पथर + आव** (प्रत्य०)] पत्थर के टुकड़े, ढेला आदि का फेंकना । ढेलवाही । पत्थरबाजी ।

पथरी—संज्ञा स्त्री० [**हिं० पत्थर+ई (प्रत्य०)**] १. कटोरे या कटोरी के आकार का पत्थर का बना हुआ कोई पात्र । २. एक प्रकार का रोग जिसमें मूत्राशय में पत्थर के छोटे बड़े कई टुकड़े उत्पन्न हो जाते हैं ।

विशेष—ये टुकड़े मूत्रोत्सर्ग में बाधक होते हैं जिसके कारण बहुत पीड़ा होती है और मूत्रेंद्रिय में कभी कभी घाव भी हो जाता है । मूत्राशय के अतिरिक्त यह रोग कभी कभी गले, फेफड़े और गुरदे में भी होता है ।

३. चकमक पत्थर जिसपर चोट पड़ने से तुरंत आग निकल आती है । ४. पत्थर का वह टुकड़ा जिसपर रगड़कर उस्तरे आदि की धार तेज करते हैं । सिल्ली । ५. कुरंड पत्थर जिसके चूर्ण को लाख आदि में मिलाकर औजार तेज करने की सान बनाते हैं । ६. पक्षियों के पेट का वह पिछला भाग जिसमें अनाज आदि के बहुत कड़े दाने जाकर पचते हैं । पेट का यह भाग बहुत ही कड़ा होता है । ७. एक प्रकार की मछली । ८. जायफल की जाति का एक वृक्ष ।

विशेष—यह वृक्ष कोंकण और उसके दक्षिण प्रांत के जंगलों में होता है । इस वृक्ष की लकड़ी साधारण कड़ी होती है और इमारत बनाने के काम में आती है । इसमें जायफल से मिलते जुलते फल लगते हैं जिन्हें उबालने या पेरने से पीले रंग का तेल निकलता है । यह तेल औषध के काम में भी आता है और जलाने के काम में भी ।

पथरीला—वि० [**हिं० पत्थर + ईला** (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० **पथरीली**] पत्थरों से युक्त । जिसमें पत्थर हों । जैसे, पथरीली जमीन ।

पथरौटा—संज्ञा पुं० [**हिं० पत्थर + औटा** (प्रत्य०)] दे० 'पथरौटी' ।

पथरौटी—संज्ञा स्त्री० **हिं० पत्थर + औटी** (प्रत्य०)] पत्थर की कटोरी । पथरी । कूँड़ी ।

पथरौड़ा†—संज्ञा पुं० [**हिं० पाथना**] दे० 'पथौरा' ।

पथल—संज्ञा पुं० [**हिं० पत्थर, पथर**] पत्थर । पाथर । पाषाण । उ०—महल के बीच अजब मूरति पथल पूजे सेभर सुआ ।—स० दरिया, पृ० ६६ ।

पथसुंदर—संज्ञा पुं० [सं० **पथसुन्दर**] एक क्षुप ।

पथस्थ—वि० [सं०] राह में । मार्गस्थ ।

पथहारा—वि० [**हिं० पथ + हारना** (= खोना)] भूला भटका । पथभ्रष्ट । जिसका सही पथ छूट गया हो । उ०—सबसे ऊपर निर्जन नभ में अपलक संध्या तारा, नीरव औ निःसंग, खोजता सा कुछ, चिर पथहारा ।—ग्राम्या, पृ० ७२ ।

पथिक—संज्ञा पुं० [सं०] मार्ग चलनेवाला । यात्री । मुसाफिर । राहगीर ।

यौ०—**पथिकसंतति, पथिकसंहति, पथिकसार्थ = कारवाँ** । काफिला । सार्थ । यात्रीदल ।

पथिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुनक्का । २. अंगूर की मदिरा । एक प्रकार की अंगूरी मदिरा (को०) ।

पथिकाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] पथिकों के रहने का स्थान । धर्मशाला । चट्टी ।

पथिकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. पथप्रदर्शक। अग्नि [को०]।

पथिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक चक्र जिससे यात्रा का शुभ और अशुभ फल जाना जाता है।

पथिदेय—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर जो किसी विशिष्ट पथ पर चलनेवालों से लिया जाता है।

पथिद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] खैर का पेड़।

पथिन्—संज्ञा पुं० [सं०] १. राह। मार्ग। २ यात्रा। ३. कार्यपद्धति। कार्य की सरणि। ४. संप्रदाय। मत। ५ पहुँच। ६. एक नरक [को०]।

विशेष—संस्कृत के प्रथमा एकवचन मे इसका रूप पंथा होता है और कर्मकारक बहुवचन मे पथः। संस्कृत समास मे इसका रूप 'पथ' होता है, जैसे, दृष्टिपथ, सत्पथ, श्रुतिपथ, कर्णपथ आदि। हिंदी में यही रूप प्रचलित और मान्य है।

पथिप्रज्ञ—वि० [सं०] पथ का ज्ञाता। मार्ग का जानकार [को०]।

पथिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] राह का प्रिय साथी [को०]।

पथिल—संज्ञा पुं० [सं०] राही। बटोही।

पथिवाहक[1]—वि० [सं०] निर्दय। कठोरहृदय [को०]।

पथिवाहक[2]—संज्ञा पुं० १. व्याधा। शिकारी। आखेटक। २. मोटिया। बोझा ढोनेवाला व्यक्ति [को०]।

पथिस्थ—वि० [सं०] राह चलता हुआ। जो रास्ता तय कर रहा हो [को०]।

पथी—संज्ञा पुं० [सं० **पथिन्**] रास्ता चलनेवाला। मुसाफिर। यात्री। पथिक। उ०—(क) राम नाम अनुराग ही जिय जो रतिआतो। स्वारथ परमारथ पथी तोहिं सब पतिआतो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३५। (ख) पथी दृग पै बिसाल होय के बिहाल वाके रहे हैं दुकूलनि के कूलनि में आई री।—दीन० ग्रं०, पृ० ११।

पथीय—वि० [सं०] १. पथ संबंधी। २. संप्रदाय संबधी।

पथु(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **पथ**] पथ। मार्ग। रास्ता। राह। उ०—विधि करतब विपरीत बाम गति राम प्रेम पथु न्यारो।—तुलसी (शब्द०)।

पथेय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **पाथेय**] दे० 'पाथेय'।

पथेरा—संज्ञा पुं० [हिं० **पाथना**+एरा (प्रत्य०)] ईंट पाथनेवाला कुम्हार।

पथौरा—संज्ञा पुं० [हिं० **पाथना**+औरा (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ उपले पाथे जाते हों। गोबर पाथने की जगह।

पथ्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिकित्सा के कार्य अथवा रोगी के लिये हितकर वस्तु, विशेषतः आहार। वह हलका और जल्दी पचनेवाला खाना जो रोगी के लिये लाभदायक हो। उपयुक्त आहार। उचित आहार। उ०—करिकै पथ्य विरोध इक रोगी त्यागत प्रान।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २२७।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

मुहा०—पथ्य से रहना = संयम से रहना। परहेज से रहना।

२. सेंधा नमक। ३. छोटी हड़ का पेड़। ४. हित। मंगल। कल्याण।

पथ्य[2]—वि० हितकर। अनुकूल। उचित। उ०—कौशल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुरु आयेसु अहई।—मानस, २।१७६।

पथ्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी।

पथ्यशाक—संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।

पथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हरीतकी। हड़। उ०—अभया, पथ्या, अव्यथा, अमृता, चेतक होइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०४। २. वन ककोड़ा। ३. आर्या छंद का एक भेद जिसके और कई अवांतर भेद हैं। ४. सेंधनी। ५. चिर्भिटा। ६. गंगा। ७. सड़क। रास्ता। राह (को०)।

पथ्यादि क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक मे एक प्रकार का पाचक काढ़ा जो त्रिफला, गुड़ुच हलदी, चिरायते और नीम आदि को उबालकर बनाया जाता है।

पथ्यापंक्ति—संज्ञा पुं० [सं० **पथ्यापङ्क्ति**] पाँच पदों का एक प्रकार का वैदिक छंद जिसके प्रत्येक पाद में आठ आठ वर्ण होते हैं।

पथ्यापथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] पथ्य और अपथ्य। रोगी के लिये लाभकर और हानिकर वस्तु।

पथ्याशन—संज्ञा पुं० [सं०] पाथेय। संबल।

पथ्याशी—वि० [सं० **पथ्याशिन्**] पथ्य वस्तु खानेवाला [को०]।

पद—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवसाय। काम। २ त्राण। रक्षा। ३. योग्यता के अनुसार नियत स्थान। दर्जा। ४ चिह्न। निशान। ५ पैर। पाँव। चरण। उ०—सो पद गहो जाहि से सदगति पार ब्रह्म से न्यारा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ३।

यौ०—पदकंज। पदपंकज। पदपद्म।—दे० 'पदकमल'।

६ वस्तु। चीज। ७. शब्द। ८ प्रदेश। ९. पैर का निशान। १० श्लोक या किसी छंद का चतुर्थांश। श्लोकपाद। ११. उपाधि। १२ मोक्ष। निर्वाण। १३. ईश्वरभक्ति संबंधी गीत। भजन। १३ पुराणानुसार दान के लिये जूते, छाते, कपड़े, अँगूठी, कमंडलु, आसन, बरतन, और भोजन का समूह। जैसे,—पाँच ब्राह्मणों को पददान मिला है। १५. डग। कदम। पग। (को०)। १६ वैदिक मंत्रों के पाठ करने का एक ढंग। मंत्रों के शब्दों को अलग अलग कहना। जैसे, पद पाठ। १७. बिसात का कोठा या खाना। १८. किरण (को०)। १९. लंबाई की एक माप (को०)। २०. राह। मार्ग। ११. वर्गमूल (गणित)। २२ बहाना। हीला (को०)। २३ फल (को०)। २४. सिक्का (को०)।

पदई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **पदवी**] दे० 'पदवी'। उ०—छीर नीर निरवारि पिवै जो। इहि मग प्रभु पदई पावै सो।—नंद ग्रं०, पृ० ११८।

पदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का गहना जिसमें किसी देवता के पैरों के चिह्न अंकित होते हैं और जो प्रायः बालकों की रक्षा के लिये पहनाया जाता है। २. पूजन आदि के लिये किसी देवता के

पैरों के बनाए हुए चिह्न । ३. सोने चाँदी या किसी और धातु का बना हुआ सिक्के की तरह का गोल या चौकोर टुकड़ा जो किसी व्यक्ति अथवा जनसमूह को कोई विशेष अच्छा या अद्भुत कार्य करने के उपलक्ष में दिया जाता है। इसपर प्रायः दाता और गृहीता का नाम तथा दिए जाने का कारण और समय आदि अंकित रहता है। यह प्रशंसा सूचक और योग्यता का परिचायक होता है। ४. वह जो वेदों का पदपाठ करने में प्रवीण हो। ५. डग। कदम। पग (को०)। ६. स्थान। पद। ओहदा (को०)। ७. एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम।

पदकमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल सदृश पाँव। कमलरूपी चरण। उ०—पदकमल धोइ चढाइ नाव न नाथ उतराई चहौं। —मानस, २। १००।

पदक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १ गमन करना। चलना। २. वेदमंत्रों के पदों के पाठ की एक पद्धति। ३. वाक्यविन्यास। वाक्य में शब्दों या पदों के रखने का ढंग।

पदग—संज्ञा पुं० [सं०] पैदल चलनेवाला। प्यादा।

पदचतुरर्ध—संज्ञा पुं० [सं० पदचतुरर्ध्व] विषम वृत्तों का एक भेद जिसके प्रथम चरण मे ८, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में २० वर्ण होते हैं। इसमें गुरु लघु का नियम नहीं होता। इसके अपीड़, प्रत्यापीड़, मंजरी, लवली, और अमृतधारा ये पाँच अवांतर भेद होते हैं।

पदचर—संज्ञा पुं० [सं०] पैदल। प्यादा। उ०—सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान।—मानस, १।३०४।

पदचार, पदचारण—संज्ञा पुं० [सं०] पैदल चलना। उ०—देख चंचल मृदु पटु पदचार लुटाता स्वर्ण राशि कवियार।—गुंजन, पृ० ४६।

पदचारी—वि० [सं०] पैदल चलनेवाला। पैदल। उ०—ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंदमूल फल फूल अहारी।—मानस, २।४०।

पदचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह चिह्न जो चलने के समय पैरों से जमीन पर बन जाता है।

पदच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] संधि और समासयुक्त किसी वाक्य के प्रत्येक पद को व्याकरण के नियमों के अनुसार अलग अलग करने की क्रिया।

पदच्युत—वि० [सं०] जो अपने पद या स्थान से हट गया हो। अपने स्थान से हटा या गिरा हुआ। जैसे, किसी राजकर्मचारी का पदच्युत होना। उ०—अंत में राव जी आपा परभू पुराने कारिंदे ने प्रबल होकर उसको पदच्युत किया। —भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३६४।

पदच्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने पद से हटने या गिरने की अवस्था।

पदज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर की उँगलियाँ। उ०—मृदुल चरन सुभ चिह्न पदज नख अति अद्भुत उपमाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६१। २. शूद्र।

पदज[2]—वि० [सं०] जो पैर से उत्पन्न हो।

पदतल—संज्ञा पुं० [सं०] पैर का तलवा।

पदत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] अपने पद या ओहदे को छोड़ने की क्रिया।

पदत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] पैरों की रक्षा करनेवाला जूता।

पदत्रानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पदत्राण] दे० 'पदत्राण'। उ०—नहि पदत्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया। —मानस, २।२१५।

पदत्री—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया। (अनेकार्थ०)।

पददलित—वि० [सं०] १. पैरों से रौंदा हुआ। २. जो दबाकर बहुत हीन कर दिया गया हो।

पददारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिवाई नाम का पैर का रोग।

पददेश—संज्ञा पुं० [सं०] निचला भाग। तल भाग। उ०—वृत्र उसी जल के पददेश के नीचे सो गया।—प्रा० भा० प०, पृ० ८६।

पदनिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] चरणचिह्न। पैर की छाप। पदन्यास। उ०—इस दिशा मे कामायनी प्रथम और अंतिम पदनिक्षेप है।—बी० श० म०, पृ० ३४८।

पदन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर रखना। चलना। गमन करना। कदम रखना। उ०—मृदु पदन्यास मंद मलयानिल बिगलत शीश निचोल।—सूर (शब्द०)। २. पैर रखने की एक मुद्रा ३. पैर की छाप। चरणचिह्न। ४. चलन। ढंग। ५. पद रखने का काम। ६. गोखरू।

पदपंक्ति—संज्ञा पुं० [सं० पदपङ्क्ति] एक वैदिक छंद जिसके पाँच पाद होते हैं और प्रत्येक पाद में पाँच वर्ण होते हैं।

पदपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पैरों का चिह्न। अनेक पैरों के क्रमबद्ध चिह्न या कतार [को०]।

पदपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पदकमल'।

पदपलटी—संज्ञा स्त्री० [सं० पद+हिं० पलटना] एक प्रकार का नाच।

पदपाठ—संज्ञा पुं०[सं०]१. वेदमंत्रों का ऐसा पाठ जिसमें सभी पद अलग अलग करके कहे जायँ। २. ग्रंथ जिससे पदपाठ हो [को०]।

पदबंध—संज्ञा पुं० [सं० पदबन्ध] कदम। डग [को०]।

पदभंजन—संज्ञा पुं० [सं० पदभञ्जन] शब्दों की निरुक्ति। शब्दविश्लेषण [को०]।

पदभंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पदभञ्जिका] टीका। टिप्पणी [को०]।

पदभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] पदच्युति दोष [को०]।

पदम[1]—संज्ञा पुं० [सं० पद्म] दे० 'पद्म'।

पदम[2]—संज्ञा पुं० [सं० पद्मकाष्ठ] बादाम की जाति का एक जगली पेड़। अमलगुच्छ। पदमाख।

विशेष—यह पेड़ सिंधु से आसाम तक २५०० से ७००० फुट की ऊँचाई तक तथा खासिया की पहाड़ियों और उत्तर बर्मा में अधिकता से पाया जाता है। कहीं कहीं यह पेड़ लगाया भी जाता है। इसमें से बहुत अधिक गोंद निकलता है जो किसी काम में नहीं लाया जाता। इसमें एक प्रकार का फल होता है जिसमें से कड़ुए बादाम के तेल की तरह का तेल निकलता है। इन फलों को लोग कहीं कहीं खाते और कहीं कहीं फकीर लोग उनकी मालाएँ बनाकर गले में पहनते हैं। यह फल शराब बनाने के लिये विलायत भी भेजा जाता है। इस वृक्ष की लकड़ी छड़ियाँ और आरायशी सामान बनाने के काम में आती है। कहते हैं, गर्भ न रहता हो तो इसकी

लकड़ी घिसकर पीने से गर्भ रह जाता है, यदि गर्भ गिर जाता है तो स्थिर हो जाता है। वैद्यक के अनुसार इसकी लकड़ी ठंढी, कड़वी, कसैली, हलकी, वादी, रक्तपित्तनाशक, दाह, ज्वर, कोढ़ और विस्फोटक आदि को दूर करनेवाली और रुचिकारक मानी गई है।

पर्या०—पद्मक। मलय। पीतरक्त। सुप्रभ। पीतक। शीतल। हिम। शुभ। केदारज। पद्मगंधि। शीतवीर्य। अमलगुच्छ। पद्माख।

पदमकाठ—संज्ञा पुं० [सं० पद्मकाष्ठ] दे० 'पदम'^२।

पदमचख—संज्ञा पुं० [देश०] रेवंद चीनी।

पदमण—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्मिनी] स्त्री (डिं०)।

पदमनाभ—संज्ञा पुं० [सं० पद्मनाभ] १ विष्णु। २. सूर्य (डिं०)।

पदमाकर—संज्ञा पुं० [सं० पद्माकर] तालाब (डिं०)।

पदमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रजाल। संमोहनी विद्या [को०]।

पदमिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्मिनी] दे० 'पद्मिनी'। उ०—क्यों चाहति तू पदमिनी करन पानकी मोहि।—शकुंतला, पृ० ९३।

पदमूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर का तलवा। तलवा। २. (लाक्ष०) आश्रय। शरण।

पदमैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी कविता में एक ही शब्द या अक्षर का इस प्रकार बार बार आना जिसमें उसमें एक प्रकार का चमत्कार आ जाय। अनुप्रास। वर्णमैत्री। वर्णसाम्य। जैसे, अल्लिकान मंजुल मलिंद मतवारे मिले मंद मंद मारुत मुहीम मनसा की है।—(शब्द०)।

पदम्मी—संज्ञा पुं० [सं० पद्मी] हाथी (डिं०)।

पदयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भ्रमण या यात्रा जो पाँव प्यादे चलते हुए की जाय। पैदल की जानेवाली यात्रा।

पदयोजना—संज्ञा स्त्री० [सं०] कविता के लिये पदों का जोड़ना। पद बनाने के लिये शब्दों को मिलाना।

पदर†—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पेड़। २. ड्योढ़ीदारों के बैठने का स्थान। (डिं०)। उ०—पकरि पदर धरि सत पद जद्यपि सुरति विचार। लार लगन लागी रहै, तब उतरै भौ पार।—घट०, पृ० ३८१।

पदरिपु—संज्ञा पुं० [सं० पद + रिपु] कंटक। काँटा। उ०—पद-रिपु पर अटक्यों आतुर ज्यों उलटत पलट मरी।—सूर (शब्द०)।

पदवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल।

पदवाना—क्रि० स० [हिं० पदाना का प्रे०रूप] पदाना का प्रेरणार्थक रूप। पदाने का काम दूसरे से कराना।

पदवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पदवी'।

पदविक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] कदम रखना। चलना [को०]।

पदविच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पदच्छेद' [को०]।

पदविष्टंभ—संज्ञा पुं० [सं० पदविष्टम्भ] पैर रखना। कदम रखना [को०]।

पदवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पंथ। रास्ता। २. पद्धति। परिपाटी। तरीका। ३. वह प्रतिष्ठा या मानसूचक पद जो राज्य अथवा किसी संस्था आदि की ओर से किसी योग्य व्यक्ति को मिलता है। उपाधि। खिताब। जैसे, राजा, राय बहादुर, डाक्टर, महामहोपाध्याय, आदि। उ०—साँच कहे तो पनही खावैं। झूठे बहु विधि पदवी पावैं।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ६७०।

विशेष—पदवी नाम के पहले अथवा पीछे लगाई जाती है।

४. ओहदा। दरजा। ५. स्थान।

पदवेदी—संज्ञा पुं० [सं० पदवेदिन्] पदों अर्थात् शब्दों का ज्ञाता। शब्दशास्त्री [को०]।

पदसमय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पदपाठ' [को०]।

पदस्थ—वि० [सं०] १. जो अपने पैरों के बल खड़ा हो। २. जो पैरों के बल चल रहा हो। ३. किसी पद पर नियुक्त हो।

पदस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] पदांक। पदचिह्न [को०]।

पदांक—संज्ञा पुं० [सं० पदाङ्क] पैरों का चिह्न जो प्रायः चलने के कारण बालू या कीचड़ आदि पर बन जाता है।

पदांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० पदाङ्गी] लाल रंग का लजालू।

पदांत—संज्ञा पुं० [सं० पदान्त] १. पद का, किसी श्लोक या पद्य का अंतिम भाग। २. तलवा। पैर [को०]।

पदांतर—संज्ञा पुं० [सं० पदान्तर] १. दूसरा कदम। दूसरा डग। २. एक कदम लंबाई। ३. कदम। डग। २. दूसरा पद या स्थान [को०]।

पदांत्य—वि० [सं० पदान्त्य] पद के अंत में रहनेवाला। पदांत में स्थित। अंतिम [को०]।

पदांभोज—संज्ञा पुं० [सं० पदाम्भोज] चरणकमल [को०]।

पदाक्रांत—वि० [सं० पदाक्रान्त] पददलित। रौंदा हुआ। कुचला हुआ। विजित। उ०—नवागत म्लेच्छवाहिनी से सौराष्ट्र भी पदाक्रांत हो चुका है।—स्कंद०, पृ० ७।

पदाघात—संज्ञा पुं० [सं०] पैर की मार। लातों की मार [को०]।

पदाचार—संज्ञा पुं० [सं० पदचार] पैर रखना। पदसंचार। गमन। उ०—चपल पवन के पदाचार से अहरह स्पंदित। शांत हास्य से अंतर को करते आह्लादित।—ग्राम्या०, पृ० ७३।

पदाजि—संज्ञा पुं० [सं०] पैदल सैनिक [को०]।

पदात(पु)†—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पदाति'।

पदाति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पैदल चलता हो। प्यादा। २. पैदल सिपाही। ३. नौकर। सेवक। ४ जनमेजय के एक पुत्र का नाम।

पदातिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पैदल चलता है। २. पैदल सिपाही। उ०—दयानंदीय समाजियों की पदातिक सेना को उनपर।—प्रेमघन० भा० २, पृ० २४२।

पदाती—संज्ञा पुं० [सं० पदातिन्] पैदल सैनिक [को०]।

पदातीय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पदाति'।

पदादि—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द का प्रथमाक्षर। छंद का प्रारंभ।

पदादिका—संज्ञा पुं० [सं० पदातिक] पैदल सेना। उ०—प्रभु कर सेन पदादिका बालक राज समाज।—तुलसी (शब्द०)।

पदाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० पदाधिकारिन्] वह जो किसी पद पर नियुक्त हो। ओहदेदार। अफसर।

पदाध्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] पदपाठ के अनुसार वेद का पठन।

पदाना—क्रि० स० [हिं० पादना का प्रे०रूप] १ पादने का काम दूसरे से कराना। २. बहुत अधिक दिक करना। तंग करना। छकाना। जैसे,—क्यों उसे बार बार पदाते हो।

पदानुग—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी का अनुगमन करता हो। अनुकरण करनेवाला। अनुयायी। साथी।

पदानुराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. भृत्य। सेवक। २. सेना। फौज [को०]।

पदानुशासन—संज्ञा पुं० [सं०] पदों का अनुशासन करनेवाला शास्त्र। शब्दानुशासन। शब्दशास्त्र। व्याकरण [को०]।

पदानुस्वार—संज्ञा पुं० [सं०] साम का एक भेद। एकार का साम [को०]।

पदाब्ज—संज्ञा पुं० [सं०] चरणकमल। पदकमल।

पदायता—संज्ञा पुं० [सं०] पदत्राण। जूता [को०]।

पदार—संज्ञा पुं० [?] पैरों की धूल। उ०—आरद होत महारद पारस पारद पुंज पदारन हूँ में।—देव (शब्द०)। २. नाव। नौका (को०)। ३ पैर का अगला हिस्सा (को०)।

पदारथ—संज्ञा पुं० [सं० पदार्थ] दे० 'पदार्थ'। उ०—जानिकर एहने सोहागिनि सजनि न पाओल पदारथ चारि।—विद्यापति, पृ० १८०।

पदारविंद—संज्ञा पुं० [सं० पदारविन्द] दे० 'पदाब्ज'।

पदार्घ्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जल जो किसी अतिथि या पूज्य को पैर धोने के लिये दिया जाय।

पदार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ पद का अर्थ। शब्द का विषय। वह जिसका कोई नाम हो और जिसका ज्ञान प्राप्त किया जा सके। २ उन विषयों में कोई विषय जिनका किसी दर्शन में प्रतिपादन हो और जिनके संबंध में यह माना जाता हो कि उनके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

विशेष—वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छह पदार्थ, हैं और इन्हीं छह पदार्थों का उसमें निरूपण है। कुल चीजें इन्हीं छह पदार्थों के अंतर्गत मानी गई हैं। ये छह 'भाव' पदार्थ हैं और 'भाव' की विद्यमानता में 'अभाव' का होना भी स्वाभाविक है। अत. नवीन वैशेषिकों ने इन सब पदार्थों के विपरीत एक नया और सातवाँ पदार्थ 'अभाव' भी मान लिया है। इसके अतिरिक्त कुछ और लोगों ने 'तम' अथवा अंधकार को भी एक पदार्थ माना है। परंतु अंधकार वास्तव में प्रकाश का अभाव ही होता है, इसलिये स्वयं अंधकार कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं हो सकता। विशेष—दे० 'वैशेषिक'।

गौतम के न्यायसूत्र में सोलह पदार्थ कहे गए हैं जिनके नाम ये हैं—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान। नैयायिकों के अनुसार विचार के जितने विषय हैं वे सब इन्हीं सोलह पदार्थों के अंतर्गत हैं। विशेष—दे० 'न्याय'। सांख्यदर्शन में संख्या में, पुरुष, प्रकृति और महत् आदि उसके विकारों को लेकर २५ पदार्थ हैं। दे० 'सांख्य'। वेदांत दर्शन के अनुसार आत्मा और अनात्मा ये ही दो पदार्थ हैं। दे० 'वेदांत'।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक विद्वानों और सांप्रदायिकों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार अलग अलग पदार्थ माने हैं। जैसे 'रामानुजाचार्य के मत से चित्, अचित् और ईश्वर, शैव दर्शन के अनुसार पति, पशु और पाश (यहाँ पति का तात्पर्य शिव, पशु का जीवात्मा और पाश का मल, कर्म माया और रोध शक्ति है)। जैन दर्शनों में भी पदार्थ माने गए हैं परंतु उनकी संख्या आदि के संबंध में बहुत मतभेद है। कोई दो पदार्थ मानता है, कोई तीन कोई पाँच, कोई सात और कोई नौ।

३. पुराणानुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

४ वैद्यक में भावप्रकाश के अनुसार रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति। ५. चीज। वस्तु।

पदार्थवाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह वाद या सिद्धांत जिसमें पदार्थ, विशेषतः भौतिक पदार्थों को ही सब कुछ माना जाता हो और आत्मा अथवा ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार न होता हो।

पदार्थवादी—संज्ञा पुं० [सं० पदार्थवादिन्] वह जो आत्मा या ईश्वर आदि का अस्तित्व न मानकर केवल भौतिक पदार्थों को ही सब कुछ मानता हो।

पदार्थविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या जिसके द्वारा भौतिक पदार्थों और व्यापारों का ज्ञान हो। विज्ञानशास्त्र।

पदार्थविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिसमें विशिष्ट संज्ञाओं द्वारा सूचित पदार्थों का तत्व बतलाया गया हो। जैसे, वैशेषिक।

पदार्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी स्थान में पैर रखने या जाने की क्रिया। २. शुभागमन। आगमन।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः प्रतिष्ठित व्यक्तियों के संबंध में ही होता है। जैसे,—श्रीमान् के पदार्पण करते ही सब लोग उठ खड़े हुए।

पदालिक—संज्ञा पुं० [सं०] चरण का ऊपर का भाग [को०]।

पदावनत—वि० [सं०] १ जो पैरों पर झुका हो। २. जो प्रणाम कर रहा हो। ३. नम्र। विनीत।

पदावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शब्दों या वाक्यों की श्रेणी। २. भजनों का संग्रह। पदों का संग्रह।

पदाश्रित—वि० [सं०] १. जिसने पैरों में आश्रय लिया हो । शरण में आया हुआ । २. जो आश्रय में रहता हो ।

पदास—संज्ञा स्त्री० [हिं० पादना + आस (प्रत्य०)] पादने का भाव । २. पादने की प्रवृत्ति ।

पदासन—संज्ञा पुं० [सं०] पादपीठ । चरणपीठ [को०] ।

पदासा—संज्ञा पुं० [हिं० पदास] वह जिसकी पादने की इच्छा या प्रवृत्ति हो ।

पदासीन—वि० [सं०] किसी विशेष पद पर प्रतिष्ठित [को०] ।

पदिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैदल सेना । पदाति सेना । २ पैर का अगला भाग । ३ पैदल चलनेवाला व्यक्ति ।

पदिक(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [सं० पदक] १. गले में पहनने का वह गहना जिसपर किसी देवता आदि के चरण अंकित हों । २. जुगनू नाम का गले में पहनने का गहना । ३. हीरा । ४. रत्न ।

यौ०—पदिकहार = रत्नहार । मणिमाल । उ०—उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला । पदिकहार भूषन मनि जाला ।—मानस, १।१४७ ।

५. दे० 'पदक' ।

पदिक्क(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पदिक] पदिक । हीरा । उ०—गुलिक्क कर्ण राजही । विसद्द हार साजही । पदिक्क सीस शोभयं रिषीस पुंज लोभयं ।—पृ० रासो, पृ० १० ।

पदी(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० पद] पैदल । पदाति । प्यादा ।

पदी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पदों का समूह । जैसे, त्रिपदी, चतुष्पदी, सप्तपदी आदि [को०] ।

पदु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पद] दे० 'पद' ।

पदुम—संज्ञा पुं० [सं० पद्म] १. घोड़ों का एक चिह्न या लक्षण जो मोरवों के पास होता है । बारतवासी इसे दोष नहीं मानते, पर ईरान के लोग इसे दोष मानते हैं । २. दे० 'पद्म' । उ०—बंदौं गुरुपद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।—मानस, १।१ ।

पदुमिनि, पदुमिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्मिनी] दे० 'पद्मिनी' । उ०—हौं पदुमिनी मानसर केवा । भवर मराल करहिं निति सेवा ।—पदमावत, पृ० ४५१ ।

पदेक—संज्ञा पुं० [सं०] श्येन पक्षी । बाज [को०] ।

पदेन—क्रि० वि० [सं० पद शब्द के तृतीया एकवचन का रूप] पद पर प्रतिष्ठित होने से । अधिकार विशेष से [को०] ।

पदोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पाद+ओड़ा (प्रत्य०)] १. जो बहुत पादता हो । अधिक पादनेवाला । २. कायर । डरपोक । (क्व०) ।

पदोदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जल जिससे पैर धोया गया हो । २. चरणामृत ।

पदौक—संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष जो बरमा में अधिकता से होता है । इसकी लकड़ी मजबूत और कुछ लाली लिए सफेद रंग की होती है ।

पद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. पद । पैर । २. पाद । अंश । चतुर्थांश [को०] ।

पद्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पैदल सैनिक । प्यादा । सिपाही [को०] ।

पद्दू†—संज्ञा पुं० [हिं० पाद] दे० 'पदोड़ा' ।

पद्धटिका—संज्ञा पुं० [सं०] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण होता है । जैसे,—श्री कृष्णचंद्र अरबिंद नैन । धरि अधर बजावत मधुर बैन । इसी को पद्धरि वा 'पज्झटिका' भी कहते हैं ।

पद्धड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्धटिका] दे० 'पद्धटिका' ।

पद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राह । पथ । मार्ग । सड़क । २. पंक्ति । कतार । ३. रीति । रस्म । रिवाज । परिपाटी । चाल । ४. वह पुस्तक जिसमें किसी प्रकार की प्रथा या कार्य-प्रणाली लिखी हो । कर्म या संस्कारविधि की पोथी । जैसे, विवाह पद्धति । ५. वह पुस्तक जिसमें किसी दूसरी पुस्तक का अर्थ या तात्पर्य समझाया जाय । ६ ढंग । तरीका । ७. कार्यप्रणाली । विधिविधान । ८ उपनाम । अल्ल । जैसे, त्रिपाठी, घोष, दत्त, वसु आदि ।

पद्धती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० पद्धति (को०) ।

पद्धरि, पद्धरी—संज्ञा पुं० [सं० पद्धरिका] दे० 'पद्धटिका' ।

पद्धिम—संज्ञा पुं० [सं० पद् + हिम] पैर की शीतलता । पाँव ठंढा होना (को०) ।

पद्धो‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेल में किसी लड़के का, जीतने पर, दाँव लेने के लिये, हारनेवाले लड़के की पीठ पर चढ़ना ।

क्रि० प्र०— देना । —लेना ।

पद्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल का फूल या पौधा । ३ सामुद्रिक के अनुसार पैर में का एक विशेष आकार का चिह्न जो भाग्य-सूचक माना जाता है । ३ किसी स्तंभ के सातवें भाग का नाम (वास्तुविद्या) । ४. विष्णु के एक आयुध का नाम । ५. कुबेर की नौ निधियों में से एक निधि । गले मे पहनने का एक प्रकार का गहना । ७ शरीर पर का सफेद दाग । ८. हाथी के मस्तक या सूँड पर बने हुए चित्रविचित्र चिह्न । ९. पदम या पदमाख वृक्ष । १० साँप के फन पर बने हुए चित्रविचित्र चिह्न । ११ एक ही कुरसी पर बना हुआ, एक ही शिखर का आठ हाथ चौड़ा घर (वास्तुविद्या) । १५ एक नाग का नाम । १३. सीसा । १४. पुष्करमूल । १५. गणित में सोलहवें स्थान की संख्या (१०० नील) जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००,००,००,००,००,००,००० । १६. बौद्धों के अनुसार एक नक्षत्र का नाम । १७. पुराणानुसार एक कल्प का नाम । १८ तंत्र के अनुसार शरीर के भीतरी भाग का एक कल्पित कमल जो सोने के रंग का और बहुत ही प्रकाशमान माना जाता है । १९. सोलह प्रकार के रतिबंधों में से एक । २०. बलदेव का

एक नाम। २१. पुराणानुसार एक नरक का नाम। २२. एक प्राचीन नगर का नाम। २३ पुराणानुसार जंबू द्वीप के दक्षिणपश्चिम का एक देश। २४. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम। २५ जैनों के अनुसार भारत के नवें चक्रवर्ती का नाम। २६. एक पुराण का नाम। दे० 'पुराण'। २७. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण, एक सगण और अंत में लघु गुरु होते हैं। जैसे,—कब पहुँचे सच री। लखहुँ पद पद्म री। २८. दे० 'पद्मव्यूह'। २९ दे० 'पद्मासन'। ३० दे० 'पद्मा' (नदी)।

पद्मकंद—संज्ञा पुं० [सं० पद्मकन्द] कमल की जड़। मुरार। भिस्सा। भसीड़।

पद्मक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पदम या पदमकाठ नाम का पेड़। २. सेना का पद्मव्यूह। ३. सफेद कोढ़। ४. कुट नाम की ओषधि ५. हाथी की सूँड पर के चित्र विचित्र दाग (को०)।

पद्मकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. सूर्य। ३. कमलकर। कमल के समान हाथ (को०)।

पद्मकरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी (को०)।

पद्मकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमल का बीजकोश। पद्मकोश। २. पद्मव्यूह में स्थित सेना का मध्य या केंद्रभाग (को०)।

पद्मकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पदमकाठ'।

पद्मकाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] पद्माख या पदम नाम का वृक्ष।

पद्मकिंजल्क—संज्ञा पुं० [सं० पद्मकिञ्जल्क] कमल का केसर।

पद्मकी—संज्ञा पुं० [सं० पद्मकिन्] १. भोजपत्र का पेड़। २. गज। हाथी (को०)।

पद्मकीट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जहरीला कीड़ा।

पद्मकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार गरुड़ के एक पुत्र का का नाम।

पद्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक पुच्छल तारा जो मृणाल के आकार का होता है। यह केतु पश्चिम की ओर एक ही रात भर दिखलाई पड़ता है। गौर वर्ण का वह केतु जो पश्चिम दिशा में एक ही रात तक दिखाई देता है।

पद्मकेशर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पद्मकिंजल्क' (को०)।

पद्मकोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल का संपुट। २. कमल के बीच का छत्ता जिसमे बीज होते हैं। ३. हाथ की उँगलियों की एक मुद्रा जो कमल के आकार की होती है (को०)।

पद्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] उड़ीसा प्रांत के एक तीर्थ का नाम।

पद्मखंड—संज्ञा पुं० [सं० पद्मखण्ड] कमलराशि (को०)।

पद्मगंध[1]—वि० [सं० पद्मगन्ध] कमल के समान गंधवाला।

पद्मगंध[2]—संज्ञा पुं० दे० 'पद्मगंधि' (को०)।

पद्मगंधि—संज्ञा पुं० [सं० पद्मगन्धि] पद्माख या पदम नाम का वृक्ष।

पद्मगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल का भीतरी भाग। २. ब्रह्मा। ३. विष्णु (को०)। ४. शिव (को०)। ५. सूर्य। ६. बुद्ध। ७. एक बोधिसत्व।

पद्मगुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पद्मगृहा' (को०)।

पद्मगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत महाकाव्य 'नवसाहसांकचरित' के रचयिता जो मुंज और भोज की सभा में थे। इनका एक नाम परिमल भी है।

पद्मगृहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी का एक नाम।

पद्मचारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गेंदा। २. शमी वृक्ष। ३. हल्दी। ४ लाख।

पद्मचय—संज्ञा पुं० [सं०] कमलसमूह। कमलराशि। उ०—होती है प्रिय सब पद्मचय में पद्मासना की प्रभा।—पारिजात, पृ० ११०।

पद्मज, पद्मजात—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

पद्मतंतु—संज्ञा पुं० [सं० पद्मतन्तु] मृणाल। कमल की नाल।

पद्मदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] लोहबान।

पद्मनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रु के फेंके हुए अस्त्र को निष्फल करने का एक मंत्र या युक्ति। २. विष्णु। ३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ४. जैनों के अनुसार भावी उत्सर्पिणी के पहले अर्हत का नाम। ५. महादेव। शिव (को०)। ६. एक नाग (को०)।

पद्मनाभि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

पद्मनाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमलनाल। कमल की डंडी (को०)।

पद्मनिधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुबेर की नौ निधियों में से एक निधि का नाम।

पद्मनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का पक्षी। २. बौद्धों के अनुसार एक बुद्ध का नाम, जिनका अवतार अभी होने को है। ३ वह जिसकी आँख कमल के समान हो।

पद्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुहकरमूल। पुष्करमूल। २. कमल का पत्ता। पुरइन पात (को०)।

पद्मपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पद्मपत्र'।

पद्मपाणि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २ बुद्ध की एक विशेष मूर्ति। ३ एक बोधिसत्व, जो अमिताभ बुद्ध के देवपुत्र कहे गए हैं। इनकी उपासना नेपाल, तिब्बत चीन आदि देशों में होती है। ४ सूर्य।

पद्मपाणि[2]—वि० जिसके हाथ में कमल हो (को०)।

पद्मपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] अठारह पुराणों में से एक पुराण।

पद्मपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. कनेर का पेड़। २. एक प्रकार का पक्षी। ३ पद्म का फूल।

पद्मप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बौद्धों के अनुसार एक बुद्ध का नाम जिनका अवतार अभी होने को है। २. जैनों के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के छठे अर्हत (को०)।

पद्मप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनसा देवी जो जरत्कारु मुनि की पत्नी थीं। २. गायत्रीस्वरूपा महादेवी (को०)।

पद्मबंध—संज्ञा पुं० [सं० पद्मबन्ध] एक प्रकार का चित्रकाव्य

जिसमें अक्षरों को ऐसे क्रम से लिखते हैं जिससे एक पद्म या कमल का आकार बन जाता है।

पद्मबंधु—संज्ञा पुं० [सं० पद्मबन्धु] १. सूर्य जिनके उदय से कमल खिलता है। २. भौंरा। भ्रमर (को०)।

पद्मबीज—संज्ञा पुं० [सं०] कमलगट्टा। कमल का बीज।

पद्मबीजाभ—संज्ञा पुं० [सं०] मखाना।

पद्मभव—संज्ञा पुं० [सं०] पद्म से उत्पन्न-ब्रह्मा।

पद्मभास—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव (को०)।

पद्मभू—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

पद्मभूषण—संज्ञा पुं० [सं० पद्म + भूषण] एक पदवी या अलंकार जो भारत सरकार की ओर से प्रदान की जाती है। यह पद्मश्री से बड़ी होती है।

पद्ममालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी (को०)।

पद्ममाली—संज्ञा पुं० [सं० पद्ममालिन्] एक राक्षस का नाम।

पद्ममुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुरालभा या धमासा नाम का कँटीला पौधा। २. दूर्वा। दूब।

पद्ममुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिको की पूजा मे एक मुद्रा जिसमें दोनों हथेलियों को सामने करके उँगलियाँ नीचे रखते हैं और अँगूठे मिला देते हैं।

पद्मयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध का एक नाम।

पद्मराग—संज्ञा पुं० [सं०] मानिक या लाल नामक रत्न। उ०—सौगंधिक, गुरुविंद और स्फटिक इन तीन भाँति के पत्थरों से पद्मराग (लाल) का जन्म होता है।—बृहत०, पृ० ३८५।

पद्मरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सामुद्रिक के अनुसार हथेली की एक प्रकार की प्राकृतिक रेखा जो बहुत भाग्यवान् होने का लक्षण मानी जाती है।

पद्मलांछन—संज्ञा पुं० [सं० पद्मलाञ्छन] १. ब्रह्मा। २. कुबेर। ३. सूर्य। ४. राजा (को०)। ५. एक बुद्ध (को०)।

पद्मलांछना—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्मलाञ्छना] १. सरस्वती का एक नाम। २ लक्ष्मी का एक नाम (को०)। ३ तारा का एक नाम।

पद्मलोचन—वि० [सं०] कमल सदृश नेत्र। कमलनेत्र (को०)।

पद्मवनबांधव—संज्ञा पुं० [सं० पद्मवनबान्धव] सूर्य, जिनके उदय से कमल खिलते हैं (को०)।

पद्मवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार यदु के एक पुत्र का नाम। २. दे० 'पद्मवर्णक'।

पद्मवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करमूल।

पद्मवासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी (को०)।

पद्मविभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा दिया जानेवाला खिताब या अलंकार।

पद्मवीज—संज्ञा पुं० [सं०] कमलगट्टा।

पद्मवीजाभ—संज्ञा पुं० [सं०] मखाना।

पद्मवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पदमकाठ। पदम। पद्माख।

पद्मवेश—संज्ञा पुं० [सं०] विद्याधरों का एक राजा (को०)।

पद्मव्याकोश—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेंध जो संकुचित या कोशबद्ध कमल के आकार की हो (को०)।

पद्मव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल में युद्ध के समय किसी वस्तु या व्यक्ति की रक्षा के लिये सेना को रखने की एक विशेष स्थिति जिसमे सारी सेना कमल के आकार की हो जाती थी। २. एक प्रकार की समाधि।

पद्मश्री—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम। २. एक पदवी या अलंकार जो भारत सरकार की ओर से विशिष्ट व्यक्तियों को दी जाती है।

पद्मषंड—संज्ञा पुं० [सं० पद्मषण्ड] दे० 'पद्मखंड' (को०)।

पद्मसंकाश—वि० [सं० पद्मसङ्काश] कमल के समान। कमल के सदृश। कमलवत् (को०)।

पद्मसंभव—संज्ञा पुं० [सं० पद्मसम्भव] ब्रह्मा (को०)।

पद्मसद्मा—संज्ञा पुं० [सं० पद्मसद्मन्] ब्रह्मा (को०)।

पद्मसमासन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा (को०)।

पद्मस्नुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा का एक नाम। २. दुर्गा का एक नाम। ३. लक्ष्मी का एक नाम (को०)।

पद्मस्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्वस्तिक चिह्न जिसमें कमल भी बना हो।

पद्महस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल की लंबाई नापने की एक प्रकार की नाप। २ दे० पद्मपाणि।

पद्महस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी का एक नाम (को०)।

पद्महास—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

पद्मांतर—संज्ञा पुं० [सं० पद्मान्तर] कमल पत्र। कमल दल (को०)।

पद्मा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लक्ष्मी। २. बंगाल मे बहनेवाली गंगा की पूर्वी शाखा। ३. भादों सुदी एकादशी तिथि। ४. गेंदे का वृक्ष। ५. कुसुम का फूल। ६ लौंग। मनसा देवी का एक नाम। ७. वृहद्रथ की कन्या का नाम जो कल्कि देव के साथ ब्याही गई थी। ६ पद्मचारिणी लता।

पद्माकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा तालाब या झील जिसमें कमल पैदा होते हों। २. तालाब। सरोवर (को०)। ३ पद्मपुष्पों की राशि या समूह। ४. हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम।

विशेष—पद्माकर तैलंग ब्राह्मण थे। इनका जन्मसमय सन् १८१० है। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था और ये मध्यप्रदेशांतर्गत 'सागर' में निवास करते थे।

पद्माक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमलगट्टा। कमल के बीज। २. विष्णु।

पद्माख—संज्ञा पुं० [सं० पद्मकाष्ठ] पदुमकाठ या पदुम नामक वृक्ष। विशेष—दे० 'पदम'।

पद्माचल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

पद्माट—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़। चक्रमर्द।

पद्माधीश—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

पद्मालय—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

पद्मालया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी। २. लौंग।

पद्मावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पटना नगर का प्राचीन नाम। २. पन्ना नगर का प्राचीन नाम। ३. उज्जयिनी का एक प्राचीन नाम। ४. एक मात्रिक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८, और १४ के विराम से ३० मात्राएँ होती है और अंत में दो गुरु होते हैं। जैसे,—यद्यपि जगकर्ता पालक हर्ता परिपूरण वेदन गाए। अति तदपि कृपा करि मानुष वपु धरि थल पूँछन हम सों आए।—केशव (शब्द०)। ५. गेंदे का वृक्ष। ६. लक्ष्मी (जरत्कारु ऋषि की स्त्री का नाम)। ७. मनसा देवी का एक नाम। ८ पुराणानुसार स्वर्ग की एक अप्सरा का नाम। ९. पुराणानुसार राजा शृगाल की स्त्री का नाम। १० युधिष्ठिर की एक रानी का नाम। ११. प्राचीन काल की एक नदी का नाम। १२. लोकप्रचलित कथा के अनुसार सिंहल की एक राजकुमारी जिसे चित्तौर के राजा रत्नसेन ब्याहे थे। चित्तौर की रानी पद्मिनी का सिंहल से कोई संबंध नहीं था, और न उसके पति का नाम रत्नसेन था, जैसा जायसी ने लिखा है।

पद्मासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. योगसाधन का एक आसन जिसमें पालथी मारकर सीधे बैठते हैं। २. वह जो इस आसन में बैठा हो। ३. स्त्री के साथ प्रसंग करने का एक आसन। ४. ब्रह्मा। उ०—स्वास उदर उससति यों मानो दुग्ध सिंधु छबि पावै। नाभि सरोज प्रकट पदमासन उतरि नाल पछितावै।—(शब्द०)। ५. शिव। ६ सूर्य।

पद्मासनदंड—संज्ञा पुं० [सं० पद्मासन+दण्ड] एक प्रकार का डंड (कसरत) जो पालथी मारकर और घुटने जमीन पर टेक कर किया जाता है। इससे दम सधता है और घुटने मजबूत होते हैं।

पद्मासना—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी। उ०—शोभा है जलराशि में विलसती उत्फुल्ल अंभोज की। होती है प्रिय सद्म पद्मचय में पद्मासना की प्रभा।—पारिजात, पृ० ११०।

पद्माह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गेंदा। २ लवंग (को०)।

पद्मिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्मिनी] कमलिनी। उ०—चंद जगावनु कुमुदनी पद्मिनी ही दिननाथ।—शकुंतला, पृ० ६७।

पद्मिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमलिनी। छोटा कमल।

यौ०—पद्मिनीखंड, पद्मिनीषंड = (१) कमलसमूह। (२) जहाँ कमल अधिक हो। पद्मिनीवल्लभ = सूर्य।

विशेष—'पद्मिनी' शब्द में पतिवाची शब्द लगाने से उसका अर्थ 'सूर्य' होता है।

२. तालाब या जलाशय जिसमें कमल हो। ३. कोकशास्त्र के अनुसार स्त्रियों की चार जातियों में से सर्वोत्तम जाति। कहते हैं, इस जाति की स्त्री अत्यंत कोमलांगी, सुशीला, रूपवती और पतिव्रता होती है। ४. मादा हाथी। हथिनी। ५. चित्तौर की इतिहासप्रसिद्ध रानी। ६. लक्ष्मी। उ०—पद्मम ऊपर पद्मिनि मानहु। ऊपर ऊपर दीपति जानहु।—केशव (शब्द०)। ७. कमल का पौधा (को०)। ८. कमलों का समूह (को०)। ९. कमल की नाल (को०)।

पद्मिनीकंटक—संज्ञा पुं० [सं० पद्मिनीकण्टक] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जो कुष्ठ के अंतर्गत माना जाता है। इसमें दानेदार चकत्ते पड़ जाते हैं।

पद्मी—संज्ञा पुं० [सं० पद्मिन्] १. पद्मयुक्त देश। २. पद्मधारी विष्णु। ३. पद्मसमूह। ४. बौद्धों के अनुसार एक लोक का नाम। ५. उक्त लोक में रहनेवाले एक बुद्ध का नाम जिनका अवतार अभी इस संसार में होने को है।

पद्मेशय—संज्ञा पुं० [सं०] पद्म पर सोनेवाले, विष्णु।

पद्मोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुसुम। २. एक बुद्ध का नाम।

पद्मोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

पद्मोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनसा देवी का एक नाम।

पद्य¹—वि० [सं०] १. पद या पैर संबंधी। जिसका संबंध पैरों से हो २. जिसमें कविता के पद या चरण हों।

पद्य²—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिंगल के नियमों के अनुसार नियमित मात्रा या वर्ण का चार चरणोंवाला छंद। कविता। गद्य का उलटा। २. शूद्र, जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के चरणों से मानी जाती है। ३. शठता। ४. नातिशुष्क कर्दम। कीचड़ जो एकदम सूखा न हो (को०)।

पद्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] पद्य रचनेवाला। तुकबंदी करनेवाला। तुक्कड़। उ०—भोज ऐसे राजाओं के सामने बात बनानेवाले पद्यकार बातों की फुलझड़ी छोड़कर लाखों रुपए पाने लगे।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ६१।

पद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शक्कर। २. पगडंडी। पटरी। ३ लोगों के चलने से बनी हुई राह। दुर्री (को०)।

पद्यात्मक—वि० [सं०] जो पद्यमय हो। जो छंदोबद्ध हो।

पद्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँव। २. ग्रामपथ।

पद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जो सारे समाज या समुदाय की हो पंचायती जमीन।

विशेष—महानदी के किनारे राजीय नगर के राजा तिवरदेव के ताम्रपट में यह शब्द आया है। कोशों में 'पद्र' का अर्थ ग्राम मिलता है। डा० बूलर ने इस शब्द से 'चरागाह' का अर्थ लिया है। विलसन ने अपने कोश में इसका अर्थ समाज या समुदाय दिया है।

पद्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजमार्ग। सड़क। २. स्यंदन। रथ। ३. मर्त्यलोक (को०)।

पद्वा—संज्ञा पुं० [सं० पद्वन्] राह। रास्ता (को०)।

पधति—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्धति] दे० 'पद्धति'। उ०—तिलतेर्ह गुरुदेव पधति भई न्यारी।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ८१।

पधरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० पधारना] किसी बड़े प्रतिष्ठित या पूज्य का आगमन। आना। उ०—सालगिलापन साथ लिए जसवंत तहाँ पधरे गिरधारी।—जसवंत (शब्द०)।

पधराना—क्रि० स० [सं० प्र+धारण] १. आदरपूर्वक ले आना। इज्जत से बैठाना। उ०—कुंज महल पधराइ लाल कों हटी सबै बृजबासिनि गोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६४१। २. प्रतिष्ठित करना। स्थापित करना।

पधरावनां—क्रि० स० [हिं० पधराना] दे० 'पधराना'। उ०—यह जेमल जी आपको पधरावन आयो है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २५१।

पधरावनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पधराना] १. किसी देवता की स्थापना। २. किसी को आदरपूर्वक ले जाकर बैठाने की क्रिया या भाव। पधराने की क्रिया।

पधारना[१]—क्रि० अ० [हिं० पग+धारना] १. जाना। चला जाना। गमन करना। उ०—हाय ! इन कुंजन तें पलटि पधारे श्याम देखन न पाई वह मूरति सुधामई।—द्विजदेव (शब्द०)। २. आ पहुँचना। आना। उ०—भले पधारे पाहुने ह्वै गुड़हल के फूल।—बिहारी (शब्द०)। ३ गमन करना। चलना।

पधारना[२]—क्रि० स० आदरपूर्वक बैठाना। पधराना। प्रतिष्ठित करना। उ०—(क) तिल पिंडिन में हरिहिं पधारे। विविध भाँति पूजा अनुसारे।—रघुनाथ (शब्द०) (ख) एक दिन स्वप्न ही में कह्यो भगवान हम कूप परे हमको पधारिए निकास कै।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल बड़े या प्रतिष्ठित के आने अथवा जाने के संबंध में आदरार्थ होता है।

पधियाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाधा तुल० सं० उपाध्याय तथा पंजाबी 'पाधा'] पुरोहिताई। उ०—परदादा करते पधियाई। दादा ने पटवार सम्हाली। पिता क्लर्क बने, फिर बढ़कर अपने ही दफ्तर के माली।—चाँदनी०, पृ० ६७।

पध्धरां—वि० [देशी] ऋजु। सरल। सीधा। उ०—मारु देस उपन्नियाँ सर ज्यउँ पध्धरियाँह।—ढोला०, दू० ४८४।

पनंगⓟ—संज्ञा पुं० [सं० पन्नग] सर्प। साँप। उ०—वार रवी तिथि सत्तमी चलि रथ तुतर मतंग। तिहि डेरा आयो कहै डेरा माहि पनंग।—पृ० रा०, १।५०८।

पन[१]—संज्ञा पुं० [सं० पण, या सं० प्रतिज्ञा, प्रा० पइण्णा] प्रतिज्ञा। संकल्प। प्रहद। उ०—(क) पन बिदेह कर कहहि हम भुजा उठाइ बिसाल।—मानस, १।३४६। (ख) सनमुख दियो सुरंग उड़े पन पाहन आवे। निकसी खोलि किवारि रारि करिबे को रावे।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४०।

पन[२]—संज्ञा पुं० [सं० पर्वन् (= विशेष अवस्था)] आयु के चार भागों में से एक। उ०—संत कहहिं अस नीति दसानन। चौथेपन जाइहि नृप कानन।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—साधारणतः लोग आयु के चार भाग अथवा अवस्थाएँ मानते हैं। पहली बाल्यावस्था, दूसरी युवावस्था, तीसरी प्रौढ़ावस्था, और चौथी वृद्धावस्था।

पन[३]—प्रत्य० हिं० जिसे नामवाचक या गुणवाचक संज्ञाओं में लगाकर भाववाचक संज्ञा बनाते हैं। जैसे, लड़कपन, किशोरापन।

पन[४]—संज्ञा पुं० [हिं० पान] 'पान' शब्द का यौगिक पद प्रयुक्त रूप। जैसे, पनडब्बा, पनकुट्टी।

पन[५]—संज्ञा पुं० [हिं० पानी] 'पानी' शब्द का यौगिक पद प्रयुक्त रूप। जैसे, पनचक्की, पनडुब्बी।

पनकटा—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + काटना] वह मनुष्य जो खेतों में इधर उधर पानी ले जाता या खींचता हो।

पनकपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + कपड़ा] १. वह गीला कपड़ा जो शरीर के किसी अंग पर चोट लगने या कटने या छिलने आदि पर बाँधा जाता है। २. वह कपड़ा जिससे तमोली पान की दूकान पर पान पोंछता, ढँकता और लगाता है। इसे पनबसना भी कहते हैं। उ०—तमोली ने कत्था चूना से लाल पनकपड़े पर छोटे छोटे उजले पानों को नफासत से पोंछते हुए कहा।—शराबी, पृ० ४।

पनकाल—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + काल या अकाल] वह अकाल जो अतिवर्षा के कारण हो।

पनकुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी + कुकड़ी] दे० 'पनकौवा'।

पनकुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पान + कूटना] वह छोटा खरल जिसमें प्रायः वृद्ध या टूटे हुए दाँतवाले लोग खाने के लिये पान कूटते हैं।

पनकौवा—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + कौवा] एक प्रकार का जल-पक्षी। जलकौवा। विशेष दे० 'जलकौवा'।

पनखट—संज्ञा पुं० [हिं० पनहा+काठ] जुलाहों की वह लचीली धुनकी जिसपर उनके सामने बुना हुआ कपड़ा फैला रहता है।

पनगⓟ—संज्ञा पुं० [सं० पन्नग] सर्प। साँप। उ०—छुटि तिहि बेर मतंग खेल देखन को धायौ। एक मोजरी मद्धि पनग फन आनि लुकायौ।—पृ० रा०, १।५०९।

पनगाचा—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + गाछी (= बाग)] पानी से भरा या सींचा हुआ खेत।

पनगोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी+गोटी] मोतिया शीतला।

पनघट—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + घाट] पानी भरने का घाट। वह घाट जहाँ से लोग पानी भरते हों। उ०—निर्दई श्याम ने फोर दई पनघट पर मोरी मागरिया।—गीत। (शब्द०)।

पनच—संज्ञा स्त्री० [सं० पतञ्चिका] धनुष का रोंदा या डोरी। प्रत्यंचा। उ०—तीन पनच धुनही करन बड़े कटन तंडोर। संगुन बिना पग ना धरै निकट बंन हंडोर।—पृ० रा०, ७।७६।

पनचक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी + चक्की] पानी के जोर से चलनेवाली चक्की या और कोई कल।

विशेष—प्रायः लोग नदी या नहर आदि के किनारे जहाँ पानी का वेग कुछ अधिक होता है, कोई चक्की या दूसरी कल लगा देते हैं और उसका संबंध एक ऐसे बड़े चक्कर के साथ कर देते हैं जो बहते हुए जल में प्रायः आधा डूबा रहता है।

जब बहाव के कारण वह चक्कर घूमता है तब उसके साथ संबंध करने के कारण वह चक्की या कल चलने लगती है। और इस प्रकार केवल पानी के बहाव के द्वारा ही सब काम होता है।

पनचो—संज्ञा स्त्री० [देश०] गेड़ी के खेल मे खेलने के लिये पतली लकड़ी या गेड़ी।

पनचोरा—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + चोर] वह बरतन जिसका पेट चौड़ा और मुँह बहुत छोटा हो।

पनडब्बा—संज्ञा पुं० [हिं० पान+डब्बा] वह डब्बा जिसमें पान और उसके लगाने का सामान चूना, सुपारी, कत्था आदि रहता हो। पानदान।

पनडुब्बा—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + डूबना] पानी में गोता लगानेवाला। गोताखोर।

विशेष—पनडुब्बे प्रायः कूएँ या तालाब में गोता लगाकर गिरी हुई चीज ढूँढ़ते अथवा समुद्र आदि मे गोते लगाकर सीप और मोती आदि निकालते हैं।

२. वह पक्षी जो पानी में गोता लगाकर मछलियाँ पकड़ता हो। ३. मुरगाबी। ४. एक प्रकार का कल्पित भूत, जिसका निवास जलाशयों में माना जाता है और जिसके विषय मे लोगों का यह विश्वास है कि वह नहानेवाले आदमियो को पकड़कर डुबा देता है।

पनडुब्बी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी + डूबना] १. वह जलपक्षी जो पानी में डुबकी लगाकर मछलियाँ आदि पकड़ता हो। २. मुरगाबी। ३. एक प्रकार की नाव, जो प्रायः पानी के अंदर डूबकर चलती है। इसका आविष्कार अभी हाल में पाश्चात्य देशों में हुआ है। सबमेरीन।

पनपथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी + पाथना] वह रोटो जो बिना पर्थन के केवल पानी लगाकर बेली जाती है। पनेथी।

पनपना—क्रि० अ० [सं० पर्ण + पर्ण (= पत्ता) वा पर्णाय (= हरा होना)] १. पानी पाने के कारण फिर से हरा हो जाना। पुनः अंकुरित या पल्लवित होना। २. फिर से तंदुरुस्त होना। रोगयुक्त होने के उपरांत स्वस्थ तथा हृष्ट पुष्ट होना।

पनपनाना—क्रि० अ० [अनु० पनपन] साधारण सी बातों पर तेजी दिखाना, झल्ला उठना या आवेश में आना। जैसे,—मेरी बात पर वह पनपना उठा।

पनपनाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] 'पन' 'पन' होने का शब्द जो प्रायः बाण चलने के कारण होता है।

पनपाना—क्रि० स० [हिं० पनपना] पनपने का सकर्मक रूप। ऐसा कार्य करना जिससे कोई पनपे।

पनबट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० पान + बट्टा (= डिब्बा)] वह छोटा डिब्बा जिसमे पान के लगे हुए बीड़े रखे जाते हैं।

पनबिछिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी + बीछी] पानी में रहनेवाला एक प्रकार का कीड़ा जो डंक मारता है।

पनबिच्छी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पनबिछिया'।

पनबुड़्वा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पनडुब्बा'।

पनभता—संज्ञा पुं० [हिं० पानी+भात] केवल पानी में उबाले हुए चावल। साधारण भात।

पनभरा, पनभरिया—संज्ञा पुं० [हिं० पानी+भरना] पानी भरने का काम करनेवाला। वह जो लोगों के आवश्यकतानुसार जल पहुँचाता हो।

पनमड़िया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी + माँड़ी] पतली माँड़ जो जुलाहे लोग बुनते समय टूटे तागों को जोड़ने के काम में लाते हैं।

पनर‡—वि० [सं० पञ्चदश] दे० 'पंद्रह'। उ०—पुंगल ढोलो प्राँहुणों रहियो सासरवाड़ि। पनर दिहाड़ा पदमणी माक मनहर हाडि।—ढोला०, दू० ५६४।

पनरह—वि० [सं० पञ्चदश] दे० 'पंद्रह'। उ०—पनरह दिनहूँ जागती, प्रीसूँ प्रेम करंत। एक दिवस निद्रा सबल सूती जाणि निचंत।—ढोला०, दू० १४२।

पनलगवा—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + लगाना] वह मनुष्य जो खेत में पानी सींचता या लगाता हो। पनकटा।

पनलगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पनलगवा'।

पनलोहा—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + लोहा ?] एक प्रकार का जलपक्षी जो ऋतु के अनुसार रंग बदलता है।

पनव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रणव] दे० 'प्रणव'।

पनवाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० पान + वाँ (प्रत्य०)] हुमेल आदि में लगी हुई बीचवाली चौकी जो पान के आकार की होती है। टिकड़ा। पान।

पनवाड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पान + वाड़ी] वह खेत जिससे पान पैदा होता है। बरेजा।

पनवाड़ी[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पान+वाला] पान बेचनेवाला तमोली।

पनवार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पनवारा] दे० 'पनवारा'। उ०—कदली कर पनवार धराई। गज मुक्ताहल चौक पुराई।

पनवारा—संज्ञा [हिं० पान + वार(प्रत्य०)] पत्तों की बनी हुई पत्तल जिसपर रखकर लोग भोजन करते हैं। उ०—अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो।—तुलसी। (शब्द०)।

मुहा०—पनवारा पड़ना = लोगों के खाने के लिये पत्तल बिछाई जाना। उ०—सादर लगे परन पनवारे।—मानस, १।३३८। पनवारा लगाना = पत्तल पर खाना सजाना।

२. एक पत्तल भर भोजन जो एक मनुष्य के खाने भर को हो। ३. एक प्रकार का साँप।

पनवारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पान+वाड़ी] दे० 'पनवाड़ी'[1]।

पनवारी[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पान+वाला] दे० 'पनवाड़ी'[2]।

पनस—संज्ञा पुं० [सं०] १. कटहल का वृक्ष। २. कटहल का फल। ३. रामदल का एक बंदर। ४. विभीषण के चार मंत्रियों में से एक। ५. काँटा। कंटक।

पनसखिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँच + शाखा] १. एक प्रकार का फूल। २. इस फूल का वृक्ष।

पनसतालिका—संज्ञा पुं० [सं०] कटहल।

पनसनालिका—संज्ञा पुं० [सं०] कटहल।

पनसल्ला†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी+शाला] स्थान जहाँ पर राह-

चलतों को पानी पिलाया जाता हो। पौसरा। पनसाल। प्याऊ।

पनसाखा—संज्ञा पुं० [हिं० पाँच+शाखा] एक प्रकार की मशाल जिसमें तीन या पाँच बत्तियाँ साथ जलती हैं।

विशेष—इसमें बाँस के एक लंबे डंडे पर लोहे का एक पंजा बँधा रहता है, जिसकी पाँचों शाखाओं को कपड़ा लपेटकर और तेल से चुपड़कर मशाल की भाँति जलाते हैं।

पनसार†—संज्ञा पुं० [हिं० पानी+सं० आसार (= धार बाँधकर पानी गिराना)] पानी से किसी स्थान को सराबोर करने की क्रिया या भाव। भरपूर सिंचाई।

पनसारी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पंसारी'। उ०—यह तो हिंदुओं का शास्त्र पनसारी की दुकान है और अक्षर कल्पवृक्ष हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८१६।

पनसाल¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी+शाला] वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण को पानी पिलाया जाता है। पौसरा।

पनसाल²—संज्ञा [देश०] १. पानी की गहराई नापने का उपकरण। वह लकड़ी जिसमें इंच फुट आदि के सूचक अंक खुदे होते हैं और जिसको गाड़कर पानी की गहराई अथवा उसका चढ़ाव उतार देखते हैं। २. पानी की गहराई नापने की क्रिया या भाव।

पनसाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी+शाला] दे० 'पनसाल'।

पनसिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कान में होनेवाली एक प्रकार की फुंसी जो कटहल के काँटे की तरह नोकदार होती है।

पनसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कटहल का फल। २. दे० 'पनसिका'।

पनसुइया—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी+सूई] एक प्रकार की छोटी नाव जिस पर एक ही खेनेवाला दो डाँड़ चला सकता है।

पनसुही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी+सुई] दे० 'पनसुइया'। उ०··· तो कोई एक पनसुही पर सवार।··· ···—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११३।

पनसूर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा।

पनसेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँच+सेर] दे० 'पंसेरी'।

पनसोई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पनसुइया'।

पनस्यु—वि० [सं०] प्रशंसा या तारीफ सुनने का इच्छुक। जिसे प्रशंसित होने की इच्छा हो।

पनह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पनाह] शरण। रक्षा या शरण पाने का स्थान। मु० पनाह मागना। उ०—मालिक मेहरबान करीम गुनहगार हररोज हरदम, पनह राखि रहीम।—दादू०, पृ० ६२७।

पनहटा—संज्ञा पुं० [हिं० पान+हाट] पान का हाट। पानदरीबा। उ०—धनहटा, सोनहटा, पनहटा, पक्वानहटा करेओ मुखरवकथा कहते।—कीर्ति०, पृ० ३०।

पनहड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पान+हाँडी] वह हाँड़ी, जिसमें तंबोली पान अथवा हाथ धोने के लिए पानी रखते हैं।

पनहरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० पानी+हारा (प्रत्य०)] [स्त्री० पनहारन, पनहारिन, पनहारी] वह जो पानी भरने पर नौकर हो या पानी भरने का काम करता हो। पनभरा।

पनहरा²—संज्ञा पुं० [हिं० पानी+हरा (प्रत्य०)] वह अथरी जिसमें सोनार गहने धोने आदि के लिये रखते हैं।

पनहा¹—संज्ञा पुं० [सं० परिणाह (= विस्तार, चौड़ाई, आयाम)] १. कपड़े या दीवार आदि की चौड़ाई। २. गूढ़ आशय या तात्पर्य। मर्म। भेद। जैसे,—तुम्हारी बात का पनहा मिले तब तो कोई जवाब दे।

पनहा²—संज्ञा पुं० [सं० पण (= रुपया पैसा)+हार] १. चोरी का पता लगानेवाला। उ०—सीस चढ़े पनहा प्रकट कहैं, पुकारे नैन।—बिहारी (शब्द०)। २. वह पुरस्कार जो चुराई हुई वस्तु लौटा या दिला देने के लिये दिया जाय।

पनहारा—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + हारा (प्रत्य०)][स्त्री० पनहारन, पनहारिन, पनहारी] वह जो पानी भरने पर नौकर हो। पानी भरनेवाला। पनभरा।

पनहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पनहारा] पानी भरने का काम करनेवाली नौकरानी। उ०—एक गऊ कुल दूर रँभाई, पनहारी पनघट से आई।—आराधना, पृ० ८५।

पनहि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उपानह] दे० 'पनही'। उ०—मोचिनि वदन सँकोचिनि हीरा माँगन हो। पनहि लिहे कर सोभित सुंदर आँगन हो।—तुलसी ग्रं० पृ० ४।

पनहिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पनही+इया (प्रत्य०)] दे० पनही'। उ०—जननी निरखति बान धनुहियाँ। बार बार उर नैननि लावति प्रभु जू की ललित पनहियाँ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३५०।

पनहियाभद्र—संज्ञा पुं० [हिं० पनही+भद्र (= मुंडन)] सिर पर इतने जूते पड़ना कि बाल उड़ जायँ। जूतों की वर्षा। जूतों द्वारा पिटाई।

पनही¹—संज्ञा स्त्री० [सं० उपानह] जूता। उ०—(क) राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनही।—मानस, २।२१०। (ख) और जब आपने मन की दुचिताई के भय से पनही कमर में बाँध ली थी उसको देख के पुजारी पंडों ने आपका तिरस्कार किया।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४७२।

पनही²—वि० स्त्री० [हिं० पना+ही (प्रत्य०)] पना से युक्त। पनावाली। जैसे, पनही भाँग।

पना—संज्ञा पुं० [सं० प्रपानक या पानीय] आम, इमली आदि के रस से बनाया जानेवाला एक प्रकार का शरबत। पानक। प्रपानक। पन्ना। उ०—पन बहु जंबुअ अबुअ मेलि। निचोरिय दारिम दाख सुठेलि।—पृ० रा०, ६३। १०६।

विशेष—पना कच्चे और पक्के दोनों प्रकार के फलों से तैयार किया जाता है। पक्के फल का रस या गूदा यों ही अलग कर दिया जाता है और कच्चे का गूदा अलग करने के पहले उसे भूना या उबाला जाता है। फिर उसको खूब मसलकर मीठा

मिला देते हैं। लौंग, कपूर और कभी कभी नमक तथा लालमिर्च भी पन्ने में मिलाई जाती है और हींग, जीरे, आदि का बघार दिया जाता है। वैद्यक के अनुसार पना रुचिकारक, तत्काल बलवर्धक और इंद्रियों को तृप्ति देनेवाला है।

पनाती—संज्ञा पुं० [सं० पनप्तृ] [स्त्री० पनातिन] पुत्र अथवा कन्या का नाती। पोते अथवा नाती का पुत्र।

पनार—संज्ञा पुं० [सं० प्रणाली] दे० 'परनाला'।

पनारा—संज्ञा पुं० [सं० प्रणालि] दे० 'परनाला'। उ०—रहट चलत वा ग्राम तहँ, ठहरत प्रीति अपार। लगे पनारे रहट के, परत अखंडित धार।—प० रासो, पृ० २३।

पनारि⑤[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पर + नारी] परस्त्री। परकीया स्त्री या नायिका।

पनारि⑤[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रणाली] नाली। पनाली। मोरी। उ०—दई पनारि खुलाइ, सरिता ज्यौं बिथिन गयो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४।

पनारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रणाली] लंबी रेखा। उ०—सिर पर रोरी और सिंदूर की पनारी निकाल सुंदर भृकुटिला देकर वह सुढार वेणी गूथूँ।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ०१६३।

यौ०—पनारीदार = जिसमें नालियाँ बनी हों।

पनाला—संज्ञा पुं० [सं० प्रणाली] [स्त्री० पनाली] दे० 'परनाला'।

पनासना†—क्रि० स० [सं० पानाशन] पोषण करना। पोसना। परवरिश करना। उ०—कन्व जी इसके पिता इसलिये कहाते हैं कि पड़ी हुई को उठा लाए थे। और उन्होंने पाली पनासी है।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

पनाह—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. शत्रु से, संकट या कष्ट से बचाव या रक्षा पाने की क्रिया या भाव। त्राण। बचाव। उ०—महिमा मंगोल ताकी पनाह। बैठ्यो अडोल तिन गही बाह।—हम्मीर०, पृ० १६।

क्रि० प्र०—पाना।—माँगना।

मुहा०—(किसी से) पनाह माँगना = किसी बहुत ही अप्रिय या अनिष्ट वस्तु अथवा व्यक्ति से दूर रहने की कामना करना। किसी से बहुत बचने की इच्छा करना। जैसे,—आप दूर रहिए, मैं आपसे पनाह माँगता हूँ।

२. रक्षा पाने का स्थान। बचाव का ठिकाना। शरण। आड़। ओट।

क्रि० प्र०—ढूँढ़ना।—देना।—पाना।—माँगना।

मुहा०—पनाह लेना = विपत्ति से बचने के लिये रक्षित स्थान में पहुँचना। शरण लेना।

पनाही†—संज्ञा स्त्री० [फा० पनाह + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का अर्थदंड। उ०—'पनाही' दंडस्वरूप उस जुर्माने को कहते हैं जो चोर को इसलिये बाध्य होकर देना पड़ता है जिससे चोर चोरी का माल वापस कर दे।—नेपाल०, पृ० १०५।

पनि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रण, प्रा० पण] प्रतिज्ञा। प्रण। उ०—याकी ही पनि पार तू छोड़ि जीय की गाँस।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५३।

पनि[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पानी] पानी शब्द का यौगिक पद प्रयुक्त रूप। जैसे, पनिगर, पनिघट, पनिहारी।

पनि[3]—क्रि० वि० [सं० पुनः, हिं० पुनि]। फिर। पुनः उ०—तौ पनि सुजन निमित्त गुन रचिए तन मन फूल। जू का भय जिय जानि कै क्यों डारियै दुकूल।—पृ० रा०, १।५४।

पनिक†—संज्ञा पुं० [देश०] १. जोलाहों का एक कैंचीनुमा औजार जिस पर ताना फैलाकर पाई करते हैं। २. कंडाल। विशेष—दे० 'कंडाल'।

पनिखा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पनिक'।

पनिगर‡—वि० [हिं० पानी+फा गर] दे० 'पानीदार'।

पनिघट—संज्ञा पुं० [हिं० पानी+घाट] दे० 'पनघट'। उ०—(क) पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना।—मानस, ७।२९। (ख) पनिवारे घट मैं बसै पनिघटि ओर न जात।—स० सप्तक, पृ० १७४।

पनिच⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० पतञ्चिका] धनुष की ज्या। उ०—(क) खैंचि पनिच भृकुटी धनुक बधिक समर तजि कानि। हनत तरुन मृग तिलक सुर सुरक भाल भरि तानि।—बिहारी (शब्द०)। (ख) पुहुप को चाप पनिच अलि किए। पंच बान पाँचो कर लिए।—नंद० ग्रं०, पृ० १४०।

पनिडो—संज्ञा स्त्री० [सं० पयडरीक] पुंडरिया। पंडरीक वृक्ष।

पनियाँ†[1]—वि० [हिं० पानी+इया (प्रत्य०)] १. पानी के संबंध का। २. पानी में उत्पन्न। ३. जिसमें पानी मिला हो। ४. पानी में रहनेवाला। ५. दे० 'पनिहा'।

पनियाँ†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पानी] पानी। उ०—पहिल गवनवाँ ऐलू, पनियाँ के भेजलन हो।—धरम०, पृ० ६४।

पनियाना†—क्रि० स० [हिं० पानी+आना (प्रत्य०)] १. पानी से सींचना या तर करना। २. तंग करना। परेशान करना। दिक करना। ३. पानी से युक्त होना। (बाजारू)।

पनियार†‡—संज्ञा पुं० [हिं० पानी+आर (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ पानी ठहरता हो। २. वह दिशा जिसकी ओर पानी बहता हो।

पनियारा†‡—संज्ञा पुं० [हिं० पानी] बाढ़।

पनियाला—संज्ञा पुं० [हिं० पानी+इयाल (प्रत्य०)] एक प्रकार का फल।

पनियासोत†—वि० [हिं० पानी+सोत] (तालाब, खाईं आदि) जिसमे पानी का सोता निकला हो। अत्यंत गहरा। जैसे, पनियासोत खाईं।

पनियाहो†—वि० [हिं०] पानी में भीगी। पानी से नम। उ०—पनियाही घासों की हाथ भर मोटी बनी तह छाई हुई थी।—नई०, पृ० ३१।

पनिवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पनुआँ'।

पनिसिगा—संज्ञा पुं० [हिं०] जलपीपल।

पनिहा[1]—वि० [हिं० पानी + हा (प्रत्य०)] १. पानी में रहनेवाला जैसे, पनिहा साँप। २. जिसमें पानी मिला हो। पनमेल। जैसे, पनिहा दूध। ३. पानी संबंधी। जल संबंधी।

पनिहा[2]—संज्ञा पुं० दे० 'पनुआँ'।

पनिहा[3]—संज्ञा पुं० [सं० प्रणिधा] वह जो चोरी आदि का पता लगाता हो। जासूस। भेदिया। उ०—लालन लहि पाएँ दुरै चोरी सौंह क रै न। सीस चढ़े पनिहा प्रगट कहैं पुकारै नैन।—बिहारी (शब्द०)।

पनिहार—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + हारा (प्रत्य०)] [स्त्री० पनिहारी] दे० 'पनहरा'। उ०—(क) आकाशे मँवदा कुआँ पाताले पनिहार।—कबीर (शब्द०)। (ख) जस पनिहारी धरे सिर गागर सुधि न टरे बतरावत सबसे।—धरम०, पृ० ७५।

पनीⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० पणी] प्रण करनेवाला। प्रतिज्ञा करनेवाला। उ०—बाँह पगार उदार सिरोमनि नतपालक पावन पनी। सुमन बरषि रघुपति गुन गावत हरषि देव दुंदुभि हनी।—तुलसी (शब्द०)।

पनीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. फाड़कर जमाया हुआ दूध। छेना।

विशेष—इसे बनाने के लिये पहले दूध को फाड़ लेते हैं। फिर छेने मे नमक और मिर्च मिलाकर साँचे में भर देते हैं जिससे उसकी चकत्तियाँ बन जाती हैं।

मुहा०—**पनीर चटाना** = काम निकालने के लिये किसी की खुशामद करना। हत्थे चढाने के लिये किसी को परचाना। **पनीर जमाना** = (१) ऐसी बात करना जिससे आगे चलकर बहुत से काम निकलें। (२) किसी वस्तु पर अधिकार करने के लिये कोई आरंभिक कार्य करना।

२. वह दही जिसका पानी निचोड़ लिया गया हो।

पनीरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फूल, पत्तों के वे छोटे पौधे जो दूसरी जगह ले जाकर रोपने के लिये लगाए गए हो। फूल पत्तों के बेहन।

क्रि० प्र०—जमाना।

२. वह क्यारी जिसमे पनीरी जमाई गई हो। बेहन की क्यारी। ३. गलगल नीबू के फाँकों के ऊपर का गूदा।

पनीला—वि० [हिं० पानी+ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० पनीली] जिसमें पानी हो। पानी मिला हुआ। जलयुक्त।

पनुआँ[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पन (=पानी) + उआ (प्रत्य०)] वह शरबत जो गुड़ के कड़ाहे से पाग निकाल लेने के पीछे उसे धोकर तैयार किया जाता है। गुड़ के कड़ाहे की धोवन का शरबत। पनियाँ।

विशेष—पाग निकाल लेने के पश्चात् कड़ाहे में तीन चार घड़े पानी छोड़ देते हैं। फिर कड़ाहे को उससे अच्छी तरह धोकर थोड़ी देर तक उसे गरमाते हैं। उबलना आरंभ होने पर प्रायः शरबत तैयार समझा जाता है। यह प्रायः सुबह पीया जाता है।

पनुआँ[2]—वि० [हिं० पानी] जिसमे अधिक पानी मिल गया हो। फीका।

पनुवाँ—वि० [हिं० पन(=पानी)+उवाँ (प्रत्य०)] फीका। पनुआँ। उ०—पनुवाँ रंगन मेजि निचौरै। गाढो रंग अछत जिमि चोरै। रंग देइ तुरते न निचोरे। रस रसनी रर टाँग देरैरे।—देवस्वामी (शब्द०)।

पनेथी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पन (=पानी) + एथी] पानी लगाकर पोई हुई रोटी। मोटी रोटी।

पनेरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पनीरी'।

पनेरी[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पन(पान =)+एरी (प्रत्य०)] पान बेचनेवाला तँबोली।

पनेहड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पनहुड़ा'।

पनेहरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पनहरा'।

पनैला—संज्ञा पुं० [हिं० मनीला (= एक प्रकार का सन)] एक प्रकार का गाढ़ा, चिकना और चमकीला कपड़ा जो प्रायः गरम कपड़ो के नीचे अस्तर देने के काम आता है।

विशेष—जिस पौधे के रेशे से यह कपड़ा बुना जाता है वह फिलीपाइन द्वीपपुंज में होता है। मनीला इस द्वीपपुंज की राजधानी है। संभवतः वहीं से चालान किए जाने के कारण पहले रेशे ने और फिर उससे बुने जानेवाले कपड़े ने मनीला नाम पाया है।

पनोती†संज्ञा स्त्री० [सं० पर्वन् (= विशेष अवस्था), हिं० पन+ओती (प्रत्य०)] अवस्था। जैसे, बालापन, युवापन। उ०—आयुष्य की चारों पनोतियों में प्रभु को भूलकर माया के जाल में फँस रहे तो क्या यही तुम्हारी बुद्धि है।—सुंदर ग्रं० (भू०), भा० १, पृ० ४६।

पनौआ†—संज्ञा पुं० [हिं० पन (= पान) + औआ (प्रत्य०)] एक पकवान जो पान के पत्ते को बेसन या चौरीठे में लपेटकर घी या तेल में तलने से बनता है।

पनौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पन (= पान) + औटी (प्रत्य०)] पान रखने की पिटारी। बाँस की फट्टियों का बुना हुआ पानदान। बेलहरा।

पन्न[1]—वि० [सं०] १. गिरा हुआ। पड़ा हुआ। २. नष्ट। गत।

पन्न[2]—संज्ञा पुं० १. रेंगना। सरकते हुए चलना। २. नीचे की ओर जाना। अधोगमन।

यौ०—पन्नग।

पन्नई—वि० [हिं० पन्ना + ई (प्रत्य०)] पन्ने के रंग का। जिसका रंग पन्ने का सा हो।

पन्नग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पन्नगी] १ सर्प। साँप। २ पद्माख। ३ एक बूटी।

पन्नग[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० पन्ना] पन्ना। मरकत।

पन्नगकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर ।

पन्नगनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ [को०] ।

पन्नगपति—संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग । उ०—पन्नग प्रचंड पति प्रभु की पनच पीन पर्वतारि पर्वत प्रमान मान पावई ।—केशव (शब्द०) ।

पन्नगारि—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ । उ०—पन्नगारि असि नीति श्रुति ममत सज्जन कहहिं ।—मानस, ७।९५ ।

पन्नगाशन—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड [को०] ।

पन्नगिनि⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० पन्नग+हिं० इनी (प्रत्य०)] सर्पिणी । नागिन । उ०—इक इक अलक लटकि लोचन पर, यह उपमा इकआवति । मनहु पन्नगिनि उतरि गगन तें, दल पर फन परसावति ।—सूर०, १०।१८०६ ।

पन्नगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागिन । सर्पिणी । साँपिन । उ०—मृगनैनी बेनी निरख छबि छहरत बरजोर । कनकलता जनु पन्नगी बिलसत कला करोर ।—स० सप्तक, पृ० ३४६ । ४. एक बूटी । सर्पिणी ।

पन्नद्धा, पन्नध्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] पदत्राण । जूता [को०] ।

पन्ना[1]—संज्ञा पुं० [सं० पर्ण] पिरोजे की जाति का हरे रंग का एक रत्न जो प्राय. स्लेट और ग्रेनाइट की खानों से निकलता है । मरकत । जमुर्रद ।

विशेष—क्रोमियम नामक एक रंगवर्धक तत्व के कारण अन्यसजातीय रत्नों की अपेक्षा इसका रंग अधिक गहरा और नेत्राकर्षक होता है । जो पन्ना जितना ही गहरा हरा और आभायुक्त और बेदाग होता है वह उतना ही मूल्यवान समझा जाता है । भूरे अथवा पीलापन या श्यामता लिए हुए टुकड़े अल्प मूल्य समझे जाते हैं । सर्वोत्तम पन्ना दक्षिण अमेरिका की कोलंबिया रियासत की खानों से निकलता है । भारत की पन्ना रियासत की खानो से भी प्राचीन काल से पन्ना निकलता है । भारतवासी बहुत प्राचीन काल से इसका व्यवहार करते आए हैं । अर्थात् प्राचीन पुस्तकों मे मरकत शब्द और उसके पर्याय पाए जाते हैं । फलित ज्योतिष के अनुसार इसके अधिष्ठाता देवता बुध हैं । इसके धारण करने से उनकी कोपशांति होती है ।

वैद्यक में पन्ना शीतल, मधुर रसयुक्त, रुचिकारक, पुष्टिकर, वीर्यवर्धक और प्रेतबाधा, अम्लपित्त, ज्वर, वमन, श्वास, मंदाग्नि, बवासीर, पांडुरोग और विशेष रूप से विष का नाश करनेवाला माना गया है ।

पर्या०—मरकत । मरक्त । गारुत्मक । गारुत्मत । गरुडास्य । गरुत्मोत्थित । राजनील । अश्मगर्भ । हरितमणि । रौहिणेय । सौपर्ण । गरुडोद्गीर्ण । बुधरत्न । अश्मगर्भज । गरलारि । वापबोल । गरुड । गारुड । गारुडोत्तीर्ण । बाप्रबोल ।

पन्ना[2]—संज्ञा पुं० [सं० पर्ण] १. पुस्तक आदि का पृष्ठ । वरक । पत्र । २. भेड़ों के कान का वह चौड़ा भाग जहाँ का ऊन काटा जाता है । ३. देशी जूते के एक ऊपरी भाग का नाम जिसे पान भी कहते हैं । ४. आम आदि का पानक । पना ।

पन्निक—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पनिक' ।

पन्नी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पन्ना (= पत्रा)] १. राँगे या पीतल के कागज की तरह पतले पत्तर जिन्हें सौंदर्य और शोभा के लिये छोटे छोटे टुकड़ों में काटकर अन्य वस्तुओं पर चिपकाते हैं ।

यौ०—पन्नीसाज ।—पन्नीसाजी ।

२. वह कागज या चमड़ा जिसपर सोने या चाँदी का लेप किया हुआ रहता है । सोने या चाँदी के पानी में रँगा हुआ कागज या चमड़ा । सुनहला या रुपहला कागज ।

पन्नी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पना] एक भोज्य पदार्थ । उ०—पन्नी पूप पटकरी पापर पाक पिराक पनारी जी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

पन्नी[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बारूद की एक तौल जो आध सेर के बराबर होती है । उ०—तफन तोप खानै पुनि भूपा । गए लेख युग तोय अनूपा । रहे अठोरे पन्नी केरी । तिनहि सराहत भो नृप ढेरी ।—रघुराज (शब्द०) । २. एक लंबी घास जिसे प्राय: छप्पर छाने के काम में लाते हैं ।

पन्नी[4]— संज्ञा पुं० [देश०] पठानों की एक जाति ।

पन्नीसाज—संज्ञा पुं० [हिं० पन्नी + फ़ा० साज़ (= बनानेवाला)] वह मनुष्य जिसका व्यवसाय पन्नी बनाना हो । पन्नी बनाने का काम करनेवाला ।

पन्नीसाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पन्नी+साज] पन्नी बनाने का काम । पन्नी बनाने का धंधा । पेशा ।

पन्नू—संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल का पौधा । एक पुष्पवृक्ष ।

पन्यारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली वृक्ष जो मझोले कद का होता है ।

विशेष—यह वृक्ष सदा हरा रहता है और मध्यप्रदेश में यह अधिकता से पाया जाता है । इसकी लकड़ी टिकाऊ और चमकदार होती है । उससे गाड़ियाँ, कुर्सियाँ और नावें बनती हैं ।

पन्हाना[1]‡—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पिन्हाना' ।

पन्हाना[2]—क्रि० स० १. दे० 'पिन्हाना' । २. दे० 'पहनाना' ।

पन्हारा†—संज्ञा पुं० [हिं० पान + हारा] एक तृणधान्य जो गेहूँ के खेतों मे आपसे आप होता है । भँकरा ।

पन्हिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पनही] जूता । उपानह । उ०—सत जन पन्हिया ले खड़ा राहूँ ठाकुर द्वार । चलत पाछे हूँ फिरों रज उड़त लेऊँ सीर ।—दक्खिनी०, पृ० १०७ ।

पन्हैयाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पनही] दे० 'पनही' । उ०—आए प्रभु, टहलुवा रूप धरि द्वार पर, कटी एक कामरी पन्हैयाँ टूटी पाय हैं ।—भक्तमाल०, पृ० ५६० ।

पपची‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक प्रकार का पक्वान्न। छोटा पपड़ा। उ०—माँ ने उस दिन कुछ पपची इत्यादि पक्वान्न बनाए थे।—श्यामा०, पृ० ९३।

पपटा—संज्ञा पुं० [देश०] १. दे० 'पपड़ा'। २. छिपकली।

पपड़ा—संज्ञा पुं० [सं० पर्पट] [स्त्री० अल्पा० पपड़ी] १. लकड़ी का रूखा करकरा और पतला छिलका। चिप्पड़।

क्रि० प्र०—छुड़ाना।

२. रोटी का छिलका।

क्रि० प्र०—छुड़ाना।

३. एक प्रकार का पकवान जो मीठा और नमकीन दोनों होता है। मीठा पपड़ा मैदे को शरबत मे घोलकर और नमकीन पपड़ा बेसन को पानी में घोलकर घी या तेल में तलकर बनाते हैं।

पपड़िया—वि० [हिं० पपड़ी+इया (प्रत्य०)] पपडी संबंधी। जिसमें पपड़ी हो। पपड़ीदार। पपड़ीवाला। जैसे, पपड़िया कत्था।

पपड़िया कत्था—संज्ञा पुं० [हिं० पपड़ी+कत्था] सफेद कत्था। श्वेतसार।

विशेष—यह कत्था साधारण कत्थे से अच्छा समझा जाता है और खाने में अधिक स्वादु होता है। वैद्यक मे इसको कडुवा, कसैला और चरपरा तथा व्रण, कफ, रुधिरदोष, मुखरोग, खुजली, विष, कृमि, कोढ़ और ग्रह तथा भूत की बाधा में में लाभदायक लिखा है।

पपड़ियाना—क्रि० अ० [हिं० पपड़ी+ना (प्रत्य०)] १. किसी चीज की परत का सूखकर सिकुड़ जाना। २ अत्यंत सूख जाना। इतना सूख जाना कि ऊपर पपड़ी की तरह तह जम जाय। तरी न रह जाना। जैसे,—क्यारियाँ पपड़िया गई। ओठ पपड़िया गए।

पपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पपड़ा का अल्पा०] १. किसी वस्तु की ऊपरी परत जो तरी या चिकनाई के अभाव के कारण कड़ी और सिकुड़कर जगह जगह से चिटक गई हो और नीचे की सरस और स्निग्ध तह से अलग मालूम होती हो। ऊपर की सूखी और सिकुड़ी हुई परत।

विशेष—वृक्ष की छाल के अतिरिक्त मिट्टी या कीचड़ की परत और ओठ के लिये अधिकतर बोलते हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।

यौ०—पपड़ीदार।

मुहा०—पपड़ी छोड़ना = (१) मिट्टी की तह का सूख और सिकुड़कर चिटक जाना। पपड़ी पड़ना। (२) बिलकुल सूख जाना। तरी न रह जाना। रस का अभाव हो जाना। जैसे,—चार दिन से पानी नहीं पड़ा है इतने ही में क्यारियों ने पपड़ी छोड़ दी।

२. घाव के ऊपर मवाद के सूख जाने से बना हुआ आवरण या परत। खुरंड।

क्रि० प्र०—छुड़ाना।—पड़ना।

३. सोहन पपड़ी या अन्य कोई मिठाई जिसकी तह जमाई गई हो। ४. छोटा पापड़। आटा या बेसन आदि का नमकीन और पकाया हुआ खाद्य। (यौ०)। ५. वृक्ष की छाल की ऊपरी परत जिसमें सूखने और चिटकने के कारण जगह जगह दरारें सी पड़ी हो। बना या घड़ा। त्वचा।

पपड़ीला—वि० [हिं० पपड़ी+इला (प्रत्य०)] जिसमे पपड़ी हो। पपड़ीदार।

पपनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बरौनी। पलक के बाल।

पपरिया कत्था—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पपड़िया कत्था'।

पपरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्पट] १. एक पौधा जिसकी जड़ दवा के काम में आती है। २. दे० 'पपड़ी'।

पपहा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक कीड़ा जो धान की फसल को हानि पहुँचाता है। २. एक प्रकार का घुन जो जो गेहूँ आदि में घुसकर उनका सार खा जाता है और केवल ऊपर का छिलका ज्यों का त्यों रहने देता है।

पपि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

पपहिया—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पपीहा'। उ०—घनघोर घटा के देखने से अभी तो प्यासे पपहिये के नयनो की प्यास भी न बुझने पाई थी।—श्रीनिवास ग्रं० पृ० ९४।

पपिहरा—संज्ञा पुं० [हिं० पपीहा +रा (स्वा०प्रत्य०)] चातक। पपीहा। उ०—पिय पिय रटए पपिहरा रे, हिय दुख उपजाव।—विद्यापति, पृ० ३६४।

पपिहा‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पपीहा'।

पपी[१]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पपीहा'। उ०—ज्यो पपी की प्यास पीव रात भर रटो। अरी स्वाति बिना बुंद भोर भ्यान पौ फटी।—तुरसी श०, पृ० ५।

पपी[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. सूर्य [को०]।

पपीता—संज्ञा पुं० [अ० या कनाड पपाया] एक प्रसिद्ध वृक्ष जो बहुधा बगीचों में लगाया जाता है। पपैया। अंडखरबूजा। वातकुंभ। एरंडचिर्भिट। नलिकादल। मधुकर्कटी।

विशेष—इसका वृक्ष ताड़ की तरह सीधा बढ़ता है और प्रायः बिना डालियो का होता है। ऊँचाई २० फुट के लगभग होती है। पत्तियाँ इसकी अंडी की पत्तियों की तरह कटावदार होती हैं। छाल का रंग सफेद होता है। इसका फल अधिकतर लंबोतरा और कोई कोई गोल भी होता है। फल के ऊपर मोटा हरा छिलका होता है। गूदा कच्चा होने की दशा मे सफेद और पक जाने पर पीला होता है। बीचो बीच में काले काले बीज होते हैं। बीज और गूदे के बीच एक बहुत पतली झिल्ली होती है, जो बीजकोष या बीजाधार का काम देती है कच्चा और पक्का दोनों तरह का फल खाया जाता है। कच्चे फल की प्रायः तरकारी पकाते हैं। पक्का फल मीठा होता है और खरबूजे की तरह यों ही या शकर आदि के साथ खाया जाता है। इसके गूदे, छाल, फल और पत्ते मे से भी एक प्रकार का लसदार दूध निकलता है जिसमें भोज्य द्रव्यो, विशेषतः मांस के गलाने का गुण माना जाता है। इसी

कारण इसको मांस के साथ प्रायः पकाते हैं। यहाँ तक माना जाता है कि यदि मांस थोड़ी देर तक इसके पत्ते में लपेटा रखा रहे तो भी बहुत कुछ गल जाता है। इसके अधपके फल से दूध एकत्र कर 'पपेन' नाम की एक औषध भी बनाई गई है जो मदाग्नि में उपकारक होती है। फल भी पाचन-गुण-विशिष्ट समझा जाता है और अधिकतर इसी गुण के लिये उसे खाते हैं।

पपीते का देश दक्षिण अमेरिका है। अन्यान्य देशों में यह पुर्तगालियों के संसर्ग से आया और कुछ ही बरसों में भारत के अधिकांश में फैलकर चीन पहुँच गया। इस समय विषुवत् रेखा के समीपस्थ सभी देशों में इसके वृक्ष अधिकता से पाए जाते हैं। भारत मे इसके दो भेद दिखाई पड़ते हैं। एक का फल अधिक बड़ा और मीठा होता है, दूसरे का छोटा और कम मीठा। पहले प्रकार का पपीता प्राय. आसाम के गोहाटी और छोटा नागपुर विभाग के हजारीबाग स्थानों मे होता है। वैद्यक मे इसका मधुर, स्निग्ध, वातनाशक, वीर्य और कफ का बढ़ानेवाला हृदय को हितकर और उन्माद तथा व्रण रोगों का नाशक लिखा है।

पपील—संज्ञा पुं० [सं० **पिपीलक**] चींटी। उ०—सुनत स्रवन पपील की बानी, तिनते का गोहराई।—जग० बानी, पृ० १११।

पपीलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **पिपीलिका**] चींटी। पिपीलिका।

पपीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **पिपीलिका**] दे० 'पिपीलिका'। उ०—कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहली गैल। पाँव न टिकै पपीलिका पंडित लादै बैल।—संतबानी०, पृ० ३४।

पपीहरा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पपीहा'।

पपीहा—संज्ञा पुं० [हिं० अनु०] कीड़े खानेवाला एक पक्षी जो वसंत और वर्षा मे प्रायः आम के पेड़ों पर बैठकर बड़ी सुरीली ध्वनि मे बोलता है। चातक।

विशेष—देशभेद से यह पक्षी कई रंग, रूप और आकार का पाया जाता है। उत्तर भारत मे इसका डील प्रायः श्यामा पक्षी के बराबर और रंग हलका काला या मटमैला होता है। दक्षिण भारत का पपीहा डील में इससे कुछ बड़ा और रंग मे चित्रविचित्र होता है। अन्यान्य स्थानों में और भी कई प्रकार के पपीहे मिलते हैं, जो कदाचित् उत्तर और दक्षिण के पपीहे की संकर संतानें हैं। मादा का रंगरूप प्रायः सर्वत्र एक ही सा होता है। पपीहा पेड़ से नीचे प्रायः बहुत कम उतरता है और उसपर भी इस प्रकार छिपकर बैठा रहता है कि मनुष्य की दृष्टि कदाचित् ही उसपर पड़ती है। इसकी बोली बहुत ही रसमय होती है और उसमे कई स्वरों का समावेश होता है। किसी किसी के मत से इसकी बोली मे कोयल की बोली से भी अधिक मिठास है। हिंदी कवियों ने मान रखा है कि वह अपनी बोली मे 'पी कहाँ...? पी कहाँ ?' अर्थात् 'प्रियतम कहाँ हैं ?' बोलता है। वास्तव मे ध्यान देने से इसकी रागमय बोली से इस वाक्य के उच्चारण के समान ही ध्वनि निकलती जान पड़ती है। यह भी प्रवाद है कि यह केवल वर्षा की बूँद का ही जल पीता है, प्यास से मर जाने पर भी नदी, तालाब आदि के जल में चोंच नहीं डुबोता। जब आकाश में मेघ छा रहे हों, उस समय यह माना जाता है कि यह इस आशा से कि कदाचित् कोई बूँद मेरे मुँह में पड़ जाय, बराबर चोंच खोले उनकी ओर टक लगाए रहता है। बहुतों ने तो यहाँ तक मान रखा है कि यह केवल स्वाती नक्षत्र में होनेवाली वर्षा का ही जल पीता है, और यदि यह नक्षत्र न बरसे तो साल भर प्यासा रह जाता है। इसकी बोली कामोद्दीपक मानी गई है। इसके अटल नियम, मेघ पर अनन्य प्रेम और इसकी बोली की कामोद्दीपकता को लेकर संस्कृत और भाषा के कवियों ने कितनी ही अच्छी अच्छी उक्तियाँ की हैं। यद्यपि इसकी बोली चैत से भादों तक बराबर सुनाई पड़ती रहती है; परंतु कवियों ने इसका वर्णन केवल वर्षा के उद्दीपनों मे ही किया है।

वैद्यक में इसके मांस को मधुर, कषाय, लघु, शीतल, कफ, पित्त, और रक्त का नाशक तथा अग्नि की वृद्धि करनेवाला लिखा है।

पर्या०—चातक। तोकक। मेघजीवन। शारंग। सारंग। स्तोकक।

२ सितार के छह तारों में से एक जो लोहे का होता है। ३. आल्हा के बाप का घोड़ा जिसे माँड़ा के राजा ने हर लिया था। ४. दे० 'पपैया'।

पपु[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध पिलानेवाली गाय।

पपु[2]—वि० रक्षा करनेवाला। त्राता। पालक [को०]।

पपैया[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] १ सीटी। २. वह सीटी जिसे लड़के आम की अंकुरित गुठली को घिसकर बनाते हैं। ३. आम का नया पौधा। अमोला।

पपैया[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पपीहा'। उ०—अति विचित्र कियो साज तो सो रंग रहेगो आज। दादुर, मोर, पपैया बोलत फूले फूल द्रुम बाग।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५८।

पपोटन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधा जिसके पत्ते बाँधने से फोड़ा पकता है। इसका फल मकोय की तरह होता है।

पपोटा—संज्ञा पुं० [सं० प्र+पट] आँख के ऊपर का चमड़े का वह पर्दा जो ढेले को ढके रहता है और जिसके गिरने से आँख बंद होती है और उठने से खुलती है।

पपोरना†—क्रि० स० [देश०] अपनी बाहें ऐंठना और उनका भराव या पुष्टता देखना। (इस क्रिया से बलाभिमान सूचित होता है)। उ०—कंस लाज भय गर्वजुत चल्यो पपोरत बाँह।—व्यास (शब्द०)।

पपोलना—क्रि० अ० [हिं० पोपला] पोपले का चुभलाना, चबाना या मुँह चलाना। बिना दाँत का चुभलाना या मुँह चलाना।

पप्ता—संज्ञा स्त्री० [देश० [बाम मछली। गुंगबहरी।

पबई—संज्ञा स्त्री० [देश०] मैना की जाति का एक पक्षी, जिसका बोली बहुत ही मीठी होती है।

पबना†—क्रि० स० [हिं० पाना] प्राप्त करना ।

पबमान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पवमान] वायु । पवन ।

पबलिक¹—संज्ञा स्त्री० [अं०] सर्वसाधारण । जनता । आम लोग । जैसे,—अब पब्लिक को यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई है ।

पबलिक²—वि० सर्वसाधारण संबंधी । सार्वजनिक । जैसे,—कल टाउनहाल में एक पबलिक मीटिंग होनेवाली है ।

पबलिक वर्क्स—संज्ञा पुं० [अं०] १ निर्माण संबंधी वे कार्य जो सर्वसाधारण के लाभ के लिये सरकार की ओर से किए जायँ । पुल नहर आदि बनाने का कार्य । २. इंजीनियरी का मुहकमा ।

पब्लिगई—संज्ञा स्त्री० [अं० पब्लिक] दे० 'पबलिक' ।

पबारना†—क्रि० स० [सं० प्रवारण ?] फेकना । उ०—जोगी मनहिं ओहिं रिसि मारहिं । दरब हाथ के समुंद पबारहिं ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२३ ।

पबि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पवि' । उ०—(क) देखिसि आवत पबि सम बाना । तुरत भएउ खल अंतरधाना ।—मानस ६।७५ । (ख) असनि कुलिस निर्घात पबि बज्र सु तेरे नाहिं । —अनेकार्थ०, पृ० ६० ।

यौ०—**पबिपात** = वज्रपात । उ०—घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले ।—मानस, ६।४८।

पबै†—संज्ञा पुं० [सं० पर्वत, प्रा० पव्वअ, पव्वय] पर्वत । उ०—पबे सिखर इम गुपत किता गुण ओगुण कारक ।—रा० रू०, पृ० ६ ।

पब्बय(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० पर्वत, प्रा० पव्वय] १. पहाड़ । उ०—कमठ कसकि घसि मसकि धमय पव्वय पताल कह । —पृ० रासो, पृ० १६८ । २ पत्थर ।

पब्बय²—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम ।

पब्बि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पवि] वज्र । पवि ।

पब्बीन(पु)—वि० [सं० प्रवीण] दे० 'प्रवीण' । उ०—सुने बीन पब्बीन सुर नाम रागं । रहे मोहि कै माल डारे न भागं । —ह० रासो, पृ० ३७ ।

पब्बै—संज्ञा पुं० [सं० पर्वत, प्रा० पव्वय] १ पर्वत । पहाड़ । २. पत्थर । उ०—तिमि उड़त कोट पब्बै सहित दल दब्बै तलछत परे । हम्मीर०, पृ० ४३ ।

पब्लिक—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'पबलिक' ।

पब्लिक प्रासिक्यूटर—संज्ञा पुं० [अं०] पुलिस का वह अफसर या वकील जो सरकार की ओर से फौजदारी मुकदमों की पैरवी करता है ।

पब्लिशर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो पुस्तक, समाचारपत्र आदि छपवाकर प्रकट या प्रकाशित करे । प्रकट करनेवाला । प्रकाशित करनेवाला । पुस्तक प्रकाशक । प्रकाशक ।

विशेष—कोई आपत्तिजनक चीज प्रकाशित करने के अभियोग पर प्रिंटर और पब्लिशर दोनों गिरफ्तार किए जाते हैं ।

पमंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्लवङ्ग] घोड़ा । अश्व । उ०—पमंग अंग पाखरां परां गिरा कि पंजरां ।—रा० रू०, पृ० २६६ ।

पमरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] शल्लुकी नामक सुगंधित पदार्थ ।

पमार¹—संज्ञा पुं० [सं० प्रमार] अग्निकुल के क्षत्रियों की एक शाखा । प्रमार । पवार । दे० 'परमार' ।

पमार²—संज्ञा पुं० [सं० पामारि] चकवँड़ । चक्रमर्दक । चकौड़ा ।

पम्मन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गेहूँ जो बड़ा और बढ़िया होता है । कठिया गेहूँ ।

पयंबर†—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैगम्बर] दे० 'पैगंबर' । उ०—तपाके दिल से कीता अर्ज आकर । के ऐ सरदफतर आल पयंबर ।—दक्खिनी०, पृ० १९० ।

पयः—संज्ञा पुं० [सं०] पयस् शब्द का वह रूप जो व्याकरण के नियमानुसार कुछ अक्षरों के पूर्व आता है ।

पयःकंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० पयःकन्दा] क्षीरविदारी । कुम्हड़ा ।

पयःपयोष्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम ।

पयःपान—संज्ञा पुं० [सं०] दुग्धपान । दूध पीना ।

पयःपूर—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करिणी । छोटा तालाब ।

पयःपेटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारियल ।

पयःफेनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुग्धफेनी ।

पय¹—संज्ञा पुं० [सं० पयस्] १ दूध । उ०—संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ।—मानस, १।६ ।

यौ०—**पयनिधि** । **पयपयोधि** = क्षीरसागर । दुग्धसमुद्र । उ०—पयपयोधि तजि अवध बिहाई । जहँ सिय लखनु रामु रहे आई ।—मानस०, २। १३० । **पयमुख** ।

२. जल । पानी । ३ अन्न ।

पय²—संज्ञा पुं० [सं० पद, प्रा० पय] पैर । चरण । उ०—जाल जलाखो गोरड़ी । सोवन पायल पय झलकति ।—बी० रासो, पृ० ५४ ।

पयच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यञ्चा] दे० 'प्रत्यंचा' । उ०—जानहु काल जगत कहँ कढ़ा । निसदिन रहै पयच अनु चढ़ा । —चित्रा०, पृ० ७० ।

पयजा†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिज्ञा, प्रा० पइज्जा, पइज्ज] दे० 'पैज' । उ०- परखत प्रीति प्रतीति पयज पनु रहे काज ठटु ठानि है । —तुलसी ग्रं०, पृ० ३०९ ।

पयद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पयोद] बादल । पयोद । उ०—नीच निरावहि निरस तरु तुलसी सींचहि ऊख । पोषत पयद समान सब बिष पियूष के रूख ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १३४ । २, जिससे पय अर्थात् दूध प्राप्त हो । स्तन । उ०—गोद राखि पुनि हृदय लगाए । स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए । —मानस, २ । ५२ ।

पयदल—संज्ञा पुं० [सं० पदाति दल] दे० 'पैदल' । उ—चले हयदलं पयदलं मध्य रथ्थं ।—ह० रासो, पृ० ३५ ।

पयदा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'प्यादा' । उ०—लक्षावधि पयदा क शब्दवाद ।—कीर्ति०, पृ० ८४ ।

पयधि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पयोधि] दे० 'पयोधि' ।

पयना†¹—वि० [हिं०] दे० 'पैना' ।

पयना²—संज्ञा पुं० दे० 'पैना'।

पयनिधि—संज्ञा पुं० [सं० पयोनिधि] दे० 'पयोनिधि'। उ०—कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई।—मानस, १। १८५।

पयमुख—वि० [सं० पय + मुख] दे० 'दूधमुख'। उ०—गौर सरीर स्याम मन माहीं। कालकूट मुख पयमुख नाहीं।—मानस, १। २७७।

पयश्चय—संज्ञा पुं० [सं०] झील या कोई बड़ा जलाशय [को०]।

पयस्य¹—वि० [सं०] दूध से निकला या बना हुआ।

पयस्य²—संज्ञा पुं० १. दूध से निकली या प्राप्त वस्तु। दुग्धविकार। जैसे, घी, मट्ठा, दही आदि। उ०—जय पयस्य परिपूर्ण सुघोषित घोष हमारे।—साकेत, पृ० ४२१। २. बिलार। मार्जार (को०)।

पयस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुग्धिका। दुधिया घास। २ क्षीरकाकोली। अर्कपुष्पी। ३. सत्यानासी। स्वर्णक्षीरी (को०)।

पयस्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नदी। २. अधिक दूध देनेवाली गौ (को०)।

पयस्वल¹—वि० [सं०] १. जलयुक्त। २. जिसमें दूध हो।

पयस्वल²—संज्ञा पुं० [सं०] बकरा। छाग [को०]।

पयस्वान्—वि० [सं० पयस्वत्] [वि० स्त्री० पयस्वती] पानीवाला।

पयस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गाय। दूध देती हुई गाय। २. बकरी। ३ नदी। ४. चित्रकूट की एक नदी। ५. क्षीरकाकोली। ६ दूधफेनी। दूधबिदारी। ८ जीवंती।

पयस्वी—वि० [सं० पयस्विन्] [वि० स्त्री० पयस्विनी] पानीवाला।

पयहारी—संज्ञा पुं० [सं० पयस् + आहारी] दूध पीकर रह जानेवाला तपस्वी या साधु।

पयां—संज्ञा पुं० [देश०] एक तौल करने का पात्र जो दस सेर का होता है। (बुंदेल०)।

पयाग—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाग] दे० 'प्रयाग'।

पयाद—क्रि० वि० [हिं०] पाँव पाँव। पैदल। बिना सवारी के। उ०—सवार एक आर ही सबै पयाद चल्लियं।—ह० रासो०, पृ० ५१।

पयादा¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्यादा'।

पयादा²—वि० पैदल। प्यादा।

पयान—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाण] गमन। जाना। यात्रा। रवानगी। उ०—अबर लगे हैं आनि करिके पयान प्रान चाहत चलन ये सदेसो लै सुजान को।—घनानंद, पृ० १९।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

पयाम—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'पैगाम'। उ०—आपहीं अपना जो ले आया पयाम। पाक नबी का है मुकद्दम कलाम।—कबीर मं०, पृ० ४६।

पयार—संज्ञा पुं० [सं० पलाल] दे० 'पयाल'। उ०—धान को गाँव पयार ते जानौ ज्ञान विषय रस भोरे।—सूर (शब्द०)।

पयाल¹—संज्ञा पुं० [सं० पाताल प्रा० पयाल] दे० 'पाताल'। उ०—सब सुख सरग पयाल के, तोल तराजू बाहि। हरि सुख एक पलक्क का, ता सम कह्या न जाइ।—संतबानी०, पृ० ७८९।

पयाल²—संज्ञा पुं० [सं० पलाल] धान, कोदो, आदि के सूखे डंठल जिसके दाने झाड़ लिए गए हों। पुराल।

मुहा०—पयाल गाहना या झाड़ना = (१) ऐसा श्रम करना जिसका कुछ फल न हो। व्यर्थ मिहनत करना। उ०—फिरि फिरि कहा पयारहि गाहे।—सूर (शब्द०)। (२) ऐसे की सेवा करना या ऐसे को घेरना जिससे कुछ मिलने की आशा न हो।

पयोगड—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पयोगल'।

पयोगल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ओला। २. द्वीप।

पयोग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञपात्र।

पयोघन—संज्ञा पुं० [सं०] ओला।

पयोज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। उ०—गिरीश के सीस पयोज चढ़े जगमोहन पावन तो सब अंग।—श्यामा०, पृ० १२६।

पयोजन्मा—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. मोथा।

पयोत्र—संज्ञा पुं० [सं० पौत्र] पौत्र। पोता। पुत्र का पुत्र। उ०—प्रजा पुन्य प्रगट्यो पुहुमि छहु दरसन की लाज। पेषत पुत्र पयोत्र मुख करो कोटि जुग राज।—रसरतन, पृ० १२।

पयोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। मेघ।

यौ०—पयोदसुहृद = मयूर। मोर।

२. मोथा। मुस्तक। ३. एक यदुवंशी राजा।

पयोदन—संज्ञा पुं० [पयस् + ओदन] दूधभात।

पयोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमार की अनुचरी. एक मातृका।

पयोदेव—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण।

पयोध—संज्ञा पुं० [सं० पयोधस्] दे० 'पयोधि'। उ०—परै पयोध जु अलप बुंद जल, सो कहो को पहचाने।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३३६।

पयोधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्तन। २. बादल। ३ नागरमोथा। ४. कसेरू। ५. तालाब। तड़ाग। ६. गाय का आयन। ७, नारियल। ८. मदार। अकौवा। ९. एक प्रकार की ऊख। १०. पर्वत। पहाड़। ११. कोई दुग्धवृक्ष। १२. दोहा छंद का ११वाँ भेद। १३. समुद्र। (डिं०)। १४. छप्पय छंद का २७वाँ भेद।

पयोधा—संज्ञा पुं० [सं० पयोधस्] १. जलाधार। २. समुद्र।

पयोधारागृह—संज्ञा पुं० [सं०] स्नानागार जिसमें नहाने के लिये धारा यंत्र (फौवारे) लगे हों [को०]।

पयोधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

पयोधिक—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

पयोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

पयोमुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पयोमुच्'।

पयोमुख—वि० [सं०] दूधपीता। दूधमुँहा (बच्चा)।

पयोमुच्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । २. मोथा ।

पयोर—संज्ञा पुं० [सं०] खैर का पेड़ ।

पयोरय—संज्ञा पुं० [सं०] जल की धारा । जल का वेग [को०] ।

पयोराशि—संज्ञा पुं० [सं०] जलराशि । समुद्र [को०] ।

पयोलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूधबिदारी कंद ।

पयोवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ । बादल । २. मोथा ।

पयोव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १. मत्स्यपुराण के अनुसार एक व्रत जिसमें एक दिन रात या तीन रात केवल जल पीकर रहना पड़ता है । २. भागवत के अनुसार कृष्ण का एक व्रत जिसमे बारह दिन दूध पीकर रहना और कृष्ण का स्मरण और पूजन करना होता है ।

पयोष्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विंध्याचल से निकलकर दक्षिण की ओर को बहनेवाली एक नदी ।

पयोष्णीजाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती नदी ।

परंच—अव्य० [सं० परञ्च] १. और भी । २. तो भी । परंतु । लेकिन ।

परंज—संज्ञा पुं० [सं० परञ्ज] १. तेल पेरने का कोल्हू । २ छूरी का फल । ३. फेन । ४ शक्र का खड्ग [को०] ।

परंजन—संज्ञा पुं० [सं० परञ्जन] (पश्चिम दिशा के स्वामी) वरुण ।

परंजय—संज्ञा पुं० [सं० परञ्जय] १. शत्रु को जीतनेवाला । २. वरुण का एक नाम ।

परंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० परञ्जा] उत्सवादि में उपकरणों की ध्वनि [को०] ।

परंतप[1]—वि० [सं० परन्तप] १. शत्रुओं को ताप देनेवाला । बैरियों को दुःख देनेवाला । २ जितेंद्रिय ।

परंतप[2]—संज्ञा पुं० १. चिंतामणि । २. तामस मनु के एक पुत्र ।

परंतु—अव्य० [सं० परं + तु] एक शब्द जो किसी वाक्य के साथ उससे कुछ अन्यथा स्थिति सूचित करनेवाला दूसरा वाक्य कहने के पहले लाया जाता है । पर । तो भी । किंतु । लेकिन । मगर । जैसे,—(क) वह इतना कहा जाता है परंतु नहीं मानता । (ख) जी तो नहीं चाहता है परंतु जाना पड़ेगा ।

परंद—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'परिंदा' [को०] ।

परंदा—संज्ञा पुं० [फा० परंद (= चिड़िया)] १. चिड़िया । पक्षी । २. एक प्रकार की हवादार नाव जो काश्मीर की झीलों में चलती है ।

परंपद—संज्ञा पुं० [सं० परम्पद] १. बैकुंठ । २ मोक्ष । ३ उच्च स्थान (को०) ।

परंपर—संज्ञा पुं० [सं० परम्पर] एक के पीछे दूसरा ऐसा क्रम । अनुक्रम । चला जाता हुआ सिलसिला । २. पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि । बेटा, पोता, परपोता आदि । वंश । संतति । ३. मृगमद । कस्तूरी ।

परंपरया—क्रि० वि० [सं० परम्परया] परंपरा द्वारा । परंपरा से । अनुक्रम से [को०] ।

परंपरा—संज्ञा स्त्री० [सं० परम्परा] १. एक के पीछे दूसरा ऐसा क्रम (विशेषतः कालक्रम) । अनुक्रम । पूर्वापर क्रम । चला आता हुआ सिलसिला । जैसे,—परंपरा से ऐसा होता आ रहा है ।

यौ०—**वंशपरंपरा** । **शिष्यपरंपरा** ।

२. वंशपरंपरा । संतति । औलाद । ३ बराबर चली आती हुई रीति । प्रथा । परिपाटी । जैसे,—हमारे यहाँ इसकी परंपरा नहीं है । ४. हिंसा । वध ।

परंपराक—संज्ञा पुं० [सं० परम्पराक] यज्ञार्थ पशुहनन । यज्ञ के लिये पशुओं का बध ।

परंपरागत—वि० [सं० परम्परागत] परंपरा से चला आता हुआ । जो सब दिन से होता आता हो । जिसे एक के पीछे दूसरा बराबर करता आया हो । जैसे, परंपरागत नियम ।

परंपरित—वि० [सं० परम्परित] परंपरायुक्त । परंपरागत । परंपरा पर आश्रित ।

परंपरित रूपक—संज्ञा पुं० [सं०] रूपक अलंकार का एक भेद जिसमें किसी का आरोप दूसरे के आरोप का कारण होता है ।

परंपरीण—वि० [सं० परम्परीण] परंपरा से प्राप्त । परंपरागत [को०] ।

पर[1]—वि० [सं०] १ दूसरा । अन्य । और । अपने को छोड़ शेष । स्वातिरिक्त । गैर । परलोक । उ०—पर उपदेश कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—**परपीड़न** । **परोपकार** ।

२. पराया । दूसरे का । जो अपना न हो । जैसे, पर द्रव्य, पर पुरुष, पर पीड़ा । ३. भिन्न । जुदा । अतिरिक्त । ४ पीछे का । उत्तर । बाद का । जैसे, पूर्व और पर । ५. जो सीमा के बाहर हो ।

यौ०—**परब्रह्म** ।

६. आगे बढ़ा हुआ । सबके ऊपर । श्रेष्ठ । ७. प्रवृत्त । लीन । तत्पर । जैसे, स्वार्थपर (केवल समास मे) ।

पर[2]—प्रत्य० [सं० उपरि] सप्तमी या अधिकरण कारक का चिह्न । जैसे—(क) वह घर पर नहीं है । (ख) कुरसी पर बैठो ।

पर[3]—संज्ञा पुं० [सं० पर] १ शत्रु । बैरी । दुश्मन ।

यौ०—**परंतप** ।

२. शिव । ३. ब्रह्म । ४. ब्रह्मा । ५. मोक्ष । ६. न्याय मे जाति या सामान्य के दो भेदो में से एक । द्रव्य । गुण और कर्म की वृत्ति या सत्ता । ७ ब्रह्मा की आयु (को०) ।

पर[4]—अव्य० [सं० परम्] १ पश्चात् । पीछे । जैसे,—इसपर वे उठकर चले गए । ४ एक शब्द जो किसी वाक्य के साथ उससे अन्यथा स्थिति सूचित करनेवाला वाक्य के कहने के पहले लाया जाता है । परंतु । किंतु । लेकिन । तो भी । जैसे,—(क) मैंने उसे बहुत समझाया पर वह नहीं मानता । (ख) तबीयत तो नहीं अच्छी है पर जायँगे ।

पर[5]—संज्ञा पुं० [फा०] चिड़ियों का डैना और उसपर के घुए या रोएँ । पंख । पक्ष ।

मुहा०—**पर कट जाना** = शक्ति या बल का आधार न रह जाना । अशक्त हो जाना । कुछ करने धरने लायक न रह जाना ।

पर काट देना = अशक्त कर देना। कुछ करने धरने लायक न रखना। पर कैंच करना = पंख कतरना। (कबूतरबाज)। पर जमना = (१) पर निकलना। (२) जो पहले सीधा सादा रहा हो उसे शरारत सूझना। धूर्तता, चालाकी, दुष्टता आदि पहले पहल आना। (कहीं जाते हुए) पर जलना = (१) हिम्मत न होना। साहस न होना। (२) गति न होना। पहुँच न होना। जैसे,—वहाँ जाते बड़े बड़ों के पर जलते हैं, तुम्हारी क्या गिनती है? पर झाड़ना = (१) पुराने परों का गिराना। (२) पख फटफटाना। डैनों को हिलाना। पर टूटना = दे० 'पर जलना'। पर टूट जाना = दे० 'पर कट जाना'। पर न मारना = पैर न रख सकना। जा न सकना। फटक न सकना। चिड़िया पर नहीं मार सकती = कोई जा नहीं सकता। किसी की पहुँच नहीं हो सकती। पर निकालना = (१) पखों से युक्त होना। उड़ने योग्य होना। (२) बढ़कर चलना। इतराना। अपने को कुछ प्रकट करना। पर और बाल निकलना = (१) सीधा सादा न रहना। बहुत सी बातों को समझने बूझने लगना। कुछ कुछ चालाक होना। (२) उपद्रव करना। ऊधम मचाना। पर बाँध देना = उड़ने की शक्ति न रहने देना। बेबस कर देना।

परई†—संज्ञा स्त्री० [सं० पार (=कटोरा, प्याला)] दीए के आकार का पर उससे बड़ा एक मिट्टी का बरतन। पारा। सराव।

परकट†—वि० [सं० प्रकट] दे० 'प्रकट'। उ०—अपनयँ धन हे धनिक घर गोए। पग्क रतन परकट कर कोए।—विद्यापति, पृ० १४४।

परकटा—वि० [फ़ा० पर + हिं० कटना] जिसके पर या पंख कटे हों। जैसे, परकटा कबूतर।

परकनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० परचना] १. परचना। हिलना। मिलना। २. जो बात दो एक बार अपने अनुकूल हो गई हो या जिस बात को कई बार बे रोकटोक कर पाए हों उसकी ओर प्रवृत्त होना। धड़क खुलना। अभ्यास पड़ना। चसका लगना। उ०—माखन चोरी सों अरी परकि रह्यो नँदलाल। चोरन लाग्यो अब लखौ नेहिन को मनमाल।—रसनिधि (शब्द०)।

परकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु की संपत्ति आदि लूटना।

परकलत्र—संज्ञा पुं० [सं०] अन्य व्यक्ति की स्त्री। दूसरे की पत्नी [को०]।

परकसनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० परकासना] १. प्रकाशित होना। जगमगाना। २. प्रकट होना।

परकाज—संज्ञा पुं० [हिं० पर+काजी (=काम करनेवाला)] दूसरे का काम। परकारज।

परकाजी—वि० [हिं० पर+काज] दूसरों का कार्यसाधन करनेवाला। परोपकारी।

परकान—संज्ञा पुं० [हिं० पर+कान] तोप का कान या मूठ। तोप का वह स्थान जहाँ रंजक रखी जाती है या बत्ती दी जाती है। (लश०)।

परकाना†—क्रि० स० [हिं० परकना] १. परचाना। हिलाना। मिलाना। २. (किसी को) कोई लाभ पहुँचाकर या कोई बात बेरोकटोक करने देकर उसकी ओर प्रवृत्त करना। धड़क खोलना। अभ्यास डालना। चसका लगाना।

परकाय—संज्ञा पुं० [सं०] अन्य का शरीर। दूसरे का शरीर [को०]।

परकायप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी आत्मा को दूसरे के शरीर में डालने की क्रिया, जो योग की एक सिद्धि समझी जाती है।

परकार[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वृत्त या गोलाई खींचने का औजार जो पिछले सिरो पर परस्पर जुड़ी हुई दो शलाकाओं के रूप का होता है।

परकारⓅ[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रकार] दे० 'प्रकार'। उ०—(क) अपना बचन नहीं परकार जे अगिरिअ से देलहि नितार। विद्यापति, पृ० २०९। (ख) चपरि चखनि ते जो जल आवै। इहि परकारि तिया जु जनावै।—नंद० ग्रं०, पृ० १५१।

परकारना†—क्रि० सं० [हिं० परकार+ना (प्रत्य०)] १. परकार से वृत्त आदि बनाना। २. चारो ओर फेरना। आवेष्ठित करना। उ०— दसहूँ दिसति गई परकारी। देख्यौ सबै भयानक भारी।—छत्रप्रकाश (शब्द०)।

परकाल—संज्ञा पुं० [फा० परकार] दे० 'परकार'।

परकाला[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्राकार या प्रकोष्ठ] १. सीढ़ी। जीना। २. चौखट। देहली। दहलीज।

परकाला[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० परगालह्] १. टुकड़ा। खंड। उ०—सुंदर जीव दया करै न्योता मानै नाहिं। माया छुवै न हाथ सौं परकाला ले जाहिं।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३५। २. शीशे का टुकड़ा। ३. चिनगारी। अग्निकण।

मुहा०—आफत का परकाला = गजब करनेवाला। अद्भुत शक्तिवाला। प्रचंड या भयंकर मनुष्य।

परकासⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रकाश] दे० 'प्रकाश'। उ०— गुर आए घन गरज कर शब्द किया परकास। बीज पड़ा था भूमि में अब भई फूल फल आस।—दरिया० बानी, पृ० १।

परकासकⓅ—वि० [सं० प्रकाशक] दे० 'प्रकाशक'। उ०—अस अध्यातम दीप जु कोई। बुध्यादिक परकासक सोई।—नंद० ग्रं०, पृ० २२९।

परकासनाⓅ—क्रि० स० [सं० प्रकाशन] १. प्रकाशित करना। उ०—जो कछु ब्रह्म ब्रह्म सुख आहि। बिदुषनि कौं परकासत ताहि।—नंद० ग्रं०, पृ० २६०। २ प्रकट करना।

परकासिकⓅ—वि० [सं० प्रकाशक] दे० 'प्रकाशक'। उ—सबन के मैना प्रान परकासिक ताके ढिग, रच्यों चलोड़ा छाजै, छबि कही न जाई।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४०।

परकितिⓅ‡—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रकृति] दे० 'प्रकृति'।

परकियⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० परकीया] दे० 'परकीया'। उ०— दीपग फीके फूल दैलाने। परकिय तियनि के हिय

अकुलाने ।—नंद० ग्रं०, पृ० १४२ ।

परकिया—संज्ञा स्त्री० [सं० परकीय] दे० 'परकीया'। उ०—निघरक भई कहति इमि कहिये। सा परकिया लच्छिता कहिए। —नंद० ग्रं०, पृ० १४६।

परकीय—वि० [सं०] पराया। दूसरे का। बेगाना।

परकीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] पति के अतिरिक्त परपुरुष की प्रेमपात्रा या पर पुरुष से प्रीति संबंध रखनेवाली स्त्री। नायिकाओं के दो प्रधान भेदों में से एक।

विशेष—परकीया दो प्रकार की कही गई हैं। अनूढा (अविवाहित) और ऊढा (विवाहित)। स्वेच्छापूर्वक परपुरुष से प्रेम करनेवाली परकीया को 'उद्बुद्धा' और परपुरुष की चतुराई या प्रयत्न से उसके प्रेम में फँसनेवाली को 'उद्बोधिता' कहते हैं। परकीया के छह और भेद किए गए हैं—गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना और मुदिता। (इनके विवरण प्रत्येक शब्द के अंतर्गत देखो।)

परकोरतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रकृति] दे० 'प्रकृति'।

परकीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूसरे का यश। उ०—हमारा उच्चपद का आदरणीय स्वभाव उस परकीर्ति को सहन न कर सका। —भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २६८।

परकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दूसरे की कृति। दूसरे का किया हुआ काम। २. दूसरे की कृति का वर्णन। ३. कर्मकांड में दो परस्पर विरुद्ध वाक्यों की स्थिति।

परकोटा—संज्ञा पुं० [सं० परिकोट] १. किसी गढ़ या स्थान की रक्षा के लिये चारों ओर उठाई हुई दीवार। बचाव या सुरक्षा के लिये मिट्टी या पत्थर आदि की दीवार। २ पानी आदि की रोक के लिये खड़ा किया हुआ धुस। बाँध। चह।

परक्खनाⓅ—क्रि० स० [हिं० परखना] दे० 'परखना'। उ०—गुणी परक्खवा गया उखार बीण ओपमा। प्रलै क ज्वाल पस्सरे, अनंत जीम आतरे।—रा० रू०, पृ० ८४।

परक्कमण—संज्ञा पुं० [सं० परिक्रमण] परिक्रमा। प्रदक्षिणा। उ०—परक्कमण तिण दे पग परखे, जस यम जीह अपार जपे।—रघु० रू०, पृ० १४१।

परक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पराया खेत। २. दूसरे का शरीर। ३. पराई स्त्री। दूसरे की भार्या।

परख—संज्ञा स्त्री० [सं० परीक्षा, प्रा० परिक्खा] १. गुणदोष स्थिर करने के लिये अच्छी तरह देखभाल। जाँच। परीक्षा। जैसे,—अभी उस सोने की परख हो रही है। २. गुणदोष का ठीक ठीक पता लगानेवाली दृष्टि। गुणदोष का विवेचन करनेवाली अंतःकरण वृत्ति। कोई वस्तु भली है या बुरी यह जान लेने की शक्ति। पहचान। जैसे,—(क) तुम्हें सोने की परख नहीं है। (ख) उसे आदमी की परख नहीं है।

क्रि० प्र०—होना।

परखचा—संज्ञा पुं० [हिं०] खंड। टुकड़ा। विभाग। जैसे, परखचे उड़ाना = धज्जियाँ उड़ाना।

परखना[१]—क्रि० स० [सं० परीक्षण, प्रा० परीक्खण] १. गुणदोष स्थिर करने के लिये अच्छी तरह देखना भालना। परीक्षा करना। जाँच करना। जैसे, रत्न परखना, सोना परखना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. अच्छी तरह देख भालकर गुणदोष का पता लगाना। भला और बुरा पहचानना। कौन वस्तु कैसी है यह ताड़ना। जैसे,—मैं देखते ही परख लेता हूँ कि कौन कैसा है।

परखना[२]—क्रि० स० [सं० पर+ईक्षण, हिं० परेखना] प्रतीक्षा करना। इंतजार करना। आसरा देखना।

परखवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'परखाना'।

परखवैया—संज्ञा पुं० [हिं० परख+वैया (प्रत्य०)] परखनेवाला। जाँचनेवाला। पहचाननेवाला।

परखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० परख+आई (प्रत्य०)] १. परखने का काम। २. परखने की मजदूरी।

परखाना, परखावनाⓅ—क्रि० स० [हिं० परखना का प्रे० रूप] परखने का काम दूसरे से कराना। परीक्षा कराना। जँचवाना। उ०—कहि ठाकुर औगुन छोड़ि सबै परवीनन कै परखावने हैं।—ठाकुर०, पृ० २५। २. कोई वस्तु देते या सौंपते समय उसे गिनकर या उलट पलटकर दिखा देना। सहेजवाना। सँभलवाना।

परखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० परख+ई (प्रत्य०)] लोहे का बना हुआ नालीदार और नुकीला एक उपकरण जिससे बंद बोरों में से गेहूँ, चावल आदि परखने के लिये निकाला जाता है।

परखुरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पखड़ी'।

परखैया—संज्ञा पुं० [हिं० परख+ऐया(प्रत्य०)] परखनेवाला। उ०—बिन परखैया चतुरजौहरी किसको इते दिखाऊँ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १८६।

परग—संज्ञा पुं० [सं० पदक] पग। डग। कदम। उ०—तीनि परग तीनो पुर भयऊ।—कबीर सा०, पृ० ४०८।

परगट†—वि० [सं० प्रकट] दे० 'प्रगट'।

परगटनाⓅ[१]—क्रि० अ० [हिं० परगट] प्रगट होना। खुलना। जाहिर होना।

परगटना[२]—क्रि० स० प्रकट करना। जाहिर करना।

परगन्—संज्ञा पुं० [फ़ा० परगनह्] दे० 'परगना'। उ०—ब्रज परगन सरदार महरि तू ताकी करत नन्हाई।—सूर (शब्द०)।

परगना—संज्ञा पुं० [फ़ा०। मि० सं० परिगण (= घर)] एक भूभाग जिसके अंतर्गत बहुत से ग्राम हों। जमीन का वह हिस्सा जिसमें कई गाँव हों।

विशेष—आजकल एक तहसील के अंतर्गत कई परगने होते हैं। बड़े परगने कई टप्पों में बँटे होते हैं।

यौ०—परगनाधीश। परगनाहाकिम = परगने की देखभाल करनेवाला प्रधान अधिकारी। परगनेदार = परगने का अधिकारी।

परगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रग्रहणी] दे० 'परगहनी'।

परगसना(पु)—क्रि० अ० [सं० **प्रकाशन**] प्रकाशित होना। प्रकट होना।

परगह—संज्ञा पुं० [सं० **परिग्रह**] दे० 'परिगह'। उ०—परगह सह परवार अरी सहमार उडाएा।—रघु० रू०, पृ० ४८।

परगहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **प्रग्रहण**] नली के आकार का सुनारों का एक औजार जिसमे करछी की सी डाँडी लगी होती है। इस नली में तेल देकर उसमें चाँदी या सोने की गुल्लियाँ ढालते है। परगनी।

परगाछा—संज्ञा पुं० [हिं० पर (= दूसरा)+गाछ (=पेड़)] एक प्रकार के पौधे जो प्राय. गरम देशो मे दूसरे पेड़ो पर उगते हैं।

विशेष—इनकी पत्तियाँ लंबी और खड़ी नसों की होती हैं। फूल सुंदर तथा अद्भुत वर्ण और आकृति के होते हैं। एक ही फूल मे गर्भकोश और परागकेसर दोनो होते हैं। परगाछे की जाति के बहुत से पौधे जमीन पर भी होते हैं और फूलो की सुंदरता के लिये बगीचों में प्राय. लगाए जाते हैं। ऐसे पौधे दूसरे पेड़ों की डालियो आदि पर उगते अवश्य हैं, पर सब परपुष्ट (दूसरे पेड़ों के रस धातु से पलनेवाले) नहीं होते। परगाछे की कोई टहनी या गाँठ भी बीज का काम देती है, उससे भी नया पौधा अंकुर फोटकर (गन्ने की तरह) निकल आता है। परगाछे को संस्कृत में बंदाक और हिंदी में बाँदा भी कहते हैं।

परगाछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **परगाछा**] अमरबेल। आकाशबौर।

परगाढ़(पु)—वि० [सं० **प्रगाढ़**] दे० 'प्रगाढ़'।

परगामी—वि० [सं० **परगामिन्**] [वि० स्त्री० परगामिनी] १ अन्य के साथ गमन करनेवाला। २. दूसरे के लिये हितकर [को०]।

परगास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **प्रकाश**] दे० 'प्रकाश'। उ०—भला है अस्थान अम्मर, जोति है परगास।—जग० बानी, पृ० ४।

परगासना[१]—क्रि० अ० [सं० **प्रकाशन**] प्रकाशित होना।

परगासना[२]—क्रि० स० प्रकाशित करना।

परगुण—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे के लिये हित (को०)।

परघट(पु)†—वि० [हिं० **परगट, प्रगट**] दे० 'प्रगट', 'प्रकट'। उ०—दरिया परघट नाम बिन, कहो कौन आयो देख।—दरिया० बानी, पृ० ७।

परघनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **परगनी**] दे० 'परगहनी'।

परचंड(पु)—वि० [सं० **प्रचण्ड**] दे० 'प्रचंड'।

परचई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'परचै'।

परचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रु की सेना। २. शत्रु का राज्य और वर्ग। ३. शत्रु द्वारा चढ़ाई (को०)।

परचत(पु)†—संज्ञा [सं० **परिचित**] जान पहचान। जानकारी। उ०—कब लगि फिरिहै दीन भयो। सुरत सरित भ्रम भँवर पर्यो तन मन परचत न लह्यो।—सूर (शब्द०)।

परचना—क्रि० अ० [सं० **परिचयन**] १. किसी को इतना अधिक जानबूझ लेना कि उससे व्यवहार करने में कोई संकोच या खटका न रहे। हिलना मिलना। घनिष्टता प्राप्त करना। जैसे,—(क) बच्चा जब परच जायगा तब तुम्हारे पास रहने लगेगा। (ख) परच जाने पर यह तुम्हारे साथ साथ फिरेगा। २. जो बात दो एक बार अपने अनुकूल हो गई हो या जिस बात को दो एक बार बे रोकटोक मनमाना करने पाए हों उसकी ओर प्रवृत्त रहना। चसका लगना। धड़क खुलना। टेव पड़ना। जैसे,—इसे कुछ न दो, परच जायगा तो नित्य आया करेगा।

संयो० क्रि०—जाना।

३. व्यक्त होना। प्रगट होना। पहचाने जाना।

परचर—संज्ञा पुं० [देश०] बैलो की एक जाति, जो अवध के खीरी जिले के आसपास पाई जाती है।

परचा[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा० **परचह्**] १. कागज का टुकड़ा। चिट। कागज। पत्र। २. पुरजा। खत। रुक्का। चिट्ठी। ३. परीक्षा में आनेवाला प्रश्नपत्र। जैसे,—इम्तहान में हिसाब का परचा बिगड़ गया।

परचा[२]—संज्ञा पुं० [सं० **परिचय**] १. परिचय। जानकारी। उ०—वहाँ हाल तेरो दास का निस दिन दुख में जोय। पिव सेती परचो नहीं बिरह सतावै मोय।—दरिया० बानी, पृ० ९३।

मुहा०—परचा देना = ऐसा लक्षण या चिह्न बताना जिससे लोग जान जायँ। नाम ग्राम बताना।

२. परख। परीक्षा। जाँच। ३. प्रमाण। सबूत।

मुहा०—परचा माँगना। (१) प्रमाण या सबूत देने के लिये कहना। (२) किसी देवी देवता से अपनी शक्ति दिखाने को कहना। (ओझा)।

परचा[३]—संज्ञा पुं० [देश०] जगन्नाथ जी के मंदिर का वह प्रधान पुजारी जो मंदिर की आमदनी और खर्च का प्रबंध करता और पूजासेवा आदि की देखरेख रखता है।

परचाधारी—वि० [सं० **प्रत्ययधारिन्**] प्रधान। श्रेष्ठ। परचावाले। उ०—नारायण दास जी तपस्वी और परचाधारी महात्मा थे।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ७४।

परचाना—क्रि० स० [हिं० **परचना**] किसी से इतना अधिक लगाव पैदा करना कि उससे व्यवहार करने में कोई संकोच या खटका न रहे। हिलाना। मिलाना। आकर्षित करना। जैसे, बच्चे को परचाना, कुत्ता परचाना।

संयो० क्रि०—लेना।

२. दो एक बार किसी के अनुकूल कोई बात करके या होने देकर उसको इस बात की ओर प्रवृत्त करना। धड़क खोलना। चसका लगाना। टेव डालना। जैसे,—इन्हें कुछ देकर परचाओ मत, नहीं तो बराबर तंग करते रहेंगे।

संयो० क्रि०—देना।

परचाना(पु)[२]—क्रि० स० [सं० **प्रज्वलन**] प्रज्वलित करना। जलाना। उ०—चिनगि जोति करसी ते भागै। परम तंतु परचावै लागै।—जायसी (शब्द०)।

परचार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **प्रचार**] दे० 'प्रचार'।

परचारगी—संज्ञा स्त्री० [सं० **परिचर्या**, हिं० **परिचार, परचार+गी**

(प्रत्य०)] सेवा। परिचर्या उ०—सो श्री गुसाँई जी की परचारणी और टहल करती।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१५।

परचारनाⓅ—क्रि० स० [सं० प्रचार] दे० 'प्रचारना'। उ०—कपि बलु देखि सकल हिय हारे। उठा आपु कपि के परचारे।—मानस, ६।३४।

परचित्तपर्यायज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अपने चित्त में दूसरे के चित्त का भाव जानना (बौद्ध)।

परची—संज्ञा स्त्री० [हिं० परचा] दे० 'परचा'।

परचून—संज्ञा पुं० [सं० पर (= अन्य, और) + चूर्ण (= आटा)] आटा, चावल, दाल, नमक, मसाला आदि भोजन का फुटकर सामान। जैसे, परचून की दुकान। उ०—नौनीले पन्ने बग दून। चारि गाँठि चूनी परचून।—अर्ध०, पृ० २७।

परचूनी¹—संज्ञा पुं० [हिं० परचून] परचूनवाला। आटा, दाल, नमक, आदि बेचनेवाला बनिया। मोदी।

परचूनी²—संज्ञा स्त्री० परचून या परचूनी का काम या भाव।

परचैⓅ—संज्ञा पुं० [सं० परिचय] दे० 'परिचय'।

परचै—संज्ञा पुं० [सं० परिचय] दे० 'परिचय', 'परचा'। उ०—परचै चक्र काया में सोई। जो ऊगै तौ सब सुख होई।—कबीर सा०, पृ० ८७६।

परचौ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परिचय'।

परच्छद—वि० [सं० परच्छन्द] पराधीन।

परच्छन्दानुवर्ती—वि० [सं० परच्छन्दानुवर्तिन्] परतंत्र। अस्वाधीन। पराधीन [को०]।

परछती—संज्ञा स्त्री० [सं० परि (= अधिक, ऊपर) + छत (= पटाव)] १. घर या कोठरी के भीतर दीवार से लगाकर कुछ दूर तक बनाई हुई पाटन जिसपर सामान रखते हैं। टाँड़। पाटा। २. हलका छप्पर जो दीवारों पर रख दिया जाता है। फूस आदि की छाजन।

परछन—संज्ञा स्त्री० [सं० परि+अर्चन] विवाह की एक रीति जिसमें बारात द्वार पर आने पर कन्या पक्ष की स्त्रियाँ वर के पास जाती हैं और उसे दही, अक्षत का टीका लगाती, उसकी आरती करती तथा उनके ऊपर से मूसल, बट्टा आदि घुमाती हैं।

परछना—क्रि० स० [हिं० परछन] द्वार पर बारात लगने पर कन्या पक्ष की स्त्रियों का वर की आरती आदि करना परछन करना। उ०—निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत। बधुन सहित सुत परछि सब चली लिवाइ निकेत।—तुलसी (शब्द०)।

परछहियाँ†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिच्छाया] छाया। परछाईं। उ०—खेलत ललित खेल बन महियाँ। चलत चहन लागे परछहियाँ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७५।

परछाँइ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'परछाईं' उ०—सखियन में अति हित् बिसाखा जनु तन की परछाँइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६०।

परछा¹—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिच्छद] १. वह कपड़ा जिससे तेली कोल्हू के बैल की आँखों में अँधोटी बाँधते हैं। २. जुलाहों की नली जिसपर वे सूत लपेटते हैं। सूत की फिरकी। घिरनी।

परछा²—संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० अल्पा० परछी] १ बड़ी बटलोई। बड़ा देग। २. कड़ाई। कढ़ाई। ३ मिट्टी का मझोला बरतन।

परछा³—संज्ञा पुं० [सं० परिच्छेद] बहुत सी वस्तुओं के घने समूह में से कुछ के निकल जाने से पड़ा हुआ अवकाश। विरलता। छीड़। २. घनेपन या भीड़ की कमी। भीड़ का छटाव।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३ समाप्ति। निबटेरा। चुकाव। फैसला।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

परछाईं—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिच्छाया] १ प्रकाश के मार्ग में पड़नेवाले किसी पिंड का आकार जो प्रकाश से भिन्न दिशा की ओर छाया या अंधकार के रूप में पड़ता है। किसी वस्तु की आकृति के अनुरूप छाया जो प्रकाश के अवरोध के कारण पड़ती है। छायाकृति। जैसे,—लड़का दीवार पर अपनी परछाईं देखकर डर गया।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—परछाईं से डरना या भागना = (१) बहुत डरना। अत्यंत भयभीत होना। (२) पास तक आने से डरना। (३) दूर रहने की इच्छा करना। कोई लगाव रखना न चाहना (घृणा या आशंका से)।

२ जल, दर्पण आदि पर पड़ा हुआ किसी पदार्थ का पूरा प्रतिरूप। प्रतिबिंब। अक्स।

क्रि० प्र०—पड़ना।

परछालनाⓅ—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन] जल से धोना। पखारना।

परछाहींⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'परछाईं'। उ०—उन्होने कृष्ण के हृदय में अपनी परछाहीं देखकर यह समझ लिया कि इनके हृदय में कोई दूसरी गोपी बसती है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ११६।

परछे—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'परचे', 'परचै'। उ०—दरिया परछे नाम के, दूजा दिया न जाय।—दरिया० बानी, पृ० ३१।

परजंक—संज्ञा पुं० [सं० पर्यंक] उ०—उतरत कहुँ परजंक तें पग द्वै धरत ससंक। कुम्हलान्यौं अति ही परत आतप बदन मयंक।—स० सप्तक, पृ० ३५४।

परजंतⓅ—अव्य० [सं० पर्यन्त] १. पर्यंत। तक। उ०—ब्रह्मलोक परजंत फिरयौ तहँ देव मुनीजन साखी।—सूर०, १।१०।

परज¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पराजिका] एक रागिनी जो गांधार, धनाश्री और मारू के मेल से बनी हुई मानी जाती है। इसके गाने का समय रात ११ दंड से १५ दंड तक है। स्वर इसमें ऋषभ और धैवत कोमल, तथा मध्यम तीव्र लगता है। यह हिंडोल राग की सहचरी मानी जाती है।

परज[2]—वि० [सं०] परजात । दूसरे से उत्पन्न ।

परज[2]—संज्ञा पुं० कोकिल ।

परजनⓟ[1]—संज्ञा पुं० [सं० परिजन] दे० 'परिजन' । उ०—पाग मिरजई पहिनि, टेकि मसनद परजन पर ।—प्रेमघन० भा० १, पृ० १४ ।

परजन[2]—संज्ञा पुं० [देश०] डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जो राजपूताने, पंजाब और अफगानिस्तान की जोती बोई हुई भूमि में प्रायः पाया जाता है । इसमें पीले रंग के बहुत छोटे छोटे फूल लगते हैं ।

परजन[3]—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजन का उलटा । जो आत्मीय न हो ।

परजरनाⓟ—क्रि० अ० [सं० प्रज्वलन] १. जलना । दहकना । सुलगना । २. क्रुद्ध होना । कुढ़ना । उ०—सुनत वचन रावन परजरा । जरत महानल जनु घृत परा ।—तुलसी (शब्द०) । ३. ईर्ष्या द्वेष से संतप्त होना । डाह करना ।

परजन्यⓟ—संज्ञा पुं० [सं० पर्जन्य] दे० 'पर्जन्य' । उ०—पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।—घनानंद, पृ०

परजवट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परजोट' ।

परजस्तापह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्यस्तापह्नुति] दे० पर्यस्तापह्नुति' । उ०—धर्म और में राखिए धर्मी सांचु छपाय । परजस्तापह्नुति कहत ताहि बुद्धि सरसाय ।—मति० ग्रं०, पृ० ३८० ।

परजा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रजा] १. प्रजा । रैयत । २. आश्रित जन । काम धंधा करनेवाला । जैसे, नाई, बारी, धोबी इत्यादि । ३. जमींदार की जमीन पर बसनेवाला या खेती आदि करनेवाला । असामी ।

परजात[1]—वि० [सं०] दूसरे से उत्पन्न । परज ।

परजात[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोकिल । कोयल । २. दूसरी जाति का मनुष्य । दूसरी बिरादरी का आदमी । जैसे,—परजात को न्योता देने का क्या काम ?

परजाता—संज्ञा पुं० [सं० परिजात] मझोले आकार का एक पेड़ जो भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र होता है । हरसिंगार ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पाँच छह अंगुल लंबी और चार अंगुल चौड़ी होती हैं । ये आगे की ओर बहुत नुकीली होती हैं और इनके किनारे नीम की पत्ती के किनारे की तरह कुछ कुछ कटावदार होते हैं । यह पेड़ फूलों के लिये लगाया जाता है जो गुच्छों में लगते हैं । फूल छोटे छोटे और डाँड़ीदार होते हैं । डाँड़ी का रंग लाल या नारंगी और दलों का रंग सफेद होता है । सूखी हुई डाँड़ियों को उबालकर पीला रंग निकाला जाता है । परजाता शरद ऋतु में फूलता है । फूल बराबर झड़ते रहते हैं, पेड़ में कम ठहरते हैं । पत्तियाँ दवा के काम आती हैं और बहुत गरम होती हैं । ज्वर में प्रायः लोग परजाते की पत्ती देते हैं । इसे हरसिंगार भी कहते हैं ।

परजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूसरी जाति ।

परजापति, परजापती†—संज्ञा पुं० [सं० प्रजापति] १. राजा । नृपति । २. कुंभकार । उ०—गुरु ज्ञाता परजापती सेवक माटी रूप । रज्जब रज सूँ फेरि करि घड़िले कुंभ अनूप ।—रज्जब०, पृ० १९ ।

परजायⓟ—संज्ञा पुं० [सं० पर्याय] दे० 'पर्याय' ।

परजौट—संज्ञा पुं० [हिं० परजा + औट या औत (प्रत्य०)] १. घर बनाने के लिये सालाना किराए पर जमीन लेने देने का नियम । जैसे,—यह जमीन मैंने परजौट पर ली है । २ वह सालाना कर जो मकान बनाने के लिये ली हुई जमीन पर लगे

परठनाⓟ‡—क्रि० अ० [सं० प्र + स्थापन] बनना । निर्मित होना । स्थापित होना । उ०—साल्ह चलंतइ परठिया आँगन वीखड़ियाँह । मो मई हियइ लगाड़ियाँ, भरि भरि मूठड़ियाँह ।—ढोला०, दू० ३६६ ।

परणनाⓟ†—क्रि० स० [सं० परिणय] ब्याहना । विवाह करना । परिणय करना । उ०—परण पधारे राम जीत दुजराजनै । तुरत करीजे त्यार सौंमिलो साजनै ।—रघु० रू०, पृ० ९३ ।

परणानाⓟ†—क्रि० स० [सं० परिणय] विवाह कराना । ब्याह कराना । उ०—बारह बहतई आपणइ, कुँवर परणावो, सोभउ वीद ।—वी० रासो, पृ० ६ ।

परतंगण—संज्ञा पुं० [सं० परतङ्गण] महाभारत में वर्णित एक देश का प्राचीन नाम ।

परतंगीⓟ—वि० [सं० प्रतिज्ञा] प्रतिज्ञावाला । उ०—कहा कहौं हरि केतिक तारे, पावन पद परतंगी ।—सूर०, १।२१ ।

परतंचा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रत्यञ्चा] दे० 'प्रत्यंचा' । उ०—इसका दुबला शरीर काम की परतंचा उतारी हुई कमान है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८१ ।

परतंतरⓟ—वि० [सं० परतन्त्र] पराधीन । परतंत्र । उ०—ओर सबै दुख भरे सरे अंतर ही अंतर । कालकूट से करे परे छिन छिन परतंतर ।—नंद० ग्रं०, पृ० २०५ ।

परतंत्र[1]—वि० [सं० परतन्त्र] पराधीन । परवश ।

परतंत्र[2]—संज्ञा पुं० १. उत्तम शास्त्र । २. उत्तम वस्त्र ।

परतंत्र द्वैधीभाव—संज्ञा पुं० [सं० परतन्त्र द्वैधीभाव] कामंदक के अनुसार दो प्रबल और परस्पर विरोधी राज्यों के बीच में रहकर और किसी एक राज्य से कुछ धन या वार्षिक वृत्ति पाकर दोनों में मेल बनाए रखना जैसे, युरोपीय महायुद्ध के पहले अफगानिस्तान की स्थिति परतंत्र द्वैधीभाव की थी, पर युद्ध के पीछे अब स्वतंत्र द्वैध भाव की स्थिति है ।

परतः—अव्य० [सं० परतस्] १. दूसरे से । अन्य से । २. पर से । शत्रु से । पश्चात् । पीछे । ४. परे । आगे ।

परतःप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] जो स्वतःप्रमाण न हो । जिसे दूसरे प्रमाणों की अपेक्षा हो । जो दूसरे प्रमाणों के अनुकूल होने पर ही सबूत में कहा जा सके ।

परत—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्र, हिं० पत्तर या सं० पटल] १, मोटाई का फैलाव जो किसी सतह के ऊपर हो । स्तर । तह । जैसे,—

इसपर गीली मिट्टी की एक परत चढ़ा दो। उ०—बालू की परत पर परत जमने से ये चट्टानें बनी हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)। २. लपेटी जा सकनेवाली फैलाव की वस्तुओं (जैसे, कागज, कपड़ा, चमड़ा, इत्यादि) का इस प्रकार का मोड़ जिससे उनके भिन्न भिन्न भाग ऊपर नीचे हो जायें। तह। जैसे,—इस कपड़े को परत लगाकर रख दो।

क्रि॰ प्र॰—लगाना।

३. कपड़े, कागज आदि के भिन्न भिन्न भाग जो जोड़ने से नीचे ऊपर हो गए हों। तह।

परतक†—क्रि॰ वि॰ [सं॰ प्रत्यक्ष, हिं॰ परतच्छ, परतछ, परतख] सामने। प्रत्यक्ष। समक्ष। उ०—चांपि परतक कटक चलाया, ऊपरि खान तणे फिर आया।—रा० रू०, पु० २८९।

परतख—क्रि॰ वि॰ [सं॰ प्रत्यक्ष] प्रत्यक्ष। रूबरू। उ०—जिम सुपनंतर पामियउ तिम परतख पामेसि। सज्जन मोती हार ज्यूं कंठा ग्रहण करेसि।—ढोला०, दू० ५१३।

परतच्छ(पु)—वि॰ [सं॰ प्रत्यक्ष] दे॰ 'प्रत्यक्ष'। उ०—अनुमान साक्षी रहित होत नहीं परमान। कह तुलसी परतच्छ जो सो कहु अमर को आन।—स० सप्तक, पु० ४०।

परतछ—वि॰ [सं॰ प्रत्यक्ष] दे॰ 'प्रत्यक्ष'। उ०—ताके आगे कहा मिसिर का अरबी को बल। इन सो सपनहुँ बैर किए पाए परतछ फल।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पु० ८०९।

परतछि(पु)—क्रि॰ वि॰ [सं॰ प्रत्यक्ष] दे॰ 'प्रत्यक्ष'। उ०—परतछि आनि कै उषा मिलाई।—नंद ग्रं०, पु० १२८।

परतल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पट (= वस्त्र) + तल (= नीचे)] लादनेवाले घोड़े की पीठ पर रखने का बोरा या गून।

यौ॰—परतल का टट्टू = लद्दू घोड़ा।

परतला—संज्ञा पुं॰ [सं॰ परितन (= चारों ओर खींचा हुआ)] चमड़े या मोटे कपड़े की चौड़ी पट्टी जो कंधे से लेकर कमर तक छाती और पीठ पर से तिरछी होती हुई आती है और जिसमें तलवार लटकाई जाती है तथा कारतूस आदि रखे जाते हैं। उ०—दूजे पैसावरी परतला परि मन मोहन।—प्रेमघन०, भा० १, पु० १३।

परतली, परतल्ली—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ परतला] दे॰ 'परतला'। उ०—कारतूसों की परतल्ली उनके कंधों पर थी।—इद्र०, पृ० २३।

परतष†—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'प्रत्यक्ष'। उ०—औ दरपन चित्रावलि केरा। परतष देख कुँअर जेहि हेरा।—चित्रा०, पु० ११०।

परता—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ परना] दे॰ 'पड़ता'।

परताजना—संज्ञा पुं॰ [देश॰] सोनारों का एक औजार जिससे वे गहनों पर मछली के सेहरे का आकार बनाते हैं।

परताप(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रताप] दे॰ 'प्रताप'। उ०—सुवा असीस दीन्ह बड़ साजू। बड़ परताप अखंडित राजू।—जायसी ग्रं०, पु०, ३२।

परताल—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'पड़ताल'।

परतिंचा(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ प्रत्यञ्चा] दे॰ 'पतंचिका'।

परतिग्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ प्रतिज्ञा] दे॰ 'प्रतिज्ञा'। उ०—तुम संतत पालहु मम नेहू। आज मोर परतिग्या लेहू।

परतिच्छ(पु)—वि॰ [सं॰ प्रत्यक्ष] दे॰ 'प्रत्यक्ष'। उ०—काम कहै सुनु सुंदरी दरसन तीन प्रकार। स्वप्न चित्र परतिच्छ प्रिय प्रगट प्रेम विस्तार।—रसरतन, पु० ३०।

परतिज्ञा(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ प्रतिज्ञा] दे॰ 'प्रतिज्ञा'। उ०—हम भक्तनि के, भक्त हमारे। सुनि अर्जुन परतिज्ञा मेरी यह ब्रत टरत न टारे।—सूर०, १।२७२।

परतिष†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ प्रत्यक्ष] दे॰ 'प्रत्यक्ष'। उ०—पाइयो कहु कइ परतिष (इ) भाँड। झूठ कथइ छइ नै बोलइ छइ माँण।—वी० रासो०, पु० ४१।

परतिसठा†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ प्रतिष्ठा] संमान। प्रतिष्ठा। उ०—हमको कुल परतिसठा इतनी प्यारी नहीं है।—गोदान, पु० १०२।

परतिहार†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रतिहार] दे॰ 'प्रतिहार'। उ०—परतिहार सो कहा हकारी। अब जनि जान देहुँ कहुँ कारी।—चित्रा०, पु० १२४।

परती—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ परना (= पड़ना)] १. वह खेत या जमीन जो बिना जोती हुई छोड़ दी गई हो।

क्रि॰ प्र॰—छोड़ना।—डालना।—पड़ना।

२. वह चद्दर जिससे हवा करके भूसा उड़ाते हैं।

मुहा॰—परती लेना = चद्दर से हवा करके भूसा उड़ाना। बरसाना। ओसाना।

परतीक(पु)†—वि॰ [सं॰ प्रत्यक्ष, हिं॰ परतिष] दे॰ 'प्रत्यक्ष'। उ०—सखि तू कहै मान बधू के अधीन हैं सो परतीक किधौं सपनैं।—केशव ग्रं०, भा० १, पु० ६।

परतीत, परतीति(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ प्रतीति] दे॰ 'प्रतीति'। उ०—(क) जानतो जो इतनी परतीति तौ प्रीति की रीति को नाम न लेतो।—ठाकुर०, पु० १७। (ख) खर क्वार कंत विदेश छाए, कनक ही के वश हुए। कह कौन सी परतीति जो कि शपथ, कर मेरे हुए।—आराधना, पृ० ६६।

परतेजना(पु)—क्रि॰ स॰ [सं॰ परित्यजन] परित्याग करना। छोड़ना। उ०—जैसे उन मोको परतेजी कबहुँ फिरि न निहारत है।—सूर (शब्द०)।

परतेला—वि॰ [हिं॰ पड़ना] वह (रंग) जो तैयार होने के लिये कुछ समय तक घोल या उबालकर रखा जाय। (रंगरेज)।

परतोख†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ परितोष] आश्वासन। परितोष। प्रमाण। उ०—इसी गाँव में एक दो नहीं, दस बीस परतोख दे दूँ।—गोदान०, पु० २१३।

परतोली—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ प्रतोली] गली।—(डिं॰)।

परत्र—क्रि॰ वि॰ [सं॰] १. और जगह। अन्यत्र। २. पर काल में। ३. परलोक में। उ०—सो परत्र दुख पावै सिर धुनि धुनि पछिताइ। कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ।—मानस, ७।४३।

परत्रभीरु—वि० [सं०] जिसे परलोक का भय हो। धार्मिक।

परत्व—संज्ञा पुं० [सं०] पर होने का भाव। पहले या पूर्व होने का भाव।

यौ०—**परत्व अपरत्व** = पहले पीछे का भाव।

विशेष—वैशेषिक में द्रव्य के जो २४ गुण माने गए हैं उनमें 'परत्व' 'अपरत्व' भी है। 'परत्व' 'अपरत्व' देश और काल के भेद से दो प्रकार के होते हैं—कालिक और दैशिक। जैसे, 'उसका जन्म तुमसे पहले का है'। यह कालसंबंधी 'परत्व' हुआ। 'उसका घर पहले पड़ता है', यह देशसंबंधी 'परत्व' हुआ। देशसंबंधी परत्व अपरत्व का विपर्यय हो सकता है, पर कालसंबंधी परत्व अपरत्व का नहीं।

परथन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पलेथन'।

परथम(पु)—क्रि० वि० [सं० प्रथम] पहले। उ०—(क) भक्ति मुक्ति सनेही सजनै, लियो परथम चीन्ह हो।—धरम०, पृ० ३। (ख) सब संसार परथमै आए सातो दीप। एक दीप नहिं उत्तिम सिंहलद्वीप समीप।—जायसी ग्रं०, पृ० १०।

परथिर(पु)—वि० [सं० परम + स्थिर] गतिरहित। गतिहीन। निश्चल। उ०—गावहिं गीत बजावहि बाजा। परथिर बाव भेद उपराजा।—चित्रा०, पृ० २६।

परथोक†—संज्ञा पुं० [सं० परितोष] दे० 'परतोख'।

परदक्षणा†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रदक्षिणा] दे० 'प्रदक्षिणा'। उ०—दक्ष भयो रहै पुनि दक्ष प्रजापति जैसं। देत परदक्षणा न दक्षणा दे आप कौं।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४८१।

परदक्षिन†—संज्ञा पुं० [सं० प्रदक्षिणा] दे० 'प्रदक्षिणा'। उ०—करि प्रणाम परदक्षिन कीन्हा।—कबीर सा०, पृ० ५७८।

परदखना†, **परदखिना**—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रदक्षिणा] दे० 'प्रदक्षिणा'। उ०—(क) तन मन धन करौं वारनै परदखना दीजै। सीस हमारा जीव ले नौछावर कीजै।—दादू०, पृ० ५५६। (ख) परदखिना करि करहिं प्रनामा।—मानस, २।२०१।

परदच्छिन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रदक्षिणा] दे० 'प्रदक्षिणा'। उ०—पाँव परसि परदच्छिन दिन्निय।—प० रासो, पृ० ६१।

परदच्छिना(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रदक्षिणा] दे० 'प्रदक्षिणा'।

परदछिना(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रदक्षिणा] दे० 'प्रदक्षिणा'।

परदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० परदह्] वह कपड़ा, टट्टी आदि जिसके सामने पड़ने से कोई स्थान या वस्तु लोगों की दृष्टि से छिपी रहे। आड़ करने के काम में आनेवाला कपड़ा, टाट, चिक आदि। पट। जैसे,—खिड़की में जो परदा लटक रहा है उसपर बहुत अच्छा काम है।

क्रि० प्र०—उठाना।—खड़ा करना।—गिराना।—डालना।

मुहा०—**परदा उठाना** = दे० 'परदा खोलना'। **परदा खोलना** = छिपी बात प्रगट करना। भेद का उद्‌घाटन करना। **परदा डालना** = छिपाना। प्रकट न होने देना। जैसे,—किसी के ऐबों पर परदा डालना। **आँख पर परदा पड़ना** = बुद्धि मंद होना। समझ में न आना। **ढँका परदा** = (१) छिपा हुआ दोष या कलंक। (२) बनी हुई प्रतिष्ठा या मर्यादा। जैसे,—ढँका परदा रह जाय तो अच्छी बात है। **(किसी का) परदा रखना** = किसी की बुराई आदि लोगों पर प्रकट न होने देना। किसी की प्रतिष्ठा बनी रहने देना। उ०—मधुकर जाहि कहो सुन मेरो। पीत बसन तन श्याम जानि कै राखत परदा तेरो।—सूर (शब्द०)।

२. आड़ करनेवाली कोई वस्तु। बीच में इस प्रकार पड़नेवाली वस्तु कि उसके इस पार से उस पार तक आना जाना, देखना आदि न हो सके। दृष्टि या गति का अवरोध करनेवाली वस्तु। व्यवधान। ३. रोक जिससे सामने की वस्तु कोई देख न सके या उसके पास तक पहुँच न सके। आड़। ओट। ओझल। ४. लोगों की दृष्टि के सामने न होने की स्थिति। आड़। ओट। छिपाव।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—परदानशीन।

मुहा०—**परदा रखना** = (१) परदे के भीतर रहना। सामने न होना। जैसे,—स्त्रियाँ मरदों से परदा रखती हैं। (२) छिपाव रखना। दुराव रखना। **(किसी को) परदा लगाना** = परदे में रहने की स्थिति प्राप्त होना। किसी के सामने न होने का नियम होना। जैसे,—(क) पहले तो मारी मारी फिरती थी अब इसे परदा लगा है। (ख) सामने आकर क्यों नहीं कहते, क्या तुम्हे परदा लगा है? **परदा होना** = (१) परदा रखे जाने का नियम होना। स्त्रियों का सामने न होने देने का नियम होना। जैसे,—तुम बेधड़क भीतर चले जाओ तुम्हारे लिये यहाँ परदा नहीं है। (२) छिपाव होना। दुराव होना। जैसे,—तुमसे क्या परदा है, तुम सब हाल जानते ही हो। **परदे बिठाना** = (स्त्री को) परदे के भीतर रखना। **परदे में रखना** = (१) स्त्रियों को घर के भीतर रखना, बाहर लोगो के सामने न होने देना। (२) छिपा रखना। प्रकट न होने देना। **परदे में रहना** = (१) स्त्रियों का घर के भीतर ही रहना, लोगों के सामने न होना। अंतःपुर मे रहना। जनानखाने में रहना। (२) छिपा रहना। प्रकट न होना। **परदे परदे** = छिपे छिपे। चुप चाप। गुप्त रूप से। **परदे में छेद होना** = परदे के भीतर भीतर व्यभिचार होना।

५. स्त्रियों के घर के भीतर रखने का नियम। स्त्रियों को बाहर निकलकर लोगों के सामने न होने देने की चाल। जैसे,—हिंदुस्तान में जबतक परदा नहीं उठेगा, स्त्रीशिक्षा का प्रचार अच्छी तरह नहीं हो सकता। ६ वह दीवार जो विभाग करने या ओट करने के लिये उठाई जाय। ७. तह। परत। तल। जैसे, जमीन का परदा, दुनिया का परदा। ८. वह झिल्ली, चमड़ा आदि जो कहीं पर आड़ या व्यवधान के रूप में हो। जैसे, आँख का परदा, कान का परदा। ९. अँगरखे का वह भाग जो छाती के ऊपर रहता है। १०. फारसी के बारह रागों में से प्रत्येक। ११. सितार, हारमोनियम आदि बाजों में वह स्थान

जहाँ से स्वर निकाला जाता है। १२. नाव की पाल। १३. जवनिका। रंगमंच का पर्दा।

परदाज[1]—वि० [फ़ा० **परदाज़**] १. सुसज्जित करनेवाला। २. पोषक [को०]।

परदाज[2]—संज्ञा पुं० १ सज्जा। सजावट। २. ढंग। ३. संलग्नता। तल्लीनता। ४. चित्र की बारीक रेखाएँ [को०]।

परदादा—संज्ञा पुं० [सं० प्र+हिं० **दादा**] [स्त्री० **परदादी**] पितामह। दादा का बाप। पड़दादा।

परदानशीन—वि० [फ़ा०] परदे मे रहनेवाली। अंत:पुरवासिनी। जैसे, परदानशीन औरत।

परदार(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **पर + दार**] १. लक्ष्मी। २. पृथ्वी। उ०—आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये, परदार प्रिय साधु मन वच काय के।—राम चं०, पृ० २१। ३. दूसरे की स्त्री। पराई औरत। जैसे, परदाररत = पराई स्त्री पर अनुरक्त।

परदार(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० **पहरेदार**] पहरा देनेवाला। पहरेदार। पौरिया। उ०—परदार पौरि दस दस प्रमान। राजत अनेक भर सुभ्भि थान।—पृ० रा०, १६।६३।

परदारिक—वि० [सं०] परस्त्री लंपट। परस्त्रीगामी [को०]।

परदारी—वि० [सं० **परदारिन्**] दे० 'परदारिक' [को०]।

परदुम्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **प्रद्युम्न**] दे० 'प्रद्युम्न'। उ०—तुम परदुम्म और अनरुध दोऊ। तुम अभिमन्यु बोल सब कोऊ।—जायसी (शब्द०)।

परदूषण संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० **परदूषण सन्धि**] संपूर्ण राज्य की उत्पत्ति तथा फल देने की प्रतिज्ञा करके संधि करना (कामंदक)।

परदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] परब्रह्म [को०]।

परदेश—संज्ञा पुं० [सं०] विदेश। दूसरा देश। पराया शहर।

मुहा०—**परदेश में छाना** = दूसरे देश में निवास करना। घर पर न रहना (गीत)।

परदेशापवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] विदेशियों को बुलाकर उपनिवेश बसाना (कौटिल्य)।

परदेशी—वि० [सं०] विदेशी। दूसरे देश का। अन्य देश निवासी।

परदेस—संज्ञा पुं० [सं० **परदेश**] दे० 'परदेश'। उ०—ता पाछे केतेक दिन को चाचा हरिबंस जी गुजरात के परदेस को गए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २८६।

परदोष—संज्ञा पुं० [सं० **प्रदोष**] दे० 'प्रदोष'। उ०—जेठ सुदी सातै परदोष की घरी घरी।—श्यामा०, पृ० १२६।

परदोस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **प्रदोष**] दे० 'प्रदोष'।

परद्रोही—वि० [सं० **परद्रोहिन्**] दूसरे से दुश्मनी रखनेवाला। उ०—परद्रोही की होहि निसंका। कामी पुनि कि रहहि अकलंका।—मानस, ७।११२।

परद्वेषी—वि० [सं० **परद्वेषिन्**] दे० 'परद्रोही'।

परधन—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे की संपत्ति।

परधर(पु)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० **पर** + हिं० **धरना**] परों को धारण करनेवाला पक्षी। उ०—वर लोहा दीठो अंग रघुवर, परधर पड़ियो धरण पर।—रघु० रू०, पृ० १४०।

परधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे का धर्म [को०]।

परधान(पु)[1]—वि० [सं० **प्रधान**] दे० 'प्रधान'।

परधान[2]—संज्ञा पुं० [सं० **परिधान**] दे० 'परिधान'। उ०—मथि मृगमद मलय कपूर सबनि के तिलक किए। उर मणिमाला पहिराय सब विचित्र ठए। दान मान परधान पूरण काम किए।—सूर (शब्द०)।

परधाम—संज्ञा पुं० [सं० **परधामन्**] १. वैकुंठ धाम। परलोक। २. ईश्वर। ३. विष्णु। उ०—अज सच्चिदानंद परधामा।—तुलसी (शब्द०)।

परध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का वह स्वरूप जिसमें ध्येय के अतिरिक्त और कोई भी नहीं रहता [को०]।

परन[1]—संज्ञा पुं० [?] मृदंग आदि बाजों को बजाते समय मुख्य बोलों के बीच बीच से बजाए जानेवाले बोलों के खंड। उ०—आनंदघन रस रंग घमंड सो ललिता मृदंग बजावति, परन भरनि सी परति आवै गौंहन।—घनानंद, पृ० ३४५।

परन[2]—संज्ञा पुं० [सं० **प्रतिज्ञा**, प्रा० **पडिण्णा**, अथवा सं० **प्रण** या **पण** (= बाजी, शर्त)] प्रतिज्ञा। टेक। प्रण। वायदा। दृढ़ संकल्प। उ०—जब रहली जननी के ओदर, परन सम्हारल हो।—धरम०, पृ० ३५।

क्रि० प्र०—**करना**।—**बाँधना**।—**होना**।

परन[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पड़ना**, **पड़न**] पड़ी हुई। बान। आदत। उ०—राखौं हटकि उतै को धावै उनकी वैसिय परन परी री।—सूर (शब्द०)।

परन(पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० **पर्ण**] दे० 'पर्ण'। उ०—(क) पुनि परिहरे सुखानेउ परना।—मानस, १।७४। (ख) सो उपजे हैं आय ये परन कुटी के द्वार।—शकुंतला, पृ० ७६।

यौ०—**परनकुटी**। **परनगृह** = दे० 'परनकुटी'।

परनकुटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **पर्णकुटी**] दे० 'पर्णकुटी'। उ०—परनकुटी छावन चहौ महि देव तुम बलराई हो।—कबीर सा०, पृ० २७।

परनाँम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **प्रणाम**] दे० 'प्रणाम'। उ०—करि ऊधो परनाँम आए जसुमति नंद पैं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३५०।

परना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पड़ना'।

परनाना[1]—संज्ञा पुं० [सं० **पर** + हिं० **नाना**] [स्त्री० **परनानी**] नाना का बाप।

परनाना[2]—क्रि० स० [सं० **परिणयन**] विवाह करना। ब्याहना। उ०—पुत्रन संग पुत्री परनाई।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६१।

परनानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० **परनाना**] नानी की माँ।

परनाम—संज्ञा पुं० [सं० **प्रणाम**] दे० 'प्रणाम'। उ०—पैर छूकर जब परनाम करने लगा था तो माँ जी एकदम फूट फूटकर रो पड़ी थी।—मैला०, पृ० ३८।

परनामी—संज्ञा पुं० [हिं० **परनाम**] प्राणनाथ के संप्रदाय का व्यक्ति।

दे० 'प्रणामी'। उ०—प्रणामी एक दूसरे के अभिवादन में परनाम कहते हैं—इसी कारण ये लोग परनामी भी कहलाते हैं।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ८६।

परनाल—संज्ञा पुं० [हिं० परनाला] जहाज में पेशाब करने की मोरी (लश०)।

परनाला—संज्ञा पुं० [सं० प्रणाली] [स्त्री० अल्पा० परनाली] वह मार्ग जिससे घर में का मल या पानी बहकर बाहर निकलता है। पनाला। नाबदान। मोरी।

परनाली—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रणाली] १. छोटा परनाला। मोरी। उ०—अाली तो कुच सैल तें नाभिकुंड को जाय। रोमाली न सिगार की परनाली दरसाय।—स० सप्तक, पृ० २५५। २. अच्छे घोड़ों की पीठ का (पुट्ठों और कंधों की अपेक्षा) नीचापन जो उनकी तेजी प्रकट करता है।

क्रि० प्र०—करना।

परनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पड़ना, पड़न] पड़ी हुई बान। आदत। टेव। उ०—(क) सूरदास तैसहि ये लोचन का धौं परनि परी री।—सूर (शब्द०)। (ख) ऐसी परनि परी री जाको लाज कहा हूँ है तिनको ? —सूर (शब्द०)।

परनिपात—संज्ञा पुं० [सं०] समास में वह शब्द जो पहले आने योग्य हो पर बाद में रखा जाय। पहले आने योग्य शब्द का बाद में रखना। जैसे, भूतपूर्व में 'पूर्व' शब्द [को०]।

परनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० परिणीता, परिणेया] कन्या जो विवाह योग्य हो।

परनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्ण, हिं० परन] राँगे का महीन पत्तर जिसमें सुनहली या रुपहली चमक होती है और जिसे सजावट के लिये चिपकाते हैं। पन्नी।

परनौत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रनमन, हिं० परनवना] प्रणति। प्रणाम। नमस्कार। उ०—तातें तुमको करत दंडौत। अरु सब नरहूँ को परनौत।—सूर (शब्द०)।

परपंच(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रपञ्च] दे० 'प्रपंच'। उ०—सुखदायक दूती चतुर करि परपंच बनाय। छरि जु निसातम सुबमु करि नवलहि दई मिलाय।—स० सप्तक, पृ० २४०।

परपंचक(पु)—वि० [सं० प्रपञ्चक] बखेड़िया। फसादी। जालिया। मायावी।

परपंचिनि(पु)—वि० [हिं० परपंची] परपंच करनेवाली। उ०—परपंचिनि तुम ग्वालि झूठ ही मोहि बुलायो।—नंद० ग्रं०, पृ० १६८।

परपंची(पु)†—वि० [सं० प्रपञ्ची] १. बखेड़िया। फसादी। २. धूर्त। मायावी। उ०—सब दल होहु हुस्यार चलहु अब घेरहिं जाई। परपंची हैं कान्ह कछु मति करै ढिठाई।—सूर (शब्द०)।

परपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरुद्ध पक्ष। विरोधियों का दल। २. विपक्षी की बात। मत का विरोध करनेवाले की बात।

परपट—संज्ञा पुं० [हिं० पर + सं० पट (= चादर)] चौरस मैदान। समतल भूमि।

परपटी—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्पटी] दे० 'पर्पटी'।

परपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'परमपद'। २. पर अर्थात् शत्रु का स्थान। परराष्ट्र (को०)।

परपरा—वि० [अनु०] चरपरा।

परपराना—क्रि० अ० [देश०] मिर्च आदि कड़वी चीजों का जीभ या शरीर के और किसी भाग में एक विशेष प्रकार का उग्र संवेदन उत्पन्न करना। तीक्ष्ण लगना। चुनचुनाना।

परपराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० परपराना + आहट (प्रत्य०)] परपराने का भाव। चुनचुनाहट।

परपाकनिवृत्त—वि० [सं०] जो दूसरे के उद्देश्य से भोजन न निकाले। पंचयज्ञ न करनेवाला (गृहस्थ)।

विशेष—मिताक्षरा में कहा है कि ऐसे मनुष्य का अन्न भोजन करनेवाले ब्राह्मण को प्रायश्चित्त करना चाहिए।

परपाकरत—वि० [सं०] जो स्वयं पंचयज्ञ करके दूसरे का दिया अन्न भोजन करके रहे।

विशेष—मिताक्षरा के अनुसार ऐसे का अन्न भोजन करनेवाले ब्राह्मण को प्रायश्चित्त करना चाहिए।

परपाजा—संज्ञा पुं० [सं० पर + पर + हिं० आजा] [स्त्री० परपाजी] आजा या दादा का बाप। पितामह का पिता। प्रपितामह।

परपार—संज्ञा पुं० [सं०] उस ओर का तट। दूसरी तरफ का किनारा। उ०—सील सुधा के अगार सुखमा के पारावार पावत न परपार पैरि पैरि थाके हैं।—तुलसी (शब्द०)।

परपिंड—संज्ञा पुं० [सं० परपिण्ड] पराया अन्न। परान्न (को०)।

परपिंडाद—संज्ञा पुं० [सं० परपिण्डाद] १. परान्नोपजीवी। दूसरे का अन्न खाकर जीनेवाला। २. सेवक। नौकर (को०)।

परपीडक—वि० [सं०] १. दूसरे को पीड़ा या दुःख पहुँचानेवाला। २. पराई पीड़ा को समझनेवाला। दूसरे की दुःख की ओर ध्यान देनेवाला।

परपीरक(पु)—वि० [सं० परपीडक] दे० 'परपीडक'–२। उ०—मागध हति राजा सब छोरे ऐसे प्रभु परपीरक।—सूर (शब्द०)।

परपुरंजय—संज्ञा पुं० [सं० परपुरञ्जय] शत्रु के नगर को जीतनेवाला। वीर। विजेता [को०]।

परपुरप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रु के नगर में प्रवेश करना। २. भाव को चुरानेवाले कवियों की एक रीति। उ०—भावापहरण की एक अन्य 'परपुरप्रवेश' नामक रीति है, जिसके भेद निम्नलिखित हैं।—संपूर्णानंद अभि० ग्रं०, पृ० १६४।

परपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष। २. परम पुरुष। विष्णु। ३ अनजाना व्यक्ति। अजनबी।

परपुष्ट¹—वि० [सं०] अन्य द्वारा पोषित। जिसका दूसरे ने पोषण किया हो।

परपुष्ट²—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल। कोयल।

विशेष—कहते हैं, कोयल कौए के अंडे को हटाकर अपना अंडा

उसके नीड में रख देती है। कोयल के उस बच्चे को कौमा अपना बच्चा समझ पालता है।

परपुष्टमहोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ (जिससे कोयल को बड़ा आनंद होता है)।

परपुष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पराश्रया। वेश्या। २. परगाछा। बाँदा। बंदाक।

परपूठा—वि० [सं० परिपुष्ट, प्रा० परिपुट्ठ] पक्का। उ०—कबिरा तहाँ न जाइए जहाँ कपट को चित्त। परपूठा अवगुन घना मुँहड़े ऊपर मित्त।—कबीर (शब्द०)।

परपूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो अपने पहले पति को छोड़ दूसरा पति करे।

विशेष—क्षता और अक्षता दो प्रकार की परपूर्वा कही गई हैं। नारद ने सात भेद बतलाए हैं—तीन प्रकार की पुनर्भू और चार प्रकार की स्वैरिणी।

परपैठ—संज्ञा स्त्री० [हि० पर (=दूसरा) + पैठ (=बाजार)] हुंडी की तीसरी नकल। हुंडी की तीसरी प्रतिलिपि।

परपोता—संज्ञा पुं० [सं० प्रपौत्र] पोते का बेटा। पुत्र के पुत्र का पुत्र।

परपौत्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्रपौत्र का पुत्र। पोते के बेटे का बेटा।

परप्रपौत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परपौत्र'।

परप्रेष्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० परप्रेष्या] दास। सेवक। नौकर।

परप्रेष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। नौकरानी। सेविका [को०]।

परफुल्ल(पु)—वि० [सं० प्रफुल्ल] दे० 'प्रफुल्ल'।

परफुल्लित(पु)—वि० [सं० प्रफुल्ल + इत (प्रत्य०)] दे० 'प्रफुल्ल'।

परबंचन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रवञ्चना] दे० 'प्रवंचना'।

परबंद—संज्ञा पुं० [सं० परबन्ध] नाच की एक गत जिसमें दोनों पैर इस प्रकार खड़े रखते हैं कि कमर पर दोनों कुहनियाँ सटी रहती है।

परबंध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रबन्ध] दे० 'प्रबंध'।

परब[1]—संज्ञा पुं० [सं० पर्वन्] दे० 'पर्व'। उ०—राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरेउ समाजा।—मानस, १।४१।

परब[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्व (=पोर, खंड)] किसी रत्न वा जवाहिर का छोटा टुकड़ा।

परबत—संज्ञा पुं० [सं० पर्वत] दे० 'पर्वत'। उ०—परबत में कंदरा. तहाँ किन्नर सु बिराजे।—पृ० रा०, ११३८६।

परबता(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पर्वत] दे० 'परबत्ता'। पर्वती सुग्गा। उ०—राजा चला सँवरि सो लता। परबत कहँ जो चला परबता।—जायसी ग्रं०, पृ० ६६।

परबत्ता—संज्ञा पुं० [सं० पर्वत] पहाड़ी तोता या सुग्गा जो देशी तोते से बड़ा होता है और जिसके दोनों डैनों पर लाल दाग होते हैं। करमेल।

परबल(पु)[1]—वि० [सं० प्रबल] दे० 'प्रबल'। उ०—पाँच जने परबल परपंची उलटि परे बंदीखाने।—धरनी०, पृ० १४।

परबला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'परवल'।

परबस(पु)—संज्ञा पुं०, वि० [सं० परवश] दे० 'परवश'। उ०—मन ही मन मुरझाय रहति हौं तन परबस गुरजन की घेरी।—घनानंद, पृ० ४२८।

परबसताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० परवश्यता + ई (प्रत्य०)] पराधीनता। परतंत्रता। उ०—हरि विरंचि हर हेरि राम प्रेम परबसताई। सुख समाज रघुराज के बरनत विसुद्ध मन सुरनि सुमन झरि लाई।—तुलसी (शब्द०)।

परबाजा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० परवाज़] दे० 'परवाज'। उ०—देखो उस बादशाह के नयन के बाज। मोहन के रूप के तोती पर परबाज।—दक्खिनी०, पृ० ३१४।

परबाल[1]—संज्ञा पुं० [हि० पर (=दूसरा) + बाल (= रोयाँ)] आँख की पलक पर वह फालतू निकला हुआ बाल या बिरनी जिसके कारण बहुत पीड़ा होती है।

परबाल[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाल] दे० 'प्रवाल'।

परबाल[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० परबाला] परस्त्री। परकीया नायिका। उ०—पी चूमे परबाल लखि बालहि गुरुजन साथ। कचनि परसि, बाहूँ धरे कुचनि खरे पर हाथ।—स० सप्तक, पृ० २७४।

परबास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रवास] दे० 'प्रवास'।

परबी—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्वन्] १. पर्व का दिन। उत्सव का दिन। पुण्यकाल। उ०—ऐसी परबी पाय नहीं तुम महिमा जानी।—पलटू०, पृ० १६। २. त्योहारी। पर्व पर प्राप्त धन आदि।

परबीन(पु)—वि० [सं० प्रवीण] दे० 'प्रवीण'। उ०—सदा रूप गुन रीझि पिय जाके रहे अधीन। स्वाधीनै पतिका तियै बरनत कवि परबीन।—मति ग्रं०, पृ० ३०६।

परबेष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परिवेष] दे० 'परिवेष'। उ०—पूरन चंद पियूष मयूष मनो, परवेस की रेख बिराजै।—मति० ग्रं०, पृ० ३४६।

परबेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रवेश] दे० 'प्रवेश'।

परबोध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रबोध] दे० 'प्रबोध'।

परबोधना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रबोधन] १. जगाना। २. ज्ञानोपदेश करना। ३. प्रबोध देना। दिलासा देना। तसल्ली देना। ढाढ़स बँधाना। समझाना। उ०—पुनि यह कहा मोहि परबोधत बरनि गिरी मुरझैया।—सूर। (शब्द०)।

परब्बत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पर्वत] दे० 'पर्वत'। उ०—मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यो धुकि धायो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६६।

परब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म जो जगत से परे है। निर्गुण निरुपाधि ब्रह्म।

परभंजन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रभञ्जन] दे० 'प्रभंजन'। उ०—सहित परभंजन की गति धरे अंबर बिराजै प्रगटावै तिय तन काँम।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८८।

परभव—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मांतर। दूसरा जन्म।

परभा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभा] दे० 'प्रभा'।

परभाउⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रभाव] दे० 'प्रभाव'।

परभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूसरी ओर का भाग। २. पश्चिम भाग। ३ शेष भाग। बचा हुआ भाग। ४. गुणोत्कर्ष। उत्कृष्टता। अच्छापन। ५. सुसंपदा। ६. प्रचुरता। आधिक्य (को०)।

परभाग्योपजीवी—वि० [सं० परभाग्योपजीविन्] दूसरे की कमाई खाकर रहनेवाला।

परभातⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रभात] दे० 'प्रभात'। उ०—(क) हरष हृदय परभात पयाना।—मानस, १। (ख) कहीं सुनी ब्रज ही के बात। ब्रज बसि लखौं साँझ परभात।—घनानंद, पृ० ३२४।

परभाती—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभाती] दे० 'प्रभाती'। उ०—इतने ही में किसी महात्मा ने ऐसी परभाती गाई कि फिर वह आकाश संपत्ति हाथ न आई।—श्यामा० पृ० ५।

परभाव—संज्ञा पुं० [सं० प्रभाव] दे० 'प्रभाव'। उ०—यह सब कलयुग को परभाव। जो नृप के मन भयो कुठाव।—सूर (शब्द०)।

परभासⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रभास] प्रभास तीर्थ। उ०—क्रोध काल प्रत्यक्ष ही कियो सकल को नास। सुंदर कौरव पांडुवा छपन कोटि परभास।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७०६।

परभुक्त—वि० [सं०] वि० [वि०स्त्री० परभुक्ता] अन्य द्वारा उपभुक्त [को०]।

परभुक्ता—वि० स्त्री० [सं०] दूसरे की भोगी हुई। (स्त्री) जिसके साथ पहले दूसरा समागम कर चुका हो।

परभुमिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० पर + भूमि] दे० 'परदेश'। उ०—गुनी पुरिख जौ परभुमि आई। त्यों त्यों महँग मोल बिकाई।—माधवानल०, पृ० १९३।

परभूताⓅ—वि० [सं० प्रभूत] प्रचुर। प्रभूत। उ०—रूप सुबरन देइँ परभूता। करै धनी उपजावै दूता।—इंद्रा०, पृ० १६३।

परभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] काक। कौआ [को०]।

परभृत[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल। कोकिल (जो कौए के द्वारा पाली जाती है)।

परभृत[२]—वि० अन्य द्वारा पालित या पोषित [को०]।

परम[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. विष्णु। ३. ॐकार। प्रणव (को०)। ४. वह व्यक्ति या वस्तु जो सर्वोच्च हो (को०)।

परम[२]—वि० १. सबसे बढ़ा चढ़ा। अत्यंत। हद से ज्यादा। २. जो बढ़ बढ़कर हो। उत्कृष्ट। ३. प्रधान। मुख्य। ४. आद्य। आदिम। ५. बहुत अधिक अत्यधिक (को०)। ६. सबसे निकृष्ट या खराब (को०)।

परमक—वि० [सं०] सर्वोच्च। सर्वोत्तम। सर्वोत्कृष्ट (को०)।

परमकांड—संज्ञा पुं० [सं० परमकाण्ड] अत्यंत शुभ या आनंददायक समय [को०]।

परमक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० परमक्रान्ति] सूर्य की शेष क्रांति [को०]।

परमक्खरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० परमाक्षर] ओंकार। ब्रह्म। सत्य। उ०—जपै चंद विरद्द मोहि परमक्खर सुभ्भै।—पृ० रा०।

परमगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम गति। मोक्ष। मुक्ति।

परमगव—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कृष्ट गाय या बैल [को०]।

परमगहन—वि० [सं०] अत्यंत गूढ़। अतीव क्लिष्ट। अति जटिल [को०]।

परमगूढ़—वि० [सं०] परम गहन।

परमजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकृति।

परमज्या—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

परमट[१]—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में एक ताल।

परमट[२]—संज्ञा पुं० [अं० परमिट] १. वह कर या महसूल जो विदेश से आने जानेवाले माल पर लगता है। कर। महसूल। चुंगी।

परमट हाउस—संज्ञा पुं० [हिं० परमट + अं० हाउस] दे० 'कस्टम हाउस'।

परमतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूल तत्व जिससे संपूर्ण विश्व का विकास है। मूल सत्ता। २. ब्रह्म। ईश्वर।

परमद—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत मद्य पीने से होनेवाला एक रोग, जिसमें शरीर भारी रहता है, मुँह का स्वाद बिगड़ता रहता है, प्यास अधिक लगती है, माथे और शरीर के जोड़ों में दर्द होता है। उ०—है बिस मों प्यारी मन माहीं। परमद छबि मुख ऊपर नाहीं।—इंद्रा०, पृ० ९७।

परमदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महासामंत की स्त्री की उपाधि।

विशेष—सतलज नदी तटस्थ मर्मद ग्राम में महासामंत शब्द तथा महाराज समुद्रसेन के लेख में महासामंत की स्त्री के लिये परमदेवी शब्द का प्रयोग किया गया है।

परमधाम—संज्ञा पुं० [सं०] वैकुंठ।

परमनेंट—वि० [अं०] स्थायी। स्थिर। कायम जैसे,—परमनेंट अंडर सेक्रेटरी।

परमन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] यदुवंशी कक्षेयु के पुत्र का नाम।

परमपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. सबसे श्रेष्ठ पद। सर्वोच्च स्थान। २. मोक्ष। मुक्ति। उ०—लीजै साहिब का नाम, परम पद पाइए।—कबीर श०, पृ० ४१।

परमपिता—संज्ञा पुं० [सं० परमपितृ] परमेश्वर।

परमपुरुष, परमपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमात्मा। २. विष्णु।

परमप्रख्य—वि० [सं०] बहुत प्रसिद्ध [को०]।

परमफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. सबसे उत्तम फल या परिणाम। २. मोक्ष। मुक्ति।

परमब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. परब्रह्म। २. ईश्वर।

परमब्रह्मचारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

परमभट्टारक—संज्ञा पुं० [सं०] एकच्छत्र राजाओं की एक प्राचीन उपाधि।

परमभट्टारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राचीन काल में प्रयुक्त साम्राज्ञी की उपाधि। २ रानियों की एक सम्मानसूचक उपाधि।

परममहत्—वि० [सं०] सबसे बड़ा और व्यापक।

विशेष—काल, आत्मा, आकाश और दिक् ये सर्वगत होने के कारण परम महत् कहलाते हैं।

परममहाभट्टारक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल में महाराजाधिराजों की उपाधि।

परमरस—संज्ञा पुं० [सं०] पानी मिला हुआ मट्ठा। जलमिश्रित तक्र।

परमर्दिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] महोबे के एक चंदेलवंशी राजा जो आल्हा में राजा परमाल के नाम से प्रसिद्ध हैं। पृथ्वीराज ने इनपर चढ़ाई करके इनको अधीन किया था।

परमर्मज्ञ—वि० [सं०] परकीय मन का ज्ञाता। दूसरे के भेद को जाननेवाला [को०]।

परमर्षि—संज्ञा पु० [सं०] महान ऋषि [को०]।

परमल[1]—संज्ञा पुं० [सं० परिमल (=कूटा हुआ, मला हुआ ?)] ज्वार या गेहूँ का एक प्रकार का भुना हुआ दाना या चबेना।

विशेष—इसे बनाने के लिये पहले ज्वार को भिगोकर कूटते हैं और फिर भाड़ में भून लेते हैं।

परमल[2]—संज्ञा पुं० [सं० परिमल] दे० 'परिमल'। उ०—अरँड बस लागै नहीं गुरु चंदन की बास। रीते रहे गठीले पोले रज्जब परमल पास।—रज्जब०, पृ० १२।

परमली, परमल—वि० [हिं० परमल + ई] १. परिमल संबंधी। पुष्पपराग का। जिसमें परिमल हो। उ०—(क) सहस गुंजार में परमली झाल है, झिलमिली उलटि के पौन भरना।—पलटू०, पृ० ३०। (ख) राधे उघटत परमलू प्रगटत अद्भुत ओप। मैन, फिरंगी की मनो छूटन लागी तोप।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६।

परमहंस—संज्ञा पुं० [सं०] १. संन्यासियों का एक भेद। वह संन्यासी जो ज्ञान की परमावस्था को पहुँच गया हो अर्थात् 'सच्चिदानंद ब्रह्म मैं ही हूँ' इसका पूर्ण रूप से अनुभव जिसे हो गया हो। उ०—संन्यासी कहावै तो तू तीन्यो लोक न्यास करि सुंदर परमहंस होइ या लिषत है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१२।

विशेष—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस जो चार प्रकार के अवधूत कहे गए हैं उनमें परमहंस सबसे श्रेष्ठ है। जिस प्रकार संन्यासी होने पर शिखासूत्र का त्याग कर दंड ग्रहण करते हैं उसी प्रकार परमहंस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर दंड की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। निर्णयसिंधु में लिखा है कि जो परमहंस विद्वान् न हों उन्हें एक दंड धारण करना चाहिए पर जो विद्वान् हों उन्हें दंड की कोई आवश्यकता नहीं। परमहंस आश्रम में प्रवेश करने पर मनुष्य सब प्रकार के बंधनो से मुक्त समझा जाता है। उसके लिये श्राद्ध, संध्या, तर्पण आदि आवश्यक नही। देवार्चन आदि भी उसके लिये नहीं है, किसी को नमस्कार आदि करने से उसे कोई प्रयोजन नही। उसे अध्यात्मनिष्ठ होकर निर्द्वंद्व और निराग्रह भाव से ब्रह्म में स्थित रहना चाहिए। पर आजकल कुछ परमहंस देवमूर्तियों का पूजन आदि करते हैं, पर नमस्कार नहीं करते।

२. परमात्मा। उ०—परमहंस तुम सबके ईस। बचन तुम्हारो श्रुति जगदीस।—सूर (शब्द०)।

परमांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० परमाङ्गना] श्रेष्ठ महिला। अच्छी स्त्री [को०]।

परमा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कथ्य।

परमा(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० शोभा। छवि। खूबसूरती। उ०—बानी मधुरी बास बन परमा परम बिसाल।—दीनदयाल (शब्द०)।

विशेष—यह प्रयोग 'अमरकोश' के 'सुषमा परमा शोभा' में 'परमा' विशेषण को पर्याय समझने के कारण चल पड़ा है।

परमा[3]—संज्ञा पुं० [सं० प्रमेह] प्रमेह रोग।

परमाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] ॐकार। ब्रह्म [को०]।

परमाटा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में एक ताल।

परमाटा[2]—संज्ञा पुं० [अं० परमटा] एक प्रकार का चिकना, चमकीला और दबीज कपड़ा।

विशेष—परमाटा आस्ट्रेलिया में एक स्थान है। वहाँ से जो ऊन आता था उससे एक प्रकार का कपड़ा बनता था जिसका ताना सूत का और बाना ऊन का होता था। उसी को परमाटा कहते थे। पर अब परमाटा सूत का ही बनता है।

परमाटिक—संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद की एक शाखा का नाम [को०]।

परमाण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाण] दे० 'प्रमाण'। उ०—चरण देखाड़ तो परमाण। स्वामी माहरै नैणो निरखू माँगू ये ज मान।—दादू०, पृ० ५६१।

परमाणु—संज्ञा पु० [सं०] अत्यंत सूक्ष्म अणु। पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतों का वह छोटे से छोटा भाग जिसके फिर विभाग नही हो सकते।

विशेष—वैशेषिक में चार भूतों के चार तरह के परमाणु माने हैं—पृथ्वी परमाणु, जल परमाणु, तेज परमाणु और वायु-परमाणु। पाँचवाँ भूत आकाश विभु है। इससे उसके टुकड़े नहीं हो सकते। परमाणु इसलिये मानने पड़े हैं कि जितने पदार्थ देखने में आते हैं सब छोटे छोटे टुकड़ो से बने हैं। इन टुकड़ों में से किसी एक को लेकर हम बराबर टुकड़े करते जायँ तो अंत में ऐसे टुकड़े होंगे जो हमे दिखाई न पड़ेंगे। किसी छेद से आती हुई सूर्य की किरणों में जो छोटे छोटे कण दिखाई पड़ते हैं उनके टुकड़े करने से अणु होंगे। ये अणु भी जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों से मिलकर बने होंगे उन्हीं

का नाम परमाणु रखा गया है। न्याय और वैशेषिक के मत से इन्हीं परमाणुओं के संयोग से पृथ्वी आदि द्रव्यों की उत्पत्ति हुई है जिसका क्रम प्रशस्तपाद भाष्य में इस प्रकार लिखा गया है।

जब जीवों के कर्मफल के भोग का समय आता है तब महेश्वर की उस भोग के अनुकूल सृष्टि करने की इच्छा होती है। इस इच्छा के अनुसार जीवों के अदृष्ट के बल से वायु परमाणुओं में चलन उत्पन्न होता है। इस चलन से उन परमाणुओं में परस्पर संयोग होता है। दो दो परमाणुओं के मिलने से द्वयणुक' उत्पन्न होते हैं। तीन द्वयणुक मिलने से 'त्रसरेणु'। चार द्वयणुक मिलने से 'चतुरणुक' इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार एक महान् वायु उत्पन्न होता है। उसी वायु में जल परमाणुओं के परस्पर संयोग से जलद्वयणुक जलत्रसेरणु आदि की योजना होते होते महान् जलनिधि उत्पन्न होता है। इस जलनिधि में पृथ्वी परमाणुओं के संयोग से द्वयणुकादि क्रम से महापृथ्वी उत्पन्न होती है। उसी जलनिधि में तेजस् परमाणुओं के परस्पर संयोग से महान् तेजोराशि की उत्पत्ति होती है। इसी क्रम से चारों महाभूत उत्पन्न होते हैं। यही संक्षेप में वैशेषिकों का परमाणुवाद है।

परमाणु अत्यंत सूक्ष्म और केवल अनुमेय है। अतः 'तर्कामृत' नाम के एक नवीन ग्रंथ में जो यह लिखा गया है कि सूर्य की आती हुई किरणों की बीच जो धूल के कण दिखाई पड़ते हैं उनके छठे भाग को परमाणु कहते हैं, वह प्रामाणिक नहीं है। वैशेषिकों का सिद्धांत है कि कारण गुणपूर्वक ही कार्य के गुण होते हैं, अत जैसे गुण परमाणु में होंगे वैसे ही गुण उनसे बनी हुई वस्तुओं में होंगे। जैसे, गंध, गुरुत्व आदि जिस प्रकार पृथ्वी परमाणु में रहते हैं उसी प्रकार सब पार्थिव वस्तुओं में होते हैं।

आधुनिक रसायन और भौतिक वा भूत विज्ञान द्वारा प्राचीनों की मूलभूत और परमाणुसबंधी धारणा का बहुत कुछ निराकरण हो गया है। प्राचीन लोग पंचमहाभूत मानते थे, जिनमें से आकाश को छोड़ शेष चार भूतों के अनुसार चार प्रकार के परमाणु भी उन्हें मानने पड़े थे। पर इन चार भूतों में से अब तीन तो कई मूल भूतों के योग से बने पाए गए हैं। जैसे, जल दो गैसों (वायु से भी सूक्ष्म भूत) के योग से बना सिद्ध हुआ। इसी प्रकार वायु में भी भिन्न गैसों का संयोग विश्लेषण द्वारा पाया गया। रहा तेज, उसे विज्ञान भूत नहीं मानता केवल भूत की शक्ति (गति शक्ति) का एक रूप मानता है। ताप से परिमाण (तौल) की वृद्धि नहीं होती। ठढे लोहे का जो वजन रहेगा वही उसे तपाने पर भी रहेगा। अस्तु, आधुनिक रसायनशास्त्र में शताधिक मूल भूत माने गए हैं, जिनमें से कुछ तो धातुएँ हैं जैसे ताँबा, सोना, लोहा, सीसा, चाँदी, राँगा, जस्ता; कुछ और खनिज हैं, जैसे, गंधक, फासफरस, पोटासियम, अंजन, पारा, हड़ताल, तथा कुछ गैस हैं, जैसे, आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि। इन्हीं मूल भूतों के अनुसार परमाणु आधुनिक रसायन में माने जाते हैं। पहले समझा जाता था कि ये अविभाज्य हैं। अब इनके भी टुकड़े कर दिए गए हैं।

परमाणुबम—संज्ञा पुं० [सं० परमाणु + अं० बॅम] यूरेनियम तथा और परमाणुओं को तोड़कर बनाया गया एक महाविध्वसक बम जिसका निर्माण सबसे पहले अमेरिका ने द्वितीय महायुद्ध के समय किया जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नगरों पर अमेरिका ने इसे छोड़ा जिससे पूरा नगर और आबादी समाप्त हो गई।

परमाणुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय और वैशेषिक का यह सिद्धांत कि परमाणुओं से जगत् की सृष्टि हुई है।

विशेष—वैशेषिक और न्याय दोनों पृथ्वी आदि चार महाभूतों की उत्पत्ति चार प्रकार के परमाणुओं के योग से मानते हैं (दे० परमाणु)। जिस परमाणु में जो गुण होते हैं वे उससे बने हुए पदार्थों में भी होते हैं। पृथ्वी, वायु इत्यादि के परमाणुओं के योग से बने हुए पदार्थ जो नाना रूप रंग और आकृति के होते हैं वह इस कारण कि भिन्न भिन्न भूतों द्वयणुकों या त्रसरेणुकों का सन्निवेश और संघटन तरह तरह का होता है। दूसरी बात यह है कि तेज के संबंध से वस्तुओं के गुणों में फेरफार हो जाता है। जैसे, कच्चा घड़ा पकाए जाने पर लाल हो जाता है। इसके संबंध में वैशेषिकों की यह धारणा है कि आँवे में जाकर अग्नि के प्रभाव से घड़े के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं; अर्थात् उसके परमाणु अलग अलग हो जाते हैं। अलग होने पर प्रत्येक परमाणु तेज के योग से रंग बदलकर लाल हो जाता है। फिर जब सब अणु जुड़कर फिर घड़े के रूप में हो जाते हैं तब घड़े का रंग लाल निकल आता है। वैशेषिक कहते हैं कि आँवें में जाकर घड़े का एक बार नष्ट होकर फिर बन जाना इतने सूक्ष्म काल में होता है कि हम लोग देख नहीं सकते। इसी विलक्षण मत को 'पीलुपाक मत' कहते हैं। नैयायिकों का मत इस विषय में ऐसा नहीं है। वे कहते हैं कि इस प्रकार अदृश्य नाश और उत्पत्ति मानने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि सब वस्तुओं में परमाणुओं या द्वयणुकों का संयोग इस प्रकार का रहता है कि उनके बीच बीच में कुछ अवकाश रह जाता है। इसी अवकाश में भरकर अग्नि का तेज अणुओं का रंग बदलता है। वेदांत में नैयायिकों और वैशेषिकों के परमाणुवाद का खंडन किया गया है।

परमाणुवादी—संज्ञा पुं० [सं० परमाणुवादिन्] परमाणुओं के योग से सृष्टि की उत्पत्ति माननेवाला। सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में न्याय और वैशेषिक का मत माननेवाला।

परमातमा—संज्ञा पुं० [सं० परमात्मा] दे० 'परमात्मा'। उ०—(क) काटि कै ब्राह्मन मस्तक को, यह आपने को परमातमा माने।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४११। (ख) करत फिरत

मन बावरे भ्रापन ही पहचान। तो ही मैं परमातमा लेत नहीं पहिचान।—स० सप्तक, पृ० १७६।

परमात्मा—संज्ञा पुं० [पुं० **परमात्मन्**] ब्रह्म। परब्रह्म। ईश्वर।

परमाद्वैत—संज्ञा पुं० [पुं०] १. सर्वभेदरहित परमात्मा। २. विष्णु।

परमानंद—संज्ञा पु० [सं० **परमानन्द**] १. बहुत बडा सुख। ब्रह्म के भ्रनुभव का सुख। ब्रह्मानंद। ३. भ्रानंदस्वरूप ब्रह्म।

परमानⓅ†—संज्ञा पु० [स० **प्रमाण**] १ प्रमाण। सबूत। २. यथार्थ बात। सत्य बात। ३. सीमा। मिति। भ्रवधि। हद। उ०—तप बल तेहि करि भ्रापु समाना। रखिहौं इहाँ बरष परमाना।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस भ्रर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राय: भ्रव्ययवत् रहता है।

परमाननाⓅ—क्रि० स० [सं० **प्रमाण**] १. प्रमाण मानना। ठीक समझना। २. स्वीकार करना। सकारना।

परमान्न—संज्ञा पु० [सं०] खीर। पायस।

विशेष—देवताभ्रों को भ्रधिक प्रिय होने के कारण यह नाम पड़ा।

परमामुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिपुरा देवी की पूजा के समय करणीय एक प्रकार की मुद्रा [को०]।

परमायु—संज्ञा स्त्री० [स० **परमायुस्**] भ्रधिक से भ्रधिक भ्रायु। जीवित काल की सीमा।

विशेष—मनुष्य की परमायु १२० वर्ष की मानी जाती है। फलित ज्योतिष में मनुष्य की परमायु चार प्रकार से निकाली जाती है जिसे क्रमश भ्रंशायु, पिंडायु, निसर्गायु भ्रौर जीवायु कहते हैं। लग्न बलवान् हो तो निसर्गायु भ्रौर यदि तीनों दुर्बल हों तो जीवायु निकालनी चाहिए।

परमायुष—संज्ञा पु० [स०] बियजसाज का पेड़।

परमार—संज्ञा पुं० [स० **पर** (=शत्रु) + हिं० **मारना**] राजपूतों का एक कुल जो भ्रग्निकुल के भ्रंतर्गत है। पँवार।

विशेष—परमारों की उत्पत्ति शिलालेखों तथा पद्मगुप्तरचित 'नवसाहसांकचरित' नामक ग्रथ मे इस प्रकार मिलती है। महर्षि वशिष्ठ भ्रर्बुदगिरि (भ्राबू पहाड) पर निवास करते थे। विश्वामित्र उनकी गाय वहाँ से छीन ले गए। वशिष्ठ ने यज्ञ किया भ्रौर भ्रग्निकुंड से एक वीर पुरुष उत्पन्न हुभ्रा जिसने बात की बात में विश्वामित्र की सारी सेना नष्ट करके गाय लाकर वशिष्ठ के भ्राश्रम के पर बाँध दी। वशिष्ठ ने प्रसन्न होकर कहा 'तुम परमार (शत्रुभ्रों को मारनेवाले) हो भ्रौर तुम्हारा राज्य चलेगा'। इसी परमार के वंश के लोग परमार कहलाए। पृथ्वीराज रासो (भ्रादि पर्व) के भ्रनुसार उपद्रवी दानवों से भ्राबू के ऋषियो की रक्षा करने के लिये वशिष्ठ ने भ्रग्निकुंड से परमार की उत्पत्ति की।

टाड साहब ने परमारो की भ्रनेक शाखाएँ गिनाई हैं, जैसे, मोरी (जो गहलोतों के पहले चित्तौर के राजा थे), सोडा, या सोढा; संकल, खैर, उमरा सुमरा (जो भ्राजकल मुसलमान हैं), विहिल, महीपावत, बलहार, काबा, भ्रोमता, इत्यादि। इनके भ्रतिरिक्त चाँवड़, खेजर, सगरा, वरकोटा, संपाल, भीवा, कोहिला, धंद, देवा, बरहर, निकुंभ, टीका, इत्यादि भ्रौर भी कुल हैं जिनमे से कुछ सिंध पार रहते हैं भ्रौर पठान मुसलमान हो गए हैं।

परमारों का राज्य मालवा में था। यह तो प्रसिद्ध ही है कि भ्रनेक स्थानों पर मिले हुए शिलालेखो तथा पद्मगुप्त के नवसाहसांकचरित से मालवा के परमार राजाभ्रों की वंशावली इस प्रकार निकलती है—
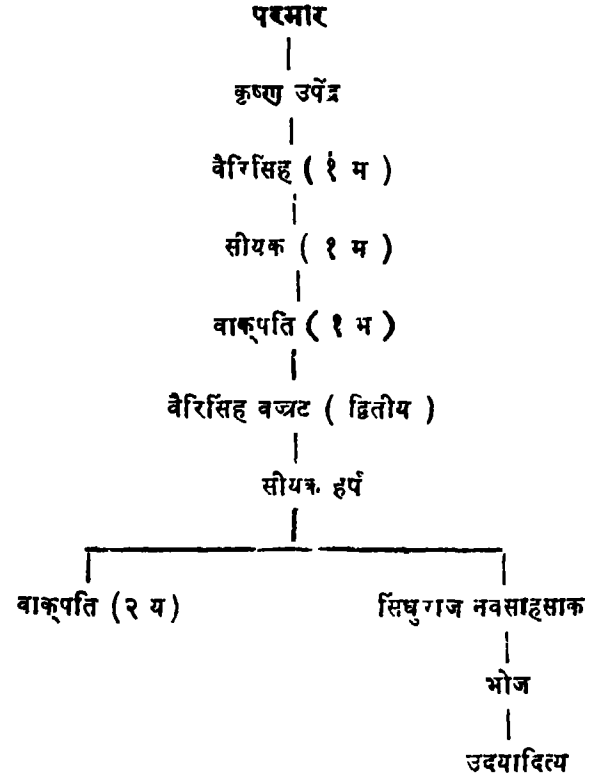
ईसा की भ्राठवीं शताब्दी में कृष्ण उपेंद्र ने मालवा का राज्य प्राप्त किया। सीयक (द्वितीय) या श्रीहर्षदेव के संबंध में पद्मगुप्त ने लिखा है कि उसने एक हूण राजा को पराजित किया। उदयपुर की प्रशस्ति से यह भी जाना जाता है कि उसने राष्ट्रकूट वंशीय मान्यखेट (मानखेडा) के राजा खेट्टिगदेव का राज्य ले लिया। 'पाइम्रलच्छी नाममाला' नाम का 'धनपाल' का लिखा एक प्राकृत कोश है जिसमें लिखा है कि 'विक्रम सवत् १०२६ में मालवा के राजा ने मान्यखेट पर चढ़ाई की भ्रौर उसे लूटा। उसी समय मे यह ग्रंथ लिखा गया। श्रीहर्षदेव या सीयक (द्वितीय) के पुत्र वाक्पतिराज (द्वितीय) का पहला ताम्रपत्र १०३१ वि० सवत् का मिलता है। ताम्रपत्रों, शिलालेखो भ्रौर नवसाहसांकचरित मे वाक्पतिराज के कई नाम मिलते हैं, जैसे, मुंज, उत्पलराज, भ्रमोघवर्ष, पृथिवीवल्लभ, श्रीवल्लभ भ्रादि। यह बड़ा विद्वान् भ्रौर कवि था। मुज वाक्पतिराज के भ्रनेक श्लोक प्रबंधचिंतामणि, भोजप्रबध तथा भ्रलंकार ग्रंथों में मिलते हैं। इसकी सभा में कवि धनंजय, पिंगल टीकाकार हलायुध, कोशकार धनपाल भ्रौर पद्मगुप्त परिमल भ्रादि

अनेक पंडित थे। इसने दक्षिण के कर्णाट, लाट, केरल, चोल आदि अनेक देशों को जय किया। प्रबंधचिंतामणि में लिखा है कि वाक्‌पतिराज ने चालुक्यराज द्वितीय तैलप को सोलह बार हराया, पर अंत में एक चढ़ाई में उसके यहाँ बंदी हो गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई। चालुक्य राजाओं के शिलालेखों में भी इस बात का उल्लेख मिलता है।

मुंज के उपरांत उसका छोटा भाई सिंधुराज या सिंधुल गद्दी पर बैठा। इसकी एक उपाधि 'नवसाहसांक' भी थी। 'नवसाहसांकचरित' में 'पद्मगुप्त' ने इसी का वृत्तांत लिखा है। सिंधुराज का पुत्र महाप्रतापी विद्वान् और दानी भोज हुआ, जिसका नाम भारत मे घर घर प्रसिद्ध है। उदयपुर प्रशस्ति में लिखा है कि भोज ने गुर्जर, लाट, कर्णाट, तुरुष्क आदि अनेक देशों पर चढ़ाई की। भोज ने कल्याण के चालुक्य राजा तृतीय जयसिंह पर भी चढ़ाई की थी। पर जान पड़ता है कि इसमें उसे सफलता नही हुई। 'बिल्हण' के विक्रमांकदेव-चरित' में लिखा है कि जयसिंह के उत्तराधिकारी चालुक्यराज सोमेश्वर (द्वितीय) ने भोज की राजधानी धारा नगरी पर चढ़ाई की और भोज को भागना पड़ा। 'प्रबंधचिंतामणि' तथा नागपुर की प्रशस्ति मे भी लिखा है कि चेदिराज कर्ण और गुर्जरराज चालुक्य भीम ने मिलकर भोज पर चढ़ाई की, जिससे भोज का अधःपतन हुआ। भोज की मृत्यु कब हुई, यह ठीक नही मालूम। पर इतना अवश्य पता चलता है कि ९६४ शक (सन् १०४२-४३ ई०) तक वह विद्यमान था। राजतरंगिणी में लिखा है कि काश्मीरपति 'कलस' और मालवाधिप 'भोज' दोनों कवि थे और एक ही समय में वर्तमान थे। इससे जान पड़ता है कि सन् १०६२ ई० के कुछ काल पीछे ही उसकी मृत्यु हुई होगी। भोज के पीछे उदयादित्य का नाम मिलता है, जिसने धारा नगरी को शत्रुओं के हाथ से निकाला और धरणीवराह के मंदिर की मरम्मत कराई। इससे अधिक और कुछ ज्ञात नहीं।

भूपाल (भोपाल) में प्राप्त उदयवर्म के ताम्रपत्र तथा पिपलिया के ताम्रपत्र मे ये नाम और मिलते हैं—भोजवंशीय महाराज यशोवर्मदेव, उसका पुत्र जयधर्मदेव, उसके पीछे महाकुमार लक्ष्मीवर्मदेव, उसके पीछे हरिश्चंद्र का पुत्र उदयवर्मदेव पिछले दोनो कुमार भोजवंशीय थे या नही, यह नहीं कहा जा सकता। जान पड़ता है, ये सामंत राजा थे जो जयवर्मदेव के बहुत पीछे हुए।

अवध में 'भुकसा' नाम के कुछ क्षत्रिय हैं जो अपने को भोजवंशी बतलाते हैं। उनका कहना है कि भोज के पीछे उदयादित्य निर्विघ्न राज नही कर पाया। उसके भाई जगतराव ने उसे निकाल दिया और वह कुछ अनुचरों और पुरोहितों के साथ वनवास नाम के गाँव मे आ बसा। उसी के वंश के ये भुकसा क्षत्रिय हैं।

परमारथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **परमार्थ**] दे० 'परमार्थ'। उ०—परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे। —मानस, २।२८८।

परमारथवादी(पु)—[हिं०] दे० 'परमार्थवादी'। उ०—प्रभु जे मुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी। —मानस, १।१०८।

परमारथी(पु)—वि० [सं० **परमार्थी**] दे० 'परमार्थी'। उ०—(क) एहि जग जामिनि जागहि जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी। —मानस, २।९३। (ख) नमों प्रेम परमारथी इह जाचत हैं तोहि। नंदलाल के चरन कौं दे मिलाइ किन मोहि। —स० सप्तक, पृ० १७३।

परमार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्कृष्ट पदार्थ। सबसे बढ़कर वस्तु। २. सार वस्तु। वास्तव सत्ता। नाम रूपादि से परे यथार्थ तत्व। ३. मोक्ष। ४. दुःख का सर्वथा अभावरूप सुख (न्याय)। ५. सत्य (को०) दे०। ६. ब्रह्म (को०)।

परमार्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्य भाव। याथार्थ्य।

परमार्थवादी—संज्ञा पुं० [सं० परमार्थवादिन्] ज्ञानी। वेदांती। तत्वज्ञ।

परमार्थविद्—वि० [सं०] ब्रह्मज्ञानसंपन्न। जिसे परमार्थ का ज्ञान हो [को०]।

परमार्थी—वि० [सं० **परमार्थिन्**] १. यथार्थ तत्व को ढूँढ़नेवाला। तत्वजिज्ञासु। २. मोक्ष चाहनेवाला। मुमुक्षु।

परमाह—संज्ञा पुं० [सं०] शुभ दिन। पुण्य दिवस। अच्छा दिन। उ०—भरन ठानि परमाह मरजी वाकी धारि मत। —नट०, पृ० १००।

परमिति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **परिमिति**] दे० 'परिमिति'। उ०—सतगुन सुर गन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी।—मानस, १।३१।

परमित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह भुक्ति या राज्य जिसमें मित्र और शत्रु दोनों समान रूप से हों।

परमीकरणमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार देवताओं के आह्वान की एक मुद्रा, जिसमें हाथ के दोनों अँगूठो को एक में गाँठकर उँगलियों को फैलाते हैं। इसे महामुद्रा भी कहते हैं।

परमुख(पु)[1]—वि० [सं० पराङ्मुख] १. विमुख। पीछे फिरा हुआ। २. जो ध्यान न दे। जो प्रतिकूल आचरण करे।

परमुख[2]—संज्ञा पुं० [सं० पर + मुख] एक प्रकार की काव्य उक्ति जिसमें वर्णनीय का अन्य पुरुष के वचनों से वर्णन कराया जाय। —रघु० रू०, पृ० ३८।

परमुखापेक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूसरे का मुँह देखने की वृत्ति। किसी अन्य के भरोसे रहने का स्वभाव। उ०—आवरणात्मक जगत् की परमुखापेक्षिता वाली प्रवृत्ति को प्रेमचंद जी की प्रतिभा ने मोड़ अवश्य दिया है। —प्रेम० और गोर्की, पृ० १९७।

परमृत्यु—संज्ञा पुं० [सं०] काक। कौआ।

विशेष—प्रवाद है कि कौए आपसे आप नहीं मरते।

परमेश—संज्ञा पुं० [सं०] : 'परमेश्वर'।

परमेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. संसार का कर्ता और परिचालक सगुण ब्रह्म। २. विष्णु। ३. शिव। ४. ब्रह्मा (को०)। ५. इंद्र का नाम (को०)। ६. चक्रवर्ती नरेश (को०)।

परमेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा या देवी का नाम।

परमेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्मुख ब्रह्मा। प्रजापति (शुक्ल यजु०)।

परमेष्ठिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परमेष्ठी की शक्ति। देवी। २. श्री। ३. वाग्देवी। ४. ब्राह्मी जड़ी।

परमेष्ठी—संज्ञा पुं० [सं० परमेष्ठिन्] १. ब्रह्मा, अग्नि, आदि देवता। २. विष्णु। ३. शिव। ४. एक जिन का नाम। ५. शालिग्राम का एक विशेष भेद। ६. विराट् पुरुष। ७. चाक्षुष मनु। ८. गरुड़। ९. आध्यात्मिक शिक्षक। गुरु (को०)।

परमेसर(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० परमेश्वर] दे० 'परमेश्वर'।

परमेसरी‡—संज्ञा स्त्री० [सं० परमेश्वरी] दे० 'परमेश्वरी'। उ०—एइ कविलास इंद्र कै अछरी। की कहुँ ते आईं परमेसरी। —जायसी ग्रं०, पृ० ८२।

परमेसुर(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० परमेश्वर] दे० 'परमेश्वर'। उ०—बहुरयो आनि सिला पर नाख्यो। तब यह सिसु परमेसुर राख्यो। —नंद० ग्रं०, पृ० २५९।

परमेस्वर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परमेश्वर] दे० 'परमेश्वर'। उ०—जज्ञ दान अर्बुद अवनि परमेस्वर पावन सुध्रुव। —पृ० रासो, पृ० १३।

परमोद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रमोद] दे० 'प्रमोद'।

परमोध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रबोध] दे० 'प्रबोध'।

परमोधना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रबोधन] : 'प्रबोधना'। उ० —सहज धार हरिध्यान ज्ञान से मन परमोधै। —पलटू०, पृ० १००।

परयंक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पर्यङ्क] दे० 'पर्यंक'।

परयंत(पु)—अव्य० [सं० पर्यन्त] दे० 'पर्यंत'। उ०—पकड़ समसेर संग्राम में पैसिबे, देह परयत कर जुद्ध भाई। —कबीर श०, पृ० ९८।

परयस्तापह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्यस्तापह्नुति] दे० 'पर्यस्तापह्नुति'।

परयाय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पर्याय] दे० 'पर्याय' (अलंकार)। उ०—ताहि कहत परयाय हैं भूषन सुकवि विवेक। —भूषण ग्रं० पृ० ५३।

परयुग—संज्ञा पुं० [सं०] परवर्ती युग। परवर्ती काल (को०)।

पररमण—संज्ञा पुं० [सं०] परकीया स्त्री के साथ रमण करनेवाला। यार। उपपति [को०]।

परराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रु का राज्य। २. स्वराष्ट्र के अतिरिक्त अन्य राष्ट्र जिसमें मित्र, शत्रु और तटस्थ राष्ट्र आते है। स्वराष्ट्र का उलटा।

यौ०—**परराष्ट्रमंत्री**—शासनविधान में वह सर्वोच्च अधिकारी जो विदेशी मामलों की देखरेख करता है। **परराष्ट्र विभाग** = वह विभाग जो परराष्ट्र संबंधी मामलों की देखरेख करता है।

परह—संज्ञा पुं० [सं०] नील भृंगराज। नीली भँगरैया।

परल—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली पेड़ जिसकी जड़ और छाल दवा के काम में आती है और लकड़ी इमारतों में लगती है। परताल।

परलउ‡(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रलय] दे० 'प्रलय'।

परलय(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रलय] प्रलय। सृष्टि का नाश या अंत। उ०—पल में परलय होयगी बहुरि करोगे कब्ब ? —कबीर (शब्द०)।

परला—वि० [सं० पर (= उधर का, दूसरा) + ला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० परली] उस ओर का। दूसरी तरफ का। उरला का उलटा। उ०—आँगन के सामने कमरे के परली ओर बरामदे से झाँककर मिसेज शुक्ला ने उत्तर दिया। —अभिशप्त, पृ० २१।

मुहा०—**परले दरजे का** = दे० 'परले सिरे का'। **परले सिरे का** = हद दरजे का। अत्यंत। बहुत अधिक। **परले पार होना** = (१) अंत तक पहुँचना। बहुत दूर तक जाना। (२) समाप्त होना।

परलाप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रलाप] दे० 'प्रलाप'। उ०—भीखा मन परलाप बडा कहि साँच बजावत गाला की। —भीखा० श०, पृ० २८।

परलै(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रलय] दे० 'प्रलय'। उ०—मरजाद छोड़ि सागर चले कहि हमीर परलै करन। —हम्मीर०; पृ० १३।

परलोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूसरा लोक। वह स्थान जो शरीर छोड़ने पर आत्मा को प्राप्त होता है। जैसे, स्वर्ग, बैकुंठ आदि।

यौ०—**परलोकगमन, परलोकप्राप्ति, परलोकयान, परलोकवास** = मृत्यु। मौत। **परलोकवासी** = मृत। मरा हुआ (आदरार्थ)।

मुहा०—**परलोकगामी होना** = मरना। **परलोक बनाना** = मरने के बाद अच्छा लोक प्राप्त करना। सद्गति होना। **परलोक बिगड़ना** = मृत्यु के अनंतर अच्छे लोक का न मिलना। **परलोक सँवारना** = जीवन में उस प्रकार के काम करना जिससे मृत्यु के अनंतर अच्छे लोकप्राप्ति की संभावना हो। उ०—पाइ न जेहि परलोक सँवारा। —मानस, ७।२७। **परलोक सिधारना** = मरना।

२. मृत्यु के उपरांत आत्मा की दूसरी स्थिति की प्राप्ति। जैसे, जो ईश्वर और परलोक में विश्वास नहीं करते वे नास्तिक कहलाते हैं। (शब्द)।

परलोकगमन—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु।

परलोकप्राप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु।

परलौ(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रलय, हिं० परलउ] दे० 'प्रलय'। उ०—भा परलौ निअराएन्हि जबही। मरै सो ताकर परलौ तबही। —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२५।

परवंचना⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रवञ्चना] दे० 'प्रवंचना'। उ०—विद्या लौं सीख्यो भलो जिन परवंचन ज्ञान।—शकुंतला, पृ० ९६।

परवक्रय्यपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह माल जिसका सौदा दूसरे के साथ हो चुका हो।

विशेष—ऐसा सौदा किसी दूसरे ग्राहक के हाथ बेचनेवालों के लिये कौटिल्य और स्मृतिकारों ने दंड का विधान किया है।

परवर⑤[1]—संज्ञा पुं० [सं० पटोल] परवल।

परवर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग।

परवर[3]—संज्ञा पुं० [सं० प्रवर] दे० 'प्रवर'।

परवर[4]—वि० [फ़ा०] पालन करनेवाला। पोषण करनेवाला। जैसे, परवरदिगार, गरीबपरवर आदि (को०)।

परवरदा—वि० [फ़ा० परवर्दह्] पालित। पोषित। उ०—छाँव सूँ मेरे हुए हैं बादशाह, साया परवरदा हैं मेरे सब मुलूक।—दक्खिनी०, पृ० १८६।

परवरदिगार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. पालन करनेवाला। पोषण करनेवाला। २. ईश्वर।

परवरिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पालन। पोषण।

परवर्त⑤—वि० [सं० प्रवर्तित] प्रतिष्ठित (को०)।

परवर्ती—वि० [सं० परवर्तिन्] बाद में होनेवाला। पश्चाद्वर्ती। उ०—यदि मैंने अंतिम बार माँ का मुख न देखा होता तो संभवत. मेरा परवर्ती जीवन ऐसा विपाक्त न हुआ होता।—पर्दे०, पृ० ३१।

परवल—संज्ञा पुं० [सं० पटोल] १. एक लता जो टट्टियों पर चढ़ाई जाती है और जिसके फलों की तरकारी होती है।

विशेष—यह सारे उत्तरीय भारत में पंजाब से लेकर बंगाल आसाम तक होती है। पूरब में पान के भीटों पर परवल की बेलें चढ़ाई जाती हैं। फल चार पाँच अंगुल लंबे और दोनों सिरों की ओर पतले या नुकीले होते हैं। फलों के भीतर गूदे के बीच गोल बीजों की कई पंक्तियाँ होती हैं। परवल की तरकारी पथ्य मानी जाती है और ज्वर के रोगियों को दी जाती है। वैद्यक में परवल के फल कटु, तिक्त, पाचन, दीपन, हृद्य, वृष्य, उष्ण, सारक तथा कफ, पित्त, ज्वर, दाह को हटानेवाले माने जाते हैं। अब विरेचक और पत्ते पित्त और पित्तनाशक कहे गए हैं।

पर्या०—कुलक। तिक्तक। पटु। कर्कशफल। कुलज। वाजिमान। लताफल। राजफल। वरतिक्त। अमृतफल। कटुफल। राजनाम। बीजगर्भ। नागफल। कुष्ठारि। कासमर्दन। ज्योत्स्नी। कच्छुघ्नी।

२. चिचड़ा जिसके फलों की तरकारी होती है।

परवश—वि० [सं०] जो दूसरे वश में हो। पराधीन।

परवश्य—वि० [सं०] जो दूसरे के वश में हो। पराधीन।

परवश्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पराधीनता।

परवस्ती⑤‡—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० परवरिश] दे० 'परवरिश'।

परवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पुट या पूर, हिं० पुर, पुरवा] [स्त्री० अल्पा० परई] मिट्टी का बना हुआ कटोरे के आकार का बरतन। कोसा।

परवा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिपदा, प्रा० पडिवा] पक्ष की पहली तिथि। पड़वा। परिवा।

परवा[3]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ चिंता। व्यग्रता। खटका। आशंका। जैसे, (क) उसकी धमकी की मुझे परवा नहीं है। (ख) तुम मेरा साथ न दोगे तो कुछ परवा नहीं। २. ध्यान। ख्याल। किसी बात की ओर दत्तचित्त होने का भाव। जैसे—(क) तुम उस लड़के की पढ़ाई लिखाई की कुछ परवा नहीं रखते। (ख) उसे इतना लोग समझाते हैं पर वह कुछ परवा नहीं करता। ३ आसरा। भरोसा। जैसे,—जिसके घर में सब कुछ है उसे दूसरे की क्या परवा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

परवा[4]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

परवाई⑤—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० परवाह] दे० 'परवा' या 'परवाह'।

परवाच्य—वि० [सं०] जिसे दूसरे बुरा कहते हों। निंदित।

परवाज[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० परवाज़] उड़ान। उ०—सतलोक सिधार साथ सतसाज। उस वक्त करे बुलंद परवाज।—कबीर मं०, पृ० १४६। २. नाज। घमंड (को०)।

परवाज[2]—वि० १. उड़नेवाला। २. घमंडी। सिट्टू। (समासांत में प्रयुक्त)।

परवाजी†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] उड़ान (को०)।

परवाणि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्माध्यक्ष। २. वत्सर। ३. कार्तिकेय का वाहन, मयूर।

परवाणि⑤[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाण] दे० 'प्रमाण'। उ०—एकै अक्खर पीव का, सोई सत करि जाणि। राम नाम सतगुरु कह्या, दादू सो परवाणि।—दादू०, पृ० ३२।

परवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ विरोधात्मक उत्तर। २. परनिंदा। ३. प्रवाद। अफवाह (को०)।

परवादी—संज्ञा पुं० [सं० परवादिन्] वह जो परवाद करे (को०)।

परवान⑤—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाण] १. प्रमाण। सबूत। उ०—हमारे कहत रहै नहिं मानू। जो वह कहै सोइ परवानू।—पदमावत, पृ० २५६। २. यथार्थ बात। सत्य बात। ३. सीमा। मिति। अवधि। हद। उ०—(क) तपबल तेहि करि आपु समाना। रखिहौं इहाँ बरस परवाना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नौ लख जल के जीव बखानी। चतुर लक्ष पक्षी परवानी।—कबीर सा०, पृ० ३७।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राय. अव्ययवत् रहता है।

मुहा०—**परवान चढना** = (१) पूरी आयु तक पहुँचना। सब सुखों का पूरा भोग करना। जैसे, फले फूले परवान चढ़े (स्त्रि० आशीर्वाद)। २. विवाहित होना। ब्याहने जाना (स्त्रि०)।

परवान²—संज्ञा पुं० [हिं० पाल, फ़ा० बादबान] जहाज का पाल। बादबान।

परवानगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] इजाजत। आज्ञा। अनुमति। उ०—तब वा लाछाबाई ने बाजबहादुर को परवानगी दीनी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५६।

परवाननाⓅ—क्रि० अ० [सं० प्रमाण] प्रमाण मानना। ठीक समझना। उ०—हमरे कहत न जो तुम मानहु। जो वह कहै सोइ परवानहु।—जायसी (शब्द०)।

परवाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० परवान] १. आज्ञापत्र।

यौ०—**परवाने नवीस** = परवाना लेखक।

२. फतिंगा। पंखी। पतंग। ३. वह जो आसक्त हो। आशिक (को०)। ४. कुत्ते के बराबर एक जंतु जो सिंह के आगे आगे चलता है (को०)।

परवान्—वि० [सं० परवत्] १. दूसरे के आश्रित। पराधीन। २. निस्सहाय। असहाय। निराश्रित [को०]।

परवाया—संज्ञा पुं० [हिं० पैर+पाया] चारपाई के पायों के नीचे रखने की चीज।

परवारⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० परिवार] दे० 'परिवार'। उ०—परगह सह परवार अरी सहमार उडाणू। सुरगण अंदप सुपह हुई बँध तासु छुडाणू।—रघु० रू०, पृ० ४८।

परवास¹—संज्ञा पुं० [सं० प्रवास] दे० 'प्रवास'। उ०—सब परवास निरंतर खेलहि, जहँ जस तहाँ समाया।—जग० बानी, पृ० १७।

परवास²—संज्ञा पुं० [सं० वास] आच्छादन। उ०—कपड़सार सूची सहस बाँधि बचन परवास। किय दुराउ यह चतुरी गो सठ तुलसीदास।—तुलसी (शब्द०)।

परवालⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाल] दे० 'प्रवाल'।

परवासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा। बंदाक। परगाछा।

परवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परवासिका'।

परवाह¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० परवा] १ चिंता। व्यग्रता खटका। आशंका। उ०—चित्र के से लिखे दोऊ ठाढ़े रहे काशीराम, नाहीं परवाह लोग लाख करो लरिबो।—काशीराम (शब्द०)। २. ध्यान। ख्याल। किसी बात की ओर चित्त देना। ३ आसरा। भरोसा। उ०—जग में गति जाहि जगत्पति की परवाह सो ताहि कहा नर की।—तुलसी (शब्द०)।

परवाह²—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाह] बहने का भाव।

मुहा०—**परवाह करना** = बहाना। धारा मे छोड़ना। जैसे,—इस मुर्दे को परवाह कर दो।

परवाहना—क्रि० स० [हिं० परवाह] प्रवाह करना। बहाना। उ०—या महाराणी उच्चरै, गुहड़ा तजो सचीत। परवाहो खगधार दे जमणा धार प्रवीत।—रा० रू०, पृ० ३०।

परवी†—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्विणी] पर्व काल। पुण्य काल। पर्विणी। उ०—परवी परै वस्त वा होई। तेहि दिन मैथुन करै जो कोई।—विश्राम० (शब्द०)।

परवीनⓅ—वि० [सं० प्रवीण] दे० 'प्रवीण'। उ०—पद्मावति परवीन अति वचनु मानि मनु लीन।—रसरतन, पृ० ५६।

परवृढ—संज्ञा पुं० [सं० परिवृढ] स्वामी। सरदार। उ०—नर नामन तें पति जुरे, परवृढ इन ईसान। भू भुज, धरनीकंत, विभु, नरपति, ईस, सुजान।—नंद, ग्रं०, पृ० १०८।

परवेखⓅ—संज्ञा पुं० [सं० परिवेष] बहुत हलकी बदली के बीच दिखाई पड़नेवाला चंद्रमा के चारों ओर पड़ा हुआ घेरा। मंडल। चाँद की अथाई। उ०—सारी सहित किनारी मुख छबि देख। मनहुँ शरद निशि चहुँ दिशि दुति परवेख।—रहीम (शब्द०)।

परवेशⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रवेश] दे० 'प्रवेश'।

परवेश्म—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

परवेस—संज्ञा पुं० [सं० प्रवेश, हिं० परवेश] दे० 'प्रवेश'। उ०—वहँ नहिं चंद वहाँ नहिं सूरज, नाहि पवन परवेस।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४।

परव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र।

परश¹—संज्ञा पुं० [सं०] स्पर्शमणि। पारस पत्थर।

परश²—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] स्पर्श। छूना।

परशाखा—संज्ञा पुं० [सं०] परगाछा। बाँदा।

परशु—संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र जिसमे एक डंडे के सिरे पर एक अर्धचंद्राकार लोहे का फल लगा रहता है। एक प्रकार की कुल्हाडी जो पहले लड़ाई मे काम आती थी। तबर। भलुवा।

परशुधर—संज्ञा पुं० [सं०] १ परशु धारण करनेवाला। २ परशुराम। ३. गणेश। गणपति (को०)।

परशुपलाश—संज्ञा पुं० [सं०] फरसे का फल या अगला हिस्सा। परशु की धार [को०]।

परशुमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उँगलियों की एक मुद्रा।

परशुराम—संज्ञा पुं० [सं०] जमदग्नि ऋषि के एक पुत्र जिन्होंने २१ बार क्षत्रियों का नाश किया था। ये ईश्वर के छठे अवतार माने जाते हैं। 'परशु' इनका मुख्य शस्त्र था, इसी से यह नाम पड़ा।

विशेष—महाभारत के शांतिपर्व मे इनकी उत्पत्ति के संबंध मे यह कथा लिखी है,—कुशिक पर प्रसन्न होकर इंद्र उनके यहाँ गाधि नाम से उत्पन्न हुए। गाधि को सत्यवती नाम की एक कन्या हुई जिसे उन्होंने भृगु के पुत्र ऋचीक को ब्याहा।

ऋचीक ने एक बार प्रसन्न होकर अपनी स्त्री और सास के लिये दो चरु प्रस्तुत किए और सत्यवती से कहा कि 'इस चरु को तुम खाना। इससे तुम्हें परम शांत और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा। इस दूसरे चरु को अपनी माता को दे देना। इससे उन्हें अत्यंत वीर और प्रबल पुत्र उत्पन्न होगा जो सब राजाओं को जीतेगा। पर भूल से सत्यवती ने अपनी माता-वाला चरु खा लिया और गाधि की स्त्री, सत्यवती की माता ने सत्यवती का चरु खाया। जब ऋचीक को यह पता चला तब उन्होंने सत्यवती से कहा—'यह तो उलटा हो गया। तुम्हारे गर्भ से अब जो बालक उत्पन्न होगा वह बड़ा क्रूर और प्रचंड क्षात्रतेज से युक्त होगा और तुम्हारी माता के गर्भ से जो पुत्र होगा वह परम शांत, तपस्वी और ब्राह्मण के गुणों से युक्त होगा'। सत्यवती ने बहुत विनती की कि मेरा पुत्र ऐसा न हो, मेरा पौत्र हो तो हो। महाभारत के वनपर्व में यही कथा कुछ दूसरे प्रकार से है।

कुछ दिनों में सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि की उत्पत्ति हुई जो रूप और स्वाध्याय में अद्वितीय हुए और जिन्होंने समस्त वेद, वेदांग का तथा धनुर्वेद का अध्ययन किया। प्रसेनजित् राजा की कन्या रेणुका से उनका विवाह हुआ। रेणुका के गर्भ से पाँच पुत्र हुए—समन्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और राम या परशुराम। इसके आगे वनपर्व में कथा इस प्रकार है। एक दिन रेणुका स्नान करने के लिये नदी में गई थी। वहाँ उसने राजा चित्ररथ को अपनी स्त्री के साथ जलक्रीडा करते देखा और कामवासना से उद्विग्न होकर घर आई। जमदग्नि उसकी यह दशा देख बहुत कुपित हुए और उन्होंने अपने चार पुत्रों को एक एक करके रेणुका के बध की आज्ञा दी, पर स्नेहवश किसी से ऐसा न हो सका। इतने में परशुराम आए। परशुराम ने आज्ञा पाते ही माता का सिर काट डाला। इसपर जमदग्नि ने प्रसन्न होकर वर माँगने के लिये कहा। परशुराम बोले—'पहले तो मेरी माता को जिला दीजिए और फिर यह वर दीजिए कि मैं परमायु प्राप्त करूँ और युद्ध में मेरे सामने कोई न ठहर सके'। जमदग्नि ने ऐसा ही किया। एक दिन राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन जमदग्नि के आश्रम पर आया। आश्रम पर रेणुका को छोड़ और कोई न था। कार्तवीर्य आश्रम के पेड़ पौधों को उजाड़ होमधेनु का बछड़ा लेकर चल दिया। परशुराम ने आकर जब यह सुना तब वे तुरंत दौड़े और जाकर कार्तवीर्य की सहस्र भुजाओं को फरसे से काट डाला। सहस्रार्जुन के कुटुंबियों और साथियों ने एक दिन आकर जमदग्नि से बदला लिया और उन्हें बाणों से मार डाला। परशुराम ने आश्रम पर आकर जब यह देखा तब पहले तो बहुत विलाप किया, फिर संपूर्ण क्षत्रियों के नाश की प्रतिज्ञा की। उन्होंने शस्त्र लेकर सहस्रार्जुन के पुत्र पौत्रादि का बध करके क्रमशः सारे क्षत्रियों का नाश किया। परशुराम की इस क्रूरता पर ब्राह्मण समाज में उनकी निंदा होने लगी और परशुराम दया से खिन्न हो वन में चले गए। एक दिन विश्वामित्र के पौत्र परावसु ने परशुराम से कहा कि 'अभी जो यज्ञ हुआ था उसमें न जाने कितने प्रतापी राजा आए थे, आपने पृथ्वी को जो क्षत्रियविहीन करने की प्रतिज्ञा की थी वह सब व्यर्थ थी'। परशुराम इसपर क्रुद्ध होकर फिर निकले और जो क्षत्रिय बचे थे उन सबका बाल बच्चों के सहित संहार किया। गर्भवती स्त्रियों ने बड़ी कठिनता से इधर उधर छिपकर अपनी रक्षा की। क्षत्रियों का नाश करके परशुराम ने अश्वमेध यज्ञ किया और उसमें सारी पृथ्वी कश्यप को दान दे दी। पृथ्वी क्षत्रियों से सर्वथा रहित न हो जाय इस अभिप्राय से कश्यप ने परशुराम से कहा 'अब यह पृथ्वी हमारी हो चुकी अब तुम दक्षिण समुद्र की ओर चले जाओ'। परशुराम ने ऐसा ही किया।

वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि जब रामचंद्र शिव का धनुष तोड़ सीता को ब्याहकर लौट रहे थे तब परशुराम ने उनका रास्ता रोका और वैष्णव धनु उनके हाथ में देकर कहा कि 'शैव धनुष तो तुमने तोड़ा अब इस वैष्णव धनुष को चढ़ाओ। यदि इसपर बाण चढ़ा सकोगे तो मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा'। राम धनुष पर बाण चढ़ाकर बोले 'बोलो अब इस बाण से मैं तुम्हारी गति का अवरोध करूँ या तप से अर्जित तुम्हारे लोकों का हरण करूँ'। परशुराम ने हततेज और चकित होकर कहा 'मैंने सारी पृथ्वी कश्यप को दान में दे दी है, इससे मैं रात को पृथ्वी पर नहीं सोता। मेरी गति का अवरोध न करो, लोकों का हरण कर लो'।

परशुवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम जिसके पेड़ों के पत्ते परशु की सी तीखी धार के हैं।

परश्वध—संज्ञा पुं० [सं०] परशु। तब्बर। कुठार। कुल्हाड़ी।

परसंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रसङ्ग] स्त्री-पुरुष-संयोग। मैथुन। दे० 'प्रसंग'। उ०— दारु बिन सिंग बानरहित निखंग भयो, जंग भयो दारुन दुहूँ के परसंग मैं।—हम्मीर०, पृ० ५४।

परसंज्ञक—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा [को०]।

परसंसा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रशंसा] दे० 'प्रशंसा'।

परस¹—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] छूना। छूने की क्रिया या भाव। स्पर्श। उ०—दरस परस मजन अरु पाना। हरै पाप कह वेद पुराना।—तुलसी (शब्द०)।

परस²—संज्ञा पुं० [सं० परश] पारस पत्थर। स्पर्श मणि। उ०— उ०—गुंजा ग्रहै परस मनि खोई।—मानस, ७। ४४।

यौ०—परसपखान। परसमनि।

परस³—संज्ञा पुं० [सं० परशु, हिं० फरसा] फरसा। परशु। जैसे, परसधर, परसराम।

परसधर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परशुधर, हिं० परसुधर] दे० 'परशुराम'। उ०—बिधि करी परसधर, बोलि ठौर। जजमाँन कियउ भृगुकुल सुमौर।—ह० रासो, पृ० ११।

परसन(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्शन] १. छूना। छूने का काम २. छूने का भाव।

परसन२—वि० [सं० प्रसन्न] प्रसन्न। खुश। आनंदित। उ०—तबहिं असीस दई परसन ह्वै सकल होहु तुव कामा।—सूर (शब्द०)।

परसना(पु)१—क्रि० स० [सं० स्पर्शन] १. छूना। स्पर्श करना। २. छुलाना। स्पर्श कराना। उ०—साधन हीन दीन निज अघ बस शिला भई मुनि नारी। गृह ते गवनि परसि पद पावन घोर ताप तें तारी।—तुलसी (शब्द०)।

परसना२—क्रि० स० [सं० परिवेषण] भोज्य पदार्थ किसी के सामने रखना। परोसना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग भोजन और भोजन करनेवाले दोनों के लिये होता है। जैसे, खाना परसना, किसी को परसना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

परसनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्पर्शन] स्पर्श का भाव या स्थिति। उ०—कुचन की परसनि नीवी करसनि। सुखन की बरसनि मन की सरसनि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२२।

परसन्न(पु)—वि० [सं० प्रसन्न] दे० 'प्रसन्न'। उ०—पाहन पखान जे करहिं सेव। परसन्न होहि मन चाहि देव।—रसरतन, पृ० ५५।

परसन्नता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रसन्नता] दे० 'प्रसन्नता'।

परसपखान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श + पाषाण] पारस पत्थर। स्पर्श मणि। उ०—रूपवंत धनवंत सभागे। परसपखान पौरि तिन्ह लागे।—जायसी (शब्द०)।

परसपर—क्रि० वि० [सं० परस्पर] दे० 'परस्पर'। उ०—(क) मुनि रघुबीर परसपर नवहीं।—मानस, २। १०८। (ख) मोहन लखि छबि परसपर चंचल चख चित चोर। मंजु मालती कुंज मै बिहरत नदकिसोर।—स० सप्तक, पृ० ३४३।

परसराम—संज्ञा पुं० [सं० परशुराम] दे० 'परशुराम'। उ०—ऋषि जामदग्नि सुत परसराम, हनि क्षत्रि सकल द्विज तेज धाम।—ह० रासो, पृ० ७।

परसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] किसी शब्द के आगे जुड़नेवाला प्रत्यय।

परसवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] पर या उत्तरवर्ती वर्ण के समान वर्ण।

परसा१—संज्ञा पुं० [सं० परशु] फरसा। परशु। तबर। कुल्हाड़ा। कुठार।

परसा२—संज्ञा पुं० [हिं० परसना] एक मनुष्य के खाने भर का भोजन जो पात्र में रखकर दिया जाय। पत्तल।

परसाद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रसाद] दे० 'प्रसाद'। उ०—तुम्र परसाद विखाद नयन जल काजरे मोर उपकारे।—विद्यापति, पृ० १११।

परसादी—संज्ञा स्त्री० [हिं० परसाद+ई (प्रत्य०)] दे० 'प्रसाद'। उ०—उन भाखा कढ़िया परसादी। इन कढ़ाव हलुवे की बाँधी।—घट०, पृ० २६०।

परसाना(पु)१—क्रि० स० [हिं० परसना] छुलाना। स्पर्श कराना। उ०—सुरसरि जब भुव ऊपर आवै। उनको अपनो जल परसावै।—सूर (शब्द०)।

परसाना२—क्रि० स० [हिं० परसना] भोजन आदि बँटवाना। भोजन का सामान सामने रखवाना। उ०—महर गोप सब ही मिल बैठे पनवारे परसाए।—सूर (शब्द०)।

परसामान्य—संज्ञा पुं० [सं०] गुण-कर्म-समवेत सत्ता (जैनदर्शन)।

परसाल१—अव्य० [सं० पर+फा० साल] १. गत वर्ष। पिछले साल। २. आगामी वर्ष। अगले साल।

परसाल२—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी+सार] एक प्रकार की घास जो पानी मे पैदा होती है। इसे पसगारी भी कहते हैं।

परसिद्ध(पु)—वि० [सं० प्रसिद्ध] दे० 'प्रसिद्ध'।

परसिद्धि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रसिद्धि] दे० 'प्रसिद्धि'।

परसिया—संज्ञा स्त्री० [सं० परशु, हिं० परसा] हँसिया।

परसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली जो नदियों में होती है।

परसीया—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी से मेज, कुरसी इत्यादि बनाई जाती है और जो मदरास और गुजरात में बहुतायत से होता है। इसकी लकड़ी स्याह, सरस और मजबूत होती है।

परसु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परशु] दे० 'परशु'।

यौ०—**परसुधर** = परशुधर। उ०—पथ परसुधर आगमनु समय सोच सब काहु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ७१। **परसुराम** = 'परशुराम'। उ०—परसुराम पितु अग्या राखी।—मानस, २।१७४।

परसूक्ष्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक सूक्ष्म परिमाण जो आठ परमाणुओं के बराबर माना गया है।

परसूत‡(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० प्रसूत] दे० 'प्रसूत'।

परसेद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्वेद] दे० 'प्रस्वेद'। उ०—घटि घटि गोपी घटि घटि कान्ह। घटि घटि राम अमर अस्थान। गंगा जमना अंतर वेद। सुरसती नीर बहै परसेद।—दादू०, पृ० ६७६।

परसों—अव्य० [सं० परश्व] १. गत दिन से पहले दिन। बीते हुए कल से एक दिन पहले। जैसे,—मैं परसों वहाँ गया था। २. आगामी दिन से आगे के दिन। आनेवाले कल से एक दिन आगे। जैसे,—वह परसों जाएगा।

परसोतम(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषोत्तम] दे० 'पुरुषोत्तम'।

परसोत्तम‡(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषोत्तम] दे० 'पुरुषोत्तम'। उ०—प्रात समे श्रीवल्लभ सुत को बदन कमल को दरसन कीजै। तीन लोक बंदित, परसोत्तम, उपमा कहा जो पटतर दीजै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३५।

परसोर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

परसौहाँ(पु)†—वि० [सं० स्पर्श, हिं० परस + औहाँ (प्रत्य०)] स्पर्श करनेवाला। छूनेवाला। उ०—तिय तरसौहैं मुनि किए करि सरसौहैं नेह। घर परसौहैं ह्वै रहे झर बरसौहैं मेह।—बिहारी (शब्द०)।

परस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] पराई स्त्री । परकीया ।

परस्त्रीगमन—संज्ञा पुं० [सं०] पराई स्त्री से साथ संभोग ।

परस्पर—क्रि० वि० [सं०] एक दूसरे के साथ । आपस में । जैसे,—(क), उनमे परस्पर बड़ी प्रीति है । (ख) यह तो परस्पर का व्यवहार है ।

परस्परज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] एक दूसरे को जाननेवाला । मित्र । सखा [को०] ।

परस्परापेक्ष्य—वि० [सं०] एक दूसरे की अपेक्षा रखनेवाला । अन्योन्याश्रित । उ०—किंतु बहुत से परस्परापेक्ष्य और इद्रिय-ग्राह्य होते है । —संपूर्णानंद अभि० ग्र०, पृ० ३३२ ।

परस्परोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें उपमान की उपमा उपमेय को और उपमेय की उपमा उपमान को दी जाती है । इसे 'उपमेयोपमा' भी कहते हैं ।

परस्वत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परस्वत्व' [को०] ।

परहरना(पु)—क्रि० स० [सं० परि + हरण] परित्याग करना । छोड़ना । उ०—(क) घट की मानि अनीति सब मन की मेटि उपाधि । दादू परहर पंचकी, राम कहैं ते साध ।—दादू०, पृ० ४१० । (ख) भक्ति छुड़ावै निगुरा करई । कहे कहाए जो परहरई ।—विश्राम (शब्द०) ।

परहार—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'प्रहार' । २. दे० 'परिहार' ।

परहारना(पु)—क्रि० स० [हिं० परिहार] दे० 'परहरना' । उ०—हरष शोक दोऊ परहारे । होय मगन गुरु चरणै धारै ।—कबीर सा०, पृ० ८७४ ।

परहारी—संज्ञा पुं० [सं० प्रहरी] जगन्नाथ जी के मंदिर के पुजारी जो मंदिर ही मे रहते हैं ।

परहास(पु)†—संज्ञा पुं० [डिं०] डिंगल के साणोर गीत का एक भेद । इसे प्रहास भी कहते हैं ।—रघु० रू०, पृ० ५१ ।

परहेज—संज्ञा पुं० [फा० परहेज] १. स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने-वाली बातों से बचना । रोग उत्पन्न करनेवाली या बढ़ानेवाली वस्तुओं का त्याग । खाने पीने आदि का संयम । जैसे,—वह परहेज नहीं करता, दवा क्या फायदा करे ? २. बुरी बातों से बचने का नियम । दोषो और बुराइयों से दूर रहना ।

क्रि० प्र०—करना ।—से रहना ।—होना ।

परहेजगार—संज्ञा पुं० [फा० परहेजगार] १. परहेज करनेवाला । संयमी । कुपथ्य न करनेवाला । २ बुराइयो से बचनेवाला । दोषो से दूर रहनेवाला ।

परहेजगारी—संज्ञा स्त्री० [फा० परहेजगारी] १ परहेज करने का काम । संयम । २. दोषो और बुराइयो का त्याग ।

परहेलना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रहेलन] निरादर करना । तिरस्कार करना । उ०—मैं पिउ प्रीति भरोसे गरब किन्ह जिय माँह । तेहि रिस हौं परहेली रूसेउ नागर नाह ।—जायसी (शब्द०) ।

परहोंक‡—संज्ञा पुं० [देश०] पहली बिक्री । बोहनी । उ०—जइसन परहोक तइसन बीक ।—विद्यापति, पृ० २७३ ।

परांगद—संज्ञा पुं० [सं० पराङ्गद] शिव ।

परांगव—संज्ञा पुं० [सं० पराङ्गव] समुद्र ।

परांचा—संज्ञा पुं० [फा० परोच] १. तख्ता । पटरी । २. तख्तों की पाटन जो आसपास के तल से ऊँचाई पर हो और जिसपर उठ बैठ सकते हों । पाटन । ३. बेड़ा ।

परांज—संज्ञा पुं० [सं० पराञ्ज] १. तेल निकालने का यंत्र । कोल्हू । २. फेन । ३. छुरी का फल ।

परांजन—संज्ञा पुं० [सं० पराञ्जन] दे० 'परांज' ।

परांवा—संज्ञा पुं० [लश० ?] एक प्रकार की कम चौड़ी और लंबी नाव ।

परांठा—संज्ञा पुं० [हिं० पलटना] घी लगाकर तवे पर सेंकी हुई चपाती ।

परा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चार प्रकार की वाणियों में पहली वाणी जो नादस्वरूपा और मूलाधार से निकली हुई मानी जाती है । २. वह विद्या जो ऐसी वस्तु का ज्ञान कराती है जो सब गोचर पदार्थों से परे हो । ब्रह्मविद्या । उपनिषद् विद्या । ३. एक प्रकार का सामगान । ४. एक नदी का नाम । ५. गंगा । ६. बाँझ ककोड़ा । बध्या कर्कोटकी ।

परा[2]—वि० स्त्री० [सं०] १. जो सबसे परे हो । २. श्रेष्ठ । उत्तम ।

परा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० पारना] रेशम खोलनेवालों का लकड़ी का बारह चौदह अंगुल लंबा एक औजार ।

परा[4]—संज्ञा पुं० [फा० परह् ?] पंक्ति । कतार । दे० 'परी' । उ०—राजकुमार कला दरसावत पावत परम प्रसंसा । सखा प्रमोदित परा मिलावत जहँ रघुकुल अवतंसा ।—रघुराज (शब्द०) ।

परा[5]—उप० [सं०] संस्कृत का एक उपसर्ग जो अर्थ में प्रातिलोम्य, आभिमुख्य, धर्षण, प्राधान्य, विक्रम, स्वातंत्र्य, गमन, घातन आदि विशेषताएँ व्यक्त करता है । जैसे, पराहत, परागत, पराधीन, पराक्रांत, पराजित आदि [को०] ।

पराअण—वि० [सं० परायण] दे० 'परायण' । उ०—कित्ति लुद्ध सूर संगाम, धम्म पराअण हिअअ, विपअकम्म नहु दीन जपइ ।—कीर्ति०, पृ० ६ ।

पराइण—वि० [सं० परायण] लीन । निमग्न । परायण । उ०—दादू जुरा काल जम्मण मरण, जहाँ जहाँ जिव जाइ । भगति पराइण लीन मन, ताको काल न खाइ ।—दादू०, पृ० ४०४ ।

पराई—वि० स्त्री० [हिं० पराया] अन्य की । दूसरे की । उ०—(क) बिनु जोबन भइ आस पराई । कहा सो पूत खंभ होय आई ।—जायसी (शब्द०) । (ख) तोहि कौन मति रावन आई । आजु कालि दिन चारि पाँच मे लंका होत पराई ।—सूर (शब्द०) । २. जो आत्मीय न हो । दूसरा । बिराना । उ०—मैंने फिर सिखवाया कि तू आ जा, घर में बसना ठीक है । पराई जगह के पैर नहीं होते ।—पिंजर०, पृ० ६३ ।

पराक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनु आदि स्मृतियों के अनुसार एक

प्रकार का कृच्छ्र व्रत जो यतात्मा और प्रमादरहित होकर और बारह दिनों तक निराहार रहकर किया जाता था। इसका विधान धर्मशास्त्रों में प्रायश्चित्त के प्रकरण में है। २. खड्ग। ३. एक रोग का नाम। ४. एक क्षुद्र जंतु।

पराक[2]—वि० लघु। छोटा [को०]।

पराकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपेक्षा करना। २. दूर करना। ३. अस्वीकार करना [को०]।

पराकाश—संज्ञा पुं० [सं०] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार दूरदर्शिता।

पराकाष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चरम सीमा। सीमांत। हद। अंत। २. गायत्री का एक भेद। ३. ब्रह्मा की आधी आयु।

पराकोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पराकाष्ठा। २. ब्रह्मा की आधी आयु।

पराकू—वि० [सं०] दे० 'पराच्'।

पराक्पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ी। चिरचिटा।

पराक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **पराक्रमी**] १. बल। शक्ति। सामर्थ्य। २. अभियान। आक्रमण (को०)। ३. विष्णु (को०)। ४ पुरुषार्थ। पौरुष। उद्योग।

मुहा०—**पराक्रम चलना** = पुरुषार्थ या उद्योग हो सकना।

पराक्रमी—वि० [सं० **पराक्रमिन्**] १. बलवान्। बलिष्ठ। २. वीर। बहादुर। ३. पुरुषार्थी। ४. उद्योगी। उद्यमी।

पराक्रांत—वि० [सं० **पराक्रान्त**] दे० 'पराक्रमी'। २. दूसरों द्वारा आक्रांत या पराजित। ३. जिसका मुख मोड़ दिया गया हो [को०]।

पराग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह रज या धूलि जो फूलों के बीच लंबे केसरों पर जमा रहती है। पुष्परज।

विशेष—इसी पराग के फूलों के बीच के गर्भकोशों मे पड़ने से गर्भाधान होता और बीज पड़ते हैं।

२. धूलि। रज। ३ एक प्रकार का सुगंधित चूर्ण जिसे लगाकर स्नान किया जाता है। ४. चंदन। ५. उपराग। ग्रहण। ६ कपूररज। कपूर की धूल या चूर्ण। ७. विख्याति। ८. एक पर्वत। ९. स्वच्छंद गति वा गमन।

पराग†[2]—संज्ञा पुं० [सं० **प्रयाग**] दे० 'प्रयाग'। उ०—गया गोमती काशि परागा। होइ पुण्य जन्म शुद्धि अनुरागा।—कबीर सा०, पृ० ४०२।

परागकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] फूलों के बीच में वे पतले लंबे सूत जिनकी नोक पर पराग लगा रहता है। इन्हे पौधों की पुं० जननेंद्रिय समझना चाहिए।

परागत—वि० [सं०] १. घिरा हुआ। आवृत। २. मरा हुआ। मृत। ३ विस्तृत [को०]।

परागति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री।

परागना(पु)—क्रि० स० [सं० **उपराग**] अनुरक्त होना। उ०—ऊधो तुम हो, अति बड़ भागी। अपरस रहत सनेह तगा ते नाहिन मन अनुरागी। पुरइन पात रहत जल भीतर ता रस देह न दागी। ज्यों जल माँह तेल की गागरि बूँद न ताको लागी। प्रीति नदी महँ पाँव न बोरयो दृष्टि न रूप परागी। सूरदास अबला हम भोरी गुर चींटी ज्यों पागी।—सूर (शब्द०)।

परागराज†—संज्ञा पुं० [सं० **प्रयागराज**] दे० 'प्रयाग'। उ०—महाराज, प्रस्थान तो परागराज है।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४९६।

पराङ्मुख—वि० [सं०] १. मुँह फेरे हुए। विमुख। २. जो ध्यान न दे। उदासीन। ३. विरुद्ध।

पराच्—वि० [सं०] १. प्रतिलोमगामी। उलटा चलनेवाला। २. उद्धवगामी। ३ अप्रत्यक्षगम्य। परोक्षगम्य। ४. बाह्योन्मुख।

पराचित[1]—वि० [सं०] दूसरों द्वारा प्रतिपालित। परपोषित [को०]।

पराचित[2]—संज्ञा पुं० दास। गुलाम [को०]।

पराचित‡—संज्ञा पुं० [सं० **प्रायश्चित्त**] 'प्रायश्चित्त'।

पराचीन(पु)†[1]—वि० [सं० **प्राचीन**] दे० 'प्राचीन'। उ०—तब तुव अल्हन जल आनहि पराचीन यह वत्त।—पृ० रासो, पृ० ११३।

पराचीन[2]—वि० [सं०] १. पराङ्मुख। २. अनुपयुक्त। ३. बहिर्मुख [को०]।

पराछित†—संज्ञा पुं० [सं० **प्रायश्चित्त**] दे० 'प्रायश्चित्त'। उ०—याको धूर गुनौरे डारो। दूत पराछित या विधि मारो।—कबीर सा०, पृ० ५३६।

पराजय—संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय का उलटा। हार। शिकस्त।

क्रि० प्र०—**करना**।—**होना**।

पराजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **उपराजिका** या हिं० **परज**] परज नाम की रागिनी।

पराजित—वि० [सं०] परास्त। पराभूत। हारा हुआ।

पराजिष्णु—वि० [सं०] १. पराजय योग्य। जिसे परास्त किया जा सके। २. पराजित। परास्त [को०]।

पराजै(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० **पराजय**] दे० 'पराजय'। उ०—जीत लीधी जमी कठैथी जेसरी, पराजै हुई नँह फते पाई।—रघु० रू०, पृ० ३१।

पराडीन—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चाद्गति। पीछे चलना या उड़ना [को०]।

पराण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **प्राण**] दे० 'प्राण'। उ०—साँई तेरे नाँव परि सिर जीव करूँ कुरबान। तन मन तुम परि वारणैं, दादू पिंड पराण।—दादू०, पृ० ३८१।

पराणसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपचार। चिकित्सा। दवा करना। [को०]।

परात—संज्ञा स्त्री० [सं० **पात्र**; तुल० पुर्त० **प्राट**] थाली के आकार का एक बड़ा बरतन जिसका किनारा थाली के किनारे से ऊँचा होता है। यह आटा गूँधने, हाथ पैर धोने आदि के काम आता है। उ०—कोउ परात कोउ लोटा लाई। साह सभा सब हाथ धोवाई।—जायसी (शब्द०)।

परातपर(पु)—वि० संज्ञा पुं० [सं० **परात्पर**] दे० 'परात्पर'। उ०—

महत्तत्व परे मूल माया परे ब्रह्म, ताहि तै परातपर सुंदर कहतु है।—सुंदर० ग्रं० भा० २, पृ० ५६५।

परात्पर[1]—वि० [सं०] जिसके परे कोई दूसरा न हो। सर्वश्रेष्ठ।

परात्पर[2]—संज्ञा पुं० १. परमात्मा। २. विष्णु।

परात्प्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] उलप नाम का तृण। एक घास जो कुश की तरह की होती है और जिसमे जौ या गेहूँ के से दाने पड़ते हैं। इसकी बालों मे टूँड नही होते।

परात्मा—संज्ञा पुं० [सं० परात्मन्] परमात्मा। परब्रह्म।

परादन—संज्ञा पुं० [सं०] फारस का घोड़ा।

पराधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीव्र मानसिक पीड़ा। २. मृगया। आखेट [को०]।

पराधीन—वि० [सं०] परवश। जो दूसरे के अधीन हो। जो दूसरे के ताबे हो। उ०—पराधीन सुख सपनेहु नाही।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—परतंत्र। परवश।

पराधीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] परतंत्रता। दूसरे की अधीनता।

परानⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० प्राण, हिं० पराख] दे० 'प्राण'। उ०—(क) वाणी निमल पत्र पराना। पहिली सीस मिले भगवाना।—दादू०, पृ० ६३८। (ख) आजु कया पिंजर-बँध टूटा। आजु परान परेवा छूटा।—पदमावत, पृ० २४६।

परानाⓟ†—क्रि० अ० [सं० पलायन] भागना। उ०—(क) आज जो तरवर चलभल नाहीं। आवहु यहि बन छाँड़ि पराही।—जायसी (शब्द०)। (ख) भाई रे गैया एक विरंचि दियो है भार अमर भो भाई। नौ नारी को पानी पियत है तृषा तऊ न बुझाई। कोठा बहत्तरि औ लौ लावे बज्र केवार लगाई। खूँटा गाड़ि डोर दृढ़ बाँधो तउ वह तोरि पराई।—कबीर (शब्द०)। (ग) देखि विकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लइ गए पराई।—मानस, १।१७९। (घ) जासु देस नृप लीन्ह छोडाई। समर सेन तजि गयउ पराई।—तुलसी (शब्द०)।

परानी†—संज्ञा पुं० [सं० प्राणी] दे० 'प्राणी'। उ०—बूझोरे नर परानी कया मुवचै अधिकार। गण गंधर्व मुनि देव ऋषि सब मिलि कीन्ह अहार।—कबीर सा०, पृ० ५१।

परान्न—संज्ञा पुं० [सं०] पराया धान्य। दूसरे का दिया हुआ भोजन।

परान्नभोजी—वि० [सं० परान्नभोजिन्] दूसरे का दिया अन्न खा-कर जीवनयापन करनेवाला [को०]।

परापतिⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राप्ति] दे० 'प्राप्ति'। उ०—जन रज्जब गुरु की दया दृष्टि परापति होय। प्रगट गुपत पिछानिए जिसहिं न दीसै कोय।—रज्जब०, पृ० ५।

परापर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] फालसा।

परापर[2]—वि० [सं० परात्पर] दे० 'परात्पर'। उ०—ब्रह्मसार निराकार परापर नूर पियारो। बसो सबै जहँ वास नाथ निज आप नियारो।—राम० धर्म०, पृ० १७३।

परापर[3]—वि० [सं०] वैशेषिक के अनुसार परत्व और अपरत्व गुणों से युक्त [को०]।

परापरीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० परा+अपरा] परत्व और अपरत्व। विद्या और अविद्या। ज्ञान और अज्ञान। उ०—परापरी पासै रहै, कोई न जाणै ताहि। सतगुरु दिया दिखाइ करि, दादू रह्या ल्यो लाइ।—दादू०, पृ० ८।

परापित†—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्राप्ति'। उ०—धरम पंथ छाड़ो जनि कोई। धरमहि सिद्धि परापित होई।—चित्रा०, पृ० ४४।

पराभव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पराजय। हार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. तिरस्कार। मानध्वंस। ३. विनाश। ४. वैश्य युग के अंतर्गत पाँचवा वर्ष।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार इस वर्ष अग्नि, शस्त्र पीड़ा, रोग, आदि होते हैं और गो ब्राह्मण को विशेष भय होता है।

पराभिक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के वानप्रस्थ जो गृहस्थों के घर से थोड़ी भिक्षा लेकर वन में अपना कालक्षेप करते हैं।

पराभूत—वि० [सं०] १. पराजित। हारा हुआ। २. ध्वस्त। नष्ट। ३. अनादृत। तिरस्कृत (को०)।

पराभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पराभव' [को०]।

पराभौ—संज्ञा पुं० [सं० पराभव] १. तिरस्कार। अनादर। उ०—तब लौं उबैने पाय फिरत पेटै खलाय बाये मुह सहत पराभौ देस देस को।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२८। २. दे० 'पराभव'।

परामर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. पकड़ना। खींचना। जैसे, केश परामर्श। २. विवेचन। विचार। ३. निर्णय। ४. अनुमान। ५. स्मृति। याद। ६ युक्ति। ७. सलाह। मंत्रणा। उ०—तुम्हारा मित्र कुछ और ही परामर्श देता है।—अयोध्या (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।—मिलना।—होना।

८. व्याधिग्रस्त होना (को०)। ९. आक्रमण (को०)। १० स्पर्शन। ११. न्याय मे व्याप्ति विशिष्ट पक्षधर्म का होना। अनुमिति (को०)।

परामर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खींचना। २. स्मरण। चिंतन। ३. विचार करना। ४. सलाह करना। मशवरा करना।

परामुक्त[1]—वि० [सं०] जो मृत्यु आदि के बंधन से छूट गया हो। मुक्त।

परामुक्त[2]—संज्ञा पुं० वर्षा। वर्षण [को०]।

परामृष्ट—वि० [सं०] १. पकड़कर खींचा हुआ। २. पीड़ित। ३. विचारा हुआ। निर्णय किया हुआ। ४. जिसकी सलाह दी गई हो। ५. संबंधयुक्त। संबद्ध (को०)। ६. छूआ हुआ। स्पृष्ट (को०)।

परायचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पारचह् (=कपड़ा)] १. पड़ों के कटे टुकड़ों की टोपियाँ इत्यादि बनाकर बेचनेवाला। २. सिले सिलाए कपड़े बेचनेवाला।

परायण¹—वि० [सं०] १. गत। गया हुआ। २. निरत। प्रवृत्त। तत्पर। लगा हुआ। जैसे, धर्मपरायण, नीतिपरायण। ३. आश्रित। अवलंबित (को०)। ४. त्राता। रक्षक (को०)।

परायण²—संज्ञा पुं० १. भागकर शरण लेने का स्थान। आश्रय। २. विष्णु। ३. अंतिम लक्ष्य। प्रधान या उत्कृष्ट लक्ष्य (को०)। ४. सार। तत्व (को०)।

परायत्त—वि० [सं०] पराधीन।

परायन(पु)—वि० [सं० **परायण**] १ निरत। प्रवृत्त। तत्पर। उ०—काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन। —मानस, ७।६६। २. दे० 'परायण'।

पराया—वि० पुं० [सं० **परकीय** > **परईय** > **पराया**, या सं० **पर** + हिं० **आया** (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० पराई] १. दूसरे का। अन्य का। जैसे, पराया माल, पराया धन, पराई स्त्री। उ०—(क) औ जानहि तन होइहि नासू। पोखै मास पराये मासू। —जायसी (शब्द०)। (ख) मुनिहिं मोह मन हाथ पराये। हँसहिं संभु गन अति सचुपाये। —तुलसी (शब्द०)। २. जो आत्मीय न हो। जो स्वजनों में न हो। गैर। बिराना। उ०—बिगरत अपनो काज है हँसत पराये लोग। —(शब्द०)।

मुहा०—**अपना पराया समझना** = (१) यह ज्ञान होना कि कौन बिराना है। शत्रु, मित्र, भला बुरा पहचानना। (२) भेदभाव रखना। **पराया मुँह ताकना** = औरों का भरोसा करना। दूसरों का मुँह जोहना। उ०—जो रहे ताकते पराया मुँह, तो दुखो से न किसलिये जकड़े।—चुभते०, पृ० १०।

परायु—संज्ञा पुं० [सं० **परायुस्**] ब्रह्मा।

परार(पु)—वि० [सं० **पर** + **आर** (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० **परारी**] दूसरे का। पराया। बिराना। उ०—बादर की छाँही बैसे जीवन जग माँही, उठि देखु नाही कौन आपनो परार है।—(शब्द०)।

परारथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **परार्थ**] १. मोक्ष। परार्थ। मुक्ति। उ०—पंचकोस पुन्य कोस स्वारथ परारथ को जानि आप आपने सुपास बास दियो है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४१। २. दे० 'परार्थ'।

परारध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **परार्द्ध**] दे० 'परार्द्ध'।

परारब्ध, पराब्ध†—संज्ञा पुं० [सं० **प्रारब्ध**] भाग्य। किस्मत।

परारि—अव्य० [सं०] परियार साल। पर साल के पहले या बाद के वर्ष में (को०)।

परारु—संज्ञा पुं० [सं०] करेला।

परारुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाषाण। पत्थर। चट्टान (को०)।

परार्थ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूसरे का काम। दूसरे का उपकार। स्वार्थ का उलटा। उ०—स्वार्थ सदा रहता परार्थ दूर, और वही परार्थ जो रहे।—अपरा, पृ० १३१। २. सर्वोत्कृष्ट लाभ (को०)। ३. मोक्ष। मुक्ति (को०)।

परार्थ²—वि० १. जो दूसरे के अर्थ हो। परनिमित्तक। २. अन्य लक्ष्यवाला। अन्यार्थक (को०)।

परार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १. सबसे बड़ी संख्या। वह संख्या जिसे लिखने में अठारह अंक लिखने पड़ें। १,००,००,००,००,००,००,००,०००। एक शंख। २. ब्रह्मा की आयु का आधा काल। ३ परवर्ती आधा। पूर्वार्ध का उलटा (को०)।

परार्द्धि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

परार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परार्द्ध'।

परालब्ध†—संज्ञा पुं० [सं० **प्रारब्ध**] दे० 'प्रारब्ध'। उ०—पलटू यह एक है परालब्ध है जोर।—पलटू०, पृ० २०।

परालब्धि†—संज्ञा स्त्री० [सं० **प्रारब्ध**, हिं० **परालब्ध+ई** (प्रत्य०)] भाग्य। किस्मत। प्रारब्ध। उ०—अपना किया आपही पावै। परालब्धि वह नाम कहावै।—कबीर सा०, पृ० ३०।

पराव(पु)†—वि० [सं० **पर**] दे० 'पराया'। उ०—जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव विष तें विष भारी।—मानस, २।१३०। (ख) बिरह दिवस ब्याकुल महतारी। निजु पराव नहिं हृदय सम्हारी।—रामाश्वमेध (शब्द०)।

परावठा—संज्ञा पुं० [हिं० **परौठा**] दे० 'परौठा'। उ०—रायसाहिब देवीदास तड़के ही परावठे और फल लाए।—किन्नर०, पृ० ५।

परावत—संज्ञा पुं० [सं०] फालसा।

परावन¹—संज्ञा पुं० [सं० **पलायन**, हिं० **पराना**] एक साथ बहुत से लोगो का भागना। भगदड़। भागड़। पलायन। उ०—(क) फिरत लोग जँह तहँ बिललाने। को है अपने कौन बिराने। ग्वाल गए जे धेनु चरावन। तिन्है परयो बन माँझ परावन।—सूर (शब्द०)। (ख) जेहि न होइ रन मनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई।—तुलसी (शब्द०)।

परावन²—संज्ञा पुं० [हिं० **पड़ना, पड़ाव**] गाँव के लोगो का घर के बाहर डेरा डालकर पूजा और उत्सव करने की रीति। उ०—भजे अँध्यारी रैनि में भयो मनोरथ काज। पूरे पूरब पून्य तें परयो परावन आज।—मति० ग्रं०, पृ० ४४८।

परावर¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **परावरा**] १. सर्वश्रेष्ठ। २. अगला पिछला। ३. निकट या दूर का। ४. इधर का उधर का।

परावर²—संज्ञा पुं० १. समग्रता। अखिलता। संपूर्णता। २. विश्व। ३ कारण और कार्य (को०)।

परावरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपनिषद् विद्या (को०)।

परावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रत्यावर्तन। पलटने का भाव। लौटना। पलटाव। २ अदल बदल। लेन देन। ३. फैसला बदलाना। निर्णय उलटना (को०)। ४. ग्रंथ की आवृत्ति। उद्धरणी (को०)।

परावर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रत्यावर्तन। पलटना। लौटना। पीछे फिरना। २. जैन दर्शन के अनुसार ग्रंथो का दोहराना। उद्धरणी। आम्नाय। ३. दे० 'परावर्त'।

परावर्त्त व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुकदमे की फिर से जाँच। मुकदमे का फिर से फैसला।

परावर्तित—वि० [सं०] पलटाया हुआ। पीछे फेरा हुआ।

परावर्ती—वि० [सं० **परावर्तिन्**] परावर्तित होनेवाला (को०)।

परावर्त्य—वि० [सं०] जो परावर्तित किया जा सके। पलटने के योग्य [को०]।

यौ०—परावर्त्य व्यवहार = दे० 'परावर्त्त व्यवहार'।

परावसु—संज्ञा पुं० [सं०] १. शतपथ ब्राह्मण के अनुसार असुरों के पुरोहित का नाम। २. महाभारत के अनुसार रैभ्य मुनि के एक पुत्र का नाम। ३. एक गंधर्व का नाम। ४. विश्वामित्र के एक पौत्र का नाम। ५. संवत्सर के साठ चक्रों मे से ४०वें संवत्सर का नाम (को०)।

परावह—संज्ञा पुं० [सं०] वायु के सात भेदों में से एक।

परावा(पु)†—वि० [सं०] दे० 'पराया'। उ०—करहिं मोहवस द्रोह परावा। सत संग हरि कथा न भावा।—मानस, ७।४०।

पराविद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर। यक्षपति [को०]।

परावृत्त—वि० [सं०] १. पलटा हुआ या पलटाया हुआ। फेरा हुआ। २ बदला हुआ।

परावृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पलटने या पलटाने का भाव। पलटाव। २. मुकदमे का फिर से विचार या फैसला।

परावेदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटाई। भटकटैया।

पराव्याध—संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर को फेंकना। हाथ से प्रस्तर के फेंके जाने पर उसकी गिरने की दूरी या फासला [को०]।

पराशर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक गोत्रकार ऋषि जो पुराणानुसार वसिष्ठ और शक्ति के पुत्र थे।

विशेष—इनके पिता का देहांत इनके जन्म के पूर्व हो चुका था। अतः इनका पालन पोषण इनके पितामह वसिष्ठ जी ने किया था। यही व्यास कृष्ण द्वैपायन के पिता थे।

२. चरक संहिता के अनुसार आयुर्वेद के एक आचार्य का नाम। ३. एक प्रसिद्ध स्मृतिकार। इनकी स्मृति पराशर स्मृति के नाम से प्रख्यात है और कलियुग के लिये प्रमाणभूत मानी जाती है। ४. एक नाग का नाम। ५. ज्योतिष शास्त्र के एक आचार्य जिनकी रची पराशरी संहिता है। ६. गृह्य सूत्रों में से एक।

पराशरी—संज्ञा पुं० [सं० पराशरिन्] १. भिक्षुक। २. संन्यासी [को०]।

पराश्रय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूसरे का सहारा। पराया भरोसा। दूसरे का अवलंब। २ पराधीनता।

पराश्रय²—संज्ञा पुं० पराश्रित। पराधीन [को०]।

पराश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा। बंदाक। परगाछा।

पराश्रित—वि० [सं०] १ जिसे दूसरे का ही आसरा हो। जिसका काम दूसरे से चलता हो। २ दूसरे के अधीन।

परासंग—संज्ञा पुं० [सं० परासङ्ग] अन्य का आश्रय। पराश्रय [को०]।

परास¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी स्थान से उतनी दूरी जितनी दूरी पर उस स्थान से फेंकी हुई वस्तु गिरे। २. टीन।

परास(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० पलाश] दे० 'पलास'। उ०—जर परास कोइला के भेसू। तब फूलै राता होइ टेसू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३०।

परासक्त—वि० [सं०] दूसरे पर आसक्त। दूसरे से बँधा हुआ। किसी अन्य के वशीभूत। उ०—योग युक्ति करि याको पावै। परासक्त अपने वश लावै। —अष्टांग०, पृ० ८१।

परासचित†—संज्ञा पुं० [सं० प्रायश्चित्त] दे० 'प्रायश्चित्त'। उ०—कुकर्म का परासचित तो करना ही पड़ता है। —गोदान, पृ० २२१।

परासन—संज्ञा पुं० [सं०] हत्या। बध। हनन [को०]।

परासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम। दे० 'पलाश्री'।

परासु—वि० [सं०] जिसका प्राण निकल गया हो। मरा हुआ। मृत।

परास्कंदी—वि० [सं० परास्कन्दिन्] चोर। स्तेन। चोर [को०]।

परास्त—वि० [सं०] १. पराजित। हारा हुआ। २. विजित। ध्वस्त। ३. प्रभावहीन। दबा हुआ। से, ज्ञान अज्ञान जैसे परास्त हो गया। ४. जो स्वीकृत न हो। अस्वीकृत (को०)। ५. क्षिप्त। फेंका हुआ (को०)।

परास्तता—संज्ञा स्त्री० [सं० परास्त + ता] पराजय। हार। उ०—आई परास्तता कर्म भोग में जिसके।—साकेत, पृ० २१८।

पराह—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा दिन। वर्तमान के आगे या पीछे का दिवस [को०]।

पराहत—वि० [सं०] १. आक्रांत। ध्वस्त। २. मिटाया हुआ। दूर किया हुआ। ३ निराकृत। खंडित। ४ जीता हुआ।

पराहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्याख्यान। खंडन (को०)।

पराहृत—वि० [सं०] दूर किया या हटाया हुआ [को०]।

पराह्न—वि० [सं०] अपराह्न। दोपहर के बाद का समय। तीसरा पहर।

परिंद, परिंदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० परिन्दह्] पक्षी। चिड़िया। उ०—(क) हवा जो पधारी सनकती, बहकती परिंदों की टोली जो आई चहकती। —अपलक, पृ० ६२। (ख) मेरे प्राण परिंदों से ही डूब डूब जाते रंगों में, संध्या के सौ रंग सौ तरह भर जाते मेरे अंगों में।—मिट्टी०, पृ० ७७। (ग) ऐसी जगह ले चलो जहाँ परिंदा पर न मारता हो। फिसा०, भा० ३, पृ० ५४।

परि¹—उप० [सं०] एक संस्कृत उपसर्ग जिसके लगने से शब्द में इन अर्थों की वृद्धि होती है।

१. चारो ओर। जैसे, परिक्रमण, परिवेष्टन, परिभ्रमण, परिधि।

२ सर्वतोभाव। अच्छी तरह। जैसे, परिकल्पन, परिपूर्ण।

३ अतिशय। जैसे, परिवर्द्धन।

४. पूर्णता। जैसे, परित्याग, परिताप।

५. दोषाख्यान। जैसे, परिहास, परिवाद।

६. नियम। क्रम। जैसे, परिच्छेद।

परि²—अव्य० [हिं०] प्रकार। भाँति। तरह। उ०—(क) जब सोऊँ तब जागवइ, जब जागू तब जाइ। मारू ढोलउ संभरइ, इणि परि रयण विहाइ। —ढोला०, दू० ७६। (ख) संग सखी सील कुल वेस समाणी पेखि कली पदमिणी पँरि।—बेलि०, दू० १४।

परि(पु)³—प्रत्य० [हिं०] दे० 'पर' । उ०—बदन कमल परि घूँघर केस । देखि कै मोरख क्षुधित सुबेस ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२१ ।

परिकंप—संज्ञा पुं० [सं० परिकम्प] १. भय । डर । २. कंपन । कँपकँपी (को०) ।

परिक—संज्ञा स्त्री० [देश०] खराब चाँदी । खोटी चाँदी । (सुनार) ।

परिकथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कहानी के अंतर्गत उसी के संबंध की दूसरी कहानी । अंतर्कथा ।

परिकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्यंक । पलंग । २. परिवार । उ०—भव भवा सबै परिकर समेत ।—पृ० रासो, पृ० ६१ । ३. वृंद । समूह । ४. घेरनेवालों का समूह । अनुयायियों का दल । अनुचर वर्ग । सवाजमा । उ०—श्री वृंदावन राज है, जुगल केलि रस धाम । जहँ के परिकर आदि को, बरनत या थल नाम ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ६४७ । ५. समारंभ । तैयारी । ६. कमरबंद । पटुका । उ०—मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा । करतर चाप रुचिर सर साँधा ।—मानस, ३।२७ । ७. विवेक । ८. एक अर्थालंकार जिसमें अभिप्राय भरे हुए विशेषणों के साथ विशेष्य आता है । जैसे—हिमकरबदनी तिय निरखि पिय दग शीतल होय । ९. नाटक में भावी घटनाओं का संक्षेप में सूचन जिसे बीज कहते हैं (को०) । १०. कार्य में सहायक । सहकर्मी (को०) । ११. फैसला । निर्णय (को०) ।

परिकरमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० परिक्रमा] दे० 'परिक्रमा' । उ०—जप जोग दान विधान बहु विधि करै कर्म अनेक हो । सत कोटि तीरथ भूमि परिकरमा करि न पावै बेक हो ।—कबीर सा०, पृ० ४११ ।

परिकरांकुर—संज्ञा पुं० [सं० परिकराङ्कुर] एक अर्थालंकार जिसमें किसी विशेष्य या शब्द का प्रयोग विशेष अभिप्राय लिए हो । जैसे,—वामा, भामा, कामिनी कहि बोलो प्रानेस । प्यारी कहत लजात नहिं पावस चलत बिदेस ।—बिहारी । यहाँ वामा (जो वाम हो) आदि शब्द विशेष अभिप्राय लिए हुए हैं । नायिका कहती है कि जब आप मुझे छोड़ विदेश जा रहे हैं तब इन्हीं नामों से पुकारिए, प्यारी कहकर न पुकारिए ।

परिकर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. काटना । कर्तन । २. शूल । पीड़ा । ३. गोलाकार कर्तन । वृत्ताकार काटना (को०) ।

परिकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० परिकर्तृ] वह याजक या पुरोहित जो ज्येष्ठ के अविवाहित रहते पर कनिष्ठ का विवाह कराए (को०) ।

परिकर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीखा दर्द । चुभनेवाला तीक्ष्ण शूल (को०) ।

परिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० परिकर्मन्] १. देह में चंदन, केसर, उबटन आदि लगाना । शरीरसंस्कार । २. पैर में महावर आदि रचना (को०) । ३. गणित के आठ अंग या विभाग (को०) । ४. पूजन । अर्चन (को०) ।

परिकर्मा¹—संज्ञा पुं० [सं० परिकर्मन्] परिचारक । सेवक ।

परिकर्मा(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० परिक्रमा] दे० 'परिक्रमा' । उ०—बार बार परिकर्मा दै कै सुंदर बदन बिलोकन कै कै ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७४ ।

परिकर्मी—वि० [सं० परिकर्मिन्] दास । सेवक (को०) ।

परिकर्ष, परिकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृत्त । घेरा । २. बाहर निकालना । बाहर खींचना (को०) ।

परिकर्षित—वि० [सं०] १ प्रपीड़ित । उत्पीड़ित । २ खींचा हुआ । कर्षित (को०) ।

परिकलित¹—वि० [सं०] आकलित । भूषित । अलंकृत । उ०—जब तक काव्य-भावना-परिकलित सहृदय सामाजिक का हृदय स्वाभिमान की वासना से वासित नहीं होगा तब तक वह भाव भाव मात्र रह जाएगा ।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३११ ।

परिकलित²—संज्ञा पुं० अनुमान । आकलन (को०) ।

परिकल्कन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रवंचना । दगाबाजी ।

परिकल्पन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिकल्पित] १ मनन । चिंतन । २. बनावट । रचना । ३ बंटन । बाँटना (को०) । ४. निश्चय करना । निश्चयन (को०) ।

परिकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिकल्पन' । उ०—अब पुरातत्ववेत्ताओं ने तदनुरूप स्थानों की खोज एवं परिकल्पनाएँ कर ली हैं ।—आधुनिक० (भू०)—क ।

परिकल्पित—वि० [सं०] १. कल्पना किया हुआ । सोचा हुआ । २. मन में गढ़ा हुआ । मनगढ़त । ३ निश्चित । ठहराया हुआ । ४. मन में सोचकर बनाया हुआ । रचित । ५. विभक्त । अंशों में बाँटा हुआ । ६ बाँटा हुआ (को०) ।

परिकांक्षित—संज्ञा पुं० [सं० परिकाङ्क्षित] तपसी । भक्त (को०) ।

परिकीर्ण—वि० [सं०] १. व्याप्त । विस्तृत । फैला हुआ । २ समर्पित । ३. परिवेष्टित (को०) ।

परिकीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊँचे स्वर से कीर्तन । खूब गाना । २ गुणों का विस्तृत वर्णन । अधिक प्रशंसा । ३ घोषित करना । घोषणा करना (को०) ।

परिकीर्तित—वि० [सं०] परिकीर्तन किया हुआ (को०) ।

परिकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १ नगर या दुर्ग के फाटक पर की खाई । २. एक नागराज ।

परिकूल—संज्ञा पुं० [सं०] किनारे की भूमि । तटवर्ती भूमि (को०) ।

परिकृश—वि० [सं०] अत्यंत कृश या क्षीण । अत्यंत दुबला पतला (को०) ।

परिकोप—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत क्रोध । तीव्रतर कोप (को०) ।

परिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. टहलना । घूमना । २ चारों ओर घूमना । फेरी देना । परिक्रमा । ३ क्रम । श्रेणी । ४ प्रवेश ।

परिक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. टहलना । मन बहलाने के लिये घूमना । चारों ओर घूमना । फेरी देना । दे० 'परिक्रम' ।

परिक्रमसह—संज्ञा पुं० [सं०] छाग। बकरा [को०]।

परिक्रमा—संज्ञा स्त्री० [सं० **परिक्रम**] १. चारो ओर घूमना। फेरी। चक्कर। प्रदक्षिणा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विशेष—किसी तीर्थस्थान या मंदिर के चारों ओर जो घूमते हैं उसे परिक्रमा कहते हैं।

२ किसी तीर्थ या मंदिर के चारो ओर घूमने के लिये बना हुआ मार्ग।

परिक्रमित—वि० [सं० **परिक्रम+इत (प्रत्य०)**] परिक्रमा की हुई। जिसकी परिक्रमा की गई हो। उ०—स्वर्ग खंड षड् ऋतु परिक्रमित, आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित। कुसुमित फल-द्रुम पिक कल कूजित, उर्वर अभिमत है।—ग्राम्या, पृ० ५५।

परिक्रय, परिक्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोल। खरीद। २. किराया। भाड़ा (को०)। ३. मजदूरी पर काम करना (को०)। ४ द्रव्य देकर कोई चीज खरीदना (को०)। ५. वह खरीद जिसके क्रयवस्तु के परिवर्तन में कोई वस्तु दी जाय (को०)।

परिक्रय संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० **परिक्रय सन्धि**] वह संधि जो जंगली पदार्थ, धन या कोश का कुछ भाग या संपूर्ण कोश देकर की जाय। (कामदक)।

परिक्रांत[1]—वि० [सं० **परिक्रान्त**] जिसकी परिक्रमा की गई हो [को०]।

परिक्रांत[2]—संज्ञा पुं० १. वह स्थान जिसपर क्रमण या गमन किया गया हो। २. कदम। डग [को०]।

परिक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खाई आदि से घेरने की क्रिया। २ एक प्रकार का एकाह यज्ञ जो स्वर्ग की कामना से किया जाता है। ३. घेरना। आवेष्टित करना (को०)। ४ दे० 'परिकर' (को०)। ५. मनोयोग (को०)।

परिक्लांत—वि० [सं० **परिक्लान्त**] जो थककर चूर हो गया हो। बहुत श्रांत [को०]।

परिक्लिष्ट[1]—वि० [सं०] १. नष्ट। भ्रष्ट। परिक्षत। २. अतिक्लिष्ट। अतिगूढ़।

परिक्लिष्ट[2]—संज्ञा पुं० परेशानी। क्लेश : तकलीफ [को०]।

परिक्लेद—संज्ञा पुं० [सं०] तरी। आर्द्रता [को०]।

परिक्वणन—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

परिक्षत—वि० [सं०] नष्ट। भ्रष्ट।

परिक्षति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीड़ा। कष्ट। क्षति [को०]।

परिक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] नाश। विनाश। बरबादी [को०]।

परिक्षव—संज्ञा पुं० [सं०] छींक। छिक्का।

परिक्षा[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कीचड़। कर्दम।

परिक्षा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० **परीक्षा**] दे० 'परीक्षा'।

परिक्षाम—वि० [सं०] अत्यंत दुर्बल। कमजोर [को०]।

परिक्षालन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भली भाँति धोना। अच्छी तरह पखारना। २. वह पानी जो धोने के काम आए [को०]।

परिक्षित्—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक राजा जो अभिमन्यु का पुत्र था। विशेष दे० 'परीक्षित'। ३. अग्नि का एक नाम (को०)।

परिक्षिप्त—वि० [सं०] १. खाई आदि से घेरा हुआ। २. सब ओर से घिरी हुई (सेना)। वि० दे० 'उपरुद्ध'। ३. इतस्तत. क्षिप्त। विकीर्ण (को०)। ४. छोड़ा हुआ। त्यक्त (को०)।

परिक्षीण—वि० [सं०] १. निर्धन। २. दुर्बल और अशक्त (सेना)। ३ अत्यंत कृश (को०)। ४ लुप्त। नष्ट (को०)।

परिक्षीब—वि० [सं०] मतवाला। उन्मत्त [को०]।

परिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. परित्याग। २ टहलना। ३. फैलाना। ४ घेरना। ५. घेरनेवाली वस्तु। ५. ज्ञानेंद्रिय [को०]।

परिखन—वि० [हिं० **परखना**] निगहबानी करनेवाला। देख रेख करनेवाला। अगोरिया। उ०—गरभ माहिं रक्षा करी जहाँ हितू नहिं कोइ। अब का परिखव पालिहैं विपिन गए मेंह सोइ।—विश्राम (शब्द०)।

परिखना[1]—क्रि० स० [सं० **परीक्षा**] पहचानना। जाँचना। परीक्षा करना। इम्तहान करना।

परिखना[2]—क्रि० स० [सं० **प्रतीक्षण**] इंतजार करना। राह देखना मार्ग प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। उ०—परिखेसि मोहिं एक पखवारा। नहिं आवउँ तब जानेसि मारा।—तुलसी (शब्द०)।

परिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह गहरा गड्ढा जो किसी नगर या दुर्ग के चारों ओर इसलिये खोदा जाता था कि शत्रु उसमे सहज में न घुस सकें। किसी नगर या दुर्ग को घेरनेवाली खाईं। खंदक। खाईं। ३. तल या मूल (लाक्ष०)।

परिखात—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० परिखा'। २. खाईं खोदने का कार्य। ३. हल से जोतने की क्रिया। हराई। बाह [को०]।

परिखान—संज्ञा स्त्री० [सं० **परिखात**] गाड़ी के पहिए की लीक।

परिखिन्न—वि० [सं०] अत्यंत खिन्न। कष्टग्रस्त। पीड़ित [को०]।

परिखेद—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत खेद। अत्यधिक थकान [को०]।

परिख्यात—वि० [सं०] विख्यात। प्रसिद्ध। मशहूर।

परिख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसिद्धि [को०]।

परिगणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **परिगणित, परिगणनीय, परिगण्य**] १. भली भाँति गिनना। सम्यक् रीति से गिनना। २ गिनना। गणना करना। शुमार करना।

परिगणना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिगणन'।

परिगणनीय—वि० [सं०] परिगणना के योग्य [को०]।

परिगणित—वि० [सं०] गिना हुआ। जिसकी गिनती हो चुकी हो। उ०—वंग देश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं वह सब नवीन भेद में परिगणित हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ७१९।

परिगण्य—वि० [सं०] दे० 'परिगणित'।

परिगत—वि॰ [सं॰] १. गत। बीता हुआ। गया गुजरा। २ मरा हुआ। मृत। ३ विस्मृत। जिसे भूल गए हों। ४. ज्ञात। जाना हुआ। ५. प्राप्त। मिला हुआ। ६ वेष्टित। घेरा हुआ ७. स्मृत। स्मरण किया हुआ (को॰)। ८. बाधित। बाधायुक्त (को॰)। ९. पीड़ित। पीड़ायुक्त (को॰)।

परिगम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. घेरना। आवेष्टित करना। २ जानना। ३. प्राप्त करना। ४. व्याप्त होना या करना (को॰)।

परिगमन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'परिगम' (को॰)।

परिगर्भिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैद्यक के अनुसार बालकों का एक रोग जो गर्भिणी माता का दूध पीने से होता है।

विशेष—इसमे बालक को खाँसी, कै, अरुचि और तंद्रा होती है, उसका शरीर दुबला हो जाता है, भोजन नहीं पचता, और पेट बढ जाता है। वैद्यक में इस रोग में अग्निदीपक औषधों के सेवन का विधान है।

परिगर्वित—वि॰ [सं॰] बहुत गर्ववाला। भारी घमंडी।

परिगर्हणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] अत्यत निंदा। विशेष गर्हणा (को॰)।

परिगलित—वि॰ [सं॰] १ गला हुआ। गलित। २. तरल। पिघला हुआ। ३. च्युत। नीचे गिरा हुआ। ४. गायब। लुप्त (को॰)।

परिगह(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **परिग्रह**] कुटुंबी। संगी साथी या आश्रित जन। उ॰—राजपाट दर परिगह तुमही सउँ उँजियार। बइठि भोग रस मानहु कइ न चलहु अँधियार। —जायसी (शब्द॰)।

परिगहन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अत्यंत घना। अत्यत गहन (को॰)।

परिगहना(पु)—क्रि॰ स॰ [सं॰ **परिग्रहण**] ग्रहण या स्वीकार करना। आसरा देना। सहारा देना। उ॰—तेर मुह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो।—तुलसी ग्र॰, पृ॰ ५८७।

परिगाढ—वि॰ [सं॰] अत्याधिक। बहुत ज्यादा (को॰)।

परिगात—वि॰ [सं॰] बहुत अधिक वर्णित (को॰)।

परिगीति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार का वृत्त। एक छंद (को॰)।

परिगुंठित—वि॰ [सं॰ **परिगुण्ठित**] छिपाया हुआ। ढका हुआ।

परिगुंठित—वि॰ [सं॰ **परिगुण्ठित**] धूल से छिपा हुआ। गर्द से ढका हुआ।

परिगूढ—वि॰ [सं॰] जो समझ में कठिनता से आए। अत्यंत गूढ (को॰)

परिगृध्न—वि॰ [सं॰] अत्यंत लालची। विशेष लालचवाला (को॰)।

परिगृहीत—वि॰ [सं॰] १. स्वीकृत। मंजूर किया हुआ। २. मिला हुआ। शामिल। ३. चारो ओर से घेरा हुआ। चारो ओर से आवृत (को॰)। ४. धारण या ग्रहण किया हुआ (को॰)। ५. अनुगमित। अनुसृत (को॰)। ६ पकड़ा हुआ (को॰)। ७. संरक्षित। सुरक्षित (को॰)।

परिगृहीता[1]—वि॰ [सं॰] विवाहिता। परिणीता (को॰)।

परिगृहीता[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **परिगृहीतृ**] १ पति। २. सहयोगी। सहायक। ३. वह व्यक्ति जो गोद ले (को॰)।

परिगृह्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] विवाहिता स्त्री। धर्मपत्नी।

परिग्रह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. प्रतिग्रह। ग्रहण। लेना। दान लेना। २. पाना। ३. धनादि का संग्रह। ४. स्वीकार। अंगीकार। आदरपूर्वक कोई वस्तु लेना। ५. स्त्री को अंगीकार करना। विवाह। ६. पत्नी। स्त्री। भार्या। ७. सेना का पिछला भाग ८. परिजन। परिवार। स्त्री पुत्र आदि। ९. राहुग्रस्त सूर्य। १०. मूलकद। ११. शाप। १२. शपथ। कसम। १३. विष्णु। १४ अनुग्रह। मिहरबानी। १५ जैन शास्त्रों के अनुसार तीन प्रकार के गतिनिबधन कर्म–द्रव्य-परिग्रह, भावपरिग्रह और द्रव्यभावपरिग्रह। १६. कुछ विशिष्ट वस्तुएँ संग्रह न करने का व्रत। १७. राष्ट्र। राज्य (को॰)। १८. दंड (को॰)। १९. गृह। मकान। घर (को॰)।

परिग्रहण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. सब प्रकार से ग्रहण। पूर्ण रूप से ग्रहण करना। २. कपड़े पहनना।

परिग्राम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गाँव के सामने का भाग।

परिग्राह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक विशेष प्रकार की यज्ञवेदी।

परिग्राह्य—वि॰ [सं॰] ग्रहण करने योग्य। जो ग्रहण किया जा सके।

परिघ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. लोहाँगी। गँडासा। २ ज्योतिष में एक योग। २७ योगो के अंतर्गत १९वाँ योग।

विशेष—इस योग को आधा छोड़कर शुभ कर्म करने चाहिए। जन्मकाल में यह योग पड़ने से मनुष्य वंशकुठार, असत्य-साक्षी, क्षमाहीन, स्वल्पानुभोक्ता और शत्रुदम को जीतनेवाला होता है।

३. अर्गला। अगड़ी। ४. मुद्गर। ५. शूल। भाला। बर्छी। ६. कलस। ७. घोड़ा। ८. गोपुर। फाटक। ९. घर। १०. स्वामिकार्तिक का एक अनुचर। ११ तीर। १२. पर्वत १३. वज्र। १४. शेषनाग। १५ जल। १६. चद्र। १७. सूर्य। १८. नदी। १९. स्थल। २०. आनंद और सुख की निवारक अविद्या। २१. बाधा। प्रतिबंध। २२ महाभारत के अनुसार एक चांडाल का नाम। २३. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का मूढ गर्भ। २४. वे बादल जो सूर्य के उदय या अस्त होने के समय उसके सामने आ जाँय। २५. शीशे का घडा या जलपात्र (को॰)।

परिघट्टन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (कलछी से) चारो ओर से घर्षण करना। दर्वी आदि से चलाना (को॰)।

परिघट्टित—वि॰ [सं॰] घर्षण किया हुआ। चलाया या मथा हुआ (को॰)।

परिघमूढगर्भ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **परिघमूढगर्भ**] वह बालक जो प्रसव के समय योनि के द्वार पर आकर अगड़ी की तरह अटक जाय।

परिघर्म, परिघर्म्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] यज्ञ मे काम आनेवाला एक विशेष पात्र।

परिघह(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **परिग्रह**] दे॰ 'परिगह' या 'परिग्रह'। उ॰—राम दे राव जालौर घर गोइद गढ्ढ धामनि अरी। दाहिम्म बयानै उप्पनी पृथीराज परिघह बसै। —पृ॰ रा॰, १।५८४।

परिघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. हत्या। हनन। मार डालना। २. वह अस्त्र जिससे किसी की हत्या की जा सकती हो। ३. उल्लंघन करना (को०)। ४. लोहे की गदा या मुद्गर (को०)। ५. नष्ट करना (को०)।

परिघातन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिघात' (को०)।

परिघाती—वि० [सं० परिघातिन्] १. परिघात करनेवाला। हत्याकारी। मार डालनेवाला। २ उल्लंघन करनेवाला (को०)। ३. नष्ट करनेवाला (को०)।

परिघृष्ट—वि० [सं०] अत्यंत घर्षित। अच्छी तरह घृष्ट (को०)।

परिघृष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वानप्रस्थ (को०)।

परिघोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघगर्जन। बादल का गरजना। २. शब्द। आवाज। ३ अनुचित कथन। अनुपयुक्त बात (को०)।

परिचक्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम।

परिचड्ड(पु)—वि० [सं० प्रचण्ड] दे० 'प्रचंड'। उ०—अजरा परि अजमेर माल बंधव परिचड्ड। अस्त वस्त अरु चर्म टंक लख्मी नन हड्ड।—पृ० रा०, १।६६८।

परिचना—क्रि० अ० [हिं० परचना] दे० 'परचना'।

परिचपल—वि० [सं०] अति चंचल। जो किसी समय स्थिर न रहे। जो हर समय हिलता डुलता या घूमता फिरता रहे।

परिचय—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी विषय या वस्तु के संबंध की प्राप्त की हुई अथवा मिली हुई जानकारी। ज्ञान। अभिज्ञता। विशेष जानकारी। जैसे,—थोड़े दिनों से मुझे भी उनके स्वभाव का परिचय हो गया है। २. प्रमाण। लक्षण। जैसे,—उस पद पर थोड़े ही दिनों तक रहकर उन्होंने अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया था। ३ किसी व्यक्ति के नामधाम या गुणकर्म आदि के संबंध की जानकारी। जैसे,—मुझे आपका परिचय नहीं मिला।

क्रि० प्र०—कराना। देना।—दिखाना।—पाना।—मिलना। होना।

४ जान पहचान। जैसे,—यहाँ तो बहुत से आदमियों के साथ आपका परिचय है। ५ अभ्यास। मश्क। ६. हठयोग में नाद की चार अवस्थाओं में से तीसरी अवस्था। ७. इकट्ठा करना। एकत्र करना। जमा करना (को०)।

परिचय करुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़ता हुआ प्रेम। प्रवर्धित करुणा (को०)।

परिचयपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] किसी की पूरी जानकारी देनेवाला पत्र।

परिचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेवक। खिदमतगार। टहलुआ। २. रोगी की सेवा करनेवाला। शुश्रूषाकारी। ३. वह सैनिक जो रथ पर शत्रु के प्रहार से उसकी रक्षा करने के लिये बैठाया जाता था। ४ दंडनायक। सेनापति। परिरक्षित। ५. अंगरक्षक सैनिक (को०)। ६. आदर। अभ्यर्थना। सत्कार (को०)।

परिचर[२]—वि० भ्रमणशील। चल। गतिशील (को०)।

परिचरजा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० परिचर्या] दे० 'परिचर्या'। उ०—निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयेसु अनुसरई।—मानस, ७।२४।

परिचरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिचरणीय, परिचरितव्य] १ सेवा करना या सेवा। परिचर्या। खिदमत। टहल। २ भ्रमण। चंक्रमण (को०)।

परिचरणीय—वि० [सं०] १. परिचरण के योग्य। भ्रमण के योग्य। २. सेवा के योग्य (को०)।

परिचरल—संज्ञा स्त्री० [डिं०] प्रलय। कयामत।

परिचरितव्य—वि० [सं०] दे० 'परिचरणीय' (को०)।

परिचरिता—संज्ञा पुं० [सं० परिचरितृ] सेवक। सेवा करनेवाला। शुश्रूषाकारी।

परिचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। सेविका। लौंडी।

परिचर्जा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० परिचर्या] दे० 'परिचर्या'।

परिचर्मण्य—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का बना हुआ फीता (को०)।

परिचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेवा। टहल। खिदमत। २. रोगी की सेवा शुश्रूषा।

परिचायक—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिचय करानेवाला। जान पहचान करानेवाला। २. सूचित करनेवाला। जतानेवाला।

परिचाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ की अग्नि। २. यज्ञकुंड।

परिचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेवा। टहल। खिदमत। २. सेवक। टहलुआ। उ०—तजि कुलगामि को निसंक होय क्यों न करे बेगि मृगनैनी अनुकंपा परिचार पै।—मोहन०, पृ० १०३। ३. वह स्थान जो टहलने या घूमने फिरने के लिये निर्दिष्ट हो।

परिचारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेवक। नौकर। भृत्य। टहलुआ। २. वह जो किसी रोगी की सेवा करने पर नियुक्त हो। शुश्रूषाकारी। ३. वह जो देवमंदिर आदि का कार्य अथवा प्रबंध करता हो।

परिचारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिचारी, परिचार्य] १. सेवा करना। टहल या खिदमत करना। सेवकाई। खिदमतगारी। २. सहवास करना। संग करना या रहना।

परिचारना(पु)—क्रि० स० [सं० परिचारण] सेवा करना। खिदमत करना।

परिचारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० परिचारिका] सेविका। टहलनी। उ०—हौं भई तुम परिचारि, नाथ तुम भए हमारे।—नंद० ग्रं०, पृ० २७५।

परिचारिक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० परिचारिका] सेवक। खिदमतगार। दे० 'परिचारक'।

परिचारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। सेविका। मजदूरनी। उ०—जेहि सहसन परिचारिका राखत हाथहिं हाथ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३०७।

परिचारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिचारिका'। उ०—माँ से पूछने पर उसने यही कहा कि अपने यौवन में परिचारिणी के रूप में मैं बहुत स्थानों में विचरी।—सं० दरिया, पृ० ६०।

परिचारित—संज्ञा पुं० [सं०] खेल। क्रीड़ा। मनोरंजन।

परिचारी—वि० [सं० परिचारिन्] १. टहलनेवाला। वह जो भ्रमण करता हो। २. सेवा करनेवाला। टहलू। चाकर।

परिचार्य—वि० [सं०] सेव्य। सेवा करने योग्य। जिसकी सेवा करना उचित हो।

परिचालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चलानेवाला। चलने के लिये प्रेरित करनेवाला। २. किसी काम को जारी रखने तथा आगे बढ़ानेवाला। संचालक। ३. गति देनेवाला। हिलानेवाला।

परिचालकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिचालन करने की क्रिया, भाव अथवा शक्ति।

परिचालन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिचालित] १. चलाना। चलने के लिये प्रेरित करना। चलने में लगाना। २. कार्य का निर्वाह करना। कार्यक्रम को जारी रखना। जैसे,—इस पत्र का परिचालन उन्होंने बड़ी ही उत्तमता के साथ किया। ३. हिलाना। गति देना। हरकत देना।

परिचालित—वि० [सं०] १. चलाया हुआ। चलने मे लगाया हुआ। २. निर्वाह किया हुआ। बराबर जारी रखा हुआ। ३. हिलाया हुआ। जिसे गति दी गई हो।

परिचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० परिचिन्तन] १. स्मरण करना। २. चिंतन करना। विचार करना (को०)।

परिचित—वि० [सं०] १. जिसका परिचय हो चुका हो। जाना बूझा। ज्ञात। मालुम। जैसे,—इस पुस्तक का विषय मेरा परिचित नहीं है। २. जिसको परिचय हो चुका हो। वह जो किसी को जान चुका हो। अभिज्ञ। वाकिफ। जैसे,—मैं उनके स्वभाव से बिलकुल परिचित नहीं हूँ। ३. जान पहचान रखनेवाला। मिलने जुलनेवाला। मुलाकाती। जैसे,—मेरी परिचित मंडली अब इतनी बड़ी हो गई है कि मिलने जुलने में ही प्रायः मेरा सारा समय लग जाता है। ४. जैन दर्शन के अनुसार वह स्वर्गीय आत्मा जो दो बार किसी चक्र मे आ चुकी हो। ५. इकट्ठा किया हुआ। ढेर लगा हुआ। संचित। ६. किसी काम को बार बार करना। अभ्यास। मश्क (को०)।

परिचिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिचय। ज्ञान। अभिज्ञता। जानकारी।

परिचिह्नित—वि० [सं०] हस्ताक्षरयुक्त (को०)।

परिचीर्ण—वि० [सं०] सेवित। जिसकी सेवा की गई हो (को०)।

परिचुंबन—संज्ञा पुं० [सं० परिचुम्बन] [वि० परिचुंबित] प्रेमपूर्वक चुंबन। भरपूर प्रेम या स्नेह से चुंबन करना।

परिचुंबित—वि० [सं० परिचुंबित] अतिशय प्रेम के साथ चूमा गया (को०)।

परिचेय—वि० [सं०] १. परिचय योग्य। जान पहचान करने योग्य। साहब सलामत या राहोरस्म रखने योग्य। २. एकत्र करने योग्य। ढेर लगाने योग्य। संचय करने योग्य।

परिचै—संज्ञा पुं० [सं० परिचय] दे० 'परिचय'। उ०—जल जैसे तूँबी तिरै, परिचै पिंड जीव नहिं मरै।—रै० बानी, पृ० २।

परिचोⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० परिचय] ज्ञान। उ०—करतल निरखि कहत सब गुन गन बहुतनि परिचो पाई।—तुलसी (शब्द०)।

परिच्छंद—संज्ञा पुं० [सं० परिच्छन्द] वस्त्र। पहरावा। पोशाक।

परिच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपड़ा जो किसी वस्तु को ढक या छिपा सके। आच्छादन। ढाकनेवाली वस्तु। पट। जैसे, लिहाफ खोल, झूल आदि। २. वस्त्र। पहनावा। पोशाक। उ०—आपने जो मूल्यवान् परिच्छद मुझे पहनाया है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६८। ३. राजचिह्न। ४. राजा आदि के सब समय साथ रहनेवाले नौकर। अनुचर। ५. परिजन। परिवार। कुटुंब। ६. असबाब। सामान। ७. प्रांत। प्रदेश।

विशेष—नागोद रियासत के खोह नामक गाँव में जो ताम्रपत्र मिला है, उसमें इस शब्द का प्रयोग पाया गया है। वहाँ लिखा है—दापयोन बलवर्मा परिच्छदः।

परिच्छन्न—वि० [सं०] १. ढका हुआ। छिपा हुआ। २. जो कपड़े पहने हो। वस्त्रयुक्त। वस्त्रादि से सज्जित। ३. जो साफ किया हुआ हो। ४. परिच्छद (सेवक, अनुचर आदि) से युक्त (को०)।

परिच्छाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० परीक्षा] दे० 'परीक्षा'।

परिच्छित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीमा। अवधि। इयत्ता। हद। २. दो पदार्थों को बिलकुल अलग अलग कर देना। सीमा द्वारा दो वस्तुओं को एक दूसरी से बिलकुल जुदा कर देना। ३. विभाग। बाँट। ४. यथार्थ व्याख्या। सूक्ष्म व्याख्या (को०)।

परिच्छिन्न—वि० [सं०] १. परिच्छेदविशिष्ट। सीमायुक्त। परिमित। मर्यादित। २. विभक्त। विभाजित। अलग अलग किया हुआ। ३. चारो ओर से कुछ कटा हुआ (को०)। ४. जिसका उपचार किया गया हो (को०)।

परिच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. काटकर विभक्त करने का भाव। खंड या टुकड़े करना। विभाजन। २. ग्रंथ या पुस्तक का ऐसा विभाग या खंड जिसमे प्रधान विषय के अंगभूत पर स्वतंत्र विषय का वर्णन या विवेचन होता है। ग्रंथ का कोई स्वतंत्र विभाग। ग्रंथविच्छेद। ग्रंथसंधि। अध्याय। जैसे,—अमुक पुस्तक में कुल १० परिच्छेद हैं।

विशेष—ग्रंथ के विषय के अनुसार उसके विभागों के नाम भी भिन्न भिन्न होते हैं। काव्य मे प्रत्येक को सर्ग, कोष मे वर्ग, अलंकार में परिच्छेद तथा उच्छ्वास, कथा मे उद्घात, पुराण और संहिता आदि में अध्याय, नाटक मे अंक, तंत्र मे पटल, ब्राह्मण में कांड, संगीत मे प्रकरण और भाष्य में आह्निक कहते हैं। इसके अतिरिक्त पाद, तरंग, स्तवक, प्रपाठक, स्कंध, मंजरी, लहरी, शाखा आदि भी परिच्छेद के स्थानापन्न हुआ करते हैं। परिच्छेद का नाम विषय के अनुसार नहीं किंतु संख्या के अनुसार होता है; जैसे, नवाँ परिच्छेद, दसवाँ परिच्छेद।

३. सीमा। इयत्ता। अवधि। हद। दो वस्तुओं को स्पष्ट रूप से अलग अलग कर देना। सीमानिर्धारण द्वारा दो वस्तुओं को

बिलगाना। परिभाषा द्वारा दो वस्तुओं या भावों का अंतर स्पष्ट कर देना। जैसे, सत्यासत्य का परिच्छेद, धर्माधर्म का परिच्छेद। ५. निर्णय। निश्चय। फैसला। ६. विभाग। बँटवारा।

परिच्छेदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सीमा या इयत्ता निर्धारित करनेवाला। हद मुकर्रर करनेवाला। २. बिलगानेवाला। पृथक् करनेवाला। ३. सीमा। हद। ४ परिमाण, गिनती, नाप या तोल।

परिच्छेदकर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समाधि।

परिच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ विभाजन। बँटवारा। २. पुस्तक का अध्याय। ३. अवधारण। विवेचन (को०)।

परिच्छेदातीत—वि० [सं०] जिसका परिच्छेद न हो सके। जिसकी सीमा, विभाग, इयत्ता, अवधि आदि की परिभाषा या निर्धारण न हो सके।

परिच्छेद्य—वि० [सं०] १ गिनने, नापने या तोलने योग्य। परिमेय। २. अलग करने योग्य। बिलगाने योग्य। विभाज्य।

परिच्युत—वि० [सं०] १. सब भाँति गिरा हुआ। सर्वथा भ्रष्ट या पतित। ३ जाति या पंक्ति से बहिष्कृत। बिरादरी से निकाला हुआ।

परिच्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिरना। पतन। स्खलन। भ्रंश।

परिछन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परछन'। उ०—(क) कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी।—मानस, १।९६। (ख) को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्म बर परिछन चली।—मानस, १।३१८।

परिछना[1]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'परछना' उ०—बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चली लवाइ निकेत।—मानस १।३४९।

परिछना[2]—क्रि० स० [सं० परीक्षा, हिं० परिच्छा, परीछा] परीक्षा लेना। परखना। जाँचना। उ०—कहिए अब सो ठहरयो कौन। सोई भाग्यो तुव साम्हे सो गयो परिछयो जौन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २९८।

परिछाहीं—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'परछाईं'। उ०—मन थिर करहु देव डर नाहीं। भरतहिं जानि राम परिछाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

परिछिन्न(पु)—वि० [सं० परिच्छिन्न] दे० 'परिच्छिन्न'।

परिजंक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पर्यङ्क] दे० 'पर्यंक'।

परिजटन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परिअटन>पर्यटन] दे० 'पर्यटन'।

परिजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिवार। आश्रित या पोष्य वर्ग। वे लोग जो अपने भरण पोषण के लिये किसी एक व्यक्ति पर अवलंबित हों; जैसे, स्त्री, पुत्र, सेवक आदि। २. सदा साथ रहनेवाले सेवक। अनुचरवर्ग।

परिजनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परिजन होने का भाव। २. अधीनता।

परिजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० परिजन्मन्] १. चंद्रमा। २. अग्नि।

परिजपित—वि० [सं०] (प्रार्थना, जप आदि) जो मंद स्वर से उच्चरित हो (को०)।

परिजप्त—वि० [सं०] १. मुग्ध। मोहित। २. दे० 'परिजपित'।

परिजय्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चारो ओर जय करने में समर्थ हो। सब ओर जीत सकनेवाला।

परिजल्पित—संज्ञा पुं० [सं०] १. चित्रजल्प का दूसरा भेद। दे० 'चित्रजल्प'। २. अपने मालिक के दुर्गुणों का कथन करते हुए सेवक द्वारा अव्यक्त रूप से अपने कौशल, उत्कर्ष आदि की अभिव्यक्ति (को०)।

परिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आदि जन्मभूमि। उद्गम। निकास।

परिजात—वि० [सं०] १. उत्पन्न। जन्मा हुआ। २. पूर्ण विकसित।

परिज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बातचीत। कथोपकथन। २. पहचान या पहचानना।

परिज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्ञान। २. सूक्ष्म ज्ञान। निश्चयात्मक ज्ञान। संशयरहित ज्ञान।

परिज्ञात—वि० [सं०] १. जाना हुआ। विशेष या सम्यक् रूप से जाना हुआ। २. निश्चित रूप से जाना हुआ।

परिज्ञाता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० परिज्ञातृ] अच्छी तरह जानने बूझने और पहचाननेवाला (को०)।

परिज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी वस्तु का भली भाँति ज्ञान। पूर्ण ज्ञान। सम्यक् ज्ञान। २. निश्चयात्मक ज्ञान। ऐसा ज्ञान जिसपर पूरा भरोसा हो। उ०—तुम्हें इतनी भी समझ या परिज्ञान नहीं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४६। ३. सूक्ष्म ज्ञान। भेद अथवा अंतर का ज्ञान। किसी वस्तु के सूक्ष्म से सूक्ष्म गुण दोषों का ज्ञान।

परिज्वा—संज्ञा पुं० [सं० परिज्वन्] १. चंद्रमा। २. अग्नि। ३. सेवक। ४. यज्ञ करनेवाला। ५. इंद्र।

परिठना(पु)†—वि० [सं० परिस्थिति; प्रा० परिट्ठिअ; अथवा सं० प्रतिष्ठित; प्रा० परिट्ठिअ] पूर्णतः स्थित या स्थापित होना। उ०—तुमहीं ऊपर सोहली परिठिउ जाँणि क चंग। ढोला एही मारुवी नव नेही नव रंग।—ढोला०, दू० ४६५।

परिडीन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पक्षी की वृत्ताकार गति में उड़ान। किसी पक्षी का चक्कर काटते हुए उड़ना।

परिणत—वि० [सं०] [स्त्री० परिणति] १. बिलकुल या बहुत झुका हुआ। अति नम्र या नत। २ जिसका परिणाम हुआ हो। जो बदलकर और का और हो गया हो। बदला हुआ। विकारयुक्त। रूपांतरित। अवस्थांतरित। जैसे, दूध का दही के रूप में परिणत होना। ३. पका हुआ। पक्का। जैसे, परिणत फल। ४. पचा हुआ। रसादि में परिवर्तित (भोजन)। ५. प्रौढ़। पुष्ट। बढ़ा हुआ। पक्का। कच्चा का उलटा (बुद्धि या वय)। ६ समाप्त। अवसित (को०)।

परिणति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झुकाव। नीचे की ओर झुकना। अवनति। २. बदलना। रूपांतर होना। अवस्थांतर प्राप्ति। परिणयन। विकृति। ३. पकना या पचना। परिपाक। ४.

प्रौढ़ावस्था। प्रौढता। पक्वता। पुष्टि। पुख्तगी। ५. वृद्धता। बुढ़ाई। ६ अंत। अवसान।

परिणद्ध—वि० [सं०] १. लपेटा हुआ। मढ़ा हुआ। आवृत्त। २. बाँधा हुआ। जकड़ा हुआ। ३ विस्तीर्ण। चौड़ा। विशाल।

परिणमन—संज्ञा पुं० [सं०] परिणत होने की क्रिया। परिणाम को प्राप्त करना। रूपांतरण होना (को०)।

परिणमयिता—वि० [सं० परिणमयितृ] परिणत करनेवाला। परिणाम को पहुँचा देनेवाला (को०)।

परिणय—संज्ञा पुं० [सं०] ब्याह। विवाह। उद्वाह। दारपरिग्रह। शादी।

परिणयन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्याहना। विवाह करने की क्रिया। दारपरिग्रह। उ०—आनदिन जनपद सबै पुरतिय मंगल गाय। चंद ब्रह्म परिणयन करि सुर अप धामनि जाय। —पृ० रासो, पृ० १५।

परिणहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चारो ओर से बाँधने का भाव। २. लपेटने या आवृत करने का भाव।

परिणाम—संज्ञा पुं० [सं०] १ बदलने का भाव या कार्य। बदलना। एक रूप या अवस्था को छोड़कर दूसरे रूप या अवस्था को प्राप्त होना। रूपांतरप्राप्ति। २ प्राकृतिक नियमानुसार वस्तुओं का रूपांतरित या अवस्थांतरित होना। स्वाभाविक रीति से रूपपरिवर्तन या अवस्थांतरप्राप्ति। मूल प्रकृति का उलटा। विकृति। विकारप्राप्ति (सांख्य)।

विशेष—सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति का स्वभाव ही परिणाम अर्थात् एक रूप या अवस्था से च्युत होकर दूसरे रूप या अवस्था को प्राप्त होते रहना है, और उसका यह स्वभाव ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और नाश का कारण है। जिस परिणाम के कारण जगत् की रचना होती है उसे 'विरूप' अथवा 'विसदृश परिणाम' और जिसके कारण उसका अभाव या प्रलय होता है उसे 'स्वरूप' अथवा 'सदृश परिणाम' कहते हैं। सत्व, रज, तम की साम्यावस्था भंग होकर उनके परस्पर विषम परिणाम में संयुक्त होने से क्रमशः असंख्य कार्यों अथवा जगत् के पदार्थों का उत्पन्न होना 'विरूप परिणाम' है और फिर इसी कार्यशृंखला का अपने अपने कारण में लीन होते हुए व्यक्त जगत् का अभाव प्रस्तुत करना 'स्वरूप परिणाम' है। 'विरूप परिणाम' में त्रिगुणों की साम्यावस्था विनष्ट होती है और वे स्वरूप से च्युत होते हैं और 'स्वरूप परिणाम' से उन्हें पुन साम्यावस्था तथा स्वरूपस्थिति प्राप्त होती है। पुरुष अथवा आत्मा के अतिरिक्त संसार में और जो कुछ है सब परिणामी है अर्थात् रूपांतरित होता रहता है तथापि कुछ पदार्थों का परिणाम शीघ्र दिखाई पड़ जाता है। कुछ का बहुत समय में भी दृष्टिगोचर नहीं होता। जो परिणाम शीघ्र उपलब्ध होता है उसे 'तीव्र परिणाम' और जिसकी उपलब्धि बहुत देर में होती है उसे 'मृदु परिणाम' कहते हैं। सदृश अथवा विसदृश परिणाम में से जब एक की मृदुता चरम अवस्था को पहुँच जाती है, तब दूसरा परिणाम प्रारंभ होता है।

३. प्रथम या प्रकृत रूप या अवस्था से च्युत होने के उपरांत प्राप्त हुआ दूसरा रूप या अवस्था। किसी वस्तु का कार्यरूप या कार्यावस्था। विकृति। विकार। रूपांतर। अवस्थांतर। जैसे, दूध का परिणाम दही, लकड़ी का राख आदि। ४. किसी वस्तु के एक धर्म के निवृत्त होने पर दूसरे धर्म की प्राप्ति। एक धर्म या समुदाय का तिरोभाव या क्षय होकर दूसरे धर्म या संस्कारों का प्रादुर्भाव या उदय। एक स्थिति से दूसरी स्थिति में प्राप्ति (योग)।

विशेष—पातंजल दर्शन में चित्त के निरोध, समाधि और एकाग्रता नाम से तीन परिणाम माने हैं। व्युत्थान अर्थात् राजस भूमियों के संस्कारों का प्रतिक्षण अधिकाधिक अभिभूत, लुप्त या निरुद्ध अथवा 'परवैराग्य' अर्थात् शुद्ध सात्विक संस्कारों का उदित और वर्धित होते जाना चित्त का 'निरोध' परिणाम' है। चित्त की सर्वार्थता या विक्षेपरूप धर्म का क्षय और एकाग्रता रूप धर्म का उदय होना अर्थात् उसकी चंचलता का सर्वथा में लोप होकर एकाग्रता धर्म का पूर्णरूप से प्रकाश होना, 'समाधि परिणाम' है। एक ही विषय में चित्त के शांत और उदित दोनों धर्म अर्थात् भूत और वर्तमान दोनों वृत्तियाँ 'एकाग्रता परिणाम' हैं। समाधि परिणाम में चित्त का विक्षेप धर्म शांत हो जाता है अर्थात् अपना व्यापार समाप्त करके भूत काल में प्रविष्ट हो जाता है और केवल एकाग्रता धर्म उदित रहता है अर्थात् व्यापार करनेवाले धर्म की अवस्था में रहता है। परंतु एकाग्रता परिणाम की अवस्था में चित्त एक ही विषय में इन दोनों प्रकार के धर्मों या वृत्तियों से संबंध रखता हुआ स्थित होता है। चित्त के परिणामों की तरह स्थूल सूक्ष्म भूतों तथा इंद्रियों के भी उक्त दर्शन में तीन परिणाम बताए गए हैं—धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम, और अवस्था परिणाम। द्रव्य अथवा धर्मी का एक धर्म को छोड़कर दूसरा धर्म स्वीकार करना धर्म परिणाम है, जैसे, मृत्तिकारूप धर्मी का पिंडरूप धर्म को छोड़कर घटरूप धर्म को स्वीकार करना। एक काल या सोपान में स्थित धर्म का दूसरे काल या सोपान में आना लक्षण परिणाम है, जैसे, पिंडरूप में रहने के समय मृत्तिका का घटरूप धर्म भविष्यत् या अनागत सोपान में था, परंतु उसके घटाकार हो जाने पर वह तो वर्तमान सोपान में आ गया और उसका पिंडनाधर्म भूत सोपान में स्थित हो गया। किसी धर्म का नवीन या प्राचीन होना अवस्था परिणाम है। जैसे, घड़े का नया या पुराना होना। इसी प्रकार दृष्टि, श्रवण आदि इंद्रियों का एक रूप या शब्द का ग्रहण छोड़कर दूसरे रूप या शब्द का ग्रहण करना उसका 'धर्म परिणाम' है। दर्शन, श्रवण आदि धर्म का वर्तमान, भूत आदि होकर स्थित होना 'लक्षण परिणाम' है और उनमें अस्पष्टता स्पष्टता होना 'अवस्था परिणाम' है।

५. एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय के कार्य का उपमान द्वारा किया जाना अथवा अप्रकृत (उपमान) का प्रकृत (उपमेय) से एकरूप होकर कोई कार्य करना कहा जाता है। जैसे, 'कर कमलन धनु सायक फेरत' अथवा 'हरे हरे पद कमल तें फूलन बीनति बाल'। इन उदाहरणों में 'धनुसायक फेरना' और 'फूल चुनना' वस्तुतः कर के कार्य हैं, पर कवि ने उसके उपमान कमल द्वारा इनका किया जाना कहा है।

विशेष—रूपक अलंकार से इसमें यह भेद है कि इसके उपमान से कोई विशेष कार्य कराकर अर्थ में चमत्कार पैदा किया जाता है परंतु रूपक के उपमान से कोई कार्य कराने की ओर लक्ष्य ही नहीं होता। केवल उपमेय पर उसका आरोप भर कर दिया जाता है। 'कर कमलन धनुसायक फेरत' 'अपने करकंज लिखी यह पाती,' 'मुख शशि हरत अँधार' आदि परिणाम के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

६. पकने या पचने का भाव। पाक। ७. बाढ़। विकास। वृद्धि। परिपुष्टि। ८. वृद्ध होना। बूढ़ा होना। ९. बीतना। समाप्त होना। अवसान। १०. नतीजा। फल।

परिणामक—वि० [सं०] परिणाम लानेवाला। रूपांतर या अवस्थांतर लानेवाला [को०]।

परिणामदर्शी—वि० [सं० परिणामदर्शिन्] जिसे काम करने के पहले उसका नतीजा मालूम हो जाय। फल को सोचकर कार्य करनेवाला। सोच समझकर कार्य करनेवाला। भविष्य या होनहार को जान सकनेवाला सूक्ष्मदर्शी। दूरदर्शी।

परिणामदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी कार्य के परिणाम को जान लेने की शक्ति। आगामी फल की ओर दृष्टि।

परिणामन—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिणत करना। पूर्ण पुष्ट तथा वर्धित करना। २. परिणाम को प्राप्त कराना। ३. जाति या संघ का उद्दिष्ट वस्तु को अपने काम में लाना (बौद्ध)।

परिणामपथ्य—वि० [सं०] अच्छे परिणामवाला। उत्तम फलदायक [को०]।

परिणामवाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह सिद्धांत जिसमें जगत् की उत्पत्ति नाश आदि नित्य परिणाम के रूप में माने जाते हैं। (सांख्य मत)।

परिणामवादी—वि० [सं० परिणामवादिन्] परिणामवाद को माननेवाला। सांख्य मतानुयायी [को०]।

परिणामशूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें भोजन पचने के समय पेट में पीड़ा होती है।

परिणामिक—वि० [सं०] सुपाच्य। सरलता से पच जानेवाला [को०]।

परिणामित्व—संज्ञा पुं० [सं०] बदलने का स्वभाव या धर्म। परिवर्तनशीलता।

परिणामिनित्य—वि० [सं०] जो नित्य हो, पर बदलता रहे। जो परिणामशील होकर नित्य या अविनाशी हो। जिसकी सत्ता स्थिर रहे पर रूप, आकार आदि बदलता रहे। जो एकरस न होकर भी अविनाशी हो।

विशेष—सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति परिणामिनित्य है और पुरुष अथवा आत्मा अपरिणामिनित्य।

परिणामी—वि० [सं० परिणामिन्] [वि० स्त्री० परिणामिनी] १. जो बराबर बदलता रहे। जिसका बदलने का स्वभाव हो। रूपांतरित होने या रहनेवाला। परिवर्तनधर्मी। २. जो परिवर्तन स्वीकार करे। बदलनेवाला।

परिणाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु को जिस दिशा में चाहे चलाना। सब ओर चलाना। २. चौसर, शतरंज आदि के गोटों को चलाना। ३. विवाह। ब्याह।

परिणायक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नेता। चलानेवाला। पथप्रदर्शक। २. सेनापति। ३. स्वामी। पति। भर्ता।

परिणायकरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध चक्रवर्ती। राजाओं के सप्तधन अथवा सात कोषों में से एक।

परिणाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. विस्तार। फैलाव। २. विशालता। चौड़ाई। ३. लंबी साँस। दीर्घ श्वास।

परिणाहवान्—वि० [सं० परिणाहवत्] विस्तारयुक्त। फैला हुआ। प्रशस्त।

परिणाही—वि० [सं० परिणाहिन्] विस्तारयुक्त। फैला हुआ। विस्तृत।

परिणिंसक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूमनेवाला। चुंबनकारी। २. खानेवाला। भक्षणकारी।

परिणिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चूमना। चुंबन। २. खाना। भक्षण।

परिणीत—वि० [सं०] १. विवाहित। जिसका ब्याह हो चुका हो। २. समाप्त। संपन्नकृत। पूर्ण।

परिणीतरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिणायकरत्न'।

परिणीता—वि० [सं०] विवाहिता। विवाह की हुई (स्त्री)।

परिणीता—संज्ञा स्त्री० विवाहिता स्त्री। पत्नी। [को०]।

परिणेतव्या—वि० स्त्री० [सं०] परिणय के योग्य (कुमारी)। विवाह के योग्य [को०]।

परिणेता—संज्ञा पुं० [सं० परिणेतृ] स्वामी। पति। भर्ता।

परिणेय—वि० [सं०] चारो ओर घुमाया जानेवाला [को०]।

परिणेया—वि० [सं०] ब्याहने योग्य (स्त्री)। पत्नी या भार्या बनाने के उपयुक्त।

परितः—अव्य० [सं० परितस्] १. सब ओर। चारो ओर। २. सब प्रकार। संपूर्ण रूप से। सर्वतोभाव से।

परितच्छ(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यक्ष] दे० 'प्रत्यक्ष'।

परितच्छ(पु)[2]—क्रि० वि० सामने से। देखते देखते।

परितस्तु—वि० [सं०] सब कहीं फैला हुआ। सर्वत्र व्याप्त। सर्वतोव्याप्त (अथर्ववेद)।

परितप्त—वि० [सं०] १. तपा हुआ। अत्यंत गरम। जलता हुआ। २. क्लेश का अनुभव करता हुआ। दुःखित। संतप्त।

परितप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तपन। जलन। दाह। गरमी। २. दुःख। क्लेश। व्यथा। मनस्ताप।

परितर्कण—संज्ञा पुं० [सं०] मनोयोगपूर्वक विचार। विशेष रूप से विमर्श करना [को०]।

परितर्कित—वि० [सं०] १. संभावित। संभावनायुक्त। २. परीक्षित। निर्णीत [को०]।

परितर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] संतुष्ट करना। प्रसन्न करना। तृप्त करना [को०]।

परिताप—संज्ञा पुं० [सं०] १. अत्यंत जलन। गरमी। आँच। ताव। २. दुःख। क्लेश। पीड़ा। व्यथा। दर्द। तकलीफ। ३. मानसिक दुःख या क्लेश। संताप। मनस्ताप। क्षोभ। उद्वेग। रंज। ४. पश्चात्ताप। पछतावा। उ०—अपने समय के नष्ट होने का परिताप होता है। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४४६। ५. भय। डर। ६. कंप। कँपकँपी। ७. एक विशेष नरक का नाम।

परितापक—वि० [सं०] क्षोभक। तापक। कष्टदायी। दुःखद। उ०—वेदना का स्वभाव विषय के आह्लादक, परितापक और इन दोनों आकारों से विविध स्वरूप का अनुभव करना है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३४७।

परितापित—वि० [सं०] संतापित। परितप्त। पीड़ित। तपाया हुआ। उ०—अब भी चेत ले तू नीच। दुःख परितापित धरा का स्नेह जल से सींच।—राज्यश्री, पृ० ४८।

परितापी[1]—वि० [सं० परितापिन्] १. जिसको परिताप हो। परितापयुक्त। दुःखित या व्यथित। २. जलता हुआ। अत्यंत तापयुक्त। ३. परितापकर्ता। पीडा देनेवाला। सतानेवाला। उ०—कृपारहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाइ विश्व परितापी।—मानस, १।१७६।

परितापी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] परितापकर्ता या पीड़ा देनेवाला व्यक्ति। उत्पीड़क। सतानेवाला।

परितिक्त[1]—वि० [सं०] अत्यंत तीता। बहुत तिक्त।

परितिक्त[2]—संज्ञा पुं० नीम। निंब।

परितुष्ट—वि० [सं०] १. खूब संतुष्ट। जिसका पूर्ण रीति से संतोष हो गया हो। २. प्रसन्न। खुश।

परितुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परितुष्ट होने का भाव। संतुष्टता। संतोष। परितोष। २. प्रसन्नता। खुशी।

परितृप्त—वि० [सं०] अघाया हुआ। संतुष्ट। तृप्त।

परितृप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अघाना। संतुष्टि। तृप्ति।

परितोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. संतोष। तृप्ति। उ०—ब्रजप्रसाद को पूरन पोष। रसबस लह्यो प्रान परितोष।—घनानंद, पृ० ३०६। २. प्रसन्नता। खुशी। वह प्रसन्नता जो किसी विशेष अभिलाषा या इच्छा के पूर्ण होने से उत्पन्न हो।

परितोषक—संज्ञा पुं० [सं०] परितोष करनेवाला। संतुष्ट करनेवाला। प्रसन्न या खुश करनेवाला।

परितोषण—संज्ञा पुं० [सं०] परितुष्टि। संतोष।

परितोषवान्—वि० [सं० परितोषवत्] परितोषयुक्त। संतुष्ट। परितुष्ट।

परितोषी—वि० [सं० परितोषिन्] संतोषशील। संतोषी।

परितोस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परितोष] दे० 'परितोष'।

परित्यक्त—वि० [सं०] १. जो त्याग दिया गया हो। जो छोड दिया गया हो। २. छोड़ा, फेंका, निकाला या दूर किया हुआ।

परित्यक्ता[1]—संज्ञा पुं० [सं० परित्यक्तृ] परित्याग करनेवाला। त्यागने, छोड़ने या फेंकनेवाला।

परित्यक्ता[2]—वि० स्त्री० [परित्यक्त का स्त्री०] त्यागी हुई। छोड़ी हुई।

परित्यजन—संज्ञा पुं० [सं०] परित्याग की क्रिया। त्यागना। छोड़ना। फेंकना। निकालना।

परित्यज्य—वि० [सं०] परित्याग के योग्य। फेंकने, छोडने या निकालने योग्य।

परित्याग—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्यागने का भाव। त्याग। २. निकालना। अलग कर देना। छोड़ना। ३. यज्ञ। याग (को०)। ४. अलगाव। जुदाई (को०)। ५. औदार्य। उदारता (को०)।

परित्यागना(पु)—क्रि० स० [सं० परित्यजन] छोड देना। त्याग देना।

परित्यागी—वि० [सं० परित्यागिन्] परित्यागशील। त्याग करनेवाला। छोड़नेवाला।

परित्याजन—संज्ञा पुं० [सं०] परित्याग की क्रिया। छोड़ना। निकालना।

परित्याज्य—वि० [सं०] परित्यागयोग्य। त्यागने या छोड़ देने के योग्य। खारिज करने के काबिल।

परित्रस्त—वि० [सं०] अधिक भयभीत। अत्यंत त्रस्त। विशेष डरा हुआ [को०]।

परित्राण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी की रक्षा करना, विशेषतः ऐसे समय में जब कोई उसे मार डालने को उद्यत हो। बचाव। हिफाजत। रक्षा। २. आत्मरक्षण। अपनी रक्षा। ३. शरीर के बाल। रोंगटे। ४ पूर्णतः रक्षण या बचाव (को०)। ५. पनाह। शरण। आश्रय (को०)।

परित्रात—वि० [सं०] जिसकी रक्षा की गई हो। रक्षाप्राप्त।

परित्रातव्य—वि० [सं०] रक्षा करने योग्य। परिरक्षितव्य (को०)।

परित्राता—संज्ञा पुं० [सं० परित्रातृ] परित्राणकर्ता। रक्षक। रक्षा करनेवाला। बचानेवाला।

परित्रायक—संज्ञा पुं० [सं०] परित्राता। रक्षक। रक्षा करनेवाला।

परित्रास—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष भय। बहुत डर (को०)।

परिदंशित—वि०[सं०] बख्तर से भली भाँति ढँका हुआ। जिरहपोश।

परिदग्ध—वि० [सं०] अत्यंत जला हुआ। झुलसा हुआ [को०]।

परिदर—संज्ञा पुं० [सं०] दाँतों का एक रोग जिसमें मसूड़े दाँतों से अलग हो जाते हैं और थूक के साथ रक्त निकलता है। वैद्यक के अनुसार यह रोग पित्त, रुधिर और कफ के प्रकोप से होता है।

परिदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सम्यक् रूप से अवलोकन। भली-भाँति देखना। २. दर्शन। अवलोकन। देखना।

परिदलन—संज्ञा पुं० [सं०] नष्ट करना। रौंदना [को०]।

परिदलित—वि० [सं०] दलित। दमित। कुंठित। उ०—अज्ञात मन क्षेत्र से कोई परिदलित ग्रंथि उसी प्रकार प्रस्फुटित हो जाती है जैसे बच्चे अपने मन की बातें बाह्य जगत् में देखने लग जाते हैं।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २९४।

परिदष्ट—वि० [सं०] १. जो काटकर टुकड़े टुकड़े कर दिया गया हो। २. काटा हुआ। दंशित।

परिदहन—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह जलाना। दग्ध करना। झुलसाना [को०]।

परिदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. लौटा देना। वापस कर देना। फिर दे देना। फेर देना। २ विनिमय। परिवर्तन। अदला बदली।

परिदाय—संज्ञा पुं० [सं०] सुगंध। परिमोद। खुशबू।

परिदायी—संज्ञा पुं० [सं० **परिदायिन्**] वह व्यक्ति जो ऐसे व्यक्ति को अपनी कन्या दान करे जिसका बड़ा भाई अविवाहित हो। परिवेत्ता का ससुर।

परिदाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. अत्यंत दाह या जलन। २ मानसिक पीड़ा या व्यथा। शोक। संताप।

परिदिग्ध[१]—वि० [सं०] १. जो किसी अन्य वस्तु के आवरण से ढक दिया गया हो। किसी वस्तु से लिप्त या पुता हुआ [को०]।

परिदिग्ध[२]—संज्ञा पुं० मांस का वह टुकड़ा जिसपर अन्न की तह या लेप चढ़ाकर पकाया गया हो [को०]।

परिदीन—वि० [सं०] जिसको अतिशय मानसिक दुःख हो। अत्यंत खिन्नचित्त।

परिदृढ—वि० [सं०] बहुत मजबूत। नितांत दृढ़ [को०]।

परिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] विलाप। रोना धोना।

परिदेवन—संज्ञा पुं० [सं०] विलाप करना। कलपना। रोकर आंतरिक दुःख जताना। अनुशोचन। अनुतापन।

परिदेवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिदेवन' [को०]।

परिद्यून—वि० [सं०] दुःखयुक्त। पीड़ायुक्त। शोक या वेदनामय [को०]।

परिद्रष्टा—संज्ञा पुं० [सं० **परिद्रष्ट्**] परिदर्शनकारी। दर्शन करनेवाला। देखनेवाला। अवलोकन करनेवाला।

परिद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड के एक पुत्र का नाम।

परिध—संज्ञा पुं० [सं० **परिधि**] दे० 'परिधि'।

परिधन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **परिधान**] नीचे पहनने का कपड़ा। धोती आदि। उ०—(क) कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनि चीरा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सीस जटा सरसीरुह लोचन, बने परिधन मुनि चीर।—तुलसी (शब्द०)।

परिधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु से अपने शरीर को चारों ओर से छिपाना। कपड़े लपेटना। २. कपड़ा पहनना। ३. वह जो पहना जाय। वस्त्र, कपड़ा, पोशाक। पहनावा। ४. धोती आदि नीचे पहनने के वस्त्र। ५ स्तुति, प्रार्थना, गायन आदि का समाप्त करना।

परिधानीय वि० [सं०] [वि० स्त्री० **परिधानीया**] परिधान योग्य। पहनने योग्य। २ जो पहना जाय। वस्त्र। परिधेय।

परिधापन—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। पहनावा [को०]।

परिधाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहनावा। परिधेय। वस्त्र। २. जलस्थान। ३ नितंब (को०)। ४. जनस्थान। जनपद (को०)।

परिधायक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढकने, लपेटने या चारों ओर से घेरनेवाला। २. बाड़ा। रूँधान। ३ चहारदीवारी।

परिधारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **परिधार्य, परिधृत**] १. उठाना। सहारना। धारण करना। २. बचा रखना। रक्षा करना।

परिधावन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहनने की प्रेरणा करना। २. पहनवाना।

परिधावन[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दौड़ना। भागना। २. पीछे पीछे दौड़ना [को०]।

परिधावी[१]—वि० [सं० **परिधाविन्**] १. दौड़नेवाला। २. द्रवणशील। बहनेवाला (को०)।

परिधावी[२]—संज्ञा पुं० बृहस्पति के ६० वर्ष के युगचक्र या फेरे में से ४६ वाँ या २० वाँ वर्ष।

परिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह रेखा जो किसी गोल पदार्थ के चारों ओर खींचने से बने। गोल वस्तु की चौहद्दी बनानेवाली रेखा। गोल पदार्थ का विस्तार नियमित करनेवाली रेखा। घेरा। २. रेखागणित में वह रेखा जो किसी वृत्त के चारों ओर खिंची हुई हो। वृत्त की चतुःसीमा प्रस्तुत करनेवाली रेखा। दायरे की शक्ल या चौहद्दी बनानेवाली रेखा। घेरा। ३ सूर्य, चंद्र आदि के आस पास देख पड़नेवाला घेरा। परिवेश। मंडल। ४. किसी प्रकार का, विशेषतः किसी वस्तु की रक्षा के लिये बनाया हुआ, घेरा। बाड़ा, रूँधान या चहारदीवारी। ५. घेरा। सीमा। वृत्त। दायरा। उ०—मैं किसी उचित रीति से उसकी शत्रुता की परिधि के बाहर जा सकता हूँ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ०, ६२३। ६ यज्ञकुंड के आसपास गाड़े जानेवाले तीन खूँटे।

विशेष—इन खूँटों के नाम दक्षिण, उत्तर और मध्यम होते थे।

७. कक्षा। नियत या नियमित मार्ग। ७. परिधेय। कपड़ा। वस्त्र। पोशाक। ८. प्रकाशमंडल। ज्योतिवृत्त (को०)। ९ आवरण (को०)। १०. पहिए का घेरा (को०)। ११. क्षितिज (को०)। १२. समिधा (को०)।

परिधिपतिलेचर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

परिविस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिचारक। परिचर। सेवक। खिदमतगार। २. वे सैनिक जो रथ के चारो ओर इसलिये खड़े कराए जाते थे कि शत्रु के प्रहार से रथ और रथी की रक्षा करते रहे। रथ और रथी की रक्षक सेना।

परिधीर—वि० [सं०] अतिशय धीर। गंभीर।

परिधूपित—वि० [सं०] पूर्णत. धूप से वासित। पूर्णत. सुगंधयुक्त किया हुआ [को०]।

परिधूमन—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार तृष्णा रोग का एक उपद्रव जिसमें एक विशेष प्रकार की कै आती है।

परिधूमायन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिधूमन'।

परिधूसर—वि० [सं०] अत्यधिक धूलियुक्त। धूल से भरा हुआ [को०]।

परिधेय[१]—वि० [सं०] पहनने के योग्य। परिधान के उपयुक्त।

परिधेय[२]—संज्ञा पुं० वस्त्र। पोशाक। कपड़ा। विशेषतः वह वस्त्र जो नीचे या भीतर पहना जाय।

परिध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] १. अत्यंत नाश। बिलकुल मिट जाना। २. नाश। मिटना। ३. जातिच्युत होना (को०)। ४. वर्णसांकर्य। वर्णसंकरता (को०)। ५. उपप्लव (को०)।

परिनय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परिणय] दे० 'परिणय'।

परिनयन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परिणयन] दे० 'परिणयन'। उ०—पहुँचि नहिय परिनयन कहँ जुग भाइन सुधि भुल्लि।—पृ० रासो, पृ० ६०।

परिनाम[१]—संज्ञा पुं० [सं० प्रणाम] दे० 'प्रणाम'। उ०—परसे बीर सु सब्ब करी प्रथिराज पाइ परिनामं।

परिनाम(पु)[२]—संज्ञा पुं० [सं० परिणाम] नतीजा। फल। परिणाम उ०—दिनं दिन बाढ़त आनंद को प्रवाह महा जाके परिनाम न मिले दुख सोग है।—दीन, ग्रं०, पृ० १४१।

परिनामी(पु)—वि० [सं० परिणामी] दे० 'परिणामी'।

परिनिर्वपण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रदान करना। देना। बाँटना (को०)।

परिनिर्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] अति निर्वाण। पूर्ण निर्वाण। पूर्ण मोक्ष।

परिनिर्वाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्वाण मुक्ति। निर्वाण गति।

परिनिर्वृत—वि० [सं०] जिसको परिनिर्वाण प्राप्त हुआ हो। परिमुक्त। मुक्त।

परिनिर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिमुक्ति। मोक्ष। मुक्ति।

परिनिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चरम सीमा या अवस्था। अंतिम सीमा। पराकाष्ठा। २. पूर्णता। ३. अभ्यास अथवा ज्ञान की पूर्णता।

परिनिष्ठित—वि० [सं०] १. पूर्ण। संपन्न। समाप्त। २. पूर्ण। अभ्यस्त। पूर्ण कुशल।

परिनिष्पन्न—वि० [सं०] १. भली भाँति पूरा किया हुआ। २. सुख दुःख तथा भाव अभाव की चिंता से मुक्त। उ०—स्वभाव तीन है—परिकल्पित, परतंत्र, परिनिष्पन्न।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३६०।

परिनैष्ठिक—वि० [सं०] सर्वश्रेष्ठ। सर्वोच्च। सर्वोत्कृष्ट।

परिन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] १. काव्य में वह स्थल जहाँ कोई विशेष अर्थ पूरा हो। २. नाटक में आख्यानबीज अर्थात् मुख्य कथा की मूलभूत घटना की संकेत से सूचना करना।

परिपंच(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रपञ्च] दे० 'प्रपंच'।

परिपंथ—संज्ञा पुं० [सं० परिपन्थ] वह जो रास्ता रोके हुए हो।

परिपंथक—संज्ञा पुं० [सं० परिपन्थक] शत्रु। दुश्मन।

परिपंथिक—वि० [सं० परिपन्थिक] दे० 'परिपंथक'।

परिपंथी—संज्ञा पुं० [सं० परिपन्थिन्] १. शत्रु। दुश्मन। उ०—आज बने मेरे परिपंथी, मुझ बेबस के सकल उपकरण। मुझसे ही विद्रोह कर चले मेरे ये लालित इंद्रिय गण।—अपलक, पृ० ७६। २. विरुद्ध कार्य करनेवाला। प्रतिकूल आचरण करनेवाला (वैदिक)।

परिपक्व—वि० [सं०] १ अच्छी तरह पका हुआ। पूर्ण पक्व। सम्यक् रीति से पक्व। खूब पका हुआ। जैसे, ईंट, फल, अन्न आदि। २. अच्छी तरह पचा हुआ। सम्यक् रीति से जीर्ण। जो बिलकुल हजम हो गया हो। ३. पूर्ण विकसित। परिणत। प्रौढ़। पका। पुख्ता। जैसे, परिपक्व बुद्धि या ज्ञान। ४. जो बहुत कुछ देख सुन चुका हो। बहुदर्शी। तजुरबेकार। ५. निपुण। कुशल। प्रवीण। उस्ताद। पूरा।

परिपक्वता—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिपक्व होने की क्रिया या भाव।

परिपक्वावस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परिपक्व होने की दशा या स्थिति। २. प्रौढ़ता। प्रौढ़ावस्था।

परिपण—संज्ञा पुं० [सं०] मूल धन। पूँजी।

परिपणन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाजी लगाना। शर्त बदना। २. वचन देना। वादा करना [को०]।

परिपणितकाल संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० परिपणितकाल सन्धि] आप इतने समय तक लड़िए और मै इतने समय तक लड़ूँगा इस प्रकार की समय संबंधी संधि।

परिपणितदेश संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० परिपणितदेश सन्धि] आप इस देश पर चढ़ाई करिए और हम इस देश पर चढ़ाई करते हैं, इस ढंग की देश विषयक संधि।

परिपणितसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० परिपणितसन्धि] कुछ शर्तों के साथ की गई संधि। इसके तीन भेद है—परिपणितदेश संधि, परिपणितकाल संधि, और परिपणितार्थ संधि।

परिपणितार्थ संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० परिपणितार्थ सन्धि] आप इतना काम करें और मैं इतना काम करूँगा, ऐसी कार्य विषयक संधि।

परिपति—संज्ञा पुं० [सं०] सर्वव्यापी। वह जो हर स्थान में उपस्थित हो।

परिपन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिपण' [को०]।

परिपर—संज्ञा पुं० [सं०] टेढ़ा मेढ़ा चक्करदार रास्ता [को०]।

परिपरी—संज्ञा पुं० [सं० परिपरिन्] शत्रु। विपक्ष। प्रतिद्वंद्वी [को०]।

परिपवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनाज ओसाना। भूसे और अन्न को अलग करने की क्रिया। ओसाई। २. अन्न ओसाने की खँचिया। डलिया (को०)।

परिपांडिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० परिपाण्डिमन्] अधिक श्वेतता या पीलापन [को०]।

परिपांडु—वि० [सं० परिपाण्डु] १. बहुत हलका पीला। सफेदी लिए हुए पीला। २. दुर्बल। कृश। क्षीण।

परिपांडुर—वि० [सं० परिपाण्डुर] दे० 'परिपांडु' [को०]।

परिपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पकने का भाव। पकना या पकाया जाना। २. पचने का भाव। पचना। पचाया जाना। ३. प्रौढ़ता। पूर्णता। परिणति (बुद्धि अनुभव आदि के लिये)। ४. बहुदर्शिता। तजुर्बेकारी। ५. कुशलता। निपुणता। प्रवीणता। उस्तादी। ६. कर्मफल। विपाक। परिणाम। फल। नतीजा।

परिपाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

परिपाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अच्छी तरह पचना। भली भाँति पचना। २. वह जो पूरी तरह से पच जाय।

परिपाचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पदार्थ को पूर्ण पक्व अवस्था में लाना।

परिपाचित—वि० [सं०] १. पूर्णत. पकाया हुआ। २. भूना हुआ।

परिपाटल—वि० [सं०] जिसका रंग पीलापन लिए लाल हो। जर्दी लिए हुए लाल रंग का।

परिपाटलित—वि० [सं०] पीले और लाल रंग में रँगा हुआ। जो पीला और लाल रंग मिलाकर रँगा गया हो।

परिपाटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिपाटी'।

परिपाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रम। श्रेणी। सिलसिला। २. प्रणाली। रीति। शैली। तरीका। चाल। ढंग। ३. अंकगणित। ४. पद्धति। रीति। चाल। नियम। संप्रदाय। उ०—(क) जेनिक हरि अवतार सबै पूरण करि जानै। परिपाटी ध्वज विजय सदृश भागवत बखानै।—नाभाजी (शब्द०)। (ख) नाटी सी है परिपाटी कवित्त की ताकौं त्रिधा विधि बुद्धि बनाई।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २५०।

परिपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार सविस्तार (वेद) पाठ करना। २. विशद या विस्तृत उल्लेख [को०]।

परिपार(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० पालि या परिपाटी] मर्यादा। उ०—अरे परेखो को करै तुँही बिलोकि बिचारि। किहिं नर किहिं सर राखियै खरै बढ़ै परिपारि।—बिहारी (शब्द०)।

परिपारना(पु)—क्रि० स० [सं० परिपालन] प्रतिपालन करना। निर्वाह करना। उ०—भूल्यो चूक्यो होहुँ सो, लीज्यो संत सुधारि। मीनि राधिका रमन की प्रीति रीति परिपारि।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११।

परिपार्श्व—संज्ञा पुं० [सं०] पार्श्व। बगल।

परिपालक—वि० [सं०] परिपालन करनेवाला [को०]।

परिपालन—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षा करना। बचाना। २. रक्षा। बचाव।

परिपालना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० परिपालन] रक्षा करना। बचाना। उ०—बससि सदा हम कहँ परिपालय।—मानस, ७।३४।

परिपालना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिपालन' [को०]।

परिपालनीय—वि० [सं०] परिपालन या रक्षण के योग्य [को०]।

परिपालयिता—संज्ञा पुं० [सं० परिपालयितृ] वह जो परिपालन करे [को०]।

परिपालयिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिपालन की इच्छा [को०]।

परिपाल्य—वि० [सं०] जो रक्षा या पालन करने के योग्य हो।

परिपिंग—वि० [सं० परिपिङ्ग] लाली से युक्त भूरा। अत्यंत पिंग वर्ण का [को०]।

परिपिंजर—वि० [सं० परिपिञ्जर] हलके लाल रंग का। पिंगलवर्ण।

परिपिच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक आभूषण जो मोर की पूँछ के परों से बनता था।

परिपिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा।

परिपीड़न—संज्ञा पुं० [सं० परिपीडन][वि० परिपीडित] १. अत्यंत पीड़ा पहुँचाना या देना। २. पीसना। ३. अनिष्ट करना।

परिपीवर—वि० [सं०] अति मोटा। बहुत मोटा या तगड़ा।

परिपुटन—संज्ञा पुं० [सं०] १. छिलका या बोकला अलग करना। २. संपुटन [को०]।

परिपुष्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोंडुब ककड़ी। गोंड़बा।

परिपुष्ट—वि० [सं०] १. जिसका पोषण भली भाँति किया गया हो। सम्यक् रीति से पोषित। २. जिसकी वृद्धि पूर्ण रीति से पुष्ट हुई हो। खूब हृष्ट पुष्ट। पूर्ण पुष्ट।

परिपूजन—संज्ञा पुं० [सं०] सम्यक् प्रकार से पूजन या उपासना।

परिपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विधिवत् पूजन [को०]।

परिपूजित—वि० [सं०] विधिवत् पूजित। सविधि पूजाप्राप्त [को०]।

परिपूत[1]—वि० [सं०] अति पवित्र।

परिपूत[2]—संज्ञा पुं० ऐसा अन्न जिसकी भूसी या छिलका अलग कर लिया गया हो। छाँटा हुआ अन्न।

परिपूरक—वि० [सं०] १. परिपूर्ण कर देनेवाला। भर देनेवाला। लबालब कर देनेवाला। २. समृद्धिकर्ता। धनधान्य से भरनेवाला। ३. संपूर्ण।

परिपूरण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] परिपूर्ण करना। भरना। २. पूर्ण या पूरा करना [को०]।

परिपूरण[2]—वि० [सं० परिपूर्ण] दे० 'परिपूर्ण'। उ०—खुल खुल नव इच्छाएँ, फैलातीं जीवन के दल। गा गा प्राणों का मधुकर, पीता मधुरस परिपूरण।—गुंजन, पृ० १६।

परिपूरणीय—वि० [सं०] परिपूर्ण करने योग्य। परिपूरित करने लायक [को०]।

परिपूरन(पु)—वि० [सं० **परिपूर्ण**] दे० 'परिपूर्ण'। उ० —प्रेम भरे जग प्रगटहिं, हरि परिपूरन रूप।—नंद० ग्रं०, पृ० २२७।

परिपूरित —वि० [सं०] १ परिपूर्ण। खूब भरा हुआ। लबालब। २. संपूर्ण। समाप्त किया हुआ। पूरा किया हुआ।

परिपूर्ण—वि० [सं०] १. खूब भरा हुआ। सम्यक् रीति से व्याप्त। २. पूर्ण तृप्त। अघाया हुआ। ३. समाप्त किया हुआ। संपूर्ण। पूरा किया हुआ।

परिपूर्णचंद्रविमलप्रभ— संज्ञा पुं० [सं० **परिपूर्णचन्द्रविमलप्रभ**] एक प्रकार की समाधि जिसका वर्णन बौद्ध शास्त्रों में मिलता है।

परिपूर्णेंदु—संज्ञा पुं० [सं० **परिपूर्णेन्दु**] पूर्णिमा का चंद्रमा। षोडश कलायुक्त चंद्रमा [को०]।

परिपूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिपूर्ण होने की क्रिया या भाव परिपूर्णता।

परिपृच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] जिज्ञासा। प्रश्न [को०]।

परिपृच्छक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रश्नकर्ता। वह जो पूछे। पूछनेवाला। जिज्ञासा करनेवाला।

परिपृच्छक[2]—वि० पूछनेवाला। जिज्ञासा करनेवाला।

परिपृच्छनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बात जिसको लेकर वादविवाद किया जाय। वाद का विषय।

परिपृच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिज्ञासा। पूछना। प्रश्न करना।

परिपेल—संज्ञा पुं० [सं०] केवटी मोथा। कैवर्त मुस्तक।

परिपेलव[1]—वि० [सं०] अति सुकुमार या कोमल।

परिपेलव[2]—संज्ञा पुं० केवटी मोथा।

परिपोट—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक रोग जिसमें लौंक का चमड़ा सूजकर स्याही लिए हुए लाल रंग का हो जाता है और उसमें पीड़ा होती है। प्रायः कान में भारी बाली आदि पहनने से यह रोग होता है।

परिपोटक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिपोट'।

परिपोटन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिपोट'।

परिपोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिपोट'।

परिपोष—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण पुष्टि या वृद्धि।

परिपोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पालन। परवरिश करना। २. पुष्ट या वर्धित करना।

परिप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] जिज्ञासा। प्रश्न [को०]।

परिप्राप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्ति। मिलना।

परिप्रेक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिप्रेक्ष्य'।

परिप्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिप्रेक्ष्य'।

परिप्रेक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] दृश्यों वस्तुओं या व्यक्तियों का ऐसा चित्रण जिसमें प्रत्येक का अंतर स्पष्ट हो जाय।

परिप्रेषण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **परिप्रेषित, परिप्रेष्य**] १. चारो ओर भेजना। जिधर इच्छा हो उधर भेजना। दूत या हरकारा बनाकर भेजना। २. निर्वासन। किसी विशेष स्थान या देश से निकाल देना। ३. त्याग देना। परित्याग करना।

परिप्रेषित—वि० [सं०] १. भेजा हुआ। प्रेरित। २. निर्वासित। निकाला हुआ। ३ त्यागा हुआ। परित्यक्त।

परिप्रेष्य[1]—वि० [सं०] भेजने योग्य। प्रेरणा करने योग्य।

परिप्रेष्य[2]—संज्ञा पुं० नौकर। दास। टहलुआ। अनुचर।

परिप्रोत—वि० [सं० **परि + प्रोत**] चारो ओर से गुथा हुआ या छिपा हुआ। उ०—उमड़ पड़ा पावस परिप्रोत। फूट रहे नव नव जलस्रोत।—गुंजन, पृ० ६८।

परिप्लव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ तैरना। २. बाढ़ प्लावन। ३. अत्याचार। जुल्म। ४. नौका। नाव। जहाज। ५. पुराणानुसार एक राजकुमार का नाम जो सुखीनल राजा का लड़का था।

परिप्लव[2]—वि० [सं०] १. हिलता हुआ। काँपता हुआ। चंचल। अस्थिर। २. बहता हुआ। चलता हुआ। गतियुक्त।

परिप्लवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ में काम आनेवाली एक प्रकार की करछी या चिमचा। एक प्रकार की दर्वी।

परिप्लावित—वि० [सं०] दे० 'परिप्लुत' [को०]।

परिप्लुत[1]—वि० [सं०] १. जिसके चारो ओर जल ही जल हो। प्लावित। डूबा हुआ। २. गीला। भीगा हुआ। तराबोर। आर्द्र। स्नात। ३ काँपता हुआ। कंपित।

परिप्लुत[2]—संज्ञा पुं० फलाँग। छलाँग।

परिप्लुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मदिरा। शराब। २. वह योनि जिसमें मैथुन या मासिक रज स्राव के समय पीड़ा हो।

परिप्लुष्ट—वि० [सं०] जला हुआ। भुना हुआ।

परिप्लोष —संज्ञा पुं० [सं०] १. जलन। दाह। २ जलना। भुनना। तपना। ३. शरीर के भीतर की गरमी।

परिफुल्ल —वि० [सं०] १. अच्छी तरह खिला हुआ। सम्यक् विकसित। खूब खिला हुआ। २. खूब खुला हुआ। अच्छी तरह खुला हुआ। जैसे, परिफुल्ल नेत्र। ३. जिसके रोंगटे खड़े हों। रोमांचयुक्त।

परिबंध —वि० [सं० **परिबन्ध**] अच्छी तरह बँधा हुआ। सुगठित। उ०—परिबंध निबंध में आकार की लघुता रहती है।—सं० शास्त्र, पृ० १७८।

परिबंधन—संज्ञा पुं० [सं० **परिबन्धन**] [वि० **परिबद्ध**] चारो ओर से बाँधना। अच्छी तरह बाँधना। जकड़कर बाँधना।

परिबर्ह—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजाओं के हाथी घोड़ों पर डाली जानेवाली झूल। २. राजा के छत्र, चँवर आदि। राजचिह्न या राजा का साज सामान। ३ नित्य के व्यवहार की वस्तुएँ। घर में नित्य काम आनेवाली चीजें। वे चीजें जिनकी गृहस्थी में अत्यावश्यकता हो। ४. संपत्ति। दौलत। माल असबाब।

परिबर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूजा। उपासना। २. बढ़ती। समृद्धि। परिवृद्धि।

परिबा†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'प्रतिपदा'। उ०—परिबा को दे मोहमो।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३२।

परिबाधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीड़ा। कष्ट। बाधा। २. श्रम। श्रांति। मिहनत।

परिबृंहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **परिबृंहित**] १. समृद्धि उन्नति। बढ़ती। २. बढ़ना। अभिवर्धन। ३. वह ग्रंथ अथवा शास्त्र जो किसी अन्य ग्रंथ या शास्त्र के विषय की पूर्ति या पुष्टि करता हो। किसी ग्रंथ के अंगस्वरूप अन्य ग्रंथ। जैसे—ब्राह्मण आदि ग्रंथ वेद के परिबृंहण हैं।

परिबृंहित—वि० [सं०] १. समृद्ध। उन्नत। २. किसी से जुड़ा या मिला हुआ। युक्त। अंगीभूत। ३. बढ़ाया हुआ। अभिवर्धित।

परिबृंहित—संज्ञा पुं० हाथी की चिग्घाड़। हाथी का चिल्लाना [को०]।

परिबृत्ति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **परिवृत्ति**] एक अर्थालंकार। दे० 'परिवृत्ति'। उ०—घाटि बाढ़ि दै बात को जहाँ पलिटबो होय। तहाँ कहत परिवृत्ति हैं कवि कोविद सब कोय।—मति० ग्रं०, पृ० ४१६।

परिबेख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **परिवेष**] दे० 'परिवेष'। उ०—तन नील सारी मैं किनारी चंदमुख परिबेख। सिंदूर सिर दोउ नैन काजर पान की मुख रेख।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १२०।

परिबोध—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान।

परिबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **परिबोधनीय**] १. दंड की धमकी देकर या कुफलभोग का भय दिखा कर कोई विशेष कार्य करने से रोकना। चिताना। २. ऐसी धमकी या भय प्रदर्शन। चेतावनी।

परिबोधना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिबोधन'।

परिभंग—संज्ञा पुं० [सं० **परिभङ्ग**] खंड खंड करना। टुकड़े टुकड़े करना [को०]।

परिभक्ष—वि० [सं०] दूसरों का माल खानेवाला।

परिभक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **परिभक्षित**] बिलकुल खा डालना। खूब खा जाना। सफाचट कर देना।

परिभक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आपस्तंब सूत्र के अनुसार एक विशेष विधान।

परिभक्षित—वि० [सं०] पूर्ण रूप से खाया हुआ।

परिभर्त्सन—संज्ञा पुं० [सं०] डाँटना फटकारना। धमकाना [को०]।

परिभव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनादर। तिरस्कार। अपमान। हतक। २. हार। पराजय (को०)।

परिभवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **परिभवनीय**] अनादर या तिरस्कार करना। अपमान करना। हतक या तौहीन करना।

परिभवनीय—वि० [सं०] १ तिरस्करणीय। अनादर योग्य। २. पराभव योग्य [को०]।

परिभवपद—संज्ञा पुं० [सं०] उपेक्षणीय पदार्थ। [को०]।

परिभवविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार। उपेक्षा [को०]।

परिभवी—वि० [सं० **परिभविन्**] अपमानकारी। तिरस्कार करनेवाला।

परिभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिभव। अनादर। तिरस्कार। अपमान। २. (नाटक में) कोई आश्चर्यजनक दृश्य देखकर कुतूहलपूर्ण बातें कहना।

परिभावन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **परिभावित**] १. मिलाप। मिलन। संयोग। २. चिंता। फिक्र। विचारणा।

परिभावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चिंता। सोच। फिक्र। २. साहित्य में वह वाक्य या पद जिससे कुतूहल या अतिशय उत्सुकता सूचित अथवा उत्पन्न हो।

विशेष—नाटक में ऐसे वाक्य जितने अधिक हों उतना ही अच्छा समझा जाता है।

परिभावित—वि० [सं०] १ चिंतित। विचारित। २. संयुक्त। ३. परिव्याप्त [को०]।

परिभावी[1]—वि० [सं० **परिभाविनी**] परिभावकारी। तिरस्कार या अपमान करनेवाला।

परिभावी[2]—संज्ञा पुं० वह जो तिरस्कार या अपमान करे। तिरस्कार या अपमान करनेवाला।

परिभावुक—वि० [सं०] तिरस्कार करनेवाला। अनादर या अवज्ञा करनेवाला।

परिभाषक—संज्ञा पुं० [सं०] निंदक। बदगोई करनेवाला। निंदा द्वारा किसी का अपमान करनेवाला।

परिभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निंदा करते हुए उलाहना देना। निंदा के सहित उपालभ देना। किसी को दोष देते या लानत मलामत करते हुए उसके कार्य पर असंतोष प्रकट करना। २. ऐसा उलाहना जिसके साथ निंदा भी हो। निंदा सहित उपालंभ। लानत मलामत। फटकार।

विशेष—मनुस्मृति के अनुसार गर्भिणी, आपद्ग्रस्त, वृद्ध और बालक को और किसी प्रकार का दंड न देकर केवल परिभाषण का दंड देना चाहिए।

३. बोलना चालना या बातचीत करना। भाषण। आलाप। ४. नियम। दस्तूर। कायदा।

परिभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परिष्कृत भाषण। स्पष्ट कथन। संशयरहित कथन या बात। २. पदार्थ-विवेचना-युक्त अर्थ-कथन। किसी शब्द का इस प्रकार अर्थ करना जिसमें उसकी विशेषता और व्याप्ति पूर्ण रीति से निश्चित हो जाय। ऐसा अर्थनिरूपण जिसमें किसी ग्रंथकार या वक्ता द्वारा प्रयुक्त किसी विशेष शब्द या वाक्य का ठीक ठीक लक्ष्य प्रकट हो जाय। किसी शब्द के वाक्य का इस रीति से वर्णन जिसमें उसके समझने में किसी प्रकार का भ्रम या संदेह न हो सके। लक्षण। तारीफ। जैसे,—तुम उदारता उदारता तो बीस बार कह गए, पर जबतक तुम अपनी उदारता की परिभाषा न कर दो मैं उससे कुछ भी नहीं समझ सकता।

विशेष—परिभाषा संक्षिप्त और अतिव्याप्ति, अव्याप्ति से रहित होनी चाहिए। जिस शब्द की परिभाषा हो वह उसमें न आना चाहिए। जिस परिभाषा में ये दोष हों वह शुद्ध परिभाषा नहीं होगी बल्कि दुष्ट परिभाषा कहलाएगी।

क्रि० प्र०—कहना।—करना।

३. किसी शास्त्र, ग्रंथ, व्यवहार आदि की विशिष्ट संज्ञा। ऐसा शब्द जो शास्त्रविशेष में किसी निर्दिष्ट अर्थ या भाव का संकेत मान लिया गया हो। ऐसा शब्द जो स्थानविशेष में ऐसे अर्थ में प्रयुक्त हुआ या होता हो जो उसके अवयवों या व्युत्पत्ति से भली भाँति न निकलता हो। पदार्थविवेचकों या शास्त्रकारों की बनाई हुई संज्ञा। जैसे, गणित की परिभाषा, वैद्यक की परिभाषा, जुलाहों की परिभाषा। ४. ऐसे शब्द का अर्थनिर्देश करनेवाला वाक्य या रूप। ५. ऐसी बोलचाल जिसमें वक्ता अपना आशय पारिभाषिक शब्दों में प्रकट करे। ऐसी बोलचाल जिसमें शास्त्र या व्यवसाय की विशेष संज्ञाएँ काम में लाई गई हों। जैसे—यदि यही बात विज्ञान की परिभाषा में कही जाय तो इस प्रकार होगी। ६. सूत्र के ६ लक्षणों में से एक। ७. निंदा। परिवाद। शिकायत। बदनामी।

परिभाषित—वि० [सं०] १. जो अच्छी तरह कहा गया हो। जिसका स्पष्टीकरण किया गया हो। २. (वह शब्द) जिसकी परिभाषा की गई हो। जिसका अर्थ किसी विशेष सूत्र या नियम द्वारा निर्दिष्ट तथा परिमित कर दिया गया हो।

परिभाषी[1]—वि० [सं० **परिभाषिन्**] बोलनेवाला। भाषणकारी।

परिभाषी[2]—संज्ञा पुं० बोलनेवाला। भाषणकारी। वह व्यक्ति जो बोले या कहे।

परिभाष्य—वि० [सं०] कहने योग्य। बताने योग्य।

परिभिन्न—वि० [सं०] १. विकृत आकृति का। जिसका आकार विकृत हो। २. क्षत। ३. फटा हुआ। चिरा हुआ। विदीर्ण [को०]।

परिभुक्त—वि० [सं०] जिसका भोग किया जा चुका हो। जो काम में आ चुका हो। उपभुक्त।

परिभुग्न—वि० [सं०] झुका हुआ। टेढ़ा मेढ़ा [को०]।

परिभू—वि० [सं०] १. जो चारों ओर से घेरे या आच्छादित किए हो। २. नियामक। ३ परिचालक।

विशेष—यह शब्द ईश्वर का विशेषण है।

परिभूत—वि० [सं०] १ हारा या हराया हुआ। पराजित। २ जिसका अनादर या अपमान किया गया हो। तिरस्कृत। अपमानित।

परिभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निरादर। तिरस्कार। अपमान। २ श्रेष्ठता।

परिभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सजाने की क्रिया या भाव। सजावट या सजाना। बनाव सँवार या बनाना सँवारना। २ कामंदकीय नीति के अनुसार वह शांति जो किसी विशेष प्रदेश या भूखंड का राजस्व किसी को देकर स्थापित की जाय। वह संधि जो किसी विशेष प्रांत या प्रदेश की सारी मालगुजारी किसी शत्रु राजा आदि को देकर की जाय। ३. ऐसी शांति या संधि की स्थापना। पूर्वोक्त प्रकार की शांति या संधि स्थापित करने का कार्य।

परिभूषित—संज्ञा पुं० [सं०] सजाया हुआ। बनाया या सँवारा हुआ। शृंगार सहित।

परिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रादि का आघात। तलवार तीर आदि का घाव। जख्म।

परिभेदक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] फाड़ने या छेदनेवाला व्यक्ति या शस्त्र। खूब गहरा घाव करनेवाला मनुष्य या हथियार।

परिभेदक[2]—वि० काटने फाड़ने या छेदनेवाला। आघातकारी।

परिभोक्ता—संज्ञा पुं० [सं० **परिभोक्तृ**] १. वह मनुष्य जो दूसरे के धन का उपभोग करे। २. वह मनुष्य जो गुरु के धन का उपभोग करे।

परिभोग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिभोग्य] १. बिना अधिकार के परकीय वस्तु का उपभोग। २. भोग। उपभोग। ३. मैथुन। स्त्रीप्रसंग।

परिभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिराव या गिराना। पतन। च्युति। स्खलन। २. भगदड़। भागना। पलायन।

परिभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. इधर उधर टहलना। घूमना। भटकना पर्यटन। भ्रमण। २. घुमा फिराकर कहना। सीधे सीधे न कहकर और प्रकार से कहना। किसी वस्तु के प्रसिद्ध नाम को छिपाकर उपयोग, गुण, संबंध आदि से उसका संकेत करना। जैसे, पत्र (चिट्ठी) को 'बकरी का भोज्य' या 'माता' को पिता की 'पत्नी' कहना। ३ भ्रम। भ्रांति। प्रमाद।

परिभ्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. घूमना। (पहिए आदि का) चक्कर खाना। २. परिधि। घेरा। ३. टहलना। घूमना। फिरना। ४. इधर उधर मटरगश्ती करना। भटकना।

परिभ्रष्ट—वि०[सं०] गिरा हुआ। पतित। च्युत। स्खलित। २. भागा हुआ। पलायित। ३ किसी वस्तु या व्यक्ति से रहित (को०)।

परिभ्रामण—संज्ञा पुं० [सं०] १. इतस्तत घुमाना। परिभ्रमण कराना। २. (गाड़ी के पहिए आदि को) घुमाना या चक्कर देना [को०]।

परिभ्रामी—वि० [सं० **परिभ्रामिन्**] परिभ्रमण करनेवाला। भटकनेवाला। टहलने या घूमनेवाला।

परिमंडल[1]—संज्ञा पुं० [सं० **परिमण्डल**] १. चक्कर। घेरा। दायरा। परिधि। २ एक प्रकार का विषैला मच्छर। ३. गोलक। पिंड (को०)।

परिमंडल[2]—वि० १. गोल। वर्तुलाकार। २ जिसका मान परमाणु के बराबर हो।

परिमंडलकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० **परिमण्डलकुष्ठ**] एक प्रकार का महाकुष्ठ। मंडलकुष्ठ।

विशेष—दे० 'मंडल'।

परिमंडलता—संज्ञा स्त्री० [सं० **परिमण्डलता**] गोलाई।

परिमंडलित—वि० [सं० **परिमण्डलित**] जो गोल किया गया हो। वर्तुलाकार बनाया हुआ। मंडलीकृत।

परिमंथर—वि० [सं० परिमन्थर] अत्यंत मंद, धीरा या धीमा। जैसे, परिमंथर गति।

परिमंद—वि० [सं० परिमन्द] १. अत्यंत श्रांत या थकित। २. अत्यंत शिथिल या सुस्त। अत्यंत क्लांत। ३. अत्यल्प। अत्यंत कम। बहुत थोड़ा (को०)।

परिमन्यु—वि० [सं०] क्रोध से भरा हुआ। अत्यंत कोपयुक्त।

परिमर—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के नाश के लिये किया जानेवाला तांत्रिक प्रयोग। २. विनाश। संहार। ३. पवन। वायु [को०]।

परिमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्णतया मर्दन। रगड़ना। घर्षण। २. मीजना। मसलना। ३. विनाश [को०]।

परिमर्श—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिमृष्ट] १. छू जाना। लग जाना। लगाव होना। स्पर्श होना। २. अच्छी तरह विचार करना। सोचना। किसी बात के सब पक्षों पर विचार करना।

परिमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईर्ष्या। कुढ़न। चिढ़। २. क्रोध।

परिमल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिमलित] १. सुवास। उत्तम गंध। खुशबू। उ०—परिमल भ्रम गुलाब की भरि हस सो सुख पावहीं।—दरिया० बानी, पृ० ७। २. वह सुगंध जो कुमकुम आदि सुगंधित पदार्थों के मले जाने से उत्पन्न हो। ३. मलने का कार्य। मलना। उबटना। ४. कुमकुम आदि का मलना या उबटना। ५. मैथुन। सहवास। संभोग। ६. दाग। धब्बा। चिह्न। ७. पंडितों का समुदाय।

परिमलज—वि० [सं०] (सुख) जो मैथुन से प्राप्त हो। संभोग-जनित (सुख)।

परिमलामोद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परिमल + आमोद] अत्यंत सुगंध। परिमल का सुवास।

परिमलित—वि० [सं०] १. परिमलयुक्त। सुवासित। २. मसला हुआ। मींजा हुआ [को०]।

परिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० परिमिति या सं० परि + √मा (= मान)] सीमा। इयत्ता। उ०—जग की विभूतियों को छानकर, एक तीखे घूँट ही में पानकर, लाख लाख प्राणियों के जीवन की गरिमा, हाय उस सुमन की छोटी सी परिमा।—चिता, पृ० २६।

परिमाण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिमित, परिमेय] १. वह मान जो नाप या तौल के द्वारा जाना जाय। वह विस्तार, भार या मात्रा जो नापने या तौलने से जानी जाय।

विशेष—वैशेषिक के अनुसार मूर्त अमूर्त दोनों प्रकार के द्रव्यों के संख्यादि पाँच गुणों में से परिमाण भी एक है।

२. घेरा। चारों ओर का विस्तार।

परिमाणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मात्रा। २. तौल [को०]।

परिमाणवान्—वि० [सं० परिमाणवत्] परिमाणयुक्त। परिमाण-विशिष्ट।

परिमाणी—वि० [सं० परिमाणिन्] परिमाणयुक्त। परिमाणविशिष्ट।

परिमाता—संज्ञा पुं० [सं० परिमातृ] १. नापनेवाला। नापने का काम करनेवाला। पैमाइश करनेवाला। २. वजन करने या तौलनेवाला।

परिमाथी—वि० [परिमाथिन्] कष्टदायक। कष्टप्रद। कष्टकर [को०]।

परिमान(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० परिमाण] दे० 'परिमाण'।

परिमान(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाण] दे० 'प्रमाण'।

परिमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिमार्गण'।

परिमार्गण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिमार्गित, परिमार्गितव्य] १. खोजने या ढूँढने का कार्य। खोजना। ढूँढ़ना। अन्वेषण। अनुसंधान। २. स्वच्छ या साफ करना (को०)। ३ संपर्क या स्पर्श (को०)।

परिमार्गी—वि० [सं० परिमार्गिन्] खोजने या खोज में किसी के पीछे जानेवाला। अनुसंधानकारी। अनुसरणकर्ता।

परिमार्जक—संज्ञा पुं० [सं०] धोने या माँजनेवाला। परिशोधक या परिष्कारक।

परिमार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिमार्जित, परिमृज्य, परिमृष्ट] १. धोने या माँजने का कार्य। अच्छी तरह धोना। माँजना। परिशोधन। परिष्करण। २. एक विशेष मिठाई जो घी मिले हुए शहद के शीरे में डुबाई हुई होती है।

परिमार्जित—वि० [सं०] धोया या माँजा हुआ। २. साफ किया हुआ। परिष्कृत।

परिमित—वि० [सं०] १. जिसका परिमाण हो या ज्ञात हो। जिसकी नाप तोल की गई हो या मालूम हो। सीमा, संख्या आदि से बद्ध। नपा तुला हुआ। २. न अधिक न कम। जितने की आवश्यकता हो उतना ही। हिसाब या अंदाज से। उचित मात्रा या परिमाण में। जैसे,—वे सदा परिमित भोजन करते हैं। ३. कम। थोड़ा। अल्प। जैसे,—उनका वैद्यक ज्ञान बहुत ही परिमित है।

परिमितकथा—वि० [सं०] १. जो उचित से अधिक न बोलता हो। नपे तुले शब्द बोलकर काम चलानेवाला। २. कम बोलने-वाला। अल्पभाषी।

परिमितभुक्—वि० [सं० परिमितभुज] कम खानेवाला। अल्पभोजी [को०]।

परिमितायु—वि० [सं० परिमितायुस्] स्वल्पायु। कम उम्र पाने-वाला। अल्पजीवी [को०]।

परिमिताहार—वि० [सं०] अल्पभोजी [को०]।

परिमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाप, तोल, सीमा, आदि।

परिमिति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० परिमिति (= सीमा, अंत)] मर्यादा। इज्जत। उ०—परिमिति गए लाज तुमही को हँसिनि ब्याहि काग ले जाइ।—सूर (शब्द०)।

परिमिलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्पर्श। छूना। २. अच्छी तरह मिलना। आलिंगन [को०]।

परिमिलित—वि० [सं०] १. मिश्रित। मिला हुआ। २ आपूर्ण। भरा हुआ [को०]।

परिमीढ—वि० [सं०] मूत्रसिक्त। मूत्र से सना हुआ [को०]।

परिमुक्त—वि० [सं०] पूर्ण रूप से स्वाधीन। सम्यक् रूप से मुक्त।

परिमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंधन से छुटकारा। पूर्णतः मुक्ति [को०]।

परिमुग्ध—वि० [सं०] १ सुंदर। आकर्षक। २. सुंदर पर मूर्ख। आकर्षक किंतु अज्ञ [को०]।

परिमूढ़—वि० [सं० परिमूढ] १. व्याकुल। २. विचलित। मथित। ३. क्षोभित।

परिमृष्ट—वि० [सं०] १ धोया या साफ किया हुआ। परिमार्जित। २. जिसको छुआ गया हो। स्पृष्ट। ३. पकड़ा हुआ। अधिकृत। ४ जिससे परामर्श किया गया हो। ५. व्याप्त। परिपूर्ण (को०)।

परिमृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] धोना। माँजना। परिष्करण। परिमार्जन।

परिमेय—वि० [सं०] १. जो नापा या तोला जा सके। नापने या तोलने के योग्य। २. थोड़ा। ससीम। संकुचित। ३. जिसके नापने या तोलने का प्रयोजन हो। जिसे नापना या तोलना हो।

परिमोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्ण मोक्ष। सम्यक् मुक्ति। निर्वाण। २. विष्णु। ३ परित्याग। छोड़ना। ४. मलपरित्याग। हगना।

परिमोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुक्त करना या होना। २. परित्याग करना या किया जाना। ३. मलत्याग करना। ४ धौति क्रिया द्वारा अँतड़ियों का धोकर साफ करना। ५. निर्वाण। मुक्ति (को०)।

परिमोष—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी। स्तेय।

परिमोषक—संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

परिमोषण—संज्ञा पुं० [सं०] चुराना। स्तेय। चोरी।

परिमोषी—वि० [सं० परिमोषिन्] जिसकी स्वभाव से चोरी करने की प्रवृत्ति हो। चोर। तस्कर।

परिमोहन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिमोहित] किसी की बुद्धि या मन को पूर्ण रूप से अपने अधिकार मे कर लेना। सम्यक् वशीकरण।

परिम्लान¹—वि० [सं०] १. मुरझाया हुआ। कुम्हलाया हुआ। २. मलिन। उदास। निस्तेज। हतप्रभ। ३ दागदार। जिसपर दाग या धब्बा हो।

परिम्लान²—संज्ञा पुं० १. भय या दुःख से मलिन होना। २. धब्बा। दाग।

परिम्लायी¹—वि० [सं० परिम्लायिन्] १. मलिनतायुक्त। उदास। २. कुम्हलाया या मुरझाया हुआ।

परिम्लायी²—संज्ञा पुं० तिमिर रोग का एक भेद। इसका कारण रुधिर में मूर्छित पित्त होता है इसमें रोगी को सभी दिशाएँ पीली या प्रज्वलित दिखाई पड़ती हैं।

परियंकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पर्यंक] दे० 'पर्यंक'।

परियंतⓅ—अव्य० [सं० पर्यन्त] दे० 'पर्यंत'।

परियज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] वह छोटा यज्ञ या विधान जिसको अकेले करने की विधि न हो, किंतु जो किसी अन्य यज्ञ के साथ उसके पहले या पीछे किया जाय।

परियत्त—वि० [सं०] चारो ओर से घिरा हुआ। परिवेष्टित।

परियष्टा—संज्ञा पुं० [सं० परियष्टृ] वह मनुष्य जो अपने बड़े भाई से पहले सोम याग करे।

परियाँण†—संज्ञा पुं० [सं० परियाण (= भ्रमण); या पर्याण (= काठी); या प्रयाण (= युद्धयात्रा)] १ आक्रमणार्थ यात्रा। २. काठी। घोड़े की जीन। ३. वश। उ०—पुर-जोधाँण उदैपुर जैपुर पहुथाँग पूटा परियाँण।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १०५।

परिया¹—संज्ञा पुं० [तमिल परैयान्] दक्षिण भारत की एक प्राचीन जाति जो अस्पृश्य मानी जाती है।

विशेष—इस जाति के लोग अधिकतर चौकीदारी, भंगी या मेहतर का काम अथवा क्षुद्र किसान के खेत में मजदूरी करते हैं। स्वभाव से ये शांत, नम्र और परिश्रमी होते हैं। ये देवी के उपासक होते और अधिकतर पार्वती या काली की मूर्तियों की पूजा करते हैं। सामाजिक संबंध म ये बड़े रक्षणशील हैं; अपने से उच्च भिन्न जाति से भी किसी प्रकार का सामाजिक संबंध नहीं रखना चाहते। कई दक्षिणी राज्यों में इनको ब्राह्मणों के सामने से निकलने तक का निषेध है। कहते हैं, इनका सामना हो जाने से ब्राह्मण अपवित्र हो जाता है और उसे स्नान करना पड़ता है। जिस गाँव में ब्राह्मणों की बस्ती हो उसमें जाना भी परिया के लिये निषिद्ध है।

परिया लोगों का कहना है कि हमारी उत्पत्ति ब्राह्मणी के गर्भ से है और हम ब्राह्मणों के बड़े भाई होते हैं। वेंकटाचार्य ने कुलशंकरमाला मे लिखा है कि उर्वशी के पुत्र वशिष्ठ ने अरुंधती नाम की एक चांडाली से विवाह किया था। इस चांडाली के गर्भ से १०० पुत्र जन्मे। इनमे से पिता का आदेश मान लेनेवाले चार पुत्र तो चार वर्णों के मूल पुरुष हुए और पिता की आज्ञा की अवज्ञा करनेवाले ९६ पुत्रों को पंचमवर्ण या परिया की संज्ञा मिली।

परिया—संज्ञा पुं० [देश०] ताना तानने की तांतिरी (जुलाहा)।

परियागⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाग] दे० 'प्रयाग'। उ०—बेनी परियाग घट अनुरागा, पाप ल्हाइ भज अमर भए।—घट०, पृ० २९४।

परियाण—संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ाई मिलाई। भ्रमण। पर्यटन।

परियाणिक—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा की गाड़ी। चलती हुई गाड़ी।

परियात—वि० [सं०] १. जो भ्रमण या पर्यटन कर चुका हो। २. आया हुआ। कहीं से लौटा हुआ।

परियार¹—संज्ञा पुं० [देश०] १ बिहार मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का एक उपभेद। २. मदरास में बसनेवाली एक नीच जाति।

परियारⓅ²—संज्ञा पुं० [सं० परिवार, प्रा० परिआल] म्यान। कोष।

उ०—दुहु लोह कढ्ढि परियार ते सार धार में अग्गि भर। —पृ० रा०, २५। ४५६।

परियार†[3]—वि० [सं० परारि] पूर्वतर वर्ष। वर्तमान से तीसरा पूर्व या बाद का वर्ष। जैसे,—(क) परियार साल चुनाव हुआ था। (ख) परियार साल फिर सूर्यग्रहण लगेगा।

यौ०—पर परियार।

परियोग्य—संज्ञा पुं० [सं०] वेद की एक शाखा।

परिरंधित—वि० [सं० परिरन्धित] १. नष्ट किया हुआ। २. चुटैल। चोट पहुँचाया हुआ (को०)।

परिरंभ—संज्ञा पुं० [सं० परिरम्भ] [वि० परिरंभित, परिरंभी] गले से गला या छाती से छाती लगाकर मिलना। आलिंगन।

परिरंभण—संज्ञा पुं० [सं० परिरम्भण] दे० 'परिरंभ'।

परिरंभन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परिरम्भण] दे० 'परिरंभण'। उ०—सकल सुगंध अंग अंग भरि भोरी, पीय नृतत मुसकेन मुख मोरी, परिरंभन रस रोरी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १८६।

परिरंभना(पु)—क्रि० स० [सं० परिरम्भ + हिं० ना (प्रत्य०)] परिरंभण करना। आलिंगन करना। गले लगाना। उ०—तुव तन परिमल परसि जब गवनत धीर समीर। ताकहँ बहु सनमान करि परिरंभत बलबीर।—नंददास (शब्द०)।

परिरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सब प्रकार या सब ओर से रक्षा करना। २. पालन। रक्षण। निभाना (को०)। ३. देखभाल या बचाव (को०)।

परिरक्षणीय—वि० [सं०] अच्छी तरह रक्षा करने के योग्य (को०)।

परिरक्ष्य—वि० [सं०] दे० 'परिरक्षणीय' (को०)।

परिरक्षित—वि० [सं०] १. जिसकी पूर्णत. रक्षा या देखभाल की गई हो। २. पूरी तरह निभाया हुआ या पालन किया हुआ (को०)।

परिरक्षिता—वि० [सं० परिरक्षितृ] पुरी तरह से देखभाल या रक्षा करनेवाला (को०)।

परिरक्षी—वि० [सं० परिरक्षिन्] दे० 'परिरक्षिता'।

परिरथ्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] रथ का एक अंग।

परिरथ्या—संज्ञा पुं० [सं०] चौड़ा रास्ता। सड़क।

परिरब्ध—वि० [सं०] आलिंगित (को०)।

परिराटी—वि० [सं० परिराटिन्] चिल्लानेवाला या रट लगानेवाला (को०)।

परिरोध—संज्ञा पुं० [सं०] रुकावट। अड़ंगा। अवरोध।

परिलंघ—संज्ञा पुं० [सं० परिलङ्घ] फलाँग या छलाँग मारना। कूद या उछलकर लाँघ जाना।

परिलंघन—संज्ञा पुं० [सं० परिलङ्घन] दे० 'परिलंघ'।

परिलंबन—संज्ञा पुं० [सं० परिलम्बन] भापक का २७° विषुवद् रेखा से एक ओर हिंडोले की तरह जाकर फिर लौट आना और इसी प्रकार दूसरी ओर २७° तक की पेंग लेकर पुनः अपने स्थान पर चला आना। इसे अंग्रेजी में लाइब्रेशन (Libration) कहते हैं।

परिलघु—वि० [सं०] १. अत्यंत छोटा या हलका। २. अत्यंत शीघ्र पचने के कारण अति लघु पाक।

परिलिखन—संज्ञा पुं० [सं०] १. रगड़ या घिसकर किसी चीज का खुरदरापन दूर करना। २. चिकना और चमकदार करना। पालिश करना।

परिलिखित—वि० [सं०] रेखा से घिरा हुआ। जो किसी घेरे या दायरे के बीच में हो। रेखा या वृत्त से परिवेष्टित।

परिलीढ—वि० [सं० परिलीढ] भली भाँति चाटा हुआ (को०)।

परिलुप्त—वि० [सं०] १. नाशप्राप्त। नष्ट। विनष्ट। २. जिसकी क्षति या अपकार किया गया हो। क्षतिग्रस्त। अपकृत। ३. लुप्त।

यौ०—परिलुप्तसंज्ञ = चेतनारहित। संज्ञाहीन। अचेत।

परिलून—वि० [सं०] पूर्णत छिन्न या काटा हुआ (को०)।

परिलेख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चित्र का स्थूल रूप जिसमें केवल रेखाएँ हों, रंग न भरा गया हो। ढाँचा। खाका। २. चित्र। तसवीर। ३. कूँची या कलम जिससे रेखा या चित्र खींचा जाय।

परिलेख[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] उल्लेख। शब्दों द्वारा अंकन या वर्णन। उ०—तेरे प्रेम को परिलेख तो प्रेम की टकसार होयगो और उत्तम प्रेमिन को छोड़ि और काहू की समझ ही में न आवैगो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४६५।

परिलेखन—संज्ञा पुं० [सं०]किसी वस्तु के चारों ओर रेखाएँ बनाना।

परिलेखना(पु)—क्रि० स० [सं० परिलेख+हिं० ना (प्रत्य०)] समझना। मानना। खयाल करना। उ०—औ जेइ समुद प्रेम कर देखा। तेइ यह समुद बुंद परिलेखा।—जायसी (शब्द०)।

परिलेही—संज्ञा पुं० [सं० परिलेहिन्] कान का एक रोग, जिसमें कफ और रुधिर के प्रकोप से कान की लोलक पर छोटी छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं और उनमे जलन होती है।

परिलोप—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षति। हानि। २. उपेक्षण। उपेक्षा। ३. विलोप। नाश।

परिलोलित—वि० [सं०] हिलता हुआ। कंपित।

परिवंचन—संज्ञा पुं० [सं० परिवञ्चन] धोखा देना। छलना।

परिवंचना—संज्ञा स्त्री० [सं० परिवञ्चना] दे० 'परिवंचन' (को०)।

परिवंश—संज्ञा पुं० [सं०] धोखा। छल। प्रतारण।

परिवक्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोलाकार वेदी या गर्त। २. एक स्थान का नाम (को०)।

परिवत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष के पाँच विशेष संवत्सरों में से एक। इसका अधिपति सूर्य होता है। २. एक समस्त वर्ष। एक पूरा साल।

परिवत्सरीण—वि० [सं०] जिसका संबंध सारे वर्ष से हो। जो पूरे वर्ष भर रहे। समस्त वर्षव्यापी। समस्त वर्षसंबंधी।

परिवत्सरीय—वि० [सं०] दे० 'परिवत्सरीण'।

परिवदन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के दोष का वर्णन या कथन। निंदा। बदगोई।

परिवपन—संज्ञा पुं० [सं०] कतरना या मूँड़ना [को०]।

परिवर्जन, परिवर्ज्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. परित्याग करना। त्यागना। छोड़ना। तजना। २. मारण। मार डालना। हत्या करना।

परिवर्जनीय—वि० [सं०] त्यागने योग्य। परित्याज्य।

परिवर्जित—वि० [सं०] त्यागा हुआ। परित्यक्त।

परिवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. फिराव। फेरा। घुमाव। चक्कर। विवर्तन। २. आवृत्ति। ३. अदल बदल। बदला। विनिमय। ४. जो बदले में लिया या दिया जाय। बदल। ५. किसी काल या युग का अंत। किसी काल या युग का बीत जाना। ६. (ग्रंथ का) परिच्छेद। अध्याय। बयान। ७. पुराणानुसार मृत्यु के पुत्र दुस्सह के पुत्रों में से एक।

विशेष—मार्कंडेय पुराण में लिखा है कि मृत्यु के दुस्सह नाम का एक पुत्र था जिसका विवाह कलि की कन्या निर्माष्टि के साथ हुआ था। निर्माष्टि के गर्भ से अनेक पुत्र जन्मे, परिवर्त इनमें तीसरा था। यह एक स्त्री के गर्भ को दूसरी स्त्री के गर्भ से बदल दिया करता था, किसी वाक्य का भी वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध या भिन्न अर्थ कर दिया करता था। इसी से इसे परिवर्त कहने लगे। इसके उपद्रव से गर्भ की रक्षा करने के लिये सफेद सरसों और रक्षोघ्न मंत्र से इसकी शांति की जाती है। इसके पुत्र विरूप और विकृति भी उपद्रव करके गर्भपात कराते हैं। इनके रहने के स्थान डालियों के सिरे, चहारदीवारी, खाई और समुद्र हैं। जब गर्भिणी स्त्री इनमें से किसी के पास पहुँचती है तब ये उसके गर्भ में घुस जाते हैं और फिर बराबर एक से दूसरे गर्भ में जाया करते हैं। इनके बार बार जाने आने से गर्भ गिर जाता है। इसी कारण गर्भावस्था में स्त्री को वृक्ष, पर्वत, प्राचीर, खाई और समुद्र आदि के पास घूमने फिरने का निषेध है।

८. स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है·

आरोही—सा ग म रे, रे म प ग, ग प ध म, म ध नि प, प नि सा ध, ध सा रे नि, नि रे ग सा। **अवरोही**—सा ध प नि, नि प सा ध, ध म ग प, प ग रे म, म रे सा ग, ग सा नि रे, रे नि ध सा।

९. गृह। आलय। निवासस्थान (को०)। १०. पुनर्जन्म। फिर फिर जन्म लेना (को०)।

परिवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घूमनेवाला। फिरनेवाला। चक्कर खानेवाला। २. घुमानेवाला। फिरानेवाला। चक्कर देनेवाला। उलटने पलटनेवाला। ३. बदलनेवाला। विनिमय करनेवाला। ४. जो बदला जा सके। परिवर्तन योग्य। ५. युग का अंत करनेवाला। ६. मृत्यु के पुत्र दुस्सह का एक पुत्र। ७. अनाज आदि देकर दूसरी वस्तुएँ बदले में लेना। विनिमय।

परिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिवर्तनीय, परिवर्तित, परिवर्ती] १. घुमाव। फेरा। चक्कर। आवर्तन। २. दो वस्तुओं का परस्पर अदल बदल। अदला बदली। हेरफेर। विनिमय। तबादला। ३. जो किसी वस्तु के बदले में लिया या दिया जाय। बदल। ४. बदलने या बदल जाने की क्रिया या भाव। दशांतर। विषयांतर। रूपांतर। तबदीली। उ०—परिवर्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढ़ते जाते हैं।—पंचवटी, पृ० ८। ५. किसी काल या युग की समाप्ति।

यौ०—परिवर्तनवादी = वर्तमान स्थिति को बदलने की कामना रखनेवाला। परिवर्तन द्वारा समाज की उन्नति में विश्वास रखनेवाला। उ०—स्वतंत्रता के उन्मत्त उपासक, घोर परिवर्तनवादी शैली के महाकाव्य, 'दि रिवोल्ट आफ इस्लाम' के नायक नायिका·· शांत वृत्ति या चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन करनेवाले नहीं हैं।—आचार्य०, पृ० १८। परिवर्तनशील = परिवर्तित होनेवाला। जिसमें निरंतर परिवर्तन हो। परिवर्तनशीला = निरंतर बदलनेवाली।—उ०—देखेंगे परिवर्तनशीला प्रकृति को, घूमेंगे बस देश देश स्वाधीन हो।—करुणा०, पृ० ७।

परिवर्तनीय—वि० [सं०] घूमने, बदलने या बदले जाने के योग्य। परिवर्तन योग्य।

परिवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लिंगेंद्रिय का एक क्षुद्र रोग।

विशेष—अधिक खुजलाने, दबाने या चोट लगने के कारण इसमें लिंगचर्म उलटकर सूज जाता है। कभी कभी यह सूजन गाँठ की तरह हो जाती है और पक जाती है। यह रोग वायु के कोप से होता है। कफ अथवा पित्त का भी संबंध होने से त्वचा में क्रम से अधिक खुजली या जलन होती है।

परिवर्तित—वि० [सं०] १. जिसका आकार या रूप बदल गया हो। बदला हुआ। रूपांतरित। २. जो बदले में मिला हुआ हो। ३. जिसका परिवर्तन हुआ हो।

परिवर्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों शुक्ल पक्ष की एकादशी।

परिवर्ती—वि० [सं० परिवर्तिन्] १. परिवर्तन स्वभाववाला। परिवर्तनशील। बार बार बदलनेवाला। २. किसी चीज का बदलनेवाला। विनिमय करनेवाला। ३. जिसका घूमने का स्वभाव हो। जो बराबर घूमता रहता हो।

परिवर्तुल—वि० [सं०] खूब गोल। पूर्ण गोलाकार।

परिवर्त्मन्—वि० [सं०] जो किसी वस्तु के चारों ओर घूम रहा हो। प्रदक्षिणा करता हुआ।

परिवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिवर्द्धित] संख्या, गुण आदि में किसी वस्तु की खूब बढ़ती होना। सम्यक् प्रकार से वृद्धि। खूब या खासी बढ़ती। परिवृद्धि।

परिवर्द्धित—वि० [सं०] १. बढ़ा हुआ। २. बढ़ाया हुआ।

परिवर्धमान—वि० [सं० परिवर्धवत्] बढ़ता हुआ। चारों ओर से बढ़नेवाला। जो बढ़ रहा हो। उ०—बेला की आँखों में गोली का और उसके परिवर्धमान प्रेमांकुर का चिह्न था।

जो उसके हट जाने पर विरहजल से हराभरा हो उठा था। —इंद्र०, पृ० ७।

परिवर्म—वि० [सं०] वर्म से ढका हुआ। वक्तर से ढका हुआ। जिरहपोश।

परिवर्ह—संज्ञा पुं० [सं०] चँवर, छत्र आदि राजत्व की सूचक वस्तुएँ। राजचिह्न। शाही लवाजमा। २. धन। संपत्ति (को०)। ३. गृह की वस्तुएँ (को०)।

परिवसथ—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम। गाँव।

परिवह—संज्ञा पुं० [सं०] सात पवनों में से छठा पवन।

विशेष—कहते हैं, यह सुवह पवन के ऊपर रहता है और आकाशगंगा को बहाता तथा शुक्र तारे को घुमाता है। उ०—है याही वह पवन जो परिवह जाति कहाय। वही पवन नभगंग को नितप्रति रही बहाय। —शकुंतला, पृ० १३३।

२. अग्नि की सात जीभों में से एक।

परिवहन—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रियों तथा माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। ढोना। उ०—व्यापारी अपना माल एक राज्य की सीमा से बाहर दूसरे राज्य में परिवहन करने के इच्छुक होंगे।— नेपाल०, २४०।

परिवाँण†—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाण] इयत्ता। सीमा। अवधि। उ०—तूँही ज सज्जण मित्त तूँ प्रीतम तूँ परिवाँण। हियड़इ भीतर तूँ वसइ भावइ जाँण म जाँण।—ढोला०, दू० १७५।

परिवाँन†—संज्ञा पुं० [सं० परिमाण] घेरा। विस्तार। परिमाण। उ०—प्रथम हते रणधार न बहुरि सेन परिवाँन।—ह० रासो, पृ० १६२।

परिवा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिपदा, प्रा० पडिवआ] किसी पक्ष की पहली तिथि। द्वितीया के पहले पड़नेवाली तिथि। अमावस्या या पूर्णिमा के दूसरे दिन की तिथि। पड़िवा।

परिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. निंदा। दोषकथन। अपवाद। बुराई करना। २. मनुस्मृति के अनुसार ऐसी निंदा जिसकी आधारभूत घटना या तथ्य सत्य न हो। झूठी निंदा। ३. लोहे के तारों का वह छल्ला जिससे वीणा या सितार बजाया जाता है। मिजराब।

परिवादक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिवाद करनेवाला मनुष्य। निंदा करनेवाला व्यक्ति। २. नालिश करनेवाला। ३. वीणा बजानेवाला।

परिवादक²—वि० परिवाद करनेवाला। निंदक।

परिवादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह वीणा जिसमें सात तार होते हैं। २. परिवाद करनेवाली स्त्री (को०)।

परिवादी¹—वि० [सं० परिवादिन्] [वि० स्त्री० परिवादिनी] निंदा करनेवाला। परिवाद करनेवाला।

परिवादी²—संज्ञा पुं० निंदक व्यक्ति। परिवादक। अपवाद या परिवाद करनेवाला।

परिवानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाण, हिं० परवान] दे० 'प्रमाण'। उ०—चलु हँसा तहँ चरण समान। तहँ दादू पहुँचे परिवान।—दादू०, पृ० ६७५।

परिवाननाⓅ—क्रि० स० [सं० प्रमाण] दे० 'प्रमानना'। उ०—ग्यानी पुनि यह सुख नहिं जानै। नीरस निराकार परियानै।—नंद० ग्रं०, पृ० २५१।

परिवाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. वपन। बोना। २. मुंडन। ३. स्थान। जगह। ४. फरुही। भुना हुआ चावल। लावा। खील। ५. घनीभूत दूध। जमाया हुआ दूध या छेना। ६. परिच्छद। उपयोग की सामग्री। ७. जलाशय। ८. अनुचर वर्ग (को०)।

परिवापन—संज्ञा पुं० [सं०] मुंडन। मूँड़ना (को०)।

परिवापित—वि० [सं०] मुंडित। मूड़ा हुआ (को०)।

परिवार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोई ढकनेवाली चीज। परिच्छद। आवरण। २. म्यान। नियाम। कोष। तलवार की खोली। ३. वे लोग जो किसी राजा या रईस की सवारी में उसके पीछे उसे घेरे हुए चलते हैं। परिषद्। ४. वे लोग जो अपने भरण पोषण के लिये किसी विशेष व्यक्ति के आश्रित हों। आश्रित वर्ग। पोष्य जन। ५. एक ही कुल में उत्पन्न और परस्पर घनिष्ठ संबंध रखनेवाले मनुष्यों का समुदाय। भाई, बेटे आदि और सगे संबंधियों का समुदाय। स्वजनों या आत्मीयों का समुदाय। परिजनसमूह। कुटुंब। कुनबा। खानदान। ६. एक स्वभाव या धर्म की वस्तुओं का समूह। कुल। उ०—अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भवरुज परिवारू।—तुलसी (शब्द०)।

परिवारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिवारित] १. ढकने या छिपाने की क्रिया। आवरण। आच्छादन। २. कोष। खोल। म्यान।

परिवारता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधीनता। अवलंबन। आश्रय (को०)।

परिवारवान्—वि० [सं० परिवारवत्] जिसके परिवार हो। परिवारवाला। जिसके बहुत से परिषद्, कुटुंबी या आश्रित हों।

परिवारित—वि० [सं०] घेरा हुआ। आवृत (को०)।

परिवारी—संज्ञा पुं० [सं० परिवार] परिवार में रहनेवाला। कुटुंबी। परिवार का सेवक। अनुचर। उ०—जिस दिन सुना अकिंचन परिवारी ने आजीवन दास ने रक्त से रँगे हुए अपने ही हाथों पहना है राज्य का मुकुट।—लहर पृ० ८५।

परिवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठहरना। टिकना। टिकाव। अवस्थान। २. घर। गृह। मकान। ३. सुवास। सुगंध। ४. बौद्ध संघ में से किसी अपराधी भिक्षु का बाहर किया जाना या बहिष्करण।

परिवासन—संज्ञा पुं० [सं०] खंड। टुकड़ा।

परिवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐसा प्रवाह या बहाव जिसके कारण पानी ताल तलाब आदि की समाई से अधिक हो जाता हो। उतराकर बहना। बाँध, मेंड़ या दीवार के ऊपर से छलककर बहना। २. [वि० परिवाहित] वह नाली या प्रवाहमार्ग जिससे किसी स्थान का आवश्यकता से अधिक जल

निकाला जाय। फ़ालतू पानी निकालने का मार्ग। अतिरिक्त पानी का निकास।

परिवाही—वि० [सं० परिवाहिन्] [वि० स्त्री० परिवाहिनी] उतराकर बहनेवाला। बाँध, मेंड़ आदि से छलककर बहनेवाला। उबल या उफनकर बहनेवाला।

परिविंदक—संज्ञा पुं० [सं० परिविन्दक] वह व्यक्ति जो जेठे भाई से पहले अपना विवाह कर ले। परिवेत्ता।

परिविंदन—संज्ञा पुं० [सं० परिविन्दन] परिवेत्ता। परिविंदक।

परिवित्रण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिवित्त' [को०]।

परिवितर्क—संज्ञा पुं० [सं०] प्रश्न। जिज्ञासा। परीक्षा।

परिवित्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जिसका छोटा भाई, उससे पहले अपना विवाह कर ले।

परिवित्ति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिवित्त'।

परिविद्ध[1]—वि० [सं०] भली भाँति या सम्यक् रीति से विद्ध। सब ओर या सब प्रकार से बिंधा हुआ।

परिविद्ध[2]—संज्ञा पुं० कुबेर (देवता)।

परिविन्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिवित्त' [को०]।

परिविविदान—संज्ञा पुं० [सं०] बड़े भाई से पहले विवाह करनेवाला छोटा भाई। परिवेत्ता।

परिविष्ट—वि० [सं०] १. घेरा हुआ। परिवेष्टित। २. परोसा हुआ (भोजन)। ३. प्रकाशमंडल से आवृत (सूर्य या चंद्र)।

परिविष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेवा। टहल। परिचर्या। २. घेरा। वेष्टन।

परिविहार—संज्ञा पुं० [सं०] आनंद से घूमना। जी भरकर घूमना [को०]।

परिवीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ घिरा हुआ। लपेटा हुआ। २. ढका हुआ। छिपाया हुआ। आच्छादित। आवृत्त।

परिवीजित—वि० [सं० परिवीजन] जिसे पंखे से हवा की गई हो। पंखा किया हुआ। उ०—उच्च प्रसारों में लेटा छाया ममंर परिवीजित। श्रांत पांथ सा ग्रीष्म ऊँघता भी दुपहरी में नित।—अनिमा, पृ० १३७।

परिवीत[1]—वि० [सं०] १. घिरा हुआ। लपेटा हुआ। छिपाया हुआ। आच्छादित। आवृत।

परिवीत[2]—संज्ञा पुं० ब्रह्मा का धनुष [को०]।

परिवृंहित[1]—वि० [सं०] दे० 'परिबृंहित'।

परिवृंहित[2]—संज्ञा पुं० हाथी की चिग्घाड़। हस्तिगर्जन [को०]।

परिवृढ[1]—वि० [सं०] दृढ़। मजबूत [को०]।

परिवृढ[2]—संज्ञा पुं० मालिक। स्वामी। नेता।

परिवृत[1]—वि० [सं०] १. ढका, छिपाया या घिरा हुआ। वेष्टित। आवृत्त। २ पूर्णतः प्राप्त (को०)। ३. जाना हुआ। परिचित। ज्ञात (को०)।

परिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ढकने, घेरने या छिपानेवाली वस्तु। वेष्टन।

परिवृत्त[1]—वि० [सं०] १. घुमाया या लौटाया हुआ। २. उलटा-पलटा हुआ। ३. घेरा हुआ। वेष्टित। ४. समाप्त। ५. परिवर्तित। बदला हुआ (को०)।

परिवृत्त[2]—संज्ञा पुं० आलिंगन। अँकवार [को०]।

परिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घुमाव। चक्कर। गरदिश। २. घेरा। वेष्टन। ३. अदला बदला। विनिमय। तबादला। ४. समाप्ति। अंत। ५. एक शब्द या पद को दूसरे ऐसे शब्द या पद से बदलना जिससे अर्थ वही बना रहे। ऐसा शब्द-परिवर्तन जिसमे अर्थ मे कोई अंतर न आने पावे। जैसे,—'कमललोचन' के 'कमल' अथवा 'लोचन' को 'पद्म' या 'नयन' से बदलना (व्याकरण)।

परिवृत्ति—संज्ञा पुं० एक अर्थालंकार जिसमे एक वस्तु को देकर दूसरी वस्तु लेने अर्थात् लेनदेन या अदल बदल का कथन होता है।

विशेष—इस अलंकार के दो प्रधान भेद हैं—एक सम परिवृत्ति, दूसरा विषम परिवृत्ति। पहले मे समान गुण या मूल्य की और दूसरे मे असमान गुण या मूल्य की वस्तुओं के अदल-बदल का वर्णन होता है। इन दोनो के दो दो अवांतर भेद होते है। सम के अंतर्गत एक उत्तम वस्तु का उत्तम से विनिमय; दूसरा न्यून वस्तु का न्यून से विनिमय है। इसी प्रकार विषम के अंतर्गत उत्तम वस्तु का न्यून से और न्यून का उत्तम से विनिमय होता है। जैसे,—(क) मन मानिक दीन्हों तुम्हे लीन्हीं बिरह बलाय। (वि० परि०—उत्तम का न्यून से विनिमय) (ख) तीन मुठी भरि नाज देकर अनाज आपु लीन्हों जदुपति जू सो राज तीनो लोक को (वि० परि०-न्यून का उत्तम से विनिमय)।

हिंदी कविता मे प्रायः विषम परिवृत्ति के ही उदाहरण मिलते हैं। कई आचार्यों ने इसी कारण न्यून या थोड़ा देकर उत्तम या अधिक लेने के कथन को ही इस अलंकार का लक्षण माना है, सम का सम के साथ विनिमय के कथन को नही। परंतु अन्य कई आचार्यों तथा विशेषतः साहित्यदर्पण आदि साहित्य ग्रंथों ने देनलेन या अदल बदल के कथन मात्र को इस अलंकार का लक्षण प्रतिपादित किया है।

परिवृत्तिकाव्य—संज्ञा पुं० [सं० परिवृत्ति+काव्य] दूसरे की कविता को आधार बनाकर उसी शैली पर प्रस्तुत की गई हास्यप्रधान कविता जिसे अंग्रेजी में पैराडी कहते हैं। उ०—परिहास करने के लिये इसी शैली पर जो रचना की जाती है उसे परिवृत्तिकाव्य कहते है।—स० शास्त्र, पृ० ८१।

परिवृद्ध—वि० [सं०] खूब बढ़ा हुआ। सब प्रकार वर्धित। परिवर्धित।

परिवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सब प्रकार से वृद्धि। परिवर्धन। खूब बढ़ती या वृद्धि।

परिवेण—संज्ञा पुं० [पाली] १. बौद्ध विहार के भीतर बना हुआ भिक्षुओं का कुटीर या भवन। उ०—(क) अनाथ पिंडिक ने जेतवन मे विहार बनवाए, परिवेण बनवाए।—वै० न०,

पु॰ ३१२। (ख) एक परिवेण से दूसरे परिवेण जाकर पूछने लगा। —वै॰ न॰, पु॰ १००।

परिवेत्ता—संज्ञा पुं॰ [सं॰ परिवेतृ] वह व्यक्ति जो बड़े भाई से पहले अपना विवाह कर ले या अग्निहोत्र ले ले।

विशेष—बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटे का विवाह होना धर्मशास्त्रों से निषिद्ध और निंदित है परंतु नीचे लिखी हुई अवस्थाएं अपवाद हैं। इनमें बड़े भाई से पहले विवाह करनेवाले छोटे भाई को दोष नहीं लगता। बड़ा भाई देशांतर या परदेश में हो (शास्त्रों ने देशांतर उस देश को माना है जहाँ कोई और भाषा बोली जाती हो, जहाँ जाने के लिये नदी या पहाड़ लाँघना पड़े, जहाँ का संवाद दस दिन के पहले न सुन सकें अथवा जो साठ, चालीस या तीस योजन दूर हो); नपुंसक हो; एक ही अंडकोष रखता हो; वेश्यासक्त हो; (शास्त्रपरिभाषा के अनुसार) शूद्रतुल्य या पतित हो; अति रोगी हो; जड़, गूँगा, अंधा, बहरा, कुबड़ा, बौना या कोढ़ी हो; अति वृद्ध हो गया हो; उसने ऐसी स्त्री से संबंध कर लिया हो जो शास्त्रनिषिद्ध हो; जो शास्त्र की विधियों को न मानता हो; अपने पिता का औरस पुत्र न हो; चोर हो या विवाह करना ही न चाहता हो और छोटे भाई को विवाह करने की उसने अनुमति दे दी हो। बड़े भाई के देशांतरस्थ होने की दशा में तीन वर्ष, अथवा विशेष अवस्थाओं में कुछ अधिक वर्षों तक प्रतीक्षा करने की शास्त्रों की आज्ञा है, पर कोढ़ी, पतित, आदि होने की दशा में नहीं।

परिवेद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पूरा ज्ञान। सम्यक् ज्ञान। परिज्ञान।

परिवेदन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पूरा ज्ञान। सम्यक् ज्ञान। परिज्ञान। २. विचरण। ३. लाभ। प्राप्ति। ४. विद्यमानता। मौजूदगी। ५. वादविवाद बहस। ६. भारी दुःख या कष्ट। ७. बड़े भाई के पहले छोटे भाई का ब्याह होना। ८. अग्निहोत्र के लिये अग्नि की स्थापना। अग्न्याधान।

परिवेदना—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. तीक्ष्णबुद्धिता। विचक्षणता। विदग्धता। चतुराई। २. भारी दुःख या पीड़ा।

परिवेदनीया—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] परिवेत्ता की स्त्री। परिवेदिनी [को॰]।

परिवेदिनी—संज्ञा स्त्री [सं॰] उस मनुष्य की स्त्री जिसने बड़े भाई से पहले अपना ब्याह कर लिया हो। परिवेत्ता की स्त्री।

परिवेरा—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वेष्टन। परिधि। घेरा। उ॰—परिवेशों के सतत बदलते मूल्यों पर ही, अवलंबित रहते अपने हैं मान न मौलिक। —रजत॰, १०३१। दे॰ 'परिवेष'।

परिवेष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. परसना या परोसना। परिवेषण। २. घेरा। परिधि। उ॰—रूप तिलक, कच कुटिल, किरनि छबि कुंडल कल विस्तार। पत्रावलि परिवेष सुमन सरि मिल्यो मनहु उड़ दार। —सूर॰, १०। १७६६। ३. हलकी सफेद बदली का वह घेरा जो कभी चंद्रमा या सूर्य के इर्द गिर्द बन जाता है। मंडल। ४. कोई ऐसी वस्तु जो चारो ओर से घेरकर किसी वस्तु की रक्षा करती हो। ५. शहरपनाह की दीवार। परकोटा। कोट। ६. प्रकाश या किरणों का मंडल।

परिवेषक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ परिवेषिका] परसनेवाला। परिवेषण करनेवाला।

परिवेषण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ परिवेष्टव्य, परिवेष्य] १. (खाना) परसना। परोसना। २. घेरा। परिधि। वेष्टन। ३. सूर्य या चंद्र आदि के चारो ओर का मंडल।

परिवेष्टन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ परिवेष्टित] १. चारों ओर से घेरना या वेष्टन करना। २. छिपाने, ढकने या लपेटनेवाली चीज। आच्छादन। आवरण। ३. परिधि। घेरा। दायरा।

परिवेष्टा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ परिवेष्टृ] परसनेवाला। परिवेषक।

परिवेष्य—वि॰ [सं॰] परिवेषण के योग्य। परसने लायक [को॰]।

परिव्यक्त—वि॰ [सं॰] खूब स्पष्ट या प्रकट। सम्यक् रूप से प्रकाशित।

परिव्यय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] खर्च। संपूर्ण व्यय।

परिव्याध—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. चारों ओर से बेधने या छेदनेवाला। २. जलबेंत। ३. कनेर। द्रुमोत्पल। ४. एक ऋषि का नाम।

परिव्याप्त—वि॰ [सं॰] छाया हुआ। चतुर्दिक् फैला हुआ।

परिव्रज्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. इधर उधर भ्रमण। २. तपस्या। ३ भिक्षुक की भाँति जीवन बिताना। लोहे की चूड़ी आदि धारण करना और सदा भ्रमण करते रहना। भिक्षुक वृत्ति से जीवन निर्वाह।

परिव्राज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वह संन्यासी जो सदा भ्रमण करता रहे। २. संन्यासी। यती। परमहंस।

परिव्राजक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'परिव्राज'।

परिव्राजी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गोरखमुंडी। मुंडी।

परिव्राट—संज्ञा पुं॰ [सं॰ परिव्राज्] परिव्राज। परिव्राजक।

परिशंकी—वि॰ [सं॰ परिशङ्किन्] आशंका या भय करनेवाला। आशंकी [को॰]।

परिशाश्वत—वि॰ [सं॰] सर्वदा एक ही रूप का। सदा एक समान रहनेवाला [को॰]।

परिशिष्ट¹—वि॰ [सं॰] बचा हुआ। छूटा हुआ। अवशिष्ट। समाप्त।

परिशिष्ट²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. किसी पुस्तक या लेख का वह भाग जिसमें वे बातें दी गई हों जो किसी कारण यथास्थान नहीं आ सकी हों और जिनके पुस्तक में न आने से वह अपूर्ण रह जाती हो। पुस्तक या लेख का वह अंश जिसमें ऐसी बातें लिखी गई हों जो यथास्थान देने से छूट गई हों और जिनके देने से पुस्तक के विषय की पूर्ति होती हो। जैसे, छांदोग्यपरिशिष्ट, गृह्यपरिशिष्ट आदि। उ॰—कुछ अन्य निबंध भी हैं जो कल्पसूत्रों के सहायक अथवा पूरक कहे जाते हैं। इन निबंधों को 'परिशिष्ट' कहते हैं। —आधुनिक॰, पु॰ ९७। २. किसी पुस्तक के अंत में जोड़ा हुआ वह लेख जिसमें ऐसे अंक,

व्याख्याएँ, कथाएँ, हवाले अथवा अन्य कोई बात दी गई हो जिससे पुस्तक का विषय समझने में सहायता मिलती हो किसी पुस्तक का वह अतिरिक्त अंश जिसमें कुछ ऐसी बातें दी गई हों जिनसे उसकी उपयोगिता या महत्व बढ़ता हो। जमीमा।

परिशीलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिशीलित] १ विषय को खूब सोचते हुए पढ़ना। सब बातों या अंगों को सोच समझकर पढ़ना। मननपूर्वक अध्ययन। २. स्पर्श। लग जाना या छू जाना।

परिशीलित—वि० [सं०] परिशीलन किया हुआ। जिसका परिशीलन किया गया हो (को०)।

परिशुद्ध—वि० [सं०] १. पूर्णत. शुद्ध। विशुद्ध। निर्मल। निर्दोष। उ०—इस प्रकार अपने जीवन को परिशुद्ध बनाकर उसने जनता के जीवन मे से हिंसा के दोष को मिटाने का निश्चय किया। —संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २५। २. मुक्त। छुटा हुआ। बरी किया हुआ (को०)। ३. जो चुका दिया गया हो। चुकता किया हुआ (को०)।

परिशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूर्ण शुद्धि। सम्यक् शुद्धि। २. छुटकारा। रिहाई।

परिशुष्क[१]—वि० [सं०] १. बिलकुल सूखा हुआ। २. अत्यंत रसहीन।

परिशुष्क[२]—संज्ञा पुं० तला हुआ मास।

परिशून्य—वि० [सं०] एकदम शून्य। रिक्त (को०)।

परिशूल—संज्ञा पुं० [सं०] जोश। उत्साह। उमंग (को०)।

परिशेष[१]—वि० [सं०] बाकी बचा हुआ। अवशिष्ट।

परिशेष[२]—संज्ञा पुं० १. जो कुछ बच रहा हो। बच रहनेवाला। २. परिशिष्ट। ३. समाप्ति। अंत।

परिशेषण—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बाकी बच रहा हो।

परिशोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्ण शुद्धि। पूरी सफाई। २. ऋण की बेबाकी। चुकता। ऋणशुद्धि।

परिशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिशुद्ध, परिशोधनीय, परिशोधित] १. पूरी तरह साफ या शुद्ध करना। पूर्ण रीति से शुद्धि करना। अंग प्रत्यंग की सफाई करना। सर्वतोभाव से शोधन। २ ऋण का दाम दे डालना। कर्ज की बेबकी। चुकता।

परिशोभमान—वि० [सं० परि+शोभायमान] चारो ओर से सुशोभित होनेवाला। उ०—पुष्पो से परिशोभमान बहुशः जो वृक्ष अंकस्थ थे, वे उद्घोषित थे सदर्प करते उत्फुल्लता मेरु की।—प्रिय०, पृ० ६८।

परिशोष—संज्ञा पुं० [सं०] शुष्क हो जाना। सूखने की क्रिया या भाव (को०)।

परिश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. उद्यम। आयास। श्रम। क्लेश। मेहनत। मशक्कत। २. थकावट। श्रांति। माँदगी।

परिश्रमी—वि० [सं० परिश्रमिन्] जो बहुत श्रम करे। उद्यमी। श्रमशील। मेहनती।

परिश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. आश्रय। रक्षा का स्थान। पनाह की जगह। २. सभा। परिषद्।

परिश्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] घेरना। परिवेष्टित करना (को०)।

परिश्रांत—वि० [सं० परिश्रान्त] थका हुआ। श्रमित। क्लांतियुक्त। थका माँदा।

परिश्रांति—स्त्री० संज्ञा [सं० परिश्रान्ति] थकावट। क्लांति। माँदगी।

परिश्रित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपड़े की दीवार या चिक आदि का घेरा। कनात। २. यज्ञ में काम आनेवाला पत्थर का एक विशिष्ट टुकड़ा।

परिश्रित[१]—वि० [सं०] १. आवेष्टित। घिरा हुआ। २. आश्रयप्राप्त। आश्रित (को०)।

परिश्रित[२]—संज्ञा पुं० १. आश्रय। पनाह। २ आवेष्टित करना। चारो ओर से घेरना (को०)।

परिश्रुत—वि० [सं०] जिसके विषय मे यथेष्ट सुना या जाना जा चुका हो। विश्रुत। विख्यात। प्रसिद्ध। मशहूर।

परिश्लेष—संज्ञा पुं० [सं०] आलिंगन। गले मिलना।

परिषत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिषद्'।

परिषत्व—संज्ञा पुं० [सं०] परिषद् का भाव या धर्म।

परिषद्—संज्ञा स्त्री [सं०] १. प्राचीन काल की विद्वान् ब्राह्मणों की वह सभा जिसे राजा समय समय पर राजनीति, धर्मशास्त्र आदि के किसी विषय पर व्यवस्था देने के लिये आवाहित किया करता था और जिसका निर्णय सर्वमान्य होता था। २. सभा। मजलिस। ३. समूह। समाज। भीड़। ४. विद्याप्राप्ति का केंद्र। उ०—बृहदारण्यक उपनिषद् के परिषदों का उल्लेख है जो विद्यापीठ थे और जिनमें बहुत से छात्र इकट्ठे होते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १३१।

परिषद—संज्ञा पुं० [सं०] १. सवारी या जुलूस में चलनेवाले वे अनुचर जो स्वामी को घेरकर चलते हैं। पारिषद्। २. सदस्य सभासद। ३. मुसाहब। दरबारी।

परिषद्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ सभासद। सदस्य। २. दर्शक। प्रेक्षक।

परिषद्वल—संज्ञा पुं० [सं०] सभासद। सदस्य। परिषद।

परिषिक्त—वि० [सं०] १. जो सींचा गया हो। सिंचित। २. जिसपर छिड़काव किया गया हो।

परिषीवण—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँठ देना। २ सीना।

परिषेक—संज्ञा पुं० [सं०] १.सिंचाई। तर करना। २. छिड़काव। ३. स्नान।

परिषेचक—वि० [सं०] १. सींचनेवाला। २. छिड़कनेवाला।

परिषेचन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिषिक्त] १. तर करना। सींचना। २. छिड़कना।

परिष्कंद—संज्ञा पुं० [सं० परिष्कन्द] १. वह संतति जिसको उसके माता पिता के अतिरिक्त किसी और ने पाला पोसा हो।

परपोषित संतति। २. सेवक। नौकर (को०)। ३. पार्श्व-रक्षक (को०)।

परिष्कण्ण[1]—वि० [सं०] परपोषित। जो दूसरे के द्वारा पालित पोषित हुआ हो (को०)।

परिष्कण्ण[2]—संज्ञा पुं० दे० 'परिष्कद—१'।

परिष्कन्न—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिष्कण्ण'।

परिष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] सजावट। श्रृंगार (को०)।

परिष्करण—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कार। परिष्कार। शुद्धि (को०)।

परिष्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. संस्कार। शुद्धि। सफाई। २. स्वच्छता। निर्मलता। ३. अलंकार। आभूषण। गहना। जेवर। ४. शोभा। ५. सजावट। बनाव। सिंगार। ६. संयम (बौद्ध दर्शन)। ७. भोजनादि पकाना। सिद्ध करना (को०)। ८. उपकरण। सामान (को०)।

परिष्कारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पाला पोसा गया हो। २. दत्तक पुत्र।

परिष्कृत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **परिष्कृता**] १. साफ किया हुआ। शुद्ध किया हुआ। २. माँजा या धोया हुआ। ३. सँवारा या सजाया हुआ। ४. सिद्ध किया हुआ। (भोजन) स्वादिष्ट बनाया हुआ (को०)।

परिष्कृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो यज्ञ के लिये शुद्ध की गई हो (को०)।

परिष्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिष्कार (को०)।

परिष्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शुद्ध करना। शोधन। २. माँजना। धोना। ३. सँवारना। सजाना।

परिष्टवन—संज्ञा पुं० [सं०] भली भाँति प्रशंसा करना। खूब तारीफ करना। सम्यक् प्रकार से स्तुति करना।

परिष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का स्तुतियुक्त सामगान। २. वह कपड़ा जिसे हाथी आदि की पीठ पर शोभा के लिये डाल देते हैं। झूल। परिस्तोम। ३. आच्छादन। आवरण (को०)। ४. उपधान, गद्दा आदि (को०)।

परिष्ठल—संज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर की भूमि। पार्श्वस्थ भूमि (को०)।

परिष्पंद—संज्ञा पुं० [सं० **परिष्पन्द**] स्पंदन। हिलना डुलना। काँपना। दे० 'परिस्पंद' (को०)।

परिष्यंद—संज्ञा पुं० [सं० **परिष्यन्द**] १. प्रवाह। धारा। २. नदी। दरिया। ३. द्वीप। टापू।

परिष्यंदी—वि० [सं० **परिष्यन्दिन्**] बहता हुआ। जिसका प्रवाह हो।

परिष्वंग—संज्ञा पुं० [सं० **परिष्वङ्ग**] आलिंगन। उ०—और उस सुनसान में निःसंग, खोजने सच्छाति का परिष्वंग।—साम०, पृ० ८२।

परिष्वंजन—संज्ञा पुं० [सं० **परिष्वञ्ज+अन**] [वि० **परिष्वक्त, परिष्वाय आदि**] आलिंगन। गले मिलना या गले में लगाना। छाती से लगना या लगाना।

परिष्वक्त—वि० [सं०] जिसका आलिंगन किया गया हो। आलिंगित।

परिसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० **परिसङ्ख्या**] १. गणना। गिनती। २. एक अर्थालंकार जिसमें पूछी या बिना पूछी हुई बात उसी के सदृश दूसरी बात को व्यंग्य या वाच्य से वर्जित करने के अभिप्राय से कही जाय। यह कही हुई बात और प्रमाणों से सिद्ध विख्यात होती है।

विशेष—परिसंख्या अलंकार दो प्रकार का होता है—प्रश्नपूर्वक और बिना प्रश्न का। उ०—(क) सेव्य कहा? तट सुरसरित, कहा ध्येय? हरिपाद। करन उचित कह धर्म नित चित तजि सकल विषाद। (प्रश्नपूर्वक)। इसमें 'सेव्य क्या है'? आदि प्रश्नों के जो उत्तर दिए गए हैं उनमें व्यंग्य से 'स्त्री आदि सेव्य नहीं' यह बात भी सूचित होती है। (ख) इतनोई स्वारथ बड़ो लहि नरतनु जग माहिं। भक्ति अनन्य गोविंद पद लखहि चराचर ताहिं।

३. मीमांसा दर्शन में वह विधान जिससे विहित के अतिरिक्त अन्य का निषेध हो।

परिसंख्यात—वि० [सं० **परिसङ्ख्यात**] १. जिसकी परिसंख्या अर्थात् गणना हुई हो। २. परिसंख्या के योग्य। उल्लेख के योग्य। गिनती करने लायक (को०)।

परिसंख्यान—संज्ञा पुं० [सं० **परिसङ्ख्यान**] १. गिनती। गणना। परिसंख्या। २. विशेष वस्तु का निर्देश। ३. ठीक अनुमान। सही निर्णय (को०)।

परिसंचर—संज्ञा पुं० [सं० **परिसञ्चर**] सृष्टि के प्रलय का काल।

परिसंचित—वि० [सं० **परिसञ्चित**] एकत्र किया हुआ। जिसका संचय किया गया हो (को०)।

परिसंतान—संज्ञा पुं० [सं० **परिसन्तान**] तार। तंत्री।

परिसंवाद—संज्ञा पुं० [सं०] विचार विमर्श। प्रश्नोत्तर।

परिसभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] सभासद। सदस्य।

परिसमंत—संज्ञा पुं० [सं० **परिसमन्त**] किसी वृक्ष के चारों ओर की सीमा।

परिसमापन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य या वस्तु का पूर्णतः समाप्त होना। पूर्ण समाप्ति। परिसमाप्ति (को०)।

परिसमाप्त—वि० [सं०] बिलकुल समाप्त। निश्शेष।

परिसमाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिसमापन'।

परिसमूहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृण आदि को आग में झोंकना। २. यज्ञ की अग्नि में समिधा डालना। ३. यज्ञादि में अग्नि के चारों ओर जलादि से मार्जन (को०)। ४. एकत्रीकरण। इकट्ठा करना (को०)।

परिसर[1]—वि० [सं०] मिला हुआ। जुड़ा या लगा हुआ।

परिसर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी स्थान के आस पास की भूमि। किसी घर के निकट का खुला मैदान। प्रांतभूमि। नदी या पहाड़ के आस पास की भूमि। २. मृत्यु। ३. विधि। ४.

घिरा या माड़ी। ५. अवसर। स्थिति। मौका (को०)। ६. एक देवता (को०)। ७. विस्तार। व्यास (को०)।

परिसरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिसारी, परिसृत] १. चलना। टहलना। पर्यटन। २. पराभव। हार। ३. मृत्यु। मौत।

परिसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी के चारों ओर घूमना। परिक्रिया। परिक्रमण। २. टहलना। चलना। घूमना। फिरना। ३. किसी की खोज में जाना। किसी के पीछे उसे ढूँढते हुए जाना। ४. साहित्यदर्पण के अनुसार नाटक मे किसी का किसी की खोज में भटकना जब कि खोजी जानेवाली वस्तु के जाने की दिशा या अवस्थिति का स्थान अज्ञात हो, केवल मार्ग के चिह्नों आदि के सहारे उसका अनुमान किया जाय; जैसे शकुंतला नाटक के तीसरे अंक में दुष्यंत का शकुंतला की खोज करना और निम्नलिखित दोहों में वर्णित चिह्नों से उसके जाने के रास्ते और ठहरने के स्थान का निश्चय करना। उ०—(क) जिन डारन ने मम प्रिया लुने फूल अरु पात। सूख्यो दूध न छन भरयो तिनकों अजौं लखात। (ख) लिए कमल रज गंधि अस कर मालिनी तरंग। आय पवन लागत भली मदन देत मम अंग। (ग) दीखत पंडु रेत मे नए खोज या द्वार। आगे उठि, पाछे धसकि रहे नितंबन भार।—शकुंतला नाटक ५. एक प्रकार का साँप। ६. घेरना। आवेष्टित करना (को०) ७. सुश्रुत के अनुसार ११ क्षुद्र कुष्टों मे से एक। इसमें छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं जो फूटकर फैलती जाती हैं। फुंसियों से पंछा या पीव भी निकलता है।

परिसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चलना। टहलना। घूमना। २. रेंगना। ३. इधर उधर आना जाना। आवागमन। इतस्ततः चंक्रमण (को०)।

परिसर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ टहलना। भ्रमण करना। २. एक रोग (को०)।

परिसांत्वन—संज्ञा पुं० [सं० परिसान्त्वन] ढाढ़स बंधाना। तसल्ली देना (को०)।

परिसाम—संज्ञा पुं० [सं० परिसामन्] एक विशेष साम।

परिसार—संज्ञा पुं० [सं०] घूमना। परिसरण करना (को०)।

परिसारक—संज्ञा पुं० [सं०] चलनेवाला। घूमनेवाला। भटकनेवाला।

परिसारी—संज्ञा पुं० [सं० परिसारिन्] दे० 'परिसारक'।

परिसिद्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की चावल की लपसी।

परिसीमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चारों ओर की सीमा। चौहद्दी। चतुःसीमा। २. सीमा। हद। काष्ठा। अवधि। उ०— तुम मेरी परिसीमा, तुम मम, दिक् काल रूप, तुम ही घर आए हो यह भव जंजाल रूप।—क्वासि, पृ० ६१।

परिसूना—संज्ञा पुं० [सं०] बूचड़खाने के बाहर मारा हुआ पशु (कौटि०)।

परिसृप्त—वि० [सं०] लड़ाई से भागा हुआ (सैनिक)।

परिसेवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] विशेष रूप से की गई सेवा (को०)।

परिस्कंद—वि० [सं०] दूसरे के द्वारा पालित (व्यक्ति)। जिसका पालन पोषण उसके माता पिता के अतिरिक्त किसी और ने किया हो। परपुष्ट।

परिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० परिस्कन्ध] राशि। समूह (को०)।

परिस्कन्न—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिष्कण्ण'।

परिस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिस्तरण' (को०)।

परिस्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. छितराना। फेंकना या डालना। (जैसे, आग पर फूस का)। फैलाना। तानना। ३. लपेटना। आवरण करना।

परिस्तान—संज्ञा पुं० [फा०] १. वह कल्पित लोक या स्थान जहाँ परियाँ रहती हों। परियों का लोक। वह स्थान जहाँ सुंदर मनुष्यों विशेषत स्त्रियों का जमघटा हो। सौंदर्य का अखाड़ा।

विशेष—यह शब्द 'परी' और 'स्तान' शब्दों का समास है। ये दोनों ही शब्द फारसी के हैं तथापि 'परिस्तान' शब्द फारसी किताबों में नहीं मिलता। अतएव यह समास उर्दू वालों का ही रचा जान पड़ता है। अर्थात् यह शब्द फारस में नहीं किंतु भारत में बना है।

परिस्तीर्ण—वि० [सं०] १. बिखराया हुआ। फैलाया हुआ। २. आवरित। आच्छादित (को०)।

परिस्तृत—वि० [सं०] दे० 'परिस्तीर्ण' (को०)।

परिस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी आदि की पीठ पर डाला जानेवाला चित्रित वस्त्र। झूल। २ यज्ञ मे प्रयुक्त एक पात्र (को०)।

परिस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आलय। गृह। वेश्म। २. दृढ़ता। स्थिरता। ३. ठोसपन। मजबूती (को०)

परिस्थिति—संज्ञा पुं० [सं०] स्थिति। अवस्था। हालत।

परिस्पंद—संज्ञा पुं० [सं० परिस्पन्द] काँपने का भाव। कंप। कँप-कँपी। बहुत जल्दी जल्दी हिलना। २. दबाना। मर्दन। ३. सजाव। सिंगार (को०)। ४. परिजन। परिवार। (को०)। ५. सेवक। अनुगामी। अनुचर वर्ग (को०)। ६. पुष्पादि द्वारा केश का शृंगार (को०)।

परिस्पंदन—संज्ञा पुं० [सं० परिस्पन्दन] १. बहुत अधिक हिलना। खूब काँपना। सम्यक् कंपन। २. काँपना। कंपन।

परिस्पर्द्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन, बल, यश आदि में किसी के बराबर होने की इच्छा। प्रतिस्पर्धा। प्रतियोगिता। मुकाबिला। लागडाट।

परिस्पर्द्धी—संज्ञा पुं० [सं० परिस्पर्द्धिन्] परिस्पर्धा करनेवाला। प्रतियोगिता करनेवाला। मुकाबला या लागडाट करनेवाला।

परिस्पर्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिस्पर्द्धा'।

परिस्पर्धी—वि० [सं० परिस्पर्धिन्] दे० 'परिस्पर्द्धी'।

परिस्फुट—वि० [सं०] १. भली भाँति व्यक्त। सम्यक् प्रकार से प्रकाशित। बिलकुल प्रकट या खुला हुआ। २. व्यक्त। प्रका-

सित। प्रकट। ३. खूब खिला हुआ। सम्यक् रूप से विकसित। ४. विकसित। खिला हुआ।

परिस्फुरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कांपना। हिलना। कंपन। २. कलिकायुक्त होना। ३ सूझ जाना। मन में एक ब एक आना। चमकना (को०)।

परिस्फुर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्पष्टता। २. चमक (को०)।

परिस्मापन—संज्ञा पुं० [सं०] आश्चर्य, विस्मय या कुतूहल उत्पन्न करना।

परिस्यंद—संज्ञा पुं० [सं० परिस्यंद] झरना। क्षरण। जैसे, हाथी के मस्तक से मद का परिस्पंद।

परिस्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १. टपकना। चूना या रसना। २. धीरे धीरे बहना। मंद प्रवाह। झिरझिराकर बहना या झिरझिरा बहाव। मंथर प्रवाह। ३. गर्भ का बाहर आना। बच्चा पैदा होना। जैसे, गर्भ परिस्रव (को०)।

परिस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार एक रोग जिसमें गुदा से पित्त और कफ मिला हुआ पतला मल निकलता रहता है।

विशेष—कड़े कोठेवाले को मृदु विरेचन देने से जब उभरा हुआ सारा दोष शरीर के बाहर नहीं हो सकता तब वही दोष उपर्युक्त रीति से निकलने लगता है। दस्त में कुछ कुछ मरोड़ भी होता है। इससे अरुचि और सब अंगों में थकावट होती है। कहते हैं, यह रोग वैद्य अथवा रोगी की अज्ञता के कारण होता है।

२. चूना। टपकना या बहना।

परिस्रावण—संज्ञा पुं० [सं०] वह बरतन जिसमें से साफ करने के लिये पानी टपकाया जाय। वह बरतन जिससे पानी टपकाकर साफ किया जाय।

परिस्रावी[1]—वि० [सं० परिस्राविन्] १. चूने, रसने या टपकनेवाला। क्षरणशील। बहनेवाला। स्रावशील।

परिस्रावी[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का भगंदर, जिसमें फोड़े से हर समय गाढ़ा मवाद बहता रहता है।

विशेष—कहते हैं, यह कफ के प्रकोप से होता है। फोड़ा कुछ कुछ सफेद और बहुत कड़ा होता है। इसमें पीड़ा बहुत नहीं होती। दे० 'भगंदर'।

परिस्रुत्[1]—वि० [सं०] जिससे कुछ टपक या चू रहा हो। स्रावयुक्त।

परिस्रुत्[2]—संज्ञा स्त्री० मदिरा। मद्य। शराब। (वैदिक)।

परिस्रुत[1]—वि० [सं०] १. जो चू या टपक रहा हो। स्रावयुक्त। २. टपकाया हुआ। निचोड़ा हुआ। जिसमें से जल का अंश अलग कर लिया गया हो।

परिस्रुत[2]—संज्ञा पुं० फूलों का सार। पुष्पसार। इत्र (वैदिक)।

परिस्रुत दधि—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा दही जिसका पानी निचोड़ लिया गया हो। निचोड़ा हुआ दही। वैद्यक में ऐसे दही को वातपित्तनाशक, कफकारी और पोषक लिखा है।

परिस्रुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मद्य। शराब। २. अंगूरी शराब। द्राक्षामद्य।

परिस्वंजन—संज्ञा पुं० [सं० परिष्वञ्जन] आलिंगन। परिष्वंग (को०)।

परिहँस†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परिहास] ईर्ष्या। डाह। उ०—(क) परिहँस पियर भए तेहि बसा। लिए डंक लोगन्ह कहँ डँसा।—जायसी ग्रं०, पृ० ४७। (ख) परिहँस मरसि कि कौनिउ लाजा। आपन जीउ देसि केहि काजा।—जायसी ग्रं०, पृ० १८१।

परिहण‡—संज्ञा पुं० [सं० परिधान, प्रा० परिहाण, देशी परिहण] वस्त्र। पहनावा। पोशाक।

परिहत[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० मि० (वैदिक) पराहत (= जुता हुआ)] १. हल के अंतिम और मुख्य भाग की वह सीधी खड़ी लकड़ी जिसमें ऊपर की ओर मुठिया होती है और नीचे की ओर हरिस तथा तरेली या चौभी ठुँकी रहती है। नगरा। २ वह नगरा जिसमे तरेली की लकड़ी अलग से नहीं लगानी पड़ती किंतु जिसका निचला भाग स्वयं ही इस प्रकार टेढ़ा होता है कि उसी को नोकदार बनाकर उसमें फाल ठोंक दिया जाता है।

परिहत[2]—वि० [सं०] १. मृत। मुरदा। नष्ट। मरा हुआ। २. शिथिल। अस्तव्यस्त। ढीला ढाला। उ०—कौन कौन तुम परिहतवसना म्लानमना, भूपतिता सी,।—पल्लव, पृ० ६६।

परिहरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० परिहरणीय, परिहर्तव्य, परिहृत] १. किसी के बिना पूछे अपने अधिकार में कर लेना। जबरदस्ती ले लेना। छीन लेना। २. त्याग। परित्याग। छोड़ना। तजना। ३. दोष अनिष्टादि का उपचार या उपाय करना। किसी प्रकार के ऐब, खराबी या बुराई को दूर करना, छुड़ाना या हटाना। निवारण। निराकरण।

परिहरणीय—वि० [सं०] १. हरण के योग्य। छीन लेने योग्य। हरणीय। २. त्याग के योग्य। त्याज्य। छोड़ या तज देने योग्य। ३. उपचारयोग्य। निवार्य। हटाने योग्य या दूर करने योग्य।

परिहरना(पु)—क्रि० स० [सं० परिहरण] १. त्यागना। छोड़ना। तज देना। उ०—(क) बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ।—तुलसी (शब्द०) (ख) परिहरि सोच रहौ तुम सोई। बिनु औषधिहि ब्याधि विधि खोई।—तुलसी (शब्द०) २. छीन लेना। ३. नष्ट करना। उ०—का करिकै तुव सैन सत्रु को बल परिहरई ?—भारतेंदु ग्रं०, भा०, २, पृ० ६२३।

परिहस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परिहास] १. परिहास। हँसी दिल्लगी। मसखरी। २. रंज। खेद। दुःख। उ०—कंठ बचन न बोलि आवै, हृदय परिहस भीन। नैन जल भरि रोइ दीन्हों, ग्रसित आपद दीन।—सूर (शब्द०)।

परिहसित—वि० [सं०] जिसका परिहास किया गया हो (को०)।

परिहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] अँगूठी। मुद्रिका। मुँदरी (को०)।

परिहा—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छंद। जैसे,—सुनत दूत के बचन चतुर चित में हँसे। केहिताक्ष हैं करन बात में हम फँसे। बल ते सबै उपाय और तब कीजिए। नहिं देहौं भेंट कुठार प्राण को लीजिए।—हनुमन्नाटक (शब्द०)।

परिहाण—संज्ञा पुं० [सं०] हानि। नुकसान [को०]।

परिहाणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घाटा। हानि। २. ह्रास। अवनति। ३. परित्याग। उपेक्षा [को०]।

परिहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिहाणि' [को०]।

परिहार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोष, अनिष्ट, खराबी आदि का निवारण या निराकरण। दोषादि के दूर करने या छुड़ाने का कार्य। २. दोषादि के दूर करने की युक्ति या उपाय। इलाज। उपचार। ३. त्याग। परित्याग। तजने या त्यागने का कार्य। ४. गाँव के चारो ओर परती छोड़ी हुई वह भूमि जिसमें प्रत्येक ग्रामवासी को अपना पशु चराने का अधिकार होता था और जिसमें खेती करने की मनाही होती थी। पशुओं को चरने के लिये परती छोड़ी हुई सार्वजनिक भूमि। चरहा। ५ लड़ाई में जीता हुआ धनादि। शत्रु से छीन ली हुई वस्तुएँ। विजित द्रव्य। ६. कर या लगान की माफी। छूट। ७. खंडन। तरदीद। ८. नाटक में किसी अनुचित या अविधेय कर्म का प्रायश्चित्त करना (साहित्यदर्पण)। ९. अवज्ञा। तिरस्कार। १०. उपेक्षा। ११ मनु के अनुसार एक स्थान का नाम।

परिहार²—संज्ञा पुं० [सं०] राजपूतों का एक वंश जो अग्निकुल के अंतर्गत माना जाता है।

विशेष—इस वंश के राजपूतों द्वारा कोई बड़ा राज्य हस्तगत या स्थापित किए जाने का प्रमाण अबतक नहीं मिला है, तथापि छोटे छोटे अनेक राज्यों पर इनका आधिपत्य रह चुका है। २४९ ई० में कालिंजर का राज्य इसी वंशवालों के हाथ में था जिसको कलचुरि वंश के किसी राजा ने जीतकर छीन लिया। सन् ११२९ से १२११ तक इस वंश के ७ राजाओं ने ग्वालियर पर राज्य किया था। कर्नल टाड ने अपने राजस्थान के इतिहास में जोधपुर के समीपवर्ती मंदारव (मंद्रोद्रि) स्थान के विषय में वहाँ मिले हुए चिह्नों आदि के आधार पर निश्चित किया है कि वह किसी समय इस वंश के राजाओं की राजधानी था। आजकल इस वंश के राजपूत अधिकतर बुंदेलखंड, अवध आदि प्रदेशों में बसे हैं और उनमें अनेक बड़े जमींदार हैं।

परिहार(पु)³—संज्ञा पुं० [सं० प्रहार] दे० 'प्रहार'। उ०—बचन बान सम श्रवन सुनि सहत कौन रिस त्यागि। सूरज पद परिहार तें पाहन उगलत आगि।—ब्रज० ग्रं०, पु० ८३।

परिहारक—वि० [सं०] परिहार करनेवाला।

परिहारक ग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] राजकर से मुक्त ग्राम। मुआफी गाँव। खालिराज गाँव।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि समाहर्ता के खेवट में ग्रामों या भूमि का जो वर्गीकरण है, उसमें परिहारक भी है।

परिहारना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रहार, हिं० परहार, परिहार+ना (प्रत्य०)] (शस्त्र आदि) प्रहार करना। चलाना। उ०—पारथ देखि बाण परिहारा। पंख काटि पावक मँह डारा।—सबल० (शब्द०)।

परिहारी—संज्ञा पुं० [सं० परिहारिन्] १. परिहरण करनेवाला। हरणकारी। २. निवारण, त्याग, दोषक्षालन, हरण या गोपन करनेवाला।

परिहार्य—वि० [सं०] १. जिसका परिहार किया जा सके। जिससे बचा जा सके। जिसका त्याग किया जा सके। जो दूर किया जा सके। २. परिहार योग्य। जिसका निवारण, त्याग या उपचार करना उचित हो।

परिहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. हँसी। दिल्लगी। मजाक। ठट्ठा। उ०—क्या आप उसका परिहास करते हैं? किसी बड़े के विषय में ऐसी शंका ही उसकी निंदा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पु० २६६। २. क्रीड़ा। खेल।

परिहासकथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हास्ययुक्त कहानी। परिहासयुक्त कथा [को०]।

परिहासपेसणी—वि० [सं० परिहास+पेशल] परिहासकुशल। हास परिहास में दक्ष। उ०—विअक्खणी परिहासपेसणी सुंदरी सार्थ जवे देखिअ तवे मन कर तेसरा लागि तीनू उपेक्खिअ।—कीर्ति०, ४।

परिहासवेदी—संज्ञा पुं० [सं० परिहासवेदिन्] मजाकिया। मसखरा [को०]।

परिहासशील—वि० [सं०] मजाकिया। हँसी दिल्लगी करनेवाला। परिहास से भरा हुआ। उ०—कैसा वह तेरा व्यंग्य परिहासशील था।—लहर, पु० ७४।

परिहास्य—वि० [सं०] परिहास योग्य।

परिहित—वि० [सं०] १. चारो ओर से छिपाया हुआ। ढका हुआ। आवृत। आच्छादित। २. पहना हुआ (वस्त्र)। ऊपर डाला हुआ (कपड़ा)।

परिहीण—वि० [सं०] १. अत्यंत हीन। सब प्रकार से हीन। दीन हीन। दुखी और दरिद्र। फटेहालवाला। २. हीन। रहित (को०)। ३. त्यागा हुआ। फेंका, ढकेला या निकाला हुआ। परित्यक्त।

परिहृत—वि० [सं०] १. पतित। भ्रष्ट। गिरा हुआ। अवनत। पामाल। २. नष्ट। ध्वस्त। तबाह। बरबाद। ३. जिसका परिहरण किया गया हो (को०)।

परिहृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाश। क्षय। ध्वंस। मिटना। जवाल। २. त्याग देना। छोड़ना [को०]।

परींदन—संज्ञा पुं० [सं० परीन्दन] १ प्रसादन। आराधना। तोषण। २. भेंट, उपहार आदि देना [को०]।

परी¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. फारसी की प्राचीन कथाओं के अनुसार कोहकाफ पहाड़ पर बसनेवाली कल्पित स्त्रियाँ जो आग्नेय नाम की कल्पित सृष्टि के अंतर्गत मानी गई हैं। उ०—हेरि हिंडोरे

गगन ते, परी परी सी टूटि। धरी जाय पिय बीच ही, करी खरी रस लूटि।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष--इनका सारा शरीर तो मानव स्त्री का सा ही माना गया है पर विलक्षणता यह बताई गई है कि इनके दोनों कंधों पर पर होते हैं जिनके सहारे ये गगनपथ में विचरती फिरती हैं। इनकी सुंदरता, फारसी, उर्दू साहित्य में आदर्श मानी गई है, केवल बहिश्तवासिनी हूरों को ही सौंदर्य की तुलना में इनसे ऊँचा स्थान दिया गया है। फारसी, उर्दू की कविता में ये सुंदर रमणियों का उपमान बनाई गई हैं।

यौ०—परीजमाल। परीजाद। परीपैकर। परीबंद। परीरू= परी की तरह। अत्यंत सुंदर।

२. परी सी सुंदर स्त्री। परम सुंदरी। अत्यंत रूपवती। निहायत खूबसूरत औरत। जैसे,—उसकी सुंदरता का क्या कहना, खासी परी है।

परी२—संज्ञा स्त्री० [सं० पक्षिप, हिं० पखी] दे० 'पली'।

परीक्षक—संज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० परीक्षिका] परीक्षा करने या लेनेवाला। आजमाइश, जाँच या समीक्षा करनेवाला। इम्तहान करने या लेनेवाला। परखने या जाँचनेवाला।

परीक्षण—संज्ञा पुं० [स०] [वि० परीक्षित, परीक्ष्य] परीक्षा की क्रिया या कार्य। देख भाल, जाँच, पड़ताल आजमाइश या इम्तहान लेने की क्रिया या कार्य। निरीक्षण, समीक्षण अथवा आलोचना।

परीखना[(प)]—क्रि० स० [सं० परीक्षण] परीक्षा करना। परीक्षा लेना।

परीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी के गुण दोष आदि जानने के लिये उसे अच्छी तरह से देखने भालने का कार्य। निरीक्षा। समीक्षा। समालोचना। २. वह कार्य जिससे किसी की योग्यता, सामर्थ्य आदि जाने जायँ। इम्तहान।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।

३. वह कार्य जो किसी वस्तु के संबंध में कोई विशेष बात निश्चित करने के लिये किया जाय। आजमाइश। अनुभवार्थ प्रयोग। ४. मुआयना। निरीक्षण। जाँच पड़ताल। ५ किसी वस्तु के जो लक्षण माने या जो गुण कहे गए हों उनके ठीक होने न होने का प्रमाण द्वारा निश्चय करने का कार्य। ६. वह विधान जिससे प्राचीन न्यायालय किसी विशेष अभियुक्त के अपराधी या निरपराध अथवा विशेष साक्षी के सच्चे या झूठे होने का निश्चय करते थे।

विशेष—अभियुक्त की परीक्षा को दिव्य और साक्षी की परीक्षा को लौकिक परीक्षा कहते थे। दिव्य परीक्षाएँ कुल नौ प्रकार की होती थीं। दे० 'दिव्य'। इनमें से अभियुक्त को उसकी अवस्था, ऋतु आदि के अनुसार कोई एक देनी होती थी। लौकिक परीक्षा में गवाह से कई प्रकार के प्रश्न किए जाते थे।

परीक्षार्थ—अव्य० [सं०] परीक्षा के निमित्त। परीक्षा के लिये [को०]

परीक्षार्थी—संज्ञा पुं० [सं० परीक्षार्थिन्] १. परीक्षा देनेवाला। २. विद्यार्थी। परीक्षा देने के लिये विद्याध्ययन करनेवाला छात्र [को०]।

परीक्षित१—वि० [सं०] १. जिसकी जाँच की गई हो। जिसका इम्तहान लिया गया हो। कसा, तपाया हुआ। २. जिसकी आजमाइश की गई हो। प्रयोग द्वारा जिसकी जाँच की गई हो। समीक्षित। समालोचित। जिसके गुण आदि का अनुभव किया गया हो। जैसे, परीक्षित औषध।

परीक्षित२—संज्ञा पुं० [सं० परीक्षित्] १. अर्जुन के पोते और अभिमन्यु के पुत्र पांडुकुल के एक प्रसिद्ध राजा।

विशेष—इनकी कथा अनेक पुराणों मे है। महाभारत में इनके विषय में लिखा है कि जिस समय ये अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा के गर्भ में थे, द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने गर्भ में ही इनकी हत्या कर पांडुकुल का नाश करने के अभिप्राय से ऐषीक नाम के अस्त्र को उत्तरा के गर्भ में प्रेरित किया जिसका फल यह हुआ कि उत्तरा के गर्भ से परीक्षित का झुलसा हुआ मृत पिंड बाहर निकला। भगवान् कृष्णचंद्र को पांडुकुल का नामशेष हो जाना मंजूर न था, इसलिये उन्होंने अपने योगबल से मृत भ्रूण को जीवित कर दिया। परिक्षीण या विनष्ट होने से बचाए जाने के कारण इस बालक का नाम परीक्षित रखा गया। परीक्षित ने महाभारत युद्ध मे कुरुदल के प्रसिद्ध महारथी कृपाचार्य से अस्त्रविद्या सीखी थी। युधिष्ठिरादि पांडव संसार से भली भाँति उदासीन हो चुके थे और तपस्या के अभिलाषी थे। अत. वे शीघ्र ही उन्हें हस्तिनापुर के सिंहासन पर बिठा द्रौपदी समेत तपस्या करने चले गए। राज्यप्राप्ति के अनंतर कहते हैं कि गंगातट पर उन्होने तीन अश्वमेध यज्ञ किए जिनमे अंतिम बार देवताओं ने प्रत्यक्ष आकर बलि ग्रहण किया था।

इनके विषय मे सबसे मुख्य बात यह है कि इन्हीं के राज्यकाल में द्वापर का अंत और कलियुग का आरंभ होना माना जाता है। इस संबंध मे भागवत मे यह कथा है—एक दिन राजा परीक्षित ने सुना कि कलियुग उनके राज्य मे घुस आया है और अधिकार जमाने का मौका ढूँढ रहा है। ये उसे अपने राज्य से निकाल बाहर करने के लिये ढूँढने निकले। एक दिन इन्होने देखा कि एक गाय और एक बैल अनाथ और कातर भाव से खड़े हैं और एक शूद्र जिसका वेष, भूषण और ठाट बाट राजा के समान था, डंडे से उनको मार रहा है। बैल के केवल एक पैर था, पूछने पर परीक्षित को बैल, गाय और राजवेषधारी शूद्र तीनों ने अपना अपना परिचय दिया। गाय पृथ्वी थी, बैल धर्म था और शूद्र कलिराज। धर्मरूपी बैल के सत्य, तप और दयारूपी तीन पैर कलियुग ने मारकर तोड़ डाले थे, केवल एक पैर दान के सहारे वह भाग रहा था, उसको भी तोड़ डालने के लिये कलियुग बराबर उसका पीछा कर रहा था। यह वृत्तांत जानकर परीक्षित को कलियुग पर बड़ा क्रोध हुआ और वे उसको मार डालने को उद्यत

हुए। पीछे उसके गिड़गिड़ाने पर उन्हें उसपर दया आ गई और उन्होंने उसके रहने के लिये ये स्थान बता दिए—जूआ, स्त्री, मद्य, हिंसा और सोना। इन पाँच स्थानों को छोड़कर अन्यत्र न रहने की कलि ने प्रतिज्ञा की। राजा ने पाँच स्थानों के साथ साथ ये पाँच वस्तुएँ भी उसे दे डालीं—मिथ्या, मद, काम, हिंसा और बैर।

इस घटना के कुछ समय बाद महाराज परीक्षित एक दिन आखेट करने निकले। कलियुग बराबर इस ताक में था कि किसी प्रकार परीक्षित का खटका मिटाकर अकंटक राज करें। राजा के मुकुट में सोना था ही, कलियुग उसमें घुस गया। राजा ने एक हिरन के पीछे घोड़ा डाला। बहुत दूर तक पीछा करने पर भी वह न मिला। थकावट के कारण उन्हें प्यास लग गई थी। एक वृद्ध मुनि मार्ग में मिले। राजा ने उनसे पूछा कि बताओ, हिरन किधर गया है। मुनि मौनी थे, इसलिये राजा की जिज्ञासा का कुछ उत्तर न दे सके। थके और प्यासे परीक्षित को मुनि के इस व्यवहार से बड़ा क्रोध हुआ। कलियुग सिर पर सवार था ही, परीक्षित ने निश्चय कर लिया कि मुनि ने घमंड के मारे हमारी बात का जवाब नहीं दिया है और इस अपराध का उन्हें कुछ दंड होना चाहिए। पास ही एक मरा हुआ साँप पड़ा था। राजा ने कमान की नोक से उसे उठाकर मुनि के गले में डाल दिया और अपनी राह ली। मुनि के शृंगी नाम का एक महातेजस्वी पुत्र था। वह किसी काम से बाहर गया था। लौटते समय रास्ते में उसने सुना कि कोई आदमी उसके पिता के गले में मृत सर्प की माला पहना गया है। कोपशील शृंगी ने पिता के इस अपमान की बात सुनते ही हाथ में जल लेकर शाप दिया कि जिस पापात्मा ने मेरे पिता के गले में मृत सर्प की माला पहनाया है, आज से सात दिन के भीतर तक्षक नाम का सर्प उसे डस ले। आश्रम में पहुँचकर शृंगी ने पिता से अपमान करनेवाले को उपर्युक्त उग्र शाप देने की बात कही। ऋषि को पुत्र के अविवेक पर दुःख हुआ और उन्होंने एक शिष्य द्वारा परीक्षित को शाप का समाचार कहला भेजा जिसमें वे सतर्क रहें।

परीक्षित ने ऋषि के शाप को अटल समझकर अपने लड़के जनमेजय को राज पर बिठा दिया और सब प्रकार मरने के लिये तैयार होकर अनशन व्रत करते हुए श्रीशुकदेव जी से श्रीमद्‌भागवत की कथा सुनी। सातवें दिन तक्षक ने आकर उन्हें डस लिया और विष की भयंकर ज्वाला से उनका शरीर भस्म हो गया। कहते हैं, तक्षक जब परीक्षित को डसने चला तब मार्ग में उसे कश्यप ऋषि मिले। पूछने पर मालूम हुआ कि वे उसके विष से परीक्षित की रक्षा करने जा रहे हैं। तक्षक ने एक वृक्ष पर दाँत मारा, वह तत्काल जलकर भस्म हो गया। कश्यप ने अपनी विद्या से फिर उसे हरा कर दिया। इसपर तक्षक ने बहुत सा धन देकर उन्हें लौटा दिया।

देवी भागवत में लिखा है, शाप का समाचार पाकर परीक्षित ने तक्षक से अपनी रक्षा करने के लिये एक सात मंजिला ऊँचा मकान बनवाया और उसके चारों ओर अच्छे अच्छे सर्प-मंत्र-ज्ञाता और मुहरा रखनेवालों को तैनात कर दिया। तक्षक को जब यह मालूम हुआ तब वह घबराया। अंत को परीक्षित तक पहुँचने का उसे एक उपाय सूझ पड़ा। उसने एक अपने सजातीय सर्प को तपस्वी का रूप देकर उसके हाथ में कुछ फल दे दिए और एक फल में एक अति छोटे कीड़े का रूप धरकर आप जा बैठा। तपस्वी बना हुआ सर्प तक्षक के आदेश के अनुसार परीक्षित के उपर्युक्त सुरक्षित प्रासाद तक पहुँचा। पहरेदारों ने इसे अंदर जाने से रोका, पर राजा को खबर होने पर उन्होंने उसे अपने पास बुलवा लिया और फल लेकर उसे बिदा कर दिया। एक तपस्वी मेरे लिये यह फल दे गया है अतः इसके खाने से अवश्य उपकार होगा, यह सोचकर उन्होंने और फल तो मंत्रियों में बाँट दिए, पर उसको अपने खाने के लिये काटा। उसमें से एक छोटा कीड़ा निकला जिसका रंग तामड़ा और आँखें काली थीं। परीक्षित ने मंत्रियों से कहा—सूर्य अस्त हो रहा है, अब तक्षक से मुझे कोई भय नहीं। परंतु ब्राह्मण के शाप की मानरक्षा करनी चाहिए। इसलिये इस कीड़े से डसने की विधि पूरी करा लेता हूँ। यह कहकर उन्होंने उस कीड़े को गले से लगा लिया। परीक्षित के गले से स्पर्श होते ही वह नन्हा सा कीड़ा भभककर सर्प हो गया और उसके दंशन के साथ परीक्षित का शरीर भस्मसात् हो गया।

परीक्षित की मृत्यु के बाद, कहते हैं, फिर कलियुग की रोक टोक करनेवाला कोई न रहा और वह उसी दिन से अकंटक भाव से शासन करने लगा। पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये जनमेजय ने सर्पसत्र किया जिसमें सारे संसार के सर्प मंत्रबल से खिंच आए और यज्ञ की अग्नि में उनकी आहुति हुई।

२ कंस का एक पुत्र। ३. अयोध्या का एक राजा। ४. अनश्व का एक पुत्र।

परीक्षितव्य—वि० [सं०] १ परीक्षा करने योग्य। जिसका इम्तहान या आजमाइश या जाँच की जा सके। २. जिसकी परीक्षा करना उचित या कर्तव्य हो।

परीक्ष्य—वि० [सं०] १. जिसकी परीक्षा की जा सके। परीक्षा करने योग्य। २. जिसकी परीक्षा करना उचित या कर्तव्य हो।

परीखनाⓅ—क्रि० स० [सं० परीक्षण, प्रा० परिक्खण] परखना। जाँचना। परीक्षा लेना। उ०—रतन छिपाए ना छिपै पारखि होइ सो परीख। घालि कसौटी दीजिए कनक कचोरी भीख।—पदमावत, पृ० २५६।

परीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० परिखानह्] परियों के रहने का स्थान। हसीन लोगों का वासस्थान [को०]।

परीच्छतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० परीक्षित] दे० 'परीक्षित'। उ०—श्री सुखदेव कही हरिलीला। सुनी परीच्छत सब गुन सीला।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३५२।

परीख्वान—संज्ञा पुं० [फ़ा० परीख्वान] जंत्र मंत्र करनेवाला [को०]।

परीच्छित¹—वि०, संज्ञा पुं० [सं० परीक्षित] दे० 'परीक्षित'।

परीच्छित²—क्रि० वि० अवश्य ही। निश्चित रूप से। उ०—संकर कोप सों पाप को दास परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो।—तुलसी (शब्द०)।

परीछत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परीक्षित] दे० 'परीक्षित'।

परीछम—संज्ञा पुं० [हिं० परी+छम छम (अनु०) चाँदी का एक गहना जिसे स्त्रियाँ पैर मे पहनती हैं।

परीछा—संज्ञा स्त्री० [सं० परीक्षा, प्रा० परिच्छा] दे० 'परीक्षा'। उ०—जौ तुम्हरे मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू। —मानस, १। ५२।

परीछित(पु)¹—वि०, संज्ञा पुं० [सं० परीक्षित] दे० 'परीक्षित'। उ०—परम भागवत रतन रसिक जु परीछित राजा। प्रश्न करयो रस पुष्ट करन निज सुख के काजा। —नंद० ग्रं०, पृ० ६।

परीछित²—क्रि० वि० दे० 'परीच्छित²'।

परीजमाल — वि० [फ़ा०] हसीन। खूबसूरत [को०]।

परीजाद—वि० [फ़ा० परीज़ाद] अत्यंत सुंदर। अत्यंत रूपवान्।

परीजादी—वि० स्त्री० [फा० परीज़ादी] परी के समान सुंदरी। परी कन्या सी सुंदरी।

परीज्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञांग। परीयज्ञ।

परीणाम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिणाम' [को०]।

परीणाय -संज्ञा पुं० [सं०] गाँव के चारो ओर की वह भूमि जो गाँव के सब लोगों की संपत्ति समझी जाती थी (याज्ञवल्क्य स्मृति)।

परीणाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'परिणाह'। २. शिव। ३. दे० 'परीणाय'। ४. चौपड की गोट को इधर उधर दाएँ बाएँ चलाना [को०]।

परीता¹—संज्ञा पुं० [सं० प्रेत, परेत] दे० 'प्रेत'। उ०—कीन्हेसि राकस भूत परीता। कीन्हेसि भोकस देव दईता।—जायसी (शब्द०)।

परीत²—वि० [सं०] १. परिवेष्टित। घेरा हुआ। २. व्यतीत। गत। ३. घुमानेवाला। चक्कर देनेवाला। ४. विपरीत। उलटा [को०]।

परीताप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिताप'।

परीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलों से बनाया हुआ गुरमा। पुष्पांजन।

परीतोष—संज्ञा पुं० [सं०] परितोष।

परीत्त—वि० [सं०] १. सीमाबद्ध। मर्यादित। महदूद। २ संकीर्ण। संकुचित। तंग।

परीदाह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिदाह'।

परीपैकर—वि० [फ़ा० परी+पैकर (=आकृति)] परी के समान सुंदर। परी की आकृति का। उ०—उस परीपैकर को मत इंसान बूझ। शक में क्यों पड़ता है ऐ दिल! जान बूझ। —कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६।

परीधान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिधान' [को०]।

परीप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाने की इच्छा। २. जल्दबाजी। शीघ्रता। त्वरा [को०]।

परीबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा] १. स्त्रियों का एक गहना जो कलाई पर पहना जाता है। २. बच्चों के पाँव में पहनाने का एक आभूषण जिसमें घुँघरू होते हैं। ३. कुश्ती का एक पेंच।

परीभव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिभव' [को०]।

परीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] परिभाव। तिरस्कार।

परीमाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिमाण' [को०]।

परीरंभ—संज्ञा पुं० [सं० परीरम्भ] दे० 'परिरंभ'।

परीर—संज्ञा पुं० [सं०] फल [को०]।

परीरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्त्र। परिधान। कपडा। २. कच्छप। कछुआ। ३. छड़ी। डंडा [को०]।

परीरू—वि० [फ़ा० परी+रू (=मुख)] अति सुंदर। बहुत रूपवान्। खूबसूरत। उ०—मत तसब्बुर करो मुफ़ दिल को कि हरजाई है। चमन हुस्ने परीरू का तमाशाई है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६।

परीवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिवर्त्त'।

परीवाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिवाद'।

परीवाप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिवाप' [को०]।

परीवार—संज्ञा पुं० [सं०] १. खड्गकोष। म्यान। २. परिवार। परिजन। ३. छत्र, चँवर आदि सामग्री।

परीवाह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिवाह'।

परीशान—वि० [फा०] परेशान। हैरान। उ०—हैरान परीशान, तंग और तबाह न कर।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३१।

परीशानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] परेशानी।

परीशेष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिशेष' [को०]।

परीषह—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रों के अनुसार त्याग या सहन।

विशेष—ये नीचे लिखे २२ प्रकार के हैं,—(१) क्षुधापरीषह या क्षुत्परीषह। (२) पिपासापरीषह। (३) शीतपरीषह। (४) उष्णपरीषह। (५) दंशमशकपरीषह। (६) अचेलपरीषह या चेलपरीषह। (७) अरतिपरीषह। (८) स्त्रीपरीषह। (९) चर्यापरीषह। (१०) निषद्यापरीषह या नैषधिका परीषह। (११) शय्यापरीषह। (१२) आक्रोशपरीषह। (१३) वधपरीषह। (१४) याचना परीषह या याचापरीषह। (१५) अलाभपरीषह। (१६) रोगपरीषह। (१७) तृणपरीषह। (१८) मलपरीषह। (१९) सत्कारपरीषह। (२०) प्रज्ञापरीषह। (२१) अज्ञानपरीषह। (२२) दर्शनपरीषह या संयक्तपरीषह।

परीष्ट—वि० [सं०] इच्छित। जिसकी कामना हो। ईप्सित [को०]।

परिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खोज। अन्वेषण। २. सेवा। परिचर्या। ३. इज्जत। आदर। ४. इच्छुक होने का भाव। चाह [को०]।

परीसर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'परिसर्या' [को०]।

परीसार—संज्ञा पुं० [सं०] परिसरण करना। घूमना। परिसार [को०]।

परीसना[1]—क्रि० स० [सं० स्पर्शन] स्पर्श करना। छूना। परसना। उ०—ताहि दौरे जात पाय लियो है सबनि सूधो मधुर त्रिभंगी जौ लौं कृपा न परीसई।—घनानंद, पृ० १६५।

परीसना(पु)[2]—क्रि० स० [सं० परिवेषण] दे० 'परोसना'। उ०—तुमही जु दीसि परी सोई देखौ पर्नाहि न खीसत हौ। आनँदघन पिय न्यौनि पपीहनि प्यास परीसत हौ।—घनानंद, पृ० ४६१।

परीहार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिहार'।

परीहास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिहास'।

परु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। पहाड़। २. समुद्र। ३. स्वर्गलोक। ४. ग्रंथि। गाँठ।

परु(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० परुत् (= गत वर्ष) या हिं० पर] १. परसाल। गतवर्ष। उ०—परु की कसरि काढि सब नीकें लेऊँ भावतो दाव चाव मो अब मैं यह जिय ठानी।—घनानंद, पृ० ३९३। २. आगामी वर्ष।

परु[3]—संज्ञा पुं० [सं० परुस्, परुष्] १ शरीर का कोई अंग या अवयव। २ ग्रंथि। गाँठ। पोर [को०]।

परुआ‡[1]—संज्ञा पुं० [देश०] वेइज्जती या अपमान का बदला।

परुआ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पड़िया'।

परुआ[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भूमि (बुंदेलखंड)।

परुआ†[4]—वि० [हिं० पड़ना (= गिरना)] १. पड़ जानेवाला। गिर जानेवाला। कामचोर। जैसे, बैल आदि। २. पड़ा हुआ। गिरा हुआ। जैसे, द्रव्य।

परुई—संज्ञा स्त्री० [देश०] भडभूजे की वह नाँद जिसमें डालकर वह अन्न भूनता है।

परुख(पु)—वि० [सं० परुष] दे० 'परुष'।

परुखाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० परुख + आई (प्रत्य०)] परुषता। कठोरता। कर्कशता। कड़ापन। नीरसता।

परुत्—क्रि० वि० [सं०] बीते साल में। परसाल [को०]।

परुत्न—वि० [सं०] गत वर्ष का। बीते साल का [को०]।

परुद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] अश्व। घोटक। घोड़ा [को०]।

परुष[1]—वि० [सं०] [वि स्त्री० परुषा] १. कठोर। कड़ा। कर्कश। सख्त। अत्यंत रूखा या रसहीन। २. अप्रिय लगनेवाला। बुरा लगनेवाला। जिसका ग्रहण दुःखदायक हो (शब्द, वचन, उक्ति या इनके पर्यायों के साथ)। ३. निष्ठुर। निर्दय। न पिघलनेवाला। ४. तीव्र। तीखा। उग्र। तीक्ष्ण। जैसे, वायु (को०)। मलिन। पंकिल। गंदा (को०)। ६. पीन। पीवर। स्थूल (को०)। ७. धब्बेदार। चितकबरा (को०)।

परुष[2]—संज्ञा पुं० १. नीली कटसरैया। २. फालसा। ३. खरदूषण का एक सेनापति। ४. तीर। बाण। ५. सरकंडा। सरपत। ६. परुष वचन। कठोर बात। लगनेवाली या अप्रिय बात।

यौ०—परुषवचन = कठोर, अप्रिय या कटु लगनेवाली बात। परुषाक्षर, परुषाक्षेप = किसी मत या वाद के खंडन में कठोर-कटु शब्दों का प्रयोग। परुषेतर। परुषोक्ति = दे० 'परुषवचन'।

परुषता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कठोरता। कडाई। कर्कशता। २. (वचन या शब्द की) कर्कशता। श्रुतिकटुता। निर्दयता। निष्ठुरता।

परुषत्व—संज्ञा पुं० [सं०] परुषता।

परुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काव्य में वह वृत्ति, रीति या शब्दयोजना की प्रणाली जिसमें टवर्गीय द्वित्व, संयुक्त, रेफ और श, ष आदि वर्ण तथा लंबे लंबे समास अधिक आए हों। जैसे,—(क) वक्र वक्त्र करि, पुच्छ करि रुष्ट ऋच्छ कपि गुच्छ। सुभट ठट्ट घन घट्ट सम मर्दहि रच्छन तुच्छ। (ख) मुंड कटत, कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन। गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन। भूत फिरत करि बूत भिरत, सुर दूत विरत तहँ। चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जँह। इमि ठानि घोर घमसान अति 'भूषण' तेज कियो अटल। सिवराज साहि सुव खग्गबल दलि अडोल बहलोल दल।

विशेष—वीर, रौद्र और भयानक रसों की कविता इस वृत्ति में अच्छी बनती है, अर्थात् इस वृत्ति में इन रसों की कविता करने से रस का अच्छा परिपाक होता है।

२. रावी नदी। ३ फालसा।

परुषाक्षर—वि० [सं०] १. जिसमे रूखे, या कड़े शब्दों का व्यवहार हो। २. कड़े शब्दों का व्यवहार करनेवाला। कटु एवं अप्रिय शब्द बोलनेवाला [को०]।

परुषित—वि० [सं०] कठोरतायुक्त। मृदुतारहित [को०]।

परुषिमा—संज्ञा पुं० [सं० परुषिमन्] रूक्षता या कठोरता की स्थिति या प्रादुर्भाव [को०]।

परुषोक्तिक—वि० [सं०] कटुवादी [को०]।

परुषेतर—वि० [सं०] कठोर से भिन्न। जिसमें कर्कशता न हो। मृदु। कोमल [को०]।

परुष्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रावी नदी का वैदिककालीन नाम। उ०—मंत्रों में पंजाब की पाँचों नदियों का उल्लेख बार बार किया है—वितस्ता अर्थात् झेलम, असिक्नी अर्थात् चिनाब, परुष्णी अर्थात् रावी, विपाश अर्थात् व्यास और शुतुद्री अर्थात् सतलज।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३१।

परुस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] दे० 'पुरुष'। उ०—नर नारी सब चेतियो दीन्हो प्रगट दिखाय। पर तिरिया पर परुस हो भोग नरक को जाय।—चरण० बानी, पृ० २६।

परुसना(पु)—क्रि० स० [हिं० परोसना] दे० 'परोसना'। उ०—(क) तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई।—मानस, १।१६८। (ख) परुसन जबहि लाग महिपाला।—मानस, १।१७३।

परुसा†—संज्ञा पुं० [हिं० परोसा] दे० 'परोसा'। उ०—अपने परुसा

भेद पित्र की छोड़े पानी। करे पित्र से सूत बड़ो, मूरख अज्ञानी।—पलटू०, भा० १, ८६।

पलँगा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शाहबलूत जो हिमालय पर होता है।

परूष—संज्ञा पुं० [सं०] फालसा।

परूसक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परूष'।

परे—अव्य० [सं० पर] १. दूर। उस ओर। उधर। २. अतीत। बाहर। अलग। जैसे,—ब्रह्म जगत् से परे है।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

३. ऊपर। ऊँचे। बढ़कर। उत्तर। ४. बाद। पीछे।

मुहा०—परे परे करना = दूर हटाना। हट जाने के लिये कहना। परे बैठाना = मात करना। बाजी लेना। तुच्छ या छोटा साबित करना। जैसे,—उसने ऐसा भोजन पकाया कि रसोइए को भी परे बिठा दिया।

परेई—संज्ञा स्त्री० [हिं० परेवा] १. पंडुकी। फाखता। ढोकी।—उ०—पट पाँखै भख काँकरे, सदा परेई संग। सुखी परेवा जगत में तूही एक बिहंग।—बिहारी (शब्द०)। २. मादा कबूतर। कबूतरी।

परेखना—क्रि० स० [सं० परीक्षण या प्रेक्षण] १. सब ओर या सब पहलुओं से देखना। परखना। जाँचना। परीक्षा करना। २. प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। उ०—तब लगि मोहिं परेखहु भाई।—तुलसी (शब्द०)।

परेखा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परीक्षा] १ परीक्षा। जाँच। २. विश्वास। प्रतीति। उ०—(क) समुझि सो प्रीति कि रीति श्याम की सोइ बावर जो परेखो उर आनै।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दूत हाथ उन लिखि जो पठयो ज्ञान कह्यो गीता को। तिनको कहा परेखो कीजै कुबिजा के मीता को।—सूर (शब्द०)। ३. पछतावा। अफसोस। खेद। विषाद। उ०—(क) इग रिझवार न हिय रहै, यहै परेखो एक। वारन को मन एक इत उत है सदा अनेक।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) इतनो परेखो समरथ सब भाँति आजु कपिराज साँची कहौ को तिलोक तोसों है।—तुलसी (शब्द०)। (ग) अरे परेखो को करे तुही बिलोकि विचार। केहि नर केहि सर राखियो खरे बढ़े पर पार।—बिहारी (शब्द०)।

परेग—संज्ञा स्त्री० [अं० पेग] लोहे की कील। छोटा काँटा।

परेट—संज्ञा पुं० [अं० परेड] दे० 'परेड'।

परेड—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह मैदान जहाँ सैनिकों को युद्धशिक्षा दी जाती है। २. सैनिक शिक्षा। कवायद। युद्धशिक्षा का अभ्यास।

परेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक भूत योनि का नाम। २ प्रेत। ३. मुर्दा। मृतक।

परेतकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] मृतप्राय [को०]।

परेतकाल—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु का समय। मृत्युकाल [को०]।

परेतभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्मशान। मरघट [को०]।

परेतभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० परेतभर्तृ] यम [को०]।

परेतराज—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज [को०]।

परेतवास—संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान। मरघट [को०]।

परेता—संज्ञा पुं० [सं० परितः (= चारों ओर)] १. जुलाहों का एक औजार जिसपर वे सूत लपेटते हैं। २. पतंग की डोर लपेटने का बेलन जो बाँस की गोल और पतली चिपटी तीलियों से बनता है।

विशेष—इसके बीचो बीच एक लंबी और कुछ मोटी बाँस की छड़ होती है जिसके दोनों किनारों पर गोल चक्कर होते हैं। इन चक्करों के बीच पतली पतली तीलियों का ढाँचा होता है। इसी ढाँचे पर डोरी लपेटी जाती है। परेता दो प्रकार का होता है। एक का ढाँचा सादा और खुला होता है और दूसरे का ढाँचा पतली चिपटी तीलियों से ढँका रहता है। पहले को चरखी और दूसरे को परेता कहते हैं।

परेद्यवि—अव्य० [सं०] दे० 'परेद्यु'।

परेद्यु—अव्य० [सं० परेद्युस्] दूसरे दिन। आनेवाला दिन। कल का दिन [को०]।

परेम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रेम] दे० 'प्रेम'। उ०—मुहमद सब जो परेम था किएँ दीप तेहि राख। सीस न देइ पतंग होइ तब लग जाइ न चाखि।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२५।

परेरा—संज्ञा पुं० [सं० पर (= दूर, ऊँचा) + पर] आकाश। आसमान। उ०—(क) सूर ज्यों सुमेर को, नक्षत्र ध्रुव फेर को, ज्यों पारद परेर को ज्यों सागर मयंक को। (शब्द०) कागा कर कगन चूथि रे उड़ि रे परेरो जाय। मैं दुख दाधी बिरह की तू दाधा माँस न खाय।—कबीर (शब्द०)।

परेरा—संज्ञा पुं० [हिं० फरहरा] छोटी झंडी जो किसी किसी जहाज के मस्तूल के सिरे पर लगी रहती है। फरेरा। फरहरा। (लश०)।

परेली—संज्ञा पुं० [?] तांडव नृत्य का प्रथम भेद, जिसमें अंगसंचालन अधिक और अभिनय थोड़ा होता है। इसका एक नाम देसी भी है।

परेवा—संज्ञा पुं० [सं० पारावत] [स्त्री० परेई] १. पंडुक पक्षी। पेड़की। फाखता। २. कबूतर। उ०—हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तोहिं पठयो कौन परेवा।—जायसी (शब्द०)। ३. कोई तेज उड़नेवाला पक्षी। ४. तेज चलनेवाला पत्रवाहक। दूत। चिट्ठीरसाँ। हरकारा।

परेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। उ०—परमानंद परेश पुराना।—तुलसी (शब्द०)। २. विष्णु। ३. ब्रह्मा।

परेशान—वि० [फा०] [संज्ञा परेशानी] दुःख या संताप के कारण व्यग्र। व्याकुल। उद्विग्न।

परेशानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] व्याकुलता। उद्विग्नता। व्यग्रता। बहुत अधिक घबराहट। हैरानी।

परेष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा का नाम [को०]।

परेष्टुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो कई बार ब्याई हो [को०]।

परेस—संज्ञा पुं० [सं० परेश] दे० 'परेश'।

परेह—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कढ़ी जो बेसन को खूब पतला घोलकर और घी या तेल में पकाकर बनाई जाती है।

परेहा†—संज्ञा पुं० [देश०] वह जमीन जो हल चलाने के बाद सींची गई हो।

परैधित[1]—वि० [सं०] अन्य द्वारा पालित। दूसरे के द्वारा पोषित [को०]।

परैधित[2]—संज्ञा पुं० १. सेवक। नौकर। २ कोयल। कोकिल [को०]।

परैना—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पैना'।

परों पुं†—क्रि० वि० [सं० परेश्वः] दे० 'परसों'। उ०—कालिह परों फिर साजनी स्यान सु आजु तौ नैन सो नैन मिलाय ले।—पद्माकर (शब्द०)।

परोक्ष दोष—संज्ञा पुं० [सं०] अदालत के सामने ठीक रीति से बयान न करने का अपराध।

विशेष—जो प्रकरण में आई हुई बात छोड़कर दूसरी बात कहने लगे, पहले कुछ कहे पीछे कुछ, प्रश्न किए जाने पर उत्तर न दे या दूसरे से पूछने को कहे, प्रश्न कुछ किया जाय और उत्तर कुछ दे, पहले कोई बात कहकर फिर निकल जाय, साथियों के द्वारा कही बात स्वीकार न करे तथा अनुचित स्थान मे साथियों के साथ कानाफूसी करे, वह इस अपराध का दोषी कहा गया है।

परोक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुपस्थिति। अभाव। गैर हाजिरी। उ०—सब सह सकता है, परोक्ष ही कभी नही सह सकता प्रम।—पंचवटी, पृ० १०। २. वह जो तीनों काल की बातें जानता हो। परम ज्ञानी। ३. व्याकरण में पूर्ण भूतकाल।

परोक्ष[2]—वि० [सं०] १. जो देख न पड़े। जो प्रत्यक्ष न हो। जो सामने न हो। २. गुप्त। छिपा हुआ। ३ गैरहाजिर। अनुपस्थित।

यौ०—परोक्ष बुद्धि। परोक्ष भोग। परोक्ष वृत्ति।

परोक्षत्व—संज्ञा पुं० [सं०] अदृश्य होने की क्रिया या भाव। परोक्ष में होने की क्रिया या भाव।

परोक्षभोग—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु का उपभोग जो उसके स्वामी की अनुपस्थिति में किया जाय [को०]।

परोक्षवाद—संज्ञा पुं० [सं०] परोक्ष सत्ता के प्रति विश्वास का सिद्धांत। मनुष्य की स्मृति और मन के पीछे छिपी हुई किसी महास्मृति या महामन को माननेवाला मत जिसके अनुसार काव्य का लक्ष्य जगत् और जीवन से अलग हो जाता है। (अं० मॉकल्टिज्म)।

परोक्षवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञात जीवन। अप्रसिद्ध या गूढ़ जीवन [को०]।

परोख†—वि० [सं० परोक्ष, प्रा० परोक्ख] दे० 'परोक्ष'। उ०—साजनि की कहब काहु परोख। बोलि न करिअ बड़ा का दोख।—विद्यापति, पृ० २६१।

परोछपु—अव्य० [सं० परोक्ष] दे० 'परोक्ष'। उ०—प्रीतम बिहारी प्यारी पेखे मैं परोछ दीठ, प्रीति नाहिं जाहिर उजागा छये छये।—नट०, पृ० ६७।

परोजन†—संज्ञा पुं० [सं० प्रयोजन] दे० 'प्रयोजन'।

यौ०—काम परोजन = मंगल कार्य। उत्सव।

परोटी†—संज्ञा स्त्री० [सं० परावर्तित या देश०] परावर्तित करने की चेष्टा। समझाना। उ०—मोटा वाली धीरज मोटी, खावंद ! कीध हती तै खोटी। पैली अंगद कीध परोटी, ताए पछै किय तेह।—रघु० रू०, पृ० २११।

परोढा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्य की विवाहिता स्त्री [को०]।

परोता[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का टोकरा जो गेहूँ के पयाल से पंजाब के हजारा जिले में बहुत बनता है। २. आटा, गुड, हल्दी, पान आदि जो किसी शुभ कार्य मे हजाम, भाट आदि को दिए जाते हैं।

परोता[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रपौत्र] दे० 'पड़पोता'।

परोत्कर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे की वृद्धि। पर वा अन्य की बढ़ती [को०]।

परोद्वह—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल [को०]।

परोना—क्रि० स० [हिं० पिरोना] दे० 'पिरोना'।

परोपकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह काम जिससे दूसरों का भला हो। वह उपकार जो दूसरों के साथ किया जाय। दूसरों के हित का काम।

परोपकारक—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरों की भलाई करनेवाला। वह जो दूसरों का हित करे।

परोपकारी—संज्ञा पुं० [सं० परोपकारिन्] [वि० स्त्री० परोपकारिणी] दूसरों की भलाई करनेवाला। औरों का हित करनेवाला।

परोपकृत—वि० [सं०] दूसरे का भला करनेवाला। जो दूसरे की भलाई करे।

परोपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] पर उपदेश। दूसरे को समझाना [को०]।

परोपसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] अन्य के पास जाना। भिक्षाटन। भीख माँगना [को०]।

परोमात्र—वि० [सं०] अति विशाल। विस्तृत [को०]।

परोरजस्—वि० [सं०] शुद्ध। अन्य से निर्लिप्त या रहित [को०]।

परोरना†—क्रि० स० [?] अभिमंत्रित करना। मंत्र पढ़कर फूँकना। जैसे,—पानी परोरकर पिलाने से शीघ्र ही गर्भमोचन होता है।

परोरा—संज्ञा पुं० [सं० पटोल] दे० 'परवल'।

परोल—संज्ञा पुं० [अं० पैरोल] वह सकेत का शब्द जिसे सेना का अफसर अपने सिपाहियों को बतला देता है और जिसके बोलने से चौकी या पहरे पर के सिपाही बोलनेवाले को अपने दल का समझकर आने या जाने से नहीं रोकते।

मुहा०—परोख मिलाना = भेदिया बनाना। अपनी तरफ मिलाना।

परोक्ष—वि० [सं०] लाख से अधिक। लक्षाधिक।

परोवर—क्रि० वि० [सं०] १. ऊपर से नीचे तक। २. हाथोंहाथ। एक हाथ से दूसरे हाथ में। ३. परंपरया। लगातार (को०)।

परोवरीण—वि० [सं०] श्रेष्ठ तथा साधारण से युक्त। अच्छा बुरा (को०)।

परोवरीयस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। परमात्मा। २. परमानंद (को०)।

परोष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेलचट्टा नाम का कीड़ा (को०)।

परोष्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तेलचट्टा नाम का कीड़ा। २. पुराणानुसार काश्मीर देश की एक नदी। रावी नदी का एक नाम। पवष्णी।

परोस—संज्ञा पुं० [हिं० पड़ोस] दे० 'पड़ोस'। उ०—पिय मोर आएल आन परोस।—विद्यापति, पृ० ५५३।

परोसना†—क्रि० स० [सं० परिवेषण] खाने के लिये किसी के सामने तरह तरह के भोजन रखना। परसना। दे० 'परसना'।

परोसा†—संज्ञा पुं० [हिं० परोसना] एक मनुष्य के खाने भर का भोजन जो थाली या पत्तल पर लगाकर कहीं भेजा जाता है।

परोसिनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पड़ोस] दे० 'पड़ोसिन'। उ०—तब बहू की सास को परोसिनिन कही, जो तुम्हारी बहू को पाँव आछो नाहीं।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३।

परोसी—संज्ञा पुं० [हिं० पड़ोसी] दे० 'पड़ोसी'।

परोसैया—संज्ञा पुं० [हिं० परोसना + ऐया (प्रत्य०)] खाने के लिये भोजन सामने रखनेवाला। वह जो भोजन परसता हो।

परोहन—संज्ञा पुं० [सं० प्ररोहण] वह जिसपर सवार होकर यात्रा की जाय। वह जिसपर कोई सवार हो, या कोई चीज लादी जाय। जैसे, घोड़ा, बैल, रथ, गाड़ी आदि। उ०—पार परोहन तौ चले, तुम खेवहु सिरजनहार। भवसागर मैं डूबिहै, तुम्ह बिन प्राण अधार।—दादू०, पृ० ४७१।

परोहा†—संज्ञा पुं० [देश०] चमड़े का बड़ा थैला जिससे किसान कुओं से पानी निकालकर खेत सींचते हैं। पुर। मोट। चरस।

परौं†—संज्ञा पुं० [हिं० परसों] दे० 'परसों'।

परौंठा†—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० परौठी] दे० 'पराठा'।

परौका†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भेड़ जो पूरी जवान होने पर भी बच्चा न दे। बाँझ भेड़।

परौता—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह चादर या कपड़ा जिससे अनाज बरसाते समय हवा करते हैं। इसे 'परती' भी कहते हैं।

क्रि० प्र०—देना।

परौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पड़ती] दे० 'पड़ती'।

परौस†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पड़ोस'। उ०—सुनि सुनि रे समरथ साहिब नैनद परौसि न राखिए। सोई, सोइ देखै, सोई सोई माँगै मित उठि कोसै राजा बीर।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३०।

परौसिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पड़ोसिन] दे० 'पड़ोसिन'। उ०—औरन सों बतरावत, मों तन चितवत, चतुर परौसिन देखि देखि मुसिक्यात।—नंद ग्रं०, पृ० ३५८।

पर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बगला। २. अनुताप। परिताप। पश्चात्ताप (को०)।

पर्कटी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाकर वृक्ष। प्लक्ष। २. ताजी सुपारी (को०)।

पर्कटी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्कट] पर्कट बगले की मादा।

पर्कार—संज्ञा पुं० [फ़ा० परकार] दे० 'परकार'।

पर्काल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परकार'।

पर्काला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परकाला'।

पर्गना—संज्ञा पुं० [फ़ा० परगना] दे० 'परगना'।

पर्चा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परचा'।

पर्चाना—क्रि० स० [हिं० परचना] दे० 'परचाना'।

पर्चून—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परचून'।

पर्चूनिया—संज्ञा पुं० [हिं० पर्चून + इया (प्रत्य०)] दे० 'परचूनी'।

पर्चूनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पर्चून + ई (प्रत्य०)] दे० 'परचूनी'।

पर्छा†—संज्ञा पुं० [हिं० परछा] दे० 'परछा'।

पर्ज—संज्ञा स्त्री० [हिं० परज] दे० 'परज'।

पर्जक(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पर्यंक] दे० 'पर्यंक'।

पर्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहल्दी।

पर्जन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। मेघ। २. विष्णु। ३. इंद्र। ४. सूर्य (को०)। ५. मेघगर्जन (को०)। ६. वर्षा (को०)। ७. कश्यप ऋषि की स्त्री के एक पुत्र का नाम जिसकी गिनती गंधर्वों मे होती है।

यौ०—पर्जन्यपत्नी = जिसका पति पर्जन्य हो। शची। पर्जन्यसूक्त = ऋग्वेदोक्त एक सूक्त जिसमें पर्जन्य का वर्णन है।

पर्जन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहल्दी।

पर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ पत्ता। पत्र।

यौ०—पर्णकुटी। पर्णशाला।

२. तांबूल। पान।

यौ०—पर्णलता। पर्णवीटिका।

३. पलास का पेड़। ४. पक्ष। पीख। डैना। पंख (को०)। ५. बाण का पंख। तीर का पंख (को०)।

पर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जो पार्णकि गोत्र के प्रवर्तक थे।

पर्णकपूर—संज्ञा पुं० [सं० पर्णकर्पूर] पान कपूर।

पर्णकार—संज्ञा पुं० [सं०] पान बेचनेवाली एक जाति जो तंबोली या बरई कहलाती है।

पर्णकुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्णकुटी । पर्णशाला । पत्तों की झोपड़ी [को०] ।

पर्णकुटी—संज्ञा स्त्री०[सं०]केवल पत्तों की बनी हुई कुटी । पर्णशाला ।

पर्णकुटीर—संज्ञा पुं० [सं०] पत्तों की कुटिया । पर्णकुटी । उ०—पंचवटी की छाया में है सुंदर पर्णकुटीर बना ।—पंचवटी, पृ० ५ ।

पर्णकूर्च—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसमें तीन दिन तक ढाक, गूलर, कमल और बेल के पत्तों का क्वाथ पीना होता है ।

पर्णकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक व्रत जिसमें पहले दिन ढाक के पत्तों का, दूसरे दिन गूलर के पत्तों का, तीसरे दिन कमल के पत्तों का और चौथे दिन बेल के पत्तों का क्वाथ पीकर पाँचवें दिन कुश का जल पिया जाता है । २. प्राचीन काल का एक प्रकार का व्रत जो गूलर, बेल, कुश आदि के पत्ते खाकर या इनके काढ़े पीकर रहने से होता था ।

पर्णखंड—संज्ञा पुं० [सं० पर्णखण्ड] १. वह वनस्पति जिसमें फूल न लगते हों । २. पत्तों का ढेर ।

पर्णचीर—संज्ञा पुं० [सं०] वल्कल । वृक्ष की छाल ।

पर्णचीरपट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव [को०] ।

पर्णचोरक—संज्ञा पुं० [सं०] चोरक नाम का गंधद्रव्य । भटेउर ।

पर्णनर—संज्ञा पुं० [सं०] पलास के पत्तों का किसी मृत व्यक्ति का वह पुतला जो उसकी अस्थियाँ न मिलने की दशा में दाहकर्म आदि के लिये बनवाया जाता है ।

पर्णभेदिनी—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] प्रियंगु लता [को०] ।

पर्णभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो केवल पत्ते खाकर रहता हो । २. बकरा । छाग ।

पर्णभोजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरी [को०] ।

पर्णमणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पन्ना । २. एक प्रकार का अस्त्र ।

पर्णमाचल, पर्णमाचाल—संज्ञा पुं० [सं०] कमरख का पेड़ ।

पर्णमुक्—संज्ञा पुं० [सं० पर्णमुच्] शिशिर ऋतु । पतझड़ का मौसम [को०] ।

पर्णमृग—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ों पर रहनेवाले पशु । जैसे बंदर आदि ।

पर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम जिसे इंद्र ने मारा था ।

पर्णरुह्—संज्ञा पुं० [सं० पर्णरुह्] बसंत ऋतु ।

पर्णल—वि० [सं०] पत्तों से भरा हुआ । पत्तोंवाला [को०] ।

पर्णलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान की बेल ।

पर्णवल्क—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

पर्णवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलाशी नाम की लता ।

पर्णवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] पत्तों का बना हुआ वाद्य या पत्तों की आवाज [को०] ।

पर्णवीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान की गिलौरी । पान का बीड़ा [को०] ।

पर्णशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्तों का बिछावन । पत्तों की सेज [को०] ।

पर्णशबर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक देश का नाम । २. इस देश की रहनेवाली आदिम अनार्य जाति जो कदाचित् अब नष्ट हो गई है ।

पर्णशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्तों की बनी हुई कुटी । पर्णकुटी ।

पर्णशालाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भद्राश्व वर्ष के एक पर्वत का नाम ।

पर्णसि—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल । २. पानी में बना हुआ घर । ३. साग । ४. बनाव सिंगार । आभरण क्रिया (को०) ।

पर्णाटक—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

पर्णाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो किसी व्रत के उद्देश्य से पत्ते खाकर रहता हो । २. एक ऋषि का नाम ।

पर्णाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाव । नौका । २. खनित्र । खंती । कुदाल । ३. द्वंद्व युद्ध [को०] ।

पर्णाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ । बादल । २. वह जो केवल पत्ते खाकर रहता हो ।

पर्णास—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसी ।

पर्णाहार—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्रत के उद्देश्य से पत्ते खाकर रहता हो ।

पर्णिक—संज्ञा पुं० [सं०] पत्ते बेचनेवाला ।

पर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मानकंद । शालपर्णी । सरिवन । २. पिठवन नाम की लता । ३. अग्निमंथ । अरणी ।

पर्णिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माषपर्णी । मषवन । २. एक अप्सरा (को०) ।

पर्णिल—वि० [सं०] पत्तो से भरा हुआ । पर्णल [को०] ।

पर्णी[1]—संज्ञा पुं० [सं० पर्णिन्] १. वृक्ष । पेड़ । २. शालपर्णी । सरिवन । ३. पिठवन । ४. तेजपत्ता । ५. पलाश वृक्ष (को०) ।

पर्णी[2]—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की अप्सराएँ ।

पर्णीर—संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधवाला ।

पर्णोटज—संज्ञा पुं० [सं०] पर्णशाला । पर्णकुटी [को०] ।

पर्त—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'परत' ।

पर्द—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पर्द' [को०] ।

पर्दनी—संज्ञा स्त्री० [सं० परिधानी; या फा० परदा] धोती ।

पर्दा—संज्ञा पुं० [फ़ा० परदह्] दे० 'परदा' ।

पर्दानशीन—वि० [हिं० पर्दा + फ़ा० नशीन] दे० 'परदानशीन । उ०—दिलदार है बाजार में जो पर्दानशी है । —कबीर मं०, पृ० ४६६ ।

पर्द्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिर के बाल । २. अधोवायु । पाद ।

पर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] अधोवायु छोड़ना । पादना ।

पर्न[1]—संज्ञा पुं० [सं० पण] प्रतिज्ञा । प्रण ।

पर्न⁽पु⁾²—संज्ञा पुं० [सं० **पर्ण**] पत्ता। पर्ण। पत्र।

पर्नन⁽पु⁾†—संज्ञा स्त्री० [सं० **परिणयन** (= विवाह), प्रा० **परिण**] विवाह। उ०—पढ़ेन बेद बामन सब, बर कन्या के नाउँ। रहेउ पर्ननै रित्त जो, भएउ सकल तेहि ठाउँ।—इंद्रा०, पु० १७४।

पर्नसालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **पर्णशालिका**] पर्णशाला। पत्तों से बनाई कुटिया। उ०—निपट गहन गह्वर तरु छाँही। पर्नसालिका जहाँ तहाँ ही।—घनानंद, पु० २६०।

पर्निया—संज्ञा पुं० [फ़ा० **पर्नियाँ, परनियाँ**] एक प्रकार का चित्रित रेशमी वस्त्र। उ०—जिसे तूने अजर जामा पिन्हाना। हवस उसको न पोशिश पर्निया पर।—कबीर मं०, पु० ४४४।

पर्पच†—संज्ञा पुं० [सं० **प्रपञ्च**, पुं० हिं० **परपंच**] दे० 'प्रपच'। उ०—तुम्हें इसमें पर्पंच की गंध तो नहीं लग रही है।—नई०, पु० १०४।

पर्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. नई घास। हरी घास। २. पंगुपीठ। पगु के बैठने का स्थान। ३. एक प्रकार की छोटी गाड़ी जिसपर बैठकर पगु इधर उधर जाते हैं। ४. भवन। घर (को०)।

पर्पट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पित्तपापड़ा। २. पापड़।

पर्पटद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] जलकुंभी।

पर्पटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सौराष्ट्र देश की मिट्टी। गोपीचंदन। २. पानड़ी। ३. पपड़ी। ४. पर्पटी रस।

पर्पटीरस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे और गंधक को भँगरैया के रस में खरल करके और ताँबे तथा लोहे की भस्म मिलाकर बनाते हैं।

पर्परी—संज्ञा स्त्री० [सं०] केशगुच्छ। वेणी। कवरी (को०)।

पर्परीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. अग्नि। ३. जलाशय।

पर्परीण—संज्ञा पुं० [सं०] १. संधि। पर्व। २. पान के पत्तों के नाल का रस। ३. पान की नस। पान के पत्तों की नसें। ४. उत्तरायण में घृत द्वारा शिव का पूजन (को०)।

पर्बंध†—संज्ञा पुं० [सं० **प्रबन्ध**] दे० 'प्रबंध'। उ०—शादी तो होकर रहेगी····· या माहुर का पर्बंध करूँ कहीं से और खिला दूँ छोकरी को।—नई०, पु० ७।

पर्ब†—संज्ञा पुं० [सं० **पर्व**] दे० 'पर्व'।

पर्बत—संज्ञा पुं० [सं० **पर्वत**] दे० 'पर्वत'।

पर्बती—वि० [सं० **पर्वतीय**] पहाड़ी। पहाड़ संबधी।

पर्बल†—वि० [सं० **प्रबल**] दे० 'प्रबल'। उ०—कबीर माया पर्बल, निबल हुऊँ, क्यों मन इस्थिर होय।—प्राण०, पु० १६७।

पर्म†—वि० [सं० **परम**] दे० 'परम'। उ०—दशवें भेद पर्म धाम की बानी, साख हमारी निर्णय ठानी।—कबीर सा०, पु० ६३४।

पर्यंक—संज्ञा पुं० [सं० **पर्यङ्क**] १. पलँग। २ शिविका। पालकी (को०)। ३. योग का एक आसन। ४. एक प्रकार का वीरासन। ५. नर्मदा नदी के उत्तर ओर के एक पर्वत का नाम जो विंध्य पर्वत का पुत्र माना जाता है।

पर्यंकग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० **पर्यङ्कग्रन्थि**] अवसक्थिका। पर्यंकबंध (को०)।

पर्यंकपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **पर्यङ्कपादिका**] सुफरा सेम। काले रंग की सेम।

पर्यंकबंध—संज्ञा पुं० [सं० **पर्यङ्कबन्ध**] दे० 'अवसक्थिका' (को०)।

पर्यंकबंधन—संज्ञा पुं० [सं० **पर्यङ्कबन्ध**] जंघा जानु और पीठ का वस्त्र से बाँधना (को०)।

पर्यंकभोगी—संज्ञा पुं० [सं० **पर्यङ्कभोगिन्**] सर्प की एक जाति। एक प्रकार का साँप (को०)।

पर्यंत¹—अव्य० [सं० **पर्यन्त**] तक। लौं।

पर्यंत²—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतिम सीमा। २. समीप। पास। ३. पार्श्व। बगल।

यौ०—**पर्यंतदेश** = दे० 'पर्यंतभू'। **पर्यंत पर्वत** = समीपस्थ पहाड़। **पर्यंतभू, पर्यंतभूमि** = समीप का भूभाग। पास की जमीन।

पर्यंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **पर्यन्तिका**] नैतिक पतन। सदाचारहीनता। गुणों का विनाश (को०)।

पर्यग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ के लिये छोड़े हुए पशु की अग्नि लेकर परिक्रमा करना। २. वह अग्नि जो हाथ मे लेकर यज्ञ की परिक्रमा की जाती है।

पर्यटक—वि० [सं०] पर्यटन करनेवाला। भ्रमण करनेवाला। घुमक्कड़। उ०—कल्पना मे निरवलंब, पर्यटक एक अटवी का अज्ञात, पाया किरण प्रभात।—अनामिका, पु० ७६।

पर्यटन—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमण। घूमना फिरना।

पर्यनुयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. चारो ओर से या सभी प्रकार से पूछना। २ उपालंभ। ३. जिज्ञासा (को०)।

पर्यन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. गरजता हुआ बादल। ३. बादल की गरज।

पर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] १. शास्त्र अथवा लोकाचारविहित। किसी नियम या क्रम का उल्लंघन। विपर्यय। गड़बड़ी। २. व्यतीत होना। बीतना। नष्ट होना (समय के लिये)। ३. विनाश। नाश (को०)।

पर्ययण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चारो ओर घूमना। परिभ्रमण। २. घोडे की काठी। जीन (को०)।

पर्यवदात—वि० [सं०] १. विशुद्ध। निर्मल। अति स्वच्छ। उ०—इस प्रकार समाहित, परिशुद्ध, पर्यवदात, निर्मल, विगत उपक्लेश चित्त से पूर्वभव की अनुस्मृति का ज्ञान प्राप्त किया।—हिंदु० सभ्यता, पु० २४०। २. सुज्ञात। सुविदित। सुपरिचित (को०)।

पर्यवरोध—संज्ञा पुं० [सं०] बाधा। विघ्न।

पर्यवलोकन—संज्ञा पुं० [सं०] निरीक्षण। चारो ओर देखना। उ०—पर्यवलोकन करके भुवन फिर वहीं का वहीं आ गया था।—नदी०, पु० ४०।

पर्यवशेष—संज्ञा पुं० [सं०] समाप्ति। अंत। अवसान (को०)।

पर्यवष्टंभन—संज्ञा पुं० [**पर्यवष्टम्भन**] घेरना। आवृत करना (को०)।

पर्यवसान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **पर्य्यवसित**] १. अंत। समाप्ति।

खातमा । २. अंतर्भाव । अंतर्गत हो जाना । शामिल हो जाना । स्वतंत्र सत्ता का न रहना । ३. रोग । क्रोध । ४. ठीक ठीक अर्थ निश्चित करना ।

पर्यवसित—वि० [सं०] १. समाप्त । खतम । उ०—सेवा ही नहीं चूड़ीवाली ! उसमें विलास का अनंत यौवन है, क्योंकि केवल स्त्री पुरुष के शारीरिक बंधन में वह पर्यवसित नहीं है । —आकाश०, पृ० १२१ । २. निर्णीत । निश्चित (को०) । ३. ध्वस्त । नष्ट (को०) ।

पर्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] विरोध । विरोध करना । खंडन । प्रतिवाद (को०) ।

पर्यवस्थाता—संज्ञा पुं० [सं० पर्यवस्थातृ] १. प्रतिवादी । प्रतिपक्षी । २. विरोधी (को०) ।

पर्यवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिवाद । खंडन । २. विरोध । ३. अच्छी अवस्थिति । सर्वतोभावेन अवस्थान (को०) ।

पर्यवेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्दिक् देखना । समीक्षण । अवलोकन । उ०—शेक्सपीयर को इसका पता भी न था, छपाई के पर्यवेक्षण की तो बात ही क्या ।—पा० सा० सि०, पृ० १२ ।

पर्यश्रु—वि० [सं०] आँसू से पूर्ण । अश्रुपूर्ण । आँसुओं से नहाया हुआ (को०) ।

यौ०—पर्यश्रुनयन, पर्यश्रुनेत्र = आँसू भरी आँखवाला । जिसकी आँखें आँसू भरी हों ।

पर्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निकालना । २. फेंकना । क्षेपण । ३. दूर करना (को०) ।

पर्यस्त—वि० [सं०] १. बाहर किया हुआ । २. दूरीकृत । ३. चारो ओर फैला हुआ । विस्तृत । ४. फेंका हुआ । क्षिप्त । ५. मारा हुआ । हत (को०) ।

पर्यस्तापह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अर्थालंकार जिसमें वस्तु का गुण गोपन करके उस गुण का किसी दूसरे में आरोपित किया जाना वर्णन किया जाय । जैसे,—नहीं शक सुरपति अहै सुरपति नंदकुमार । रतनाकर सागर न है, मथुरा नगर बाजार । दे० 'अपह्नुति' ।

पर्यस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वीरासन में बैठना । २. फेंकना (को०) ।

पर्यस्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वीरासन । २. पर्यंक । पलँग ।

पर्याकुल—वि० [सं०] १. बहुत अधिक व्याकुल । बहुत घबराया हुआ । २. भरा हुआ । पूरित । जैसे, अश्रुपर्याकुल (को०) । ३. अव्यवस्थित । बेतरतीब (को०) । ४. उत्तेजित (को०) । ५. पंकिल । मलिन । आविल । यथा, जल (को०) ।

पर्याकुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्याकुल होने का भाव । व्याकुलता । व्यग्रता (को०) ।

पर्याकुलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पर्याकुलता' (को०) ।

पर्यागत—वि० [सं०] जिसका सांसारिक महत्व या जीवन खत्म हो चुका हो । जो अपना चक्कर पूर्ण कर चुका हो (को०) ।

पर्याचांत—संज्ञा पुं० [सं० पर्याचान्त] भोजन के समय पत्तलों आदि पर रखा हुआ भोजन जो एक पंक्ति में बैठकर खानेवालों में से किसी एक व्यक्ति के बीच में ही आचमन कर लेने अथवा उठ खड़े होने के बाद बच रहता है ।

विशेष—ऐसा अन्न जूठा और दूषित समझा जाता है और खाने योग्य नहीं माना जाता ।

पर्याण—स्त्री० पुं० [सं०] घोड़े की पीठ पर का पलान ।

पर्याप्त[1]—वि० [सं०] १. पूरा । काफी । यथेष्ट । २. प्राप्त । मिला हुआ । ३. जिसमें शक्ति हो । शक्तिसंपन्न । ४. जिसमें सामर्थ्य हो । समर्थ । ५. परिमित । ६. समग्र । पूर्ण (को०) । ७. उचित । योग्य । लायक (को०) । ८. समाप्त । अवसित (को०) । ९. विस्तीर्ण । विस्तृत (को०) ।

पर्याप्त[2]—संज्ञा पुं० १. तृप्ति । संतोष । २. शक्ति । ३. सामर्थ्य । ४. योग्यता । ५. यथेष्ट होने का भाव । प्रचुरता ।

पर्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अंत । समाप्ति । २. प्राप्ति । तृप्ति । संतुष्टि । संतोष । ३. गुणानुसार वस्तुओं का भेद । ४. निवारण । ५. रक्षा । ६. इच्छा । ७. योग्यता । क्षमता । ८. यथेष्टता । प्रचुरता (को०) ।

पर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १. समानार्थवाची शब्द । समानार्थक शब्द । जैसे, 'इंद्र' का पर्याय 'पाकशासन' और 'विष' का पर्याय 'हलाहल' । २. क्रम । सिलसिला । परंपरा । ३. वह अर्थालंकार जिसमें एक वस्तु का क्रम से अनेक आश्रय लेना वर्णित हो या अनेक वस्तुओं का एक ही के आश्रित होने का वर्णन हो । जैसे,—(क) हालाहल तोहिं नित नए, किन सिखए ये ऐन । हिय अंबुधि हरगर लग्यो, बसत अबै खल बैन । (ख) हुती देह में लरिकई, बहुरि तरुणई जोर । बिरधाई आई अबौं भजत न नंदकिशोर । ४ प्रकार । तरह । ५. अवसर । मौका । ६. बनाने का काम । निर्माण । ७. द्रव्य का धर्म । ७. दो व्यक्तियों का वह पारस्परिक संबंध जो दोनों के एक ही कुल में उत्पन्न होने के कारण होता है ।

यौ०—पर्यायक्रम । पर्यायच्युत = क्रम से भग्न । स्थान से च्युत । पर्यायवचन = समान अर्थबोधक शब्द । पर्यायवाचक, पर्यायवाची = समानार्थक । तुल्यार्थक । पर्यायशब्द = दे० 'पर्यायवचन' । पर्यायशयन । पर्यायसेवा ।

पर्यायक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. मान या पद आदि के विचार से क्रम । बड़ाई छोटाई आदि के विचार से सिलसिला । २. क्रम से बढ़ती । उत्तरोत्तर वृद्धि का विधान ।

पर्यायवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक को त्यागकर दूसरे को ग्रहण करने की वृत्ति । एक को छोड़कर दूसरे को ग्रहण करना ।

पर्यायशः—क्रि० वि० [सं०] १ समय समय पर । नियत समय पर । २. क्रमानुसार । क्रमशः । यथाक्रम (को०) ।

पर्यायशयन—संज्ञा पुं० [सं०] पहरेदारों आदि का क्रम से अपनी अपनी बारी से सोना ।

पर्यायसेवा—संज्ञा पुं० [सं०] क्रम से की जानेवाली सेवा (को०) ।

पर्यायान्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पर्याचांत' ।

पर्यायिक—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत या नृत्य का एक अंग ।

पर्यायोक्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक शब्दालंकार । दे० 'पर्यायोक्ति' (को०) ।

पर्यायोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शब्दालंकार जिसमें कोई बात साफ साफ न कहकर कुछ दूसरी वचनरचना या घुमाव फिराव से कही जाय, अथवा जिसमें किसी रमणीय मिस या ब्याज से कार्यसाधन किए जाने का वर्णन हो। जैसे, (क) लोभ लगे हरि रूप के करी साँट जुरि जाय। हौं इन बेची बीचही लोयन बुरी बलाय।—बिहारी (शब्द०)। यहाँ यह न कहकर कि मैं कृष्ण के प्रेम से फँसी हूँ यह कहा गया है कि इन आँखों ने मुझे कृष्ण के हाथ बेच दिया। (ख) भ्रमर कोकिल माल रसाल पै, करत मंजुल शब्द रसाल हैं। बन प्रभा वह देखन जात हौं, तुम दोऊ तब लौं इत ही रहौ। यहाँ नायक और नायिका को अवसर देने के लिये सखी बहाने से टल जाती है।

पर्यारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोगग्रस्त गाय। वह गौ जो व्याधिग्रस्त हो [को०]।

पर्याली—अव्य० [सं०] हिंसन। हिंसा [को०]।

विशेष—संस्कृत की कृ, भू और अस् धातु के साथ यह व्यवहृत होती है। जैसे, पर्याली कृत्य अर्थात् हिंसा करके।

पर्यालोचन—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह देखभाल। समीक्षा। सम्यक् विवेचन।

पर्यालोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु की पूरी देखभाल। समीक्षा। पूरी जाँच पड़ताल।

पर्यालोचित—वि० [सं०] जिसका पर्यालोचन किया गया हो। विवेचित। समीक्षित [को०]।

पर्यावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. आना। लौटना। वापस आना। २. संसार में विकारपूर्वक जन्मग्रहण। संसार में फिर से आकर जनमना।

पर्यावर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक नरक का नाम। २. दे० 'पर्यावर्त' [को०]।

पर्यावलोकन—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण रूप से निरीक्षण। अच्छी तरह से देखना भालना। पूर्णतः समझना या जानना। उ०—अकबर ने तत्कालीन परिस्थितियों का भली प्रकार पर्यावलोकन कर लिया था।—अकबरी०, पृ० १२।

पर्याविल—वि० [सं०] अत्यंत आविल। गँदला। कीचड़ भरा [को०]।

पर्यावृत—वि० [सं०] आच्छादित। ढँका हुआ [को०]।

पर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] १. पतन। गिरना। २. मार डालना। वध। ३. नाश। ४. चारो ओर घूमना। चक्कर देना। परिक्रमण (को०)। ५. विपरीत क्रम। विपरीत स्थिति (को०)।

पर्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी को घेरकर बैठना। चारो ओर बैठना। २. चारो ओर घूमना। परिक्रमा करना। दे० 'पर्यास'। ३. नाश। ध्वंस (को०)।

पर्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. घट। घड़ा। २. काँवर। बहँगी। जूआ। ३. वहन करना। ढोना। ४. बोझ। भार। ५. अन्न-संग्रह [को०]।

पर्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध, होम या पूजा आदि के समय यों ही अथवा कोई मंत्र पढ़कर चारो ओर जल छिड़कना।

पर्युक्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पात्र जिससे पर्युक्षण का जल छिड़का जाय।

पर्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] उठना। उत्थान। खड़ा होना [को०]।

पर्युत्सुक—वि० [सं०] १. व्याकुल। उद्विग्न। २. दुःखयुक्त। दुःखी। खिन्न। ३. बहुत उत्सुक। अत्यंत उत्कंठित [को०]।

पर्युत्सुकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] पर्युत्सुक होने का भाव। दुःख [को०]।

पर्युदंचन—संज्ञा पुं० [सं० पर्युदञ्चन] १. उद्धार। युक्ति। २. कर्ज। ऋण [को०]।

पर्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्योदय समीप होने का समय।

पर्युदस्त—वि० [सं०] १. निषिद्ध। २. चारो ओर फेंका हुआ। ३. अलग किया हुआ [को०]।

पर्युदास—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपवाद। २. निषेध [को०]।

पर्युपस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] सेवा। अर्चा। सुश्रूषा। टहल [को०]।

पर्युपासक—संज्ञा पुं० [सं०] पर्युपासन करनेवाला। सेवा करनेवाला। उपासक। सेवक।

पर्युपासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेवा। उपासना। अर्चना। २. प्रतिमुख संधि के तेरह अंगों में से एक। किसी को क्रुद्ध देखकर उसे प्रसन्न करने के लिये अनुनय विनय करना। (नाट्यशास्त्र)।

पर्युषण—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार तीर्थंकरों की सेवा या पूजा।

पर्युषित—वि० [सं०] १. एक दिन पहले का। जो ताजा न हो। बासी (फूल या भोजन के लिये)। २. नीरस। विरस (को०)। ३. मूर्ख। अज्ञ। मूढ़ (को०)। ४. व्यर्थ। निरर्थक। निःसार (को०)।

यौ०—**पर्युषितभोजी** = पर्युषित भोजन करनेवाला। बासी या नीरस अन्न खानेवाला। **पर्युषितवाक्य** = शब्द या वाक्य जो अनियत या शिथिल हो।

पर्यूहण—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के चारो ओर जल का मार्जन [को०]।

पर्येषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्वेषण। छानबीन। खोज। २. उपासना। सेवा। पूजा (को०)। ३. वर्षाकाल व्यतीत करना। वर्षाऋतु बिताना (बौद्ध)।

पर्येष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्वेषण। खोज। तलाश। पूछताछ [को०]।

पर्व—संज्ञा [सं० पर्वन्] १. धर्म, पुण्यकार्य अथवा उत्सव आदि करने का समय। पुण्यकाल।

विशेष—पुराणानुसार चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रांति ये सब पर्व हैं। पर्व के दिन स्त्रीप्रसंग करना अथवा मांस, मछली आदि खाना निषिद्ध है। जो ये सब काम करता है, कहते हैं, वह विसमूत्रभोजन नामक नरक में जाता है। पर्व के दिन उपवास, नदीस्नान, श्राद्ध, दान और जप आदि करना चाहिए।

२. चातुर्मास्य । ३. प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा अथवा अमावास्या तक का समय । पक्ष । ४. दिन । ५. क्षण । ६. अवसर । मौका । ७. उत्सव । ८. संधिस्थान । वह स्थान जहाँ दो चीजें, विशेषतः दो अंग जुड़े हों । जैसे, कुहनी अथवा गन्ने में की गाँठ । ९. यज्ञ आदि के समय होनेवाला उत्सव अथवा कार्य । १० अंश । खंड । भाग । टुकड़ा । हिस्सा । जैसे, महाभारत के अठारह पर्व, उँगली के पर्व (पोर) आदि । ११. सूर्य अथवा चंद्रमा का ग्रहण ।

पर्वक—संज्ञा पुं० [सं०] पैर का घुटना ।

पर्वकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो धन के लोभ से पर्व के दिन का काम और दिनों में करे । धनार्थ अन्य वेश धारण करनेवाला । वेशांतरधारी ।

पर्वकारी—संज्ञा पुं० [सं० पर्वकारिन्] दे० 'पर्वकार' ।

पर्वकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्व का समय । वह समय जब कोई पर्व हो । पुण्यकाल । २. चंद्रमा के क्षय का समय । जैसे, अमावास्या आदि ।

पर्वगामी—संज्ञा पुं० [सं० पर्वगामिन्] वह जो किसी पर्व के दिन स्त्री के साथ भोग करे । ऐसा मनुष्य नरक का अधिकारी होता है ।

पर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूरा करने की क्रिया या भाव । २. एक राक्षस का नाम ।

पर्वणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वणी नाम का आँख का रोग ।

पर्वणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार आँख की संधि में होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें आँख की संधि में जलन और कुछ सूजन होती है । २. पूर्णिमा । पौर्णमासी । ३. प्रतिपद् । परिवा । प्रतिपदा (को०) । ४. समारोह । उत्सव (को०) ।

पर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमीन के ऊपर वह बहुत अधिक उठा हुआ प्राकृतिक भाग जो आस पास की जमीन से बहुत अधिक ऊँचा होता है और जो प्रायः पत्थर ही पत्थर होता है । पहाड़ ।

विशेष—बहुत अधिक ऊँची सम भूमि पर्वत नहीं कहलाती । पर्वत उसी को कहते हैं जो आस पास की भूमि को देखते हुए बहुत अधिक ऊँचा हो । कई देशों मे अनेक ऐसी अधित्यकाएँ या ऊँची समतल भूमियाँ हैं जो दूसरे देशों के पहाड़ों से कम ऊँची नहीं हैं, परंतु न तो वे आस पास की भूमि से ऊँची हैं और न कोणाकार; अतः वे पर्वत के अंतर्गत नहीं हैं । साधारण पर्वतों पर प्रायः अनेक प्रकार की धातुएँ, वनस्पतियाँ और वृक्ष आदि होते हैं और बहुत ऊँचे पर्वतों का ऊपरी भाग, जिसे पर्वत की चोटी या शिखर कहते हैं, बहुधा बरफ से ढँका रहता है । कुछ पर्वत ऐसे भी होते हैं जिनपर वनस्पतियाँ तो बिलकुल नहीं या बहुत कम होती हैं परंतु जिनकी चोटी पर गड्ढा होता है, जिसमें से सदा अथवा कभी कभी आग निकला करती है; ऐसे पर्वत ज्वालामुखी कहलाते हैं । (दे० 'ज्वालामुखी पर्वत') । पर्वत प्रायः श्रेणी के रूप में बहुत दूर तक गए हुए मिलते हैं । पुराणों में पर्वतों के संबंध में अनेक कथाएँ हैं । सबसे अधिक प्रसिद्ध कथा यह है कि पहले पर्वतों के पंख होते थे । अग्निपुराण में लिखा है कि एक बार सब पर्वत उड़कर असुरों के निवासस्थान समुद्र में पहुँचकर उपद्रव करने लगे, जिसके कारण असुरों ने देवताओं से युद्ध ठान दिया । युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपरांत देवताओं ने पर्वतों के पर काट दिए और उन्हें यथास्थान बैठा दिया । कालिका पुराण मे लिखा है कि जगत् की स्थिति के लिये विष्णु ने पर्वतों को कामरूपी बनाया था—वे जब जैसा रूप चाहते थे, तब वैसा रूप धारण कर लेते थे । पौराणिक भूगोल में अनेक पर्वतों के नाम आए हैं और उनके विस्तार आदि का भी उनमें बहुत कुछ वर्णन है । उनके 'वर्षपर्वत' और 'कुलपर्वत' आदि कुछ भेद भी हैं । वराह पुराण मे लिखा है कि श्रेष्ठ पर्वतों पर देवता लोग और दूसरे पर्वतों पर दानव आदि निवास करते हैं । इसके अतिरिक्त किसी पर्वत पर नागों का, किसी पर सप्तर्षियों का, किसी पर ब्रह्मा का, किसी पर अग्नि का, किसी पर इंद्र का निवास माना गया है । पर्वत कहीं कहीं पृथ्वी को धारण करनेवाले और कहीं कहीं उसके पति भी माने गए हैं ।

पर्या०—महीध्र । शिखरी । धर । अद्रि । गोत्र । गिरि । ग्रावा । अचल । शैल । स्थावर । पृथुशेखर । धरणीकीलक । कुट्टार जीमूत । भूधर । स्थिर । कटकी । शृंगी । अग । नग । भूभृत । अवनीधर । कुधर । धराधर । वृक्षवान् ।

२. पर्वत की तरह किसी चीज का लगा हुआ बहुत ऊँचा ढेर । जैसे,—देखते देखते उन्होंने पुस्तकों का पर्वत लगा दिया । ३. पुराणानुसार एक देवर्षि का नाम जिनकी नारद ऋषि के साथ बहुत मित्रता थी । ४. एक प्रकार की मछली जिसका मांस वायुनाशक, स्निग्ध, बलवर्धक और शुक्रकारक माना जाता है । ५. वृक्ष । पेड़ । ६. एक प्रकार का साग । ७. दशनामी संप्रदाय के अंतर्गत एक प्रकार के संन्यासी । ऐसे संन्यासी पुराने जमाने में ध्यान और धारणा करके पर्वतों के नीचे रहा करते थे । ८. महाभारत के अनुसार एक गंधर्व का नाम । ९. सभूति के गर्भ से उत्पन्न मरीचि के एक पुत्र का नाम । १० सात की संख्या का वाचक शब्द (को०) ।

पर्वतकाक—संज्ञा पुं० [सं०] द्रोणकाक । डोम कौआ ।

पर्वतकीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरित्री । पृथिवी (को०) ।

पर्वतज—वि० [सं०] जो पर्वत से उत्पन्न हुआ हो ।

पर्वतजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती । गिरिजा । २. नदी (को०) ।

पर्वतजाल—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ों का सिलसिला । पर्वतश्रेणी (को०) ।

पर्वततृण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण जो पशु बड़े चाव से खाते हैं और जो पशुओं के लिये बहुत बलकारक होता है । तृणाढ्य ।

पर्वत दुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ी किला ।

विशेष—चाणक्य के मत से पर्वतदुर्ग सब दुर्गों से उत्तम होता है ।

पर्वतनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्वतनन्दिनी] पार्वती । उ०—सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनंदिनी ।—केशव (शब्द०) ।

पर्वतपति—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय । पर्वतराज [को०] ।

पर्वतपाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत श्रेणी । गिरिश्रेणी । पर्वत-शृंखला । उ० यह है अलमोड़े का वसंत खिल पड़ी निखिल पर्वतपाटी ।—युगांत, पृ० ६ ।

पर्वतमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वतों की शृंखला । पहाड़ों का सिलसिला जो दूर तक फैला रहता है । उ०—हिंदुस्तान के उत्तर में, उत्तरपच्छिम और उत्तरपूरब में, मध्य हिंद में और पच्छिम में तमाम कोंकन और मलाबार तट पर जो पर्वतमालाएँ हैं, उन्होंने सभ्यता पर एक और प्रभाव डाला है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १४ ।

पर्वतमोचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी केला ।

पर्वतराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत बड़ा पहाड़ । २. हिमालय पर्वत ।

पर्वतवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी जटामासी । २. काली का एक नाम । ३. गायत्री ।

पर्वतवासी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० पर्वतवासिन्] पर्वत पर रहनेवाला पर्वतीय [को०] ।

पर्वतश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पर्वतमाला' [को०] ।

पर्वतस्थ—वि० [सं०] पहाड़ पर स्थित [को०] ।

पर्वतात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत का पुत्र । मैनाक [को०] ।

पर्वतात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

पर्वताधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी ।

पर्वतारि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

विशेष—कहते हैं, इंद्र ने एक बार पहाड़ों के पर काट डाले थे । इसी से उनका यह नाम पड़ा । दे० 'पर्वत' शब्द का विशेष ।

पर्वतारोही—वि० [सं० पर्वतारोहिन्] पहाड़ पर चढ़नेवाला । किसी कार्य में पर्वत पर चढ़नेवाला ।

यौ०—पर्वतारोही दल ।

पर्वताशय—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ । बादल ।

पर्वताश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरभ नाम का एक जानवर । २. वह जो पर्वत पर रहता हो । पर्वतीय [को०] ।

पर्वताश्रयी—वि० [सं० पर्वताश्रयिन्] पहाड़ पर रहनेवाला । पहाड़ी [को०] ।

पर्वतासन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आसन । बैठने की एक मुद्रा [को०] ।

पर्वतास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक अस्त्र जिसके फेंकते ही शत्रु की सेना पर बड़े बड़े पत्थर बरसने लगते थे, अथवा अपनी सेना के चारों ओर पहाड़ खड़े हो जाते थे । जिससे शत्रु का प्रभंजनास्त्र रुक जाता था ।

पर्वति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चट्टान । पर्वत की शिला [को०] ।

पर्वतिया[1]—संज्ञा पुं० [सं० पर्वत + हिं० इया (प्रत्य०)] नैपालियों की एक जाति ।

पर्वतिया[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का कद्दू । २. एक प्रकार का तिल ।

पर्वती—वि० [सं० पर्वत + ई (प्रत्य०)] १. पहाड़ी । पहाड़-संबंधी । २. पहाड़ों पर रहनेवाला । ३. पहाड़ों पर पैदा होनेवाला ।

पर्वतीय—वि० [सं०] १. पहाड़ी । पहाड़ संबंधी । २. पहाड़ पर रहने या बसनेवाला । ३. पहाड़ पर पैदा होनेवाला ।

पर्वतृण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण जो औषध के काम में आता है । तृणाढ्य ।

पर्वतेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय ।

पर्वतोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारा । २. शिंगरफ ।

पर्वतोद्भूत—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक ।

पर्वतोर्मि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली ।

पर्वधि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

पर्वपुष्पिका, पर्वपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागदंती नामक क्षुप । २. रामदूती तुलसी ।

पर्वपूर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी उत्सव या त्यौहार का संपन्न होना । २. उत्सव या त्यौहार की तैयारी [को०] ।

पर्वभाग—संज्ञा पुं० [सं०] मणिबंध । कलाई [को०] ।

पर्वभेद—संज्ञा पुं० [सं०] संधिभंग नामक रोग का एक भेद ।

पर्वमूल—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्दशी और अमावस्या तथा चतुर्दशी और पूर्णिमा का संधिकाल [को०] ।

पर्वमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब ।

पर्वयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] वह वनस्पति आदि जिसमें गाँठ हों । जैसे, ऊँख, नरसल ।

पर्वर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परवल' ।

पर्वरिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पालन पोषण । पालना पोसना ।

पर्वरीण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्व । २. मृतक । मुर्दा । ३. अभिमान । घमंड । ४. वायु (को०) । ५. दे० 'पर्परीण' (को०) ।

पर्वरुह—संज्ञा पुं० [सं०] अनार ।

पर्ववल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब । दूर्वा ।

पर्वसंधि—संज्ञा पुं० [सं० पर्वसन्धि] १. पूर्णिमा अथवा अमावस्या और प्रतिपदा के बीच का समय । वह समय जब पूर्णिमा अथवा अमावस्या का अंत हो चुका हो और प्रतिपदा का आरंभ होता हो । २. सूर्य अथवा चंद्रमा को ग्रहण लगने का समय । वह समय जब सूर्य अथवा चंद्रमा ग्रस्त हो । ३. घुटने पर का जोड़ ।

पर्वा¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० परवा] १. दे० 'परवाह'।

पर्वा²—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिपदा, प्रा० पडिवा, हिं० परवा] दे० 'प्रतिपदा'।

पर्वानगी—संज्ञा पुं० [फ़ा० परवानगी] दे० 'परवाना'।

पर्वाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० परवाना] दे० 'परवाना'। उ०—पान पर्वाना पाय तौ नाम सुनावही। सतगुरु कहैं कबीर अमर सुख पावही।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० ६।

पर्वावधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँठ। ग्रंथि। जोड़। २. पर्वकाल या उसकी अवधि [को०]।

पर्वास्फोट—संज्ञा पुं० [सं०] उँगलियों को चटकाना। उँगली चटकाने की ध्वनि [को०]।

पर्वाह¹—संज्ञा पुं० [सं०] पर्व का दिन। वह दिन जिसमें कोई पर्व हो।

पर्वाह²—संज्ञा स्त्री० [फा० परवा] दे० 'परवाह'।

पर्विणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पर्व'।

पर्वित—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

पर्वेश—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार कालभेद से ग्रहण समय के अधिपति देवता।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार ब्रह्मा, चंद्र, इंद्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम ये सात देवता क्रमश: छह छह महीने के ग्रहण के अधिपति देवता हुआ करते हैं। ये ही सातो देवता 'पर्वेश' कहलाते हैं। भिन्न भिन्न पर्वेश के समय ग्रहण होने का भिन्न भिन्न फल होता है। ग्रहण के समय ब्रह्मा अधिपति हो तो द्विज और पशुओं की वृद्धि, मंगल, आरोग्य और धन संपत्ति की वृद्धि; चंद्रमा हो तो आरोग्य और धनसंपत्ति की वृद्धि के साथ साथ पंडितों को पीडा और अनावृष्टि, इंद्र हो तो राजाओं में विरोध, शरद ऋतु के धान्य का नाश और अमंगल; कुबेर हो तो धनियों के धन का नाश और दुर्भिक्ष; वरुण हो तो राजाओं का अशुभ, प्रजा का मंगल और धान्य की वृद्धि; अग्नि हो तो धान्य, आरोग्य, अभय और अच्छी वर्षा; और यम हो तो अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और धान्य की हानि होती है। इसके अतिरिक्त यदि और समय मे ग्रहण हो तो क्षुधा, महामारी और अनावृष्टि होती है।

पर्श—संज्ञा पुं० [सं] एक प्राचीन योद्धा जाति का नाम जो वर्तमान अफगानिस्तान के एक प्रदेश मे रहती थी।

पर्शनीय†—वि० [सं० स्पर्शनीय] छूने योग्य। स्पर्श करने योग्य।

पर्शु—संज्ञा पुं० [सं०] १ फरसा। परशु। २. पसली। पाँजर। ३. अस्त्र। हथियार [को०]।

पर्शुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाती पर की हड्डियाँ। पिंजर।

पर्शुपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणेश। २. परशुराम।

पर्शुराम—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम।

पर्शुस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम जिसमें पर्शु जाति के लोग रहा करते थे। आजकल यह प्रांत वर्तमान अफगानिस्तान के अंतर्गत है।

पर्षध—संज्ञा पुं० [सं०] कुठार।

पर्ष¹—संज्ञा पुं० [सं०] गुच्छ। स्तबक [को०]।

पर्ष²—वि० कठोर। उग्र। तीक्ष्ण। जैसे, वायु [को०]।

पर्षद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परिषद्। २. चारो वेद के ज्ञाताओं की सभा या समाज (को०)।

पर्षद्वल—संज्ञा पुं० [सं०] परिषद् का सदस्य। पारिषद्।

पर्सरामⓊ—संज्ञा पुं० [सं० पर्शुराम] दे० 'परशुराम'। उ०—न छत्री छितानं, दई विप्र दानं। सुरानं प्रमानं, नमो पर्सरामं।—पृ० रा०, २। १७।

पर्सादं†—संज्ञा पुं० [सं० प्रसाद] दे० 'पसाद'। उ०—अमरित साहु जाकर भाभी का प्रसाद पा आते।—नई०, पृ० ८२।

पर्हेज—संज्ञा पुं० [फा० पर्हेज़] १. रोग आदि के समय अपथ्य वस्तु का त्याग। रोग के समय संयम। जैसे,—दवा तो खाते ही हो पर साथ में पर्हेज भी किया करो। २. बचना। अलग रहना। दूर रहना। जैसे,—बुरे कामों से हमेशा पर्हेज करना चाहिए।

पर्हेजगार—वि० [फा० पर्हेज़गार] पर्हेज करनेवाला।

पलंकट—वि० [सं० पलङ्कट] डरपोक। भीरु। भयशील।

पलंकर—संज्ञा पुं० [सं० पलङ्कर] पित्त।

पलंकष—संज्ञा पुं० [सं० पलङ्कष] गुग्गुल। गूगल।

पलंकषा—संज्ञा स्त्री० [सं० पलङ्कषा] १. गोखरू। २. रास्ना। ३. गुग्गुल। ४. टेसू। पलास। ५. लाख। ६. गोरखमुंडी। ७. मक्खी।

पलंकषी—संज्ञा स्त्री० [सं० पलङ्कषी] दे० 'पलंकषा'।

पलका†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पर + लंका] बहुत दूर का स्थान। अति दूरवर्त्ती स्थान। उ०—तेहि की आग ओहू पुनि जरा। लंका छोड़ि पलंका परा।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—प्राचीन भारतवासी लंका को बहुत दूर समझते थे इस कारण अत्यंत दूर के स्थान को पलंका (परलंका) जिसका अर्थ है 'लंका से दूर या दूर का देश' बोलने लगे। अब भी गाँवों में इस शब्द का इसी अर्थ में व्यवहार होता है।

पलंका²—संज्ञा पुं० [सं० पल्यङ्क] पल्यंक। पलंग। उ०—चारिउ पवन झकोरे आगी। लंका दाहि पलंका लागी।—जायसी ग्रं०, पृ० १५६।

पलंग—संज्ञा पुं० [सं० पल्यङ्क] १. अच्छी चारपाई। अच्छे गोड़े, पाटी और बुनावट की चारपाई। अधिक लंबी चौड़ी चारपाई। पर्यंक। पल्यंक। खाट।

क्रि० प्र०—बिछाना।

मुहा०—पलंग को लात मारकर खड़ा होना = (१) छठी, बरही आदि के उपरांत सौरी से किसी स्त्री का भली चंगी बाहर आना। निरोग और भली चंगी सौरी से बाहर आना। सौरी काल समाप्त कर बाहर निकलना (बोलचाल)।

(२) कोई बड़ी बीमारी झेलकर अच्छा होना। बीमारी से उठना। खाट लेकर उठना (बोलचाल)। **पलंग तोड़ना** = बिना कोई काम किए सोया या पड़ा रहना। कुछ काम न करते हुए समय काटना। निठल्ला रहना। खाट तोड़ना। **पलंग लगाना** = बिछौना बिछाना। किसी के सोने के लिये पलंग पर बिछौना बिछाना और तकिया आदि को यथास्थान रखना। बिस्तर दुरुस्त करना।

पलंगड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पलंग+ड़ी (प्रत्य०)] पलंग। उ०—और श्री आचार्य जी महाप्रभुन की पलगड़ी के सानिध्य निवेदन की क्यों कहे? यह तो रीति नाहीं।—दो सौ बावन; भा० २, पृ० १६। २. छोटा पलंग।

पलंगतोड़¹—संज्ञा पुं० [हिं० पलंग+तोड़ना] एक औषधि जिसका मुख्य गुण स्तंभन है। यह वीर्यवृद्धि के लिये भी खाई जाती है।

पलंगतोड़²—वि० निठल्ला। आलसी। निकम्मा।

पलंगदंत—संज्ञा पुं० [फा० पलंग (=चीता) + हिं० दाँत] वह जिसके दाँत चीते के दाँतों की तरह कुछ कुछ टेढ़े होते हैं।

पलंगपोश—संज्ञा पुं० [हिं० पलंग + फा० पोश] पलंग पर बिछाने की चादर।

पलंजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की बरसाती घास जो उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है। भूसा। गुलगुला। बड़ा मुरमुरा। वि० दे० 'भूसा'।

पलंडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाव में का वह बाँस जिससे पाल खड़ी की जाती है। (मल्लाह)।

पलँग, पलँगा—संज्ञा पुं० [हिं० पलंग] दे० 'पलंग'। उ० सद्गुरु को पलँगा बैठाई। सब मिलि पाँव पखारो आई।—कबीर सा०, पृ० ५४७।

पलँगरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पलंग + ड़ी (प्रत्य०)] पलंग। माचा।

पलँगिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पलंग + इया (प्रत्य०)] पलंग। खाट। उ०—पौढ़हु पीय पलँगिया मीजहुँ पाय। रैनि जगे की निदिया सब मिटि जाय।—रहीम (शब्द०)।

पल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ समय का एक बहुत प्राचीन विभाग जो ⅖ मिनट या २४ सेकंड के बराबर होता है। घड़ी या दंड का ६० वाँ भाग। ६० विपल के बराबर समयमान। २ एक तौल जो ४ कर्ष के बराबर होती है।

विशेष—कर्ष प्रायः एक तोले के बराबर होता है, पर यह मान इसका बिलकुल निश्चित नहीं है। इसी कारण पल के मान में भी मतभेद है। वैद्यक में इसका मान आठ तोला और अन्यत्र चार तोला या तीन तोला चार माशा भी माना जाता है। ३. चार तोले की एक माप।

तेल आदि निकालने के लिये लोहे का डंडीदार पात्र। इसमें करीब चार तोले तेल आता है। परी। पैरी। पला। पली। उ०—अबतक कई गावों में प्रत्येक घानी से प्रतिदिन एक एक 'पल' तेल मंदिरों के निमित्त लिए जाने की प्रथा चली आती है।—राज० इति०, पृ० ४२७।

४. मांस। उ०—पल आमिष को कहत कवि, घट उसास पल होय। पल जु पलक हरि बिच परे गं पिन जुग सत सोय।—अनेकार्थ०, पृ० १४०। ५. धान का सूखा डंठल जिससे दाने अलग कर लिए गए हों। बवाल। ६. धोखेबाजी। प्रतारणा। ७ चलने की क्रिया। गति। ८. मूर्ख। ९. तराजू। तुला। १०. कीचड़। गिलाव या गाव। पलल (को०)।

पल²—संज्ञा पुं० [सं० पलक] १. पलक। दृगंचल। उ०—झुकि झुकि झपकौहैं पलनु फिरि फिरि जुरि, जमुहाइ। बींदि पियागम नींद मिसि दी सब सखी उठाय।—बिहारी र०, दो० ५८६।

विशेष—पहले साधारण लोग पल और निमेष के कालमान में कोई अंतर नहीं समझते थे। अतः आँख के परदे का प्रत्येक पल में एक बार गिरना मानकर उसे भी पल या पलक कहने लगे।

मुहा०—**पल मारते या पल मारने में** = बहुत ही जल्दी। आँख झपकते। तुरंत। जैसे,—पल मारते वह अदृश्य हो गया।

२ समय का अत्यंत छोटा विभाग। क्षण। आन। लहजा। दम।

विशेष—कहीं इसे स्त्रीलिंग भी बोलते हैं।

मुहा०—**पल के पल या पल की पल में** = बहुत ही अल्प काल में। बात की बात में। क्षण भर में।

पलई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोपल या पल्लव] १ पेड़ की नरम डाली या टहनी। २. पेड़ के ऊपर का भाग। सिरा। नोक।

पलउसिनि‡—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिवेशिनी] पड़ोसिन। उ०—तोरा करम धरम पए साखि, मंदि उघाए पलउसिनि राखि।—विद्यापति, पृ० २६०।

पलक—संज्ञा स्त्री० [सं० पल + क] १. क्षण पल। लहमा। दम। उ०—कोटि कर्म फिरे पलक में जो रेचक आए नाँव। अनेक जन्म जो पुन्य करे नहीं नाम बिनु ठाँव।—कबीर (शब्द०)। २. आँख के ऊपर का चमड़े का परदा जिसके गिरने से आँख बंद होती और उठने से खुलती है। पपोटा तथा बरोनी। उ०—लोचन मगु रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—गिरना। झपकना।

मुहा०—**पलक खोलना** = आँख खोलना। उ०—इन दिनों तो है बिपत खुल खेलती। तू भला अब भी पलक तो खोल दे।—चुभते०, पृ० १। **पलक झपकते** = अत्यंत अल्प समय में। बात कहते। एक निमेष मात्र में। जैसे,—पलक झपकते पुस्तक गायब हो गई। **पलक पर लेना** = जी खोलकर संमान करना। अत्यंत प्रेम से सम्मान करना। उ०—लालसा लाख बार होती है। हम पलक पर उन्हें ललक ले लें।—चुभते०, पृ० ७। **पलक पसीजना** = (१) आँखों में आँसू आना। (२) दया या करुणा उत्पन्न होना। द्रवित होना। आर्द्र होना। **पलक पाँवड़े बिछाना** = हार्दिक स्वागत करना। उ०—आइए ऐ मिलाप के पुतले, हम पलक पाँवड़े बिछा

देंगे।—घुमते०, पृ० ६। (किसी के रास्ते में या किसी के लिये पलक बिछाना = किसी का अत्यंत प्रेम से स्वागत करना पूर्ण योग से किसी का स्वागत तथा सत्कार करना। उ०—क्यता हूँ उभारनेवाले। आइए हैं बिछी हुई पलकें।—घुमते०, पृ० १। पलक भँजना = (१) पलक का गिरना या हिलना। (२) पलक का इस प्रकार हिलना कि उससे कोई संकेत सूचित हो। इशारा या संकेत होना। जैसे,—उनकी पलक भँजते ही वह नौ दो ग्यारह हो गया। पलक भाँजना = (२) पलक से कोई इशारा करना। पलक मारना = (१) आँखों से संकेत या इशारा करना। (२) पलक झपकाना या गिराना। (३) तंद्रालु होना। झपकी लेना। पलक लगना = (१) आँखें मुँदना। पलक झपकना। पलक गिरना। उ०—पलक नहिं कहुँ नेकु लागति रहति इक टक हेरि। तऊ कहूँ त्रिपितात नाहीं रूप रस के ढेरि।—सूर (शब्द०)। (२) नींद आना। झपकी लगना। जैसे,—आज तीन दिन से एक छन के लिये भी पलक न लगी। पलक लगाना = (१) आँख झपकाना। आँखें मूँदना। (२) सोने के लिये आँखें बंद करना। सोने की इच्छा से आँखें मूँदना। पलक से पलक न लगना = (१) पलक न झपकना। टकटकी बँधी रहना। (२) आँख न लगना। नींद न आना। पलक से पलक न लगाना = (१) टकटकी बाँधे रहना। पलक न झपकाना। (२) सोने के लिये आँखें बंद न करना। पलकों से तिनके चुनना = अत्यंत श्रद्धा तथा भक्ति से किसी की सेवा करना। किसी को सुख पहुँचाने के लिये पूर्ण मनोयोग से प्रयत्न करना। जैसे,—मैं आपके लिये पलकों से तिनके चुनूँगा। पलकों से जमीन झाड़ना = पलकों से तिनके चुनना।

पलकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] धूपघड़ी के शंकु की उस समय की छाया की लंबाई जब मेष संक्रांति के मध्याह्नकाल में सूर्य ठीक विषुवत् रेखा पर होता है।

पलकदरिया†—वि० [हिं० पलक + फा० दरिया] बड़ा दानी। अति उदार।

पलकदरियाव†—वि० [हिं० पलक+फा० दरयाव] दे० 'पलकदरिया'।

पलकनेवाज†—वि० [हिं० पलक + फा० नेवाज] छन में निहाल कर देनेवाला। बड़ा दानी। पलकदरिया।

पलकपीटा—संज्ञा पुं० [हिं० पलक+पीटना] १. आँख का एक रोग।

विशेष—इसमें बरौनियाँ प्रायः झड़ जाती हैं, आँखें बराबर झपकती रहती हैं और रोगी धूप या रोशनी की ओर नहीं देख सकता। २. वह मनुष्य जिसे पलकपीटा रोग हुआ हो। पलकपीटे का रोगी।

पलकांतर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पलक + अन्तर] पलकों के गिरने के कारण होनेवाला व्यवधान। पलक गिरने से दृष्टि का व्यवधान या अंतर। उ०—प्रथम प्रतच्छ बिरह तू सुनि लै। ताते पुनि पलकांतर सुनि लै।—नंद० ग्रं०, पृ० १६२।

विशेष—नंददास ने इसे एक प्रकार का बिरह माना है।

पलका(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० पर्यङ्क या पल्यङ्क] [स्त्री० पलकी] पलंग। चारपाई। उ०—(क) अजिर प्रभा तेहि श्याम को पलका पौढायो। आप चली गृह काज को तँह नंद बुलायो।—सूर (शब्द०)। (ख) और जो कहो तो तेरो ह्वै कै सेवों गाढ़ो बन जो कहो तो चेरी ह्वै कै पलकी उसाई दों।—हनुमान (शब्द०)।

पलका[2]—वि० [देश०] चंचल। उ०—भाव भगत नाना विधि कीन्हीं पलका कौन करी।—दक्खिनी०, पृ० २५।

पलक्क(पु) संज्ञा पुं० [हिं० पलक] दे० 'पलक'। उ०—हरि सुख एक पलक्क का ता सम कह्या न जाइ।—संतबानी०, पृ० ७६।

पलक्या—संज्ञा पुं० [सं०] पालक का साग। पालंक शाक।

पलक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद रंग। श्वेत वर्ण।

पलक्ष[2]—वि० जिसका रंग सफेद हो। श्वेतवर्ण युक्त।

पलक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त। खून। लहू।

पलखन—संज्ञा पुं० [सं० प्लक्ष, प्रा० पलक्ख] पाकर का पेड़।

पलगंड—संज्ञा पुं० [सं० पलगण्ड] कच्ची दीवार में मिट्टी का लेप करनेवाला। लेपक।

पलचर—संज्ञा पुं० [सं० पल (= मास) + चर (= भक्षण)] १. एक उपदेवता जिसका वर्णन राजपूतों की कथाओं में है। उ०—मिली परस्पर डीठ बीर पग्गिय रिस अग्गिय। जग्गिय जुद्ध बिरुद्ध उद्ध पलचर मग लग्गिय। भग्गिय सब श्रृगाल काल दै ताल उमग्गिय। लग्गिय प्रेत पिशाच पत्र जुग्गिन लै नग्गिय। रग्गिय सुररभादि गण रुद्र रहस भावज घम्मिय। सन्नाह करहिं उच्छाह भट दुहुँ सिपरह जब झमझम्मिय।—सूदन (शब्द०)।

विशेष—इसके संबंध में लोगों का विश्वास है कि यह युद्ध में मरे हुए लोगों का रक्त पीता और आनंद से नाचता कूदता है। २. मासभक्षी पक्षी। मास खानेवाले पक्षी।

पलच्चर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पल (= मास) + चर (= भक्षण)] उ०—धरनि धार धुकि धरनि भिरन इंद्राजित सरभर। मुक्कि बान रुकि भान परिय सारंगन पलच्चर।—पृ० रा०, २। २८२।

पलटन—संज्ञा स्त्री० [अं० बटालियन, फा० बटेलन या अं० प्लैटून] १ अँगरेजी पैदल सेना का एक विभाग जिसमें दो या अधिक कंपनियाँ अर्थात् २०० के लगभग सैनिक होते हैं। २. सैनिकों अथवा अन्य लोगों का समूह जो एक उद्देश्य या निमित्त से एकत्र हो। दल। समुदाय। झुंड। जैसे, वहाँ की भीड़ भाड़ का क्या कहना पलटन की पलटन खड़ी मालूम होती थी।

पलटना[1]—क्रि० अ० [सं० प्रलोठन अथवा प्रा० पल्लोठन] किसी वस्तु की स्थिति उलटना। ऊपर के भाग का नीचे या नीचे के भाग का ऊपर हो जाना। उलट जाना। (क्व०)। २. अवस्था या दशा बदलना। किसी दशा की ठीक उलटी या विरुद्ध दशा उपस्थित होना। बुरी दशा का अच्छी में या अच्छी का बुरी में बदल जाना। आमूल परिवर्तन हो जाना।

कायापलट हो जाना। जैसे,—दो साल हुए मैंने तुमको कितना खुश देखा था, पर अब तो तुम्हारी हालत ही पलट गई है।

विशेष—इस अर्थ में यह क्रिया 'जाना' के साथ सदा संयुक्त रहती है; अकेले नहीं प्रयुक्त होती है।

३. अच्छी स्थिति या दशा प्राप्त होना। इष्ट या वांछित दशा आना या मिलना। किसी के दिन फिरना या लौटना। जैसे,—(क) धैर्य रखो, तुम्हारे भी दिन अवश्य पलटेंगे। (ख) बरसों बाद इस घर के दिन पलटे हैं। (ग) आधी रात तक तो उनका पासा बराबर पट रहा इसके बाद जो पलटा तो सारी कसर निकल आई। ४. मुड़ना। घूमना। पीछे फिरना। जैसे,—मैंने पलटकर देखा तो तुम भी पैर पीछे आ रहे थे। ५. लौटना। वापस होना। जैसे,—तुम कलकत्ते से कबतक पलटोगे। (क्व०)।

पलटना[२]—क्रि० स० १. किसी वस्तु की स्थिति को उलटना। किसी वस्तु के निचले भाग को ऊपर या ऊपर के भाग को नीचे करना। उलटी वस्तु को सीधी या सीधी को उलटी करना। उलटना। औंधाना। जैसे,—(किसी बरतन आदि के लिये) अच्छी तरह तो रखा था, तुमने व्यर्थ ही पलट दिया।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी वस्तु की अवस्था उलट देना। किसी वस्तु को ठीक उसकी उलटी दशा मे पहुँचा देना। अवनत को उन्नत या उन्नत को अवनत करना। काया पलट देना। जैसे,—दो ही वर्ष में तुम्हारी प्रबंधकुशलता ने इस गाँव की दशा पलट दी।

विशेष—इस अर्थ में यह क्रिया सदा 'देना' या 'डालना' के साथ संयुक्त होती है, अकेले नहीं आती।

३. फेरना। बार बार उलटना। उ०—देव तेऊ गोरी के बिलात गात बात लगे, ज्यों ज्यों सोरे पानी पीरे पान सो पलटियत।—देव (शब्द०)। ४. बदलना। एक वस्तु को त्याग कर दूसरी को ग्रहण करना। एक को हटाकर दूसरी को स्थापित करना। उ०—मृगनैनी दृग की फरक कर उछाह तन फूल। बिन ही प्रिय आगमन के पलटन लगी दुकूल।—बिहारी (शब्द०)। ५. बदलना। एक चीज देकर दूसरी लेना। बदले में लेना। बदला करना। (अप्रयुक्त)। उ०—(क) नरतनु पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ब्रजजन दुखित अति तन छीन। रटत इकटक चित्र चातक श्यामघन तनु लीन। नाहिं पलटत बसन भूषण रयन दीपक तात। मलिन बदन बिलखि रहत जिमि तरनि हीन जलजात।—सूर (शब्द०)। ६. कही हुई बात को अस्वीकार कर दूसरी बात कहना। एक बात को अन्यथा करके दूसरी कहना। एक बात से मुकरकर दूसरी कहना। जैसे,—तुम्हारा क्या ठिकाना, तुम तो रोज ही कहकर पलटा करते हो। ७. लौटाना। फेरना। वापस करना। उ०—फिरि फिरि नृपति चलावत बात। कहो सुमंत कहाँ तोहिं पलटी प्राण जीवन कैसे बन जात।—सूर (शब्द०)।

पलटनिया[१]—संज्ञा पुं० [हिं० पलटन+इया (प्रत्य०)]। वह जो पलटन में काम करता हो। सेना का सिपाही। सैनिक। जैसे,—नगर में गोरे पलटनियों का पहरा था।

पलटनिया[२]—वि० पलटन में काम करनेवाला। पलटन का। जैसे,—सन् १८९३ के पहले सुपरिटेंडेंट और असिस्टेंट पलटनिये अफसर होते थे।

पलटा—संज्ञा पुं० [हिं० पलटना] १. पलटने की क्रिया या भाव। नीचे से ऊपर या ऊपर से नीचे होने की क्रिया या भाव। घूमने, उलटने या चक्कर खाने की क्रिया या भाव। परिवर्तन।

क्रि० प्र०—देना। —पाना।

मुहा०—पलटा खाना = दशा या स्थिति का उलट जाना। घूमकर या बदलकर विपरीत स्थिति या दशा मे पहुंच जाना। चक्कर खाना। उ०—उसके बाद ही न जाने ग्रहचक्र ने कैसा पलटा खाया।—दुर्गाप्रसाद (शब्द०)।

२. बदला। प्रतिफल। जैसे,—उसने अपनी करनी का पलटा पा लिया।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।

३. नाव में वह पटरी जिसपर नाव का खेनेवाला बैठता है। ४. गान में जल्दी जल्दी थोड़े से स्वरों पर चक्कर लगाना। गाते समय ऊँचे स्वर तक पहुँचकर खूबसूरती के साथ फिर नीचे स्वरों की तरफ मुड़ना। ५. लोहे या पीतल की बड़ी खुरचनी जिसका फल चौकोर न होकर गोलाकार होता है। इससे बटलोही में से चावल निकालते और पूरी आदि उलटते हैं। ६. कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमें जब ऊपरवाला पहलवान नीचे पड़े हुए पहलवान की कमर पकड़ता है तब नीचेवाला पट्ठा अपने दाहिने पैर के पंजे ऊपरवाले की टाँगों के बीच से डालकर उसकी बाईं टाँग को फँसा लेता है और दाहिने हाथ से उसकी बाईं कलाई पकड़कर झटके के साथ अपने दाहिनी ओर मुड़ जाता है और ऊपर का पहलवान चित गिर जाता है।

पलटाना—क्रि० स० [हिं० पलटना] १. लौटाना। फेरना। वापस करना। उ०—(क) तब सारथि स्यंदन पलटावा। लै नरेश के आगे आवा।—सबल (शब्द०)। २. बदलना (अप्रयुक्त)। उ०—काया कंचन जतन कराया। बहुत भाँति कै मन पलटाया।—कबीर (शब्द०)।

पलटाव—संज्ञा पुं० [हिं० पलटना] पलटने की क्रिया।

पलटावना†—क्रि० स० [हिं० पलटाना] दे० 'पलटाना'।

पलटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पलटा'।

पलटे†—क्रि० वि० [हिं० पलटा] बदले में। एवज में। प्रतिफल स्वरूप।—उ०—(क) प्रानु दयो मन फेरि लै, पलटे दीनी पीठ। कौन बानि वह रावरी लाल लुकावत बीठ।—बिहारी (शब्द०)। (ख) जे सुर सिद्ध मुनीस योगि बुध वेद पुरान

बखाने। पूजा लेत देत पलटे सुख हानि लाभ अनुमाने।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—असल में यह अव्यय नहीं है बल्कि 'पलटा' संज्ञा का सप्तमी विभक्तियुक्त रूप है। परंतु अन्य बहुत से सप्तम्यंत पदों की भाँति इसका भी बिना विभक्ति के व्यवहार होने लगा है, इस कारण

पलड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० पटल] तराजू का पल्ला। तुलापट।

पलथा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पलटना] १. कलाबाजी। विशेषत: पानी में कलैया मारने की क्रिया या भाव। कलैया मारने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—मारना।

पलथा[2]—संज्ञा पुं० [सं० पर्य्यस्त, प्रा० पल्लत्थ] २. दे० 'पलथी'।

पलथी†—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्य्यस्त, प्रा० पल्लत्थ] एक आसन जिसमें दाहिने पैर का पंजा बाएँ और बाएँ पैर का पंजा दाहिने पट्ठे के नीचे दबाकर बैठते हैं और दोनों टाँगें ऊपर नीचे होकर दोनों जाँघों से दो त्रिकोण बना देती हैं। स्वस्तिकासन। पालती।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

विशेष—जिस आसन में पंजों की स्थापना उपर्युक्त प्रकार से न होकर दोनों जाँघों के ऊपर अथवा एक के ऊपर दूसरे के नीचे हो उसे भी पलथी ही कहते हैं।

पलद—वि० [सं०] मांसवर्धक। मांस बढ़ानेवाला।

पलना[1]—क्रि० अ० [सं० पालन] १. पालने का अकर्मक रूप। ऐसी स्थिति में रहना जिसमें भोजन वस्त्र आदि आवश्यकताएँ दूसरे की सहायता या कृपा से पूरी हो रही हों। दूसरे का दिया भोजन वस्त्रादि पाकर रहना। भरित पोषित होना। परवरिश पाना। पाला या पोसा जाना। जैसे,—(क) उसी अकेले की कमाई पर सारा कुनबा पलता था। (ख) यह शरीर आपही के नमक से पला है। २. खा पी कर हृष्ट पुष्ट होना। मोटा ताजा होना। तैयार होना। जैसे,—(क) आजकल तो तुम खूब पले हुए हो। (ख) यह बकरा खूब पला हुआ है।

पलना[2]—क्रि० स० [देश०] कोई पदार्थ किसी को देना। (दलाल)।

पलना[3]—संज्ञा पुं० [सं० पल्यङ्क] दे० 'पालना'। उ०—एक बार जननी अन्हवाए। करि सिंगार पलना पौढ़ाए।—मानस, १।२०१।

पलनाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० पलान (=जीन)+ना (प्रत्य०)] घोड़े पर जीन कसकर उसे चलने के लिये तैयार करना। घोड़े को जोतने या चलाने के लिये तैयार करना। कसना। उ०—भोर भयो ब्रज ब्रज लोगन को। ग्वाल सखा सखि व्याकुल सुनि के श्याम चलत हैं मधुबन को। सुफलकसुत स्यंदन पलनावत देखें तहँ बल मोहन को।—सूर (शब्द०) (ख) गहर जनि लावहु गोकुल आइ। अपनोई रथ तुरत मँगायो दियो तुरत पलनाइ।—सूर (शब्द०)।

पलप्रिय[1]—वि० [सं०] मांसभक्षी। मांस खाकर रहनेवाला।

पलप्रिय[2]—संज्ञा पुं० १. डोम कौआ। द्रोण काक। २. दानव। राक्षस (को०)।

पलभक्षी—वि० [सं० पलभक्षिन्] [वि० स्त्री० पलभक्षिणी] मांसाहारी। मांसभक्षी।

पलभच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पल = (मांस) + भक्ष, प्रा० भच्छ] वह जिसका भक्ष्य पल हो, सिंह। उ०—मृगपति द्वीपी व्याघ्र पुनि पंचानन पलभच्छ।—अनेकार्थ०, पृ० ९८।

पलभछ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पलभक्ष] सिंह।

पलभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धूपघड़ी के शंकु की उस समय की छाया की चौड़ाई जब मेष संक्रांति के मध्याह्न में सूर्य ठीक विषुवत् रेखा पर होता है। पलविभा। विषुवत्प्रभा।

पलरा—संज्ञा पुं० [सं० पटल] दे० 'पलड़ा'। उ०—पत्र एक पर राम लिखाना। पलरा माहिं धरा तेहि नाना।—घट०, पृ० २२७।

पलल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मांस। २. कीचड़, गिलावा या गाद। ३. तिल का चूर्ण। ४. तिल और गुड़ अथवा चीनी के योग से बनाया हुआ लड्डू, कतरा आदि। तिलकुट। ५. तिल का फूल। ६. राक्षस। ७. सिवार। शैवाल। ८. पत्थर। ९. मल। मैल। गंदगी। १० दूध। ११. बल। १२. शव। लाश।

पलल[2]—वि० पुलपुला या पिलपिला। गीला और मुलायम।

पललज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पित्त।

पललप्रिय[1]—वि० [सं०] मांसभक्षी। मांस खाकर रहनेवाला।

पललप्रिय[2]—संज्ञा पुं० द्रोण काक। डोम कौआ। २. राक्षस। दानव (को०)।

पललाशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ फोड़ा। गंडरोग। २. अजीर्ण। बदहजमी।

पलव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का झाब जिसमें मछलियाँ फँसाई जाती हैं।

पलव(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्लव] दे० 'प्लव'। उ० उडप पोत नौका पलव तरि बहित्र जलजान।—अनेकार्थ०, पृ० ५१।

पलवल—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'परवल'।

पलवा†[1]—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव] १. ऊख के ऊपर का नीरस भाग जिसमें गाँठें पास पास होती हैं। अगौरा। कौंचा। २. ऊख के गाड़े जो बोने के लिये पाल में लगाए जाते हैं। † ३. एक घास जिसको भैंस बड़े चाव से खाती है। यह हिसार के आस पास पंजाब में होती है। पलवान।

पलवा(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव] अंजुली। चुल्लू। उ०—पीवत नहीं अघात छिन नाहीं कहत बनै न। पलवो कै बाँधे रहै छबि रस प्यासे नैन।—रसनिधि (शब्द०)।

पलवान—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव] दे० 'पलवा'।

पलवाना—क्रि० स० [हिं० पालना का प्रे० रूप] किसी से पालन

कराना। पालन में किसी को प्रवृत्त करना। उ०—(क) बड़े यत्न से उन्हें पलवावै।—लल्लू (शब्द०)। (ख) लेति पखेरू मान ते कोइलिया पलवाय।—शकुंतला, पृ० ६४।

पलवार¹—संज्ञा पुं० [हिं० पल्लव] ईख बोने का एक ढंग जिसमें अँखुए निकलने के बाद खेत को रूखे पत्तों, रहट्ठों आदि से अच्छी तरह ढक देते हैं। नगरवा।

विशेष—इस तरह ढँकने से खेत की तरी बनी रहती है जिससे सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। करैली या काली मिट्टी में यही ढंग बरता जाता है। अन्यत्र भी यदि सींचने का सुभीता या आवश्यकता न हो तो इसी ढंग को काम में लाते हैं।

पलवार²—संज्ञा पुं० [हिं० पाल + वार (प्रत्य०)] एक प्रकार की बड़ी नाव जिसपर माल असबाब लादकर भेजते हैं। पटैला।

पलवारी—संज्ञा पुं० [हिं० पलवार+ई (प्रत्य०)] नाव खेनेवाला मल्लाह।

पलवाल†—वि० [सं० पल (=मांस)+वाल (प्रत्य०)] हृष्ट पुष्ट। बलवान्।

पलवैया†—संज्ञा पुं० [हिं० पालना+वैया (प्रत्य०)] पालन करनेवाला। भरण पोषण करनेवाला। खिलाने पिलानेवाला। पालक।

पलस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पनस' (को०)।

पलस्तर—संज्ञा पुं० [अं० प्लास्टर मि० सं० पल (=कीचड़ या गिलावा) + स्तर (=तह)] मिट्टी, चूने आदि के गारे का लेप जो दीवार आदि पर उसे बराबर सीधी और सुडौल करने के लिये किया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—पलस्तर ढीला करना = (१) तंग करना। नसें ढीली कर देना। (२) गिलावा को अधिक पतला कर देना। **पलस्तर बिगड़ना या बिगड़ जाना** = दे० 'पलस्तर ढीला होना'। **पलस्तर बिगाड़ना या बिगाड़ देना** = दे० 'पलस्तर ढीला करना'। **पलस्तर ढीला होना** = तंग होना। नसें ढीली हो जाना।

पलस्तरकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पलस्तर + फ़ा० कारी] पलस्तर करने या किए जाने की क्रिया या भाव। पलस्तर करने या होने का काम।

पलहना(पु)—क्रि० अ० [सं० पल्लवन] पल्लवित होना। पल्लव फूटना। पनपना। लहलहाना। उ०—(क) प्रीति बेल ऐसे तन डाढ़ा। पलहत सुख बाढ़त दुख बाढ़ा।—जायसी (शब्द०)। (ख) वही भाँति पलही सुखबारी। उठी करलि नइ कोंप सँवारी।—जायसी (शब्द०)।

पलहलना—क्रि० अ० [हिं० पलुहना] प्रफुल्ल होना। प्रसन्न होना। उ०—भलहलत मुकट भृकुटी ककर। पलहलत नेत्र आरक्त भूर।—ह० रासो, पृ० ११।

पलहा—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव] पल्लव। कोमल पत्ते। कोंपल।

उ०—पियर पात दुख झरे निपाते। सुख पलहा उपने होय राते।—जायसी। (शब्द०)।

पलांग—संज्ञा पुं० [सं० पलाङ्ग] सूँस। शिशुमार।

पलांडु—संज्ञा पुं० [सं० पलाण्डु] प्याज।

पलाँण—संज्ञा पुं० [हिं० पलान] दे० 'पलान'। उ०—सहज पलाँण पवन करि घोड़ा लै लगाँम चित्त चबका। चेतनि असवार ग्याँन गुरु करि और तजो सब ढबका।—गोरख०, पृ० १०३।

पला¹—संज्ञा पुं० [सं० पल] पल। निमिष।

पला²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पटल] १. तराजू का पलड़ा। पल्ला। उ०—बरुनी जोती पल पला, डाँडी भौंह अनूप। मन पसग तौलै सुदग, हरवी गरवी रूप।—रसनिधि (शब्द०)। २. पल्ला। आँचल। उ०—समुझि बूझि दृढ़ ह्वै रहै, बल तजि निर्बल होय। कह कबीर ता संत को पला न पकड़ै कोय।—कबीर (शब्द०)। ३. पार्श्व। किनारा। उ०—नासिक पुल सरात पथ चला। तेहि कर भौंहैं हैं दुइ पला।—जायसी (शब्द०)।

पला³—संज्ञा पुं० [हिं० पली] तेल की पली।

पलाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] पित्त।

पलाणि—संज्ञा पुं० [सं० पल्याण] दे० 'पलान'। उ०—दादू करह पलाणि करि को चेतन चढ़ि जाइ। मिलि साहिब दिन देखतां, साँझ पड़ै जनि आइ।—दादू०, पृ० ३६२।

पलातक—वि० [सं० पलायक] भगोड़ा। भागनेवाला। दौड़ता हुआ। उ०—मोटर की मुड़ती रोशनी के पलातक आलोक में उसने चौंककर और लजाकर देखा। —नदी०, पृ० १६५५।

विशेष—व्याकरण की दृष्टि से यह शब्द अव्युत्पन्न है।

पलाद—संज्ञा पुं० [सं० पल (=मांस)+अद] राक्षस।

पलादन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो मांसभक्षी हो। २. राक्षस।

पलान—संज्ञा पुं० [सं० पल्याण या पल्ययन, मि० फ़ा० पालान] गद्दी या चारजामा जो जानवरों की पीठ पर लादने या चढ़ाने के लिये कसा जाता है। उ०—(क) हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ीं, बासुकि पीठ पलान। चाँद सुरज दोउ पायड़ा चढ़सी संत सुजान।—कबीर (शब्द०)। (ख) वर्षा गयो अगस्त्य की डीठी। परे पलान तुरंगन पीठी।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—कसना।—बाँधना।

पलानना(पु)—क्रि० स० [हिं० पलान+ना (प्रत्य०)] १. घोड़े आदि पर पलान कसना। गद्दी या चारजामा कसना या बाँधना। उ०—उए अगस्त हस्ति तन गाजा। तुरत पलान चढ़े रन राजा।—जायसी (शब्द०)। २. चढ़ाई की तैयारी करना। धावा करने के लिये तैयार या सन्नद्ध होना। उ०—(क) मो पर पलानत है बल को न जानत है, अंगद! बिना ही माग या ही ते जरत हौं।—हनुमान (शब्द०)(ख) अब मोहि कछु समझो न परै भई काहे को काम पलानत है।—हनुमान (शब्द०)।

पलाना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० पलायन] भागना। पलायन करना।

पलाना(पु)[2]—क्रि० स० पलायन कराना। भगाना। उ०—जरासंघ इन बहुत बारही करि संग्राम पलायो। ताको पल कछु नहिं मान्यो मथुरा में चलि आयो।—सूर (शब्द०)।

पलानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पलान] दे० 'पलान'।

पलानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पलान] १. छप्पर। २. पान के आकार का एक गहना जिसे स्त्रियाँ पैर में पजे के ऊपर पहनती हैं। ३. दे० 'पलान'।

पलान्न—संज्ञा पुं० [सं०] चावल और मांस के मेल से बना हुआ भोजन। पुलाव।

पलाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी का गंडस्थल। हाथी का कपोल, कनपटी आदि। २. बंधन। पगहा (को०)।

पलायक—संज्ञा पुं० [सं०] भागनेवाला। भग्गू।

पलायन—संज्ञा पुं० [सं०] भागने की क्रिया या भाव। भागना।

यौ०—**पलायनवाद** = जीवन की कठिनाइयों से भागने की प्रवृत्ति। **पलायनवादी** = पलायनवाद को प्रश्रय देनेवाला।

पलायमान—वि० [सं०] भागता हुआ। पलायन करता हुआ।

पलायित—वि० [सं०] भागा हुआ।

पलायी—वि० [सं० पलायिन्] दे० 'पलायक'।

पलाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. धान का रूखा डंठल। पयाल। पुआल। २. अन्य किसी धान्य या पौधे का सूखा डंठल। तृण। तिनका।

पलालदोहद—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

पलाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] उन सात राक्षसियों में से एक जो लड़कों को बीमार करनेवाली मानी जाती हैं।

पलालि, पलाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मांसराशि। गोश्त की ढेरी (को०)।

पलाव—संज्ञा पुं० [हिं० पूला] पूला नामक वृक्ष जिसके रेशों से रस्से बनते हैं। वि० दे० 'पूला'।

पलाश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलास। ढाक। टेसू। २. पत्र। पत्ता। ३. राक्षस। ४. कचूर। ५. मगध देश। ६. शासन। ७. परिभाषण। ८. एक पक्षी। ९. विदारी कंद। १०. पलाश का पुष्प (को०)। ११. हरा रंग (को०)। १२. किसी तेज शस्त्र का फल (को०)।

पलाश[2]—वि० १. मांसाहारी। २. निर्दय। ३. हरित। हरा।

पलाशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश। ढाक। २. टेसू। किंसुक। पलास का फूल। ३. कपूर। ४. लाख। लाक्षा।

पलाशगंधजा—संज्ञा स्त्री० [सं० पलाशगन्धजा] एक प्रकार का बंसलोचन।

पलाशच्छदन—संज्ञा पुं० [सं०] तमालपत्र।

पलाशतरुज—संज्ञा पुं० [सं०] पलास का कोमल पत्ता। पलास की कोंपल।

पलाशान्—संज्ञा पुं० [सं०] मैना। सारिका।

पलाशपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। असगंध।

पलाशपुट—संज्ञा पुं० [सं०] पलाश के पत्ते का बना दोना (को०)।

पलाशांता—संज्ञा स्त्री० [सं० पलाशान्ता] वनकचूर। गंधपत्रा।

पलाशाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] नाड़ी हींग।

पलाशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारी कंद।

पलाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शुक्तिमान् पर्वत से निकली हुई एक नदी। २. रैवतक पर्वत से निकली हुई एक नदी।

पलाशी[1]—वि० [सं० पलाशिन्] १. मांसाहारी। मांस खानेवाला। २. पत्र विशिष्ट। पत्रयुक्त।

पलाशी[2]—संज्ञा पुं० १. राक्षस। २. एक फल। क्षीरिका। खिरनी। ३. कचूर। शठी।

पलाशी[3]—संज्ञा स्त्री० १. कचरी। २. लाख।

पलाशीय—वि० [सं०] पत्रयुक्त। पत्र विशिष्ट।

पलास—संज्ञा पुं० [सं० पलाश] प्रसिद्ध वृक्ष जो भारतवर्ष के सभी प्रदेशों और सभी स्थानों में पाया जाता है। पलाश। ढाक। टेसू। केसू। धारा। काँवरिया। उ०—प्रफुलित भए पलास दसौं दिसि दव सी दहकत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १०१।

विशेष—पलास का वृक्ष मैदानों और जंगलों ही में नहीं, ४००० फुट ऊँची पहाड़ियों की चोटियों तक पर किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है। यह तीन रूपों में पाया जाता है—वृक्ष रूप में, क्षुप रूप में और लता रूप में। बगीचों में यह वृक्ष रूप में और जंगलों और पहाड़ों में अधिकतर क्षुप रूप में पाया जाता है। लता रूप में यह कम मिलता है। पत्ते, फूल और फल तीनों भेदों के समान ही होते हैं। वृक्ष बहुत ऊँचा नहीं होता, मझोले आकार का होता है। क्षुप झाड़ियों के रूप में अर्थात् एक स्थान पर पास पास बहुत से उगते हैं। पत्ते इसके गोल और बीच में कुछ नुकीले होते हैं जिनका रंग पीठ की ओर सफेद और सामने की ओर हरा होता है। पत्ते सीकों में निकलते हैं और एक में तीन तीन होते हैं। इसकी छाल मोटी और रेशेदार होती है। लकड़ी बड़ी टेढ़ी मेढ़ी होती है। कठिनाई से चार पाँच हाथ सीधी मिलती है। इसका फूल छोटा, अर्धचंद्राकार और गहरा लाल होता है। फूल को प्रायः टेसू कहते हैं और उसके गहरे लाल होने के कारण अन्य गहरी लाल वस्तुओं को 'लाल टेसू' कह देते हैं। फूल फागुन के अंत और चैत के आरंभ में लगते हैं। उस समय पत्ते तो सबके सब झड़ जाते हैं और पेड़ फूलों से लद जाता है जो देखने में बहुत ही भला मालूम होता है। फूल झड़ जाने पर चौड़ी चौड़ी फलियाँ लगती हैं जिनमें गोल और चिपटे बीज होते हैं। फलियों को 'पलास पापड़ा' या 'पलास पापड़ी' और बीजों को 'पलास-बीज' कहते हैं। इसके पत्ते प्रायः पत्तल और दोने आदि के बनाने के काम आते हैं। राजपूताने और बंगाल में इनसे तबाकू की बीड़ियाँ भी बनाते हैं। फूल और बीज ओषधिरूप में व्यवहृत होते हैं। बीज में पेट के कीड़े मारने का गुण

विशेष रूप से है। फूल को उबालने से एक प्रकार का ललाई लिए हुए पीला रंग भी निकलता है जिसका खासकर होली के अवसर पर व्यवहार किया जाता है। फली की बुकनी कर लेने से वह भी अबीर का काम देती है। छाल से एक प्रकार का रेशा निकलता है जिसको जहाज के पटरों की दरारों में भरकर भीतर पानी आने की रोक की जाती है। जड़ की छाल से जो रेशा निकलता है उसकी रस्सियाँ बटी जाती हैं। दरी और कागज भी इससे बनाया जाता है। इसकी पतली डालियों को उबालकर एक प्रकार का कत्था तैयार किया जाता है जो कुछ घटिया होता है और बंगाल मे अधिक खाया जाता है। मोटी डालियों और तनों को जलाकर कोयला तैयार करते है। छाल पर बछने लगाने से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है जिसको 'चुनियाँ गोंद' या पलास का गोंद कहते हैं। वैद्यक मे इसके फूल को स्वादु, कड़वा, गरम, कसैला, वातवर्धक, शीतज, चरपरा, मलरोधक, तृषा, दाह, पित्त, कफ, रुधिरविकार, कुष्ठ और मूत्रकृच्छ्र का नाशक; फल को रूखा, हलका, गरम, पाक में चरपरा, कफ, वात, उदररोग, कृमि, कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह, बवासीर और शूल का नाशक; बीज को स्निग्ध, चरपरा, गरम, कफ और कृमि का नाशक और गोंद को मलरोधक, ग्रहणी, मुखरोग, खाँसी और पसीने को दूर करनेवाला लिखा है।

यह वृक्ष हिंदुओं के पवित्र माने हुए वृक्षों में से है। इसका उल्लेख वेदों तक में मिलता है। श्रौतसूत्रों में कई यज्ञपात्रों के इसी की लकड़ी से बनाने की विधि है। गृह्यसूत्र के अनुसार उपनयन के समय में ब्राह्मणकुमार को इसी की लकड़ी का दंड ग्रहण करने की विधि है। वसंत में इसका पत्रहीन पर लाल फूलों से लदा हुआ वृक्ष अत्यंत नेत्रसुखद होता है। संस्कृत और हिंदी के कवियों ने इस समय के इसके सौंदर्य पर कितनी ही उत्तम उत्तम कल्पनाएँ की हैं। इसका फूल अत्यंत सुंदर तो होता है पर उसमे गंध नहीं होती। इस विशेषता पर भी बहुत सी उक्तियाँ कही गई हैं।

पर्याय— किंसुक। पर्ण। याज्ञिक। रक्तपुष्पक। क्षारश्रेष्ठ। वातपोथ। ब्रह्मवृक्ष। ब्रह्मवृक्षक। ब्रह्मोपनेता। समिद्वर। करक। त्रिपत्रक। ब्रह्मपादप। पलाशक। त्रिपर्ण। रक्तपुष्प। पुतद्रु। काष्ठद्रु। बीजस्नेह। कृमिघ्न। वक्रपुष्पक। सुपर्णी।

२. एक मांसाहारी पक्षी जो गीध की जाति का होता है।

पलास²—संज्ञा पुं० [अं० स्प्लाइस] वह गाँठ जो दो रस्सियों या एक ही रस्सी के दो छोरों या भागों को परस्पर जोड़ने के लिये दी जाय। (लश०)।

क्रि० प्र० –करना।

पलास³—संज्ञा पुं० [?] कनवास नाम का एक मोटा कपड़ा। वि० दे० 'कनवास'।

पलासना—क्रि० स० [देश०] सिल जाने के बाद जूते को काट छाँटकर ठीक करना। जूते का फालतू चमड़ा आदि काटना।

पलास पापड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पलास+पापड़ा] १. पलास की फली जो औषध के काम मे आती है। पलास पापड़ी। ढकपन्ना। वि० दे० 'पलास'।

पलास पापड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पलास+पापड़ी] दे० 'पलास पापड़ा'।

पलाहना†—संज्ञा पुं० [सं० पलायन] पीछे की ओर हटना। भय, आकस्मिक आघात से पीछे भागना। पलायन करना। उ०—मुख जोवइ दीवाधरी पाछउ करइ पलाह। मारू दीठी सास विण मोटी मेल्हइ धाह।- ढोला०, दू० ६०६।

पलिंजो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जिसके दानों को दुर्भिक्ष के दिनों में अकसर गरीब लोग खाते हैं।

पलिक—वि० [सं०] जो तोल में एक पल हो। एक पल या पल भर (कोई पदार्थ)।

पलिका¹—संज्ञा पुं० [सं० पर्यंक, पल्यङ्क, प्रा० पलिअंक, पल्लंक] दे० 'पलका'। उ०—नवल बाल पलिका परी, पलक न लागत नैन।—मति० ग्रं०, पृ० ३०४।

पलिका²—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेल निकालने की डाँड़ीदार बेलिया। पली।

विशेष—सम्वत् १००३ के सियादानी शिलालेख में यह शब्द आया है। वि० दे० 'प्राणक'।

पलिक्नी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो पहली ही बार गाभिन हुई हो।

पलिक्नी²—वि० (स्त्री) जिसके बाल पक गए हों। बुढ्ढी (वैदिक)।

पलिघ—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँच का घड़ा। करावा। २. घड़ा। ३. प्रकार। चारदीवारी। ४. गोपुर। फाटक। ५. अगरी या ब्योड़ा। अर्गल। दे० 'परिघ'। ६. गोशाला। गोगृह (को०)।

पलितंकरण—संज्ञा पुं० [सं० पलितङ्करण] पलित करनेवाला। श्वेत बनानेवाला (को०)।

पलित¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पलिता] १ वृद्ध। बुड्ढा। २. पका हुआ (केश)। सफेद (बाल)। उ०—पलित वृद्ध के शीश पर सो तो पलित न पेख। गई जवानी भजन बिन बानी परी विशेष।—राम० धर्म०, पृ० ७७।

पलित²—संज्ञा पुं० १. सिर के बालों का उजला होना। बाल पकना। २. वैद्यक के अनुसार एक क्षुद्र रोग जिसमें क्रोध, शोक और श्रम के कारण शारीरिक अग्नि और पित्त सिर पर पहुँचकर वहाँ के बालों को वृद्ध होने के पहले उजला कर देते हैं। ३. शैलज। भूरि छरीला। ४. ताप। गरमी। ५. कर्दम। कीचड़। ६ गुग्गुल। ७. मिर्च। ८. केश पाश (को०)।

पलितमह—संज्ञा पुं० [सं०] तगर। गुलचाँदनी।

पलितो—वि० [सं० पलितिन्] जिसको पलित रोग हुआ हो। पलित रोगयुक्त। पके बालोंवाला।

पलिया—संज्ञा पुं० [देश०] पशुओं का एक रोग जिसमें उनका गला फूल जाता है। घटेरुआ।

पलिहर†—संज्ञा पुं० [सं० परिहर (= छोड़ देना, बचा देना, बचा रखना)] वह खेत जिसमें चैती फसल में कोई जिस बोने के लिये अगहनी या भदई फसल में कुछ न बोया जाय और जो केवल जोतकर छोड़ दिया जाय। वह खेत जो बरसात में बिना कुछ बोए केवल जोतकर छोड़ दिया गया हो। चौमासा।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—रखना।

विशेष—ईख, शकरकद, गेहूँ, अफीम, आदि बोने के लिये प्राय. ऐसा करते हैं। अन्य धान्यो के लिये बहुत कम पलिहर छोड़ते हैं।

पली—संज्ञा स्त्री० [सं० पलिघ] तेल, घी, आदि द्रव पदार्थों को बड़े बरतन से निकालने का लोहे का उपकरण। इसमें छोटी करछी के बराबर एक कटोरी होती है जो एक खड़ी धुंडी से जुड़ी होती है।

मुहा०—पली पली जोड़ना = थोड़ा थोड़ा करके संचय या संग्रह करना। पैसा पैसा जोड़कर धन एकत्र करना। उ०—मियाँ जोड़े पली पली खुदा लुढ़ावें कुप्पा।—(कहावत)।

पलीत¹—संज्ञा पु० [सं० प्रेत। मि०फा० पलीद] भूत। प्रेत। शैतान।

पलीत²—वि० [फा० पलीद] १. दुष्ट। पाजी। २ धूर्त। चालाक। काइयाँ। ३. घृणास्पद। गदा। अपवित्र। निम्न। उ०—देव पितर इन सूं डरै, रसक तरै किण रीत। हेम रजत पातर हरै, पातर करै पलीत।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४।

पलीता¹—संज्ञा पु० [फा० पलीतह्] १. बत्ती के आकार में लपेटा हुआ वह कागज जिसपर कोई मंत्र लिखा हो।

विशेष—इस बत्ती की धूनी प्रेतग्रस्त लोगों को दी जाती है।

क्रि० प्र०—जलाना।—धुँधाना।—सुलगाना।

२. बरगोह (बगेह) को कूट और बटकर बनाई हुई वह बत्ती जिसमे बदूक या तोप के रजक मे आग लगाई जाती है। उ०—(क) काल तोपची, तुपक महि दारू अनय कराल। पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल। —तुलसी (शब्द०)। (ख) जलधि कामना वारि दास भरि तड़ित पलीता देत। गर्जन औ तर्जन मानो जो पहरक मे गढ़ लेत। सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—दागना।—देना।

मुहा०—पलीता चाटना = भड़ककर बल उठना। जल उठना। (क्व०)।

यौ०—पलीता दानी = पलीता देने या रखनेवाला। बंदूक या तोप के रजक की बत्ती में आग लगानेवाला। उ०—रंजकदानी, सिगहा, तुलि पलीतादानी। —प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३।

३. एक विशेष प्रकार की कपड़े की बत्ती, जिसे कहीं कहीं पनशाखे पर रखकर जलाते हैं।

क्रि० प्र०—जलाना।

पलीता²—वि० १. बहुत क्रुद्ध। क्रोध से लाल। आग बबूला।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. तेज दौड़ने या भागनेवाला। द्रुतगामी।

पलीती¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पलीता] बत्ती। छोटा पलीता।

पलीती²—संज्ञा स्त्री० [फा० पलीद] गंदगी। बुराई। अपवित्रता। उ०—बाहरों पाक कीते की होदा, जो अंदरों न गई पलीती। —संतबानी०, पृ० १५३।

पलीद¹—वि० [फा०] १. अशुचि। अपवित्र। गंदा।

मुहा०—(किसी की) मिट्टी पलीद करना = किसी का सम्मान नष्ट करना। किसी की इज्जत उतारना।

२ घृणास्पद। ३. नीच। दुष्ट। उ०—इस पलीद से बिना छेड़े कब रहा जाता था।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

पलीद²—संज्ञा पुं० [सं० प्रेत, परेत हिं० परीत, पलीत] भूत। प्रेत।

पलुआ¹—संज्ञा पु० [देश०] सन की जाति का एक पौधा।

पलुआ†²—संज्ञा पुं० [हिं० पलना+उआ (प्रत्य०)] पालतू। पाला हुआ।

पलुहना(पु)**†**—क्रि० अ० [सं० पल्लव] पल्लवित होना। पत्रयुक्त होना। हरा भरा होना। उ०—(क) मोर होत तब पलुह सरीरू। पाय घुमरहा सीतल नीरू।—जायसी (शब्द०)। (ख) पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर ऋतु पाई।—तुलसी (शब्द०)।

पलुहाना(पु)**†¹**—क्रि० अ० [हिं० पलुहना] पल्लवित होना। पलुहना। उ०—जस भुइँ दहि असाढ़ पलुहाई। परहिं बूँद औ सोंधि बसाई।—जायसी ग्रं०, पृ० १८७।

पलुहाना(पु)**†²**—क्रि० अ० [हिं० पलुहना] पल्लवित करना। हरा भरा करना। उ०—कबहुँक वपि राघव आवहिंगे। विरह अगिनि जरि रही लता ज्यों कृपादृष्टि जल पलुहावहिंगे। —तुलसी (शब्द०)। (ख) कठ लाइ कै नारि मनाई। जरी जो बेलि सीचि पलुहाई।—जायसी ग्रं०, पृ० १८९।

पलूखना—क्रि० स० [हिं० पलना] देना। (दल्लाल)।

पलेक—क्रि० वि० [सं० पल + हिं० एक] एक पल। क्षण भर। जरा सी देर। उ०—भारे दुख सारे ये बिलावेंगे पलेक माँझ प्यारी कहि मोको प्यार करिकै बुलावेगे।—नट०, पृ० १८।

पलेट—संज्ञा स्त्री० [अं० प्लेट] १. लंबी पट्टी। पटरी। २. कपड़े की वह पट्टी जो कोट, कुरते आदि में नीचे की ओर

उनके किसी विशेष अंश को बड़ा या सुंदर बनाने के लिये लगाई जाय। पट्टी। जैसे, कुरते का पलेट, कमीज का पलेट।

पलेटन—संज्ञा पुं० [अं० प्लेटन] छापे के यंत्र में लोहे का वह चिपटा भाग जिसके दबाव से कागज आदि पर अक्षर छपते हैं।

पलेटना†—क्रि० स० [देश०] पहनाना। उ०—छूटै खेटाँ मोख पद, माल पलेटा रम।—रा० रू०, पृ० ४३।

पलेड़नाⓅ†—क्रि० स० [सं० प्रेरणा] ढकेलना। धक्का देना। उ०—तू अलि कहा परयो केहिं पैंड़े। या आदर पर अजहूँ बैठो टरत न सूर पलेड़े।—सूर (शब्द०)।

पलेथन—संज्ञा पुं० [सं० परिस्तरण (=लपेटना)] १. वह सूखा आटा जिसे रोटी बेलने के समय इसलिये लोई पर लपेटते और पाटे पर बखेरते हैं कि गीला आटा हाथ या बेलन आदि में न चिपके। परथन।

क्रि० प्र०—निकालना।—लगाना।

मुहा०—पलेथन निकलना = (१) खूब मार पड़ना या खाना। भुरकुस निकलना। कचूमर निकलना। (२) परेशान होना। तंग होना। हार जाना। **पलेथन निकालना** = (१) खूब मारना या ठोंकना। पीटना। कचूमर निकालना। (२) तंग करना। परेशान करना। बुरा हाल करना।

२. किसी हानि या अपकार के पश्चात् उसी के संबंध से होनेवाला अनावश्यक व्यय। किसी बड़े खर्च के पीछे होनेवाला छोटा पर फजूल खर्च। जैसे,—माल तो चोरी गया ही था, तहकीकात कराने में १००) और पलेथन लगा।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

पलेनर—संज्ञा पुं० [अं० प्लेनर] काठ का एक वह छोटा चिपटा टुकड़ा जिससे प्रेस में कसे हुए फरमे के उभरे हुए टाइपों को बराबर करते हैं।

विशेष—काठ के इस समतल टुकड़े को कसे फरमे के ऊपर रखकर काठ के हथौड़े से धीरे धीरे कई बार ठोंकते हैं जिससे उभरे हुए अक्षर दबकर बराबर हो जाते हैं।

पलेना—संज्ञा पुं० [अं० प्लेन] दे० 'पलेनर'।

पलेव—संज्ञा पुं० [देश०] १. पलिहर की वह सिंचाई या छिड़काव जिसे बोने के पहले तरी की कमी के कारण करते हैं। हलकी सिंचाई। पटकन। २ जूस। शोरबा। ३. आटा या पिसा हुआ चावल जो शोरबे में उसे गाढ़ा करने के लिये डाला जाता है। जहाँ मसाला नहीं या कम डालना होता है वहाँ इसको डालकर काम चलाते हैं।

पलोटना¹—क्रि० स० [सं० प्रलोठन] १. पैर दबाना या दाबना। उ०—(क) तीन लोक नारी को कहियत जो दुर्लभ बल बीर। कमला हूँ नित पायँ पलोटत हम तो हैं आभीर।—सूर (शब्द०)। (ख) ते दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरु पद कमल पलोटत प्रीते।—तुलसी (शब्द०)। †२. दे० 'पलटना'।

पलोटना²—क्रि० अ० [हिं० पलटना] १. कष्ट से लोटना पोटना। तड़फड़ाना। उ०—सेज पड़ी सफरी सी पलोटत ज्यों ज्यों घटा घन की गरजै री।—पद्माकर (शब्द०)। २. लोटना पोटना। लोट पोट करना।

पलोथन—संज्ञा पुं० [सं० परिस्तरण, हिं० पलेथन] दे० 'पलेथन'।

पलोवनाⓅ—क्रि० स० [सं० प्रलोठन] १. पैर दबाना। पैर मलना। उ०—चरण कमल नित रमा पलोवै। चाहत नेक नैन भरि जोवै।—सूर (शब्द०)। २. सेवा करना। किसी को प्रसन्न करने का उपाय करना। उ०—प्रथमै चरण कमल को ध्यावै। तासु महातम मन में लावै। गंगा परसि इनहिं को भई। शिव शिवता इन ही सों लई। लक्ष्मी इनको सदा पलोवै। बारंबार प्रीति को जोवै।—सूर (शब्द०)।

पलोसनाⓅ—क्रि० स० [सं० स्पर्शन, हिं० परसना] १. धोना। उ०—अड़सठ तीरथ निंदक न्हाय। देह पलोसे मैल न जाय। कबीर (शब्द०)। २. मीठी मीठी बातें करके गाहक को ढंग पर लाना। तरह तरह की बातें करके गाहक या शिकार फँसाना। (दलाल)।

पलौⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव] किसलय। कोंपल। पल्लव। उ०—दए न लेइ दग ओर करि अंजन। पलौ ओट जनु फरकहिं खंजन।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० १६७।

पल्टन—संज्ञा स्त्री० [अ० प्लैटून] दे० 'पलटन'।

पल्टा—संज्ञा पुं० [हिं० पलटना] दे० 'पलटा'।

पल्थी—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्यस्ति, प्रा० पल्लत्थि] दे० 'पलथी'।

पल्यंक—संज्ञा पुं० [सं० पल्यङ्क] पलंग। खाट।

पल्यंग—संज्ञा पुं० [सं० पल्यङ्क] दे० 'पल्यंक'। उ०—राज बचन सुणि राज कुँमार पल्यंग छोड़ि धरती पडी नारि।—बी० रासो, पृ० ५०।

पल्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की पीठ पर बिछाने की गद्दी। पलान।

पल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्न रखने का स्थान। बखार। कोठार। २. पाल जिसमें पकने के लिये फल रखे जाते हैं।

पल्लड़†—संज्ञा पुं० [देश०] प्रवाह। झोंका। थपेड़ा। उ०—लहरों के एक पल्लड़ को चीरा, उसपर के झाग को बेधा कि दूसरा सामने। शब्दमय प्रवाह की निरर्थक भाषा मानों बार बार कहती थी, बचो बचो।—झाँसी०, पृ० २६५।

पल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १. नए निकले हुए कोमल पत्तों का समूह या गुच्छा। टहनी में लगे हुए नए नए कोमल पत्ते जो प्रायः लाल होते हैं। कोंपल। कल्ला। उ०—नव पल्लव भए विटप अनेका।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—किशलय। किसलय। नवपत्र। प्रवाल। पल्ल। किसल।

विशेष—हाथ के वाचक शब्दों के साथ 'पल्लव' का समास होने से इसका अर्थ 'उँगली' होता है। जैसे, करपल्लव, पाणिपल्लव।

२. हाथ में पहनने का कड़ा या कंकण। ३. नृत्य में हाथ की एक

विशेष प्रकार की स्थिति। ४. विस्तार। ५. बल। ६. चपलता। चंचलता। ७. आल का रंग। अलक्तक। ८. पल्लव देश। ६. पल्लव देश का निवासी। १०. शृंगार (को०)। ११. वन (को०)। १२. कली (को०)। १३. घास का नया कनखा (को०)। १४ किनारा। छोर, विशेषतः वस्त्रादि का (को०)। १५. सविलास क्रीड़ा (को०)। १६. कामासक्त या लपट व्यक्ति (को०)। १७. कथाप्रबंध (को०)। १८. दक्षिण का एक राजवंश जिसका राज्य किसी समय उड़ीसा से लेकर तुंगभद्रा नदी तक फैला था।

विशेष—कुछ लोगों का मत है कि ये पह्लव ही थे और कुछ लोग कहते हैं कि यह स्वतंत्र राजवंश था। वराहमिहिर के अनुसार पल्लव दक्षिणपश्चिम में बसते थे। अशोक के समय में गुजरात में पल्लवों का राज्य था।

पल्लवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की मछली। २. अंकुर। अँखुवा (को०)। . वेश्यापति। वारवधू का यार (को०)। ४. कामासक्त या लंपट व्यक्ति (को०)। ५. अशोक का वृक्ष (को०)।

पल्लवग्राहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साधारण कार्यों में लगा रहना। ऊपरी चीजों में व्यस्त होना। २. अपूर्ण या अधूरा ज्ञान। ऊपरी ज्ञान (को०)।

पल्लवग्राहि पांडित्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जानकारी जो पूरी न हो। अधूरा ज्ञान (को०)।

पल्लवग्राही—संज्ञा पुं० [सं० पल्लवग्रहिन्] किसी विषय का सम्यक् ज्ञान न रखनेवाला। वह जो किसी विषय का पूरा या यथेष्ट ज्ञान न रखता हो। रहस्य से अनभिज्ञ केवल ऊपरी या मोटी मोटी बातों का जाननेवाला।

पल्लवद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक का पेड़।

पल्लवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ विशेष विस्तार। अति विस्तार। २. निरर्थक कथन (को०)।

पल्लवना(पु)—क्रि० अ० [सं० पल्लव+हिं० ना (प्रत्य०)] पल्लवित होना। पत्ते फेंकना। पनपना। उ०—(क) सुमन बाटिका बाग बन विपुल बिहंग निवास। फूलत फलत सु पल्लवत सोहत पुर चहुँपास।—तुलसी (शब्द०)।

पल्लवांकुर—संज्ञा पुं० [सं० पल्लवांकुर] डाली। शाखा (को०)।

पल्लवाद—संज्ञा पुं० [सं०] हिरण। हिरन।

पल्लवाधार—संज्ञा पुं० [सं०] शाखा। डाली।

पल्लवापीडित—वि० [सं०] कलियों से व्याप्त (को०)।

पल्लवास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

पल्लवाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] तालीसपत्र।

पल्लविक—संज्ञा पुं० [सं०] कामी। कामुक (को०)।

पल्लविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चादर (को०)।

पल्लवित[1]—वि० [सं०] १. पल्लवयुक्त। जिसमें नए नए पत्ते निकले या लगे हों। २. हरा भरा। लहलहाता। ३. विस्तृत। लंबा चौड़ा। ४. आल में रँगा हुआ। ५. रोमांचयुक्त। जिसके रोंगटे खड़े हों। उ०—कहि प्रनाम कछु कहन लिय पै भय शिथिल सनेहु। थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देहु।—तुलसी (शब्द०)।

पल्लवित[2]—संज्ञा पुं० आल का रग। लाक्षारंग (को०)।

पल्लवी[1]—संज्ञा पुं० [सं० पल्लविन्] वृक्ष। पेड़।

पल्लवी[2]—वि० [वि० स्त्री० पल्लविनी] जिसमें पल्लव हो। पल्लवयुक्त।

पल्ला[1]—क्रि० वि० [सं० पर या पार (=दूर या छोर)+ला (प्रत्य०)] १. दूर। २. दूरी।

पल्ला[2]—संज्ञा सं० [सं० पल्लव] १. किसी कपड़े का छोर। आँचल। दामन। उ०—एक बड़े से कुत्ते ने, जो इस बाग का रखवाला था, लपककर उसका पल्ला पकड़ लिया।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

मुहा०—पल्ला छूटना=पीछा छूटना। छुटकारा मिलना। निष्कृति मिलना। छुटकारा पाना। पल्ला छुड़ाना=पीछा छुड़ाना। निष्कृति पाना। पल्ला पकड़ना किसी के लिये किसी को पकड़ना। पल्ला पसारना=किसी से कुछ माँगना। आँचल पसारना। दामन फैलाना। पल्ला लेना=शोक करना। किसी की मृत्यु पर रोना। (स्त्रियाँ)। पल्ले पड़ना=प्राप्त होना। मिलना। हाथ लगना। (किसी के) पल्ले बँधना=(१) ब्याही जाना। हाथ पकड़ना। (२) जिम्मे किया जाना। पल्ले बाँधना=(१) जिम्मे लेना। (२) गाँठ बाँधना। (३) ब्याहना। हाथ पकड़ना। पल्ले से बाँधना=(१) जिम्मे लगाना। (२) ब्याह देना। हाथ पकड़ा देना।

२. दूरी। जैसे,—इनका घर यहाँ से पल्ले पर है। उ०—दो सौ कोस के पल्ले तक बरफीले पहाड़ नजर पड़ते हैं।—(शब्द०) †३. पास। अधिकार में। जैसे—उसके पल्ले क्या है? ४. तरफ। ओर।

पल्ला[3]—संज्ञा पुं० [सं० पटल] १. दुपल्ली टोपी का एक भाग। दुपल्ली टोपी का आधा भाग। २. चद्दर वा गोन जिसमें अन्न बाँधकर ले जाते हैं।

यौ०—पल्लेदार।

३. किवाड़। पटल। ४. पहल। ५. तीन मन का बोझ। ६. बोरा। ७. धोती का एक फर्द। ८. रजाई या दुलाई आदि के ऊपर का कपड़ा। ९. दरवाजे आदि मे लगनेवाला लकड़ी का लबाचौड़ा टुकड़ा। जैसे, किवाड़ का पल्ला।

पल्ला[4]—संज्ञा पुं० [सं० पल; फा० पल्लह्] तराजू में एक ओर का टोकरा या डलिया। पलड़ा।

मुहा०—पल्ला झुकना=पक्ष बलवान् होना। पल्ला भारी होना=पक्ष बलवान् होना। भारी पल्ला=(१) बलवान् पक्ष। (२) ऐसा पक्ष जिसपर बड़े बोझ हो।

पल्ला[5]—संज्ञा पुं० [सं० फल] कैंची के दो भागों में एक भाग।

पल्ला[2]—वि० [फ़ा० पल्ला] दे० 'परला' ।

पल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पल्ली' (को०) ।

पल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा गाँव । पुरा । पुरवा । २. गृह-गोधा । छिपकिली (को०) ।

पल्लिवाह—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग की एक घास ।

पल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा गाँव । पुरवा । खेड़ा । २. गाँव । उ०—उर कृत मल्ली माल जयति ब्रज पल्ली भूषन ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७५४ । ३. कुटी । पर्णशाला । ४. फैलनेवाली लता (को०) । ५. निवास । गृह (को०) । ६. छिपकली ।

यौ०—पल्लीपतन = शरीर के किसी अंग पर छिपकली गिरने के आधार पर शुभाशुभ विचार ।

पल्लू†—संज्ञा पुं० [हिं० पल्ला] १. आँचल । छोर । दामन । २. चौड़ी गोट । पट्टा ।

पल्लेⓅ†—वि० [हिं०] दे० १. 'परला' । २. दे० 'पल्ला' ।

पल्लेदार—संज्ञा पुं० [हिं० पल्ला + फा० दार] १. वह मनुष्य जो गल्ले के बाजार में दूकानों पर गल्ले को गाँठ में बाँधकर दूकान से मोल लेनेवालो के घर पर पहुँचा देता है । अनाज ढोनेवाला मजदूर । २. गल्ले की दूकान पर वा कोठियों में गल्ला तौलनेवाला आदमी । बया ।

पल्लेदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पल्लेदार+ई (प्रत्य०)] १. गल्ले की दूकान वा कोठियों से गल्ले का बोझ उठाकर खरीदार के यहाँ पहुँचाने का काम । पल्लेदार का काम । २. अनाज की दूकान पर अनाज तोलने का काम ।

पल्लौ[1]—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव] पल्लव ।

पल्लौ[2]—संज्ञा पुं० पल्ला । चद्दर या गोन जिसमें अनाज बाँधते हैं । उ०—पल पल्लौ भरि हन लिया तेरा नाज उठाय नैन हमलन दं अरे दरस मजूरी पाय । —रसनिधि (शब्द०) ।

पल्वल—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा तालाब या गड्ढा ।

पल्वलावास—संज्ञा पुं० [सं०] कछुआ ।

पवंग—संज्ञा पुं० [सं० प्लवङ्ग] अश्व । घोड़ा । उ०—ऊमर ऊतावलि करई पल्लाणियाँ पवंग । खुरसाणी सूधा खगँग चढिया दल चतुरंग ।—ढोला०, दू० ६४० ।

पवंगम—संज्ञा पुं० [सं० प्लवङ्गम] एक छंद । दे० 'प्लवंगम' । उ०—पवंगम में (आत्मा) बिरहिनी की विरह बेदना से पुकार है । —सुंदर० ग्रं० (भू०), भा० १. पृ० ४९ ।

पवंगा—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छंद । उ०—दूजे दिन दरबार सुजान सुआइकै । देखत ही मनसूर भहा सुख पाइकै । खिलवति करी नवाब जनाइ वकील सों । मसलति बूझन काज सुजान सुसील सों । —सूदन (शब्द०) ।

पवँरिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पँवरि' ।

पवँरिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पँवरिया', 'पौरिया' ।

पवँरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पाँवड़ी', 'पाँवरी' ।

पव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोबर । २. वायु । हवा । ३. अनाज की भूसी साफ करना । ओसाना । बरसाना ।

पव[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पौ' ।

पवई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जिसकी छाती खैरे रंग की, पीठ खाकी और चोंच पीली होती है ।

पवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । हवा ।

मुहा०—पवन का भूसा होना = उड़ जाना । न ठहरना । कुछ न रहना । उ०—माधो जू सुनिए ब्रज ब्योहार । मेरो कह्यो पवन को भुस भयो गावत नंदकुमार । —सूर (शब्द०) ।

२. कुम्हार का आँवा । ३. जल । पानी । ४. श्वास । साँस । ५. अनाज की भूसी अलग करना । ६. प्राणवायु । ७. विष्णु । ८. पुराणानुसार उत्तम मनु के एक पुत्र का नाम ।

पवनⓅ[2]—वि० शुद्ध । पवित्र । पावन ।

पवनअस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० पवनास्त्र] वायु देवता का अस्त्र । कहते हैं, इसके चलाने से बड़े वेग से वायु चलने लगती है ।

पवनकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान । उ०—प्रनवौं पवनकुमार खल बन पावक ज्ञानघन । —मानस, १।१७ । २. भीमसेन ।

पवनचक्की—संज्ञा स्त्री० [सं० पवन + हिं० चक्की] हवा के जोर से चलनेवाली चक्की या कल । वह चक्की या कल जो हवा के जोर से चलती है ।

विशेष—प्रायः चक्की पीसने अथवा कुएँ आदि से पानी निकालने के लिये यह उपाय करते हैं कि चलाई जानेवाली कल का संयोग किसी ऐसे चक्कर के साथ कर देते हैं जो बहुत ऊँचाई पर रहता है और हवा के झोंकों से बराबर घूमता रहता है । उस चक्कर के घूमने के कारण नीचे की कल भी अपना काम करने लगती है ।

पवनचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] चक्कर खाती हुई जोर की हवा । चक्रवात । बवंडर ।

पवनज—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान् । २. भीमसेन ।

पवनतनय—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान । उ०—कह हुए मौन शिव, पवनतनय में भर विस्मय । —अपरा, पृ० ४१ । २. भीमसेन ।

पवननंद—संज्ञा पुं० [सं० पवननन्द] १. हनुमान् । २. भीम ।

पवननंदन—संज्ञा पुं० [सं० पवननंदन] १. हनुमान् । २. भीमसेन ।

पवनपति—संज्ञा पुं० [सं०] वायु के अधिष्ठाता देवता । उ०—अखिल ब्रह्मांडपति तिहूँ भुवनपति नीरपति पवनपति अगमबानी ।—सूर (शब्द०) ।

पवनपरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिषियों की एक क्रिया जिसके अनुसार वे व्यास पूनों अर्थात् आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन वायु की दिशा को देखकर ऋतु का भविष्य कहते हैं ।

पवनपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान् । २. भीमसेन ।

पवनपूतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पवनपुत्र] दे० 'पवनपुत्र' । उ०—

सेवक जाके लषन से पवनपूत रनधीर। —तुलसी० ग्रं०, पृ० ६०।

पवनबाण—संज्ञा पुं० [सं०] वह बाण जिसके चलाने से हवा वेग से चलने लगे। पवन अस्त्र।

पवनभुक्—संज्ञा पुं० [सं० पवनभुज्] सर्प। साँप [को०]।

पवनवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

पवनव्याधि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] वायुरोग।

पवनव्याधि[2]—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के सखा उद्धव का एक नाम।

पवनसंघात—संज्ञा पुं० [सं० पवनसङ्घात] दो ओर से वायु का आकर आपस में जोर से टकराना जो दुर्भिक्ष और दूसरे राजा के आक्रमण का लक्षण माना जाता है।

पवनसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान्। २. भीमसेन।

पवना†—संज्ञा पुं० [देश०] झरना। पौना। दे० 'झरना' २।

पवनात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान्। २. भीमसेन। ३. अग्नि।

पवनाल—संज्ञा पुं० [सं०] पुनेरा नाम का धान्य।

पवनाश—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

पवनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। भुजंग।

पवनाशनाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. गरुड़। २ मोर।

पवनाशी—संज्ञा पुं० [सं० पवनाशिन्] १. वह जो हवा खाकर रहता हो। २. साँप।

पवनास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का अस्त्र। कहते हैं, इसके चलाने से बहुत तेज हवा चलने लगती थी।

पवनाहत—वि० [सं०] वातरोगी। वात रोग से पीड़ित [को०]।

पवनि(पु)—वि० [सं० पावन] पवित्र करनेवाली। पावनी। पावन। पवित्र। उ०—भुवन सुख करनि, भव सरिता तरनि, गावत तुलसिदास कीरति पवनि। —तुलसी (शब्द०)।

पवनी‡[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाना (= प्राप्त करना)] गावों में रहनेवाली वह छोटी प्रजा या नीच जाति जो अपने निर्वाह के लिये क्षत्रियों, ब्राह्मणों अथवा गाँव के दूसरे रहनेवालों से नियमित रूप से कुछ पाती है। जैसे, नाऊ, बारी, भाट धोबी, चमार, कुड़िहारी आदि।

पवनी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पौना'।

पवनेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] बकायन।

पवनोंबुज—संज्ञा पुं० [सं० पवनोम्बुज] फालसा।

पवन्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पवन] दे० 'पवन'। उ०—बहै सीत मंदं सुगंधं पवन्नं।—ह० रासो, पृ० ३६।

पवमान—संज्ञा पुं० [सं०] १. पवन। वायु। समीर। उ०—छीर बही भूतल नदी, त्रिविध चले पवमान। हेमवती सुत जाइया जाहिर सकल जहान। —प० रासो, पृ० १३। २. स्वाहा देवी के गर्भ से उत्पन्न अग्नि के एक पुत्र का नाम। ३. गार्हपत्य अग्नि। ४. चंद्रमा का एक नाम। ५. ज्योतिष्टोम यज्ञ में गाया जानेवाला एक प्रकार का स्तोत्र।

पवर†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पँवरि'।

पवर[2]—वि० [सं० प्रवर] दे० 'प्रवर'।

पवरिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पौरिया'।

पवरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पँवरि'।

पवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वर्णमाला का पाँचवाँ वर्ग जिसमें प, फ, ब, भ, म ये पाँच अक्षर हैं। वर्णमाला में प से लेकर म तक के अक्षर।

पवाँड़ा†—संज्ञा पुं० [सं०] 'पँवाड़ा'।

पवाँर—संज्ञा पुं० [देश०] १. पमार। पवाड़। चकवड़। २. क्षत्रियों की एक शाखाविशेष। दे० 'परमार'।

पवाँरना†—क्रि० स० [सं० प्रवारण] १. फेंकना। गिराना। २. खेत में छितराकर बीज बोना।

पवाँरा—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाद] दे० 'पँवाड़ा'।

पवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पावँ+आई (स्वा० प्रत्य०)] १. एक फर्द जूता। एक पैर का जूता। २. चक्की का एक पाट।

पवाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बवंडर। तीव्र पवनचक्र [को०]।

पवाड़†[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रकार] भाँति। तरह। उ०—भाजै कोई रे भिडि भारथ, साम्हौं सूरा सत जिणि हारै। दुहीं पवाड़ मुजम ताहरौं, कै मरसी कै मारै। —सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८८४।

पवाड़[2]—संज्ञा पुं० [देश०] चकवड़।

पवाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाद] दे० 'पँवाड़ा'।

पवाना†—क्रि० स० [हिं० पाना (= भोजन करना, का सकर्मक रूप)] १. खिलाना। भोजन कराना। उ०—सहित प्रीति ले असन बनावै। परसि दूरि ते नाहि पवावै। —रघुनाथ (शब्द०)। २. प्राप्त कराना।

पवार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परमार'।

पवारना—क्रि० स० [सं० प्रवारण] दे० 'पवाँरना'। उ०—या हीं नर देही को प्राण छोड़ देतें कैसे जारि वार करिके पवार दीजियतु है।—ठाकुर०, पृ० ३७।

पवारा—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाद] दे० 'पँवाड़ा'।—उ०—कहूँ नाच कहूँ पेखन होई। कहूँ पवारा गावत कोई।—माधवानल०, पृ० १०५।

पवारी—संज्ञा स्त्री० [ ] नलिका नामक गंधद्रव्य।

पवि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वज्र। २. बिजली। गाज। ३. वाक्य। ४. बाण या भाला की नोक (को०)। ५. तीर। बाण (को०)। ६. अग्नि। ७. थूहर। सेहुँड़। ८. मार्ग। रास्ता। (डिं०)। ९. चक्का या पहिए का टायर (को०)।

पवित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च।

पवित[2]—वि० पवित्र। शुद्ध।

पवित्ता—वि० [सं० पवितृ] शुद्ध करनेवाला। पवित्र करनेवाला (को०)।

पवित्ताईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० पवित्रता] शुद्धि। सफाई। पवित्रता।

पवित्तर†—वि० [सं० पवित्र] दे० 'पवित्र'।

पवित्र[1]—वि० [सं०] १. जो गंदा मैला या खराब न हो। शुद्ध। निर्मल। साफ।

पवित्र[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेंह। बारिश। वर्षा। २. कुशा। ३. ताँबा। ४. जल। ५. दूध। ६. घर्षण। रगड़। ७. अर्घा। अर्घपात्र। ८. यज्ञोपवीत। जनेऊ। ९. घी। १०. शहद। ११. कुशा की बनी हुई पवित्री जिसे श्राद्धादि में अँगुलियों में पहनते हैं। १२. विष्णु। १३. महादेव। १४. तिल का पौधा। १५. पुत्रजीवा का वृक्ष। १६. कार्तिकेय का एक नाम।

पवित्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुशा। २. दौने का पेड़। ३. गूलर का पेड़। ४. पीपल का पेड़। ५. जाला। ६. चलनी जिससे आँटा आदि चालकर साफ करते हैं (को०)। ७. क्षत्रिय का यज्ञोपवीत।

पवित्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्र या शुद्ध होने का भाव। शुद्धि। स्वच्छता। पावनता। सफाई। पाकीजगी।

पवित्रधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] जो। यव।

पवित्रपाणि—वि० [सं०] १. हाथ में कुश रखनेवाला। २. पवित्र हाथोंवाला (को०)।

पवित्रवति—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रौंच द्वीप की एक वनस्पति।

पवित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तुलसी। २. एक नदी का नाम। ३. हलदी। ४. अश्वत्थ। पीपल। ५. रेशम के दानों की बनी हुई रेशमी माला जो कुछ धार्मिक कृत्यों के समय पहनी जाती है। ६ श्रावण के शुक्ल पक्ष की एकादशी।

पवित्रात्मा—वि० [सं० पवित्रात्मन्] जिसकी आत्मा पवित्र हो। शुद्ध अन्तःकरणवाला। शुद्धात्मा।

पवित्रारोपण—संज्ञा पुं० [सं०] श्रावण शुक्ल १२ को होनेवाला वैष्णवों का एक उत्सव जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण को सोने, चाँदी, तांबे या सूत आदि का यज्ञोपवीत पहनाया जाता है।

पवित्रारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पवित्रारोपण'।

पवित्राश—संज्ञा पुं० [सं०] सन का बना हुआ डोरा, जो प्राचीन काल में बहुत पवित्र माना जाता था।

पवित्रित—वि० [सं०] शुद्ध किया हुआ। निर्मल किया हुआ।

पवित्री[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पवित्र (=कुश)] कुश का बना हुआ एक प्रकार का छल्ला जो कर्मकांड के समय अनामिका में पहना जाता है।

पवित्री[2]—वि० [सं० पवित्रिन्] १. पवित्र करनेवाला। २. पवित्र। शुद्ध (को०)।

पविद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

पविधर—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र धारण करनेवाले, इंद्र।

पवीनस—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद के अनुसार एक प्रकार के असुर जिनके विषय में लोगों का विश्वास था कि ये स्त्रियों का गर्भ गिरा देते हैं।

पवीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. हल की फाल। २. अस्त्र। हथियार। ३. वज्र। पवि।

पवेरना†—क्रि० स० [हिं० पवारना] छितराकर बीज बोना।

पवेरा†—संज्ञा पुं० [हिं० पवेरना] वह बोआई जिसमें हाथ से छितरा या फेंककर बीज बोया जाय।

पव्य—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञपात्र।

पव्वयⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पर्वत, प्रा० पव्वय] पर्वत। पहाड़। उ०—धरे कर पव्वय गोप सहाय, परे जलधार तड़ित निहाय।—पृ० रा०, २। ३६२।

पशम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पश्म] १. बहुत बढ़िया और मुलायम ऊन जो प्रायः पंजाब, कश्मीर और तिब्बत की बकरियों से उतरता है और जिससे बढ़िया दुशाले और पशमीने बनते हैं।

विशेष—कश्मीर, तिब्बत और नैपाल आदि ठंढे देशों की बकरियों में उनके रोएँ के नीचे की तह में और एक प्रकार के बहुत मुलायम, चिकने और बारीक रोएँ होते हैं जिन्हें पशम कहते हैं। इसका मूल्य बहुत अधिक होता है और प्रायः बढ़िया दुशाले, चादरें और जामेवार आदि बनाने में इसका उपयोग होता है। विशेष—दे० 'ऊन'।

२. पुरुष या स्त्री की मूत्रेंद्रिय पर के बाल। उपस्थ पर के बाल। शष्प। झाँट।

मुहा०—**पशम उखाड़ना** = (१) व्यर्थ समय नष्ट करना। (२) कुछ भी हानि या कष्ट न पहुँचा सकना। **पशम न उखड़ना** = (१) कुछ भी काम न हो सकना। (२) कुछ भी कष्ट या हानि न होना। **पशम पर मारना** = बिलकुल तुच्छ समझना। **पशम न समझना** = कुछ भी न समझना। पशम के बराबर भी न समझना।

३. बहुत ही तुच्छ वस्तु।

पशमीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० पश्मीनह्] १. दे० 'पशम'। २. पशम का बना हुआ कपड़ा या चादर आदि।

पशव्य[1]—वि० [सं०] १. पशु संबंधी। २. पशु के लिये हितकर। ३. नृशंस। क्रूर। पशुतापूर्ण (को०)।

पशव्य[2]—संज्ञा पुं० १. गोष्ठ। गोवाट। अहार। २. पशुसमूह (को०)।

पशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. लांगूलविशिष्ट चतुष्पद जंतु। चार पैरों से चलनेवाला कोई जंतु जिसके शरीर का भार खड़े होने पर पैरों पर रहता हो। रेंगनेवाले, उड़नेवाले, जल में रहनेवाले जीवों तथा मनुष्यों को छोड़ कोई जानवर। जैसे, कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, ऊँट, बैल, हाथी, हिरन, गीदड़, लोमड़ी, बंदर इत्यादि।

विशेष—भावारत्न में लोम और लांगूल (रोएँ और पूँछ) वाले जंतु पशु कहे गए हैं। अमरकोश में पशु शब्द के अंतर्गत इन जंतुओं के नाम आए हैं—सिंह, बाघ, लकड़बग्घा (तरक्षु),

सूअर, बंदर, भालू, गैंडा, भैंसा, गीदड़, बिल्ली, गोह, साही, हिरन (सब जाति के), सुरागाय, नीलगाय, खरहा, गंधबिलाव, बैल, ऊँट, बकरा, मेढ़ा, गदहा, हाथी और घोड़ा। इन नामों में गोह भी है जो सरीसृप या रेंगनेवाला है। पर साधारणतः छिपकली, गिरगिट आदि को पशु नहीं कहते।

२. जीवमात्र। प्राणी।

यौ०—पशुपति।

विशेष—शैव दर्शन और पाशुपत दर्शन में 'पशु' जीवमात्र की संज्ञा मानी गई है।

३. देवता। ४. प्रथम। ५. यज्ञ। ६. यज्ञ उदुंबर। ७. बलिपशु (को०)। ८. सदसद्विवेक से रहित व्यक्ति। मूर्ख (को०)। ९. छाग। बकरा (को०)।

पशुकर्म—संज्ञा पुं० [सं० पशुकर्मन्] यज्ञ आदि में पशु का बलिदान।

पशुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का हिरन।

पशुक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पशु की बलि। २. मैथुन (को०)।

पशुगायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की रीति से बलिदान करने में एक मंत्र जिसका बलिपशु के कान में उच्चारण किया जाता है।

पशुघात—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञपशु का वध। बलि के पशु का हनन (को०)।

पशुघ्न—वि० [सं०] पशुओं का वध करनेवाला (को०)।

पशुचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पशु के समान विवेकहीन आचरण। जानवरों की सी चाल। स्वेच्छाचार। २. मैथुन।

पशुजीवी—वि० [सं० पशुजीविन्] पशु के द्वारा जीविका चलानेवाला। पशुओं के आधार पर जीनेवाला। उ०—श्रीराम रहे सामंत काल के ध्रुव प्रकाश, पशुजीवी युग में नव कृषि संस्कृत के विकास।—ग्राम्या, पु० ५८।

पशुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पशु का भाव। २. जानवरपन। मूर्खता और औद्धत्य।

पशुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] पशु का भाव। जानवरपन।

पशुदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमार की अनुचरी एक मातृका देवी।

पशुदेवता—संज्ञा [सं०] वह देव जिनके लिये पशु का हनन किया जाय (को०)।

पशुधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. पशुओं का सा आचरण। जानवरों का सा व्यवहार। मनुष्य के लिये निंद्य व्यवहार। जैसे, स्त्रियों का जिसके पास चाहे उसके पास गमन, पुरुषों का अगम्या आदि का विचार न करना इत्यादि। (मनु०)। २. विधवा का विवाह (को०)।

पशुनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २ सिंह।

पशुप—संज्ञा पुं० [सं०] पशुपाल। गोपाल। पशुओं का पालनेवाला।

पशुपतास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव का शूलास्त्र।

पशुपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. पशुओं का स्वामी। २. जीवों का ईश्वर या मालिक। ३. शिव। महादेव। उ०—गणपति सुखदायक, पशुपति लायक सूर सहायक कौन गनै।—राम चं०, पु० ७।

विशेष—शैव दर्शन और पाशुपत दर्शन में जीवमात्र 'पशु' कहे गए हैं और सब जीवों के अधिपति 'शिव' ही परमेश्वर माने गए हैं।

४. अग्नि। ५. ओषधि।

पशुपल्वल—संज्ञा पुं० [सं०] कैवर्तमुस्तक। केवटी मोथा।

पशुपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ पशुओं को पालनेवाला। २. बृहत्संहिता के अनुसार ईशान कोण में एक देश जहाँ के निवासी पशुपालन ही द्वारा अपना निर्वाह करते हैं।

पशुपालक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पशुपालिका] वह जो पशुओं का पालन करता हो। पशु पालनेवाला।

पशुपालन—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं को रखकर उन्हीं के सहारे जीविका चलानेवाला व्यक्ति (को०)।

पशुपाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. पशुओं का बंधन। २. शैव दर्शन के अनुसार जीवों के चार प्रकार के बंधन।

पशुपासक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रतिबंध का नाम।

पशुप्रेरण—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं को हाँकना (को०)।

पशुबध—संज्ञा पुं० [सं० पशुबन्ध] यज्ञ जिसमे पशुबलि की जाय (को०)।

पशुबंधक—संज्ञा पुं० [सं० पशुबन्धक] पगहा या रस्सी जिसमे पशु को बाँधते हैं। पशुओं का बंधन (को०)।

पशुभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पशुत्व। जानवरपन। हैवानपन। २. तंत्र मे मंत्र के साधन के तीन प्रकारों मे से एक।

विशेष—साधक लोग तीन भाव मे मंत्र का साधन करते हैं—दिव्य, वीर और पशु। इनमे से प्रथम दो भाव उत्तम और पशुभाव निकृष्ट माना जाता है। जो लोग तंत्र के सब विधानो का (घृणा, आचार विचार, आदि के कारण) पूरा पूरा पालन नहीं कर सकते उनका साधन पशुभाव से समझा जाता है। तांत्रिको के अनुसार वैष्णव पशुभाव से नारायण की उपासना करते हैं क्योंकि वे मद्य मांस आदि का संपर्क नहीं रखते। कुब्जिका तंत्र में लिखा है कि जो रात को यंत्रस्पर्श और मंत्र का जप नहीं करते, जिन्हें बलिदान में संशय, तंत्र मे संदेह और मंत्र मे अक्षरबुद्धि (अर्थात् ये अक्षर हैं इनसे क्या होगा) और प्रतिमा मे शिलाज्ञान रहता है, जो देवता की पूजा बिना मांस के करते हैं, जो बार बार नहाया करते हैं उन्हें पशुभावावलंबी और अधम समझना चाहिए।

पशुमारण—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं का हनन।

पशुयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] आश्वलायन श्रौतसूत्र मे वर्णित एक यज्ञ।

पशुराज—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह।

पशुलंब—संज्ञा पुं० [सं० पशुलम्ब] एक देश का प्राचीन नाम।

पशुहरीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आम्रातक फल। आमड़े का फल।

पशू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पशु'।

पश्च—वि० [सं०] १. बाद का। पीछे का। २. पश्चिमीय [को०]।

पशेमाँ—वि० [फ़ा० पशेमान] दे० 'पशेमान'। उ०—रहे खूब मन में भो सुल्ताने जाँ हो पशेमाँ।—दक्खिनी०, पृ० ३७५।

पशेमान—वि० [फ़ा०] १. शर्मिंदा। लज्जित। २. पश्चात्ताप करनेवाला। पछतानेवाला [को०]।

पशोपेश†—संज्ञा पुं० [फ़ा० पेशोपस] आगा पीछा। सोच विचार। दुबिधा। अंदेशा। उ०—पहलवान पशोपेश में पड़े, देखा, यहाँ भी राज देना है।—काले०, पृ० ४७।

पश्चात्[1]—अव्य० [सं०] पीछे। पीछे से। बाद। फिर। अनंतर।

यौ०—पश्चादुक्ति=पुनः कथन। फिर कहना। **पश्चात्कृत**= पीछे किया या छोड़ा हुआ। **पश्चाद्घाट**=गला। गरदन। **पश्चात्ताप**। **पश्चाद्भाग**=पिछला हिस्सा। पश्चिमी भाग। **पश्चाद्भावी**। **पश्चाद्वर्ती**। **पश्चाद्वात**।

पश्चात्[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पश्चिम दिशा। प्रतीची। २. शेष। अंत। ३. अधिकार।

पश्चात्कर्म—संज्ञा पुं० [सं० पश्चात्कर्मन्] वैद्यक के अनुसार वह कर्म जिससे शरीर के बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि हो।

विशेष—ऐसा कर्म प्रायः रोग की समाप्ति पर शरीर को पूर्व और प्रकृत अवस्था में लाने के लिये किया जाता है। भिन्न भिन्न रोगों के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के पश्चात्कर्म होते हैं।

पश्चात्ताप—संज्ञा पुं० [सं०] वह मानसिक दुःख या चिंता जो किसी अनुचित काम को करने के उपरांत उसके अनौचित्य का ध्यान करके अथवा किसी उचित या आवश्यक काम को न करने के कारण होती है। अनुताप। अफसोस। पछतावा।

पश्चात्तापी—संज्ञा पुं० [सं० पश्चात्तापिन्] पछतावा करनेवाला।

पश्चापी—वि० [सं० पश्चापिन्] सेवक। दास। टहलुवा [को०]।

पश्चाद्भावी—वि० [सं० पश्चात्-भाविन्] पीछे होनेवाले। बाद में या अनंतर होनेवाले। उ०—रानाडे के शब्दों में हम उन्हें पश्चाद्भावी भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं को उद्गम भूमि कह सकते हैं।—सं० दरिया (भू०), पृ० ५६।

पश्चाद्वर्ती—वि० [सं० पश्चात्+वर्तिन्] १. पीछे रखा गया। बाद का। बाद में अस्तित्व में आनेवाला। उ०—सर्वात्मवाद का यह बीज पश्चाद्वर्ती वैदिक साहित्य में विकसित होकर वेदांत दर्शन में अपने चरम रूप को प्राप्त हुआ।—सं० दरिया (भू०), पृ० ५३। २. पीछे रहनेवाला। अनुसरण करनेवाला।

पश्चानुताप—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चात्ताप। अनुताप। पछतावा।

पश्चारुज—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक रोग जो कदन्न खानेवाली स्त्रियों का दूध पीनेवाले बालकों को होता है।

विशेष—इस रोग में बालकों की गुदा में जलन होती है, उनका मल हरे या पीले रंग का हो जाता है और उन्हें बहुत तेज ज्वर आने लगता है।

पश्चार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीछे का अर्ध भाग। पिछला हिस्सा। २. पश्चिमी भाग। पश्चिमी हिस्सा। ३ बचा हुआ या बादवाला हिस्सा [को०]।

पश्चाद्वात—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम की हवा। पछवाँ [को०]।

पश्चिम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह दिशा जिसमें सूर्य अस्त होता है। पूर्व दिशा के सामने की दिशा। प्रतीची। वारुणी। पच्छिम।

पश्चिम[2]—वि० १. जो पीछे से उत्पन्न हुआ हो। २. अंतिम। पिछला। अंत का। ३. पश्चिम दिशा का।

पश्चिमक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेत क्रिया। मृतक कर्म [को०]।

पश्चिमघाट—संज्ञा पुं० [सं० पश्चिम+घाट (=पर्वत)] दे० 'पश्चिमीघाट'।

पश्चिमदिक्पति—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण जो पश्चिम दिशा के स्वामी कहे गए हैं [को०]।

पश्चिमप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जो पश्चिम की ओर ढालुई या झुकी हो।

पश्चिमयामकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार रात के पिछले पहर का कृत्य या कर्तव्य।

पश्चिमरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] रात्रि का अंतिम भाग [को०]।

पश्चिमवाहिनी—वि० [सं०] पश्चिम दिशा की ओर बहनेवाली। पश्चिम तरफ बहनेवाली (नदी आदि)।

पश्चिमसागर—संज्ञा पुं० [सं०] आयरलैंड और अमेरिका के बीच का समुद्र। ऐटलांटिक महासागर।

पश्चिमांश—संज्ञा पुं० [सं०] पिछला हिस्सा। पिछला काल। बाद का आधा काल। पश्चाद्वर्ती भाग। उ०—ऋग्वेदीय युग के पश्चिमांश में ऋषियों का बहुदेववाद एकदेववाद की ओर अग्रसर हो चला था।—सं० दरिया (भू०), पृ० ५३।

पश्चिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्यास्त की दिशा। प्रतीची। वारुणी। पश्चिम।

पश्चिमाचल—संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित पर्वत जिसके संबंध में लोगों की यह धारणा है कि अस्त होने के समय सूर्य उसी की आड में छिप जाता है। अस्ताचल।

पश्चिमार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पश्चार्ध' [को०]।

पश्चिमी—वि० [सं० पश्चिम+हिं० ई (प्रत्य०)] १. पश्चिम की ओर का। पश्चिमवाला। २ पश्चिम संबंधी। जैसे, पश्चिमी हिंदी।

पश्चिमी घाट—संज्ञा पुं० [हिं० पश्चिमी+घाट] बंबई प्रांत के पश्चिम ओर की एक पर्वतमाला जो विंध्य पर्वत की पश्चिमी शाखा की अंतिम सीमा से, समुद्र के किनारे किनारे ट्रावंकोर (तिरुवांकुर) की उत्तरी सीमा तक चली गई है। पश्चिम घाट।

पश्चिमेतर—वि० [सं०] १ पूर्व का। पूर्वी। २. पश्चिम से भिन्न [को०]।

पश्चिमोत्तर[1]—वि० [सं०] उत्तरपश्चिमी। पश्चिम और उत्तर कोण का [को०]।

पश्चिमोत्तर[२]—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम और उत्तर के बीच का कोना। वायुकोण।

पश्चिमोत्तरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम और उत्तर के बीच की दिशा। वायव्य कोण [को०]।

पश्त—संज्ञा पुं० [लश०] खंभा।

पश्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० पुश्ता] किनारा। तट। (लश०)।

क्रि० प्र०—लगना। —लगाना।

पश्तो—संज्ञा पुं० [देश०] १. ३॥ मात्राओं का एक ताल जिससे दो आघात होते हैं। इसके बोल इस प्रकार हैं—तिं, तक, धि, धा, गे। २ भारत की आर्यभाषाओं में से एक देशी भाषा जिसमें फारसी आदि के बहुत से शब्द मिल गए हैं। यह भाषा भारत की पश्चिमोत्तर सीमा से अफगानिस्तान तक बोली जाती है। उ०—जैसे पश्चिमी की क्रमशः पुरानी पारसी, पहलवी वा वर्तमान फारसी और पश्तो आदि हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७७।

पश्म—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बकरी, भेड़, आदि का रोआँ। ऊन।

विशेष—दे० 'ऊन'।

२. दे० 'पशम'। उ०—क्या करूँ हक के किए को कूर मेरी पश्म है। आबरू जग में रहे तो जान जाना पश्म है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १०।

पश्मीना—संज्ञा पुं० [फा० पश्मीनह] एक प्रकार का बहुत बढ़िया और मुलायम ऊनी कपड़ा जो कश्मीर और तिब्बत आदि पहाड़ी और ठंढे देशों में बहुत अच्छा और अधिकता से बनता है। दे० 'पशमीना'।

पश्यंती—संज्ञा स्त्री० [सं० पश्यन्ती] नाद की उस समय की अवस्था या स्वरूप जब वह मूलाधार से उठकर हृदय में जाता है।

विशेष—भारतीय शास्त्रों में वाणी या सरस्वती के चार चक्र माने गए हैं परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी। मूलाधार से उठनेवाले नाद को 'परा' कहते हैं, जब वह मूलाधार से हृदय में पहुँचता है तब 'पश्यंती' कहलाता है, वहाँ से आगे बढ़ने और बुद्धि से युक्त होने पर उसका नाम 'मध्यमा' होता है और जब वह कंठ में आकर सबके सुनने योग्य होता है तब उसे 'वैखरी' कहते हैं।

पश्यतोहर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो आँखों के सामने से चीज चुरा ले। जैसे, सुनार आदि। उ०—बहु शब्द बंचक जानि। अलि पश्यतोहर मानि। नर छाड़ई अपवित्र। शर खंग निर्दय मित्र।—राम० चं०, पृ० १६०।

पश्वयन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक यज्ञ।

पश्ववदान—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञीय पशु की बलि। यज्ञपशु का बलिदान [को०]।

पश्वाचार—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार कामना और संकल्पपूर्वक वैदिक रीति से देवी का पूजन। वैदिकाचार।

विशेष—तांत्रिकों के अनुसार दिव्य, वीर और पशु इन तीन भावों से साधना की जाती है। इनमें से केवल अंतिम ही कलियुग में विधेय है, और इसी पशु भाव से पूजा करने से सिद्धि होती है। पश्वाचारी को नित्य स्नान, संध्या, पूजन, श्राद्ध और विप्र कर्म करना चाहिए, सबको समान भाव से देखना चाहिए, किसी का अन्न न लेना चाहिए, सदा सत्य बोलना चाहिए, मद्यमांस का व्यवहार न करना चाहिए, आदि आदि।

पश्वाचारी—संज्ञा पुं० [सं० पश्वाचारिन्] पश्वाचार करनेवाला। कामना और संकल्पपूर्वक वैदिक रीति से देवी का पूजन करनेवाला।

पश्विज्या—संज्ञा स्त्री० [सं० पशु+इज्या] एक प्रकार का यज्ञ।

पश्वेकादशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें ग्यारह देवताओं के उद्देश्य से पशुओं की बलि दी जाती है।

पष(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष] १. पंख। डैना। २. तरफ। ओर। ३. पक्ष। पाख।

पषा—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष] दाढ़ी। डाढ़ी। श्मश्रु। उ०—रघुराज सुनत सखा सो पषा पोंछि पाणि, त्रिसखा त्रिशूल लिए चषा अरुणारे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

पषाण—संज्ञा पुं० [सं० पाषाण] दे० 'पाषाण'।

पषान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाषाण] दे० 'पाषाण'। उ०—कंचन काचहि सम गनै कामिनि काठ पषान। तुलसी ऐसे संत जन पृथ्वी ब्रह्म समान।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११।

पषारना(पु)†—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन] धोना। उ०—जो प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पषारन कहहू।—तुलसी (शब्द०)।

पषालना†—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन प्रा० पक्खालण] प्रक्षालन करना। धोना। पखारना। उ०—गढ़ अजमेरां गम करउ बउरां बइसा पषालज्यो पाव।—बी० रासो, पृ० ८।

पष्पान—संज्ञा पुं० [सं० पाषाण] दे० 'पाषाण'।

पष्ठौही—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवान गाय। युवा गौ [को०]।

पसंग(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० पासंग] दे० 'पासंग'।

पसंगा†[१]—संज्ञा पुं० [फा० पासंग] १ वह बोझ जिसे तराजू के पल्लों का बोझ बराबर करने के लिये तराजू की जोती में हलके पल्ले की तरफ बाँध देते हैं। पासंग। २ तराजू के दोनों पल्लों के बोझ का अंतर जिसके कारण उस तराजू पर तौली जानेवाली चीज की तौल में भी उतना ही अंतर पड़ जाता है।

पसंगा†[२]—वि० बहुत ही थोड़ा। बहुत कम।

मुहा०—पसंगा भी न होना = कुछ भी न होना। बहुत ही तुच्छ होना। जैसे,—यह कपड़ा उस थान का पसंगा भी नहीं है।

पसंघा†—संज्ञा पुं० [फ़ा० पासंग] दे० 'पसंगा'। उ०—गोली डाँड़ी में पसंघे सी बँधी कोड़ी।—कुकुर०, पृ० १७।

पसंता‡—संज्ञा स्त्री० [सं० पश्यन्ती] दे० 'पश्यंती'। उ०—चारो

बानी का भेद बताई, सास्तर संथ लखाई। परा पसंता मधिमा सोई, बैखरी बेर बताई। —घट०, पृ० २३।

पसंती⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० **पश्यन्ती**] दे० 'पश्यंती'। उ०—बानिहु चारि भाँति की करी। परा पसंती मध्य बैखरी।—विश्राम (शब्द०)।

पसंद[1]—वि० [फ़ा०] १. रुचि के अनुकूल। मनोनीत। २. जो अच्छा लगे। जैसे,—अगर वह चीज आपको पसंद हो तो आप ही ले लीजिए।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—होना।

विशेष—इस शब्द के साथ जो यौगिक क्रियाएँ जुड़ती हैं वे अकर्मक होती हैं। जैसे,—(क) वह किताब मुझे पसंद आ गई। (ख) हमे यह कपड़ा पसंद है।

पसंद[2]—संज्ञा स्त्री० अच्छा लगने की वृत्ति। अभिरुचि। जैसे,—आपकी पसंद भी बिलकुल निराली है। २. स्वीकृति। मंजूरी (को०)। ३. प्राथमिकता। प्रधानता। तरजीह (को०)।

पसंद[3]—प्रत्य० १. पसंद करनेवाला। जैसे, हकपसंद। २. पसंद आनेवाला। जैसे, दिलपसंद, मनपसंद (को०)।

पसंदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० **पसंदह्**] १. मांस के एक प्रकार के कुचले हुए टुकड़े। पारचे का गोश्त। २. एक प्रकार का कबाब जो उक्त प्रकार के मांस से बनता है।

पसंदीदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रुचि। रुझान। अनुकूलता। उ०—उनके लुकने छिपने, पसंदीदगी और नापसंदीदगी में भी फर्क है।—मैला०, पृ० १६५।

पसंदीदा—वि० [फ़ा० **पसंदीदह्**] पसंद किया हुआ। रुचिकर। मनोवांछित (को०)।

पसंसना‡—क्रि० स० [सं० **प्रशंसन**] प्रशंसा करना। गुण गाना। उ०—ते मोर्जे भलओ निरुढि गए, अइसओ तइसओ कव्व। खेल खेल छल दूसिहइ सुअण पसंसइ सव्व।—कीर्ति०, पृ० ४।

पसँगा†[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० **पासंग**] दे० 'पसंगा'।

पसँगा†[2]—वि० बहुत कम। स्वल्पतम। बहुत थोड़ा।

पसँघा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पासंग, हिं० पसगा, पसँगा] दे० 'पसंगा'।

पस[1]—अव्य [फ़ा०] १. इसलिये। अतः। इस कारण। २. पीछे। फिर। बाद मे (को०)। ३. अंततः। आखिरकार (को०)।

यौ०—पसमँदा। पसपा = पीछे हटा हुआ। हारा हुआ। पराजित। पसपाई = पीछे हटाना। हार। पराजय। पसोपेश।

पस[2]—संज्ञा पुं० [अ०] मवाद। पूय। पीप (को०)।

पसई—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहाड़ी राई जो हिमालय की तराई और विशेषतः नेपाल तथा कुमाऊँ में होती है। इसकी पत्तियाँ गोभी के पत्तों की तरह होती हैं और इसकी फसल जाड़े में तैयार होती है। बाकी बहुत सी बातों में यह साधारण राई की ही तरह होती है।

पसकरण—वि० [हिं०] कायर। डरपोक।

पसगैबत—क्रि० वि० [फ़ा० **पस** + अ० **गैबत**] पीठ पीछे। अनुपस्थिति में (को०)।

पसघा—संज्ञा सं० [हिं०] दे० 'पसंगा'।

पसताल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पानी के आसपास अधिकता से होती है और जिसे पशु बड़े चाव से खाते हैं। कहीं कहीं गरीब लोग इसके दानों या बीजों का व्यवहार अनाज की भाँति भी करते हैं।

पसनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० **प्राशन**] अन्नप्राशन नामक संस्कार जिसमें बच्चों को प्रथम बार अन्न खिलाया जाता है। उ०—भै पसनी पुनि छठएँ मासा। बालक बढ़धा भानु सम भासा। —रघुराज (शब्द)।

पसम⑤—संज्ञा पुं० [फा० **पशम्**] दे० 'पश्म'।

पसमीना⑤—पुं० [फ़ा० **पशमीना**] दे० 'पश्मीना'।

पसर[1]—संज्ञा पुं० [सं० **प्रसर**] गहरी की हुई हथेली। एक हथेली को सुकोड़ने से बना हुआ गड्ढा। करतलपुट। आधी अंजली। जैसे,—इस भिखमंगे को पसर भर आटा दे दो।

पसर[2]—संज्ञा पुं० [सं० **प्रसर**] विस्तार। प्रसार। फैलाव।

पसर[3]—संज्ञा पुं० [देश०] १. रात के समय पशुओं को चराने का काम।

क्रि० प्र०—चराना।

२. आक्रमण। धावा। चढ़ाई।

पसरकटाली—संज्ञा स्त्री० [सं० **प्रसरकटाली**] भटकटैया। कटाई।

पसरन—संज्ञा स्त्री० [सं० **प्रसारिणी**] १. गंधप्रसारिणी। पसारनी। † २. फैलाव। विस्तार।

पसरना—क्रि० अ० [सं० **प्रसरण**] १. आगे की ओर बढ़ना। फैलना। २. विस्तृत होना। बढ़ना। ३. पैर फैलाकर सोना। हाथ पैर फैलाकर लेटना। ४. छितरा जाना। बिखर जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

पसरट्टा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पसरहट्टा'।

पसरहट्टा†—संज्ञा पुं०[हिं० **पसारी** (= पंसारी) + **हट्टा** (= हाट)]वह हाट या बाजार जिसमें पंसारियों आदि की दुकानें हों। वह स्थान जहाँ वन औषधियाँ और मसाले आदि मिलते हैं।

पसराना—क्रि० स० [सं० **प्रसारण**] पसारने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को पसारने में प्रवृत्त करना।

पसरी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पसली'।

पसरौहाँ⑤†—वि० [हिं० पसरना + **औहाँ** (प्रत्य०)] प्रसरणशील। फैलनेवाला। जो पसरता हो। जिसका पसरने का स्वभाव हो।

पसली—संज्ञा स्त्री० [सं० **पर्शुका**] मनुष्यों और पशुओं आदि के शरीर में छाती पर के पंजर की आड़ी और गोलाकार हड्डियों मे से कोई हड्डी।

विशेष—साधारणतः मनुष्यों और पशुओं में गले के नीचे और पेट के ऊपर हड्डियों का एक पंजर होता है। मनुष्य में इस पंजर में दोनों ओर बारह बारह हड्डियाँ होती हैं। ये हड्डियाँ पीछे की ओर रीढ़ में जुड़ी रहती है और उसके दोनों ओर से निकलकर दोनों बगलों से होती हुई आगे छाती और पेट

की ओर आती हैं। पसलियों के अगले सिरे सामने आकर छाती की ठीक मध्य रेखा तक नहीं पहुँचते बल्कि उससे कुछ पहले ही खतम हो जाते हैं। ऊपर की सात सात हड्डियाँ कुछ बड़ी होती हैं और छाती की मध्य की हड्डी से जुड़ी रहती हैं। इसके बाद की नीचे की ओर की हड्डियाँ या पसलियाँ क्रमशः छोटी होती जाती हैं और प्रत्येक पसली का अगला सिरा अपने से ऊपरवाली पसली के नीचे के भाग से जुड़ा रहता है। इस प्रकार अंतिम या सबसे नीचे की पसली जो कोख के पास होती है सबसे छोटी होती है। नीचे की दोनों पसलियों के अगले सिरे छाती की हड्डी तक तो पहुँचते ही नहीं, साथ ही वे अपने ऊपर की पसलियों से भी जुड़े हुए नहीं होते। इन पसलियों के बीच में जो अंतर होता है उसमें मांस तथा पेशियाँ रहती हैं। साँस लेने के समय मांसपेशियों के सिकुड़ने और फैलने के कारण ये पसलियाँ भी आगे बढ़ती और पीछे हटती दिखाई देती हैं। साधारणतः इन पसलियों का उपयोग हृदय और फेफड़े आदि शरीर के भीतरी कोमल अंगों को बाहरी आघातों से बचाने के लिये होता है। पशुओं, पक्षियों और सरीसृपों आदि की पसली की हड्डियों की संख्या में प्राय: बहुत कुछ अंतर होता है और उनकी बनावट तथा स्थिति आदि में भी बहुत भेद होता है। पसली की हड्डियों की सबसे अधिक संख्या साँपों में होती है। उनमें कभी कभी दोनों ओर दो दो सौ हड्डियाँ होती है।

मुहा०—**पसली फड़कना या फड़क उठना** = मन में उत्साह होना। उमंग पैदा होना। जोश आना। **पसलियाँ ढीली करना** = बहुत मारना पीटना। **हड्डी पसली तोड़ना** = दे० 'पसलियाँ ढीली करना'।

यौ०—**पसली का रोग** = बच्चों का एक प्रकार का रोग जिसमें उनका साँस बहुत तेज चलता है।

पस व पेश—संज्ञा पु० [फ़ा० पस ओ पेश] दे० 'पसोपेश'।

पसवा†—संज्ञा पुं० [देश०] हलका गुलाबी रंग।

पसही†—संज्ञा पु० [देश०] तिन्नी का चावल।

पसा†—संज्ञा पुं० [हिं० पसर] अंजली।

पसाई[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] पसताल नाम की घास जो तालों में होती है। दे० 'पसताल'।

पसाई[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रसाद] दे० 'पसाउ'। उ०—तैं डिनोई सभु, जो डीय दीदार के, उंजे लहदी प्रभु पसाई दो पाए के।—दादू०, पृ० ६५।

पसाउ, पसाऊⓤ†—संज्ञा पुं० [सं० प्रसाद, प्रा० पसाव] प्रसाद। प्रसन्नता। कृपा। अनुग्रह। उ०—(क) चारिउ कुँअर बिआहि पुर गवने दशरथ राउ। भए मंजु मंगल सगुन गुरु सुर संभु पसाउ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ।—मानस, १।८६।

पसाना[1]—क्रि० स० [सं० प्रस्रावण, हिं० पसावना] १. पकाया हुआ चावल गल जाने पर उसका बचा हुआ पानी निकालना या अलग करना। भात में से माँड़ निकालना। २. किसी पदार्थ में मिला हुआ जल का अंश चुआ या बहा देना। पसेव निकालना या गिराना।

पसाना[2]—क्रि० अ० [सं० प्रसन्न या प्रसाद] प्रसन्न होना। खुश होना।

पसार—संज्ञा पुं० [सं० प्रसार] १. पसरने की क्रिया या भाव। प्रसार। फैलाव। उ०—सात सुरति तब मूल है उत्पति सकल पसार। अक्षर ते सब सृष्टि भई, काल ते भए तिछार।—कबीर सा०, पृ० ६२१। २. विस्तार। लंबाई और चौड़ाई आदि। ३. प्रपंच। मायाविस्तार।

पसारण†—संज्ञा पुं० [सं० प्रसारण] दे० 'प्रसारण'। उ०—गावण, धावण, वलगन, संकोचन, पसारण, ये पाँच प्रकृति वायु की बोलिए।—गोरख०, पृ० २२३।

पसारना—क्रि० स० [सं० प्रसारण] फैलाना। आगे की ओर बढ़ाना। विस्तार करना। जैसे,—किसी के आगे हाथ पसारना। बैठने की जगह पाकर पैर पसारना।

पसारा†—संज्ञा पुं० [सं० प्रसार] दे० 'प्रसार'। उ०—(क) शब्दे काया जग उतपानी शब्दे केरि पसारा।—कबीर, श०, भा० १, पृ० ४३। (ख) जो दिग्नियत यह बिश्व पसारौ। सो सब क्रीड़ा भांड तुम्हारौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८२।

पसारी—संज्ञा पुं० [देश०] १. तिन्नी का धान। पसवन। पसेही। २. दे० 'पंसारी'।

पसाव[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पसाना + आव (प्रत्य०)] वह जो पसाने पर निकले। पसाने पर निकलनेवाला पदार्थ। माँड। पीच।

पसावⓤ[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रसाद] दे० 'पसाउ'। जैसे, लाखपसाव, कोटिपसाव। उ०—हिंडयो सु बीर उत्तर दिसा इह पसाव बहुमान करि।—पृ० रा०, २४।४३६।

पसावन—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्रावण] १. किसी उबाली हुई वस्तु में का गिराया हुआ पानी। २. माँड। पीच।

पसिंजर—संज्ञा पुं० [अं० पैसेंजर] १. यात्री; विशेषतः रेल या जहाज का यात्री। २. मुसाफिरों के सवार होने की वह रेलगाड़ी जो प्रत्येक स्टेशन पर ठहरती चलती है और जिसकी चाल डाकगाड़ी की चाल से कुछ धीमी होती है।

पसितⓤ—वि० [सं० पाश (= बंधन)] बँधा या बाँधा हुआ।

पसीजना—क्रि० अ० [सं० प्र + √स्विद्, प्रस्विद्यति, प्रा० पसिज्जइ] १. किसी घन पदार्थ में मिले हुए द्रव अंश का गरमी पाकर या और किसी कारण से रस रसकर बाहर निकलना। रसना। जैसे, पत्थर में से पानी पसीजना। २. चित्त में दया उत्पन्न होना। दयार्द्र होना। जैसे,—आप लाख बातें बनाइए, पर वे कभी न पसीजेंगे। उ०—दुखित धरनि लखि बरसि जल घनहु पसीजे आय। द्रवत न क्यों घनश्याम तुम नाम दयानिधि पाय।—(शब्द०)।

पसीना—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्वेदन, हिं० पसीजना] शरीर में मिला हुआ जल जो अधिक परिश्रम करने अथवा गरमी लगने पर सारे शरीर से निकलने लगता है। प्रस्वेद। स्वेद। श्रमवारि।

विशेष—पसीना केवल स्तनपायी जीवों को होता है। ऐसे जीवों के सारे शरीर में त्वचा के नीचे छोटी छोटी ग्रंथियाँ होती हैं जिनमें से रोमकूपों में से होकर जलकणों के रूप में पसीना निकलता है। रासायनिक विश्लेषण से सिद्ध होता है कि पसीने में प्रायः वे ही पदार्थ होते हैं जो मूत्र में होते हैं। परंतु वे पदार्थ बहुत ही थोड़ी मात्रा में होते हैं। पसीने में मुख्यतः कई प्रकार के क्षार, कुछ चर्बी और कुछ प्रोटीन (शरीरधातु) होती है। ग्रीष्मऋतु में व्यायाम या अधिक परिश्रम करने पर, शरीर में अधिक गरमी के पहुँचने पर या लज्जा, भय, क्रोध आदि गहरे आवेगों के समय अथवा अधिक पानी पीने पर बहुत पसीना होता है। इसके अतिरिक्त जब मूत्र कम आता है तब भी पसीना अधिक होता है। औषधों के द्वारा अधिक पसीना लाकर कई रोगों की चिकित्सा भी की जाती है। शरीर स्वस्थ रहने की दशा में जो पसीना आता है, उसका न तो कोई रंग होता है और न उसमें कोई दुर्गंध होती है। परंतु शरीर में किसी भी प्रकार का रोग हो जाने पर उसमें से दुर्गंध निकलने लगती है।

क्रि० प्र०—आना।—छूटना।—निकलना। —होना।

मुहा०—पसीना गारना या बहाना = किसी कार्य या वस्तु के लिये अत्यधिक श्रम करना। पसीने पसीने होना = बहुत अधिक पसीना होना। पसीने से तर होना। गाढ़े पसीने की कमाई = कठिन परिश्रम से अर्जित किया हुआ धन। बड़ी मेहनत से कमाई हुई दौलत।

पसुⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पशु] दे० 'पशु'। उ०—जैसे कीट पतंग पषान, भयो पसु पक्षी।—धरम०, पृ० ८१।

पसुआⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० पशुता] पशु। जानवर। उ०—औगुन कहौं शराब का ज्ञानवत सुनि लेय। मानुष से पसुआ करे, द्रव्य गाँठि को देय।—सतबानी०, पृ० ६१।

पसुघ्न—वि० [सं० पशुघ्न] पशु का वध करनेवाला। उ०—बिना पसुघ्नहिं पुरुष सु कौन। कहै कि हरि गुन हौं न सुनो न।—नंद० ग्रं०, पृ० २१८।

पसुचारनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पशुचारण] गाय, बैल आदि जानवरों को चराने का काम। उ०—जब पसुचारन चलत चरन कोमल धारि वन मैं। सिल त्रिन कंटक अटकत कसकत हमरे मन मैं।—नंद० ग्रं०, पृ० १८।

पसुपⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पशुप] पशुओं का रक्षक। पशुपालक। गोपाल। उ०—पसु अरु पसुप तृषित अति भए। चले चले कालीदह गए।—नंद ग्रं०, पृ० २७८।

पसुपतिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पशुपति] महादेव। उ०—उग्र कपर्दी भूतपति पसुपति मृड ईसान।—अनेकार्थ०, पृ० ७५।

पसुपालⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पशुपाल] दे० 'पशुपाल'। उ०—इनके दिए बाढ़ो हैं गैया बच्छ बाल। संग मिलि भोजन करत हैं जैसे पसुपाल।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ४।

पसुभाषाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० पशुभाषा] पशुओं की बोली समझने की विद्या। पशुओं की बोली। उ०—पसुभाषा और बल-

तरन, धातु रसाइन जानु। रतन परख भी चातुरी, सकल अंग सग्यानु।—माधवानल०, पृ० २०८।

पसुरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पसली + इया (प्रत्य०)] दे० 'पसली'। उ०—यहि बन गगन बजाव बँसुरिया। कोनहु नहि गुमान तकि मूली, अंग अंग गलि जाइ पसुरिया।—जग० बानी, पृ० ३४।

पसुरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पसली'।

पसुलीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पसली'।

पसू†—संज्ञा पुं० [सं० पशु] दे० 'पशु'। उ०—करै गान तीनं पसू पच्छि मोहै।—ह० रासो, पृ० ३७।

पसूज—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह सिलाई जिसमें सीधे तोपे भरे जाते हैं।

पसूजना—क्रि० स० [देश०] सीना। सिलाई करना।

पसूता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रसूता] जिस स्त्री ने अभी हाल में बच्चा जना हो। प्रसूता। जच्चा।

पसूस—वि० [डिं०] कठोर।

पसेउ, पसेऊ—संज्ञा पुं० [हिं० पसेव] दे० 'पसेव'। उ०—जानु सो गारे रकत पसेऊ। सुखी न जान दुखी कर भेऊ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७१।

पसेपुश्त—क्रि० वि० [फ़ा०] पीछे पीछे। परोक्ष में। उ०—यह मेरा प्यारा जसोदा है, जिसकी गरदन में बाहें डालकर मैं बागों की सैर किया करता था। हमारी सारी दुशमनी पसेपुश्त होती थी।—काया०, पृ० ३३५।

पसेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँच + सेर + ई (प्रत्य०)] पाँच सेर का बाट। पंसेरी।

पसेव—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्वेद] १. वह द्रव पदार्थ जो किसी पदार्थ के पसीजने पर निकले। किसी चीज में से रसकर निकला हुआ जल। २. पसीना। उ०—तनु पसेव पसाहनि भासलि, पुलक तइसन जागु।—विद्यापति०, पृ० ३१। ३. वह तरल पदार्थ जो कच्ची अफीम को सुखाने के समय उसमें से निकलता है। इस अंश के निकल जाने पर अफीम सूख जाती और खराब नहीं होती।

पसेवा†—संज्ञा पुं० [देश०] सुनारों की अँगीठी पर चारों ओर रहनेवाली चारो ईंटें।

पसैहू†—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़। उ०—बिहरत मोहन मदन गुपाल। कदम पसैहू ताल रसाल।—ब्रजानंद, पृ० ३०३।

पसोपेश—संज्ञा पुं० [फ़ा० पस व पेश] १. आगा पीछा। सोच विचार। हिचक। दुविधा। जैसे,—जरा से काम मे तुम इतना पसोपेश करते हो? २. भला बुरा। हानि लाभ। ऊँच नीच। परिणाम। जैसे,—इस काम का सब पसोपेश सोच लो तब इसमें हाथ लगाओ।

पसोपेस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पसोपेश'। उ०—पसोपेस तजि आइए पहिने कुन ससपंज। कर मुकुताह न आइए मुकुता बरसत कंज।—स० सप्तक, पृ० २४७।

पस्त—वि॰ [फ़ा॰] १. हारा हुआ। २. थका हुआ। ३. दबा हुआ। उ॰—किसी तरह यह कमबख्त हाथ आता तो और राजपूत खुद ब खुद पस्त हो जाते। —भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ५२१। ४. निम्न। अधम (को॰)। ५. छोटा। लघु (को॰)।

यौ॰—**पस्तकद**। **पस्तकिस्मत** = अभागा। बदकिस्मत। **पस्तखयाल** = लघुचेता। क्षुद्रबुद्धि। **पस्तहिम्मत**। **पस्तहिम्मती** = कायरता। उत्साहहीनता। **पस्तहौसला** = दे॰ 'पस्तहिम्मत'।

पस्तकद—वि॰ [फा॰ पस्तक़द] नाटा। वामन। बौना।

पस्तहिम्मत—वि॰ [फ़ा॰] हिम्मत हारा हुआ। भीरु। डरपोक। कायर।

पस्ताना†—क्रि॰ अ॰ [सं॰ **पश्चात्ताप**, मरा॰ **पस्तावणे**] दे॰ 'पछताना'।

पस्तावा†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **पश्चात्ताप**, सिंधी **पस्तावो**, गुज॰ **पस्तावुं**] दे॰ 'पछतावा'।

पस्ती—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] १. नीचे होने का भाव। निचाई। २. कमी। न्यूनता। अभाव। ३. अधमता। क्षुद्रता। निम्नता। कमीनापन (को॰)।

पस्तो—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'पश्तो'।

पस्त्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. गृह। निवास। घर। २. कुल। परिवार [को॰]।

पस्यम†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **पश्चिम**] दे॰ 'पश्चिम'। उ॰—दिसि पस्यम गुरजर सुघर सैहैर अहमदाबाद।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ४२१।

पस्सर—संज्ञा पुं॰ [अं॰ **परसर**] जहाज का वह कर्मचारी जो खलासियों आदि को वेतन और रसद बाँटता है। जहाज का खजानची या भंडारी (लश॰)।

पस्सा†—क्रि॰ वि॰ [?] मुट्ठी भर। उ॰—बादर्को अनेगी रोंडी बेगले फिरेंगे छोगे। पस्सा उसा को भाँटी डालेंगे नाउं पो तेरे।—दक्खिनी॰, पृ॰ २९७।

पस्सी—संज्ञा पुं॰ [देश॰] शीशम की जाति का एक प्रकार का वृक्ष। बिधुआ। भकोलो।

विशेष—यह वृक्ष प्रायः सारे उत्तरी भारत, नेपाल और आसाम मे पाया जाता है। यह प्रायः सड़कों के किनारे लगाया जाता है। यह नीची और बलुई जमीन में बहुत जल्दी बढ़ता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। इसकी लकड़ी बहुत बढ़िया होती है और शीशम की भाँति ही काम में आती है।

पस्सी बबूल—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ **पस्सी** ? + हिं॰ **बबूल**] एक प्रकार का पहाड़ी विलायती बबूल जो जंगली नहीं होता बल्कि बोने और लगाने से होता है।

विशेष—हिमालय में यह ५००० फुट की ऊँचाई तक बोया जा सकता है। प्रायः घेरा बनाने या बाड़ लगाने के लिये यह बहुत ही उत्तम और उपयोगी होता है। जाड़े में इसमें खूब फूल लगते हैं जिनमें से बहुत अच्छी सुगंध निकलती है। युरोप मे इन फूलों से कई प्रकार के इत्र और सुगंधित द्रव्य बनाए जाते हैं।

पहँ(५)—अव्य॰ [सं॰ **पार्श्व**, प्रा॰ **पाह**] १. निकट। समीप। उ॰—राजा बँदि जेहि के सौंपना। गा गोरा तेहि पहँ अगमना।—जायसी (शब्द॰)। २ से। उ॰—दूतिन्ह बात न हिये समानी। पदमावति पहँ कहा सो आनी।—जायसी (शब्द॰)।

पहँसुल—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ **प्रह** (= झुका हुआ) + **शूल**] हँसिया के आकार का तरकारी काटने का एक औजार। हँसुआ।

पह(५)†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ **प्रभा**] दे॰ 'पौ'। उ॰—प्रफुलित कमल गुंजार करत अलि पह फाटी कुमुदिनि कुँभिलानी।—सूर (शब्द॰)।

पह—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **प्रभु**] दे॰ 'प्रभु'। उ॰—साहां ऊथप थप्पणो, पह नरनाहां पत्त। राह दुहूँ हद रक्खणो, अभैसाह छत्रपत्त।—रा॰ रू॰, पृ॰ १०। (ख) क्रोध न करो अकाजा, देव दीन सुरभी दुजराजा पह रघुवंशी पूजे।—रघु॰ रू॰, पृ॰ ६०।

पहचनवाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ **पहचानना का प्रे॰ रूप**] पहचानने का काम कराना।

पहचान—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ **प्रत्यभिज्ञान**] १. पहचानने की क्रिया या भाव। यह ज्ञान कि यह वही व्यक्ति या वस्तु विशेष है जिसे मैं पहले से जानता हूँ। देखने पर यह जान लेने की क्रिया या भाव कि यह अमुक व्यक्ति या वस्तु है। जैसे,—गवाह मुलजिमों की पहचान न कर सका।

क्रि॰ प्र॰—**करना**।—**होना**।

२. भेद या विवेक करने की क्रिया या भाव। किसी का गुण, मूल्य या योग्यता जानने की क्रिया या भाव। जैसे,—(क) तुम भले बुरे की पहचान नहीं कर सकते। (ख) जवाहिरात की पहचान जौहरी कर सकता है। ३. पहचानने की सामग्री। किसी वस्तु से संबंध रखनेवाली ऐसी बातें जिनकी सहायता से वह अन्य वस्तुओं से अलग की जा सके। किसी वस्तु की विशेषता प्रकट करनेवाली बातें। लक्षण। निशानी। जैसे,—(क) मुझे उनके मकान की पहचान बताओ तो मैं वहाँ जा सकता हूँ। (ख) अगर वह कमीज तुम्हारी है तो इसकी कोई पहचान बताओ। ४. पहचानने की शक्ति या वृत्ति। अंतर या भेद समझने की शक्ति। एक वस्तु को दूसरी वस्तु अथवा वस्तुओं से पृथक् करने की योग्यता। किसी वस्तु का गुण, मूल्य अथवा योग्यता समझने की शक्ति। विवेक। तमीज। जैसे,—(क) तुममें खोटे खरे की पहचान नहीं है। (ख) तुममें आदमी की पहचान नहीं है। ५ जान पहचान। परिचय। (क्व॰)। जैसे,—(क) हमारी उनकी पहचान बिलकुल नई है। (ख) तुम्हारी पहचान का कोई आदमी हो तो उससे मिलो।

पहचानना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ **पहचान** + **ना**] १. किसी वस्तु या

व्यक्ति को देखते ही जान लेना कि यह कौन व्यक्ति या क्या वस्तु है। यह ज्ञान करना कि यह वही वस्तु या व्यक्तिविशेष है जिसे मैं पहले से जानता हूँ। चीन्हना। जैसे,—(क) बहुत दिनों पीछे मिलने पर भी उसने मुझे पहचान किया। (ख) पहचानो तो यह कौन फल है। २. वस्तु या व्यक्ति के स्वरूप को इस प्रकार जानना कि वह जब कभी इंद्रियगोचर हो तो इस बात का निश्चय हो सके कि वह कौन अथवा क्या है। किसी वस्तु की शरीराकृति, रूप रंग अथवा शक्ल सूरत से परिचित होना। जैसे—(क) मैं उन्हे चार बरस से पहचानता हूँ। (ख) तुम इनका मकान पहचानते हो, तो चलकर बता न दो। ३. एक वस्तु का दूसरी वस्तु अथवा वस्तुओं से भेद करना। अंतर समझना या करना। बिलगाना। विवेक करना। तमीज करना। जैसे,—असल और नकल को पहचानना जरा टेढ़ा काम है। ४. किसी वस्तु का गुण या दोष जानना। किसी की योग्यता या विशेषता से अभिज्ञ होना। किसी व्यक्ति के स्वभाव अथवा चरित्र की विशेषता को जानना। जैसे,—तुम्हारा उसका इतने दिनों तक साथ रहा, लेकिन तुम उन्हें पहचान न सके।

पहटना¹—क्रि० स० [सं० प्रखेट, प्रा० पहेट (=शिकार)] भगा देने अथवा पकड़ लेने के लिये किसी के पीछे दौड़ना। पीछा करना। खदेड़ना।

पहटना²—क्रि० स० [देश०] पैना करना। धार को रगड़ रगड़कर तेज करना।

पहटा†—संज्ञा पुं० [देश०] १ दे० 'पाटा'। २ दे० 'पेठा'।

पहन(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० पाहन] दे० 'पाहन' वा 'पाषाण'। उ०—(क) अदिन आय जो पहुँचे काऊ। पहन उड़ाय बहै सो बाऊ।—जायसी (शब्द०)। (ख) अब की घड़ी चिनग तेहि छूटे। जरहिं पहाड़ पहन सब फूटे।—जायसी (शब्द०)।

पहन²—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह दूध जो बच्चे को देखकर वात्सल्य भाव के कारण माँ की छातियों में भर आए और टपकने को हो।

पहनना—क्रि० स० [सं० परिधान] (कपड़े अथवा गहने को) शरीर पर धारण करना। परिधान करना।

पहनवाना—क्रि० स० [हिं० पहनना का प्र०रूप] किसी के द्वारा किसी को वस्त्र या आभूषण धारण कराना। किसी और के द्वारा किसी को कुछ पहनाना।

पहना†¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पनहा'।

पहना²—संज्ञा पुं० [फ़ा० पहन] वह दूध जो बच्चे को देखकर वात्सल्य भाव के कारण माँ के स्तनों में भर आया हो और टपकता सा जान पड़े।

क्रि० प्र०—फूटना।

पहनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहनना] १. पहनने की क्रिया या भाव। जैसे,—जरा आपकी पहनाई देखिए। २. जो पहनाने के बदले में दिया जाय। पहनाने की मजदूरी या उजरत। जैसे, चूड़ी पहनाई।

पहनाना—क्रि० स० [हिं० पहनना] दूसरे को कपड़े, आभूषण आदि धारण कराना। किसी के शरीर पर पहनने की कोई चीज धारण कराना। दूसरे के शरीर पर यथास्थान रखना या ठहराना। जैसे, कुर्ता, अँगूठी, माला, जूता, आदि पहनाना।

पहनाव—संज्ञा पुं० [हिं० पहनना] दे० 'पहनावा'।

पहनावा—संज्ञा पुं० [हिं० पहनना] १. ऊपर पहनने के मुख्य मुख्य कपड़े। सिले या बिना सिले सब कपड़े जो ऊपर पहने जायँ। परिच्छद। परिधेय। पोशाक। २. सिर से पैर तक के ऊपर पहनने के सब कपड़े। पाँचो कपड़े। सिरोपाव। ३ विशेष अवस्था, स्थान अथवा समाज में ऊपर पहने जानेवाले कपड़े। वे कपड़े जो किसी खास अवसर पर देश या समाज में पहने जाते हों। जैसे, दरबारी पहनावा, फौजी पहनावा, ब्याह का पहनावा, काबुलियों का पहनावा, चीनियों का पहनावा, आदि। ४. कपड़े पहनने का ढंग या चाल। रुचि अथवा रीति की भिन्नता के कारण विशेष देश या समाज के पहनावे की विशेषता।

पहपट—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का गीत जो स्त्रियाँ गाया करती हैं। २. शोरगुल। हल्ला। कोलाहल। ३. किसी की बदनामी का शोर। बदनामी या अपवाद का शोर। बदनामी की जोरशोर से चर्चा। ४. ऐसी बदनामी जो कानाफूसी द्वारा की जाय। गुप्त अपवाद या निंदा। किसी के दोष की ऐसी चर्चा जो उससे छिपाकर की जाय। (बुंदेलखंड तथा अवध)। ५. छल। ठगी। धोखा। फरेब।

पहपटबाज—संज्ञा पुं० [हिं० पहपट+फ़ा० बाज़] [संज्ञा पहपटबाजी] १. शोर गुल करने या करानेवाला। हल्ला करने या करानेवाला। फसादी। शरारती। झगड़ालू। २. छलिया। ठग। धोखेबाज। फरेबी।

पहपटबाजी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहपट+बाजी] १. झगड़ालूपन। कलहप्रियता। शोर गुल कराने का काम या आदत। २. छलियापन। ठगी। मक्कारी।

पहपटहाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहपट+हाई (प्रत्य०)] पहपट करानेवाली। बात का बतंगड़ करनेवाली। झगड़ा कराने या लगानेवाली।

पहर—संज्ञा पुं० [सं० प्रहर] १. एक दिन का चतुर्थांश। अहोरात्र का आठवाँ भाग। तीन घंटे का समय। २. समय। जमाना। युग। जैसे,—(क) कलिकाल का पहर न है? (ख) किसी का क्या दोष, पहर ही ऐसा चढ़ा है।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—लगना।

पहरना†—क्रि० स० [सं० प्रधारण] दे० 'पहनना'।

पहरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० पहर] १. किसी वस्तु या व्यक्ति के आस पास एक या अधिक आदमियों का यह देखते रहने के लिये बैठना (अथवा बैठाया जाना) कि वह निर्दिष्ट स्थान से हटने या भागने न पावे। रक्षकनियुक्ति। रक्षा अथवा निगहबानी का प्रबंध। चौकी।

यौ०—पहरा । चौकी ।

मुहा०—पहरा बदलना = (१) नए रक्षक या रक्षकों का नियुक्ति करना । नया नियुक्त कर पुराने को छुट्टी देना । रक्षक बदलना । (२) नए रक्षकों का नियुक्त होना । रक्षा का नया प्रबंध होना । रक्षक बदलना । पहरा बैठना = किसी वस्तु या व्यक्ति के आस पास रक्षक बैठाया जाना । चौकीदार नियुक्त होना । पहरा बैठाना = चौकीदार बैठाना । रक्षक नियुक्त करना ।

२. किसी व्यक्ति या वस्तु के संबंध में यह देखते रहने की क्रिया कि वह निर्दिष्ट स्थान से हट न सके । निर्दिष्ट स्थान में किसी विशेष वस्तु या व्यक्ति की रक्षा करने का कार्य । रखवाली । हिफाजत । निगहबानी ।

यौ०—पहरा चौकी ।

मुहा०—पहरा देना = रखवाली करना । निगहबानी करना । चौकी देना । पहरा पड़ना = रक्षक बैठा रहना । संतरी या चौकीदार का किसी स्थान पर खड़ा रहना । रक्षा का प्रबंध रहना । जैसे,—उनके दरवाजे पर आठ पहर पहरा पड़ता है ।

३. उतना समय जितने में एक रक्षक अथवा रक्षकदल को रक्षा-कार्य करना पड़ता है । एक पहरेदार या पहरेदारों के एक दल का कार्यकाल । तैनाती । नियुक्ति । जैसे,—अपने पहरे भर जाग लो फिर जो आएगा वह चाहे जैसा करे ।

विशेष—एक व्यक्ति अथवा एक रक्षकदल की नियुक्ति पहले एक पहर के लिये होती थी । उसके बाद दूसरे व्यक्ति या दल की नियुक्ति होती थी और पहले को छुट्टी मिलती थी । उप-र्युक्त प्रबंध, कार्य और कार्यकाल की 'पहरा' संज्ञा होने का यही कारण जान पड़ता है ।

४. वे रक्षक या चौकीदार जो एक समय में काम कर रहे हों । एक साथ काम करते हुए चौकीदार । रक्षकदल । गारद । (क्व०) । जैसे,—(क) पहरा खड़ा है । (ख) पहरा आ रहा है । ५. चौकीदार का गश्त या फेरा । रात में निश्चित समय पर रक्षक का चक्कर या भ्रमण ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

६. चौकीदार की आवाज । फेरे में चौकीदार का सोते को साव-धान करने के लिये कोई वाक्य बार बार उच्च स्वर से कहना । जैसे,—आज क्या बात है जो अबतक पहरा सुनाई न दिया ? ७. पहरे में रहने की स्थिति । किसी मनुष्य की ऐसी स्थिति जिसमें उसके इर्द गिर्द रक्षक या सिपाही तैनात हों । हिरासत । हवालात । नजरबंदी ।

मुहा०—पहरे में देना = हिरासत में देना । हवालात भेजना । नजरबंद कराना । पहरे में रखना = हिरासत में रखना । हवालात में रखना । नजरबंद रखना । पहरे में होना = हिरासत में होना । नजरबंद होना । हवालात में होना । जैसे,—आज चार रोज से वे बराबर पहरे में हैं ।

८†. समय । युग । जमाना । उ०—कहैं कबीर सुनो भाई साधो ऐसा पहरा आवेगा । बहन भांजी कोई न पूछे साली न्योत जिमावेगा ।—कबीर (शब्द०) ।

पहरा²—संज्ञा पुं० [हिं० पाव+रा, पौरा] पैर रखने का फल । आ जाने का शुभ या अशुभ प्रभाव । पौर । जैसे,—बहू का पहरा अच्छा नहीं है, जब से आई है एक न एक आफत लगी रहती है । (स्त्रियाँ) ।

मुहा०—अच्छा पहरा = ऐसा पहरा जिसमें आरंभ किया हुआ कार्य शीघ्र पूरा हो जाय । बुरा पहरा = ऐसा पहरा जिसमें आरंभ किया हुआ कार्य जल्दी समाप्त न हो । भारी पहरा = बुरा पहरा । हलका पहरा = अच्छा पहरा ।

पहराइत†—संज्ञा पुं० [हिं० पहरा+इत (प्रत्य०)] पहरैत । पहरे-दार । रखवाली करनेवाला । उ०—पहराइत घर कौं मुसै साह न जानै कोइ । चोर आइ रक्षा करे सुंदर नव सुख होइ । —सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७५६ ।

पहराना‡—क्रि० स० [हिं० पहनना] दे० 'पहनाना' ।

पहरामणी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहरावना] दे० 'पहरावनी' । उ०—तो तट दी लाखै तरां पहरामणी पुरांण । —बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ८० ।

पहरावनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहरावना] वह पहनावा या पोशाक जो कोई व्यक्ति किसी पर प्रसन्न होकर उसे दान करे । वह पोशाक जो कोई बड़ा छोटे को दे । खिलअत । उ०—पठावनी पहरावनी, ब्राह्मन भोजन सब भली भाँति सो कियो । —दो सौ बावन०, भा०१, पृ० १२ ।

पहरावा—संज्ञा पुं० [हिं० पहनना] दे० 'पहनावा' ।

पहरी—संज्ञा पुं० [सं० प्रहरी] १. पहरेदार । चौकीदार । रक्षक । पहरा देनेवाला । २. एक जाति जिसका काम पहरा देना होता था ।

विशेष—आजकल इस जाति के लोग विविध व्यवसाय और कामधंधे में लगे हैं । परंतु प्राचीन समय में इस जाति के लोग विशेषत: पहरा देने का ही काम करते थे । गाँव में रहनेवाले पहरी अबतक अधिकतर चौकीदार ही होते हैं । वे लोग सूअर भी पालते हैं । प्राय: चतुर्वर्ण के हिंदू इनका स्पर्श किया हुआ जल नहीं पीते ।

पहरुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० पहरा] दे० 'पहरू' । उ०—कल नहिं लेत पहरुआ कवन विधि जाइब हो । -धरम०, पृ० ६४ ।

पहरू—संज्ञा पुं० [हिं० पहरा+ऊ (प्रत्य०)] पहरा देनेवाला । चौकीदार । रक्षक । पहरी । संतरी । उ०—बदली घुमड़ घोर अँधियारी, पहरू करत हैं सार । —तुरसी० श०, पृ० ७ ।

पहरेदार—संज्ञा पुं० [हिं० पहरा] पहरा देनेवाला संतरी । प्रहरी ।

पहरेदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहरेदार] पहरा देने का काम । चौकीदारी ।

पहल¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० पहलू । सं० पटल] १. किसी घन पदार्थ के तीन या अधिक कोरों अथवा कोनों के बीच की समतल

भूमि। किसी वस्तु की लंबाई चौड़ाई और मोटाई अथवा गहराई के कोनों अथवा रेखाओं से विभक्त समतल अंश। किसी लंबे चौड़े और मोटे अथवा गहरे पदार्थ के बाहरी फैलाव की बँटी हुई सतह पर का चौरस कटाव या बनावट। बगल। पहलू। बाजू। तरफ। जैसे, खंभे के पहल, डिबिया के पहल, आदि।

क्रि॰ प्र॰—काटना।—तराशना।—बनाना।

यौ॰—पहलदार। चौपहल। अठपहल।

मुहा॰—पहल निकालना = पहल बनाना। किसी पदार्थ के पृष्ठ देश या बाहरी सतह को तराश या छीलकर उसमें त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण आदि पैदा करना। पहल तराशना।

२. धुनी रूई या ऊन की मोटी और कुछ कड़ी तह या परत। जमी हुई रूई अथवा ऊन। रजाई तोशक आदि में भरी हुई रूई की परत। ३. रजाई तोशक आदि से निकाली हुई पुरानी रूई जो दबने के कारण कड़ी हो जाती है। पुरानी रूई। (प्र)४. तह। परत। उ॰—मायके के सखी सों मँगाइ फूल मालती के चादर सों ढाँपै छ्वाइ तोमक पहल में।—रघुनाथ (शब्द॰)।

पहल²—संज्ञा पु॰ [हिं॰ **पहला**] किसी कार्य, विशेषतः ऐसे कार्य का आरंभ जिसके प्रतिकार या जवाब में कुछ किए जाने की संभावना हो। छेड़। जैसे,—इस मामले में पहल तो तुमने ही की है, उनका क्या दोष ?

पहलदार—वि॰ [हिं॰ **पहल** + फ़ा॰ **दार**] जिसमें पहल हो। पहलूदार। जिसमें चारों ओर अलग अलग बँटी हुई सतहें हों।

पहलनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ **पहल**] सोनारों का औजार जिसमें कोढ़े को पहनाकर उसे गोल करते हैं। यह लोहे का होता है।

पहलवान—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] [संज्ञा **पहलवानी**] १. कुश्ती लड़नेवाला बली पुरुष। कुश्तीबाज। बलवान और दाँवपेंच में अभ्यस्त। मल्ल। २. पहलवान तथा डीलडौलवाला। वह जिसका शरीर यथेष्ट हृष्ट पुष्ट और बलसंयुक्त हो। मोटा तगड़ा और ठोस शरीर का आदमी। जैसे,—वह तो खासा पहलवान दिखाई पड़ता है।

पहलवानी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] १. कुश्ती लड़ने का काम। कुश्ती लड़ना। २. कुश्ती लड़ने का पेशा। मल्ल व्यवसाय। जैसे,—उनके यहाँ तीन पीढ़ियों से पहलवानी होती आ रही है। ३. पहलवान होने का भाव। बल की अधिकता और दाँव पेंच आदि में कुशलता। शरीर, बल और दाँव पेंच आदि का अभ्यास। जैसे,—मुकाबिला पड़ने पर सारी पहलवानी निकल जायगी।

पहलवी—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] दे॰ 'पह्लवी'। उ॰—जैसे पश्चिमी की क्रमशः पुरानी पारसी पहलवी वा वर्तमान फारसी और पश्तो आदि हैं।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ३७७।

पहला¹—वि॰ [सं॰ **प्रथम**, प्रा॰ **पहिलो**] [स्त्री॰ **पहली**] जो क्रम के विचार से आदि में हो। किसी क्रम (देश या काल) में प्रथम गणना में एक के स्थान पर पड़नेवाला। एक की संख्या का पूरक। घटना, अवस्थिति, स्थापना आदि के विचार से जिसका स्थान सबसे आगे हो। प्रथम। अौवल। जैसे, पानीपत का पहला युद्ध, ग्रंथमाला की पहली पुस्तक, पाँत का पहला आदमी आदि।

पहला†²—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ **पहल**] जमी हुई पुरानी रूई। पहल।

पहलाद†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **प्रह्लाद**] दे॰ 'प्रह्लाद'। उ॰—चंद मरै सूरज मरे, मरिहै जिमी अकास। ध्रू पहलाद अभीवना, परे काल की फाँस।—घट॰, पृ॰ २३५।

पहलुक†—वि॰ [हिं॰ **पहले**] पहले का। प्राथमिक। उ॰—पहलुक परिचय पेम क संचय, रजनी आध समाजे।—विद्यापति, पृ॰ ६०।

पहलू—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] १. शरीर में काँख के नीचे वह स्थान जहाँ पसलियाँ होती हैं। बगल और कमर के बीच का वह भाग जहाँ पसलियाँ होती हैं। कक्ष का अधोभाग। पार्श्व। पाँजर।

मुहा॰—(किसी का) **पहलू गरम करना** = किसी के शरीर से विशेषत. प्रेयसी या प्रेमपात्र का प्रेमी के शरीर से सटकर बैठना। किसी के पहलू से अपना पहलू सटा या लगाकर बैठना। किसी के अति समीप बैठकर उसे सुखी करना। (किसी से) **पहलू गरम करना** = किसी को विशेषतः प्रेयसी या प्रेमपात्र को शरीर से सटाकर बैठाना। किसी को अपनी बगल में इस प्रकार बैठाना कि उसका पहलू अपने पहलू से लगा रहे। मुहब्बत से बैठाना। **पहलू में बैठना** = किसी के पहलू से अपना पहलू लगाकर बैठना। किसी का पहलू गरम करना = बिलकुल सटकर बैठना। अति समीप बैठना। **पहलू में बैठाना** = किसी के पहलू को अपने पहलू से लगाकर बैठाना। बिलकुल सटाकर बैठाना। अति समीप बैठाना। **पहलू में रहना** = पहलू में बैठा रहना। पहलू गरम करना। लगा या सटकर रहना। आस पास रहना। अति समीप रहना।

२. किसी वस्तु का दायाँ अथवा बायाँ भाग। पार्श्व भाग। बाजू। बगल। ३. सेना का दाहना या बायाँ भाग। सैन्यपार्श्व। फौज का पहलू। जैसे,—वह अपने दो हजार सवारों के साथ शत्रुसेना के दाएँ पहलू पर बाज की तरह टूट पड़ा।

मुहा॰—**पहलू दबाना** = (१) आक्रमणकारी सेना का विपक्षी की सेना अथवा नगर के एक ओर बराबर में पहुँच जाना या आ पड़ना। अपनी सेना को बढ़ाते हुए विपक्ष की सेना के या नगर के दाहने या बाएँ पहुँच जाना। शत्रु की सेना या नगर पर एक ओर से आक्रमण कर देना। जैसे,—सायंकाल से कुछ पहले ही उसने शाही फौज का पहलू जा दबाया। (२) अपनी सेना के एक पहलू को कुछ पीछे रखते और दूसरे को आगे करते हुए, चढ़ाई में आगे बढ़ना। एक पहलू को दबाते और दूसरे को उभारते हुए आगे बढ़ना। पहलू बचाना = (१) मुठ भेड़ बचाते हुए निकल जाना। कतराकर

निकल जाना। (२) किसी काम से जी चुराना। टाल जाना। जैसे,—जब जब ऐसा मौका आता है तब तब आप पहलू बचा जाते हैं। पहलू पर होना = सहायक होना। मददगार होना। पक्ष पर होना। जैसे,—तुम्हारे पहलू पर आज कौन है ?

४. करवट। बल। दिशा। तरफ। जैसे,—(क) किसी पहलू चैन नहीं पड़ता। (ख) हर पहलू मे देख लिया, चीज अच्छी है। ५. पड़ोस। आसपास। किसी के प्रति निकट का स्थान। पार्श्व।

मुहा०—पहलू बसाना = किसी के समीप मे जा रहना। पड़ोस आबाद करना। पड़ोसी बनना।

६. [वि० पहलूदार] किसी वस्तु के पृष्ठ देश पर का समतल कटाव। पहल। जैसे, इस खभे में आठ पहलू निकालो।

क्रि० प्र०—तराशना।—निकालना।

७. विचारणीय विषय का कोई एक अंग। किसी वस्तु के संबंध में उन बातों मे से एक जिनपर अलग अलग विचार किया जा सकता हो अथवा करने का प्रयोजन हो। किसी विषय के उन कई रूपों में से एक जो विचारदृष्टि से दिखाई पड़े। गुण, दोष, भलाई, बुराई आदि की दृष्टि से किसी वस्तु के भिन्न भिन्न अग। पक्ष। जैसे,—(क) अभी आपने इस मामले के एक ही पहलू पर विचार किया है और पहलुओं पर भी विचार कर लीजिए तब कोई मत स्थिर कीजिए। (ख) उठ चलने का सोचता था पहलू। —नसीम (शब्द०)। ८. संकेत। गुप्त सूचना। गूढ़ाशय। वाक्य का ऐसा आशय जो जान बूझकर गुप्त रखा गया हो और बहुत सोचने पर खुले। किसी वाक्य या शब्द के साधारण अर्थ से भिन्न और किंचित् छिपा हुआ दूसरा अर्थ। ध्वनि। व्यंग्यार्थ। उ०—खोटी बातें हैं और पहलूदार। हाँ तेरे दिल में सीमबर है। —अज्ञातकवि (शब्द०) ९. युक्ति। ढंग। तरकीब (को०)। १०. बहाना। मिस। व्याज (को०)।

पहले—अव्य० [हिं० पहला] १ आरंभ में। सर्वप्रथम। आदि में। शुरू में। जैसे,—यहाँ आने पर पहले आप किसके यहाँ गए ?

यौ०—पहले पहल।

२. देशक्रम में प्रथम। स्थिति में पूर्व। जैसे,—उनका मकान मेरे मकान से पहले पड़ता है। ३. कालक्रम में प्रथम। पूर्व में। आगे। पेश्तर। जैसे—(क) पहले नमकीन खा लो तब मीठा खाना। (ख) यहाँ आने के पहले आप कहाँ रहते थे ? ४. बीते समय में। पूर्वकाल में। गत काल में। अगले जमाने में। जैसे—(क) पहले ऐसी बातें सुनने में भी नहीं आती थी। (ख) अजी पहले के लोग अब कहाँ हैं ?

पहलेज—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का खरबूजा जो कुछ लंबोतरा होता है। यह स्वाद में गोल खरबूजे की अपेक्षा कुछ हीन होता है।

पहले पहल—अव्य० [हिं० पहले] पहली बार। सबसे पहले। सर्वपूर्व। सर्वप्रथम। औवल या पहली मरतबा। जैसे,—जब मैंने पहले पहल आपके दर्शन किए थे तबसे आप बहुत कुछ बदल गए हैं।

पहलौंठा—वि [हिं० पहला+औंठा (प्रत्य०)] दे० 'पहलोठा'।

पहलौंठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहला+औंठी (प्रत्य०)] दे० 'पहलोठी'।

पहलौठा—वि० [हिं० पहला+औठा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० पहलोठी] पहली बार के गर्भ से उत्पन्न (लड़का)। प्रथम गर्भजात।

पहलौठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहलौठा] सबसे पहली जनन क्रिया। सबसे पहले गर्भमोचन। प्रथम प्रसव। पहले पहल बच्चा जनना। जैसे —यह उनका पहलौठी का लड़का है।

पहा‡—संज्ञा पु० [स० प्रभा, या देश०] १. ज्योति। प्रकाश। २. प्रतिज्ञा। प्रण (लाक्ष०)। उ०—नेम धारियो नरेस पहा न को चढ़ै पेस। देख कहैं सबो देस लत्री बीज गयो खेस।—रघु० रू०, पृ० ७६।

पहाऊ—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभात] प्रभाती। भोर के समय गाया जानेवाला गीत। उ०—सुंदरदास पहाऊ गावै माँगत हहीं जु दरसन पावै।—सुंदर० ग्रं०, भा० २. पृ० ८५०।

पहाड़[1]—संज्ञा पु० [स० पाषाण] [स्त्री० अल्पा० पहाड़ी] १ पत्थर, चूने, मिट्टी आदि की चट्टानों का ऊँचा और बड़ा समूह जो प्राकृतिक रीति से बना हो। पर्वत। गिरि। (विशेष विवरण के लिये दे० 'पर्वत')।

मुहा०—पहाड़ उठाना = (१) भारी काम सिर पर लेना। (२) भारी काम पूरा करना। पहाड़ कटना = बहुत भारी और कठिन काम हो जाना। ऐसे काम का हो जाना जो असंभव जान पड़ता रहा हो। बड़ी भारी कठिनाई दूर होना। संकट कटना। पहाड़ काटना = असंभव कार्य कर डालना। बहुत भारी काम कर डालना। ऐसा काम कर डालना जिसके होने की बहुत कम आशा रही हो। संकट से पीछा छुड़ाना। पहाड़ टूटना या टूट पड़ना = अचानक कोई भारी आपत्ति आ पड़ना। महान सकट उपस्थित होना। एकाएक भारी मुसीबत आ पड़ना। जैसे, - बैठे बैठाए बेचारे पर पहाड़ टूट पड़ा। पहाड़ से टक्कर लेना = अपने से बहुत अधिक बलवान् व्यक्ति से शत्रुता ठानना। बड़े से बैर करना। जबरदस्त से मुकाबिला करना। पहाड़ों से सिर टकराना = अपने से बहुत बड़े शक्तिमान् से सघर्ष मोल लेना। उ०—अब आप पहाड़ों से सिर टकराइए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७६।

२. किसी वस्तु का बहुत भारी ढेर। किसी वस्तु का बहुत बड़ा समूह। पहाड़ के समान ऊँची राशि या ढेर। जैसे,—बात की बात में वहाँ पुस्तकों का पहाड लग गया।

पहाड़[2]—वि० १. पहाड़ की तरह भारी (चीज)। बहुत बोझल (चीज)। अतिशय गुरु (वस्तु)। जैसे,—तुम्हे तो पाव भर का बोझ भी पहाड मालूम पड़ता है। २ (वह) जिससे निस्तार न हो सके। (वह) जिसको समाप्त या शेष न कर सके। जैसे,—(क) आज की रात हमारे लिये पहाड़ हो

गई है। (ख) यह कन्या हमारे लिये पहाड़ हो गई है। ३. अति कठिन (कार्य)। अति दुष्कर (काम)। दुरसाध्य (कर्म)। जैसे,—तुम तो हर एक काम ही को पहाड़ समझते हो।

पहाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तार ? या हिं० पहाड़] किसी अंक के गुणनफलों की क्रमागत सूची या नक्शा। किसी अंक के एक से लेकर दस तक के साथ गुणा करने के फल जो सिलसिले के साथ दिए गए हों। गुणनसूची। जैसे, दो का पहाड़ा, चार का पहाड़ा, आदि।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—याद करना।—लिखना।—सुनाना।

पहाड़िया†—वि० [हिं० पहाड़+इया (प्रत्य०)] दे० 'पहाड़ी'।

पहाड़ी¹—वि० [हिं० पहाड़+ई (प्रत्य०)] १. पहाड़ पर रहने या होनेवाला। जो पहाड़ पर रहता या होता हो। जैसे,—पहाड़ी जातियाँ, पहाड़ी मैना, पहाड़ी आलू। २. पहाड़ संबंधी। जिसका पहाड़ से संबंध हो। जैसे, पहाड़ी नदी, पहाड़ी देश।

पहाड़ी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहाड़+ई (प्रत्य०)] १. छोटा पहाड़। २. पहाड़ के लोगों के गाने का एक धुन। ३ संपूर्ण जाति की एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने का समय आधी रात है।

पहाड़ी³—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहाड़ या सं० पर्पटी] एक प्रकार की ओषधि जिसे पर्पटी या जनी भी कहते हैं। वि० दे० 'जनी'।

पहाड़ी इंद्रायन—संज्ञा पुं० [हिं० पहाड़+ई (प्रत्य०)+इंद्रायन] एक प्रकार का खीरा जिसे ऐरालू भी कहते हैं। वि० दे० 'ऐरालू'।

पहाड़ुआ¹—संज्ञा पुं० [देश०] बच्चों का एक प्रकार का खेल जिसे 'आनापानी' भी कहते हैं।

पहाड़ुआ² — वि० [हिं० पहाड़+उआ (प्रत्य०)] पहाड़ संबंधी पहाड़ का। पहाड़ी।

पहार¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पहाड़'। उ०—पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई।—मानस, ५।३४।

पहार²—संज्ञा पुं० [सं० प्रहार, प्रा० पहार] आघात। प्रहार। उ०—हलमिलत सेन रे बान बीर। बरस अनंग सज्जत धीर। मारत कूह बकि लोह सार। जुट्टन मुरारि रिन पहार।—पृ० रा० १।६४६।

पहारा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पहाड़ा'।

पहारी¹—वि० [हिं० पहाड़] दे० 'पहाड़ी'।

पहारी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहाड़] दे० 'पहाड़ी'।

पहारू(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं० पहाड़] दे० 'पहाड़'। उ०—जोबन गरब अपल पहारू।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३५।

पहारू²—संज्ञा पुं० [हिं० पहरा] पहरेदार। रक्षक। पाहरू। उ०—जेहि भिउ महँ होइ सत्त पहारू। परै पहार न बाँके बारू।—जायसी (शब्द०)।

पहिचान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पहचान'।

पहिचानना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पहचानना'।

पहित†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रहित (=सालन)] दाल। पकी हुई दाल। उ०—दधि मधु मिठाई खीर षटरस बिबिध ब्यंजन जे सबै। लाडू जलेबी पहित भात सुभाँति सिद्ध किए तबै।—पद्माकर (शब्द०)।

पहिती—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रहित] दे० 'पहित'। उ०—मूँग माष अरहर की पहिती। चनक कनक सम दारी जी।—रघुराज (शब्द०)।

पहिनना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पहनना'।

पहिनाना—क्रि० स० [हिं० पहिनना] दे० 'पहनाना'।

पहिनावा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पहनावा'।

पहियड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० पथिक, प्रा० पहिय+ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'पथिक'। उ०—मारू मारइ पहियड़ा जउ पहिरइ सोवन्न। दंती, चूड़इ मोतियाँ भीयाँ हेक वरन्न।—ढोला०, दू० ५५७।

पहियाँ(पु)†—अव्य० [हिं० पहँ] दे० 'पहँ'। उ०—कहँ कवि तोष जब जैसो जैगो कीन्हो अब कहत न बतियाँ वै, तैसी हम पहियाँ।—तोष (शब्द०)।

पहिया—संज्ञा पुं० [सं० परिधि ?] १ गाड़ी, इंजन अथवा अन्य किसी कल में लगा हुआ लकड़ी या लोहे का वह चक्कर जो अपनी धुरी पर घूमता है और जिसके घूमने पर गाड़ी या कल भी चलती है। गाड़ी या कल में वह चक्राकार भाग जो गाड़ी या कल के चलने में घूमता है। चक्का। चक्र। उ०—भीगे पहिया मेह में रथ ही देत बताय। नीर भरे बदरान पै अब पहुँचे हम आय।—शकुंतला, पृ० १३४। २. किसी कल का वह चक्राकार भाग जो धुरी पर घूमता है, एवं जिसके घूमने से समस्त कल को गति नहीं मिलती किंतु उसके अंश विशेष अथवा उससे संबद्ध अन्य वस्तु या वस्तुओं को मिलती है। चक्कर।

विशेष—यद्यपि धुरी पर घूमनेवाले प्रत्येक चक्र को पहिया कहना उचित होगा तथापि बोलचाल में किसी चलनेवाली चीज अथवा गाड़ी के जमीन से लगे हुए चक्र को ही पहिया कहते हैं। घड़ी के पहिए और प्रेस या मिल के इंजन के पहिए आदि को, जिनसे सारी कल को नहीं, उसके भागविशेष अथवा उससे संबद्ध अन्य वस्तुओं को गति मिलती है, साधारणतः चक्का कहने की चाल है। पहिया कल का अधिक महत्वपूर्ण अंग है। उसका उपयोग केवल गति देने में ही नहीं होता, गति का घटाना बढ़ाना, एक प्रकार की गति से दूसरे प्रकार की गति उत्पन्न करना, आदि कार्य भी उससे लिए जाते हैं। पुट्ठी आरा, बेलन, आवन, धुरा, खोपड़ा, तितुला, लाग, हाल आदि गाड़ी के पहिए के खास खास पुर्जे हैं। इन सबके संयोग से यह बनता और काम करता है। इनके विवरण मूल शब्दों में देखो।

पहियाह†—संज्ञा पुं० [सं० पथिक, प्रा० पहिय] दे० 'पथिक'। उ०—नरवर देस सुहामणउ, जइ जावउ पहियाह।—ढोला०, दू० ११०।

पहिरन†—संज्ञा पुं० [हिं० पहिरना] पहनकर उतारा हुआ वस्त्र।

संयो० क्रि०—जाना।

६. समझने मे समर्थ होना। किसी विषय की कठिन बातों के समझने की सामर्थ्य रखना। दूर तक डूबना। जानकारी रखना। जैसे,—(क) कानून में ये अच्छा पहुँचते हैं। (ख) इस विषय में वे कुछ भी नहीं पहुँचते।

मुहा०—**पहुँचनेवाला** = पता या खबर रखनेवाला। जानकार। भेद या रहस्य जानने मे समर्थ। छिपी बातों का ज्ञान रखनेवाला। जैसे,—वह बड़ा पहुँचनेवाला है, उससे यह बात अधिक दिनों छिपी न रहेगी। **पहुँचा हुआ** = (१) जिसे सब कुछ मालूम हो। गुप्त और प्रकट सब का जाननेवाला। अभिज्ञ। पता रखनेवाला। (२) दक्ष। निपुण। उस्ताद।

७. आई अथवा भेजी हुई चीज किसी को मिलना। प्राप्त होना। मिलना। जैसे,—खबर पहुँचना, सलाम पहुँचना। ८. परिणाम के रूप मे प्राप्त होना। अनुभव में आना। अनुभूत होना। जैसे,—(क) आपके वचनों से मुझे बड़ा सुख पहुँचा। (ख) आपकी दवा से उन्हे कोई लाभ नहीं पहुँचा। ९. किसी विषय में किसी के बराबर होना। समकक्ष होना। तुल्य होना। जैसे,—किसी हिंदी कवि की कविता तुलसीदास की कविता को नहीं पहुँचती।

पहुँचा—संज्ञा पुं० [सं० प्रकोष्ठ] [अल्पा स्त्री० पहुँची] हाथ की कुहनी के नीचे का भाग। बाहु के नीचे का वह भाग जो जोड़ पर मोटा और आगे की ओर पतला होता है। अग्रबाहु और हथेली के बीच का भाग कलाई। गट्टा। मणिबंध।

मुहा०—**पहुँचा पकड़ना** = बलात् कुछ माँगने, पूछने अथवा तकाजा या झगड़ा करने के लिये किसी को रोक रखना। जैसे,—जब तुमने किसी का कर्ज नहीं खाया है तब तुम्हारा पहुँचा कौन पकड सकता है ?

पहुँचाना—क्रि० स० [हिं० पहुँच का सकर्मक रूप] १. किसी वस्तु या व्यक्ति को एक स्थान से ले जाकर दूसरे स्थान पर प्राप्त या प्रस्तुत कराना। किसी उद्दिष्ट स्थान तक गमन कराना। उपस्थित कराना। ले जाना। जैसे,—उनका नौकर मेरी किताब पहुँचा गया। २. किसी के साथ जाना। किसी के साथ इसलिये जाना जिसमें वह अकेला न पड़े। शिष्टाचार के लिये भी ऐसा किया जाता है। उ०—जरा आप ही चलकर मुझे वहाँ पहुँचा आइए।

संयो० क्रि०—देना।

३ किसी को स्थिति विशेष मे प्राप्त कराना। किसी को विशेष अवस्था तक ले जाना। जैसे,—(क) उन्हे इस उच्च पद तक पहुँचानेवाले आप ही हैं। (ख) उन्होने चिकित्सा न करके अपने भाई को इस दुरवस्था को पहुँचा दिया।

संयो० क्रि०—देना।

४. प्रविष्ट कराना। घुसाना। बैठाना। जैसे,—आँखों में तरी पहुँचाना, बरतन की पेंदी में गरमी पहुँचाना। ५. कोई चीज लाकर या ले जाकर किसी को प्राप्त कराना। जैसे,—संध्या तक यह खबर उन्हें पहुँचा देना। ६. परिणाम के रूप में प्राप्त कराना। अनुभव कराना। जैसे,—(क) उन्होंने अपने उपदेशों से मुझे बड़ा लाभ पहुँचाया। (ख) आपकी लापरवाही ने उन्हे बहुत हानि पहुँचाई। ७. किसी विषय में किसी के बराबर कर देना। समकक्ष कर देना। समान बना देना।

संयो० क्रि०—देना।

पहुँची—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहुँचा] हाथ की कलाई पर पहनने का एक आभूषण जिसमे बहुत से गोल या कँगूरेदार दाने कई पंक्तियों में गूँथे हुए होते हैं। उ०—पग नूपुर औ पहुँची कर कंजन, मंजु बनी मनिमाल हिए। नव नील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकैं नृप गोद लिए। —तुलसी ग्रं०, पृ० १५५। २ युद्ध काल में कलाई पर उसकी रक्षा के लिये, पहनने का लोहे का एक प्रकार का आवरण। उ०—सजे सनाहट पहुँची टोपा। लोहसार पहिरे सब ओपा। —जायसी (शब्द०)।

पहु[१]—संज्ञा पुं० [सं० प्रभु, प्रा० पहु] प्रभु। प्रिय। स्वामी। उ०—कौन गुन पहु परबस भेल सजनी, बुझलि तनिक मल मंद। —विद्यापति, पृ० १२६।

पहु[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभा] दे० 'पौ'। उ०—पहु फट्टत सवितर उवत, पहुवर मिल्लव धाय। —पृ० रासो, पृ० १४१।

पहुनई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहुनाई] दे० 'पहुनाई'। उ०—बारंबार पहुनई ऐहैं राम लखन दोऊ भाई। —तुलसी (शब्द०)।

पहुना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० पाहुना'।

पहुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहुना+ई (प्रत्य०)] किसी के पाहुने होने का भाव। अतिथि रूप मे कहीं जाना या आना। मेहमान होकर जाना या आना।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।

मुहा०—**पहुनाई करना** = दूसरो के यहाँ खाते फिरना। आतिथ्य पर चैन करना। भोज या दावतें उड़ाना। जैसे,—आजकल तो तुम खूब पहुनाई करते हो।

२. आए हुए व्यक्ति का भोजन पान आदि से सत्कार करना। अतिथिसत्कार। मेहमानदारी। खातिर तवाजा। उ०—(क) घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे भइ जहँ जहँ पहुनाई। —तुलसी (शब्द०)। (ख) विविध भाँति होइहि पहुनाई। —तुलसी (शब्द)।

पहुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहुनाई] दे० 'पहुनाई'।

पहुन्नी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह पच्चर जो पल्ला या बरन आदि चीरते समय चिरे हुए अंश के बीच में इसलिये दे देते हैं कि आरे के चलाने के लिये यथेष्ट अंतर रहे।

पहुप(५)†—संज्ञा पुं० [सं० पुष्प] दे० 'पुष्प'। उ०—अहो बड़ा मैं सपना देखा। बादल उमंग पहुप की रेखा। —कबीर सा०, पृ० ६०।

पहुम—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पुहमी'।

पहुमि—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पुहमी'। उ०—दीपति पैल विसार

उठती सी। पहुमि जात नीचे खसती सी। —शकुंतला, पृ० १३४।

पहुमी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पुहमी'।

पहुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रहर, प्रा० पहर] दे० 'प्रहर'। उ०—पहुर रात पाछिली राज आए डेरा मधि। बढ़िय काम कामना भई पुरिषातन की सिधि। —पृ० रा०, १।४०७।

पहुरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह चिपटी टाँकी जिससे गड़े हुए पत्थर चिकने किए जाते हैं। मठरनी।

पहुला†—संज्ञा पुं० [सं० प्रफुल्ल] कुमुदिनी। कोई। उ०—पहुला हार हिऐं लसै सन की बेंदी भाल। राखति खत खरे खरे खरे उरोजनु बाल। —बिहारी (शब्द०)।

पहुवि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथिवी, प्रा० पहुवी] दे० 'पुहमी'। उ०—रहि रहि कामणी प्रीत नु मंड। उलगि जाउ पहुवि घर छंड। —बी० रासो, पृ० ५२।

पहूँचना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पहुँचना'। उ०—तहँ चितउर गढ़ देखउँ ऊँचा। ऊँचराज सरि तोहि पहूँचा। —जायसी ग्रं० ३०५।

पहूँतना‡—क्रि० स० [देश०] दे० 'पहुँचना'। उ०—जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै, आव घटै तन छीज। अंतकाल दिन आइ पहूता, दादू ढील न कीज। —दादू०, पृ० २६६।

पहूर‡—संज्ञा [सं० प्रहर, प्र० पहर] पुं० दे० 'प्रहर'। उ०—आज नीरालइ, सीय पड़यो, च्यारि पहूर माँहीं मू मीली अंख। —बी० रासो, पृ० ४८।

पहेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रहेलिका] दे० 'पहेली'।

पहेली—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रहेलिका] १. ऐसा वाक्य जिसमें किसी वस्तु का लक्षण घुमा फिराकर अथवा किसी भ्रामक रूप में दिया गया हो और उसी लक्षण के सहारे उसे बूझने अथवा उसका नाम बताने का प्रस्ताव हो। किसी वस्तु या विषय का ऐसा वर्णन जो दूसरी वस्तु या विषय का वर्णन जान पड़े और बहुत सोच विचार से उसपर घटाया जा सके। बुझौवल।

क्रि० प्र०—बुझाना।—बूझना।

विशेष—पहेलियों की रचना में प्राय: ऐसा करते हैं कि जिस विषय की पहेली बनानी होती है उसके रूप, गुण, कार्य, आदि को किसी अन्य वस्तु के रूप, गुण, कार्य बनाकर वर्णन करते हैं जिससे सुननेवाले को थोड़ी देर तक वही वस्तु पहेली का विषय मालूम होती है। पर समस्त लक्षण और और जगह घटाने से वह अवश्य समझ सकता है कि इसका लक्ष्य कुछ दूसरा ही है। जैसे, पेड़ में लगे हुए भुट्टे की पहेली है—'हरी थी मन भरी थी। राजा जी के बाग में दुशाला ओढ़े खड़ी थी।' श्रावण मास में यह किसी स्त्री का वर्णन जान पड़ता है। कभी कभी ऐसा भी करते हैं कि कुछ प्रसिद्ध वस्तुओं की प्रसिद्ध विशेषताएँ पहेली के विषय की पहचान के लिये देते हैं और साथ ही यह भी बता देते हैं कि वह इन वस्तुओं में से कोई नहीं है। जैसे, धागे से युक्त सुई की पहेली —'एक नयन बाय स नहीं, बिल चाहत नहिं नाग। घटै बढ़ै नहिं चंद्रमा, चढ़ी रहत सिर पाग'। कुछ पहेलियों में उनके विषय का नाम भी रख देते हैं, जैसे,—'देखी एक अनोखी नारी। गुण उसमें एक सबसे भारी। पढ़ी नहीं यह अचरज आवे। मरना जीना तुरत बतावे।' इस पहेली का उत्तर नाड़ी है जो पहेली के नारी शब्द के रूप में वर्तमान है। जिन शब्दों द्वारा पहेली बनानेवाला उसका उत्तर देता है वे द्व्यर्थक होते हैं जिसमें दोनों ओर लगकर बूझने की चेष्टा करनेवालों को बहका सकें। अलंकार शास्त्र के आचार्यों ने इस प्रकार की रचना को एक अलंकार माना है। इसका विवरण 'प्रहेलिका' शब्द में मिलेगा। बुद्धि के अनेक व्यायामों में पहेली बूझना भी एक अच्छा व्यायाम है। बालकों को पहेलियों का बड़ा चाव होता है। इससे मनोरंजन के साथ उनकी बुद्धि की सामर्थ्य भी बढ़ती जाती है। युवक, प्रौढ़ और वृद्ध भी अकसर पहेलियाँ बूझ बुझाकर अपना मनोरंजन करते हैं।

२ कोई बात जिसका अर्थ न खुलता हो। कोई घटना या कार्य जिसका कारण, उद्देश्य आदि समझ में न आते हों। घुमाव फिराव की बात। गूढ़ अथवा दुर्ज्ञेय व्यापार। कोई घटना जिसका भेद न खुलता हो। समझ मे न आनेवाला विषय। समस्या। जैसे,—(क) तुम्हारी तो हर एक बात ही पहेली होती है। (ख) कल रात की घटना सचमुच ही एक पहेली है।

मुहा०—पहेली बुझाना = अपने मतलब को घुमा फिराकर कहना। किसी अभिप्राय को ऐसी शब्दावली में कहना कि सुननेवाले को उसके समझने में बहुत हैरान होना पड़े। चक्करदार बात करना। जैसे,—तुम्हारी तो आदत ही पहेली बुझाने की पड़ गई है, सीधी बात कभी मुँह से निकलती ही नहीं।

पहोंच‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहुँचना] दे० 'पहुँच'। उ०—ताते वाही घरी पहोंच लिखि दिए। —दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६।

पहोंचना‡—क्रि० अ० [हिं० पहुँचना] दे० 'पहुँचना'। उ०—जो महाराज! मेरो कौन अपराध है सो घर न पहोंचन पायो। —दो० सौ बावन०, भा० २, पृ० १०७।

पहोंचाना‡—क्रि० स० [हिं० पहुँचाना] दे० 'पहुँचाना'। उ०—वे तुमको सरे दगरे लों पहोंचाई आवेंगे। —दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ७६।

पहोंचावना‡—क्रि० स० [हिं० पहुँचाना] दे० 'पहुँचाना'। उ०—सब भीतरिया अपने अपने ओसरे पहोंचावन लगे। —दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१७।

पहोप—‡संज्ञा पुं० [सं० पुष्प] फूल। पुष्प। पुहुप। उ०—घर घर ए मा दुंदुभी बजाय पहोप अंजुली बरखाइयाँ। —दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५०।

पह्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन जाति। प्राचीन पारसी या ईरानी।

विशेष—मनुस्मृति, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन पुस्तकों में जहाँ जहाँ खस, यवन, शक, कांबोज, वाह्लीक, पारद आदि भारत के पश्चिम में बसनेवाली जातियों का उल्लेख है वहाँ वहाँ पह्लवों का भी नाम आया है उपर्युक्त तथा अन्य संस्कृत ग्रंथों में पह्लव शब्द सामान्य रीति से पारस निवासियों या ईरानियों के लिये व्यवहृत हुआ है मुसलमान ऐतिहासिकों ने भी इसको प्राचीन पारसीकों का नाम माना है। प्राचीन काल में फारस के सरदारों का 'पहलवान' कहलाना भी इस बात का समर्थक है कि पह्लव पारसीकों का ही नाम है। शाशनीय सम्राटों के समय में पारस की प्रधान भाषा और लिपि का नाम पह्लवी पड़ चुका था। तथापि कुछ युरोपीय इतिहासविद् 'पह्लव' सारे पारस निवासियों की नहीं केवल पार्थिया निवासियों पारदों—की अपभ्रंश संज्ञा मानते हैं। पारस के कुछ पहाड़ी स्थानों में प्राप्त शिलालेखों में 'पार्थव' नाम की एक जाति का उल्लेख है। डा० हाग आदि का कहना है कि यह 'पार्थव' पार्थियंस (पारदों) का ही नाम हो सकता है और पह्लव' इसी पार्थव का वैसा ही फारसी अपभ्रंश है जैसा अवेस्ता के मिथ्र (वै० मित्र) का मिहिर। अपने मत की पुष्टि में ये लोग दो प्रमाण और भी देते हैं। एक यह कि अरमनी भाषा के ग्रंथों में लिखा है कि अरसक (पारद) राजाओं की राज-उपाधि 'पह्लव' थी। दूसरा यह कि पार्थियावासियों को अपनी शूर वीरता और युद्धप्रियता का बड़ा घमंड था, और फारसी के 'पहलवान' और अरमनी के 'पहलवीय' शब्दों का अर्थ भी शूरवीर और युद्धप्रिय है। रही यह बात कि पारसवालों ने अपने आपके लिये यह संज्ञा क्यों स्वीकार की और आसपास वालों ने उनका इसी नाम से क्यों उल्लेख किया। इसका उत्तर उपर्युक्त ऐतिहासिक यह देते हैं कि पार्थियावालों ने पाँच सौ वर्ष तक पारस में राज्य किया और रोमनों आदि से युद्ध करके उन्हें हराया। ऐसी दशा में 'पह्लव' शब्द का पारस से इतना घनिष्ठ संबंध हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। संस्कृत पुस्तकों में सभी स्थलों पर 'पारद' और 'पह्लव' को अलग अलग दो जातियाँ मानकर उनका उल्लेख किया गया है। हरिवंश पुराण में महाराज सगर के द्वारा दोनों की वेशभूषा अलग अलग निश्चित किए जाने का वर्णन है। पह्लव उनकी आज्ञा से 'श्मश्रुधारी' हुए और पारद 'मुक्तकेश' रहने लगे। मनुस्मृति के अनुसार 'पह्लव' पारद, शक आदि के समान आदिम क्षत्रिय थे और ब्राह्मणों के अदर्शन के कारण उन्हीं की तरह संस्कारभ्रष्ट हो शूद्र हो गए। हरिवंश पुराण के अनुसार महाराज सगर ने इन्हें बलात् क्षत्रियधर्म से पतित कर म्लेच्छ बनाया। इसकी कथा यों है कि हैहयवंशी क्षत्रियों ने सगर के पिता बाहु का राज्य छीन लिया था। पारद, पह्लव, यवन, कांबोज आदि क्षत्रियों ने हैहयवंशियों की इस काम में सहायता की थी। सगर ने समर्थ होने पर हैहयवंशियों को हराकर पिता का राज्य वापस लिया। उनके सहायक होने के कारण 'पह्लव' आदि भी उनके कोपभाजन हुए। ये लोग राजा सगर के भय से भागकर उनके गुरु वशिष्ठ की शरण गए। वशिष्ठ ने इन्हें अभयदान दिया। गुरु का वचन रखने के लिये सगर ने इनके प्राण तो छोड़ दिए पर धर्म ले लिया, इन्हें क्षात्रधर्म से बहिष्कृत करके म्लेच्छत्व को प्राप्त करा दिया। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार 'पह्लवों' की उत्पत्ति वशिष्ठ की गौ शबला के हुंभारव (रँभाने) से हुई है। विश्वामित्र के द्वारा हरी जाने पर उसने वशिष्ठ की आज्ञा से लड़ने के लिये जिन अनेक क्षत्रिय जातियों को अपने शब्द से उत्पन्न किया 'पह्लव' उनमें पहले थे।

२. एक प्राचीन देश जो 'पह्लव' जाति का निवासस्थान था। वर्तमान पारस या ईरान का अधिकांश।

विशेष—फारसी कोशों में 'पह्लव' प्राचीन पारस के अंतर्गत एक प्रदेश तथा नगर का नाम है। कुछ लोगों के मत से इस्फाहान, राय, हमदान, निहावंद और आजरबायजान का सम्मिलित भूभाग ही उस काल का 'पह्लव' प्रदेश है। पर ऐसा होने से 'पह्लव' को मीडिया या माद का ही नामांतर मानना पड़ेगा। परंतु किसी भी पारसी या अरब इतिहास लेखक ने उसका 'पह्लव' के नाम से उल्लेख नहीं किया है। पारद और पह्लव को एक कहनेवाले युरोपीय विद्वान् 'पह्लव' को पार्थिया प्रदेश का ही फारसी नाम मानते हैं। संस्कृत पुस्तकों में जिस तरह जाति के अर्थ में 'पह्लव' का साधारणतः पारस निवासियों के लिये प्रयोग हुआ है उसी तरह देश अर्थ में भी मोटे प्रकार से पारस के लिये ही उसका व्यवहार हुआ है।

पह्लवी—संज्ञा स्त्री० [फा० अथवा सं० पह्लव] फारस या ईरान की एक प्राचीन भाषा। अति प्राचीन पारसी या जेंद अवस्ता की भाषा और आधुनिक फारसी के मध्यवर्ती काल की फारस की भाषा।

विशेष—पारसियों के प्राचीन धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रंथ इसी भाषा में मिलते हैं। उनकी मूल धर्मपुस्तक 'जेंद अवस्ता' की टीका और अनुवाद आदि के रूप में जितनी प्राचीन पुस्तकें मिलती हैं, अधिकांश सभी इसी भाषा में हैं। शाशान वंशीय सम्राटों के समय में यही राजकाज की भाषा थी। अतः इसकी उत्पत्ति का काल पारद सम्राटों का शासनकाल हो सकता है। इस भाषा में सेमिटिक शब्दों की बहुत भरमार है। शाशानीय काल के पहले की पह्लवी में ये शब्द और भी अधिक हैं। इसमें व्यवहृत प्रायः समस्त सर्वनाम, अव्यय, क्रियापद, बहुत से क्रियाविशेषण और संज्ञापद अनार्य या शामी हैं। इसके लिखने की दो शैलियाँ थीं। एक में शामी शब्दों की विभक्तियाँ भी शामी होती थीं; दूसरी में शामी शब्दों के साथ खाल्दीय विभक्ति लगती थी। इन दोनों रीतियों में यह भी प्रभेद था कि पहली में क्रियापदों का कोई रूपांतर न होता था परंतु दूसरी में उनके साथ अनेक प्रकार के पारसी प्रत्यय जोड़े जाते थे। पह्लवी ग्रंथसमूह मुख्यतः दो भागों में विभक्त है।

एक भाग अवस्ता शास्त्र का अनुवाद मात्र है। दूसरे भाग के ग्रंथों में धर्म की व्याख्या और ऐतिहासिक उपाख्यान हैं। शामी शब्दों की अधिकता और विशेषतः उपर्युक्त शैलीभेद के कारण कुछ विद्वान यह मानने लगे हैं कि पहलवी किसी काल में किसी जाति की बोलचाल की भाषा नहीं थी, पारसवालों ने जब शामी (यहूदी अरब) लोगों से लिपिविद्या सीखी और शामी वर्णमाला के द्वारा वे अपनी भाषा लिखने लगे उस समय उन लोगों ने अपनी भाषा के उन सब शब्दों को लिखने का प्रयास नहीं किया जिसके समानार्थक शब्द उन्हें शामी भाषा में मिल सके। ऐसे शब्द उन्होंने शामी के ही ज्यों के त्यों उठाकर अपनी भाषा में धर लिए। पर वे लिखते तो थे शामी शब्द और पढ़ते उस शब्द का समानार्थक अपनी भाषा का शब्द। जैसे, वे लिखते 'मालिक' जिसका अर्थ शामी में राजा है और पढ़ते थे अपनी भाषा का 'शाह' शब्द। बहुत दिनों तक इस प्रकार लिखते पढ़ते रहने से जिस विलक्षण संकर भाषा का गठन हुआ वही उक्त विद्वानों की सम्मति में पह्लवी है।

पह्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुंभी।

पांक्त—वि० [सं० **पाङ्क्त**] १. पंक्ति से संबंध रखनेवाला। पंक्ति संबंधी। २. पंक्ति का। ३. पाँच बार होनेवाला। पाँच विभागों में होनेवाला (यज्ञ)। ४. दस अवयवोंवाला। दस अंगवाला [को०]।

पांक्तेय—वि० [सं० **पाङ्क्तेय**] पंक्ति में बैठनेवाला। पंक्ति में संमिलित होने लायक। पंगत या पाँत में औरों के साथ बैठने योग्य [को०]।

पांक्त्य—वि० [सं० **पाङ्क्त्य**] दे० 'पांक्तेय'।

पांगुल्य—संज्ञा पुं० [सं० **पाङ्गुल्य**] लँगड़ापन। पंगुत्व। पंगुल होने का भाव [को०]।

पांचकपाल—वि० [सं० **पाञ्चकपाल**] पंचकपाल संबंधी। पंचकपाल यज्ञ संबंधी [को०]।

पांचजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाञ्चजनी**] भागवत के अनुसार पंचजन नामक प्रजापति की कन्या का नाम। इसका दूसरा नाम असिक्नी भी था।

पांचजन्य—संज्ञा पुं० [सं० **पाञ्चजन्य**] १. कृष्ण के बजाने का शंख।

विशेष—इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह शंख उन्हें पंचजन नामक दैत्य के पास उस समय मिला था जब वे गुरुदक्षिणा में अपने गुरु सांदीपन मुनि को उनका मृत पुत्र ला देने के लिये समुद्र में घुसे थे। कृष्ण ने पंचजन को मारकर अपने गुरु के पुत्र को भी छुड़ाया था और उसका शंख भी ले लिया था।

यौ०—**पांचजन्यधर** = कृष्ण का एक नाम।

२. विष्णु के शंख का नाम। ३. पुराणानुसार हारीत मुनि के वंश के दीर्घबुद्धि नामक ऋषि का एक नाम। ४. अग्नि। ५. पुराणानुसार जंबूद्वीप के एक भाग का नाम।

पांचदश—वि० [सं० **पाञ्चदश**] [वि० स्त्री० **पांचदशी**] १. मास के पंद्रहवें दिन से संबंध रखनेवाला। २. साम के पंद्रह मंत्रों द्वारा दीप्त। [को०]।

पांचदश्य—संज्ञा पुं० [सं० **पाञ्चदश्य**] पंद्रह का समूह [को०]।

पांचनद—संज्ञा पुं० [सं० **पाञ्चनद**] १. पंचनद प्रदेश। पंजाब प्रांत। २. पंचनद नरेश। ३. पंजाब के निवासी [को०]।

पांचभौतिक[1]—संज्ञा पुं० [सं० **पाञ्चभौतिक**] पाँचो भूतों या तत्वों से बना हुआ शरीर।

पांचभौतिक[2]—वि० [वि० स्त्री० **पाञ्चभौतिकी**] पाँच तत्वों या पंच महाभूतों द्वारा निर्मित। जैसे, पांचभौतिकी सृष्टि।

पांचयज्ञिक[1]—वि० [सं० **पाञ्चयज्ञिक**] [वि० स्त्री० **पांचयज्ञिकी**] पंच महायज्ञ संबंधी।

पांचयज्ञिक[2]—संज्ञा पुं० पाँच महायज्ञों में से कोई एक [को०]।

पांचरात्र—संज्ञा पुं० [सं० **पाञ्चरात्र**] १. एक वैष्णव संप्रदाय। २. पांचरात्र संप्रदाय का सिद्धांत [को०]।

पांचलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाञ्चलिका**] कपड़े की बनी हुई गुड़िया।

पांचवर्षिक—वि० [सं० **पाञ्चवर्षिक**] [वि० स्त्री० **पांचवर्षिकी**] पाँच बरस का। पंचवर्षीय [को०]।

पांचशाब्दिक—संज्ञा पुं० [सं० **पाञ्चशाब्दिक**] १. करताल, ढोल, बीन, घंटा और भेरी आदि पाँच प्रकार के बाजे। २. पाँच प्रकार का संगीत जो स्कंद पुराण में अंगज, कर्मज, तंत्रज, वाद्यज और फूत्कृत कहा गया है (को०)।

पांचार्थिक—संज्ञा पुं० [सं० **पाञ्चार्थिक**] शैव। शिवभक्त [को०]।

पांचाल[1]—संज्ञा पुं० [सं० **पाञ्चाल**] १. बढ़ई, नाई, जुलाहा, धोबी और चमार इन पाँचों का समुदाय। २. भारत के पश्चिमोत्तर का एक देश। विशेष—दे० 'पंचाल'। ३. पांचाल का नरेश।

पांचाल[2]—वि० [वि० स्त्री० **पांचाली**] १. पांचाल देश का रहनेवाला। २. पांचाल देश संबंधी।

पांचालक[1]—वि० [सं० **पाञ्चालक**] पंजाब के निवासियों से संबद्ध। पांचाल देश का [को०]।

पांचालक[2]—संज्ञा पुं० पंचाल का राजा [को०]।

पांचालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाञ्चालिका**] दे० 'पांचाली'।

पांचाली—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाञ्चाली**] १. गुड़िया। कपड़े की पुतली। पंचालिका। पंचाली। २. साहित्य में एक प्रकार की रीति या वाक्य-रचना-प्रणाली जिसमें बड़े बड़े पाँच छह समासों से युक्त और कांतिपूर्ण पदावली होती है। इसका व्यवहार सुकुमार और मधुर वर्णन में होता है। किसी किसी के मत से गौड़ी और वैदर्भी वृत्तियों के सम्मिश्रण को भी पांचाली कहते हैं। ३. पांडवों की स्त्री द्रौपदी का एक नाम जो पंचाल देश की राजकुमारी थी। ४. छोटी पीपल। ५. इंद्रजाल के छह भेदों में से एक। ६. शास्त्र (को०)। ७. स्वर-साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—

आरोही—सा रे सा रे ग, रे ग रे ग म, ग म ग म प, म प म प ध, प ध प ध नि, ध नि ध नि सा।

अवरोही—सा नि सा नि ध, नि ध नि ध प, ध प ध प म, प म प म ग, म ग म ग रे, ग रे ग रे सा ।

पांड—वि० [सं० पाण्ड] निष्फल । फलरहित [को०] ।

पांडर—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डर] १. कुंद का वृक्ष । २. कुंद का फूल । ३. पानड़ी । ४. सफेद रंग । ५. सफेद रंग का कोई पदार्थ । ६. मरुवा वृक्ष । दौना । ७ महाभारत के अनुसार ऐरावत के कुल में उत्पन्न एक हाथी का नाम । ८. पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो मेरु पर्वत के पश्चिम में है । ९. एक प्रकार का पक्षी । १०. गैरिक । गेरु (को०) । ११ शुक्र । वीर्य (को०) ।

पांडरपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पाण्डरपुष्पिका] शीतला वृक्ष ।

पांडरमुष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पाण्डरमुष्टिका] दे० 'पांडरपुष्पिका' ।

पांडरेतर—वि० [सं० पाण्डरेतर] पांडर अर्थात् श्वेतवर्ण से भिन्न । जो सुफेद न हो ।

पांडव—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डव] १. कुंती और माद्री के गर्भ से उत्पन्न राजा पांडु के पाँचो पुत्र युधिष्ठिर, भीम अर्जुन, नकुल और सहदेव । (इनके जन्मवृत्तांत के लिये दे० 'पांडु' और इनके विशेष चरित् के लिये पृथक् पृथक् इन सबके नाम देखें) । २. पांडु के पाँच पुत्रों में से किसी एक की आख्या । ३. प्राचीन काल में पंजाब का एक प्रदेश जो वितस्ता (झेलम) नदी के तीर पर बसा था । ४. उस प्रदेश में रहनेवाले लोग ।

पांडवनगर—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डवनगर] दिल्ली ।

पांडवश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डवश्रेष्ठ] पांडवों में सबसे बड़े भाई । युधिष्ठिर [को०] ।

पांडवाभील—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डवाभील] कृष्ण ।

पांडवायन—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डवायन] श्रीकृष्ण ।

पांडविक—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डविक] एक प्रकार का चटक पक्षी । गौरा । गौरैया [को०] ।

पांडवीय—वि० [सं० पाण्डवीय] पांडव संबंधी । पांडव का । जैसे, राघवपांडवीय [को०] ।

पांडवेय—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डवेय] १ पांडव । २. अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित ।

पांडित्य—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डित्य] पंडित होने का भाव । विद्वत्ता । पंडिताई ।

पांडिमा—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डिमन्] पांडुता । पांडुत्व [को०] ।

पांडोम—संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार (डिं०) ।

पांडु—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डु] १ पांडुफली । परवल । २. परमल । ३ कुछ लाली लिए पीला रंग । ४ वह जिसका रंग लाली लिए पीला हो । ५. एक नाग का नाम । ६ सफेद हाथी । ७. सफेद रंग । ८ पीलापन लिए सफेद रंग । ९. एक रोग का नाम जिसमें रक्त के दूषित हो जाने से शरीर का चमड़ा पीले रंग का हो जाता है ।

विशेष—सुश्रुत मे लिखा है कि अधिक स्त्रीगमन करने, खटाई और नमक खाने, शराब पीने, मिट्टी खाने, दिन को सोने तथा इसी प्रकार के और कुपथ्य करने से यह रोग हो जाता है। चमड़े का फटना, आँख के गोलक का सूजना और पेशाब पाखाने के रंग का पीला पड़ जाना इस रोग का पूर्वलक्षण है। यह कफज, वातज, पित्तज और सन्निपातज चार प्रकार का होता है । इसके अतिरिक्त भावप्रकाश में इसका एक पाँचवाँ प्रकार मृत्तिकाभक्षणजात भी माना गया है। सुश्रुत ने कामला, कुंतकामला, हलीमक और लाघरक आदि रोगों को इसी के अंतर्गत माना है। इस रोग में रोगी को कर, पीड़ा, शूल, भ्रम, तंद्रा, आलस्य, खाँसी, श्वास, अरुचि और अंगों में सूजन आदि भी होती है ।

१०. प्राचीन काल के एक राजा का नाम जो पांडव वंश के आदिपुरुष थे ।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा बहुत ही विस्तार के साथ दी हुई है । उसमें लिखा है कि जिस समय राजा विचित्रवीर्य युवावस्था में ही क्षय रोगों के कारण मर गए और अंबिका तथा अंबालिका नाम की उनकी दोनों स्त्रियाँ विधवा हो गईं, उस समय विचित्रवीर्य की माता सत्यवती ने अपना वंश चलाने के उद्देश्य से अपने दूसरे पुत्र भीष्म से कहा था कि तुम अंबिका और अंबालिका के साथ नियोग करके संतान उत्पन्न करो। परंतु भीष्म इससे बहुत पहले ही प्रतिज्ञा कर चुके थे कि मैं आजन्म क्वाँरा और ब्रह्मचारी रहूँगा । अतः उन्होंने माता की यह बात तो नहीं मानी पर उन्हें सम्मति दी कि किसी योग्य ब्राह्मण को बुलवाकर और उसे कुछ धन देकर विचित्रवीर्य की स्त्रियों का गर्भाधान करा लो। इसपर सत्यवती ने अपने पहले पुत्र व्यास का जो पराशर ऋषि से उत्पन्न हुए थे, स्मरण किया और उनके आ जाने पर कहा कि तुम एक प्रकार से विचित्रवीर्य के बड़े भाई हो । अतः तुम ही उसकी दोनों विधवाओं से वंशवृद्धि के लिये संतान उत्पन्न करो । व्यास ने अपनी माता की यह बात स्वीकार करते हुए कहा कि पहले दोनों विधवा स्त्रियाँ व्रतपूर्वक रहें तब मैं उन्हें मित्रावरुण के सदृश पुत्र प्रदान करूँगा । लेकिन सत्यवती ने कहा कि राज्य में राजा के न रहने से अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं, अत: तुम अभी इन दोनों को गर्भ धारण कराओ । तदनुसार व्यास ने पहले तो अंबिका के गर्भ से धृतराष्ट्र को उत्पन्न किया। और तब अंबालिका की बारी आई। जब अंबालिका भी ऋतुमती हो चुकी तब व्यासदेव आधीरात के समय उसके पास गए। उनका उग्र रूप देखकर अंबालिका मारे डर के पीली पड़ गई। समय पूरा होने पर अबालिका को पीले रंग का एक लड़का हुआ जिसका नाम 'पांडु' रखा गया। बाल्यावस्था में धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर तीनों को भीष्म ने ही पाला पोसा और पढ़ाया लिखाया था। पांडु का विवाह राजा कुंतिभोज की कन्या कुंती से हुआ था। पीछे से भीष्म ने मद्रकन्या माद्री से इनका एक और विवाह कर दिया था। विवाह के कुछ दिनो के उपरांत पांडु ने समस्त भूमंडल के राजाओं को परास्त करके दिग्विजय किया और बहुत सा धन एकत्र किया। इसके धन से धृतराष्ट्र ने पाँच महायज्ञ किए थे। ६९.मे से

प्रत्येक महायज्ञ में उन्होंने इतना धन दान किया था जिससे सैकड़ों बड़े बड़े अश्वमेघ यज्ञ किए जा सकते थे। कुछ दिनों तक राज्य करने के उपरांत पांडु अपनी दोनों स्त्रियों को साथ लेकर जंगल में जा रहे और वहीं आमोद प्रमोद और शिकार आदि करके रहने लगे। एक बार शिकार में उन्होंने हिरन को हिरनी के साथ मैथुन करते हुए देखा और तुरंत तीर से उस हिरन को मार गिराया। कहते हैं, ये हिरन और हिरनी वास्तव में ऋषिपुत्र किंमिदय और उनकी पत्नी थे। तीर लगते ही उस मृग ने मनुष्यों की बोली में कहा कि तुमने मुझे स्त्री के साथ भोग करते में मारा है अतः तुम भी जब अपनी स्त्री के साथ भोग करोगे तब उसी समय तुम्हारी भी मृत्यु हो जायगी। और जिस स्त्री के साथ भोग करते हुए तुम मरोगे वह तुम्हारे साथ सती होगी। इसपर पांडु बहुत दुःखी हुए और अपनी दोनों स्त्रियों को साथ लेकर नागशत पर्वत पर चले गए। वे सब प्रकार का भोग विलास आदि छोड़कर कठोर तपस्या करने लगे। वहीं एक बार पांडु ने बहुत से ऋषियों के साथ स्वर्ग जाना चाहा था परंतु ऋषियों ने उन्हें मना किया और कहा कि जिसके कोई संतान न हो वह स्वर्ग नहीं जा सकता। इसपर पांडु ने अपनी स्त्री के गर्भ से किसी ब्राह्मण के द्वारा पुत्र उत्पन्न कराने का विचार किया और अपनी स्त्री कुंती से सब हाल कहा। इसपर कुंती ने, जिसे जिस देवता का चाहें स्मरण करके पुत्र प्राप्त करने का वरदान था, धर्म, वायु और इंद्र को आवाहन कर क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्र जने और माद्री ने अश्विनीकुमार के अनुग्रह से नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र पाए। पीछे से ये ही पाँचों पुत्र पांडव कहलाए और इन्होंने कौरवों से युद्ध किया था (दे० 'पांडव')। इसके कुछ दिनों के उपरांत एक बार वसंत ऋतु में पांडु को बहुत अधिक कामपीड़ा हुई। उस समय उन्होंने माद्री के बहुत मना करने पर भी नहीं माना और वे बलपूर्वक उसके साथ भोग करने लगे। किंमिदय ऋषि के शाप के अनुसार उसी समय उनके प्राण निकल गए और माद्री ने भी वहीं अपने प्राण दे दिए। पीछे से लोग पांडु और माद्री को हस्तिनापुर ले गए और वहीं धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर ने दोनों का प्रेतसंस्कार किया।

पांडुकंटक— संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुकण्टक**] अपामार्ग। चिचड़ा।

पांडुकंबल—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुकम्बल**] १. एक प्रकार का पत्थर जो सफेद होता है। २. श्वेतवर्ण का ऊनी कंबल (को०)। ३. राजकीय गज का आवरण। हाथी की झूल (को०)। ४. श्वेतवर्ण का ऊपरी परिधान (को०)।

पांडुकंबली—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुकम्बलिन्**] १ हाथी की झूल। २. वह रथ आदि जिसपर पांडुवर्ण का ओहार या आवरण पड़ा हो (को०)।

पांडुक—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुक**] १. दे० 'पंडुक'। २. दे० 'पांडु'। ३. पांडु वर्ण। पीला रंग। ४. परवल।

पांडुकर्म— संज्ञा पुं० [सं० पाण्डुकर्मन्] सुश्रुत के अनुसार वर्णचिकित्सा का एक अंग जिसमें फोड़े के अच्छे हो जाने पर उसके काले दाग को ओषधि की सहायता से दूर करते और वहाँ के चमड़े को फिर शरीर के वर्ण का कर देते हैं। इसे पांडुकरण भी कहा है।

विशेष—सुश्रुत का मत है कि यदि फोड़े के अच्छे हो जाने पर दुरूढ़ता के कारण उसके स्थान पर काला दाग रह गया हो तो कड़वी तूँबी को तोड़कर उसमें बकरी का दूध डाल दे और उस दूध में सात दिन तक रोहिणी फल भिगोए। इसके बाद उस फल को गीला ही पीसकर फोड़े के दाग पर लगाए तो वह दाग दूर हो जायगा।

पांडुकी—वि० [सं० **पाण्डुकिन्**] पांडुरोगवाला। जिसे पांडु रोग हुआ हो (को०)।

पांडुक्षमा—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाण्डुक्षमा**] पांडु की धरती। हस्तिनापुर का नाम।

पांडुतरु—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुतरु**] धौ का पेड़।

पांडुता—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाण्डुता**] पांडु होने का भाव, धर्म या क्रिया। पांडुत्व। पीलापन।

पांडुतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुतीर्थ**] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

पांडुत्व—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुत्व**] पांडु होने का भाव। पांडुता।

पांडुनाग—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुनाग**] १. पुन्नाग वृक्ष। २. सफेद रंग का हाथी। ३. सफेद रंग का साँप।

पांडुपंचानन रस—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुपञ्चानन रस**] वैद्यक में एक प्रकार का रस जिसे त्रिकटु, त्रिफला, दंतीमूल, चितामूल, हलदी, मानमूल, इंद्रजौ, बच, मोथा आदि ओषधियों को गोमूत्र में पकाकर बनाते हैं और जो पांडु तथा हलीमक आदि रोगों के लिये बहुत ही उपकारक माना जाता है।

पांडुपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाण्डुपत्री**] रेणुका नामक गंधद्रव्य।

पांडुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुपुत्र**] पांडव।

पांडुपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुपृष्ठ**] १. जिसकी पीठ सफेद हो। २. अयोग्य। अकर्मण्य। निकम्मा।

पांडुफल—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुफल**] पटोल। परवल।

पांडुफला—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाण्डुफला**] चिर्भिटी। पांडुफली।

पांडुफली—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाण्डुफली**] चिर्भिटी (को०)।

पांडुभूम—वि० [सं० **पाण्डुभूम**] जहाँ की भूमि श्वेत वर्ण की हो।

पांडुमृत्—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाण्डुमृद्**] १ खड़िया। श्वेत खरी। दुधिया मिट्टी। २. पीली मिट्टी। रामरज।

पांडुमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **पाण्डुमृत्तिका**] दे० 'पांडुमृत्'।

पांडुरंग—संज्ञा पुं० [सं० **पाण्डुरङ्ग**] १. एक प्रकार का साग जो वैद्यक के अनुसार तिक्त और लघु तथा कृमि, श्लेष्मा और कफ का नाश करनेवाला माना जाता है। २ पुराणानुसार विष्णु का एक अवतार।

पांडुर¹—वि० [सं० पाण्डुर] १. पीला । जर्द । २. सफेद । श्वेत ।

पांडुर²—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पीला हो । २. वह जो सफेद हो । ३. धौ का पेड़ । ४. सफेद ज्वार । ५. कबूतर । ६. बगला । ७. सफेद खड़िया । ८. कामला रोग । ९. सफेद कोढ़ । १० कार्तिकेय के एक गण का नाम । ११. पांडु वर्ण या रंग ।

पांडुरक—वि० [सं० पाण्डुरक] पांडुवर्ण का । पांडु रंग का ।

पांडुरद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डुरद्रुम] कुड़े का वृक्ष । कुटज । कुरैया ।

पांडुरपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डुरपृष्ठ] दे० 'पांडुपृष्ठ' ।

पांडुरफली—संज्ञा स्त्री० [सं० पाण्डुरफली] एक प्रकार का छोटा क्षुप ।

पांडुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० पाण्डुरा] १. मषवन । माषपर्णी । २. ककड़ी । ३. बौद्धों में एक देवी या शक्ति का नाम ।

पांडुराग—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डुराग] दौना ।

पांडुरित—वि० [सं० पाण्डुरित] पांडु या पांडुर वर्ण का ।

पांडुरिमा—संज्ञा [सं० पाण्डुरिमन्] १. श्वेत वर्ण । सफेद रंग । २. श्वेत वर्ण युक्त पीत रंग [को०] ।

पांडुरेखु—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डुरेक्षु] सफेद ईख ।

पांडुरोग—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डुरोग] कामला रोग । पीलिया [को०] ।

पांडुलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं० पाण्डुलिपि] लेख आदि का वह पहला रूप जो काट छाँट या घटाने बढ़ाने आदि के लिये तैयार किया जाय । मसौदा ।

पांडुलेख—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डुलेख] पांडुलिपि । मसौदा ।

पांडुलोमशा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पाण्डुलोमशा] मषवन । माषपर्णी ।

पांडुलोमशा²—वि० स्त्री० जिसके रोएँ सफेद हो ।

पांडुलोमा—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं० पाण्डुलोमा] दे० 'पांडुलोमशा ।

पांडुलोह—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डुलोह] चाँदी । रजत [को०] ।

पांडुवा—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डुवा] वह जमीन जिसकी मिट्टी में बालू भी मिली हो । बलुई मिट्टीवाली जमीन । दोमट जमीन ।

पांडुशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं० पाण्डुशर्करा] एक प्रकार का प्रमेह ।

पांडुशर्मिला—संज्ञा स्त्री० [सं० पाण्डुशर्मिला] द्रौपदी ।

पांडुसोपाक—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डुसोपाक] प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति, जिसकी उत्पत्ति मनु के अनुसार वैदेही माता और चांडाल पिता से है । कहते हैं, इस जाति के लोग बाँस की चीजें, दौरियाँ, टोकरे आदि बनाकर अपना निर्वाह करते थे ।

पांडूरा—वि० [सं० पाण्डुरक] श्वेत । सफेद ।—उ० दाँत कवाड्या सिर पांडूरा केस ।—बी० रासो, पृ० ७१ ।

पांडेय—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डेय] दे० 'पाँड़े' ।

पांडो—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डव] दे० 'पांडव' । उ०—बंधु घात कर दोष लगावा । पांडो कहँ बहु काल सतावा ।—कबीर सा०, पृ० ४१८ ।

पांड्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम । २. उस देश का राजा । ३. पांड्य देश के निवासी जन [को०] ।

पांथ—वि० [सं० पान्थ] १. पथिक । उ०—यह प्रोष प्रमोष जायगा; पथ तो पांथ स्वयं बनायगा—। साकेत, पृ० ३६३ । २ वियोगी । विरही । ३. सूर्य । रवि (को०) ।

पांथनिवास—संज्ञा पुं० [सं० पान्थनिवास] सराय । चट्टी ।

पांथशाला—संज्ञा पुं० [सं० पान्थशाला] सराय । चट्टी ।

पांथागार—संज्ञा पुं० [सं० पान्थागार] दे० 'पांथशाला' । उ०—चंपा के पांथागार में पशुपुरी के एक विख्यात रत्नविक्रेता कई दिन से ठहरे थे । —वैशाली०, पृ० २१६ ।

पांशन¹—वि० [सं०] १. तिरस्कार योग्य । तिरस्करणीय । हेय । २. दुष्ट । बदमाश । ३. कलंकित या भ्रष्ट करनेवाला । अपमानित करनेवाला । (समासांत में प्रयुक्त) यथा-कुलपांशन, पौलस्त्यकुलपांशन [को०] ।

पांशन²—संज्ञा पुं० घृणा । तिरस्कार [को०] ।

पांशव¹—संज्ञा पुं० [सं०] रेह का नमक ।

पांशव²—वि० १. पांशु से उत्पन्न । धूल से उत्पन्न । २. पांशुयुक्त । धूल से भरा हुआ [को०] ।

पांशु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धूलि । रज । २. बालू ।

यौ०—पांशुज ।

३. गोबर की खाद । ४. पित्तपापड़ा । ५. एक प्रकार का कपूर । ६. रज । ७. भूसंपत्ति ।

पांशुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] केवड़े का पौधा ।

पांशुकासीस—संज्ञा पुं० [सं०] कसीस ।

पांशुकुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजपथ । चौड़ा रास्ता । राजमार्ग [को०]

पांशुकूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चीथड़ों आदि को सीकर बनाया हुआ बौद्ध भिक्षुओं के पहनने का वस्त्र । २. वह दस्तावेज या कागज जो किसी विशिष्ट व्यक्ति के नाम न लिखा गया हो । निरुपपद शासन । ३. धूलिपुंज । धूल का ढेर (को०) ।

पांशुकृत—वि० [सं०] धूलि से आवृत । धूल से ढका हुआ । (को०) ।

पांशुक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बालू से खेलना । २. मुष्टियुद्ध । मुक्केबाजी (को०) ।

पांशुक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पांशुज' (को०) ।

पांशुगुंठित—वि० [सं० पांशुगुण्ठित] धूलि से आवृत [को०] ।

पांशुचंदन—संज्ञा पुं० [सं० पांशुचन्दन] दे० 'पांसुचंदन' (को०) ।

पांशुचत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ओला । वर्षोपल ।

पांशुचामर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पांशुचामर' ।

पांशुज—संज्ञा पुं० [सं०] नोनी मिट्टी से निकाला हुआ नमक ।

पांशुजालिक—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम (को०) ।

पांशुधान—संज्ञा पुं० [सं०] धूल की ढेरी (को०) ।

पांशुपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ (साग) ।

पांशुमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] थाला । आलवाल । क्यारी ।

पांशुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पांसुर' [को०] ।

पांशुरागिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महामोदा ।

पांशुराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

पांशुल[1]—वि० [सं०] १. परस्त्रीगामी । लंपट । व्यभिचारी । २. धूल या मिट्टी से ढका हुआ । जिसपर गर्द पड़ी हो । मलिन । मैला । ३. कलंकित वा भ्रष्ट करनेवाला (को०) ।

पांशुल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूतिकरंज । २. शिव । ३. शिव का एक अस्त्र (को०) । ४. लंपट या व्यभिचारी व्यक्ति (को०) । ५. धूल से भरी जगह (को०) ।

पांशुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुलटा । २. रजस्वला । ३. केतकी । केवड़ा । ४. पृथिवी । धरती । भूमि ।

विशेष—ज्ञातव्य है कि 'पांशन' से 'पांशुला' तक के सभी शब्द दंत्य सकार से भी होते हैं और उनका अर्थ समान होता है । ऐसे कुछ शब्द आगे दिए गए हैं ।

पांसु[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पांशु' ।

पांसु†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पार्श्व] दे० 'पसली' ।

पांसुकूल—संज्ञा पुं० [सं०] गुदड़ी । चीथड़ा । (बौद्ध) । उ०—वे चीथड़ों (पांसुकूल) का चीवर पहनें ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ९५० । २. दे० 'पांशुकूल' ।

पांसुक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] पाँगा नमक ।

पांसुखुर—संज्ञा पुं० [सं० पांशुखुर] घोड़ों का एक रोग जो उनके पैरों में होता है ।

पांसुचंदन—संज्ञा पुं० [सं० पांसुचन्दन] शिव । महादेव ।

पांसुचत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] जलोपल । वर्षोपल । ओला ।

पांसुचामर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तंबू । बड़ा खेमा । २. धूलिपुंज । धूल का ढेर (को०) । ३ स्तुति । वर्णापन । प्रशंसा (को०) । ४. वह तटभूमि जिसपर दूब जमी हो (को०) ।

पांसुधावक—संज्ञा पुं० [सं०] धूल साफ करनेवाला । सड़क या गली झाड़नेवाला । (कौटि०) ।

पांसुज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पांशुज' ।

पांसुजालिक—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु (को०) ।

पांसुपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पांसुज' ।

पांसुमिश्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जौ का पेड़ ।

पांसुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बड़ा मच्छड़ । दंश । डाँस । २. लूला । लँगड़ा ।

पांसुरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पसली] सं० दे० 'पसली' ।

पांसुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मलयुक्त । मलिन । २. पापी । ३. पूतिकरंज । कंजा । ४. परस्त्री से प्रेम करनेवाला । ५. शिव । दे० 'पांशुल' ।

पांसुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुलटा । २. रजस्वला । ३. भूमि । ४. केतकी ।

पाँ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाद, हिं० पाँव] पैर । पाँव । उ०—(क) प्राणपियारी के पाँ परिकै करि सौंह गरे की गरे लपटाने ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) सभा समेत पाँ परे विशेष पूजियो सबै ।—केशव (शब्द०) ।

पाँइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाद] पैर । पाँव ।

पाँइता(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पाँय + ता] दे० 'पायता' । उ०—कहा कहीं और राति सोवै जब रानी सब आपु बैठयो पाँइते कहानी भावतो कहै ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

पाँईबाग—संज्ञा पुं० [फ़ा०] महलों के आस पास या चारों ओर बना हुआ वह छोटा बाग, जिसमें प्रायः राजमहल की स्त्रियाँ सैर करने को जाती हैं । ऐसे बागों में प्रायः सर्वसाधारण के जाने की मनाही होती है ।

पाँउ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पाद, हिं० पाँव] पाँव । पैर ।

मुहा०—पाँउ पसारे सोना = निर्भय रहना । निश्चिंत रहना । बेखौफ रहना । उ०—माखन बहहु आज अपने मन सूरज तपहु सुखारे । इंद्र वरुण कुबेर यम सुर गण सोवहु पाँउ पसारे ।—रघुराज (शब्द०) ।

पाँक—संज्ञा पुं० [सं० पङ्क] कीचड़ ।

पाँका†—संज्ञा पुं० [सं० पङ्क] दे० 'पाँक' ।

पाँख†—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष, प्रा० पक्ख] पंख । पर । पक्षी का डैना । उ०—तापर भमरा पियत रस सजनि गे, बइसल पाँखि पसारि ।—विद्यापति, पृ० १८० ।

पाँखड़ा—संज्ञा स्त्री० [हिं० पंख + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'पाँख' ।

पाँखड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पखड़ी' ।

पाँखी†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पक्षी] १. वह पंखदार कीड़ा जो दीपक पर गिरती है । पतिंगा । २. कोई पक्षी । ३ वह औजार जिससे खेतों में क्यारियाँ बनाई जाती हैं ।

पाँखुरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पखड़ी' ।

पाँग—संज्ञा पुं० [सं० पङ्क] वह नई जमीन जो किसी नदी के पीछे हट जाने से उसके किनारे पर निकलती है । कछार । खादर । गंगबरार ।

पाँगल—संज्ञा पुं० [सं० पाङ्गुल्य] ऊँट । (डिं०) ।

पाँगला(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] एक डिंगल छंद का नाम । उ०—पांगलों छंद भावै प्रगट बद घट कला बखाणजै ।—रघु० रू०, पृ० १४ ।

पाँगा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पाँगा नोन' ।

पाँगानोन—संज्ञा पुं० [सं० पङ्क, हिं० पाँग + नोन] समुद्री नोन ।

विशेष—वैद्यक में इसे स्वाद में चरपरा और मधुर, भारी, न बहुत गरम और न बहुत शीतल, अग्निप्रदीपक, वातनाशक और कफकारक माना है ।

पाँगुरा—वि०, संज्ञा पुं० [सं० पङ्गुल] दे० 'पंगु' ।

पाँगुला—संज्ञा पुं० [सं० पाङ्गुल्य] एक प्रकार का बात रोग जिसमें दोनों पैर बेकार हो जाते हैं। उ०—जो दोनों पैरों को स्तंभित करे उसको पाँगुला कहते हैं।—माधव०, पृ० १४३।

पाँच¹—वि० [सं० पञ्च] जो गिनती में चार और एक हो। जो तीन और दो हो। चार से एक अधिक। उ०—पाँच कोश नीचे कर देखो इनमें सार न जानी।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६६।

मुहा०—**पाँचों उँगलियाँ घी में होना** = सब तरह का लाभ या आराम होना। खूब बन आना। जैसे,—इस समय तो आपकी पाँचो उँगलियाँ घी में होंगी। **पाँचो सवारों में नाम लिखाना** = जबरदस्ती अपने से अधिक योग्य व श्रेष्ठ मनुष्यों मे मिल जाना। औरों के साथ अपने को भी श्रेष्ठ गिनाना।

विशेष—इस मुहावरे के संबंध में एक किस्सा है। कहते हैं, एक बार चार अच्छे सवार कहीं जा रहे थे। उनके पीछे पीछे एक दरिद्र आदमी भी एक गधे पर सवार जा रहा था। थोड़ी दूर जाने पर एक आदमी मिला जिसने उस दरिद्र गधे सवार से पूछा कि क्यों भाई, ये सवार कहाँ जा रहे हैं। उसने बहुत बिगड़कर कहा, हम पाँचो सवार कहीं जा रहे हैं तुम्हे पूछने से मतलब।

पाँच²—संज्ञा पुं० १. पाँच की संख्या। २. पाँच का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५। ३. कई एक आदमी। बहुत लोग। उ०—मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई।—तुलसी (शब्द०)। ४. जाति बिरादरी के मुखिया लोग। पंच। उ०—साँचे परे पाँचों पान पाँच मे परै प्रमान, तुलसी चातक आस राम श्याम घन की।—तुलसी (शब्द०)।

पाँचक†—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चक] दे० 'पंचक'।

पाँचर—संज्ञा स्त्री० [सं० पञ्जर] १. कोल्हू के बीच में जड़े हुए लकड़ी के वे छोटे छोटे टुकड़े जो गन्ने के टुकड़े को दबाने मे जाठ के सहायक होते हैं। जाठ और पाँचर के बीच में दबने से ही गन्ने के टुकड़ों में से रस निकलता है। २. दे० 'पच्चर'।

पाँचवाँ—वि० पुं० [हिं० पाँच+वाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० पाँचवीं] जो क्रम मे पाँच के स्थान पर पड़े। पाँच के स्थान पर पड़नेवाला।

पाँचमा†‡—वि० पुं० [सं० पञ्चम] दे० 'पाँचवाँ'। उ०—पाछे श्री गुसाँई जी पास पाँचमें दिन नारायणदास कासिद पठावते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०७।

पाँचा—संज्ञा पुं० [हिं० पाँच + आ (प्रत्य०)] किसानों का एक औजार जिससे वे भूसा, घास इत्यादि समेटते या हटाते हैं। इसमें चार दाँते और एक बेंट होता है इसी से इसे पाँचा कहते है। पचंगुरा।

पाँची—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो तालाबों में होती है।

पाँचैं—संज्ञा स्त्री० [हिं० पञ्चमी] किसी पक्ष की पाँचवीं तिथि। पंचमी। उ०—(क) जब बसंत फागुन सुदी पाँचैं गुरु दिन।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नाचे बनैगी बसंत की पाँचैं।—देव (शब्द०)।

पाँछना—क्रि० स० [हिं० पंछा] पाछना। चीरना। चीरा लगाना। उ०—सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरमु पाँछि जनु माहुर देई।—मानस, २।१६०।

पाँजना—क्रि० स० [सं० प्रयाज प्रा० पयाज्ज, पँज्ज] टीन, लोहे, पीतल आदि धातु के दो या अधिक टुकड़ों को टाँके लगाकर जोड़ना। झालना। टाँका लगाना।

पाँजर—संज्ञा पुं० [सं० पञ्जर] १. बगल और कमर के बीच का वह भाग जिसमें पसलियाँ होती हैं। छाती के अगल बगल का भाग। २. पसली। ३. पार्श्व। पास। बगल। सामीप्य।

पाँजरा—संज्ञा पुं० [?] वह मल्लाह जो मल्लाही में अनाड़ी हो। डंडी। कुली। (ऐसे अनाड़ियों को मल्लाह लोग पाँजरा कहते हैं)।

पाँजो—संज्ञा स्त्री० [सं० पदाति, हिं० पाजी (= पैदल)। या सं० पाद्य ?] किसी नदी का इतना सूख जाना कि लोग उसे हलकर पार कर सकें। नदी का पानी घुटनों तक या उससे भी कम हो जाना। उ०—अब कबीर पाँजी परे पंथी आवें जायें।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

पाँझ—वि० [देश०] दे० 'पाँजी'। उ०—नदियों को पाँझ और मार्ग को सूखा करनेवाली शरद ने उसको मन के उत्साह से पहले ही यात्रा निमित्त प्रेरणा की।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

पाँड़—वि० स्त्री० [देश०] १. (स्त्री) जिसके स्तन बिलकुल न हो या बहुत ही छोटे हों। २. (स्त्री) जिसकी योनि बहुत छोटी हो और जो संभोग के योग्य न हो।

पाँडुक—संज्ञा पुं० [हिं० पण्डुक] दे० 'पंडुक'।

पाँडर†—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डर] १. दौना। मरुवा। दे० 'पांडर'। २ कुंद का पुष्प। उ०—बर बिहार चरन चारु पाँडर चंपक चनार कचनार वार पार पुर पुरगिनी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४४।

पाँडरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ईख।

पाँड़े—संज्ञा पुं० [सं० पण्डित] १. सरयूपारी, कान्यकुब्ज और गुजराती आदि ब्राह्मणों की एक शाखा। २. कायस्थों की एक शाखा। ३. पंडित। विद्वान्। (क्व०)। ४. अध्यापक। शिक्षक। ५. रसोइया। भोजन बनानेवाला। ६. पानी पिलानेवाला।

यौ०—पानीपाँड़े।

पाँत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँति] दे० 'पाँति'। उ०—खोवे जगत पाँत अभिमाना।—कबीर सा०, पृ० ९३७।

पाँति—संज्ञा स्त्री० [सं० पङ्क्ति] १. कतार। पंगत। २. अवली। समूह। ३. एक साथ भोजन करनेवाले बिरादरी के लोग।

परिवार समूह। उ०—(क) जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुण चतुराई। —तुलसी (शब्द०)। (ख) मेरे जाति पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को। —तुलसी (शब्द०)। (ग) वहाँ नहीं है दिन श्ररु राती। ऊँच न नीच जाति ना पाँती। —कबीर सा०, पृ० ८२३।

पाँमड़ी, पाँमरीⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रावार] उपरना। दुपट्टा। पामरी। उ०—साँमरी रैन में साँमरीयै चहरै घनघोर घटा छिति छ्वै कै। साँमरी पाँमरी की दै खुही बलि साँमरे पै चली सामरी ह्वै कै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १३३।

पाँयाँⓊ—संज्ञा पुं० [सं० पाद] चरण। पाद। पैर। कदम। उ०—सौंपे सुत गहि पानि पाँयँ परि हरषाने जाने शेष सदन।—(शब्द०)।

पाँयँचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पाँयँचह्] १. पाखानों आदि में बना हुआ पैर रखने का वह स्थान जिसपर पैर रखकर शौच से निवृत्त होने के लिये बैठते हैं। २. पायजामे की मोहरी जिससे जाँघ से लेकर टखने तक का अंग ढका जाता है।

मुहा०—पाँयँचों के बाहर होना = दे० 'पाजामे के बाहर होना'।

पाँलागनिⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँव + लगना] दे० 'पालागन'। उ०—पाँलागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत साता। —तुलसी ग्रं०, पृ० ३२६।

पाँवँ—संज्ञा पुं० [सं० पाद] दे० 'पाँव'।

पाँवँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पाँवँ + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'पावँड़ा'।

पाँवँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँवँ + ड़ी (प्रत्य०)] दे० 'पावँड़ी'।

पाँव—संज्ञा पुं० [सं० पाद, प्रा०, पाय, पाव] वह अंग जिससे चलते हैं। पैर। पाद।

मुहा०—(किसी काम या बात में) पाँव अड़ाना = किसी बात में व्यर्थ सम्मिलित होना। मामले के बीच में व्यर्थ पड़ना। फजूल दखल देना। पाँव उखड़ जाना = (१) पैर जमे न रहना। पैर हट जाना। स्थिर होकर खड़ा न रह सकना। (२) ठहरने की शक्ति या साहस न रह जाना। लड़ाई में न ठहरना। सामने खड़े होकर लड़ने का साहस न रहना। भागने की नौबत आना। जैसे,—दूसरा आक्रमण ऐसे वेग से हुआ कि सिपाहियों के पाँव उखड़ गए। पाँव उखाड़ना = (१) पैर जमा न रहने देना। हटा देना। भगा देना। (२) किसी बात पर स्थिर न रहने देना। दृढ़ता का भंग करना। पाँव उठ जाना = दे० 'पाँव उखड़ जाना'। पाँव उठाना = चलने के लिये कदम बढ़ाना। डग आगे रखना। चलना आरंभ करना। (२) जल्दी जल्दी पैर आगे रखना। डग भरना। पाँव उठाकर चलना = जल्दी जल्दी पैर बढ़ाना। तेज चलना। पाँव उड़ाना = शत्रु के आघात से पैरों की रक्षा करना।—दुश्मन के वार से पैर बचाना। पाँव उतरना = चोट आदि से पैर का गट्टा से सरक जाना। पैर का जोड़ उखड़ जाना। (२) पैर धँसना। पैर समाना। पाँव कट जाना = (१) आने जाने की शक्ति या योग्यता न रहना। आना जाना बंद होना। (२) अन्न जल उठ जाना। रहने या ठहरने का अंत हो जाना। (३) संसार से उठ जाना। जीवन का अंत हो जाना। (जब कोई मर जाता है तब उसके विषय में दुःख के साथ कहते हैं 'आज यहाँ से उसके पाँव कट गए')। पाँव काँपना = दे० 'पाँव थरथराना'। पाँव का खटका = पैर रखने की आहट। चलने का शब्द। पाँव की जूती = अत्यंत क्षुद्र सेवक या दासी। पाँव की जूती सिर को लगना = छोटे आदमी का बड़े के मुकाबले में आना। क्षुद्र या नीच का सिर चढ़ना। छोटे आदमी का बड़े से बराबरी करना। पाँव की बेड़ी = बंधन। जंजाल। पाँव की मेहँदी न घिस जायगी = कहीं जाने या कोई काम करने से पैर न मैले हो जायँगे अर्थात् कुछ बिगड़ न जायगा। (जब कोई आदमी कहीं जाने या कुछ करने से नहीं करता है तब यह व्यंग्य बोलते हैं)। पाँव खींचना = घूमना फिरना छोड़ देना। इधर उधर फिरना बंद करना। पाँव गाड़ना = (१) पैर जमाना। जमकर खड़ा रहना। (२) लड़ाई में स्थिर रहना। डटा रहना। किसी बात पर दृढ़ होना। किसी बात पर जम जाना। पाँव घिसना = चलते चलते पैर थकना। जैसे,—तुम्हारे यहाँ दौड़ते दौड़ते पाँव घिस गए पर तुमने रुपया न दिया। पाँव चलना = दे० 'पाँव पाँव चलना'। पाँव छूटना = रजःस्राव होना। रजस्वला होना। पाँव छोड़ना = उपचार औषध से रजःस्राव कराना। रुका हुआ मासिक धर्म जारी करना। पाँव जमना = (१) पैर ठहरना। स्थिर भाव से खड़ा होना। (२) दृढ़ता रहना। हटने या विचलित होने की अवस्था न आना। पैर जमना = (१) स्थिर भाव से खड़ा रहना। (२) दृढ़ता से ठहरा रहना। न हटना। (३) स्थिर हो जाना। अपने ठहरने या रहने का पूरा बंदोबस्त कर लेगा। जैसे,—अभी से उसे हटाने का यत्न करो, पाँव जमा लेगा तो मुश्किल होगी। पाँव जोड़ना = दो आदमियों का झूले में आमने सामने बैठकर एक विशेष रीति से झूले की रस्सी में पैर उलझाना। पाग जोड़ना। पाँव टिकना = दे० 'पाँव जमना'। पाँव टिकाना = (१) खड़ा होना। (२) स्थिर होना। ठहर जाना। विराम करना। पाँव ठहरना = (१, पैर का जमना। पैर न हटना। जैसे,—पानी का ऐसा तोड़ा था कि पाँव नहीं ठहरते थे। (२) ठहराव होना। स्थिरता होना। पाँव डगमगाना = (१) पैर स्थिर न रहना। पैर ठहरा न रहना। पैर का ठीक न पड़ना। इधर उधर हो जाना। लड़खड़ाना। जैसे,—उस पतले पुल पर से मैं नहीं जा सकता, पाँव डगमगाते हैं। (२) दृढ़ न रहना = विचलित हो जाना। पाँव डालना = किसी काम में हाथ डालना। किसी काम के लिये तत्पर होना। पाँव डिगना = पैर ठीक स्थान पर न रहना; इधर उधर हो जाना। स्थिर न रहना। विचलित होना। जैसे,—राजा के पाँव सत्य के पथ से न डिगे। पाँव तले की चींटी = क्षुद्र से क्षुद्र जीव। अत्यंत दीन हीन प्राणी। पाँव तले की धरती सरकी जाती है = (ऐसा घोर मर्मभेदी दुःख या आपत्ति है जिसे

पाँसासारि कुँअर सब खेलहिं गीतन सुवन ओनाहिं। चैन चाव तस देखा जनु गढ़ छेंका नाहिं।—जायसी (शब्द०)।

पाँसी—संज्ञा स्त्री० [स० पाश] सूत या डोरी आदि का बना हुआ वह जाल या जाला जिसमें घास भूसा आदि बाँधते हैं।

पाँसुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पार्श्व] पसली। पासुरी। उ०—(क) कलि को कलुष मन मलिन किए महत मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियतु है।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२२। (ख) पावै न चैन सु मैन के बाननि होत छिनौ छिन छीन घनेरी। बूझै जु कंत कहै तौ यहै तिय पीउ पिराति है पाँसुरी मेरी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११२।

पाँहोⓅ†—क्रि० वि० [हिं० पँह] निकट। पास। समीप।

पा—संज्ञा पुं० [हिं० पाव, फ़ा० पा] पैर। चरण। उ०—(क) परि पा करि बिनती घनी नीमरजा हौं कीन। अब न नारि अर करि सकै जदुबर परम प्रवीन।—स० सप्तक, पृ० २२०। (ख) पा पकरो बैनी तजो धरमै करिए आजु। भोर होत मनभावतो भलो भूलि सुभ काजु।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८।

पाइंट—संज्ञा पुं० [अं० पाइंट] १. पानी, दूध आदि द्रव पदार्थ नापने का एक अंग्रेजी मान जो डेढ़ पाव का होता है। डेढ़ पाव का एक पैमाना। २ आधी या छोटी बोतल जिसमे प्रायः डेढ़ पाव जल या मदिरा आती है। अद्धा।

पाइⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पाद] दे० 'पाद'। उ०—चरखी के चहले मैं चलि सकत न पाइ।—हम्मीर०, पृ० ५६।

पाइकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पादातिक] दे० 'पायक'। उ०—सुंदर ज्ञानी नृपति कै सेना हैं चतुरंग। रथ अश्व गज त्रय अवस्था इंद्रिय पाइक संग।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८१३।

पाइंदा—वि० [फ़ा० पाइंदह] अनश्वर। स्थायी। नित्य। सदा रहनेवाला [को०]।

यौ०—पाइंदाबाद = एक आशीर्वचन। हमेशा रहो। चिरंजीव।

पाइका—संज्ञा पुं० [अं०] नाप के विचार से छापे के टाइपों का एक प्रकार जिसकी चौड़ाई ⅙ इंच होती है। अक्षरों की मोटाई आदि के विचार से इसके और भी कई भेद होते हैं। साधारण पाइका टाइप का नमूना यह है—

यह पाइका टाइप है।

यौ०—स्माल पाइका।

पाइक्क—संज्ञा पुं० [सं० पादातिक] दे० 'पायक', 'पाइक'। उ०—(क) पाइक्कहु चक्कहु को गणउ चलिय से चतुरंग।—कीर्ति०, पृ० ८२। (ख) पाइक्क संग कायक्क केलि। धरि धूप हथ्थ बाहंत झेलि। पृ० रा०, १। ७२३।

पाइगाह†—संज्ञा पुं० [फ़ा० पाएगाह] १. घुड़साल। वाजिशाला। २. कचहरी। उ०—पाइगह पत्र भरे भउँ पल्लानिज्जउँ तुरग।—कीर्ति० पृ० ८४।

पाइतरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० पादस्थली] पलंग का वह भाग जहाँ सोनेवाले के पैर रहते हैं। पैताना। उ०—भारतादि दुर्योधन अर्जुन भेटन गए द्वारका पुरी। कमलनैन बैठे सुख शंय्या पारथ पाइतरी।—सूर (शब्द०)।

पाइप—संज्ञा पुं० [अं०] १. नल या नली। २. पानी की कल। नल। ३. बाँसुरी के आकार का एक प्रकार का अंग्रेजी बाजा। ४. हुक्के का नल।

पाइमालⓅ†—वि० [फ़ा० पामाल, पायमाल] पददलित। बरबाद। उ०—तुलसी गरब तजि, मिलिबे को साज सजि, देहि सिय न तौ पिय पाइमाल जाहिगो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १८७।

पाइरा†—संज्ञा पुं० [हिं० पाव+रा (प्रत्य०)] रकाब जिसपर घोड़े की सवारी के समय पैर रखते हैं। विशेष—दे० 'रकाब'।

पाइलⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पायल] दे० 'पायल'। उ०—तब या प्रकार नूपुर के सब्द प्रनवट बिछियान के पाइलन के तथा कटिसूत्रन के सब्दन सों पधारे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२०।

पाईं—वि० [फ़ा०] १. पिछला। पीछे का। आखिरी। २. नीचेवाला। निचला। ३. सिरहाने का उलटा। पायताना।

यौ०—पाईं परस्ती = दासता। खिदमतगारी। पाईंबाग।

पाईंबाग—संज्ञा पुं० [फ़ा० पाईं बाग] नजर बाग। मकान से मिला हुआ बगीचा। उ०—अपना पाईंबाग बना लोगे प्रिय इस मन को आकर।—झरना, पृ० ३०।

पाई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पाद, हिं० पाय] १. किसी एक ही निश्चित घेरे या मंडल में नाचने या चलने की क्रिया। मंडल घूमना। गोड़ापाही। उ०—नीर के निकट रेनु रंजित लसै यो तट एक पट चादर की चाँदनी बिछाई सी। कहैं पदमाकर त्यों करत कलोल लोक आवरत पूरे राजमंडल की पाई सी।—पद्माकर (शब्द०)। २. पतली छड़ियों या बेतों का बना हुआ जोलाहों का एक ढाँचा जिसपर ताने के सूत को फैलाकर उसे खूब माजते हैं। टिकठी। अड्डा।

मुहा०—पाई करना = पाई पर फैले हुए ताने को कूँची से माँजना।

३. घोड़ों की एक बीमारी जिसमें उनके पैर सूज जाते हैं और वे चल नहीं सकते। ४. एक पुराना छोटा सिक्का जो आने का १२वाँ, या एक पैसे का तीसरा भाग होता था। ५. एक पैसा। (क्व०)। ६. छोटी सीधी लकीर जो किसी संख्या के आगे लगाने से इकाई का चतुर्थांश प्रकट करती है, जैसे ४। से चार और एक इकाई का चौथा भाग, अर्थात् सवा चार। ७. दीर्घ आकार सूचक मात्रा जिसे अक्षर को दीर्घ करने के लिये लगाते है, जैसे—क से का, द से दा। ८. छोटी खड़ी रेखा जो किसी वाक्य के अंत में पूर्ण विराम सूचित करने के लिये लगाई जाती है।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

९. पिटारी जिसमें स्त्रियाँ अपने आभूषणादि रखती हैं। १०. छापे के घिसे हुए और रद्दी टाइप। (मुद्रण)।

मुहा०—पाई करना = (१) घिसे और बेकार टाइपों को एक में मिला देना। (२) छापे में प्रयुक्त टाइपों को एक में इस तरह मिला देना कि उनको अलग अलग न किया जा सके। पाई होना = मुद्रण में प्रयुक्त टाइपों का बेकार हो जाना।

पाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाया (= पाई कीड़ा)] एक छोटा लंबा कीड़ा जो घुन की तरह अन्न को, विशेषतः धान को, खा जाता अथवा खराब कर देता है और उसे जमने योग्य नहीं रहने देता।

क्रि० प्र०—लगना।

पाइता—संज्ञा पुं० [देश०] एक वर्णवृत्त जिसमें एक मगण, एक भगण और एक सगण होता है।

पाउंड—संज्ञा पुं० [अं०] १. सोने का एक अंग्रेजी सिक्का जो २० शिलिंग का होता है और पहले १५) का माना जाता था, फिर १०) का, परंतु अब १३) का ही माना जाता है। इसका भाव घटता बढ़ता रहता है। अब इसका प्रचलन नहीं है। कागज का ही पौंड नोट चलता है। २. एक अंग्रेजी तौल जो लगभग ७ छटाँक के होती है।

पाउँ (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पाद] दे० 'पावँ'। उ०—जेन्हे अत्थिजन विमन न किजिअ, जेइ असत्य न भणिआ, जेइ न पाउँ उमग दिजिअ।—कीर्ति०, पु० १०।

पाउँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पावँ + ड़ा] दे० 'पावँड़ा'। उ०—बीर बुंदेलन भीर मग नीर गभीर मझाइ। करि पन्नग के पाउँड़े पिग पै पहुँची जाइ।—स० सप्तक, पु० ३६०।

पाउ† संज्ञा पुं० [सं० पाद] १ दे० 'पावँ'। उ०—कहौ तोहि सिंघलगढ़, है खंड सात चढ़ाउ। फिरा न कोई जियत जिउ, सरग पंथ दै पाउ। -जायसी ग्रं०, पु० २६४। २. चतुर्थांश। पाव।

पाउडर—संज्ञा पुं० [अं०] १. कोई वस्तु जो पीसकर धूल के समान कर दी गई हो। चूर्ण। बुकनी। २. एक प्रकार का विलायती बना हुआ मसाला या चूर्ण जो प्रायः स्त्रियाँ और नाटक के पात्र अपने चेहरे पर रंगत बदलने और शोभा बढ़ाने के लिये लगाते हैं।

पाऊँ (पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाद, प्रा० पाअ, पाअँ, पाउँ] पैर। उ०—गूँगा हुआ बावला, बहरा हुआ कान। पाऊँ थें पंगुल भया, सतगुर मारया बान।—कबीर ग्रं०, पु० १०।

पाएल—वि० [हिं० पैदल] पदाति या पैदल चलनेवाली (सेना)। उ०—अठारह लाख फौद है एता। तुरकी साजी पाएल केता।—सं० दरिया, पु० ११।

पाक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पकाने की क्रिया। रींधना। २. पकने या पकाने की क्रिया या भाव। ३. पका हुआ अन्न। रसोई। पकवान। उ०—भोजन भुँजाई विवध, विंजन पाक सुरंग। रा० रू०, पु० ३०३।

यौ०—पाककर्म, पाकक्रिया = पकाना। रींधना। पकाने का काम। पाकपंक्ति = रसोई बनाने में दक्ष। पाकपात्र = दे० 'पाकभांड'। पाकपुटी। पाकभांड। पाकशाला। पाकागार।

४ वह औषध जो मिस्री, चीनी या शहद की चाशनी में मिलाकर बनाई जाय। जैसे, सुंठी पाक। ५ खाए हुए पदार्थ के पचाने की क्रिया। पाचन।

यौ० —पाकस्थली।

६. एक दैत्य जिसे इंद्र ने मारा था।

यौ०—पाकरिपु। पाकशासन।

७ वह खीर जो श्राद्ध में पिंडदान के लिये पकाई जाती है। ८. फोड़ा। व्रण (को०)। ९ परिणति। फल। नतीजा (को०)। १०. उलूक। उल्लू (को०)। ११. वृद्धावस्था के कारण केशों का श्वेत होना (को०)। ११. गृहाग्नि। गृह की अग्नि (को०)। १२. पाक का पात्र (को०)। १३. अनाज। अन्न (को०)। १४. बुद्धि की परिपक्व अवस्था (को०)। १५. भीति। आतंक (को०)। १६. उलट फेर। परिवर्तन (को०)।

पाक[2] - वि० १. पक्व। पका हुआ। २. स्वल्प। लघु। अल्प। ३. बुद्धिमान। जिसकी बुद्धि परिपक्व हो। ४. प्रशंसा के योग्य। ५. अकृत्रिम। निष्कपट। शुद्धात्मा। ६. अज्ञ। अनभिज्ञ। अप्राज्ञ (को०)।

पाक[3]—वि० [फा०] १. पवित्र। शुद्ध। सुथरा। परिमार्जित।

मुहा०—पाक करना = (१) धार्मिक विधि के अनुसार किसी वस्तु को धोकर शुद्ध करना। (२) जबह किए हुए पशु या पक्षी के पास से पर, रोएँ आदि दूर करना

२. पापरहित। निर्मल। निर्दोष।

यौ० - पाकदामन। पाकसाफ।

३ जिसका कोई अंग शेष न रह गया हो। समाप्त। बेबाक।

मुहा०—झगड़ा पाक करना = (१) किसी ऐसे कार्य को समाप्त कर डालना जिसके लिये विशेष चिंता रही हो। (२) किसी बाधा को हटाकर या शत्रु को मारकर निश्चिंत हो जाना। झगड़ा तै होना। कोई कार्य समाप्त हो जाना। कोई बाधा दूर हो जाना। (३) मार डालना।

४. साफ। जैसे—अब सब झगड़ा से पाक है।

पाककृष्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जंगली करौंदा। २ करज।

पाकज—संज्ञा पुं० [सं०] १ कचिया नमक। २. भोजन के बाद होनेवाली उदरपीड़ा। परिणामशूल (को०)।

पाकजात—वि० [फा० पाकजात] शुद्धात्मा। पवित्रात्मा। जिसकी आत्मा स्वच्छ हो। उ०—जीव ने पहचान लिया पाकजात, जिससे है कायम यह कुल का ए नात। -कबीर मं०, पु० ४६।

पाकट¹—संज्ञा स्त्री० [अं० पाकेट] जेब । खीसा । थैली ।

मुहा०—**पाकट गरम करना**=(१) घूस लेना । (२) घूस देना । **पाकट गरम होना**=पास में धन होना । पाकेट में संपत्ति होना ।

यौ०—**पाकटमार**=गिरहकट । जेब काटनेवाला ।

पाकट²—संज्ञा पुं० [अं० पैकेट] दे० 'पैकेट' ।

पाकठ†—वि० [हिं० पकना, पकेठ] १. पका हुआ । २. पुराना । तजरबेकार । ३. बली । मजबूत ।

पाकड़—संज्ञा पुं० [सं० पर्कट, प्रा० पक्कड] दे० 'पाकर' ।

पाकड़ी†—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्कटी] पकड़ी । पर्कटी । पाकड़ । उ०—मोरा हि रे अँगना पाकड़ी सुनु बालहिआ ।—विद्यापति, पृ० १५४ ।

पाकदामन—वि० [फ़ा०] [संज्ञा पाकदामनी] स्त्री जिसका चरित्र सब प्रकार निष्कलंक और विशुद्ध हो । पतिव्रता । सती ।

पाकदामनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'पाकदामिनी' [को०] ।

पाकदामिनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पाकदामनी] सतीत्व । पातिव्रत्य । शुद्धचरित्रता ।

पाकद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] पाकशासन । इंद्र ।

पाकना(पु)**†**—क्रि० अ० [हिं० पकना] दे० 'पकना' । उ०—कटहर डार पीड सन पाके । बड़हर सो अनूप अति ताके ।—जायसी (शब्द०) ।

पाक परवरदिगार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ईश्वर । अल्लाह ।

पाकपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह बरतन जिसमें भोजन पकाया या रखा जाय । जैसे, बटलोई, थाली आदि ।

पाकफल—संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा ।

पाकबाज—वि० [फ़ा० पाकबाज] [संज्ञा पाकबाजी] सच्चरित्र । उ०—कर कबूल इस बात कूँ ओ पाकबाज । बाग में रहे ज्यों निगाह सरो सरफराज ।—दक्खिनी०, पृ० २०२ ।

पाकबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पाकबाज़ी] १. पाकबाज होने का भाव । सच्चरित्रता । शुद्धता [को०] ।

पाकबी—वि० [फ़ा०] निष्पाप दृष्टि [को०] ।

पाकभांड—संज्ञा पुं० [सं० पाकभाण्ड] वह बरतन जिसमें भोजन पकाया या रखा जाय । जैसे, बटलोई, थाली आदि ।

पाकयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] वृषोत्सर्ग और गृहप्रतिष्ठा आदि के समय किया जानेवाला होम जिसमे खीर की आहुति दी जाती है । २. पंच महायज्ञ मे ब्रह्मयज्ञ के अतिरिक्त अन्य चार यज्ञ—वैश्वदेव, होम बलिकर्म, नित्य श्राद्ध और अतिथिभोजन ।

विशेष—धर्मशास्त्रों के अनुसार शूद्र को भी पाकयज्ञ का अधिकार है ।

पाकयाज्ञिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाकयज्ञ करनेवाला । २. वह पुस्तक जिसमें पाकयज्ञ का विधान हो ।

पाकयाज्ञिक²—वि० १. पाकयज्ञ संबंधी । २. पाकयज्ञ से उत्पन्न ।

पाकरंजन—संज्ञा पुं० [सं० पाकरञ्जन] तेजपत्ता ।

पाकर—संज्ञा पुं० [सं० पर्कटी, प्रा० पक्कडी] एक वृक्ष जो पंच वटों में माना जाता है । रामअंजीर । पाखर । जंगली पिपली । पलखन ।

विशेष—इसके वृक्ष समस्त भारतवर्ष में वर्षा में अधिकता से बोए जाते हैं । इसकी पत्तियाँ खूब हरी और आम की तरह लंबी पर उससे कुछ अधिक चौड़ी होती हैं । यह वृक्ष आपसे आप कम उगता है, प्रायः लगाने से ही होता है । यह ७-८ वर्ष में तैयार हो जाता है । इसकी छाया बहुत घनी होती है । कवियों ने इसकी घनी छाया की बड़ी ही प्रशंसा की है । इसकी छाल से बड़े बारीक और मुलायम सूत तैयार किए जा सकते हैं । नरम फलों या गोदो को जंगली और देहाती मनुष्य प्रायः खाते हैं और पत्तियाँ हाथी और अन्य पशुओं के चारो के काम मे आती हैं । लकड़ी और किसी काम में नहीं आती, केवल उससे कोयला तैयार किया जाता है । वैद्यक में इसे कषाय, कटु, शीतल व्रण, योनिरोग, दाह, पित्त, कफ, रुधिरविकार, सूजन और रक्तपित्त को दूर करनेवाला माना है । छोटे पत्तियों-वाले वृक्ष को अधिक गुणदायक लिखा है ।

पाकरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र । उ०—काक समान पाकरिपु रीती । छली मलिन कतहूँ न प्रतीती ।—मानस, २।३०१ ।

पाकरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्कटी] दे० 'पाकर' ।

पाकल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुष्ठ की दवा । वह दवा जिससे कुष्ठ अच्छा होता हो । २. फोड़े को पकानेवाली दवा । ३. वह सन्निपात ज्वर जिसमे पित्त प्रबल, वात मध्यम और कफ हीन अवस्था में होता है और इनके बलाबल के अनुसार इन तीनों ही की उपाधियाँ उसमें प्रकट होती हैं । इसका रोगी प्रायः तीन दिन मे मर जाता है । ४. हाथी का बुखार । ५ अग्नि । आग ।

पाकल²†—वि० [सं० पाक+ल (हिं० प्रत्य०)] पक्व । पका हुआ । उ०—पाकल बिंब अइसन अधर ।—वर्ण०, पृ० ५ ।

पाकलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकड़ासिंगी । कर्कटी ।

पाकली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पाकलि' ।

पाकशाला—संज्ञा पुं० [सं०] रसोई का घर । बावरचीखाना ।

विशेष—मुहूर्तचिंतामणि के अनुसार घर के पूर्व दक्षिण के कोण मे पाकशाला बनाना उत्तम है । सुश्रुत के अनुसार धुआँ बाहर निकलने के लिये ऊपर की ओर इसमें एक छोटी खिड़की भी होनी चाहिए ।

पाकशासन—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

पाकशासनि—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र का पुत्र जयंत । २ बालि । ३. अर्जुन [को०] ।

पाकशुक्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] खड़िया मिट्टी ।

पाकसासन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाकशासन] इंद्र । पाकशासन । उ०—आसन मिल्यो है पाकसासन को सेय तिन्हैं, जिनकी कृपा तै बोल कहै बाकबानी के ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २१ ।

पाकसी—संज्ञा स्त्री० [अं० फॉक्स] लोमड़ी। (लश०)।

पाकस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] उदर का वह स्थान जहाँ आहार द्रव्य जठराग्नि या पाचक रस की क्रिया से पचता है। पक्वाशय।

पाकस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. रसोईघर। महानस। २. कुम्हार का आवाँ [को०]।

पाकहंता—संज्ञा पुं० [सं० पाकहन्तृ] पाकशासन। इंद्र।

पाका‡[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पकना] फोड़ा।

पाका[2]—वि० [सं० पक्व] पका हुआ। उ०—भला भला ताजी चढ़ै, आचरे बीड़ा पाका पान।—बी० रासो, पृ० १८।

पाकागार—संज्ञा पुं० [सं०] रसोईघर।

पाकातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना अतिसार। जीर्ण आमातिसार [को०]।

पाकात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] आँखों का एक रोग जिसमें आँख का काला भाग सफेद हो जाता है।

विशेष—आरंभ में इसमें एक फोड़ा होता है और आँखों से गरम गरम आँसू गिरते हैं। पुतली का सफेद हो जाना त्रिदोष का कोप सूचित करता है। इस दशा में यह रोग असाध्य समझा जाता है।

पाकारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. सफेद कचनार का वृक्ष।

पाकिम—वि० [सं०] १. पका हुआ। २. पाक क्रिया से प्राप्त, जैसे, नमक। ३. पकाया हुआ [को०]।

पाकिस्तान—संज्ञा पुं० [फा०] भारत का वह भाग जिसमें मुसलमानों की आबादी अधिक है और (१५ अगस्त) सन् १९४७ में जिसे सांप्रदायिक आधार पर एक संघराज्य का रूप दे दिया गया। इसमें सिंध, बिलोचिस्तान, सीमाप्रांत, पंजाब का पश्चिमी भाग और पूर्वी बंगाल हैं। उ०—देश में सांप्रदायिक दंगे हो चले थे और भारत में दो राष्ट्रों के सिद्धांत पर आधारित पाकिस्तान की कल्पना मूर्तिमान स्वरूप धारण कर रही थी।—भा० वि०, पृ० १००।

पाकिस्तानी—वि० [फा०] १ पाकिस्तान का। २. पाकिस्तान में होनेवाला। २. पाकिस्तान से संबद्ध।

पाकी[1]—वि० [सं० पाकिन्] पकने की ओर अभिमुख। जो पक्व हो रहा हो [को०]।

पाकी[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. निर्मलता। पवित्रता। शुद्धता। २. परहेजगारी। ३ स्वच्छता। सफाई।

मुहा०—पाकी लेना = उपस्थ पर के बाल साफ करना।

पाकीज़ा—वि० [फा० पाकीज़ह्] [संज्ञा पाकीजगी] १. पाक। पवित्र। शुद्ध। २. खूबसूरत। सुंदर। ३. बेऐब। निर्दोष।

पाकु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाकुक'।

पाकुक—संज्ञा पुं० [सं०] रसोइया। पाचक।

पाकेट[1]—संज्ञा पुं० [अं०] जेब। खीसा।

मुहा०—पाकेट गरम करना = (१) घूस लेना। (२) घूस देना। पाकेट गरम होना = पास में धन होना।

यौ०—पाकेटमार = जेबकट। गिरहकट। पाकेटमारी = गिरहकटी। जेबकटी का काम।

पाकेट[2]—संज्ञा पुं० [अं० पैकेट] १. 'पैकेट'। २. नियमित दिन को डाक, माल और यात्री लेकर रवाना होनेवाला जहाज। (लश०)।

पाकेट[3]—संज्ञा पुं० [डिं०] ऊँट।

पाक्य[1]—वि० [सं०] जो पच सके। पचने योग्य। पचनीय।

पाक्य[2]—संज्ञा पुं० १. काला नमक। २. साँभर नमक। ३. जवाखार। ४ शोरा।

पाक्यक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] १ जवाखार। २ शोरा।

पाक्यज—संज्ञा पुं० [सं०] कचिया नमक।

पाक्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सज्जी। २ शोरा।

पाक्ष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पाक्षी] १ पक्ष या पाख संबंधी। पाक्षिक। पक्षविशेष से संबंध रखनेवाला [को०]।

पाक्षपातिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पाक्षपातिकी] पक्षपात करनेवाला। पक्षपाती [को०]।

पाक्षायण—वि० [सं०] १. जो पक्ष में एक बार हो या किया जाय। २. जो पक्ष से संबंध रखता हो।

पाक्षिक[1]—वि० [सं०] १. पक्ष या पखवाड़े से संबंध रखनेवाला। २. जो पक्ष या प्रति पक्ष में एक बार हो या किया जाय। जैसे,—पाक्षिक पत्र या बैठक। ३. किसी विशेष व्यक्ति का पक्ष करनेवाला। पक्षवाही। तरफदार। ४ दो मात्राओं का (छंद)। ५. पक्षियों से संबद्ध। पक्षिसबंधी (को०)। ६. वैकल्पिक। ऐच्छिक (को०)।

पाक्षिक[2]—संज्ञा पुं० १. पक्षियों को मारनेवाला। व्याध। बहेलिया। २ विकल्प। पक्षांतर (को०)।

पाखंड[1]—संज्ञा पुं० [सं० पाखण्ड] १. वेदविरुद्ध आचार। उ०—षट दरसन पाखंड छानबे पकरि किए बेगारी।—धरम०, पृ० ६२। २. वह भक्ति या उपासना जो केवल दूसरों के दिखाने के लिये की जाय और जिसमें कर्ता की वास्तविक निष्ठा वा श्रद्धा न हो। ढोंग। आडंबर। ढकोसला। ३. वह व्यय जो किसी को धोखा देने के लिये किया जाय। बकभक्ति। छल। धोखा। ४ नीचता। शरारत। ५. जैन या बौद्ध (को०)।

मुहा०—पाखंड फैलाना = किसी को ठगने के लिये उपाय रचना। बुरे हेतु से ऐसा काम करना जो अच्छे इरादे से किया हुआ जान पड़े। नजर फेराना। ढकोसला खड़ा करना। जैसे,—(क) उस (साधु) ने कैसा पाखंड फैला रखा है। (ख) वह तुम्हारे पाखंड को ताड़ गया।

पाखंड[2]—वि० पाखंड करनेवाला। पाखंडी।

पाखंडी—वि० [सं० पाखण्डिन्] १. वेदविरुद्ध आचार करनेवाला। वेदाचार का खंडन या निंदा करनेवाला।

विशेष—पद्मपुराण में लिखा है कि जो नारायण के अतिरिक्त

अन्न देना को भी वेदवर्जित कहता है, जो मस्तक आदि में वैदिक चिह्नों को धारण न कर अवैदिक चिह्नों को धारण करता है, जो वेदाचार को नहीं मानता, जो सदा अवैदिक कर्म करता रहता है, जो वानप्रस्थाश्रमी न होकर जटावल्कल धारण करता है, जो ब्राह्मण होकर हरि के अत्यंत प्रिय शंख, चक्र, उर्ध्वपुंड्र आदि चिह्न धारण नहीं करता, जो बिना भक्ति के वैदिक यज्ञ करता है, जीवहिंसक, जीवभक्षक, अप्रशस्त दान लेनेवाला, पुजारी, ग्रामयाजक (पुरोहित), अनेक देवताओं की पूजा करनेवाला, देवता के जूठे वा श्राद्ध के अन्न पर पेट पालनेवाला, शूद्र के से कर्म करनेवाला, निषिद्ध पदार्थों को खानेवाला, लोभ, मोह आदि से युक्त, परस्त्रीगामी, आश्रमधर्म का पालन न करनेवाला, जो ब्राह्मण सभी वस्तुओं को खाता या बेचता हो, पीपल, तुलसी, तीर्थस्थान आदि की सेवा न करनेवाला, सिपाही, लेखक, दूत, रसोइया आदि के व्यवसाय और मादक पदार्थों का सेवन करनेवाला ब्राह्मण पाखंडी है। पाखंडी के साथ उठना बैठना, उसके घर जल पीना या भोजन करना विशेष रूप से निषिद्ध है। यदि किसी प्रकार एक बार भी इस निषेध का उल्लंघन हो जाय तो परम वैष्णव भी इस पाप से पाखंडी हो जायगा। मनुस्मृति के मत से पाखंडी का वाणी से भी सत्कार न करे और राजा उसे अपने राज्य से निकाल दे।

२. बनावटी धार्मिकता दिखानेवाला। जो बाहर से परम धार्मिक जान पड़े पर गुप्त रीति से पापाचार में रत रहता हो। कपटाचारी। बगलाभगत। ३. दूसरों को ठगने के निमित्त अनेक प्रकार के आयोजन करनेवाला। ठग। धोखेबाज। धूर्त।

पाख[1]—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष, प्रा० पक्ख] १. महीने का आधा। पंद्रह दिन। पखवाड़ा। २ मकान की चौड़ाई की दीवारों के वे भाग जो ठाठ के सुभीते के लिये लंबाई की दीवारों से त्रिकोण के आकार में अधिक ऊँचे किए जाते हैं और जिनपर लकड़ी का वह लंबा मोटा और मजबूत लट्ठा रखा जाता है जिसको 'बड़ेर' कहते हैं। कच्चे मकानों में प्रायः और पक्के में भी कभी कभी पाख बनाए जाते हैं। इनसे ठाठ को ढालू करने में सहायता होती है। पाख के सबसे ऊँचे भाग पर बड़ेर रखी जाती है जिसपर सारे ठाठ और खपरैलों का भार होता है। पाख का आकार इस प्रकार का होता है—

पाख[2]—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष, प्रा० पक्ख] पक्षी का पंख। डैना। पर।
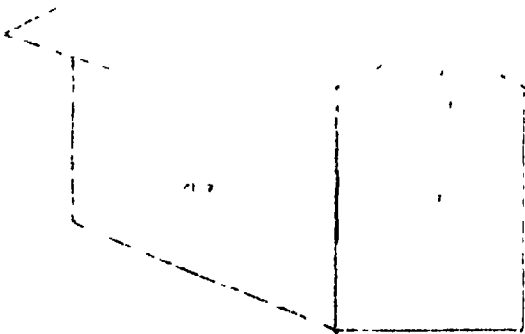
पाखती—संज्ञा पुं० [देश०] पार्श्वरक्षक सैनिक। उ०—पाखती सबल जोधे प्रचंड।—रा० रू०, पृ० १८३।

पाखर[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रखर, प्रक्खर] १. लोहे की वह झूल जो लड़ाई के समय रक्षा के लिये हाथी या घोड़े पर डाली जाती है। चार आईना। २. राल चढ़ाया हुआ टाट या उससे बनी हुई पोशाक।

पाखर[2]—संज्ञा पुं० [सं० पर्कटी] दे० 'पाकर'।

पाखरि—संज्ञा स्त्री० [हिं] दे० 'पाखर'। उ०—गिरिवन कुंज खरिक अरु बाखरि, हित मतंग यै परि पन पाखरि।—घनानंद, पृ० २९३।

पाखरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाखर+इया (प्रत्य०)] दे० 'पाखर'। उ०—बखतर ढाल बँदूक पाखरिया कमधज पड्या। करसी कूका कूक नाम घुड़ासी नानिया।—राम० धर्म०, पृ० ७०।

पाखरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाखर (= झूल)] टाट का बना हुआ वह बिस्तरा जिसको गाड़ी में पहले बिछाकर तब अनाज भरा जाता है।

पाखा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पक्ष, प्रा० पक्ख] १. कोना। छोर। उ०—पावक भाख्यो जिष्णुपदी सो शंभु तेज अतिघोरा। तजहु हिमाचल के पाखा में यह सम्मत है मोरा।—रघुराज (शब्द०)। २. दे० 'पाख-२'।

पाखा[2]—संज्ञा पुं० दे० 'पंख'।

पाखाक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पाखाक] चरणरज। पैर की धूल।

पाखान—संज्ञा पुं० [सं० पाषाण] पत्थर।

पाखानभेद—संज्ञा पुं० [सं० पाषाणभेदक] दे० 'पखानभेद'।

पाखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० पाखानह्] १. वह स्थान जहाँ मलत्याग किया जाय। २. भोजन के पाचन के उपरांत बचा हुआ मल जो अधोमार्ग से निकल जाता है। गू। गलीज। पुरीष।

मुहा०—पाखाने जाना = मलत्याग के लिये जाना। पाखाना खता होना = बहुत ही भयभीत होना। पाखाना निकलना। पाखाना निकलना = मारे भय के बुरा हाल होना। जैसे,—उन्हें देखते ही इनका पाखाना निकलता है। पाखाना फिरना = मलत्याग करना। पाखाना फिर देना = डर से घबरा जाना। भय से अत्यंत व्याकुल हो जाना। जैसे,—शेर को देखते ही डर के मारे पाखाना फिर दोगे। पाखाना लगना = मल निकलने की आवश्यकता जान पड़ना। मल का वेग जान पड़ना।

पाग[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पग (= पैर)] पगड़ी। उ०—जूती का दे सर पर मारी, और लपककर पाग उतारी।—दक्खिनी०, पृ० ३११।

विशेष—कहते हैं, पगड़ी पहले पैर के घुटने पर बाँधकर तब सिर पर रखी जाती थी, इसी से यह नाम पड़ा।

पाग[2]—संज्ञा पुं० [सं० पाक] १. दे० 'पाक'। २. वह शीरा या चाशनी

जिसमें मिठाइयाँ या दूसरी खाने की चीजें डुबाकर रखी जाती हैं। उ०—आखर अरथ मंजु मृदु मोदक राम प्रेम पाग पागिहैं।—तुलसी (शब्द०)। ३. चीनी के शीरे में पकाया हुआ फल आदि। जैसे, कुम्हड़ा पाग। ४. वह दवा या पुष्टई जो चीनी या शहद के शीरे में पकाकर बनाई जाय और जिसका सेवन जलपान के रूप में भी कर सकें।

पागड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० पग] १. पैर। चरण। उ०—प्रबल सूर असुर जिण लगाया पागड़े।—रघु० रू०, पृ० ३१। २. रिकाब। ऊँट या घोड़े की काठी का पावदान जिसपर पैर रखकर सवार होते हैं। उ०—ढोलउ हल्लाणउ करइ धण हल्लिवा न देइ। झब झब झूँबइ पागड़इ डबउब नयण भरेइ।—ढोला०, दू० ७०।

पागना[1]—क्रि० स० [सं० पाक] शीरे या किवाम में डुबाना। मीठी चाशनी में सानना या लपेटना। उ०—आखर अरथ मंजु मृदु मोदक राम प्रेम पाग पागिहैं।—तुलसी (शब्द०)।

पागना[2]—क्रि० अ० किसी विषय में अत्यंत अनुरक्त होना। डूबना। मग्न होना। तन्मय होना। उ०—(क) तब बसुदेव देवकी निरखत परम प्रेम रस पागे।—सूर (शब्द०)। (ख) पिय पागे परोसिन के रस में बस में न कहूँ बस मेरे रहैं।—पद्माकर (शब्द०)।

पागर[1]—संज्ञा पुं० [?] वह रस्सा जिससे मल्लाह नाव को खींचकर नदी के किनारे बाँधते हैं। गून (लश०)।

पागर[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पग] रिकाब। घोड़े की काठी का पायदान। उ०—निजं मन आगम जानि मरन्न, पवंगम पागर काटि चरन्न। उपानह छंडिय चावंड राइ, पवन्नह बेग जवन्नह धाइ।—पृ० रा०, ६६।१२२।

पागल—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पगली, पागलिनी] १. विक्षिप्त। बौड़हा। सनकी। बावला। सिड़ी। जिसका दिमाग ठीक न हो।

यौ०—पागलखाना। पागलपन।

२. क्रोध, शोक या प्रेम आदि के उद्वेग में जिसकी भला बुरा सोचने की शक्ति जाती रही हो। जिसके होश हवास दुरुस्त न हों। आपे से बाहर। जैसे,—(क) वे उनके प्रेम में पागल हो गए हैं। (ख) वे मारे क्रोध के पागल हो गए हैं। ३. मूर्ख। नासमझ। बेवकूफ। जैसे,—तुम निरे पागल हो।

पागलखाना—संज्ञा पुं० [हिं० पागल+फ़ा० खानह्] वह स्थान जहाँ पागलों को रखकर उनका इलाज किया जाता है। पागलों के रखने का स्थान।

पागलपन—संज्ञा पुं० [हिं० पागल+पन (प्रत्य०)] वह भीषण मानसिक रोग जिससे मनुष्य की बुद्धि और इच्छाशक्ति आदि में अनेक प्रकार के विकार होते हैं। उन्माद। बावलापन। विक्षिप्तता। चित्तविभ्रम। विशेष—दे० 'उन्माद'। २. मूर्खता। बेवकूफी।

पागली—संज्ञा स्त्री० [हिं० पागल] दे० 'पगली'।

पागुपु—संज्ञा पुं० [हिं० पाग] दे० 'पाग'। उ०—ललित लसैं सिर पागु तकैं, तक तँह तँह मुरझै।—नंद० ग्रं०, पृ० २०७।

पागुर†—संज्ञा पुं० [हिं० पाक] दे० 'जुगाली'।

पाघपु†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाग] दे० 'पाग'। उ०—पाघ विराजत सीस पर जरकस जोति निहाय। मनो मेर के सिषर पर रह्यौ ग्रहप्पति आय।—पृ० रा०, १।७५०।

पाचक[1]—वि० [सं०] जो किसी कच्ची वस्तु को पचावे या पकावे। पचाने या पकानेवाला।

पाचक[2]—संज्ञा पुं० १. वह नमकीन या क्षारयुक्त औषध जो भोजन को पचाने और भूख तथा पाचन शक्ति को बढ़ाने के लिये खाई जाती है। २. [स्त्री० पाचिका] भोजन पकानेवाला। रसोइयाँ। बावर्ची। ३. पाँच प्रकार के पित्तों में से एक पित्त।

विशेष—वैद्यक में इसका स्थान आमाशय और पक्वाशय माना गया है। यही भोजन को पचाता और उससे उत्पन्न रस, वायु, पित्त, कफ, मूत्र, पुरीष आदि को अलग अलग करता है। अपने में स्थित अग्नि द्वारा यह अन्य चार पित्तस्थानों की क्रियाओं में सहायता करता है।

४. पाचक पित्त में रहनेवाली अग्नि।

विशेष—शरीर की गरमी का घटना बढ़ना इसी अग्नि की सबलता और निर्बलता पर निर्भर है।

पाचन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पचाने या पकाने की क्रिया। पचाना या पकाना। २. खाए हुए आहार का पेट में जाकर शरीर के धातुओं के रूप में परिवर्तन। अन्न आदि का पेट में जाकर उस रूप में आना जिस रूप में वह शरीर का पोषण करता है। विशेष—दे० 'पक्वाशय'।

यौ०—पाचनशक्ति।

३. वह औषध जो आम अथवा अपक्व दोष को पचावे।

विशेष—पाचन औषध प्रायः काढ़ा करके दी जाती है। यह औषध १६ गुने पानी में पकाई जाती है और चौथाई रह जाने पर व्यवहार में लाई जाती है। वैद्यक में प्रत्येक रोग के लिये अलग अलग पाचन लिखा है जो कुल मिलाकर ३०० से अधिक होते हैं।

४. प्रायश्चित्त। ५. अम्ल रस। खट्टा रस। ६. अग्नि। ७. लाल एरंड। ८. व्रण में से रक्त या मवाद निकालना (को०)। ९. व्रण या घाव का पूरा होना (को०)।

पाचन[2]—वि० १. पचानेवाला। हाजिम। २. किसी विशेष वस्तु के अजीर्ण को नाश करनेवाली औषध।

विशेष—विशेष विशेष वस्तुओं के खाने से उत्पन्न अजीर्ण विशेष पदार्थों के खाने से नष्ट होता है। जो वस्तु जिसके अजीर्ण को नष्ट करती है उसे उसका पाचन कहते हैं। जैसे, कटहल का पाचन केला, केले का घी और घी का जँभीरी नीबू पाचक है। इसी प्रकार आम और भात के अजीर्ण का दूध, दूध के अजीर्ण का अजवायन, मछली तथा मांस के

अजीर्ण का मठा पाचन है। गरम मसाला, हल्दी, हींग, सोंठ नमक आदि साधारण रीति से सभी द्रव्यों के पाचन हैं।

पाचनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोहागा। २. पाचन करनेवाला एक पेय (को०)।

पाचनगण—संज्ञा पुं० [सं०] पाचन ओषधियों का वर्ग। जैसे, काली मिर्च, अजवायन, सोंठ, चव्य, गजपीपल, काकड़ासिंगी आदि।

पाचनशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शक्ति जो भोजन को पचावे। आमाशय और पक्वाशय में रहनेवाले पित्त तथा अग्नि की शक्ति। हाजमा।

पाचना(पु)¹—क्रि० स० [सं० पाचन] १. पकाना। २. अच्छी तरह पकाना। परिपक्व करना। उ०—निसि दिन स्याम सुमिरि यश गावै कलपन मेटि प्रेमरस पाचै।—सूर (शब्द०)।

पाचना²—क्रि० अ० निस्तत्व होना। पचना। गलना। क्षीण होना।

पाचनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पकाने या पचाने की क्रिया [को०]।

पाचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हड़।

पाचनीय—वि० [सं०] जो पचाई या पकाई जा सके। पचाने या पकाने योग्य। पाच्य।

पाचयिता—वि० [सं० पाचयितृ] १ पाक करनेवाला। रसोइया। २. पचानेवाला। हाजिम।

पाचर†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पच्चर'।

पाचल¹—वि० [सं०] १. पाक करनेवाला। पकानेवाला। २. पचानेवाला। हाजिमा [को०]।

पाचल²—संज्ञा पुं० १. अग्नि। २. पाचक। रसोइया। ३. वायु। ४. रींधने या पकाने की वस्तु [को०]।

पाचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रींधना। पकाना [को०]।

पाचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पाचा' [को०]।

पाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसोईदारिन। रसोई करनेवाली।

पाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे वैद्यक में कटु-तिक्त, कषाय, उष्ण, वातविकार, प्रेत और भूत की बाधा, चर्मरोग और फोड़े फुंसियों में उपकारक माना है। पाची या पच्ची लता। मर्कतपत्री। हरितपत्रिका।

पाच्छा† —संज्ञा पुं० [फ़ा० पादशाह] दे० 'बादशाह'।

पाच्छाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पादशाही] राज्य। हुकूमत। बादशाहत। उ०—जिनके लागे सब्द के डंडा त्यागि चले पाच्छाई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १६।

पाच्छाह—संज्ञा पुं० [फ़ा० पादशाह] दे० 'बादशाह'।

पाच्य—वि० [सं०] जो पचाया या पकाया जा सके। पचाने या पकाने योग्य। पाचनीय।

पाछ—संज्ञा पुं० [हिं० पाछना] १. जंतु या पौधे के शरीर पर छुरी की धार आदि मारकर ऊपर ऊपर किया हुआ घाव जो गहरा न हो। २. पोस्ते के डोडे पर नहरनी से लगाया हुआ चीरा जिससे गोंद के रूप में अफीम निकलती है। ३. पाछने की क्रिया अथवा भाव। ४. किसी वृक्ष पर उसका रस निकालने के लिये लगाया हुआ चीरा।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

पाछ†²—संज्ञा पुं० [सं० पश्चात्, प्रा० पच्छा] पीछा। पिछला भाग।

पाछ³—क्रि० वि० पीछे। उ०—ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात। जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहिं मोहिं तात।—तुलसी (शब्द०)।

पाछना—क्रि० स० [हिं० पाछ] जंतु या पौधे के शरीर पर छुरी की धार इस प्रकार मारना कि वह दूर तक न धँसे और जिससे केवल ऊपर ऊपर का रक्त आदि निकल जाय। छुरा या नहरना आदि से रक्त, पंछा या रस निकालने के लिये हलका चीरा लगाना। चीरना। उ०—मुनि सुत बचन कहत कैकेई। मरमु पाछि जनु माहुर देई।—तुलसी (शब्द०)।

पाछल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'पिछला'।

पाछली—वि० [हिं०] दे० 'पिछला'। उ०—भए अंतरधान बीते पाछली निसि जाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ७८।

पाछलु(पु)—वि० [हिं०] दे० 'पिछला'।

पाछा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पाछ] दे० 'पीछा'।

पाछाई†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पादशाही] बादशाही। हुकूमत। उ०—लोक तीन नहिं चौथे माही। जा घर संत करै पाछाई।—घट०, पृ० २५६।

पाछिल(पु)—वि० [हिं० पाछ+इल (प्रत्य०)] दे० 'पिछला'। उ०—पाछिल मोह समुझि पछताना। ब्रह्म अनादि मनुज कर माना।—तुलसी (शब्द०)।

पाछी(पु)¹—क्रि० वि० [हिं० पाछ] पीछे की ओर। पीछे। उ०—यक दिन भृतक राखि यक पाछी। नंददास घर के कछु पाछी।—रघुराज (शब्द०)।

पाछी²—संज्ञा स्त्री० [सं० पक्षी] दे० 'पक्षी'। उ०—रसना तु अनुरागनि पाछी। गोविंद गुनगन गरिमा साछी।—घनानंद, पृ० २६६।

पाछू†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'पीछे'।

पाछें†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'पीछे'। उ०—कान्ह को डर जिनि जिय मैं आनौ। पाछे मोहिं आयो ही जानौ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१।

पाछे‡—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'पीछे'।

पाछौ‡—क्रि० वि० [सं० पश्चा, प्रा० पच्छा हिं० पाछा] दे० 'पाछा'। उ०—ताते श्री ठाकुर जी ने वा वैष्णव के लरिका को पाछौ घर भेज्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३२७।

पाज¹—संज्ञा पुं० [सं० पाजस्य] पाँजर। उ०—निरखि छवि फूलत हैं ब्रजराज। उत जमुदा इत आपु परस्पर आडे रहे कर पाज।—सूर (शब्द०)।

पाज²—संज्ञा पुं० [?] १. पंक्ति। पाँती। कतार। (लश०)।

५२. सेतु। पुल। बाँध। उ०—(क) बंधि पाज सागरह हनुम अंगद सुग्रीवह।—पृ० रा०, २।२७१। (ख) ब्रज तिय हिय सरबर रसभरे। लाज पाज तजि उमगनि ढरे।—घनानंद०, पृ० ३२२।

पाजरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक वनस्पति जिससे रंग निकाला जाता है।

पाजस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाँजर। छाती और पेट की बगल का भाग। २. पार्श्व। बगल।

पाजा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पायचा'।

पाजामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पाजामह्] पैर में पहनने का एक प्रकार का सिला हुआ वस्त्र जिससे टखने से कमर तक का भाग ढका रहता है। सुथना। तमान। इजार।

विशेष—पाजामे के टखने की ओर के अंतिम भाग को मुहरी या मोरी, जितना भाग एक एक पैर मे होता है उसे पायचा, दोनों पायचों के मिलानेवाले भाग को मियानी, कमर की ओर के अंतिम भाग को जिसमे इजारबंद रहता है नेफा और जिस सूत या रेशम के बंधनों को नेफे मे डालकर कसते हैं, उसे इजारबंद कहते हैं। पाजामे के कई भेद है—(क) चूड़ीदार, जो घुटने के नीचे इतना तंग होता है कि सहज में पहना या उतारा नही जा सकता। पहनने पर घुटने के नीचे इसमें बहुत से मोड पड़ जाते हैं। इसके भी दो भेद होते हैं—आडा और खडा। आड़े की काट नीचे से ऊपर तक आड़ी और खड़े की खडी होती है। कभी कभी इसमें मोहरी की तरफ तीन बटन लगते हैं। उस दशा मे मोहरी और भी तंग रखी जाती है। (ख) बरदार, जो घुटने के नीचे और ऊपर बराबर चौड़ा होता है। इसकी एक एक मुहरी एक हाथ से कम चौड़ी नहीं होती। (ग) अरबी, जिसकी मोहरी चूड़ीदार से अधिक ढीली होती है और जो अधिक लंबा न होने के कारण सहज में पहन लिया जाता है। (घ) पतलूननुमा, जिसकी मोहरी बरदार से कम और अरबी से अधिक चौड़ी होती है। आजकल इसी पाजामे का रवाज अधिक है। (ङ) कलीदार या जनाना पाजामा, जो नेफे की तरफ कम और मोहरी की तरफ अधिक चौड़ा रहता है। इसके नेफे का घेरा १ गज और मोहरी का २½ गिरह होता है। इसमें बहुत सी कलियाँ होती हैं जिनका चौड़ा भाग मोहरी की ओर और तंग भाग नेफे की ओर होता है। (च) पेशावरी, जो कलीदार का प्रायः उलटा होता है अर्थात् नेफा १½ गज और मोहरी प्रायः २½ गिरह चौड़ी होती है। (छ) काबुली और (ज) नेपाली भी इसी प्रकार के होते हैं। पहले के नेफे का घेरा ४ गज और दूसरे का २½ गज होता है। इनमें कलियों की स्थापना कलीदार की उलटी होती है।

पाजामे का व्यवहार इस देश मे कब से प्रारंभ हुआ, उपलब्ध इतिहासों से इसका निश्चय नही होता। अधिकतर लोगों का ख्याल है कि यह मुसलमानों के साथ यहाँ आया। पहले यहाँ के लोग धोती ही पहना करते थे। परंतु पहाड़ियों और शीतप्रधान प्रदेशों के रहनेवालों में आजकल इसका जितना व्यवहार है उससे संदेह हो सकता है कि पहले भी उनका काम इसके बिना न चलता रहा होगा। आजकल हिंदू, मुसलमान दोनो पाजामा पहनते हैं, पर मुसलमान अधिक पहनते हैं।

पाजी¹—संज्ञा पुं० [सं० पदाति] १ पैदल सेना का सिपाही। प्यादा। २. रक्षक। चौकीदार। उ०—पउरी नवउ बजर कइ साजी। सहस सहस तहँ बइठे पाजी।—जायसी (शब्द०)।

पाजी²—वि० [सं० पाय्य] दुष्ट। लुच्चा। खोटा। कमीना।

पाजीपन—संज्ञा पुं० [हिं० पाजी+पन (प्रत्य०)] दुष्टता। खुटाई। कमीनापन। नीचता।

पाजेब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] स्त्रियों का एक गहना जो पैरों में पहना जाता है। यह चाँदी का होता है और इसमें घुँघरू टँके होते हैं। मंजीर। नूपुर।

पाटंबर—संज्ञा पुं० [सं० पाटम्बर] रेशमी वस्त्र। रेशमी कपड़ा।

पाट—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट, पाट] १. रेशम। उ०—झूलत पाट की डोरी गहे पटुली पर बैठन ज्यों कुरुखी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १ पृ० ३६१।

यौ०—पाटंबर। पाटकृमि।

२. बटा हुआ रेशम। नख। ३ रेशम के कीड़े का एक भेद। ४. पटसन या पाटसन के रेशे। जैसे, पाट की धोती। विशेष—दे० 'पटसन'। ५. राज्यासन। सिंहासन। गद्दी।

यौ०—राजपाट। पाटरानी। पाटमहादेइ। पाटमहिषी।

६. चौड़ाई। फैलाव। जैसे, नदी का पाट, धोती का पाट। ७. पल्ला। पीढ़ा। तख्ता। उ०—पीढत झूला, पाट उलटि कै तरकि परत जब।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १०। ८. कोई शिला या पटिया। ९ वह शिला जिसपर धोबी कपड़े धोता है। १०. चक्की का एक ओर का भाग। ११. वह चिपटा शहतीर जिसपर कोल्हू हाँकनेवाला बैठता है। १२. वह शहतीर जो कुएँ के मुँह पर पानी निकालनेवाले के खड़े होने के लिये रखा जाता है। १३. मृदंग के चार वर्णों मे से एक। १४ बैलों का एक रोग जिसमें उनके रोओं से रक्त बहता है।

क्रि० प्र०—फूटना।

१५. वस्त्र। कपड़ा। १६. हल में का मछोतर जिसकी सहायता से हरिस में हल जुड़ा रहता है। यह मछली के आकार का होता है।

पाटक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वरवाद्य। २. गाँव का आधा अथवा कोई भाग। ३. तट। किनारा। ४ पासा। ५ मूलधन का अपचय या हानि (को०)। ६. तट पर जाने के लिये निर्मित सीढ़ी या सोपान (को०)।

पाटक²—वि० [सं०] विभाग करनेवाला। चीरने या फाड़नेवाला [को०]।

पाटकरण—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध जाति के रागों का एक भेद।

पाटच्चर—संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

पाटण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पत्तन] नगर।

पाटद—संज्ञा पुं० [सं०] कपास।

पाटन[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाटना] १. पाटने की क्रिया या भाव। पटाव। २. जो कुछ पाटकर बनाया जाय। कच्ची या पक्की छत। ३. मकान की पहली मंजिल से ऊपर की मंजिलें। ४. सर्प का विष उतारने के मंत्र का एक भेद। जिसको साँप ने काटा हो उसके कान के पास पाटन मंत्र चिल्लाकर पढ़ा जाता है। उ०—काम भुवंग विषय लहरी सी। मणि मयूर पाटन गहरी सी।—विश्राम (शब्द०)। ५. कई प्राचीन नगरों के नाम।

पाटन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] पाटने की क्रिया या भाव। चीरना। भेदना। विदारना। फाड़ना।

पाटन[3]—संज्ञा पुं० [सं० पत्तन] दे० 'पट्टन'। उ०—ऐसे पाटन आइके सौदा करो बनाय।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २४।

पाटनक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शल्यचिकित्सा। शल्यक्रिया। घाव आदि चीरना (को०)।

पाटना—क्रि० स० [हिं० पाट] १. किसी नीचे स्थान को उसके आस पास के धरातल के बराबर कर देना। किसी गहराई को मिट्टी, कूड़े आदि से भर देना। २. किसी चीज की रेल पेल कर देना। ढेर लगा देना। उ० नाटक नाट्य धार घाटन में सुख पाटन कमनीया।—रघुराज (शब्द०)। ३ दो दीवारों के बीच या किसी गहरे स्थान के आर पार धरन, लकड़ी के बल्ले आदि बिछाकर आधार बनाना। छत बनाना। ४. तृप्त करना। सींचना। ५. पूर्ण करना। निबाह करना। उ०—जमुना घाटनि गहबर बाटनि। पट्टा पाज पैजपन पाटनि।—घनानंद, पृ० २५६।

पाटनीय—वि० [सं०] चीरने योग्य। फाड़ने योग्य (को०)।

पाटमहादेइ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० पट्ट महादेवी] दे० 'पाटमहिषी'। उ०—पाट महादेइ हिएं न हारू। समुझि जीउ चित चेत सँभारू।—पदमावत, पृ० ३४३।

पाटमहिषी—संज्ञा स्त्री० [सं० पट्ट (=सिंहासन) + महिषी (=रानी)] वह रानी जो राजा के साथ सिंहासन पर बैठ सकती हो। पटरानी। प्रधान रानी। उ०—जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी।—मानस, १।३२४।

पाटरानी—संज्ञा स्त्री० [पुं० पट्ट (=सिंहासन) + रानी] पटरानी। प्रधान रानी।

पाटल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाडर या पाडर का पेड़ जिसके पत्ते बेल के समान होते हैं। उ०—भौंर रहे भननाय पुहुप पाटल के महकत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १०१।

विशेष—लाल और सफेद फूलों के भेद से यह दो प्रकार का होता है। वैद्यक में इसे उष्ण, कषाय, स्वादिष्ट तथा अरुचि, सूजन, रुधिरविकार, श्वास और तृष्णा आदि को दूर करनेवाला माना है।

पर्या०—पाटला। कबु'रा। अमोघा। फलेरुहा। अंबुवासिनी। कृष्णावृंता। कालवृंता। कुभी। ताम्रपुष्पी। कुबेराक्षी। तोयपुष्पी। वसंतदूती। स्थाली। स्थिरगंधा। अंबुवासी। कोकिला।

२. पाटल का फूल (को०)। ३. गुलाबी रंग। सफेदी लिए लाल रंग (को०)। ४ एक प्रकार का धान (को०)। ५. केशर (को०)। ६. गुलाब का फूल। ७. लाल लोध्र (को०)।

पाटल[2]—वि० [सं०] ललाई लिए श्वेत वर्ण का। गुलाबी वर्ण का (को०)।

पाटलक—वि० [सं०] पाटल वर्ण का (को०)।

पाटलकीट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा।

पाटलचक्षु—वि० [सं० पाटलचक्षुष्] जिसकी आँख में मोतियाबिंद का रोग हो (को०)।

पाटलद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] पुन्नाग वृक्ष। राजचंपक।

पाटला[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाडर का वृक्ष। २ लाल लोध। ३. जलकुंभी। ४. दुर्गा का एक रूप।

पाटला[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया सोना जो भारत मे ही शुद्ध करके काम में लाया जाता है। यह बंक के सोने से कुछ हलका और सस्ता होता है।

पाटलावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. प्राचीन काल की एक नदी का नाम।

पाटलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाडर का वृक्ष। उ०—त्रिविध समीर बहै पाटलि, सुगंधि सनी।—शकुंतला, पृ० ५। २. पांडुफली।

पाटलिक[1]—वि० [सं०] १. दूसरों की गुप्त बातों को जाननेवाला। २. देशकाल की जानकारी रखनेवाला (को०)।

पाटलिक[2]—संज्ञा पुं० १. छात्र। विद्यार्थी। शिष्य। २. पाटलिपुत्र।

पाटलित—वि० [सं०] लाल किया हुआ। लालिमायुक्त (को०)।

पाटलिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मगध का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर जो इस समय भी बिहार का मुख्य नगर है। आजकल यह पटना के नाम से प्रसिद्ध है।

विशेष—प्राचीन पाटलिपुत्र वर्तमान पटना से प्राय: २½ मील पूर्व गंगा के तट पर जहाँ इस समय कुम्हरार नामक ग्राम है, स्थित था। खुदाई से वहाँ उसके बहुत से चिह्न मिले हैं। बुद्ध की परवर्ती कई शताब्दियों में यह नगर भारत का सर्वप्रधान नगर और अत्यंत उन्नत तथा समृद्ध था। विदेशी यात्रियों ने अपने यात्रावृत्तांतों में इसकी बड़ी प्रशंसा लिखी है। प्राचीन पुस्तकों में इसका नाम पुष्पपुर और कुसुमपुर भी लिखा है। वर्तमान पटना शेरशाह सूर का बसाया हुआ है। ब्रह्मपुराण मे लिखा है कि महाराज उदायी या उदयन ने गंगा के दाहिने किनारे पर इस नगर को बसाया। यह मगधराज

अजातशत्रु का पुत्र था जो बुद्ध का समकालिक था। बौद्धों के 'महानिब्बाहनसुत्त' नामक ग्रंथ में इसके निर्माण के विषय में यह कथा लिखी है : भगवान् बुद्ध नालंद से वैशाली जाते हुए पाटली ग्राम में पहुँचे। वहाँ के निवासियों ने उनके लिये एक विश्रामागार बनवा दिया। उन्होंने आशीर्वाद दिया कि यह ग्राम एक विशाल नगर होगा और अग्नि, जल तथा विश्वासघातकता के आघात सहन करेगा। मगधराज के दो मंत्री कोई ऐसा नगर बसाने के लिये उपयुक्त स्थान ढूँढ़ रहे थे जिसमें रहकर निच्छिव नामक ब्रात्य क्षत्रियों के आक्रमण से देश की रक्षा की जा सके। उपर्युक्त आशीर्वाद की बात सुनते ही उन्होंने पाटली में नगर बसाना प्रारंभ कर दिया। इसी का नाम पाटलिपुत्र पड़ा। भविष्य पुराण के अनुसार विश्वामित्र के पिता गाधि की कन्या पाटली के इच्छानुसार कौडिन्य मुनि के पुत्र ने मंत्रबल से इस नगर को बसाया और इसी से पाटलीपुत्र नाम रखा।

पाटलिमा—संज्ञा पुं० [सं० पाटलिमन्] पाटल वर्ण या गुलाबी रंग (को०)।

पाटली[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाडर। २. पांडुफली। ३. पटना नगर की अधिष्ठात्री देवी। ४. गाधि की पुत्री जिसके अनुरोध से पाटलीपुत्र बसा।

यौ०—पाटलीपुत्र = पाटलिपुत्र।

पाटली[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाट] लकड़ी की एक बल्ली जिसमें बहुत से छेद होते हैं और प्रत्येक छेद में से मस्तूल की एक एक रस्सी निकाली जाती है। इससे रात में किसी विशेष रस्सी को अलग करने में कठिनाई नहीं पड़ती। (लश०)।

पाटली तैल—संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध तैल जिसके लगाने से जले हुए स्थान की जलन, पीड़ा और चेप बहना दूर होता है। इससे चेचक की भी शांति होती है।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पाडर या पाढर की छाल के ८ सेर का ६४ सेर पानी में काढ़ा किया जाय। चौथाई रह जाने पर ८ सेर सरसों के तेल में डालकर फिर धीमी आँच में वह पकाया जाय। तेलमात्र रह जाने पर छानकर काम में लाएँ।

पाटलोपल—संज्ञा पुं० [सं०] एक मणि जिसका रंग सफेदी लिए हुए लाल होता है। लाल।

पाटल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटल के फूलों का समूह (को०)।

पाटव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पटुता। चतुराई। कुशलता। चालाकी। उ०—झलक आया स्वेद भी मकरंद सा, पूर्ण भी पाटव हुआ कुछ मंद सा।—साकेत, पु० २३। २. दृढ़ता। मजबूती। पक्कापन। ३. आरोग्य। ४. स्फूर्ति। तीव्रता। शीघ्रता (को०)। ५. तीक्ष्णता (को०)।

पाटविक—वि० [सं०] १. पटु। कुशल। २ धूर्त।

पाटवी—वि० [हिं० पाट] १. पटरानी से उत्पन्न (राजकुमार)। उ०—हैं मम प्रभु सुत पाटवी मैं तुव पितु पद दास।—रघुराज (शब्द०)। २. रेशमी कौषेय। रेशम से बुना हुआ (वस्त्र)। उ०—गल हैकल सिर सुवरण श्रृंगा। पीठ पाटवी झूल अभंगा।—रघुराज (शब्द०)। ३. वरिष्ठ। श्रेष्ठ। ज्येष्ठ। पट्ट अधिकारी। प्रधान। बड़ा। उ०—गरीबदास जी दादू जी के पाटवी पुत्र और प्रधान शिष्य थे।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १, पु० ११।

पाटसन—संज्ञा पुं० [सं० पट्टशण] पटसन। पटुआ।

पाटहिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटह बजानेवाला। उस बड़े ढोल का बजानेवाला जो लड़ाई आदि में बजता है।

पाटहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघुची।

पाटा—संज्ञा पुं० [हिं० पाट] १. पीढ़ा।

मुहा०—पाटा फेरना = पीढ़ा बदलना। विवाह में वर के पीढ़े पर कन्या को और कन्या के पीढ़े पर वर को बिठाना।

२ दो दीवारों के बीच बाँस, बल्ली, पटिया आदि देकर बनाया हुआ आधारस्थान जिसपर चीजें रखी जाती हैं। टाँड़ा। ३. वह हाथ डेढ़ हाथ ऊँची दीवार जो रसोईघर में चौके के सामने और बगल में इसलिये बनाई जाती है कि बाहर बैठकर खानेवालों को पकानेवाली स्त्री से सामना न हो। ४. दे० 'पाट'। उ०—ओही छाज छात औ पाटा। सब राजै भुइँ धरा लिलाटा।—जायसी ग्रं०, पु० ५। †५ दे० 'पट्ट'।

पाटि(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाट] सिंहासन। राजासन। उ०—उदै करण राजा आँबेर पाटि बैठा।—शिखर०, पु० १।

पाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक दिन की मजदूरी। २. एक पौधा। ३. छाल या छिलका।

पाटित—वि० [सं०] काटा हुआ। विदारित।

पाटी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परिपाटी। अनुक्रम। रीति। उ०—सीह छतीसी साँभलै छाकै बंस छतीस। बाँकै पाटी बीर रस, बरणी बिसवा बीस।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पु० १८। २. गणनादि का क्रम। जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि का क्रम।

यौ०—पाटीगणित।

३. श्रेणी। अवलि। पंक्ति। पाँत। ४. बला नामक क्षुप। खरैटी।

पाटी[२]—हिं० [सं० पाट, पाटी] १. लकड़ी की वह प्राय. लंबोतरी पट्टी जिसपर विद्यारंभ करनेवाले छात्र गुरु से पाठ लेते या लिखने का अभ्यास करते हैं। तख्ती। पटिया। २ पाठ। सबक।

मुहा०—पाटी पढ़ना = पाठ पढ़ना। सबक लेना। शिक्षा पाना। उ०—तुम कौन धों पाटी पढ़े हौ लला मन लेत हौ देत छटाँक नहीं।—घनानंद (शब्द०)। पाटी पढ़ाना = पाठ पढ़ाना। शिक्षा देना। कोई बात सिखा देना।

३. माँग के दोनों ओर तेल, गोंद या जल की सहायता से कंघा

द्वारा बैठाए हुए बाल, जो देखने में बराबर मालूम हों। पट्टी पटिया। उ०—मुँडली पाटी पारन चाहैं नकटी पहिरै बेसर।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पारना।—बैठाना।

४. लकड़ी का वह गोला, चिपटा या चौकोर पतला बल्ला जो खाट की लंबाई के बल में दोनों ओर रहता है। चारपाई के ढाँचे में लंबाई की ओर की पट्टी। चारपाई के ढाँचे का पार्श्वभाग। उ०—जागत जाति राति सब काटी। लेत करोट सेज की पाटी।—शकुंतला, पृ० १०८।

५. चटाई।

यौ०—शीतलपाटी।

६. शिला। चट्टान। ७. मछलियाँ पकड़ने के लिये बहते पानी को मिट्टी के बाँध या वृक्षों की टहनियों आदि से रोककर एक पतले मार्ग से निकालने और वहाँ पहरा बिछाने की क्रिया।

क्रि० प्र०—बिछाना।—लगाना।

८. खपरैल की नरिया का प्रत्येक आधा भाग। ९. जती।

पाटीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चंदन। उ०—नटवर श्याम किसोर तन चरचित नव पाटीर।—घनानंद, पृ० २७१। २. मेघ। बादल (को०)। ३. क्षेत्र। मैदान (को०)। ४. टीन (को०)। ५. छनना। छलनी। चलनी। (को०)। ६. एक तीक्ष्ण मूलक या मूली (को०)। ७. वेणुसार। बंसलोचन (को०)। ८. नजला। जुकाम (को०)। ९. वह व्यक्ति जो किसी बात को छिपा न सके। पेट का हलका (को०)।

पाटूनी†—संज्ञा सं० [देश०] वह मल्लाह जो किसी घाट का ठेकेदार हो। घटवार।

पाटय—संज्ञा पुं० [सं०] पटसन।

पाठ[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पढ़ने की क्रिया या भाव। पढ़ाई। २. किसी पुस्तक विशेषत. धर्मपुस्तक को नियमपूर्वक पढ़ने की क्रिया या भाव। जैसे, वेदपाठ, स्तोत्रपाठ। ३. ब्रह्मयज्ञ। वेदाध्ययन। वेदपाठ।

यौ०—पाठदोष। पाठप्रणाली।

३. जो कुछ पढ़ा या पढ़ाया जाय। पढ़ने या पढ़ाने का विषय। ४. उक्त विषय का उतना अंग जो एक दिन में या एक बार पढ़ा जाय। सबक। संथा।

क्रि० प्र०—देना।—पढ़ना।—लाना।

मुहा०—पाठ पढ़ना = कुछ सीखना, विशेषत: कोई बुरी बात। जैसे,—आजकल ये जुए का पाठ पढ़ रहे हैं। पाठ पढ़ाना = अपने मतलब के लिये किसी को बहकाना। पट्टी पढ़ाना। उलटा पाठ पढ़ाना = कुछ का कुछ समझा देना। असलियत के विरुद्ध विश्वास करा देना। बहका देना।

५. पुस्तक का एक अंश। परिच्छेद। अध्याय। ६. शब्दों या वाक्यों का क्रम या योजना। जैसे,—अमुक पुस्तक में इस दोहे का यह पाठ है।

यौ०—पाठभेद। पाठांतर।

पाठा[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पट्ठा] जवान गाय, भैंस या बकरी।

पाठक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो पढ़े। पढ़नेवाला। वाचक। २. जो पढ़ावे। पढ़ानेवाला। अध्यापक। ३. धर्मोपदेशक। ४. गौड़, सारस्वत, सरयूपारीण, गुजराती आदि ब्राह्मणों का एक उपवर्ग। ५. गुप्तकाल में प्रचलित एक बड़े माप का नाम जो कुल्यावाप से पँचगुना होता था। उ०—पिछले गुप्तकाल में एक बड़े माप का नाम मिलता है जिसे पाठक कहते थे।—पू० म० भा०, पृ० १२३।

पाठच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] पाठ के बीच में होनेवाला विराम। यति (को०)।

पाठदोष—संज्ञा पुं० [सं०] पढ़ने का ढंग या पढ़ने के समय की वह चेष्टा जो निंद्य और वर्जित है। जैसे, विकृत या कठोर स्वर से पढ़ना, अव्यक्त, अस्पष्ट, सानुनासिक या बहुत ठहर ठहरकर उच्चारण करना, गाकर पढ़ना, सिर आदि अंगों को हिलाना। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में ऐसे दोषों की संख्या अट्ठारह मानी गई है।

पाठन—संज्ञा पुं० [सं०] पढ़ाने की क्रिया या भाव। शिक्षण। पढ़ाना। अध्यापन।

यौ०—पाठनशैली = पढ़ाने की शैली या ढंग। पढ़ाने की पद्धति।

पाठना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पाठन] पढ़ाना।

पाठनिश्चय—संज्ञा पुं० [सं०] पाठ की शुद्धता का निर्णय करना। शुद्ध पाठ निश्चित करना (को०)।

पाठपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पढ़ने की रीति या ढंग।

पाठप्रणाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पढ़ने की रीति या ढंग।

पाठभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह जगह जहाँ वेदादि का पाठ किया जाय। २. ब्रह्मारण्य।

पाठभेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह भेद या अंतर जो एक ही ग्रंथ की दो प्रतियों के पाठ में कहीं कहीं हो। पाठांतर।

पाठमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पाठमञ्जरी] एक प्रकार की मैना।

पाठशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ पढ़ा या पढ़ाया जाय। मदरसा। स्कूल। विद्यालय। चटसाल।

पाठशालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मैना। सारिका।

पाठशाली—संज्ञा पुं० [सं० पाठशालिन्] छात्र। विद्यार्थी (को०)।

पाठशालीय—वि० [सं०] पाठशाला से संबंध रखनेवाला। पाठशाला का।

पाठांतर—संज्ञा पुं० [सं० पाठान्तर] १. एक ही पुस्तक की दो प्रतियों के लेख में किसी विशेष स्थल पर भिन्न शब्द, वाक्य अथवा क्रम। भिन्न भिन्न स्थलों में लिखे हुए एक ही वाक्य के कुछ शब्दों या एक ही शब्द के कुछ अक्षरों का अदल बदल। अन्य पाठ। दूसरा पाठ। पाठभेद। जैसे,—अमुक दोहे के कई पाठांतर मिलते हैं। २. पाठांतर होने का भाव। पाठ का भेद। पाठभिन्नता।

पाठा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता। पाढ़। पाढ़ा।

विशेष—इसके पत्ते कुछ नोकदार गोल, फूल छोटे सफेद और फल मकोय के से होते हैं। फलों का रंग लाल होता है। यह दो प्रकार की होती है—छोटी और बड़ी। गुण दोनों के समान हैं। वैद्यक में यह कड़वी, चरपरी, गरम, तीखी, हलकी, टूटी हड्डियों को जोड़नेवाली, पित्त, दाह, शूल, अतिसार, वातपित्त, ज्वर, वमन, विष, अजीर्ण, त्रिदोष, हृदयरोग, रक्तकुष्ठ, कंडु, श्वास, कृमि, गुल्म, उदररोग, व्रण और कफ तथा वात का नाश करनेवाली मानी गई है।

बहुधा लोग घाव पर इसकी टहनी को बाँधे रहते हैं। वे समझते हैं कि इसके रहने से घाव बिगड़ या सड़ न सकेगा। इसकी सूखी जड़ मूत्राशय की जलन में लाभदायक होती है। पक्वाशय की पीड़ा में भी इसका व्यवहार किया जाता है। जहाँ साँप ने काटा या बिच्छू ने डंक मारा हो वहाँ भी ऊपर से इसके बाँधने से लाभ होता है।

पर्य्या०—पाठिका। अंबष्ठा। अंबष्ठिका। यूथिका। स्थापनी। विद्धकर्णिका। दीपनी। वनतिक्तिका। तिक्तपुष्पा। बृहत्तिक्ता। मालती। वरा। प्रतानिनी। रक्तध्ना। विषहंत्री। महौजसी। वीरा। वल्लिका।

पाठा²—संज्ञा पुं० [सं० पुष्ट, हिं० पट्ठा] [स्त्री० पाठी] १. वह जो जवान और परिपुष्ट हो। हृष्टपुष्ट। मोटा तगड़ा। जैसे, साठा तब पाठा। २. जवान बैल, भैंसा या बकरा।

पाठानⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पठान'। उ०—सुनत खबर लज्जे पाठानह।—प० रासो, पृ० १०५।

पाठालय—संज्ञा पुं० [सं०] पाठशाला।

पाठिक—वि० [सं०] मूल पाठ के समान। मूल पाठ से मिलता जुलता हुआ [को०]।

पाठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पढ़नेवाली। २. पढ़ानेवाली। ३ पाठा। पाढ़ या पाढ़ा लता।

पाठिकुट—संज्ञा पुं० [सं०] चीते का वृक्ष। चित्रक वृक्ष [को०]।

पाठित—वि० [सं०] पढ़ाया हुआ। सिखाया हुआ।

पाठी—संज्ञा पुं० [सं० पाठिन्] १. पाठ करनेवाला। पाठक। पढ़नेवाला। उ०—ना मैं पाठी ना परधाना। ना ठाकुर चाकर तेहि जाना।—कबीर मं०, पृ० ५०१। २. वह ब्राह्मण जो अपना अध्ययन समाप्त कर चुका हो (को०)।

यौ०—वेदपाठी। त्रिपाठी।

३. चीता। चित्रक वृक्ष।

पाठीकुट—संज्ञा पुं० [सं०] चीते का पेड़।

पाठीन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहिना या पढ़िना नाम की मछली। उ०—मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने।—मानस, २।१६३। २. गूगल का पेड़। ३. कथावाचक। पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों का वक्ता (को०)।

पाठ्य—वि० [सं०] १. जो पढ़ने योग्य हो। पठनीय। पठितव्य। २. जो पढ़ाया जाय।

यौ०—पाठ्यक्रम = पढ़ाने या अध्ययन के लिये निर्धारित पाठ। पाठ्यपुस्तक = पढ़ाने के लिये निर्धारित पुस्तक।

पाढ़—संज्ञा पुं० [हिं० पाट] १. धोती, साड़ी आदि का किनारा। २. मचान। पायठ। ३. लकड़ी की जाली या ठठरी जो कुएँ के मुँह पर रखी रहती है। कटकर। चह। ४. बाँध। पुश्ता। ५. वह तख्ता जिसपर खड़ा करके फाँसी दी जाती है। तिकठी। ६. दो दीवारों के बीच पटिया देकर या पाटकर बनाया हुआ आधारस्थान। पाटा। टाँड़।

पाढ़इ—संज्ञा स्त्री० [सं० पाटल] पाटल नामक वृक्ष। उ०—जहाँ निवारी सेवती मिलि झूमक हो। बहु पाढ़इ बिपुल गंभीर मिलि झूमक हो।—सूर (शब्द०)।

पाढ़ना†—क्रि० स० [सं० उत्पाटन] उखाड़ना। उपाटना। उ०—वो तोता जो पिंजर में ते भार फाड़। निकाली जो थी उसके शाह पर वो पाढ़।—दक्खिनी०, पृ० ८६।

पाढ़र—संज्ञा पुं० [सं० पाटल] दे० 'पाढर'। उ०—कहूँ पाढरं डार बैठे परेवा।—प० रासो, पृ० ५५।

पाढल—संज्ञा पुं० [सं० पाटल] दे० 'पाटल'।

पाढलीपुर—संज्ञा पुं० [सं० पाटलिपुत्र] दे० 'पाटलीपुत्र'।

पाढ़साली—संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारत में रहनेवाली जुलाहों की एक जाति।

विशेष—बाघलकोट आदि स्थानों में इस जाति के जुलाहे पाए जाते हैं। लिंगायतों से इनमें बहुत कम अंतर है। ये भी गले में लिंग पहनते और सिर में भस्म रमाते हैं। ये मांस, मद्य आदि का सेवन नहीं करते। ये एक गोत्र में विवाह नहीं करते।

पाढ़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० पट्टन या मा० पद्र, देशी पद्द, बँ० पाड़ा] पुरवा। टोला। महल्ला।

पाढ़ा²—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक सामुद्रिक मछली जो भारतीय महासागर में पाई जाती है। यह प्रायः तीन फुट लंबी होती है। † [स्त्री० पाढ़ी] २ भैंस का बच्चा। पड़वा।

पाढ़िनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का बरतन। हाँड़ी।

पाढ़†¹—संज्ञा पुं० [देश०] मध्य। बीच। उ०—जीवन दीसै रोगिया कहैं मूवा पीछे जाइ। दादू दुँह के पाढ़ मे, ऐसी दारू लाइ।—दादू०, पृ० २५६।

पाढ़²—संज्ञा पुं० [सं० पाटा] १. पाटा। २ सुनारों का एक औजार जिससे नक्काशी करते हैं। ३ वह पीढ़ा या पाटा जिसपर बैठकर सुनार, लुहार आदि काम करते हैं। ४. लकड़ी की वह छोटी सीढ़ी जिसके डंडे कुछ ढालू होते हैं। ५. वह मचान जिसपर फसल की रखवाली के लिये खेतवाला बैठता है। ६. कुएँ के मुँह पर रखी हुई लकड़ी की चह। पाढ़। ७. धोती का किनारा। पाढ़।

पाढ़तⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पढ़ना] १. जो कुछ पढ़ा जाय। जिसका पाठ किया जाय। २. मंत्र। जादू। पढ़ंत। उ०—माई

कुमोदिनि चित्तौर चढ़ी। जोहन मोहन पाढ़त पढ़ी।—जायसी (शब्द०)। ३ पढ़ने की क्रिया या भाव।

पाडर¹—संज्ञा पुं० [सं० पाटल] पाडर का पेड़।

पाडर²—वि० [सं० पाट, हिं० पाढ़-पाढ़+र (प्रत्य०)] किनारीदार (साड़ी, दुपट्टा आदि)।

पाड़ल—संज्ञा पुं० [सं० पाटल] दे० 'पाटल'।

पाढ़ा¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का हिरन। इसकी खाल पर सफेद चित्तियाँ होती हैं। चित्रमृग।

पाढ़ा²—संज्ञा स्त्री० [सं० पाठा] दे० 'पाठा'।

पाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. सूत की एक लच्छी। २. वह नाव जो यात्रियों को पार पहुँचाने के लिये नियत हो।

पाण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यापार। तिजारत। खरीद बिक्री। २. दाँव। बाजी। ३. हाथ। कर। ४. प्रशंसा। ५. व्यवसायी। तिजारती (को०)। ६. करार। प्रतिज्ञा (को०)। ७. द्यूत। जुआ (को०)।

पाणग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पानक] नशीला शर्बत। पीने की वस्तु। मदिरा। दे० 'पानक' उ०—प्रणपीयइ पाणग ज्यूँ नयणे छाक चढंत।—ढोला०, दू० ५३४।

पाणही—संज्ञा स्त्री० [सं० उपानह्] दे० 'पानही'। उ०—हूँ बराकी बणि मो कियउ रोस। पाँव की पाणही सुं कियउ रोस।—बी० रासो, पृ० ३३।

पाणिंधम—वि० [सं० पाणिन्धम] १. हाथों को हिलाता हुआ। २. थपोड़ी बजानेवाला (को०)।

पाणिंधय—वि० [सं० पाणिन्धय] हाथ से पीनेवाला (को०)।

पाणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ। कर।

यौ०—पाणिग्रह। पाणिग्राहक।

२. क्षुर। खुर (को०)। ३. बाजार। हाट (को०)। ४. एक कँटीला पौधा। कुटिल वृक्ष (को०)।

पाणिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो खरीदा जा सके। सौदा। २. हाथ। ३. कार्तिकेय का एक गण। ४. तिजारती। व्यापारी (को०)। ५. द्यूत में प्राप्त वस्तु (को०)।

पाणिकच्छपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कूर्ममुद्रा।

पाणिकर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव।

पाणिकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० पाणिकर्मन्] १. शिव। २. हाथ से बाजा बजानेवाला।

पाणिका—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का गीत या छंद। २. चम्मच के आकार का एक पात्र।

पाणिकूर्चा—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का एक गण।

पाणिखात—संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ स्थान।

पाणिगृहीत—वि० [सं०] १. विवाहित। २. तैयार। उपस्थित (को०)।

पाणिगृहीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी।

पाणिगृहीती—वि० स्त्री० [सं०] जिसका, ब्याह में पाणिग्रहण किया गया हो। धर्मशास्त्रानुसार ब्याही हुई।

पाणिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह।

पाणिग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवाह की एक रीति जिसमें कन्या का पिता उसका हाथ वर के हाथ में देता है। विशेष—दे० 'विवाह'। २. विवाह। ब्याह।

पाणिग्रहणिक—वि० [सं०] १. विवाह संबंधी। २. विवाह में दिया जानेवाला (उपहार)। ३. विवाह में पढ़ा जानेवाला (मंत्र)।

विशेष—आश्वलायन गृह्यसूत्र के 'अर्यमनं नु देवं कन्या अग्निमयाक्षत' से लगाकर १९ वें सूत्र तक के मंत्र 'पाणिग्रहणिक' कहाते हैं।

पाणिग्रहणीय—वि० [सं०] १ विवाह संबंधी। २. विवाह मे दिया जानेवाला (उपहार)।

पाणिग्रहीता—संज्ञा पुं० [सं० पाणिग्रहीतृ] पति (को०)।

पाणिग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] पति।

पाणिग्राहक—संज्ञा पुं० [सं०] पति। भर्ता।

पाणिघ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो हाथ से कोई बाजा बजावे। मृदंग ढोल आदि बजानेवाला। २. हाथ से बजाए जानेवाले मृदंग, ढोल आदि बाजे। ३. कारीगर। शिल्पी।

पाणिघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. थप्पड़। मुक्का। थपत। घूँसा। २. मुक्केबाज। घूंसेबाज (को०)। ३. घूंसेबाजी। मुक्की (को०)

पाणिघ्न¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिल्पी। दस्तकार।

पाणिघ्न²—वि० ताली बजानेवाला (को०)।

पाणिज—संज्ञा पुं० [सं०] १. उँगली। २. नख। नाखुन। ३. नखी।

पाणितल—संज्ञा पुं० [सं०] १. हथेली। २. वैद्यक मे एक परिमाण जो दो तोले के बराबर होता है।

पाणिताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विशेष ताल।

पाणिलाघव—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तलाघव। हाथ की चालाकी (को०)।

पाणिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह संस्कार।

पाणिन—संज्ञा पुं० [सं० पाणिनि] दे० 'पाणिनि'।

पाणिनि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध मुनि जिन्होंने अष्टाध्यायी नामक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ की रचना की।

पेशावर के समीपवर्ती शालातुर (सलातु) नामक ग्राम इनका जन्मस्थान माना जाता है। इनकी माता का नाम दाक्षी और दादा का देवल था। माता के नाम पर इन्हें 'दाक्षीपुत्र' या 'दाक्षेय' तथा ग्राम के नाम पर 'शालातुरीय' कहते हैं। आहिक, पाणिन, सालंकी आदि इनके और भी कई नाम हैं। इनके समय के विषय में पुरातत्वज्ञों में मतभेद है। भिन्न भिन्न विद्वानों ने इन्हें ईसा के पाँच सौ, चार सौ और तीन सौ वर्ष पहले का माना है। किसी किसी के मत से ये ईसा की दूसरी शताब्दी में विद्यमान थे। अधिकतर लोगों ने ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी को ही आपका समय माना है। प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ और विद्वान् डा० सर रामकृष्ण भांडारकर भी इसी मत के पोषक हैं। पाणिनि के पहले शाकल्य,

वाभ्रव्य, गालव, शाकटायन आदि आचार्यों ने संस्कृत व्याकरणों की रचना की थी; पर उनके व्याकरण सर्वांगसुंदर तो क्या पूर्ण भी न थे। इन्होंने बड़े परिश्रम से सब प्रकार के वैदिक और अपने समय तक प्रचलित सब शब्दों को इकट्ठा कर उनकी व्युत्पत्ति तथा रूप आदि के व्यापक नियम बनाए। इनकी 'अष्टाध्यायी' इतनी उत्तम और सर्वांगसुंदर बनी कि आज प्रायः ढाई हजार वर्षों से व्याकरण विषय पर संस्कृत में जो कुछ लिखा गया प्रायः उसी के भाष्य, टीका या व्याख्यान के रूप में लिखा गया; एकाध को छोड़कर किसी वैयाकरण को नया ग्रंथ बनाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ी। अष्टाध्यायी इनके प्रकांड शब्द-शास्त्र-ज्ञान और असाधारण प्रतिभा का प्रमाण है। संस्कृत ऐसी भाषा के व्याकरण को जितने संक्षेप मे इन्होंने निबटाया है उसे देखकर शब्दशास्त्रज्ञों को दाँतों उँगली दबानी पड़ती है। अष्टाध्यायी के अतिरिक्त 'शिक्षासूत्र', 'गणपाठ', 'धातुपाठ' और 'लिंगानुशासन' नामक पुस्तकों की भी इन्होंने रचना की है। राजशेखर आदि कई कवियों ने 'जांबवतीविजय' नामक पाणिनि के एक काव्य का भी उल्लेख किया है जिससे उद्धृत श्लोक इधर उधर मिलते हैं।

ह्वेनसांग ने इनकी व्याकरणरचना के विषय में लिखा है कि प्राचीन काल में विविध ऋषियों के आश्रमों में विविध वर्णमालाएँ प्रचलित थीं। ज्यों ज्यों लोगों की आयुमर्यादा घटती गई त्यों त्यों उनके समझने और याद रखने में कठिनाई होने लगी। पाणिनि को भी इसी कठिनाई का सामना करना पड़ा। इसपर उन्होंने एक सुशृंखलित और सुव्यवस्थित शब्दशास्त्र बनाने का निश्चय किया। शब्दविद्या की प्राप्ति के लिये उन्होंने शंकर का आराधन किया जिसपर उन्होंने प्रकट होकर यह विद्या उन्हें प्रदान की। घर आकर पाणिनि ने भगवान् शंकर से पढ़ी हुई विद्या को पुस्तक रूप में निबद्ध किया। तत्कालीन राजा ने उनके ग्रंथ का बड़ा आदर किया। राज्य की समस्त पाठशालाओं में उसके पठनपाठन की आज्ञा की और घोषणा की कि जो कोई उसे आदि से अंत तक पढ़ेगा उसे एक सहस्र स्वर्णमुद्राएँ इनाम दी जायँगी। इनके विषय में एक कथा यह भी प्रसिद्ध है कि एक बार ये जंगल में बैठे हुए अपने शिष्यों को पढ़ा रहे थे। इतने में एक जंगली हाथी आकर इनके और शिष्यों के बीच से होकर निकल गया। कहते हैं, यदि गुरु और शिष्य के बीच में से जंगली हाथी निकल जाय तो बारह वर्ष का अनध्याय हो जाता है—१२ वर्ष तक गुरु को अपने शिष्यों को न पढ़ाना चाहिए। इसी कारण इन्होंने बारह वर्ष के लिये शिष्यों को पढ़ाना छोड़ दिया और इसी बीच में अपने प्रसिद्ध व्याकरण की रचना कर डाली।

पाणिनीय—वि० [सं०] १. पाणिनिकृत (ग्रंथ आदि)। २. पाणिनिप्रोक्त। पाणिनि का कहा हुआ। पाणिनि द्वारा उपदिष्ट (व्याकरण)। ३. पाणिनि में भक्ति रखनेवाला। पाणिनिभक्त। पाणिनि का ग्रंथ पढ़नेवाला।

पाणिनीय दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि का अष्टाध्यायी व्याकरण। पाणिनीय व्याकरण के ग्रंथों में प्रतिपादित व्याकरण दर्शन।

विशेष—'सर्वदर्शनसंग्रह' कार ने पाणिनीय व्याकरण दर्शन को भी भारत के प्राचीन दर्शनों मे स्थान दिया है। इस दर्शन के मत से स्फोटात्मक निरवयव नित्य शब्द ही जगत् का आदि कारण रूप परब्रह्म है। अनादि अनंत अक्षर रूप शब्द ब्रह्म से जगत् की सारी प्रक्रियाएँ अर्थ रूप में प्रवर्तित होती हैं। इस दर्शन ने शब्द के दो भेद माने हैं। नित्य और अनित्य। नित्य शब्द स्फोट मात्र ही है, संपूर्ण वर्णात्मक उच्चरित शब्द अनित्य हैं। अर्थबोधन सामर्थ्य केवल स्फोट में है। वर्ण उस (स्फोट) की अभिव्यक्ति मात्र के साधन हैं। अग्नि शब्द में अकार, गकार, नकार और इकार ये चारों वर्ण मिलकर अग्नि नामक पदार्थ का बोध कराते हैं। अब यदि चारों ही में अग्निवाचकता मानी जाय तो एक ही वर्ण के उच्चारण से सुननेवाले को अग्नि का ज्ञान हो जाना चाहिए था, दूसरे वर्ण तक के उच्चारण की आवश्यकता न होनी चाहिए थी। पर ऐसा नहीं होता। चारों वर्णों के एकत्र होने से ही उनमे अग्निवाचकता आती हो तो यह भी ठीक नहीं। क्योंकि पर वर्ण के उत्पत्तिकाल में पूर्व वर्ण का नाश हो जाता है। उनका एकत्र अवस्थान संभव ही नहीं। अत. मानना पड़ेगा कि उनके उच्चारण से जिस स्फोट की अभिव्यक्ति होती है वस्तुतः वही अग्नि का बोधक है। एक वर्ण के उच्चारण से भी यह अभिव्यक्ति होती है, पर यथेष्ट पुष्टि नहीं होती। इसी लिये चारों का उच्चारण करना पड़ता है। जिस प्रकार नीले, पीले, लाल आदि रंगों का प्रतिबिंब पड़ने से एक ही स्फटिक मणि मे समय समय पर अनेक रंग उत्पन्न होते रहते हैं उसी प्रकार एक ही स्फोट भिन्न भिन्न वर्णों द्वारा अभिव्यक्त होकर भिन्न भिन्न अर्थों का बोध कराता है। इस स्फोट को ही शब्दशास्त्रज्ञों ने सच्चिदानंद ब्रह्म माना है। अत. शब्द शास्त्र की आलोचना करते करते क्रमश. अविद्या का नाश होकर मुक्ति प्राप्त होती है। 'सर्वदर्शनसंग्रह' कार के मत से व्याकरण शास्त्र अर्थात् 'पाणिनीयदर्शन' सब विद्याओं से पवित्र, मुक्ति का द्वारस्वरूप और मोक्ष मार्गों में राजमार्ग है। सिद्धि के अभिलाषी को सबसे पहले इसी की उपासना करनी चाहिए।

पाणिपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १. उँगलियाँ। २. करपल्लव। पल्लवरूपी पाणि।

पाणिपीड़न—संज्ञा पुं० [सं० पाणिपीडन] १. पाणिग्रहण। विवाह। २. क्रोध, पश्चात्ताप आदि के कारण हाथ मलना।

पाणिपुट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाणिपुटक'।

पाणिपुटक—संज्ञा पुं० [सं०] अंजलि। चुल्लू। करपुट (को०)।

पाणिप्रणयिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी। स्त्री।

पाणिप्रार्थी—वि० पुं० [सं० पाणिप्रार्थिन्] विवाह करने को इच्छुक। उ०—और तुमको मालूम है उसके हर साल एक से एक

बढ़कर पाणिग्रार्थी युवा लोग मैदान में आते जाते हैं।—सुनीता, पृ० २९।

पाणिबंध—संज्ञा पुं० [सं० पाणिबन्ध] पाणिग्रहण। विवाह।

पाणिभुक्—संज्ञा पुं० [सं० पाणिभुज्] गूलर वृक्ष।

पाणिभुज—संज्ञा पुं० [सं० पाणिभुज] गूलर का पेड़।

पाणिमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] करमर्द। करौंदा।

पाणिमुक्त¹—संज्ञा पुं० [सं०] शल्य। भाला [को०]।

पाणिमुक्त²—वि० हाथ से फेंका जानेवाला (अस्त्र) [को०]।

पाणिमुख¹—संज्ञा पुं० [सं० पाणिमुखा] १. पितृदेव। पितर [को०]।

पाणिमुख²—वि० जो हाथ से भोजन करे [को०]।

पाणिमूल—संज्ञा पुं० [सं०] कलाई।

पाणिरुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. उँगली। २. नख। नाखून।

पाणिरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथेली पर की लकीरें। हस्तरेखा।

पाणिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृदंग, ढोल आदि बजानेवाला। २. मृदंग ढोल आदि बाजे। ३. ताली बजाना। ४. ताली बजानेवाला।

पाणिवादक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृदंग आदि बजानेवाला। २. ताली बजानेवाला।

पाणिसर्ग्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजुरी। रस्सी [को०]।

पाणिस्वनिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो हाथों से वाद्य बजाता हो [को०]

पाणिहता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक छोटा तालाब जिसे देवताओं ने बुद्ध भगवान् के लिये तैयार किया था। कहते हैं, देवताओं ने एक बार हाथ से पृथ्वी को ठोंक दिया जिससे वहाँ एक पुष्करिणी निकल आई।

पाणिहोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष होम जो अधिकारी ब्राह्मण के हाथ से किया जाता है।

पाणी¹—संज्ञा पुं० [सं० पाणि] दे० 'पाणि'।

पाणी†²—संज्ञा पुं० [हिं० पानी] जल। पानी। उ०—भीतर मैला बाहेरी चोखा पाणी प्यंड पखाले धोया।—दक्खिनी०, पृ० ३४।

पाणितक—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का एक गण।

पाणीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह। पाणिग्रहण।

पाण्य—वि० [सं०] १. पाणि संबंधी। हाथ संबंधी। २. प्रशंसनीय। बड़ाई के योग्य (को०)।

पाण्यास—वि० [सं०] हाथ से खानेवाले (पितर) [को०]।

पातंग—वि० [सं० पातङ्ग] १. भूरा। २. पतंग संबंधी (को०)।

पातंगि—संज्ञा पुं० [सं० पातङ्गि] पतंग अर्थात् सूर्य के पुत्र—१. शनैश्चर। २. यम। ३. सुग्रीव। ४. कर्ण [को०]।

पातंजल¹—वि० [सं० पातञ्जल] पतंजलि रचित (ग्रंथ)। पतंजलि का बनाया हुआ (योगसूत्र या व्याकरण महाभाष्य)।

यौ०—पातंजलदर्शन। पातंजलभाष्य। पातंजलसूत्र।

पातंजल²—संज्ञा पुं० १. पतंजलिकृत योगसूत्र। २. पतंजलिप्रणीत महाभाष्य। ३. पातंजल योगसूत्र के अनुसार योगसाधन करनेवाले।

पातंजलदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० पातञ्जलदर्शन] योगदर्शन।

पातंजलभाष्य—संज्ञा पुं० [सं० पातञ्जलभाष्य] महाभाष्य नामक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ।

पातंजलसूत्र—संज्ञा पुं० [सं० पातञ्जलसूत्र] योगसूत्र।

पातंजलिशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० पातञ्जलशास्त्र] पतंजलि का बनाया हुआ योगशास्त्र। योगदर्शन। उ०—वैशेषिक शास्त्र पुनि, कालवादी है प्रसिद्ध, पातंजलिशास्त्र माहिं, योगवाद लह्यो है।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ११९।

पातंजलीय—वि० [सं० पातञ्जलीय] दे० 'पातंजल'।

पात¹—वि० [सं०] रक्षित। त्रात [को०]।

पात²—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिरने की क्रिया या भाव। पतन। जैसे, अधःपात।

यौ०—प्रपात।

२. गिराने की क्रिया या भाव। जैसे, अश्रुपात, रक्तपात। ३. टूटकर गिरने की क्रिया या भाव। झड़ने की क्रिया या भाव। जैसे, उल्कापात,। द्रुमपात। ४. नाश। ध्वंस। मृत्यु। जैसे, देहपात। ५. पड़ना। आ लगना। जैसे, दृष्टिपात, भूमिपात। ६. खगोल में वह स्थान जहाँ नक्षत्रों की कक्षाएँ क्रांतिवृत्त को काटकर ऊपर चढ़ती या नीचे आती हैं।

विशेष—यह स्थान बराबर बदलता रहता है और इसकी गति वक्र अर्थात् पूर्व से पश्चिम को है। इस स्थान का अधिष्ठाता देवता राहु है।

७. राहु। ८. प्रहार। मार। आघात। जैसे, खड्गपात (को०)। ९. उड़ने की क्रिया। उड़ान। उड़ना (को०)।

पातⓅ³—संज्ञा पुं० [सं० पत्र, प्रा० पत्त] १. पत्ता। पत्र।

मुहा०—पातों आ लगना = पतझड़ होना या उसका समय आना।

विशेष—उर्दू की पुरानी कविता में इस मुहावरे का प्रयोग मिलता है।

२. कान में पहनने का एक गहना। पत्ता। ३. चाशनी। किवाम। पत्त।

पात⁴—संज्ञा पुं० [सं० पात्र, प्रा० पात (=दान देने योग्य गुणी)] कवि। (डिं०)। उ०—पात सुजस अखियात पयंपै दातव असमर बात दुवै।—रघु० रू०, पृ० ११।

पात⁵—संज्ञा स्त्री० [सं० पात्र] दे० 'पातुर'। उ०—राव आव्या की सांभली बात। नाचउ रूप मनोहर पात। गढ़ माहीं गुड़ी उछली। घरि घरि तोरण मंगलचार।—बी० रासो, पृ० ९१।

पातक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कर्म जिसके करने से नरक जाना पड़े। कर्ता को नीचे ढकेलनेवाला कर्म। पाप। किल्बिष। कल्मष। अघ। गुनाह। बदकारी। निषिद्ध या नीच कर्म। उ०—जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं।—मानस, २।१६७।

विशेष—'प्रायश्चित्त' के मतानुसार पातक के ६ भेद हैं—(१) अतिपातक। (२) महापातक। (३) अनुपातक। (४) उपपातक। (५) संकरीकरण। (६) अपात्रीकरण। (७) जातिभ्रंशकर। (८) मलावह और (९) प्रकीर्णक। मनु ने ५ महापातक गिनाए हैं—(१) ब्रह्महत्या। (२) सुरापान। (३) स्तेय। (४) गुरुतल्पगमन और (५) इस प्रकार के पापियों का संपर्क।

पातक²—वि० नीचे गिरानेवाला [को०]।

पातकी—वि० [सं० पातकिन्] पातक करनेवाला। पापी। कुकर्मी। बदकार। अधर्मी। उ०—(क) मो समान को पातकी बादि कहौं कछु तोहिं।—मानस, २। १६२। (ख) क्यों चाहति तू पदमिनी करन पातकी मोहि।—शकुंतला, पृ० ६३।

पातख—संज्ञा पुं० [सं० पातक] दे० 'पातक'। उ०—कहैं दरिया अघ पातख पर्बत भक्ति बिन सब रोगा।—सं० दरिया पृ० ६६।

पातगⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० पातक] पाप। पातक। उ०—कनक कंति दुति अंग की निरखि सु पातग जात। परमानंद प्रदायिनी, पार करन जग मात।—पृ० रा०, ३। ६।

पातघबरा†—वि० [हिं० पात + घबराना] वह मनुष्य जो पत्ते के खड़कने पर भी घबड़ा जाय। बहुत अधिक डरपोक।

पातन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिराने की क्रिया। नीचे ढकेलने की क्रिया। २. फेंकना या डालना (को०)। ३. झुकाना। नवाना (को०)। ४. पारे के आठ संस्कारों में से पाँचवाँ संस्कार। इसके तीन भेद हैं—ऊर्ध्वपातन, अधःपातन और तिर्यक्पातन। विशेष—दे० 'पारा'।

पातन²—वि० नीचे ढकेलनेवाला। गिरानेवाला [को०]।

पातनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पात्रता। योग्यता। अनुरूपता [को०]।

पातनीय—वि० [सं०] १. पात के योग्य। गिराने लायक। २. प्रहार के योग्य। प्रहार करने लायक। प्रहरणीय [को०]।

पातबंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० पात (= पत्ता) + फा० बंदी] वह नकशा जिसमें किसी जायदाद की अंदाजन मालियत और उसपर जितना देना या कर्ज हो वह लिखा रहता है।

पातयिता—वि० [सं० पातयितृ] १. नीचे गिरानेवाला। गिरानेवाला। २. फेंकनेवाला [को०]।

पातरⓅ†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्र] १. पत्तल। पनवारा। उ०—बिनती राय प्रवीन की सुनिए साह सुजान। जूठी पातर भखत है बारी बायस स्वान।—राय प्रवीन (शब्द०)।

पातर²—संज्ञा स्त्री० [स० पातली (= स्त्री विशेष) या स० पात्र] वेश्या। रंडी। पतुरिया।

पातरⓅ†³—वि० [हिं० पतर, या सं० पात्रट (= पतला)] १. पतला। सूक्ष्म। २. क्षीण। बारीक। ३. निम्न। हेय। क्षुद्र।

पातर⁴—संज्ञा स्त्री० तितली।

पातर⁵—वि० [हिं० पतला] [स्त्री० पातरी] जिसका शरीर दुर्बल हो। पतला। उ०—अंग अंग छबि की लपट उपटति जाति अछेह। खरी पातरीऊ तऊ लगै भरी सी देह।—बिहारी (शब्द०)।

पातराज—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सर्प।

पातरि¹—संज्ञा स्त्री० वि० [हिं०] दे० 'पातर'।

पातरि²—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्र, हिं० पातर] भगवान् का प्रसाद, जो पत्तलों में भक्तों को बाँटा जाता है। पातर। पत्तल। उ०—(क) उन वैष्णवन की पातरि करी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ७६। (ख) जो कोई वैष्णव आवतो ताकों प्रथम महाप्रसाद की पातरि धरि के पाछे वे दोऊ स्त्री पुरुष महाप्रसाद लेते।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७७।

पातरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पात्र, पातली] दे० 'पातर'।

पातरी²—वि० स्त्री० [हिं० पातर] सूक्ष्म। क्षीण। तनु। उ०—लचकीली कटि अतिहि पातरी चालत झोका खाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ८।

पातल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पातर'।

पातव्य—वि० [सं०] १. रक्षा करने योग्य। २. पीने योग्य।

पातशाह—संज्ञा पुं० [फा० पादशाह] दे० 'पादशाह'।

पातशाही—संज्ञा पुं० [फा० पादशाही] दे० 'पादशाही'।

पातसा, पातसाह—संज्ञा पुं० [फा० पादशाह] दे० 'पादशाह'। उ०—(क) फते पात्सा की भई बैनकारी।—ह० रासो, पृ० ६६। (ख) जो है दिल्ली तखतनसीन। पातसाह अलाउद्दीन।—हम्मीर०, पृ० १७।

पातस्याह†—संज्ञा पुं० [फ़ा० पादशाह] दे० 'पादशाह'। उ०—सब कहै राठ को पातस्याह। जस स्रवन सुनन की सदा चाह।—ह० रासो, पृ० २।

पाता¹—वि० [सं० पातृ] १. रक्षा करनेवाला। २. पीनेवाला।

पाताⓅ²—संज्ञा पुं० [सं० पत्र] पत्ता। पत्र।

पाताखतⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० पात + आखत] दे० 'पाताक्षत'। उ०—सेवा सुमिरन पूजिबो पाताखत थोरे। दइ जग जहँ लगि संपदा सुख गज रथ घोरे।—तुलसी (शब्द०)।

पाताबा—संज्ञा पुं० [फा० पाताबह्] १. मोजा। २. चमड़े का वह लंबा टुकड़ा जो ढीले जूते को चुस्त करने के लिये उसमें डाला जाता है। सुखतला।

पातारⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पाताल] दे० 'पाताल'। उ०—बरम्हा डरै चतुरमुख जासू। औ पातार डरै बलि बासू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१८।

पाताल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में से सातवाँ। २. पृथ्वी से नीचे के लोक। अधोलोक। नागलोक। उपस्थान।

विशेष—पाताल सात माने गए हैं। पहला अतल, दूसरा वितल, तीसरा सुतल, चौथा तलातल, पाँचवाँ महातल, छठा रसातल और सातवाँ पाताल। पुराणों में लिखा है कि प्रत्येक पाताल की लंबाई चौड़ाई १०।१० हजार योजन है। सभी पाताल

धन, सुख और शोभा से परिपूर्ण हैं। इन विषयों में ये स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। सूर्य और चंद्रमा यहाँ प्रकाश मात्र देते हैं, गरमी तथा सरदी नहीं देने पाते। पृथ्वी या भूलोक के बाद ही जो पाताल पड़ता है उसका नाम अतल है। यहाँ की भूमि का रंग काला है। यहाँ मय दानव का पुत्र 'बल' रहता है जिसने ९६ प्रकार की माया की सृष्टि कर रखी है। दूसरा पाताल वितल है। इसकी भूमि सफेद है। यहाँ भगवान् शंकर पार्षदों और पार्वती जी के साथ निवास करते हैं। उनके वीर्य से हाटकी नाम की नदी निकली है जिससे हाटक नाम का सोना निकलता है। दैत्यों की स्त्रियाँ इस सोने को बड़े यत्न से धारण करती हैं। तीसरा अधोलोक सुतल है। इसकी भूमि लाल है। यहाँ प्रह्लाद के पौत्र बलि राज करते हैं जिनके दरवाजे पर स्वयं भगवान् विष्णु आठ पहर चक्र लेकर पहरा देते हैं। यह अन्य पातालों से अधिक समृद्ध, सुखपूर्ण और श्रेष्ठ है। तलातल चौथा पाताल है। दानवेंद्र मय यहाँ का अधिपति है। इसकी भूमि पीले रंग की है। यह मायाविदों का आचार्य और विविध मायाओं में निपुण है। पाँचवाँ पाताल महातल कहाता है। यहाँ की मिट्टी खाँड़ मिली हुई है। यहाँ कद्रु के महाक्रोधी पुत्र सर्प निवास करते हैं जिनमें से सभी कई कई सिरवाले हैं। कुहक, तक्षक, सुषेन और कालिय इनमें प्रधान हैं। छठा पाताल रसातल है। इसकी भूमि पथरीली है। इनमें दैत्य, दानव और पणि (पणि) नाम के असुर इंद्र के भय से निवास करते हैं। सातवाँ पाताल पाताल नाम से ही प्रसिद्ध है। यहाँ की भूमि स्वर्णमय है। यहाँ का अधिपति वासुकि नामक प्रसिद्ध सर्प है। शंख, शंखचूड़, कुलिक, धनंजय आदि कितने ही विशालकाय सर्प यहाँ निवास करते हैं। इसके नीचे तीस सहस्र योजन के अंतर पर अनंत या शेष भगवान् का स्थान है।

३. विवर। गुफा। बिल। ४. बड़वानल। ५. बालक के लग्न से चौथा स्थान। ६. छंदशास्त्र में वह चक्र (चक्र) जिसके द्वारा मात्रिक छंद की संख्या, लघु गुरु, कला आदि का ज्ञान होता है। ७. पातालयंत्र। वि० दे० 'पातालयंत्र'।

पातालकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल में रहनेवाला एक दैत्य।

पातालखंड—संज्ञा पुं० [सं० पातालखण्ड] पाताल लोक।

पातालगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० पातालगङ्गा] पाताल लोक की गंगा (को०)।

पातालगरुड़—संज्ञा पुं० [सं० पातालगरुड] छिरहटा। छिरेंटा।

पातालगरुड़ी—संज्ञा पुं० [सं० पातालगरुडी] पातालगरुड़। छिरेंटा।

पातालतुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० पातालतुम्बी] एक प्रकार की लता जो प्रायः खेतों में होती है। पातालतोंबी।

विशेष—इसमें पीले रंग के बिच्छू के डंक के से काँटे होते हैं। वैद्यक में इसे चरपरी, कड़वी, विषदोषविनाशक, तथा प्रसूतकालीन अतिसार, दाँतों की जड़ता और सूजन; पसीना तथा प्रलापवाले ज्वर को दूर करनेवाली माना है।

पर्या०—गर्तालाबु। भूतुंबी। देवी। वल्मीकसंभवा। विष्णुतुंबी। नागतुंबी। शक्रचापसमुद्भवा।

पातालतोंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० पातालतुम्बी] दे० 'पातालतुंबी'।

पातालनिलय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दैत्य। सर्प।

पातालनिवास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पातालनिलय'।

पातालनृपति—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा।

पातालयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० पातालयन्त्र] १. वह यंत्र जिसके द्वारा कड़ी औषधियाँ पिघलाई जाती हैं या उनका तेल बनाया जाता है।

विशेष—इस यंत्र में एक शीशी या मिट्टी का बरतन ऊपर और एक नीचे रहता है। दोनों के मुँह एक दूसरे से मिले रहते हैं और संधिस्थल पर कपड़मिट्टी कर दी जाती है। ऊपर की शीशी या बरतन में औषध रहती है और उसके मुँह पर कपड़े की ऐसी डाट लगा दी जाती है जिसमें बहुत से बारीक सूराख होते हैं। नीचे के पात्र के मुँह पर डाट नहीं रहती। फिर नीचे के पात्र को एक गड्ढे में रख देते हैं और उसके गले तक मिट्टी या बालू भर देते हैं। ऊपर के पात्र को सब ओर से कंडों या उपलों से ढककर आग लगा देते हैं। इस गरमी से औषधि पिघलकर नीचे के पात्र में आ जाती है।

२. वह यंत्र जिसमें ऊपर के पात्र में जल रहता है, नीचे के पात्र को आँच दी जाती है और बीच में रस की सिद्धि होती है।

पातालवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली लता।

पातालवासी—संज्ञा पुं० [सं० पातालवासिन्] दे० 'पातालौकस'।

पातालो—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताड़ के फल के गूदे की बनाई हुई टिकिया जो प्रायः गरीब लोग सुखाकर खाने के काम में लाते हैं।

पातालौकस—संज्ञा पुं० [सं० पातालौकस, पातालौका] १. वह जिसका घर पाताल में हो। २. शेषनाग। ३. बलि।

पाताखत‡—संज्ञा पुं० [हिं० पात + आखत] पत्र और अक्षत। पूजा की स्वल्प सामग्री। तुच्छ भेंट।

पाति†[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्र] १. पत्ती। पर्ण। दल। २. चिट्ठी। पत्रिका। पत्र।

पाति[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभु। मालिक। स्वामी। २. खाविंद। पति। ३. पक्षी। चिड़िया (को०)।

पातिक—संज्ञा पुं० [सं०] सूँस नामक जलजंतु।

पातिक, पातिक्क—संज्ञा पुं० [सं० पातक] दे० 'पातक'। उ०—(क) कलिजुग अति पातिक भये यह भावसिंधु अपार। चतुरानन सुनि चतुर चित मम सिर भार उतार।—प० रासो, पृ० ७। (ख) करय वरस शिवनाथ के कटय कोट पातिक्क तह।—प० रासो, पृ० १८१।

पातिगⓟ—संज्ञा पुं० [सं० पातक] पाप। पातक।

पातित—वि० [सं०] १. जो फेंका गया हो। फेंका हुआ। २. जो नीचे गिराया या ढकेला गया हो। ३. अवनत या नम्र किया हुआ (को०)।

पातित्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पतित होने या गिराने का भाव। गिरावट। २. अध.पतन। नीच या कुमार्गी होने का भाव।

पातिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विशेष वर्ग की स्त्री। २. जाल। पाश। फंदा। ३. मिट्टी का पात्र (को०)।

पातिव्रत—संज्ञा पुं० [सं० पातिव्रत्य] दे० 'पातिव्रत्य'। उ०—मेट सकेगा कौन विश्व के पातिव्रत की लीक कहो।—साकेत। ३८६।

पातिव्रती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पतिव्रता' (को०)।

पातिव्रत्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिव्रता होने का भाव।

पातिसाह—संज्ञा पुं० [फ़ा० पादशाह] नरेश। पादशाह। बादशाह। राजा। उ०—धनि छोड़िय नवजोव्वना धन छोड़ियो बहुत। पातिसाह उद्देशे चलु गअनराज को पुत्त।—कीर्ति०, पृ० २८।

पातिसाहिⓅ—संज्ञा पुं० [फ़ा० पादशाह] दे० 'पातिसाह'।

पाती[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० पत्रिका, प्रा० पत्तिआ, पत्तिअ] १. चिट्ठी। पत्री। पत्र। उ०—तात कहाँ ते पाती आई?—तुलसी (शब्द०)। २. पत्ती। वृक्ष के पत्ते।

पाती[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पति] लज्जा। इज्जत। प्रतिष्ठा। उ०—ह्याँ ऊधो काहे को आए कौन सी अटल परी। सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु सब पाती उघरी।—सूर (शब्द०)।

पाती[3]—वि० [सं० पातिन्] [वि० स्त्री० पातिनी] १. नीचे फेंकने या गिरानेवाला। २. पतनशील। गिरनेवाला (को०)।

पातुक[1]—वि० [सं०] १. पतनशील। गिरनेवाला। २. नरकगामी (को०)। ३ जातिच्युत। जाति से भ्रष्ट होनेवाला।

पातुक[2]—संज्ञा पुं० १. प्रपात। झरना। २. वह जो पतनशील हो। ३. जलहाथी।

पातुर—संज्ञा स्त्री० [सं० पातली = (स्त्री विशेष)] वेश्या। रंडी। उ०—काछें सितासित काछनी केसव पातुर ज्यों पुतरीनि बिचारो।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ८१।

पातुरनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पातुर] दे० 'पातुर'।

पातुरिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पातुर] दे० 'पातुर'।

पात्र—संज्ञा पुं० [सं०] पापियों का उद्धार करनेवाला। पापियों का त्राता।

पात्य—वि० [सं०] १. पातनीय। गिराने योग्य। २. पतित होने का भाव। गिरावट। ३. प्रहार कर गिराने योग्य (को०)। ४. (दंड आदि) लगाने योग्य (को०)।

पात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वस्तु जिसमें कुछ रखा जा सके। आधार। बरतन। भाजन। २. वह व्यक्ति जो किसी विषय का अधिकारी हो, या जो किसी वस्तु को पाकर उसका उपभोग कर सकता हो। जैसे, दानपात्र, शिक्षापात्र आदि। उ०—स्वबलि देते हैं उसे जो पात्र।—साकेत, पृ० १८५। ३. नदी के दोनों किनारों के बीच का स्थान। पाट। ४. नाटक के नायक, नायिका आदि। ५. वे मनुष्य जो नाटक खेलते हैं। अभिनेता। नट। ६. राजमंत्री। ७. वैद्यक में एक तोल जो चार सेर के बराबर होती है। आढ़क। ८. पत्ता। पत्र। ९. स्रुवा आदि यज्ञ के उपकरण। १०. जल पीने या खाने का बरतन। ११. आदेश। हुक्म। आज्ञा (को०)। १२. योग्यता। उपयुक्तता (को०)। १३. वह व्यक्ति जिसका कहानी, उपन्यास आदि के कथानक में वर्णन हो।

पात्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. थाली, हाँड़ी आदि पात्र। २. छोटा बरतन। लघु पात्र। ३. वह पात्र जिसमें भीख माँगकर रखी जाय। भिखमंगों का भीख माँगने का पात्र। भिक्षापात्र।

पात्रट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. फटा पुराना कपड़ा। फटा वस्त्र। २ पात्र। बरतन (को०)।

पात्रट[2]—वि० दुबला पतला। कृश (को०)।

पात्रटीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. रजत। चाँदी। २. लोहा, पीतल, काँसा या चाँदी का बरतन। ३. योग्य अमात्य। दक्ष मंत्री। ४. कौआ। ५. अग्नि। ६. मोरचा। जंग। ७. कंक पक्षी। ८. पिंगाश। ९. नाक का मल। नेटा (को०)।

पात्रतरंग—संज्ञा पुं० [सं० पात्रतरङ्ग] प्राचीन काल का ताल देने का एक प्रकार का बाजा।

पात्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पात्र होने का भाव। अधिकार। योग्यता। लियाकत।

पात्रत्व—संज्ञा पुं० [सं०] पात्रता। पात्र होने का भाव।

पात्रदुष्टरस—संज्ञा पुं० [सं०] केशवदास के मत से एक प्रकार का रसदोष, जिसमें कवि जिस वस्तु को जैसा समझता है रचना में उसके विरुद्ध कर जाता है। एक ही वस्तु के विषय में ऐसी बातें कह जाना जो एक दूसरे के विरुद्ध या बेमेल हों। रचना में ऊटपटाँग अविचारयुक्त बातें कह जाना। उ०—कपट कृपानी मानी, प्रेमरस लपटानी, प्रानिन को गंगा जी को पानी सम जानिए। स्वारथ निधानी परमारथ की रजधानी, काम की कहानी केशोदास जग मानिए। सुबरन उरझानी, सुधा सो सुधारि मानी सकल सयानी सानी ज्ञानी सुख दानिए। गौरा और गिरा बखानी मोहे पुनि मूढ़ प्रानी, ऐसी बानी मेरी रानी विधु के बखानिए।—केशव (शब्द०)।

पात्रनिर्योग—संज्ञा पुं० [सं०] बरतन साफ करनेवाला।

पात्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पतवार। २. चप्पू। ३. तराजू का पल्ला या डाँड़ी (को०)।

पात्रभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] दास। नौकर (को०)।

पात्रवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] अभिनय करनेवाले लोग (को०)।

पात्रमेल—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक आदि में अनेक पात्रों का किसी दृश्य में संयोजन (को०)।

पात्रशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरतनों की सफाई। पात्रों की शुद्धता (को०)।

पात्रशेष—संज्ञा पुं० [सं०] रोटी के जूठे टुकड़े आदि जो भोजन के उपरांत थाली में बच रहे हों। खाकर छोड़ा हुआ अन्नादि। जूठा। उच्छिष्ट।

पात्रसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'पात्रशुद्धि'। २. नदी का वेग या प्रवाह [को०]।

पात्रासादन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञपात्रों को यथास्थान रखना।

पात्रिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पात्र बरतन। २. छोटा पात्र [को०]।

पात्रिक²—वि० १. उपयुक्त। योग्य। उचित। २. किसी पात्र से नापा हुआ। ३. तौला हुआ [को०]।

पात्रिका, पात्रिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] थाली कटोरा आदि पात्र [को०]।

पात्रिय—वि० [सं०] जिसके साथ एक थाली में भोजन किया जा सके। जिसके साथ एक ही बरतन में भोजन करना बुरा न समझा जाय। सहभोजी।

पात्री¹—वि० [सं० पात्रिन्] १. जिसके पास बरतन हो। पात्रवाला। २. जिसके पास सुयोग्य मनुष्य हों।

पात्री²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटे छोटे बरतन। २. एक छोटी भट्ठी जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर उठाकर ले जा सकते हैं। ३. दुर्गा का नाम (को०)।

पात्रीण—वि [सं०] पात्र द्वारा बोया या पकाया हुआ [को०]।

पात्रीय¹—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में काम आनेवाला एक बरतन।

पात्रीय²—वि० पात्र संबंधी।

पात्रीर—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञीय वस्तु। यज्ञद्रव्य [को०]।

पात्रेबहुल—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो अन्य किसी कार्य में सहयोग न दे केवल खाने भर के लिये साथ दे। काम से जी चुरानेवाला मात्र भोजन का साथी [को०]।

पात्रेसमित—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढोंगी व्यक्ति। कपटी। २. दे० 'पात्रेबहुल' [को०]।

पात्रोपकरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौड़ी आदि पदार्थ जिन्हें टाँककर बरतनों को सजाते हैं।

पात्रीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह [को०]।

पात्र्य—वि० [सं०] दे० 'पात्रिय'।

पाथ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. जल। ३. सूर्य [को०]।

पाथ²—संज्ञा पुं० [सं० पाथस्] १. जल। उ०—आनि ठाढ़े होत सब मिलि बसन टपकत पाथ। —घनानंद, पृ० ३०१। २. अन्न। ३. आकाश। ४. वायु।

यौ०—पाथोज। पाथोद। पाथोधर। पाथोरुह। पाथोधि। पाथोज। पाथोनिधि।

पाथ³—संज्ञा पुं० [सं० पथ] मार्ग। रास्ता। राह। उ०—तेहि वियोग ते भए अनाथा। परि निकुंज वन पावन पाथा।—कबीर (शब्द०)।

पाथ⁴—संज्ञा पुं० [सं० पार्थ, प्रा० पथ्थ] अर्जुन। पार्थ। उ०—जुध बेल खगे रिणछोड़ जहे। तन पाथ जिसो रघनाथ तहे। —रा० रू० पृ० २५।

पाथना—क्रि० स० [सं० प्रथन या हिं० थाप (ना) का वर्णविपर्यय] १. ठोंक पीटकर सुडौल करना। गढ़ना। बनाना। उ०—लाड़ली के बरनै को नितंबन हानि रही रसना कवि केत के। कै नृप संभु जू मेरु की भूमि में रेत के कूर भए नदी सेत के। कै धौं तमूरन के तबला रँगि औंधि धरे करि रंभा के खेत के। कंचन कीच के पाथे मनोहर कै भरना है मनोज के खेत के। —सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। २. किसी गीली वस्तु से साँचे के द्वारा या बिना साँचे के हाथों से पीट या दबाकर बड़ी बड़ी टिकिया या पटरी बनाना। जैसे, उपले पाथना, ईंट पाथना। ३. किसी को पीटना। ठोकना। मारना। जैसे,—आज इनको अच्छी तरह पाथ दिया।

पाथनाथ—संज्ञा पुं० [हिं० पाथ + सं० नाथ] समुद्र।

पाथनिधि—संज्ञा पुं० [हिं० पाथ + सं० निधि] दे० 'पाथोनिधि'।

पाथर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तर, प्रा० पत्थर] दे० 'पत्थर'। उ०—एक सेवक लोह पत्र पाथर सो घस्यो तहाँ लोह सोनो (सुवर्ण) भयो राव जैत को आणि दयो।—ह० रासो, पृ० ३३।

पाथरासि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पाथ + हिं० रासि] जलराशि। समुद्र। उ०—कुपितम भुजंग सिर पग धरे। हाथनि पाथरासि पुनि तरे।—नंद० ग्रं०, पृ० १४५।

पाथस्पति—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण।

पाथा¹—संज्ञा पुं० [सं० पाथस्] १. जल। २. अन्न। ३. आकाश।

पाथा²—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्थ] १. एक तौल जो एक दोन या कच्चे चार सेर की होती है। इसका व्यवहार देहरादून प्रांत में अन्न नापने के लिये होता है। २. उतनी भूमि जितनी में एक पाथा अन्न बोया जा सकता है। ३. एक बड़ा टोकरा जिससे खलिहान में राशि नापते हैं।

विशेष—प्रायः यह टोकरा किसी नियत मान का नहीं होता। लोग इच्छानुसार भिन्न भिन्न मानों का व्यवहार करते हैं। यह बेत का बना होता है और इसकी बाढ़ बिलकुल सीधी होती है कहीं कहीं इसे लोग चमड़े से मढ़ लेते हैं। इसे पाथी और नली भी कहते हैं।

४. हल का खोंपी जिसमें फाल जड़ा रहता है।

पाथा³—संज्ञा पुं० [हिं० पथ] कोल्हू हाँकनेवाला।

पाथा⁴—संज्ञा पुं० [सं० प्रथक] एक छोटा कीड़ा जो अन्न में लगता है।

पाथि—संज्ञा पुं० [सं० पाथिस्] समुद्र। २. आँख। ३. घाव पर की पपड़ी। खुरंड। ४ प्राचीन काल का एक प्रकार का शरबत जो मट्ठे के पानी और दूध आदि को मिलाकर बनाया जाता था और जिससे पितृतर्पण किया जाता था। कीलाल।

पाथेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह भोजन जो पथिक अपने साथ मार्ग में खाने के लिये बाँधकर ले जाता है। रास्ते का कलेवा। २. वह द्रव्य जो पथिक राहखर्च के लिये ले जाता है। संबल। राहखर्च। ३. कन्या राशि।

पाथोज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। उ०—पुनि गहे पद पाथोज मयना प्रेम परिपूरन हियो।—मानस, १। १०१।

यौ०—पाथोजनाभ = विष्णु। उ०—सिद्ध सुर सेव्य पाथोजनाभं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८१। पाथोजपाणी = कमलपाणि। विष्णु। उ०—मंजु मानाथ पाथोज पानी। —तुलसी ग्रं०, पृ० ४८७।

पाथोद—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ। उ०—पाथोदगात सरोज मुख राजीव आयत लोचन।—मानस, ३। २६।

पाथोधर—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ।

पाथोधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

पाथोन—संज्ञा पुं० [यू० पर्थेयनस] कन्या राशि।

पाथोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

पाथ्य—वि० [सं०] १. आकाश में रहनेवाला। २. हवा में रहनेवाला। ३. हृदयाकाश में रहनेवाला।

पाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चरण। पैर। पाँव।

यौ०—पादत्राण।

विशेष—यह शब्द जब किसी के नाम या पद के अंत में लगाया जाता है तब वक्ता का उसके प्रति अत्यंत सम्मान भाव तथा श्रद्धा प्रगट करता है। जैसे,—कुमारिलपाद, गुरुपाद, आचार्यपाद, तातपाद, आदि।

२. मंत्र, श्लोक या अन्य किसी छंदोबद्ध काव्य का चतुर्थांश। पद। चरण। ३. किसी चीज का चौथा भाग। चौथाई। ४ पुस्तक का विशेष अंश। जैसे, पातंजल का समाधिपाद, साधनपाद आदि। ५. वृक्ष का मूल। ६. किसी वस्तु का नीचे का भाग। तल। जैसे, पाददेश। ७. बड़े पर्वत के समीप में छोटा पर्वत। ८. चिकित्सा के चार अंग—वैद्य, रोगी औषध और उपचारक। ९. किरण। रश्मि। १०. पद की क्रिया। गमन। ११. एक ऋषि। १२. शिव। १३. एक पैर की नाप जो १२ अंगुल की होती है (को०)। १४. अंश। भाग। हिस्सा। टुकड़ा (को०)। १५. चक्र। चक्का (को०)। १६. सोने का एक सिक्का जो एक तोला के लगभग होता था (को०)।

पाद[2]—संज्ञा पुं० [सं० पर्द, प्रा० पद्द] वह वायु जो गुदा के मार्ग से निकले। अपानवायु। अधोवायु। गोज।

पादक—वि० [सं०] १. जो खूब चलता हो। चलनेवाला। २. चौथाई। चतुर्थांश। ३. छोटा पैर।

पादकटक—संज्ञा पुं० [सं०] नूपुर।

पादकमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल के समान चरण। चरणकमल [को०]।

पादकीलिका—संज्ञा पुं० [सं०] नूपुर।

पादकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रायश्चित्त व्रत जो चार दिन का होता है। इसमें पहले दिन एक बार दिन में, दूसरे दिन एक बार रात में खाकर फिर तीसरे दिन अयाचित अन्न भोजन करके चौथे दिन उपवास किया जाता है।

विशेष—इस व्रत की दूसरी विधि भी मिलती है। उसमें पहले दिन रात में एक बार का परसा हुआ भोजन कर दूसरे दिन उपवास किया जाता है। तीसरे और चौथे दिन यही विधि क्रम से दुहराई जाती है।

पादक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर उठाकर आगे रखना। पादन्यास। २. पैर का आघात। पादप्रहार।

पादगंडीर—संज्ञा पुं० [सं० पादगण्डीर] श्लीपद रोग। पीलपाँव।

पादगोप—संज्ञा पुं० [सं०] पदाति, रथी हस्ती तथा अश्वारोही सेना के संरक्षक। (कौटि०)।

पादग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० पादग्रन्थि] एँड़ी और घुट्टी के बीच का स्थान। गुल्फ।

पादग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] पैर छूकर प्रणाम करना।

विशेष—जिसके हाथ में समिधा, जल, जल का घड़ा, फूल, अन्न तथा अक्षत में से कोई पदार्थ हो, जो अशुचि हो, जो जप या पितृकार्य करता हो उसका पैर न छूना चाहिए।

पादचतुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पादचत्वर' [को०]।

पादचत्वर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बकरा। २ बालू का भीटा। ३. ओला। ४. पीपल का पेड़।

पादचत्वर[2]—वि० दूसरे का दोष कहनेवाला। निंदा करनेवाला। चुगलखोर।

पादचार—संज्ञा पुं० [सं०] पैरों से चलना। पैदल चलना [को०]।

पादचारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० पादचारिन्] १. पैदल। २. वह जो पैरों से चलता हो।

पादचारी[2]—वि० पैरों से चलनेवाला। पैदल चलनेवाला [को०]।

पादज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शूद्र।

पादज[2]—वि० जो पैर से उत्पन्न हुआ हो।

पादजल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जल जिसमें किसी के पैर धोए गए हों। चरणोदक। २. मठा जिसमें चतुर्थांश जल हो।

पादजाह—संज्ञा पुं० [सं०] पादमूल [को०]।

पादटीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह टिप्पणी जो किसी ग्रंथ के पृष्ठ के नीचे लिखी गई हो। फुटनोट।

पादतल—संज्ञा पुं० [सं०] पैर का तलवा।

पादत्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पादत्राण'।

पादत्र[2]—वि० पैर की रक्षा करनेवाला।

पादत्राण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खड़ाऊँ। २. जूता।

पादत्राण[2]—वि० जो पैर की रक्षा करे।

पादत्रान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पादत्राण'। उ०—पादत्रान उपानहा पाद पीठ मृदु भाइ।—अनेकार्थ०, पृ० ५५।

पाददलित—वि० [सं०] पैर से कुचला हुआ। पादाक्रांत। पददलित।

पाददारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिवाई नाम का एक रोग, जिसमें पैर का तलवा स्थान स्थान में फट जाता है।

पाददाह—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का रोग

जो पित्त रक्त के साथ वायु मिलने के कारण होता है। इसमें पैरों के तलवों में जलन होती है। तलवों का जलना।

पादधावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर धोने की क्रिया। २. वह बालू या मिट्टी जिसको लगाकर पैर धोया जाय।

पादधावनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मिट्टी जिसे लगाकर पैर धोया जाय (को०)।

पादनख—संज्ञा पुं० [सं०] पैर की उँगलियों का नाखून।

पादनम्र—वि० [सं०] पैर तक नवा हुआ। पैरों तक झुका हुआ (को०)।

पादना—क्रि० अ० [सं०√पर्द्] गुदा से वायु बाहर निकालना। वायु छोड़ना। अपानवायु का त्याग करना।

संयो० क्रि०—देना।

पादनालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नूपुर (को०)।

पादनिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] पैर रखने की छोटी चौकी। पादपीठ (को०)।

पादन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] १. चलना। पैर रखना। २. नाचना।

पादपंकज—संज्ञा पुं० [सं० पादपङ्कज] चरणकमल। पादकमल (को०)

पादप—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष। पेड़।

विशेष—वृक्ष अपनी जड़ या पैर के द्वारा रस खींचते हैं अतः वे पादप कहलाते हैं।

२. पीढ़ा।

पादपखंड—संज्ञा पुं० [सं० पादपखण्ड] वृक्षों का समूह। जंगल।

पादपथ—संज्ञा पुं० [सं०] पगडंडी।

पादपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रास्ता। २. पगडंडी।

पादपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] चरणकमल। कमल के समान कोमल पैर (को०)।

पादपरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंदाक या बाँदा नामक वृक्ष।

पादपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खड़ाऊँ। २. जूता।

पादपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नूपुर (को०)।

पादपाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह रस्सी जिससे घोड़ों के पिछले दोनों पैर बाँधे जाते हैं। पिछाड़ी। २. नूपुर जो पैरों में पहना या बाँधा जाता है (को०)।

पादपाशिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पादपाशी' (को०)।

पादपाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कोई सिकड़ी या सिक्कड़। २. बेड़ी। ३. एक बेल। एक लता (को०)। ४. चटाई (को०)।

पादपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर का आसन। पीढ़ा। (पु)२. उपानह। जूता। उ०—पादत्रान उपानहा पादपीठ मृदु आइ।—अनेकार्थ०, पृ० ५५।

पादपीठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाई की सिल्ली। २. पीढ़ा।

पादपूरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी श्लोक या कविता के किसी चरण को पूरा करना। २. वह अक्षर या शब्द जो किसी पद को पूरा करने के लिये उसमें रखा जाय।

पादप्रक्षालन—संज्ञा पुं० [सं०] पैर धोना।

पादप्रणाम—संज्ञा पुं० [सं०] साष्टांग दंडवत। पाँव पड़ना।

पादप्रतिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] पीढ़ा।

पादप्रधारण—संज्ञा पुं० [सं०] खड़ाऊँ।

पादप्रसारण—संज्ञा पुं० [सं०] पैरों को फैलाना। पाँव पसारना (को०)।

पादप्रहार—संज्ञा पुं० [सं०] लात मारना। ठोकर मारना।

पादबंध—संज्ञा पुं० [सं० पादबन्ध] पैरों में बाँधने की जंजीर। बेड़ी।

पादबंधन—संज्ञा पुं० [सं० पादबन्धन] १. घोड़े, गधे, बैल आदि जानवरों के पैर बाँधना। २. वह चीज जिससे पैर बाँधे जायँ। ३. पशुधन। पशुराशि (को०)।

पादभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर के नीचे का भाग। २. चतुर्थांश। चौथाई।

पादभुज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

पादमुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] पैर के चिह्न या दाग।

पादमूल—संज्ञा स्त्री० [सं०] पैर का निचला भाग। तलवा। २. पहाड़ की तराई। ३. एँड़ी (को०)। ४. टखना। गुल्फ (को०)। ५. चरणों का सामीप्य। (इस अर्थ का प्रयोग नम्रता सूचित करता है)।

पादर—संज्ञा पुं० [सं० पितृ, फ़ा० पिदर, अं० फादर] पिता। बाप। जनक। उ०—मादर पादर बिरादर इया जग मामा के सीकम में आपु आयो।—सं० दरिया, पृ० ६५।

पादरक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पादरक्षक'।

पादरक्षक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिससे पैरो की रक्षा हो। जैसे, जूता, खड़ाऊँ आदि। २. युद्ध में हाथी के पैरों की रक्षा करनेवाले योद्धा (को०)।

पादरक्षक[2]—वि० पैरों की रक्षा करनेवाला।

पादरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] पैर का आवरण। पादत्राण, जूता खड़ाऊँ, आदि (को०)।

पादरज—संज्ञा स्त्री० [सं० पादरजस्] चरणों की धूल।

पादरज्जु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रस्सी या सिक्कड़ आदि जिसमें पैर विशेषतः हाथी के बाँधे जायँ।

पादरथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खड़ाऊँ।

पादरी—संज्ञा पुं० [पुर्त० पैड्रे] ईसाई धर्म का पुरोहित जो अन्य ईसाइयों का जातकर्म आदि संस्कार और उपासना कराता है।

पादरोह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पादरोहण'।

पादरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ का पेड़।

पादलग्न—वि० [सं०] पैरों से लगा हुआ। चरणों में पड़ा हुआ। शरणागत (को०)।

पादलेप—संज्ञा पुं० [सं०] वह लेप आदि जो पैरों में लगाया जाय। जैसे, अलता, महावर, आदि।

पादवंदन—संज्ञा पुं० [सं० पादवन्दन] पैर पकड़कर प्रणाम करना। पैर छूकर प्रणाम करना।

पादवल्मीक—संज्ञा पुं० [सं०] श्लीपद या फीलपाँव नामक रोग।

पादविक—संज्ञा पुं० [सं०] पथिक। मुसाफिर।

पादविदारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ों का एक रोग, जिसमें उनके पैरों के निचले भाग में गाँठें हो जाती हैं।

पादविन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] पैर रखने की क्रिया या ढंग।

पादविरजा[1]—संज्ञा स्त्री० [पादविरजस्] जूता। खड़ाऊँ [को०]।

पादविरजा[2]—संज्ञा पुं० देवता [को०]।

पादवेष्टनिक—संज्ञा पुं० [सं०] पादावरण। पातावा [को०]।

पादशब्द—संज्ञा पुं० [सं०] पैरों की आहट।

पादशा—संज्ञा पुं० [फा० पादशाह] दे० 'पादशाह'। उ०—सब नजर लोगाँ कूँ पूछया उन तमाम। इस शहर के पादशा का क्या है नाम।—दक्खिनी०, पु० ३६६।

पादशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पैर की उँगली। २. पैर की नोक।

पादशाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बादशाह।

पादशाहजादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पादशाहज़ादह्] बादशाहजादा। राजकुमार।

पादशाही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बादशाही।

पादशिष्टजल—संज्ञा पुं० [सं०] वह जल जो औटाने पर चौथाई रह जाय।

विशेष—वैद्यक मे ऐसा जल त्रिदोषनाशक माना जाता है।

पादशीली—संज्ञा पु० [सं०] कूबर। कसाई।

पादशुश्रूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चरणसेवा। पैर दबाना।

पादशैल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पर्वत के नीचे स्थित छोटा पहाड़ [को०]।

पादशोथ—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक मे एक प्रकार का रोग जिसमें पैर मे सूजन आ जाती है। यह रोग आपसे आप भी होता है और कभी कभी दूसरे रोगों के कारण भी होता है। विशेष —दे० 'शोथ'।

पादशलाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पैर की नली।

पादसेवन—संज्ञा पु० [सं०] चरणों की सेवा। पादशुश्रूषा। सेवा [को०]।

पादसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पादसेवन' [को०]।

पादस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० पादस्तम्भ] वह लकड़ी जो किसी चीज को गिरने से रोकने के लिये सहारे के तौर पर लगा दी जाय। चाँड़।

पादस्फोट—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार ग्यारह प्रकार के क्षुद्र कुष्ठों में से एक प्रकार का कुष्ठ।

विशेष—इसमें पैरों में काले रंग की फुंसियाँ होती हैं जिनमें से बहुत पानी बहता है। इसे विपादिका भी कहते हैं, और यदि यही रोग हाथों में हो जाय तो उसे विचर्चिका कहते हैं।

पादहत—वि० [सं०] परों से आहत। पैरों से ठुकराया हुआ [को०]।

पादहर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें पैरों में प्रायः झुनझुनी होती है।

पादहीन—वि० [सं०] १. जिसके तीन ही चरण हों। २. जिसके चरण न हों।

पादांक—संज्ञा पुं० [सं० पादाङ्क] चरणचिह्न। पैरों का निशान [को०]।

पादांकुलक—संज्ञा पुं० [सं० पादाङ्कुलक] दे० 'पादाकुलक'।

पादांगद—संज्ञा पुं० [सं० पादाङ्गद] नूपुर।

पादांगदी—संज्ञा स्त्री० [सं० पादाङ्गदी] पायल। पादांगद [को०]।

पादांगुलि, पादांगुली—संज्ञा स्त्री० [सं० पादाङ्गुलि, पादाङ्गुली] पैर की उँगली [को०]।

पादांगुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पादाङ्गुष्ठ] पैर का अँगूठा।

पादांत—संज्ञा पुं० [सं० पादान्त] १. पैर का सिरा। २. पद्य के चरण का आखीर। किसी श्लोक के चरण का अंतिम भाग।

यौ०—पादांतस्थ = किसी श्लोक या पद्य के चरण के आखीर का। पादांत मे स्थित।

पादांतिक—क्रि० वि० [सं० पादान्तिक] समीप। चरणों में। पास [को०]।

पादांबु—संज्ञा पुं० [सं० पादाम्बु] १. मठा। २. जल जिसमें किसी महात्मा का पैर धोया गया हो।

पादांभ—संज्ञा पु० [सं० पादाम्भस्] दे० 'पादांबु-२'।

पादाकुल—संज्ञा पुं० [सं० पादकुलक] दे० 'पादाकुलक'।

पादाकुलक—संज्ञा पुं० [सं०] चौपाई (छंद)।

पादाक्रांत—वि० [सं० पादाक्रान्त] पददलित। पैर से कुचला हुआ। पामाल।

पादात—संज्ञा पुं० [सं०] पैदल सेना। पदाति सैनिक।

पादाति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पादातिक'।

पादातिक—संज्ञा पुं० [सं०] पैदल सिपाही। पैदल सेना।

पादाध्यास—संज्ञा पु० [सं०] पददलन। पैरों से कुचलना [को०]।

पादानत—वि० [सं०] पैरों में झुका हुआ। पदावनत [को०]।

पादानुध्यात—संज्ञा पुं० [सं०] छोटे की ओर से बड़े को पत्र लिखने में एक नम्रतासूचक शब्द, जिसका व्यवहार लिखनेवाला अपने लिये करता था।

विशेष—प्रायः सामंत या जागीरदार महाराज को पत्र लिखने में इस शब्द का व्यवहार करते थे। (गुप्तों के शिलालेख)। इसी प्रकार पुत्र पिता को पत्र लिखने में या कोई व्यक्ति अपने पूर्वज का उल्लेख करते समय अपने लिये इस शब्द का व्यवहार करता था।

पादानुध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पादानुध्यात'।

पादानुप्रास—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में पदगत अनुप्रास अलंकार।

पादानोन—संज्ञा पुं० [देश०] काला नमक।

पादाभ्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० पादाभ्यञ्जन] वह घी या तेल जो पैरों में मला जाय।

पादायन—संज्ञा पुं० [सं०] पाद नामक ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

पादारक—संज्ञा पुं० [सं०] नाव की लंबाई में दोनों ओर लकड़ी की पट्टियों से बना हुआ वह ऊँचा और चौरस स्थान जिसपर यात्री बैठते हैं। कुर्सी।

पादारघⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पादार्घ] दे० 'पादार्घ'। उ०—पादारघ हमको दियो मथुरा मडन आय। वासों वसन न पावही बिना बास अति पाय।—केशव (शब्द०)।

पादालिंद—संज्ञा पुं० [सं० पादालिन्द] नौका। नाव (को०)।

पादालिंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० पादलिन्दा] नाव। नौका (को०)।

पादालिंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० पादालिन्दी] नाव। तरणि (को०)।

पादावर्त—संज्ञा पुं० [सं० पादावर्त] कुएँ आदि से पानी निकालने का यंत्र। अरहट या रहट।

पादाविक—संज्ञा पुं० [सं०] पैदल सैनिक (को०)।

पादाष्ठील—संज्ञा पुं० [सं०] टखना (को०)।

पादासन—संज्ञा पुं० [सं०] चरणपीठ। पादपीठ (को०)।

पादाहत—वि० [सं०] पैरों से आघात किया हुआ (को०)।

पादिक¹—वि० [सं०] किसी वस्तु का चौथाई भाग। चतुर्थांश।

पादिक²—संज्ञा पुं० [सं०] पादकृच्छ्र नामक प्रायश्चित्त व्रत।

पादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौथाई पण। (कौटि०)।

पादी¹—संज्ञा पुं० [सं० पादिन्] १. पैरवाले जलजंतु। जैसे, गोह, मगर, घड़ियाल आदि।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार ऐसे जानवरों का मांस मधुर, चिकना तथा वात पित्तनाशक, मलवर्धक शुक्रजनक और बलकारक होता है।

२. पशु। जानवर। उ०—जत्र तत्र पादी खड़े मृगया दई बिसारि। भयो इक्क आचर्ज बन भूपति नैन निहारि।—प० रासो०, पृ० २। ३. वह जो किसी वस्तु (संपत्ति, जायदाद आदि के चतुर्थांश का हकदार हो।

पादी²—वि० १. जो चौथाई का हिस्सेदार हो। पादवाला। पैरवाला (को०)। २. चरणवाला (श्लोक आदि)। ३. चार विभाग या हिस्सेवाला (को०)।

पादीय—वि० [सं०] पदवाला। मर्यादावाला। जैसे, कुमारपादीय।

विशेष—जिस शब्द के आगे यह लगाया जाता है उसके समान पदवाला सूचित करता है। प्राचीन काल में अभिजात वर्ग के लोगों को जो पदवियाँ दी जाती थीं वे उसी प्रकार की होती थीं जैसे, कुमारपादीय अर्थात् राजसभा में राजकुमार की बराबरी का आसन पानेवाला।

पादुक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चलता हो। चलनेवाला। गमनशील।

पादुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खड़ाऊँ। २. जूता।

पादुकाकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बढ़ई। २. चर्मकार। मोची (को०)।

पादू—संज्ञा स्त्री० [सं०] पादुका। खड़ाऊँ।

यौ०—पादूकृत्=मोची।

पादोदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जल जिसमें पैर धोया गया हो। २. चरणामृत।

पादोदर—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

पाद्म—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा जो कमल से उत्पन्न हैं।

पाद्य¹—वि० [सं०] पद संबंधी। पैर संबंधी (को०)।

पाद्य²—संज्ञा पुं० [सं०] वह जल जिससे पूजनीय व्यक्ति या देवता के पैर धोए जायँ। पैर धोने का पानी।

विशेष—षोडशोपचार पूजा में आसन और स्वागत के पश्चात् और पंचोपचार पूजा में सर्वप्रथम पाद्य ही की विधि है। जिस जल से देवता के पैर धोए जाते हैं उससे हाथ नहीं धोए जा सकते। इसी से पैर धोने के जल को पाद्य और हाथ धोने के जल को 'अर्घ' कहते हैं।

पाद्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पाद्य देने का एक भेद।

पाद्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर तथा हाथ धोने या धुलाने का जल। २. पूजासामग्री। ३. वह धन या संपत्ति जो किसी की पूजा में दी जाय। भेंट या नजर।

पाद्यार्घ्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाद्यार्घ'।

पाधर†—वि० [देशी पद्धर] १. सरल। सीधा। उ०—खड़ लोहा सों लोड़ पाधर अस कीधो प्रगट।—नट०, पृ० १७२।

पाधरना†—क्रि० अ० [हिं० पधारना] पधारना। जाना। गमन करना। उ०—नगर महोबै पाधरो मिलो मल्हन कहँ जाय।—प० रासो, पृ० ६४।

पाधरा†—वि० [देशी पद्धर] सीधा। सरल। उ०—ज्यारै नवग्रह पाधरा, जे बंका रण बीच।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २।

पाधा—संज्ञा पुं० [सं० उपाध्याय] १. आचार्य। उपाध्याय। २. पंडित। उ०—गिरिधर लाल छबीले को यह कहा पठायो पाधे।—सूर (शब्द०)।

पान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी द्रव पदार्थ को गले के नीचे घूँट घूँट करके उतारना। पीना। उ०—(क) रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रुधिर पान करि आंत माल धरि जब जब शब्द उचारी।—सूर (शब्द०)।

यौ०—जलपान। मद्यपान। विषपान, आदि।

२. मद्यपान। शराब पीना। उ०—करसि पान सोवसि दिन राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती।—तुलसी (शब्द०)। ३. पीने का पदार्थ। पेय द्रव्य। जैसे, जल, मद्य, आदि। ४. मद्य। मदिरा। उ०—संग ते यती कुमंत्र ते राजा। मान ते ज्ञान पान ते लाजा।—तुलसी (शब्द०)। ५. पानी। उ०—(क) सीस दीन मैं अगमन प्रेम पान सिर मेलि। अब सो प्रीति निबाहउ चलो सिद्ध होइ खेलि।—जायसी (शब्द०)। (ख) गुरु को मानुष जो गिनै चरणामृत को पान। ते नर नरके जायँगे जन्म जन्म होइ स्वान।—कबीर (शब्द०)। ६. वह चमक जो शस्त्रों को गरम करके द्रव पदार्थ में बुझाने से आती है। पानी। आब। ७. पीने का पात्र। कटोरा। प्याला। ८. कुल्या। नहर। ९. कलवार। १० रक्षा। रक्षण। ११. प्याऊ। पौसाला। १२. नि.श्वास। १३. जय। १४. पीना। चूसना। चूमना। चुंबन। जैसे, अधरपान।

पान(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्राण] प्राण। उ०—पान अपान व्यान उदान और कहियत प्राण समान। तक्षक धनंजय पुनि देवदत्त और पौंड्रक संख द्युमान।—सूर (शब्द०)।

पान[3]—संज्ञा पुं० [सं० पर्ण, प्रा० पण्ण] १. पत्ता। पर्ण। उ०—औषध मूल फूल फल पाना। कहें नाम गनि मंगल जाना।—तुलसी (शब्द०)। उ०—हाथी की सी कान किधौं, पीपर को पान किधौं, ध्वजा की उड़ान कहूँ थिर न रहतु है।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४५७।

२. एक प्रसिद्ध लता जिसके पत्तों का बीड़ा बनाकर खाते हैं। तांबूलवल्ली। तांबूली। नागिनी। नागरवल्ली।

विशेष—यह लता सीमांत प्रदेश और पंजाब को छोड़कर संपूर्ण भारतवर्ष तथा सिंहल, जावा, स्याम, आदि उष्ण जलवायुवाले देशों में अधिकता से होती है। भारत में पान का व्यवहार बहुत अधिक है। कत्था, चूना, सुपारी आदि मसालों के योग से बना हुआ इसका बीड़ा खाकर मन प्रसन्न तथा अतिथि आदि का सत्कार करते हैं। देवताओं और पितरों के पूजन में इसे चढ़ाते हैं और इसका रस अनेक रोगों में औषध का अनुपान होता है। पान की जड़ भी, जिसे कुलंजन या कुलींजन कहते हैं, दवाई के काम आती है। उपर्युक्त दो प्रांतों को छोड़कर भारत के सभी प्रांतों में खपत और जलवायु की अनुकूलता के अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में इसकी खेती की जाती है। इसकी खेती में बड़ा परिश्रम और झंझट होता है। अत्यंत कोमल होने के कारण अधिक सरदी गरमी यह नहीं सहन कर सकती।

इसकी खेती प्रायः तालाब या झील आदि के किनारे भीटा बना कर की जाती है। धूप और हवा के तीखे झोंकों से बचाव के लिये भीटे के ऊपर बाँस, फूस आदि का मंडप छा देते हैं जिसके चारों ओर टट्टियाँ लगा दी जाती हैं। मंडप के भीतर बेलें चढ़ाई जाती हैं। इस मंडप को पान का बँगला, बरेव या बरौखा कहते हैं। इसके छाने में इस बात का ख्याल रखा जाता है कि पौधे तक थोड़ी सी धूप छनकर पहुँच सके। भीटा बीच में ऊँचा, चौरस और अगल बगल, कभी कभी एक ही ओर, ढालू होता है, इससे वर्षा का जल उसपर रुकने नहीं पाता। भीटे पर आधा फुट गहरी और दो फुट चौड़ी सीधी क्यारियाँ बनाई जाती हैं। इन्हीं में थोड़ी थोड़ी दूर पर कलमें रोपी जाती हैं। जो पौधे पूरी बाढ़ को पहुँच चुकते हैं और जिनमें पत्ते निकलना बंद हो जाता है वे ही कलमें तैयार करने के काम आते हैं। उड़ीसा में इससे भी अधिक समय तक उससे अच्छे पत्ते निकलते जाते हैं। इसलिये पान की खेती वहाँ सबसे अधिक लाभदायक है। कहीं कहीं पान की बेलें भीटे पर नहीं किंतु किसी पेड़, अधिकतर सुपारी, के नीचे लगाई जाती हैं।

पान की अनेक जातियाँ हैं। जैसे, बँगला, मगही, साँची, कपूरी, महोबी, अछुवा, कलकतिहा, आदि। गया का मगही पान सबसे अच्छा समझा जाता है। इसकी नसें बहुत पतली और मुलायम होती हैं। इसका बीड़ा मुँह में रखते ही गल जाता है। इसके बाद बँगला पान का नंबर है। महोबी पान कड़ा पर मीठा होता है और अच्छे पानों में गिना जाता है। कलकतिहा कड़ा और कड़वा होता है। कपूरी बहुत कड़वा होता है। उसके पत्ते लंबे लंबे होते हैं और उससे कपूर की सी सुगंधि आती है। वैद्यक के अनुसार पान उत्तेजक, दुर्गंधिनाशक, तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, तिक्त, कषाय कफनाशक, वातघ्न श्रमहारक, शांतिजनक, अंगों को सुंदर करनेवाला और दाँत, जीभ आदि का शोधक है।

वेदों, सूत्रग्रंथों, वाल्मीकि रामायण और महाभारत में पान का नाम नहीं आया है, परंतु पुराणों और वैद्यक ग्रंथों में इसका उल्लेख बार बार मिलता है। विदेशी पर्यटकों ने भारतवासियों की पान खाने की आदत का उल्लेख किया है। अत्यंत प्राचीन ग्रंथों में इसका नाम न आने से यह सूचित होता है कि इसका व्यवहार पहले से पूर्व और दक्षिण में ही था। वैदिक पूजन में पान नहीं है। पर आजकल प्रचलित तांत्रिक पद्धति में पान का काम पड़ता है।

यौ०—पानदान।

मुहा०—**पान उठाना**=कोई काम करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध होना। बीड़ा उठाना या लेना। **पान कमाना**=पान को उलटना पुलटना और सड़े अंश या पत्तों का अलग करना। **पान चीरना**=व्यर्थ के काम करना। ऐसे काम करना जिससे कोई लाभ न हो। **पान खिलाना**=वर कन्या के ब्याह संबंध में उभय पक्ष का वचनबद्ध होना। मँगनी करना। सगाई करना। **पान देना**=किसी काम, विशेषतः किसी साहसपूर्ण काम के कर डालने के लिये किसी से हामी भरवाना। बीड़ा देना। उ०—वाम वियोगिनि के बध कीवे को काम बसंतहिं पान दियो है।—रघुनाथ (शब्द०)। **पान पत्ता**=(१) लगा या बना हुआ पान। (२) तुच्छ पूजा या भेंट। पान-फूल। **पान फूल**=(१) सामान्य उपहार या भेंट। (२) अत्यंत कोमल वस्तु। **पान फेरना**=पान कमाना। **पान बनाना**=(१) पान मे चूना, कत्था, सुपारी आदि रखकर बीड़ा तैयार करना। (२) दे० 'पान कमाना'। **पान लेना**=किसी काम के कर डालने की प्रतिज्ञा करना या हामी भरना। बीड़ा लेना। उ०—नृपनि कै लै पान मन कियो अभिमान करत अनुमान चहुँपास धाऊँ।—सूर (शब्द०)। **पान सुपारी**=किसी शुभ अवसर पर निमंत्रित जनों का सत्कार करने की रीति।

३. पान के आकार की चौकी या ताबीज जो हार मे रहती है। ४. जूते में पान के आकार का वह रंगीन या सादे चमड़े का टुकड़ा जो एँड़ी के पीछे लगता है। ५. ताश के पत्तों के चार भेदों में से एक जिसमें पत्ते पर पान के आकार की लाल लाल बूटियाँ बनी रहती हैं।

पान(पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० पाणि] दे० 'पानि' या 'पाणि'। उ०—बैठी जसन जलूस करि फरस फबी सुखदान। पानदान तें लै दए पान पान प्रति पान।—स० सप्तक, पृ० ३६४।

पान[७]—संज्ञा पुं० [देश०] लड़ी । गून । (लश०) ।

पान[८]—संज्ञा स्त्री० सूत को माँड़ी से तर करके ताना करना । (जुलाहा) ।

पानक—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष क्रिया से बनाया हुआ खट्टा तरल पदार्थ जो पीने के काम में आता है । पना ।

विशेष—पके नीबू, आम या इमली के रस में पानी और चीनी मिलाकर पना या पानक बनाया जाता है । इसके अतिरिक्त और अनेक पदार्थों का भी बनाया जाता है ।

पानकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पांडु रोग जिसमें हाथ पैरों में सूजन, अतिसार, ज्वर आदि होते हैं ।—माधव०, पृ० ७५ ।

पानगोष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्थान जहाँ तांत्रिक लोग एकत्र होकर मद्यपान तथा कुछ पूजन आदि करते हैं । मद्यपान चक्र । २. दे० 'पानगोष्ठी' ।

पानगोष्ठी—संज्ञा संज्ञा [सं०] १. वह सभा या मंडली जो शराब पीने के लिये बैठी हो । पानसभा । शराब की मजलिस । २. मद्यशाला । शराब की दूकान (को०) ।

पानड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पान + ड़ी (प्रत्य०)] एक प्रकार की पत्ती जो प्रायः मीठे पेय पदार्थों तथा तेल और उबटन आदि में उन्हें सुगंधित करने के लिये छोड़ी जाती है ।

पानदान—संज्ञा पुं० [हिं० पान + फ़ा० दान (प्रत्य०)] १. वह डिब्बा जिसमें पान और उसके लगाने की सामग्री रखी जाती है । पनडब्बा । २. वह डिबिया जिसमें पान के बीड़े रखे जाते हैं । गिलौरीदान । खासदान ।

मुहा०—**पानदान का खर्च** = वह रकम जो पान तथा दूसरी निजी आवश्यकताओं के लिये दी जाय । पिटारी का खर्च ।

पानदोष—संज्ञा पुं० [सं०] मद्यपान का व्यसन । शराबखोरी की लत ।

पानन—संज्ञा पुं० [हिं० पान या देश०] १. मझोले आकार का एक प्रकार का पेड़ जो हिमालय की तराई और उत्तरी भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों में होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ जाड़ों में झड़ जाती हैं । लकड़ी पकने पर लाल रंग की, चिकनी और भारी होती है और बहुत दिन तक रहती है । इस लकड़ी से सजावट की चीजें, गाड़ी तथा घर के संगहे बनाए जाते हैं । इसका गोंद दवा के काम में आता है ।

२. साँदन नाम का मझोले आकार का एक वृक्ष जिसकी लकड़ी से सजावट के सामान बनते हैं । वि० दे० 'साँदन' ।

पानप—संज्ञा पुं० [सं०] मद्यप । शराबी । पियक्कड़ ।

पानपर—वि० [सं०] मद्यप । शराबी (को०) ।

पानपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पात्र जिसमें मद्यपान किया जाता है । २. पीने का पात्र । गिलास । उ०—नेत्रादिक इंद्रियगन जिते । हमरे पानपात्र प्रभु तिते ।—नंद० ग्रं० पृ० २७२ ।

पानभांड—संज्ञा पुं० [सं० पानभाण्ड] पानपात्र ।

पानभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] पानपात्र ।

पानभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ एकत्र होकर लोग शराब पीते हैं ।

पानभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पानभूमि' ।

पानमंडल—संज्ञा पुं० [सं० पानमण्डल] पानगोष्ठी ।

पानमत्त—वि० [सं०] नशे मे मतवाला । नशे में चूर ।

पानरत—वि० [सं०] दे० 'पानपर' (को०) ।

पानरा†—संज्ञा पुं० [हिं० पनारा] दे० 'पनारा' । उ०—पाकी को मन पानरे के गोबर के गार । और जनम कहाँ पाइए, यह तो चालाहार ।—कबीर (शब्द०) ।

पानरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पानही' । उ०—पति पद पानरी के प्रनव कुबुंद कैधौं बिबुध विदग्ध चित्त मृदु मधुराई तें ।—पजनेस०, पृ० २३ ।

पानवणिक—संज्ञा पुं० [सं० पानवणिज्] मद्यविक्रेता । कलवार । शराब बेचनेवाला (को०) ।

पानवणिज—संज्ञा पुं० [सं० पानवणिज्] मद्य बेचनेवाला । कलवार ।

पानविभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] पानात्यय नामक रोग ।

विशेष—दे० 'पानात्यय' ।

पानशौंड—संज्ञा पुं० [सं० पानशौण्ड] अत्यधिक मद पीनेवाला शराबी (को०) ।

पानस[१]—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की शराब जो पनस (कटहल) से बनाई जाती थी ।

पानस[२]—वि० पनस (कटहल) से संबंध रखनेवाला ।

पानहीं†—संज्ञा स्त्री० [सं० उपानह, हिं० पनही] जूता । उ०—बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ । संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ । मानस, २ । २६१ ।

पाना[१]—क्रि० स० [सं० प्रापणा, प्रा० पावणा] १. अपने पास या अधिकार में करना । ऐसी स्थिति मे करना जिससे अपने उपयोग या व्यवहार में आ सके । उपलब्ध करना । लाभ करना । प्राप्त करना । हासिल करना । जैसे,—उसके हाथ में गई वस्तु कोई नहीं पा सकता । २. फल या पुरस्कार रूप में कुछ पाना । कृत कर्म का भला बुरा परिणाम भोगना । जैसे,—(क) जागे सो पावे, सोवे सो खोवे । (ख) जैसा किया वैसा पाया । ३. किसी को दी हुई चीज वापस मिलना या कोई खोई हुई चीज फिर मिलना । जैसे,—(क) यह किताब तुमसे हमने तीन बरस के बाद आज पाई है । (ख) यह अँगूठी मैंने चार बरस के बाद आज पाई है । ४. पता पाना । भेद पाना । तह तक पहुँचना । समझना । जैसे,—(क) आपने उसका रोग भी पाया है या यों ही नुसखा लिखते हैं । (ख) मैंने तुम्हारे मन की बात पा ली । ५. किसी की कोई बात अपने तक पहुँचना । कुछ सुन या जान लेना । जैसे, सुध पाना समाचार पाना, सँदेसा पाना । ६. देखना । साक्षात् करना ।

जैसे,—(क) तुमको जैसा सुना था वैसा ही पाया। (ख) भारत में अब सिंह प्रायः नहीं पाए जाते। ७. अनुभव करना। भोगना। उठाना। जैसे, दुख पाना, सुख पाना। ८. समर्थ होना। सकना।

विशेष—इस अर्थ में पाना क्रिया संयोज्य होती है और जिस क्रिया या धातु के आगे लगाई जाती है उससे शक्यता या समाप्ति की शक्यता का अर्थ निकलता है। जहाँ समाप्ति का भाव होता है वहाँ धातु के आगे यह क्रिया आती है। जैसे,—तुम वहाँ जाने नहीं पाओगे, मैं अभी वह चिट्ठी नहीं लिख पाया।

९. पास तक पहुँचना। जैसे,—(क) मत दौड़ो, तुम उसे नहीं पा सकते। (ख) इस डाल को तुम उछलकर नहीं पा सकते। १०. किसी बात में किसी के बराबर पहुँचना। बराबर होना। जैसे,—पढ़ने में तुम उसे नहीं पा सकते। ११. भोजन करना। आहार करना। खाना। जैसे, प्रसाद पाना (साधु)। उ०—तेहि छन तहँ सिसु पावत देखा। पलना निकट गई तहँ देखा।—विश्राम (शब्द०)। १२. ज्ञान प्राप्त करना। अनुभव करना। जानना। समझना। जैसे, किसी का मतलब पाना। उ०—समरथ सुभ जो पावई पीर पराई।—तुलसी (शब्द०)।

पाना[2]—वि० १ पाने का हक। पावना। २ जिसे पाने का हक हो। प्राप्तव्य। पावना।

पानागार—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ बहुत से लोग मिलकर शराब पीते हों।

पानाजीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जो अधिक मद्य आदि पीने से होता है। उ०—पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम इत्यादिक भयंकर विकार होते हैं।—माधव०, पृ० ११७।

पानात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जो बहुत अधिक मद्यपान करने से हो जाता है।

विशेष—वैद्यक में अन्य रोगों के समान वात, पित्त, कफ, और सन्निपात भेद से इसके भी चार भेद माने गए हैं। इसमें हृदय में दाह और पीड़ा होती है, मुँह पीला हो जाता और सूख जाता है। रोगी को मूर्छा आती है, वह अंडबंड बकता है और उसके मुँह से झाग गिरने लगती है।

पानि‡[1]—संज्ञा पुं० [सं० पाणि] हाथ। उ०— जड़ चेतन जग जीव जन सकल राममय जानि। बंदउँ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि।—तुलसी (शब्द०)।

पानि(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० पानीय] दे० 'पानी'।

पानिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो शराब बेचता हो। मद्यविक्रेता। २. कलवार।

पानिग्रहण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाणिग्रहण] दे० 'पाणिग्रहण'।

पानिग्रहन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाणिग्रहण] दे० 'पाणिग्रहण'। उ०—पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हिय हरषे तब सकल सुरेसा।—मानस, १। १०१।

पानिप—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + प (प्रत्य०)] १. ओप। द्युति। कांति। चमक। आब। उ०—पानिप के भारन सँभारति न गात, लंक लचि लचि जाति कच भारन के हलके।—द्विजदेव (शब्द०)। २. पानी। जल।

पानिय(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० पानीय] दे० 'पानी' [को०]।

पानिय(पु)[2]—वि० रक्षणीय। रक्षा के योग्य [को०]।

पानिल—संज्ञा पुं० [सं०] पानपात्र। पानभाजन [को०]।

पानी[1]—संज्ञा पुं० [सं० पानीय] १. एक प्रसिद्ध द्रव जो पारदर्शक, निर्गंध और स्वादरहित होता है। स्थावर और जंगम सब प्रकार की जीवसृष्टि के लिये इसकी अनिवार्य आवश्यकता है। वायु की तरह इसके अभाव में भी कोई जीवधारी जीवित नहीं रह सकता। इसी से इसका एक पर्याय 'जीवन' है।

यौ०—पनचक्की। पनबिजली। पानीपाँड़े। पानीफल।

विशेष—पानी यौगिक पदार्थ है। अम्लज और उद्‌जन नामक दो गैसों के योग से इसकी उत्पत्ति हुई है। विस्तार के विचार से इसमें दो भाग उद्‌जन और एक भाग अम्लजन; और गुरुत्व के विचार से १६ भाग अम्लजन और १ भाग उद्‌जन होता है, क्योंकि अम्लजन का परमाणु उद्‌जन के परमाणु से १६ गुना अधिक भारी होता है। गरमी की अधिकता से भाप बनकर उड़ जाने और कमी से पत्थर की तरह ठोस हो जाने का द्रव पदार्थों का धर्म जितना पानी में प्रत्यक्ष होता है उतना औरों में नहीं होता। तापमान की ३२ अंश (फारेनहाइट) की गरमी रह जाने पर यह जमकर बर्फ और २१२ अंश की गरमी पाने पर भाप हो जाता है। इनके मध्यवर्ती अंशों की गर्मी में ही वह अपने अप्रकृत रूप—द्रव रूप—में रहता है। पानी में कोई रंग नहीं होता पर अधिक गहरा पानी प्रायः नीला दिखाई पड़ता है जिसका कारण गहराई है। स्वाद और गंध भी उसमें उन द्रव्यों के कारण, जो उसमें घुले होते हैं, उत्पन्न होता है। ३९ अंश की गरमी में पानी का गुरुत्व अन्य द्रव्यों के सापेक्ष गुरुत्व के निश्चय के लिये प्रमाण रूप माना जाता है; सब तरल और ठोस द्रव्यों का गुरुत्व इसी से तुलना करके स्थिर किया जाता है। अवस्थाभेद से पानी के अनेक भेद हैं। यथा—भाप, मेघ, बूँद, ओला, कुहिरा, पाला, ओस, बर्फ आदि। बूँद, कुहिरा, पाला, ओस आदि उसके तरल रूपांतर हैं, भाप और बादल वायव या अर्धवायव और ओला तथा बर्फ घनीभूत रूपांतर हैं।

संसार को पानी मुख्यतः वृष्टि से प्राप्त होता है। झरनों और कुओं से भी थोड़ा बहुत मिलता है। पानी विशुद्ध अवस्था में बहुत ही कम पाया जाता है। प्रायः कुछ न कुछ खनिज, जांतव और वायव द्रव्य उसमें अवश्य मिले रहते हैं। वृष्टि का जल यदि पृथ्वी से ऊँचाई पर और कुछ दिनों तक वृष्टि

हो चुकने अर्थात् वायुमंडल स्वच्छ हो जाने पर किसी बरतन में एकत्र किया जाय तो शुद्ध होता है अन्यथा उसमें भी उपर्युक्त द्रव्य मिल जाते हैं। प्राकृतिक बर्फ का पानी भी प्रायः शुद्ध होता है। भभके मे से खींचा हुआ पानी भी सब प्रकार के मिश्रणों से शुद्ध होता है, दवाइयों में यही पानी मिलाया जाता है। जो नदियाँ उजाड़ स्थानों, कठोर चट्टानों और कँकरीली भूमि से होकर जाती हैं उनका जल भी प्रायः शुद्ध होता है, पर जिनका रास्ता गरम भूमि और चट्टानो तथा घनी आबादी के बीच से है उनके पानी में कुछ न कुछ अन्य द्रव्य मिले रहते हैं। समुद्र के जल में क्षार और नमक के अंश अन्य प्रकार के जलो की अपेक्षा बहुत अधिक होते हैं जिससे वह इतना खारा होता है कि पिया नही जा सकता। भभके के द्वारा उड़ा लेने से सब प्रकार का पानी शुद्ध हो जाता है। समुद्र का पानी भी इस क्रिया से पेय बनाया जा सकता है।

वैद्यक के अनुसार पानी शीतल, हलका, रस का कारण रूप, श्रमनाशक, ग्लानिहारक, बलकारक, तृप्तिदायक, हृदय को प्रिय, अमृत के समान जीवनदायक, मूर्छा, पिपासा, तंद्रा, वमन, निद्रा और अजीर्ण का नाश करनेवाला है। खारा जल पित्तकारक और वायु तथा कफ का नाशक है, मीठा जल कफकारक और वायु तथा पित्त को घटानेवाला है। भादों या क्वार में विधिपूर्वक एकत्र किया हुआ वृष्टिजल अमृत के समान गुणकारी, त्रिदोषशांतिकर, रसायन, बलदायक, जीवनरूप, पाचन और बुद्धिवर्धक है। वेग से बहनेवाली और हिमालय से निकली हुई नदियों का जल उत्तम होता है, तथा मंद गति से बहनेवाली और सह्याद्रि से निकली हुई नदियों का पानी कोढ, कफ, वात आदि विकारों को उत्पन्न करता है। झरने का और प्राकृतिक बर्फ के पिघलने से उत्पन्न जल उत्तम है। कुएँ का जल, यदि उसके सोते अधिक गहराई और कड़ी कँकरीली मिट्टी पर से निकले हों तो, उत्तम होता है. अन्यथा दोषकारक होता है। जिस पानी मे कोई गंध या विशेष स्वाद न हो उसे उत्तम और जिसमें ये बातें हों उसे सदोष समझना चाहिए। पकाने से पानी के सब दोष मिट जाते हैं।

प्राचीन आर्य तत्वज्ञानियों ने पानी को पाँच महाभूतों अर्थात् उन मूल तत्वों में जिनके योग से जगत् के और सब पदार्थों की उत्पत्ति हुई है, चौथा माना है। रस तन्मात्र से उत्पन्न होने के कारण रस इसका प्रधान गुण है और तीन पूर्ववर्ती तत्वों के गुण शब्द स्पर्श और रूप को गौण गुण कहा है। पाँचवें महाभूत या मूलतत्व पृथ्वी के गंध गुण का इसमें अभाव माना है। इसका रूप अर्थात् वर्ण सफेद, रस अर्थात् स्वाद मधुर और शीतल माना है। परमाणु में इसे नित्य और सावयव अर्थात् स्थूल रूप में अनित्य कहा है। पाश्चात्य देशों के द्रव्यशास्त्रविद् भी वर्तमान विज्ञान युग के प्रारंभ के पहले सहस्रों साल तक पानी को अपने माने हुए चार मूल तत्वों अग्नि, वायु, पानी और मिट्टी में से एक मानते रहे हैं।

पर्या०—अर्ण। क्षोद। पद्म। नभ। अंभ। कबंध। सलिल। वाः। वन। घृत। मधु। पुरीष। पिप्पल। क्षीर। विष। रेत। कश। बुस। तुग्य। सुक्षेम। वरुण। सुरा। अरविंद। धनुंधलु। जामि। आयुध। क्षय। अहि। अक्षर। स्रोत। तृप्ति। रस। उदक। पय। सर। भेषज। सह। ओज। सुख। क्षत्र। शुभ। यादु। भूत। भुवन। भविष्यत्। महत्। अप। व्योम। यश। महः। सर्णीक। स्वृतीक। सतीन। गहन। गंभीर। गभलंग। ईम्। अन्न। हवि। सदन। ऋत। योनि। सत्य। नीर। रयि। सत्। पूर्ण। सर्व। अक्षित। बर्हि। नाम। सर्पि। पवित्र। अमृत। इंदु। स्व.। सर्ग। संवर वसु। अंबु। तोय तूप। शुक्र। तेजः। वारि। जल। जलाप। कमल। कीलाल। पाथ। पुष्कर। सर्वतोमुख। पानीय। मेघपुष्प। सल। जड़। क। अंध। उद। नार। कुश। कांड। सवर। कर्बुर। व्योम। संब। इरा। वाज। तामर। कवल। स्यंदन। चर। ऊर्ज। सोम।

मुहा०—पानी आना = (१) पानी का रस रसकर एकत्र होना। (२) कुएँ या तालाब में पानी का सोता खुलना। (३) घाव या आँख, नाक आदि में पानी भर आना। (४) घाव, आँख, नाक आदि से पानी गिरना। पानी उठाना = (१) पानी सोखना। पानी चूसना। जैसे,—मुलायम आटा खूब पानी उठाता है। (२) पानी अटाना। (दौरी या हत्थे में जितना पानी अँटता है, किसान लोग उसे उतना पानी उठाना बोलते हैं।) जैसे,—वह हत्था खूब पानी उठाता है। पानी उतरना = पानी की तल या सतह का नीचा होना। पानी घटना। उतार होना। बाढ़ पर न रहना। (काम को) पानी करना = साध्य या सरल कर देना। सहज कर डालना। जैसे,—मैंने इस काम को पानी कर दिया। पानी का आसरा = नाव की बारी पर लगा हुआ कुछ कुछ झुका हुआ तख्ता जिसपर छाजन की ओलती का पानी गिरता है। आधी बारी। (लश०)। पानी काटना = (१) पानी का बाँध काट देना। (२) एक नाली से दूसरी में पानी ले जाना। (३) तैरते समय हाथ से पानी को हटाना। पानी चीरना। पानी का बताशा = (१) बुलबुला। बुदबुद। (२) क्षणभंगुर वस्तु। क्षणस्थायी पदार्थ। पानी का बुलबुला = (१) बुलबुले की तरह क्षण मे नष्ट या रूपांतरित होनेवाला। क्षणभंगुर। (२) नाशवान्। विनाशशील। पानी की तरह बहाना = अंधाधुंध खर्च करना। किसी चीज का आवश्यकता से बहुत अधिक मात्रा में खर्च करना। उड़ाना या लुटाना। जैसे,—उन्होंने लाखों रुपए पानी की तरह बहा दिए। पानी की पोट = (१) जिसमे पानी ही पानी हो। जिसमें पानी के सिवा और कुछ न हो। (२) वे साग, पात, तरकारियाँ आदि जिनमें जलीय अंश ही अधिक होता है, ठोस पदार्थ बहुत ही कम होता है। पानी के मोल = पानी की तरह सस्ता। बहुत सस्ता कौड़ियों के मोल। पानी के रेले में बहाना = (१) पानी

में फेंक देना। नष्ट कर देना। उड़ा देना। (२) पानी के मोल बेच देना। कौड़ियों मे लुटा देना। **पानी चढ़ना** = (१) पानी का ऊपर चढ़ना या ऊँचाई की ओर जाना। पानी की गति ऊँचाई की ओर होना। जैसे—इस नल में ऊपर पानी नहीं चढ़ता है। उ०—सावर उबट शिखर को पाटी। चढ़ा पानि पाहन हिय फाटी।—जायसी (शब्द०)। (२) पानी बढ़ना। (३) सींचे जानेवाले खेत तक पानी पहुँचना। (४) सींचा जाना। (इस मुहावरे का प्रयोग केवल खेती के लिये किया जाता है, बारी बगीचे आदि के लिये नहीं)। **पानी चढ़ाना** = (१) पानी को ऊँचाई पर ले जाना। (२) पानी को चूल्हे पर रखना। अदहन देना। (३) सिंचाई के लिये खेत तक पानी ले जाना। (४) सींचना। **पानी चलाना** = पानी फेरना। नष्ट करना। चौपट करना। (क्व०)। उ०—ऐसे समय लखेउ ठकुरानी। पतिव्रत माफ चलायो पानी।—लाल (शब्द०)। **पानी छानना** = एक विशेष कृत्य जो हिंदुओं के यहाँ किसी को शीतला या चेचक रोग होने पर किया जाता है।

विशेष—(नाम धरने अर्थात् रोगी को चेचक होना मान लिए जाने के तीसरे, पाँचवें और सातवें दिनों में जिस दिन शुक्रवार या सोमवार हो, स्त्रियाँ रोगी के सिर से कपड़ा छुलाकर उससे पानी छानती हैं। इस पानी में पहले से चना भिगोया रहता है। यदि वर्षा होती हो तो उसी का पानी लेकर छाना जाता है। इस कृत्य के हो जाने पर उन निषेधों का पालन नहीं करना पड़ता जिनका पालन नाम धरने के दिन से आवश्यक समझा जाता है)।

पानी छूटना = रस रसकर पानी निकलना। थोड़ा थोड़ा पानी निकलना। रसना। **पानी छूना** = मलत्याग के अनंतर जल से गुदा को धोना। आबदस्त लेना (ग्राम्य)। **(किसी वस्तु का) पानी छोड़ना** = किसी चीज का रसना। थोड़ा थोड़ा पानी निकालना या देना। जैसे, किसी तरकारी का आगपर चढ़ाने पर छोड़ना। **पानी टूटना** = कुएँ ताल आदि मे इतना कम पानी रह जाना कि निकाला न जा सके। कुएँ ताल आदि का पानी खर्च होकर बहुत थोड़ा रह जाना। **पानी तोड़ना** = पानी का डाँड़ या बल्ली से चीरना या हटाना। पानी काटना (मल्लाह)। **पानी थामना** = धार की ओर नाव ले जाना। धार चढ़ाना। (लश०)। **पानी दिखाना** = (१) घोड़े बैल आदि को पानी पिलाने के लिये उनके सामने पानी भरा बरतन रखना या उन्हें पानी तक ले जाना। (२) पशुओं को पानी पिलाना। **पानी देना** = (१) सींचना। पानी से भरना। पानी से तर करना। (२) पितरों के नाम अंजलि में लेकर पानी गिराना तर्पण करना। जैसे.—उसके कुल में कोई पानी देनेवाला भी नहीं रह गया। **पानी न माँगना** = किसी आघात या विष आदि से इतनी जल्दी मर जाना कि एक शब्द भी मुँह से न निकले। चटपट दम तोड़ देना। तत्क्षण मर जाना। उ०—साँप इस मुल्क के बाजे ऐसे जहरीले होते हैं कि जिसका काटा आदमी फिर पानी न माँगे।—शिवप्रसाद (शब्द०)। **पानी पड़ा** = ढीला ढाला। जो कसा या तना न हो। जैसे—कनकौवा पानी पड़ा है अर्थात् उसकी डोर ढीली है। **पानी पर नींव डालना या देना** = ऐसा काम आरंभ करना जो टिकाऊ न हो। ऐसी वस्तु को आधार बनाना जिसकी स्थिति दृढ़ न हो। **पानी पर नींव होना** = किसी काम या आयोजन का आधार दृढ़ न होना। किसी काम या वस्तु का टिकाऊ न होना। **पानी पढ़ना** = जल अभिमंत्रित करना। मंत्र पढ़कर पानी फूँकना। पानी पर दम करना। पानी फूँकना। **पानी पाड़ना** = दे० 'पानी छानना'। **पानी पर बुनियाद होना** = दे० 'पानी पर नीवँ होना'। **पानी परोरना** = पानी पढ़ना या फूँकना। **पानी पानी करना** = अत्यंत लज्जित करना। लज्जाभिभूत करना। **पानी पानी होना** = लज्जित होना। लज्जा के मारे पसीने पसीने हो जाना। लज्जा से कट जाना। जैसे.—वह इस बात को सुनकर पानी पानी हो गया। **पानी पीकर जाति पूछना** = काम कर चुकने पर उसके औचित्य की विवेचना करना। **पानी पी पीकर** = निरंतर। अविराम। हर समय। लगातार।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग उस समय किया जाता है जब कोई घंटों तक लगातार किसी को गालियाँ देता या कोसता रहता है। भाव यह होता है कि उसने इतनी अधिक गालियाँ दी कि कई बार उसका गला सूख गया और उसे पानी पीकर उसे तर करना पड़ा। जैसे,—वह उन्हें पानी पी पीकर कोसता रहा।

(किसी वस्तु पर) पानी फिरना या फिर जाना = नष्ट होना। चौपट हो जाना। मिट्टी मे मिल जाना। बरबाद हो जाना। **पानी फूँकना** = मंत्र पढ़कर पानी पर फूँक मारना। पानी पढ़ना। **पानी फूटना** = (१) बाँध या मेड़ को तोड़कर पानी का निकलना। (२) पानी में उबाल आ जाना। पानी खौलने लगना। **(किसी पर) पानी फेरना या फेर देना** = ऐसा कुछ करना जिससे किया कराया उद्योग या परिश्रम विफल हो जाय या कोई बनी बात बिगड़ जाय। चौपट कर देना। मिट्टी कर देना। मटियामेट कर देना। मिटा देना। जैसे,—इस एक बात ने आज तक के हमारे सारे परिश्रम पर पानी फेर दिया। **पानी बराना** = (१) छोटी नालियाँ बनाकर और क्यारियाँ काटकर खेत को सींचना। (२) जिसमे नालियाँ तोड़कर पानी बह न जाय इसलिये इसकी रखवाली करना। **पानी बाँधना** = (१) जिस मार्ग से पानी बह रहा हो उसे बंद करना। पानी का बहाव रोकना। (२) बाँध बाँधकर या मेंड बनाकर पानी को ताल या खेत मे एकत्र करके बाहर न जाने देना। पानी का रोकना या एकत्र करना। (३) जादू से बरसते या बहते हुए पानी की धार रोकना। जलस्तंभ करना। **पानी बुझाना** = लोहे, ईंट या सोने चाँदी आदि के टुकड़े को आग मे लाल करके पानी में बुझाना। पानी बघारना।

विशेष—इस प्रकार बुझाया हुआ पानी विकाररहित होता है और रोगी के लिये पथ्य समझा जाता है।

(किसी के सामने) पानी भरना = किसी से तुलना में उसके पास के बराबर ठहरना। अत्यंत तुच्छ प्रतीत होना। फीका पड़ना। लज्जित होना। उ०—चूना उसका ऐसा सफेद, साफ और चमकदार है कि संगमरमर भी उसके सामने पानी भरे। —शिवप्रसाद (शब्द०)। पानी भरी खाल = अनित्य शरीर। क्षणभंगुर देह। क्षणिक जीवन। उ०—रावरी शपथ राम नाम ही गति मेरे इहाँ झूठों झूठों सो तिलोक तिहूँ काल है। तुलसी को भलो पै तुम्हारेई किए कृपाल कीजे न बिलंब बलि पानी भरी खाल है। —तुलसी (शब्द०)। पानी मरना = किसी स्थान पर पानी का एकत्र होकर सोखा जाना या जज्ब होना। जैसे,—(क) जहाँ पानी मरता है वहीं घाव होता है। (ख) इस दीवार की जड़ में बरसात का पानी मरता है। (किसी के सिर) पानी मरना = दोषी या अपराधी सिद्ध होना। साबित होना। जैसे,—देखिए, इस मामले में किसके सिर पानी मरता है। पानी में आग लगाना = (१) असंभव को संभव करना। जो बात दूसरे से न हो सकती हो उसे कर डालना। (२) जहाँ झगड़ा होना असंभव हो वहाँ झगड़ा करा देना। शांतिभक्तों में कलह करा देना।

विशेष—मुख्य अर्थ पहला होने पर भी दूसरे अर्थ में इस मुहावरे का अधिक प्रयोग होने लगा है। आग लगाने का अर्थ है चुगुलखोरी करके झगड़ा करा देना। कदाचित् यही इसका दूसरे अर्थ में अधिक प्रयुक्त होने का कारण है।

पानी में फेंकना या बहाना = नष्ट करना। बरबाद करना। खो देना। पानी में फेंक देना। पानी लगना = (१) पानी इकट्ठा होना। पानी जमा होना। (२) पानी की ठंढक से दाँतों में टीस होना। पानी का स्पर्श दाँतों को असह्य होना। (३) स्थानविशेष की परिस्थिति के कारण बुरी वासनाएँ उत्पन्न होना। स्थानविशेष के गुण से शरारत सूझना। जैसे,—अब इनको बनारस का पानी लग चला। पानी लेना = (१) कुएँ, ताल आदि से खेत को सींचने के लिये पानी ले जाना। (२) पानी छूना = आबदस्त लेना। पानी से पतला = (१) जिसका कुछ भी महत्व या मान न हो। अत्यंत तुच्छ। निहायत अदना। (२) अत्यंत अपमानित। सर्वथा मानच्युत। सख्त बदनाम। (३) अत्यंत सुगम। निहायत आसान। पानी से पहले पुल, पाड़ या बाँध बाँधना = असंभव संकट की आशंका से कोई यत्न करना। जिस बात का होना असंभव हो उसके प्रतीकार का उपाय करना। अकारण सिर खपाना। व्यर्थ कष्ट करना। सूखे में पानी में डूबना = भ्रम में पड़ना। धोखा खाना। उ०—धनी संग न संगे पूरे। पानी बूड़ रात दिन झूरे। —जायसी (शब्द०)। कच्चा पानी = वह पानी जो पकाया हुआ न हो। पक्का पानी = पकाया हुआ पानी। औटाया हुआ पानी। भभके का पानी = वह पानी जो भभके की सहायता से साधारण पानी को भाप के रूप में परिणत करके तैयार किया गया हो। उड़ाया या खींचा हुआ पानी। मरम पानी = वह पानी जिसके बहाव में अधिक वेग न हो। ठहरा हुआ पानी (लश०)। मीठा पानी = वह पानी जो पीने में खारा न हो। सुस्वादु पानी। पेय जल। खारा पानी = वह पानी जिसका स्वाद नमकीन लिए हुए तीखा होता है। अपेय जल। भारी पानी = वह पानी जिसमें खनिज पदार्थ अधिक मात्रा में मिले हुए हों। हलका पानी = वह पानी जिसमें खनिज पदार्थ बहुत थोड़े हों। पानी भरना या भर आना = पछा या राल का किसी स्थान में एकत्र होना। जैसे—मुँह या आँख में पानी भर आना। उ०—मेरी आँखों में आँसू न थे। यह निशीथ काल की शीतल और तीव्र वायु का कारण है कि उनमें पानी भर आया नहीं तो आँसू कैसे, रोने के दिन अब गए। —अयोध्यासिंह (शब्द०)। मुँह में पानी आना या छुटना = (१) स्वाद लेने का गहरा लालच होना। चखने के लिये जीभ का व्याकुल होना। (२) गहरा लोभ होना। लालच के मारे रहा न जाना।

२. वह पानी का सा पदार्थ जो जीभ, आँख, त्वचा, घाव आदि से रसकर निकले। जैसे,—पसीना, पसेव, राल, लार, पंछा।

मुहा०—पानी आना = किसी चीज से पसेव, लार, आदि निकलना। जैसे, घाव में पानी आना। मुँह में पानी आना।

३. मेहँ। वर्षा। वृष्टि। जैसे,—इस वर्ष इतना कम पानी पड़ा कि पृथ्वी की प्यास एक बार भी न बुझी।

मुहा०—पानी आना = (१) पानी बरसने पर होना। मेह पड़ने का सामान होना। (२) मेह पड़ना। वर्षा होना। पानी उठना = घटा घिरना। बादल छा जाना। अब उठना। पानी गिरना = मेह पड़ना। वर्षा होना। पानी टूटना = झड़ी रुकना। मेह थमना। वर्षा बंद होना। पानी निकलना = बूँदें टूटना। वृष्टि बंद होना। पानी पड़ना = मेह बरसना। वर्षा होना।

४. तेल, घी, चरबी आदि के अतिरिक्त कोई द्रव पदार्थ। कोई वस्तु जो पानी जैसी पतली हो। जैसे, पाचक का पानी, केले का पानी, नारियल का पानी।

मुहा०—पानी उतरना = (१) अंडकोष में पानी जैसी पतली चीज का नसों के द्वारा आकर एकत्र हो जाना, जिससे उसका परिमाण बढ़ जाता है। अंडवृद्धि। (२) आँखों से प्रायः हर समय कुछ कुछ गरम पानी गिरना जिससे देखने की शक्ति मारी जाती है। नजला। पानी करना = लोहे या किसी ऐसे ही कड़े पदार्थ को गलाकर पानी की तरह तरल करना। पानी होना = किसी पदार्थ का गलकर पानी की तरह पतला हो जाना। जैसे,—सारा नमक गलकर पानी हो गया। मीठा पानी = लेमनेड। खारा पानी = सोडा वाटर। विलायती पानी = लेमनेड या सोडावाटर। गरम पानी = मद्य। शराब।

५. वह द्रव पदार्थ जो किसी चीज के निचोड़ने से या उससे

निथरकर निकले किसी वस्तु का वह अंश जो जल के रूप में हो। रस। अर्क। जूस। जैसे, नीम का पानी, दाल का पानी। ६. चमक। ओप। आब। कांति। छवि। जैसे, मोती का पानी। उ०—मोतिन मलिन जो होइ गइ कला। पुनि सो पानि कहाँ निरमला।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—**पानी देना** = जला करना। चमकाना।

७. तलवार आदि धारदार हथियारों के लोहे का वह हलका स्याह रंग और उसपर चींटी के पैर के चिह्नों के से अकृत्रिम चिह्न जिनसे उसकी उत्तमता की पहचान होती है। (ऐसे लोहे की धार खूब तीक्ष्ण और कड़ी होती है)। आब जौहर। ८. मान। प्रतिष्ठा। इज्जत। आबरू। साख। उ०—(क) महमद हाशिम शंका मानी। चपे चौधरी उतरयो पानी।—लाल (शब्द०)। (ख) बोली बचन हास करि रानी। राख्यो तुम पाडव कर पानी।—सबलसिंह (शब्द०)।

यौ०—पतपानी।

मुहा०—**पानी उतरना** = साख जाती रहना। इज्जत उतरना। मान न रह जाना। उ०—चपे चौधरी उतरयो पानी।—लाल (शब्द०)। **पानी उतारना** = अपमानित करना। इज्जत उतारना। उ०—जिन नहिं नेकु कानि मम मानी। दीन उतारि छनक में पानी।—सबलसिंह (शब्द०)। **पानी जाना** = प्रतिष्ठा नष्ट होना। इज्जत जाना। मान न रह जाना। **पानी बचाना** = किसी की प्रतिष्ठा या आबरू की रक्षा करना। किसी की इज्जत बचाना। **पानी रखना या पानी राखना** (पु) = दे० 'पानी बचाना'। उ०—राख्यो तुम पाडव कर पानी।—सबलसिंह (शब्द०)। **पानी लेना** = किसी की प्रतिष्ठा या इज्जत नष्ट करना। किसी की बेआबरूई करना। आबरू लेना। उ०—सुंदर नयन निहारि लियो कमलन को पानी।—सूर (शब्द०)। **बे पानी करना** = प्रतिष्ठा नष्ट करना। पानी लेना।

यौ०—पानीदेवा।

९. वर्ष। साल। जैसे, पाँच पानी का सूअर अर्थात् ऐसा सूअर जिसने पाँच बरसातें देखी हैं अर्थात् जिसके पाँच साल पूरे हो चुके हों। १०. मुलम्मा।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—फेरना।

११ वीर्य। शुक्र। नुत्फा (बाजारू)।

मुहा०—**पानी गिराना** = स्त्रीप्रसंग करना। (बाजारू)।

१२. पुंस्त्व। मरदानगी। जीवट। हिम्मत। स्वाभिमान। जैसे,—उसमें तनिक भी पानी नहीं है। १३. घोड़े आदि पशुओं की वंशगत विशेषता या कुलीनता। घोड़े आदि की नस्ल। जैसे,—यह जानवर पानी और खेत का अच्छा है। १४. पानी की तरह ठंढा पदार्थ। जैसे,—तवा तो पानी हो रहा है।

मुहा०—**पानी करना या कर देना** = किसी के चित्त को ठंढा कर देना। किसी का गुस्सा उतार देना। जैसे,—मैंने दो ही बातों में उन्हें पानी कर दिया। **(किसी का) पानी होना या हो जाना** = (१) क्रोध उतर जाना। गुस्सा जाता रहना। जैसे,—मुझे देखते ही वे पानी हो गए। (२) उग्रता या तेजी न रह जाना। मंद पड़ जाना। धीमा हो जाना।

१५. एकबारगी, गीली, नरम या मुलायम चीज (अत्युक्ति)। १६. पानी की तरह फीका या स्वादहीन पदार्थ। जैसे,—(क) शोरबे में बस पानी का मजा है। (ख) दाल क्या है, बिलकुल पानी है। १७ कुश्ती या लड़ाई आदि। द्वंद्व युद्ध। जैसे,—(क) यह बटेर दो पानी हार चुका। (ख) इन दोनों में भी एक पानी हो जाने दो। १८. बार। बेर। दफा। जैसे,—अबकी उन्हें जहाँ दो पानी पीटा कि वे दुरुस्त हुए (बाजारू)। १९. मद्य। शराब (बोलचाल)। २०. अवसर। समय। मौका। जैसे—अब वह पानी गया। २१. जलवायु। आबहवा। जैसे,—यहाँ का पानी हमारे अनुकूल नहीं।

मुहा०—**कड़ा पानी** = ऐसी जलवायु जिसमें उत्पन्न या पले मनुष्य या पशु फुरतीले, शूर, साहसी, जीवटवाले, सहिष्णु तथा कट्टर स्वभाव के हों। **नरम पानी** = ऐसी जलवायु जिसमें उत्पन्न या पले मनुष्य या पशु मंद, ढीले बदन के, जीवटहीन और असहिष्णु हों। **पानी लगना** = स्थानविशेष के जलवायु के कारण स्वास्थ्य बिगड़ना या कोई रोग होना। उ०—लागत अति पहार कर पानी। विपिन विपति नहिं जाय बखानी।—तुलसी (शब्द०)। २२. परिस्थिति। सामाजिक दशा। लोगों की चाल ढाल या रंग ढंग। जैसे,—(क) बनारस का पानी ही ऐसा है कि रंग ढंग बदल जाता है। (ख) अब उन्हें कलकत्ते का पानी लग चला।

विशेष—इस शब्द से केवल बुरी परिस्थिति, बदमाशी, चालढाल या चरित्र बिगड़नेवाली समाजिक दशा व्यंजित होती है, अच्छी सामाजिक परिस्थिति नहीं।

मुहा०—**पानी लगना** = परिस्थिति का प्रभाव पड़ना। नए नए लोगों के साथ का असर पड़ना।

पानी पु[2]—संज्ञा पु० [सं० पाणि] दे० 'पाणि'। उ०—जयति जय बज्र तनु, दसन, नख, मुख विकट, चंड भुजदंड, तरु सैल पानी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६७।

पानी आलू—संज्ञा पु० [सं० पानीयालु] एक कंद जो त्रिदोषनाशक है। पानीयालु।

पानीतराश—संज्ञा पु० [फा०] जहाज वा नाव के पेंदे में वह बड़ी लकड़ी जो पानी को चीरती है (लश०)।

पानीदार—वि० [हिं० पानी + फा० दार (प्रत्य०)] १. आबदार। चमकदार। २. इज्जतदार। माननीय। आबरूदार। ३. जीवटवाला। मरदाना। आनवाला। आत्माभिमानी।

पानीदेवा—वि० [हिं० पानी + देवा (= देनेवाला)] १. तर्पण या पिंडदान करनेवाला। २. पुत्र। तनय। तनुज। ३. अपने कुल का। स्ववंशीय।

मुहा०—**पानीदेवा न रह जाना** = वंश उच्छेद हो जाना। वंश

का समूल नाश हो जाना। कुल में एक भी व्यक्ति जीवित न रह जाना। जैसे,—उसके वंश में न कोई नामलेवा रहा न पानीदेवा।

पानीपत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध युद्धक्षेत्र जो दिल्ली और अंबाला के बीच में है।

विशेष—यहाँ कई प्रसिद्ध और राज्य पलटनेवाले युद्ध हुए हैं। इसी के पास कुरुक्षेत्र है जिसमें महाभारत का युद्ध हुआ था। पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी का वह युद्ध इसी के पास हुआ था जिससे भारत में मुसलमानी राज्य का आरंभ हुआ। पठानों के हाथ से राजलक्ष्मी इसी मैदान में मोगलों के हाथ गई। मरहठों के साथ अहमदशाह दुर्रानी का युद्ध इसी मैदान में हुआ था और हिंदू साम्राज्य फिर स्थापित होते होते रह गया।

पानीपोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी = पोट] मूसलाधार पानी। उ०—अब न सम्हरिहैं तब कहा करिहै परिहै पानी पोट।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २६४।

पानीफल—संज्ञा पुं० [हिं० पानी + सं० फल] सिंघाड़ा।

पानीबेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० पानी + बेल] एक प्रकार की बड़ी लता जिसकी पत्तियाँ तीन से सात इंच तक लंबी होती हैं। मूसल।

विशेष—गरमी के दिनों में इसमें ललाई लिए भूरे रंग के छोटे फूल लगते हैं और वर्षा ऋतु में यह फलती है। इसके फल खाए जाते हैं और जड़ का ओषधि के रूप में व्यवहार होता है। यह रुहेलखंड, अवध और ग्वालियर के आसपास और विशेषतः साल के जंगलों में पाई जाती है। इसे मूसल भी कहते हैं।

पानीय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल। उ०—बरसि प्रेम पानीय हिय हरित करो अभिराम।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६७। २. मद्य। शराब (तंत्र)।

पानीय²—वि० १. पीने योग्य। जो पीया जा सके। २. रक्षा करने योग्य। रक्षा संबंधी। रक्षा करनेवाला। उ०—सभा माँझ द्रुपदी पति राखी पानिय गुण है जाको। बसन ओट करि कोटि बिसंभर परन न पायो झाँको।—सूर (शब्द०)।

पानीयकल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में त्रिफला, एलुआ, हलदी, अनंतमूल, मजीठ, नागकेसर लालचंदन आदि अनेक ओषधियों के योग से बनाया हुआ एक प्रकार का घृत जो अपस्मार, उन्माद, ज्वर, खाँसी, क्षय, आदि रोगों को दूर करनेवाला माना जाता है।

पानीयकाकिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक समुद्री पक्षी [को०]।

पानीयकाकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पानीयकाकिक'।

पानीयचूर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रेत। बालू।

पानीयनकुल—संज्ञा पुं० [पुं०] ऊदबिलाव।

पानीयपृष्ठज—संज्ञा पुं० [सं०] जलकुंभी।

पानीयफल—संज्ञा पुं० [सं०] मखाना।

पानीयमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] बकुची।

पानीयवर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बालू।

पानीयशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ प्यासों को पानी पिलाया जाता है। जलसत्र। पौसरा। प्याऊ।

पानीयशालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पानीयशाला'।

पानीयामलक—संज्ञा पुं० [सं०] पानी आँवला।

पानीयालु—संज्ञा पुं० [सं०] पानी आलू नामक कंद। यह त्रिदोषनाशक और तृप्तिकारक माना जाता है।

पर्या०—अनुपालु। जलालु। कुपालु। अपालुक।

पानीयाश्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास। बल्वजा।

पानूस(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ानूस] दे० 'फानूस'। उ०—बाल छबीली तियनु मैं बैठी आपु छिपाइ। अरगट ही पानूस सी परगट होति लखाइ।—बिहारी र०, दो० ६०३।

पानौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पानी'। उ०—जुग जुग बिरह यहै चलि आयो, भक्तनि हाथ बिकानो। राजसूय में चरन पखारे श्याम लिए कर पानो।—सूर०, १।११।

पानौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० पान + बरा] पान के पत्ते की पकौड़ी। उ०—पानौरा, रायता, पकौरी। डुभकौरी मुँगछी सुठि सौरी।—सूर (शब्द०)।

पान्यो†—संज्ञा पुं० [हिं०] पानी। जल।

पान्हर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सरपत।

पाप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कर्म जिसका फल इस लोक और परलोक में अशुभ हो। वह आचरण जो अशुभ अदृष्ट उत्पन्न करे। कर्ता का अधःपात करनेवाला कर्म। ऐसा काम जिसका परिणाम कर्ता के लिये दुःख हो। व्यक्ति और समाज के लिये अहितकर आचरण। धर्म या पुण्य का उलटा। बुरा काम। निंदित काम। अकल्याणकर कर्म। अनाचार। गुनाह।

पर्या०—अधर्म। दुरिष्ट। पंक। किल्विष। कल्मष। वृजिन। एनस्। अघ। अंहस्। दुष्कृत। पातक। शल्यक। पाप्म।

विशेष—जिस प्रकार अकर्तव्य कर्म का करना पाप है, उसी प्रकार अवश्य कर्तव्य का न करना भी पाप है। धर्मशास्त्रानुसार निषिद्ध कार्यों का अनुष्ठान और विहित कर्मों का अननुष्ठान, दोनों ही पाप हैं। पाप का फल पतन और दुःख है। वह कर्ता का अनेक जन्मों में अहित करता है। पापी से संसर्ग रखनेवाला भी पापभागी और दुःख का अधिकारी होता है। प्रायश्चित्त और भोग इन्हीं दो उपायों से पाप की निवृत्ति मानी गई है। यदि इन उपायों से उसके संस्कार भली भाँति क्षीण न हुए तो वह मरणोपरांत कर्ता को नरक और जन्मांतर में अनेक प्रकार के रोग शोक आदि प्राप्त कराता है। स्वानिष्टजनक पाप अर्थात् ऐसे पाप जिनसे तत्काल या कालांतर में केवल कर्ता का ही अनिष्ट होता है, जैसे, अभक्ष्यभक्षण, अगम्यागमन आदि, यथाविधि प्रायश्चित्त

करने से नष्ट होते हैं। परंतु परानिष्टजनन पाप अर्थात् तत्काल कर्ता के अतिरिक्त किसी और व्यक्ति का और कालांतर में कर्ता का अपकार करनेवाले पाप, जैसे, चोरी, हिंसा, आदि ऐसे हैं जिनके संस्कार यथोचित राजदंड भुगत लेने से क्षीण होते हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि समाज के सामने अपना पाप प्रकट कर देने और उसके लिये अनुताप करने से वह क्षीण हो जाता है।

यौ०—पापपुण्य।

मुहा०—पाप उदय होना = संचित पाप का फल मिलना। पिछले जन्मों के पाप का बदला मिलना। कोई भारी हानि या अनिष्ट होना जिसका कारण पिछले जन्मों के बुरे कर्म समझे जायँ। जैसे,—कोई भारी पाप उदय हुआ है तभी उसको इस बुढ़ापे मे लड़के का शोक सहना पड़ा है। पाप कटना = पाप का नाश होना। प्रायश्चित्त या दंडभोग से पापसंस्कारों का क्षय होना। पाप कमाना या बटोरना = पाप कर्म करना। लगातार या बहुत से पाप करना। ऐसे बुरे कर्म करते जाना जिनका फल बुरा हो। भविष्यत् या जन्मांतर में दुःख भोगने का सामान करना। पाप काटना = पाप से मुक्त करना। किसी के पाप का नाश कर देना। निष्पाप करना। पापरहित कर देना। पाप की गठरी या मोट = पापों का समूह। किसी व्यक्ति के संपूर्ण पाप। किसी के जन्म भर के पाप। पाप लगना = पाप पड़ना। पाप होना। दोष होना। जैसे,—(क) पापी के संसर्ग से भी पाप लगता है। (ख) ऐसे महात्मा की निंदा करने से पाप लगता है।

२. अपराध। कसूर। जुर्म। ३. वध। हत्या। ४. पापबुद्धि। बुरी नियत। बदनीयती। खोट। बुराई। जैसे,—उसके मन में अवश्य कुछ पाप है। ५. अनिष्ट। अहित। बुराई। खराबी। नुकसान। ६. कोई क्लेशदायक कार्य या विषय। परेशान करनेवाला काम या बात। बखेड़े का काम। झंझट। जंजाल। (केवल हिंदी में प्रयुक्त)।

मुहा०—पाप कटना = बाधा कटना। झगड़ा दूर होना। जंजाल छूटना। जैसे,—वह आप ही यहाँ से चला गया अच्छा हुआ, पाप कटा। पाप काटना = झगड़ा मिटाना। बला काटना। जंजाल छुड़ाना। पाप मोल लेना = जान बूझकर किसी बखेड़े के काम में फँसना। दर्द सर खरीदना। झगड़े मे पड़ना। पाप गले या पीछे लगना = अनिच्छापूर्वक किसी बखेड़े या झंझट के काम में बहुत समय के लिये फँस जाना। कोई बाधा साथ लगना।

७. कठिनाई। मुश्किल। संकट। (क्व०)।

मुहा०—पाप पड़ना (पु) —सामर्थ्य से बाहर हो जाना। मुश्किल पड़ जाना। कठिन हो जाना। उ०—सीरे जतननि सिसिर ऋतु सहि बिरहिन तनु ताप। बसिबे को ग्रीषम दिननि परयो परोसिनि पाप।—बिहारी (शब्द०)।

८. पापग्रह। क्रूरग्रह। अशुभग्रह।

पाप²—वि० १. पापयुक्त। पापिष्ठ। पापी। २. दुष्ट। दुरात्मा। दुराचारी। बदमाश। ३. नीच। कमीना। ४. अशुभ। अमंगल।

विशेष—पाप शब्द का विशेषण के रूप में अकेले केवल संस्कृत में व्यवहार होता है। हिंदी में वह समास के साथ ही आता है। जैसे, पापपुरुष, पापग्रह, आदि।

पापक¹—संज्ञा पुं० [सं०] पाप।

पापक²—वि० पापयुक्त। पापी।

पापकर—वि० [सं०] पापी। पाप करनेवाला [को०]।

पापकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचित कार्य। बुरा काम। वह काम जिसके करने मे पाप हो।

पापकर्मा—वि० [सं० पापकर्मन्] पापी। पातकी।

पापकर्मी—वि० [सं० पापकर्मिन्] [वि० स्त्री० पापकर्मिणी] पाप करनेवाला। पापी।

पापकल्प—वि० [सं०] पापी का सा आचरण रखनेवाला। पापी तुल्य। दुष्कर्मी। पापकर्म से जीविका करनेवाला। बदमाश।

पापकारक—वि० [सं०] पाप करनेवाला। पापी [को०]।

पापकारी—वि० [सं० पापकारिन्] पाप कर्म करनेवाला [को०]।

पापकृत्—वि० [सं०] दे० 'पापकारक' [को०]।

पापक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पापों का नष्ट होना। २. वह स्थान जहाँ जाने से पापों का नाश हो। तीर्थ।

पापगण—संज्ञा पुं० [सं०] छंद शास्त्र के अनुसार ठगण का आठवाँ भेद।

पापगति—वि० [सं०] भाग्यहीन। अभागा [को०]।

पापग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलित ज्योतिष के अनुसार कृष्णाष्टमी से शुक्लाष्टमी तक का चंद्रमा। वह चंद्रमा जो देखने में आधे से कम हो। २. फलित ज्योतिष के अनुसार सूर्य, मंगल, शनि और राहु, केतु ये ग्रह, अथवा इनमें से किसी ग्रह से युक्त बुध। ये ग्रह अशुभ फलकारक माने जाते हैं। उ०—पापग्रह तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश में हों।—बृहत्०, पृ० ३०१।

पापघ्न¹—संज्ञा पुं० [सं०] तिल।

पापघ्न²—वि० पापनाशक। जिससे पाप नष्ट हो।

पापघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।

पापचंद्रमा—संज्ञा पुं० [सं० पापचन्द्रमा] फलित ज्योतिष के अनुसार विशाखा और अनुराधा नक्षत्र के दक्षिण भाग में स्थित चंद्रमा।

पापचर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पापचरा] पापाचारी। पापी।

पापचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। यातुधान। २. पाप में रत। पापी [को०]।

पापचारी—वि० [सं० पापचारिन्] [वि० स्त्री० पापचारिणी] पापी। पाप करनेवाला। पातकी।

पापचेता—वि० [सं० पापचेतस्] बुरे चित्तवाला। जिसके चित्त में सदा पाप बसता हो। दुष्टचित्त।

पापचेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

पापचेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

पापचैल[1]—वि० [सं०] जो बुरे वस्त्र पहने हो। अशुभ या अभद्र वस्त्रधारी।

पापचैल[2]—संज्ञा पुं० अशुभ वस्त्र। अभद्र वस्त्र [को०]।

पापजीव—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार स्त्री, शूद्र, हूण और शबर आदि जीव।

पापड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० पर्पट, प्रा० पप्पड] उर्द अथवा मूँग की धोई के आटे से बनाई हुई मसालेदार पतली चपाती।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है कि पहले आटे को केले, लटजीरे आदि के क्षार अथवा सोडा मिले हुए पानी में गूँधते है, फिर उसमे नमक, जीरा, मिर्च आदि मसाला देकर और तेल चुपड़ चुपड़कर बट्टे आदि से खूब कूटते हैं। अच्छी तरह कुट जाने पर एक तोले के बराबर आटे की लोई करके बेलन से उसे खूब बारीक बेलते हे। फिर छाया में सुखाकर रख लेते है। खाने के पहले इसे घी या तेल में तलते या यों ही आग पर सेक लेते है। पापड़ दो प्रकार का होता है—सादा और मसालेदार। सादे पापड़ मे केवल नमक, जीरा आदि मसाले ही पड़ते हैं और वह भी थोड़ी मात्रा में। परंतु मसालेदार में बहुत से मसाले डाले जाते है और उनकी मात्रा भी अधिक होती है। दिल्ली, आगरा, मिर्जापुर आदि नगरों का पापड़ बहुत काल से प्रसिद्ध है। अब कलकत्ते आदि में भी अच्छा पापड़ बनने लगा है। हिंदुओं, विशेषत. नागरिक हिंदुओं के भोज में पापड़ एक आवश्यक व्यंजन है।

मुहा०—पापड़ बेलना = (१) कठोर परिश्रम करना। भारी प्रयास करना। बड़ी मिहनत करना। जैसे,—आपसे किसने कहा था कि इस काम मे आप इतने पापड़ बेलें? (२) कठिनाई या दुःख से दिन काटना। बहुत से पापड़ बेलना = बहुत तरह के काम कर चुकना। बहुत जगह भटक चुकना। जैसे,—उसने बहुत से पापड़ बेले है।

पापड़[2]—वि० १. बारीक। पतला। कागज सा। २. सूखा। शुष्क।

पापड़ा—संज्ञा पुं० [सं० पर्पट] १. छोटे आकार का एक पेड़ जो मध्यप्रदेश, बंगाल, मद्रास आदि में उत्पन्न होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ हर साल झड़कर नई निकलती हैं। इसकी लकड़ी भीतर से चिकनी, साफ और पीलापन लिए भूरे रंग की तथा कड़ी और मजबूत होती है। उससे कंघी और खराद की चीजें बनाई जाती हैं। खुदाई का काम भी उसपर अच्छा होता है। इसे बनएडालु भी कहते हैं।

२. दे० 'पित्तपापड़ा'।

पापड़ाखार—संज्ञा पुं० [सं० पर्पटक्षार] केले के पेड़ का क्षार।

पापड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पापड़ा] एक पेड़ जो मध्यप्रदेश, पंजाब और मद्रास में बहुत होता है।

विशेष—इसका धड़ लंबा होता है। इसकी पत्तियाँ हर वर्ष झड़ जाती हैं। इसकी लकड़ी पीलापन लिए सफेद होती है और घर, संगहे तथा गाड़ियों के बनाने में काम आती है।

पापदर्शी—वि० [सं० पापदर्शिन्] बुरी नीयत या निगाह से देखनेवाला। अनिष्ट करने की इच्छा से देखनेवाला।

पापदृष्टि—वि० [सं०] १. जिसकी दृष्टि पापमय हो। २. अशुभ या अमंगल दृष्टिवाला। जिसकी दृष्टि पड़ने से हानि पहुँचे। निंदितदृष्टि।

पापधी—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि पापमय या पापासक्त हो। पापमति। पापचेता। निंदित या दुष्ट बुद्धिवाला।

पापनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में ज्येष्ठा आदि कुछ नक्षत्र जो बुरे या निंदित माने जाते हैं।

पापनापित—संज्ञा पुं० [सं०] वह नापित जो धूर्त हो [को०]।

पापनामा—वि० [सं० पापनामन्] १. जिसका नाम बुरा हो। अमंगल या अभद्र नामवाला। २. बदनाम। अपकीर्तियुक्त। जिसकी निंदा या बदनामी हुई हो।

पापनासक—वि० [सं०] पापों का नाश करनेवाला [को०]।

पापनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पाप का नाश करे। पाप का नाश करनेवाला। पापनाशी। २. वह कर्म जिससे पाप का नाश हो। प्रायश्चित्त। ३. विष्णु। ४. शिव। ५. पापनाश का भाव अथवा क्रिया। पाप का नाश होना या करना।

पापनाशिनी—संज्ञा पुं० [सं०] १. शमीवृक्ष। २. कृष्ण तुलसी।

पापनिश्चय—वि० [सं०] जिसने पाप करने का निश्चय किया हो। पाप करने को कृतसंकल्प। दुष्कर्म करने का निश्चय करनेवाला। खोटा काम करने को तैयार।

पापनिष्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रायश्चित्त [को०]।

पापपति—संज्ञा पुं० [सं०] उपपति। जार।

पापपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पापमय पुरुष। पापप्रकृति पुरुष। दुष्ट। २. तंत्र में माना हुआ एक पुरुष जिसके संपूर्ण शरीर का उपादान केवल पाप होता है।

विशेष—इसके सिर से लेकर रोएँ तक संपूर्ण अंग प्रत्यंग किसी न किसी महापातक या उपपातक से बने माने जाते हैं। इसका वर्ण काजल की तरह काला और आँखें लाल होती हैं। यह सर्वदा क्रुद्ध और तलवार और ढाल लिए रहता है।

पापफल—वि०[सं०]वह (कर्म) जिसका फल पाप हो। पापोत्पादक। अशुभ फल देनेवाला।

पापबुद्धि—वि०[सं०] पापी। सदा पाप कर्म में लगा रहनेवाला [को०]।

पापभक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] कालभैरव।

पापभाक्—वि० [सं० पापभाज्] पापी। पाप करनेवाला [को०]।

पापभाव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पापमति' [को०]।

पापमति—वि० [सं०] जिसकी मति सदा पाप में रहे। पापबुद्धि। पापचेता। उ०—ऐसे अगमगति ही जहाँ। आयो कंस पापमति तहाँ।—नंद० ग्रं०, पृ० १२५।

पापमय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पापमयी] जिसमें सर्वत्र पाप ही पाप हो। पाप से ओतप्रोत। पाप से भरा हुआ। जो सर्वदा पापवासना या पापचेष्टा में लिप्त रहे।

पापमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट मित्र। अहित करनेवाला साथी [को०]।

पापमुक्त—वि० [सं०] जिसे पापों से छुटकारा मिल गया हो। निष्पाप [को०]।

पापमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] पापों का नाश करने की क्रिया। पाप का प्रक्षालन। २. पापों का नाश करनेवाला देवता, संत, तीर्थ आदि [को०]।

पापमोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र कृष्णपक्ष की एकादशी।

पापयक्ष्मा—संज्ञा पुं० [सं०] राजयक्ष्मा। क्षयरोग। तपेदिक।

पापयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] निकृष्ट या निंदित योनि। पाप से प्राप्त होनेवाली योनि। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य पशु, पक्षी, वृक्ष आदि की योनि। उ०—स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनि कह कह जो धर्माचरण के अनधिकारी समझे जाते थे।—कंकाल, पृ० १५३।

पापर(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० पर्पट] दे० 'पापड़'। उ०—फेनी पापर भूजे भए अनेक प्रकार। भइ जाउर भिजयावर सीझी सब ज्योनार।—जायसी (शब्द०)।

पापर²—संज्ञा पुं० [अं० पॉपर] १. मुफलिस आदमी। निर्धन व्यक्ति। २. वह व्यक्ति जो मुफलिसी या निर्धनता के कारण दीवानी में बिना किसी प्रकार के अदालती रसूम या खर्च के किसी पर दावा दायर करने या मामला लड़ने की स्वीकृति पाता है।

विशेष—ऐसे व्यक्ति को पहले प्रमाणित करना पड़ता है कि मैं मुफलिस हूँ। दावा दायर करने या मामला लड़ने के लिये मेरे पास पैसा नहीं है। अदालत को विश्वास हो जाने पर वह उसे अदालती रसूम या खर्च से बरी कर देता है। पर हाँ, मामला जीतने पर उसे खर्च देना पड़ता है।

पापरोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह रोग जो कोई विशेष पाप करने से होता है। पापविशेष के फल से उत्पन्न रोग।

विशेष—धर्मशास्त्रानुसार कुष्ठ, यक्ष्मा, कुनख, श्यावदंत (दाँतों का काला या बदरंग होना), पीनस, पूतिवक्त्र (श्वासवायु से दुर्गंध निकलना), हीनांगता, श्वित्र, श्वेतकुष्ठ, पंगुत्व, मूकता, लोलजिह्वता, उन्माद, अपस्मार, अंधत्व, काणत्व, भ्रामर (सिर में चक्कर आना), गुल्म, क्लीवत्व (फीलपा) आदि रोग पापरोग माने गए हैं जो ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णहरण आदि विशेष विशेष पापों के कर्ता को नरक और पशु, कीट, पतंग आदि की योनियों से पुनः मनुष्यजन्म प्राप्त करने पर होते हैं।

२. मसूरिका। बसंत रोग। छोटी माता।

पापरोगी—वि० [सं० पापरोगिन्] [वि० स्त्री० पापरोगिणी] पापरोगयुक्त। जिसे कोई पापरोग हुआ हो।

पापर्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० पापर्द्धि] मृगया। आखेट। शिकार।

विशेष—मृगया से पाप की ऋद्धि (बढ़ती) होना माना गया है, इसी से उसकी पापर्धि संज्ञा हुई।

पापल¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन परिमाण [को०]।

पापल²—वि० १. जो पाप का कारण या हेतु हो। २. पाप लेनेवाला। पापग्राहक (को०)।

पापलेन—संज्ञा पुं० [फ़ा० पापलिन] एक सूती कपड़ा। एक प्रकार का डोरिया।

पापलोक—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० पापलोक्य] पापियों के रहने का स्थान। पापी को मिलनेवाला लोक। नरक।

पापलोक्य—वि० [सं०] १. नरक का। नारकीय। २. नरक से संबंध रखनेवाला। नरक [को०]।

पापवाद—संज्ञा पुं० [सं०] अशुभसूचक शब्द। अमंगल ध्वनि। कौवे आदि की ऐसी बोली जो अशुभसूचक मानी जाय।

पापविनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] पाप का नाश करने की क्रिया। पापमोचन [को०]।

पापशमनी¹—वि० स्त्री० [सं०] पापनाशिनी। पापनिवारिणी।

पापशमनी²—संज्ञा स्त्री० शमीवृक्ष।

पापशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाप से शुद्ध होने की क्रिया या भाव। पापनिवारण। २. तीर्थस्थान।

पापसंकल्प—वि० [सं० पापसङ्कल्प] पापनिश्चय। जिसने पाप करने का पक्का इरादा कर लिया हो।

पापसूदनतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ स्थान।

पापहर¹—वि० पुं० [सं०] पापनाशक। पापहारक।

पापहर²—संज्ञा पुं० एक नदी का नाम।

पापहा—वि० [सं० पापहन्] पाप का नाशक। पाप का हनन करनेवाला।

पापांकुशा—संज्ञा स्त्री० [सं० पापाङ्कुशा] आश्विन मास की शुक्ला एकादशी।

पापांत—संज्ञा पुं० [सं० पापान्त] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

पापा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुध की उस समय की गति जब वह हस्त, अनुराधा अथवा ज्येष्ठा नक्षत्र में रहता है। पापाख्या।

पापा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा कीड़ा जो ज्वार, बाजरे आदि की फसल में प्रायः उस वर्ष लग जाता है जिस वर्ष बरसात अधिक होती है।

पापा³—संज्ञा पुं० [अनु०] १. बच्चों की एक स्वाभाविक बोली या शब्द जिससे वे बाप को संबोधित करते हैं। बाबू। पिता के लिये संबोधन। उ०—पापा! हम और कम्मो आ रहे हैं।—भस्मावृत०, पृ० १७।

विशेष—इस समय प्रायः युरोपियनों ही के बच्चे इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

२. प्राचीन काल में बिशप पादरियों और वर्तमान में केवल

यूनानी पादरियों के एक विशेष वर्ग की सम्मानसूचक उपाधि ।

पापाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुध की उस समय की गति जब वह हस्त, अनुराधा अथवा ज्येष्ठा नक्षत्र में रहता है । पापा ।

पापाचरण—संज्ञा पुं० [सं०] पाप का आचरण । पापपूर्ण कार्य । उ०—पुण्यात्मा होता है पुण्याचरण से और पापात्मा पापाचरण से ।—सं०, दरिया (भू०), पृ० ६० ।

पापाचार¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० पापाचारी] पाप का आचरण । पापकार्य । दुराचार ।

पापाचार²—वि० पाप का आचरण करनेवाला । पापी । दुराचारी ।

पापात्मा—वि० [सं० पापात्मन्] जिसकी आत्मा सदा पापकर्म में फँसी या लिप्त रहे । पाप में अनुरक्त । पापी । दुष्टात्मा ।

पापाधम—संज्ञा पुं० [सं०] महापापी । अत्यंत पापी (को०) ।

पापानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० पापानुबन्ध] पाप का परिणाम । पाप का फल (को०) ।

पापानुवसित—वि० [सं०] पापात्मा । पापी (को०) ।

पापापनुत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] पाप दूर करना । प्रायश्चित्त (को०) ।

पापारंभ—वि० [सं० पापारम्भ] पाप कर्म करनेवाला । पापी (को०) ।

पापाशय—वि० [सं०] मन में पाप रखनेवाला । पापचेता (को०) ।

पापाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. अशौच का दिन । सूतक काल । २. निंदित दिन । अशुभ दिन ।

पापाही—संज्ञा पुं० [सं० पापाहि] सर्प । साँप ।

पापिग्रह†—संज्ञा पुं० [सं०] अशुभ ग्रह । दे० 'पापग्रह' । उ०—एक नक्षत्र में चार या पाँच पापिग्रहों के मिलने से संवर्त कहा जाता है ।—बृहत्० पृ० १०८ ।

पापिष्ठ—वि० [सं०] अतिशय पापी । बहुत बड़ा पापी । जो सदा पाप करता रहता हो । बहुत बड़ा गुनहगार ।

पापी¹—वि० [सं० पापिन्] [वि० स्त्री० पापिनी] १. पाप में रत या अनुरक्त । पाप करनेवाला । पापयुक्त । अघी । पातकी । उ०—(क) परगट गुपुत सरब बिआपी । धर्मी चीन्ह न चीन्है पापी ।—जायसी (शब्द०) । २. क्रूर । निर्दय । नृशंस । परपीडक ।

पापी²—संज्ञा पुं० पाप करनेवाला व्यक्ति । पापकारी । अपराधी वा दुराचारी मनुष्य ।

पापीयसी—वि० स्त्री० [सं०] [वि० पुं० पापीयस्] अत्यंत । पापिनी । अधिक पापवाली । उ०—मम सदृश मही में कौन पापीयसी है । हृदयमणि गँवा के नाथ जो जीविता हूँ ।—प्रिय०, पृ० ८१ ।

पापोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जूता । उपानह ।

पापोशकार—वि० [फ़ा०] जूते बनानेवाला । मोची । (को०) ।

पापोशकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. जूता बनाने का काम । २. जूते पड़ना । जूतों से किसी की मरम्मत (को०) ।

पापोस—संज्ञा पुं० [फ़ा० पापोश] पापोश । जूता । उ०—अब्ब पुन्न पुरिसब्ब पातिसाह् पापोस पाइअ ।—कीर्ति०, पृ० ५८ ।

पाप्मा¹—संज्ञा पुं० [सं० पाप्मन्] १. पाप । २. दोष । अपराध (को०) । ३. अभाग्य । दुर्भाग्य (को०) ।

पाप्मा²—वि० १. पापी । २. अपराधी (को०) ।

पाबंद¹—वि० [फ़ा०] [संज्ञा स्त्री० पाबंदी] १. बँधा हुआ । बद्ध । अस्वाधीन । कैद । २. किसी नियम, आज्ञा, वचन आदि के पूर्ण रूप से अधीन होकर काम करनेवाला । आचरण में किसी विशेष बात की नियमपूर्वक रक्षा करनेवाला । किसी बात का नियमित रूप से अनुसरण करनेवाला । नियम प्रतिज्ञा आदि का पालनकर्ता । जैसे,—(क) मैं तो सदा आपके हुक्म का पाबंद रहता हूँ । (ख) वे जन्म भर में कभी अपने वादे के पाबंद नहीं हुए । ३. नियमतः अथवा न्यायतः कोई विशेष कार्य करने के लिये बाध्य या लाचार । जो किसी वस्तु का अनुसरण करने के लिये बाध्य हो । नियम, प्रतिज्ञा, विधि, आदेश आदि का पालन करने के लिये विवश । जैसे,—(क) जो प्रतिज्ञा मुझपर दबाव डालकर कराई गई उसका पाबंद मैं क्यों होऊँ ? (ख) आपका हर एक हुक्म मानने के लिये मैं पाबंद नहीं हूँ ।

पाबंद²—संज्ञा पुं० १. घोड़े की पिछाड़ी । २. बेड़ी (को०) । ३. नौकर । दास । सेवक ।

पाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. पाबंद होने का भाव । बद्धता । अधीनता । उ०—सरकारी उच्च पदों से हिंदू वंचित थे । उनके सामाजिक कार्यों पर पाबंदियाँ थीं ।—अकबरी०, पृ० १२ । २. मजबूरी । लाचारी । ३. किसी वस्तु के अधीन होकर काम करने का भाव । नियमित रूप से किसी बात का अनुसरण । नियम, प्रतिज्ञा, आदेश, विधि आदि का पालन । जैसे,—वे सदा अपने वादों की पाबंदी करते हैं । ४. कोई विशेष कार्य करने की बाध्यता या लाचारी । किसी वस्तु के अनुसरण की आवश्यकता । किसी कार्य का अवश्य-कर्तव्य या फर्ज होना । जैसे,—आपकी सभी आज्ञाओं की मुझपर कोई पाबंदी नहीं है ।

पाबोर—संज्ञा पुं० [हिं० पा + बोरना] कहारों अथवा डोली ढोने-वालों की बोलचाल में वह स्थान जहाँ कुछ अधिक पानी हो । वह स्थान जहाँ घुटने तक या घुटना डूबने भर पानी भरा हो ।

विशेष—रास्ते में जब कहीं ऐसा स्थान पड़ता है जिसमें कुछ अधिक पानी भरा होता है तब अगले कहार इस शब्द को कहकर पिछले कहारों को सावधान करते हैं ।

पाबोस—वि० [फ़ा०] १. आदर प्रणाम करनेवाला (को०) । पैर छूनेवाला ।

पाबोसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पैर छूना । प्रणाम करना । पैर चूमना (को०) ।

पाम¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. वह डोरी जो गोटे, किनारी आदि के किनारों पर मजबूती के लिये बुनते समय डाल दी जाती है । २. लड़ । रस्सी । डोरी । (शब्द०) ।

पाम२—संज्ञा पुं० [सं० पामन्] १. दानेदार चकत्ते या फुंसियाँ जो चमड़े पर हो जाती हैं। २. खाज। खुजली।

पाम(५)३—संज्ञा पुं० [हिं० पाँव] दे० 'पाँव'। उ०—भरी भनोखी बाम, तूँ भाई गौने नई। बाहर धरसि न पाम, है छलिया तुव ताक में।—रसखान०, पृ० १६।

पामघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

पामघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

पामड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पाँव+ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'पावँड़ा'। उ०—सी सी कै उझकै झुकै चलत छकै यदुराय। नव मखमल के पामड़े हाय गड़े ये पाय।—शृंगारसतसई (शब्द०)।

पामन्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाम'।

पामन—वि० [सं०] जिसे या जिसमें पाम रोग हुआ हो।

पामना—क्रि० स० [हिं० पावना, पाना] प्राप्त करना। पाना। उ०—सुचिती होय भजो साहबनो, पामे सदगत प्राणी।—रघु० रू०, पृ० २७।

पामर—वि० [सं०] १. खल। दुष्ट। कमीना। पाजी। उ०—अरे पामर जयचंद्र! तेरे उत्पन्न हुए विना मेरा क्या डूबा जाता था?—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७१।

पामरयोग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का निकृष्ट योग जिसके द्वारा भारतवर्ष के नट, बाजीगर आदि अद्भुत अद्भुत लाग के खेल किया करते हैं। इसके साधन से अनेक रोगों का नाश और अद्भुत शक्तियों की प्राप्ति होना माना जाता है। कुछ लोग इसे 'मिस्मेरिजम' के अंतर्गत मानते हैं।

पामरी१—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रावार] उपरना। दुपट्टा। उ०—मोही साँवरे सजनी तब ते गृह मोको न सोहाई। द्वार अचानक होइ गए री सुंदर बदन दिखाई। ओढ़े पीरी पामरी पहिरे लाल निचोल। भौंहें कौंट कटीलियाँ सिख कीन्ही बिन मोल।—सूर (शब्द०)।

पामरी२—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँव+री (प्रत्य०)] दे० 'पावँड़ी'। उ०—छोटे छोटे नूपुर सो छोटे छोटे पायँन में छोटी जरकसी लसी सामरी सु पामरी।—रघुराजसिंह (शब्द०)।

पामारि—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

पामाल—वि० [फ़ा० पा+माल (=मलना, दलना, रौंदना)] [संज्ञा पामाली] १. पैर से मला हुआ। रौंदा हुआ। पादाक्रांत। पददलित। २ तबाह। बरबाद। चौपट। सत्यानाश।

पामाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तबाही। बरबादी। नाश।

पामोजा—संज्ञा पुं० [हिं० पा+मोजा ?] १. एक प्रकार का कबूतर जिसके पैर की उँगलियाँ तक परों से ढँकी रहती हैं। २. वह घोड़ा जो सवारी के समय सवार की पिंडली को अपने मुँह से पकड़ता है।

पायंटमैन—संज्ञा पुं० [अं० प्वायंट्समैन] वह आदमी जिसके जिम्मे रेलवे लाइन इधर से उधर करने या बदलने की कल रहती है।

पायंदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नित्यता। इस्तकलाल। स्थायित्व। उ०—किया नीर कूँ चश्म ए जिंदगी। पवन कूँ दिया उम्र पायंदगी।—दक्खिनी०, पृ० ११७।

पायंदा—वि० [फ़ा० पायंदह्] अविनाशी। स्थायी। नित्य [को०]।

पायंदाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० पायंदाज़] पैर पोछने का बिछावन। फर्श के किनारे का वह मोटा कपड़ा जिसपर पैर पोंछकर तब फर्श पर जाते हैं। उ०—डगपग पोछन को किए भूषण पायंदाज।—बिहारी (शब्द०)।

पायँ(५)†—संज्ञा पुं० [सं० पाद] दे० 'पाँव'। उ०—पायँ परी फगुआ नव देहौं मुरली देहु मँकोर।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५६।

पायँचा—संज्ञा पुं० [हिं० पायँ] पाजामे का वह भाग जो पावँ को ढकता है। उ०—हाथ में पायँचा लेकर निखरी आती है।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० ७६०।

पायँजेहरि(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पायँ+जेहरी] पैर में पहनने का घुँघरूदार गहना। पायजेब।

पायँत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पायँती'।

पायँता—संज्ञा पुं० [हिं० पायँ+सं० स्थान, हिं० थान] १. पलंग या चारपाई का वह भाग जिधर पैर रहता है। सिरहाने का उलटा। पैताना। २. वह दिशा जिधर सोनेवाले के पैर हों। जैसे,—तुम्हारे पायँते रखा हुआ है, उठकर ले लो।

पायँती—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिं० पायँता] पायँता। पैताना।

पायँपसारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] निर्मली का पौधा या फल।

पाय१—संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी [को०]।

पाय(५)†२—संज्ञा पुं० [सं० पाद] पैर। पाँव। उ०—बादल केरि जसोवै माया। आइ गहेसि बादल कर पाया।—जायसी, (शब्द०)।

पायक१—संज्ञा पुं० [सं० पादातिक, पायिक] १. धावन। दूत। हरकारा। उ०—है दससीस मनुज रघुनायक? जाके हनुमान से पायक।—तुलसी (शब्द०)। २. दास। सेवक। अनुचर। ३. पैदल सिपाही। उ०—असी लक्ख पायक सहित, चढ्यो अलाउद्दीन।—हम्मीर०, पृ० २४।

पायक२—संज्ञा पुं० [सं०] पान करनेवाला। पीनेवाला।

पायक्क(५)—संज्ञा पुं० [सं० पताका] ध्वजा। पताका। उ०—पायक्क बंध डोंगर सुबीर।—प० रासो, पृ० १०६।

पायखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० पाखानह्] दे० 'पाखाना'।

पायज—संज्ञा पुं० [देश०] मूत्र। पेशाब।

पायजामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पाएजामह्] दे० 'पाजामा'।

पायजेब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पाजेब] दे० 'पाजेब'। उ०—बिछिया पग राई बेलि चित की गति हरती, पंकज को पायजेब पायजेब करती।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४३१।

पायठ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पाइठ'।

पायड़ा१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पैंड़ा'।

पायड़ा२—संज्ञा पुं० [हिं० पायँ] रकाब। पाँव अड़ाने का स्थान।

उ०—हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, बिस्नू पीठ पलान । चंद सूर दूँ पायड़ा, चढ़सी संत सुजान ।—संतवाणी०, पृ० ३८ ।

पायतख्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० पायःतख्त, पाएतख्त] राजनगर । शासनकेंद्र । राजधानी ।

पायताबा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] झोली की तरह का पैर का एक पहनावा जिससे उँगलियों से लेकर पूरी या आधी टाँगें ढकी रहती हैं । मोजा । जुर्राब ।

पायदल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पैदल' । उ०—कहे कासी पंडत लाल झँडे बहुत । पायदल जावे तहत क्या खबर लाव ।—दक्खिनी, पृ० ४६ ।

पायदान—संज्ञा पुं० [फ़ा० पाएदान] दे० 'पावदान' ।

पायदार—वि० [फ़ा०] बहुत दिनों तक टिकनेवाला । बहुत दिनों तक चलनेवाला । जल्दी न टूटने फूटने या नष्ट होनेवाला । टिकाऊ । दृढ़ । मजबूत ।

पायदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मजबूती । दृढ़ता ।

पायन—संज्ञा पुं० [सं०] पिलाना [को०] ।

पायना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तेज करना । सान धरना । २. पिलाने की क्रिया । ३. आर्द्र करना । सींचना । गीला करना [को०] ।

पायपोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'पापोश' ।

पायबोसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पाबोसी] चरणचुंबन । पैर चूमना ।

पायमाल—वि० [फ़ा० पामाल, पाएमाल] १. पैरों से रौंदा हुआ । २. विनष्ट । बरबाद । ध्वस्त । उ०—तुलसी गरब तजि, मिलिबे को साज सजि, देहि सिय न तु पिय पायमाल जाहिगो ।—तुलसी (शब्द०) ।

पायमाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पामाली] १. दुर्गति । अधोगति । २. खराबी । बरबादी । नाश ।

पायरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० पायल] नूपुर । पायजेब । उ०—नटनागर पायर पायन में, वृषभानु सुता यों कह्यो करिए । अहो माखन चोर ! यही बिधि सों, मम आँखिन बीच रह्यो करिए ।—नट०, पृ० ७५ ।

पायरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पायड़ा, पाय + रा (= रखना)] घोड़े की जीन या चारजामे के दोनों ओर लटकता हुआ पट्टी या तसमें में लगा हुआ लोहे का आधार जिसपर सवार के पैर टिके रहते हैं । रकाब ।

पायरा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कबूतर ।

पायरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँवरी] दे० 'पाँवड़ी' । उ०—अँखियाँ भरि आवतीं मेरी अजौं सुमिरे उनकी पग पायरियाँ ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८८ ।

पायल—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाय + ल (प्रत्य०)] १. पैर में पहनने का स्त्रियों का एक गहना जिसमें घुँघरू लगे होते हैं । नूपुर । पाजेब । उ०—सजनी पँजनी पायली मनभजनी पुर बाम । रजनी नींद न परति है सजनी बिन घनस्याम ।—स० सप्तक, पृ० २३७ । २. तेज चलनेवाली हथिनी । ३. वह बच्चा जन्म के समय जिसके पैर पहले बाहर हों । ४. बाँस की सीढ़ी ।

पायस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध और शर्करा के साथ पकाया हुआ चावल । खीर । २. क्षीर । दुग्ध । दूध [को०] । ३. सरल-निर्यास । सलई का गोंद जो बिरोजे की तरह का होता है ।

पायस[2]—वि० दूध या जल का । दुग्ध या जल से संबद्ध [को०] ।

पायसाⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० पार्श्व, हिं० पास] पड़ोस । आसपास का स्थान । उ०—दौरानी जेठानी सासु ननद सहेली दासी पायसे की बासी तिय तिनके हो गोल में ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

पायसिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पायसिकी] जिसे उबाला या औटाया हुआ दूध प्रिय हो [को०] ।

पाया—संज्ञा पुं० [सं० पाद, हिं० पाव फ़ा० पायह्] १. पलंग, कुरसी, चौकी, तख्त आदि में खड़े डंडे या खंभे के आकार का वह भाग जिसके सहारे उसका ढाँचा या तल ऊपर ठहरा रहता है । गोड़ा । पावा । जैसे, तख्त का पाया, पलंग के चारो पाये । २. खंभा । स्तंभ । ३. पद । दरजा । रुतबा । ओहदा । ४. घोड़ों के पैर में होनेवाली एक बीमारी । ५. सीढ़ी । जीना ।

पायाब—वि० [फ़ा०] हलकर पार करने लायक । उथला । जो गहरा न हो । गाध [को०] ।

पायाबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गाधता । छिछलापन । उथलापन [को०] ।

पायानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाण] १. गमन । प्रयाण । उ०—सुभ्रित सकल लिय बोलि पुच्छि परिहार तिनहि मत । चाहुआन पायान कहत आखेट जुद्ध रत ।—पृ० रा०, ७ । ६५ । २. आक्रमण । चढ़ाई । हमला । धावा । उ०—पायान राय जयचंद को बिगरि पिथ्थ कुन संभमै ।—पृ० रा०, ६१ । १०६० ।

पायिक—संज्ञा पुं० [सं०] [वास्तव में पादातिक का प्रा० रूप] १. पादातिक । पैदल सिपाही । २. दूत । चर ।

पायित—संज्ञा पुं० [सं०] उदकदान । जल देना । जलप्रदान [को०] ।

पायी—वि० [सं० पायिन्] पीनेवाला ।

पायु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मलद्वार । गुदा । उ०—श्रोत्र त्वक चक्षु घ्राण रसना रस को ज्ञान वाक्य पाणिपाद पायु उपस्थ हि बंध जू ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५८८ ।

विशेष—पायु कर्मेंद्रियों में माना गया है ।

२. भरद्वाज ऋषि के एक पुत्र का नाम । ३. रक्षक । वह जो रक्षा करे । गोप्ता । पालक [को०] ।

पायुभेद—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रग्रहण के मोक्ष का एक प्रकार जिसमें मोक्ष या तो नैऋत कोण या वायु कोण से होता है ।

विशेष—यदि नैऋत कोण से मोक्ष हो तो उसे दक्षिण पायुभेद और यदि वायु कोण से हो तो वाम पायुभेद कहते हैं । इन दोनों प्रकार के मोक्षों से सामान्य गुह्य पीड़ा और सुवृष्टि होती है ।

पाथ्य¹—वि० [सं०] १. पान करने के योग्य। पीने के लायक। २. निम्न। निंदनीय [को०]।

पाथ्य²—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल। २. परिमाण (को०)। ३. पेशा। व्यवसाय (को०)। ४. रक्षण (को०)। ५. पीना। पान करना (को०)।

पारंगत—वि० [सं० पारङ्गत] १. पार गया हुआ। २. जिसने किसी शास्त्र या विद्या को पढ़कर पार किया हो। जिसने किसी विषय को आदि से अंत तक पूरा पढ़ा हो। पूर्ण पंडित। पूरा जानकार। दे० 'पारगत'।

पारंपरीण—वि० [सं० पारम्परीण] परंपरागत। एक के पीछे दूसरा इस क्रम से बराबर चला आता हुआ।

पारंपर्य—संज्ञा पुं० [सं० पारम्पर्य] १. परंपरा का भाव। २. परंपराक्रम। ३. कुलक्रम। वंशपरंपरा। ४. आम्नाय। परंपरा से चली आती हुई रीति।

यौ०—पारंपर्यक्रम = परंपरा से चला आता हुआ क्रम या सरणि।

पारंपर्येण—क्रि० वि० [सं० पारम्पर्येण] क्रमशः। एक के बाद एक के क्रम से [को०]।

पारंपर्योपदेश—संज्ञा पुं० [सं० पारम्पर्योपदेश] परंपरा से चला आता हुआ उपदेश। ऐतिह्य जो प्रमाण के रूप मे माना जाता है [को०]।

पारंभⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रारंभ] दे० 'प्रारंभ'। उ०—विति मंत आरंभ सेन पारभ विचारिय। बाल वीर प्रथिराज देह नाहीं परिहारिय।—पृ० रा०, ७।२८।

पार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी दूर तक फैली हुई वस्तु के विशेषतः नदी, समुद्र, झील, ताल आदि जलाशयों के आमने सामने के दोनों किनारों में उस किनारे से भिन्न किनारा जहाँ (या जिसकी ओर) अपनी स्थिति हो। दूसरी ओर का किनारा। अपर तट की सीमा। जैसे,—(क) यह नाव पार जायगी। (ख) जंगल के पार गाँव मिलेगा। (ग) वे पार से आ रहे हैं। (घ) नदी पार के ग्राम अच्छे होते हैं। उ०—अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जिय संसय कछु फिरती बारा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द के साथ सप्तमी की विभक्ति 'में' प्रायः लुप्त ही रहती है, इससे इसका प्रयोग अव्ययवत् ही जान पड़ता है।

यौ०—आरपार = (१) यह किनारा और वह किनारा। (२) इस किनारे से उस किनारे तक। जैसे,—नाले के आरपार लकड़ी का एक बल्ला रख दो। वारपार = यह किनारा और वह किनारा। जैसे,—जब नाव बीच धार में पहुँची तब वार-पार नहीं सूझता था।

मुहा०—पार उतरना = (१) नदी आदि के बीच से होते हुए दूसरे किनारे पर पहुँचना। (२) जिस काम में लगे रहे हों उसे पूरा कर चुकना। किसी काम से छुट्टी पाना। (३) मतलब को पहुँचना। सिद्धि या सफलता प्राप्त करना। (४) मरकर समाप्त होना। मर मिटना (लि०)। पार उतर जाना = दे० 'पार उतरना' (१), (२), (३), (४) और (५)। मतलब साधकर अलग हो जाना। किनारे हो जाना। जैसे,—तुम तो ले देकर पार उतर गए, बोझ मेरे सिर पड़ा। पार उतारना = (१) दूसरे किनारे पर पहुँचाना। जल आदि के ऊपर का रास्ता तै कराना। (२) पूरा कर चुकना। समाप्ति पर पहुँचाना। (३) उद्धार करना। दु.ख या कष्ट से बाहर करना। उबारना। उ०—रघुबर पार उतारिए, अपनी ओर निहारि।—(शब्द०)। (४) समाप्त करना। ठिकाने लगाना। मार डालना। (नदी आदि) पार करना = (१) नदी आदि के बीच से होते हुए उसके दूसरे किनारे पर पहुँचना। जल आदि का मार्ग तै करना। (२) पूरा करना। समाप्ति पर पहुँचना। तै करना। निबटाना। भुगताना। (३) निबाहना। बिताना। जैसे, जिंदगी पार करना। (किसी वस्तु या व्यक्ति को नदी आदि के) पार करना = (१) नदी आदि के बीच से ले जाकर दूसरे किनारे पर पहुँचाना। जैसे, नाव को पार करना, किसी आदमी को पार करना। (२) दुर्गम मार्ग तै कराना। (३) कष्ट या दु.ख के बाहर करना। उद्धार करना। पार लगना = नदी आदि के बीच से होते हुए उसके दूसरे किनारे पर पहुँचना। किसी का पार लगना = निर्वाह होना। जीवन के दिन काटना। कालक्षेप होना। जैसे,—तुम्हारा कैसे पार लगेगा ? (इस मुहा० में 'बेड़ा' शब्द लुप्त समझना चाहिए)। किसी से पार लगना = पूरा हो सकना। हो सकना। जैसे—तुम्हारा काम हमसे नहीं पार लगेगा। पार लगाना = (१) किसी वस्तु के बीच से ले जाकर उसके दूसरे किनारे पर पहुँचाना। उ०—हरि मोरी नैया पार लगा।—गीत (शब्द०)। (२) कष्ट या दु.ख के बाहर करना। उद्धार करना। जैसे,—ईश्वर ही पार लगावे। (२) पूरा करना। समाप्ति पर पहुँचाना। खतम करना। जैसे,—किसी प्रकार इस काम को पार लगाओ। किसी का पार लगाना = निर्वाह करना। जीवन व्यतीत कराना। पार होना = (१) किसी दूर तक फैली हुई वस्तु के बीच से होते हुए उसके दूसरे किनारे पर पहुँचना। जैसे, नदी पार होना, जंगल पार होना। (२) किसी काम को पूरा कर चुकना। किसी काम से छुट्टी पा जाना। (३) मतलब साधकर अलग हो जाना। जैसे—तुम तो अपना ले देकर पार हो जाओ काम चाहे हो या न हो। पार हो जाना = दे० 'पार होना'—(१), (२) और (३)। (४) छुट्टी पा जाना। मुक्त हो जाना। रिहाई पा जाना। फँसाव, झंझट, जवाबदेही आदि से छूट जाना। निकल जाना। जैसे—तुम तो दूसरों के सिर दोष मढ़कर पार हो जाओगे। लड़की पार होना = लड़की का ब्याह हो जाना। कन्या के बिवाह से छुट्टी पा जाना।

२. सामनेवाला दूसरा पार्श्व। दूसरी तरफ। जैसे—(क) तीर कलेजे के पार होना। (ख) गेंद का दीवार के पार जाना।

यौ०—आर पार = किसी वस्तु से होता हुआ उसके इस ओर से उस ओर तक। किसी वस्तु के ऊपर, नीचे या भीतर से होता

हुआ उसकी एक तरफ से दूसरी तरफ तक। जैसे,—(क) दीवार के आरपार छेद हो गया। (ख) यह सड़क पहाड़ के आरपार गई है। (ग) बाँध के आरपार सुरंग खोदी गई।

मुहा०—पार करना = किसी वस्तु के ऊपर, नीचे या भीतर से होते हुए उसकी दूसरी ओर पहुँचना। किसी वस्तु से होते हुए उसके आगे निकल जाना। लाँघते, भेदते या ऊपर से होते हुए दूसरे पार्श्व में जाना। जैसे, (क) मनुष्य या रास्ते का पहाड़ को पार करना। (ख) गेंद का दीवार को पार करना (ग) सुरंग का बाँध को पार करके निकलना। (घ) तीर का कलेजे को पार करना।

विशेष—यदि कोई दूसरे मार्ग से जहाँ वह वस्तु न पड़ती हो जाकर उस वस्तु की दूसरी ओर पहुँच जाय तो उसे पार करना न कहेंगे। पार करने का अभिप्राय है वस्तु से होकर उसकी दूसरी तरफ पहुँचना।

(किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के) पार करना = (१) किसी वस्तु के ऊपर, नीचे या भीतर से ले जाकर उसको दूसरी ओर पहुँचाना। लँघाकर या घुसाकर दूसरी ओर निकालना या ले जाना। जैसे,—(क) इस अंधे को हाथ पकड़कर टीले के पार कर दो। (ख) इस बार तीर पेड़ के पार कर देंगे। (ग) भाला कलेजे के पार कर दिया। (२) कष्ट या दुःख से बाहर करना। उबारना। उद्धार करना। जैसे,—किसी प्रकार इस विपत्ति से पार करो। पार होना = किसी वस्तु के ऊपर, नीचे या भीतर से होते हुए उसकी दूसरी ओर पहुँचना। किसी वस्तु पर से जाकर, उसे लाँघकर या उसमें घुसकर उसकी दूसरी तरफ निकलना। जैसे, (क) गेंद का दीवार के पार होना। (ख) कटार का कलेजे के पार होना। उ०—इत मुख तें गग्गा कढ़ी उतै कढ़ी जमधार। 'वार' कहन पायो नहीं, भई करेजे पार। (शब्द०)।

३. आमने सामने के दोनों किनारों में से एक दूसरे की अपेक्षा से कोई एक। किसी वस्तु के पूरे विस्तार के बीचोबीच से गई हुई कल्पित रेखा के दोनों छोरों पर पड़नेवाले तटों या पार्श्वों में से कोई एक। ओर। तरफ। जैसे,—(क) नदी के इस पार से उस पार तुम नहीं जा सकते। (ख) दीवार में इस पार से उस पार तक छेद हो गया। (ग) जब पोस्ती ने पी पोस्त तब कूँड़ी के इस पार या उस पार।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग उसी किनारे या पार्श्व के अर्थ में होगा जिसका कथन सामने के दूसरे किनारे या पार्श्व का संबंध लिए हुए होगा। जैसे, 'इस पार कहने से यह समझा जाता है कि कहनेवाले के ध्यान में दोनों किनारे हैं जिनमें से वह एक ही ओर इंगित करता है। यही कारण है, जिससे 'इस' और 'उस' की जगह 'एक' और 'दो' संख्यावाचक पदों का प्रयोग इस शब्द के पहले नहीं करते। 'एक पार से दूसरे पार तक' नहीं बोला जाता। इसी प्रकार दोनों 'किनारे' के अर्थ में 'दोनों पार' बोलना भी ठीक नहीं जान पड़ता। संख्यावाचक शब्द तब रख सकते जब 'पार' का व्यवहार सामान्यतः (बिना किसी विशेषता के) 'किनारा' के अर्थ में होता है। पर उसका प्रयोग सापेक्ष है।

४. छोर। अंत। अखीर। हद। परिमिति।

मुहा०—पार पाना = अंत तक पहुँचना। समाप्ति तक पहुँचना। आदि से अंत तक जाना या पूरा करना। क०—शेष शारदा सहस श्रुति कहत न पावैं पार।—तुलसी (शब्द०)। किसी से पार पाना = किसी के विरुद्ध सफलता प्राप्त करना। जीतना जैसे,—वह बड़ा चालाक है, तुम उससे नहीं पार पा सकते।

पार²—अव्य० परे। आगे। दूर। अलगाव से अलग। उ०—विप्र, धेनु, सुर, संत हित लीन्ह मनुज अवतार। निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।—तुलसी (शब्द०)।

पार³—वि० [सं० पर] अन्य। पर। पराया। दे० 'पर'। उ०—पार कइ सेवइ राज दुवार।—बी० रासो०, पृ० ६१।

पारई†—संज्ञा स्त्री० [सं० पार] मिट्टी का बड़ा कसोरा। परई। उ०—मनि भाजन मधु पारई पूरन अमी निहारि। का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु बिबेक बिचारि।—तुलसी (शब्द०)।

पारक्—संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

पारक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पारकी] १. पालन करनेवाला। २. प्रीति करनेवाला। ३. पूर्ति करनेवाला। ४. पार करनेवाला। ५. उद्धार करनेवाला।

पारकाम—वि० [सं०] उस पार जाने का इच्छुक। जो उस पार जाना चाहता हो [को०]।

पारक्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुण्य कार्य जिससे परलोक सुधरता है। २. विरोधी। अरि। शत्रु [को०]।

पारक्य²—वि० पराया। परकीय। दूसरे का।

पारख(पु)†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० परीक्षा, प्रा० परिक्खा, हिं० परिखा, पारिखा] दे० 'पारिख', 'पारख'।

पारख†²—वि० [सं० परीक्षक] जिसमें परखने या जाँचने की शक्ति हो। पारखी। उ०—(क) इतने समय पर्यंत तो बिना पारख गुरु के कोई मुक्ति नहीं पावेगा।—कबीर मं०, पृ० १६१। (ख) बिना पारख गुरु के अंधों की तरह टटोलते फिरते हैं।—कबीर सा०, पृ० ९७५।

पारखद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पार्षद'।

पारखि—संज्ञा पुं० [हिं० पारखी] परीक्षक दे० 'पारखी'। उ०—रतन छिपाए ना छिपै पारखि होइ सो परीख।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३०३।

पारखी—संज्ञा पुं० [हिं० पारिख+ई (प्रत्य०)] १. वह जिसे परख या पहचान हो। वह जिसमें परीक्षा करने की योग्यता हो। २. परखनेवाला। जाँचनेवाला। परीक्षक। जैसे, रतनपारखी।

पारग¹—वि० [सं०] १. पार जानेवाला। २. काम को पूरा करनेवाला। समर्थ। ३. पूरा जानकार। पूर्ण ज्ञाता।

पारग²—संज्ञा पुं० पूर्ण करना। निभाना। पालना। जैसे, प्रतिज्ञा, वादा [को०]।

पारगत¹—वि० [सं०] १. जिसने पार किया हो। २. जिसने किसी विषय को आदि अंत तक पूरा किया हो। ३. समर्थ। ४. पूरा जानकार।

पारगत²—संज्ञा पुं० अर्हंत। जिन (जैन)।

पारगामी—वि० [सं० पारगामिन्] दे० 'पारगत'। पार जानेवाला [को०]।

पारगिरामी†—वि० [वि० पारगामी ?] दे० 'पारगामी'। उ०—बिनु शब्दै नही पारगिरामी। बिनु शब्दे नाही अंतरिजामी।—प्राण०, पृ० १४०।

पारग्रामिक—वि० [सं०] १. परकीय। विदेशी। अन्यदेशीय। २. विरोधी। शत्रु [को०]।

पारग्रामी†—वि० [सं० पारगामी] दे० 'पारगामी'। उ०—और नासकेत पुरान कैसी है। महापवित्र है जैसे कोई प्रानी एकाग्र चित्त दै करि सुनै पढ़ै जो पारग्रामी होइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८१।

पारचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पारचह्] १. टुकड़ा। खंड। धज्जी (विशेषतः कपड़े, कागज आदि की)। २. कपड़ा। पट। वस्त्र।

यौ०—पारचाफरोश = वस्त्र का व्यवसायी। बजाज। पारचाफरोशी = बजाजी। कपड़े का व्यापार। पारचाबाफ = जुलाहा। कोरी। पारचाबाफी = कपड़ा बुनने का काम।

३. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। ४. पहनावा। पोशाक। ५. कुएँ के मुँह के किनारे पर भीतर की ओर कुछ बढ़ाकर रखी हुई पटिया या लकड़ी जिसके उस पार से डोरी लटकाकर पानी खींचा जाता है।

विशेष—यह इसलिये रखी जाती है जिसमें नीचे या ऊपर आते समय पानी का बर्तन कुएँ की दीवार से दूर रहे, उससे बार बार टकराया न करे। इसपर पानी खींचते समय कभी कभी पैर भी रख देते हैं।

पारज—संज्ञा पुं० [सं०] सोना। सुवर्ण।

पारजन्मिक—वि० [सं०] अन्य जन्म का। दूसरे जन्म से संबद्ध [को०]।

पारजातⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पारिजात] दे० 'पारिजात'।

पारजायिक—वि० [सं०] पर-स्त्री-लंपट। व्यभिचारी [को०]।

पारटीट, पारटीन—संज्ञा पुं० [सं०] शिला। चट्टान [को०]।

पारण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी व्रत या उपवास के दूसरे दिन किया जानेवाला पहला भोजन और तत्संबंधी कृत्य।

विशेष—व्रत के दूसरे दिन ठीक रीति से पारण न करे तो पूरा फल नहीं होता। जन्माष्टमी को छोड़कर और सब व्रतों में पारण दिन को किया जाता है। देवपूजन करके और ब्राह्मण खिलाकर तब भोजन या पारण करना चाहिए। पारण के दिन काँसे के बर्तन में न खाना चाहिए, मांस, मद्य, मधु न खाना चाहिए, मिथ्याभाषण, व्यायाम, स्त्रीप्रसंग आदि भी न करना चाहिए। ये सब बातें वैष्णवों के लिये विशेष रूप से निषिद्ध हैं।

२. तृप्त करने की क्रिया या भाव। ३. मेघ। बादल। ४. समाप्ति। खातमा। पूरा करने की क्रिया या भाव। ५. अध्ययन। पठन। पढ़ना (को०)। ६. किसी ग्रंथ का पूर्ण विषय (को०)।

पारण²—वि० १. पार करनेवाली। २. उद्धारक। रक्षक [को०]।

पारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'पारण' उ०—बरित कह धरि आपणंइ. पारणो कीधो द्वादशी जोग।—बी० रासो, पृ० ५१। २. भोजन। खाना। भक्षण (को०)।

पारणीय—वि० [सं०] १. पूरा करने योग्य। (क्व०)। २. जो पूर्ण हो गया हो। पूर्णताप्राप्त (को०)।

पारतंत्र्य—संज्ञा पुं० [सं० पारतन्त्र्य] परतंत्रता। पराधीनता। उ०—वह है बौद्धधर्म जो देश काल, व्यक्ति के विविध पारतन्त्र्य से मुक्त कर देना है।—किन्नर०, पृ० १०२।

पारत—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारा। पारद। २. एक देश और एक प्राचीन म्लेच्छ जाति का नाम। वि० दे० 'पारद'।

पारतल्पिक—वि० [सं०] जो पराई स्त्री के साथ गमन करे। व्यभिचारी।

पारत्रिक—वि० [सं०] १. परलोक संबंधी। पारलौकिक। २. (कर्म) जिससे परलोक बने। मरने के पीछे उत्तम गति देनेवाला।

पारत्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] परत्र या परलोक में प्राप्त होनेवाला फल [को०]।

पारथ—संज्ञा पुं० [सं० पार्थ] पार्थ। अर्जुन। उ०—भारत के पारथ और भीषम समान थे, हमीर औ अलाउदीन दोऊ दरसत हैं।—हम्मीर०, पृ० ५३।

यौ०—पारथतिय = अर्जुन की स्त्री। द्रौपदी। उ०—पारथ तिय कुरुराज सभा मैं बोलि करन चहै नंगी।—सूर०, १।२१।

पारथिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पार्थ, हिं० पारथ] दे० 'पार्थ'। उ०—तीसर बूड़े पारथि भाई। जिन बन डाह्यो दावा लाई।—कबीर बी० (शिशु०), पृ० ६२।

पारथिवⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पार्थिव] दे० 'पार्थिव'। उ०—तब मज्जन करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा।—तुलसी (शब्द०)।

पारथ्थⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पार्थ हिं० पारथ] दे० 'पार्थ'। उ०—दल दिष्षि संग दीपत तेम। भारथ्थ सैन पारथ्थ जेम।—प० रासो, पृ० १६५।

पारद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारा। २. एक प्राचीन जाति जो पारस के उस प्रदेश में निवास करती थी जो कास्पियन सागर के दक्षिण के पहाड़ों को पार करके पड़ता था। इसके हाथ में बहुत दिनों तक पारस साम्राज्य रहा। दे० 'पारस'।

विशेष—महाभारत, मनुस्मृति, बृहत्संहिता इत्यादि में पारद देश और पारद जाति का उल्लेख मिलता है। यथा—'पौंड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः। पारदाः पह्लवाश्चीनाः

किराता दरदा. खशा:। (मनु० १०।४४)। इसी प्रकार बृहत्संहिता में पश्चिम दिशा में बसनेवाली जातियों में 'पारत' और उनके देश का उल्लेख है—'पञ्चनद रमठ पारत तारक्षिति शृंग वैश्य कनक शका.।' पुराने शिलालेखों में 'पार्थव' रूप मिलता है जिससे युनानी 'पार्थिया' शब्द बना है। युरोपीय विद्वानों ने पह्लव' शब्द को इसी 'पार्थिव' का अपभ्रंश या रूपातर मानकर पह्लव और पारद को एक ही ठहराया है। पर संस्कृत साहित्य में ये दोनों जातियाँ भिन्न लिखी गई हैं। मनुस्मृति के समान महाभारत और बृहत्संहिता में भी 'पह्लव' 'पारद' से अलग आया है। अतः 'पारद' का 'पह्लव' से कोई संबंध नहीं प्रतीत होता। पारस में पह्लव शब्द शाशानवंशी सम्राटों के समय से ही भाषा और लिपि के अर्थ मे मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि इसका प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ में पारसियों के लिये भारतीय ग्रंथो में हुआ है। किसी समय में पारस के सरदार 'पहलवान' कहलाते थे। संभव है, इसी शब्द से 'पह्लव' शब्द बना हो। मनुस्मृति में 'पारदों' और 'पह्लवों' आदि को आदिम क्षत्रिय कहा है जो ब्राह्मणों के अदर्शन से संस्कारभ्रष्ट होकर शूद्रत्व को प्राप्त हो गए।

पारदर्शक—वि० [सं०] १. जिसके भीतर से होकर प्रकाश की किरणों के जा सकने के कारण उस पार की वस्तुएँ दिखाई दें। जिससे आरपार दिखाई पड़े। जैसे,—शीशा पारदर्शक पदार्थ है। २. पार को दिखानेवाला (को०)।

पारदर्शिका—वि० स्त्री० [सं० पारदर्शक] आरपार दिखाई देनेवाली। उ०—नव मुकुर नीलमणि फलक अमल, ओ पारदर्शिका चिर चंचल।—लहर, पृ० ४८।

पारदर्शी—वि० [सं० पारदर्शिन्] १. उस पार तक देखनेवाला। २. दूर तक देखनेवाला। परिणामदर्शी। दूरदर्शी। चतुर। बुद्धिमान्। ३. जिसका खूब देखा सुना हो। जो पूरा पूरा देख चुका हो।

पारदाकार—वि० [सं०] पारे के समान श्वेत और चमकदार। उ०—पुनि ऋषीकेश अंकित अति शोभित कंठ पारदाकार।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ५१।

पारदारिक—संज्ञा पुं० [सं०] परस्त्रीगामी। जार।

पारदार्य—संज्ञा पुं० [सं० पारदार्य्य] पराई स्त्री के साथ गमन। पर-स्त्री-गमन। व्यभिचार।

पारदृश्वा—वि० [सं० पारदृश्वन्] १. पारदर्शी। दूरदर्शी। २. किसी विषय का पूर्ण ज्ञाता [को०]।

पारदेशिक—वि० [सं०] १. विदेश का। अन्य देश का। विदेशी। २. यात्रा करनेवाला। मुसाफिर [को०]।

पारदेश्य—वि० [सं०] दूसरे देश से संबंधित। पारदेशिक [को०]।

पारधिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पापर्द्धिक, प्रा० पारद्धिअ, हिं० पारधी] दे० 'पारधी'। उ०—पहिलें पारधि जाइ बन घात करे चहुँ फेर। सपरि कुँअर तब कटक लै, खेलै जाइ अहेर।—चित्रा० पृ० २१।

पारधी¹—संज्ञा पुं० [सं० परिधान (= आच्छादन) अथवा सं० पापर्द्धिक, प्रा० पारद्धिअ] १. टट्टी आदि की ओट से पशु पक्षियों को पकड़ने या मारनेवाला। बहेलिया। व्याध। उ०—मृग पारधी की मति कहा कीनी नाद-रस प्याइ बान मारथो तानि।—धनानंद, पृ० १५६। २. शिकारी। अहेरी। हत्यारा। बधिक।

पारधी²—संज्ञा स्त्री० ओट। आड़।

मुहा०—पारधी पड़ना = ओट से होकर कोई व्यापार देखना या किसी की बात सुनना।

पारन—संज्ञा पुं० [सं० पारण] दे० पारण'।

पारना¹—क्रि० स०[हिं० पारना (पड़ना) क्रि० स० रूप] १. डालना। गिराना। उ०—पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ७६। २. खड़ा या उठा न रहने देना। जमीन पर लंबा डालना। ३. लोटाना। उ०—(क) पारिगो न जाने कौन सेज पै कन्हैया को।—(शब्द०)। (ख) धन्य भाग तिहि रानि कौशिला छोट सुप महँ पारे।—रघुराज (शब्द०)। ४. कुश्ती या लड़ाई में गिराना। पछाड़ना। उ०—सोइ भुज जिन रण विक्रम पारे।—हरिचंद्र (शब्द०)। ५. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में रखने, ठहराने या मिलाने के लिये उसमें गिराना या रखना। ६. रखना। उ०—मन न धरति मेरो कह्यो तू आपनी सयान। अहे परनि परि प्रेम की परहथ पार न प्रान।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—पिंडा पारना = पिंडदान करना। उ०—आय बनारस आरथो कया। पार्‌यो पिंड नहायो गया।—जायसी (शब्द०)। ७. किसी के अंतर्गत करना। किसी वस्तु या विषय के भीतर लेना। शामिल करना। उ०—जे दिन गए तुमहिं बिनु देखे। ते विरंचि जनि पारहि लेखे। तुलसी (शब्द०)। ८. शरीर पर धारण करना। पहनना। उ०—श्याम रँग धारि पुनि बाँसुरी सुधारि कर, पीत पट पारि बानी मधुर सुनावैगी।—श्रीधर (शब्द०)। ९. बुरी बात घटित करना। अव्यवस्था आदि उपस्थित करना। उत्पात मचाना। उ०—औरे भाँति भएऽब ये चौसर चंदन चंद। पति बिनु अति पारत बिपति, मारत मारु चंद।—बिहारी (शब्द०) १०. साँचे आदि में डालकर या किसी वस्तु पर जमाकर कोई वस्तु तैयार करना। जैसे, ईंट या लपड़े पारना, काजल पारना। ११. सजाना। बनाना। सँवारना। उ०—माँग भरी मोतिन सों पटियाँ नीकै पारी। नंद० ग्रं०, पृ० ३८६।

पारनाⓅ†²—क्रि० अ० [सं० पारण (= योग्य) या हिं० पार, जैसे, पार लगना (= हो सकना)] सकना। समर्थ होना। उ०—प्रभु सन्मुख कछु कहइ न पारइ। पुनि पुनि चरन सरोज निहारइ।—तुलसी (शब्द०)।

पारनाⓅ†³—क्रि० सं० [सं० पालन] दे० 'पालना'। उ०—नेमनि संग फिरे भटक्यौ पल मूँदि स्वरूप निहारत क्यों नहिं। स्याम

सुजान कृपा घनआनंद प्रान पपीहनि पारत क्यों नहीं। —घनानंद, पृ० १५१।

पारबती—संज्ञा स्त्री० [सं० **पार्वती**] 'पार्वती'। उ०—पारबती भल अवसरु जानी। गईं संभु पहिं मातु भवानी। —मानस, १।१०७।

पारब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं० **परब्रह्म**] दे० 'परब्रह्म'। उ०—सभै काल बसि होय, मौन कालौ की होती। पारब्रह्म भगवान मरे ना अविगत जोती।—पलटू०, भा० १, पृ० २१।

पारभृत—संज्ञा पुं० [सं० **प्राभृत**] उपायन। उपहार। भेंट [को०]।

पारमहंस्य—वि० [सं०] परमहंस से संबंधित। परमहंस का [को०]।

पारमार्थिक—वि० [सं०] १. परमार्थ संबंधी। जिससे परमार्थ सिद्ध हो। जिससे मनुष्य को पारलौकिक सुख हो। २. वास्तविक। जो केवल प्रतीति या भ्रम न हो। सदा ज्यों का त्यों रहनेवाला। नाम रूप से भिन्न शुद्ध सत्य। जैसे, पारमार्थिकी सत्ता, पारमार्थिक ज्ञान। ३. सर्वोत्तम। अत्युत्तम। सर्वोत्कृष्ट (को०)। ४. परस्पर विभक्त (को०)।

पारमार्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] परम सत्य। शुद्ध सत्य [को०]।

पारमिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **परमिकी**] श्रेष्ठ। सर्वोत्तम। मुख्य [को०]।

पारमित—वि० [सं०] १. उस पार या किनारे गया हुआ। २. सर्वातिशायी। सर्वोत्कृष्ट [को०]।

पारमिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णता। गुणों की पराकाष्ठा [को०]।

विशेष—पारमिता छह कही गई हैं,—(१) दान, (२) शील, (३) क्षमा, (४) धैर्य, (५) ध्यान और (६) प्रज्ञा। कुछ लोगों के मत में सत्य, अधिष्ठान, मैत्र और उपेक्षा को मिलाकर यह १० कही गई हैं।

पारमेश्वर—वि० [सं०] परमेश्वर संबंधी। परब्रह्म संबंधी [को०]।

पारमेष्ठ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रेष्ठता। सर्वोच्च स्थान। सर्वेश्वरता। २. राजचिह्न [को०]।

पारय—वि० [सं०] उपयुक्त। योग्य [को०]।

पारयिष्णु—वि० [सं०] १. संतोषजनक। तृप्तिदायक। २. पार करने या पूरा करने में शक्त। ३. जिसने पार कर लिया हो जिसने पूर्ण कर लिया हो [को०]।

पारलोक्य—वि० [सं०] दे० 'पारलौकिक' [को०]।

पारलौकिक१—वि० [सं०] १. परलोक संबंधी। २. परलोक में शुभ फल देनेवाला।

पारलौकिक२—संज्ञा पुं० अंत्येष्टि कर्म [को०]।

पारवत—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर। पारावत [को०]।

पारवर्ग्य—वि० [सं०] अन्य वर्ग या दल का। अपर पक्ष का। अन्यदलीय। विरोधी [को०]।

पारवश्य—संज्ञा पुं० [सं०] परवशता। परतंत्रता।

पारविषयिक—वि० [सं०] दूसरे राज्य का। विदेशी (कौटि०)।

पारशव१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **पारशवी**] १. लौहनिर्मित। लोहे का बना हुआ। २. परशु का। परशु संबंधी [को०]।

पारशव२—संज्ञा पुं० [सं०] १. याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता से उत्पन्न पुरुष या जाति। २. पराई स्त्री से उत्पन्न पुत्र। ३. लोहा। ४ एक देश का नाम जहाँ मोती निकलते थे।

पारश्वपु—वि० [सं० **पार्श्व**] ओर। तरफ। पार्श्व। उ०—जाके दुहूँ पारश्व पँचमहले महल छबि छाजते।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११४।

पारश्वध, पारश्वधिक—संज्ञा पुं० [सं०] परशुधारी व्यक्ति। फरसा लेकर युद्ध करनेवाला योद्धा [को०]।

पारश्वय—संज्ञा पुं० [सं०] सुवर्ण। सोना।

पारषदपु—संज्ञा पुं० [सं० **पार्षद**] दे० 'पार्षद'।

पारखी—संज्ञा पुं० [सं० **परीक्षक**] दे० 'पारखी'। उ०—रत्न पारखी ने ऐसे दरिद्र के हाथ में ऐसी अनमोल रत्नजड़ित अँगूठी को देखकर मन में चोर समझा और कोतवाल के पास भेजा। —भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ३१।

पारस१—संज्ञा पुं० [सं० **स्पर्श**, हिं० **परस**] १. एक कल्पित पत्थर जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि लोहा उससे छुलाया जाय तो सोना हो जाता है। स्वर्णमणि। उ०—पारस मनि लिय अप्प कर दिय प्रोहित कह दान।—प० रासो, पृ० ३३।

विशेष—इस प्रकार के पत्थर की बात फारस, अरब तथा योरप में भी रसायनियों अर्थात् कीमिया बनानेवालों के बीच प्रसिद्ध थी। योरप में कुछ लोग इसकी खोज में कुछ हैरान भी हुए। इसके रूप रंग आदि तक कुछ लोगों ने लिखे। पर अंत में सब ख्याल ही ख्याल निकला। हिंदुस्तान में अब तक बहुत से लोग नैपाल में इसके होने का विश्वास रखते हैं।

२. अत्यंत लाभदायक और उपयोगी वस्तु। जैसे,—अच्छा पारस तुम्हारे हाथ लग गया है।

पारस२—वि० १. पारस पत्थर के समान स्वच्छ और उत्तम। चंगा। नीरोग। तदुरुस्त। जैसे,—थोड़े दिन यह दवा खाओ, देखो देह कैसी पारस हो जाती है। २. जो किसी दूसरे को भी अपने समान कर ले। दूसरों को अपने जैसा बनानेवाला। उ०—पारस जोति लिलाटहि ओती। दिष्टि जो करै होइ तेहि जोती। —जायसी (शब्द०)।

पारस३—संज्ञा पुं० [हिं० **परसना**] १ खाने के लिये लगाया हुआ भोजन। परसा हुआ खाना। २. पत्तल जिसमें खाने के लिये पकवान मिठाई, आदि हो। जैसे,—जो लोग बैठकर नहीं खायँगे उन्हें पारस दिया जायगा।

पारस४—संज्ञा पुं० [सं० **पार्श्व**] १. पास। निकट। समीप। उ०—(क) भृकुटी कुटिल निकट नैनन के चपल होत यहि भाँति। मनहु तामरस पारस खेलत बाल भृंग की पाँति।—सूर (शब्द०)। (ख) उत श्यामा इत सखा मंडली, इत हरि उत ब्रजनारि।

मनो तामरस पारस खेलत मिलि मधुकर गुंजारि।—सूर (शब्द०)। २. घेरा। मंडल।

पारस[४]—संज्ञा पुं० [सं० पलास] बादाम या खूबानी की जाति का एक मझोला पहाड़ी पेड़ जो देखने में ढाक के पेड़ सा जान पड़ता है।

विशेष—यह हिमालय पर सिंधु के किनारे से लेकर सिक्किम तक होता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद और जहरीला तेल निकलता है जो दवा के काम में आता है। इसे गीदड़ ढाक और जामन भी कहते हैं।

पारस[५]—संज्ञा पुं० [सं० पारस्य] हिंदुस्तान के पश्चिम सिंधुनद और अफगानिस्तान के आगे पड़नेवाला एक देश। प्राचीन कांबोज और वाह्लीक के पश्चिम का देश, जिसका प्रताप प्राचीन काल में बहुत दूर दूर तक विस्तृत था और जो अपनी सभ्यता और शिष्टाचार के लिये प्रसिद्ध चला आता है।

विशेष—अत्यंत प्राचीन काल में पारस देश आर्यों की एक शाखा का वासस्थान था जिसका भारतीय आर्यों से घनिष्ट संबंध था। अत्यंत प्राचीन वैदिक युग में तो पारस से लेकर गंगा सरयू के किनारे तक की सारी भूमि आर्यभूमि थी, जो अनेक प्रदेशों में विभक्त थी। इन प्रदेशों में भी कुछ के साथ आर्य शब्द लगा था। जिस प्रकार यहाँ आर्यावर्त एक प्रदेश था उसी प्रकार प्राचीन पारस में भी आधुनिक अफगानिस्तान से लगा हुआ पूर्वीय प्रदेश 'अरियान' या 'ऐर्यान' (यूनानी—एरियाना) कहलाता था जिससे ईरान शब्द बना है। ईरान शब्द आर्यावास के अर्थ में सारे देश के लिये प्रयुक्त होता था। शाशानवंशी सम्राटों ने भी अपने को 'ईरान के शाहंशाह' कहा है। पदाधिकारियों के नामों के साथ भी 'ईरान' शब्द मिलता है—जैसे 'ईरान-स्पाहपत' (ईरान के सिपाहपति या सेनापति), 'ईरान अंबारकपत' (ईरान के भंडारी) इत्यादि। प्राचीन पारसी अपने नामों के साथ आर्य शब्द बड़े गौरव के साथ लगाते थे। प्राचीन सम्राट् दारयवहु (दारा) ने अपने को 'अरियपुत्र' लिखा है। सरदारों के नामों में भी आर्य शब्द मिलता है, जैसे, अरियशम्न, अरियोवर्जनिस इत्यादि।

प्राचीन पारस जिन कई प्रदेशों में बँटा था उनमें पारस की खाड़ी के पूर्वी तट पर पड़नेवाला पार्स या पारस्य प्रदेश भी था जिसके नाम पर आगे चलकर सारे देश का नाम पड़ा। इसकी प्राचीन राजधानी पारस्यपुर (यूनानी-पर्सिपोलिस) थी, जहाँपर आगे चलकर 'इस्तखर' बसाया गया। वैदिक काल में 'पारस' नाम प्रसिद्ध नहीं हुआ था। यह नाम हखामनीय वंश के सम्राटों के समय से जो पारस्य प्रदेश के थे सारे देश के लिये व्यवहृत होने लगा। यही कारण है जिससे वेद और रामायण में इस शब्द का पता नहीं लगता। पर महाभारत, रघुवंश, कथासरित्सागर आदि में पारस्य और पारसीकों का उल्लेख बराबर मिलता है।

अत्यंत प्राचीन युग के पारसियों और वैदिक आर्यों में उपासना, कर्मकांड आदि में भेद नहीं था। वे अग्नि, सूर्य वायु आदि की उपासना और अग्निहोत्र करते थे। मिथ्र (मित्र = सूर्य), वायु (= वायु), होम (= सोम), अरमइति (= अमति), अहर्मन् (= अर्यमन्), नइर्यसंह (= नराशंस) आदि उनके भी देवता थे। वे भी बड़े बड़े यश्न (यज्ञ) करते, सोमपान करते और अथ्रवन (अथर्वन्) नामक याजक काठ से काठ रगड़कर अग्नि उत्पन्न करते थे। उनकी भाषा भी उसी एक मूल आर्यभाषा से उत्पन्न थी जिससे वैदिक और लौकिक संस्कृत निकली हैं। प्राचीन पारसी और वैदिक संस्कृत में कोई विशेष भेद नहीं जान पड़ता। अवस्ता में भारतीय प्रदेशों और नदियों के नाम भी हैं। जैसे, हप्तहिंदु (सप्तसिंधु = पंजाब), हरख्वेती (सरस्वती), हरयु (सरयू) इत्यादि।

वेदों से पता लगता है कि कुछ देवताओं को असुर संज्ञा भी दी जाती थी। वरुण के लिये इस संज्ञा का प्रयोग कई बार हुआ है। सायणाचार्य ने भाष्य में असुर शब्द का अर्थ लिखा है—'असुर सर्वेषां प्राणद'। इंद्र के लिये भी इस संज्ञा का प्रयोग दो एक जगह मिलता है, पर यह भी लिखा पाया जाता है कि 'यह पद प्रदान किया हुआ है'। इससे जान पड़ता है कि यह एक विशिष्ट संज्ञा हो गई थी। वेदों में क्रमशः वरुण पीछे पड़ते गए हैं और इंद्र को प्रधानता प्राप्त होती गई है। साथ ही साथ असुर शब्द भी कम होता गया है। पीछे तो असुर शब्द राक्षस, दैत्य के अर्थ में ही मिलता है। इससे जान पड़ता है कि देवोपासक और असुरोपासक ये दो पक्ष आर्यों के बीच हो गए थे।

पारस की ओर जरथुस्त्र (आधु० फा० जरतुश्त) नामक एक ऋषि या ऋत्विक् (जोता सं० होता) हुए जो असुरोपासकों के पक्ष के थे। इन्होंने अपनी शाखा ही अलग कर ली और 'जंद अवस्ता' के नाम से उसे चलाया। यही 'जंद अवस्ता' पारसियों का धर्मग्रंथ हुआ। इससे देव शब्द दैत्य के अर्थ में आया है। इंद्र या वृत्रहन् (जंद, वेरेथ्रघ्न) दैत्यों का राजा कहा गया है। शर्वार्व (शर्व) और नाहंइत्य (नासत्य) भी दैत्य कहे गए हैं। अग्र (अगिरस ?) नामक अग्नियाजकों की प्रशंसा की गई है और सोमपान की निंदा। उपास्य अहुरमज्द (सर्वज्ञ असुर) है, जो धर्म और सत्यस्वरूप है। अह्रमन (अर्यमन्) अधर्म और पाप का अधिष्ठाता है। इस प्रकार जरथुस्त्र ने धर्म और अधर्म दो द्वंद्व शक्तियों की सूक्ष्म कल्पना की और शुद्धाचार का उपदेश दिया। जरथुस्त्र के प्रभाव से पारस में कुछ काल के लिये एक अहुर्मज्द की उपासना स्थापित हुई और बहुत से देवताओं की उपासना और कर्मकांड कम हुआ। पर जनता का संतोष इस सूक्ष्म विचारवाले धर्म से पूरा पूरा नहीं हुआ। शाशानों के समय में मग याजकों और पुरोहितों का प्रभाव बढ़ा तब बहुत से स्थूल देवताओं की उपासना फिर ज्यों की त्यों जारी हो गई और कर्मकांड की जटिलता फिर वही हो गई। ये पिछली पद्धतियाँ भी 'जंद अवस्ता' में ही मिल गईं।

'जंद अवस्ता' में भी वेद के समान गाथा (गाथ) और मंत्र

(मंत्र) हैं। इसके कई विभाग हैं जिनमें 'गाथ' सबसे प्राचीन और जरथुस्त्र के मुँह से निकला हुआ माना जाता है। एक भाग का नाम 'यश्न' है जो वैदिक 'यज्ञ' शब्द का रूपांतर मात्र है। विस्पर्द, यस्त (वैदिक इष्टि), वदिदाद आदि इसके और विभाग हैं। वदिदाद में जरथुस्त्र और अहुरमज्द का धर्म संबंध में संवाद है। 'अवस्ता' की भाषा, विशेषतः गाथा की, पढ़ने में एक प्रकार की अपभ्रंश वैदिक संस्कृत सी प्रतीत होती है। कुछ मंत्र तो वेदमंत्रों से बिलकुल मिलते जुलते हैं। डाक्टर हाग ने यह समानता उदाहरणों से बताई है और डा० मिल्स ने कई गाथाओं का वैदिक संस्कृत में ज्यों का त्यों रूपांतर किया है। जरथुस्त्र ऋषि कब हुए थे इसका निश्चय नहीं हो सका है। पर इसमें संदेह नहीं कि ये अत्यंत प्राचीन काल में हुए थे। शाशानों के समय में जो 'अवस्ता' पर भाष्य स्वरूप अनेक ग्रंथ बने उनमें से एक में व्यास हिंदी का पारस मे जाना लिखा है। संभव है वेदव्यास और जरथुस्त्र समकालीन हों।

पारसनाथ—संज्ञा पुं० [सं० **पार्श्वनाथ**] दे० 'पार्श्वनाथ'।

पारसव (पु)—संज्ञा पुं० [सं० **पारशव**] दे० 'पारशव'।

पारसा—वि० [फ़ा०] पतिव्रता। सच्चरित्र। सती साध्वी। उ०—अथी यों पाकदामन पारसा नार, नमाज पंच वक्ती होर जिक्र चार।—दक्खिनी० पृ० २४६

पारसाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सच्चरित्रता। सदाचार। उ०—पारसाई और जवानी क्यों कर हो, एक जगह आग पानी क्यों कर हो।—कविता कौ०, भा० ४ पृ० २७।

पारसिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पारसीक' [को०]।

पारसी[1]—वि० [फ़ा० **पारस**] पारस देश का। पारस देश संबंधी। जैसे, पारसी भाषा पारसी बिल्ली।

पारसी[2]—संज्ञा पुं० १. पारस का रहनेवाला व्यक्ति। पारस का आदमी। २. हिंदुस्तान में बंबई और गुजरात की ओर हजारों वर्ष से बसे हुए वे पारसी जिनके पूर्वज मुसलमान होने के डर से पारस छोड़कर आए थे।

विशेष—सन् ६४० ई० में नहावंद की लड़ाई के पीछे जब पारस पर अरब के मुसलमानों का अधिकार हो गया और पारसी मुसलमान बनाए जाने लगे तब अपने आर्यधर्म की रक्षा के लिये बहुत से पारसी खुरासान में आकर रहे। खुरासान में भी जब उन्होंने उपद्रव देखा तब वे पारस की खाड़ी के मुहाने पर उरमूज नामक टापू में जा बसे। यहाँ पंद्रह वर्ष रहे। आगे बाधा देख अंत में सन् ७२० में वे एक छोटे जहाज पर भारतवर्ष की ओर चले आए जो शरणागतों की रक्षा के लिये बहुत काल से दूर देशों में प्रसिद्ध था। पहले वे दीऊ नामक टापू में उतरे, फिर गुजरात के एक राजा जदुराणा ने उन्हें संजान नामक स्थान में बसाया और उनकी अग्निस्थापना और मंदिर के लिये बहुत सी भूमि दी। भारत के वर्तमान पारसी उन्हीं की संतति हैं। पारसी लोग अपने संवत् का आरंभ अपने अंतिम राजा यज्दगर्द के पराभव काल से लेते हैं।

पारसीक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पारस देश। २. पारस देश का निवासी। उ०—कुमार०—आज तो कुछ पारसीक नर्तकियाँ आनेवाली हैं।—स्कंद०, पृ० १४। ३. पारस देश का घोड़ा।

पारसीक यमानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खुरासानी अजवायन।

पारसीक वचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खुरासानी बच।

पारसीकेय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंकुम।

पारसीकेय[2]—वि० पारस देश संबंधी। पारस देश का [को०]।

पारस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक देश का प्राचीन नाम। २. एक गृह्यसूत्रकार मुनि।

पारस्त्रैणेय—संज्ञा पुं० [सं०] पराई स्त्री से उत्पन्न पुत्र। जारज पुत्र।

पारस्परिक—वि० [सं०] परस्परवाला। परस्पर में होनेवाला। आपस का।

पारस्य—संज्ञा पुं० [सं०] पारस देश।

पारस्स (पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] दे० 'पारस' (मणि)। उ०—कुब्बेर अनि सुख पाय, पारस्स मनि दिय आय।—पृ० रासो, पृ० २५।

पारहंस्य—वि० [सं०] दे० 'पारमहंस्य [को०]।

पारा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो पारियात्र पर्वत से उत्पन्न कही गई है [को०]।

पारा[2]—संज्ञा पुं० [सं० **पारद**] चाँदी की तरह सफेद, और चमकीली एक धातु जो साधारण गरमी या सरदी मे द्रव अवस्था मे रहती है।

विशेष—खूब सरदी पाकर पारा जमकर ठोस हो जाता है। यह कभी कभी खानों में विशुद्ध रूप में भी बहुत सा मिल जाता है, पर अधिकतर और द्रव्यों के साथ मिला हुआ पाया जाता है। जैसे, गधक और पारा मिला हुआ जो द्रव्य मिलता है उसे ईंगुर कहते हैं। गधक और पारा ईंगुर से अलग कर दिए जाते हैं। पारा पृथ्वी पर के बहुत कम प्रदेशों मे मिलता है। भारतवर्ष मे पारे की खानें अधिक नहीं हैं, केवल नैपाल में हैं। अधिकतर पारा चीन, जापान और स्पेन से ही यहाँ आता है। पारा यद्यपि द्रव अवस्था मे रहता है, तथापि बहुत भारी होता है।

ईंगुर से पारा निकालने में स्वेदनविधि काम मे लाई जाती है। ईंगुर का टुकड़ा तेज गरमी द्वारा भाप के रूप मे कर दिया जाता है जिससे विशुद्ध पारे के परमाणु अलग हो जाते हैं। भाप रूप मे फिर पारा अपने असली द्रव रूप मे लाया जाता है। पारा बहुत से कामों मे आता है। इसके द्वारा खान से निकले हुए अनेकद्रव्यमिश्रित खंडों से सोना चाँदी आदि बहुमूल्य धातुएँ अलग करके निकाली जाती हैं। यह इस प्रकार किया जाता है कि खंड या टुकड़े का चूर्ण कर लेते हैं, फिर उसके साथ युक्ति से पारे का संसर्ग करते हैं। इससे यह होता है कि सोने या चाँदी के परमाणु पारे के साथ मिल जाते हैं।

फिर इस सोने या चाँदी में मिले हुए पारे को स्वेदनविधि से भाप के रूप में अलग कर देते हैं और खालिस सोना या चाँदी रह जाता है । बात यह है कि इन धातुओं में पारे के प्रति रासायनिक प्रवृत्ति या राग होता है । इसी विशेषता के कारण पारा रसराज कहलाता है और इसके योग से धातुओं पर अनेक प्रकार की क्रियाएँ की जाती हैं । पारे के योग से, राँगे, सोने, चाँदी आदि को दूसरी धातु पर कलई या मुलम्मे के रूप मे चढ़ाते हैं । जिस धातु पर मुलम्मा चढ़ाना होता है उसपर पहले पारे-शोरे से सघटित रस मिलाते हैं, फिर १ भाग सोने और ८ भाग पारे का मिश्रण तैयार करके हलका लेप कर देते हैं । गरमी पाकर पारा तो उड़ जाता हैं, सोना लगा रह जाता है । पारे पर गरमी का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है इसी से गरमी नापने के यंत्र में उसका व्यवहार होता है । इन सब कामो के अतिरिक्त औषध मे भी पारे का बहुत प्रयोग होता है ।

पुराणो और वैद्यक की पोथियो मे पारे की उत्पत्ति शिव के वीर्य से कही गई है और उसका बड़ा माहात्म्य गाया गया है, यहाँ तक कि यह ब्रह्म या शिवस्वरूप कहा गया है । पारे को लेकर एक रसेश्वर दर्शन ही खड़ा किया गया है जिसमें पारे ही मे सृष्टि की उत्पत्ति कही गई है और पिंडस्थैर्य (शरीर को स्थिर रखना) तथा उसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति के लिये रससाधन ही उपाय बताया गया है । भावप्रकाश में पारा चार प्रकार का लिखा गया है—श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण । इसमें श्वेत श्रेष्ठ है ।

वैद्यक में पारा कृमि और कुष्ठनाशक, नेत्रहितकारी, रसायन, मधुर आदि छह रसो से युक्त, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, योगवाही, शुक्रवर्धक और एक प्रकार से संपूर्ण रोगनाशक कहा गया है । पारे में मल, वह्नि, विष, नाग इत्यादि कई दोष मिले रहते हैं, इससे उसे शुद्ध करके खाना चाहिए । पारा शोधने की अनेक विधियाँ वैद्यक के ग्रंथों में मिलती हैं । शोधन कर्म आठ प्रकार के कहे गए हैं—स्वेदन, मर्दन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियामन और दीपन । भावप्रकाश में मूर्छन भी कहा गया है जो कुछ औषधियों के साथ मर्दन का ही परिणाम है ।

पर्या०—रसराज । रसनाथ । महारस । रस । महातेजस् । रसलेह । रसोत्तम । सुतराट् । चपल । जैत्र । शिवबीज । शिव । अमृत । रसेंद्र । लोकेश । दुर्धर । प्रभु । रुद्रज । हरतेजः । रसधातु । स्कंद । देव । दिव्यरस । यशोद । सूतक । सिद्धधातु । पारत । हरबीज ।

मुहा०—पारा पिलाना = (१) किसी वस्तु में पारा भरना । (२) किसी वस्तु को इतना भारी करना जैसे उसमें पारा भरा हो । भारी करना । वजनी करना ।

पारा[३]—संज्ञा पुं० [सं० पारि (= प्याला)] दीए के आकार का पर उससे बड़ा मिट्टी का बरतन । परई ।

पारा[४]—संज्ञा पुं० [फ़ा० पारह] १. टुकड़ा । २. वह छोटी दीवार जो चूने गारे से जोड़कर न बनी हो, केवल पत्थरो के टुकड़े एक दूसरे पर रखकर बनाई गई हो । ऐसी दीवार प्रायः बगीचे आदि की रक्षा के लिये चारो ओर बनाई जाती है ।

पारा[५] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाराशर] दे० 'पाराशर' । उ०—पारा ऋषि मछोदरी ते कामक्रीड़ा करी । कुस्न गोपिन के संग भीना ।—कबीर रे०, पु० ४५ ।

पारापत—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर । कपोत । पारावत [को०] ।

पारापार—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । सागर । २. आर पार । दोनों तट [को०] ।

परापारीण—वि० [सं०] समुद्रगामी । पारावारीण [को०] ।

पारायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. समाप्ति । पूरा करने का कार्य । २. समय बाँधकर किसी ग्रंथ का आद्योपांत पाठ । ३. पार जाना (को०) ।

पारायणिक—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] १. पुराण आदि का पाठ करनेवाला । आद्योपांत पढ़नेवाला । २. छात्र ।

पारायणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती का एक नाम । २. कार्य । कर्म । क्रिया । ३. प्रकाश । ज्योति । ४. मनन । चिंतन [को०]।

पारारुक—संज्ञा पुं० [सं०] चट्टान । शिला । पत्थर ।

पारावत—संज्ञा पुं० [सं०] १. परेवा । पंडुक । उ०—तीतर कपोत पिक केकी कोक पारावत ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १४४। २. कबूतर । कपोत । उ०—सर्वदा स्वच्छंद छज्जों के तले । प्रेम के आदर्श पारावत पले ।—साकेत, पृ० ४ । ३. बंदर । ४. तेंदु का वृक्ष । ५. गिरि । पर्वत । ६. एक नाग का नाम (महाभारत) । ७. एक प्रकार का खट्टा पदार्थ (सुश्रुत) । ८. दत्तात्रेय के गुरु ।

पारावतक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान ।

पारावतकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकँगनी । महा ज्योतिष्मती लता ।

पारावतघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती नदी [को०] ।

पारावतपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मालकँगनी । २ काकजंघा ।

पारावतांघ्रिपिच्छ—संज्ञा पुं० [सं० पारावतांघ्रिपिच्छ] एक प्रकार का कबूतर [को०] ।

पारावताश्व—संज्ञा पुं० [सं०] धृष्टद्युम्न का एक नाम [को०] ।

पारावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लवली फल । हरफा रेवड़ी । २. गोपगीत । ग्वालों का गीत । ३. एक नदी का नाम ।

पारावार—संज्ञा पुं० [सं०] १. आर पार । वार पार । दोनों तट । २. सीमा । अंत । हद । जैसे,—आपकी महिमा का पारावार नहीं । ३. समुद्र ।

पारावारीण—वि० [सं०] १. जो दोनों ओर जाय । जो किसी वस्तु के दोनों किनारों को पहुँचा हो । २. किसी विषय का पूर्ण ज्ञाता । पारंगत ३. पारावार अर्थात् समुद्रगामी [को०] ।

पाराशर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पराशर का पुत्र या वंशज । २. व्यास ।

पाराशर२—वि० १. पराशर संबंधी। २. पराशर का बनाया हुआ। जैसे, पाराशर स्मृति।

पाराशरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पराशर के पुत्र वेदव्यास। २. शुकदेव।

पाराशरी—संज्ञा पुं० [सं० पाराशरिन्] वेदव्यास के भिक्षुसूत्र का अध्ययन करनेवाला। संन्यासी। चतुर्थाश्रमी।

पाराशरीय—वि० [सं०] पाराशर के पास का प्रदेश आदि।

पाराशर्य—संज्ञा पुं० [सं०] वेदव्यास।

पारासर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पाराशर'। उ०—सिंगी ऋषि पारासर आए।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २११।

पारिंद्र१—संज्ञा पुं० [सं० पारिन्द्र] सिंह। शेर [को०]।

पारिंद(पु)२—संज्ञा पुं० [फ़ा० परंद] पक्षी। परंदा। चिड़िया। उ०—सात सिकारी चौदह पारिंद, भिन्न भिन्न निरतावै। —कबीर श०, भा० ३, पृ० १।

पारि१(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पार] १. हद। सीमा। २. ओर तरफ। दिशा। उ०—मोचि दृग बारि सोच सोचती बिचारि देव चितै चहूँ पारि घरी चार लौं चकि रहीं।—देव (शब्द०)। ३. जलाशय का तट।

पारि२—संज्ञा पुं० [सं०] मद्य पीने का पात्र। प्याला।

पारिक—वि० [हिं० पार] पार करनेवाला। उद्धार करनेवाला। उ०—पारिक, मैं सांसारिक, अविद्या हो व्यंग्यदाम।—आराधना, पृ० १४।

पारिकांक्षक—संज्ञा पुं० [सं० पारिकाङ्क्षक] दे० 'पारिकांक्षी' [को०]।

पारिकांक्षी—संज्ञा पुं० [सं० पारिकाङ्क्षिन्] ब्रह्मज्ञान का अभिलाषी। तपस्वी।

पारिकुट—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक। भृत्य। नौकर।

पारिकोट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परिकोट, हिं० परकोटा] दे० 'परकोटा'। उ०—सोभति सोलंकी पहिलि चोट सै लोट किए घर पारिकोट।—पृ० रा०, १। ४२८।

पारिक्षित—संज्ञा पुं० [सं०] परीक्षित के पुत्र जनमेजय।

पारिख१—वि० [सं०] परिखा संबंधी। परिखा का।

पारिख२—संज्ञा स्त्री० [हिं० परख] दे० 'परख'।

पारिख३—संज्ञा पुं० [देश०] १. गुजरातियों की एक जाति। २. परखनेवाला। पारखी व्यक्ति।

पारिखेय—वि० [सं०] परिखा या खाई से घिरा हुआ [को०]।

पारिगमिक—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर।

पारिग्रामिक—वि० [सं०] गाँव के चारों ओर स्थित [को०]।

पारिजात—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देववृक्ष जो स्वर्गलोक में इंद्र के नंदनकानन में है।

विशेष—इसके फूल जिस प्रकार की गंध कोई चाहे, दे सकते हैं। इसकी भिन्न भिन्न शाखाओं में अनेक प्रकार के रत्न लगते हैं। इसी प्रकार इस वृक्ष के अनेक गुण पुराणों में कहे गए हैं। सत्यभामा की प्रसन्नता के लिये इसे श्रीकृष्ण स्वर्ग से इंद्र से युद्ध करके लाए थे और फिर उसका पूरा भोग करके इसे स्वर्ग में रख आए थे। यह समुद्रमथन के समय में निकला था।

२. परजाता। हरसिंगार। ३. कोविदार। कचनार। ४. पारिभद्र। फरहद। ५. ऐरावत के कुल का एक हाथी। ६. सितोद पर्वत। ७. एक मुनि का नाम।

पारिजातक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देववृक्ष। पारिजात। २. परजाता। हरसिंगार। ३. फरहद। पारिभद्र।

पारिणामिक—वि० [सं०] १. जो पच जाय। पाच्य। २. विकासोन्मुख। जिसका विकास हो सके [को०]।

पारिणाय्य१—वि० [सं०] १. परिणय में प्राप्त। विवाह में पाया हुआ (धन)। २ विवाह से संबंधित [को०]।

पारिणाय्य२—संज्ञा पुं० १. वह धन जो स्त्री को विवाह में मिले। २. विवाह का तय होना [को०]।

पारिणाह्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर गृहस्थी का सामान। जैसे, चारपाई, बरतन, घड़ा इत्यादि।

पारितथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सिर पर बालों के ऊपर पहनने का स्त्रियों का एक गहना। २. बालों को बाँधने की मोतियों की लड़ी [को०]।

पारिताप(पु)—संज्ञा पुं०[हिं०] दे० 'परिताप'। उ०—अत्यंत पारिताप का विषय तो यह है कि।—प्रेमघन०, भा० १,पृ० २९१।

पारितोषिक१—वि० [सं०] आनंदकर। प्रीतिकर।

पारितोषिक२—संज्ञा पुं० वह धन या वस्तु जो किसी पर परितुष्ट या प्रसन्न होकर उसे दी जाय अथवा जो किसी को प्रसन्न करने के लिये उसे दी जाय। इनाम।

पारिध्वजिक—संज्ञा पुं० [सं०] झंडाबरदार। झंडा या ध्वजा लेकर चलनेवाला [को०]।

पारिपंथिक—संज्ञा पुं० [सं० पारिपन्थिक] बटपार। डाकू। चोर।

पारिपाट्य—संज्ञा पुं० [सं०] परिपाटी। ढंग। तरीका [को०]।

पारिपातिकरथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह रथ जो इधर उधर सैर करने के काम का होता था।

पारिपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] सप्त कुलपर्वतों में से एक जो विंध्य के अंतर्गत है।

विशेष—इससे निकली हुई ये नदियाँ बताई गई हैं—वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिंधु, सानंदिनी, सदानीरा, मही, पारा, चर्मण्यवती, लुपी, विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा इत्यादि (मार्कंडेय पुराण)। विष्णु पुराण में लिखा है कि मरुक और मालव जाति इस पर्वत पर निवास करती थी। कहीं कहीं 'पारियात्र' भी इसका नाम मिलता है। चीनी यात्री 'हुएन्त्सांग' ने दक्षिण के 'पारिपात्र' राज्य का उल्लेख किया है।

पारिपात्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिपात्र नामक पर्वत पर बसनेवाला। २. दे० 'पारिपात्र' [को०]।

पारिपार्श्व—संज्ञा पुं० [सं०] पारिषद् । अनुचर । अरदली ।

पारिपार्श्वक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पारिपार्श्विक' [को०] ।

पारिपार्श्विक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पास खड़ा रहनेवाला सेवक । परिषद् । अरदली । २. नाटक के अभिनय में एक विशेष नट जो स्थापक का अनुचर होता है । यह भी प्रस्तावना में सूत्रधार, नटी आदि के साथ आता है ।

पारिप्लव[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक जलपक्षी । २. अश्वमेधादि यज्ञों में कहा जानेवाला एक आख्यान (शतपथ ब्राह्मण) । ३. नाव । जहाज । ४. एक तीर्थ (महाभारत) । ५. व्याकुलता । बेचैनी (को०) ।

पारिप्लव[२]—वि० १. क्षुब्ध । चंचल । २. कंपायमान । ३. अस्थिर । विचलित । ४. तिरता हुआ । उतराता हुआ [को०] ।

पारिप्लाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. हंस । २. व्याकुलता । बेचैनी । ३. चंचलता । अस्थिरता । ४. कंपन [को०] ।

पारिभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ फरहद का पेड़ । २. देवदार । ३. सरल वृक्ष । सलई का पेड़ । ४. कुट ।

पारिभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. फरहद । २. देवदार । ३. नीम । कुट ।

पारिभाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिभू या जामिन होने का भाव । २. कुट नामक ओषधि ।

पारिभाषिक—वि० [सं०] जिसका अर्थ परिभाषा द्वारा सूचित किया जाय । जिसका व्यवहार किसी विशेष अर्थ के संकेत के रूप में किया जाय । जैसे, पारिभाषिक शब्द ।

पारिमांडल्य—संज्ञा पुं० [सं० पारिमाण्डल्य] अणु या परमाणु का परिमाण ।

पारिमाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] घेरा । परिधि [को०] ।

पारिमित्य—संज्ञा पुं० [सं०] सीमा । परिसीमा [को०] ।

पारिमुखिक—वि० [सं०] जो समक्ष हो । सामने का । २. निकट । समीप [को०] ।

पारिमुख्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपस्थिति । मौजूदगी । २. निकटता । समीपता [को०] ।

पारियात्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पारिपात्र' ।

पारियात्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पारिपात्रिक' [को०] ।

पारियानिक—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा का यान । वह सवारी जिसपर यात्रा की जाय [को०] ।

पारिरक्षक, पारिरक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी । साधु ।

पारिवारिक—वि० [सं० परिवार+इक (प्रत्य०)] परिवार से संबंधित । परिवार का ।

पारिवित्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटे भाई का विवाह हो जाना [को०] ।

पारिवेत्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पारिवित्त्य' [को०] ।

पारिव्राजक, पारिव्राज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिव्राजक का कर्म या भाव । २. एक प्रकार का अश्वत्थ ।

पारिश—संज्ञा पुं० [सं०] पारिस पीपल । परास पीपल ।

पारिशील—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पूआ या मालपूआ ।

पारिशेष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो छोड़ दिया गया हो । अवशिष्ट । [को०] ।

पारिश्रमिक—संज्ञा पुं० [सं०] किए हुए काम की मजूरी । मेहनताना ।

पारिषद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिषद में बैठनेवाला । सभा में बैठनेवाला । सभासद । सभ्य । पंच । २. अनुयायिवर्ग । गण । जैसे, शिव के पारिषद; विष्णु के पारिषद ।

पारिषद्य—संज्ञा पुं० [सं०] परिषद् में बैठनेवाला दर्शक ।

पारिस पु—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पारस' । उ०—जाको पारिस विष नहिं तजै दिन दिन मदन महोत्सव सजै ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५७ ।

पारिस पीपल—संज्ञा पुं० [सं० पारीश पिप्पल] भिंडी की जाति का एक पेड़ जिसमें कपास के डोडे के आकार का फल लगता है ।

विशेष—यह फल खाने में खट्टा होता है । इसमें भिंडी के समान ही सुंदर पाँच दलों के बड़े बड़े फूल लगते हैं । इसकी जड़ मीठी और छाल का रेशा मीठा कसैला होता है । वैद्यक में इसके फल गुरुपाक, कृमिघ्न, शुक्रवर्धक और कफकारक कहे गए हैं ।

पारिसीर्य—वि० [सं० पारिसीर्य्य] जो बिना जोते हुए हो । जो हल की खेती से न उपजा हो । जैसे, तिन्नी का चावल ।

पारिहारिक[१]—वि० [सं०] १. परिहार करनेवाला । २. हरण करनेवाला । ग्रहण करनेवाला (को०) । ३. घेरनेवाला (को०) ।

पारिहारिक[२]—संज्ञा पुं० हार या मालाएँ बनानेवाला [को०] ।

पारिहारिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ढंग की पहेली [को०] ।

पारिहार्य—संज्ञा पुं० [सं० पारिहार्य्य] १. परिहारत्व । २. वलय । हाथ का कड़ा ।

पारिहासिक—वि० [सं० परिहास+इक (प्रत्य०)] परिहासयुक्त । हँसी दिल्लगी करनेवाला । हास्य विनोद से भरा हुआ । उ०—होली में पारिहासिक नंबर निकालने की ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३०२ ।

पारिहास्य—संज्ञा पुं० [सं०] हँसी मजाक । दिल्लगी [को०] ।

पारिहोत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] क्षतिपूर्ति । नुकसानी । हरजाने की रकम ।

पारींद्र—संज्ञा पुं० [सं० पारीन्द्र] १. सिंह । २. अजगर ।

पारी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० बार, बारी अथवा पाली] किसी बात का अवसर जो कुछ अंतर देकर क्रम से प्राप्त हो । बारी । ओसरी । दे० 'बारी' ।

क्रि० प्र०—आना ।—पड़ना ।—होना ।

पारी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पारना] गुड़ आदि का जमाया हुआ बड़ा ढोका ।

पारी[३]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुरवा । कुल्हड़ । प्याला । २. जल-

समूह। ३. हाथी के पैर की रस्सी। ४. पुष्प रज। पराग (को०)।

पारी⁵—संज्ञा स्त्री० [फा० या ?] जहाज के मस्तूल के नीचे का भाग। (लश०)।

पारीक्षित—संज्ञा पुं० [सं०] १. परीक्षित का पुत्र या वंशज। २. जनमेजय। ३. परीक्षित राजा (को०)।

पारीण—वि० [सं०] १. दूसरी ओर होने या दूसरी ओर जानेवाला। २. किसी विद्या में पारंगत। किसी विषय का पूर्ण ज्ञाता। ३. पूरा करनेवाला। समाप्त करनेवाला (को०)।

पारीणाह्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पारिणाह्य' (को०)।

पारीय¹—वि० [सं०] पूर्णज्ञाता। पारंगत (को०)।

पारीय²—वि० [सं० पार+ईय (प्रत्य०)] पार का। नदी या समुद्र के उस पार स्थित। जैसे, समुद्रपारीय देश।

पारीरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कछुआ। २. डंडा। छड़ी (को०)। ३. प्रकार का पहनावा। एक पोशाक (को०)।

पारीश—संज्ञा पुं० [सं०] पारिस पीपल का पेड़।

पारु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. सूर्य।

पारुष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी (को०)।

पारुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वचन की कठोरता। वाक्य की अप्रियता। बात का कड़वापन। २. परुषता। रुखाई। ३. इंद्र का वन। ४. अगर। ५. बृहस्पति।

पारेरक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तलवार या कटार।

पारेव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परेवा'। उ०—तब एक खत्त लघ्या मुहा पारेवह जिन पंथ लिय।—पृ० रा० ११। ५।

पारेवत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खजूर।

परेवा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] परेवा। पक्षी। उ०—संदेसउ जिन पाठवइ, मरिस्यउँ हीया फूटि। परेवा का मूल जिउँ, पड़िनइ आँगणि त्रूटि।—ढोला०, दू० १४३।

परोकियाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० परकीया] दे० 'परकीया'। उ०—बीजुलियाँ परोकियाँ नीठ ज नीगमियाँह। अजइ न सज्जण बाहुणे बलि पाछी बलियाँह।—ढोला०, दू० १५३।

पारोक्ष—वि० [सं०] अस्पष्ट। रहस्यमय।

पारोक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] भेद। रहस्य (को०)।

पारोवर्य—संज्ञा पुं० [सं०] परंपरा (को०)।

पार्क—संज्ञा पुं० [अं०] बड़ा बगीचा। उपवन।

पार्घट—संज्ञा पुं० [सं०] राख। भस्म।

पार्जन्य—वि० [सं०] पर्जन्य संबंधी। वर्षा संबंधी (को०)।

पार्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १. नाटकांतर्गत कोई भूमिका या चरित्र जो किसी अभिनेता को अभिनय करने को दिया जाय। भूमिका। जैसे—उसने प्रताप सिंह का पार्ट बड़ी उत्तमता से किया। २. हिस्सा। भाग। जैसे—आज कल वे सभा सोसाइटियों में पार्ट नहीं लेते। ३. (पुस्तक का) खंड। भाग। हिस्सा।

पार्टिशन—संज्ञा पुं० [अं०] बाँटने या विभाग करने की क्रिया। किसी चीज के दो या अधिक भाग या हिस्से करना। विभाग। बँटवारा। जैसे बंगाल पार्टिशन। पार्टिशन सूट।

पार्टी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. मंडली। दल। २. पक्ष। ३. दावत। भोज।

क्रि० प्र०—देना।

पार्टीबंदी—संज्ञा स्त्री० [अं० पार्टी+फा० बंदी]। दलबंदी। गुटबाजी।

पार्ण¹—वि० [सं०] १. पत्तों का बना हुआ (कुटी आदि)। २. पत्तियों से प्राप्त (कर)। ३. पत्तों से संबंधित (को०)।

पार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वीपति। २. (पृथा का पुत्र) अर्जुन। ३. युधिष्ठिर और भीम।

विशेष—कुंती का नाम 'पृथा' भी था इसी से कुंती की तीन संतानों में से प्रत्येक को 'पार्थ' कहते थे।

४. अर्जुन वृक्ष।

पार्थक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथक् होने का भाव। भेद। २. जुदाई। वियोग।

पार्थव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथु होने का भाव। भारीपन। २. बड़ाई। विशालता। ३. स्थूलता। मोटाई।

पार्थव²—वि० पृथु संबंधी।

पार्थसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्जुन के सारथी, कृष्ण। २. मीमांसा के एक आचार्य (को०)।

पार्थिव—वि० [सं०] १. पृथिवी संबंधी। २. पृथ्वी से उत्पन्न। पृथिवी का विकार रूप। जैसे, पार्थिव शरीर। ३. मिट्टी आदि का बना हुआ। ४. सांसारिक। संसार संबंधी (को०)। ५. राजा के योग्य। राजसी। ६. पृथिवी का शासक (को०)।

पार्थिव²—संज्ञा पुं० १ राजा। २. तगर का पेड़। ३ एक संवत्सर। ४. मंगल ग्रह। ५. मिट्टी का बर्तन। ६. पृथिवी पर रहनेवाले प्राणी। सांसारिक जीव (को०)। ७ शरीर। देह (को०) ८. पार्थिव लिंग। मिट्टी का शिवलिंग जिसके पूजन का बड़ा फल माना जाता है।

पार्थिव आय—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीन की आमदनी। मालगुजारी लगान।

पार्थिवकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजपुत्री। राजकुमारी (को०)।

पार्थिवता—संज्ञा स्त्री० [सं० पार्थिव+ता (प्रत्य०)] धरती से उत्पन्न होने का भाव। लौकिकता। उ०—दूसरी ओर उनकी पार्थिवता धरती के उस गुरुत्व से बँधी हुई है जो आज की पहली आवश्यकता है।—अपरा, पृ० ६।

पार्थिवनंदन—संज्ञा पुं० [सं० पार्थिवनन्दन] सूर्य (को०)।

पार्थिवनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा की पुत्री। राजकुमारी (को०)।

पार्थिवपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०)।

यौ० —पार्थिवपुत्रपौत्र = यम के पुत्र युधिष्ठिर।

पार्थिवलिंग—संज्ञा पुं० [सं० पार्थिव लिङ्ग] १. राजा का गुण। २. राजचिह्न (को०)।

पार्थिवश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] सर्वश्रेष्ठ राजा (को०)।

पार्थिवसुत—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०)।

पार्थिवसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा की पुत्री। राजकुमारी (को०)।

पार्थिवात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०)।

पार्थिवाधम—संज्ञा पुं० [सं०] अधम राजा। नीच राजा (को०)।

पार्थिवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. (पृथिवी से उत्पन्न) सीता। २ उमा। पार्वती। ३. लक्ष्मी (को०)।

पार्थी—संज्ञा पुं० [पुं० पार्थिव] मिट्टी का शिवलिंग।

पार्पर—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम। २. मुट्ठी या अँजुरी भर चावल (को०)। ३. क्षय रोग (को०)। ४. राख। भस्म (को०)। ५ कदंब का केसर (को०)।

पार्यंतिक—वि० [सं० पार्यन्तिक] अंतिम। निर्णायक (को०)।

पार्य[1]—संज्ञा पुं० [सं० पार्य्य] १. एक रुद्र का नाम (शुक्ल यजु०)। २. अंत। निश्चय। समाप्ति। परिणाम (को०)।

पार्य[2]—वि० [सं०] १. जो दूसरे तट पर या दूसरी ओर हो। २. ऊपरी। ३. अंतिम। निर्णायक। ४. प्रभावकारी। सफल (को०)।

पार्लामेंट—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सभा जो देश या राज्य के शासन के लिये नियम बनाए। कानून बनानेवाली सबसे बड़ी सभा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषत. अँगरेजी राज्य की शासनव्यवस्था निर्धारित करनेवाली महासभा के लिये होता है जिसके सदस्य जनता के भिन्न भिन्न वर्गों द्वारा चुने जाते हैं। अँगरेजी साम्राज्य के भीतर कनाडा आदि स्वराज्य-प्राप्त देशों की ऐसी सभाओं के लिये भी यह शब्द आता है।

पार्वण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह श्राद्ध जो किसी पर्व में किया जाय। जैसे, अमावास्या या ग्रहण आदि के दिन किया जानेवाला श्राद्ध।

पार्वण[2]—वि० अमावास्या या किसी पर्व के दिन किया जानेवाला (को०)।

पार्वत[1]—वि० [सं०] १ पर्वत संबंधी। २. पर्वत पर होनेवाला। ३. जहाँ पहाड़ हो।

पार्वत[2]—संज्ञा पुं० १. महानिंब। बकायन। २ ईंगुर। ३. शिलाजतु। सिलाजीत। ४. सीसा धातु। ५ एक अस्त्र।

पार्वतपीलु—वि० [सं०] अखोट। अखरोट।

पार्वतायन—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत ऋषि की परंपरा या गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

पार्वतिक—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतश्रेणी। पर्वतमाला (को०)।

पार्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हिमालय पर्वत की कन्या, शिव की अर्धांगिनी देवी जो गौरी, दुर्गा आदि अनेक नामों से पूजी जाती हैं। शिवा। भवानी।

पर्या०—उमा। गिरिजा। गौरी।

२. सल्लकी। सलई। ३. गोपीचंदन। ४. सिंहली पीपल। ५. छोटा पखानभेद। ६. धाय का पौधा। ७. अलसी। तीसी। ८. द्रौपदी (को०)। ९. पहाड़ी नाला (को०)। १०. गोपी। गोपिका (को०)।

पार्वतीनंदन—संज्ञा पुं० [सं० पार्वतीनन्दन] १. कार्तिकेय। २. गणेश (को०)।

पार्वतीनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पार्वतीलोचन' (को०)।

पार्वतीय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत संबंधी। पहाड़ का। पहाड़ी।

पार्वतीय[2]—संज्ञा पुं० एक पर्वती जाति (को०)।

पार्वतीलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ भेदों में से एक।

पार्वतीसख—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०)।

पार्वतेय[1]—वि० [सं०] पर्वत पर होनेवाला।

पार्वतेय[2]—संज्ञा पुं० १. अंजन। सुरमा। २. हुरहुर का पौधा। ३. जिंगिनी। जिगनी। ४. धाय का पेड़।

पार्वत्य—वि० [सं०] पहाड़ी। पर्वतीय। उ०—क्वार की त्रयोदशी का चंद्रमा पार्वत्य प्रदेश के निर्मल आकाश में ऊँचा उठ अपनी शीतल आभा से आकाश और पृथ्वी को स्तंभित किए था।—पिंजरे०, पृ० १०।

पार्शव—संज्ञा पुं० [सं०] पर्शु या फरसे से युद्ध करनेवाला योद्धा।

पार्शुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्श्व की हड्डी। पसली। पंजर की हड्डी।

पार्श्व[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष का अधोभाग। काँख के नीचे का भाग। छाती के दाहिने या बाएँ का भाग। बगल। उ०—एक ओर विशाल दर्पण है लगा। पार्श्व से प्रतिबिंब जिसमें है जगा।—साकेत, पृ० १२। २. इधर उधर पड़नेवाला स्थान। अगल बगल की जगह। पास। निकटता। समीपता।

यौ०—पार्श्ववर्ती = पास में बैठनेवाला। साथी या मुसाहिब।

३. पार्श्वास्थि। पसली। ४. कुटिल उपाय। टेढ़ी चाल। ५. पार्श्वनाथ (को०)। ६. पहिए की धुरी का छोर या किनारा (को०)।

पार्श्व—वि० समीप का। निकट का। नजदीकी।

पार्श्वक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनेक प्रकार के कुटिल उपाय रचकर धन कमानेवाला। चालबाजी के सहारे अपनी बढ़ती चाहनेवाला। २. चोर। ठग (को०)। ३. ऐंद्रजालिक। बाजीगर (को०)। ४. साथी। मित्र (को०)।

पार्श्वकर—संज्ञा पुं० [सं०] बकाया मालगुजारी। पिछले साल की बाकी जमा।

पार्श्वग[1]—वि० [सं०] बगल में चलनेवाला। साथ में रहनेवाला।

पार्श्वग[2]—संज्ञा पुं० १. सहचर। २. परिचारक (को०)।

पार्श्वगत—वि० [सं०] १. जो बगल में हो। जो निकट या साथ हो। २. रक्षित (को०)।

पार्श्वगय—वि० [सं०] दे० 'पार्श्वग' [को०]।

पार्श्वगायक—संज्ञा पुं० [सं० पार्श्व + गायक] [स्त्री० पार्श्वगायिका] पार्श्व में रहकर गानेवाला व्यक्ति। अभिनय या नाटक में ओट से गानेवाला व्यक्ति।

विशेष—दे० 'पार्श्वगायन'।

पार्श्वगायन—संज्ञा पुं० [सं० पार्श्व+गायन] पर्दे के पीछे से गाना। अभिनय या नाटक में ओट से गाना।

विशेष—पार्श्वगायन का उपयोग सिनेमा में अधिक होता है। जो अभिनेता या अभिनेत्रियाँ अभिनय के साथ गा नहीं पाते उनके गीतों को अन्य गायक या गायिका से गवाया जाता है। ये गायक पर्दे पर सामने नहीं आते इनके गीत ध्वनि अंकित करनेवाली मशीन (टेप रिकार्डर) पर अंकित कर लिए जाते हैं जिन्हें अभिनय के समय यथास्थान बजाकर संमिलित कर लिया जाता है। इस प्रकार के गायक या गायिका को पार्श्वगायक या पार्श्वगायिका कहते हैं।

पार्श्वचर—वि० [सं०] दे० 'पार्श्वग' [को०]।

पार्श्वतीय—वि० [सं०] बगल में स्थित। पार्श्ववर्ती [को०]।

पार्श्वद—संज्ञा पुं० [सं०] नौकर। सेवक। उ०—पार्श्वद गण इधर उधर दौड़ धूप करके अपना अपना काम करने लगे। —वैशाली, पृ० २४६।

पार्श्वदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० पार्श्व+दर्शन] बगल से देखना। बगल से देखने की क्रिया। उ०—धर्मासक्त निरक्त पार्श्वदर्शन से खींच नयन।—अपरा, पृ० ६२।

पार्श्वदेश—संज्ञा पुं० [सं०] बगल। पार्श्व [को०]।

पार्श्वनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के तेईसवें तीर्थंकर।

विशेष—वाराणसी में अश्वसेन नाम के इक्ष्वाकुवंशीय राजा थे जो बड़े धर्मात्मा थे। उनकी रानी वामा भी बड़ी विदुषी और धर्मशीला थीं। उनके गर्भ से पौष कृष्ण दशमी को एक महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका वर्ण नील था और जिसके शरीर पर सर्पचिह्न था। सब लोकों में आनंद फैल गया। वामा देवी ने गर्भकाल में एक बार अपने पार्श्व में एक सर्प देखा था इससे पुत्र का नाम 'पार्श्व' रखा गया। पार्श्व दिन दिन बढ़ने लगे और नौ हाथ लंबे हुए। कुशस्थान के राजा प्रसेनजित् की कन्या प्रभावती 'पार्श्व' पर अनुरक्त हुई। यह सुन कलिंग देश के यवन नामक राजा ने प्रभावती का हरण करने के विचार से कुशस्थान को आ घेरा। अश्वसेन के यहाँ जब यह समाचार पहुँचा तब उन्होंने बड़ी भारी सेना के साथ पार्श्व को कुशस्थल भेजा। पहले तो कलिंगराज युद्ध के लिये तैयार हुआ पर जब अपने मंत्री के मुख से उसने पार्श्व का प्रभाव सुना तब आकर क्षमा माँगी। अंत में प्रभावती के साथ पार्श्व का विवाह हुआ। एक दिन पार्श्व ने अपने महल से देखा कि पुरवासी पूजा की सामग्री लिये एक ओर जा रहे हैं। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि एक तपस्वी पंचाग्नि ताप रहा है और अग्नि में एक सर्प मरा पड़ा है। पार्श्व ने कहा—'दयाहीन धर्म किसी काम का नहीं'। एक दिन बगीचे में जाकर उन्होंने देखा कि एक जगह दीवार पर नेमिनाथ चरित्र अंकित है। उसे देख उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने दीक्षा ली तथा स्थान स्थान पर उपदेश और लोगों का उद्धार करते घूमने लगे। वे अग्नि के समान तेजस्वी, जल के समान निर्मल और आकाश के समान निरवलंब हुए काशी में जाकर उन्होने चौरासी दिन तपस्या करके ज्ञानलाभ किया और त्रिकालज्ञ हुए। पुंड्र, ताम्रलिप्त आदि अनेक देशों में उन्होंने भ्रमण किया। ताम्रलिप्त में उनके अनेक शिष्य हुए। अंत में अपना निर्वाणकाल समीप जानकर समेत शिखर (पारसनाथ की पहाड़ी जो हजारीबाग में है) पर चले गए जहाँ श्रावण शुक्ला अष्टमी को योग द्वारा उन्होंने शरीर छोड़ा।

पार्श्वपरिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. करवट बदलना। २. भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष में द्वादशी के दिन पड़नेवाला एक त्योहार [को०]।

पार्श्वभाग—संज्ञा पुं० [सं०] बगल का भाग। बाजू [को०]।

पार्श्वभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० पार्श्व + भूमि] पृष्ठभूमि। आधार। उ०—यहाँ तक कि प्रेमचंद जैसे लेखक को भी मैं स्वतंत्र पार्श्वभूमि नहीं दे सका हूँ।—नया०, पृ० ४।

पार्श्वमंडली—संज्ञा पुं० [सं० पार्श्वमण्डलिन्] नृत्य में एक विशेष प्रकार की मुद्रा [को०]।

पार्श्वमौलि—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक मंत्री।

पार्श्ववक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव [को०]।

पार्श्ववर्ती¹—संज्ञा पुं० [सं० पार्श्ववर्तिन्] [स्त्री० पार्श्ववर्तिनी] पास रहनेवाला। निकटस्थ जन। मुसाहब। सेवक।

पार्श्ववर्ती²—वि० १ जो बगल में हो। जो पास में हो। २. निकटस्थ। पास में या निकट में ही स्थित [को०]।

पार्श्वशय—वि० [सं०] १. बगल में सोनेवाला। २. करवट से सोनेवाला [को०]।

पार्श्वशूल—संज्ञा पुं० [सं०] पसली का दर्द।

विशेष—सुश्रुत में लिखा है कि इसमें सूई छेदने की सी पीड़ा होती है और साँस कष्ट से निकलती है। यह कफ और वायु के बिगड़ने से होता है।

पार्श्वसंगीत—संज्ञा पुं० [सं० पार्श्व+सङ्गीत] १. वह गीत जो नाटक या सिनेमा में अभिनय के साथ साथ पृष्ठभूमि में चलता रहता है। २. वह संगीत जो पार्श्वगायक या पार्श्वगायिका द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

पार्श्वसंधान—संज्ञा पुं० [सं० पार्श्वसन्धान] बगल से ईंटा को रखकर जुड़ाई करना [को०]।

पार्श्वसूत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक आभूषण।

पार्श्वस्थ¹—वि० [सं०] १. पास खड़ा रहनेवाला। २. निकट का। निकटस्थ [को०]।

पार्श्वस्थ²—संज्ञा पुं० १. अभिनय के नटों में से एक। दे० 'पारिपार्श्वक'। २. सहचर। साथी [को०]।

पार्श्वानुचर—संज्ञा पुं० [सं०] नौकर। सेवक [को०]।

पार्श्वायात—वि० [सं०] जो बहुत अधिक नजदीक आ गया हो।

पार्श्वार्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पार्श्वशूल' [को०]।

पार्श्वासन्न—वि० [सं०] बगल मे बैठा या खड़ा हुआ। पास ही में उपस्थित [को०]।

पार्श्वासीन—वि० [सं०] बगल मे बैठा हुआ [को०]।

पार्श्वास्थि—संज्ञा पुं० [सं०] पसली की हड्डी।

पार्श्विक¹—वि० [सं०] १. बगलवाला। पार्श्वसंबंधी। २. अन्याय से रुपया कमाने की फिक्र में रहनेवाला।

पार्श्विक²—संज्ञा पुं० १. पक्षपाती। तरफदार। २. सहयोगी। ३. सहचर। साथी। ४. धोखेबाज। चोर। ठग [को०]।

पार्श्वैकादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र शुक्ल एकादशी जिस दिन विष्णु भगवान् करवट लेते हैं।

पार्श्वोदरप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा [को०]।

पार्षत¹—वि० [सं०] १. पृषत संबंधी। २. द्रुपद राजा संबंधी।

पार्षत²—संज्ञा पुं० द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न।

पार्षती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्रौपदी। २. दुर्गा [को०]।

पार्षद¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पास रहनेवाला सेवक। पारिषद। २. मुसाहब। मंत्री। उ०—अमात्यों और पार्षद वर्गों में भी भाषा के सुकवि वर्तमान थे। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०१। ३. विख्यात पुरुष।

पार्षद²—संज्ञा स्त्री० [सं०] सभा। परिषद् [को०]।

पार्षद्य—संज्ञा पुं० [सं०] परिषद् का सदस्य। सभासद [को०]।

पार्ष्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एँड़ी। २. पृष्ठ। ३. सैन्यपृष्ठ। चंदावल। ४. ठोकर। पादाघात (को०)। ५. जीतने की अभिलाषा। विजयेच्छा (को०)। ६. जाँच पड़ताल। तहकीकात (को०)। ७. कुलटा स्त्री (को०)। ८. कुंती का एक नाम (को०)।

पार्ष्णिक्षेम—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वेदेवा में से एक।

पार्ष्णिग्रह¹—संज्ञा पुं० [सं०] अनुयायी [को०]।

पार्ष्णिग्रह²—वि० पीछे से आक्रमण करनेवाला [को०]।

पार्ष्णिग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर पीछे से आक्रमण करना या उसे धमकाना [को०]।

पार्ष्णिग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेना को पीछे से दबोचनेवाला (शत्रु) या सहायता पहुँचानेवाला (मित्र)। २. सेना के पिछले भाग का संचालन करनेवाला सेनानायक (को०)। ३. समर्थक राजा या मित्र (को०)।

पार्ष्णिघात—संज्ञा पुं० [सं०] लात मारना। पदाघात [को०]।

पार्ष्णित्र—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे रखी जानेवाली सेना। सुरक्षित सेना [को०]।

पार्ष्णिप्रतिविधान—संज्ञा पुं० [सं०] सेना के पिछले भाग को कमजोर पड़ने पर पुष्ट करना।

पार्ष्णिप्रहार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पार्ष्णिघात' [को०]।

पार्सⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श, हिं० पारस] दे० 'पारस' (मणि)। उ०—गुरु स्वाती गुरु रूप स्वरूपा। गुरु पार्स है आदि अनूपा।—कबीर सा०, पृ० ९०८।

पार्सल—संज्ञा पुं० [अं०] पुलिंदा। बँधी हुई गठरी। पैकेट। २. डाक या रेल से रवाना करने के लिये बँधा हुआ पुलिंदा या गठरी।

मुहा०—पार्सल करना = बाँधकर या लपेटकर डाक या रेल द्वारा भेजना। पार्सल लगाना = बँधी हुई गठरी या पुलिंदे को डाकघर या रेलवे में बाहर भेजने के लिये देना।

यौ०—पार्सल क्लार्क = वह कर्मचारी जो पार्सल की व्यवस्था करता है। पार्सलघर = वह स्थान जहाँ पार्सल लिए और दिए जाते हैं। पार्सलगाड़ी, पार्सल ट्रेन = रेलगाड़ी जिससे पार्सल भेजा जाता है। पार्सलबाबू = पार्सल क्लार्क।

पार्श्वⓅ—वि० [सं० पार्श्व] दे० 'पार्श्व'। उ०—निकट पार्श्व अविदूर तट उपसमीप अभ्यास।—अनेकार्थ०, पृ० ४१।

पालंक—संज्ञा पुं० [सं० पालङ्क] १ पालक शाक। पालकी। २. बाज पक्षी। ३. एक रत्न जो काला, हरा और लाल होता है।

पालंकी—संज्ञा स्त्री० [सं० पालङ्की] १. पालक शाक। पालकी। २. कुंदुरु नाम का गंधद्रव्य।

पालंक्य—संज्ञा पुं० [सं० पालङ्क्य] पालक का साग।

पालंखीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्यङ्क पर्यङ्किका, पल्यङ्क; पल्लंक; पलिअंक; हिं० पलंग; राज० पालंखी] शय्या। पलग। उ०—सज्जण चाल्या हे सखी काण्या विरह निसाण। पालंखी विसहर भई, मदिर भंयउ मसाण।—ढो०ला०, दू० ३५२। २. एक सवारी। पालकी।

पालँग†—संज्ञा पुं० [सं० पल्यङ्क] दे० 'पलंग'। उ०—पालँग पाँव कि आछै पाटा। नेत बिछाव चले जो बाटा।—जायसी (शब्द०)।

पाल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पालक। पालनकर्ता। २. चरवाहा। ३. पीकदान। अोगालदान। ४. चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़। ५ बंगाल का एक प्रसिद्ध राजवंश जिसने साढ़े तीन सौ वर्ष तक वंग और मगध में राज्य किया। ६ बंगालियों की एक उपाधि। ७. राजा। नरेश (को०)।

पाल²—संज्ञा पुं० [हिं० पालना] १. फलों को गरमी पहुँचाकर पकाने के लिये पत्ते बिछाकर रखने की विधि।

विशेष—अब कारबाइड नामक रासायनिक चूर्ण से भी फल आदि पकाए जाने लगे हैं। इससे आम आदि अपेक्षाकृत शीघ्र पकते हैं।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

२. फलों को पकाने के लिये भूसा या पत्ते कागज आदि बिछाकर बनाया हुआ स्थान। जैसे,—पाल का पका आम अच्छा होता है।

मुहा०—पाल का या डाल का = पाल द्वारा पका हुआ या डाल पर पका हुआ।

पाल⁴—संज्ञा पुं० [सं० पट या पाट] १. वह लंबा चौड़ा कपड़ा जिसे नाव के मस्तूल से लगाकर इसलिये तानते हैं जिसमें हवा भरे और नाव को ढकेले।

क्रि० प्र०—चढ़ाना। —तानना। —उतारना।

२. तंबू। शामियाना। चँदोवा। ३. गाड़ी या पालकी आदि ढकने का कपड़ा। ओहार।

पाल⁵—संज्ञा स्त्री० [सं० पालि] १. पानी को रोकनेवाला बाँध या किनारा। मेड़। उ०—सतगुरु बरजै सिष करै क्यूँ करि बचै काल। दुहु दिसि देखत बहि गया पाणी फोड़ी पाल।—दादू० पृ० १८। २. भीटा। ऊँचा किनारा। कगार। उ०—खेलत मानसरोदक गई। जाइ पाल पर ठाढ़ी भई। —जायसी (शब्द०)। ३. पानी के कटाव से कुएँ, नदी आदि के किनारे पर भीतर की ओर बननेवाला खोखला स्थान।

पाल⁶—संज्ञा पुं० [?] कबूतरों का जोड़ा खाना। कपोत-मैथुन।

क्रि० प्र०—खाना।

पाल⁷—संज्ञा पुं० [?] तोप, बंदूक या तमंचे की नाल का घेरा या चक्कर। (लश०)।

पाल(पु)†⁸—संज्ञा स्त्री० [प्रा० पाल] एक आभूषण। दे० 'पायल'। उ०—धम्म धमंतइ घूघरइ, पग सोनेरो पाल। मारू चाली मंदिरे, जाणि छुटो खड़ाल।—ढोला०, दू० ५३६।

पालव(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव] दे० 'पालव,' 'पल्लव'।

पालक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पालनकर्ता। २. राजा। नरपति (को०)। ३. अश्वरक्षक। साईस। ४. अश्व। तुरग (को०)। ५. चीते का पेड़। ६. पाला हुआ लड़का। दत्तक पुत्र। ७. पालन करनेवाला। पिता (को०)। ८. रक्षण। बचाव (को०)। ९. वह व्यक्ति जो किसी बात का निर्वाह करे (को०)।

पालक²—वि० रक्षक। त्राता

पालक³—संज्ञा पुं० [सं० पालक्य] एक प्रकार का साग।

विशेष—इसके पौधे में टहनियाँ नहीं होती, लंबे लंबे पत्ते एक केंद्र से चारो ओर निकलते हैं। केंद्र के बीच से एक डंठल निकलता है जिसमें फूलों का गुच्छा लगता है।

पालक(पु)⁴—संज्ञा पुं० [हिं० पलंग] पलंग। पर्यंक। उ०—को पालक पौढ़े को माड़ी। सोवनहार परा बँदि गाढ़ी।—जायसी (शब्द०)।

पालक जूही—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पौधा जो दवा के काम में आता है।

पालकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पलँग] लकड़ी का टुकड़ा जो चारपाई के सिरहाने के पायों के नीचे उसे ऊँचा करने के लिये रखा जाता है।

पालकाप्य, पालकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन ऋषि जो करेणु के पुत्र थे और जिन्होंने सर्वप्रथम हाथियों के संबंध मे वैज्ञानिक जानकारी प्रस्तुत की। उ०—पालकाव्य के विरह करि अंग भए अति खीन।—पृ० रा०, २७।७। २. हाथियो की विद्या। हाथियों के विषय में वह शास्त्र जिसमे उनके लक्षण गुण आदि का वर्णन रहता है (को०)।

पालकी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पल्यङ्क] एक प्रकार की सवारी जिसे आदमी कंधे पर लेकर चलते हैं और जिसमें आदमी आराम से लेट सकता है। म्याना। खड़खड़िया। अच्छी डोली।

विशेष—पीनस, चौपाल, तामजान इत्यादि, इसके कई भेद होते हैं। कहार इसे कंधे पर लेकर चलते हैं।

पालकी²—संज्ञा स्त्री० [सं० पालक्य] पालक का शाक।

पालकी गाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पालकी+गाड़ी] वह गाड़ी जिसपर पालकी के समान छत हो।

पालखी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पालकी'। उ०—आठ सेहस नेजा वणी। पालखी बइठ सहस पचास।—बी० रासो, पृ० ११।

पालगर(पु)—वि० [हिं० पालना+फा० गर (प्रत्य०)] पालक। पालन करनेवाला। उ०—प्रथमो छट्टा पालगर नर मट्ठा करनार। तखत बयट्ठा सूप कवि घट्ठा नगर मझार।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ५७।

पालघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. छत्राक। खुमी। २. जलतृण।

पालट¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] पटेबाजी की एक चोट का नाम।

पालट²—संज्ञा पुं० [सं० पालन, हिं० √पाल+ट (प्रत्य०)] १. पाला हुआ लड़का। दत्तक पुत्र। २. वह व्यक्ति जो किसी के बदले में कार्य करे। वह व्यक्ति जिसके विषय में यह माना जाता हो कि उसे किसी की ओर से कार्य करने का अधिकार मिला है। प्रतिनिधि (व्यंग्य)। उ०—वही तुम्हारा जवान पालट, जिसने बुढ़ौती में तुम्हारी तकदीर की उल्टे छूरे से हजामत बना दी।—शराबी, पृ० ११४।

पालटना(पु)—क्रि० स० [हिं० पलटना] दे० 'पलटना'। उ०—दिए परखी दिस पालटइ, सखी बाज फरूकती जाइ ससार।—बी० रासो०, पृ० ६८।

पालड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पलड़ा] दे० 'पलड़ा'। उ०—एक पालड़े सीस धरि तौले ताके साथ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३१।

पालणी†—वि० [हिं० पालना] पाली हुई। पालित। पाली पोमी। उ०—भणत नामदेव सुनो त्रिलोचन, वाली पालणी पौटिला। दक्खिनी०, पृ० ३३।

पालती¹—संज्ञा स्त्री० [अं० प्लेट ?] जोड़ या सीमन के तख्ते। (लश०)।

पालती²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पालथी'।

पालतू—वि० [सं० पालना] पाला हुआ। पोसा हुआ। जैसे, पालतू कुत्ता।

पालथि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पालथी] दे० 'पालथी'। उ०—तर गेरि पटंबर अंबरयं। करि पालथि छोरिय कंमरयं।—पृ० रासो, पृ० ४६।

पालथी—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्य्यस्त (= फैला हुआ)] एक प्रकार का बैठना जिसमें दोनों जंघे दोनों ओर फैलाकर जमीन पर रखे जाते हैं और घुटनों पर से दोनों टाँगे मोड़कर बायाँ पैर दाहिने जंघे पर और दाहिना बाएँ पर टिका दिया जाता है। पद्मासन। कमलासन।

क्रि० प्र०—मारना। लगाना।

पालन१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० पालनीय पालित, पाल्य] १. भोजन वस्त्र आदि देकर जीवनरक्षा। भरण पोषण। रक्षण। परवरिश। २. तुरत की ब्याई गाय का दूध। ३. लड़कों को बहलाने का गीत। ४. अनुकूल आचरण द्वारा किसी बात की रक्षा या निर्वाह। भंग न करना। न टालना। जैसे, आज्ञा-पालन, प्रतिज्ञापालन, वचन का पालन।

पालन२—वि० रक्षा करनेवाला। रक्षक।

यौ०—पालनपोषण = भोजन, कपड़ा आदि सब प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करना। परवरिश। पालनहार = पूरा करनेवाला। पालनेवाला। उ०—साँई तुम व्रत पालन-हारे।—जग० श०, भा० २, पृ० १०४।

पालना१—क्रि० स० [सं० पालन] १. पालन करना। भोजन वस्त्र आदि देकर जीवनरक्षा करना। रक्षा करना। भरण पोषण करना। परवरिश करना। जैसे,—इसी के लिये माँ बाप ने तुम्हें पालकर इतना बड़ा किया। २. पशु पक्षी आदि को रखना। जैसे, कुत्ता पालना, तोता पालना। ३. भंग न करना। न टालना। अनुकूल आचरण द्वारा किसी बात की रक्षा या निर्वाह करना। जैसे, आज्ञा पालना, प्रतिज्ञा पालना।

पालना२—संज्ञा पुं० [सं० पल्यङ्क] रस्सियों के सहारे टँगा हुआ एक प्रकार का गहरा खटोला या बिस्तरा जिसपर बच्चों को सुलाकर इधर से उधर झुलाते हैं। एक प्रकार का झूला या हिंडोला। पिंगूरा। गहवारा। उ०—(क) पालनो अति सुंदर गढ़ि ल्याउ रे बढ़ैया।—सूर०, १०। ४१। (ख) जसोदा हरि पालनै झुलावै।—सूर०, १०। ४३।

पालनीय—वि० [सं०] १. जिसकी रक्षा की जाय। २. जो रक्षणीय हो [को०]।

पालयिता—संज्ञा पुं० [सं० पालयितृ] रक्षक। अभिभावक [को०]।

पालरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पलरा'। उ०—सार शब्द के बने पालरा सत के डाँड़ी लागी हो।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ५१।

पालल—वि० [सं०] तिल के चूर्ण से बना हुआ [को०]।

पालवंश—संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल का एक प्रसिद्ध राजवंश जिसने साढ़े तीन सौ वर्ष तक मगध और बंग देश पर राज्य किया था।

विशेष—इस वंश के संस्थापक गोपाल थे जो सन् ७७५ ई० से लेकर ७८५ ई० तक रहे। अंतिम राजा गोविंद पाल थे जिन्होंने सन् ११४० ई० से लेकर ११६१ ई० तक राज्य किया। एक ताम्रपत्र में लिखा है कि पाल राजा मिहिर या सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। डा० हार्नले का मत है कि पाल वंश के राजा बौद्ध थे।

पालव—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव] १. पल्लव। पत्ता। २. कोमल पत्ता।

पालवर्णी(पु)—संज्ञा पुं० [डिं०] एक प्रकार का डिंगलगीत। उ०—चार पद्य ढाला चवाँ, मोहरा चार मिलाए। लघु गुरु नेम न ल्याइये, पालवर्णी परमाण।—रघु० रू०, पृ० १६५।

पाला१—संज्ञा पुं० [सं० प्रालेय] १. हवा में मिली हुई भाप के अत्यंत सूक्ष्म अणुओं की तह जो पृथ्वी के बहुत ठंढा हो जाने पर उसपर सफेद सफेद जम जाती है। हिम। उ०—जल तें पाला, पाला तें जल, आतम परमातम इकलास।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १२६।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

मुहा०—पाला पड़ना = दे० 'पाला मार जाना'। पाला मार जाना = पौधे या फसल का पाला गिरने से नष्ट हो जाना। पाला मारना = दे० 'पाला मार जाना'।

२. हिम। ठंढ से ठोस जमा हुआ पानी। बर्फ। ३. ठंढ। सरदी। शीत।

पाला२—संज्ञा पुं० [हिं० पल्ला] संबंध का अवसर। लगाव का मौका। व्यवहार करने का संयोग। वास्ता। साबिका।

विशेष—यह शब्द केवल 'पड़ना' के साथ मुहा० के रूप में आता है। जैसे,—खूबों को जानता था गरमी करेंगे मुझसे। दिल सर्द हो गया है जब से पड़ा है पाला।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६।

मुहा०—(किसी से) पाला पड़ना = व्यवहार करने का संयोग होना। वास्ता पड़ना। काम पड़ना। जैसे,—बड़े भारी दुष्ट से पाला पड़ा है। (किसी के) पाले पड़ना = वश में होना। काबू में आना। पकड़ में आना। उ०—(क) परेहु कठिन रावण के पाले।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जो सदा मारते रहे पाला। वे पड़े टामटूल के पाले।—चुभते०, पृ० २५।

पाला३—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव, हिं० पालो] झड़बेरी की पत्तियाँ जो राजपूताने आदि में चारे के काम में आती हैं।

पाला४—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट हिं० पाटा] १. प्रधान स्थान। पीठ। सदर मुकाम। २. सीमा निर्दिष्ट करने के लिये मिट्टी का उठाया हुआ मेड़ या छोटा भीटा। धुस। ३. कबड्डी के खेल में हद के निशान के लिये उठाया हुआ मिट्टी का धुस या खींची हुई लकीर।

मुहा०—पाला मारना = कबड्डी के खेल में सभी प्रतिपक्षियों को हराना। उ०—जो सदा मारते रहे पाला। वे पड़े टामटूल के पाले।—चुभते०, पृ० १५१।

४. अनाज भरने का बड़ा बरतन जो प्रायः कच्ची मिट्टी का गोल दीवार के रूप में होता है। डेहरी। ५. अखाड़ा। कुश्ती

लड़ने या कसरत करने की जगह। ६. दस पाँच आदमियों के उठने बैठने की जगह।

पाला(पु)[5]—संज्ञा पुं० [सं० पालक, प्रा० पालग, हिं० पालना] दे० 'पालक'। उ०—पुहुविए पाला आवन्ता।—कीर्ति०, पृ० ४६।

पालागन—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँव+लगना] प्रणाम। दंडवत। नमस्कार।

विशेष—प्रणाम करने में, विशेषतः ब्राह्मणों को, इस शब्द का मुँह से उच्चारण भी किया जाता है, जैसे, पंडित जी पालागन।

पालागल—संज्ञा पुं० [सं०] हरकारा। संवादवाहक [को०]।

पालागली—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा की चौथी और सबसे कम आदर पानेवाली पत्नी [को०]।

पालान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पर्याण, प्रा० पल्लाण] दे० 'पलान'। उ०—ज्ञान रंग पालान, सुरति की काठी हो।—धरनी० श०, पृ० ४४।

पालाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमालपत्र। तेजपत्ता। २. हरा रंग। हरित वर्ण [को०]।

पालाश—वि० १ पलाश से संबंधित। २. पलाश की लकड़ी का बना हुआ। ३. हरे रंग का [को०]।

पालाशखंड—संज्ञा पुं० [सं० पालाशखण्ड] मगध देश [को०]।

पालाशि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जो पलाश गोत्र के प्रवर्तक थे [को०]।

पालिंद—संज्ञा पुं० [सं० पालिन्द] कुँदुरु नामक सुगंध द्रव्य।

पालिंदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरिवन। मालसा। २. काला निसोथ। कृष्ण निसोथ।

पालिंधी—संज्ञा स्त्री० [सं० पालिन्धी] दे० 'पालिंदी'।

पालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कर्णलताग्र। कान की लौ। कान के पुट के नीचे का मुलायम चमड़ा।

विशेष—पुट के जिस निचले भाग में छेद करके बालियाँ आदि पहनी जाती है उसे पालि कहते हैं। इस स्थान पर कई प्रकार के रोग हो जाते हैं, जैसे, उत्पाटक जिसमें चिरचिराहट होती है, कंडु जिसमें खुजली होती है, ग्रंथिक जिसमें जगह जगह गाँठें सी पड़ जाती हैं, श्याव जिसमें चमड़ा काला हो जाता है, स्रावी जिसमें बराबर खुजली होती और पनछा बहा करता है, आदि।

२. कोना। ३. पंक्ति। श्रेणी। कतार। ४. किनारा। ५. सीमा। हद। ६. मेड़। बाँध। उ०—डाँडी एक सँदेसड़उ ढोलइ लागि लइ जाइ। जोबण फट्टि तलावड़ी, पालि न बंधइ काँई।—ढोला०, दू० १९२। ७. पुल। करारा। कगार। भीटा। उ०—खेलत मानसरोवर गईं। जाइ पालि पर ठाढ़ी भईं।—जायसी (शब्द०)। ८. देग। बटलोई। ९. एक तौल जो एक प्रस्थ के बराबर होती थी। १०. वह बँधा हुआ भोजन जो छात्र या ब्रह्मचारी को गुरुकुल में मिलता था। ११. अंक। गोद। उत्संग। १२. परिधि। १३. पुँआ चीलर। १४. स्त्री जिसकी दाढ़ी में बाल हों। १५. अंक। चिह्न। १६. प्रस्तवन। प्रशंसन (को०)। १७. श्रोणी। नितंब (को०)। १८. लंबा तालाब (को०)।

पालिक—संज्ञा पुं० [सं० पल्यङ्क] १. पलँग। चारपाई। २. पालकी।

पालिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पालन करनेवाली। २. कान का वह नीचे का भाग जो अत्यंत कोमल होता है (को०)। ३. तलवार या किसी अन्य शस्त्र का पैना किनारा (को०)। ४. छुरी। छोटा चाकू (को०)। ५. स्थाली या पात्र (को०)।

पालिका[2]—वि० स्त्री० पालन करनेवाली। रक्षिका।

पालिज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर [को०]।

पालिटिक्स—संज्ञा पुं० [अं०] १. नीति शास्त्र का वह अंग जिसमें राष्ट्र या राज्य की शांति, सुव्यवस्था और सुखसमृद्धि के लिये नियम, कायदे और शासनविधियाँ हों। राजनीति शास्त्र। २. वे बातें जिनका राजनीति से संबंध हो। ३. अधिकारप्राप्ति के लिये राजनीतिक दलों की प्रतिद्वंद्विता।

पालित[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पालिता] १. पाला हुआ। पोसा हुआ। २. रक्षित।

पालित[2]—संज्ञा पुं० सिहोर का वृक्ष [को०]।

पालिता मंदार—संज्ञा पुं० [सं० पालित+मंदार] एक मझोला पेड़ जिसकी शाखाओं और टहनियों में काले रंग के काँटे होते हैं।

विशेष—कुछ लोग इसी पेड़ को मंदार कहते हैं। इसकी पत्तियाँ एक सींके के दोनों ओर लगती हैं और तीन तीन एक साथ रहती हैं। फूल के दल छोटे बड़े और क्रमविहीन होते हैं। यह पेड़ बंगाल में समुद्रतट के पास होता है। मदरास और बरमा में भी इसकी कई जातियाँ होती हैं। इसे बाड़ की भाँति लगाते हैं।

पालित्य—संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धावस्था के कारण बालों में सफेदी आ जाना। बुजुर्गी [को०]।

पालिधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पारिभद्र वृक्ष। फरहद का पेड़।

पालिनी— वि० स्त्री० [सं०] पालन करनेवाली। रक्षा करनेवाली।

पालिभंग—संज्ञा पुं० [सं० पालिभङ्ग] बाँध या सेतु का टूटना [को०]।

पालिश—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. चिकनाई और चमक। ओप। २. रोगन या मसाला जिसके लगाने से चिकनाई और चमक आ जाय।

मुहा०—पालिश करना = रोगन या मसाला रगड़कर चमकाना। रोगन से चिकना और साफ करना। जैसे,—जूते पर पालिश कर दो। पालिश होना = रोगन से चिकना और चमकीला किया जाना। पालिश देना = दे० 'पालिश करना'।

पालिसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. नीति। कार्यसाधन का ढंग। उ०—हैं! हमारी पालिसी के विरुद्ध उद्योग करते हैं, मूर्ख! —भारतेंदु ग्रं०, भाग १, पृ० ४७४। २. वह प्रमाण या प्रतिज्ञापत्र जो बीमा करनेवाली कंपनी की ओर से बीमा

करानेवाले को मिलती है, जिसमें लिखा रहता है कि अमुक शर्तें पूरी होने या बीच में अमुक दुर्घटना संघटित होने पर बीमा करानेवाले या उसके उत्तराधिकारी को इतना रुपया मिलेगा। वि० दे० 'बीमा'।

यौ०—पालिसी होल्डर।

पालिसी होल्डर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसके पास किसी बीमा कंपनी की पालिसी हो। बीमा करानेवाला।

पाली[1]—वि० [सं० पालिन्] [वि० स्त्री० पालिनी] १. पालन करनेवाला। पोषण करनेवाला। २. रक्षनेवाला। रक्षा करनेवाला।

पाली[2]—संज्ञा पुं० पृथु के पुत्र का नाम। (हरिवंश)।

पाली[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० पविल (=विशिष्ट स्थान)] वह स्थान जहाँ तीतर, बुलबुल, बटेर आदि पक्षी लड़ाए जाते हैं।

पाली[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० पाल या सं० पालि (=बरतन)] १. बरतन का ढक्कन। पारा। परई। २. दे० 'पालि'।

पाली[5]—संज्ञा स्त्री० [सं० पालि (=पंक्ति)] एक प्राचीन भाषा जिसमें बौद्धों के धर्मग्रंथ लिखे हुए है और जिसका पठन पाठन स्याम, बरमा, सिंहल आदि देशों में उसी प्रकार होता है जिस प्रकार भारतवर्ष में संस्कृत का।

विशेष—बौद्ध धर्म के अभ्युदय के समय में इस भाषा का प्रचार वाह्लीक (बलख) से लेकर स्याम देश तक और उत्तर भारत से लेकर सिंहल तक हो गया था। कहते हैं, बुद्ध भगवान् ने इसी भाषा मे धर्मोपदेश किया था। बौद्ध धर्मग्रंथ त्रिपिटक इसी भाषा मे हैं। पाली का सबसे पुराना व्याकरण कच्चायन (कात्यायन) का सुगधिकल्प है। ये कात्यायन कब हुए थे ठीक पता नहीं। सिंहल आदि के बौद्धों में यह प्रसिद्ध है कि कात्यायन बुद्ध भगवान् के शिष्यों में से थे और बुद्ध भगवान् ने ही उनसे उस भाषा का व्याकरण रचने के लिये कहा था जिसमें भगवान् के उपदेश होते थे। पर कात्यायन के व्याकरण में ही एक स्थान पर सिंहल द्वीप के राजा तिष्य का नाम आया है जो ईसा से ३०७ वर्ष पहले राज्य करता था। इस बाधा का उत्तर लोग यह देते हैं कि पाली भाषा का अध्ययन बहुत दिनों तक गुरु शिष्य परंपरानुसार ही होता आया था। इससे संभव है कि 'तिष्य' वाला उदाहरण पीछे से किसी ने दे दिया हो। कुछ लोग वररुचि को, जिनका नाम कात्यायन भी था, पाली व्याकरणकार कात्यायन समझते हैं, पर यह भ्रम है।

कात्यायन ने अपने व्याकरण में पाली को मागधी और मूल भाषा कहा है। पर बहुत से लोगों ने मागधी से पाली को भिन्न माना है। कुछ पाली ग्रंथकारों ने तो यहाँ तक कहा है कि पाली बुद्धों, बोधिसत्वों और देवताओं की भाषा है और मागधी मनुष्यों की। बात यह मालूम होती है कि मागधी शब्द का व्यवहार मगध की प्राकृत के लिये बहुत पीछे तक बराबर होता रहा है। जैसे साहित्यदर्पणकार ने नाटकों के लिये यह नियम किया है कि अंत.पुरचारी लोग मागधी में बातचीत करते दिखाए जायँ और चेट, राजपुत्र तथा वणिक् लोग अर्धमागधी में। पर पाली भाषा एक विशेष प्राचीनतर काल की मागधी का नाम है जिसे व्याकरणबद्ध करके कात्यायन आदि ने उसी प्रकार अचल और स्थिर कर दिया जिस प्रकार पाणिनि आदि ने संस्कृत को। इससे परवर्ती काल के पढ़े लिखे बौद्ध भी उसी प्राचीन मागधी का व्यवहार अपनी शास्त्रचर्चा में बराबर करते रहे।

'पाली' शब्द कहाँ से आया इसका संतोषप्रद उत्तर कहीं से नहीं प्राप्त होता है। लोगों ने अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की हैं। कुछ लोग उसे सं० पल्लि (=बस्ती, नगर) से निकालते है, कुछ लोग कहते हैं, 'पालाश' से, जो मगध का एक नाम है, पाली बना है। कुछ महात्मा पह्लवी तक जा पहुँचे हैं। पटने का प्राचीन नाम पाटलिपुत्र था इससे कुछ लोगों का अनुमान है कि पाटलि की भाषा ही पाली कहलाने लगी। पर सबसे ठीक अनुमान यह जान पड़ता है कि 'पाली' शब्द का प्रयोग पंक्ति के अर्थ में था। अब भी संस्कृत के छात्र और अध्यापक किसी ग्रंथ मे आए हुए वाक्य को 'पंक्ति' कहते हैं, जैसे, यह पंक्ति नहीं लगती है। मागधी का बुद्ध के समय का रूप बौद्धशास्त्रो में लिपिबद्ध हो जाने के कारण पाली (सं० पालि = पंक्ति) कहलाने लगी। हीनयान शाखा मे तो पाली का प्रचार बराबर एक सा चलता रहा, पर महायान शाखा के बौद्धों ने अपने ग्रंथ संस्कृत में कर लिए।

पालीⓅ[6]—संज्ञा स्त्री० [सं० पल्यङ्क] पालकी। उ०—ह्रोउ बाध्यउ पाटको। पालीय परगह अंत न पार।—बी० रासो, पृ० १३।

पाली[7]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पारी] पारी। बारी।

पालीवत—संज्ञा पुं० [देश० या सं०] एक पेड का नाम।

विशेष—बृहत्संहिता में द्राक्षा, बिजौरा आदि कांडरोप्य (=जिसकी डाल लगाने से लग जाय) पेड़ों में इसका नाम आया है।

पालीवाल—संज्ञा पुं० [?] मारवाड़ी ब्राह्मणों का एक वर्ग।

पालीशोष—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक रोग।

पालू—वि० [हिं० पालना] पाला हुआ। पालतू।

पाले—संज्ञा पुं० [हिं० पल्ला] दे० 'पाला'।

पालो[1]—संज्ञा पुं० [सं० पालि ?] पाँच रुपए भर का बाट या तौल। (सुनार)।

पालोⓅ[2]—क्रि० वि० [सं० पदाति ?] पैदल। उ०—पहुँचायण डेरा लग पालो सगलाम् सनमानियाँ। पाणां जोड़ किया भूपत सूं जाजा राजी जानिया।—रघु० रू०, पृ० ८७।

पाल्य—वि० [सं०] पालन के योग्य।

पाल्लवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक खेल जो पल्लवों या टहनियों से खेला जाता है [को०]।

पाल्लविक—वि० [सं०] १. फैलनेवाला। विस्तृत' होनेवाला। २. असंबद्ध। असंगत [को०]।

पाल्वल[1]—वि० [सं०] १. तलैया या गड्ढा संबंधी। तलैया संबंधी। २. तलैया में होनेवाला। तलैया का।

पाल्वल[2]—संज्ञा पुं० क्षुद्र जलाशय का जल। तलैया का पानी।

पाल्हवना(पु)†—[सं० पल्लवित] पल्लवित होना। पत्तों से युक्त होना। हरा होना। उ०—सखी सु सज्जण आविया हूंता मुझझ हियाह। सूका था सु पाल्हव्या पाल्हविया फलियाह।—ढोला०, दू० ५३१।

पावँ—संज्ञा पुं० [सं० पाद] पैर। दे० 'पाँव'।

पावँड़—संज्ञा पुं० [हिं० पाँव+ड़ा (प्रत्य०)] वह कपड़ा या बिछौना जो आदर के लिये किसी के मार्ग मे बिछाया जाता है। पैर रखने के लिये फैलाया हुआ कपड़ा। पायंदाज। उ०—(क) देत पावँड़े अरघ सुहाए। सादर जनक मंडपहि लाए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पौरि के दुवारे ते लगाय केलिमंदिर लौं पदमिनि पावँड़े पसारे मखमल के।—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—डालना;—देना।—पसारना।—बिछाना।

पावँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पावँ+ड़ी (प्रत्य०)] १. पादत्राण। खड़ाऊँ। २. जूता। उ०—सपनेहु में बर्राय के जो रे कहेगा राम। वाके पग की पावँड़ी मेरे तन को चाम।—कबीर (शब्द०)। ३. गोटा पट्टा बुननेवालों का एक औजार जिसे बुनते समय पैरों से दबाना पड़ता है और जिसमें ताने का बादला नीचे ऊपर होता है।

विशेष—यह काठ का पहरा सा होता है जिसमें दो खूटियाँ लगी रहती हैं। इन दोनों खूटियों के बीच लोहे की एक छड़ लगी रहती है जिसमें एक एक बालिश्त लंबी, नुकीले सिरे की ५—६ लकड़ियाँ लगी रहती हैं। बादला बुनने में यह प्रायः वही काम देता है जो करघे मे राछ देती है।

पावँर(पु)[1]—वि० [सं० पामर] १ तुच्छ। खल। नीच। दुष्ट। २ मूर्ख। निर्बुद्धि। उ०—(क) तुम त्रिभुवन गुरु वेद बखाना। आन जीव पावँर का जाना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) छूँछो मसक पवन पानी ज्यों तैसोई जन्म बिकारी हो। पाखंड धर्म करत है पावँर नाहिन बलत तुम्हारी हो।—सूर (शब्द०)।

पावँर†[2]—संज्ञा पुं [हिं० पावँ] दे० 'पावँड़ा'। उ०—कुंडल गहे सीस भुइ लावा। पावँर होउँ जहाँ देइ पावा।—जायसी (शब्द०)।

पावँर[3]—संज्ञा स्त्री० दे० 'पावँड़ी'।

पावँरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पावँ+री (प्रत्य०)] दे० 'पावँड़ी'।

पाव[1]—संज्ञा पुं० [सं० पाद (=चतुर्थांश)] १. चौथाई। चतुर्थ भाग। जैसे, पाव घंटा, पाव कोस, पाव सेर, पाव आना। २. एक सेर का चौथाई भाग। एक तौल जो सेर की चौथाई होती है। चार छटाँक का मान। जैसे, पाव भर आटा। ३. पैर। उ०—कियो कान्ह पै चाव पाव ठहरन नहीं पाए—ब्रज० ग्रं०, पृ० १४।

पाव[2]—संज्ञा पुं० [सं० पावः या सं० आवप०, दे० प्रा० पावव; गुज० पावो] एक बाजा। वंशी। अलगोजा।

पावक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। आग। तेज। ताप।

विशेष—महाभारत वन पर्व में लिखा है कि २७ पावक ऋषि ब्रह्मा के अंग से उत्पन्न हुए जिनके नाम ये हैं—अंगिरा, दक्षिण, गार्हपत्य, आहवनीय, निर्मथ्य, विद्युत्, शूर, संवर्त, लौकिक, जाठर, विषग, क्रव्य, क्षेमवान्, वैष्णव, दस्युमान्, बलद, शांत, पुष्ट, विभावसु, ज्योतिष्मान, भरत, भद्र, स्विष्टकृत्, वसुमान्, क्रतु, सोम और पितृमान्। क्रियाभेद से अग्नि के ये भिन्न भिन्न नाम हैं।

२. सदाचार। ३. अग्निमंथ वृक्ष। अगेथू का पेड़। ४. चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़। भल्लातक। भिलावाँ। ६. विडंग। वायविडंग। ७. कुसुम। ८. वरुण। ९. सूर्य। १०. संत। तपस्वी (को०)। ११. विद्युत् की ज्वाला। बिजली की अग्नि (को०)। १२. तीन की संख्या क्योंकि कर्मकांड मे तीन अग्नि प्रधान कहे गए हैं (को०)।

यौ०—पावककण=अग्निकण। अग्निस्फुलिंग। उ०—गा, कोकिल, बरसा पावक कण।—युगांत, पृ० ३। **पावकमणि**। **पावकशिख**=केसर।

पावक[2]—वि० शुद्ध करनेवाला। पावन करनेवाला। पवित्र करनेवाला।

पावकमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्यकांत मणि। २ आतशी शीशा।

पावका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती (वेद)।

पावकात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय। २. इक्ष्वाकुवंशीय दुर्योधन की कन्या सुदर्शना का पुत्र।

पावकि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पावक का पुत्र। कार्तिकेय। २. इक्ष्वाकुवंशीय दुर्योधन की कन्या सुदर्शना का पुत्र सुदर्शन।

विशेष—मनु के पुत्र इक्ष्वाकुवंशीय सुदुर्जय के दुर्योधन नाम का एक पुत्र हुआ जिसे सुदर्शना नाम की एक कन्या थी। उसके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर पावक या अग्निदेव रूप बदलकर दुर्योधन के यहाँ आए और उन्होंने कन्या के लिये प्रार्थना की। दुर्योधन सम्मत न हुए। पावक देवता निराश होकर चले गए। एक बार राजा ने यज्ञ किया। यज्ञ में अग्नि ही प्रज्वलित न हुई। राजा और ऋत्विक लोगों ने अग्नि की बहुत उपासना की। पावक ने प्रकट होकर फिर कन्या माँगी। दुर्योधन ने कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया। अग्नि देवता उस कन्या के साथ मूर्ति धारण कर माहिष्मती पुरी में रहने लगे। पावक से जो पुत्र सुदर्शना को हुआ उसका नाम सुदर्शन पड़ा। वह बड़ा धर्मात्मा और ज्ञानी था।

पावकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अग्नि की स्त्री। २. पावका। सरस्वती (को०)।

पावकुलक—संज्ञा पुं० [सं० पादाकुलक] पादाकुलक छंद। चौपाई।

पावट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पायल] पैर का एक आभूषण। पायल। नूपुर। उ०—अंध केदली पगु में पावट झमकि झमकि ललचावै। कहै दरिया कोइ संत विवेकी वाके निकट न जावै।—सं० दरिया, पृ० १३६।

पावड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पावँड़ी'। उ०—आयो भरथ अवध अभंग, मंडे पावड़ी उतमंग।—रघु० रू०, पृ० १२२।

पावती—संज्ञा स्त्री० [हिं० पावना, पाना] १. प्राप्तिस्वीकार। किसी वस्तु के प्राप्त होने की रसीद। २. वह रसीद जो किसी से रुपया लेते समय रुपया लेनेवाला देता है।

पावदान—संज्ञा पुं० [हिं० पाव + दान (प्रत्य०)] १. पैर रखने के लिये बना हुआ स्थान या वस्तु। २. काठ की छोटी चौकी जो कुरसी पर बैठे हुए आदमी के पैर रखने के लिये मेज के नीचे रखी जाती है। ३. इक्के गाड़ी आदि की बगल में लटकाई हुई लोहे की छोटी पटरी जिसपर पैर रखकर नीचे से गाड़ी पर चढ़ते हैं। ४ गाड़ी के भीतर पैर रखने या लटकाने का स्थान।

पावन¹—वि० [सं०] १. पवित्र करनेवाला। शुद्ध करनेवाला। २. पवित्र। शुद्ध। पाक। उ०—के प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४५४। ३. पवन या हवा पीकर रहनेवाला।

पावन²—संज्ञा पुं० १. पावकाग्नि। अग्नि। २ प्रायश्चित्त। शुद्धि। ३. जल। ४. गोबर। ५. रुद्राक्ष। ६. कुष्ट। कुट। ७. पीली भँगरैया। पीत भृंगराज। ८. चित्रक वृक्ष। चीता। ९. चंदन। १०. सिह्लक। शिलारस। ११. सिद्ध पुरुष। १२. व्यास का एक नाम। १३. विष्णु। १४. संप्रदाय का बोधक चिह्न (को०)।

पावनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्रता।

पावनताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पावनता+ई (प्रत्य०)] पवित्रता। पावनता उ०—कहि दंडक बन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहि गाई।—मानस, ७।६६।

पावनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] पवित्रता।

पावनध्वनि—संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

पावना(पु)¹—क्रि० स० [सं० प्रापण, प्रा० पावण] १. पाना। प्राप्त करना। २. ज्ञान प्राप्त करना। अनुभव करना। जानना। समझना। उ०—समरथ सुभ जो पावई पीर पराई।—तुलसी (शब्द०)। ३. भोजन करना। आहार करना। जीमना। उ०—तेहि छन तहँ शिशु पावत देखा। पलना निकट गई तहँ पेखा।—विश्राम (शब्द०)। † ४. पिलाना। पीने के लिये देना। उ०—तुम्हाँ कै प्रीय पाछी बाहुड़इ। सोवन कचौली तोही पावस्यूँ दूध।—बी० रासो, पृ० ५६। विशेष दे० 'पाना'।

पावना—संज्ञा पुं० १. दूसरे से रुपया आदि पाने का हक। लहना। २. रुपया जो दूसरे से पाना हो। रकम जो दूसरे से वसूल करनी हो। जैसे,—देना पावना ठीक करके हिसाब साफ कर दो (बाजारू)।

पावनि—संज्ञा पुं० [सं०] पवन के पुत्र हनुमान आदि।

पावनी¹—वि० स्त्री० [सं०] १. पवित्र करनेवाली। शुद्ध या साफ करनेवाली। २ पवित्र।

पावनी²—संज्ञा स्त्री० १. हरीतकी। हड़। २. तुलसी। ३. गाय। ४. गंगा। ५. शाकद्वीप की एक नदी का नाम (मत्स्यपुराण)।

पावनेदार—संज्ञा पुं० [हिं० पावना + दार] १. लहनेदार। कर्ज देनेवाला महाजन। २. अन्य से धन पाने का अधिकारी।

पावमान—वि० [सं०] पवमान अर्थात् अग्नि से संबंधित (को०)।

पावमानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेद की एक ऋचा।

पावमुहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाव (= चौथाई) + मुहर] शाहजहाँ के समय का सोने का एक सिक्का जिसका मूल्य एक अशरफी या एक मुहर का चौथाई होता था।

पावर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पासे का वह पार्श्व जिसपर दो बिंदियाँ बनी रहती हैं। २. इस तरह का पासा। ३. इस प्रकार के पासे को फेंकने का विशेष ढंग (को०)।

पावर²—वि० [सं० पामर, प्रा० पावर] दे० 'पामर'। उ०—तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पावर का जाना।—मानस १।१११।

पावर³—संज्ञा पुं० [अं०] १. अधिकार। प्रभाव। शक्ति। सामर्थ्य। बल। २. शासन। हुकूमत। ३. सेना। चमू। ४. बिजली आदि की वह शक्ति जिससे मशीन चलती है। यंत्रों को गतिशील करनेवाली शक्ति (को०)।

यौ०—पावरलूम = यंत्रशक्ति से चलनेवाला करघा। पावर-स्टेशन = दे० 'पावरहौस'।

पावरहौस—संज्ञा पुं० [अं० पावरहाउस] वह स्थान जहाँ मशीनों से बिजली उत्पन्न की जाती है। विशेष—दे० 'बिजली'। उ०—यहाँ सुरक्षित जगह में पावरहौस (शक्तिभवन) बनाना होगा।—किन्नर०, पृ० ४५।

पावरी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँव] रिकाब। पायदान। उ०—ज्ञान के घोड़ा ध्यान के पाखर जुक्ति के जीन बनाई। सत्त सुकृत दोउ लगी पावरी, बिबेक लगाम लगाई।—कबीर श०, भा० २, प० ७८।

पावरोटी—संज्ञा स्त्री० [पुर्त० पाव + सं० रोटी] एक प्रकार की मोटी और फूली हुई रोटी जो मैदे का खमीर उठाकर बनाई जाती है।

पावल†—संज्ञा स्त्री० [सं० ? या हिं० पाव + ल (प्रत्य०)] दे० 'पायल', 'पावट'।

पावली—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाव (= चौथाई) + ला (प्रत्य०)] एक रुपए का चौथाई सिक्का। चार आने का सिक्का। चवन्नी।

पावस†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रावृष, प्रा० पाउस] वर्षाकाल। सावन भादों का महीना। बरसात। उ०—गिरिधारन पावस आवत ही बकवृंद अकाश उड़ान लगे। धुरवा सब ओर बिलास लगे मोरवान के शोर सुनान लगे।—गोपाल (शब्द०)।

पावा¹—संज्ञा पुं० [सं० पाद, हिं० पावँ, पाव] चारपाई, पलंग, चौकी, वैशाली से पश्चिम कुरसी आदि का पाया। दे० 'पाया'।

पावा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्राचीन और बौद्धकालीन गाँव जो वैशाली से पश्चिम और गंगा के उत्तर था।

विशेष—यहाँ बुद्ध भगवान् कुछ दिन ठहरे थे और बुद्ध के

निर्वाण के पीछे पावा के लोगों को भी बुद्ध के शरीर का कुछ अंश मिला था जिसके ऊपर उन्होंने एक स्तूप उठाया। यह गाँव अब भी इसी नाम से जाना जाता है और गोरखपुर जिले में गंडक नदी से ६ कोस पर है। गोरखपुर से यह बीस कोस उत्तरपश्चिम पड़ता है।

पावासर(पु)†—संज्ञा पुं० [?] मानसरोवर। उ०—मोताहल हंसा मिले, पावासर रे पास।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८।

पाशी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मैना।

विशेष—इसकी लँबाई १७-१८ अंगुल होती है। यह ऋतु के अनुसार रंग बदला करती है और पंजाब के अतिरिक्त सारे भारत में पाई जाती है। यह प्रायः ४ या ५ अंडे देती है।

पाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. रस्सी, तार, तांत, आदि के कई प्रकार के फेरों और सरकनेवाली गाँठों आदि के द्वारा बनाया हुआ घेरा जिसके बीच में पड़ने से जीव बँध जाता है और कभी कभी बंधन के अधिक कसकर बैठ जाने से मर भी जाता है। फंदा। फाँस। बंधन। जाल।

विशेष—प्राचीन काल में पाश का व्यवहार युद्ध में होता था और अनेक प्रकार का बनता था। इसे शत्रु के ऊपर डालकर उसे बाँधते या अपनी ओर खींचते थे। अग्निपुराण मे लिखा है कि पाश दस हाथ का होना चाहिए, गोल होना चाहिए। उसकी डोरी सूत, गून, मूँज, तांत, चमड़े आदि की हो। तीस रस्सियाँ होनी चाहिए इत्यादि'। वैशपायनीय धनुर्वेद में जिस प्रकार के पाश का उल्लेख है वह गला कसकर मारने के लिये उपयुक्त प्रतीत होता है। उसमें लिखा है कि पाश के अवयव सूक्ष्म लोहे के त्रिकोण हों, परिधि पर सीसे की गोलियाँ लगी हों। युद्ध के अतिरिक्त अपराधियों को प्राणदंड देने में भी पाश का व्यवहार होता था, जैसे आजकल भी फाँसी में होता है। पाश द्वारा वध करनेवाले चांडाल 'पाशी' कहलाते थे जिनकी संतान आजकल उत्तरीय भारत में पासी कहलाती हैं।

२. पशु पक्षियों को फँसाने का जाल या फंदा।

विशेष—जिस प्रकार किसी शब्द के आगे 'जाल' शब्द रखकर समूह का अर्थ निकालते हैं उसी प्रकार सूत के आकार की वस्तुओं के सूचक शब्दों के आगे 'पाश' शब्द रहने से समूह का अर्थ लेते हैं, जैसे—केशपाश। कर्ण के आगे पाश शब्द से उत्तम समझा जाता है। जैसे, कर्णपाश अर्थात् सुंदर कान।

३. बंधन। फँसानेवाली वस्तु। उ०—प्रभु हो मोह पाश क्यों छूटै।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—शैव दर्शन में छह पदार्थ कहे गए गए हैं—पति, विद्या, अविद्या, पशु, पाश और कारण। पाश चार प्रकार के कहे गए हैं—मल, कर्म, माया, और रोध शक्ति। (सर्वदर्शन-संग्रह)। कुलार्णव तंत्र में 'पाश' इतने बतलाए गए हैं—घृणा, शंका, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील और जाति। मतलब यह कि तांत्रिकों को इन सबका त्याग करना चाहिए।

४. फलित ज्योतिष में एक योग जो उस समय माना जाता है जब सब राशि ग्रहपंचक में रहती है।

पाशकंठ—वि० [सं० पाशकण्ठ] जिसके गले में फंदा हो [को०]।

पाशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का खेल या जुआ। पासा। चौपड़। २. पाश। फंदा। बंधन।

पाशकपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जूआ खेलने का स्थान। २. चौपड़ खेलने की बिसात [को०]।

पाशकेरली—संज्ञा पुं० [सं० पाश + केरल (देश)] ज्योतिष की एक गणना जो पासे फेंककर की जाती है। यूनान, फारस आदि पश्चिमी देशों में पुराने समय में इसका बहुत प्रचार था। वहीं से शायद दक्षिण भारत के केरल प्रदेश में यह विद्या आई हो।

पाशक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पासे का खेल। जुआ [को०]।

पाशजाल—संज्ञा पुं० [सं०] दृश्यमान जगत्। संसार [को०]।

पाशधर—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण देवता (जिनका अस्त्र पाश है)।

पाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. फंदा। जाल। २. पाश से बाँधना। जाल मे फँसाना [को०]।

पाशपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण देवता (जिनका अस्त्र पाश) है।

पाशपाश—वि० [फ़ा०] चूर चूर। टुकड़े टुकड़े [को०]।

पाशबंध—संज्ञा पुं० [सं० पाशबन्ध] फंदा। घेरा। फाँस [को०]।

पाशबंधक—संज्ञा पुं० [सं० पाशबन्धक] चिड़ीमार। बहेलिया [को०]

पाशबंधन—संज्ञा पुं० [सं० पाशबन्धन] जाल [को०]।

पाशबद्ध—वि० [सं०] फंदे में पड़ा हुआ। जाल में फँसा हुआ [को०]।

पाशभृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. वह व्यक्ति जो पाश लिए हुए हो [को०]।

पाशमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक मुद्रा जो दाहिने और बाएँ हाथ की तर्जनी को मिलाकर प्रत्येक के सिरे पर अँगूठा रखने से बनती है।

पाशरज्जु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाँधने की रस्सी। २. शृंखला। बेड़ी (को०)।

पाशव[1]—वि० [सं०] १. पशु संबंधी। पशुओं का। उ०—क्या तुम दूर कर दे बंधन, यह पाशव पाश और क्रंदन।—बेला, पृ० ४१। २. पशुओं का जैसा। जैसे, पाशव व्यवहार।

पाशव[2]—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं का झुंड [को०]।

पाशवता—संज्ञा स्त्री० [सं० पाशव + ता (प्रत्य०)] पशुता। उ०—निर्बलता का साथ छोड़ दो। पाशवता का पाश तोड़ दो। ग्रामिका, पृ० १२२।

पाशवपालन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चरागाह। पशुओं के घास चरने का मैदान। २. चारा। घास [को०]।

पाशवान्¹—वि० [सं० पाशवत्] [वि० स्त्री० पाशवती] पाशवाला। पाशधारी।

पाशवान्²—संज्ञा पुं० वरुण।

पाशवासन—संज्ञा पुं० [सं०] बैठने की एक प्रकार की मुद्रा या आसन [को०]।

पाशविक—वि० [सं० पाशव+हिं० इक (प्रत्य०)] पशुओं के जैसा क्रूर या निर्दयतापूर्ण। उ०—जेल शासन का विभाग नहीं, पाशविक व्यवसाय है, आदमियों से जबर्दस्ती काम लेने का बहाना, अत्याचार का निष्कंटक साधन। —काया०, पु० २३५।

पाशहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. यम (को०)। ३. शतभिषा नक्षत्र।

पाशांत—संज्ञा पुं० [सं० पाशान्त] पोशाक के पीछे का भाग [को०]।

पाशा—संज्ञा पुं० [तु० फ़ा० पादशाह] तुर्की सरदारों की उपाधि।

पाशिक—संज्ञा पुं० [सं०] फंदे या जाल में चिड़िया फँसानेवाला। बहेलिया।

पाशित—संज्ञा पुं० [सं०] बँधा हुआ। पाशबद्ध।

पाशी¹—वि० [सं० पाशिन्] पाशवाला। पाश धारण करनेवाला।

पाशी²—संज्ञा पुं० १. वरुण। २. व्याध। बहेलिया। ३. यम। ४. प्राणदंड पाए हुए अपराधियों के गले में फाँसी का फंदा लगानेवाला चांडाल।

पाशी⁽पु⁾**³**—संज्ञा पुं० [सं० पाश] दे० 'पाश'। उ०—पुनि जीव लख चौरासी, डारी सबहिन् कौं पाशी। —सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ११४।

पाशुक—वि० [सं०] पशुसंबंधी।

पाशुपत¹—वि० [सं०] १. पशुपति संबंधी। शिवसंबंधी। २. पशुपति का। ३. शिव द्वारा प्रदत्त (को०)। ४. शिवकथित (को०)।

पाशुपत²—संज्ञा पुं० १. पशुपति या शिव का उपासक। एक प्रकार का शैव। २. शिव का कहा हुआ तंत्रशास्त्र। ३. अथर्ववेद का एक उपनिषद्। ४. बक पुष्प। अगस्त का फूल।

पाशुपत दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] एक सांप्रदायिक दर्शन जिसका उल्लेख सर्वदर्शनसंग्रह में है। इसे नकुलीश पाशुपत दर्शन भी कहते हैं।

विशेष—इस दर्शन में जीव मात्र की 'पशु' संज्ञा है। सब जीवों के अधीश्वर पशुपति शिव हैं। भगवान् पशुपति ने बिना किसी कारण, साधन या सहायता के इस जगत् का निर्माण किया, इससे वे स्वतंत्र कर्ता हैं। हम लोगों से भी जो कार्य होते हैं उनके भी मूल कर्ता परमेश्वर ही हैं, इससे पशुपति सब कार्यों के कारण स्वरूप हैं। इस दर्शन में मुक्ति दो प्रकार की कही गई है : एक तो सब दु.खों की अत्यंत निवृत्ति, दूसरी पारमैश्वर्य प्राप्ति। और दार्शनिकों ने दुःख की अत्यंत निवृत्ति को ही मोक्ष कहा है। किंतु पाशुपत दर्शन कहता है कि केवल दुःख की निवृत्ति ही मुक्ति नहीं है, जबतक साथ ही पारमैश्वर्यप्राप्ति भी न हो तबतक केवल दुःखनिवृत्ति है क्या? पारमैश्वर्य मुक्ति दो प्रकार की शक्तियों की प्राप्ति है—दृक् शक्ति और क्रिया शक्ति। दृक् शक्ति द्वारा सब वस्तुओं और विषयों का ज्ञान हो जाता है, चाहे वे सूक्ष्म से सूक्ष्म, दूर से दूर, व्यवहित से व्यवहित हों। इस प्रकार सर्वज्ञता प्राप्त हो जाने पर क्रिया शक्ति सिद्ध होती है जिसके द्वारा चाहे जिस बात की इच्छा हो वह तुरंत हो जाती है। उसकी इच्छा की देर रहती है। इन दोनों शक्तियों का सिद्ध हो जाना ही पारमैश्वर्य मुक्ति है।

पूर्णप्रज्ञ आदि दार्शनिकों तथा भक्तों का यह कहना कि भगवद्दासत्व की प्राप्ति ही मुक्ति है, विडंबना मात्र है। दासत्व किसी प्रकार का हो, बंधन ही है, उसे मुक्ति (छुटकारा) नहीं कह सकते।

इस दर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण माने गए हैं। धर्मार्थसाधक व्यापार को विधि कहते हैं। विधि दो प्रकार की होती है—'व्रत' और 'द्वार'। भस्मस्नान, भस्मशयन, जप, प्रदक्षिणा, उपहार आदि को व्रत कहते हैं। शिव का नाम लेकर ठहाकर हँसना, गाल बजाना, गाना, नाचना, जप करना आदि 'उपहार' हैं। व्रत सबके सामने न करना चाहिए। 'द्वार' के अंतर्गत क्राथन, स्पंदन, मंदन, शृंगारण, अवितत्करण और अवितद्भाषण है। सुप्त न होकर भी सुप्त के से लक्षण प्रदर्शन को क्राथन; जैसे हवा के धक्के से शरीर झोंके खाता है उसी प्रकार झोंके खिलाने को स्पंदन; उन्मत्त के समान लड़खड़ाते हुए पैर रखने को मंदन, सुंदरी स्त्री देख वास्तव में कामार्त न होकर कामुकों की सी चेष्टा करने को शृंगारण; अविवेकियों के समान लोकनिंदित कर्मों की चेष्टा को अवितत्करण तथा अर्थहीन और व्याहत शब्दों के उच्चारण को अवितद्भाषण कहते हैं। चित्त द्वारा आत्मा और ईश्वर के संबंध का नाम 'योग' है।

पाशुपतरस—संज्ञा पुं० [सं०] एक रसौषध।

विशेष—रसेंद्रसारसंग्रह में इसके बनाने की विधि दी हुई है। यह इस प्रकार तैयार होती है — एक भाग पारा, दो भाग गंधक, तीन भाग लोहा भस्म, और तीनों के बराबर विष लेकर चीते के काढ़े में भावना दे, फिर उसमें ३२ भाग धतूरे के बीज का भस्म मिलावे। इसके उपरांत सोंठ, पीपल, मिर्च, लौंग, तीन तीन भाग, जावित्री और जायफल आधा आधा भाग, तथा विट, सेंधा, सामुद्र, उदभिद, सोंचर, सज्जी, एरंड (अंडी), इमली की छाल का भस्म, चिचड़ीक्षार, अश्वत्थक्षार, हड़, जवाखार, हींग, जीरा, सोहागा, सब एक एक भाग मिलाकर नीबू के रस में भावना दे और घुँघची के बराबर गोली बना ले। भिन्न भिन्न अनुपान के साथ इसका सेवन करने से अग्निमांद्य, उदर और हृदय के रोग दूर होते हैं तथा हैजे में तुरंत लाभ होता है। ताम्बूली के रस में देने से उदरामय, जीर्णरस के साथ

अतीसार, मट्ठे और सेंधा नमक के साथ ग्रहणी इत्यादि रोग दूर होते हैं।

पाशुपतास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का शूलास्त्र जो बड़ा प्रचंड था। अर्जुन ने बहुत तप करके इसे प्राप्त किया था।

पाशुपाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं को पालना। पशु पालने का व्यवसाय [को०]।

पाशुबंधक—संज्ञा पुं० [सं० पाशुबन्धक] वह स्थान जहाँ यज्ञ का बलिपशु बाँधा जाता है।

पाशुबंधका—संज्ञा स्त्री० [सं० पाशुबन्धका] बलि का स्थान। बलि करने की वेदी [को०]।

पाश्चात्य[1]—वि० [सं] १. पीछे का। पिछला। २. पीछे होनेवाला। ३. पश्चिम दिशा का। पश्चिम में रहनेवाला। पश्चिम संबंधी।

पाश्चात्य[2]—संज्ञा पुं० पिछला भाग। बाद का अंश [को०]।

पाश्चिमोत्तर—वि० [सं० पश्चिमोत्तर] पश्चिम और उत्तर के कोण का। वायुकोण का।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४२।

पाश्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाल। पाश [को०]।

पाषंड[1]—संज्ञा पुं० [सं० पाखण्ड या पाषण्ड] १. वेद का मार्ग छोड़कर अन्य मत ग्रहण करनेवाला। वेदविरुद्ध आचरण करनेवाला। झूठा मत माननेवाला। मिथ्याधर्मी।

विशेष—बौद्धों और जैनों के लिये प्रायः इस शब्द का व्यवहार हुआ है। कौलिक आदि भी इस नाम से पुकारे गए हैं। पुराणों में लिखा गया है कि पाषंड लोग अनेक प्रकार के वेश बनाकर इधर उधर घूमा करते हैं। पद्मपुराण में लिखा गया है कि 'पाषंडों का साथ छोड़ना चाहिए और भले लोगों का साथ सदा करना चाहिए'। मनु ने भी लिखा है कि 'कितव, जुआरी, नटवृत्तिजीवी, क्रूरचेष्ट और पाषंड इनको राज्य से निकाल देना चाहिए। ये राज्य में रहकर भलेमानुसों को कष्ट दिया करते हैं।'

२. झूठा आडंबर खड़ा करनेवाला। लोगों को ठगने और धोखा देने के लिये साधुओं का सा रूप रंग बनानेवाला। धर्मध्वजी। ढोंगी आदमी। कपटवेशधारी। ३. संप्रदाय। मत। पंथ।

विशेष—अशोक के शिलालेखों में इस शब्द का व्यवहार इसी अर्थ में प्रतीत होता है। यह अर्थ प्राचीन जान पड़ता है, पीछे इस शब्द को बुरे अर्थ में लेने लगे। 'पाषंड' का विशेषण 'पाषंडी' बनता है। इससे इसका संप्रदायवाचक होना सिद्ध होता है। नए नए संप्रदायों के खड़े होने पर शुद्ध वैदिक लोग सांप्रदायिकों को तुच्छ दृष्टि से देखते थे।

पाषंड[2]—वि० दे० 'पाषंड'।

पाषंडक—वि० [सं० पाषण्डक] पाषंडी [को०]।

पाषंडिक—वि० [सं० पाषण्डिक] पाषंडी [को०]।

पाषंडी—वि० [सं० पाषण्डिन्] १. पाषंड। वेदाचार परित्यागी। वेदविरुद्ध मत और आचरण ग्रहण करनेवाला। झूठा मत माननेवाला।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि पाषंडी, विकर्मस्थ (निषिद्ध कर्म से जीविका करनेवाला), बैडालव्रतिक, हेतुवाद द्वारा वेदादि का खंडन करनेवाले, बकव्रती यदि अतिथि होकर आवें तो वाणी से भी उनका सत्कार न करे। अवैदिक लिंगी (वेदविरुद्ध सांप्रदायिक चिह्न धारण करनेवाले) आदि को पाषंडी कहने में तो स्मृति पुराण आदि एकमत हैं, पर पद्मपुराण आदि घोर सांप्रदायिक पुराणों में कहीं शैव और कहीं वैष्णव भी पाषंडी कहे गए हैं। जैसे पद्मपुराण में लिखा है कि 'जो कपाल भस्म और अस्थि धारण करें, जो शंख, चक्र, ऊर्ध्वपुंड्रादि न धारण करें, जो नारायण को शिव और ब्रह्मा के ही बराबर समझें...वे सब पाषंडी हैं'। दे० 'पाषंड'।

२. वेश बनाकर लोगों को धोखा देने और ठगनेवाला। धर्म आदि का झूठा आडंबर खड़ा करनेवाला। ढोंगी। धूर्त।

पाषक—संज्ञा पुं० [सं०] पैर में पहनने का एक गहना।

पाषर(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रखर, प्रा० पक्खर] दे० 'पाखर'। उ०—टाटर पाषर संजति कियो राव। बार नगरी राजा परणवा जाई।—बी० रासो०, पृ० १३।

पाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पत्थर। प्रस्तर। शिला। २. पन्ने और नीलम का एक दोष।—रत्नपरीक्षा (शब्द०)। ३. गंधक।

पाषाणकाल—संज्ञा पुं० [सं० पाषाण + काल] ऐतिहासिक क्रम में वह काल या समय जब लोगों ने पत्थर की वस्तुएँ बनाना सीखा।

पाषाणगर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] हनुसंधिजात नामक एक क्षुद्र रोग। दाढ़ सूजने का रोग।

पाषाणगैरिक—संज्ञा पुं० [सं०] गेरू। गिरिमाटी।

पाषाणचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्रहायण शुक्ला चतुर्दशी। अगहन सुदी चौदस।—तिथितत्व (शब्द०)।

विशेष—इस तिथि को स्त्रियाँ गौरी का पूजन करके रात को पाषाण (पत्थर के ढोंको) के आकार की बड़ियाँ बनाकर खाती हैं।

पाषाणदारक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रस्तर काटने का औजार। पत्थर काटने की छेनी [को०]।

पाषाणभेद—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जो अपनी पत्तियों की सुंदरता के लिये बगीचे में लगाया जाता है। पखानभेद। पथरचूर। पथरचट।

विशेष—वैद्यक में पखानभेद भारी, चिकना तथा मूत्रकृच्छ्र, पथरी, दाह, वात और अतीसार को दूर करनेवाला माना जाता है।

पाषाणभेदक, पाषाणभेदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाषाणभेद'।

पाषाणभेदी—संज्ञा पुं० [सं० पाषाणभेदिन्] पखानभद। पथरचूर।

पाषाणयुग—संज्ञा पुं० [सं० पाषाण + युग] दे० 'पाषाणकाल'।

पाषाणरोग—संज्ञा पुं० [सं०] अश्मरी। पथरी।

पाषाणसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० पाषाणसन्धि] चट्टान के भीतर की गुफा या रिक्त स्थान [को०]।

पाषाणसंभवपल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० पाषाणसम्भवपल्ली] प्रवाल। मूँगा।

पाषाणहृदय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पाषाणहृदया] क्रूर। पत्थर की तरह कठोर दिलवाला।

पाषाणांतक—संज्ञा पुं० [सं० पाषाणान्तक] अश्मंतक तृण।

पाषाणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पत्थर का टुकड़ा जो तौलने के काम में आवे। बटखरा। २. कुंत। भाला (को०)।

पाषाणी—वि० स्त्री० [सं० पाषाण + ई (प्रत्य०)] कठोर हृदयवाली (स्त्री०)। क्रूरहृदया [को०]।

पाषान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पाषाण] दे० 'पाषाण'। उ०—जो न हुती मुहि अवर कोई। तौ दिव्यो पाषान।—पृ० रा०, २४।३८३।

पासंग—संज्ञा पुं० [फा०] १. तराजू की डंडी बराबर न होने पर उसे बराबर करने के लिये उठे हुए पलरे पर रखा हुआ पत्थर या और कोई बोझ। पासंघा।

मुहा०—(किसी का) पासंग भी न होना = किसी के मुकाबले में बहुत कम या कुछ न होना। किसी के पासंग बराबर न होना = दे० (किसी का) 'पसंगा' भी न होना।

२. तराजू की डाँड़ी बराबर न होना। डाँड़ी या पलड़ों का अंतर।

पासंगा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पासंग] दे० 'पासंग'। उ०—बनिया बानि नहिं छोड़ता है, फिर फिर पासंगा मारता है।—पलटू०, पृ० ३४।

पासंजर—संज्ञा पुं० [अं० पैसेंजर] यात्री। मुसाफिर। (लश०)।

पासँग—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पासंग'।

पास[1]—संज्ञा पुं० [सं० पार्श्व] १. बगल। ओर। तरफ। उ०—(क) बैठ पानि रक्षक चहुँ पासा। चले सकल मन परम हुलासा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अति उतुंग जलनिधि चहुँ पासा।—तुलसी (शब्द०)। २. सामीप्य। निकटता। समीपता। जैसे,—(क) उसके पास में भी तो किसी को रहना चाहिए। (ख) बुरे लोगों का पास ठीक नहीं। (ग) उनके पास से हट जाओ।

यौ०—पासपड़ोस। आसपास।

३. अधिकार। कब्जा। रक्षा। पल्ला। (केवल 'के', 'में' और 'से' विभक्तियों के साथ प्रयुक्त)। जैसे,—(क) जब आदमी के पास में धन नहीं रह जाता तब उसकी कोई नहीं सुनता। (ख) दे दो, तुम्हारे पास का क्या जाता है। (ग) हम क्या अपने पास से रुपया देंगे।

पास[2]—अव्य० ? बगल में। निकट। समीप। नजदीक। दूर नहीं। जैसे,—(क) उसके पास जाकर बैठो। (ख) यहाँ से उसका घर पास ही पड़ता है।

यौ०—आसपास = (१) अगल बगल। इधर उधर। समीप में। जैसे,—घर के आस पास कोई पेड़ नहीं है। (२) लगभग। करीब। जैसे,—ठीक देना नहीं मालूम, १०) के आस पास होगा।

मुहा०—(किसी स्त्री के) पास जाना या आना = समागम करना। संयोग करना। पास पास = (१) एक दूसरे के समीप। परस्पर निकट। जैसे,—दोनों पुस्तकें पास पास रखी हैं। (२) लगभग। (किसी के) पास बैठना = (१) बगल में बैठना। निकट बैठना। (२) संगत में रहना। सुहबत में रहना। साथ करना। जैसे,—भले आदमियों के पास बैठने से शिष्टता आती है। (३) पहुँचना। फल या दशा को प्राप्त होना। जैसे,—अब अपने किए के पास बैठ, रोता क्या है? पास बैठनेवाला = संगत में रहनेवाला। साथ करनेवाला। मेल जोल रखनेवाला। (२) मुसाहिब। पार्श्ववर्ती। (किसी स्त्री के) पास रहना = समागम करना। संभोग करना। पास फटकना = निकट जाना। जैसे,—तुम उसके पास न फटकने पाओगे (विशेषतः निषेध वाक्यों में)।

२. अधिकार में। कब्जे में। रक्षा में। पल्ले। जैसे,—तुम्हारे पास कितने रुपए हैं। ३. निकट जाकर। संबोधन करके। किसी के प्रति। किसी से। उ०—(क) माँगत हैं प्रभु पास यह बार बार कर जोरी।—सूर (शब्द०)। (ख) सोई बात भई, बहु बाज्यो नहिं सोच पर्यो, पूछे प्रभु पास याकी न्यूनता बताइए।—प्रियादास (शब्द०)।

पास[3]—संज्ञा पुं० [अं०] १. कहीं जाने का अधिकारचिह्न या पत्र। वह टिकट या आज्ञापत्र जिसे लेकर कहीं बेरोकटोक जा सकें। गमनाधिकार पत्र। राहदारी का परवाना। जैसे,—(क) उन्हें हिंदुस्तान से बाहर जाने का पास मिल गया। (ख) रेलवे के नौकरों को रेल में आने जाने के लिये पास मिलता है। २. किसी राह या स्थान से आगे बढ़ने का संकेत या अवसर।

पास[4]—वि० १. पार किया हुआ। तै किया हुआ। निकट गया हुआ। जैसे,—ट्रेन स्टेशन पास कर गई। २. किसी अवस्था, श्रेणी, कक्षा आदि के आगे निकला हुआ। उन्नति क्रम में कोई निर्दिष्ट स्थिति पार किया हुआ। किसी दरजे के आगे बढ़ा हुआ। जैसे,—आठवाँ दरजा तुमने कब पास किया? ३. जाँच या परीक्षा में ठीक उतरा हुआ। उत्तीर्ण। [illegible]। इम्तहान में कामयाब। फेल का उलटा। जैसे,—(क) वह इस साल इम्तहान में पास हो गया। (ख) उन्होंने सब लड़कों को पास कर दिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

४. स्वीकृत। मंजूर। जैसे,—(क) सभा ने प्रस्ताव पास कर दिया। (ख) कलक्टर ने बिल पास कर दिया। ५. जारी। चलता। प्रचलित।

पास[5]—संज्ञा पुं० [सं० पाश] दे० 'पाश'।

पास[6]—संज्ञा पुं० [सं० [illegible]] दे० '[illegible]'।

पास[7]—संज्ञा पुं० [सं० प्रास (=बिछाना, जमाना)] जौवें के ऊपर उपले जमाने का काम।

पास[8]—संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ों के बाल कतरने की कैंची का दस्ता।

पास[9]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक पहर का समय। पहर। २. निरीक्षण। निगरानी। हिफ़ाजत। रक्षा। ३. लिहाज। शील संकोच [को०]।

यौ०—पासदार=(१) निरीक्षक। (२) पक्षपाती। तरफ़दार। पासदारी=(१) निरीक्षण। (२) पक्षपात। तरफ़दारी।

पासना—क्रि० अ० [सं० पयस (=दूध)] इस अवस्था में होना कि थनों में दूध उतर आवे। थनों में दूध आना। जैसे,—भैंस देर में पासती है (ग्वाले)।

पासनी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राशन] अन्नप्राशन। बच्चे को पहले पहल अनाज चटाने की रीति। उ०—प्रगट पासनी में छवि छाई। युध भर सहित कृपान उठाई।—लाल (शब्द०)।

विशेष—अन्नप्राशन के दिन बालक के सामने अनेक वस्तुएँ रखकर शकुन देखते हैं कि किस वस्तु पर उसका पहले हाथ पड़ता है। उससे यह समझा जाता है कि वही उसकी जीविका होगी।

पासपोर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का का अधिकारपत्र या परवाना जो, एक देश से दूसरे देश को जाते समय, सरकार से प्राप्त करना पड़ता है और जिससे एक देश का मनुष्य दूसरे देश में संरक्षण प्राप्त कर सकता है। अधिकारपत्र। छूट-पत्र। पारपत्र।

विशेष—अनेक देशों में ऐसा नियम है कि उन देशों की सरकारों से पासपोर्ट या अधिकारपत्र प्राप्त किए बिना कोई विदेश नहीं जाने पाता। पासपोर्ट देना या न देना सरकार की इच्छा पर निर्भर है। अवांछनीय व्यक्तियों या राजनीतिक बंदियों को पासपोर्ट नहीं मिलता, क्योंकि इनसे अधिकारियों को आशंका रहती है कि वे विदेशों में जाकर सरकार के विरुद्ध काम करेंगे। हिंदुस्तान से बाहर जानेवालों को भी पासपोर्ट लेना आवश्यक होता है।

२. वह अधिकारपत्र या परवाना जो युद्ध के समय विरोधी देश के लोगों को अपने देश में निरापद पहुँचने के लिये दिया जाता है। ३. बिना नियमित कर या महसूल के विदेश से माल मँगाने या भेजने का प्रमाणपत्र या लाइसेंस।

पासबंद—संज्ञा पुं० [हिं० पास+फ़ा० बंद] दरी बुनने के करघे की वह लकड़ी जिससे ये बँधी रहती है और जो नीचे ऊपर आया करती है।

पासबाँ, पासबान[1]—वि० [फ़ा०] रक्षा करनेवाला। रक्षक।

पासबान[2]—संज्ञा स्त्री० रखेली स्त्री। रखनी (राजपूताना)।

पासबानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] निरीक्षण। देखभाल।

पासबुक—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. बंक की वह पुस्तक जिसमें किसी प्रकार के लेनदेन, का हिसाब किताब हो। २. वह बही या किताब जिसमें दूकानदार उधार दी गई चीजों के नाम लिख-कर खरीददार के पास दस्तखत कराने के लिये भेजता है। ३. वह किताब जिसमें किसी बैंक का हिसाब किताब रहता है।

पासमान(ꣻ)—संज्ञा पुं० [हिं० पास+मान (प्रत्य०)] पास रहनेवाला दास। पार्श्ववर्ती। उ०—ताकी रानी नाम की रत्नावली प्रसिद्ध। पासमान ताकी रही गही भक्ति तजि सिद्ध।—रघुराज (शब्द०)।

पासरणा(ꣻ)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फैलना। छा जाना। प्रसरण। उ०—मगध धरा पासरणा कीजै।—रा० रू०, पृ० २७५।

पासवर्ती(ꣻ)—वि० [सं० पार्श्ववर्ती] दे० 'पार्श्ववर्ती'।

पासवान(ꣻ)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पासमान'।

पाससार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पासासार'।

पासा—संज्ञा पुं० [सं० पाशक, प्रा० पासा] १. हाथीदाँत या हड्डी के उँगली के बराबर वह पहले टुकड़े जिनके पहलों पर बिंदियाँ बनी होती हैं और जिन्हें चौसर के खेलने में खेलाड़ी बारी बारी फेंकते हैं। जिस बल ये पड़ते हैं उसी के अनुसार बिसात पर गोटियाँ चली जाती हैं और अंत में हार जीत होती है। उ०—राजा करे सो न्याय। पासा पड़े सो दाँव (शब्द०)।

मुहा०—(किसी का) पासा पड़ना=(१) पासे का किसी के अनुकूल गिरना। जीत का दाँव पड़ना। (२) भाग्य अनुकूल होना। किसमत जोर करना। पासा पलटना=(१) जिसके अनुकूल पहले पासा गिरता रहा हो उसके प्रतिकूल गिरना। पासे का इस प्रकार पड़ने लगना कि हार होने लगे। दाँव फिरना। (२) अच्छे से मंद भाग्य होना। जमाना बदलना। दिन का फेर होना। (३) युक्ति या तदबीर का उलटा फल होना। पासा फेंकना=(१) अनुकूल या प्रतिकूल दाँव निश्चित करने के लिये पासे का गिराना। भाग्य की परीक्षा करना। किस्मत आजमाना। ऐसे काम में हाथ डालना जिसका फल कुछ भी निश्चित न हो।

२. वह खेल जो पासों से खेला जाता है। चौसर का खेल। विशेष—दे० 'चौसर'। ३. मोटी बत्ती के आकार में लाई हुई वस्तु। कामी। गुल्ली। जैसे, सोने के पासे। ४. पीतल या काँसे का चौखूँटा लंबा ठप्पा जिसमें छोटे छोटे गोल गड्ढे बने होते हैं। घुँघरू या लोंग घुंडी बनाने में सुनार सोने के पत्तर को इसी पर रखकर ठोकते हैं जिससे वह कटोरी के आकार का गहरा हो जाता है (सुनार)।

पासान(ꣻ)—संज्ञा पुं० [सं० पाषाण] दे० 'पाषाण'। उ०—पासान कुट्टिम भीति भीतर गूह उप्पर परिया।—कीर्ति०, पृ० २६।

पासार(ꣻ)—संज्ञा पुं० [सं० प्रसार] फैलाव। दे० 'पसार'। उ०—बट के बीज जैस आकार। पसरयो तीन लोक पासार।—संत वाणी०, भा०२, पृ० ३५।

पासासार—संज्ञा पुं० [सं० पाशक हिं० पासा+सं० सारि=(गोटी)] १. पासे की गोटी। २. पासे का खेल।

पासाह(ꣻ)—संज्ञा पुं० [फ़ा० बादशाह] राजा। अधिपति। बादशाह।

उ०—आप भया पासाह कौन के मुजरे जावै। —पलटू०, पृ० २१।

पासाही†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पातशाही'। उ०—निरगुन सरगुन दोउ न जाही। तेहि बर सत करै पासाही।—घट०, पृ० २११।

पासि⑤—संज्ञा पुं० [सं०] फंदा। पाश।

पासिक—संज्ञा पुं० [सं० पाश] पास। फंदा। जाल। बंधन। उ०—संचत लोभ दसो दिसि को महि, मोह महा हत पासिक डारे।—केशव (शब्द०)।

पासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पास। फंदा। जाल। बंधन। उ०—भ्रूव तेग, सुनैन के बान लिए मति बेसरि की संग पासिका है। वह भावन की परकासिका है सुव बासिका चोर बिनासिका है।—मतिराम (शब्द०)।

पासी[1]—संज्ञा पुं० [सं० पाशिन्, पाशी] १. जाल या फंदा डालकर चिड़िया पकड़नेवाला। २. एक नीच और अस्पृश्य मानी जानेवाली जाति जो मथुरा से पूरब की ओर पाई जाती है।

विशेष—इस जाति के लोग सूअर पालते तथा कहीं कहीं ताड़ पर से ताड़ी निकालने का काम करते हैं। प्राचीन काल में इनके पूर्वज प्राणदंड पाए हुए अपराधियों के गले में फाँसी का फंदा लगाते थे इसी से यह नाम पड़ा।

पासी—संज्ञा स्त्री० [सं० पाश, हिं० पास + ई (प्रत्य०)] १. फंदा। फाँस। पाश। फाँसी। २. घास बाँधने की जाली। ३. घोड़े के पैर बाँधने की रस्सी। पिछाड़ी।

पासीहारा⑤—संज्ञा पुं० [हिं० पासी (= फाँसी+हारा (प्रत्य०)] वह व्यक्ति जो फाँसी लगाता है। फाँसीवाला। उ०—यहु ऐसा रूप छलावा। ठग पासीहारा आवा। सब ऐसा देखि बिचारे। ये प्रानघात बटवारे।—दादू०, पृ० ५४६।

पासुरी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पसली'।

पाहँ⑤—अव्य० [सं० पार्श्व, प्रा० पास, पाह] १. निकट। समीप। पास। उ०—मैं जानेउ तुम्ह मोही माहाँ। देखौं ताकि तौ ही सब पाहाँ।—जायसी (शब्द०)। २. पास जाकर। संबोधन करके। किसी के प्रति। किसी से। उ०—जाइ कहौ उन पाहँ सँदेसू।—जायसी (शब्द०)।

पाह[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाहन] एक प्रकार का पत्थर जिससे लौंग, फिटकरी और अफीम को घिसकर आँख पर चढ़ाने का लेप बनाते हैं।

पाह[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'प्यास'। उ०—कोटि अरब्ब खरब्ब असंधि प्रिथी पति होन की पाह जगैगी।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४२३।

पाहण⑤—संज्ञा पुं० [हिं० पाषाण, प्रा० पाहण] दे० 'पाषाण'। उ०—जब तिरिया पाहण सुभक पतधित नाम प्रताप।—रघु० रू०, पृ० २।

[illegible]—संज्ञा पुं० [सं०] शहतूत का वृक्ष [illegible]।

पाहन⑤—संज्ञा पुं० [सं० पाषाण प्रा० पाहण, पाहन] १. पत्थर। प्रस्तर। उ०—(क) महिमा यह न जलधि कै बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पाहन ते हरि कठिन कियो हिय कहत न कछु बनि आई।—सूर (शब्द०)। २. पारस पत्थर। स्पर्श मणि।

पाहरू⑤†—संज्ञा पुं० [सं० प्रहर, हिं० पहर, पहरा] पहरा देनेवाला। पहरेदार। चौकसी करनेवाला। रखवाली करनेवाला। उ०—(क) नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद यंत्रिका प्रान जाहिं केहि बाट।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जागत कामी चिंतित चकोर, बिरही बिरहिन पाहरू चोर।—तुलसी (शब्द०)।

पाहा—संज्ञा पुं० [सं० पथ, हिं० पाथ] पान की बेलों या किसी ऊँची फसल के खेतों के बीच का रास्ता। मेड़।

पाहाल—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मदारु वृक्ष। शहतूत का पेड़।

पाहिं—अव्य० [सं० पार्श्व, प्रा० पास, पाह] १. पास। निकट। समीप। २. पास जाकर। संबोधन करके। किसी के प्रति। किसी से। उ०—कोउ न बुझाइ कहै नृप पाहीं। ये बालक, अस हठ भल नाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

पाहि—क्रिया पद [सं०] एक संस्कृत पद जिसका अर्थ है 'रक्षा करो', 'बचाओ'। उ०—पाहि पाहि ! रघुबीर गुसाईं।—तुलसी (शब्द०)।

पाहीं—अव्य० [सं० पार्श्व] दे० 'पाहिं'। उ०—निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। ताते बिनय करौं सब पाहीं।—मानस १।८।

पाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाह] वह खेती जिसका किसान दूसरे गाँव में रहता है।

पाहुँच—संज्ञा स्त्री० [हिं० पहुँचना] दे० 'पहुँच'। उ०—आपनी भाँति सब काहू कही है। मंदोदरी, महोदर, माल्यवान, महामति राजनीति पाहुँच जहाँ लौं जाकी रही है।—तुलसी (शब्द०)।

पाहुन⑤—संज्ञा पुं० [हिं० पाहुना] दे० 'पाहुना'।

पाहुना—संज्ञा पुं० [सं० प्राघूर्ण, प्राघूर्णक प्राघुण (= अतिथि); अथवा सं० उप० प्र+आह्वयनेय, प्राह्वयनेय, पा० पाहुणेय्य] [स्त्री० पाहुनी] १. अतिथि। मेहमान। अभ्यागत। संबंधी, इष्ट-मित्र या कोई अपरिचित मनुष्य जो अपने यहाँ आ जाय और जिसका सत्कार उचित हो। २. दामाद। जामाता।

विशेष—इस शब्द की व्युत्पत्ति यों तो प्राघुण से सुगम जान पड़ती है। पर प्राघुण शब्द प्राघूर्ण से ही बनाया गया है। प्राघूर्ण शब्द का प्रयोग भी प्राचीन नहीं है। कथा सरित्सागर में प्राघुण और पंचतंत्र में प्राघूर्ण शब्द आया है। नैषध में भी प्राघुणिक मिलता है। कोशों में तो 'प्राघुर्ण' तक संस्कृत शब्दवत् आया है। पृथ्वीराज रासो (६६।१९७) में 'प्राहुन्ना' शब्द का प्रयोग मिलता है—'विमंन राय [illegible] [illegible] प्राहुन्ना आया फिरै'। पाली का 'पाहुणेय' शब्द इस

सबसे पुराना प्रतीत होता है और उसकी व्युत्पत्ति वही है जो ऊपर दी गई है।

पाहुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाहुना] स्त्री अतिथि। अभ्यागत स्त्री। मेहमान औरत। उ०—पाहुनी करि दै तनक मह्यो। हौं लागी गृहकाज रसोई जसुमति बिनय कह्यो।—सूर (शब्द०)। २. आतिथ्य। मेहमानदारी। अतिथि का आदर सत्कार। खातिर तवाजा।

पाहुर—संज्ञा पुं० [सं० प्राभृत, प्रा० पाहुड (=भेंट)] १. भेंट। नजर। वह द्रव्य जो किसी के संमानार्थ उसे दिया जाय। २. वह वस्तु या धन जो किसी संबंधी या इष्टमित्र के यहाँ व्यवहार में भेजा जाय। सौगात।

पाहू—संज्ञा पुं० [?] मनुष्य। व्यक्ति। शख्स।

पिंग[1]—वि० [सं० पिङ्ग] १. पीला। पीलापन लिए हुए। २. भूरापन लिए लाल। तामड़ा। दीपशिखा के रंग का। उ०—सित सरोज पर क्रीड़ा करना जैसे मधुमय पिंग पराग।—कामायनी, पु० २३। ३. सुँघनी रंग का। भूरापन लिए पीला।

यौ०—पिंगचक्षु। पिंगजट। पिंगलोचन। पिंगाक्ष। पिंगास्य।

पिंग[2]—संज्ञा पुं० १. भैंसा। २. चूहा। मूसा। ३. हरताल। ४. पिंग वर्ण या रंग।

पिंगकपिशा—संज्ञा स्त्री० [सं० पिङ्गकपिशा] गुबरैले के आकार का एक कीड़ा जिसका रंग काला और तामड़ा होता है। तेलपायी। तेलचटा।

पिंगचक्षु[1]—वि० [सं० पिङ्गचक्षुस्] जिसकी आँखें भूरे या तामड़े रंग की हों।

पिंगचक्षु[2]—संज्ञा पुं० १. नक्र नामक जलजंतु। नाक। २. कर्कट। केकड़ा [को०]।

पिंगजट—संज्ञा पुं० [सं० पिङ्गजट] शिव [को०]।

पिंगमूल—संज्ञा पुं० [सं० पिङ्गमूल] गाजर [को०]।

पिंगल[1]—वि० [सं० पिङ्गल] १. पीला। पीत। २. भूरापन लिए लाल। दीपशिखा के रंग का तामड़ा। ३. भूरापन लिए पीला। सुँघनी रंग का। ऊदे रंग का।

पिंगल[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्राचीन मुनि या आचार्य जिन्होंने छंदः सूत्र बनाए। ये छंदःशास्त्र के आदि आचार्य माने जाते हैं और इनके ग्रंथ की गणना वेदांगों में है। २. उक्त मुनि का बनाया छंदःशास्त्र। ३. छंदःशास्त्र। ४. साठ संवत्सरों में से ५१वाँ संवत्सर। ५. एक नाग का नाम। ६. भैरव राग का एक पुत्र अर्थात् एक राग जो सबेरे गाया जाता है। ७. सूर्य का एक पारिपार्श्विक या गण। ८. एक निधि का नाम। ९. बंदर। कपि। १०. अग्नि। ११. नकुल। नेवला। १२. एक यक्ष का नाम। १३. एक पर्वत का नाम। १४. मार्कंडेय पुराण में वर्णित भारत के उत्तर पश्चिम में एक देश। १५. पीतल। १६. हरताल। १७. उल्लू पक्षी। १८. उशीर। खस। १९. रास्ना। २०. एक प्रकार का जमवार साँप। २१. एक प्रकार का स्थावर विष।

पिंगला—संज्ञा स्त्री० [सं० पिङ्गला] १. हठ योग और तंत्र में जो तीन प्रधान नाड़ियाँ मानी गई हैं उनमें से एक।

विशेष—दस नाड़ियों में से इला, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन प्रधान मानी गई हैं। शरीर के बाँएँ भाग में पिंगला नाड़ी होती है। ये तीनों क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वरूपिणी हैं। तंत्रसार में लिखा है, इला नाड़ी में चंद्र और पिंगला नाड़ी में सूर्य का निवास रहता है। जिस समय पिंगला नाड़ी कार्य करती है उस समय साँस दाहिने नथने से निकलती है। प्राणतोषिणी में बहुत से कार्य गिनाए गए हैं जो यदि पिंगला नाड़ी के कार्यकाल में किए जायँ तो शुभ फल देते हैं—जैसे, कठिन विषयों का पठनपाठन, स्त्रीप्रसंग, नाव पर चढ़ना, सुरापान, शत्रु के नगर ढाना, पशु बेचना, जुआ खेलना, इत्यादि।

२. लक्ष्मी का नाम। ३. गोरोचन। ४. शीशम का पेड़। ५. एक चिड़िया। ६. राजनीति। ७. दक्षिण दिग्गज की स्त्री। ८. एक धातु। पीतल (को०)। ९. एक वेश्या का नाम।

विशेष—इसकी कथा भागवत में इस प्रकार है। विदेह नगर में पिंगला नाम की एक वेश्या रहती थी। उसने एक दिन एक सुंदर धनिक को जाते देखा। उसके लिये वह बेचैन हो उठी पर वह न आया। रात भर वह उसी की चिंता में पड़ी रही। अंत में उसने विचार किया कि मैं कैसी नासमझ हूँ कि पास में कांत रहते दूर के कांत के लिये मर रही हूँ। इस प्रकार उसे यह ज्ञान हो गया कि आशा ही सारे दुःखों का मूल है। जिन्होंने सब प्रकार की आशा छोड़ दी है वे ही सुखी हैं। उसने भगवान् के चरणों में चित्त लगाया और शांति प्राप्त की। महाभारत में भी जहाँ भीष्म ने युधिष्ठिर को मोक्ष धर्म का उपदेश किया है वहाँ इस पिंगला वेश्या का उदाहरण दिया है। सांख्यसूत्र में भी 'निराशः सुखी पिंगलावत्' आया है।

पिंगलाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पिङ्गलाक्ष] शिव [को०]।

पिंगलोह—संज्ञा पुं० [सं० पिङ्गलोह] पीतल [को०]।

पिंगलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पिङ्गलिका] १. बगला। बलाका। २. एक प्रकार का उल्लू (को०)। ३. मक्खी की जाति का एक कीड़ा जिसके काटने से जलन और सूजन होती है (सुश्रुत)।

पिंगलित—वि० [सं० पिङ्गलित] पिंगल वर्ण का।

पिंगसार—संज्ञा पुं० [सं० पिङ्गसार] हरताल।

पिंगस्फटिक—संज्ञा पुं० [सं० पिङ्गस्फटिक] गोमेदक मणि।

पिंगा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पिङ्गा] १. गोरोचन। २. हींग। ३. हलदी। ४. वंसलोचन। ५. चंडिका देवी। ६. धनुष की डोरी। प्रत्यंचा (को०)। ७ एक रक्तवाहिनी नाड़ी।

पिंगा[2]—संज्ञा पुं० [सं० पङ्गु] १. वह पुरुष जिसके पैर टेढ़े हों। २. वह जिसकी आँखें पिंगवर्ण हों। पिंगाक्ष।

पिंगाक्ष[1]—वि० [सं० पिङ्गाक्ष] [वि० स्त्री० पिंगाक्षी] जिसकी आँखें भूरी या तामड़े रंग की हों।

पिंगाक्ष²—संज्ञा पुं० १. शिवा। २. कुंभीर। नक्र नामक जलजंतु। नाक। ३. बिल्ली। ४, एक कपि। हनुमान। ५. वनमानुस (को०)। ६. कर्कट। केकड़ा (को०)।

पिंगाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० पिङ्गाक्षी] कुमार की अनुचरी एक मातृका।

पिंगाला—संज्ञा पुं० [सं० पिङ्गल] १. एक प्रकार की मछली जिसे बंगाल में पांगास कहते हैं। २. गाँव का मुखिया या चौधरी। ३. चोखा सोना।

पिंगाशी—संज्ञा स्त्री० [सं० पिङ्गाशा] नील का पेड़।

पिंगास्य—संज्ञा पुं० [सं० पिङ्गास्य] पिंगाश मछली [को०]।

पिंगिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० पिङ्गिमन्] पीला रंग [को०]।

पिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० पिङ्गी] १. शमी का पेड़। २. चुहिया (को०)। ३. कपिंजल नामक पक्षी। उ०—चल्यौ पहु पिंगी निकर—पृ० रा०, २४। २६७।

पिंगूरा—संज्ञा पुं० [हिं० पेंग] रस्सियों के आधार पर टँगा हुआ खटोला जिसपर बच्चों को सुलाकर इधर से उधर झुलाते हैं। झूला। पालना।

पिंगेक्षण—वि० संज्ञा पुं० [सं० पिङ्गेक्षण] दे० 'पिंगाक्ष'।

पिंगेश—संज्ञा पुं० [सं० पिङ्गेश] अग्नि का एक नाम।

पिंघूरा⑤—संज्ञा पुं० [हिं० पेंग] पालना। झूला। उ०—भूख न दूध धाइ का पीवै, मा कै चूसी फूलै। सदा मुदित रोवै नहिं कबहूं परचा पिंघूरे झूलै। —सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८७५।

पिंच्छ—संज्ञा पुं० [सं० पिच्छ] दे० 'पिच्छ' [को०]।

पिंज¹—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्ज] १. बल। २. वध। ३. एक प्रकार का कपूर। ४. चंद्रमा (को०)। ५. समूह। संग्रह (को०)।

पिंज²—वि० व्याकुल।

पिंजक—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जक] हरताल।

पिंजट—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जट] आँख का मल। कीचड़।

पिंजड़ा—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जर] दे० 'पिंजरा'।

पिंजन—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जन] १. वह धनुष या कमान जिससे धुनिए रुई धुनते हैं। धुनकी। २. रुई आदि धुनना (को०)।

पिंजर¹—वि० [सं० पिञ्जर] १. पीला। पीतवर्ण का। २. भूरापन लिए लाल रंग का। ३. ललाई या भूरापन लिए पीला। कुँवनिया। भूरे रंग का।

पिंजर²—संज्ञा पुं० १. पिंजड़ा। २. शरीर के भीतर का हड्डियों का ठठ्ठर। ३. तन। शरीर (लाक्ष०)। उ०—दिन दस नाम सम्हारि ले, जब लगि पिंजर सौस। —कबीर सा० सं०, पृ० ७४। ४. हरताल। ५. सोना। ६. नागकेसर। ७. भूरापन लिए लाल रंग का घोड़ा।

पिंजरक—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जरक]। हरताल।

पिंजरा—संज्ञा पुं० [सं० पञ्जर] लोहे, बाँस आदि की तीलियों का बना हुआ झाबा जिसमें पक्षी पाले जाते हैं।

पिंजरापोल—संज्ञा पुं० [हिं० पिंजरा + पोल (= फाटक)] वह स्थान जहाँ पालने के लिये गाय, बैल आदि चौपाए रखे जाते हैं। पशुशाला। गोशाला।

पिंजरिक—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जरिक] एक प्रकार का बाद्य [को०]।

पिंजरित—वि० [सं० पिञ्जरित] ? पीले रंग का। २. बादामी रंग का [को०]।

पिंजरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० पिञ्जरिमन्] ललाई लिए हुए पीला रंग [को०]।

पिंजल¹—वि० [सं० पिञ्जल] जिसका चेहरा पीला या फीका पड़ गया हो। व्याकुल। घबराया हुआ।

पिंजल²—संज्ञा पुं० १. कुश पत्र। २. हरताल। ३. मंजुवेतस्। जलबेंत।

पिंजली—संज्ञा स्त्री० [सं० पिञ्जली] नोक सहित एक एक बीते के एक में बँधे हुए दो कुशों की चूरी जिसका काम श्राद्ध या होम में पड़ता है।

पिंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० पिञ्जा] १. हलदी। २. रुई। ३. आघात पहुँचाना (को०)।

पिंजान—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जान] स्वर्ण। सोना।

पिंजारा—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जा + हिं० आरा (प्रत्य०)] रुई धुनने-वाला। धुनिया।

पिंजारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] त्रायमाण नाम की ओषधि। गुरचियानी।

पिंजाल—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जाल] स्वर्ण। सोना [को०]।

पिंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पिञ्जिका] रुई की पोली बत्ती जिससे कातने पर बड़ बढ़कर सूत निकलते हैं। पूनी।

पिंजियारा—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जिका (रुई की बत्ती)] रुई ओटनेवाला।

पिंजिल—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जिल] रुई की बत्ती।

पिंजुल—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जुलम्] १. घास का गट्ठर। २. दीपक या लालटेन की बत्ती [को०]।

पिंजूल—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जूलम्] [स्त्री० पिंजूली] दे० 'पिंजुल' [को०]।

पिंजूष—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जूष] कान की मैल। खूँट।

पिंजेट—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जेट] नेत्रमल। आँख का कीचड़।

पिंजोला—संज्ञा स्त्री० [सं० पिञ्जोला] पत्तियों की खड़खड़ाहट [को०]।

पिंजोला—संज्ञा स्त्री० [सं० पिञ्जोला] पत्तियों की सरसराहट। पत्तियों के सरसराने की ध्वनि [को०]।

पिंड¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोई गोल द्रव्यखंड। गोल मटोल टुकड़ा। गोला। २. कोई द्रव्यखंड। ठोस टुकड़ा। ढेला या लोंदा। लुगदा। लुवा। जैसे, मृत्तिकापिंड, लोहपिंड। ३. ढेर। राशि। ४. पके हुए चावल, खीर आदि का हाथ से बाँधा हुआ गोल लोंदा जो श्राद्ध में पितरों को अर्पित किया जाता है।

विशेष—पिंड, [illegible] आदि की [illegible]

का प्रधान कर्तव्य माना जाता है। पिंडदान पाकर पित्रों का पुन्नाम नरक से उद्धार होता है। इसी से पुत्र नाम पड़ा। वि० दे० 'श्राद्ध'।

यौ०—पिंडदान। सपिंड।

५. भोजन। आहार। जीविका। ६. शरीर। देह। ७. कौर। ग्रास (को०)। ८. भिक्षा। भीख (को०)। ९. मांस (को०)। १०. भ्रूण (को०)। ११. पदार्थ। वस्तु (को०)। १२. घर का कोई एक विशेष भाग (को०)। १३ वृत्त के चतुर्थांश का चौबीसवाँ भाग (को०)। १४. कुंभस्थल (को०)। १५. दरवाजे के सामने का छायादार भाग (को०)। १६. सुगंधित पदार्थ। लोबान (को०)। १७. जोड़। योग (को०)। १८. घनत्व (ज्या०)। १९. शक्ति। बल (को०)। २०. लोहा (को०)। २१. ताजा मक्खन (को०)। २२. सेना (को०)। २३. जत। पानी (को०)। २४. ओड्र पुष्प (को०)। २५. पिंडली (को०)।

मुहा० - पिंड छूटना=मुक्त होना। संबंध खतम होना। राहत मिलना। पिंड छोड़ना=साथ न लगा रहना या संबंध न रखना। तंग न करना। पिंड पड़ना=पीछे पड़ना।

पिंड[२]—वि० १. ठोस। २ घना। सघन [को०]।

पिंड[३]—संज्ञा पुं० [सं० पाण्डु] पांडुरोग। पीलिया।

यौ०—पिंडरोग=पीलिया। पिंडरोगी पांडुरोगी।

पिंडकंद—संज्ञा पुं० [सं० पिंडकन्द] पिंडालू।

पिंडक—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डक] १. बोल। गुरमक्की। २. शिलारस। ३. पिंडालू। ४. कवल। ग्रास (को०)। ५. गोला। पिंड (को०)। ६. गाजर (को०)। ७. गोलट (को०)।

पिंडकर—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डकर] मुकर्रर मालगुजारी। स्थिर या नियत कर जैसा आजकल दवामी बंदोबस्तवाले प्रदेशों में है।

पिंडकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डकर्कटी] विलायती पेठा।

पिंडका—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डका] मसूरिका रोग। छोटी चेचक।

पिंडखजूर—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डखर्जूर] एक प्रकार की खजूर जिसके फल मीठे होते हैं। इन फलों का गुड़ भी बनता है। खरक। सेंधी। विशेष दे० 'खजूर'।

पिंडखर्जूर—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डखर्जूर] दे० 'पिंडखजूर' [को०]।

पिंडखर्जूरिका, पिंडखर्जूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डखर्जूरिका, पिण्डखर्जूरी] दे० पिंडखर्जूर'।

पिंडगोस—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डगोस] १. गंधरस। २. बोल।

पिंडज—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डज] सब अंगों के बनने पर गर्भ से सजीव निकलनेवाला जतु, जैसे, चमगादर, नेवला, कुत्ता, बिल्ली, बैल, मनुष्य, इत्यादि जो गर्भ से अंडे के रूप मे न निकले, बने बनाए शरीर के रूप में निकले। जरायुज।

पिंडत‡—संज्ञा पुं० [सं० पण्डित] दे० 'पंडित'।

पिंडतैल—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डतैल] शिलारस (को०)।

पिंडतैलक—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डतैलक] शिलारस।

पिंडद—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डद] १. पिंडा देनेवाला। २. भोजन या आहार देनेवाला। ३. स्वामी। संरक्षक (को०)।

पिंडदान—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डदान] पितरों को पिंड देने का कर्म जो श्राद्ध में किया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

पिंडन—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डन] १. गोल वस्तुएँ बनाना। पिंड के आकार का बनाना। २. ढीला या किनारा। ३. बाँध [को०]।

पिंडनिर्वपण—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डनिर्वपण] पितरो को पिंडदान देना [को०]।

पिंडपात—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डपात] १. पिंडदान। २. भिक्षादान।

पिंडपातिक—पुं० [सं० पिण्डपातिक] वह जो भिक्षा से जीवननिर्वाह करे। भिक्षोपजीवी [को०]।

पिंडपाद, पिंडपाद्य—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डपाद, पिण्डपाद्य] हाथी।

पिंडपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डपुष्प] १. अशोक का फूल। २. जपा पुष्प। अड़हुल। देवी फूल। ३ तगर का फूल। ४ अशोक वृक्ष (को०)। ५. पद्म पुष्प। कमल [को०]।

पिंडपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डपुष्पक] बथुआ का शाक।

पिंडफल—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डफल] कद्दू।

पिंडफला—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डफला] कड़ई तूँबी। कड़ुआ घीया। तितलौकी।

पिंडबीजक—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डबीजक] कनेर का पेड़।

पिंडभाक्[१]—वि० [सं० पिण्डभाग] पिंडभाग प्राप्त करनेवाला।

पिंडभाक्[२]—संज्ञा पुं० पितर जो पिंडभाग को प्राप्त करने के अधिकारी हैं [को०]।

पिंडभृति—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डभृति] जीवित रहने का साधन। आजीविका [को०]।

पिंडमुस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डमुस्ता] नागरमोथा।

पिंडमूल—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डमूल] १. गाजर। २. शलजम।

पिंडमूलक—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डमूलक] गाजर [को०]।

पिंडयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डयज्ञ] पितरों को पिंडदान करने का कृत्य। पिंडदान [को०]।

पिंडरक—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डरक] पुल। सेतु [को०]।

पिंडरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डरिका] १. मजीठ। २. चौलाई का शाक।

पिंडरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्ड] दे० 'पिंडली'।

पिंडरोग—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डरोग] १. रोग जो शरीर में घर किए हो। २. कोढ़।

पिंडरोगी—वि० [सं० पिण्डरोगी] रुग्ण शरीर का।

पिंडल—संज्ञा पुं० [सं०] आने जाने के लिये नदी या नाले पर बना हुआ मार्ग। पुल [को०]।

पिंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्ड] टाँग का ऊपरी पिछला भाग जो मांसल होता है। घुटने के पीछे के गड्ढे से नीचे का भाग जिसमें चढ़ाव उतार होता है।

मुहा०—पिंडली हिलना = पैर थर्राना। भय से कँपकँपी होना।

पिंडलेप—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डलेप] पिंडदान में पिंड का एक विशेष भाग जो वृद्ध पितामह आदि तीन पुरखों को दिया जाता है।

पिंडलोप—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डलोप] १. पिंड देनेवाले वंशजों का क्षय। निर्वंश। २. पिंडदान का कृत्य न होना (को०)।

पिंडवाही—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का कपड़ा।

पिंडवेणु—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डवेणु] एक प्रकार का बाँस (को०)।

पिंडशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डशर्करा] जुआर की बनी शक्कर। यवनाल की चीनी [को०]।

पिंडसंबंध—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डसम्बन्ध] मृत व्यक्ति से जीवित व्यक्ति का ऐसा संबंध जिसके आधार पर जीवित व्यक्ति मृत व्यक्ति को पिंडदान करने का अधिकारी हो सके [को०]।

पिंडस—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डस] भिक्षा द्वारा निर्वाह करनेवाला।

पिंडस्थ—वि० [सं० पिण्डस्थ] मिला हुआ। मिश्रित। ढेर में मिश्रित [को०]।

पिंडस्वेद—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डस्वेद] गरम पुल्टिस [को०]।

पिंडा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड] [स्त्री० अल्पा० पिंडी] १. ठोस या गीली वस्तु का टुकड़ा। २. गोल मटोल टुकड़ा। ढेला या लोंदा। लुगदा। जैसे, आटे का पिंडा, तंबाकू या मिट्टी का पिंडा। ३. मधु, तिल मिली हुई खीर आदि का गोल लोंदा जो श्राद्ध में पितरों को अर्पित किया जाता है।

क्रि० प्र०—देना।

यौ०—पिंडा पानी।

मुहा०—पिंडापानी देना = श्राद्ध और तर्पण करना। पिंडा पारना = पिंडदान करना। उ०—पारे पिंड मीन ले खाई। कहै कबीर लोग बौराई।—कबीर श०, भा० १, पृ० १२।

४. शरीर। देह। तन। जिस्म।

मुहा०—पिंडा फीका होना = जी अच्छा न होना। तबीयत खराब होना। पिंडा धोना = स्नान करना। नहाना।

५. स्त्रियों की गुप्तेंद्रिय। धरन।

पिंडा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डा] १. एक प्रकार की कस्तूरी। २. वंशपत्री। ३. इस्पात। ४. हल्दी।

पिंडा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] करघे में पीछे की ओर लगी हुई एक खूँटी। वि० दे० 'महलवान'।

पिंडाकार—वि० [सं० पिण्डाकार] गोल बँधे हुए लौंदे के आकार का। गोल।

पिंडात—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डात] शिलारस।

पिंडान्वाहार्यक—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डान्वाहार्यक] एक श्राद्ध जो पितृपिंड के उपरांत होता है।

पिंडापा—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डापा] नाड़ी हिंगु।

पिंडाभ—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डाभ] सिह्लक। लोबान [को०]।

पिंडाभ्र—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डाभ्र] ओला। बनौरी। बर्षोपल [को०]।

पिंडायस—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डायस] इस्पात।

पिंडार—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डार] १. एक प्रकार का फल। शाक। पिंडारा। २. क्षपणक। ३. गोप। ४. भैंस का चरवाहा। ५. विकंकत वृक्ष। ६. अकथ्य का कथन। जुगुप्सासूचक शब्द० (को०)।

पिंडारक—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डारक] १. एक नाग का नाम। २. वसुदेव और रोहिणी के एक पुत्र का नाम। ३. एक पवित्र नद का नाम। ४. एक प्राचीन तीर्थ जो गुजरात में समुद्रतट से कोस भर पर है। इसका उल्लेख महाभारत, स्कंदपुराण और लिंगपुराण में है। कहा जाता है, इस तीर्थ में स्नान करके पांडव गोहत्या से छूटे थे।

पिंडारा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डार] एक शाक जो वैद्यक में शीतल और पित्तनाशक माना गया है।

पिंडारा[2]—संज्ञा पुं० दक्षिण की एक जाति जो बहुत दिनों तक मध्य प्रदेश तथा और और स्थानों में लूटपाट किया करती थी। दे० 'पिंडारी'।

पिंडारी—संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण की एक जाति जो पहले कर्णाट, महाराष्ट्र आदि में बसती थी, और खेती करती थी, पीछे अवसर पाकर लूट मार करने लगी और मुसलमान हो गई।

विशेष—मुसलमानों से पिंडारियों में यह भेद है कि वे गोमांस नहीं खाते और देवताओं की पूजा और व्रत उपवास आदि करते हैं। पिंडारी लोग बहुत दिनों तक मरहटों की सेना में थे और लूट पाट में उनका साथ देते थे, यहाँ तक कि पानीपत की लड़ाई में मरहठों की सेना में उनके दो सरदार अठारह हजार सवारों के साथ थे। पीछे मध्यप्रदेश में बसकर पिंडारी चारों ओर घोर लूटपाट करने लगे और प्रजा इनके अत्याचारों से तंग आ गई। जब सन् १८०० के पीछे वे अँगरेजी राज्य में भी उपद्रव करने लगे, तब लार्ड हेस्टिंग्स ने सेनाएँ भेजकर इनका दमन किया।

पिंडालक्तक—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डालक्तक] महावर [को०]।

पिंडालु, पिंडालुक—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डालु, पिण्डालुक] दे० 'पिंडालू' [को०]।

पिंडालू—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्ड + आलु] १. एक प्रकार का कंद या शकरकंद जिसके ऊपर कड़े कड़े सूत से होते हैं। यह खाने में भी मीठा होता है और उबालकर खाया जाता है। सुथनी। पिंडिया। २. एक प्रकार का शफतालू या रतालू।

पिंडाश—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डाश] भिक्षुक। भिखारी [को०]।

पर्या०—पिंडपातिक। पिंडस। पिंडाशक। पिंडाशन। पिंडाशी।

पिंडाशी—संज्ञा पुं० [सं० पिण्डाशिन्] [स्त्री० पिंडाशिनी] भिखारी [को०]।

पिंडाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डाह्वा] नाड़ी हिंगु।

पिंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डि] पिंडी [को०]।

पिंडिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिण्डिका] १. छोटा पिंड। पिंडी। छोटा गोलमटोल टुकड़ा। २. छोटा ढेला या लोंदा। लुगदी। ३. पहिए के बीच का वह गोल भाग जिसमें धुरी पहनाई रहती है। चक्रनाभि। ४. पिंडली। ५. श्वेताम्लिका। इमली। ६. वह पिंडी जिसपर देवमूर्ति स्थापित की जाती है। वेदी।

पिंडित¹—वि॰ [सं॰ पिण्डित] १. पिंड के रूप में बँधा हुआ। दबाकर घनीभूत किया हुआ। २. पिंडी के रूप में लपेटा हुआ। संहत। ३. गणित। गिना हुआ (को॰)। ४. परस्पर मीलित। मिला हुआ (को॰)। ५. गुणित। गुणा किया हुआ।

पिंडित²—संज्ञा पुं॰ १. शिलारस। २. काँसा। ३. गणित।

पिंडितद्रुम—वि॰ [सं॰ पिण्डितद्रुम] वृक्षों से भरा हुआ [को॰]।

पिंडितार्थ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिण्डितार्थ] सारांश [को॰]।

पिंडिनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिण्डिनी] अपराजिता लता।

पिंडिया—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिण्डिक] १. गीली भुरभुरी वस्तु का मुट्ठी से बँधा हुआ लंबोतरा टुकड़ा। लंबोतरी पिंडी। जैसे, मिठाई की पिंड़िया, अचार की पिंड़िया।

क्रि॰ प्र॰—बाँधना।

२. गुड़ की लंबोतरी भेली। मुट्ठी। ३. लपेटे हुए सूत, सुतली या रस्सी का छोटा गोला।

क्रि॰ प्र॰—करना।—बनाना।

पिंडिल¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिण्डिल] १. सेतु। २. गणक।

पिंडिल²—वि॰ १. गणना करने में दक्ष। २. जिसकी पिंडलियाँ बड़ी हों [को॰]।

पिंडिला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिण्डिला] ककड़ी।

पिंडी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिण्डिन्] १. ठोस या गीली वस्तु का छोटा गोल मटोल टुकड़ा। छोटा ढेला या लोंदा। लुगदी। जैसे, आटे की पिंडी, तंबाकू की पिंडी।

क्रि॰ प्र॰—बाँधना।

२. गीली या भुरभुरी वस्तु का मुट्ठी में दबाकर बाँधा हुआ लंबोतरा टुकड़ा। जैसे, खाँड़ की पिंडी, गुड़ की पिंडी। ३ चक्रनेमि। पिंडिका। ४. घीया। कद्दू। लोकी। ५ पिंड खजूर। ६. एक प्रकार का तगर फूल। हजारा तगर। ७. वेदी जिसपर बलिदान किया जाता है। ८. पीठ। पीढ़ा। (को॰)। ९. पिंडली (को॰)। १०. गृह। घर। मकान (को॰)। ११. कसकर लपेटे हुए सूत, रस्सी आदि का गोल लच्छा।

क्रि॰ प्र॰—करना।

पिंडीकरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिण्डीकरण] पिंड का रूप देना। पिंड बनाना [को॰]।

पिंडीतक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिण्डीतक] १. मदन वृक्ष। मैनफल। २. पिंडी तगर। हजारा तगर।

पिंडीपुष्प—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिण्डीपुष्प] अशोक वृक्ष।

पिंडीभवन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिण्डीभवन] पिंड के आकार का होना। पिंडाकार होना [को॰]।

पिंडीर¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिण्डीर] १. अनार। २. समुद्रफेन।

पिंडीर²—वि॰ शुष्क। नीरस [को॰]।

पिंडीशूर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिण्डीशूर] १. घर ही में बैठे बैठे बहादुरी दिखलानेवाला। बाहर आकर कुछ न कर सकनेवाला। २. खाने में बहादुर। पेटू।

पिंडुर(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'पिंडली'।

पिंडुरी(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'पिंडली'। उ॰—पिंडुरी काँपत अंग थहरत लहरि कँप मुख पास। तन स्वेद कन झलकत रहत कोउ चाहि मंद बतास।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ११८।

पिंडुली(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'पिंडली'।

पिंडूक—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'पंडुक'। उ॰—गोवत मिलि पिंडूक संग ता के भाव लखात।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ २३१।

पिंडोदकक्रिया—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिण्डोदकक्रिया] पिंडदान की क्रिया और तर्पण।

पिंडोद्धरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिण्डोद्धरण] पिंडदान में भाग लेना [को॰]।

पिंडोपजीवी—वि॰ [सं॰ पिण्डोपजीविन्] दूसरों के दिए हुए टुकड़ों पर जीवित रहनेवाला। दूसरों के द्वारा पोषण प्राप्त करनेवाला [को॰]।

पिंडोल—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पाण्डु] पीली मिट्टी। पोतनी मिट्टी।

पिंडोलि¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिण्डोलि] थाली या पत्तल पर का अन्न जो खाने से बचा हो।

पिंडोलि²—संज्ञा पुं॰ [?] ऊँट।

पिंडोलिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिण्डोलिका] दे॰ 'पिंडोलि' [को॰]।

पिंधना(पु)†—क्रि॰ स॰ [सं॰ परिधारण] दे॰ 'पहनना'। उ॰—ताम्हि वेश्याहि करो सुखसार मंडंते अलक तिलका पत्रावली खंडंते दिव्यांबर पिंधंते।—कीर्ति॰, पृ॰ ३४।

पिंम‡—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रेमन्, प्रा॰ पेम्म, पेम, पिम्म] दे॰ 'प्रेम'। उ॰—भर भोर अभय भय सील नील। सरसात पिंम रस पिंम पील।—पृ॰ रा॰, २।१७।

पिंशन—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰ पेनशन] दे॰ 'पेनशन'।

पिँगला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिङ्गला] दे॰ 'पिंगला'।

पिँजड़ा, पिँजरा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिञ्जर] १. लोहे, बाँस आदि की तीलियों का बना झाबा जिसमें पक्षी पालते हैं। २. बहुत छोटी जगह (लाक्ष॰)।

पिँजरापोल—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] पशुशाला। गोशाला।

पिँजारा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिञ्जा (=रूई)] रूई धुननेवाला। धुनिया। उ॰—जलाबन्ध मत्ती महो माहि थार्यौ। पिंजारे सतं रूप पीजंत मार्यौ।—पृ॰ रा॰, २१।४५०।

पिँजियारा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिञ्जिकार] रूई ओटनेवाला।

पिँड़की—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'पंडुकी'।

पिँडरी, पिँड़ली—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिण्ड] दे॰ 'पिंडली'।

पिँड़वाही संज्ञा स्त्री॰ [?] एक प्रकार का वस्त्र। उ॰—पठवहिं चीर आनि सब छोरी। सारी कंचुकि पहिरि पटोरी। फुँदिया और कँसिया राती। छायल पिंड़वाही गुजराती।—जायसी (शब्द॰)।

पिँड़िया—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पिण्डिका] दे॰ 'पिंडिया'।

क्रि॰ प्र॰—करना।—बनाना।—बाँधना।

पिँहकारना†—क्रि॰ अ॰ [अनु॰] कोयल, पपीहा, मयूर आदि सुंदर कंठवाले पक्षियों का बोलना। पिहकना। उ॰—पपीहे भी ऋषभ स्वर के साथ पिहकारने लगे।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ १४।

पिअ[1]—वि॰ [सं॰ प्रिय] दे॰ 'प्रिय'।

पिअ[2]—संज्ञा पुं॰ दे॰ 'पिय'।

पिअना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ पीना] दे॰ 'पीना'। उ॰—पिअत नयन पुट रूप पियूषा। मुदित सु असन पाइ जिमि भूखा।—मानस, २।१११।

पिअर‡—वि॰ [सं॰ पीत] दे॰ 'पीला'। उ॰—(क) पिअर उपरना काखा सोती। —मानस, १।३२७। (ख) परिहँस पिअर भए तेहि बासा।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पृ॰ १६७।

पिअरवा‡[1]—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'प्यारा'।

पिअरवा[2]—संज्ञा पुं॰ दे॰ 'पति'।

पिअरवा†[3]—संज्ञा स्त्री॰ [पिअरा (=पीला)] बरतन बनाने की पीले रंग की मिट्टी (कुम्हार)।

पिअराई(पु)**†**—संज्ञा स्त्री [सं॰ पीत, हिं॰ पिअर+आई (प्रत्य॰)] पीलापन।

पिअरिया[1]—संज्ञा पुं॰ [पिअर (=पीला)+इया (प्रत्य॰)] पीले रंग का बैल जो बहुत मजबूत और तेज चलनेवाला होता है।

पिअरिया[2]—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ 'पिअरी'[1]।

पिअरी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ पीअरी] १. हल्दी के रंग में रँगी हुई वह धोती जो विवाह के समय में वर या वधू को पहनाई जाती है।

२. इसी प्रकार पीली रँगी हुई वह धोती जो प्रायः देहाती स्त्रियाँ गंगा जी को चढ़ाती हैं।

क्रि॰ प्र॰—चढ़ाना।

पिअरी[2]—वि॰ स्त्री॰ दे॰ 'पीला'। उ॰—पिअरी झीनी झँगुली साँवरे शरीर खुली बालक दामिनी ओढ़ी मानो बारे बारिधर।—तुलसी (शब्द॰)।

पिआज—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'प्याज'।

पिआन(पु)**†**—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रयाण] दे॰ 'पयान'। उ॰—जल ते निकसि जाँहि किआ पिआना।—प्राण॰, पृ॰ ४४।

पिआना—क्रि॰ स॰ [हिं॰] दे॰ 'पिलाना'।

पिआनो—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'पियानो'।

पिआर†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ अप, पिअ>पिय+रा] दे॰ 'प्यार'।

पिआरा†—वि॰ [हिं॰ अप, पिअ>पिय+रा, हिं॰ प्यारा] दे॰ 'प्यारा'। उ॰—बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन परदोष निहारा।—मानस, १।४।

पिआस†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'प्यास'।

पिआसा†—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'प्यासा'। उ॰—चात्रिक होइ पुकारु पिआसा।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पृ॰ २७७।

पिउ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रिय] पति। खाविंद।

पिउनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'पूनी'।

पिउष, पिऊख(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पीयूष, प्रा॰ पीऊस] दे॰ 'पियूष'। उ॰—(क) मृग मद मयूष जनु पिउष पान।—पृ॰ रा॰, ६।३७। (ख) नाथ पिऊखन अमृत चाखै।—दरिया॰, पृ॰, ६१।

पिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ पिकी] कोयल। कोकिल।

यौ॰—पिकबंधुर। पिकवल्लभ।

विशेष—मीमांसा के भाष्यकार शबर स्वामी ने पिक, तामरस, नेम आदि कुछ शब्दों को म्लेच्छ भाषा से गृहीत बतलाया है।

पिकप्रिया—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बड़ा जामुन।

पिकबंधु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिकबन्धु] आम का पेड़।

पिकबंधुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिकबन्धुर] आम का पेड़।

पिकबयनी(पु)—[सं॰ पिक+वचन, प्रा॰ वयण, हिं॰ बैन + ई (प्रत्य॰)] कोयल की तरह मीठा बोलनेवाली। मधुभाषिणी। उ॰—किसी पिकबयनी की आवाज आकर कान में पड़े तो पूरा आनंद मिले।—श्रीनिवास ग्रं॰, पृ॰ २५३।

पिकबांधव—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिकबान्धव] वसंत ऋतु [को॰]।

पिकबैनी—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'पिकबयनी'। उ॰—राजै मृगनैनी पिकबैनी छबिरैनी बोरी लचकत लंक छीन कटि सोभा भार है।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ३८७।

पिकबैनी—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'पिकबयनी'। उ॰—मनसहु अगम समुझि यह अवसरु कत सकुचति पिकबैनी।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ३१०।

पिकराग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आम का पेड़।

पिकवल्लभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आम का पेड़।

पिकांग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिकाङ्ग] चातक पक्षी।

पिकाक्ष[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ताल मखाना।

पिकाक्ष[2]—वि॰ जिसकी आँखें कोयल के समान हों [को॰]।

पिकानंद—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पिकानन्द] वसंत ऋतु।

पिकी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] कोयल।

पिकेक्षणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] ताल मखाना।

पिकेट—संज्ञा पुं॰ [अं॰] १ पलटनियों का पहरा जो कहीं उपद्रव होने या उसकी आशंका होने पर उसे रोकने के लिये बैठाया जाता है। २. किसी काम को रोकने के लिये दिया जानेवाला पहरा। धरना।

पिकेटिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी बात को रोकने के लिये पहरा देना। धरना। जैसे,—स्वयंसेवक विदेशी वस्त्र की दूकानों के सामने पिकेटिंग कर रहे थे; इससे कोई ग्राहक नहीं आया।

पिक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीस बरस की आयु का हाथी। २. हाथी का बच्चा [को०]।

पिक्खना(५)—क्रि० स० [सं० प्रेक्षण, प्रा० पेक्खण, पिक्खण] दे० 'पेखना'। उ०—वोटा अनेक वरन् किते, पंचसिखा पिक्खिय प्रगट।—ह० रासो, पृ० १०।

पिक्चर—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. चित्र। तस्वीर। २. सिनेमा।

पिगलना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पिघलना'। उ०—सुखबासीलाल (सरोजनी से) जल्दी अपने सफरदाइयों को बुला। (मन में) आखिरकार पिगले, कहिए अब इनकी वो तेजी कहाँ है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ५०।

पिघरना(५)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पिघलना'। उ०—पिघरि चल्यो नवनीत मीत नवनीत सद्स हिय।—नंद ग्रं०, ११।

पिघलना—क्रि० अ० [सं० प्र+गलन] १. ताप के कारण किसी घन पदार्थ का द्रव रूप में होना। गरमी से किसी चीज का गलकर पानी सा हो जाना। द्रवीभूत होना। जैसे, मोम पिघलना, रांगा पिघलना, घी पिघलना। २. चित्त में दया उत्पन्न होना। किसी की दशा पर करुणा उत्पन्न होना। पसीजना। जैसे,—महीनों तक प्रार्थना करने पर अब वे कुछ पिघले हैं।

पिघलाना—क्रि० स० [हिं० पिघलना का प्रे०रूप] १. किसी कड़े पदार्थ को गरमी पहुँचाकर द्रव रूप में लाना। किसी चीज को गरमी पहुँचाकर पानी के रूप में लाना। २. किसी के मन में दया उत्पन्न करना। दयार्द्र करना।

पिचंड—संज्ञा पुं० [सं० पिचण्ड] १. उदर। पेट। २. जानवर का कोई अंग [को०]।

पिचंडक—वि० [सं० पिचण्डक] औदरिक। पेटू [को०]।

पिचंडिक, पिचंडिल—वि० [सं० पिचण्डिक, पिचण्डिल] १. बड़े पेटवाला। तुंदियल। २. मोटा। स्थूलकाय [को०]।

पिच—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'पीक'।

पिचकं—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिचकारी'।

पिचकना—क्रि० अ० [सं० पिच्च (=दबना)] किसी फूले या उभरे हुए तल का दब जाना। जैसे, गाल पिचकना, गिरने के कारण लोटे का पिचकना।

पिचकवाना—क्रि० स० [हिं० पिचकना का प्रे० रूप] पिचकाने का काम दूसरे से कराना। किसी दूसरे को पिचकाने में प्रवृत्त करना।

पिचका[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पिचकना] बड़ी पिचकारी।

पिचका[2]—संज्ञा पुं० दे० 'पिलुकिया'।

पिचकाई(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिचकारी'। उ०—(क) कंचन की पिचकाइयाँ मारत हैं तकि दूरि।—कीत०, पृ० २३। (ख) पहिरे बसन विविध रँग भूषन, करन कनक पिचकाई।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८१।

पिचकाना—क्रि० स० [हिं० पिचकना का प्रे०रूप] फूले या उभरे हुए तल को भीतर की ओर दबाना।

पिचकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिचकना] एक प्रकार का नलदार यंत्र जिसका व्यवहार जल या किसी दूसरे तरल पदार्थ को (नल मे) खींचकर जोर से किसी ओर फेंकने मे होता है।

विशेष—पिचकारी साधारणतः बाँस, शीशे, लोहे, पीतल टीन आदि पदार्थों की बनाई जाती है। इसमें एक लंबा खोखला नल होता है जिसमें एक ओर बहुत महीन छेद होता है और दूसरी ओर का मुँह खुला रहता है। इस नल में एक डाट लगा दी जाती है जिसके ऊपर उसे आगे पीछे हटाने या बढ़ाने के लिये दस्ते समेत कोई छड़ लगी रहती है। जब पिचकारी का बारीक छेदवाला सिरा पानी अथवा किसी दूसरे तरल पदार्थ में रखकर दस्ते की सहायता से भीतरवाली डाट को ऊपर की ओर खींचते हैं तब नीचे के बारीक छेद में से तरल पदार्थ उस नल में भर जाता है और जब पीछे से उस डाट को दबाते हैं तब नल में भरा हुआ तरल पदार्थ जोर से निकलकर कुछ दूरी पर जा गिरता है। साधारणतः इसका प्रयोग होलियों में रंग अथवा महफिलों में गुलाब जल आदि छोड़ने के लिये होता है परंतु आजकल मकान आदि धोने और आग बुझाने के लिये बड़ी बड़ी पिचकारियाँ और जखम आदि धोने के लिये छोटी पिचकारियों का भी उपयोग होने लगा है। इसके अतिरिक्त इधर एक ऐसी पिचकारी चली है जिसके आगे एक छेददार सूई लगी होती है। इस पिचकारी की सूई को शरीर के किसी अंग मे जरा सा चुभाकर अनेक रोगों की औषधों का रक्त या मांसपेशी में प्रवेश भी कराया जाता है।

क्रि० प्र०—चलाना। —छोड़ना। —देना। —मारना। —लगाना।

मुहा०—पिचकारी छूटना या निकलना = किसी स्थान से किसी तरल पदार्थ का बहुत वेग से बाहर निकलना। जैसे, सिर से लहू की पिचकारी छूटना। पिचकारी छोड़ना = किसी तरल पदार्थ को वेग से पिचकारी की भाँति बाहर निकालना। जैसे, पान खाकर पीक की पिचकारी छोड़ना।

पिचकी(५)—संज्ञा स्त्री [हिं० पिचक] दे० 'पिचकारी'।

पिचपिच—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'चिपचिप'।

पिचपिचा—वि० [हिं०] दे० 'चिपचिपा'।

पिचपिचाना—क्रि० अ० [अनु०] घाव या किसी और चीज में से बराबर थोड़ा थोड़ा पदार्थ रसना। पानी निकलना।

पिचपिचाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिचपिचाना] गीले या आर्द्र रहने का भाव। पिचपिचाने का भाव।

पिचरकी(५)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिचकारी'। उ०—भरि सुमति पिचरकी अपने हाथ, हम भरिहैं तुमहिं त्रिलोकनाथ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ९०२।

पिचरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिचकना] एक प्रकार का छोटा कोल्हू जिसकी कोठी छोटी होती है।

पिचलना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'कुचलना'।

पिचवय†—संज्ञा पुं० [?] बटहल। (डिं०)।

पिचव्य—संज्ञा पुं० [सं०] कपास का पौधा [को०]।

पिचाश, पिचासा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पिशाच'।

पिचिंड—वि० [सं० पिचिण्ड] १. उदर। पेट। २. पशु का कोई अंग [को०]।

पिचिंडक—वि० [सं० पिचिण्डिक] पेटू। औदरिक [को०]।

पिचिंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पिचिण्डिका] पिंडली।

पिचिंडी—वि० [सं० पिचिण्डिन्] तोंदिल। तुंदिल [को०]।

पिचीस—वि० [हिं०] दे० 'पचीस'। उ०—पाँचों यार पिचीसों बस कर इनमें चहै कोई होय।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६७।

पिचु—संज्ञा पुं० [सं०] १. रूई। २. एक प्रकार का कोढ़। कोढ़ का एक भेद। ३. एक तौल जो दो तोले के बराबर होती है। ४. एक अन्न (को०)। ५. एक असुर का नाम।

पिचुक—संज्ञा पुं० [सं०] मैनफल का वृक्ष।

पिचुकारीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिचकारी'। उ०—पाप पुन्य दोउ ले पिचुकारी छोड़त हैं बारी बारी।—चरण० बानी, पृ० ७०।

पिचुकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिचकी] १. छोटी पिचकारी। २. वह गुझिया (कचा) जिसमें केवल गुड़ और सोंठ भरी जाती है।

विशेष—यह एक प्रकार का पकवान है जो होली आदि के विशिष्ट अवसरों पर बनता है।

पिचुका—संज्ञा पुं० [हिं० पिचकना] १. पिचकारी। २. गोलगप्पा।

पिचुतूल—संज्ञा पुं० [सं०] कपास की रूई। रूई [को०]।

पिचुमंद—संज्ञा पुं० [सं० पिचुमन्द] नीम का पेड़ [को०]।

पिचुमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] नीम का पेड़।

पिचुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. झाऊ का पेड़ (डिं०)। २. समुद्रफल। ३. रूई। ४. गोताखोर। ५. जलकाक। जलवायस [को०]।

पिचू—संज्ञा पुं० [देश०] १६ माशे की तौल। कर्ष।

पर्या०—अक्ष। तिंदुक। विडाल। परक। सुवर्ण। हंसपद। उदुंबर।

पिचूका—संज्ञा पुं० [हिं० पिचकना] दे० 'पिचुका'।

पिचोतरसो—संज्ञा पुं० [सं० पञ्चोत्तरशत] एक सौ पाँच की संख्या। सौ और पाँच (पहाड़ा)।

पिचट[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैद्यक के अनुसार आँख का एक रोग। २. सीसा। राँगा।

पिचट[२]—वि० दबाकर निचोड़ा या चिपटा किया हुआ [को०]।

पिच्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोलह मोतियों की माला जिसका वजन एक धरन (मोतियों की एक तौल) हो [को०]।

पिच्चिट—संज्ञा पुं० [सं०] एक विषैला कीड़ा [को०]।

पिच्चित[१]—वि० [सं० पिच्च (= दबना, पिचकना)] पिचका हुआ। दबा हुआ। जो दबकर चिपटा हो गया हो।

पिच्चित[२]—संज्ञा पुं० १. वह वस्तु जो दबकर पिचक गई हो या चिपटी हो गई हो। २. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का घाव या क्षत।

विशेष—यह शरीर के किसी भाग पर किसी भारी वस्तु की चोट लगने अथवा दाब पड़ने के कारण होता है। जो स्थान दबता है वह फैलकर चिपटा हो जाता है और प्रायः उस स्थान की हड्डी की भी यही दशा होती है, त्वचा कट जाती है और कटा हुआ भाग रुधिर और मज्जा से चिपचिपा बना रहता है।

पिच्ची—वि० [हिं०] दे० 'पिच्चित'।

पिच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पशु की पूँछ। ऐसी पूँछ जिसपर बाल हों। लांगूल। २. मोर की पूँछ। मयूरपुच्छ। ३. मोर की चोटी। चूड़ा। ४. मोचरस। ५. पंख। डैना (को०)। ६. बाण का पंख (को०)। ७. दुम या पूँछ के पंख। जैसे, मोर का (को०)।

पिच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लांगूल। पूँछ। २. मोचरस।

पिच्छलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम। शिंशिपा।

पिच्छन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु को अत्यंत दबाना। दबाकर चिपटा करने की क्रिया। अत्यंत पीड़न।

पिच्छपाद—संज्ञा पुं० [सं०] पैरों में होनेवाला एक रोग।

पिच्छपादी—वि० [सं० पिच्छपादिन्] जिसको पिच्छपाद हो गया हो। पिच्छपाद रोगयुक्त (घोड़ा)।

पिच्छबाण—संज्ञा पुं० [सं०] बाज। श्येन।

पिच्छभार—संज्ञा पुं० [सं०] मोर की पूँछ।

पिच्छमⓅ—वि० [हिं० पच्छिम] दे० 'पश्चिम'। उ०—पर पिच्छम निरखण मन धारे। परसण हरि द्वारका पधारे।—रा० रू०, पृ० १२।

पिच्छल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोचरस। २. अकासबेल। आकाशवल्ली। ३. शीशम। शिंशिपा वृक्ष। ४. वासुकि के वंश का एक सर्प।

पिच्छल[२]—वि० जिसपर से पैर रपट या फिसल जाय। रपटन-वाला। चिकना।

पिच्छल[३]—वि० [हिं०] दे० 'पिछला'।

पिच्छल[४]—संज्ञा पुं० [हिं० पिछला] जहाज का पिछला भाग। (लश०)।

पिच्छलच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बेर। बदरीवृक्ष। २. पोय। उपोदकी शाक।

पिच्छलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूँछ पर के पंख [को०]।

पिच्छलदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पिच्छलच्छदा'।

पिच्छलपाद—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों के पैर में होनेवाला एक रोग।

पिच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोचरस। २. सुपारी। पुंग वृक्ष। ३. शीशम। ४. नारंगी का वृक्ष। ५. निर्मली का पेड़। ६. आकाशलता। आकाशबेल। ७. आवरण। खोल (को०)। ८. कवच। सनाह (को०)। ९. राशि। समूह (को०)। १०. कतार। पंक्ति। लाइन (को०)। ११. पिंडली (को०)। १२. सर्प की विषाक्त लार। फणिलाला (को०)। १३. घोड़ों का एक रोग। पिच्छलपाद। १४. भात या चावल का माँड़।

पिच्छास्राव—संज्ञा पुं० [सं०] लिबलिबी लार (को०)।

पिच्छिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चँवर। चामर। २. ऊन की चँवरी जो जैनी साधु अपने पास रखते हैं। ३. मोरछल।

पिच्छितिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम।

पिच्छिल¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पिच्छिला] १. सरस और स्निग्ध (पदार्थ)। गीला और चिकना। २. फिसलनेवाला। फिसलन युक्त। जिसपर कोई वस्तु ठहर न सके। जिसपर पड़ने से पैर रपटे। ३. चावल के माँड़ से चुपड़ा हुआ। ४. चूड़ायुक्त (पक्षी)। जिसके सिर पर चूड़ा हो। ५. दुमदार। पूँछवाला (को०)। ६. खट्टा, कोमल, फूला हुआ और कफकारी (पदार्थ) (वैद्यक)।

पिच्छिल²—संज्ञा पुं० १. लसोड़ा। श्लेष्मांतक। २. चावल का माँड़। भक्तमंड(को०)। ३. स्निग्ध सरल व्यंजन (दाल, कढ़ी आदि)।

पिच्छिलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोचरस। २ धामिन का पेड़।

पिच्छिलच्छदा—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेर। बदरी वृक्ष। २. पोय। उपोदकी शाक।

पिच्छिलत्वक्, पिच्छिलत्वच—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नारंगी का पेड़। २. धामिन का पेड़।

पिच्छिलदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पिच्छिलच्छदा'।

पिच्छिलवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निरूहवस्ति का एक भेद। विशेष—दे० 'निरूहवस्ति'।

पिच्छिलसार—संज्ञा पुं० [सं०] मोचरस।

पिच्छिला¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पोई। २. शीशम। ३. सेमल। शाल्मली वृक्ष। ४. तालमखाना। कोकिलाक्ष। ५. वृश्चिकाली जड़ी। वृश्चिका क्षुप। ६. शूली घास। ७. अगर। ८. अलसी। ९. अरवी।

पिच्छिला²—वि० स्त्री० दे० 'पिच्छिल'।

पिछ†—वि० [हिं० पीछे] पीछे। पीछा का समास में प्रयुक्त रूप। जैसे, पिछलगा आदि।

पिछड़ना—क्रि० अ० [हिं० पिछाड़ी+ना (प्रत्य०)] १. पीछे रह जाना। साथ साथ, बराबर या आगे न रहना। २. श्रेणी में आगे या बराबर न रहना।

संयो० क्रि०—जाना।

पिछड़ापन—संज्ञा पुं० [हिं० पिछड़ना+पन (प्रत्य०)] पिछड़ने या पीछे रहने या होने की स्थिति। विकास की विरोधी स्थिति। अविकसित अवस्था।

पिछनावना(पु)—क्रि० स० [हिं० पहचनवाना, गुज० पिछाण, पिछाणवुँ] पहचान कराना। परिचय कराना। उ०—तब भैरव इक गन सरिस किन हुकम हर मंद। विवरि नाम बीरन सबन कहि पिछनावहु चंद।—पृ० रा०, ६।६४।

पिछरना†—क्रि० स० [हिं०] पछाड़ना। मारना। उ०—पकरि कसाई पटकि पिछरना। समुझि देखि निश्चै करि मरना।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३३४।

पिछलगा—संज्ञा पुं० [हिं० पीछे+लगना] १. वह मनुष्य जो किसी के पीछे पीछे चले। अधीन। आश्रित। २. वह आदमी जो अपने स्वतंत्र विचार या सिद्धांत न रखता हो, बल्कि सदा किसी दूसरे के विचारों या सिद्धांतों के अनुसार काम करे। किसी का मतानुयायी। अनुवर्ती। अनुगामी। शिष्य। शागिर्द। चेला। ३. सेवक। नौकर। खिदमतगार।

पिछलगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिछलगा] १. दे० 'पिछलगा'। २. पिछलगा होने का भाव। अनुयायी होना। अनुगमन करना। अनुवर्तन। अनुसरण।

पिछलगू†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पिछलगा'।

पिछलग्गू†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पिछलगा'।

पिछलत्ती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिछला+लात] गधे घोड़े आदि पशुओं का पिछले पैर से पीछे की ओर मारना।

पिछलना—क्रि० अ० [हिं० पीछा] पीछे की ओर हटना या मुड़ना (क्व०)।

पिछलपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीछा+पाही=पैरवाली)] १. चुड़ैल।

विशेष—चुड़ैलों के संबंध में लोगों की धारणा है कि इनके पैरों में एड़ी आगे और पंजे पीछे की ओर होते हैं।

२. जादूगरनी।

पिछला¹—वि० [हिं० पीछा] [स्त्री० पिछली] १. जो किसी वस्तु की पीठ की ओर पड़ता हो। पीछे की ओर का। 'अगला' का उलटा जैसे,—(क) इस मकान का पिछला हिस्सा कुछ कमजोर है। (ख) इस घोड़े की पिछली दोनो टाँगें खराब हैं। २ जो घटना स्थिति आदि के क्रम में किसी के अथवा सबके पीछे पड़ता हो। जिसके पहले या पूर्व मे कुछ और हो या हो चुका हो। बाद का। अनंतर का। पहला का उलटा। जैसे,—अभियुक्त ने अपना पहला बयान तो वापस ले लिया, परंतु पिछले को ज्यों का त्यों रखा है। ३. किसी वस्तु के उत्तर भाग से संबंध रखनेवाला। अंत के भाग का या अंश का। पश्चाद्वर्ती। अंत की ओर का। जैसे—(क) इस पुस्तक के पिछले प्रकरण अधिक उपादेय हैं। (ख) अपने पिछले प्रयत्नों में उन्हें वैसी सफलता नहीं हुई जैसी पहले प्रयत्नों में हुई थी।

मुहा०—पिछला पहर=दो पहर या आधी रात के बाद का

समय। दिन अथवा रात का उत्तर काल। **पिछली रात** = रात्रि का उत्तर काल। रात में आधी रात के बाद का समय। **पिछले काँटे** = (१) परवर्ती काल में। (२) वर्तमान के ठीक पहले के समय में। उ०—मगर, पिछले काँटे वह मानिक के घर बहुत कम आने लगी।—शराबी, पु० ३९।

४. बीता हुआ। गत। जो भूत काल का विषय हो गया हो। पुराना। गुजरा हुआ। जैसे,—पिछली बातों को भूल जाना अच्छा होगा। ५ सबसे निकटस्थ। भूत काल का। उस भूत काल का जो वर्तमान के ठीक पहले रहा हो। गत बातों में से अंतिम या अंत की ओर का। जैसे, पिछले साल आदि।

मुहा०—**पिछला दिन** = वह दिन जो वर्तमान से एक दिन पहले बीता हो। **पिछली रात** = कल की रात। आज से एक दिन पहले बीती हुई रात। गत रात्रि। **पिछली बातों पर खाक डालना** = गत काल की बातों को भुला देना। बीती बात को भुला देना। बीती बात को बिसार देना। उ०—लाडो-चलो, अब पिछली बातों पर खाक डालो।—सैर कु०, पृ० ३३।

पिछला²—संज्ञा पुं० १. पिछले दिन पढ़ा हुआ पाठ। एक दिन पहले पढ़ा हुआ पाठ। आमोख्ता। जैसे,—तुमको अपना पिछला दुहराने में देर लगती है।

क्रि० प्र०—दुहराना।

२. वह खाना जो रोजे के दिनों में मुसलमान लोग कुछ रात रहते खाते हैं। सहरी।

पिछला³—संज्ञा स्त्री० [देश०] पछेली। हाथ में पीछे पहनने का एक आभूषण उ०—कँगने पहुँची, मृदु पहुँचो पर, पिछला, मँझुवा, अगला क्रमतर, चूड़ियाँ, फूल की मठियाँ वर।—आराधना, पृ० ४०।

पिछवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीछा] पीछे की ओर लटकाने का परदा।

पिछवाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पीछा+वाड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० पिछवाड़ी] १. किसी मकान का पीछे का भाग। घर का पृष्ठ भाग। घर का वह भाग जो मुख्य द्वार के विरुद्ध दिशा में हो। २. घर के पीछे का स्थान या जमीन। किसी मकान के पृष्ठ भाग से मिली हुई जमीन। घर की पीठ की ओर का खाली स्थान।

पिछवारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पिछवाड़ा'।

पिछाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीछवाड़ी] १. पिछला भाग। पीछे का हिस्सा। पृष्ठ भाग। २. पंक्ति में अंत का व्यक्ति। ३. वह रस्सी जिससे घोड़े के पिछले पैर बाँधते हैं।

क्रि० प्र०—लगाना।—बाँधना।

पिछान(पु)†—संज्ञा स्त्री [हिं० पहचान] दे० 'पहचान'। उ०—साहिब एक अगम्य है, ताकर करहु पिछान।—कबीर सा०, पृ० ५९९।

पिछानना(पु)—क्रि० स० [हिं० पिछान] दे० 'पहचानना'। उ०—छला परोसिनि हाथ तें छल करि लियो पिछानि।—बिहारी (शब्द०)।

पिछानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पहचान'। उ०—जल तें निकासि बहु भाँति गहि डारी तट 'लीजिये पिछानि' देखि सुधि बुधि गई है।—भक्तमाल, पृ० ४८६।

पिछारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिछाड़ी'।

पिछेलना—क्रि० स० [हिं० पीछे+ऐलना (ठेलना)] १. पीछे ठेलना या करना। उ०—आता है जी में तात यही, पीछे पिछेल व्यवधान मही। झट लोटूँ चरणों में आकर, सुख पाऊँ करस्पर्श पाकर।—साकेत, पृ० १८५। २. किसी कार्य में आगे निकल जाना। पिछाड़ देना।

पिछोंकड़ा‡—संज्ञा पुं० [हिं० पीछे+ओंकड़ा (प्रत्य०)] मकान के पीछे का भाग। पिछवाड़ा। उ०—भीख जन उदास होकर मंदिर के पिछोकड़े जाकर बैठ गया और वहाँ से भगवान् की स्तुति करता हुआ ध्यान करने लगा।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ८५।

पिछौंरा—संज्ञा पुं० [हिं०] [संज्ञा स्त्री० पिछौरी] दे० 'पिछौरा'। उ०—फूलन को मुकुट बन्यों, फूलन को पिछौंरा तन सोहित अति प्यारो बर फूलन को सिंगार।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७९।

पिछौंह†—वि० [हिं० पीछे + औंह (प्रत्य०)] जिसने अपना मुँह पीछे कर लिया हो। किसी के मुँह की ओर जिसकी पीठ पड़ती हो। किसी वस्तु को न देखता हुआ।

पिछौंड़ा†—क्रि० वि० [हिं० पीछा+औड़ा (प्रत्य०)] पीछे की ओर।

पिछौंता—क्रि० वि० [हिं० पीछा+औता (प्रत्य०)] पीछे की ओर।

पिछौंहा†—वि० [हिं० पीछा + औंहा (प्रत्य०)] १. पीछे का। पीछे की ओर का। २. पश्चिमीय। पश्चिम का।

पिछौंही†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिछौरी'।

पिछौंहैं(पु)—क्रि० वि० [हिं० पिछौंहा] पीछे की ओर। पीछे की ओर से। उ०—कहै पदमाकर पिछौंहैं आय आदर से छलिया छबीलो छैल बासर बिते बिते।—पद्माकर (शब्द०)।

पिछौरा—संज्ञा पुं० [सं० पक्षपट ? प्रा० पच्छवड, पछेवड़ा] १. मरदाना दुपट्टा। पुरुषों की चादर। २. ओढ़ने का मोटा कपड़ा।

पिछौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिछौरा] १. स्त्रियों का वह वस्त्र जिसे वे सबसे ऊपर ओढ़ती हैं। स्त्रियों की चादर। उ०—झगा पगा अरु पाग पिछौरी ढाढिन को पहिरायो।—सूर (शब्द०) २. ओढ़ने का वस्त्र। कोई कपड़ा जो ऊपर से डाल लिया जाय।

पिछ्छौ(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'पीछे'। पीछे की ओर। उ०—फौज पिछ्छौ फिरी राज राजग्गरी।—पृ० रा०, २४।२१४।

पिटंकाकी, पिटंकोकी—संज्ञा स्त्री० [सं० पिटङ्काकी, पिटङ्कोकी] इंद्रायन। इद्रवारुणी।

पिटंत—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीटना+अंत (प्रत्य०)] पीटने की क्रिया या भाव। मारपीट। मारकूट।

पिट¹—संज्ञा पुं० [अं०] थिएटर में गैलरी के आगे की सीटें या आसन।

पिट²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी वस्तु के आघात से उत्पन्न ध्वनि।

पिट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिटक। पिटारा। संदूक। २. गृह। मकान। ३. छत। छाजन (को०)।

पिटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिटारा। २. फुड़िया। फुंसी। ३. आभूषण जो इंद्रध्वजा में लगाया जाता है। ४. धान्यकोष्ठ। धान्यागार। कुसुल (को०)। ५. किसी ग्रंथ का एक भाग। ग्रंथविभाग। खंड। हिस्सा। जैसे, त्रिपिटक=तीन भागोंवाला (बौद्ध) ग्रंथ।

पिटका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिटारी। २. फुंसी।

पिटना¹—क्रि० अ० [हिं० पीटना] १. मार खाना। ठोका जाना आघात सहना। उ०—पाछे पर न कुसग के पदमाकर यहि डीठ। परे धन खात कुपेट ज्यों पिटत विचारी पीठ।—पद्माकर (शब्द०)। २. पराजित होना। हार जाना। ३. बजना। आघात पाकर आवाज करना। जैसे, डौंड़ी पिटना, ताली पिटना आदि।

पिटना²—संज्ञा पुं० [हिं० पीटना] वह औजार जिससे किसी वस्तु को विशेषत: चूने आदि की बनी हुई छत को राज लोग पीटते हैं। पीटने का औजार। थापी।

पिटपिट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पिट पिट शब्द। किसी छोटी वस्तु के गिरने का या हलके आघात का शब्द।

पिटपिटाना—क्रि० अ० [अनु०] असमर्थता आदि के कारण हाथ पैर पटककर रह जाना। विवश होकर रह जाना।

पिटमान—संज्ञा पुं० [?] पाल। (लश०)।

पिटरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिटारा+इया (प्रत्य०)] झाँपी। दे० 'पिटारी'।

पिटवाँ—वि० [हिं० पीटना] पीटकर बनाया हुआ।

पिटवाना—क्रि० स० [हिं० पीटना] १ किसी के पिटने या मारे जाने का कारण होना। अन्य के द्वारा किसी पर आघात कराना। ठोकवाना। कुटवाना। मार खिलवाना। २. बजवाना। जैसे, डौंड़ी पिटवाना। ३. पीटने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को पीटने में प्रवृत्त करना।

पिटस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिट्टस'। उ०—मेरे मरगिसी आँखोंवाले बेटा दुल्हन लाश पर खडी है आखिरी दीदार तो दो। इस फिकरे पर पिटस पड गई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६१३।

पिटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीटना] १. पीटने का काम या भाव। जैसे, छत की पिटाई। २. आघात। प्रहार। मार। मारकूट। ३. पीटने की मजदूरी। ४. मारने का पुरस्कार। ५. पिटवाने की मजदूरी।

पिटाक—संज्ञा पुं० [सं०] पिटारा। संदूक। बक्स (को०)।

पिटापिट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीटना] मारपीट। मारकूट। किसी वस्तु को कुछ समय तक बराबर पीटना। जैसे,—वहाँ खूब पिटापिट मची रही।

पिटारा—संज्ञा पुं० [सं० पिटक] [स्त्री० पिटारी] १. बाँस, बेत, मूँज आदि के नरम छिलकों से बना हुआ एक प्रकार का बड़ा सपुट या ढकनेदार पात्र। झाँपा।

विशेष—इसका घेरा गोल, तल बिलकुल चिपटा और ढकना ढालुवाँ गोल अथवा बीच में उठा हुआ होता है। पहले पिटारे का व्यवहार बहुत था, पर तरह तरह के ट्रंकों के प्रचार के कारण इसका व्यवहार घटता जाता है। बाँस आदि की अपेक्षा मूँज और बेंत का पिटारा अधिक मजबूत होता है। मजबूती के लिये अक्सर इसको चमड़े या किसी मोटे कपड़े से मढ़वा देते हैं। आजकल लाहे के पतले गोल तारों से भी पिटारे बनते हैं।

२. बड़ा गुब्बारा।

पिटारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिटारा का स्त्री० और अल्पा०] १. छोटा पिटारा। झाँपी। २. पान रखने का बरतन। पानदान।

मुहा०—**पिटारी का खर्च**=(१) वह धन जो स्त्रियों के पान के खर्च के लिये दिया जाय। पानदान का खर्च। (२) वह धन जो किसी स्त्री को व्यभिचार से प्राप्त हो। व्यभिचार की कमाई।

पिटिक्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिटारों का समूह (को०)।

पिटौर—संज्ञा पुं० [हिं० √पीट+औैर (प्रत्य०)] वह डंडा या लाठी जिससे फसल की बालों आदि को पीटकर उसके दाने निकालते हैं। पिटना।

पिट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत की मैल।

पिट्टन—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीटना] रोने पीटने की क्रिया या भाव। पिट्टस।

क्रि० प्र०—पड़ना।

पिट्टस—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीटना+स (प्रत्य०)] शोक या दु:ख से छाती पीटने की क्रिया। (स्त्रि०)।

मुहा०—**पिट्टस पड़ना या मचना**=शोक या दु:ख में छाती पीटा जाना। रोना धोना होना। हाय हाय मचना। जैसे,—यह खबर सुनते ही वहाँ पिट्टस पड गई।

पिट्टू—वि० [हिं० पिट्ट+ऊ (प्रत्य०)] जो प्राय: पीटा जाय। मार खाने का अभ्यस्त।

पिट्ठ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पीठ'। उ०—तजे विन आयुध पिट्ठि दिखाय।—ह० रासो, पृ० ८।

पिट्ठू¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पीठी'।

पिट्ठू²—संज्ञा पुं० [हिं० पिट्ठ+ऊ (प्रत्य०)] १. पीछे चलनेवाला। पिछलगा। अनुयायी। २. सहायक। मददगार। पृष्ठपोषक। हिमायती। ३. किसी खिलाड़ी का वह कल्पित साथी जिसकी बारी में वह स्वयं खेलता है।

विशेष—जब दोनों पक्षों के खिलाड़ियों की सख्या बराबर नहीं होती तब न्यूनसंख्यक पक्ष के एक दो खिलाड़ी अपने अपने साथ एक एक पिट्ठू मान लेते हैं और अपनी बारी खेल

चुकने पर दूसरी बार उस पिट्ठु को बारी लेकर खेलते हैं। ४. खेल मे साथ रहनेवाला। ५. अंधानुकरण करनेवाला। बिना समझे बूझे किसी का अनुयायी होनेवाला। ६. किसी की हर एक बात का समर्थन करनेवाला। हाँ में हाँ मिलानेवाला। खुशामदी।

पिठमिलना—संज्ञा पुं० [हिं० पीठ+मिलना] अंगरखे या कोट आदि का वह भाग जो पीठ पर रहता है। पीठ।

पिठर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोथा। मुस्तक। २. मथानी। मथनदंड। ३. थाली। ४. एक प्रकार का घर। ५. एक अग्नि। ६. एक दानव।

पिठरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. थाली। पात्र। बर्तन। २. एक नाग का नाम।

पिठरककपाल—संज्ञा पुं० [सं०] टूटे हुए बरतन का टुकड़ा (को०)।

पिठरपाक—संज्ञा पुं० [सं०] भिन्न भिन्न परमाणुओं के गुणों में तेज के संयोग से फेरफार होना। जैसे, घड़े का पककर लाल होना।

पिठरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] थाली।

पिठरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. थाली। पात्र। २ राजमुकुट।

पिठवन—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्टपर्णी] एक प्रसिद्ध लता जो औषध के काम में आती है। पिठौनी। पृष्ठपर्णी।

विशेष—यह पश्चिम और बंगाल में अधिकता से पाई जाती है। परंतु दक्षिण में नहीं दिखाई पड़ती। इसके पत्ते छोटे गोल गोल होते है और एक एक डांड़ी मे तीन तीन लगते हैं। फूल गोल और सफेद होते हैं। जड़ कम मिलने के कारण इसकी लता ही प्राय: काम मे लाई जाती है। वैद्यक में इसको कटु, तिक्त, उष्ण, मधुर, धारक, त्रिदोषनाशक, वीर्यजनक, तथा दाह, ज्वर, श्वास, तृषा, रक्तातिसार, वमन, वातरक्त, व्रण और उन्माद आदि का नाशक लिखा है।

पर्या०—कंकशत्रु। कदला। कलशी। ध्यान्टुक। मेखला। क्रोष्टुक। पच्छिका। चक्रकुल्या। चर्कपर्णी। लम्बी। धमनी। दीर्घपर्णी। पृथक्पर्णी। पृश्निपर्णी। चित्रपर्णी। त्रिपर्णी। सिंहपुच्छी। गुहा। पिष्टपर्णी। लांगुली। श्रृगालधूर्ता। मेखला। लांगुलिका। अहपर्णी। सिंहपुष्पी। अंघ्रिपर्णी। विष्णुपर्णी। अतिगुहा। घष्टिला।

पिठो—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिट्ठी'।

पिठीनस—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि।

पिठौनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्टपर्णी, हिं० पिटवन्] दे० 'पिठवन'

पिठौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिट्ठी+औरी (प्रत्य०)] १. पीठी की बनी हुई खाने की कोई चीज, जैसे, बरी पकौरी। २. गुंधे हुए आटे का वह छोटा पेड़ा जो पकती हुई दाल में छोड़ दिया जाता है और नमी में उबलकर पक जाता है। दलफरा।

पिट्ठु⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ, प्रा० पिठ्ठ, हिं० पीठ] दे० 'पीठ'। उ०—असलान निभानहु पिट्ठ दिउ'।—कीर्ति०, पृ० ११२।

पिड़क—संज्ञा पुं० [सं० पिडक] छोटा फोड़ा। फुंसी। स्फोटक।

पिड़का—संज्ञा स्त्री० [सं० पिडका] दे० 'पिड़क'।

पिड़कना—क्रि० अ० [हिं० पिनकना] १. आवेश में आना। २. झुंझलाना।

पिड़काना—क्रि० स० [हिं० पिड़कना] चिढ़ाना। परेशान करना। झुंझलाहट पैदा करना।

पिड़किया—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिचुकिया] एक प्रकार का पकवान गुझिया।

पिड़की—संज्ञा स्त्री० [सं० पिडक] १. दे० 'पिड़क'। २. दे० 'पेंडुकी'।

पिड़गना‡—संज्ञा पुं० [फा० पर्गनह् परगनह्, हिं० परगना] दे० 'परगना'। उ०—बावन पिड़गना तो रायसल नै साहि दीनौ। —शिखर०, पृ० २०२।

पिड़भू†—संज्ञा, स्त्री० [सं० पिण्ड+भूमि] युद्धभूमि। रणक्षेत्र। उ०—पिड़भू भीम पछाड़ियो, खुरम गयो कर खेह। —बाँकीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ७३।

पिड़वार†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिपदा, हिं० पड़िवा] दे० 'प्रतिपदा', उ०—असुरां सिर आयो असो, पिड़वारै परभात।—रा० रू०, पृ० २७६।

पिड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० पिडका] दे० 'पिड़का'। उ०—भोज और सुश्रुत के मत से नौ पिड़िका हैं और चरक के मत से सात ही।—माधव०, पृ० १८७।

पिड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० पिष्टक या पिण्डिका अथवा हिं० पेड़ा] १ चावल का गुंधा हुआ आटा जो लबोतरे पेड़े के आकार का बनाकर अदहन मे छोड़ दिया जाता है और उबल जाने पर खाया जाता है। २. लंबोतरे और गोल आकार के सत्तू की बड़ी हुई पिंडिका।

पिड़ुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिंडरी'। उ०—जाँघें भर आईं और पिड़ुरी थरथराने लगी।—श्यामा०, पृ० १२१।

पिढ़ई—स्त्री० स्त्री० [हिं० पीढ़ा+अई (प्रत्य०)] १. छोटा पीढ़ा या पाटा। २. किसी छोटे यंत्र का आधार जो छोटे पीढ़े के समान हो। वह ढाँचा जिसपर कोई छोटा यंत्र रखा रहे, जैसे, रहँट का।

पिढ़ियानी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीढ़ा+पानी] आगत को बैठने के लिये पाटा और हाथ मुँह धोने के लिये जल। पीढ़ा और पानी। उ० -के तों थिकाहु कहर कुल जानी। बिनु परिचय नहि दिव पिढ़ियानी।—विद्यापति, पृ० ३६३।

पिढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० पीठिका] १. मचिया। उ०—कोऊ कहै बलि पाँवरी लावो। बलि बलि मोहि पिढ़ी पकरावो।—नंद ग्रं०, पृ० २१५। २. दे० 'पीढ़ी'।

पिण⑤—अव्य० [सं० पुन: ?] १. परंतु। किंतु। लेकिन। उ०—पुणजै सुध अखरोट पिण, मैं दश दोस असाध।—रघु० रू०, पृ० १३। २. भी। उ०—म्हे पिण जास्यां नरवरह, एकण साथ खड़ांह।—ढोला०, दू० ६२८।

पियणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी।

पिएयाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल या सरसों की खली । २. हींग । ३. शिलाजीत । ४. शिलारस । सिह्लक । ५. केसर ।

पितंबर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पीताम्बर] दे० 'पीतांबर'। उ०—(क) ओढ़ि पितंबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी । रसखान०, पु० १३ । (ख) चोलिया पहिरि धनि चली है गवनवाँ, सेत पितबर लागे हिंडोल ।—धरनी० श०, पु० ७० ।

पितपापड़ा—संज्ञा पुं० [सं० पीतपर्पट] एक झाड़ या क्षुप जिसका उपयोग औषध के रूप में होता है ।

विशेष—इसे दवनपापड़ा भी कहते हैं । इसके दो भेद होते हैं—एक में लाल फूल लगते हैं, दूसरे मे नीले । लाल फूलवाला अधिक गुणदायक माना जाता है । वैद्यक मे इसको शीतल, कड़वा, मलरोधक, बात को कुपित करनेवाला, हलका तथा श्रम, मद, प्रमेह, तृषा, पित्त, कफ, ज्वर, रक्तविकार, अरुचि, दाह, ग्लानि और रक्तपित्त को नष्ट करनेवाला माना है ।

पर्या०—पर्पट । वरतिक्त । पांशुपर्याय । कवचनामक । प्रियछि । तिक्त । चरक । वरक । अरक । रेणु । तृष्णारि । शीत । शीतप्रिय । पांशु । कलपांग । वर्मकंटक । कृष्णशाल । प्रगंध । सुतिक्त । रक्तपुष्पक । पित्तारि । कटुपत्र । नक्र । शीतवल्लभ ।

पितर—संज्ञा पुं० [सं० पितृ पितर] मृत पूर्वपुरुष । मरे हुए पुरखे जिनके नाम पर श्राद्ध या जलदान किया जाता है । विशेष—दे० 'पितृ'—२ । उ० —देव पितर सब तुम्हहिं गोसाईं । राखहुँ पलक नयन की नाईं । —मानस, २।५७ ।

पितरपख†—संज्ञा पुं० [सं० पितृपक्ष] दे० 'पितृपक्ष' ।

पितरपच्छ†—संज्ञा पुं० [सं० पितृपक्ष] दे० 'पितृपक्ष' । उ०—पितरपच्छ के दिन आ गए थे ।—नई०, पु० १०२ ।

पितरपति—संज्ञा पुं० [सं० पितृ + सं० पति] यमराज ।

पितराइँध†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीतल + गंध] किसी खाद्य वस्तु के स्वाद और गंध में वह विकार जो पीतल के बरतन मे अधिक समय तक रखे रहने से उत्पन्न हो जाय । पीतल का कसाव ।

पितराई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीतल + आई (प्रत्य०)] पीतल का कसाव । पीतल का स्वाद । पितराइँध । जैसे,—दही में पितराई उतर आई है ।

पितराना—क्रि० अ० [हिं० पीतर से नाम०] पितराइँध आना । पीतल का स्वाद आ जाना । कसाव पैदा होना ।

पितरिहा[1]—वि० [हिं० पीतल + हा (प्रत्य०)] पीतल का । पीतल का बना हुआ ।

पितरिहा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पीतल] पीतल का घड़ा ।

पितल(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पीतल' । उ०—पारस परसि पितल होय सोनू ।—नंद० ग्रं०, पु० १४३ ।

पितलाना—क्रि० अ० [हिं० पीतल से नाम०] दे० 'पितराना' ।

पितससुर—संज्ञा पुं० [हिं० पितिया ससुर] दे० 'पितिया ससुर' ।

पितांबर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पीतांबर' । उ०—और श्री ठाकुर जी ने अपने पितांबर उढ़ायो ।—दो सौ बावन०, भा० २, पु० ७८ ।

पिता—संज्ञा पुं० [सं० पितृ का कर्ता कारक] जन्म देकर पालनपोषण करनेवाला । बाप । जनक ।

पर्या०—तात । जनक । प्रसविता । वप्ता । जनयिता । गुरु । जन्य । जनित । बीजी ।

पितामह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पितामही] १. पिता का पिता । दादा । २. भीष्म । ३. ब्रह्मा । ४. शिव । ५. एक ऋषि जिन्होंने एक धर्मशास्त्र बनाया था ।

पितिजिया—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्रजीवक] इंगुदी की तरह का एक प्रकार का पेड़ । पितौजिया । जियापोता ।

विशेष—इसके पत्ते और फल भी इंगुदी के पत्तों और फलों से मिलते जुलते होते हैं । इसके बीजों की रुद्राक्ष की तरह, माला बनती है । वैद्यक में इसे शीतल, वीर्यवर्धक, कफकारक, गर्भ और जीवदायक, नेत्रों को हितकारी, पित्त को शांत करनेवाला तथा दाह और तृषा को हरनेवाला कहा जाता है ।

पितिया—संज्ञा पुं० [सं० पितृव्य] [स्त्री० पितियानी] चचा । चाचा । बाप का भाई ।

पितियानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पितिया+नी (प्रत्य०)] चाचा की स्त्री । चची । चाची ।

पितियाससुर—संज्ञा पुं० [हिं० पितिया + ससुर] चचिया ससुर । ससुर का भाई । स्त्री या पति का चाचा ।

पितियासासु—संज्ञा स्त्री० [हिं० पितिया + सास] चचिया सास । ससुर के भाई की स्त्री । स्त्री या पति की चाची ।

पितु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पितृ] दे० 'पिता' ।

पितृ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'पिता' । २. किसी व्यक्ति के मृत बाप दादा परदादा आदि । ३. किसी व्यक्ति का ऐसा मृत पूर्वपुरुष जिसका प्रेतत्व छूट चुका हो ।

विशेष—प्रेत कर्म या अंत्येष्टि कर्म संबंधी पुस्तकों मे माना गया है कि मरण और शवदाह के अनंतर मृत व्यक्ति को आतिवाहिक शरीर मिलता है । इसके उपरांत जब उसके पुत्रादि उसके निमित्त दशगात्र का पिंडदान करते हैं तब दशपिंडों से क्रमशः उसके शरीर के दश अंग गठित होकर उसको एक नया शरीर प्राप्त होता है । इस देह मे उसकी प्रेत संज्ञा होती है । षोडश श्राद्ध और सपिंडन के द्वारा क्रमशः उसका यह शरीर भी छूट जाता है और वह एक नया भोगदेह प्राप्त कर अपने बाप दादा और परदादा आदि के साथ पितृलोक का निवासी बनता है अथवा कर्मसंस्कारानुसार स्वर्ग नरक आदि में सुखदुःखादि भोगता है । इसी अवस्था मे उसको पितृ कहते हैं । जबतक प्रेतभाव बना रहता है तब तक मृत व्यक्ति पितृ संज्ञा पाने का अधिकारी नहीं होता । इसी से सपिंडीकरण के पहले जहाँ जहाँ आवश्यकता पड़ती है प्रेत नाम से ही उसका संबोधन किया जाता है । पितरों अर्थात् प्रेतत्व से छूटे हुए पूर्वजों की तृप्ति

के लिये श्राद्ध, तर्पण आदि करना पुत्रादि का कर्तव्य माना गया है। दे० 'श्राद्ध'।

४. एक प्रकार के देवता जो सब जीवों के आदिपूर्वज माने गए हैं।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि ऋषियों से पितर, पितरों से देवता और देवताओं से संपूर्ण स्थावर जंगम जगत् की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मा के पुत्र मनु हुए। मनु के मरीचि, अग्नि आदि पुत्रों की पुत्रपरंपरा ही देवता, दानव, दैत्य, मनुष्य आदि के मूल पुरुष या पितर हैं। विराट्पुत्र सोमदगण साध्यगण के; अत्रिपुत्र वर्हिषद्गण दैत्य, दानव, यक्ष, गंधर्व, सर्प, राक्षस, सुपर्ण, किन्नर और मनुष्यों के; कविपुत्र सोमपा ब्राह्मणों के; अंगिरा के पुत्र हविर्भुज क्षत्रियों के; पुलस्त्य के पुत्र आज्यपा वैश्यों के और वशिष्ठ-पुत्र कालिन शूद्रों के पितर हैं। ये सब मुख्य पितर हैं।—इनके पुत्र पौत्रादि भी अपने अपने वर्गों के पितर हैं। द्विजों के लिये देवकार्य से पितृकार्य का अधिक महत्व है। पितरों के निमित्त जलदान मात्र करने से भी अक्षय सुख मिलता है (मनु० ३।१९४—२०३)।

पितृऋण—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार मनुष्य के तीन ऋणों में से एक जिनको लेकर वह जन्म ग्रहण करता है। पुत्र उत्पन्न करने से इस ऋण से मुक्ति होती है।

पितृक—वि० [सं०] १. पितृसंबंधी। पिता का। पैतृक। २. पितृदत्त। पिता का दिया हुआ।

पितृकर्म—संज्ञा पुं० [सं० पितृकर्मन्] वह कर्म जो पितरों के उद्देश्य से किया जाय। श्राद्ध तर्पण आदि कर्म।

पितृकल्प[1]—संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्धादि कर्म।

पितृकल्प[2]—वि० पिता के समान। पितृतुल्य [को०]।

पितृकानन—संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान।

पितृकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] पितृकर्म।

पितृकुल—संज्ञा पुं० [सं०] बाप, दादा, परदादा या उनके भाई बंधुओं आदि का कुल। बाप की ओर के संबंधी। पिता के वंश के लोग।

पितृकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महाभारत में वर्णित एक स्थान। २. एक पवित्र नदी जो मलय पर्वत से निकली है (को०)।

पितृकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] पितृकर्म। श्राद्धादि।

पितृक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] पितृकर्म। श्राद्धादि कार्य।

पितृगण—संज्ञा पुं० [सं०] १ मनुपुत्र मरीचि आदि के पुत्र। विशेष—दे० 'पितृ'—४। २. समग्र पूर्वपुरुष। पितर लोग।

पितृगणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

पितृगाथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पितरों द्वारा पठित कुछ विशेष श्लोक या गाथा। भिन्न भिन्न पुराणों के मत से ये गाथाएँ भिन्न भिन्न हैं।

पितृगामी—वि० [सं० पितृगामिन्] पिता से संबंधित [को०]।

पितृगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विशेष गीता जिसमें पितरों का माहात्म्य दिया गया है। यह वाराह पुराण के अंतर्गत है।

पितृगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाप का घर। नैहर। पीहर। मायका। (स्त्रियों के लिये)। २. श्मशान।

पितृग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कार्तिकेय के उन अनुचरों में से एक जो कुछ रोगों के उत्पादक माने गए हैं।

पितृघात—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० पितृघातक, पितृघाती, पितृघ्न] बाप को मार डालना। पिता की हत्या करना।

पितृघातक—वि० [सं०] दे० 'पितृघाती'।

पितृघाती—वि० [सं० पितृघातिन्] पिता का वध करनेवाला [को०]।

पितृघ्न—वि० [सं०] पिता का वध करनेवाला।

पितृचरण—संज्ञा पुं० [सं० पितृ + चरण] पिता के चरण। पिता। पिता के लिये आदरार्थक प्रयोग।

पितृतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितरों के उद्देश्य से किया जानेवाला जलदान। विशेष—दे० 'तर्पण'। २. पितृतीर्थ। ३. तिल। ४. श्राद्ध में दी जानेवाली वस्तुएँ (को०)।

पितृतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमावास्या।

विशेष—कहते हैं, पितरों को अमावास्या बहुत प्रिय है और श्राद्ध आदि कार्य इसी तिथि को करने चाहिए, और इसी लिये इसका नाम पितृतिथि है।

पितृतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गया। गया तीर्थ। २. मत्स्य-पुराण के अनुसार गया, वाराणसी, प्रयाग, विमलेश्वर आदि २२२ तीर्थ। ३. अँगूठे और तर्जनी के बीच का भाग जिसका उपयोग पितृकर्म में दान किया हुआ पिंड अथवा संकल्प का जल छोड़ने में होता है।

पितृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] पिता या पितृ होने का भाव। पितृ या पिता होने की स्थिति।

पितृदत्त—वि० [सं०] पिता द्वारा प्रदत्त (जैसे, पिता द्वारा स्त्री को मिलनेवाली संपत्ति)।

पितृदान, पितृदानक—संज्ञा पुं० [सं०] पितरों के उद्देश्य से किया जानेवाला दान। वह दान जो मृत पूर्वजों के उद्देश्य से किया जाय।

पितृदाय—संज्ञा पुं० [सं०] पिता से प्राप्त धन या संपत्ति। बपौती।

पितृदिन—संज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या।

पितृदेव—संज्ञा पुं० [सं०] पितरों के अधिष्ठाता देवता। अग्नि-ष्वात्तादि पितर गण। दे० 'पितृ'—४।

पितृदेवत[1]—वि० [सं०] पितृदेवता संबंधी। पितरों की प्रसन्नता के लिये किया जानेवाला (यज्ञ आदि)। (यज्ञ का अनुष्ठान) जो पितृदेवों की प्रसन्नता के लिये किया जाय।

पितृदेवत[2]—संज्ञा पुं० मघा नक्षत्र [को०]।

पितृदेवत्य—वि० [सं०] 'पितृदेवत'[1]।

पितृदैवत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मघा नक्षत्र। २. यम।

पितृदैवत²—वि० [सं०] दे० 'पितृदेवत' [को०]।

पितृदैवत्य¹—वि० [सं०] पितृदेवत।

पितृदैवत्य²—संज्ञा पुं० अगहन, पूस, माघ और फागुन की कृष्ण अष्टमी (अष्टका) तिथियों को किया जानेवाला पितृकृत्य [को०]।

पितृद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] पैतृक संपत्ति।

पितृनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. यमराज। २. अर्यमा नामक पितर जो सब पितरों में श्रेष्ठ माने जाते हैं।

पितृपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुआर या आश्विन का कृष्ण पक्ष। कुआर की कृष्ण प्रतिपदा से अमावास्या का समय।

विशेष—यह पक्ष पितरों को अतिशय प्रिय माना गया है। कहा जाता है कि इसमें उनके निमित श्राद्ध आदि करने से वे अत्यंत संतुष्ट होते हैं। इसी से इसका नाम पितृपक्ष हुआ है। प्रतिपदा से अमावास्या तक नित्य उनके निमित तिल-तर्पण और अमावास्या को पार्वणविधि से तीन पीढ़ी ऊपर तक के मृत पूर्वजों का श्राद्ध किया जाता है। भिन्न भिन्न पूर्वजों की मृत्युतिथियों को भी उनके निमित इस पक्ष में श्राद्ध करते हैं। पर यह श्राद्ध एकोद्दिष्ट न होकर त्रिपुरुषिक ही होता है। इन पंद्रह दिनों में आहार और विहार में प्राय: अशौच के नियमों का सा पालन किया जाता है।

२. पिता की ओर के लोग। पिता के संबंधी। पितृकुल।

पितृपति—संज्ञा पुं० [सं०] यम।

पितृपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितरो का देश। पितरो का लोक २. पितर होने की स्थिति या भाव। पितृत्व।

पितृपति—संज्ञा पुं० [सं० पितृपितृ] पितरों के पिता, ब्रह्मा।

पितृपुरुष—संज्ञा पुं० [सं० पितृ + पुरुष] पूर्वज।

पितृपैतामह—वि० [सं०] जिसका संबंध बाप दादों से हो। बाप दादों का।

पितृप्रसू- संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दादी। आजी बाप की माँ। पितामही। २. संध्या।

विशेष—पितृकृत्य में संध्यागामिनी अथवा सूर्यास्त समय में वर्तमान तिथि ही ग्रहण की जाती है; तथा प्रेतकृत्य में संध्या माता के समान उपकार करनेवाली मानी गई है। ये ही दो उसके पितृप्रसू संज्ञा प्राप्त करने के कारण हैं।

पितृप्राप्त—वि० [सं०] १. पिता से प्राप्त। २. पैतृक धन के रूप में प्राप्त [को०]।

पितृप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. भँगरा। भँगरैया। भृंगराज। २. अगस्त का वृक्ष।

पितृबंधु—संज्ञा पुं० [सं० पितृबन्धु] १. पिता के पक्ष से होनेवाला संबंध। २. पितामह की बहिन के पुत्र, पितामही की बहिन के पुत्र और पिता के मामा के पुत्र [को०]।

पितृभक्त—वि० [सं०] पिता की भक्तिभाव से सेवा करनेवाला [को०]।

पितृभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिता की भक्ति। पिता में पूज्य बुद्धि। २. पुत्र का पिता के प्रति कर्तव्य।

पितृभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उरद। माष। २. पितरों की भोज्य वस्तु।

पितृभ्राता—संज्ञा पुं० [सं० पितृभ्रातृ] चाचा। चचा [को०]।

पितृमंदिर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पितृगृह' [को०]।

पितृमात्रर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो माता पिता के लिये भीख माँगे [को०]।

पितृमेध—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के अंत्येमेष्ट कर्म का एक भेद जिसमें अग्निदान और दर्शपिंडदान आदि सम्मिलित होते थे और जो श्राद्ध से भिन्न होता था।

पितृयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] तर्पणादि। पितृतर्पण।

पितृयाण—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु के अनंतर जीव के जाने का वह मार्ग जिससे वह चंद्रमा को प्राप्त होता है। वह मार्ग जिससे जाकर मृत व्यक्ति को निश्चित काल तक स्वर्ग आदि में सुख भोगकर पुन: संसार में आना पड़ता है।

विशेष—ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का प्रयास न कर अनेक प्रकार के अग्निहोत्र आदि विस्तृत पुण्यकर्म करनेवाले व्यक्ति जिस मार्ग से ऊपर के लोकों को जाते हैं वही पितृयाण है। इसमें से जाते हुए वे पहले धूमाभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं। फिर रात्रि, फिर कृष्ण पक्ष, फिर दक्षिणायन षण्मास के अभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं। इसके पीछे पितृलोक और वहाँ से चंद्रमा को प्राप्त होते हैं। अनंतर वहाँ से पतित होकर संसार मे कर्मसंस्कार के अनुसार किसी एक योनि मे जन्म ग्रहण करते है। देवयान अर्थात् ब्रह्मज्ञानोपासकों के मार्ग से यह उलटा है। दे० 'देवयान'।

पितृयान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पितृयाण'।

पितृराज—संज्ञा पुं० [सं०] यम।

पितृरिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार वह योग जिसमें बालक का जन्म होने से पिता की मृत्यु होती है।

विशेष--भिन्न भिन्न आचार्यों के मत से भिन्न भिन्न अवस्थाओं में ऐसे योग पड़ते हैं।

पितृरूप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

विशेष—शिव संपूर्ण प्राणियों के पिता माने गए हैं इसी लिये उन्हें पितृरूप कहा जाता है।

पितृलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पितरो का लोक। वह स्थान जहाँ पितृगण रहते हैं।

विशेष—छांदोग्योपनिषद् में पितृयाण का वर्णन करते हुए पितृलोक को चंद्रमा से ऊपर कहा गया है। अथर्ववेद में जो उदन्वती, पीलुमती और प्रद्यौ ये तीन कक्षाएँ द्युलोक की कही गई हैं उनमें चंद्रमा प्रथम कक्षा में और पितृलोक या प्रद्यौ तीसरी कक्षा में कहा गया है।

पितृवंश—संज्ञा पुं० [सं०] पिता का कुल। पितृकुल [को०]।

पितृवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्मशान। २. मृत्यु। मौत। मरण (को०)।

पितृवनेचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्मशान में बसनेवाले, शिव। २. भूत प्रेत, दैत्य आदि (को०)।

पितृवर्ती—संज्ञा पुं० [सं० पितृवर्तिन्] पुराणानुसार एक राजा का नाम।

पितृवसति—संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान।

पितृवित्त—संज्ञा पुं० [सं०] बाप दादों की संपत्ति। पैतृक धन। मौरूसी जायदाद।

पितृविसर्जन—संज्ञा पुं० [सं० पितृ+विसर्जन] पितरों की विदाई।

विशेष—पितृविसर्जन का कृत्य आश्विन मास की अमावास्या को होता है।

पितृवेश्म—संज्ञा पुं० [सं० पितृवेश्मन्] दे० 'पितृगृह' (को०)।

पितृव्य—संज्ञा पुं० [सं०] बाप का भाई। चचा। चाचा। काका।

पितृव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितरों की पूजा करनेवाला। २. दे० 'पितृकर्म' (को०)।

पितृश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पिता या पितरों का श्राद्ध (को०)।

पितृषद्—संज्ञा पुं० [सं०] बाप का घर। पितृगृह। मैका। पीहर (स्त्रियों के लिये)।

पितृषूदन—संज्ञा पुं० [सं०] कुश।

पितृष्वसा—संज्ञा स्त्री० [सं० पितृष्वसृ] बाप की बहन। बूआ।

पितृष्वस्रीय—संज्ञा पुं० [सं०] बूआ का बेटा। फुफेरा भाई।

पितृसन्निभ—वि० [सं० पितृसन्निभ] पिता के समान आदरणीय। पिता के तुल्य (को०)।

पितृसद्म—संज्ञा पुं० [सं० पितृसद्मन्] श्मशान (को०)।

पितृसत्ताक—वि० [सं० पितृ+सत्ता+क (प्रत्य०)] जहाँ पिता की सत्ता प्रधान हो। जहाँ पिता के अधिकार की प्रधानता हो। उ०—यह बिलकुल संभव है कि अफगानिस्तान में रहते वक्त आर्यों का समाज पितृसत्ताक रहा हो।—भा० इ० रू०, पृ० ४४।

पितृसत्तात्मक—वि० [सं० पितृ+सत्तात्मक] दे० पितृसत्ताक। उ०—मातृसत्ता की जगह पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने ले ली। प्रा० भा० प० (भू०), पृ० 'ख'।

पितृसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दादी। पितामही। २. संध्या।

पितृसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक मंत्रसमूह।

पितृस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पिता के स्थान पर हो। अभिभावक। २. जो पितृतुल्य हो। जो पितृवत् हो।

पितृस्थानीय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पितृस्थान'।

पितृस्वसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बूआ (को०)।

पितृस्वस्रीय—संज्ञा पुं० [सं०] फुफेरा भाई (को०)।

पितृहंता—संज्ञा पुं० [सं० पितृहन्तृ] दे० 'पितृहा'।

पितृहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० पितृघात'।

पितृहा—संज्ञा पुं० [सं० पितृहन्] पिता की हत्या करनेवाला। पितृहंता। पितृघाती।

पितृहू—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितरों को देने योग्य वस्तु। २. दाहिना कान।

पितृहूय—संज्ञा पुं० [सं०] पितरों का आह्वान करना। पितरों को बुलाना।

पितौंजिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्रजीवक] पुत्रजीवक नामक वृक्ष। वि० दे० 'पितिजिया'।

पित्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरल पदार्थ जो शरीर के अंतर्गत यकृत में बनता है। इसका रंग नीलापन लिए पीला और स्वाद कड़वा होता है। आयुर्वेद शास्त्र के त्रिदोषों (कफ, वात, पित्त) मे एक।

विशेष—इसकी बनावट में कई प्रकार के लवण और दो प्रकार के रंग पाए गए हैं। यह यकृत के कोषों से रसकर दो विशेष नालियों द्वारा पक्वाशय में आकर आहार रस से मिलता है और वसा या चिकनाई के पाचन मे सहायक होता है। यदि पक्वाशय में भोजन नहीं रहता तो यह लौटकर फिर यकृत को चला जाता है और पित्ताशय या पित्ता नामक उससे संलग्न एक विशेष अवयव में एकत्र होता रहता है। वसा या स्नेहतत्व को पचाने के लिये पित्त का उससे यथेष्ट मात्रा में मिलना अतीव आवश्यक है। यदि इसकी कमी हो तो वह बिना पचे ही विष्ठा द्वारा शरीर से बाहर हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसके और भी कई कार्य हैं, जैसे आमाशय से पक्वाशय मे आए हुए आहार रस की खटाई दूर करना, आँतों में भोजन को सड़ने न देना, शरीर का तापमान स्थिर रखना, आदि। पित्त की कमी से पाचन क्रिया बिगड़ जाती है और मंदाग्नि, कब्ज, अतिसार आदि रोग होते हैं। इसी प्रकार इसकी वृद्धि से ज्वर, दाह, वमन, प्यास मूर्छा और अनेक चर्मरोग होते हैं। जिसका पित्त बढ़ गया हो उसका रंग बिलकुल पीला हो जाता है। पित्त के बढ़े या बिगड़े हुए होने की दशा में वह अकसर वमन द्वारा पेट से बाहर भी निकलता है।

वैद्यक के अनुसार पित्त शरीर के स्वास्थ्य और रोग के कारणभूत तीन प्रधान तत्वों अथवा दोषों में से एक है। जिस प्रकार रस का मल कफ है उसी प्रकार रक्त का मल पित्त है जो यकृत या जिगर में उससे अलग किया जाता है। भावप्रकाश के अनुसार यह उष्ण, द्रव, आमरहित दशा मे पीला और आमसहित दशा में नीला, सारक, लघु, सत्वगुणयुक्त, स्निग्ध, रस में कटु परंतु विपाक के समय अम्ल है। अग्नि स्वभाववाला तो स्वयं अग्नि है। शरीर में जो कुछ उष्णता तत्व है उसका आधार यही है। इसी से अग्नि, उष्ण, तेजस् आदि पित्त के पर्याय हैं। इसमें एक प्रकार की दुर्गंधि भी आती है। शरीर में इसके पाँच स्थान हैं जिनमें यह अलग अलग पाँच नामों से स्थिर रहकर पाँच प्रकार के कार्य करता है। वे पाँच स्थान हैं—आमाशय (कहीं कहीं आमाशय

और पक्वाशय का मध्य स्थान भी मिलता है), यकृत, प्लीहा, हृदय, दोनों नेत्र, और त्वचा। इनमें रहनेवाले पित्तों का नाम क्रम से पाचक, रंजक, साधक, आलोचक और भ्राजक हैं। पाचक पित्त का कार्य खाए हुए द्रव्यों को अपनी स्वाभाविक उष्णता से पचाना और रस, मूत्र और मल को पृथक् पृथक् करना है। रंजक पित्त आमाशय से आए हुए आहार रस को रंजित कर रक्त में परिणत करता है। साधक पित्त कफ और तमोगुण को दूर करता और मेधा तथा बुद्धि उत्पन्न करता है। आलोचक पित्त रूप के प्रतिबिंब को ग्रहण करता है। यह पुतली के बीचोंबीच रहता है और मात्रा मे तिल के बराबर है। भ्राजक पित्त शरीर की कांति, चिकनाई आदि का उत्पादक तथा रक्षक है। आमाशय या अग्न्याशय मे स्थित पाचक पित्त अपनी स्वाभाविक शक्ति से अन्य चार पित्तों की क्रिया मे भी सहायक होता है। पाचक पित्त को ही पाचकाग्नि या जठराग्नि भी कहा है। गरम, तीखी, खट्टी, आदि चीज खाने से पित्त बढ़ता है और कुपित होता है, शीतल, मधुर, कसैली, कड़वी, स्निग्ध वस्तुओं से यह नरम और शांत होता हैं। अरबी मे पित्त को सफरा और फारसी मे तलखा कहते है। उपादान उसका अग्नि और स्वभाव गरम खुश्क माना है।

जिस प्रकार शारीरिक उष्णता का कारण पित्त माना गया है उसी प्रकार मनोवृत्तियों के तीव्र होने अर्थात् क्रोध आदि मनोविकारों के पैदा करने मे भी यह कारण माना गया है। पित्त खौलना, पित्त उबलना, आदि मुहावरों की— जिनका अर्थ क्रुद्ध हो जाना है—उत्पत्ति मे इसी कल्पना का आधार जान पड़ता है। अँगरेजी में भी पित्तार्थक बाइल (Bile) शब्द का एक अर्थ क्रोधशीलता है।

पर्या०—मायु। पलज्वल। तेजस्। तिक्त। धातु। उष्मा। अग्नि। अनल। रंजन।

मुहा०—पित्त उबलना या खौलना = दे० 'पित्ता उबलना या खौलना'। पित्त गरम होना = शीघ्र क्रुद्ध होने का स्वभाव होना। क्रोधशील होना। मिजाज मे गरमी होना। क्रोध की अधिकता होना। जैसे,- अभी तुम जवान हो इसी से तुम्हारा पित्त इतना गरम है। पित्त डालना = कै करना। वमन करना। उलटी करना।

पित्तकर—वि० [सं०] पित्त को बढ़ाने या उत्पन्न करनेवाला। द्रव्य। जैसे, बाँस का नया कल्ला आदि।

पित्तकास—संज्ञा पुं० [सं०] पित्त के दोष से उत्पन्न खाँसी या कास रोग।

विशेष—इस रोग के लक्षण छाती में दाह, ज्वर, मुँह सूखना, मुँह का स्वाद तीता होना, खाँसी के साथ पीला और कड़वा कफ निकलना, क्रमश: शरीर का पांडुवर्ण होते जाना आदि हैं।

पित्तकोश, पित्तकोष—संज्ञा पुं० [सं०] पित्त की थैली [को०]।

पित्तक्षोभ—संज्ञा पुं० [सं०] पित्तवृद्धि या पित्त का बिगड़ना [को०]।

पित्तगदी—वि० [सं० पित्तगदिन्] पित्त के रोग से पीड़ित [को०]।

पित्तगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] पित्त की अधिकता से पेट का फूल जाना [को०]।

पित्तघ्न—वि० [सं०] पित्तनाशक (द्रव्य)।

विशेष—वैद्यक ग्रथो के अनुसार मधुर, तिक्त और कषाय रसवाले संपूर्ण द्रव्य पित्तनाशक हैं।

पित्तघ्न[२]—संज्ञा पुं० घी। घृत।

पित्तघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़ूच। गिलोय।

पित्तज—वि० [सं०] पित्त के कारण उत्पन्न। पित्तविकार से पैदा होनेवाला [को०]।

पित्तज स्वरभेद—संज्ञा पुं० [पित्तज + स्वरभेद] पित्त के विकार के द्वारा उत्पन्न गले की खराबी जिसमें रोगी की आँख और विष्ठा दोनों पीली हो जाती है (माधव०, पृ० ६६)।

पित्तज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो पित्त के दोष या प्रकोप से उत्पन्न हो। पित्तवृद्धि से उत्पन्न ज्वर। पैत्तिक ज्वर।

विशेष—वैद्यक ग्रथो के अनुसार आहार विहार के दोष से बढ़ा हुआ पित्त आमाशय मे जाकर स्थित हो जाता है और कोष्ठस्थ अग्नि को वहाँ से निकालकर बाहर की ओर फेंकता है। अतीसार, निद्रा की अल्पता, कंठ, ओठ, मुँह और नाक का पका सा जान पड़ना, पसीना निकलना, प्रलाप, मुँह का स्वाद कड़वा हो जाना, मूर्छा, दाह, मत्तता, प्यास, भ्रम, मल, मूत्र और आँखों में हल्दी की सी रंगत होना आदि इस ज्वर के लक्षण हैं।

पित्तदाह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पित्तज्वर'।

पित्तद्रावी[१]—वि० [सं० पित्तद्राविन्] पित्त को पिघलानेवाला (द्रव्य)। जिससे पित्त पिघले।

पित्तद्रावी[२]—संज्ञा पुं० मीठा नीबू।

पित्तधरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार आमाशय और पक्वाशय के बीच मे स्थित एक कला या झिल्ली। ग्रहणी।

पित्तनाडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नाडीव्रण जो पित्त के कुपित होने से होता है।

पित्तनिबर्हण—वि० [सं०] पित्त को समाप्त करनेवाला। पित्तनाशक [को०]।

पित्तपथरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पित्त + हिं० पथरी] एक रोग जिसमें पित्ताशय अथवा पित्तवाहक नालियो में पित्त की कंकड़ियाँ बन जाती हैं।

विशेष—ये कंकड़ियाँ पित्त के अधिक गाढे हो जाने, उसमें कोलस्ट्राभई नामक द्रव्य की अधिकता अथवा उसके उपादानों में कोई विशेष परिवर्तन होने से उत्पन्न होती हैं। यद्यपि ये पित्ताशय में बनती हैं, तथापि यकृत और पित्तप्रणालियों में भी पाई जाती हैं। इस रोग मे आहार के अंत में पेट में पीड़ा होती है और पित्ताशय मे जलन मालूम होती है। स्पर्श करने से उसमें छोटी छोटी पथरियाँ सी जान पड़ती

हैं और वह कड़ा, बढ़ा हुआ और पत्थर का सा मालूम होता है। कुछ काल तक इस रोग की स्थिति होने से कामला, आँतों के कार्य में रुकावट और यकृत में फोड़ा आदि अन्य रोग होते हैं।

यह रोग आयुर्वेदीय ग्रंथों में नहीं मिलता, इसका पता पाश्चात्य डाक्टरों ने लगाया है।

पित्तपांडु—संज्ञा पुं० [सं० पित्तपाण्डु] एक पित्तजनित रोग जिसमें रोगी के मूत्र, विष्ठा, नेत्र विशेष रूप से और संपूर्ण शरीर सामान्य रूप से पीला हो जाता है और उसे दाह, तृष्णा, तथा ज्वर रहता है।

पित्तपापड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पितपापड़ा'।

पित्तप्रकृति—वि० [सं०] जिसकी प्रकृति पित्त की हो। जिसके शरीर में वात और कफ की अपेक्षा पित्त की अधिकता हो।

विशेष—वैद्यक के अनुसार पित्तप्रकृति व्यक्ति को भूख और प्यास अधिक लगती है। उसका रंग गोरा होता है, हथेली, तलुवे और मुँह पर ललाई होती है, केश पांडुवर्ण और रोएँ कम होते हैं, वह बहुत शूर, मानी पुष्प चंदनादि के लेप से प्रीति करनेवाला, सदाचारी, पवित्र, आश्रितों पर दया करनेवाला, वैभव, साहस और बुद्धिबल से युक्त होता है, भयभीत शत्रु की भी रक्षा करता है, उसकी स्मरण शक्ति उत्तम होती है, शरीर खूब कसा हुआ नहीं होता, मधुर, शीतल, कड़वे और कसैले भोजन पर रुचि रहती है, शरीर मे बहुत पसीना और दुर्गंध निकलती है। उसे विष्टा अधिक होती है और भोजन जलपान वह अधिक मात्रा में लेता है। उसे क्रोध और ईर्ष्या अधिक होती है। वह धर्म का द्वेषी और स्त्रियों को प्रायः अप्रिय होता है, नेत्रों की पुतलियाँ पीली और पलकों में बहुत थोड़े बाल होते हैं, स्वप्न मे कनेर ढाक आदि के पुष्प, दिग्दाह, उल्कापात, बिजली, सूर्य तथा अग्नि को देखता है, क्लेशभीत, मध्यम आयु और बलवाला होता है और बाघ, रीछ, बंदर, बिल्ली, भेड़िया आदि से उसका स्वभाव मिलता है।

पित्तप्रकोप—संज्ञा पुं० [सं०] पित्त का बढ़ना [को०]।

पित्तप्रकोपी—वि० [सं० पित्तप्रकोपिन्] पित्त को बढ़ाने या कुपित करनेवाला (द्रव्य)। (वस्तु) जिसके भोजन से पित्त की वृद्धि हो।

विशेष—तक्र, मद्य, मांस, उष्ण, खट्टी, चरपरी आदि वस्तुएँ पित्तप्रकोपी हैं।

पित्तप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं० पित्त + प्रमेह] एक प्रकार का प्रमेह रोग जिसमें मूर्छा तथा पतले दस्त होते हैं, वस्ति और लिंग में पीड़ा होती है। (माधव०, पृ० १८५)।

पित्तभेषज—संज्ञा पुं० [सं०] मसूर। मसूर की दाल।

पित्तर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पितृ, हिं० पितर] दे० 'पितृ'। उ०—कबीर० श०, भा०, पृ० ३३।

पित्तरक्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'रक्तपित्त'।

पित्तल[1]—वि० [सं० पित्त] जिससे पित्त का उभाड़ हो। जिससे पित्तदोष बढ़े। पित्तकारी (द्रव्य)।

पित्तल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजपत्र। २. हरताल। ३. पीतल धातु।

पित्तला—संज्ञा स्त्री० १. जलपीपल। २. सरिवन। शालपर्णी। ३. पीतल धातु।

पित्ताला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जलपीपल। २. योनि का एक रोग जो दूषित पित्त के कारण उत्पन्न होता है। 'भावप्रकाश' के मत से योनि मे अत्यंत दाह, पाक तथा ज्वर इस रोग के लक्षण हैं।

पित्तवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मछली, गाय, घोड़े, रुरु मृग और मोर के पित्तों का समूह। पंचविध पित्त।

विशेष—मतांतर से सूअर, बकरे, भैंसे, मछली और मोर के पित्त पित्तवर्ग के अंतर्गत माने गए हैं।

पित्तावल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला अतीस।

पित्तवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पित्त की वृद्धि और विकार से पेट में वायु का बढ़ना [को०]।

पित्तविदग्धदृष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जो दूषित पित्त के दृष्टिस्थान में आ जाने से होता है।

विशेष—इसमें दृष्टिस्थान पीतवर्ण हो जाता है और साथ ही सारे पदार्थ भी पीले दिखाई पड़ने लगते हैं। दोष आँख के तीसरे परदे या पटल में रहता है इससे रोगी को दिन में नहीं सुझाई पड़ता, वह केवल रात में देखता है।

पित्तविसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] विसर्प रोग का एक भेद।

पित्तव्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पित्तदोष से उत्पन्न रोग। पित्त के बिगड़ने से पैदा हुई बीमारी।

पित्तशमन—वि० [सं०] पित्त को दूर करनेवाला [को०]।

पित्तशूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शूल रोग जो पित्त के प्रकोप से होता है।

विशेष—इसमे नाभि के आसपास पीड़ा होती है : प्यास लगना, पसीना निकलना, दाह, भ्रम और शोष इस रोग के लक्षण हैं। डाक्टरों के मत से पित्त के अधिक गाढ़े होने अथवा उसकी पथरियों के आँतों में जाने से यह रोग उत्पन्न होता है। ऐसे पित्त या पथरियो के संचार मे जो पीड़ा होती है वही पित्तशूल है।

पित्तशोथ—संज्ञा पुं० [सं०] पित्तवृद्धि से होनेवाली सूजन [को०]।

पित्तश्लेष्मज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो पित्त और कफ दोनो के प्रकोप अथवा अधिकता से हुआ हो।

विशेष—मुख का कड़ुवापन, तंद्रा, मोह, खाँसी, अरुचि, तृष्णा, क्षणिक दाह और कुछ ठंढ लगना आदि इसके लक्षण हैं।

पित्तश्लेष्मात्वण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर।

विशेष—इसमें शरीर के भीतर दाह और बाहर ठंढा रहता है। प्यास बहुत अधिक लगती है, दाहिनी पसलियों, छाती,

सिर और गले में दर्द रहता है; कफ और पित्त बहुत कष्ट से बाहर निकलता है। मल पतला होकर निकलता है; साँस फूलती है और हिचकियाँ आती हैं।

पित्तसंशमन—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेदोक्त ओषधियों का एक वर्ग या समूह जिसमें की ओषधियाँ प्रकुपित पित्त को शांत करनेवाली मानी जाती हैं।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार इस वर्ग में निम्नलिखित ओषधियाँ हैं—चंदन, लालचंदन, नेत्रबाला, खस, अर्कपुष्पी, बिदारीकंद, सतावर, गोंदी, सिवार, सफेद कमल, कुईं, नील कमल, केला, कँवलगट्टा, दूब मरोरफली (मूर्वा), काकोल्यादिगण न्यग्रोधादिगण और तृणपंचमूल।

पित्तस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के वे पाँच स्थान जिनमें वैद्यक ग्रंथों के अनुसार पाचक, रंजक आदि पाँच प्रकार के पित्त रहते हैं। ये स्थान आमाशय पक्वाशय, यकृत प्लीहा, हृदय, दोनों नेत्र और त्वचा हैं।

पित्तस्यंद—संज्ञा पुं० [सं० पित्तस्यन्द] पित्त के कारण उत्पन्न एक नेत्ररोग [को०]।

पित्तस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक नेत्ररोग जिसमें नेत्रसंधि से पीला या नीला और गरम पानी बहता है।

पित्तहर¹—संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

पित्तहर²—वि० [सं०] पित्त का नाशक [को०]।

पित्तहा¹—संज्ञा पुं० [सं० पित्तहन] पित्तपापड़ा।

पित्तहा²—वि० पित्तनाशक (द्रव्य)।

पित्तांड—संज्ञा पुं० [सं० पित्ताण्ड] घोड़ों के अंडकोश में होनेवाला एक रोग।

पित्ता—संज्ञा पुं० [सं० पित्त] १. जिगर में वह थैली जिसमे पित्त रहता है। पित्ताशय। विशेष विवरण के लिये दे० 'पित्ताशय'।

मुहा०—**पित्ता उबलना** = दे० 'पित्ता खौलना'। **पित्ता खौलना** = बड़ा क्रोध आना। मिजाज भड़क उठना। जैसे,—तुम्हारी बातें सुनकर तो उसका पित्ता खौल गया।

विशेष—पित्त का नाम अग्नि तथा तेज भी है, इन्हीं कारणों से इन मुहावरों की उत्पत्ति हुई है। पित्ता उबलना, पित्ता खौलना, आदि पित्त उबलना या पित्त खौलना का लक्षणात्मक रूप है।

पित्ता निकालना†‡ = काम कराके अथवा और किसी प्रकार से किसी को अत्यंत पीड़ित करना। बहुत अधिक परिश्रम का काम कराना। **पित्ता पानी करना** = बहुत परिश्रम करना। जान लड़ाकर काम करना। अति कठोर प्रयास करना। जैसे,—इस काम में बड़ा पित्ता पानी करना पड़ेगा। **पित्ता मरना** = क्रुद्ध या उत्तेजित होने की आदत छूट जाना। गुस्सा न रह जाना। जैसे,—अब उसका पित्ता बिलकुल मर गया। **पित्ता मारना** = (१) क्रोध दबाना। क्रोध होने पर चित्त शांत रखना। सहना। उत्तेजना को दबा रखना। जब्त करना। जैसे,—मैं पित्ता मारकर रह गया नहीं तो अनर्थ हो जाता। (२) बिना उद्विग्न हुए या ऊबे कोई कठिन काम करते रहना। कोई अरुचिकर या कठिन काम करने में न ऊबना। जैसे,—जो बड़ा पित्ता मारे वह इस काम को कर सकता है। **पित्तमार काम** = वह काम जो रुचिकर न हो। अरुचिकर और कठिन काम। कर्ता को उबा देनेवाला काम। मन मारकर किया जानेवाला काम।

२. हिम्मत। साहस। हौसला। जैसे,—उसका कितना पित्ता है जो दो दिन भी तुम्हारे मुकाबले ठहर सके।

पित्तातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] वह अतिसार रोग जिसका कारण पित्त का प्रकोप या दोष होता है।

विशेष—मल का लाल, पीला अथवा हरा और दुर्गंधयुक्त होना, गुदा पक जाना, तृषा, मूर्छा और दाह की अधिकता इस रोग के लक्षण हैं।

पित्ताधिक—संज्ञा पुं० [सं० पित्त + अधिक, आधिक्य] सन्निपात का एक रोग।—माधव०, पृ० २८।

पित्ताभिष्यंद, पित्ताभिस्यंद—संज्ञा पुं० [सं० पित्ताभिष्यन्द, पित्ताभिस्यन्द] आँख का एक रोग। पित्तकोप से आँख आना।

विशेष—आँखो का उष्ण और पीतवर्ण होना, उनमे दाह और पकाव होना उनमे धुआँ उठता सा जान पड़ना और बहुत अधिक आँसू गिरना इस रोग के लक्षण है।

पित्तारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पित्तपापड़ा। २. लाख। ३. पीला चंदन।

पित्ताशय—संज्ञा पुं० [सं०] पित्त की थैली। पित्तकोष।

विशेष—यह यकृत या जिगर मे पीछे और नीचे की ओर होता है। इसका आकार अमरूद या नासपाती का सा होता है। यकृत में पित्त का जितना अंश भोजनपाक की आवश्यकता से अधिक होता है वह इसी में आकर संचित रहता है।

पित्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि। एक प्रकार की शतपदी।

पित्ती¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पित्त + ई] एक रोग जो पित्त की अधिकता अथवा रक्त में बहुत अधिक उष्णता होने के कारण होता है।

विशेष—इसमें शरीर भर में छोटे छोटे ददोरे पड़ जाते हैं और उनके कारण त्वचा मे इतनी खुजली होती है कि रोगी जमीन पर लोटने लगता है।

क्रि० प्र०—**उछलना**।

२. लाल लाल महीन दाने जो पसीना मरने मे गरमी के दिनों में शरीर पर निकल आते हैं। अँभौरी।

पित्ती†²—संज्ञा पुं० [सं० पितृ] पितृव्य। चाचा। काका। बाप का भाई।

पित्ती³—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बेल जिसे रक्तवल्ली भी कहते हैं।

पित्तेदार—वि० [हिं० पित्ता+फा० दार (प्रत्य०)] क्रोधी। आवेश में आनेवाला। उ०—पित्तेदार मनुष्य के लिये कोई जरा सी बात हो जाती थी उसको खुर्दबीन की भाँति अपने मन ही मन में सोच सोचकर पहाड़ की बराबर बना लेता है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ७८।

पित्ताभिष्यंद—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलकों का एक रोग जिसमें पलकों का दाह, क्लेद अत्यंत पीड़ा होती है, आँखें लाल और देखने में असमर्थ हो जाती हैं।

पित्तोदर—संज्ञा पुं० [सं०] पित्त के बिगड़ने से होनेवाला एक उदररोग।

विशेष—इसमें शरीर का वर्ण, नेत्र, नख और मल, मूत्र आदि सब पीला हो जाता है, और शोष, तृषा, दाह और ज्वर का प्रकोप होता है।

पित्तोपहत—वि० [सं०] पित्त से पीड़ित [को०]।

पित्तोल्वण सन्निपात—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपातिक ज्वर। आशुकारी ज्वर।

विशेष—इसका लक्षण है—अतिसार, भ्रम, मूर्छा, मुँह में पकाव, देह में लाल दानों का निकल आना और अत्यंत दाह होना।

पित्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पितृ] दे० 'पितृ'। उ०—सोनित कुंड भराय कै पोषे अपने पित्र। तिनकै निरदय रूप में नाहिन कोऊ मित्र।—नंद० ग्रं०, पृ० १८१।

पित्र्य¹—वि० [सं०] १ पितृ संबंधी। २. श्राद्ध करने योग्य। जिसका श्राद्ध हो सके।

पित्र्य²—संज्ञा पुं० १ शहद। मधु। २. उरद। ३. बड़ा भाई। ४. पितृतीर्थ। ५. तर्जनी और अंगूठे का अंतिम भाग।

पित्र्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मघा नक्षत्र। २ पूर्णिमा। ३. अमावस्या।

पित्सत—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी [को०]।

पित्सल—संज्ञा पुं० [सं०] मार्ग। पथ [को०]।

पिथौरा—संज्ञा पुं० [सं० पृथ्वीराज] भारत का अंतिम हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज।

पिदड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पिद्दी'।

पिदर—संज्ञा पुं० [फ़ा०, तुल० सं० पितर, अं० फादर] पिता। जनक [को०]।

यौ०—**पिदरकुशी** = पितृहनन। पिता की हत्या।

पिदरीयत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पिदर+ईयत (प्रत्य०)] पितृत्व। उ०—आप लड़कियों के एतबार से पिदरीयत के जिस दर्जे में है, लड़कों के एतबार से उसी दर्जे में मैं हूँ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ३७।

पिदारा—संज्ञा पुं० [हिं० पिद्दा] पिद्दी पक्षी का नर। पिद्दा। उ०—चकई चकवा और पिदारे। नकटा लेदी सोन सलारे।—जायसी (शब्द०)।

पिद्दा—संज्ञा पुं० [हिं० पिद्दी] १. पिद्दी का पुल्लिंग। विशेष दे० 'पिद्दी'। २. गुलेल की ताँत में वह निवाड़ आदि की गद्दी जिसपर गोली को फेंकने के समय रखते हैं। फटकना।

पिद्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिद्दा या फुदकना फुदकी] १. बया की जाति की एक सुंदर छोटी चिड़िया।

विशेष—यह बया से कुछ छोटी और कई रंगों की होती है। आवाज इसकी मीठी होती है। अपने चंचल स्वभाव के कारण यह एक स्थान पर क्षण भर भी स्थिर होकर नहीं बैठती, फुदकती रहती है। इसी से इसे 'फुदकी' भी कहते हैं।

२. बहुत ही तुच्छ और अगण्य जीव।

पिद्धना(पु)—क्रि० स० [गुज०, पिधेलुं] १. पिलाना। २. पीना। पान करना। उ०—अमृत देव पिद्धयं। सुरा सुदैत सिद्धयं।—पृ० रा०।

पिधातव्य—वि० [सं०] ढकने, बंद करने या मूँदने योग्य [को०]।

पिधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन। आवरण। पर्दा। गिलाफ। २. ढक्कन। ढकना। ३ तलवार का म्यान। खड्गकोष। ४. आच्छादित करने की क्रिया (को०)। ५. (पु)किवाड़। उ०—सुख के निधान पाए हिए के पिधान लाए ठग के से लाडू खाए प्रेममधु छाके है—तुलसी (शब्द०)।

पिधानक—संज्ञा पुं० [सं०] १. म्यान। कोष। २. आच्छादन। ढक्कन (को०)।

पिधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ढकनेवाली वस्तु। ढक्कन [को०]।

पिधायक—वि० [सं०] ढकनेवाला। छिपानेवाला [को०]।

पिधायी—वि० [सं० पिधायिन्] ढकनेवाला। छिपानेवाला [को०]।

पिन—संज्ञा स्त्री० [अं०] लोहे या पीतल आदि की बहुत छोटी कील जिससे कागज इत्यादि नत्थी करते हैं। आलपीन।

पिनक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पीनक'।

पिनकना—क्रि० अ० [हिं० पिनक] १. अफीम के नशे में सिर का झुका पड़ना। अफीमची का नशे की हालत में आगे की ओर झुकना या ऊँघना। पीनक लेना। २ नींद में आगे को झुकना। ऊँघना। जैसे,—शाम हुई और तुम लगे पिनकने। ३. चिढ़ना। खीभना।

पिनकी—संज्ञा पुं० [हिं० पीनक] वह व्यक्ति जो अफीम के नशे में पीनक लिया करे। पिनकनेवाला अफीमची।

पिनच(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रत्यंचा] दे० 'पनच'। उ०—वैसी पार की पारधी, ताकी धुनहीं पिनच नहीं रे। ता बेलीं को ढूँक्यौ मृगलो ता मृग कैसी सनहीं रे।—कबीर ग्रं०, पृ० १६०।

पिनद्ध—वि० [सं०] १. बँधा हुआ। कसा हुआ। २. धारण किया हुआ। पहना हुआ। ३. आच्छादित। छिपा हुआ। आवृत। ४. बिद्ध। बिंधा हुआ [को०]।

पिनपिन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बच्चों का आनुनासिक और अस्पष्ट स्वर में ठहर ठहरकर रोने का शब्द। नकियाकर धीमे धीमे और थोड़ा रुक रुककर रोने की आवाज। २. रोगी

या दुर्बल बच्चे के रोने का शब्द। रोगी या दुर्बल बच्चे का रोना। ३. पिनपिन करके रोना। बार बार धीमी और अनुनासिक आवाज में रोना। नकियाकर और ठहर ठहरकर रोना।

क्रि० प्र०—करना। —लगाना।

पिनपिनहाँ†—संज्ञा पु० [हिं० पिनपिन + हा (प्रत्य०)] १. पिन पिन करनेवाला बच्चा। रोना लड़का। वह बालक जो हर समय रोया करे। २. रोगी या दुर्बल बालक। कमजोर या बीमार बच्चा।

पिनपिनाना†—क्रि० अ० [हिं० पिनपिन] १ पिनपिन शब्द करना। रोते समय नाक से स्वर निकालना। २ धीमे स्वर मे और रुक रुककर रोना। ३. रोगी अथवा कमजोर बच्चे का रोना।

पिनपिनाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिनपिनाना] १. पिनपिन करके रोने का शब्द। २ पिनपिन करके रोने की क्रिया या भाव।

पिनल कोड—संज्ञा पुं० [अं० पेनल कोड] दंडित या शासित करने की संहिता। नियम वा कानून की संहिता। दंडसंहिता। उ०—समाजनीति के पिनल कोडों में लिखा है। —शराबी, पृ० ६६।

पिनसन†—संज्ञा स्त्री० [अं० पेन्शन] दे० 'पेंशन'।

पिनसिन‡—संज्ञा स्त्री० [अं० पेन्शन] दे० 'पेंशन'।

पिनहाँ—वि० [फा०] छिपा हुआ। गुप्त। उ०—बोले अलख अल्ला तु है, पिनहाँ तेरा इसरार है। —कबीर मं०, पृ० ३६०।

पिनाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का धनुष जिसे श्रीरामचंद जी ने जनकपुर में तोड़ा था। अजगव।

यौ०—पिनाकगोप्ता। पिनाकधृक्, पिनाकधृत, पिनाकहस्त = दे० 'पिनाकपाणि'।

मुहा०—पिनाक होना = (किसी काम का) अत्यंत कठिन होना। (किसी काम का) दुष्कर या असाध्य होना।— जैसे,—तुम्हारे लिये यह जरा सा काम भी पिनाक हो रहा है।

२. कोई धनुष। ३. त्रिशूल। ४. एक प्रकार का अभ्रक। नीला अभ्रक। नीलाभ्र। †५. एक प्रकार का वाद्य। दे० 'पिनाकी'—२। उ०—किन्नर तमूर बाजै कानूड़ की तरंगी। ढोलक पिनाक खंजरि तबले बजै उमंगी। —ब्रज० ग्रं०, पृ० ६०। ६. पांशुवर्षा। धूलिवर्षण (को०)। ७. बेंत या लाठी (को०)।

पिनाकी[1]—संज्ञा पुं० [सं० पिनाकिन्] महादेव। शिव।

पिनाकी[2]—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार का प्राचीन बाजा जिसमें तार लगा रहता था और जो उसी तार को छेड़ने से बजता था।

पिनाल्टी—संज्ञा स्त्री० [अं० पेनाल्टी] हर्जाना। वह सजा जो रुपए पैसे के रूप में दी जाती है। अर्थदंड। उ०—आपको पिनाल्टी देनी पड़ेगी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४७।

पिनावना(पु)—क्रि० स० [सं० पिञ्जन] रुई धुनवाना। उ०— जोइ जोइ निकट पिनावन आवै, रुई सबनि की पीजैं। परमारथ कौं देह धरयौ है, मसकति कछू न लीजै। —सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८६६।

पिन्नपिन्न‡—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] दे० 'पिनपिन'। उ०—एक नया तार पिन्न पिन्न करने लगा।—संन्यासी, पृ० २६५।

पिन्नस[1]—संज्ञा पु० [सं० पीनस] दे० 'पीनस'।

पिन्नस†[2]—संज्ञा स्त्री० [फा० पीनस] पालकी। डोली।

पिन्ना†[1]—वि० [हिं० पिनपिनाना] जो सदा रोता रहे। रोनेवाला। रोना।

पिन्ना†[2]—संज्ञा पु० [सं० पिञ्जन] १. दे० 'पीजन'। २ धुनकी।

पिन्ना†[3]—संज्ञा पु० [सं० पीडन या ऊन०] दे० 'पीना'[2]। 'पिना'[3]।

पिन्निय(पु)—वि० [सं पिनद्ध] आवृत। आच्छादित। बँधा हुआ। युक्त। उ०—सुभ लच्छिन उत्तम अग अगं गुन पिन्निय। ता समान छबि बाम आन करतार न किन्निय।—पृ० रा०, १७।८६।

पिन्नी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मिठाई, जो आटे या अन्नचूर्ण मे चीनी या गुड़ मिलाकर बनाई जाती है।

पिन्यास—संज्ञा पु० [सं०] हीग।

पिन्हाना—क्रि० स० [हिं० पहिनना या सं० पिनद्धन] दे० 'पहनाना'।

पिपतिषत्, पिपतिषु—संज्ञा पु० [सं०] विहग। पक्षी [को०]।

पिपरमिंट—संज्ञा पु० [अं०] पुदीने की जाति का पर रूप में उससे भिन्न एक पौधा।

विशेष—यह पौधा यूरोप और अमेरिका मे होता है। इसकी पत्तियो मे एक विशेष प्रकार की गध और ठढक होती है जिसका अनुभव त्वचा और जीभ पर बड़ा तीव्र होता है। इसका व्यवहार औषध में होता है। पेट के दर्द मे यह विशेषत दिया जाता है। इसका पौधा देखने में भाँग के पौधे मे मिलता जुलता होता है। टहनियाँ दूर तक सीधी जाती है जिनमें थोड़े थोड़े अंतर पर दो दो पत्तियाँ और फूलों के गुच्छे होते हैं। पत्तियाँ भाँग की पत्तियों की सी होती है।

२. उक्त पौधे से बना हुआ सफेद रग का पदार्थ।

पिपरामूल—संज्ञा पु० [सं० पिप्पलीमूल] पिप्पलीमूल। पीपल की जड़।

पिपराही†—संज्ञा पु० [हिं० पीपर + आही (प्रत्य०)] पीपल का वन। पीपल का जगल।

पिपली—संज्ञा स्त्री० [देश० नेपाली] एक पेड़ जो नेपाल, दार्जिलिंग आदि मे होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और किवाड़, चौखठे, चौकियाँ, आदि बनाने के काम में आती है।

पिपास—संज्ञा स्त्री० [सं० पिपासा] दे० 'पिपासा'। उ०—छूटै सब सबनि के सुख क्षुत्पिपास।—केशव (शब्द०)।

पिपासा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानेच्छा । तृष्णा । तृषा । प्यास । २. लालच । लोभ । जैसे, धन की पिपासा ।

पिपासार्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० पिपासा+आर्ति] प्यास अर्थात् तीव्रेच्छा की मनोव्यथा । उत्कट कामना की वेदना । उ०--यह वेदना संक्रांति काल के जनसमूह की पिपासार्ति है ।--कुंकुम (भू०), पृ० १३ ।

पिपासित वि० [सं०] तृषित । प्यासा ।

पिपासी--वि० [सं० पिपासिन्] तृषित । प्यासा (को०) ।

पिपासु--वि० [सं०] तृषित । पानेच्छु । प्यासा । २. उग्र इच्छा रखनेवाला । तीव्र इच्छुक । लालची । जैसे, रक्तपिपासु, अर्थपिपासु ।

पिपियाना[1]--क्रि० अ० [हिं० पीप+इयाना (प्रत्य०)] पीप पड़ना । मवाद आना । जैसे, फोड़े का पिपियाना ।

पिपियाना[2]--क्रि० स० पीप उत्पन्न करना । मवाद पैदा करना । जैसे,--यह दवा फोड़े को पिपिया देगी ।

पिपियाना[3]--क्रि० अ० [हिं० पिनपिनाना] १. पें पें करना । अनावश्यक बोलना । २. बच्चों का रुदन करना । जैसे--क्यों पिपियाते हो ?

पिपिली--संज्ञा स्त्री० [सं०] चींटी । पिपीलिका (को०) ।

पिपीतक--संज्ञा पुं० [सं०] भविष्य पुराण के अनुसार एक ब्राह्मण जिसने पिपीतकी द्वादशी का व्रत पहले पहल किया था ।

पिपीतकी--संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल द्वादशी ।

विशेष--भविष्य पुराण में यह व्रत का दिन कहा गया है । पहले पहल इस व्रत को पिपीतक नाम के एक ब्राह्मण ने किया था जिसकी कथा इस प्रकार है । पिपीतक को यमदूत ले गए । यमलोक में उसे बड़ी प्यास लगी और वह व्याकुल होकर चिल्लाने लगा । अंत में उसने यमराज की बड़ी स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसे फिर मर्त्यलोक में भेजा और वैशाख शुक्ल द्वादशी का व्रत बताया । इस व्रत में ठंढे पानी से भरे हुए घड़े ब्राह्मण को दिए जाते हैं ।

पिपील--संज्ञा स्त्री० [सं०] चींटी (को०) ।

पिपीलक--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० पिपीलिका] चींटा । चिउँटा ।

पिपीलिक--संज्ञा पुं० [सं०] १. चींटा । २. सोना जो चींटों द्वारा एकत्र हो (को०) ।

यौ०--पिपीलिकपुट = वल्मीक । बाँबी ।

पिपीलिकमध्य--एक प्रकार का व्रत ।

पिपीलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] चिउँटी । चींटी । कीड़ी ।

यौ०--पिपीलिकापरिसर्पण--चींटियों का इधर उधर दौड़ना । पिपीलिकामध्य = मनुस्मृति के अनुसार एक व्रत ।

पिपीलिकाभक्षी--संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण अफ्रिका का एक जंतु जिसे बहुत लंबा थूथन और बहुत बड़ी जीभ होती है ।

विशेष--इसे दाँत नहीं होते । इसके अगले पंजे बहुत दृढ़ होते हैं जिनसे यह चींटियों के बिल खोदता है । यह उँगलियों के बल चलता है तलवों के बल नहीं । इसके कंधे मोटे और भद्दे होते हैं । गरदन से पीठ तक लंबे लंबे बाल होते हैं । यह चींटियों के बिलों में अपने थूथन को डालकर उन्हें खींच लेता है । चींटी के आहार के बिना यह जंतु नहीं रह सकता ।

पिपीलिकामातृका दोष--संज्ञा पुं० [सं०] एक बालरोग जो जन्म के दिन से ग्यारहवें दिन, ग्यारहवें महीने या ग्यारहवें वर्ष होता है । इसमें बालक को ज्वर होता है और उसका आहार छूट जाता है ।

पिपीलिकोद्वाप--संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँबी । वल्मीक (को०) ।

पिपीली--संज्ञा स्त्री० [सं०] पिपीलिका, चींटी ।

पिप्तटा--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मिठाई ।

पिप्पल--संज्ञा पुं० [सं०] १. पीपल का पेड़ । अश्वत्थ । २. एक पक्षी । ३. रेवती से उत्पन्न मित्र का एक पुत्र । (भागवत) । ४. नंगा आदमी । नग्न व्यक्ति । ५. जल । ६. वस्त्रखंड । ७. अंगे आदि की बाँह या आस्तीन । ८. गोदा । पीपल का गोदा (को०) । ९. ऐंद्रिक भोग (को०) । १०. स्तनाग्र । चूचुक । कुचाग्र (को०) । ११. कर्मजन्य फल । कर्मफल (को०) ।

पिप्पलक--संज्ञा पुं० [सं०] १. स्तनमुख । चूचुक । २. सिलाई करने का तागा (को०) ।

पिप्पलयोग--संज्ञा पुं० [सं०] चीन और जापान में होनेवाला एक पौधा । मोमचीना ।

विशेष--यह अब भारतवर्ष में भी फैल गया है और गढ़वाल, कुमाऊँ और काँगड़े की पहाड़ियों में पाया जाता है । इसके फलों के बीज के ऊपर चरबी या चिकना पदार्थ होता है जिसे चीनी मोम कहते हैं ।

पिप्पला--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम (को०) ।

पिप्पलाद[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि जो अथर्ववेद की एक शाखा के प्रवर्तक थे और जिनका नाम पुराणों में आया है ।

पिप्पलाद[2]--वि० [सं०] १. पीपल का गोदा खानेवाला । २. ऐंद्रिक भोगों में लीन । विषय भोग में आसक्त (को०) ।

पिप्पलाशन--वि० [सं०] दे० 'पिप्पलाद'[2] (को०) ।

पिप्पलि--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि । विशेष दे० 'पीपल'[2] (को०) ।

पिप्पली--संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपल ।

पिप्पलीका--संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का छोटा पेड़ (को०) ।

पिप्पलीखंड--संज्ञा पुं० [सं० पिप्पलीखण्ड] वैद्यक के अनुसार प्रस्तुत एक औषध ।

विशेष--इसकी निर्माणविधि इस प्रकार कही है--पीपल का चूर्ण ४ पल, घी ६ पल, शतमूली का रस ८ पल, चीनी दो सेर, दूध ८ सेर एक साथ पकावे, फिर पाग में इलायची, मोथा, तेजपत्ता, धनियाँ, सोंठ, वंशलोचन, जीरा, हड़, आँवला और मिर्च डाले और ठंढे होने पर ३ पल मधु भी मिला दे ।

पिप्पलीमूल--संज्ञा पुं० [सं०] पिपरामूल । पिपलामूल ।

पिप्पल्यादिगण—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार ओषधियों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत पिप्पली, चीता, अदरख, मिर्च, इलायची, अजवायन, इंद्रजौ, जीरा, सरसों, बकायन, हींग, भार्गी, अतिविषा, बच, बिडंग और कुटकी हैं।

पिप्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाँतों की मैल।

पिप्पीक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पिप्पीका] एक पक्षी।

पिप्लु—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंतु मणि। २. तिल (को०)।

पिय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय, प्रा० पिय] स्त्री का पति। स्वामी। उ०—बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चिते भौंह करि बाँकी। खंजन मजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि।—तुलसी (शब्द०)।

पियक्कड़¹—वि० [हिं० पीना + अक्कड़ (प्रत्य०)] अधिक पीनेवाला। सीमा से ज्यादा पीनेवाला।

पियक्कड़²—संज्ञा पुं० शराबी। उ०—सुख भोगना लिखा होता, तो जवान बेटे चल देते, और इस पियक्कड़ के हाथों मेरी यह साँसत होती।—गबन, पृ० २३४।

पियड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय, प्रा० पिअ; अप० पिअड] प्रिय। पति। स्वामी। उ०—सती सत साचा गहै मरणौं न डराई। प्राण तजै जग देखतां, पियड़ो उर लाई।—दादू०, पृ० ५८५।

पियना(पु)—वि० [हिं० पीना] पेय। पीने का। उ०—पूत को नित पियनो पय हुतो। आँच लगे अति उमग्यो सु तो।—नंद० ग्रं०, पृ० २४६।

पियर†—वि० [सं० पीत] दे० 'पीयर', 'पीला'।

पियरई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० पियर + ई (प्रत्य०)] पीलापन।

पियरवा‡—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय, प्रा० पिअ, अप० पियड, हिं० पियड + वा (प्रत्य०)] दे० 'पियारा'।

पियराई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पियर, पीयर + आई (प्रत्य०)] पीतता। पीलापन। जर्दी।

पियराना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० पियर] पीला पड़ना। पीला होना।

पियरो(पु)†¹—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'पीली'।

पियरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पियर] १. पीली रँगी हुई धोती। २. २. पीलापन। पीतता। उ०—डर ते मुख पियरी परि गई। ललित कपोलन पर छबि छई।—नंद ग्रं०, पृ० २५१। ३. एक प्रकार का पीला रंग जो गाय को आम की पत्तियाँ खिलाकर उसके मूत्र से बनाया जाता है। ४.† एक रोग। पीलिया।

पियरोला—संज्ञा पुं० [हिं० पीयर] पीले रंग की एक छोटी चिड़िया जो मैना से कुछ छोटी होती हैं और जिसकी बोली बहुत मीठी होती है।

पियली—संज्ञा स्त्री० [हिं० प्याली] नारियल की खोपरी का वह टुकड़ा जिसे बढ़ई आदि बरमे के ऊपरी सिरे के काँटे पर इसलिये रख लेते हैं जिसमें छेद करने के लिये बरमा सहज में घूम सके।

पियल्ला¹—संज्ञा पुं० [हिं० पीना] दूधपीता बच्चा। दूध का बच्चा। उ०—तियन को तल्ला पिय, तियन पियल्ला त्यागे ढोसत अबल्ला मल्ला धाए राजद्वार को।—रघुराज (शब्द०)।

पियल्ला²—संज्ञा पुं० [हिं० पीयर] दे० 'पियरोला'।

पियबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० पिय+बाँस] दे० 'पियाबाँसा'।

पिया(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय] दे० 'पिय'।

पियाज‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० प्याज] दे० 'प्याज'।

पियाजी†—वि० [हिं० पियाज + ई (प्रत्य०)] दे० 'प्याजी'।

पियादा† —संज्ञा पुं० [फ़ा० प्यादह्, प्यादा] दे० 'प्यादा'।

पियादा(पु)—वि० [सं० पादतल, प्रा० पायदल] पैदल। जो पाँव पाँव चले। उ०—कबही सोवै भुईं पियादे मँजिल गुजारी।—पलटू, भा० १, पृ० १४।

पियान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाण] यात्रा। दे० 'प्रयाण'। उ०—(स्वामी जी) अगम अगोचर दूर पियाना मारग लखं न कोई।—रामानंद०, पृ० १४।

पियाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पिलाना'।

पियानो—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का बड़ा अँगरेजी बाजा जो मेज के आकार का होता है।

विशेष—इसके भीतर स्वरों के लिये कई मोटे पतले तार होते हैं जिनका संबंध ऊपर की पटरियों से होता है। पटरियों पर ठोकर लगने से स्वर निकलते हैं।

पियाबाँसा—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय, हिं० पिय+बाँस] कटसरैया। कुरबक।

पियामन—संज्ञा पुं० [देश०] राजजामुन नाम का वृक्ष। वि० दे० 'राजजामुन'।

पियार¹—संज्ञा पुं० [सं० पियाल] मझोले आकार का एक पेड़।

विशेष—देखने में यह पेड़ महुवे के पेड़ सा जान पड़ता है। पत्ते भी इसके महुवे के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। वसंत ऋतु में इसमें आम की सी मंजरियाँ लगती हैं जिनके झड़ने पर फालसे के बराबर गोल गोल फल लगते हैं। इन फलों में मीठे गूदे की पतली तह होती है जिसके नीचे चिपटे बीज होते हैं। इन बीजों की गिरी स्वाद में बादाम और पिस्ते के समान मीठी होती है और मेवों मे गिनी जाती हैं। यह गिरी चिरौंजी के नाम से बिकती है। पियार के पेड़ भारतवर्ष भर के विशेषत: दक्षिण के जगलों में होते हैं। हिमालय के नीचे भी थोड़ी ऊँचाई तक इसके पेड़ मिलते हैं पर यह विशेषत: विंध्य पर्वत के जगलों में अधिकता से पाया जाता है। इसके धड़ में चीरा लगाने से एक प्रकार का बढ़िया गोंद निकलता है जो पानी में बहुत कुछ घुल जाता है। कहीं कही यह गोंद कपड़े में माड़ी देने के काम में आता है और छीपी इसका व्यवहार करते हैं। छाल और फल अच्छे वारनिश का काम दे सकते हैं। इसकी लकड़ी उतनी मजबूत नहीं होती पर लोग उससे खिलौने, मुठिया और दरवाजे के चौखट आदि भी बनाते हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती

हैं। इस वृक्ष के संबंध में यह समझ रखना चाहिए कि यह जंगलों मे आपसे आप उगता है, कहीं लगाया नहीं जाता। इसे कहीं कहीं अचार भी कहते हैं।

पियार†²—वि० [हिं०] दे० 'प्यारा'।

पियार†³—संज्ञा पुं० दे० 'प्यार'।

पियार†⁴—संज्ञा पुं० [हिं० पलाल] दे० 'पयाल'।

पियारा†—वि० [हिं०] दे० 'प्यारा'। उ०—भाई बंधु औ लोग पियारा; बिनु जिय घरी न राखै पारा। —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५३।

पियाल—संज्ञा पुं० [सं०] चिरौंजी का पेड़। विशेष दे० 'पियार'।

पियाला(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्याला'। उ०—अजब चीज खुरदनी पियाल ए मस्ता।—दादू०, पृ० १०६।

पियाला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्याला'।

पियावबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पहले चावल को पकाकर सिल पर पीसते हैं, फिर गुलाब का अतर और पाँचो मेवे मिलाकर बड़े की तरह बनाते है। अनंतर घी मे तलकर चाशनी में डाल देते हैं।

पियास†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'प्यास'।

पियासा†—वि० [हिं० पियास] दे० 'प्यासा'। उ०—जैसे कँवल सुरुज कै आसा। नीर कंठ लहि मरै पियासा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७२।

पियासाल—संज्ञा पुं० [सं० पीतसाल, प्रियसालक] बहेड़े या अर्जुन की जाति का एक बड़ा पेड़।

विशेष—यह भारतवर्ष के जंगलों मे प्रायः सर्वत्र होता है। इसके पत्ते बहेड़े के पत्तों के समान चौड़े चौड़े होते हैं जो शिशिर ऋतु में झड़ जाते हैं। फल भी बहेड़े के समान होते हैं और कहीं कहीं चमड़ा सिझाने के काम में आते हैं। लकड़ी इसकी मजबूत होती है और मकानों में लगती है। गाड़ी, नाव और मूसल आदि भी इस लकड़ी के अच्छे होते हैं। इसकी छाल से पीला रंग बनता है। रंग के अतिरिक्त छाल दवा के काम में आती है। लाख भी इसमें लगता है। छोटा नागपुर और सिंहभूमि के आसपास टसर के कीए पियासाल के पेड़ों पर पाले जाते हैं। वैद्यक में पियासाल कोढ़, विसर्प, प्रमेह, कृमि, कफ और रक्तपित्त को दूर करनेवाला तथा त्वचा और केशों को हितकारी माना गया है। इसे सज भी कहते हैं।

पर्या०—पीतसार। पीतसालक। प्रियक। असन। पीतशाल। महासर्ज।

पियासी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक तरह की मछली।

पियुख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पीयूष] दे० 'पीयूष' उ०—पियुख पयोधि मद्ध मनिम सो बद्ध भूमि रोच सों रुचिर रुचि रोचक रचन मे।—मति० ग्रं०, पृ० ३३७।

पियूख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पीयूष] दे० 'पीयूष'।

पियूष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पीयूष] दे० 'पीयूष'।

पियूषभानु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पीयूषभानु] चंद्रमा। पीयूषभानु। उ०—तीछन जुन्हाई भई ग्रीषम को घामु, भयो भीषम पियूषभानु भानु दुपहर को।—मति० ग्रं०, पृ० ३०३।

पिरंनि(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्राणी, हिं० पराणी†] प्राणी। जीव। उ०—दादू पसु पिरंनि के, पेही मंझि कलूब। बैठो आहे विच मैं पाणजो महबूब।—दादू०, पृ० ६०।

पिरकी‡—संज्ञा स्त्री० [सं० पिटिका, पिड़क, पिटका,] फोड़िया। फुंसी।

यौ०—पिरकी पाका† = फोड़ा फुंसी।

पिरतम†—संज्ञा पुं० [सं० प्रियतम] दे० 'प्रियतम'। उ०—बलाय जाऊँ मैं तो चरण ऊपर सूँ। महबुब साहेब तू ही पिरतम तुम बाज नहीं।—दक्खिनी०, पृ० १२६।

पिरता—संज्ञा पुं० [सं० पट्ट या हिं० पेरना (= दबाना) ?] काठ या पत्थर का टुकड़ा जिसपर रूई की पूनी रखकर दबाते हैं।

पिरथम(पु)†—वि० [सं० प्रथम] दे० 'प्रथम'। उ०—तासु कला पिरथम सुन्न आई।—कबीर सा०, पृ० ६१।

पिरथिमी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथिवी] दे० 'पृथ्वी'। उ०—सब पिरथिमी असीसइ जोरि जोरि कै हाथ।—जायसी ग्रं० (गुप्त) प० १३०।

पिरथी(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथिवी; पु० हिं० पृथी] दे० 'पृथ्वी'। उ०—पिरथी पवन के बीच पानी। दरमियान मे तेज ककोलता है।—कबीर० रे०, पृ० २६।

पिरथीनाथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पिरथी+सं० नाथ] दे० 'पृथ्वीनाथ'।

पिरन†—संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का लँगड़ापन।

पिरभू(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रभु] ईश्वर। प्रभु। स्वामी। उ०—परतख ही दीसरै प्राणी, परभू भजण तणों परताप।—रघु० रू० पृ० २३।

पिरम्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रेम, हिं० पिरेम†] दे० 'प्रेम'। उ०—जो तुहि साध पिरम्म की सीस काटि करि गोइ। खेलत खेलत हाल करि जो किछु होइ त होइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २५४।

पिराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीला, पीरा] दे० 'पियराई'। उ०—यो उजराई, पिराई, ललाई, मलाई हू कै न मुलायमी है तन।—(शब्द०)।

पिराक—संज्ञा पुं० [सं० पिष्टक, प्रा० पिट्ठक, पिडक] एक पकवान। गोझा। गुझिया। गोझिया।

विशेष—इसको बनाने की विधि यह है कि मोयन दिए हुए मैदे की पतली लोई के भीतर सूजी, खोवा, मेवे आदि मीठे के साथ भरते हैं और उसे अर्धचंद्राकार मोड़कर कोर को गूँथ देते हैं फिर उसे घी में तलकर निकाल लेते हैं।

पिराग†—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाग] दे० 'प्रयाग'। उ०—जैसे कासी

कुरखेत मथुरा पिराग हेत, जात हैं जगत सब काटन कों पाप जू।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १६६।

पिरान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्राण] दे० 'प्राण'। उ०—नाहिंन चले पिरान, सो उपाय कीजै जु किन।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४।

पिराना(पु)†—क्रि० अ० [सं० पीडन] १. पीडित होना। दर्द करना। दुखना। उ०—चलत चलत पग पाँय पिराने।—सूर (शब्द०)। २. पीड़ा अनुभव करना। दुःख समझना। सहानभूति करना। उ०—सेइ साधु सुनि समुझि कै पर पीर पिरातो।—तुलसी (शब्द०)।

पिरामिड—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'पीरामिड'।

पिरारा(पु)‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पिंडारा'। उ०—रूप रस रासि पास पथिक ! पिरारे ऐन नैन ये तिहारे ठग ठाकुर मदन के।—रघुनाथ (शब्द०)।

पिरावना(पु)†—क्रि० स० [हिं० पेराना] पेरना। पेरवाना। उ०—पुष्प तिली सगम जब कीन्हा। कोल्हू माहिं पिरावन लीन्हा।—कबीर सा०, पृ० २८२।

पिरावनो†—वि० [हिं० पिराना] पीड़ा देनेवाली। कष्टकर। उ०—कबीर पीर पिरावनी पंजर पीड न जाइ। एक न पीड परीत की रही कलेजा छाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ८।

पिरिच†—संज्ञा पुं० [देश०] कटोरा। तश्तरी।

पिरिथिमी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पृथ्वी'। उ०—सोने फूल पिरिथिमी फूली।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५०।

पिरिया[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १. कुएँ से पानी निकालने का रहँट। २. एक प्रकार का बाजरा।

पिरिया(पु)†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीढ़ी] पीढ़ी। पुश्त। उ०—पिरिया सहित सासरो पीहर, तारै खावंद आप तिरै।—रघु० रू०, पृ० १०२।

पिरी(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'प्रिय'। उ०—अठे पहर अरस मैं, बैठा पिरी पसंनि। दादू पसे तिनके जे दीदार लहंनि।—दादू०, पृ० १२६।

पिरीत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रीति] दे० 'प्रीति'। उ०—कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू।—जायसी ग्रं०, पृ० १।

पिरीतम(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० प्रियतम] दे० 'प्रियतम'। उ०—भल तुम्ह सुवा कीन्ह है फेरा। गाढ़ न जाइ पिरीतम केरा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७२।

पिरीता(पु)—वि० [सं० प्रीत (= प्रसन्न)] प्रिय। प्यारा। उ०—हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते।—तुलसी (शब्द०)।

पिरीति, पिरीती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'प्रीति'। उ०—पीउ सेवाति सों जैस पिरीती। टेकु पियास बाँधु जिय थीती।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५४।

पिरोज—संज्ञा पुं० [फ़ा० फीरोज ?] कटोरा। तश्तरी।

पिरोजन[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पिरोना या सं० प्रयोजन] बालक के कान छेदने की रीति। कनछेदन।

पिरोजन†[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रयोजन] दे० 'प्रयोजन'।

पिरोजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० फीरोजा] हरापन लिए एक प्रकार का नीला पत्थर। दे० 'फीरोजा'। उ०—मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीर कोर पचि रचे सरोजा।—मानस, १।२८८।

पिरोड़ा†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पीली कड़ी मिट्टी की भूमि।

पिरोना—क्रि० स० [सं० प्रोत, प्रा० पोइअ, पोअ + ना (प्रत्य०)] १. छेद के सहारे सूत तागे आदि में फँसाना। सूत तागे आदि में पहनाना। गूथना। पोहना। जैसे, तागे में मोती पिरोना, माला पिरोना। २. सूत तागे आदि को किसी छेद के आर-पार निकालना। तागे आदि को छेद में डालना। जैसे, सुई में तागा पिरोना।

संयो०—देना। लेना।

पिरोला—संज्ञा पुं० [हिं० पीला] पियरोला पक्षी।

पिरोहना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पिरोना'।

पिर्थमी, पिर्थवी—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथिवी] दे० 'पृथ्वी'। उ०—पाखँड की यह पिर्थमी, परपंच का समार।—संतवाणी, पृ० ६४। (ख) सात दीप नव खंड पिर्थवी सात समुद्र समाना।—जग० श०, पृ० ७६।

पिल—संज्ञा स्त्री० [अं०] (दवा की) गोली। बटी। जैसे, क्विनाइन पिल। टानिक पिल।

पिलई†[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्लीहा] बरवट। तापतिल्ली।

पिलई†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिल्ला] कुत्ते की मादा संतति।

पिलक—संज्ञा पुं० [हिं० पीला] १. पीले रंग की एक चिड़िया जो मैना से कुछ छोटी होती है और जिसका कंठ स्वर बहुत मधुर होता है। यह ऊँचे पेड़ों पर घोंसला बनाती है और तीन या चार अंडे देती है। पियरोला। जर्दक। २. अबलक कबूतर।

पिलकना[1]—क्रि० स० [सं० + पिल (= प्रेरित करना)] १. गिराना। २. लुढ़काना। ढकेलना।

पिलकना†[2]—क्रि० अ० [हिं० पिनकना] चिढ़ना। खीझना।

पिलका‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिंडली] दे० 'पिंडली'।

पिलकिया—संज्ञा पुं० [देश०] पीलापन लिए खाकी रंग की एक छोटी चिड़िया जो जाड़े के दिनों में पंजाब से आसाम तक दिखाई देती है। यह चट्टानों के नीचे बच्चे देती है।

पिलखन—संज्ञा पुं० [सं० प्लक्ष] पाकर का पेड़।

पिलच(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पिलना] पिलने का भाव। पिल पड़ना।

मुहा०—पिलच पड़ना = एकाएक आक्रमण कर देना। टूट पड़ना। उ०—कन्तोंना हुजूर, लौंडी न जाने की। मेरे ही पीछे पड़ जायगी और पिलच पड़ेगी। बंदी दरगुजरी।—सैर कु०, पृ० ३०।

पिलचना—क्रि० अ० [सं० पिल (= प्रेरणा)] १. दो आदमियों

का खूब भिड़ना। गुथना। लिपटना। २. (किसी काम आदि में) खूब लग जाना। तत्पर होना। लीन होना।

पिलड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कीमा। मसालेदार कीमा।

पिलना—क्रि० अ० [सं० पिल (=प्रेरणा)] १. किसी ओर एकबारगी टूट पड़ना। ढल पड़ना। झुक पड़ना। धँस पड़ना। जैसे,—सब लोग उस मंदिर में पिल पड़े।

संयो० क्रि०—पड़ना।

मुहा०—पिल पड़ना=एकाएक आक्रमण कर देना। जत्था बनाकर टूट पड़ना।

२. एकबारगी प्रवृत्त होना। एकबारगी लग जाना। लिपट जाना। भिड़ जाना। जैसे, किसी काम में पिल पड़ना। ३. पेरा जाना तेल निकालने के लिए दबाया जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

पिलपिल†—वि० [हिं०] दे० 'पिलपिला'।

पिलपिला—वि० [अनु०] इतना नरम और ढीला कि दबाने से भीतर का रस या गूदा बाहर निकलने लगे। भीतर से गीला और नरम। जैसे,—(क) आम पककर पिलपिला हो गया है। (ख) फोड़ा पिलपिला हो गया है।

पिलपिलाना—क्रि० स० [हिं० पिलपिला] भीतर से रसदार या गूदेदार वस्तु को दबाना जिससे रस या गूदा ढीला होकर बाहर निकलने लगे।—जैसे,—(क) आम को पिलपिलाओ मत। (ख) फोड़े को पिलपिलाने से मवाद आता है।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

पिलपिलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिलपिला] दबकर गूदे या रस के ढीले होने के कारण आई हुई नरमी।

पिलप्पितⓅ—संज्ञा पुं० [स० पील] पीलवान। महावत। उ०—घर-घर होहिं पिलप्पित जोर।—पृ० रा०, २५।२३०।

पिलवानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पील] दे० 'पीलवान'। उ०—पिलवान हलै करि पील गिरै। कलसा मनो देवल के बिहरै।—पृ० रा०, २५।१६३।

पिलवाना¹—क्रि० स० [हिं० पिलाना का प्रे०रूप] पिलाने का काम कराना। दूसरे को पिलाने मे लगाना। जैसे,—थोड़ा पानी पिलवा दो।

संयो०क्रि०—देना।

पिलवाना—क्रि० स० [हिं० पेलना] पेलने या पेरने का काम कराना। पेरवाना। जैसे, कोल्हू में पिलवाना।

पिलाⓅ—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पिंडली'। उ०—सबल तले पिला ले दांनी।—प्राण०, पृ० २४।

पिलाना—क्रि० स० [हिं० पीना] १. पीने का काम कराना। जैसे,—तुम्हें जबरदस्ती दवा पिलाएँगे। २. पीने को देना। जैसे, पानी पिलाओ।

संयो० क्रि०—देना।

३. किसी छेद में डाल देना। भीतर भरना। जैसे, (क) कान में सीसा पिलाना (ख) दीवार के दरारों में सीसा या राँगा पिलाना (ग) यह छड़ी इतनी भारी है मानो भीतर लोहा पिलाया है।

मुहा०—(कोई बात) पिलाना=कान में भरना। मन में बैठा देना। जी में जमाना।

पिलास—संज्ञा पुं० [अं० प्लायर्स] एक प्रकार का औजार जो तार को मोड़ने, काटने, ऐंठने तथा छोटी मोटी चीजों को पकड़कर उठाने के काम आता है। सँड़सी।

पिलुंडा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुलिंदा'।

पिलु, पिलुक—संज्ञा पुं० [स०] पीलू का पेड़।

पिलुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा।

पिलुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा।

पिलौधा†—वि० [हिं० पिल+औधा (प्रत्य०)=औंधा] पिलपिला। पिचपिचा। उ०—चींटे के पड़ते ही पिलौधा हुआ।—कुकुर०, पृ० ४३।

पिल्ला—संज्ञा पुं० [सं०] एक नेत्ररोग जिसमें आँखों से थोड़ा थोड़ा कीचड़ बहा करता है और वे चिपचिपाती रहती हैं। २ आँख जिसमे पिल्ला रोग हुआ हो (को०)। ३ उक्त रोगग्रस्त प्राणी (को०)।

पिल्लका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हस्तिनी। हथिनी।

पिल्लनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पिलना'। उ०—लखी फौज चंदेल की बीर पिल्ले।—प० रासो, पृ० ८२।

पिल्ला—संज्ञा पुं० [देश०] कुत्ते का बच्चा।

पिल्लू—संज्ञा पुं० [सं० पीलू (=कृमि)] बिना पैर का सफेद लबा कीड़ा जो सड़े हुए फल या घाव आदि में देखा जाता है। ढोला।

पिवⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय] दे० पिय।

पिवनाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पीना'। उ०—तरनि ताप तलफत चकोर गति पिवत पियूष पराग।—सूर०, १०।१७७।

पिवनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिउनी'। उ०—पिवनी नहदै कात सूत ले जुलहा बूनी।—पलटू०, पृ० ३८।

पिवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पिलाना'।

पिवासⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० पिपासा] प्यास। तृषा।

पिशंग¹—संज्ञा पुं० [सं० पिशङ्ग] पीलापन लिए भूरा रंग। धूमल रग।

पिशंग—वि० उक्त रंग का। भूरे रंग का।

पिशंगक—संज्ञा पुं० [सं० पिशङ्गक] १. विष्णु। २. विष्णु का अनुचर [को०]।

पिशंगिला—संज्ञा स्त्री० [सं० पिशङ्गिला] कास्य। काँसा।

पिशंगी—वि० [सं० पिशङ्गिन्] १. बादामी रंग का। २. भूरा [को०]।

पिशा—वि० [सं०] १. पापरहित। पापमुक्त। २. अनेक रूप का। बहुरूपी [को०]।

पिशाच—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पिशाची] १. एक हीन देवयोनि। भूत।

विशेष—यक्षों और राक्षसों से पिशाच हीन कोटि के कहे गए हैं और इनका स्थान मरुस्थल बताया गया है। ये बहुत अशुचि और गंदे कहे गए हैं। युद्धक्षेत्रों आदि में इनके बीभत्स कांडों का वर्णन कवि लोगों ने किया है, जैसे खोपड़ी में रक्त पीना आदि।

२. प्रेत (को०)। ३. अत्यंत क्रूर और दुष्ट व्यक्ति (को०)।

पिशाचक—संज्ञा पुं० [सं०] भूत। पिशाच।

पिशाचकी—संज्ञा पुं० [सं० पिशाचकिन्] कुबेर।

पिशाचद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] सिहोर का पेड़। शाखोट वृक्ष।

पिशाचगृहीतक—संज्ञा पुं० [सं०] पिशाच से पीड़ित। प्रेतबाधा से आक्रांत (को०)।

पिशाचघ्न[1]—वि० [सं०] पिशाचों को नष्ट या दूर करनेवाला।

पिशाचघ्न[2]—संज्ञा पुं० पीली सरसों।

विशेष—प्रेत उतारनेवाले ओझा प्रायः पीली सरसों फेंकते हैं। और उसी से काम लेते हैं।

पिशाचचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्मशान सेवन। जैसे शिव जी करते हैं।

पिशाचता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पिशाचत्व' (को०)।

पिशाचत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिशाच होने का भाव। २. क्रूरता (को०)।

पिशाचदीपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिशाचों का दीया। एक मिथ्या ज्योति। लुकारी। लुक जो रात को घने अंधकार में दिखाई देती है (को०)।

पिशाचद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] शाखोट वृक्ष। पिशाच वृक्ष (को०)।

पिशाचपति—संज्ञा पुं० [सं०] पिशाचों के स्वामी शिव (को०)।

पिशाचबाधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिशाच द्वारा जन्य या प्राप्त पीड़ा। प्रेतबाधा (को०)।

पिशाचभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पैशाची' (को०)।

पिशाचमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेतबाधा से मुक्ति। पिशाचों से मुक्ति। २. एक तीर्थ। ३. काशी का एक प्रसिद्ध तीर्थ।

पिशाचवदन—वि० [सं०] राक्षस की तरह मुँहवाला (को०)।

पिशाचवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शाखोट वृक्ष। सिहोर का पेड़।

पिशाचसंचार—संज्ञा पुं० [सं० पिशाचसञ्चार] प्रेतबाधा (को०)।

पिशाचांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० पिशाचाङ्गना] पिशाची (को०)।

पिशाचालय—संज्ञा पुं० [सं०] अंधकारयुक्त वह स्थान जहाँ बिना आग जले प्रकाश की लुक दिखाई पड़े (को०)।

पिशाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी जटामासी। २. पिशाची।

पिशाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिशाच स्त्री। २. जटामासी।

पिशिक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता में वर्णित एक देश का नाम।

पिशित—संज्ञा पुं० [सं०] १. मांस। गोश्त। २. छोटा टुकड़ा या हिस्सा (को०)।

यौ०—पिशिताश, पिशिताशी, पिशितभुक् = दे० 'पिशिताशन'। पिशितपिंड = मांसखंड। मांस का टुकड़ा।

पिशिताशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। प्रेत। २. नरभक्षी। ३. भेड़िया (को०)।

पिशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

पिशील, पिशीलक—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का प्याला या कटोरा। (शतपथ ब्राह्मण)।

पिशुन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक की बुराई दूसरे से करके भेद डालनेवाला। चुगलखोर। इधर की उधर लगानेवाला। दुर्जन। खल। उ०—इसे पिशुन जान तू, सुन सुभाषिणी है बनी। 'धरो' लगि, किसे धरूँ ? धृति लिए गए हैं धनी।—साकेत, पृ० २५९। २. कुंकुम। केसर। ३. कपिवक्त्र। नारद। ४. काक। कौआ। ५. तगर। ६. कपास। ७. एक प्रेत जो गर्भवती स्त्रियों को कष्ट पहुँचाता है (को०)। ८. प्रवंचित करना। धोखा देना।

पिशुन[2]—वि० १ परस्पर भेद डालनेवाला। सूचक। २. चुगली करनेवाला। प्रवंचक। धोखेबाज। ३. क्रूर। निर्भय। निर्दय। नीच। निम्न। ४. मूर्ख (को०)।

यौ०—पिशुनवचन, पिशुनवाक्य = चुगली।

पिशुनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चुगलखोरी।

पिशुना—संज्ञा स्त्री० [सं०] असवर्ग। पुक्का।

पिशोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद या पागलपन।

विशेष—इसमें रोगी प्रायः ऊपर को हाथ उठाए रहता है; अधिक बकता और भोजन करता है, रोता तथा गंदा रहता है।

पिशौर—संज्ञा पुं० [देश०] हिमालय की एक झाड़ी जिसकी टहनियों से बोझ बाँधते हैं और टोकरे आदि बनाते हैं। †२. पेशावर।

पिश्वाज—संज्ञा पुं० [फा० पिश्वाज़] नृत्य के समय पहना जानेवाला लहँगा। पेशवाज (को०)।

पिष्ट[1]—वि० [सं०] १. पिसा हुआ। चूर्ण किया हुआ। २. निचोड़ा हुआ (को०)। ३ गूँधा हुआ आटा आदि (को०)।

पिष्ट[2]—संज्ञा पुं० १. पानी के साथ पीसा हुआ अन्न, विशेषतः दाल। पीठी। पिट्ठी। २. कचौरी या पूआ। रोट। ३. सीसा धातु (को०)।

पिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिष्ट। पीठी। पिट्ठी। २. कचौरी या पूआ। रोट। ३. एक नेत्ररोग। फूला। फूली। ४. विशेष प्रकार का अस्थिभंग (सुश्रुत)। ५. सीसा धातु।

पिष्टपचन—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाही या तावा (को०)।

पिष्टप—संज्ञा पुं० [सं०] लोक। भुवन।

पिष्टपशु—संज्ञा पुं० [सं०] पिसे हुए आटे का बना पुतला (को०)।

पिष्टपाचक—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाही।

पिष्टपिंड—संज्ञा पुं० [सं० पिष्टपिण्ड] रोटी। अंगाकरी। बाटी (को०)।

पिष्टपूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक मिठाई। घृतपूर (को०)।

पिष्टपेष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पिष्टपेषण'।

पिष्टपेषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिसे हुए को पीसना। २. कही बात को फिर फिर कहना।

पिष्टपेषणन्याय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय। विशेष—दे० 'न्याय'।

पिष्टप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें चावल के पानी के समान पदार्थ मूत्र के साथ गिरता है।

पिष्टमेह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पिष्टप्रमेह'।

पिष्टवर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीठी। मूँग, मसूर, चावल आदि को पीसकर बनाई हुई पीठी या लोई [को०]।

पिष्टसौरभ—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन जिसे पीसने से सुगंध निकलती है।

पिष्टात—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्रादि को सुगंधित करने का चूर्ण। गुलाल। अबीर। बुक्का।

पिष्टातक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० पिष्टात।

पिष्टाद—वि० [सं०] पीठी या आटा खानेवाला [को०]।

पिष्टान्न—संज्ञा पुं० [सं०] पिसे हुए अन्नचूर्ण से निर्मित वस्तु।

पिष्टालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंदन।

पिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चूर्ण। आटा [को०]।

पिष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चावलों से बनाई हुई तवाखीर या वंसलोचन। २. पिसे हुए चावल का जल [को०]।

पिष्टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेताम्ली का पौधा।

पिष्टोदक—संज्ञा पुं० [सं०] पीसे हुए चावल का घोल या पानी [को०]।

पिष्षना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रेक्षण, प्रा० पिस्खण] दे० 'पेखना'। उ०—स्याम रंग पिष्षहि न घटा घनघोर गरज्जत।—पृ० रा०, २।३४६।

पिसंग—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पिशंग'।

पिसंदर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सौतेला पुत्र [को०]।

पिसण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पिशुन] शत्रु। दुश्मन। उ०—पिसण मार मून पिसण रो, असमभ्र लियो उबार।—बाँकी० ग्रं०, पृ० ६०।

पिसताबा†—संज्ञा पुं० [सं० पश्चात्ताप] पश्चात्ताप। पछतावा। उ०—जद करसी पिसतावो जमरा, पूत फिरैला दोला।—रघु० रू०, पृ० २०।

पिसनहरिया, पिसनहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीसना] १. दे० 'पिसनहारी'। २. आटा आदि पीसने का स्थान।

पिसनहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीसना + हारी (प्रत्य०)] आटा पीसनेवाली। वह स्त्री जिसकी जीविका आटा पीसने से चलती हो।

पिसना[१]—क्रि० अ० [हिं० पीसना] १. रगड़ या दबाव से टूटकर महीन टुकड़ों में होना। दाब या रगड़ खाकर सूक्ष्म खंडों में विभक्त होना। चूर्ण होना। चूर होकर धूल सा हो जाना। जैसे, गेहूँ पिसना, मसाला पिसना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. पिसकर तैयार होनेवाली वस्तु का तैयार होना। जैसे, आटा पिसना, पिट्ठी पिसना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. दब जाना। कुचल जाना। जैसे,—पहिए के नीचे पैर पड़ेगा तो पिस जायगा।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

४. घोर कष्ट, दुःख या हानि उठाना। पीड़ित होना। जैसे,—(क) एक दुष्ट के साथ न जाने कितने निरपराध पिस गए। (ख) महाजन के दिवाले से न जाने कितने गरीब पिस गए।

संयो० क्रि०—जाना।

५. परिश्रम से अत्यंत क्लांत होना। अत्यंत श्रांत एवं क्लांत होना। थककर बेदम होना।

पिसना(पु)[२]—संज्ञा पुं० [हिं० पीसना] पीसना। पीसी जानेवाली चीज गेहूँ आदि। उ०—पिसना पीसै राँड़री पिउ पिउ करै पुकार।—पलटू, भा० १, पृ० १७।

पिसमान(पु)—वि० [सं० पश्यमान] दिखाई पड़ता हुआ। दृश्यमान। दृग्गोचर। उ०—उन यह सृष्टि कीन्ह पिसमाना।—कबीर सा०, पृ० ४६६।

पिसर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पुत्र। आत्मज। बेटा। लड़का। उ०—दिया था खुदा उसको सब कुछ मगर। वले सख्त मुहताज था बिन पिसर।—दक्खिनी०, पृ० १३६।

यौ०—पिसरज़ादा = पौत्र। पुत्र का पुत्र। पिसरख्वांदा, पिसर ए मुतबन्ना = दत्तक पुत्र। गोद लिया बेटा।

पिसवाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पिश्वाज] दे० 'पेशवाज'।

पिसवाना—क्रि० स० [हिं० पीसना का प्रे० रूप] पीसने का काम कराना।

पिसाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीसना] १. पीसने की क्रिया या भाव। २. पीसने का काम या व्यवसाय। ३. चक्की पीसने का काम। आटा पीसने का धंधा। जैसे,—वह पिसाई करके अपना पेट पालती है। ४. पीसने की मजदूरी। ५. अत्यंत अधिक श्रम। बड़ी कड़ी मिहनत। जैसे,—वहाँ नौकरी करना बड़ी पिसाई है।

पिसाच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पिशाच] दे० 'पिशाच'। उ०—भरे कुंडनि रुधिर रन रुंडनि की रासि भर्ये मास खग जंबुक पिसाच समुदाई।—हम्मीर०, पृ० ५७।

पिसाचर†—संज्ञा पुं० [सं० पिशाचर + हिं० (प्रत्य०)] पिशाच। निशाचर। उ०—ये सब मृत्यु अकाल दिखाई। मुए सु योनि पिशाचर पाई।—सहजो० पृ० ३४।

पिसान†—संज्ञा पुं० [सं० पिष्टान्न, या हिं० पिसना, पिसा + अन्न] अन्न का बारीक पिसा हुआ चूर्ण। धूल की तरह पिसी हुई अनाज की बुकनी। आटा।

मुहा०—पिसान होना = दबकर चूर होना।

पिसाना[१]—क्रि० स० [हिं० पीसना का प्रे० रूप] दे० 'पिसवाना'।

पिसाना[२]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पिसना'।

पिसानीपु†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पेशानी'। उ०—चढ़े ते कुमति चकताहू की पिसानी मैं।—भूषण ग्रं०, पृ० १०३।

पिसावनिपु—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पीसना**] पीसने का काम। पीसने की क्रिया। उ०—सती पिसावनि ना करे पीसि खाय सो रोड। साधू जन माँगे नही माँगि खाय सो रोड़।—सं० दरिया, पृ० १८३।

पिसिया†—संज्ञा पुं० [हिं० **पिसना**] १. एक प्रकार का छोटा और मुलायम लाल गेहूँ। †२. वह जो पीसने का काम करता हो। ३. पीसने का काम।

पिसी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पिसना**] गेहूँ।

पिसो—संज्ञा स्त्री० [सं० **पितृस्वसृ**] पिता की बहन। फूआ (बंग-भाषा में प्रयुक्त)।

पिसुनपु—संज्ञा पुं० [सं० **पिशुन**] दे० 'पिशुन'। उ०—गात सरोवर पंच वग प्रान हंस उहि वारि। **पिसुन** वचन किए ब्याधि बिधि दोनों सकल बिडारि।—माधवानल०, पृ० २१४।

पिसुराई—संज्ञा स्त्री० [देश०] सरकंडे का एक छोटा टुकड़ा जिसपर रुई लपेटकर पूनी बनाते हैं।

पिसेरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का हिरन।

विशेष—इसके ऊपर का हिस्सा भूरा और नीचे का काला होता है। इसकी ऊँचाई एक फुट और लंबाई दो फुट होती है। यह दक्षिण भारत में पाया जाता है। यह बड़ा डरपोक होता है और सुगमता से पाला जा सकता है। यह पत्थरों की आड़ में रहता है और दिन को बाहर कहीं नहीं निकलता।

पिसौनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पीसना**] १. पीसने का काम। चक्की पीसने का धंधा। २. कठिन काम। परिश्रम का काम। ३. पीसने की मजूरी। पिसाई।

पिस्त—संज्ञा पुं० [फा०] सत्तू। सक्तु [को०]।

पिस्तई—वि० [फा० **पिस्तह्**] पिस्ते के रंग का। पीलापन लिए हरा।

पिस्तरनापु—क्रि० स० [सं० **प्रस्तारण**] प्रसार करना। फैलाना। उ०—दुज सुमन बसिय बुध पक्ख रस, वट बिलाम गुन **पिस्तरिव**।—पृ० रा०, १।४।

पिस्ताँ—संज्ञा स्त्री० [फा० **पिस्तान**] स्तन। कुच। वक्षोज [को०]।

पिस्ता—संज्ञा पुं० [फा० **पिस्तह्**] काकड़ा की जाति का एक छोटा पेड़ और उसका फल जो एक प्रसिद्ध मेवा है।

विशेष—इसका पेड़ शाम, दमिश्क और खुरासान से लेकर अफगानिस्तान तक थोड़ा बहुत होता है और इसके फल की गिरी अच्छे मेवों में है। इसके पत्ते गुलचीनी के पत्तों के से चौड़े चौड़े होते हैं और एक सींक में तीन तीन लगे रहते हैं। पत्तों पर नसें बहुत स्पष्ट होती हैं। फल देखने में महुवे के से लगते हैं। रूमी मस्तगी के समान एक प्रकार का गोंद इस पेड़ से भी निकलता है। पिस्ते के पत्तों पर भी काकड़ासींगी के समान एक प्रकार की लाही सी जमती है जो विशेषतः रेशम की रँगाई में काम आती है। पिस्ते के बीज से तेल भी बहुत सा निकलता है जो दवा के काम में आता है।

पिस्तौल—संज्ञा स्त्री० [अं० **पिस्टल**] तमंचा। छोटी बंदूक।

पिस्त्र—संज्ञा पुं० [फा० **पिसर**] बेटा। पुत्र। उ०—हक ने अपना फजल जब उस पर किया। यक पिस्र मकबूल तब उसकूँ दिया।—दक्खिनी०, पृ० ३६३।

पिस्सो†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **पिसना**] एक प्रकार का गेहूँ।

पिस्सू—संज्ञा पुं० [फा० **पश्शह्**] एक छोटा उड़नेवाला कीड़ा जो मच्छड़ों की तरह काटता और रक्त पीता है। कुटकी।

पिहक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'पिहकनी'।

पिहकना—क्रि० अ० [अनु०] कोयल, पपीहे, मोर आदि सुंदर कंठवाले पक्षियों का बोलना।

पिहकनिपु—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पिहकने की क्रिया या भाव।

पिहरा—संज्ञा पुं० [हिं० **पिहान**] पत्ती जो पाम के ऊपर बिछाई जाती है। (कुम्हार)।

पिहान†—संज्ञा पुं० [सं० **पिधान**, प्रा० **पिहाण**] बरतन का ढक्कन। ढकना। ढाँकने की वस्तु। आच्छादन।

पिहानोपु—संज्ञा स्त्री० [सं० **पिधानिका**] दे० 'पिहान'। उ०—आलस, अनख न आचरज, प्रेम पिहानी जानु।—तुलसी० ग्रं०, पृ० १३६।

पिहिकना†—क्रि० स० [हिं० अनु०] दे० 'पिहकना'। उ०—गिरिवर पिहिकत मोर झींगुर झनकारेव।—सं० दरिया, पृ० ८८।

पिहित[१]—वि० [सं०] छिपा हुआ।

पिहित[२]—संज्ञा पुं० एक अर्थालंकार जिसमें किसी के मन का कोई भाव जानकर क्रिया द्वारा अपना भाव प्रकट करना वर्णन किया जाय। जैसे,—गैर मिसिल ठाढ़ो शिवा अंतरजामी नाम। प्रकट करी रिस साह को, सरजा करि न सलाम। (यहाँ शिवाजी ने औरंगजेब का उपेक्षाभाव जानकर उसे सलाम न कर अपना क्रोध प्रकट किया।)

पिहुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] एक पक्षी।

पिहोली—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जो मध्यप्रदेश और बरार से लेकर बंबई के आसपास तक होता है। यह पान के बीड़ों में लगाया जाता है। इसकी पत्तियों से बड़ी अच्छी सुगंध निकलती है। इन पत्तियों से इत्र बनाया जाता है, जो पचौली के नाम से प्रसिद्ध है। दे० 'पचौली'।

पींग†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पेंग'।

पींगाली†—संज्ञा पुं० [सं० **पिङ्गल** (= छंद) ?] भैरव राग के एक पुत्र का नाम। उ०—पींगाली मधु माधो गावै।—माधवानल०, पृ० १६३।

पींजणपु—क्रि० स०, [सं० **पिञ्जन**] दे० 'पीजना'। उ०—रुई

रुई पींजण के कारण, आपन राम पठाया।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८६१।

पींजन—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जन] रुई धुनने की क्रिया।

पींजना—क्रि० स० [सं० पिञ्जन (= धुनकी)] रुई धुनना। उ०—बिहु चक्क हुक्क घर घरहरत, पिसुन पीजि किज्जय नरम।—पृ० रा०, ३।५५।

पींजरⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जर] दे० 'पिंजड़ा' या 'पंजर'।

पींजराⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जर] दे० 'पिंजड़ा'।

पींड†—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड] १. शरीर। देह। पिंड। उ०—बिन जिय पींड छार करि कूरा। छार मिलावइ सो हित पूरा।—जायसी (शब्द०)। २. वृक्ष का धड़। वृक्ष देह। तना। पेडी। उ०—कटहर डार पींड सो पाके। बड़हर सोउ अनूप अति ताके।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३८। ३. किसी गीली वस्तु का गोला। पिंड। पिंडी। ४. कोल्हू के चारो ओर गीली मिट्टी का बनाया हुआ घेरा जिसमें से ईख की अंगारियाँ या छोटे टुकड़े छटककर बाहर नहीं निकलने पाते। ५. चरखे का मध्य भाग। बेलन। ६. शिरोभूषण। दे० 'पीड़'। उ०—(क) शिखी की भाँति शिर पींड डोलत सुभग चाप ते अधिक नवमाल शोभा।—सूर (शब्द०)। (ख) पींड श्रीखंड शिर भेष नटवर कसे अंग इक छटा मैं ही भुलाई।—सूर (शब्द०)। ७. पिंडखजूर नामक फल। उ०—खरिक दाख अरु गिरी चिरारी। पींड बदाम लेत बनवारी।—सूर (शब्द०)।

पींडी—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्डिका] दे० 'पिंडी'।

पींडुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिंडुली'।

पींढुला‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पीढ़ा'। उ०—सासु कूं डारयो पीढुला, नणद कूं डारयो मूढ़िला।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१७।

पींपरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पिप्पल] दे० 'पीपर'। उ०—खिल्लत सिकार पिथ कुँअर बर। पसु पींपर दल थरहरे।—पृ० रा०, ६।१००।

पीⓅ¹—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय] दे० 'पिय'। उ०—गति अनत बसि भोर पी भूमत आए ऐन। निरखि न सौहैं नैन सी करति न सौहैं नैन।—स० सप्तक, पृ० २५६।

पी²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पपीहे की बोली। उ०—पी पी करत पपीहा पापी प्राण त्याग कर देहौं।—श्रीनिवासदास (शब्द०)।

यौ०—पी कहाँ = पपीहे की बोली।

पीअर‡¹—संज्ञा पुं० [हिं० पीला] पीले रंग का वस्त्र। पियरी। उ०—ए पिया, हमें पीअरे की साध। पिअरी चो न रंगाइए।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१४।

पीअरⓅ²—वि० [सं० पीत] दे० 'पीयर'। उ०—दान देति है मनि गन चोरा। हेम पटबर पीअर चीरा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१८।

पीउ—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय] दे० 'पिय'।

पीउ, पीऊ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पिय'। उ०—तब लगि धीर सुना नहिं पीऊ। सुनतहिं घरी रहै नहीं जीऊ।—पदमावत, पृ० २७२।

पीऊखⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० पीयूष] अमृत। पीयूष। सुधा। उ०—तुअ दरसन बिनु तिल ओ न जीव। जइऔ कलामति पीऊख पीव।—विद्यापति, पृ० १९६।

पीक¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पिच्च (= दबाना, निचोड़ना)] १. थूक से मिला हुआ पान का रस। चबाए हुए बीड़े या गिलोरी का रस। पान के रंग से रँगा हुआ थूक। थूक।

यौ०—पीकदान। पीकलीक।

१. पहली बार का रंग। वह रंग जो कपड़े को पहली बार रंग में डुबोने से चढ़ता है (रँगरेज)।

पीक²—वि० [अ० पीक (= चोटी)] ऊँचनीच। ऊबड़ खाबड़। असमतल। नाहमवार (लश०)।

पीक³—संज्ञा पुं० [अं०] कोना (लश०)।

पीक⁴—वि० खड़ा। कायम (लश०)।

पीक†⁵—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पीका'।

मुहा०—पीक फूटना = पनपना।

पीकदान—संज्ञा पुं० [हिं० पीक + फा० दान (= आधार; पात्र)] एक विशेष प्रकार का बना हुआ वह बरतन या पात्र जिसमें पान की पीक थूकी या डाली जाती है। उगालदान।

पीकना†—क्रि० अ० [सं० पिक अथवा पपीहे की बोली 'पी' से अनुकृत] पिहकना। पपीहे या कोयल का बोलना। उ०—अब न धीर धारत बनत सुरत बिसारी कंत। पिक पापी पीकन लगे बगरेउ बाग बसंत।—(शब्द०)।

पीकपात्र—संज्ञा पुं० [हिं० पीक + सं० पात्र] पीकदान। उगालदान। उ०—नट भट बिट ठग ठाठ, पीकपात्र है सबन को।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ९६।

पीका†—संज्ञा पुं० [देश०] किसी वृक्ष का नया कोमल पत्ता। कोंपल। पल्लव। उ०—कहै पदमाकर परागन में पानहू में पातन में पीकन पलासन पगंत है।—पद्माकर (शब्द०)।

मुहा०—पीका फूटना = पनपना। पल्लवित होना। कोंपलें फेंकना। उ०—जासु चरन जल सींचन पाई। पीका फूटि हरित ह्वै आई।—रघुराज (शब्द०)।

पीच¹—संज्ञा पुं० [सं०] ठुड्डी। ठोढ़ी (को०)।

पीच²—संज्ञा स्त्री० [सं० पिच्च] १. भात का पसाव। माँड़। २. पान की पीक।

पीचू—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का झाड़। पीलू। जरदालू। २. करील का पक्का फल। पक्का कचड़ा या ढेंटी।

पीच्छ‡—संज्ञा पुं० [सं० पिच्छ] दे० 'पिच्छ'। उ०—सो श्री ठाकुर जी ने मोर पीच्छ को मुकुट धारन कियो है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३२६।

पीछा¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीच] पीच। माँड़।

पीछ²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीछे या पिछला] पक्षियों की दुम।

पीछ[३]—संज्ञा स्त्री० [अं० पिच] एक प्रकार की राल जो जहाज आदि में दरार भरने के काम में आती है। दामर। गीर। कील। (लश०)।

पीछ† —संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पीछा'। जैसे, आगपीछ = आगापीछा।

पीछरि(पु)‡—वि० [स०] पिच्छल। मसृण। चिकना। उ०—पथ पीछरि एक रयनि अधार। कुचजुग कलसे जमुना भेलि पार।—विद्यापति, पृ० ३०८।

पीछला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'पिछला'। उ०—ग्राह गह्यौ गाढ़े बैर पीछले के बाढ़े भयो।—मति० ग्रं०, पृ० ३८७।

पीछा—संज्ञा पुं० [सं० पश्चात्, प्रा० पच्छा] १. किसी व्यक्ति या वस्तु का वह भाग जो सामने की विरुद्ध दिशा में हो। किसी व्यक्ति या वस्तु के पीछे की ओर का भाग। पश्चात्-भाग। पुश्त। 'आगा' का उलटा। जैसे,—(क) इस इमारत का आगा जितना अच्छा बना है उतना अच्छा पीछा नहीं बना है। (ख) इस अँगरखे का पीछा ठीक नहीं है।

मुहा०—**पीछा दिखाना** = (१) भागना। हारकर घर का रास्ता लेना। पीठ दिखाना। जैसे,—कुल दो ही घंटे की लड़ाई के बाद शत्रु ने पीछा दिखाया। (२) दे० 'पीछा देना'। **पीछा देना** = किसी काम में पहले साथ देकर फिर किनारा करना। पीछे जाना। मौके पर हट जाना या धोखा देना। पहले भरोसा दिलाकर पीछे सहायता न देना। **पीछा भारी होना** = (१) पीछे की ओर शत्रु का होना। पीछे की ओर से भय या खतरा होना। (२) कुमुक आ जाने से सेना का पश्चात् भाग सबल हो जाना।

२. किसी घटना का पश्चात्वर्ती काल। किसी घटना के बाद का समय। जैसे,—(क) ब्याह का पीछा है, इसी से हाथ इतना तंग है। (ख) इतने बड़े रईस (की मृत्यु) का पीछा है, हजारों रुपए लग जाएँगे। ३. पीछे पीछे चलकर किसी के साथ लगे रहने का भाव। जैसे,—(क) बड़े का पीछा है, कुछ न कुछ दे ही जायगा। (ख) चार साल तक इस साधु का पीछा किया पर इसने कुछ भी न बताया।

मुहा०—**पीछा करना** = (१) किसी के पीछे पीछे जाना या फिरा करना। हर समय किसी के साथ या समीप बना रहना। कोई काम निकालने के लिये या किसी आशा से किसी के साथ लगे रहना। (२) अनिच्छुक व्यक्ति से कोई काम कराने के लिये अत्यंत आग्रह करते रहना। किसी बात के लिये किसी को तंग या दिक करना। गले पड़ना। जैसे,—अब तो तुम इस काम के लिये मेरा पीछा न करते तो मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानता। (३) किसी को पकड़ने, मारने या भगाने आदि के लिये उसके पीछे पीछे चलना। खदेड़ना। **पीछा छुड़ाना** = (१) पीछा करनेवाले से छुटकारा प्राप्त करना। किसी बात के आग्रह से, तंग या दुःखी करनेवाले से अपने आपको दूर कर लेना। गले पड़े हुए व्यक्ति से जान छुड़ाना। जैसे,—बड़ी कठिनाई से इस आदमी से पीछा छुड़ाया है। (२) अप्रिय या इच्छाविरुद्ध संबंध का अंत करना। दुःखदायी संबंध से छुटकारा प्राप्त करना। दुःखद प्रतीत होनेवाले कार्य को समाप्त कर सकना या कर लेना। जैसे,—किसी आशंका से पीछा छुड़ाना, किसी काम से पीछा छुड़ाना। **पीछा छूटना** = (१) पीछा करनेवाले से छुटकारा मिलना। अप्रिय साथ का कष्ट दूर होना। गले पड़े हुए का साथ छूटना। पिंड छूटना। जान छूटना। (२) अप्रिय कार्य या संबंध से छुटकारा मिलना। दुःखद वस्तु का अंत या समाप्ति होना। रिहाई मिलना। **पीछा छोड़ना** = (१) पीछा करने का काम बंद करना। किसी आशा या प्रयोजन से किसी के साथ फिरना बंद करना। सहारा छोड़ना। (२) किसी बात के लिये किसी से अत्यंत आग्रह करना बंद करना। जान खाना छोड़ना। तंग करना बंद करना। (३) जिस बात में बहुत देर से लगे हो उसे छोड़ देना। **पीछा पकड़ना** = किसी आशा से किसी का समीपवर्ती, दरबारी या साथी बनना। आश्रय का आकांक्षी बनना। सहारा बनना। जैसे, किसी रईस का पीछा पकड़ना।

पीछाणना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पहचानना'। उ०—जीणी महिनाणहु लेउँ पीछाणी।—बी० रासो, पृ० ७७।

पीछू(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'पीछे'।

पीछे—अव्य [हिं० पीछा] १. पीठ की ओर। जिधर मुँह हो उसकी विरुद्ध दिशा में। आगे या सामने का उलटा। पश्चात्। जैसे,—जरा अपने पीछे तो देखो कि कौन खड़ा है।

यौ०—**पीछे पिछड़े** = अविकसित। अनुन्नत। पिछड़े हुए।

मुहा०—**(किसी के) पीछे चलना** = (१) किसी विषय में किसी को पथप्रदर्शक, नेता या गुरु मानना। कार्यविशेष में किसी का पदानुसरण करना। किसी का अनुयायी या अनुगामी होना। अनुकरण करना जैसे,—वह ऐसा वैसा आदमी नहीं है, उसके पीछे चलनेवालों की संख्या हजारों से ऊपर है। (२) एक आदमी ने जैसा किया हो वैसा ही करना। किसी का अनुकरण करना। नकल करना। जैसे,—खोज के विषय में भारतीय विद्वान् भी बहुधा यूरोपीय पंडितों के पीछे चले हैं। **(किसी के) पीछे छूटना** = (१) किसी के साथ रहकर उसका भेद लेने या उसकी गतिविधि पर दृष्टि रखने के लिये नियुक्त किया जाना। जासूस बनाकर किसी के साथ लगाया जाना। जैसे,—आज कल उनके पीछे कई आदमी छूटे हैं। (२) किसी भागे हुए आदमी को पकड़ने के लिये नियुक्त किया जाना। **(किसी के) पीछे छोड़ना या भेजना** = (१) जासूस या भेदिया बनाकर किसी को किसी के साथ लगाना। गुप्त रूप से किसी के साथ रहकर उसका भेद लेने या उसके कर्मों से जानकारी रखने के लिये किसी को नियत करना। साथ लगाना। (२) किसी आदमी को पकड़ने के लिये किसी को भेजना

या दौड़ाना। किसी का पीछा करने के लिये किसी को भेजना। (धन) पीछे डालना = खर्च से बचाकर भविष्यत् की आवश्यकता के लिये कुछ रखना। आगे के लिये बटोरना। संचय करना। जैसे,—प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि अपनी कमाई में से कुछ न कुछ पीछे डालता जाय। (किसी को) पीछे डालना = पीछे छोड़ना। पीछे दौड़ना। जैसे,—उसने चोरों के पीछे सवार डाले। (किसी के) पीछे दौड़ाना = (१) गए या जाते हुए आदमी को फेर लाने के लिये किसी को रवाना करना। किसी को लौटा लाने के लिये किसी को दौड़ाना या भेजना। (२) भागे या भागते हुए को पकड़ लाने के लिये किसी को भेजना। भागे या भागते हुए का पीछा करने के लिये किसी को रवाना करना। पीछे पछताना उसी चने को खाना = (१) इच्छापूर्वक त्यागी हुई वस्तु को त्यागने की गलती समझकर फिर ग्रहण करना। (२) किसी कार्य को न करने का निश्चय करके फिर करना। उ०—इसका निरादर कर वे पीछे पछताएँगे और उसी चने को खाएँगे। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०५। (किसी काम के) पीछे पड़ना = किसी काम को कर डालने पर तुल जाना। किसी कार्य के लिये अविराम उद्योग करना। किसी कार्य की सिद्धि के लिये आग्रहयुक्त होना। बार बार विफल होने पर भी किसी काम के लिये उत्साह के साथ प्रयत्न करते रहना। (किसी व्यक्ति के) पीछे पड़ना = (१) कोई काम करने के लिये किसी से बार बार कहना। किसी से कोई प्रार्थना करते हुए आग्रहयुक्त होना। किसी के पीछे लगकर उससे कोई अनुरोध करना। घेरना। जान खाना। तंग करना। (२) किसी के संबंध में कोई ऐसा कार्य बार बार आग्रहपूर्वक करना जिससे उसे कष्ट पहुँचे या उसका अपकार हो। मौका या संधि ढूँढ़ ढूँढ़कर किसी की बुराई करते रहना। किसी को हानि पहुँचाने के लिये आग्रहयुक्त होना। जैसे,—बरसों से यह दुष्ट न जाने क्यों मेरे पीछे पड़ रहा है। पीछे लगना = (१) किसी आशा या प्रयोजन से किसी के पीछे पीछे चला करना। साथ हो लेना। साथ साथ चलना। पीछे पीछे घूमना। पीछा करना। जैसे,—तुम तो कितने दिनों से उनके पीछे लगे हो पर अभी तक हाथ कुछ न आया। (२) अनिष्ट या अप्रिय वस्तु का संबंध हो जाना। दुःखजनक वस्तु का साथ हो जाना। रोग कष्टादि का देर तक बना रहना। जैसे,—रोग पीछे लगना, मुसीबत पीछे लगना आदि। (अपने) पीछे लगाना = (१) आश्रय देना। साथ कर लेना। (२) रोग दुःख आदि की प्राप्ति और स्थिति में स्वत कारण होना। अनिष्ट वस्तु से संबंध कर लेना। पालना। जैसे,—मुसीबत पीछे लगाना, झंझट पीछे लगाना आदि। (किसी और के) पीछे लगाना = (१) साथ लगा देना। अनिष्ट या अप्रिय वस्तु से संबंध करा देना। मढ़ देना। जैसे,—तुमने यह अच्छी मुसीबत हमारे पीछे लगा दी। (२) भेद लेने या निगाह रखने के लिये किसी को किसी के साथ कर देना। किसी आदमी को किसी का पीछा करने के लिये नियुक्त करना या भेजना। कार्रवाइयाँ देखते रहने के लिये किसी आदमी को उसके साथ कर देना। किसी के साथ रहने के लिये नियुक्त करना।

विशेष—'धीरे' आदि कितने ही अन्य अव्ययों के समान 'पीछे' भी प्रायः आवृत्ति के साथ आता है; जैसे, पीछे पीछे आना, पीछे पीछे चलना, पीछे पीछे घूमना, आदि। इस रूप में अर्थात् आवृत्तिपूर्वक यह जिस क्रिया का विशेषण होता है उसका लगातार अधिक समय तक होना सूचित होता है।

२. पीछे की ओर कुछ दूर पर। पीठ की अथवा आग की विरुद्ध दिशा में। कुछ दूर पर। जैसे, (क) उनके मकान को तुम बहुत पीछे छोड़ आए। (ख) वह गाँव बहुत पीछे छूट गया।

मुहा०—पीछे छूटना, पड़ना या होना = (१) किसी विषय मे किसी से कम होना। गुण योग्यता आदि की तुलना में किसी से न्यून रह जाना। किसी विषय में किसी व्यक्ति की अपेक्षा घटकर होना। पिछड़ा होना। जैसे,—और विषयों की तो मैं नहीं कह सकता पर रचनाभ्यास मे तुम उससे बहुत पीछे छूट गए हो। (२) किसी विषय मे किसी ऐसे आदमी से घट जाना जिससे किसी समय बराबरी रही हो। पिछड़ जाना। जैसे—बीमारी के कारण वह अपने सहपाठियों से बहुत पीछे छूट गया। (प्रायः इस अर्थ मे यह क्रिया 'जाना' से संयुक्त होकर आती है)। (किसी को, पीछे छोड़ना = किसी विषय मे किसी से बढ़कर या अधिक होना। किसी विषय में किसी की अपेक्षा अधिक सामर्थ्यवान् होना या योग्यता रखना। जैसे,—इस विषय में वह हजारों को पीछे छोड़ गया। (२) किसी विषय मे किसी से बढ़ जाना। किसी से आगे निकल जाना। किसी विषय मे किसी विशेष व्यक्ति की अपेक्षा अधिक योग्य या सामर्थ्यवान् हो जाना।

३. देश या कालक्रम में किसी के पश्चात् या उपरात। स्थिति या घटना के विचार से किसी के अनंतर कुछ दूर या कुछ देर बाद। किसी वस्तु या व्यापार के पश्चाद्वर्ती स्थान या काल में। पश्चात्। उपरात। अनंतर। जैसे,—(क) पचास हाथ लंबी पाँत में सब लोग एक दूसरे के पीछे खड़े थे। (ख) तुम्हारे काशी आने के कितना पीछे यह घटना हुई। ४. अंत में। आखिर में। (क्व०)। जैसे,—पहले तो वे बहुत दिनों तक पढ़ते रहे पीछे बीमार पड़ने के कारण उनका पढ़ना लिखना छूट गया। ५. किसी की अनुपस्थिति या अभाव में। किसी की अविद्यमानता में। पीठ पीछे। जैसे,—किसी के पीछे उसकी बुराई करना अच्छा काम नहीं। ६. मर जाने पर। इस लोक में न रह जाने की दशा में। मरणोपरात। जैसे,—(क) आदमी के पीछे उसका नाम ही रह जाता है। (ख) वे अपने पीछे चार बच्चे, एक विधवा और प्रायः पचास हजार का कर्ज छोड़ गए। ७. लिये। वास्ते। कारण। अर्थ। खातिर।

जैसे,—इस आदमी के पीछे मैंने क्या क्या कष्ट न सहा पर यह ऐसा कृतघ्न निकला कि सब भूल गया। ८. कारण। निमित्त। बदौलत। जैसे,—तुम्हारे पीछे हमें भी दस बात सुननी पड़ी।

पीछो†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पीछा'। उ०—तब वा सर्प की नागिन ने वा वैष्णव को पीछो कियो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३३२।

पीजन—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जन] भेड़ों के बाल धुनकने की धुनकी। (गड़ेरिए)।

पीजर।—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जर] दे० 'पिंजड़ा'। उ०—आज न पाखिहि पीजर ठाढ़।—जायसी ग्रं०, पृ० ७६।

पीजरा†—संज्ञा पुं० [हिं० पीजर] दे० 'पिंजड़ा'।

पींटना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पिटना'।

पीटना[1]—क्रि० स० [सं० पीडन] १. किसी वस्तु पर चोट पहुँचाना। मारना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—छाती पीटना=दुःख या शोक प्रकट करने के लिये छाती पर हाथ से आघात करना। **किसी बात को पीटना**= किसी बात या कार्य पर तीव्र दुःख प्रकाश करना। किसी बात को सोच सोचकर दुःखित होना। हाय हाय करना। सिर धुनना। (स्त्रि०)। **किसी व्यक्ति को या के लिये पीटना**=किसी व्यक्ति की मृत्यु का शोक करना। किसी के मरने पर छाती पीटना मातम करना। उ०—आँख फूटे जो भर नजर देखे। मुझको पीटे अगर इधर देखे।—एक उर्दू कवि (शब्द०)।

२ आघात पहुँचाकर किसी वस्तु को फैलाना या बढ़ाना। चोट से चिपटा या चौड़ा करना। जैसे, पत्तर पीटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

३. किसी जीवधारी पर आघात करना। किसी के शरीर को चोट अथवा पीड़ा पहुँचाना। मारना। प्रहार करना। ठोकना। जैसे,—आज तुमने भारी अपराध किया है, तुम्हारे बाप तुम्हें अवश्य पीटेंगे।

संयो० क्रि०—डालना।

४. किसी न किसी प्रकार कर डालना या कर लेना। भले या बुरे प्रकार से कर डालना। येन केन प्रकारेण किसी काम को समाप्त या संपन्न कर लेना। निबटा देना। जैसे,—शाम तक इस काम को अवश्य पीट डालूँगा।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

५ किसी न किसी प्रकार प्राप्त कर लेना। येन केन प्रकारेण उपार्जित करना। फटकार लेना। जैसे,—शाम तक चार रुपए पीट लेता हूँ।

संयो० क्रि०—लेना।

पीटना[2]—संज्ञा पुं० १. मृत्युशोक। मातम। पिट्टस। जैसे,—यहाँ यह कैसा पीटना पड़ा हुआ है। २. आपद्। मुसीबत। आफत।

पीट पठिंगा†—संज्ञा पुं० [हिं० पीठ + सं० पृष्ठ + अंग] आश्रय। सहायक। उ०—मुहम्मद जिसका पीटपठिंगा उसकू क्या है डर।—दक्खिनी०, पृ० ५४।

पीठ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी, पत्थर या धातु का बना हुआ बैठने का आधार या आसन। पीढ़ा। चौकी।

विशेष—दे० 'पीढ़ा'। २. व्रतियों, विद्यार्थियों आदि के बैठने का आसन। कुशासन आदि। ३ किसी मूर्ति के नीचे का आधारपिंड। मूर्ति का वह आसनवत् भाग जिसके ऊपर वह खड़ी रहती है। मूर्ति का आधार। ४ किसी वस्तु के रहने की जगह। अधिष्ठान। जैसे, विद्यापीठ। ५. सिंहासन। राजासन। तख्त। ६. वेदी। देवपीठ। ७. वह स्थान जहाँ पुराणानुसार दक्षपुत्री सती का कोई अंग या आभूषण विष्णु के चक्र से कटकर गिरा है।

विशेष—ऐसे स्थान भिन्न भिन्न पुराणों के मत से ५१, ५३, ७७ अथवा १०८ हैं। इनमें से कुछ को महापीठ और कुछ को उपपीठ संज्ञा है। शिवचरित् नामक ग्रंथ में जिसमें कुल ७७ पीठ गिनाए गए हैं; ५१ को महापीठ और २६ को उपपीठ कहा है। ये सब स्थान तांत्रिक तथा शाक्तधर्म के अनुसार अति पुनीत और सिद्धिदायक माने गए हैं। इन स्थानों में जपादि करने से शीघ्र सिद्धि और दान, होम, स्नान आदि करने से अक्षय पुण्य होना माना गया है। इन स्थानों की उत्पत्ति के संबंध में पुराणों में यह कथा है—शिव से अप्रसन्न होकर उनके ससुर दक्ष ने उनको अपमानित करने का निश्चय किया। उन्होंने बृहस्पति नामक यज्ञ आरंभ किया जिसमें त्रिभुवन के यावत् देवी देवताओं को निमंत्रित किया पर शिव और अपनी कन्या सती को न पूछा। सती बिना बुलाए भी पिता के समारंभ में सम्मिलित होने को तैयार हो गई और शिव ने भी अंत को उनकी हठ रख ली। सती जब बाप के यज्ञस्थान में पहुँची तब दक्ष ने उनकी आदर अभ्यर्थना तो न की वे भगवान् भूतनाथ की जी भरकर निंदा करने लगे। सती को पूज्य पति की निंदा सुनना असह्य हुआ। वे यज्ञकुंड में कूद पड़ी और जल मरीं। उनके साथ शिव के जो अनुचर गए थे उन्होंने लौटकर शिव को यह समाचार सुनाया जिसे सुनकर शिवाजी क्रोध से पागल हो उठे और वीरभद्रादि अनुचरों के द्वारा दक्ष को मरवा डाला और उनका यज्ञ विध्वंस करा दिया। सती के विछोह का उनको इतना दुःख हुआ कि वे उनकी मृत देह को कंधे पर रखकर चारों ओर नाचते हुए घूमने लगे। अंत को भगवान् विष्णु ने इस दशा से उनका उद्धार करने के अभिप्राय से अपने चक्र द्वारा धीरे धीरे सती के सारे शव को काटकर गिरा दिया। जिन जिन स्थानों पर उनका कोई अंग या आभूषण कटकर गिरा उन सबमें एक एक शक्ति और भैरव भिन्न भिन्न नाम तथा रूप से अवस्थान करते हैं। जिन स्थानों में कोई एक अंग गिरा वे महापीठ और जिनमें किसी अंग का अंश या कोई अलंकार मात्र गिरा वे उपपीठ हुए। इन महापीठों, उपपीठों और उनमें अवस्थान करनेवाली शक्तियों और भैरवों के नाम तंत्रचूड़ामणि

आदि तंत्रग्रंथों और देवीभागवत, कालिकापुराण आदि पुराणों में दिए गए हैं। काशी में कान के कुंडल का गिरना कहा गया है। यहाँ की शक्ति का नाम मणिकर्णी, अन्नपूर्णा या विशालाक्षी और भैरव का कालभैरव है।
८. प्रदेश। प्रांत। ९. बैठने का एक विशेष ढंग। एक आसन। १०. कंस के एक मंत्री का नाम। ११. एक विशेष असुर। १२. वृत्त के किसी अंश का पूरक।

पीठ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ] १. प्राणियों के शरीर में पेट की दूसरी ओर का भाग जो मनुष्य में पीछे की ओर और तिर्यक् पशुओं, पक्षियों, कीड़े मकोड़े आदि के शरीर में ऊपर की ओर पड़ता है। पृष्ठ। पुश्त।

मुहा०—**पीठ का**=दे० 'पीठ पर का'। **पीठ का कच्चा**=(घोड़ा) जो देखने में हृष्ट पुष्ट और सजीला हो पर सवारी में ठीक न हो। (ऐसा घोड़ा) जिसकी चाल से सवार प्रसन्न न हो। चाल न जाननेवाला (घोड़ा)। **पीठ का सच्चा**=(घोड़ा) जिसमें अच्छी चाल हो। चालदार (घोड़ा)। ऐसा घोड़ा जो सवारी के समय सुख दे। **पीठ की**=दे० 'पीठ पर की'। **पीठ चारपाई से लग जाना**=बीमारी के कारण अत्यंत दुबला और कमजोर हो जाना। उठने बैठने में असमर्थ हो जाना। **पीठ खाली होना**=सहायकहीन होना। कोई सहारा देनेवाला या हिमायती न होना। पीठ पर किसी का न होना। **पीठ ठोंकना**=(१) कोई उत्तम कार्य करने के लिये अभिनंदन करना। किसी के कार्य से प्रसन्नता प्रकट करना। किसी के कार्य की प्रशंसा करना। शाबासी देना। जैसे,—तुम्हारे पीठ ठोंकने से ही वे आज मुझसे लड़ गए। (२) किसी कार्य में अग्रसर होने के लिये साहस देना। हिम्मत बढ़ाना। प्रोत्साहित करना। पीठ पर हाथ फेरना। **पीठ तोड़ना**=कमर तोड़ना। हताश कर देना। **पीठ दिखाना**=युद्ध या मुकाबिले से भाग जाना। मैदान छोड़ देना। पीछा दिखाना। जैसे,—कुल एक ही घंटे लोहा बजने के बाद शत्रु ने पीठ दिखाई। **पीठ दिखाकर जाना**=स्नेह तोड़कर या ममता छोड़कर जाना। घरवालों या प्रिय वर्ग से विदा होना। परदेश के लिये प्रस्थान करना। **पीठ देना**=(१) यात्रार्थ किसी या कहीं से विदा होना। रुखसत होना। (२) विमुख होना। मुँह मोड़ना। (३) भाग जाना। पीठ दिखाना। (४) किनारा खींचना। साथ न देना। पीछा देना। (५) चारपाई पर पीठ रखना। सोना। लेटना। आराम करना जैसे,—(क) आज तीन दिन से दो मिनट के लिये भी मैं पीठ न दे सका। (ख) काम के मारे आजकल मुझे पीठ देना हराम हो रहा है। (यह मुहावरा निषेधार्थ या निषेधार्थक वाक्य में ही प्रयुक्त होता है जैसा उदाहरणों से प्रकट होता है।) **किसी की ओर पीठ देना**=(१) किसी की ओर पीठ करके बैठना। मुँह फेर लेना। (२) अरुचिपूर्वक उपेक्षा प्रकट करना। किसी की ओर ध्यान देने या उसकी बात सुनने से अनिच्छा दिखाना। **पीठ पर**=एक ही माता द्वारा जन्मक्रम में पीछे। एक ही माता की संतानों में से किसी विशेष के जन्म के अनंतर। जैसे,—इस लड़के के पीठ पर क्या तुम्हारे कोई संतान नहीं हुई। **पीठ पर का, पीठ पर का**=(१) जन्मक्रम में अपने सहोदर (भाई या बहिन) के अनंतर का। (२) जोड़ का। बराबरी का। उ०—दूसरा कौन पीठ पर का है।—चोखे०, पृ० १४। **पीठ पर खाना**=भागते हुए मार खाना। भागने की दशा में पिटना। कायरता प्रकट करते हुए घायल होना। **पीठ मीजना**=दे० 'पीठ पर हाथ फेरना'। **पीठ पर हाथ फेरना**=दे० 'पीठ ठोंकना'। **पीठ पर होना**=(१) सहायक होना। सहायता के लिये तैयार होना। मदद पर होना। हिमायत पर होना। जैसे,—आज मेरी पीठ पर कोई होता तो मैं इस प्रकार दीन हीन बनकर क्यों भटकता फिरता? (२) जन्मक्रम में अपने किसी भाई या बहिन के पीछे होना। अपने सहोदरों में से किसी के पीछे जन्म ग्रहण करना। **पीठ पीछे**=किसी के पीछे। अनुपस्थिति में। परोक्ष में। जैसे,—पीठ पीछे किसी की निंदा नहीं करना चाहिए। **पीठ फेरना**=(१) बिदा होना। चला जाना। रुखसत होना। (२) भाग जाना। पीठ दिखाना। (३) किसी की ओर पीठ कर देना। मुँह फेर लेना। (४) अरुचि वा अनिच्छा प्रकट करना। उपेक्षा सूचित करना (किसी की) **पीठ लगना**=चित होना। कुश्ती में हार खाना। पटका जाना। पछाड़ा जाना। (घोड़े बैल आदि की) **पीठ लगना**=पीठ पर घाव हो जाना। पीठ पक जाना। (चारपाई आदि से) **पीठ लगना**=लेटना। सोना। पड़ना। कल लेना। आराम करना। (किसी की) **पीठ लगाना**=चित कर देना। कुश्ती में हरा देना। पछाड़ देना। पटकना (घोड़े बैल आदि की) **पीठ लगाना**=घोड़े या बैल को इस प्रकार कसना या लादना कि उसकी पीठ पर घाव हो जाय। सवारी या पीठ पर घाव कर देना।
२. किसी वस्तु की बनावट का ऊपरी भाग। किसी वस्तु की बाहरी बनावट। पृष्ठ भाग। भीतरी भाग या पेट का उलटा। ३. रोटी के ऊपर का भाग। ४. जहाज का फर्श (लश०)।

पीठक—संज्ञा पुं० [सं०] पीढ़ा।

पीठ का मोजा—संज्ञा पुं० [हिं० पीठ+फा० मोजह्] कुश्ती का एक पेंच। इसमें जब जोड़ कंधे पर बायाँ हाथ रखने आता है तब दाहिने हाथ से उसको उड़ाकर उलटा कर देते हैं और कलाई के ऊपर के भाग को इस प्रकार पकड़ते हैं कि अपनी कोहनी उसके कंधे के पास जा पहुँचती है, फिर झट पैतरा बदलकर जोड़ की पीठ पर जाने के इरादे से बढ़ते हुए बाएँ हाथ से बाएँ पाँव का मोजा उठाकर गिरा देते है।

पीठ के डंडे—संज्ञा पुं० [हिं० पीठ+हिं० डंडा] कुश्ती का एक पेंच। इसमें जब खिलाड़ी जोड़ की पीठ पर होता है तब शत्रु की बगल से ले जाकर दोनों हाथ गर्दन पर चढ़ाने चाहिए और गर्दन को दबाते हुए भीतरी अड़ानी टाँग मारकर गिराना चाहिए।

पीठकेलि—संज्ञा पुं० [सं०] पीठमर्द। नायक।

पीठग—वि० [सं०] पंगु। लँगड़ा [को०]।

पीठगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] वह गड्ढा जो मूर्ति को जमाने के लिये पीठ (आसन) पर खोदकर बनाया जाता है।

पीठचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का रथ।

पीठदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] आधार शक्ति। आदिदेवता।

पीठना†—क्रि० स० [सं० पिष्ट, हिं० पीठ+ना] दे० 'पीसना'। उ०—एकन आदी मरिच सों पीठा। दूसर दूध खाँड़ सों मीठा।—जायसी (शब्द०)।

पीठनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौदह वर्षीया (अरजस्का) वह कुमारी जो दुर्गापूजा के अवसर पर दुर्गा मानकर पूजी जाती है [को०]।

पीठनायिका देवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार किसी पीठ-स्थान की अधिष्ठात्री देवी। २. दुर्गा। भगवती।

पीठन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तंत्रोक्त न्यास जो प्रायः सभी तांत्रिक पूजाओं में आवश्यक है।

पीठभू—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीर के आसपास का भूभाग। चहार-दीवारी के आसपास की जमीन।

पीठमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. नायक के चार सखाओं में से एक जो वचनचातुरी से नायिका का मानमोचन करने में समर्थ हो। यह शृंगार रस के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत है। २. वह नायक जो कुपित नायिका को प्रसन्न कर सके। मानमोचन में समर्थ नायक।

विशेष—संस्कृत के अधिकांश आचार्यों ने पीठमर्द को नायक का भेद भी माना है परंतु कुछ रसाचार्यों ने इसकी गणना सखाओं में की है।

२. अत्यंत धृष्ट नायक, सखा या अत्यंत ढीठ (को०)। ३. नृत्य की शिक्षा देनेवाला व्यक्ति। नृत्यगुरु (को०)।

पीठमर्दिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो प्रिय को प्राप्त करने में नायिका की सहायता करती है [को०]।

पीठविवर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पीठगर्भ'।

पीठसर्प—वि० [सं०] लँगड़ा।

पीठसर्पी—वि० [सं० पीठसर्पिन्] लँगड़ा।

पीठस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'पीठ'–७। देवीपीठ। २. सिंहासन बत्तीसी के अनुसार 'प्रतिष्ठान' (आधुनिक झूँसी) का एक नाम।

पीठा¹—संज्ञा पुं० [सं० पीठक] दे० 'पीढ़ा'। उ०—आवत पीठा बैठन दीन्हों कुशल बूझि अति निकट बुलाई।—सूर (शब्द०)।

पीठा²—संज्ञा पुं० [सं० पिष्टक, प्रा० पिट्ठक] एक पकवान जो आटे की लोइयों में चने या उरद की पीठी भरकर बनाया जाता है।

विशेष—पीठी में नमक, मसाला आदि देकर आटे की लोइयों में उसे भरते हैं और फिर लोई का मुँह बंदकर उसे गोल चौकोर या चिपटा कर लेते हैं। फिर उन सबको एक बरतन में पानी के साथ आग पर चढ़ा देते हैं। कोई कोई उसे पानी में न उबालकर केवल भाप पर पकाते हैं। घी में छुपड़कर खाने से यह अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। पूरब की तरफ इसको 'फरा या 'फारा' भी कहते हैं। कदाचित् इस नामकरण का कारण यह हो कि पक जाने पर लोई का पेट फट जाता है और पीठी झलकने लगती है।

पीठा³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पट्टा'।

पीठाण†—संज्ञा पुं० [सं० पीठस्थान (=युद्धपीठ, या रणक्षेत्र)] युद्धभूमि। रणस्थल। उ०—पाड़ियो राम दसकठ पीठाण मे सबद जै जै हुवा लोक सारां।—रघु रू०, पृ० ३१।

पीठि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीठ] दे० 'पीठ'।

पीठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीढ़ा। २. मूर्ति, खंभे आदि का मूल या आधार। ३. अंश। अध्याय। ३. पृष्ठभूमि (को०)। ४. तामदान। डाँडी (कौटि०)।

पीठी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पिष्ट या पिष्टक, प्रा० पिट्ठ] पानी में भिगोकर पीसी हुई दाल विशेषतः उरद या मूँग की दाल जो बरे, पकौड़ी आदि बनाने अथवा कचौरी में भरने के काम में आती है।

क्रि० प्र०—पीसना।—भरना।

पीठी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीठ] दे० 'पीठ'।

पीड़¹—संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का आधार जिसे घड़े को पीटकर बढ़ाते समय उसके भीतर रख लेते हैं।

पीड़²—संज्ञा स्त्री० [सं० आपीड] सिर या बालों पर बाँधा जाने-वाला एक प्रकार का आभूषण। उ०—करधर कै धरमैर सखीरी। कै सृक् सीपज की बगपंगति, कै मयूर की पीड़ पखीरी।—सूर (शब्द०)।

पीड़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पीड़ा'। उ०—मूये पीड पुकारती, वैद न मिलिया आइ। दादू थोड़ी बात थी जे टुक दरस दिखाइ।—दादू०, पृ० ५९।

पीड़क—संज्ञा पुं० [सं० पीडक] १. पीड़ा देने या पहुँचानेवाला। दुखदायी। यंत्रणादाता। २. अत्याचारी। उत्पीडक। सतानेवाला।

पीड़न—संज्ञा पुं० [सं० पीडन] [वि० पीडक, पीडनीय, पीडित] १. दबाने की क्रिया। किसी वस्तु को दबाना। चापना। २. पेरना। पेलना। ३. दुःख देना। यंत्रणा पहुँचाना। तक-लीफ देना। ४. अत्याचार करना। उत्पीड़न। उ०—मानव के पाशव पीड़न का देती वे निर्मम विज्ञापन।—ग्राम्या, पृ० २४। ५. आक्रमण द्वारा किसी देश को बर्बाद करना। ६. फोड़े को पीव निकालने के लिये दबाना। ७. किसी वस्तु को भली भाँति पकड़ना। ग्रहण करना। हाथ में पकड़ना। जैसे, पाणिपीड़न। ८. सूर्य चंद्र आदि का ग्रहण। ९. उच्छेद। नाश। १०. अभिभव। तिरोभाव। लोप। ११. पेरने या दबाने का यंत्र (को०)। १२. अनाज को डठल से पीट या रौंदकर निकालना (को०)। १३. आलिंगनबद्ध करना।

दबोचना दबा देना। १४. स्वरों के उच्चारण में गलती करना (को०)।

पीड़नीय[1]—वि० [सं० पीडनीय] पीडन करने योग्य। दुःख पहुँचाने योग्य। २. जिससे पीडन किया जाय (को०)।

पीड़नीय[2]—संज्ञा पुं० १. याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार मंत्री और सेना से रहित राजा। २ याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित चार प्रकार के शत्रुओं में से एक।

पीड़वा†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिपदा] दे० 'परिवा'। उ०—आज सखी मोहि विहांण। पीड़वा कइ दिन कहइ छइ जाण।—बी० रासो, पृ० ४७।

पीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० पीडा] १ किसी प्रकार का दुःख पहुँचाने का भाव। शारीरिक या मानसिक क्लेश का अनुभव। वेदना। व्यथा। तकलीफ। दर्द। २. रोग। व्याधि। ३. सिर में लपेटी हुई माला। शिरोमाला। ४, एक सुगंधित ओषधि। धूप सरल। सरल। ५. बाधा। गड़बड़। (को०)। ६. हानि। नुकसान (को०)। ७. विरोध (को०)। ८. प्रतिबंध। अवरोध (को०)। ९. करुणा। दया (को०)। १०. सरल वृक्ष (को०)। ११. डलिया। टोकरी (को०)।

पीड़ाकर—वि० [सं० पीडाकर] कष्टकर। दुःखदायी। उ०—पार्थिवैश्वर्य का अंधकार पीड़ाकर।—तुलसी०, पृ० ११।

पीड़ाकरण—संज्ञा पुं० [सं० पीडाकरण] कष्ट देना। दुःख या पीड़ा पहुँचाना (को०)।

पीड़ागृह—संज्ञा पुं० [सं० पीडागृह] वह स्थान जहाँ पीड़ा पहुँचाई जाय। साँसतघर (को०)।

पीडार†—संज्ञा पुं० [सं० फणाकर ?] सर्प। एक प्रकार का सर्प। पीवणा। पीणा। उ०—राई नहीं सखी भइंस पीडार। अस्त्रीय चरित्र उलिषई ही गँवार।—बी० रासो, पृ० ३८।

पीड़ास्थान—संज्ञा स्त्री० [सं० पीडास्थान] कुंडली में उपचय अर्थात् लग्न से तीसरे, छठे, दसवें और ग्यारहवें स्थान के अतिरिक्त स्थान। अशुभ ग्रहों के स्थान।

पीड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० पीडिका] फुंसी। पिटिका (को०)।

पीड़ित[1]—वि० [सं० पीडित] १. पीड़ायुक्त। जिसे व्यथा या पीड़ा पहुँची हो। दुःखित। क्लेशयुक्त। २. रोगी। बीमार। ३. दबाया हुआ। जिसपर दाब पहुँचाया गया हो। ४ उच्छिन्न। नष्ट किया हुआ। ५. कसकर बाँधा हुआ (को०)।

पीड़ित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्त्रियों के कान का छेद। कर्णभेद। २. तंत्रसार मे दिए हुए एक प्रकार के मंत्र। ३. पीड़ा देने या कष्ट पहुँचाने की क्रिया (को०)। ४. एक रतिबंध। सुरत काल का एक विशेष आसन (को०)।

पीड़ी[1]—वि० [सं० पीडिन्] कष्ट पहुँचानेवाला। दुःखकर (को०)।

पीढ़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पीठिका, हिं० पीढ़ी] वेदी। उ०—इससे अच्छा यही होगा कि भगवती दुर्गा की पीढ़ी पर मेरी बलि चढ़ा दो।—नई०, पृ० ३७।

पीढ़ुरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिंडली'।

पीढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० पीठ अथवा पीठक] [स्त्री० अल्पा० पिढ़िया, पीढ़ी] चौकी के आकार का वह आसन जिसपर हिंदू लोग विशेषतः भोजन करते समय बैठते हैं। पाटा। पीठ। पीठक।

विशेष—इसकी लंबाई डेढ़ दो हाथ, चौड़ाई पौन या एक हाथ और ऊँचाई चार छह अँगुली से प्रायः अधिक नहीं होती। अधिकतर यह आम की लकड़ी से बनाया जाता है। अमीर लोग संगमरमर और राजा महाराजा सोने चाँदी आदि के भी पीढ़े बनवाते हैं।

पीढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० पीठिका] १. किसी विशेष कुल की परंपरा में किसी विशेष व्यक्ति की संतति का क्रमागत स्थान। किसी कुल या वंश में किसी विशेष व्यक्ति से आरंभ करके उससे ऊपर या नीचे के पुरुषों का गणनाक्रम से निश्चित स्थान। किसी व्यक्ति से या उसकी कुलपरंपरा में किसी विशेष व्यक्ति से आरंभ करके बाप, दादा, परदादे आदि अथवा बेटे, पोते, परपोते आदि के क्रम से पहला, दूसरा, चौथा आदि कोई स्थान। पुश्त। जैसे,—(क) ये राजा कृष्णसिंह की चौथी पीढ़ी में हैं। (ख) यदि वंशोन्नति संबंधी नियमों का भली भाँति पालन किया जाय तो हमारी तीसरी पीढ़ी की संतान अवश्य यथेष्ट बलवान् और दीर्घजीवी होगी।

विशेष—पीढ़ी का हिसाब ऊपर और नीचे दोनों ओर चलता है। किसी व्यक्ति के पिता और पितामह जिस प्रकार क्रम से उसकी पहली और दूसरी पीढ़ी में हैं उसी प्रकार उसके पुत्र और पौत्र भी। परंतु अधिकतर स्थलों में अकेला पीढ़ी शब्द नीचे के क्रम का ही बोधक होता है; ऊपर के क्रम का सूचक बनाने के लिये प्राय. उसके आगे 'ऊपर की' विशेषण लगा देते हैं। यह शब्द मनुष्यों ही के लिये नहीं अन्य सब पिंडज और अंडज प्राणियों के लिये भी प्रयुक्त हो सकता है।

२. उपर्युक्त किसी विशेष स्थान अथवा पीढ़ी के समस्त व्यक्ति या प्राणी। किसी विशेष व्यक्ति अथवा प्राणी का संतति समुदाय। जैसे,—(क) हमारे पूर्वजों ने कदापि न सोचा होगा कि हमारी कोई पीढ़ी ऐसे कर्म करने पर भी उतारू हो जाएगी। (ख) यह संपत्ति हमारे पास तीन पीढ़ियों से चली आ रही है। ३. किसी जाति, देश अथवा लोकमंडल मात्र के बीच किसी कालविशेष में होनेवाला समस्त जनसमुदाय। कालविशेष में किसी विशेष जाति, देश अथवा समस्त संसार में वर्तमान व्यक्तियों अथवा जीवों आदि का समुदाय। किसी विशेष समय मे वर्गविशेष के व्यक्तियों की समष्टि। संतति। संतान। नस्ल। जैसे—(क) भारतवासियों की अगली पीढ़ी के कर्तव्य बहुत ही गुरुतर होंगे। (ख) उपाय करने से गोवंश की दूसरी पीढ़ी अधिक दुधारी और हृष्टपुष्ट बनाई जा सकती है।

पीढ़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीढ़ा] छोटा पीढ़ा। उ०—चंदन पीढ़ी बैठक सुरति रस बिंजन।—धरम० श०, पृ० ६६।

पीढ़ीबंध—संज्ञा पुं० [हिं० पीढ़ी + सं० बन्ध] वंशक्रम। पीढ़ियों का

क्रम। उ०—कुल महिमा बरणै कवरण बुध बल पीढ़ीबंध। —रा० रू०, पृ० १०।

पीत¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पीता] १. पीला। पीतवर्णयुक्त। २. भूरा रंग। कपिलवर्ण (क्व०)।

पीत²—वि० [सं० पान] १. पिया हुआ। जिसका पान किया गया हो। २. जिसने पी लिया हो। जिसने पान कर लिया हो (को०)। ३. सोखा हुआ (को०)। ४. पूर्ण रूप से भरा हुआ (को०)। ५. सिंचित। जल से सींचा हुआ (को०)।

पीत³—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीला रंग। हल्दी का रंग। २. भूरे रंग का। कपिल। ३. हरताल। ४. हरिचंदन। ५. कुसुम। ६. अंकोल या ढेरे का पेड़। ७. सिहोर का पेड़। ८. धूपसरल। ९. बेंत। १०. पुखराज। ११. तुन। नंदिवृक्ष। १२. एक प्रकार की सोमलता। १३. पीली कटसरैया। १४ पद्माख। पद्मकाष्ठ। १५. पीला खस। १६. मूँगा। १७. सोना। सुवर्ण (को०)। १८. वल्कल (को०)। १९. चक्रवाक (को०)। २०. इंद्र (को०)। २१. मेढक (को०)। २२. गरुड़ (को०)। २३. गोमूत्र (को०)। २४. शुकचंचु। मैना की चोंच (को०)। २५. कर्णिकार। कनेर (को०)। २६. चंपक। चंपा (को०)।

पीत(पु)⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'प्रीति'। उ०—तम ग्रासक या दीप में पूरित पीत सनेह। बाती बिसद हुतास विनु ललित तासु की देह।—दीन० ग्रं०, पृ० १७४।

पीतकंद—संज्ञा पुं० [सं० पीतकन्द] गाजर।

पीतक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरताल। २. केसर। ३ अगर। ४. पद्माख। ५. सोनामाखी। ६ नंदिवृक्ष। तुन। ७. विजयसार। ८. सोनापाठा। ९. हलदुआ। दरिद्र। १०. किंकिरात। ११. पीतल। १२. पीला चंदन। १३. एक प्रकार का बबूल। १४. शहद। १५. गाजर। १६. सफेद जीरा। पीतजीरक। १७. पीली लोध। १८. चिरायता। १९. चंदन।

पीतक²—वि० पीला। पीले रंग का। पीतवर्ण।

पीतकदली—संज्ञा पुं० [सं०] सोनकेला। स्वर्णकदली। चंपककदली।

पीतकद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] हलदुआ। हरिद्रवृक्ष।

पीतकरवीरक—संज्ञा पुं० [सं०] पीला कनेर। पीले फूल की केना।

पीतका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कटसरैया। २. हलदी।

पीतकावेर—संज्ञा पुं० [सं०] १. केसर। २. पीतल।

पीतकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीला चंदन। २. पद्माख।

पीतकीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आवर्त की लता। भागवत वल्ली।

पीतकुरवक—संज्ञा पुं० [सं०] पीली कटसरैया।

पीतकुरंट—संज्ञा पुं० [सं० पीतकुरण्ट] पीली कटसरैया।

पीतकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] पीले रंग का कुष्ठ रोग [को०]।

विशेष—भगिनीगमन के पाप से इस रोग का होना कहा गया है; यथा—भगिनीगमनेनैव पीतकुष्ठः प्रजायते।

पीतकुष्मांड—संज्ञा पुं० [सं० पीतकुष्माण्ड] कुम्हड़ा। पीला कुम्हड़ा जिसकी तरकारी खाई जाती है।

पीतकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] पीली कटसरैया।

पीतकेदार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।

पीतगंध—संज्ञा पुं० [सं० पीतगन्ध] पीला चंदन। हरिचंदन।

पीतगंधक—संज्ञा पुं० [सं० पीतगन्धक] गंधक।

पीतघोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की तुरई। २. पीले फूलोंवाली घोषा नाम की एक लता (को०)।

पीतचंचु—संज्ञा पुं० [सं० पीतचञ्चु] एक प्रकार का शुक जिसकी चोंच पीली होती है [को०]।

पीतचंदन—संज्ञा पुं० [सं० पीतचन्दन] १. द्रविड़देशीय पीले रंग का चंदन। हरिचंदन।

विशेष--वैद्यक के अनुसार यह शीतल, तिक्त, तथा कुष्ठ, श्लेष्म, कडु, विचर्चिका, दाद और कृमि का नाशक और कांतिकर है।

पर्या०—हरिचंदन। पीतगंध। कालेय। कालीय। कालीयक। पीताभ। हरिप्रिय। माधवप्रिय। पीतक। पीतकाष्ठ। वर्बर। कालसार। कालानुसार्यक। कलंबक।

२ हरिद्रा। हलदी (को०)। ३. कुंकुम। केसर (को०)।

पीतचंपक—संज्ञा पुं० [सं० पीतचम्पक] १. पीली चंपा। २. दीया। प्रदीप। चिराग।

पीतचोप—संज्ञा पुं० [सं०] टेसू। पलास का फूल।

पीतझिंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० पीतझिण्टी] १. पीले फूलवाली कटसरैया। २. एक प्रकार की कटाई।

पीततंडुल—संज्ञा पुं० [सं० पीततण्डुल] १. काँगुन वृक्ष। कँगुनी। २ साल वृक्ष।

पीततंडुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पीततण्डुलिका] साल वृक्ष। शाल या सर्ज वृक्ष।

पीतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीत का भाव। पीलापन। जर्दी।

पीततुंड—संज्ञा पुं० [सं० पीततुण्ड] बया पक्षी। कारंडव पक्षी।

पीततैला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्योतिष्मती। मालकँगनी। २. बड़ी मालकँगनी। महा ज्योतिष्मती।

पीतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पीतता'।

पीतदंतता—संज्ञा स्त्री० [सं० पीतदन्तता] दाँतों का एक पित्तज रोग जिसमें दाँत पीले हो जाते हैं।

पीतदारु—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवदार। २. धूप। साल। ३. हलदुआ। ४. हलदी। ५. चिरायता। ६. कायफरज।

पीतदीप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के एक देवता।

पीतदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की कटहरी। २. ऊँटकटीला। ऊँटकटारा। भँड़भाँड़। ३. एक प्रकार का थूहड़। सातला। ४. वह गाय जो सूद के बदले में दूध पीने के लिये ऋणदाता को दी गई हो (को०)।

पीतद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दारु हलदी। २. एक प्रकार का देवदार। धूप सरल।

पीतधातु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पीत+धातु] रामरज। गोपीचंदन। उ०—स्यामा तू प्रति स्यामहिं भावै। बैठत उठत चलत गौ चारत तेरी लीला गावै। पीत बरन लखि पीत बसन उर पीतधातु अँग लावै।—सूर०, १०।२५७६।

पीतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. केशर। २. धूप सरल। ३. हरताल। ४. आमड़ा। ५. पाकड़।

पीतनक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पीतन'।

पीतनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० पीत (=पीला)+नदी] चीन की प्रसिद्ध नदी ह्वांगहो जो अपने किनारे पर उपजाऊ पीली मिट्टी अधिकता से छोड़ती है। उ०—उसकी मुख्य भूमि पीत नदी (ह्वांगहो) के बड़े चकोर चक्कर से पश्चिम थी।—किन्नर०, पृ० ८५।

पीतनाश—संज्ञा पुं० [सं०] लकुच। बड़हर। क्षुद्र पनस।

पीतनिद्र—वि० [सं०] जो गहरी नींद में हो। गहरी नींद में सोया हुआ [को०]।

पीतनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिवन। शालपर्णी।

पीतनील[1]—संज्ञा पुं० [सं०] नीले और पीले रंग के संयोग से बना हुआ रंग। हरा रंग।

पीतनील[2]—वि० हरे रंग का। हरित वर्ण (पदार्थ)।

पीतपराग—संज्ञा पुं० [सं०] पद्मकेशर। कमल का केसर। किंजल्क।

पीतपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली।

पीतपापरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पीत+पर्पट, हिं० पितपापड़ा] दे० 'पितपापड़ा'। उ०—मोथा नीब चिरायत बासा। पीतपापरा पित कहँ नासा।—इंद्रा०, पृ० १५१।

पीतपादप—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोनापाठा। श्योनाक वृक्ष। २. लोध का पेड़।

पीतपादा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पीत+पाद] मैना। सारिका।

पीतपादा[2]—वि० स्त्री० जिसके चरण पीले हों।

पीतपिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा धातु।

पीतपुष्प[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कनेर। २. घिया तोरई। ३. पीले फूल की कटसरैया। ४. चंपा। ५. रग नामक क्षुप। ६. पेठा। ७. तगर। ८. हिंगोट। ९. लाल कचनार।

पीतपुष्प[2]—वि० पीले फूलोंवाला। जिसमें पीले फूल लगते हों [को०]।

पीतपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पीतपुष्प'।

पीतपुष्पका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली ककड़ी।

पीतपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झिंझरीटा। २. इंद्रायण। ३. सहदेवी। ४. अरहर। ५. तोरई। ६. पीले फूल की कटसरैया। ७. पीले फूल का कनेर। ८. सोनजुही। यूथिका।

पीतपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शंखाहुली। २. सहदेई। ३. बड़ी तोरई। ४. खीरा। ५. इंद्रायण। ६. सोनजुही।

पीतपृष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कौड़ी। वह कौड़ी जिसकी पीठ पीली होती है। चित्ती कौड़ी।

पीतप्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंगुपत्री। २. पीला कनेर।

पीतफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिहोर। शाखोट वृक्ष। २. कमरख। कर्मरंग। ३. धव का वृक्ष।

पीतफलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिहोर। २. रीठा। ३. कमरख। ४. धव वृक्ष।

पीतफेन—संज्ञा पुं० [सं०] रीठा। अरिष्टक वृक्ष।

पीतबलि—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

पीतबालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिद्रा। हलदी।

पीतबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी।

पीतभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बबूल। देव कर्बुर।

पीतभृंगराज—संज्ञा पुं० [सं० पीतभृङ्गराज] पीला भँगरा।

पीतम(पु)[1]—वि० [सं० प्रियतम] दे० 'प्रियतम'।

पीतम[2](पु)—संज्ञा पुं० दे० 'प्रियतम'। उ०—बिना प्रेम पैये नहिं पीतम लाख संपदा बारी। —भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६९६।

पीतमणि—संज्ञा पुं० [सं०] पुखराज। पुष्पराग मणि।

पीतमस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी जाति का बाज। श्येन पक्षी।

पीतमाक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामाखी। स्वर्णमाक्षिक।

पीतमारुत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प [को०]।

पीतमुंड—संज्ञा पुं० [सं० पीतमुण्ड] एक प्रकार का हरिन।

पीतमुद्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पीले रंग की मूँग [को०]।

पीतमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] गाजर।

पीतमूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] रेवंद चीनी।

पीतयूथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोनजुही। स्वर्णयूथिका।

पीतर[1]—संज्ञा पुं० [सं० पित्तल, पीतल] दे० 'पीतल'।

पीतर[2]—संज्ञा पुं० [सं० पितृ, पितर] दे० 'पितर'। उ०—(क) पीतर पाथर पूजन लागे तीरथ गर्व भुलाना। —कबीर ग्रं०, पृ० ३३८।

यौ०—पीतरपंड = पितरपिंड। पिंडदान। उ०—पीतरपंड भरावह छह राई।—बी० रासो, पृ० ५२।

पीतरक्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुखराज। २. पद्माख। पदमकाठ। ३. पीलापन लिए हुए लाल रंग (को०)।

पीतरक्त[2]—वि० पीलापन लिए हुए लाल रंग का [को०]।

पीतरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] पुखराज। पीतमणि।

पीतरस—संज्ञा पुं० [सं०] कसेरू।

पीतराग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पद्मकेसर। २. मोम। ३. पीला रंग।

पीतराग[2]—वि० पीला। पीले रंग का।

पीतरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जंभीरी। कुंभेर। २. पीली कुटकी।

पीतल—संज्ञा पुं० [सं० पित्तल, पीतल] १. एक प्रसिद्ध उपधातु जो

तांबे और जस्ते के संयोग से बनती है। कभी कभी इसमें रांगे या सीसे का कुछ अंश मिलाया जाता है।

विशेष—यह तांबे की अपेक्षा कुछ अधिक दृढ़ होती है। इसका व्यवहार बहुधा थाली, कटोरे, गिलास, गगरे, हंडे आदि बरतन बनाने में होता है। देवताओं की मूर्तियाँ, उनके सिंहासन, घंटे, अनेक प्रकार के वाद्य, यंत्र, ताले, कलों के कुछ पुरजे और गरीबों के लिये गहने भी पीतल से बनाए जाते हैं। पीतल की चीजें लोहे की चीजों से कुछ अधिक टिकाऊ होती हैं, क्योंकि उनमें मोरचा नहीं लगता। यह पीतल दो प्रकार का होता है—एक कुछ सफेदी लिए पीले रंग का और दूसरा कुछ लाली लिए पीले रंग का। रांगे का भाग अधिक होने से इसमें कुछ सफेदी और सीसे का भाग अधिक होने से लाली आ जाती है। यदि इसमें निकल का मेल दिया जाय तो इसका रंग जर्मन सिलवर के समान हो जाता है। इसपर कलई बहुत अच्छी होती है।

२ पीला रंग। पीत वर्ण (को०)।

पीतल२—वि० पीत वर्ण का। पीला (को०)।

पीतलक—संज्ञा पुं० [सं० पित्तलक] पीतल (को०)।

पीतलोह—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल।

पीतवर्ण१—वि० [सं०] पीले रंग का। पीला।

पीतवर्ण२—संज्ञा पुं० १. पीला मेढक। स्वर्णमंडूक। २. ताड़। तालवृक्ष। ३. कदंब। ४. हलदुआ। ५. लाल कचनार। ६. मैनसिल। ७. पीतचंदन। ८. केसर। ६. पीला रंग। पीत वर्ण।

पीतवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशबेल।

पीतवान—संज्ञा पुं० [देश०] हाथी की दोनों आँखों के बीच की जगह।

पीतवालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी।

पीतवास—संज्ञा पुं० [सं० पीतवासस्] श्रीकृष्ण।

पीतवास—वि० जो पीले कपड़े पहने हों। पीतवसन युक्त।

पीतविंदु—संज्ञा पुं० [सं० पीतबिन्दु] विष्णु के चरणचिह्नों में से एक।

पीतबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी।

पीतवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोनापीठा २. धूप सरल।

पीतशाल—संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार।

पीतशालक—संज्ञा पुं० [सं०] पीतशाल। विजयसार।

पीतशेष१—संज्ञा पुं० [सं० पीत+शेष] वह अंश जो पीने के बाद बचा हुआ हो (को०)।

पीतशेष२—वि० पीने के बाद बचा हुआ (को०)।

पीतशोणित—वि० [सं०] १. खून पीनेवाली (तलवार)। २. जिसने रक्तपान किया हो (को०)।

पीतससुरा—संज्ञा पुं० [सं० पितृव्य+श्वशुर, हिं० पितिया+ससुर] चचिया ससुर। ससुर का भाई।

पीतसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीतचंदन। हरिचंदन। २. मलयागिरि चंदन। सफेद चंदन। ३. गोमेद मणि। ४. अंकोल ढेरा। ५. विजयसार। ६. शिलारस।

पीतसारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीम का पेड़। २. ढेरे का पेड़।

पीतसारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंजन। सुरमा (को०)।

पीतसारिका—संज्ञा पुं० [सं०] काला सुरमा।

पीतसाल—संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार।

पीतसालक—संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार। पीतसार।

पीतस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० पीतस्कन्ध] १ सुअर। शूकर। २. एक वृक्ष।

पीतस्फटिक—संज्ञा पुं० [सं०] पुखराज।

पीतस्फोट—संज्ञा पुं० [सं०] खुजली। खसरा रोग।

पीतहरित—वि० [सं०] पीलापन लिए हुए हरे रंग का (को०)।

पीतांग—संज्ञा पुं० [सं० पीताङ्ग] सोनापाठा।

पीतांबर१—संज्ञा पुं० [सं० पीताम्बर] १. पीले रंग का वस्त्र। पीला कपड़ा। २. मरदानी रेशमी धोती जिसे हिंदू लोग पूजापाठ, संस्कार, भोजन आदि के समय पहनते हैं।

विशेष—इस वस्त्र का व्यवहार भारत में बहुत प्राचीन काल से होता है। पहले कदाचित् पीली रेशमी धोती को ही पीतांबर कहते थे; पर अब लाल, नीली, हरी आदि रंगों की धोतियाँ भी पीतांबर कहलाती हैं।

३. श्रीकृष्ण। ४. नट। शैलूष। अभिनेता। ५. विष्णु (को०)।

पीतांबर२—वि० पीले कपड़ेवाला। पीतवसनयुक्त। पीतांबरधारी।

पीतांमरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पीताम्बर] दे० 'पीतांबर'। उ०—प्रथम प्रयानह सुंदरी मिली अंक लिय बाल। पीतामर अंबर धरे दीप जोति रचि थाल।—पृ० रा०, ८।१८।

पीता१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हलदी। उ०—पीता गौरी कांचनी रजनी पिंडानाम।—अनेकार्थ०, पृ० १०५। २ दारु हलदी। ३. बड़ी मालकँगनी। ४. भूरे रंग का शीशम। ५. फलप्रियंगु। ६. गोरोचन। ७. अतीस। ८. पीला केला। स्वर्णकदली। ६. जंगली बिजौरा नीबू। १० जर्द चमेली। ११. देवदार। १२. राल। १३. असगंध। १४. शालिपर्णी। १५. अकासबेल।

पीता२—वि० पीले रंग की। पीले रंगवाली (स्त्री अथवा वस्तु)।

पीता३†—संज्ञा पुं० [हिं० पित्ता] दे० 'पित्ता'।

मुहा०—पीते को मारना = दे० 'पित्ता मारना'। उ०—पीते को मारै सोई जन पूरा।—प्राण०, पृ० २६।

पीताब्धि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र को पी जानेवाले, अगस्त्य मुनि।

पीताभ१—वि० [सं०] जिसमें से पीली आभा निकलती हो। पीला। पीतवर्ण। उ०—पीताभ, अग्निमय ज्यों दुर्जय।—अपरा, पृ० ६२।

पीताभ२—संज्ञा पुं० पीला चंदन। पीत चंदन।

पीताभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अभ्रक जो पीला होता है।

पीताम्लान—संज्ञा पुं० [सं०] पीली कटसरैया ।

पीतारुण¹—संज्ञा पुं० [सं०] पीलापन लिए हुए लाल रंग ।

पीतारुण²—वि० पीलापन लिए हुए लाल रंग का । पीतारुण वर्णयुक्त । पीतरक्त वर्ण विशिष्ट ।

पीतावशेष—वि०, संज्ञा पुं० [सं० पीत+अवशेष] दे० 'पीतशेष' ।

पीताश्म—संज्ञा पुं० [सं० पीताश्मन्] पुखराज । पुष्पराग मणि ।

पीताह्व—संज्ञा पुं० [सं०] राल ।

पीति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीना । पान (वैदिक) । २. गुप्ति । रक्षण । रक्षा । ३, गति । ४. सुँड़ । ५. गंजा । मदिरागृह । (को०) । ६. पायागार । पांथशाला (को०) ।

पीति²—संज्ञा पुं० घोड़ा । अश्व ।

पीतिआ†—संज्ञा पुं० [सं० पितृव्य] बाप का भाई । चाचा । उ०—आए नगर आगरे माँहि । सुंदरदास पीतिआ पाँहि ।—अर्ध०, पृ० ७ ।

पीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हलदी । २. दारु हलदी । सोनजूही । स्वर्णयूथी । ३. केसर (को०) ।

पीतिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शालपर्णी ।

पीतिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० पीतिमन्] पीला रंग (को०) ।

पीती¹—संज्ञा पुं० [सं० पीतिन्] घोड़ा ।

पीती(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रीति] दे० 'प्रीति' ।

पीतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. अग्नि । ३. यूथपति । हाथियों के समूह का नायक ।

पीतुदारु—संज्ञा पुं० [सं०] १. गूलर । २. देवदार ।

पीतोदक¹—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल (जिसके भीतर जल या रस रहता है) ।

पीतोदक²—वि० १. जिसका पानी पिया गया हो । २. जो पानी पिए हुए हो (को०) । जो गाय जितना जल पीना था, पी चुकी हो और जरा के कारण अब नहीं पी सकती हो (कठोप०) ।

पीथ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी । २. घी । ३ अग्नि । ४. सूर्य । ५. काल । समय । ६. रक्षा । रक्षण (को०) । ७. पान (को०) ।

पीथक(पु)†—वि० [हिं० पृथक्] दे० 'पृथक्' । उ०—फतमाला पीथल्ल का, पीथक पारथ अंग । तत्ता ताव लोह सम सदा अघाया जग । —रा० रू०, पृ० १२६ ।

पीथि—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा ।

पीद्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिद्दी] दे० 'पिद्दी' ।

पीन¹—वि० [सं०] १. स्थूल । मोटा । उ०—गजहस्तप्राय जानुयुगल पीन मासल कूर्मपृष्ठाकार श्रोणी ।—वर्ण०, पृ० ४ । २. पुष्ट । प्रवृद्ध । परिवर्धित । ३ संपन्न । भरा पूरा । ४. वृहत् । बड़ा (को०) ।

पीन²—संज्ञा पुं० स्थूलता । मोटाई ।

पीनक—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिनकना] १ अफीम के नशे में ऊँघना । नशे की हालत में अफीमची का आगे की ओर झुक झुक पड़ना ।

क्रि० प्र०—लेना ।

मुहा०—पीनक में आना=अफीमची का नशे में ऊँघने लगना ।

२. ऊँघना । नींद के आने से आगे की ओर झुक झुक पड़ना । जैसे,—तुम्हें शाम हुई कि लगे पीनक लेने ।

क्रि० प्र०—लेना ।

पीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोटाई । स्थूलता । उ०—दया वान दूबरों हों पाप ही की पीनता ।—संतवाणी०, पृ० ८५ । २. आधिक्य । बहुतायत ।

पीनना—क्रि० स० [सं० पिञ्जन] दे० 'पीजना' । उ०—बहुत रुई पीनी बहु बिधि करि, मुदित भए हरि राई । दादू दास अजब पीनारा सुंदर बलि बलि जाई ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८६९ ।

पीनल कोड—संज्ञा पुं० [अं० पेनल कोड] अपराध और दंड संबंधी व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह । दंडविधि । ताजीरात । जैसे, इंडियन पीनल कोड ।

पीनवक्षा—वि० [सं० पीनवक्षस्] चौड़ी छातीवाला । जिसका वक्ष विशाल हो (को०) ।

पीनस¹—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें उसकी घ्राण या वास पहचानने की शक्ति नष्ट हो जाती है ।

विशेष—इस रोग में नाक के नथने शुष्क, कफ से भरे हुए और क्लिन्न अर्थात् गीले रहते हैं तथा उनमें जलन भी रहती है । वात और कफ के प्रकोपवाले जुकाम के लक्षण प्राय इसमें मिलते हैं ।

पीनस²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० फ़ीनस] पालकी ।

पीनसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी ।

पीनसित—वि० [सं०] पीनस से पीड़ित । पीनसी (को०) ।

पीनसी—वि० [सं० पीनसिन्] जिसे पीनस रोग हुआ हो । पीनस से पीड़ित ।

पीना¹—क्रि० स० [सं० पान] १. किसी तरल वस्तु को घूँट घूँट करके गले के नीचे उतारना । जल या जलसदृश वस्तु को मुँह के द्वारा पेट में पहुँचाना । पेय पदार्थ को मुख द्वारा ग्रहण करना । घूँटना । पान करना । जैसे, पानी पीना, शरबत पीना, दूध पीना आदि ।

संयो० क्रि०—जाना । —डालना ।—लेना ।

२ किसी बात को दबा देना । किसी कार्य के संबंध में वचन या कार्य से कुछ न करना । किसी संबंध में सर्वथा मौन धारण कर लेना । पूर्ण उपेक्षा करना । किसी घटना के संबंध में अपनी स्थिति ऐसी कर लेना जिससे उससे पूर्ण असंबंध प्रकट हो । जैसे,—इस मामले को वह इस प्रकार पी जायगा; ऐसी आशा तो नहीं थी । ३. (गाली, अपमान आदि पर) क्रोध या उत्तेजना न प्रकट करना । सह जाना । बरदाश्त करना । जैसे,—इस भारी अपमान को वह इस तरह पी गया मानों कुछ हुआ ही नहीं । ४. किसी मनोविकार को भीतर ही भीतर दबा देना । मनोभाव को बिना प्रकट किए ही नष्ट कर देना । मारना । जैसे, गुस्सा पीना । ५. किसी मनोविकार का कुछ भी अनुभव न करना ।

मनोभाव ही न रहने देना। कुछ भी शेष या बाकी न रखना जैसे, लज्जा पी जाना। ६. मद्य पीना। शराब पीना। सुरापान करना। जैसे,—जब जब वह पीता है तब तब उसकी यही दशा होती है।

संयो० क्रि०—जाना। —डालना। —लेना।

७. हुक्के, चुरट आदि का धुआँ भीतर खींचना। धूमपान करना। जैसे, हुक्का पीना, चुरुट पीना, गाँजा पीना, चंडू पीना आदि।

संयो० क्रि०—जाना। —डालना। —लेना।

८. सोखना। शोषण करना। जज्ब करना। जैसे,—(क) यह जूता इतना तेल पिएगा, यह मैंने नहीं समझा था। (ख) मिट्टी का बरतन तो सारा घी पी जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।—डालना।

पीना²—संज्ञा पुं० [सं० पीडन (=पेरना)] तिल, तीसी आदि की खली। उ०—बिना विचार विवेक भए सब एकै खानी। पीना भा संसार जाठि ऊपर मरानी। —पलटू०, भा० १, पृ० ५१।

पीना³—संज्ञा पुं० [देश०] डाट। डट्टा (लश०)।

पीनाराⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पिञ्जार] रुई धुननेवाला। धुनिया। उ०—दादू दास अजब पीनारा, सुंदर बलि बलि जाई। —सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८६६।

पीनी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] पोस्त, तीसी या तिल आदि की खली।

पीनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीना] हुक्के की नली। निगाली। उ०—अंदर से बुढ़िया निकली तो कुल्ली ने कहा पीनी हमारे पास है, तुम हुक्का भरकर ला दो।—रति०, पृ० ३५।

पीनोघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भरे हुए स्तनोंवाली गौ [को०]।

पीनोरु—वि० [सं० पीन+उरु] भारी जाँघोंवाली। जिसके उरु पीन हों। उ०—करके अधिकार किसी भीरु पीनोरु नतनयना नवयौवना पर। —अपरा, पृ० ६।

पीप¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पूय] फूटे फोड़े या घाव के भीतर से निकलनेवाला सफेद लसदार पदार्थ जो दूषित रक्त का रूपांतर होता है।

विशेष—इसमें रक्त के श्वेत कण ही अधिकता से होते हैं। उनके अतिरिक्त इसमें शरीर के सड़े हुए और नष्ट घटकों और तंतुओं का भी कुछ लाल अंश होता है। शरीर के किसी भाग में इस पदार्थ के एकत्र हो जाने से ही व्रण या फोड़ा होता है और जब तक यह निकल नहीं जाता तब तक बहुत कष्ट होता है।

पीपⓅ**²**—संज्ञा पुं० [प्रा० पिप्पल, हिं० पीपल] दे० 'पीपल'। उ०—बुहल्या जनु पौनय पीप पत्तं।—पृ० रा०, १।११४।

पीपर—संज्ञा पुं० [सं० पिप्पल] दे० 'पीपल'।

पीपरपर्नⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० पीपल+पर्न>सं० पर्ण] कान में पहनने का एक आभूषण। उ०—पीपरपर्न झुलमुली तीखन बहु लखेल झूमिका सुसरमन।—सूदन (शब्द०)।

पीपरामूल—संज्ञा पुं० [सं० पिप्पल+मूल] दे० 'पीपलामूल'।

पीपरि¹—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा पाकड़।

पीपरि²—संज्ञा स्त्री० [सं० पिप्पली] दे० 'पीपल²'।

पीपरि³Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० दे० 'पीपल¹']।

पीपल¹—संज्ञा पुं० [सं० पिप्पल] बरगद की जाति का एक प्रसिद्ध वृक्ष जो भारत में प्रायः सभी स्थानों पर अधिकता से पाया जाता है।

विशेष—यह वृक्ष ऊँचाई में बरगद के समान ही होता है, पर इसमें उसकी तरह जटाएँ नहीं फूटतीं। पत्ते इसके गोल होते हैं और आगे की ओर लंबी गावदुम नोक होती है। इसकी छाल सफेद और चिकनी होती है। लकड़ी पोली और कमजोर होती है और जलाने के सिवा और किसी काम की नहीं होती। इसका गोदा (फल) बरगद के गोदे की अपेक्षा छोटा और चिपटा तथा पकने पर यथेष्ट मीठा होता है। गोदे लगने का समय बैसाख जेठ है। इसकी डालियों पर लाख के कीड़े पैदा होते हैं और पाले जाते हैं। बस यही इसका विशेष उपयोग है। गोदे बच्चे खाते हैं और पत्ते बकरियों और ऊँटों, हाथियों को खिलाए जाते हैं। छाल के रेशों से ब्रह्मा (बर्मा) वाले एक प्रकार का हरा कागज बनाते हैं।

पुराणानुसार पीपल अत्यंत पवित्र और पूजनीय है। इसके रोपण करने का अक्षय पुण्य लिखा है। पद्मपुराण के अनुसार पार्वती के शाप से जिस प्रकार शिव को बरगद और ब्रह्मा को पाकड़ के रूप में अवतार लेना पड़ा उसी प्रकार विष्णु को पीपल का रूप ग्रहण करना पड़ा। भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है कि वृक्षों में मुझे पीपल जानो। हिंदू लोग बड़ी श्रद्धा से इसकी पूजा और प्रदक्षिणा करते हैं और इसकी लकड़ी काटना या जलाना पाप समझते हैं। दो तीन विशेष संस्कारों में, जैसे, मकान की नींव रखना, उपनयन आदि में इसकी लकड़ी काम में लाई जाती है। बौद्ध लोग भी पीपल को परम पवित्र मानते हैं, क्योंकि बुद्ध को संबोधि की प्राप्ति पीपल के पेड़ के नीचे ही हुई थी। वह वृक्ष बोधिद्रुम के नाम से प्रसिद्ध है।

वैद्यक के अनुसार इसके पके फल शीतल, अतिशय हृद्य तथा रक्तपित्त, विष, दाह, छर्दि, शोष, अरुचि और योनिदोष के नाशक हैं। छाल संकोचक है। मुलायम छाल और नए निकले हुए पत्ते पुराने प्रमेह की उत्तम औषध है। फल का चूर्ण सेवन करने से क्षुधावृद्धि और कोष्ठशुद्धि होती है। फलों के भीतर के बीज शीतल और धातु परिवर्द्धक माने जाते हैं।

पर्या०—बोधिद्रुम। चलदल। पिप्पल। कुंजराशन। अच्युतावास। चलपत्र। पवित्रक। शुभद। याज्ञिक। गजभक्षक। श्रीमान्। क्षीरद्रुम। विप्र। मांगल्य। श्यामलक। गुह्यपुष्प। सेव्य। सत्य। शुचिद्रुम। धनुर्वृक्ष।

पीपल²—संज्ञा स्त्री० [सं० पिप्पली] एक लता जिसकी कलियाँ प्रसिद्ध औषधि हैं।

विशेष—इसके पत्ते पान के समान होते हैं। कलियाँ तीन चार अंगुल लंबी शहतूत के आकार की होती हैं और उनका पृष्ठ-

भाग भी वैसा ही दानेदार होता है। इसका रंग मटमैला और स्वाद तीखा होता है। छोटी कलियों को छोटी पीपल और बड़ी तथा किंचित् मोटी कलियों को बड़ी पीपल कहते हैं। औषधि के लिये अधिकतर छोटी ही काम में लाई जाती है। वैद्यक के अनुसार पीपल (फली) किंचित् उष्ण, चरपरी, स्निग्ध, पाक में स्वादिष्ट, वीर्यवर्धक, दीपन, रसायन हलकी, रेचक तथा कफ, वात, श्वास, कास, उदररोग, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, क्षयरोग, बवासीर, प्लीहा, शूल और आमवात को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—पिप्पली। मागधी। कृष्णा। चपला। चंचला। उपकुल्या। कोल्या। वैदेही। तिक्ततंडुला। उष्णा। शौंडी। कोला। कटी। ऊषणा। मगधा। कृकला। कटुबीजा। कारंगी। दंतकफा। मगधोद्भवा।

पीपलमूल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पीपलामूल' उ०—बिसूचित तन नहीं सकै समारि। पीपलमूल ज्वाइनि तारि।—प्राण०, पृ० १५०।

पीपलामूल—संज्ञा पुं० [सं० पिप्पलीमूल] एक प्रसिद्ध ओषधि जो पीपल ओषधि की जड़ है।

विशेष—आयुर्वेद के अनुसार पीपलामूल चरपरा, तीखा, गरम, रूखा, दस्तावर, पित्त को कुपित करनेवाला, पाचक, रेचक तथा कफ, वात, उदररोग, आनाह, प्लीहा, गुल्म, कृमि, श्वास, क्षयरोग, खाँसी, आम और शूल को दूर करनेवाला माना जाता है। पीपरामूल नाम से भी यह प्रसिद्ध है।

पीपा—संज्ञा पुं० [?] बड़े ढोल के आकार का या चौकोर काठ या लोहे का पात्र जिसमें मद्य, तेल आदि तरल पदार्थ रखे और चालान किए जाते हैं।

विशेष—बरसात के अतिरिक्त अन्य दिनों में बड़े बड़े पीपों को पंक्ति में बिछाकर नदियों पर पुल भी बनाए जाते हैं।

पीपिया‡—संज्ञा पुं० [अनु०] आम की गुठली या अन्य किसी साधन से बनाया हुआ बच्चों का बाजा।

पीब—संज्ञा पुं० [सं० पूय, हिं० पीप] दे० 'पीप'।

पीय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय] दे० 'पिय'। उ०—प्यारी झूलत प्यार सों पीय झुलावत जात। मनो सितारे भूमि नभ फिरि आवत फिरि जात।—स० सप्तक, पृ० ३६३।

पीयर†—वि० [अप० पीअर] दे० 'पीला'।

पीया(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय] स्वामी। पति। पिय।

पीयु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. काल। समय। २. सूर्य। ३. अग्नि (को०)। ४ स्वर्ण। सोना (को०)। ५. धूक। ६ कौआ। काक। ७ उल्लू। पेचक।

पीयु²—वि० १ हिंसा करनेवाला। हिंसक। २. प्रतिकूल। विरुद्ध।

पीयूक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पाकर।

पीयूख—संज्ञा पुं० [सं० पीयूष] दे० 'पीयूष'।

पीयूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमृत। सुधा। २. दूध। ३ नई ब्याई हुई गाय का प्रथम से सातवें दिन तक का दूध। उस गाय का दूध जिसे ब्याए सात दिन से अधिक न हुआ हो। नवप्रसूता गाय का दूध।

विशेष—वैद्यक के अनुसार ऐसा दूध रूखा, दाहकारक, रक्त को कुपित करनेवाला और पित्तकारक होता है। साधारणतः ऐसा दूध लोग नहीं पीते क्योंकि वह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक माना जाता है।

यौ०—पीयूषद्युति, पीयूषधाम = पीयूषभानु। पीयूषभुक्, पीयूषमयूख, पीयूषमहा, पीयूषरुचि = चंद्रमा।

पीयूषभानु—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। उ०—तीछन जुन्हाई भई ग्रीषम को घामु, भयो भीसम पीयूषभानु, भानु दुपहर को।—मतिराम (शब्द०)।

पीयूषभुक्—संज्ञा पुं० [सं० पीयूषभुज्] १. चंद्रमा। २. देवता (को०)।

पीयूषमहा—संज्ञा पुं० [सं० पीयूषमहस्] अमृतमय किरणोंवाला। अमृतदीधिति। चंद्रमा (को०)।

पीयूषरुचि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

पीयूषवर्ण¹—वि० [सं०] दूध की तरह सफेद (को०)।

पीयूषवर्ण²—संज्ञा पुं० श्वेत वर्ण का घोड़ा। सफेद घोड़ा (को०)।

पीयूषवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २ कपूर। ३. एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १०—९ विश्राम से १९ मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होता है। इसको 'आनंदवर्धक' भी कहते हैं। ४. जयदेव कवि की उपाधि। ५. अमृत की वर्षा (को०)।

पीर¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पीडा] १. पीड़ा। दुःख। दर्द। तकलीफ। उ०—जाके पैर न फटी बिवाई। सो का जानै पीर पराई।—तुलसी (शब्द०)। २. दूसरे की पीड़ा या कष्ट देखकर उत्पन्न पीड़ा। दूसरे के दुःख से दुःखानुभव। सहानुभूति। हमदर्दी। दया। करुणा।

मुहा०—पीर न आना = दूसरे के दुःख से दुखी न होना। पराए कष्ट पर न पसीजना। सहानुभूति या हमदर्दी न पैदा होना।

३. बच्चा जनने के समय की पीड़ा। प्रसवपीड़ा। उ०—कमर उठी पीर मैं तो लाला जनूँगी।—गीत (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—होना।

विशेष—यद्यपि ब्रजभाषा, खड़ी बोली और उर्दू तीनों भाषाओं के कवियों ने बहुतायत से इस शब्द का प्रयोग किया है और स्त्रियों की बोलचाल में अब भी इसका बहुत व्यवहार होता है तथापि गद्य में इसका व्यवहार प्रायः नहीं होता।

पीर²—वि० [फ़ा०] [संज्ञा पीरी] १. वृद्ध। बूढ़ा। बड़ा। बुजुर्ग। २. महात्मा। सिद्ध। ३. धूर्त। चालाक। उस्ताद। (बोलचाल)।

पीर³—संज्ञा पुं० १. धर्मगुरु। परलोक का मार्गदर्शक। २. मुसलमानों के धर्मगुरु।

पीर⁴—संज्ञा पुं० [फ़ा० पीर (= गुरु)] सोमवार का दिन। चंद्रवार।

पीरक(पु)—वि० [सं० पीडक, हिं० पीर + क (प्रत्य०)] पीड़ा देने-

वाला। सतानेवाला। उ०—प्रानहि प्रान हो, प्यारे सुजान हो, बोलो इते परपीरक हो क्यों।—घनानंद, पृ० १११।

पीरजादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पीरजादह्] [स्त्री० पीरजादी] किसी पीर या धर्मगुरु की संतान। उ०—यो सुन कर जमा हो सब पीरजादे, सवारों जमा कर कर होर प्यादे।—दक्खिनी०, पृ० १६६।

पीरजाल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पीरजाल] बूढ़ा स्त्री। बुढ़िया [को०]।

पीरनाबालिग—वि० [फ़ा० पीर+अ० नाबालिग] ऐसा वृद्ध जो बच्चों के से काम और बातें करे। सठियाया हुआ बुड्ढा। बुद्धिभ्रष्ट बूढ़ा।

पीरमर्द—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बूढ़ा और सदाचारी व्यक्ति [को०]।

पीरमान—संज्ञा पुं० [लश०] मस्तूल के ऊपर बँधे हुए वे डंडे जिनके दोनों सिरों पर लट्टू बने रहते हैं और जिनपर पाल चढ़ाई जाती है। अड्डंडा। परवान।

पीरमुरशिद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गुरु, महात्मा, पूजनीय अथवा अपने से दरजे में बहुत बड़ा।

विशेष—महात्माओं के अतिरिक्त राजाओं, बादशाहों और बड़ों के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है।

पीरसाल—वि० [फ़ा०] १. बूढ़ा। वयोवृद्ध। २. वृद्धा। बूढ़ी [को०]।

पीरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पीडा] दे० 'पीड़ा'।

पीरा[2]—वि० [सं० पीत, प्रा० पीअर] दे० 'पीला'। उ०—पाँच तत्त रँग भिन भिन देखा। कारा पीरा सुरग सपेदा।—घट०, पृ० २३८।

पीराई—संज्ञा पुं० [फ़ा० पीर+हिं० आई (प्रत्य०)] वह जाति जिसकी जीविका पीरों के गीत गाने से चलती है। कव्वाली।

पीरान—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह भूमि जो किसी पीर की सेवा में अर्पित हो। २. भूमि जो पीरों की सहायता के लिये हो [को०]।

पीराना—वि० [फ़ा० पीरानह्] बूढ़ों के समान। वृद्ध जैसा। वृद्ध का [को०]।

पीरानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पीर की पत्नी [को०]।

पीरानेपीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पीरों का पीर [को०]।

पीरामिड—संज्ञा पुं० [अं० पिरेमिड] ऊपर को उठा हुआ त्रिकोणात्मक कब्रगाह।

विशेष—मिस्र में इस प्रकार के अनेक कब्रगाह बने हैं, जिनमें प्राचीनतम राजाओं के शव सुरक्षित हैं। विश्व की आश्चर्यजनक वस्तुओं में पिरामिड भी हैं। वास्तुशिल्प की दृष्टि से इन कब्रों या पिरामिडों का विशेष महत्व है।

पीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. बुढ़ापा। वृद्धावस्था। २. चेला मूड़ने का धंधा या पेशा। गुरुआई। ३. चालाकी। धूर्तता (क्व०)। ४. इजारा। ठेका। हुकूमत। जैसे,—क्या तुम्हारे बाबा की पीरी है। ५. अमानुषिक शक्ति या उसके कार्य। चमत्कार। करामात (क्व०)।

पीरी[2]—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'पीला'। उ०—यह पीरी पीरी भई, पीरी मोहि मिलाय।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५६।

पीरी†[3]—संज्ञा पुं० [हिं० पीला] पीलिया या कामला रोग।

पीरू[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० पीलमुर्ग] एक प्रकार का मुर्ग।

विशेष—इस शब्द का पुराना रूप 'पीलु' है। पर अब इस रूप में ही अधिक प्रचलित है।

पीरोⓅ—वि० [हिं०] दे० 'पीला'। उ०—(क) राधे राधे टेर टेर, पीरो पट फेर फेर, हेर हेर हरि डोलै गेर गेर बन में। (ख) द्वै सिंध आनन पर जमें कारो पीरो गात।—नंद० ग्रं०, पृ० १८४।

पीरोजⓅ—संज्ञा पुं० [स० पेरोज (=उपरत्न), फ़ा० फीरोजह्, पीरोजह्, हिं० पीरोजा] दे० 'फीरोजा'। उ०— कहूँ दाडिमी खूब चिक्कन चंपी। मनों लाल मानिक्क पीरोज थप्पी।—पृ० रा०, २। ४७०।

पीरोजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पीरोजह्] दे० 'फीरोजा'।

पील[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. हाथी। गज। हस्ति। उ०—परै पील भुम्मी सु घुम्मैं गरज्जै।—ह० रासो, पृ० १४६। २. शतरंज के खेल का एक मोहरा। यह तिरछा चलता है और तिरछा ही मारता है। इसको पीला, फील, फीला तथा ऊँट भी कहते हैं। विशेष—दे० 'शतरंज'।

पील[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पीलू] कीड़ा।

पील[3]—संज्ञा पुं० [सं० पीलु] दे० 'पीलु'—१।

पीलⓅ[4]—वि० [हिं० पीला] दे० 'पीला'। उ०—ता में लील पील सम द्वारा।—घट०, पृ० २४६।

पीलक[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पीले रंग का पक्षी जिसके डैने काले और चोंच लाल होती है।

पीलक—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा और काला चींटा [को०]।

पीलखाँ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष।

पीलखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० पीलखानह्] हस्तिशाला। हथसार।

पीलपाँव—संज्ञा पुं० [फ़ा० पीलपा] एक प्रसिद्ध रोग। फीलपा। श्लीपद।

विशेष—इसमें घुटने के नीचे एक या दोनों पैर सूजे रहते हैं। सूजन पुरानी होने पर उसमें खुजली और घाव भी हो जाता है। सूजन पहले टाँग के पिछले भाग से प्रारंभ होती है फिर धीरे धीरे सारी टाँग में व्याप्त हो जाती है। प्रारंभ में ज्वर और जिस पैर में यह रोग होनेवाला रहता है उसके पट्ठे में गिलटी निकलती है जिसमें असह्य पीड़ा होती है। वात की अधिकता में सूजन काली, रूखी, फटी और तीव्र वेदनायुक्त; पित्त की अधिकता में कोमल, पीली और दाहयुक्त तथा कफ की अधिकता में कठिन, चिकनी, सफेद या पांडुवर्ण और भारी

होती है। बहुत जल्दी उपाय न करने से यह रोग असाध्य हो जाता है। सीड़वाले देशों में यह रोग अधिक होता है। कई आचार्यों के मत से हाथ, गला, कान, नाक, होठ आदि की सूजन भी इसी के अंतर्गत है।

पीलपा—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'पीलपाँव'।

पीलपाया—संज्ञा पुं० [फा० पीलपायह्] वह खंभा जो ठेक या सहारे के लिये लगाया जाता है (को०)।

पीलपाल(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० पील, सं० पीलु + सं० पाल] पीलवान। महावत। हाथीवान।

पीलबान—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'पीलवान'। उ०—पीलबाननि सँवारे ये मतंग मतवारे ते। —हम्मीर; पृ० २१।

पीलवान—संज्ञा पुं० [फा० पीलबान] हाथीवान। महावत। फीलबान।

पीलसोज—संज्ञा पुं० [फा० फतीलसोज] दीया जलाने की दीवट। चौमुखा दीवट। चिरागदान। उ०—पीलसोज फानुस कुपी तिलटी सुमसालैं।—सूदन (शब्द०)।

पीला[1]—वि० [सं० पीतलक, (=पीला), अप० पीअर, पीअल] [वि० स्त्री० पीली] १. हलदी, सोने या केसर के रंग का (पदार्थ)। जिसका रंग पीला हो। पीतवर्ण। जर्द। २. ऐसा सफेद जिसमें सुर्खी या चमक न हो। रक्त का अभावसूचक श्वेत। जिससे वर्ण की आभा न निकलती हो। कांतिहीन। निस्तेज। धुँधला सफेद। जैसे, पीला चेहरा।

मुहा०—पीला पड़ना या होना =(१) रक्त के अभाव के कारण (मनुष्य के शरीर या चेहरे के) रंग में चमक या कांति न रह जाना। बीमारी के कारण चेहरे या शरीर से रक्त का अभाव सूचित होना। ललाई, तेज या दमक न रह जाना। जैसे,—तुम दिन ब दिन पीले हुए जा रहे हो, आखिर तुम्हें कौन सा रोग लगा है। (२) भय के कारण चेहरे पर सफेदी आ जाना। खून सूख जाना। रंग उड़ जाना या फीका पड़ जाना। जैसे,—मेरी सूरत देखते ही वह एकदम पीला पड़ गया।

पीला[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रंग जो हलदी या सोने के रंग से मिलता जुलता होता है और जो हलदी, हरसिंगार आदि से बनाया जाता है।

मुहा०—पीली फटना = पौ फटना। तड़का होना।

पीला—संज्ञा पुं० [फा० पीलह्] शतरंज का एक मोहरा। दे० 'पील'।

पीला कनेर—संज्ञा पुं० [हिं० पीला + कनेर] कनेर के दो भेदों में से एक जिसका फूल पीला और आकार में घंटी के समान होता है। लाल कनेर की अपेक्षा इसका पेड़ कुछ अधिक ऊँचा होता है। वैद्यक के अनुसार इसके गुण भी सफेद कनेर के समान ही होते हैं।

विशेष—दे० 'कनेर'।

पीला धतूरा—संज्ञा पुं० [हिं० पीला+धतूरा] १. भँडभाँड़। सत्यानासी। घमोय। ऊँटकटारा। २. पीले वर्ण का कनक पुष्प।

विशेष—काले या नीले धतूरे के समान इसमें भी तीन फूल एक ही में लगे रहते हैं। खिल जाने पर इसका फूल सोने की तरह पीला दिखता है। यह वृक्ष बहुत कम दिखाई पड़ता है।

पीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० पीला+पन (प्रत्य०)] पीला होने का भाव। पीतता। जर्दी।

पीलाबरेल—संज्ञा पुं० [देश०] बरियारा। बनमेथी।

पीलाम—संज्ञा पुं० [?] साटन नाम का कपड़ा।

पीला शेर—संज्ञा पुं० [हिं० पीला+फा० शेर] एक प्रकार का बाघ जो अफ्रीका में पाया जाता है और जिसका रंग कुछ पीला होता है।

पीलिमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीला] पीलापन। पीतता।

पीलिया—संज्ञा पुं० [हिं० पीला + इया (प्रत्य०)] कमल रोग जिसमें मनुष्य की आँखें और शरीर पीला हो जाता है।

पीलीचमेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीली + चमेली] दे० 'चमेली'।

पीली चिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीली + चिट्ठी] विवाह का निमंत्रणपत्र जिसपर प्रायः केसर, हलदी आदि छिड़का रहता है।

पीली जुही—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीली+जुही] दे० 'सोनजुही'।

पीलीमिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीली+मिट्टी] एक प्रकार की मिट्टी जो चिकनी, कड़ी और रंग में पीली होती है।

पीलु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक फलदार वृक्ष जिसे पीला या पीलू कहते हैं।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इसका फल स्वादु, कटु तिक्त, उष्ण, भेदक तथा वायु, कफ, पित्त, गुल्म, प्रमेह, सं'विबाक आदि का नाशक माना गया है। मीठा पीलु कम गरम और त्रिदोषनाशक माना जाता है।

२. फूल। पुष्प। ३. परमाणु। ४. हाथी। ५. हड्डी का टुकड़ा। अस्थिखंड। ६. तालवृक्ष का तना। तालकांड। ७. बाण। ८. कृमि। ९. चने का साग। १०. सरपत या सरकंडे का फूल। शरतृणपुष्प। ११. लाल कटसरैया। किंकिरात वृक्ष। १२. अखरोट का पेड़। १३. कांचन देश का अखरोट। १४. हथेली। करतल।

पीलुआ—संज्ञा पुं० [देश०] मछली पकड़ने का बहुत बड़ा जाला।

पीलुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा। चींटी।

पीलुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चुरनहार। मूर्वा। २. चने का साग कचूक शाक।

पीलुपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर मोरट। मोरट या मूर्वा लता।

पीलुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चुरनहार। मूर्वा। २. कुँदरू। कंदूरी।

पीलुपाक—संज्ञा पुं० [सं०] वैशेषिकों का मत। वैशेषिकों का एक

सिद्धांत जिसके अनुसार ताप समग्र पदार्थ (जैसे, कच्चा घड़ा) के परमाणुओं पर ही कार्य करता है। विशेष—दे० 'वैशेषिक'।

पीलुपाकवादी—संज्ञा पुं० [सं० पीलुपाकवादिन्] वैशेषिक।

पीलुमूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीलुवृक्ष की जड़। २. सतावर। ३. शालपर्णी।

पीलुमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवान गाय।

पीलुसार—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

पीलू¹—संज्ञा पुं० [सं० पीलु] १. एक प्रकार का काँटेदार वृक्ष जो दक्षिण भारत में अधिकता से होता है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है एक छोटा और दूसरा बड़ा। इसमें एक प्रकार के छोटे छोटे लाल या काले फल लगते हैं जो वैद्यक के अनुसार वायु और गुल्म नाशक, पित्तद और भेदक माने जाते हैं। इसके हरे डंठलों की दतवन अच्छी होती है। पुराणानुसार इसके फूले हुए वृक्षों को देखने से मनुष्य नीरोग होता है।

२. सफेद लंबे कीड़े जो सड़ने पर फलों आदि मे पड़ जाते हैं।

मुहा०—पीलू पड़ना = कीड़े उत्पन्न होना।

पीलू²—संज्ञा पुं० एक राग जिसके गाने का समय दिन को २१ दंड से २४ दंड तक अर्थात् तीसरा पहर है। इसमें गांधार और ऋषभ का मेल होता है और सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

पीलो—संज्ञा स्त्री० [देश०] पक्षी विशेष। उ०—नीले नभ में पीलो के दल आतप में धीरे मँडराते।—ग्राम्या, पृ० ३८।

पीव¹—वि० [सं० पीवन्] १. स्थूल। मोटा। २ पुष्ट।

पीव²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पीप'।

पीव³—संज्ञा पुं० [हिं० पिय] प्रिय। पति। स्वामी। उ०—हरि मोर पीव में राम की बहुरिया।—कबीर (शब्द०)।

पीवनहारा—वि० [हिं० पीवना+हारा (प्रत्य०)] पीनेवाला। उ०—अधरसुधा सरबस जु हमारो। ताको निधरक पीवनहारो—नंद० ग्रं०, पृ० २९४।

पीवना(पु)—क्रि० स० [हिं० पीना] दे० 'पीना'।

पीवर¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पीवरा][संज्ञा पीवरता, पीवरत्व] १. मोटा। स्थूल। तगड़ा। उ०—सुंदर अंस पीवर रुचिर, परम ललित भुज बेलि।—घनानंद, पृ० २६०। २. भारी। गुरु। वजनी।

पीवर²—संज्ञा पुं० १. कछुआ। २. जटा। ३. तामस मन्वंतर के सप्तर्षि में से एक ऋषि का नाम।

पीवरस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़े स्तनवाली गाय या स्त्री।

पीवरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. असगंध। २. सतावर।

पीवरा²—वि० स्त्री० दे० 'पीवर'।

पीवरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सतावर। २. सरिवन। शालपर्णी। ३. बर्हिषद नामक पितृ की मानसी कन्याओं में से एक। ४. युवती स्त्री। ५. गाय।

पीवस—संज्ञा पुं० [सं०] मोटा तगड़ा। स्थूल। (वैदिक)।

पीवा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल। पानी।

पीवा†²—वि० [सं० पीवन्] पुष्ट। मोटा। स्थूल। २. ताकतवर। शक्तिशाली (को०)।

पीवा³—संज्ञा पुं० वायु (को०)।

पीविष्ठ—वि० [सं०] अतिशय स्थूल। बहुत मोटा।

पीस—वि० [अं०] विभाग। हिस्सा। खंड। टुकड़ा।

पीसगुड—संज्ञा पुं० [अं० पीसगुड्ज] (कपड़े का) थान। रेजा। जैसे, पीस गुड्ज के व्यापारी।

पीसना¹—क्रि० स० [सं० पेषण] १. सूखी या ठोस वस्तु को रगड़ या दबाव पहुँचाकर चूर चूर करना। किसी वस्तु को आटे, बुकनी या धूल के रूप में करना। चक्की आदि में दलकर या सिल आदि पर रगड़कर किसी वस्तु को अत्यंत बारीक टुकड़ों में करना। जैसे, गेहूँ पीसना, सुर्खी पीसना आदि।

विशेष—इसका प्रयोग पीसी जानेवाली, पीसनेवाली तथा पीसकर तैयार वस्तुओं के साथ भी होता है। जैसे, गेहूँ पीसना, चक्की पीसना और आटा पीसना।

२. किसी वस्तु को जल की सहायता से रगड़कर मुलायम और बारीक करना। जैसे, चटनी पीसना, मसाला पीसना, बादाम पीसना, भंग पीसना आदि। ३. कुचल देना। दबाकर भुरकुस कर देना। पिलपिला कर देना। जैसे,—तुमने तो पत्थर गिराकर मेरी उँगली बिलकुल पीस डाली।

मुहा०—किसी (आदमी) को पीसना = बहुत भारी अपकार करना या हानि पहुँचाना। नष्टप्राय कर देना। चौपट कर देना। कुचलना। जैसे,—वह उन्हें कुछ नहीं समझता, चुटकी बजाते पीस डालेगा।

४. कटकटाना। किरकिराना। जैसे, दाँत पीसना। ५. कड़ी मिहनत करना। कठोर श्रम करना। जान डालना। जैसे,—सारा दिन पीसता हूँ फिर भी काम पूरा नहीं होता।

पीसना²—संज्ञा पुं० १. वह वस्तु जो किसी को पीसने को दी जाय। पीसी जानेवाली वस्तु। जैसे, गेहूँ का पीसना तो इसे दे दो, चने का और किसी को दिया जायगा। २. उतनी वस्तु जो किसी एक आदमी को पीसने को दी जाय। एक आदमी के हिस्से का पीसना। जैसे,—तुम अपना पीसना ले जाओ। ३. किसी एक आदमी के हिस्से या जिम्मे का काम। उतना काम जो किसी एक आदमी के लिये अलग कर दिया गया हो (व्यंग्य में)।

मुहा०—पीसना पीसना = (१) कठिन परिश्रम का काम लगातार करते रहना। (२) किसी साधारण काम करने में देर लगाना या आवश्यकता से अधिक समय लेना। (व्यंग में)।

पीसुन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पिशुन हिं०] दे० 'पिशुन'। उ०—पीसुन मीले सबहिं धुतारा। सबही ज्ञान भुलावनहारा।—कबीर सा०, भा० ४, पृ० ५१७।

पीसू†—संज्ञा पुं० [हिं० पिस्सू] एक प्रकार का परदार छोटा कीड़ा जो मच्छरों की तरह काटता है। यह पशुओं को बहुत तंग करता है और उनके रोएँ में बड़ी शीघ्रता से रेंगता है।

पीह—संज्ञा स्त्री० [?] चरबी।

पीहर—संज्ञा पुं० [सं० पितृ, प्रा० पिअ, पिउ, पिइ + सं० गेह या घर ? प्रा० हर] स्त्रियों के माता पिता का घर। मैका। उ०—सासरै जाऊँ तो सास रिसैहै, पीहर जाऊँ खिजै मैया।—घनानंद, पृ० ५८२।

पीहाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० पपीहा] दे० 'पपीहा'। उ०—नंद के कुमार बिनु लगै उर मार ऊधो पीहा पुकार झनकार झींगुरन की।—दीन० ग्रं०, पृ० ४०।

पीहू—संज्ञा पुं० [हिं० पिस्सू] दे० 'पीसू'।

पुं—संज्ञा पुं० [सं० पुंस्] १. पुरुष। पुमान्। मर्द। २. मानव। मानव जातीय प्राणी। . सेवक। नौकर। ४. पुल्लिग (व्या०)। ५. पुल्लिग शब्द। ६. आत्मा। ७. जीवित प्राणी। ८. एक प्रकार का नरक (को०)।

पुंख—संज्ञा पुं० [सं० पुङ्ख] १. बाण का पिछला भाग जिसमें पर खोसे रहते थे। २. मंगलाचार। ३. श्येन। एक प्रकार का बाज पक्षी।

पुंखित—वि० [सं० पुङ्खित] (बाण) जिसमें पर लगे हों। पंखयुक्त (शर)।

पुंग—संज्ञा पुं० [सं० पुङ्ग] समूह।

पुंगफल—संज्ञा पुं० [सं० पूगफल] दे० 'पूगीफल'।

पुंगरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लंबी पोली नली जिसे फूँककर बजाते हैं। उ०— नराशिब की पुंगरी फूकनी—बड़ी बड़ी लंबी टाँगें फेकती, दो सुंदरी एक ओर ब्याही और एक ओर कुमारी कन्या को काँख में खोंसे थी।—श्यामा०, पृ० १८।

पुंगल¹—संज्ञा पुं० [सं० पुङ्गल] आत्मा।

पुंगलⓅ²—वि० [?] श्रेष्ठ। उत्तम।

पुंगला—संज्ञा पुं० [सं० पुङ्ग (= आत्मा) + ल (प्रत्य०)] बेटा। पुत्र। आत्मज। उ०—ना हूं तेरा पुंगला ना तु मेरी माय।—दक्खिनी०, पृ० ९०।

पुंगव—संज्ञा पुं० [सं० पुङ्गव] १. बैल। वृष।

विशेष—किसी पद या शब्द के आगे लगने से यह शब्द श्रेष्ठ का अर्थ देता है जैसे, नरपुंगव, वीरपुंगव।

२. एक ओषध का नाम।

पुंगवकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] वृषभध्वज। शिव।

पुंगीफल—संज्ञा पुं० [सं० पूगीफल] दे० 'पूगीफल'।

पुंचिह्न—संज्ञा पुं० [सं० पुंचिह्न] शिश्न। लिंग।

पुंछⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० पुच्छ, प्रा० पुंछ, हिं० पूँछ] दे० 'पूँछ'। उ०—सर्प व्यूह आकार सज्जे सभारं। द्रढं कन्न पुंछं रचे त्रिस सारं।—पृ० रा०, १।६३४।

पुंछल—वि० [सं० पुच्छल ?] दे० 'पुच्छल'। उ०—छूट रहे हैं पुंछल तारे होते रहते उल्कापात।—मिट्टी०, पृ० १०६।

पुंज—संज्ञा पुं० [सं० पुञ्ज] समूह। ढेर।

पुंजदल—संज्ञा पुं० [सं० पुञ्जदल] सुसना का साग। सुनिषण्ण शाक।

पुंजनीⓅ—वि० स्त्री० [सं० पुञ्ज] समूहयुक्त। बहुत अधिकता-वाली। पुंजयुक्त। उ०—नंददास पावन भयो सो यह लीला गाय प्रेम रस पुंजनी।—नंद० ग्रं०, पृ० १८६।

पुंजन्म—संज्ञा पुं० [सं० पुम् + जन्मन्] नर शिशु का जन्म लेना (को०)।

पुंजश—अव्य० [सं० पुञ्जश] ढेर का ढेर। बहुत सा।

पुंजा†—संज्ञा पुं० [सं० पुञ्ज] १. गुच्छा। समूह। २. पूला। गट्ठा।

पुंजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] समूह।

पुंजिअⓅ—वि० [सं० पुञ्जित] एकत्रित। पुंजित। राशिभूत। पुंजीभूत। उ०—जलदानेन हु जलओ नहु पुंजिओ धूमो।—कीर्ति०, पृ० ६।

पुंजिक—संज्ञा पुं० [सं० पुञ्जिक] जमी हुई बर्फ। वर्षोपल। करका।

पुंजित—वि० [सं० पुञ्जित] १. पुंजीभूत। राशि में एकत्रित। २. इकट्ठे दबाया हुआ (को०)।

पुंजिष्ठ¹—वि० [सं० पुञ्जिष्ठ] पुंजीभूत। एकत्रित।

पुंजिष्ठ²—संज्ञा पुं० १. धीवर। मल्लाह। मछुआ। २. बहेलिया। चिड़ीमार (को०)।

पुंजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूँजी] दे० 'पूँजी'।

पुंड—संज्ञा पुं० [सं० पुण्ड] १. तिलक। चंदन, केसर आदि पोतकर मस्तक या शरीर पर बनाया हुआ चिह्न। टीका।

यौ०—ऊर्ध्वपुंड। त्रिपुंड।

२. दक्षिण की एक जाति जो पहले रेशम के कीड़े पालने का काम करती थी।

पुंडका†—संज्ञा स्त्री० [सं० पुण्डक, पुण्डका] माधवी लता। उ०—बासंती पुनि पुंडका मुक्त फला अरु नाउँ।—नंद ग्रं०, पृ० १०६।

पुंडरिया—संज्ञा पुं० [सं० पुण्डरीक] पुंडरी का पौधा।

पुंडरी¹—संज्ञा पुं० [सं० पुण्डरिन्] एक प्रकार का पौधा जिसकी पत्तियाँ शालपर्णी की पत्तियों की सी होती हैं।

विशेष—इसका रस आँख में लगाने से आँख के रोग दूर होते हैं। वैद्यक में यह मीठा, कड़ुवा, कसैला, वीर्यवर्धक, शीतल और नेत्रों को हितकारी माना गया है।

पर्या०—श्रीपुष्प। शीत। पुंडरीयक। प्रपौंडरीक। चाक्षुष्य। तालपुष्पक। सालपुष्प। स्थलपद्म। सानुज। अनुज।

पुंडरी²—वि० [सं० पाण्डुर] दे० 'पांडुर¹'। उ०—ग्रह फूटी, बिखि पुंडरी हुणहुणिया हय थट्ट। ढोलइ बग्ग ढंढोलियउ सीतल सुंदर घट्ट।—ढोला०, दू० ६०१।

पुंडरीक—संज्ञा पुं० [सं० पुण्डरीक] १. श्वेत कमल । २. कमल ।

यौ०—पुंडरीकदलोपम=कमलपत्र के समान। पुंडरीकनयन, पुंडरीकपालाशाक्ष, पुंडरीकलोचन=दे० 'पुंडरीकाक्ष'। पुंडरीकप्लव । पुंडरीकमुख ।

३. रेशम का कीड़ा । पाट कीट । ४. शेर । बाघ । नाहर । ५. एक प्रकार का सुगंधयुक्त पौधा । पुंडरिया । ६. सफेद छाता । ७. कमंडलु । ८. तिलक । ९. एक यज्ञ । १०. एक प्रकार का आम । सफेदा । ११. एक प्रकार का धान । १२. सफेद रंग का हाथी । १३. एक प्रकार की ईख । पौंढ़ा । १४. चीनी । शर्करा । १५. सफेद रंग का साँप । १६. एक प्रकार का बाज पक्षी । १७. श्वेत कुष्ट । सफेद कोढ़ । १८. हाथियों का ज्वर । १९. एक नाग का नाम । २०. अग्निकोण के दिग्गज का नाम । २१ क्रौंचद्वीप का एक पर्वत । २२. महाभारत में वर्णित एक तीर्थ स्थान । २३. अग्नि । आग । २४ बाण । शर (अनेकार्थ०) । २५. आकाश (अनेकार्थ०) । २६. जैनियों के एक गणधर । २७. कालिदास द्वारा (रघुवंश) महाकाव्य में उल्लिखित रघुवंशीय एक राजा का नाम । २८. दौने का पौधा । २९. श्वेत वर्ण । सफेद रंग ।

पुंडरीकपालाशाक्ष—वि० [सं० पुण्डरीकपालाशाक्ष] कमल की पंखुड़ियों के समान नयनवाला (को०) ।

पुंडरीकप्लव—संज्ञा पुं० [सं० पुण्डरीकप्लव] एक प्रकार का पक्षी (को०) ।

पुंडरीकमुख—वि० [सं० पुण्डरीकमुख] कमलमुख । जिसका मुख कमल के समान प्रफुल्ल हो (को०) ।

पुंडरीकमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुण्डरीकमुखी] एक प्रकार की जोंक (को०) ।

पुंडरीकसुतसुता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुण्डरीक (=कमल) + सुत (=ब्रह्मा) + सुता (=पुत्री)] सरस्वती । शारदा । उ०—पुंडरीकसुतसुता तासु पदकमल मनाऊँ । बिसद बरन बर बसन बिसद भूषन हिय ध्याऊँ ।—ह० रासो, पृ० १ ।

पुंडरीकाक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं० पुण्डरीकाक्ष] १. विष्णु भगवान् । नारायण (जिनके नेत्र कमल के समान हैं) १. रेशम के कीड़े पालनेवाली एक जाति ।

पुंडरीकाक्ष[2]—वि० जिसके नेत्र कमल के समान हों ।

पुंडरीकेक्षण—वि०, संज्ञा पुं० [सं० पुण्डरीकेक्षण] दे० 'पुंडरीकाक्ष' (को०) ।

पुंडरीयक—संज्ञा पुं० [सं० पुण्डरीयक] १. पुंडरी का पौधा । स्थलपद्म । २. एक लता जो औषधि में प्रयुक्त होती है (को०) ।

पुंडर्य—संज्ञा पुं० [सं० पुण्डर्य्य] १. पुंडरी का पौधा । २. पौधा । लता । एक बेल (को०) ।

पुंड्र—संज्ञा पुं० [सं० पुण्ड्र] १. एक प्रकार की (विशेषतः लाल) ईख । पौंढ़ा । २. बलि के पुत्र एक दैत्य का नाम जिसके नाम पर देश का नाम पड़ा । ३. अतिमुक्तक । तिनिश वृक्ष । ४. माधवी लता । ५. ह्रस्व प्लक्ष । पाकर । पक्कड़ । ६. श्वेत कमल । ७. चंदन केसर आदि की रेखाओं से शरीर पर बनाया हुआ चिह्न या चित्र । तिलक । टीका । जैसे, ऊर्ध्वपुंड्र । ८. तिलक वृक्ष । ९. कीड़ा । कीट । कृमि (को०) । १०. भारत के एक भाग का प्राचीन नाम जो इतिहास पुराणादि में मिलता है । महाभारत के अनुसार अंग, बंग, कलिंग, पुंड्र और सुह्म, बलि के इन पाँच पुत्रों के नाम पर देशों के नाम पड़े । ११. एक प्राचीन जाति ।

विशेष—इस जाति का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में इस प्रकार है—विश्वामित्र के सौ पुत्रों में से पचास तो मधुच्छंदा से बड़े और पचास छोटे थे । विश्वामित्र ने जब शुनःशेप का अभिषेक किया तब ज्येष्ठ पुत्र बहुत असंतुष्ट हुए । इसपर विश्वामित्र ने उन्हें शाप दिया कि तुम्हारे पुत्र अंत्यज होंगे । अंध्र, पुंड्र, शबर, मूतिब इत्यादि उन्हीं पुत्रों के वंशज हुए जिनकी गिनती दस्युओं में हुई । महाभारत में एक स्थान पर यवन, किरात, गांधार, चीन, शबर आदि दस्यु जातियों के साथ पौंड्रकों का नाम भी है । पर दूसरे स्थान पर 'पौंड्रकों' और सुपुंड्रकों में भेद किया है । पौंड्रकों और पुंड्रों को तो अंग, बंग, गय आदि के साथ शास्त्रधारी क्षत्रिय लिखा है जिन्होंने युधिष्ठिर के लिये बहुत साधन इकट्ठा किया था । उनके जाने पर युधिष्ठिर के द्वारपाल ने उन्हें नहीं रोका था । पर बंग कलिंग, मगध, ताम्रलिप्त आदि के साथ सुपुंड्रकों का द्वारपाल द्वारा रोका जाना लिखा है जिससे वे वृषलत्वप्राप्त क्षत्रिय जान पड़ते हैं । मनुस्मृति में जिन पौंड्रकों का उल्लेख है वे भी संस्कारभ्रष्ट क्षत्रिय थे जो म्लेच्छ हो गए थे । इससे पौंड्र या पुंड्र सुपुंड्रों से भिन्न और क्षत्रिय प्रतीत होते हैं । महाभारत कर्णपर्व में भी कुरु, पांचाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कलिंग, मागध आदि शाश्वत धर्म जाननेवाले महात्माओं के साथ पौंड्रों का भी उल्लेख है, आदिपर्व में बलि के पाँच पुत्रों (अंग बंग आदि) में जिस पुंड्र का नाम है उसी के वंशज संभवतः ये पुंड्र या पौंड्र हों । ब्रह्मांड और मत्स्य पुराण के अनुसार पुंड्र लोग प्राच्य (पूरबी भारत के) थे, पर विष्णु पुराण में और मार्कंडेय पुराण में उन्हें दाक्षिणात्य लिखा है ।

पुंड्रक—संज्ञा पुं० [सं० पुण्ड्रक] १. माधवी लता । २. तिलक । टीका । ३. तिलक वृक्ष । ४. एक प्रकार की (लाल) ईख । पौंढ़ा । ५. वह जो रेशम के कीड़े पालने का व्यवसाय करता हो (को०) । ६. घोड़े के शरीर का एक चिह्न जो रोएँ के रंग के भेद से होता है । शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, अंकुश और धनुष के ऐसे चिह्न को पुंड्रक कहते हैं ।

पुंड्रकेलि—संज्ञा पुं० [सं० पुण्ड्रकेलि] हाथी (को०) ।

पुंड्रवर्धन—संज्ञा पुं० [सं० पुण्ड्रवर्द्धन] पुंड्र देश की प्राचीन राजधानी ।

विशेष—यह नगर किसी समय में हिंदुओं और बौद्धों दोनों का तीर्थ था । स्कंदपुराण में यहाँ 'मंदार' नामक शिवमूर्ति का होना लिखा है । देवी भागवत के अनुसार सती के देहांश

गिरने से जो पीठ हुए उनमें एक यह भी है। चीनी यात्री हुएन्सांग ने इस नगर को एक प्रसिद्ध नगर लिखा है। इसकी स्थिति कहाँ है, इसपर मतभेद है। कोई इसे रंगपुर के पास कहते हैं और कोई पबना को ही प्राचीन पुंड्रवर्धन के स्थान पर मानते हैं। पर कुछ लोगों का कहना है कि यह नगर गंगातट के पास होना चाहिए जैसा कथासरित्सागर और हुएन्सांग के उल्लेख से पाया जाता है। अतः मालदह से दो कोस उत्तरपूर्व जो फीरोजाबाद नाम का स्थान है वही प्राचीन पुंड्रवर्धन हो सकता है। वहाँ के लोग उसे अब तक पोंड़ोवा, पाडुया या बड़पूँड़ो कहते हैं।

पुंदल—संज्ञा पुं० [?] जहाज के मस्तूल का पिछला भाग। (लश०)।

पुंध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूषक। चूहा। २. कोई भी पशु जो नर हो [को०]।

पुंनाग—संज्ञा पुं० [सं० पुन्नाग] दे० 'पुन्नाग'।

पुंभाव—संज्ञा पुं० [सं० पुम्भाव] १. पुरुषत्व। २. व्याकरण में पुल्लिंग [को०]।

पुंमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुम् मन्त्र] वह मंत्र जिसके अंत में 'स्वाहा' या 'नमः' न हो।

पुंयान—संज्ञा पुं० [सं०] सवारी, पालकी या डोली जिसे पुरुष ढोते हैं [को०]।

पुंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष का योग। पुरुषसंपर्क। पुरुष से संबंध [को०]।

पुंरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर व्यक्ति। अच्छा व्यक्ति [को०]।

पुंराशि—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में नर राशि [को०]।

पुंलिंग—संज्ञा पुं० [सं० पुल्लिङ्ग] १. पुरुष का चिह्न। २. शिश्न। ३. व्याकरण में पुरुषवाचक शब्द।

पुंवत्—वि० [सं०] १. पुरुष की तरह। पुल्लिंग के समान (व्याकरण)।

पुंवत्स—संज्ञा पुं० [सं०] बछड़ा। गोवत्स [को०]।

पुंवृष—संज्ञा पुं० [सं०] छछूँदर।

पुंश्चल—संज्ञा पुं० [सं०] व्यभिचारी पुरुष [को०]।

पुंश्चली[1]—वि० स्त्री० [सं०] अनेक पुरुषों के पास जानेवाली (स्त्री)। व्यभिचारिणी। कुलटा। छिनाल।

पुंश्चली[2]—संज्ञा स्त्री० कुलटा स्त्री।

पुंश्चलीय—संज्ञा पुं० [सं०] कुलटा या वेश्या का पुत्र।

पुंश्चलू—संज्ञा स्त्री० [वैदिक सं०] कुलटा स्त्री [को०]।

पुंश्चिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषसूचक चिह्न। लिंग। शिश्न [को०]।

पुंस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुंस्] पुरुष। नर। मर्द। उ०—आदि हू राम हि अंत हू राम ही मध्य हू राम हि पुंस न वामै।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५०२।

पुंसवत्—वि० [सं०] दे० 'पुंवत्' [को०]

पुंसवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुग्ध। दूध। २. द्विजातियों के सोलह संस्कारों में से दूसरा संस्कार जो गर्भाधान से तीसरे महीने में किया जाता है। गर्भिणी पुत्र प्रसव करे इस अभिप्राय से यह किया जाता है।

विशेष—गर्भ हिलने डोलने के पहले ही यह संस्कार होना चाहिए। अच्छे दिन और मुहूर्त में अग्निस्थापना करके स्त्री और पुरुष कुशासन पर बैठते हैं। पति उठकर स्त्री का दाहिना कंधा स्पर्श करता है, फिर दाहिने हाथ से स्त्री के नाभि को स्पर्श करता है. फिर दाहिने हाथ से स्त्री के नाभि को स्पर्श करता हुआ कुछ मंत्र पढ़ता है। यहाँ तक तो प्रथम पुंसवन हुआ। फिर दूसरे दिन या उसी दिन किसी वटवृक्ष की पूर्वोत्तर शाखा की टहनी के दो फलोंवाले सिरे (सुंगा = फुनगी) को जौ या उरद देकर सात बार मंत्र पढ़कर क्रय करते हैं और मंत्र पढ़ते हुए नोचकर लाते हैं। वट की फुनगी को साफ सिल पर ओस के पानी से पीसते हैं। फिर इस बरगद के रस को पश्चिम ओर मुँह करके बैठी स्त्री के पीछे खड़ा होकर पति उसकी नाक के दाहिने नथुने में डाल देता है।

३ गर्भ (को०)। ४. वैष्णवों का एक व्रत। भागवत में यह व्रत स्त्रियों के लिये कर्तव्य कहा है।

पुंसवन[2]—वि० पुत्रोत्पादक।

पुंसवान्—वि० [सं० पुंसवत्] [वि० स्त्री० पुंसवती] पुत्रवाला।

पुंसानुज—वि० [सं०] जिसको बड़ा भाई हो [को०]।

पुंसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसको बछड़ा हो [को०]।

पुंस्कोकिल—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल पक्षी। नर कोयल [को०]।

पुंस्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरुषत्व। पुरुष का धर्म। २ पुरुष की स्त्रीसहवास की शक्ति। ३. शुक्र। वीर्य। ४. (व्याकरण में) पुंलिंगत्व (को०)। ५ गंधतृण।

पुंस्त्वविग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] सुतृण। एक सुगंधयुक्त घास।

पुँछल्ला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुँछार'।

पुँछवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पुछवाना'।

पुँछार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० पूँछ + आर (प्रत्य०)] मयूर। मोर। उ०—(क) जानि पुँछार जो भय बनबासू। रोवँ रोवँ परि फाँद न आँसू।—जायसी (शब्द०)। (ख) कूँडे फेरि जानु गिउ गाढ़े। हरे पुँछार ठगे जनु ठाढ़े।—जायसी (शब्द०)। (ग) कुटी में मेरी रक्खी है। पुँछार जो मिट्टी की है।—प्रतापनारायण मिश्र (शब्द०)।

विशेष—यह शब्द पुं० ही मिलता है। स्त्री० प्रयोग उदाहरण (ग) को छोड़ और कहीं देखने में नहीं आया।

पुँछाला—संज्ञा पुं० [हिं० पूँछ+आ (प्रत्य०)] १. पुछल्ला। दुमवाला। पूँछ की तरह जोड़ी हुई वस्तु। जैसे,—(क) पतंग या कनकौवे के नीचे बँधी हुई लंबी धज्जी जो नीचे लटकती रहती है। (ख) टोपी के पीछे टँकी हुई धज्जी जो नीचे लटकती रहती है। २. बराबर पीछे लगा रहनेवाला। साथ न छोड़नेवाला। बराबर साथ में दिखाई पड़नेवाला। जैसे,—

वह जहाँ जाता है यह पुँछाला उनके साथ रहता है। ३. साथ में जुड़ी या लगी हुई वस्तु या व्यक्ति जिसकी उतनी आवश्यकता न हो। जैसे,—तुम आप तो आते ही हो एक पुँछाला क्यों पीछे लगाए जाते हो। ४. पिछलगू। खुशामद से पीछे लगा रहनेवाला। चापलूस। आश्रित।

पुँछोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूँछ+ओरी (प्रत्य०)] दे० 'पुछल्ला'। उ०—फेरि कै नैन परे तन पै बदनामी की तापै लगाइ पुँछोरी। प्रीति की चंग उमंग चढ़ाय कै सो हरि हाथ बढ़ाय कै तोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २६४।

पुँडरिया पुँडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुण्डरीक] पुंडरी नामक पौधा।

पुँहुतना(पु)‡—क्रि० अ० [हिं० पहुँचना] दे० पहुँचना'। उ०—मजल के करे पुँहुतों नगर उदयमत। वही कागद समय हुती मिल हकीकत।—रघु० रू०, पृ० ७१।

पुआ—संज्ञा पुं० [सं० पूप] मीठे रस मे सने हुए आटे की मोटी पूरी या टिकिया।

पुआई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक सदाबहार पेड़।

विशेष—इसकी लकड़ी दृढ़, चिकनी और पीले रंग की होती है। यह घरों में लकड़ी, मेज, कुरसी, आदि बनाने के काम में आती है। लकड़ी प्रति घनफुट १७ या १८ सेर तोल में होती है। यह पेड़ दारजिलिंग, सिकम (सिक्किम), भोटान आदि पहाड़ी प्रदेशों में आठ हजार फुट की ऊँचाई तक होता है। इसी से मिलता जुलता एक और पेड़ होता है जिसे डिडिया कहते हैं और जिसके पत्तों में एक प्रकार की सुगंध होती है।

पुआल[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक ऊँचा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत और पीले रंग की होती है और इमारतों में लगती है। यह दारजिलिंग सिक्किम और भोटान के जंगलों में होता है।

पुआल[2]—संज्ञा पुं० [सं० पलाल] दे० 'पयाल'।

पुकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुकारना] १. किसी का नाम लेकर बुलाने की क्रिया या भाव। अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये किसी के प्रति ऊँचे स्वर से संबोधन। सुनाने के लिये जोर से किसी का नाम लेना या कोई बात कहना। हाँक। टेर। २. रक्षा या सहायता के लिये चिल्लाहट। बचाव या मदद के लिये दी हुई आवाज। दुहाई। उ०—असुर महा उत्पात कियो तब देवन करी पुकार।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

३. प्रतिकार के लिये चिल्लाहट। किसी से पहुँचे हुए दुःख या हानि का उससे निवेदन जो दंड या पूर्ति की व्यवस्था करे। फरियाद। नालिश। जैसे,—उसने दरबार में पुकार की। ४. माँग की चिल्लाहट। गहरी माँग। जैसे,—जहाँ जाओ वहाँ पानी पानी की पुकार सुनाई पड़ती थी।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

पुकारना—क्रि० स० [सं० संप्लुतकरण (=आवाज को खींचना) या प्रकुश (=पुकारना)] १. नाम लेकर बुलाना। अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये ऊँचे स्वर से संबोधन करना। किसी का इसलिये जोर से नाम लेना जिसमें वह ध्यान दे या सुनकर पास आए। हाँक देना। टेरना आवाज लगाना। जैसे,—(क) नौकर को पुकारो वह आकर ले जायगा। (ख) उसने पीछे से पुकारा, मैं खड़ा हो गया।

संयो० क्रि०—देना।

२. नाम का उच्चारण करना। रटना। धुन लगाना। जैसे, हरिनाम पुकारना। ३. ध्यान आकर्षित करने के लिये कोई बात जोर से कहना। चिल्लाकर कहना। घोषित करना। जैसे, (क) ग्वालिन का 'दही दही' पुकारना। (ख) मगन का द्वार पर पुकारना। उ०—काहे कबहुँ न होयँ आपने मधुबन कहौं पुकारि।—सूर (शब्द०)। ४. चिल्लाकर माँगना। किसी वस्तु को पाने के लिये आकुल होकर बार बार उसका नाम लेना। जैसे, प्यास के मारे सब 'पानी पानी' पुकार रहे हैं। ५. रक्षा के लिये चिल्लाना। गोहार लगाना। छुटकारे के लिये आवाज लगाना। उ०—पाँव पयादे धाय गए गज जबै पुकारयो।—सूर (शब्द०)। ६. प्रतिकार के लिये किसी से चिल्लाकर कहना। किसी के पहुँचे हुए दुःख या हानि को उससे कहना जो दंड या पूर्ति की व्यवस्था करे। फरियाद करना। नालिश करना। उ०—जाय पुकारयो नृप दरबार।—सबल (शब्द०)। ७. नामकरण करना। अभिहित करना। संज्ञा द्वारा निर्देश करना। जैसे,—(क) तुम्हारे यहाँ इस चिड़िया को किस नाम से पुकारते हैं। (ख) यहाँ मुझे लोग यही कहकर पुकारते हैं।

पुक्करवत्ती‡—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्कलावती] वह प्रदेश जो श्रीराम ने भरत के पुत्र को दिया था। दे० 'पुष्कलावती'। उ०—तक्षक नै तखसली, पुकर नै पुक्करवत्तिय।—रघु० रू०, पृ० २८०।

पुक्कश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चांडाल।

विशेष—मनुस्मृति के अनुसार निषाद पुरुष और शूद्रा के गर्भ से और उशना के अनुसार शूद्र पुरुष और क्षत्रिया स्त्री के गर्भ से इस जाति की उत्पत्ति है।

२. अधम व्यक्ति। नीच पुरुष।

पुक्कश[2]—वि० अधम। नीच

पुक्कशक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुक्कश'।

पुक्कशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पुक्कसी' [को०]।

पुक्कष—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुक्कश'।

पुक्कस—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुक्कश'।

पुक्कसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कालापन। कालिमा। २. नील का पौधा। ३. कुड्मल। कली। कोरक (को०) ४. पुक्कस जाति की स्त्री (को०)।

पुक्कार(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पूत्करण, प्रा० पुक्कार] फरियाद। गोहार। दे० 'पुकार'। उ०—पुक्कार परिय नृप पंगपुर कहय सबै किसत्र हदस।—पृ० रासो, पृ० १२७।

पुख(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पुष्प] दे० 'पुष्प'। जैसे, पुखराज = पुष्पराग।

पुखत(पु)—वि० [सं० पुष्ट या फ़ा० पुख्तह्] पूर्णतः। भली प्रकार। उ०—प्राणी तूँ डूबो पुखत मोह नदी रे माँहि। देव नदी में डूबियो नख पग हुंदो नाहि।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ११०।

२. दृढ़। पुख्ता। उ०—प्राण गाँठ जेते पुखत, इण तन माफल एह। क्यावर तेते नाम कर दाम गाँठ मत देह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ५१।

पुखता†—वि० [फा० पुख्तह्] दे० 'पुख्ता'।

पुखर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर, प्रा० पुक्खर] तालाब। पोखरा। उ०—भरहिं पुखर औ ताल तलावा।—जायसी (शब्द०)।

पुखरा†—संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर, प्रा० पुक्खर] पोखरा। तालाब।

पुखराज—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पराग] एक प्रकार का रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो प्राय पीला होता है पर कभी कभी कुछ हलका नीलापन या हरापन लिए भी होता है।

विशेष—यह अलुमीनियम का एक प्रकार का सैकत क्षार है। यह हीरे से भारी पर कम कड़ा होता है। पुखराज अधिकतर ग्रेनाइट की चट्टानों और कभी कभी ज्वालामुखी पर्वतों की दरारों मे मिलता है। कार्नवाल (इंगलैंड), स्काटलैंड, ब्रैजिल, मैक्सिको, साइबेरिया और अमेरिका के संयुक्त राज मे यह पाया जाता है। एशिया मे यह यूराल पर्वत से बहुत निकाला जाता है। ब्रैजिल का गहरे पीले रंग का पुखराज सबसे अच्छा माना जाता है। यों तो भारतवर्ष तथा और पूर्वीय देशों मे भी यह थोड़ा बहुत पाया जाता है।

हमारे यहाँ के रत्नपरीक्षा के ग्रंथों में पुष्पराग के कई भेद लिखे हैं। जो पुष्पराग कुछ पीलापन लिए लाल रंग का हो उसे कौरट और जो कुछ ललाई लिए पीले रंग का हो उसे काषायक कहते हैं। जो कुछ ललाई लिए सफेद हो वह सोमलक, जो बिलकुल लाल हो पद्मराग और जो नीला हो वह इंद्रनील है। इस प्रकार प्राचीन ग्रंथों में पुखराज भी कुरंड जाति के पत्थरों मे माना गया है।

पुख्ता—वि० [फा० पुख्तह्] १. मजबूत। दृढ़। पुष्ट। २. परिपक्व। ३. स्थिर। टिकाऊ। ४. नियत। निश्चित (को०)।

यौ०—पुख्ताअक्ल = दृढ़ मति। स्थिरबुद्धि। परिपक्व मति। पुख्तामग्ज = दे० 'पुख्ताअक्ल'। पुख्तामिज़ाज = स्थिरमति। दृढ़चित्त।

पुख्य—संज्ञा पुं० [सं० पुष्य] दे० 'पुष्य'।

पुगंड—संज्ञा पुं० [सं० पौगंड] दे० 'पोगंड', 'पौगंड'। उ०—बाल कुमार पुगंड धरम आसक्त जु ललित तन। धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सबको मन।—नंद० ग्रं०, पृ० ६।

पुगतापण—संज्ञा पुं० [हिं० पुगना (= पूरा होना) + पन (प्रत्य०)] बुढ़ापा। वार्धक्य। उ०—कर कपै लोयण झरै मुख लसरावै जीह। मावड़िया जुध में मिलै पुगतापण रा दीह।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० १८।

पुगना†—क्रि० अ० [हिं० पूजना] पूरा होना। पूर्ण होना। चुकता होना। खत्म होना।

पुगाना—क्रि० स० [हिं० पुजाना] १. पूरा करना। पुजाना। जैसे, मिति पुगाना, रुपया पुगाना। २. गोली के खेल में गोली का गड्ढे में डालना (लड़के)।

पुचकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुचकारना] प्यार जताने के लिये ओठों से निकाला हुआ चूमने का सा शब्द। चुमकार।

पुचकारना—क्रि० स० [अनुध्व० पुच (= ओठों को दबाकर छोड़ने से निकला हुआ शब्द)+हिं० कार +ना (प्रत्य०)] चूमने का सा शब्द निकालकर प्यार जताना। चुमकारना। जैसे, (क) बच्चे को पुचकारना। (ख) कुत्ते को पुचकारना। उ०—(क) ठोंकि पीठ पुचकारि बहोरी। कीन्हीं बिदा सिद्धि कहि तोरी।—रघुराज (शब्द०)। (ख) सुनि बैठाय अक वानवपति पोंछि वदन पुचकारी। बेटा, पढ़ो कौन विद्या तुम देहु परीक्षा सारी।—रघुराज (शब्द०)।

पुचकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुचकारना] प्यार जताने के लिये ओठों से निकाला हुआ चूमने का सा शब्द। चुमकार। जैसे, जानवर या बच्चे को पुचकारी देकर बुलाना।

क्रि० प्र०—देना।

पुचपुच—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] ओठों निकाली हुई चूमने की सी आवाज। पुचकारी।

पुचारस—संज्ञा पुं० [देश०] कई धातुओं का मेल। ऐसी धातु जिसमें मिलावट हो।

पुचारना¹—क्रि० स० [हिं० पुचारा] १. पुचारा देना। २. पोतना। ३. मीठी बातें कहना। प्रसन्न करनेवाली बातें कहना। चापलूसी करना। ठकुरसुहाती कहना। ४. उत्साहित करनेवाली बातें कहना। प्रोत्साहित करना। पुचकारना।

पुचाड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० पुतारा या अनु० पुचपुच] दे० 'पुचारा'। उ०—पश्चिम के विचारकों ने यहाँवालों को अक्सर यह पुचाड़ा दिया है कि तुम्हारी विशेषता तो परोक्ष चिंतन में है।—आचार्य०; पृ० ६६।

पुचारा¹—संज्ञा पुं० [अनु० पुचपुच (= भीगे कपड़े को दबाने का शब्द) या पुतारा] १. किसी वस्तु के ऊपर पानी से तर कपड़ा फेरने की क्रिया। भीगे कपड़े से पोंछने का काम। जैसे,—बरतन आँच पर चढ़ाकर ऊपर से पानी का पुचारा देते जाना।

क्रि० प्र०—देना।

२. पतला लेप करने का काम। हलकी पुताई या लिपाई। पोता।

क्रि० प्र०—देना।—फेरना।

३. किसी वस्तु के ऊपर कोई गीली वस्तु फेरकर चढ़ाई हुई पतली तह। हलका लेप। जैसे, चूने का पुचारा, मिट्टी या गोबर का पुचारा। ४. वह गीला कपड़ा जिससे पोतते या पुचारा देते हैं। जैसे, जुलाहों का पुचारा जिसमें पाई के ऊपर मांड़ या पानी पोतते हैं। ५. लेप करने या पोतने के लिये पानी में घोली हुई कोई वस्तु (जैसे, रंग, चूना आदि), ६. दगी हुई तोप या बंदूक की गरम नली को ठंढी करने के लिये उसपर गीला कपड़ा डालने की क्रिया। ७. किसी को अनुकूल करने या मनाने के लिये कहे हुए मीठे और सुहाते वचन। प्रसन्न करनेवाले वचन। जैसे,—कड़ाई से नहीं बनेगा, पुचारा देकर काम लेना चाहिए।

क्रि० प्र०—देना।

८. झूठी प्रशंसा। चापलूसी। ठकुरसुहाती। खुशामद।

क्रि० प्र०—देना।

९. उत्साह बढ़ानेवाले वचन। किसी ओर प्रवृत्त करनेवाले वचन। बढ़ावा। जैसे,—जरा पुचारा दे दो; देखो वह सब कुछ करने को तैयार हो जाता है।

पुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुम। पूँछ। २. किसी वस्तु का पिछला भाग। ३. पूँछ जिसमें बाल हों (को०)। ४. मोर की पूँछ (को०)।

पुच्छकंटक—संज्ञा पुं० [सं० पुच्छकण्टक] बिच्छू [को०]।

पुच्छजाह—संज्ञा पुं० [सं०] पूँछ का अग्रिम भाग। पूँछ की जड़ [को०]।

पुच्छटि, पुच्छटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उँगली चटकाने की क्रिया। छोटिका [को०]।

पुच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मणा नाम का कंद।

पुच्छना(पु)—क्रि० स० [सं० पृच्छन] दे० 'पूँछना'। उ०—(क) भृंगी पुच्छइ भिंग सुन की संसारहि सार।—कीर्ति०, पृ० ६। (ख) पुच्छि मात पित पुच्छि पुच्छि परिवार मेह सब। —पृ० रा०, २५।२६७।

पुच्छफल—संज्ञा पुं० [सं०] बेर का पेड़।

पुच्छबंध—संज्ञा पुं० [सं० पुच्छबन्ध] घोड़े के पिछले पैर बाँधने की रस्सी [को०]।

पुच्छमूल—संज्ञा पुं० [सं०] पूँछ का मूल। पूँछ की जड़ [को०]।

पुच्छल—वि० [सं० पुच्छ+हिं० ल (प्रत्य०)] दुमदार। पूँछदार।

यौ०—पुच्छल तारा = कभी कभी उदित होनेवाला वह तारा जिससे लगा हुआ भाप या कुहरे सा द्रव्य झाड़ू के आकार का आकाश में दूर तक फैला दिखाई देता है। विशेष—दे० 'केतु'।

पुच्छाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुच्छमूल [को०]।

पुच्छिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी।

पुच्छी[1]—वि० [सं० पुच्छिन्] पूँछवाला। दुमदार।

पुच्छी[2]—संज्ञा पुं० १. आक। मदार। २. कुक्कुट। मुर्ग।

पुछत्तर†—संज्ञा पुं० [हिं० पूछना] दे० 'पुछैया'। उ०—मैं कहीं चला गया, तो उसका कोई पुछत्तर भी न रहेगा। —रंगभूमि, भा० २, पृ० ५६२।

पुछना[1]†—क्रि० अ० [हिं० पोंछना का अक०] १. पुछकर समाप्त हो जाना। मिट जाना। २. जमीन पर पड़े हुए पानी या किसी तरल द्रव्य का पोंछकर हटाया जाना।

पुछना[2]—संज्ञा पुं० वह कपड़ा जिससे जमीन या जमीन चौकी पीढ़ा आदि पर पड़े हुए पानी आदि को पोंछा जाता है।

पुछना[3]—क्रि० स० [सं० पृच्छन, प्रा० पुच्छण, हिं० पछना] दे० 'पूछना'। उ०—ए मी कह मोय पुछौं तो ही।—विद्यापति, पृ० ५०१।

पुछनियाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूछना] पृच्छा। प्रश्न। जिज्ञासा। उ०—बावन माँ छत्तीस कौम है टेढ़ो तोर पुछनियाँ।—कबीर श०, भा० १ पृ० १०४।

पुछल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० पूँछ+ला (प्रत्य०)] १. बड़ी पूँछ। लंबी दुम। २. पूँछ की तरह जोड़ी हुई वस्तु। जैसे, (क) पतंग या कनकौवे के नीचे बँधी हुई लंबी धज्जी जो लटकती रहती है। (ख) टोपी में टँकी हुई धज्जी जो अलग लटकती रहती है। ३. बराबर पीछे लगा रहनेवाला व्यक्ति। साथ न छोड़नेवाला। बराबर साथ में दिखाई पड़नेवाला। जैसे,—वह जहाँ जाता है यह पुछल्ला उसके साथ रहता है। ४. साथ में जुड़ी या लगी हुई वस्तु या व्यक्ति जिसकी उतनी आवश्यकता न हो। जैसे,—तुम आप तो जाते ही हो, एक पुछल्ला क्यों पीछे लगाए जाते हो। ५. पिछलग्गू। खुशामद से पीछे लगा रहनेवाला। चापलूस। आश्रित जैसे, अमीरों का पुछल्ला। †६ लपेटन की बाईं ओर का खूँटा (जुलाहे)।

पुछवाना†—क्रि० स० [हिं० पूछना का प्रे० रूप] (किसी से) पूछने का कार्य कराना। उ०—जब कहोगी यदुकुल चंद्र से स्वयं पुछवा देंगे।—श्यामा०, पृ० ९१।

पुछवैया†—संज्ञा पुं० [हिं० √पूछ + वैया (प्रत्य०)] दे० 'पुछैया'।

पुछानना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पूछना'। उ०—राजह सूर हकार लिय, दिय सादर सनमान। नीर बिंद बरदाय प्रति, लागे बत्त पुछान।—पृ० रा०, ६।१४७।

पुछाना—क्रि० स० [हिं० पूछना का प्रे० रूप] दे० 'पुछवाना'। उ०—बच्चा को बुलाकर पुछाए देती हूं।—मान०, भा० ५, पृ० १६७।

पुछार(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० √पूछ + आर (प्रत्य०)] पूछनेवाला व्यक्ति। खोज खबर लेनेवाला व्यक्ति। आदर करनेवाला।

पुछार(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुँछार'।

पुछार†[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूछना] पूछताछ।

पुछिया—संज्ञा पुं० [हिं० पूछ + इया (प्रत्य०)] दुंबा। मेढ़ा।

पुछैया—संज्ञा पुं० [हिं० √पूछ + ऐया (प्रत्य०)] पूछनेवाला व्यक्ति। खोज खबर लेनेवाला आदमी। ध्यान देनेवाला व्यक्ति।

पुजंत†—क्रि० वि० [हिं० √ + अंत (प्रत्य०) पूजना (=पूजा करना)] पूजन करने के लिये। पूजनार्थ। उ०—गौरि पुजंतहि बेटी आई सुभद्रा। —पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६५८।

पुजंता†— संज्ञा पुं० [सं० पूजा + अन्ता (प्रत्य०)] वह व्यक्ति जो पूजा करे। पुजारी। पूजा करनेवाला।

पुजना— क्रि० अ० [हिं० पूजना] १. पूजा जाना। आराधना का विषय होना। जैसे,—वहाँ अनेक देवता पुजते हैं। २. आदृत होना। संमानित होना। ३. पूर्ण होना। पूरा होना।

पुजवनाⓅ†[1]— क्रि० स० [हिं० पूजना] १. पुजाना। भरना। २. पूरा करना। ३ सफल करना। उ०—जिन ब्रज बीथिन में सदा बिहरत स्यामा स्याम। सकल मनोरथ मंजु मम ते पुजवहु सुख धाम। —(शब्द०)।

पुजवना†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पूजा] पूजा के लिये सामग्री। पूजा का उपकरण। पूजा करने का सामान। पुजापा।

पुजवाना—क्रि० स० [हिं० पूजना का प्रे० रूप] १. पूजन कराना। पूजा करने में प्रवृत्त करना। आराधन कराना। जैसे,—हम अपने ठाकुर दूसरे से पुजवा लेंगे। २. अपनी पूजा कराना। पूजा प्रतिष्ठा लेना। जैसे,—ये देवता ऐसे हैं जो सबसे पुजवाते हैं। ३. अपनी सेवा शुश्रूषा कराना। आदर संमान कराना। जैसे,—गाँवों में साधु अपने को खूब पुजवाते हैं।

पुजाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० √पूज + आई (प्रत्य०)] १. पूजने का भाव या क्रिया। जैसे, गंगापुजाई। २. पूजने का दाम या मजदूरी।

पुजाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूजना(=पूरा होना)] १. पूरा करने की क्रिया या भाव। २. पूरा करने की मजदूरी।

पुजाना[1]—क्रि० स० [हिं० पूजना का प्रे० रूप] १. दूसरे से पूजा कराना। पूजा में प्रवृत्त या नियुक्त करना। जैसे, पुजारी से ठाकुर पुजाना। २. अपनी पूजा प्रतिष्ठा कराना। आदर सम्मान प्राप्त करना। भेंट चढ़वाना। ३. धन वसूल करना। जैसे,—(क) गाँवों में बैरागी खूब पुजाते हैं। (ख) आज ५) उससे पुजाए।

संयो० क्रि०—लेना।

पुजाना[2]—क्रि० स० [हिं० पूजना (=पूरा होना, भरना)] १. भर देना। किसी घाव, गड्ढे आदि को बराबर करना। जैसे,—यह दवा घाव को बहुत जल्दी पुजा देगी।

संयो० क्रि०—देना।

२. पूरा करना। पूर्ति करना। कमी दूर करना। उ०—पंडुबधू पटहीन सभा में कोटिन बसन पुजाए। —सूर (शब्द०)। ३ परिपूर्ण करना। सफल करना। उ०—करि बिवाह नाही लै आयो। तासु मनोरथ सकल पुजायो।—सूर (शब्द०)।

पुजापा—संज्ञा पुं० [सं० पूजा + ?] १. देवपूजन की सामग्री, जैसे, फूलपत्र, नैवेद्य, पंचपात्र, अरघा इत्यादि। पूजा का सामान।

मुहा०—पुजापा फैलाना = (१) वस्तुओं को बिना किसी क्रम के इधर उधर फैलाकर रखना। (२) आडंबर फैलाना। बखेड़ा फैलाना।

२. पूजा की सामग्री रखने की झोली। पुजाही।

पुजापेदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुजापा + फ़ा० दान (प्रत्य०)] पूजा का पात्र। उ०—घरेलू बरतन भाँड़े प्राय. मिट्टी के भाँति भाँति के प्रकार और आकृति के, बनाए जाते थे, जैसे, पुजापेदानी, पीने के आबखोरे आदि। —हिंदु० सभ्यता, पृ० २१।

पुजारी—संज्ञा पुं० [सं० पूजा+कारी] १. पूजा करनेवाला। जो पूजा करता हो। २. किसी देवमूर्ति की नियमित रूप से सेवा शुश्रूषा करनेवाला व्यक्ति।

पुजाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूजा+आही (प्रत्य०)] पूजन की सामग्री रखने की थैली या पात्र।

पुजेराⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० पूजा + एरा (प्रत्य०)] दे० 'पुजारी'। उ०—जब यह बात पुजेरा कही। सरग सेन बिध मानी सही।—अर्ध०, पृ० १०।

पुजेरीⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० पूजा + एरी (प्रत्य०)] दे० 'पुजारी'। उ०—आप देव आप ही पुजेरी। आपुहि भोजन जेंवत ढेरी। —सूर (शब्द०)।

पुजेला†—संज्ञा पुं० [हिं० पूजा] दे० 'पुजारी'।

पुजैया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पूजन + ऐया (प्रत्य०)] पुजारी। पूजा करनेवाला।

पुजैया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पूजना (=भरना)] पूरा करनेवाला। भरनेवाला।

पुजैया[3]—संज्ञा स्त्री० १. दे० 'पुजाई'। २. बाजे गाजे के साथ सपरिवार किसी देवता के गीत गाते हुए पूजन के निमित्त जाने की क्रिया।

पुजौना†—संज्ञा पुं० [हिं० पूजा + औना (प्रत्य०)] दे० 'पुजवना'।

पुजौरा—संज्ञा पुं० [हिं० पूजा+आर ?] १. पूजन। अर्चना। २. पूजा के समय देवता को अर्पित करने की सामग्री।

पुज्जनाⓅ[1]—क्रि० स० [सं० पूजन] अर्चन करना। 'पूजना'। उ०—करि होय देव पुज्जे अपार। गो भुमि रत्य हाटक सुढार। —ह० रासो, पृ० १५।

पुज्जनाⓅ[2]—क्रि० अ० [हिं० पूजना] पूरा होना। पूर्ण होना। पूजना। उ०—भय चंद मंद तन मन प्रसन। मन अंकुर पुज्जिय रत्तिय। —पृ० रा०, ६।

पुट[1]—संज्ञा पुं० [अनु० पुट पुट (छींटा = गिरने का शब्द)] १. किसी वस्तु से तर करने या उसका हलका मेल करने के लिये डाला हुआ छींटा। हलका छिड़काव। जैसे,- (क) पकाते वक्त ऊपर से पानी का हलका पुट दे देना।

क्रि० प्र०—देना।

२. रँग या हलका मेल देने के लिये किसी वस्तु को घुले हुए रंग या और किसी पतली चीज में डुबाना। बोर। जैसे—इसमें एक पुट लाल रंग का दे दो। उ०—क्यों बिन फूंक पट गहत न रँग को, रंग न रसै परै।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना ।

३. बहुत हलका मेल । अल्प मात्रा में मिश्रण । भावना । जैसे, भाँग में संखिया का भी पुट है ।

पुट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन । ढाकनेवाली वस्तु । जैसे, रदपुट, नेत्रपुट । २ दोना । गोल गहरा पात्र । कटोरा । उ०—(क) पियत नैन पुट रूप पियूखा । —तुलसी (शब्द०) । (ख) जलपुट आनि धरो आँगन में मोहन नेक तौ लीजै ।—सूर (शब्द०) । ३. दोने के आकार की वस्तु । कटोरे की तरह की चीज । जैसे, अंजलिपुट । ४. मुँहबंद बरतन । औषध पकाने का पात्र विशेष ।

विशेष—दो हाथ लंबा, दो हाथ चौड़ा, दो हाथ गहरा एक चौखूँटा गड्ढा खोदकर उसमें बिना पथे हुए उपले डाल दे । उपलों के ऊपर औषध का मुँहबंद बरतन रख दे और ऊपर से भी चारों ओर उपले डालकर आग लगा दे । दवा पक जायगी । यह महापुट है । इसी प्रकार गड्ढे के विस्तार के के हिसाब से कपोतपुट, कौक्कुटपुट, गजपुट, भांडपुट, इत्यादि हैं; जैसे, सवा हाथ विस्तार के गड्ढे में जो पात्र रखा जाय वह गजपुट है ।

५. कटोरे के आकार के दो बराबर बरतनों को मुँह मिलाकर जोड़ने से बना हुआ बंद घेरा । संपुट । ६. घोड़े की टाप । ७. अंत.पट । अँतरौटा । ८. जायफल । ९. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, एक मगण और एक यगण होता है । जैसे,—श्रवणपुट करी ना जान रानी । रघुपति कर याकी मीचु ठानी । १०. कोश (को०) । ११. खाली जगह । रिक्त स्थान । जैसे, नासापुट, कर्णपुट (को०) । १२. कौटिल्य के अनुसार पोटली या पैकेट जिसपर मुहर की जाती थी ।

पुटकंद—संज्ञा पुं० [सं० पुटकन्द] कोलकंद । वाराही कंद ।

पुटक—संज्ञा पुं० [सं०] कमल ।

विशेष—शेष अर्थ पुट के समान ।

पुटकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पद्मिनी । कमलिनी । २ पद्मसमूह । ३. कमलों से भरा देश ।

पुटकी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पुटक (= दोना)] पोटली । गठरी ।

पुटकी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटपटाना (= मरना)] १. आकस्मिक मृत्यु । मौत जो एकबारगी आ पड़े । २. वज्रपात । दैवी आपत्ति । आफत । गजब ।

मुहा०—(किसी पर) पुटकी पड़ना = (१) मौत आना । अकाल मृत्यु होना । (२) वज्र पड़ना । आफत आना । गजब गिरना (स्त्रि० शाप) ।

पुटकी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुट (= हलका मेल)] बेसन या आटा जो तरकारी के रसे में उसे गाढ़ा करने के लिये मिला दिया जाता है । आलन ।

पुटग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] १. गगरा । कलसा । ताँबे का गगरा (को०) ।

पुटन—संज्ञा पुं० [सं०] आच्छादन करना ।

पुटनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] फेनी नाम की मिठाई ।

पुटपरी†—संज्ञा स्त्री० [देशी] १. धतूरे की पुट दी हुई मदिरा । २. पगचंपी । पैर पर चंपी करने की क्रिया उ०—जीव नरेस अविद्या निद्रा सुख सज्या सोयो करि हेत । कर्म खवास पुटपरी लाई तातें बहुविधि भयो अचेत ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६४१ ।

पुटपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पत्ते के दोनों में रखकर औषध पकाने का विधान (वैद्यक) ।

विशेष—पकाई जानेवाली औषध को गंभारी, बरगद, जामुन, आदि के पत्तों में चारों ओर से लपेट दे और कसकर बाँध दे । फिर पत्तों के ऊपर गीली मिट्टी का अंगुल दो अंगुल मोटा लेप कर दे । फिर उस पिंड को उपले की आग में डाल दे । जब मिट्टी पककर लाल हो जाय तब समझे कि दवा पक गई । नेत्ररोगों में भी पुटपाक की रीति से औषध पकाकर उसका रस आँख में डालने का विधान है । स्निग्ध मांस और कुछ औषध लेकर द्रव पदार्थ मिलाकर पीस डाले फिर सबको ऊपर लिखित रीति से पकाकर उसका रस निचोड़कर आँख में डाले ।

२. मुँहबंद बरतन में दवा रखकर उसे गड्ढे के भीतर पकाने का विधान ।

विशेष—भस्म बनाने के लिये धातुएँ प्रायः इसी रीति से फूँकी जाती हैं ।

३. पुटपाक द्वारा सिद्ध रस या औषध । उ०—रावण सो रस राज सुभट रस सहित लंक खल खलतो । करि पुटपाक नाकनायक हित घने घने घर घलतो ।—तुलसी (शब्द०) ।

पुटपी(५)संज्ञा पुं० [सं० पुट] संपुट । कली । पुट । उ०—कब पुटपी कब फुरनै आवै । कब नाभिकमल महँ जाय समावै ।—प्राण०, पृ० २१ ।

पुटभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल का भँवर । २. एक प्रकार का वाद्य (को०) । ३. नगर । पत्तन ।

पुटभेदक—संज्ञा पुं० [सं०] परतदार प्रस्तर जो आधा पुरसा खोदने पर जमीन के भीतर मिले । (बृहत्संहिता) ।

विशेष—कहाँ खोदने से जल निकलेगा इसका विचार जिस उदकार्गल प्रकरण में है उसी में इसका उल्लेख है ।

पुटभेदन—संज्ञा पुं० [सं०] नगर । पत्तन । उपनगर । कस्बा (को०) ।

पुटरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पोटली' ।

पुटरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० पोटलिका] दे० 'पोटली' ।

पुटली(५)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पट्ट, हिं० पटुली] दे० 'पटुली' । उ०—अंक भरे पुटली पै बैठें मुख लखि जोव जिवावै । —घनानंद, पृ० ४६८ ।

पुटली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पोटलिका] दे० 'पोटली' ।

पुटालु—संज्ञा पुं० [सं०] कोल कंद । वाराही कंद ।

पुटास—संज्ञा पुं० [अं० पोटास] दे० 'पोटास' ।

पुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संपुट । पुड़िया । २. इलायची ।

पुटित[1]—वि० [सं०] १. जो सिमटकर दोने के आकार का हो गया हो । २. संकुचित । सुकड़ा हुआ । ३. फटा या फाड़ा हुआ । ४. सिला हुआ । ५. बद्ध । ६. घृष्ट । घर्षित । चूर्णित (को०) ।

७. आदि और अंत में किसी विशेष मंत्र या बीजाक्षर से युक्त (मंत्र, श्लोक आदि)।

पुटित²—संज्ञा पुं० हाथ की अंजलि (को०)।

पुटिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली।

पुटियाना†—क्रि० स० [हिं० पुट + आना (प्रत्य०)] फुसलाकर अपने पक्ष में करना। स्वार्थसिद्धि के लिये किसी को अपने अनुकूल बनाना।

पुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुट] १. छोटा दोना। छोटा कटोरा। उ०—भरि भरि परन पुटी रचि रूरी।—तुलसी (शब्द०)। २. खाली स्थान जिसमें कोई वस्तु रखी जा सके। जैसे, चक्षुपुटी। ३ पुड़िया। ४ कौपीन। लँगोटी। ५ आच्छादन (को०)। (अन्य अर्थ 'पुट' शब्द के समान)।

पुटीन—संज्ञा पुं० [अं० पुटी] किवाड़ों में शीशे बैठाने या लकड़ी के जोड़, छेद, दरार आदि भरने में काम आनेवाला एक मसाला जो अलसी के तेल में खरिया मिट्टी मिलाकर बनाया जाता है।

पुटोटज—संज्ञा पुं० [सं० पुट + उटज] सफेद छत्र। श्वेत छाता (को०)।

पुटोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुट + उदक] जिसके भीतर जल हो—नारियल (को०)।

पुटोलाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का रेशमी वस्त्र। पटोल। उ०—फाड़ि पुटोला धज करौं कामलड़ी पहिराउँ। जिहि जिहि भेषा हरि मिलै सोइ सोइ भेष कराउँ।—कबीर ग्रं०, ११।

पुट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मछलियों के पकड़ने का झाबा।

पुट्ठⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ, प्रा० पुट्ठ] दे० 'पीठ'। उ०—तिन पर छुट्टै बीज जौं जिन पर राज अरुट्टु। राज काज संमुह भिरन दई न कबहू पुट्टु।—पृ० रा०, ५।५।

पुट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० पुष्ट या पृष्ठ] १. चूतड़ का ऊपरी कुछ कड़ा भाग। २. चौपायों विशेषत घोड़ों का चूतड़।

मुहा०—पुट्ठे पर हाथ न रखने देना = चंचलता और तेजी के कारण सवार को पास न आने देना। (घोड़ों के लिये)।

३. घोड़ों की संख्या के लिये शब्द। जैसे,—(क) इस साल कितने पुट्ठे लाए ? (ख) फी पुट्ठा १००) के हिसाब से दाम ले लो। ४ पुट्ठे पर का मजबूत चमड़ा। (चमार)।

पुट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुट्ठा] बैलगाड़ी के पहिए के घेरे का एक भाग जिसमें आरा और गज धुसे रहते हैं।

विशेष—किसी पहिए में ४ किसी में ६ ऐसे भाग मिलकर पूरा घेरा बनाते हैं।

पुठवार¹—क्रि० वि० [हिं० पुट्ठा] पीछे। बगल में। उ०—तुम सैन सजै पुठवार रहौ अब आयसु देहु न और सही। हम जाय जुरें पहले उन सौं तुम गौर करौ लखि लोह बही।—सूदन (शब्द०)।

पुठवार²—संज्ञा पुं० [सं० पृष्ठ] दे० 'पुठवाल'—१। उ०—ठाढ़े खड़े पुठवार, भक्ती बिबि लूटहीं।—कबीर श०, भा० २, पृ० १३२।

पुठवाल—संज्ञा पुं० [सं० पृष्ठक, हिं० पुट्ठा + वाला] १. चोरों के दल का वह बलिष्ठ आदमी जो सेंध के मुँह पर पहरे के लिये खड़ा रहता है। २. भले बुरे काम में किसी का साथ देनेवाला। मददगार। पृष्ठरक्षक।

पुड़Ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ, प्रा० पुट्ठ] दे० 'पीठ'। उ०—वस खल जागणहार, धर पुड़ त्यागणहार विन। अहणानुज असवार कर छाया क्यों सिर करै।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ४५।

पुड़ँग—संज्ञा पुं० [सं० पुटक] दे० 'पुटक'। उ०—पड़ै पुड़ँग तहँ पेम की एक अलड़ी धार। हरिया हरिजन पीवसी दुनियाँ सुधी न सार।—राम० धर्म०, पृ० ६३।

पुड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० पुट] [स्त्री० अल्पा० पुड़िया] बड़ी पुड़िया या बंडल।

पुड़ा²—संज्ञा पुं० [हिं० पुट्ठ] वह चमड़ा जिससे ढोल मढ़ा जाता है।

पुड़िया—स्त्री० संज्ञा [सं० पुटिका, प्रा० पुडिआ] १. मोड़ या लपेटकर संपुट के आकार का किया हुआ कागज या पत्ता जिसके भीतर कोई वस्तु रखी जाय। जैसे,—पंसारी ने एक पुड़िया बाँधकर दी।

क्रि० प्र०—बाँधना।

२. पुड़िया में लपेटी हुई दवा की एक खुराक या मात्रा। जैसे,—एक पुड़िया सुबह खाना एक शाम। ३. आधारस्थान। खान। भंडार। घर। जैसे,—यह बुढ़िया आफत की पुड़िया है।

पुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुड़ा] वह चमड़ा जिससे ढोल मढ़ा जाता है। †२. दे० 'पुड़िया'। ३. पूड़ी।

पुण¹—संज्ञा पुं० [सं० पुण्य] दे० 'पुण्य'। उ०—पुण सो हुयो फल आज प्रापत आप दरसण वारणै।—रघु० रू०, पृ० १२६।

पुण²—क्रि० वि० [सं० पुनः] पुनः। फिर।

पुणगⓅ¹—संज्ञा पुं० [सं० पन्नग] दे० 'पन्नग'। उ०—घर नीगुल दीवउ सजल, छाजइ पुणग न माइ।—ढोला, दू० ५०६।

पुणगⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पुटक, राज० पुडग] दे० 'पुटक'। उ०—दादू तृषा बिना तनि प्रीति न उपजै सीतल निकट जल धरिया। जनम लगैं जिव पुणग न पीवै, बिरमल दह दिस भरिया।—दादू०, पृ० ७२।

पुणचा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पहुँचा'। उ०—पुणचा जड़त जड़ाऊ पुणची कल आजान भुजा केयूर।—रघु० रू०, पृ० २५६।

पुणची†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पहुँची'। उ०—पुणचा जड़त जड़ाऊ पुणची कल आजान भुजा केयूर।—रघु० रू०, पृ० २५६।

पुणिंदⓅ—संज्ञा पुं० [सं० फणीन्द्र] फणींद्र। सर्प। उ०—माझ घूँघटि दिट्ठु मईं, एता सहित पुणिंद। कीर, भमर, कोकिल, कमल, चंद, मयंद, गयंद।—ढोला०, दू० ४५५।

पुणि†—क्रि० वि० [सं० पुनः] दे० 'पुनि'।

पुण्य¹—वि० [सं०] १. पवित्र। २. शुभ। अच्छा। भला। ३. धर्मविहित। जैसे, पुण्य कार्य। ४. गुणयुक्त (को०)। ५. न्यायसंगत (को०)। ६. अनुकूल। रुचि के अनुसार (को०)। सुंदर। प्रिय (को०)। ७. मीठी या मधुर (गंध)। ८. गंभीर (को०)।

पुण्य²—संज्ञा पुं० १. वह कर्म जिसका फल शुभ हो। शुभादृष्ट। सुकृत। भला काम। धर्म का कार्य। जैसे,—दीनों को दान देना बड़े पुण्य का कार्य है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. शुभ कर्म का संचय। जैसे,—ऐसा करने से बड़ा पुण्य होता है।

क्रि० प्र०—होना।

३. पवित्रता (को०)। ४. पशुओं को पानी पिलाने की नाँद (को०) ५. एक व्रत। दे० 'पुण्यक'—२।

पुण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्रत, अनुष्ठान आदि जिनसे पुण्य होता है। २. ब्रह्मवैवर्त पुराण के गणपति खंड (अ०३-४) में कथित एक व्रत। वह व्रत या उपचार जो पुत्रवती स्त्री अपने पुत्र के कल्याण के लिये करती है। ३. विष्णु।

पुण्यकर्ता—वि० [सं० पुण्यकर्तृ] दे० 'पुण्यकर्मा'।

पुण्यकर्मा—वि० [सं०] पुण्यकार्य करनेवाला व्यक्ति (को०)।

पुण्यकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दान पुण्य का समय।

पुण्यकीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. पुराणों का बाँचना (को०)।

पुण्यकीर्ति—वि० [सं०] पवित्र कीर्तिवाला। पूजनीय (को०)।

पुण्यकृत्—वि० [सं०] पुण्य करनेवाला। धार्मिक। (को०)।

पुण्यक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ जाने से पुण्य हो। तीर्थ। २. आर्यावर्त का एक नाम (को०)।

पुण्यगंध—संज्ञा पुं० [सं० पुण्यगन्ध] चंपा। चंपक।

पुण्यगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुण्यगन्धा] सोनजूही का फूल।

पुण्यगंधि—वि० [सं० पुण्यगन्धि] खुशबूदार। सुगंधित (को०)।

पुण्यगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्न सत्र। २. मंदिर (को०)।

पुण्यजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मात्मा। सज्जन। २. राक्षस। ३. यक्ष।

पुण्यजनेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

पुण्यजित—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रलोक, स्वर्ग लोक आदि (जिनकी प्राप्ति पुण्य द्वारा होती है)।

पुण्यतृण—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कुश (को०)।

पुण्यदर्शन¹—वि० [सं०] जिसके दर्शन से पुण्य हो। जिसके दर्शन-का फल शुभ या अच्छा हो।

पुण्यदर्शन²—संज्ञा पुं० नीलकंठ। चाष पक्षी। (विजयादशमी के दिन इसके दर्शन से लोग पुण्य मानते हैं)।

पुण्यदुह—वि० [सं० पुण्यदुह्] पुण्यदाता। आनंद प्रदान करनेवाला (को०)।

पुण्यपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] पवित्रात्मा। पुण्यवान व्यक्ति (को०)।

पुण्यफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुण्य कर्मों का फल। २. वह बाग जिसमें लक्ष्मी निवास करती है (को०)।

पुण्यभाक्—वि० [सं० पुण्यभाज्] पवित्र व्यक्ति। पवित्रात्मा (को०)।

पुण्यभू, पुण्यभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आर्यावर्त देश। २. पुत्रवती स्त्री।

पुण्ययोग—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व जन्म में किए हुए पुण्य कर्मों का फल (को०)।

पुण्यलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग (को०)।

पुण्यवान्—वि० [सं० पुण्यवत्] [वि० स्त्री० पुण्यवती] पुण्य करनेवाला। धर्मात्मा।

पुण्यविजित—वि० [सं०] पुण्य से प्राप्त (को०)।

पुण्यशकुन—संज्ञा सं० [१. पक्षी जिसका दर्शन शुभ सगुन देनेवाला हो। २. शुभदायक शकुन (को०)।

पुण्यशील—वि० [सं०] पुण्य कार्य करनेवाला। धर्मनिष्ठ (को०)।

पुण्यश्लोक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पुण्यश्लोका] जिसका सुंदर चरित्र या यश हो। पवित्र चरित्र या आचरणवाला। जिसका जीवनवृत्तांत पवित्र और शिक्षादायक हो।

पुण्यश्लोक²—संज्ञा पुं० १. नल। २. युधिष्ठिर। ३. विष्णु।

पुण्यश्लोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीता। २. द्रोपदी।

पुण्यस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ पवित्र स्थान। तीर्थस्थान। २. जन्मकुंडली में लग्न से नवाँ स्थान जिसमें कुछ ग्रहों के होने से पुण्यवान या पुण्यहीन होने का विचार किया जाता है।

पुण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तुलसी। २. पुनपुना नदी।

पुण्याई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुण्य + आई (प्रत्य०)] पुण्य का फल या पुण्य का प्रभाव। जैसे,—आज तो वह पुरखों की पुण्याई से बच गया।

पुण्यात्मा—वि० [सं० पुण्यात्मन्] जिसकी प्रवृत्ति पुण्य की ओर हो। पुण्यशील। धर्मात्मा।

पुण्याह—संज्ञा पुं० [सं०] शुभ दिन। मंगल का दिन।

पुण्याहवाचन—संज्ञा पुं० [सं०] देवकार्य के अनुष्ठान के पहले मंगल के लिये 'पुण्याह' शब्द का तीन बार कथन।

पुण्योदय—संज्ञा पुं० [सं०] भाग्योदय। अच्छे दिनों का आगमन (को०)।

पुत्—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम जिससे पुत्र होने पर उद्धार होता है।

पुतना¹—क्रि० अ० [हिं० पोतना] पोता जाना। पुताई का कार्य होना।

पुतना(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० पूतना] दे० 'पूतना'। उ०—पय प्यावत प्रानन हरे, पुतना बाल चरित्र।—नंद ग्रं०, पृ० १८०।

पुतरा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पुत्रक] दे० 'पुतला'।

पुतरि ⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्तली] नेत्र का काला अंश। उ०—नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई।—मानस, २।५६।

पुतरिका ⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्तलिका] दे० 'पुत्तलिका'।

पुतरिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुतरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'पुतरी'।

पुतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्तली] गुड़िया। पुतली। उ०—बोलत हँसति, हरति इमि हियो। जनु बिधि पुतरी मैं जिय दियो।—नंद० ग्रं०, पृ० २२१। २. आँख का काला भाग। पुतली उ०—दृग जुग मन को मोहै। तिन संग पुतरी सोहै।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ११०।

पुतला—संज्ञा पुं० [सं० पुत्तक, पुत्तल] [स्त्री० पुतली] १. लकड़ी, मिट्टी, धातु, कपड़े आदि का बना हुआ पुरुष का आकार या मूर्ति विशेषत वह जो विनोद या क्रीड़ा (खेल) के लिये हो।

मुहा०—किसी का पुतला बाँधना = किसी की निंदा करते फिरना। किसी की अपकीर्ति फैलाना। बदनामी करना।

विशेष—भाट जिसके यहाँ कुछ नहीं पाते हैं उसके नाम का एक पुतला बाँस में बाँधकर घूमते हैं और उसे कंजूस कह कहकर गालियाँ देते हैं। इस संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास का यह पदांश द्रष्टव्य है,—तौ तुलसी पूतरा बाँधिहै।

२. शव की प्राप्ति न होने पर, आटा, सरपत आदि का बना हुआ आकार जो दाह किया जाता है। ३. जहाज के आगे का पुतला या तस्वीर। (लश०)।

पुतली—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुतला] १. लकड़ी, मिट्टी, धातु, कपड़े आदि की बनी हुई स्त्री की आकृति या मूर्ति विशेषत. वह जो विनोद या क्रीड़ा (खेल) के लिये हो। गुड़िया। २. आँख का काला भाग जिसके बीच में वह छेद होता है जिससे होकर प्रकाश की किरणें भीतर जाती हैं और पदार्थों का प्रतिबिंब उपस्थित करती है। नेत्र के ज्योतिष्केंद्र के चारों ओर का कृष्णमंडल।

विशेष—दूसरे की आँख पर दृष्टि गड़ाकर देखनेवाले को इस काले मंडल के बीच के तिल में अपना प्रतिबिंब पुतली के आकार का दिखाई देता है इसी से यह नाम पड़ा।

मुहा०—पुतली उलटना या फिर जाना = (१) आँखें पथरा जाना। नेत्र स्तब्ध होना। (मरणचिह्न)। (२) घमंड हो जाना।

३. कपड़ा बुनने की कल या मशीन।

यौ०—पुतलीघर = वह स्थान जहाँ कपड़ा बुनने के लिये मशीनें बैठाई गई हों। कपड़ा बुनने की मिल।

४. किसी स्त्री की सुकुमारता और सुंदरता सूचित करने के लिये व्यवहृत शब्द। जैसे,—वह स्त्री क्या है पुतली है। ५. घोड़े की टाप का वह मांस जो मेढक की तरह निकला होता है।

पुताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोतना + आई (प्रत्य०) १. किसी गीली वस्तु की तह चढ़ाने का काम। पोतने की क्रिया या भाव। २. दीवार आदि पर मिट्टी, गोबर, चूने, आदि पोतने का काम। ३. पोतने की मजदूरी।

पुतारा—संज्ञा पुं० [हिं० पुतना, पोतना] १. किसी वस्तु के ऊपर पानी से तर कपड़ा फेरने की क्रिया। भीगे कपड़े से पोछने का काम। २. पोतने का तर कपड़ा।

पुत्त ⑤—संज्ञा पुं० [सं० पुत्र, प्रा० पुत्त] १. दे० 'पुत्र'। २. 'पुतली'–१, २, ४।

पुत्तरी ⑤†—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्री] १. दे० 'पुत्री'।

पुत्तल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पुत्तली] पुतला।

यौ०—पुत्तलदहन। पुत्तलपूजा = मूर्तिपूजा। पुतले की पूजा। पुत्तलविधि। दे० 'पुत्तलदहन' (क्रम में)।

पुत्तलक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पुत्तलिका] पुतला।

पुत्तलदहन—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे व्यक्ति का पुतला बनाकर जलाना जो कहीं अन्यत्र मर गया हो अथवा जिसका शव प्राप्त न हो [को०]।

पुत्तलि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्तली] दे० 'पुतली'।

पुत्तलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुतली। २. गुड़िया।

पुत्तली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुतली। २. गुड़िया।

पुत्ति ⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्रि, प्रा० पुत्ति] दे० 'पुत्री'।
उ०—तिह सुत्त नांहि गृह पुत्ति दोइ। किय ब्याह कमध बहुमान सोइ।—पृ० रा०, १।६७१।

पुत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की मधुमक्खी। २. दीमक।

पुत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुत्र] [स्त्री० पुत्री] १. लड़का। बेटा।

विशेष—'पुत्र' शब्द की व्युत्पत्ति के लिये यह कल्पना की गई है कि जो पुन्नाम ['पुत्' नाम] नरक से उद्धार करे उसकी संज्ञा पुत्र है। पर यह व्युत्पत्ति कल्पित है। मनु ने बारह प्रकार के पुत्र कहे हैं—औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढ़ोत्पन्न, अपविद्ध, कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और शौद्र। विवाहिता सवर्णा स्त्री के गर्भ से जिसकी उत्पत्ति हुई हो वह 'औरस' कहलाता है। औरस ही सबसे श्रेष्ठ और मुख्य पुत्र है। मृत, नपुंसक आदि की स्त्री देवर आदि से नियोग द्वारा जो पुत्र उत्पन्न करे वह 'क्षेत्रज' है। गोद लिया हुआ पुत्र 'दत्तक' कहलाता है। किसी पुत्र गुणों से युक्त व्यक्ति को यदि कोई अपने पुत्र के स्थान पर नियत करे तो वह 'कृत्रिम' पुत्र होगा। जिसकी स्त्री को किसी स्वजातीय या घर के पुरुष से ही पुत्र उत्पन्न हो, पर यह निश्चित न हो कि किससे, तो वह उसका 'गूढ़ोत्पन्न' पुत्र कहा जायगा। जिसे माता पिता दोनों ने या एक ने त्याग दिया हो और दूसरे ने ग्रहण किया हो वह उस ग्रहण करनेवाले का 'अपविद्ध' पुत्र होगा। जिस कन्या ने अपने बाप के घर कुमारी अवस्था में ही गुप्त संयोग से पुत्र उत्पन्न किया हो उस कन्या का वह पुत्र उसके विवाहित पति का 'कानीन' पुत्र कहा जायगा। पहले से गर्भवती कन्या का जिस पुरुष के साथ विवाह होगा गर्भजात पुत्र उस पुरुष का 'सहोढ' पुत्र होगा। माता पिता को मूल्य देकर जिसे मोल लें वह मोल लेनेवाले का 'क्रीत'

पुत्र कहा जायगा। पति द्वारा त्यागी जाकर अथवा विधवा या स्वेच्छाचारिणी होकर जो परपुरुष संयोग द्वारा पुत्र उत्पन्न करे वह पुत्र उस पुरुष का 'पौनर्भव' पुत्र होगा। मातृपितृविहीन अथवा माता पिता का त्यागा हुआ यदि किसी से आप आकर कहे कि 'मैं आपका पुत्र हुआ' तो वह 'स्वयंदत्त' पुत्र कहलाता है। विवाहिता शूद्रा और ब्राह्मण के संयोग से उत्पन्न पुत्र ब्राह्मण का 'पारशव' या 'शौद्र' पुत्र कहलाएगा।

२. प्रिय बालक। प्यारा बच्चा (को०)। ३. पशुओं का छोटा बच्चा (को०)। ४. अपने वर्ग की साधारण या छोटी वस्तु। जैसे, शिलापुत्र, असिपुत्र (समासांत में प्रयुक्त)। ५. कुंडली में जन्मलग्न से पाँचवाँ स्थान (को०)।

पुत्रकंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्रकन्दा] लक्ष्मणाकंद जिसके सेवन से गर्भदोष दूर होते हैं।

शिशुपत्र, पुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र पुत्रसम। शिशुपुत्र बेटा। २. पतंग। फतिंगा। टिड्डी। ३. दाने का पौधा। ४. एक प्रकार का चूहा (शरभ) जिसके काटने से बड़ी पीड़ा और सूजन होती है। ५. गुड्डा। पुत्तलक (को०)। ६. दयनीय व्यक्ति। दया करने योग्य व्यक्ति (को०)। ७. बाल। केश (को०)। ८ धोखेबाज या धूर्त व्यक्ति (को०)। ९. एक पर्वत का नाम (को०)। १०. एक विशेष वृक्ष (को०)।

पुत्रकर्म—संज्ञा पुं० [सं० पुत्रकर्मन्] पुत्रजन्मोत्सव। पुत्रोत्पत्ति पर किया जानेवाला उत्सव (को०)।

पुत्रका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पुत्रिका' (को०)।

पुत्रकाम—वि० [सं०] जिसे पुत्र की कामना हो (को०)।

पुत्रकामेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक यज्ञ जो पुत्रप्राप्ति की इच्छा से किया जाता है।

पुत्रकाम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रप्राप्ति की कामना (को०)।

पुत्रकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र संबंधी संस्कार। पुत्र संबंधी उत्सव (को०)।

पुत्रकृत्, पुत्रकृतक—संज्ञा पुं० [सं०] माना हुआ पुत्र। दत्तक पुत्र (को०)।

पुत्रघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक योनिरोग जिसके कारण गर्भ नहीं ठहरता।

पुत्रअग्धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी स्त्री जो अपने बच्चों को स्वय खा जाय (को०)।

पुत्रजात—वि० [सं०] जिसको पुत्र पैदा हुआ हो (को०)।

पुत्रजीव—संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी से मिलता जुलता एक बड़ा और सुंदर पेड़ जो हिमालय से लेकर सिंहल तक होता है। जियापोता।

विशेष—इसकी लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है। यह चैत बैसाख में फूलता है। फल भी इसके इंगुदी के फलों के ऐसे होते हैं। बीज सूखकर रुद्राक्ष की तरह हो जाते हैं; इससे बहुत से साधु उसकी माला पहनते हैं। बीजों से तेल भी निकलता है जो जलाने के काम में आता है। छाल, बीज और पत्ते दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में पुत्रजीव भारी, वीर्यवर्धक, गर्भदायक कफकारक, मलमूत्रकारक, रूखा और शीतल माना जाता है।

पर्या०—जियापोता। पुतजिया। पवित्र। गर्भद। सिद्धिद। यष्टीपुष्प।

पुत्रजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रजीव नामक वृक्ष।

पुत्रदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बध्या कर्कोटकी। बाँझ ककोड़ा या खेखसा। २. लक्ष्मणा कंद। ३. सफेद भटकटैया। श्वेत कंटकारि। ४ जीवंती।

पुत्रदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक लता जो मालवा में होती है। इसके सेवन से पुत्रप्राप्ति होती है। २ श्वेत कंटकारि।

पुत्रधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र का कर्तव्य (को०)।

पुत्रपौत्रीण—वि० [सं०] पुत्र से पौत्र तक क्रमश. प्राप्त या प्रचलित। आनुवंशिक। वंशपरंपरागत (को०)।

पुत्रप्रतिनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र का स्थानापन्न। दत्तक पुत्र (को०)।

पुत्रप्रदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्वेतकटकारि। २ अग्निबा।

पुत्रप्रवर—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रों में श्रेष्ठ पुत्र। ज्येष्ठ पुत्र। सबसे बड़ा लड़का (को०)।

पुत्रप्रसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पूत्रसू'।

पुत्रभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी जीवंती।

पुत्र भांड—संज्ञा पुं० [सं० पुत्रभाण्ड] पुत्र का प्रतिनिधि। वह जो पुत्र का स्थानापन्न हो (को०)।

पुत्रभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र का भाव। पुत्रत्व। २. फलित ज्योतिष में लग्न से पंचम स्थान का विचार जिसके द्वारा ज्योतिषी यह निश्चित करते हैं कि किसके कितने पुत्र या कन्याएँ होंगी।

पुत्रलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र का जन्म लेना। पुत्रप्राप्ति।

पुत्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसके पुत्र हो। पुत्रवाली। पूती। उ०—पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई।—मानस, १।७५।

पुत्रवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्र की स्त्री। पतोहू। पुतऊ।

पुत्रश्रृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुत्रश्रृङ्गी] मेढ़ा। अजशृंगी।

पुत्रश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी।

पुत्रसख—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बच्चों को बहुत अधिक चाहता हो। बच्चों का मित्र (को०)।

पुत्रसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि (को०)।

पुत्रसहम—संज्ञा पुं० [सं० पुत्र + अ० सहम] नीलकंठ ताजिक में जो ५० प्रकार के सहम कहे गए हैं उनमें से एक।

विशेष—बृहस्पतिस्फुट में से चंद्रस्फुट निकाल लेने से जो अंक बचे उसे लग्नस्फुट के साथ जोड़ने से पुत्रसहम आता है। इसके द्वारा पुत्रलाभ आदि का विचार किया जाता है।

पुत्रसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्र की माँ (को०)।

पुत्राचार्य—वि० [सं०] पुत्र को गुरु माननेवाला (को०)।

पुत्रादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अप्राकृतिक माँ। अपनी संतानों को खा जानेवाली माँ। २. व्याघ्री (को०)।

पुत्रादी—वि० [सं० पुत्रादिन्] [वि० स्त्री० पुत्रादिनी] पुत्रभक्षक। बेटे को खानेवाला। (गाली)।

पुत्रान्नाद—वि० [सं०] पुत्र से भरणपोषण प्राप्त करनेवाला। पुत्र की आजीविका पर जीनेवाला। कुटीचक (को०)।

पुत्रार्थी—वि० [सं० पुत्रार्थिन्] [वि० स्त्री० पुत्रार्थिनी] पुत्र की कामना करनेवाला। पुत्र चाहनेवाला (को०)।

पुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लड़की। बेटी। उ०—जनक सुखद गीता। पुत्रिका पाइ सीता।—केशव (शब्द०)। २. पुत्र के स्थान पर मानी हुई कन्या।

विशेष—मनुस्मृति नवम अध्याय में कहा है कि जिसे पुत्र न हो वह कन्या को इस प्रकार पुत्र रूप से ग्रहण कर सकता है। विवाह के समय वह जामाता से यह निश्चय कर ले कि 'कन्या का जो पुत्र होगा वह मेरा 'स्वधाकर' अर्थात् मुझे पिंड देनेवाला और मेरी संपत्ति का अधिकारी होगा।

३. गुड़िया। मूर्ति। पुतली। ४. आँख की पुतली। उ०—महादेव की नेत्र की पुत्रिका सी। कि संग्राम की भूमि में चंद्रिका सी।—केशव (शब्द०)। ५. स्त्री की तसवीर। उ०—चित्र की सी पुत्रिका की रूरे बगरूरे माहिं, शंबर छोड़ाय लई कामिनी की काम की।—केशव (शब्द०)। ६. (समासांत में) अपने वर्ग की छोटी या तुच्छ वस्तु। जैसे, असिपुत्रिका, खड्गपुत्रिका (को०)।

पुत्रिकापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. कन्या का पुत्र जो पुत्र के समान माना गया हो और संपत्ति का अधिकारी हो। २. दौहित्र (को०)।

पुत्रिकाभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० पुत्रिकाभर्तृ] जामाता। दामाद (को०)।

पुत्रिकासुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुत्रिकापुत्र' (को०)।

पुत्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्त्री जिसको पुत्र हों। पुत्रवती स्त्री। २. एक पर्णपुष्ट लता (को०)।

पुत्रिय—वि० [सं०] पुत्र से संबंधित। पुत्रविषयक (को०)।

पुत्री[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कन्या। लड़की। बेटी। २. दुर्गा (को०)।

पुत्री[2]—वि० [सं० पुत्रिन्] [वि० स्त्री० पुत्रिणी] पुत्रवाला। जिसे पुत्र हों।

पुत्रीय—वि० [सं०] पुत्र का। पुत्र संबंधी। पुत्रिय (को०)।

पुत्रीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रप्राप्ति की कामना (को०)।

पुत्रेप्सु—वि० [सं०] पुत्र की कामना करनेवाला (को०)।

पुत्रेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो पुत्रलाभ की इच्छा से किया जाता है।

पुत्रेष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पुत्रेष्टि' (को०)।

पुत्रैषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रकामना। पुत्रेच्छा (को०)।

पुत्र्य—वि० [सं०] पुत्र संबंधी। पुत्रीय (को०)।

पुदीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० पोदीनह्] एक छोटा पौधा जो या तो जमीन पर ही फैलता है अथवा अधिक से अधिक एक या डेढ़ बीता ऊपर जाता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ दो ढाई अंगुल लंबी और डेढ़ पौने दो अंगुल तक चौड़ी तथा किनारे पर कटावदार और देखने में खुरदरी होती हैं। पत्तियों में बहुत अच्छी गंध होती है इससे लोग उन्हें चटनी आदि में पीसकर डालते हैं। पुदीने को यहाँ डंठलों से ही लगाते हैं, उसका बीज नहीं बोते। पुदीने का फूल सफेद होता है और बीज छोटे छोटे होते हैं। पुदीना तीन प्रकार का होता है—साधारण, पहाड़ी और जलपुदीना। जलपुदीने की पत्तियाँ कुछ बड़ी होती हैं। पुदीना रुचिकारक, अजीर्णनाशक और वमन को रोकनेवाला है। यह पौधा हिंदुस्तान में बाहर से आया है, प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं है। यह पिपरमिंट की जाति का ही पौधा है।

पुद्गल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैनशास्त्रानुसार ६ द्रव्यों में से एक। जगत् के रूपवान् जड़ पदार्थ। स्पर्श, रस और वर्णवाला पदार्थ।

विशेष—जैन दर्शन में षड्द्रव्य माने गए हैं—जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल।

२. शरीर। देह। (बौद्ध)। ३. परमाणु। ४. आत्मा। ५. गंधतृण। ६. शिव (को०)।

पुद्गल[2]—वि० सुंदर। प्यारा। सलोना (को०)।

पुद्गलास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] संसार के सब रूपवान जड़ पदार्थों की समष्टि।

पुनः—अव्य० [सं० पुनर, पुनः] १. फिर। दोबारा। दूसरी बार। २. उपरांत। पीछे। अनंतर।

विशेष—संस्कृत व्याकरण के अनुसार विभिन्न वर्णों का योग होने पर यह पुनः, पुनर् और पुनश् आदि रूपों में परिवर्तित होता है।

पुनःकरण—संज्ञा पुं० [सं०] फिर से करना। पुनः करना (को०)।

पुनःक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पुनःकरण'।

पुनःखुरी—संज्ञा पुं० [सं० पुनःखुरिन्] घोड़ों के पैर का एक रोग जिसमें उनकी टाप फैल जाती है और वे लड़खड़ाते चलते हैं।

पुनःपाक—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु को फिर से पकाना या पकाया जाना (को०)।

पुनःपुनः—क्रि० वि० [सं०] बार बार।

पुनःपुना—संज्ञा स्त्री० [सं०] गया की पुनपुना नदी।

पुनःप्रतिनिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] वापस आना। लौट आना (को०)।

पुनःप्रमाद—संज्ञा पुं० [सं०] दुबारा उपेक्षा या लापरवाही करना (को०)।

पुनःसंगम—संज्ञा पुं० [सं० पुनःसङ्गम] फिर से मिलना। पुनः मिलना। पुनर्मिलन।

पुनःसंधान—संज्ञा पुं० [सं० पुनःसन्धान] अग्निहोत्र को फिर से जलाना [को०]।

पुनःसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] फिर से किया जानेवाला संस्कार। उपनयन आदि संस्कार जो फिर से किए जायँ।

विशेष—जैसे, अनजाने अभक्ष्य, मलमूत्र, मद्य लगा हुआ अन्न आदि मुँह में पड़ जाने से ब्राह्मण का फिर से उपनयन होना चाहिए। इस पुनःसंस्कार में शिरोमुंडन, मेखला, दंड, भैक्ष्य और ब्रह्मचर्य की आवश्यकता नहीं होती।

पुनःसंस्कृत—वि० [सं०] पुनःसंस्कारयुक्त। फिर से सुधारा या ठीक किया हुआ।

पुनःस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] फिर से स्थापित करना। पुनः प्रतिष्ठा करना।

पुना[1]—अव्य० [सं० पुनः] दे० 'पुनः'। उ०—पुन भविष्य प्रादुर्भाव में पुष्कर क्षेत्र की उत्पति को बर्नन है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८४।

पुन[2]—संज्ञा पुं० [सं० पुण्य] पुण्य। धर्म। सबाब।

पुनना—क्रि० स० [हिं० पूरना] बुरा भला कहना। उघटना। बखानना। बुराई खोल खोलकर कहना (स्त्रि०)।

पुनपुन†, पुनपुना—संज्ञा स्त्री० [सं० पुनःपुना] बिहार या मगध की एक छोटी नदी जो गया से बहती है और पवित्र मानी जाती है। इसके किनारे लोग पिंडदान करते हैं। वर्षा को छोड़ और ऋतुओं में इसमें जल नहीं रहता।

पुनरपागम—संज्ञा पुं० [सं० पुनर् + अपागम] फिर से चले जाना [को०]।

पुनरपि—क्रि० वि० [सं०] फिर भी। बार बार।

पुनरबस(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पुनर्वसु] दे० 'पुनर्वसु'।

पुनरबसु(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पुनर्वसु] दे० 'पुनर्वसु'।

पुनरागत—वि० [सं०] वापिस आया हुआ। लौटा हुआ [को०]।

पुनरागम, पुनरागमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. फिर से या पुनः आना। आना। दोबारा आना। २. संसार में फिर आना। पुनः फिर जन्म लेना।

पुनरागामी—वि० [सं० पुनरागामिन्] [वि० पुनरागामिनी] फिर से आ जानेवाला। लौटनेवाला।

पुनराजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] फिर से जन्म लेना [को०]।

पुनरादि—वि० [सं०] पुनः प्रारंभ करनेवाला [को०]।

पुनराधान—संज्ञा पुं० [सं०] श्रौत या स्मार्त अग्नि का फिर से ग्रहण। फिर से अग्निस्थापन।

विशेष—पत्नी की मृत्यु हो जाने पर उसके दाहकर्म में अग्नि अर्पित करके गृहस्थ फिर से विवाह और अग्नि ग्रहण कर सकता है।

पुनराधेय—संज्ञा पुं० [सं०] फिर से अग्निस्थापन [को०]।

पुनरानयन—संज्ञा पुं० [सं०] फिर से ले आना। वापिस लौटा लाना [को०]।

पुनरारंभ—संज्ञा पुं० [सं० पुनरारम्भ] पुनः ग्रहण करना। पुनः स्वीकरण।

पुनरावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. लौटना। २. पुनर्जन्म [को०]।

पुनरावर्तक—वि० [सं०] बार बार आनेवाला (ज्वर आदि)।

पुनरावर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] पुनः होना। फिर पूर्वस्थिति का आना। उ०—कभी कभी हम वही देखते पुनरावर्तन। उसे मानते नियम चल रहा जिसमें जीवन।—कामायनी, पृ० १९१।

पुनरावर्ती—वि० [सं० पुनरावर्तिन] १. पुनः जन्म लेनेवाला। २. फिर से होनेवाला। फिर पूर्व की स्थिति में आनेवाला। उ०—गत यदि पुनरावर्ती होता तो हो जाता जीवन नित नव।—अपलक, पृ० ८।

पुनरावृत्त—वि० [सं०] १. फिर से घूमा हुआ। फिर से घूमकर आया हुआ। २. दोहराया हुआ। फिर से किया या कहा हुआ।

पुनरावृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. फिर से घूमना। फिर से घूमकर आना। २ किए हुए काम को फिर करना। दोहराना। ३ पुनः पाठ। एक बार पढ़कर फिर पढ़ना। दोहराना।

पुनरुक्त[1]—वि० [सं०] १ फिर से कहा हुआ। २. एक बार का कहा हुआ। जो फिर कहा गया हो।

पुनरुक्त[2]—संज्ञा पुं० दुबारा कहना [को०]।

पुनरुक्तवदाभास—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्दालंकार जिसमें शब्द सुनने से पुनरुक्ति सी जान पड़े परंतु यथार्थ में न हो। जैसे,—बदनीय केहि के नहीं वे कविंद मति मान। स्वर्ग गए हू काव्यरस जिनको जगत जहान। इसमें 'जगत' और 'जहान' इन दोनों शब्दों के प्रयोग में पुनरुक्ति जान पड़ती है, पर है नही, क्योंकि 'जगत' का अर्थ है —जगता है।

पुनरुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बार कही हुई बात को फिर कहना। कहे हुए वचन को फिर लाना।

विशेष—साहित्य की दृष्टि से रचना का यह एक दोष माना जाता है।

पुनरुज्जीवित—वि० [सं० पुनर् + उज्जीवित] जिसे फिर से जीवन प्राप्त हुआ हो। जो फिर जी उठा हो।

पुनरुत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] पुनः उठना। फिर से उन्नति करना [को०]।

पुनरुत्थित—वि० [सं० पुनर् + उत्थित] फिर से उठा हुआ [को०]।

पुनरुद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] मरम्मत कराना। सुधार कराना। जीर्ण शीर्ण (भवनादि) को ठीक कराना।

पुनरुपागमन—संज्ञा पुं० [सं०] लौटना। फिर से जाना [को०]।

पुनरूढ़ा—वि० स्त्री० [सं०] (स्त्री) जिसका फिर से विवाह हुआ हो [को०]।

पुनरोपी(पु)—क्रि० वि० [सं० पुनरपि] दे० 'पुनरपि'। उ०—मित्तं पुनरोपि चित्तयं बसयं।—पृ० रा०, २५।३७७।

पुनर्गेय—वि० [सं०] १. जो फिर से गाया गया हो। २. जो फिर से गाया जाय। पुनः गान योग्य [को०]।

पुनर्ग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुनरुक्ति। २. बार बार ग्रहण या लेना।

पुनर्जन्म—संज्ञा पुं० [सं०] मरने के बाद फिर दूसरे शरीर में उत्पत्ति। एक शरीर छूटने पर दूसरा शरीर धारण।

पुनर्जन्मा—संज्ञा पुं० [सं० पुनर्जन्मन्] ब्राह्मण [को०]।

पुनर्जागरण—संज्ञा पुं० [सं० पुनर्+जागरण] १. पुनः जगना। पुनरुत्थान। २. युरोपीय इतिहास का एक युगविशेष। प्राचीन का गौरवगान और उसकी पुनःस्थापना इस प्रवृत्ति की प्रमुख विशेषता है।

पुनर्जात—वि० [सं०] फिर से जन्म लेनेवाला [को०]।

पुनर्डीन—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों के उड़ने का एक प्रकार [को०]।

पुनर्णव—संज्ञा पुं० [सं०] नख। नाखून।

पुनर्दाय—संज्ञा पुं० [सं०] फिर से दे देना। लौटा देना [को०]।

पुनर्नव[1]—वि० [सं०] जो फिर से नया हो गया हो।

पुनर्नव[2]—संज्ञा पुं० दे० 'पुनर्णव'।

पुनर्नवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ चौलाई की पत्तियों की सी गोल गोल होती हैं।

विशेष—फूलों के रंग के भेद से यह पौधा तीन प्रकार का होता है—श्वेत, रक्त और नील। श्वेत पुनर्नवा को विषखपरा और रक्त पुनर्नवा को सांठ या गदहपूरना कहते हैं। श्वेत पुनर्नवा या विषखपरे का पौधा जमीन पर फैला होता है, ऊपर की ओर बहुत कम जाता है। फूल सफेद होते हैं। सांठ या गदहपूरना ऊसर और कँकरीली जमीन पर अधिक होती है। फूल लाल होते हैं, डंठल लाल होते हैं और पत्तियाँ भी किनारे पर कुछ ललाई लिए होती हैं। पुनर्नवा की जड़ मूसला होती है और नीचे दूर तक गई होती है। औषध में इसी जड़ का व्यवहार अधिकतर होता है पुनर्नवा कड़वी, गरम, चरपरी, कसैली, रुचिकारक, अग्निदीपक, रूखी, खारी, दस्तावर, हृदय और नेत्र को हितकारी, तथा सूजन, कफ, वात, खाँसी, बवासीर, सूल, पाडु रोग इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है। नेत्ररोगों में तो यह बहुत उपकारी मानी जाती है। इसकी जड़ को पीते भी हैं और घिसकर घी आदि के साथ अंजन की तरह लगाते भी हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि इसके सेवन से आँखें नई हो जाती हैं।

पर्या०—(क) श्वेत पुनर्नवा। श्वेतमूला। कठिल्ल। चिराटिका। दूरवारा। सितवर्षाभू। वर्षांगी। वर्षाही। विसाख। शशिवाटिका। पृथ्वी। घनपत्र। शोथघ्नी। दीर्घपत्रिका।

(ख) रक्त पुनर्नवा। रक्तपत्रिका। रक्तकांड। वर्षकेतु। वर्षाभू। रक्तपुष्पा। लोहिता। क्रूरा। मंडलपत्रिका। विकस्वरा। विषघ्नी। सारिणी। शोथघ्न। नीला। पुनर्भव। नव। नव्य।

(ग) नीलपुनर्नवा। नीला। श्यामा। नीलवर्षाभू। नीलिनी।

पुनर्पिपु†—अव्य [सं० पुनरपि] फिर। दुबारा। उ०—मनु निर्मलु सुधा सनु होई, नानक इतरसि पुनर्पि जन्म न होई। —प्राण०, पु० २३५।

पुनर्भव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. फिर होना। पुनर्जन्म। २. नख। नाखून। ३. रक्तपुनर्नवा।

पुनर्भव[2]—वि० जो फिर हुआ हो। फिर उत्पन्न।

पुनर्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] नया जन्म। पुनर्जन्म [को०]।

पुनर्भू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विधवा स्त्री जिसका विवाह पहले पति के मरने पर दूसरे पुरुष से हो।

विशेष—मिताक्षरा के अनुसार पुनर्भू तीन प्रकार की होती है। जिसका पहले पति से केवल विवाह भर हुआ हो, समागम न हुआ हो, दूसरा विवाह होने पर वह अक्षतयोनि स्त्री प्रथमा पुनर्भू होगी। विधवा हो जाने पर जिसके चरित्र के बिगड़ने का डर गुरुजनों को हो उसका यदि वे पुनर्विवाह कर दें तो वह द्वितीया पुनर्भू होगी। विधवा होकर व्यभिचार करनेवाली स्त्री का यदि फिर विवाह कर दिया जाय तो वह तृतीया पुनर्भू होगी।

पुनर्भोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्व कर्म के फलों (सुख दुःख आदि) का भोग। २. किसी वस्तु का पुनः प्राप्त होना [को०]।

पुनर्वसु—संज्ञा पुं० [सं०] सत्ताईस नक्षत्रों में से सातवाँ नक्षत्र। दे० 'नक्षत्र'। २. विष्णु। ३. शिव। ४. कात्यायन मुनि। ५. एक लोक।

पुनर्विभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] विभाजित वस्तु को फिर विभाजित करना।

पुनर्वार—क्रि० वि० [सं० पुनर्+वार] दुबारा। फिर से। उ०—पुनर्वार गाएँ नूतन स्वर, नव कर से दे ताल, चतुर्दिक् छा जाए विश्वास।—अनामिका, पु० ६७।

पुनर्विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] फिर से विवाह या परिणयन करना [को०]।

पुनवतीपु—वि० [सं० पुण्यवती] पुण्यवाली। भाग्यवाली। पुण्यात्मा। उ०—किहि पुनवंती सामुहउ, म्हु ऊपराठउ आज।—ढोला०, दू० ३१०।

पुनवाँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णमासी] पूर्णिमा। पूनो। पूर्णमासी। उ०—खासी परकासी पुनवाँसी चंद्रिका सी जाके, वासी अविनासी अघनासी ऐसी कासी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२।

पुनश्च—क्रि० वि० [सं०] पुनः। फिर [को०]।

पुनश्चर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] पागुर। पगुरी। जुगाली [को०]।

पुनाग—संज्ञा पुं० [सं० पुन्नाग] दे० 'पुन्नाग' (वृक्ष)। उ०—साल ताल हिंताल तमालन बंजुल बना पुनागा। —श्याम०, पु० ११८।

पुनाराज—संज्ञा पुं० [सं० पुनर्राज] नया नरेश। नया राजा [को०]।

पुनिपु†—क्रि० वि० [सं० पुनः] १. फिर। तदनंतर। उसके बाद। उ०—(क) पुनि रघुपति बहुविधि समझाए। —मानस, ७।६५। पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन समेता।—मानस, ७।८। २. फिर से। दोबारा।

मुहा०—पुनि पुनि = बार बार। उ०—पुनि पुनि मोहिं देखाव कुठारा।—तुलसी (शब्द०)।

पुनिम(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णिमा] दे० 'पूर्णिमा'। उ०—उठ उठ माधव कि सुतसि मंद, गहन लाग देख पुनिम क चंद।—विद्यापति, पृ० ६५।

पुनिमासी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णिमासी] दे० 'पूर्णमासी'। उ०—बहुभाँत राह गगन फिरघो, पूरन पुनमासी ससुर।—पृ० रा०, ११। १७८।

पुनी(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० पुण्य, हिं० + पुन + ई (प्रत्य०)] पुण्य करनेवाला। पुण्यात्मा। उ०—सब निर्दंभ, धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।—तुलसी (शब्द०)।

पुनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्ण, या पूर्णिमा] पूर्णिमा। पूनो। उ०—चित्र में बिलोकत ही लाल को बदन बाल, जीते जेहि कोटि चंद शरद पुनीन को।—मतिराम (शब्द०)।

पुनी(पु)[3]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'पुनि'। उ०—मानस बचन काय किए पाप सति भाय राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो।—तुलसी (शब्द०)।

पुनीत—वि० [सं०] पवित्र किया हुआ। पवित्र। पाक।

पुनीतव(पु)—वि० [सं० पुण्यतम या हिं०] दे० 'पुनीत'। उ०—अरतकार आजुल्लि परासुर परम पुनीतव।—हु० रासो, पृ० १०।

पुनु(पु)†—अव्य० [सं० पुनः] दे० 'पुनः'। उ०—जओ विधि का ओल एहि मति तोर, पुनु हेरसि किए परि गोरि।—विद्यापति, पृ० २११।

पुन्न†—संज्ञा पुं० [सं० पुण्य, प्रा० पुण्ण, पुन्न] दे० 'पुण्य'। उ०—तिरथ ब्रत तप दान पुन्न, होम जग्य सोइ।—जग० श०, भा० २, पृ० ८१।

पुन्नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुम् + नक्षत्र] नर नक्षत्र। वह नक्षत्र जिसमें नर संतान की उत्पत्ति हो (को०)।

पुन्नाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुलताना चंपा।

विशेष—इसका पेड़ बड़ा और सदाबहार होता है। पत्तियाँ इसकी गोल अंडाकार, दोनों सिरों पर प्रायः बराबर चौड़ी और चंपा की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। टहनियों के सिरे पर लाल रंग के फूल गुच्छों में लगते हैं। फूलों में केसर होता है जो पुन्नागकेसर कहलाता है और दवा के काम में आता है। फल भी गुच्छों में ही लगते हैं। इस पेड़ की लकड़ी बहुत मजबूत ललाई लिए बादामी रंग की होती है। यह इमारतों में लगती है, जहाज के मस्तूल बनाने, रेल की पटरी के नीचे देने तथा और बहुत से कामों में आती है। छाल को छीलने से एक प्रकार का रस या गोंद निकलता है जिसमें सुगंध होती है। फलों के बीज से तेल निकलता है। पुन्नाग के पेड़ दक्षिण मद्रास प्रांत में समुद्रतट पर बहुत अधिक होते हैं। उड़ीसा, सिंहल और बरमा में भी यह पेड़ आपसे आप होता है। समुद्रतट की रेतीली भूमि में जहाँ और कोई पेड़ नहीं होता वहाँ यह अपने फल फूल की बहार दिखाता है। वैद्यक में पुन्नाग मधुर, शीतल, सुगंध और पित्तनाशक माना जाता है।

पर्या०—पुरुषाख्य। रक्तपुष्प। देववल्लभ। पुरुष। तुंग। केसर। केसरी।

२. श्वेत कमल। ३. जायफल। ४. पुरुषश्रेष्ठ। मनुष्यों में बड़ा।

पुन्नाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रमर्द। चकवँड़ का पौधा। २. कर्नाटक के पास एक देश। ३. दिगंबर जैन संप्रदाय का एक संघ। जैन हरिवंश के कर्ता जिनसेनाचार्य इसी संघ के थे।

पुन्नाड—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुन्नाट'।

पुन्नामा—संज्ञा पुं० [सं० पुन्नामन्] पुत् नाम का एक नरक। २. पुन्नाग वृक्ष [को०]।

पुन्नि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुण्य प्रा० पुण्ण] दे० पुण्य। उ०—दस असुमेध जगि जेईं कीन्हा। दान पुन्नि सरि सेउ न दीन्हा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३१।

पुन्निम(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णिमा, प्रा० पुण्णिमा] दे० 'पूर्णिमा'। उ०—उद्दित प्रबान सुभ गतनह। जेम जलधि पुन्निम बढहिं।—पृ० रा०, १।६८४।

पुन्य—संज्ञा पुं० [सं० पुण्य] दे० 'पुण्य'।

पुन्यजन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुण्यजन] असुर। राक्षस। उ०—कौनप असप पुन्यजन निकषासुत दुर्नाद।—अनेकार्थ०, पृ० ८४।

पुन्यताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुण्यता] पुण्यता। पुण्य।

पुन्यथली(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुण्य + स्थल] पुण्यस्थली। पवित्र स्थान। उ०—पुन्यथली तिहिं जानि बिराजे, बात नहीं कछु और।—सूर०, १०।१७८६।

पुपली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोपला] बाँस की पतली पोली नली।

पुपूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुद्ध, स्वच्छ करने की इच्छा [को०]।

पुप्प, पुप्फ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पुष्प, प्रा० पुप्फ] पुष्प। फूल। उ०—(क) अनेक पुप्प बीच ग्रंथ भासित त्रिषाडयं।—पृ० रा०, २५।३१०। (ख) पुप्फ पानि धरि धूप दिव्व पाइन दा अंवह।—पृ० रा०, १।६८९।

पुप्फुट—संज्ञा पुं० [सं०] तालु और मसूढ़ों का एक रोग [को०]।

पुप्फुस—संज्ञा पुं० [सं०] उदरस्थ वायु। जठरवात।

पुप्फुस—संज्ञा पुं० [सं०] १. पद्मबीज कोश। कँवलगट्टे का छत्ता। २. फुफ्फुस।

पुब्ब(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पूर्व, प्रा० पुब्व] पूर्व। पूर्व दिशा।

पुब्बता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्व] अपूर्वता। अतुलता

पुमान्—संज्ञा पुं० [सं०] मर्द। नर। पुरुष।

पुरंगपु—वि० [सं० पुर] आगे।

पुरंजन—संज्ञा पुं० [सं० पुरञ्जन] १. जीवात्मा।

विशेष—भागवत में विस्तृत रूपकाख्यान के रूप में शरीरको पुर, उसके नवद्वार, त्वक्‌की प्राचीर और उसमें 'पुरंजन' नाम से जीवात्मा के निवास आदि का वर्णन किया गया है।

२. हरि। विष्णु (को०)।

पुरंजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरञ्जनी] बुद्धि । मनीषा (को०) ।

पुरंजय[1]—वि० [सं० पुरञ्जय] पुर को जीतनेवाला ।

पुरंजय[2]—संज्ञा पुं० एक सूर्यवंशी राजा । काकुत्स्थ ।

विशेष—विष्णु पुराण में लिखा है कि एक बार दैत्यों से हारकर जब देवता विष्णु भगवान् के पास गए तब उन्होंने उनसे राजा पुरंजय के पास जाने के लिये कहा । भगवान् ने अपना कुछ अंश पुरंजय में डाल दिया । पुरंजय ने इंद्र से बैल बनने के लिये कहा । बैल के ककुद (डीले) पर बैठकर पुरंजय ने युद्ध किया और दैत्यों को परास्त कर दिया । इसी से उनका नाम काकुत्स्थ पड़ा ।

पुरंजर—संज्ञा पुं० [सं० पुरञ्जर] काँख । कुक्षि । बगल (को०) ।

पुरंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुरन्दर] इंद्र । पुरंदर । उ०—घनघन प्रवाह बहु पुहवि परि बरष्यो जेम पुरंद गति । —पृ० रा०, ११४७२ ।

पुरंदर—संज्ञा पुं० [सं० पुरन्दर] १. पुर, नगर या घर को तोड़नेवाला । २. इंद्र (जिन्होंने शत्रु का नगर तोड़ा था) । ३. (घर को फोड़नेवाला) चोर । ४. चविका । चव्य । चई । ५. मिर्च । ६. ज्येष्ठा नक्षत्र । ७. शिव का एक नाम (को०) । ८. अग्नि (को०) । ९. विष्णु ।

यौ०—पुरंदरक्ष्माधर=महेंद्र पर्वत का नाम ।

पुरंदरा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरन्दरा] गंगा ।

पुरंद्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुरन्दर] पुरंदर । इंद्र । उ०—इहिं काम पुरंद्र निपाता । भग सहस किए जिहिं गाता ।—सुंदर० ग्रं० भा० १, पृ० १२४ ।

पुरंध्रि, पुरध्री—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरन्ध्रि] १. पति, पुत्र, कन्या आदि से भरी पूरी स्त्री । २. स्त्री । औरत ।

पुरः—अव्य० [सं० पुरस्] १. आगे । २. पहले ।

यौ०—पुरःपाक=जिसकी सिद्धि या पाक सन्निकट हो । पुरःप्रहर्ता=(१) वह जो अग्रिम पंक्ति में लड़े । (२) पहले प्रहार करनेवाला । पुरःफल=जिसका फल या सिद्धि समक्ष हो । पुरःसर । पुरःस्थ=सामने । समक्ष । पुरःस्थायी=सामने रहनेवाला । आगे रहनेवाला ।

पुरःसर[1]—वि० [सं०] १. अग्रगंता । अगुआ । २. संगी । साथी । ३. समन्वित । सहित । युक्त ।

पुरःसर[2]—संज्ञा पुं० १. अग्रगमन । २. साथ ।

पुर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पुरी] १. वह बड़ी बस्ती जहाँ कई ग्रामों या बस्तियों के लोगों को व्यवहार आदि के लिये आना पड़ता हो । नगर । शहर । कसबा । २. आगार । घर ।

यौ०—अंतःपुर । नारीपुर ।

३. गृहोपरि गृह । घर के ऊपर का घर । कोठा । अटारी । ४. लोक । भुवन । ५ नक्षत्र । पुंज । राशि । ६. देह । शरीर । ७. भोथा । ८. चर्म । चमड़ा । ९. पीली कटसरैया । १०. गुग्गुल नामक गंधद्रव्य । ११. दुर्ग । किला । गढ़ । १२. चोंगा । १३. पाटलिपुत्र का एक नाम (को०) । १४. स्त्रियों का निवास । अंतःपुर । जनानखाना (को०) । १५. कोषागार । भंडारघर (को०) । १६. मणिकागृह । वेश्यालय (को०) । १७. पुष्पगर्भ । पुष्प कोश (को०) ।

पुर[2]—वि० [सं०, तुल० फा० पुर] पूर्ण । भरा हुआ ।

पुर[3]—संज्ञा पुं० [सं० पुर (=चमड़ा), या देश०] कुएँ से पानी निकालने का चमड़े का डोल । चरसा ।

पुर(पु)[4]—अव्य० [सं० पुरस्] आगे । समक्ष । सामने । उ०—राम कह्यो जो कछु दुख तेरे । श्वान निशंक कह्यो पुर मेरे ।—राम च०, पृ० १६६ ।

पुरअमन—वि० [फ़ा० पुर+अ० अम्न] शांतिपूर्ण । शांतिमय (को०) ।

पुरअसर—वि० [फा० पुर+अ० असर] असरदार । प्रभावशील । उ०—कोई पंद्रह कहानियाँ उन्होंने लिखीं, किंतु जो लिखा पुरअसर ।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ९३ ।

पुरइन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० पुटकिनी, प्रा० पुड़इनी (=कमलिनी), पुं०हिं० पुरइनि] १. कमल का पत्ता । उ०—(क) पुरइन सघन ओट जल बेगि न पाइय मर्म । मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुण ब्रह्म । —तुलसी (शब्द०) । (ख) देखो माई रूप सरोवर साज्यो । ब्रज बनिता वर वारि बृंद में श्री ब्रजराज बिराज्यो । पुरइन कपिश निचोल विविध रँग विहसत सचु उपजावै । सूर श्याम आनंदकंद की सोभा कहत न आवै । —सूर (शब्द०) । २. कमल । उ०—(क) सरवर चहुँ दिसि पुरइनि फूली । देखा वारि रहा मन भूली । —जायसी (शब्द०) । (ख) ऊधो तुम हो अति बड़भागी । अपरस रहत सनेह तगा तें नाहिन मन अनुरागी । पुरइन पात रहत जल भीतर ता रस देह न दागी । ज्यों जल माँह तेल की गागरि बूँद न ताको लागी ।—सूर (शब्द०) ।

पुरइया—संज्ञा स्त्री० [देश०] तकुआ । उ०—मन मेरो रहटा रसना पुरइया । हरि को नाउ लै लै काति बहुरिया ।—कबीर ग्रं०, पृ० १६५ ।

पुरकोट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] नगर की रक्षा के लिये बना दुर्ग (को०) ।

पुरख†—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] । व्यक्ति । पुरुष ।

पुरखत्व(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] पौरुष । पुरुषार्थ । उ०—इक्क कहै सोवन्न इंद्र को पुरखत नंखिय ।—पृ० रा०, ४।३ ।

पुरखा—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] [स्त्री० पुरखिन] १. पूर्वज । पूर्वपुरुष । उत्पत्ति परंपरा में पहले पड़नेवाले पुरुष । जैसे, बाप, दादा, परदादा इत्यादि । जैसे,—ऐसी चीज उसके पुरखों ने भी न देखी होगी । उ०—चलत लीक पुरखान की करत तिनहिं के काज ।—लक्ष्मण (शब्द०) ।

मुहा०—पुरखे तर जाना=पूर्वपुरुषों को (पुत्र आदि के कृत्य से) परलोक में उत्तम गति प्राप्त होना । बड़ा भारी पुण्य या फल होना । कृतकृत्य होना । जैसे,—एक दिन वे तुम्हारे घर आ गए, बस पुरखे तर गए ।

२. घर का बड़ा बूढ़ा ।

पुरखार—वि० [फ़ा० पुरखार] काँटों से परिपूर्ण। काँटों से भरा हुआ। कंटकमय। जहाँ काँटे अधिक हों। उ०—पुरखार खार सूँ है गुलजार कहाँ है।—कबीर मं०, पृ० ३२३।

पुरखून—वि० [फ़ा० पुरखूँ] खून से तरबतर। रक्ताक्त। उ०—लगे गुलशन पे अजबस गम के होल्याँ, हुए पुरखून फुल मेंहदी के फूलाँ।—दक्खिनी०, पृ० १६१।

पुरग—वि० [सं०] १. शहर को जानेवाला। २. जिसकी मनोवृत्ति अनुकूल हो [को०]।

पुरगुर—संज्ञा पुं० [देश०] बंगाल के उत्तरपूर्व होनेवाला एक पेड़ जो धोली से मिलता जुलता होता है। इसकी लकड़ी खेती के सामान और खिलौने आदि बनाने के काम आती है।

पुरचक—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुचकार] १. चुमकार। पुचकार। २. बढ़ावा। उत्साहदान। जैसे,—तुम्ही ने तो पुरचक दे देकर लड़के को गाली बकना सिखाया है।

क्रि० प्र०—देना।

३. प्रेरणा। उसकावा। उभारने का काम। जैसे,—उसने पुरचक देकर उसे लड़ा दिया। ४. पृष्ठपोषण। वाहवाही। समर्थन। पक्षमंडन। हिमायत। तरफदारी। जैसे,—पुरचक पाकर ही पुलिसवालों ने यह सब उपद्रव किया।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—लेना।

पुरगो—वि० [फ़ा०] बहुत अधिक कविता करनेवाला। २. अधिक बोलनेवाला। बातूनी [को०]।

पुरगोई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. अत्यधिक कविता करना। २. बकवादपन। वाचालता [को०]।

पुरजन—संज्ञा पुं० [सं०] नगरवासी लोग। उ०—बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्हके भाग सराहन लागे।—मानस, २।२५०।

पुरजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पुर्जह्] १ टुकड़ा। खंड। उ०—सूरा सोइ सराहिए लड़े धनी के खेत। पुरजा पुरजा ह्वै परे तऊ न छाँड़े खेत।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—पुरजे पुरजे उड़ना = टुकड़े टुकड़े हो जाना। पूरी तरह नष्ट हो जाना। उ०—पुरजे पुरजे उड़ै अन्न बिनु बस्तर पानी। ऐसे पर ठहराय सोई महबूब बखानी।—पलटू०, भा० १, पृ० ३३। पुरजे पुरजे करना या उड़ाना = खंड खंड करना। टूक टूक करना। धज्जियाँ उड़ाना। पुरजा पुरजा हो पड़ना = दे० 'पुरजे पुरजे होना'। उ०—सूर न जानै कायरी सुरा तन से हेत। पुरजा पुरजा हो पड़ै, तहूँ न छाड़ै खेत।—दरिया बा०, पृ० १२। पुरजा पुरजा हो रहना = दे० 'पुरजे पुरजे होना'। उ०—सूरा सोई सराहिये, लड़ै धनी के हेत। पुरजा पुरजा होई रहै, तऊ न छाँड़ै खेत।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २१। पुरजे पुरजे होना = खंड खंड होना। टूट फूटकर टुकड़े टुकड़े होना।

२. कतरन। धज्जी। कटा टुकड़ा। कत्तल। ३. अवयव। अंग। अंश। भाग। जैसे, कल के पुरजे, घड़ी के पुरजे।

मुहा०—चलता पुरजा = चालाक आदमी। तेज आदमी। उद्योगी पुरुष।

४. चिड़ियों के महीन पर। रोईं।

पुरजित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. एक राजा। ३. कृष्ण का एक पुत्र जो जांबवती से उत्पन्न हुआ था।

पुरजोर—वि० [फ़ा० पुरजोर] पुरअसर। ओजपूर्ण।

पुरजोश—वि० [फ़ा० पुरजोश] जोश से भरा हुआ। जोशीला।

पुरट—संज्ञा पुं० [सं०] सुवर्ण। सोना। उ०—(क) छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन जनु नीड़ बनाए।—मानस, १।३४६। (ख) पुरट मनि मरकतनि की तनि तहाँ मंजन ठाट।—घनानंद, पृ० ३००।

पुरण—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

पुरतः—अव्य० [सं० पुरतस्] आगे।

पुरतटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा कसबा या गाँव जिसमें बाजार लगता हो।

पुरतोरण—संज्ञा पुं० [सं०] शहर का बाहरी दरवाजा। पुरद्वार [को०]।

पुरत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] शहरपनाह। प्राकार। कोट। परकोटा। उ०—कनक रचित मणि खचित दिवाला। अष्ट द्वार पुरत्राण विशाला।

पुरदर्द—वि० [फ़ा०] दर्द से भरा हुआ। दुःखपूर्ण। पीड़ायुक्त। उ०—इसका अर्थ बड़ा विकट है, बड़ा पुरदर्द है।—कुकुम (भू०), पृ० १३।

पुरद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] नगरद्वार। शहर पनाह का फाटक।

पुरनⓅ—वि० [सं० पूर्ण, हिं० पूरन] दे० 'पूरन'। उ०—सुतन दुक्ख प्रति बाल ससि भयो पुरन बिन मंत।—पृ० रा०, २।३४०।

पुरनवासी—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णमासी] दे० 'पूर्णमासी'। उ०—अगहन पुनवासी बार सुक दसखत दलदास कानगोऐ।—सं० दरिया, पृ० ३।

पुरनाⓅ[1]—क्रि० अ०, क्रि० स० [हिं०] दे० 'पूरना'

पुरना†[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] गदहपूर्ना। पुनर्नवा।

पुरनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वारांगना। वेश्या [को०]।

पुरनियाँ†—वि० [हिं० पुराना + इयाँ (प्रत्य०)] वृद्ध। वयोवृद्ध। बुड्ढा।

पुरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूरना (= भरना)] १. छल्ला। अँगूठे में पहनने का गहना। २. तुरही। सिंहा। ३. बंदूक का गज।

पुरनूर—वि० [फा] ज्योतिर्मय। सौंदर्ययुक्त। प्रकाशमान। सुंदरता से परिपूर्ण। उ०—जाहिरा जहान जाका जहूर पुरनूर।—मलूक०, पृ० २०।

पुरनोट†—संज्ञा पुं० [अं० प्रोनोट] ऋणपत्र। रुक्का। सरखत। उ०—मुझसे अपने रुपयों के लिये पुरनोट लिखा लो, स्टांप लिखा लो, और क्या करोगे?—गबन, पृ० ११७।

पुरपाटण—संज्ञा पुं० [सं० पुर + हिं० पाटन < सं० पत्तन] नगर। उ०—पुर पाटण सुबस बसै।—कबीर ग्रं०, पृ० ५२।

पुरपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नगर का रक्षक। कोतवाल। २. जीव।

पुरपेंच—वि० [फ़ा०] चक्करदार। घुमावदार। घुँघराला। उ०—इसकी पुरपेंच जुल्फें दिल को बेताब किए डालती हैं। —श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ४५

पुरफन—वि० [फ़ा० पुर + अ० फ़न] मक्कार। धूर्त। प्रवंचक। उ०—ऐ इस्कबाज पुरफन बलिहार तुज मकर पर।—दक्खिनी०, पृ० ३२०।

पुरबला—वि० [सं० पूर्व + हिं० ला प्रत्य० [वि० स्त्री० पुरबली] १. पूर्व का। पहले का। २. पूर्व जन्म का। पूर्वजन्म संबंधी। जैसे, पुरबले पाप।

पुरबा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्व] दे० 'पुरवा'।

पुरबा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० पूर्वा] दे० 'पूर्वा (नक्षत्र)। उ०—पुरबा लाग भूमि जलपूरी।—जायसी ग्रं०, पृ० १५३।

पुरबिया—वि० [हिं० पूरब+इया (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० पुरबिनी] पूर्व देश में उत्पन्न या रहनेवाला। पूरब का। जैसे, पुरबिये लोग।

पुरबिया[2]—संज्ञा पुं० पूरब का रहनेवाला व्यक्ति। पूरब के निवासी जन। जैसे, पुरबियों की फौज।

पुरबिला—वि० [हिं० पूरब] दे० 'पुरबला'।

पुरबिहा†—संज्ञा पुं० [हिं० पूरब + इहा (प्रत्य०)] दे० 'पुरबिया'।

पुरबी†—वि० [हिं० पूरब + ई] दे० 'पूरबी'।

पुरबुज(५)†—वि० [सं० पूर्वज] पूर्व का। पहिले का। उ०—जो पुरबुज अपने करमन तें, डारयो सबै मिटा री।—जग० बानी, पृ० २८।

पुरबुला†—वि० [सं० पूर्व+हिं० ला (प्रत्य०)] दे० 'पुरबुला'। उ०—रही न रानी कैकेई अमर भई यह बात। बचन पुरबुले पाप ते बन पठयो जगतात।—(शब्द०)।

पुरभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] (असुरों के त्रिपुर का नाश करनेवाले) शिव। पुरमथन।

पुरमजाक—वि० [फ़ा० पुर+अ० = मजाक़] दिल्लगी से भरा हुआ। व्यंग्यपूर्ण। उ०—वे जहाँ एक ओर करुण चित्रों के आकलन में सिद्धहस्त हैं वहाँ पुरमजाक, फबती भरे, गुदगुदा देनेवाले फिसाने लिखने में भी।—शुक्ल० अभि० ग्रं० (सा०) पृ० ६२।

पुरमथन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

पुरमान(५)—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़र्मान] दे० 'फरमान'। उ०—आबेटक बन तकिक इतै गज्जने सपत्ते। साह गोर साहाब दिए पुरमान निरत्ते।—पृ० रा, १०।६।

पुररोध—संज्ञा पुं० [सं०] नगर को चारों ओर से घेरना [को०]।

पुररौनक—वि० [फ़ा० पुररौनक़] चहल पहल से भरा हुआ। जहाँ खूब रौनक हो [को०]।

पुरला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

पुरवइया—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्वा] दे० 'पुरवाई'। उ०—झाम्हीं झाम्हीं बूँद पवन पुरवइया बरसत थोरे थोरे।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ७६।

पुरवट†—संज्ञा पुं० [सं० पुर + वर्त ?] चमड़े का बहुत बड़ा डोल जिसे कुएँ में डालकर बैलों की सहायता से खेत की सिंचाई आदि के लिये पानी खींचते हैं। चरसा। मोट। पुर।

क्रि० प्र०—चलना। खींचना।

मुहा०—पुरवट नाधना = पुरवट की रस्सी में बैल जोतना। पुरवट हाँकना = पुरवट के बैलों को चलाना।

पुरवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पुरनारी' [को०]।

पुरवना(५)[1]—क्रि० स० [हिं० पूरना] १. पूरना। भरना। पुजाना। जैसे, घाव पुरवाना। २. पूरा करना। पूर्ण करना। उ०—(क) जौं बिधि पुरब मनोरथ काली। करउँ तोहि चख पूतरि आली। —तुलसी (शब्द०)। (ख) मो सों कहा दुरावति राधा। कहा मिली नँदनंदन को निज पुरयो मन की साधा।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—साथ पुरवना = साथ देना। साथी होना। उ०—पुरवहु साथ तुम्हार बड़ाई।—जायसी (शब्द०)।

पुरवना[2]—क्रि० अ० १. पूरा होना। २. यथेष्ट होना। ३. उपयोग के योग्य होना।

मुहा०—बल पुरवना = पूरी शक्ति या सामर्थ्य होना। बलवीर्य का काम करना।

पुरवय्या—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पुरवइया'। उ०—हिल रही नीम की डाल मंदगति, कहती रे। बह रही सजीली सीरी सीरी पुरवइया।—मिट्टी०, पृ० ९७।

पुरवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पुर + हिं० वा (प्रत्य०)] छोटा गाँव। पुरा। खेड़ा। उ०—नदी नद सागर डगरि मिलि गए देव, डगर न सूझत नगर पुरवान को।—देव (शब्द०)।

पुरवा[2]—संज्ञा पुं० [सं० पूर्व + वात, हिं० पूरब + बाव] पूरब की हवा। पूर्व दिशा से चलनेवाली वायु। २. एक रोग जो वायु चलने से उत्पन्न होता है।

विशेष—यह पशुओं को होता है। इसमें पशु का गला फूल जाता है और उसके पेट में पीड़ा होती है।

पुरवा[3]—संज्ञा पुं० [सं० पुटक] मिट्टी का कुल्हड़। कुल्हिया। उ०—कूट के केवार सम खुदिहैं त्रिलोक काम पुरवा के फूट सम ब्रह्म अंड फूटिहैं।—हनुमान (शब्द०)।

पुरवा(५)[4]—वि० [हिं० पूरना] पूर्ण करनेवाला। पुरानेवाला। उ०—चलि राधे बृंदावन विहरन औसर बन्यौ है मनोरथ पुरवा।—घनानंद, पृ० ४६०।

पुरवाई—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्व + वायु, हिं० पूरब + बाई] पूर्व की वायु। वह वायु जो पूर्व से चलती है। उ०—ग्राम की बयार लाती लपट सिराय गई सीत पुरवाई लागी सीतल सुहाय री।—ठाकुर०, पृ० २०।

पुरवाना—क्रि० स० [हिं० पुरवना का प्रे० रूप] पूरा कराना।

पुरवासी—संज्ञा पुं० [सं० पुरवासिन्] नगर में रहनेवाला। नगर-निवासी।

पुरवास्तु—संज्ञा पुं० [सं०] नगर बसाने योग्य भूमि [को०]।

पुरवैया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पुरवाई'।

पुरशासन—संज्ञा पुं० [सं०] (दैत्यों के त्रिपुर का ध्वंस करनेवाले) शिव।

पुरश्चरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी कार्य की सिद्धि के लिये पहले से ही उपाय सोचना और अनुष्ठान करना। २. हवन आदि के समय किसी विशिष्ट देवता का नाम जप (को०)। ३. किसी मंत्र स्तोत्र आदि को किसी अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिये किसी नियत समय और परिमाण तक नियमपूर्वक जपना या पाठ करना। प्रयोग। उ०—मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूँ, आप विघ्नों का निषेध कर दीजिए।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३०३।

पुरश्चर्या—संज्ञा पुं० [सं०] पुरश्चरण [को०]।

पुरश्छद—संज्ञा पुं० [सं०] कुश या काश की तरह की एक घास।

पुरष—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] दे० 'पुरुष'। उ०—पुरष जनम कद तू पामेला, गुण कद हरिरा गासी।—रघु० रू०, पृ० १६।

पुरषा†—संज्ञा पुं० [हिं० पुरखा] दे० 'पुरखा'।

पुरषातन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषत्व] १. पुरुषत्व। पौरुष। साहस। हिम्मत। उ०—इह नष्ट ज्ञान सुनियै न कान। पुरषातन अज्जै किंचि हान।—पृ० रा०, १।३२१। २. पुरुषत्व। स्त्रीसमागम की शक्ति। उ०—बढ़िय काम कामना भई पुरषातन की सिधि।—पृ० रा०, १।४००।

पुरष्ष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] दे० 'पुरुष'। उ०—किय लोक कोपं कहाँ वस्तु गोपं। हरे ब्रह्म ग्यानं, पुरष्षं पुरानं।—पृ० रा०, २।६३।

पुरस[1]†—संज्ञा पुं० [पुरीष] खाद। पाँस।

पुरस(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] दे० 'पुरुष'। उ०—पूरण पुरस पुराण प्रमेसर। सुकवि सधार बार अग्रेसर।—रा० रू०, पृ० ४।

पुरसाँह(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पौरुष'। उ०—नमस्कार सूरां नरां, पूरा सत पुरसाँह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १।

पुरसाँहाल†—वि० [फ़ा० पुर्सा + हाल] हालचाल पूछनेवाला। खोज खबर लेनेवाला। उ०—चार पहर रात रहे घास छीलने जाते, मेहतर पहर रात से सफाई करने लगते, कहार पहर रात से पानी खींचना शुरू करते, मगर कोई उनका पुरसाँहाल न था।—काया०, पृ० १७२।

पुरसा—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] ऊँचाई या गहराई की एक माप जिसका विस्तार हाथ ऊपर उठाकर खड़े हुए मनुष्य के बराबर होता है। साढ़े चार या पाँच हाथ की एक माप। जैसे, चार चार पुरसा गहरा, दस पुरसा ऊँचा।

पुरसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पूछने या पूछने की क्रिया या भाव। जैसे, मिजाजपुरसी।

पुरस्करण—संज्ञा पुं० [सं०] १. समक्ष उपस्थित करना। आगे रखना। २. पूरा करना। दे० 'पुरस्कार' [को०]।

पुरस्करणीय—वि० [सं०] जिसका पुरस्करण किया जाय। पुरस्करण योग्य। पूरा करने योग्य [को०]।

पुरस्कर्ता—वि० [सं०] १. पुरस्कृत करनेवाले। पुरस्कार देनेवाले। २. समर्थक। हिमायती। ३. समक्ष या आगे करनेवाला। उ०—जाहिर है कि नए रूपविधान के पुरस्कर्ता प्रगतिशील हैं।—इति०, पृ० ५७।

पुरस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० पुरस्कृत] १. आगे करने की क्रिया। २. आदर। पूजा। ३. प्रधानता। ४. स्वीकार। ५. पारितोषिक। उपहार। इनाम।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।

६. आक्रमण। हमला (को०)। ७. अभिषेचन (को०)। ८. अभिशाप (को०)।

पुरस्कृत—वि० [सं०] १. आगे किया हुआ। २. आदृत। पूजित। ३. स्वीकृत। ४. जिसने इनाम पाया हो। जिसे पुरस्कार मिला हो। ५. अभिशप्त (को०)। ६. शत्रु द्वारा आक्रमित। अभिग्रस्त (को०)। ७. सिक्त। सेचित (को०)। ८. तैयार। जो पूरा हो गया हो (को०)।

पुरस्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पुरस्करण', 'पुरस्कार'।

पुरस्तात्—अव्य० [सं० पुरस्तात्] १. आगे। सामने। २. पूर्व दिशा में। ३. पहले। पूर्वकाल में। ४. अतीत में (को०)। ५. अंत में। बाद में (को०)।

पुरस्ताल्लाभ—[सं०] कौटिल्य के अनुसार वह लाभ जो चढ़ाई करने पर प्राप्त हो।

पुरस्सर—वि० [सं०] दे० 'पुरःसर-३'। उ०—समदुःखिनी मिले तो दुःख बँटे, जा, प्रणय पुरस्सर ले आ।—साकेत, पृ० २५६।

पुरहत—संज्ञा पुं० [पुरः + अक्षत] वह अन्न और द्रव्यादि जो विवाह आदि मंगल कार्यों में पुरोहित या प्रजा को किसी कृत्य के करने के प्रारंभ में दिया जाता है। पाकत।

पुरहन्—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव।

पुरहर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पूर्ण ?] उ०—अभिनव पल्लव बइसक देल, धवल कमल फुल पुरहर भेल।—विद्यापति, पृ० १०६।

पुरहा†[1]—संज्ञा पुं० [सं० हिं० पुर] वह पुरुष जो पुर चलते समय कुएँ पर के पानी को गिराने के लिये नियत रहता है।

पुरहा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की लता जिसकी पत्तियाँ गोलाकार और ५-६ इंच चौड़ी होती हैं। यह हिमालय में सब जगह ७००० फुट तक की ऊँचाई पर पाई जाती है। कहीं कहीं इसकी जड़ का व्यवहार ओषधि रूप में भी होता है।

पुरही—संज्ञा स्त्री० [देश०] हुरजेवड़ी नाम की झाड़ी जिसकी पत्तियाँ और जड़ औषध रूप में काम में आती हैं। दाख। निरबिसी।

पुरहूत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुरुहूत] दे० 'पुरुहूत'। उ०—भय नगर देव परहूत सम, कुसुम बरन सागर सुभय।—पृ० रासो, पृ० १६३।

पुरहोल—वि० [फा०] भयंकर । डरावना [को०] ।

पुरांतक—संज्ञा पुं० [सं० पुर + अन्तक] शिव ।

पुरा[1]—अव्य० [सं०] १. पुराने समय में । पहले । पूर्वकाल में । प्राचीन काल में । उ०—रहे चक्रवर्ती नृपति विश्वामित्र महान । कियो राज शासन पुरा जाहिर भयो जहान । —रघुराज (शब्द०) । २. प्राचीन । अतीत । पुराना । जैसे, पुरावृत्त, पुराकल्प, पुराविद्, पुराकथा । ३. वर्तमान काल तक । अब तक (को०) । ४. अल्प काल में । शीघ्र । थोड़े समय में (को०) ।

पुरा[2]—संज्ञा स्त्री० १. पूर्व दिशा । २. एक सुगंध द्रव्य ।

विशेष—वैद्यक में यह कसैली, शीतल तथा कफ, श्वास, मूर्छा और विष को दूर करनेवाली मानी जाती है ।

३. गंगा नदी (को०) ।

पुरा[3]—संज्ञा पुं० [सं० पुर] गाँव । बस्ती । दे० 'पुर' ।

पुराकथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पौराणिक आख्यान । प्राचीन कथा । इतिहास [को०] ।

पुराकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वकल्प । पहले का कल्प । २. प्राचीन काल । ३. प्राचीन इतिहास । ४. एक प्रकार का अर्थवाद जिसमे प्राचीन काल का इतिहास कहकर किसी विधि के करने की ओर प्रवृत्त किया जाय । जैसे, ब्राह्मणों ने इससे हवि.पवमान सामस्तोम की स्तुति की थी ।

पुराकालीन—वि० [सं० पुरा + कालीन] प्राचीन काल का ।

पुराकृत[1]—वि० [सं०] १. पूर्वकाल में किया हुआ । २. पूर्वजन्म में किया हुआ ।

पुराकृत[2]—संज्ञा पुं० पूर्वजन्म में किया हुआ पाप या पुण्यकर्म ।

पुराचीन—वि० [सं० प्राचीन] प्राचीन । पुराना । उ०—छिन्न करो पुराचीन संस्कृतियों के जड़ बंधन । जाति वर्ण श्रेणि वर्ग से विमुक्त जन मूतन । —ग्राम्या, पृ० ६६ ।

पुराट्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुर + अट्ट] नगर की चहारदीवारी पर बने हुए बुर्ज [को०] ।

पुराण[1]—वि० [सं०] १. पुरातन । प्राचीन । जैसे पुराण पुरुष । २. अधिक आयु का । अधिक उम्र का (को०) । ३. जीर्ण (को०) ।

पुराण[2]—संज्ञा पुं० १. प्राचीन आख्यान । पुरानी कथा । सृष्टि, मनुष्य, देवों, दानवों, राजाओं, महात्माओं आदि के ऐसे वृत्तांत जो परंपरा से चले आते हों । २. हिंदुओं के धर्मसंबंधी आख्यानग्रंथ जिनमे सृष्टि, लय, प्राचीन ऋषियों, मुनियो और राजाओं के वृत्तांत आदि रहते हैं । पुरानी कथाओं की पोथी ।

विशेष—पुराण अठारह हैं । विष्णु पुराण के अनुसार उनके नाम ये हैं—विष्णु, पद्म, ब्रह्म, शिव, भागवत, नारद, मार्कंडेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्मांड और भविष्य । पुराणों में एक विचित्रता यह है कि प्रत्येक पुराण में अठारहो पुराणों के नाम और उनकी श्लोकसंख्या है । नाम और श्लोकसंख्या प्रायः सबकी मिलती है, कहीं कहीं भेद है । जैसे कूर्म पुराण में अग्नि के स्थान में वायुपुराण; मार्कंडेय पुराण मे लिंगपुराण के स्थान में नृसिंहपुराण; देवीभागवत में शिव पुराण के स्थान में नारद पुराण और मत्स्य में वायुपुराण है । भागवत के नाम से आजकल दो पुराण मिलते हैं—एक श्रीमद्भागवत, दूसरा देवीभागवत । कौन वास्तव में पुराण है इसपर झगड़ा रहा है । रामाश्रम स्वामी ने 'दुर्जनमुखचपेटिका' में सिद्ध किया है कि श्रीमद्भागवत ही पुराण है । इसपर काशीनाथ भट्ट ने 'दुर्जनमुखमहाचपेटिका' तथा एक और पंडित ने 'दुर्जनमुखपद्मपादुका' देवीभागवत के पक्ष मे लिखी थी । पुराण के पाँच लक्षण कहे गए हैं—सर्ग, प्रतिसर्ग (अर्थात् सृष्टि और फिर सृष्टि), वंश, मन्वंतर और वंशानुचरित्—'सर्गश्च, प्रतिसर्गश्च, वंशो, मन्वंतराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ।'

पुराणों में विष्णु, वायु, मत्स्य और भागवत में ऐतिहासिक वृत्त—राजाओं की वंशावली आदि के रूप में बहुत कुछ मिलते हैं । ये वंशावलियाँ यद्यपि बहुत संक्षिप्त हैं और इनमें परस्पर कहीं कहीं विरोध भी हैं पर हैं बड़े काम की । पुराणों की ओर ऐतिहासिकों ने इधर विशेष रूप से ध्यान दिया है और वे इन वंशावलियों की छानबीन में लगे हैं । पुराणों में सबसे पुराना विष्णुपुराण ही प्रतीत होता है । उसमें सांप्रदायिक खींचतान और रागद्वेष नहीं है । पुराण के पाँचो लक्षण भी उसपर ठीक ठीक घटते हैं । उसमें सृष्टि की उत्पत्ति और लय, मन्वंतरों, भरतादि खंडों और सूर्यादि लोकों, वेदों की शाखाओं तथा वेदव्यास द्वारा उनके विभाग, सूर्य वंश, चंद्र वंश आदि का वर्णन है । कलि के राजाओं में मगध के मौर्य राजाओं तथा गुप्तवंश के राजाओं तक का उल्लेख है । श्रीकृष्ण की लीलाओं का भी वर्णन है पर बिलकुल उस रूप मे नहीं जिस रूप में भागवत में है । कुछ लोगों का कहना है कि वायुपुराण ही शिवपुराण है क्योंकि आजकल जो शिवपुराण नामक पुराण या उपपुराण है उसकी श्लोक संख्या २४,००० नहीं है, केवल ७,००० ही है । वायुपुराण के चार पाद है जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति, कल्पों और मन्वंतरों, वैदिक ऋषियों की गाथाओं, दक्ष प्रजापति की कन्याओं से भिन्न भिन्न जीवोत्पत्ति, सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजाओं की वंशावली तथा कलि के राजाओं का प्रायः विष्णुपुराण के अनुसार वर्णन है । मत्स्यपुराण में मन्वंतरों और राजवंशावलियों के अतिरिक्त वर्णाश्रम धर्म का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है और मत्स्यावतार की पूरी कथा है । इसमे मय आदिक असुरों के संहार, मातृलोक, पितृलोक, मूर्ति और मंदिर बनाने की विधि का वर्णन विशेष ढंग का है ।

श्रीमद्भागवत का प्रचार सबसे अधिक है क्योंकि उसमें भक्ति के माहात्म्य और श्रीकृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन है । नौ स्कंधों के भीतर तो जीवब्रह्म की एकता, भक्ति का महत्व,

सृष्टिलीला, कपिलदेव का जन्म और अपनी माता के प्रति वैष्णव भावानुसार सांख्यशास्त्र का उपदेश, मन्वंतर और ऋषिवंशावली, अवतार जिसमें ऋषभदेव का भी प्रसंग है, ध्रुव, वेणु, पृथु, प्रह्लाद इत्यादि की कथा, समुद्रमंथन आदि अनेक विषय हैं। पर सबसे बड़ा दशम स्कंध है जिसमें कृष्ण की लीला का विस्तार से वर्णन है। इसी स्कंध के आधार पर शृंगार और भक्तिरस से पूर्ण कृष्णचरित् संबंधी संस्कृत और भाषा के अनेक ग्रंथ बने हैं। एकादश स्कंध में यादवों के नाश और बारहवें में कलियुग के राजाओं के राजत्व का वर्णन है। भागवत की लेखनशैली और पुराणों से भिन्न है। इसकी भाषा पांडित्यपूर्ण और साहित्य संबंधी चमत्कारों से भरी हुई है, इससे इसकी रचना कुछ पीछे की मानी जाती है।

अग्निपुराण एक विलक्षण पुराण है जिसमें राजवंशावलियों तथा संक्षिप्त कथाओं के अतिरिक्त धर्मशास्त्र, राजनीति, राजधर्म, प्रजाधर्म, आयुर्वेद, व्याकरण, रस, अलंकार, शस्त्रविद्या आदि अनेक विषय हैं। इसमें तंत्रदीक्षा का भी विस्तृत प्रकरण है। कलि के राजाओं की वंशावली विक्रम तक आई है, अवतार प्रसंग भी है।

इसी प्रकार और पुराणों में भी कथाएँ हैं। विष्णुपुराण के अतिरिक्त और पुराण जो आजकल मिलते हैं उनके विषय में संदेह होता है कि वे असल पुराणों के न मिलने पर पीछे से न बनाए गए हों। कई एक पुराण तो मत मतांतरों और संप्रदायों के राग द्वेष से भरे हैं। कोई किसी देवता की प्रधानता स्थापित करता है, कोई किसी देवता की प्रधानता स्थापित करता है, कोई किसी की। ब्रह्मवैवर्त पुराण का जो परिचय मत्स्यपुराण में दिया गया है उसके अनुसार उसमें रथंतर कल्प और वराह अवतार की कथा होनी चाहिए पर जो ब्रह्मवैवर्त आजकल मिलता है उसमें यह कथा नहीं है। कृष्ण के वृंदावन के रास से जिन भक्तों की तृप्ति नहीं हुई थी उनके लिये गोलोक में सदा होनेवाले रास का उसमें वर्णन है। आजकल का यह ब्रह्मवैवर्त मुसलमानों के आने के कई सौ वर्ष पीछे का है क्योंकि इसमें 'जुलाहा' जाति की उत्पत्ति का भी उल्लेख है—'म्लेच्छात् कुविंदकन्यायां जोला जातिर्बभूव ह' (१०.१२१)। ब्रह्मपुराण में तीर्थों और उनके माहात्म्य का वर्णन बहुत अधिक हैं, अनंत वासुदेव और पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) माहात्म्य तथा और बहुत से ऐसे तीर्थों के माहात्म्य लिखे गए हैं जो प्राचीन नहीं कहे जा सकते। 'पुरुषोत्तमप्रासाद' से अवश्य जगन्नाथ जी के विशाल मंदिर की ओर ही इशारा है जिसे गांगेय वंश के राजा चोड़गंग (सन् १०७७ ई०) ने बनवाया था। मत्स्यपुराण में दिए हुए लक्षण आजकल के पद्मपुराण में भी पूरे नहीं मिलते हैं। वैष्णव सांप्रदायिकों के द्वेष की इसमें बहुत सी बातें हैं। जैसे, पाषंडिलक्षण, मायावादनिंदा, तामसशास्त्र, पुराणवर्णन इत्यादि। वैशेषिक, न्याय, सांख्य और चार्वाक तामस शास्त्र कहे गए हैं और यह भी बताया गया है कि दैत्यों के विनाश के लिये बुद्ध रूपी विष्णु ने असत् बौद्ध शास्त्र कहा। इसी प्रकार मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कंद और अग्नि तामस पुराण कहे गए हैं। सारांश यह कि अधिकांश पुराणों का वर्तमान रूप हजार वर्ष के भीतर का है। सबके सब पुराण सांप्रदायिक हैं, इसमें भी कोई संदेह नहीं है। कई पुराण (जैसे, विष्णु) बहुत कुछ अपने प्राचीन रूप में मिलते हैं पर उनमें भी सांप्रदायिकों ने बहुत सी बातें बढ़ा दी हैं।

यद्यपि आजकल जो पुराण मिलते हैं उनमें से अधिकतर पीछे से बने हुए या प्रक्षिप्त विषयों से भरे हुए हैं तथापि पुराण बहुत प्राचीन काल से प्रचलित थे। बृहदारण्यक और शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि गीली लकड़ी से जैसे धुआँ अलग अलग निकलता है वैसे ही महान् भूत के निःश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद, अथर्वांगिरस, इतिहास, पुराणविद्या, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुव्याख्यान हुए। छांदोग्य उपनिषद् में भी लिखा है कि इतिहास पुराण वेदों में पाँचवाँ वेद है। अत्यंत प्राचीन काल में वेदों के साथ पुराण भी प्रचलित थे जो यज्ञ आदि के अवसरों पर कहे जाते थे। कई बातें जो पुराण के लक्षणों में हैं, वेदों में भी हैं। जैसे, पहले असत् था और कुछ नहीं था यह सर्ग या सृष्टितत्व है; देवासुर संग्राम, उर्वशी पुरूरवा संवाद इतिहास है। महाभारत के आदि पर्व में (१.२३३) भी अनेक राजाओं के नाम और कुछ विषय गिनाकर कहा गया है कि इनके वृत्तांत विद्वान् सत्कवियों द्वारा पुराण में कहे गए हैं। इससे कहा जा सकता है कि महाभारत के रचनाकाल में भी पुराण थे। मनुस्मृति में भी लिखा है कि पितृकार्यों में वेद, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण आदि सुनाने चाहिए।

अब प्रश्न यह होता है कि पुराण हैं किसके बनाए। शिवपुराण के अंतर्गत रेवा माहात्म्य में लिखा है कि अठारहों पुराणों के वक्ता सत्यवतीसुत व्यास हैं। यही बात जन साधारण में प्रचलित है। पर मत्स्यपुराण में स्पष्ट लिखा है कि पहले पुराण एक ही था, उसी से १८ पुराण हुए (५३.४)। ब्रह्मांड पुराण में लिखा है कि वेदव्यास ने एक पुराणसंहिता का संकलन किया था। इसके आगे की बात का पता विष्णु पुराण से लगता है। उसमें लिखा है कि व्यास का एक लोमहर्षण नाम का शिष्य था जो सूति जाति का था। व्यास जी ने अपनी पुराण संहिता उसी के हाथ में दी। लोमहर्षण के छह शिष्य थे—सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शांशपायन, अकृतव्रण और सावर्णी। इनमें से अकृतव्रण, सावर्णी और शांशपायन ने लोमहर्षण से पढ़ी हुई पुराणसंहिता के आधार पर और एक एक संहिता बनाई।

वेदव्यास ने जिस प्रकार मंत्रों का संग्रहकर उन का संहिताओं में विभाग किया उसी प्रकार पुराण के नाम से चले आते हुए वृत्तों का संग्रह कर पुराणसंहिता का संकलन किया।

उसी एक संहिता को लेकर सूत के चेलों के तीन और संहिताएँ बनाईं। इन्हीं संहिताओं के आधार पर अठारह पुराण बने होंगे। मत्स्य, विष्णु, ब्रह्मांड आदि सब पुराणों में ब्रह्मपुराण पहला कहा गया है। पर जो ब्रह्मपुराण आजकल प्रचलित है वह कैसा है यह पहले कहा जा चुका है। जो कुछ हो, यह तो ऊपर लिखे प्रमाण से सिद्ध है कि अठारह पुराण वेदव्यास के बनाए नहीं हैं। जो पुराण आजकल मिलते हैं उनमें विष्णुपुराण और ब्रह्मांडपुराण की रचना औरों से प्राचीन जान पड़ती है। विष्णुपुराण में 'भविष्य राजवंश' के अंतर्गत गुप्तवंश के राजाओं तक का उल्लेख है इससे वह प्रकरण ईसा की छठी शताब्दी के पहले का नहीं हो सकता। जावा के आगे जो बाली टापू है वहाँ के हिंदुओं के पास ब्रह्मांडपुराण मिला है। इन हिंदुओं के पूर्वज ईसा की पाँचवीं शताब्दी में भारतवर्ष से पूर्व के द्वीपों में जाकर बसे थे। बालीवाले ब्रह्मांडपुराण मे 'भविष्य राजवंश प्रकरण' नहीं है उसमें जनमेजय के प्रपौत्र अधिसीमकृष्ण तक का नाम पाया जाता है। यह बात ध्यान देने की है। इससे प्रकट होता है कि पुराणों मे जो भविष्य राजवंश है वह पीछे से जोड़ा हुआ है। यहाँ पर ब्रह्मांडपुराण की जो प्राचीन प्रतियाँ मिलती हैं देखना चाहिए कि उनमें भूत और वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग कहाँ तक है। 'भविष्यराजवंश वर्णन' के पूर्व उनमें ये श्लोक मिलते हैं—

> तस्य पुत्रः शतानीको बलवान् सत्यविक्रमः।
> ततः सुतं शतानीकं विप्रास्तमभ्यषेचयन्॥
> पुत्रोऽश्वमेधदत्तोऽभूत् शतानीकस्य वीर्यवान्।
> पुत्रोऽश्वमेधदत्ताद्वै जातः परपुरंजयः॥
> अधिसीमकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतोयं महायशाः।
> यस्मिन् प्रशासति महीं युष्माभिरिदमाहृतम्॥
> दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करम्
> वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः॥

अर्थात्—उनके पुत्र बलवान् और सत्यविक्रम शतानीक हुए। पीछे शतानीक के पुत्र को ब्राह्मणों ने अभिषिक्त किया। शतानीक के अश्वमेधदत्त नाम का एक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। अश्वमेधदत्त के पुत्र परपुरंजय धर्मात्मा अधिसीमकृष्ण हैं। ये ही महायशा आजकल पृथ्वी का शासन करते हैं। इन्हीं के समय में आप लोगों ने पुष्कर में तीन वर्ष का और दृषद्वती के किनारे कुरुक्षेत्र में दो वर्ष तक का यज्ञ किया है।

उक्त अंश से प्रकट है कि आदि ब्रह्मांडपुराण अधिसीमकृष्ण के समय में बना। इसी प्रकार विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण आदि की परीक्षा करने से पता चलता है कि आदि विष्णुपुराण परीक्षित के समय में और आदि मत्स्यपुराण जनमेजय के प्रपौत्र अधिसीमकृष्ण के समय मे संकलित हुआ।

पुराण संहिताओं से अठारह पुराण बहुत प्राचीन काल मे ही बन गए थे इसका पता लगता है। आपस्तंबधर्मसूत्र (२।२४।५) में भविष्यपुराण का प्रमाण इस प्रकार उद्धृत है—आभूत संप्लवास्ते स्वर्गजितः। पुनः सर्गे बीजार्था भवन्तीति भविष्यत्पुराणे।

यह अवश्य है कि आजकल पुराण अपने आदिम रूप में नहीं मिलते हैं। बहुत से पुराण तो असल पुराणों के न मिलने पर फिर से नए रचे गए हैं, कुछ में बहुत सी बातें जोड़ दी गई हैं। प्रायः सब पुराण शैव, वैष्णव और सौर संप्रदायों में से किसी न किसी के पोषक हैं, इसमे भी कोई संदेह नहीं। विष्णु, रुद्र, सूर्य आदि की उपासना वैदिक काल से ही चली आती थी, फिर धीरे धीरे कुछ लोग किसी एक देवता को प्रधानता देने लगे, कुछ लोग दूसरे को। इस प्रकार महाभारत के पीछे ही संप्रदायों का सूत्रपात हो चला। पुराणसंहिताएँ उसी समय में बनीं। फिर आगे चलकर आदिपुराण बने जिनका बहुत कुछ अंश आजकल पाए जाने-वाले कुछ पुराणो के भीतर है।

पुराणो का उद्देश्य पुराने वृत्तों का संग्रह करना, कुछ प्राचीन और कुछ कल्पित कथाओं द्वारा उपदेश देना, देवमहिमा तथा तीर्थमहिमा के वर्णन द्वारा जनसाधारण में धर्मबुद्धि स्थिर रखना ही था। इसी से व्यास ने सूत (भाट या कथक्कड़) जाति के एक पुरुष को अपनी संकलित आदिपुराणसंहिता प्रचार करने के लिये दी। पुराणों में वैदिक काल से चले आते हुए सृष्टि आदि संबंधी विचारों, प्राचीन राजाओं और ऋषियों के परंपरागत वृत्तांतों तथा कहानियों आदि के संग्रह के साथ साथ कल्पित कथाओं की विचित्रता और रोचक वर्णनों द्वारा सांप्रदायिक या साधारण उपदेश भी मिलते हैं। पुराण उस प्रकार प्रमाण ग्रंथ नहीं हैं जिस प्रकार श्रुति, स्मृति आदि हैं।

हिंदुओं के अनुकरण पर जैन लोगों में भी बहुत से पुराण बने हैं। इनमें से २४ पुराण तो तीर्थंकरों के नाम पर हैं; और भी बहुत से हैं जिनमें तीर्थंकरो के अलौकिक चरित्र, सब देवताओं से उनकी श्रेष्ठता, जैनधर्म संबंधी तत्वों का विस्तार से वर्णन, फलस्तुति, माहात्म्य आदि है। अलग पद्मपुराण और हरिवंश (अरिष्टनेमि पुराण) भी हैं। इन जैन पुराणों में राम, कृष्ण आदि के चरित्र लेकर खूब विकृत किए गए हैं।

बौद्ध ग्रंथों में कहीं पुराणों का उल्लेख नहीं है पर तिब्बत और नैपाल के बौद्ध ९ पुराण मानते हैं जिन्हें वे नवधर्म कहते हैं—(१) प्रज्ञापारमिता (न्याय का ग्रंथ कहना चाहिए), (२) गंडव्यूह, (३) समाधिराज, (४) लंकावतार (रावण का मलयगिरि पर जाना, और शाक्यसिंह के उपदेश से बोधिज्ञान लाभ करना वर्णित है), (५) तथागतगुह्यक, (६) सद्धर्मपुंडरीक, (७) ललितविस्तर (बुद्ध का चरित्र), (८) सुवर्णप्रभा (लक्ष्मी, सरस्वती, पृथ्वी आदि की कथा और उनका शाक्यसिंह का पूजन) (९) दशभूमीश्वर।

३. अठारह की संख्या। ४. शिव। ५. कार्षापण। एक पुराना सिक्का।

पुराणकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुराकल्प'।

पुराणग—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. पुराण कहनेवाला। पुराणवक्ता।

पुराणचौर व्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० पुराणचौर व्यञ्जन] वे गुप्तचर जो पुराने चोर डाकुओं के वेश में रहते थे।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि ये लोग चोरों बदमाशों के अड्डों और शत्रु के पक्षवालों की मंडली आदि का पता रखते थे और समाहर्ता के अधीन काम करते थे।

पुराणपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार पुराना माल।

पुराणपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. जरठ या वृद्ध व्यक्ति (को०)।

पुराणभांड—संज्ञा पुं० [सं० पुराणभाण्ड] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार अंगड़ खंगड़ या पुराना माल असबाब।

पुराणांत—संज्ञा पुं० [सं० पुराणान्त] यम (को०)।

पुरातत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल संबंधी विद्या। प्रत्न शास्त्र।

पुरातत्ववेत्ता—संज्ञा पुं० [सं० पुरातत्व+वेत्ता] पुराविद्। प्राचीन इतिहास और संस्कृति का विद्वान्। उ०—अब पुरातत्ववेत्ताओं ने तदनुरूप स्थानों की खोजें एवं परिकल्पनाएँ कर ली है। —भा० भा०, पृ० ५।

पुरातन[1]—वि० [सं०] १ प्राचीन। पुराना। २. सर्वप्राचीन। सबसे पूर्व का (को०)।

पुरातन[2]—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. प्राचीन आख्यान (को०)।

यौ०—पुरातनपुरुष=विष्णु। उ०—पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चंचला होइ।

पुरातनता—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरातन+ता प्रत्य०] पुरानापन। पुरातन होने का भाव। उ०—पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती न प्रकृति पल एक। —कामायनी, पृ० ५५।

पुरातनवाद—संज्ञा पुं० [सं० पुरातन+वाद] १. पुरातनता का सिद्धांत। पुरातनता का दृष्टिकोण। उ०—पर पुरातनवाद के तुम अंध पोषक। —भूमि०, पृ० ५। २. पुरातन के प्रति अनुराग। पुरातनता का प्रेम।

पुरातम—वि० [सं० पुरा + तम] पुरातन। पुराना। प्राचीन। उ०—गई गोपि ह्वै भक्ति आगिलो काढ़े प्रगट पुरातम बास। —सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १५१।

पुरातल—संज्ञा पुं० [सं०] तलातल।

पुराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] नगर का अधिकारी। नगर का शासन और रक्षा करनेवाला अधिकारी (को०)।

पुराध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुराधिप' (को०)।

पुरानी[1]—वि० [सं० पुराण] दे० 'पुराना'।

पुरान[2]—संज्ञा पुं० दे० 'पुराण'। उ०—पुरन ब्रह्म पुरान बखाने। चतुरानन सिव अंत न जाने। —पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २५१।

पुराना[1]—वि० [सं० पुराण] [वि० स्त्री० पुरानी] १ जो किसी समय के बहुत पहले से रहा हो। जो किसी विशेष समय में भी हो और उसके बहुत पूर्व तक लगातार रहा हो। जिसे उत्पन्न हुए, बने या अस्तित्व में आए बहुत काल हो गया हो। जो बहुत दिनों से चला आता हो। बहुत दिनों का। जो नया न हो। प्राचीन। पुरातन। बहुपूर्वकालव्यापी। जैसे, पुराना पेड़, पुराना घर, पुराना जूता, पुराना चावल, पुराना ज्वर, पुराना बैर, पुरानी रीति। २. जो बहुत दिनों का होने के कारण अच्छी दशा में न हो। जीर्ण। जैसे,—तुम्हारी टोपी अब बहुत पुरानी हो गई बदल दो। उ०—छुवतहि टूट पिनाक पुराना। —तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

यौ०—फटा पुराना। पुराना धुराना।

३. जिसने बहुत जमाना देखा हो। जिसका अनुभव बहुत दिनों का हो। परिपक्व। जिसका अनुभव पक्का हो गया हो। जिसकी कचाई न हो। जैसे,—(क) रहते रहते जब पुराने हो जाओगे तब सब काम सहज हो जायगा। (ख) पुराना काइयाँ, पुराना चोर।

मुहा०—पुराना खुर्रांट=(१) बूढ़ा। (२) बहुत दिनों का अनुभवी। किसी बात में पक्का। पुरानी खोपड़ी=दे० 'पुराना खुर्रांट'। पुराना घाघ=किसी बात में पक्का। बहुत दिनों तक अनुभव करते करते जो गहरा चालाक हो गया हो। गहरा काइयाँ। पुरानी लीक पीटना=पुराना बुनना। नई सभ्यता, नए संस्कार, विचार आदि का विरोधी होना। पुरानपंथी बनना। उ०—कोई पुरानी लीक पीटे है कोई कहता है नया। —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५७१। पुराने मुर्दे उखेड़ना=भूली बिसरी बात की याद दिलाना। गई बीती बात की चर्चा छेड़ना। अतीत की अप्रिय बातों की सुधि दिलाना। उ०—अः तुम तो पुराने मुर्दे उखेड़ती हो। बेकार। —सैर कु०, पृ० २६।

४. जो बहुत पहले रहा हो, पर अब न हो। बहुत पहले का। अगले समय का। प्राचीन। अतीत। जैसे, (क) पुराना समय, पुराना जमाना। (ख) पुराने राजाओं की बात ही और थी। (ग) पुराने लोग जो कह गए हैं ठीक कह गए हैं। (घ) पुरानी बात उठाने से अब क्या लाभ? ५. काल का। समय का। जैसे यह चावल कितना पुराना है? ६. जिसका चलन अब न हो। जैसे, पुराना पहनावा।

पुराना[2]—क्रि० स० [हिं० पूरना का प्रे० रूप] १. पूरा करना। पुजवाना। भराना। २. पालन करना। अनुकूल बात कराना। जैसे, शर्त पुराना। उ०—मारि मारि सब शत्रु तुतं निज सर्त पुरावत। —गोपाल (शब्द०)। ३. पूरा करना। भरना। पुजाना। किसी घाव, गड्ढे या खाली जगह को किसी वस्तु से छेंक देना। जैसे, घाव पुराना। ४. पूरा करना। पालन

करना। अनुकूल बात करना। अनुसरण करना। उ०—सूरदास प्रभु ब्रज गोपिन के मन अभिलाष पुराए।—सूर (शब्द०)। ५. इस प्रकार बाँटना कि सबको मिल जाय। अँटाना। पूरा डालना। †६. आटे आदि से चौक बनवाना। जैसे, चौक पुराना। उ०—गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

पुरानि(५)—वि० [हि०] पुरानी। उ०—चादर भई पुरानि दिनों दिन बार न कीजे। सत संगत में सोद ज्ञान का साबुन दीजे।—पलटू०, भा० १, पृ० ४।

पुरायठ(५)†—वि० [हि० पुराना] अत्यधिक पुराना। पुष्ट। बलिष्ठ। उ०—मनहुँ पुरायठ अजगर द्वै सनमुख ओवक मिलि।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २२।

पुरायोनि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

पुराराति, पुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। उ०—अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के।—मानस, १।३२।

पुरारी(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरारि] दे० 'पुरारि'। उ०—मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी।—मानस, १।१०।

पुराल(५)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पयाल'।

पुरावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी (महाभारत)।

पुरावना(५)—क्रि० स० [हिं० पुराना] दे० 'पूरना'। उ०—बहु विधि आरति साजि तो चौक पुरावहीं।—कबीर श०, भा० ४, पृ० ३।

पुरावसु—संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म।

पुराविद्—वि० [सं०] पुरानी बातों या पुराने इतिहास का ज्ञाता [को०]।

पुरावृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना वृत्तांत। पुराना हाल। इतिहास।

पुराषाट्—वि० [सं०] अनेकों का जेता। बहुतो को पराभूत करनेवाला [को०]।

पुरासाह्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

पुरासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेई। सहदेइया नाम की बूटी।

पुरासुहृद्—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

पुरिंद्र(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुरंदर'। उ०—भजै प्रभु ब्रह्म पुरिंद्र महेस भजैं सनकादिक नारद सेस।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २२।

पुरि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुरी। २. शरीर। ३. नदी।

पुरि[2]—संज्ञा पुं० १. राजा। २. दसनामी संन्यासियों में एक।

पुरिखा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुरखा'।

पुरिया[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूरना] वह नरी जिसपर जुलाहे बाने को बुनने के पहले फैलाते हैं।

मुहा०—पुरिया करना = ताने को पुरिया पर फैलाना।

पुरिया†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पुड़िया'।

पुरिशय—वि० [सं०] शरीर में रहनेवाला [को०]।

पुरिष(५)—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] दे० 'पुरुष'। उ०—पुरिष सब्बे बिक्रमी, समर समर सम सोय।—प० रासो, पृ० १४।

पुरिषा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुरखा'। उ०—(क) लक्ष्मण के पुरिषान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई।—केशव (शब्द०)। (ख) जिनके पुरिषा भुव गंगहि लाए। नगरी सुभ स्वर्ग सदेह सिधाए।—केशव (शब्द०)।

पुरिषातन(५)—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष + तन (प्रत्य०)] दे० 'पुरुषत्व' उ०—पहुर रात पाछिली राज आए डेरा मांझ। बढ़िय काम कामना भई पुरिषातन की सिधि।—पृ० रा०, १।४०७।

पुरिसा(५)—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] दे० 'पुरसा'। उ०—पहिरण ओढन कंबला साठे पुरिसे नीर।—ढोला०, दू० ६६२।

पुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नगरी। शहर। उ०—सोभा नहीं कहि जाय कछू विधिने, रची मानो पुरीन की नासिका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८१। २. जगन्नाथपुरी। पुरुषोत्तम धाम। ३. शरीर (को०)। ४. दुर्ग (को०)।

पुरीतत—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरीतत्] हृदय के पास की एक विशेष नाड़ी। आँत [को०]।

पुरीमोह—संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा।

पुरीष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्टा। मल। गू। २. कूड़ा कचड़ा (को०)। ३. जल।

पुरीष†[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुरुष' उ०—नल राजा मेल्हे गयो, पुरीष समो नहीं त्रिगुण संसार।—बी० रासो, पृ० ६४।

पुरीषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मल। गू। २. मलत्याग [को०]।

पुरीषनिग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठबद्धता [को०]

पुरीषम—संज्ञा पुं० [सं०] माष। उरद।

पुरीषोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मलत्याग [को०]।

पुरु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवलोक। स्वर्ग। २. एक दैत्य जिसे इंद्र ने मारा था। ३. पराग। ४. एक पर्वत। ५. शरीर। ६. बृहत्संहिता के अनुसार एक देश। ७. एक प्राचीन राजा जो नहुष के पुत्र ययाति के पुत्र थे।

विशेष—पुराणों में ययाति चंद्रवंश के मूल पुरुषों में थे। ययाति की दो रानियाँ थीं। एक शुक्राचार्य की कन्या देवयानी, दूसरी शर्मिष्ठा। देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पुरु हुए। इन नामों का उल्लेख ऋग्वेद में है। पुरु के बड़े भारी विजयी और पराक्रमी होने की चर्चा भी ऋग्वेद में है। एक स्थान पर लिखा है—'हे वैश्वानर! जब तुम पुरु के समीप पुरियों का विध्वंस करके प्रज्वलित हुए तब तुम्हारे भय से असिक्नी (असिक्नीर-सितवर्णाः—सायण; अर्थात् असिक्नी या चेनाब के किनारे के काले अनार्य वस्तु) भोजन छोड़ छोड़कर आए'। एक

स्थान पर और भी है—'हे इंद्र ! तुम युद्ध में भूमिलाभ के लिये पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु और पुरु की रक्षा करो ।' इसका समर्थन एक और मंत्र इस प्रकार करता है—'हे इंद्र! तुमने पुरु और दिवोदास राजा के लिये नब्बे पुरों का नाश किया है ।'

महाभारत और पुराणों में पुरु के संबंध में यह कथा मिलती है—शुक्राचार्य के शाप से जब ययाति जराग्रस्त हुए तब उन्होंने सब पुत्रों को बुलाकर अपना बुढ़ापा देना चाहा । पर पुरु को छोड़ और कोई बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी देने पर सम्मत न हुआ। पुरु से यौवन प्राप्त कर ययाति ने बहुत दिनों तक सुखभोग किया, अंत में अपने पुत्र पुरु को राज्य दे वे वन में चले गए । पुरु के वंश में ही दुष्यंत के पुत्र भरत हुए । भरत के कई पीढ़ियों पीछे कुरु हुए जिनके नाम से कौरव वंश कहलाया ।

८. पंजाब का एक राजा जो ईसा से ३२७ वर्ष पहले सिकंदर से लड़ा था । पोरस ।

पुरु²—क्रि० वि० १. अधिक । बहुत से । कई । २. अकसर । बारबार । पुनः पुनः [को०] ।

पुरुकुत्स—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा जो मांधाता का पुत्र और मुचुकुंद का भाई था और नर्मदा नदी के आसपास के प्रदेश पर राज्य करता था ।

विशेष—हरिवंश पुराण में लिखा गया है कि नागों की भगिनी नर्मदा के साथ इसने विवाह किया था । नागों और नर्मदा के कहने से पुरुकुत्स ने रसातल में जाकर मौनेय गंधर्वों का नाश किया था ।

ऋग्वेद में भी पुरुकुत्स का नाम आया है । उसमें लिखा है कि दस्युनगर का ध्वंस करने में इंद्र ने राजा पुरुकुत्स की सहायता की थी । (१।६३।७; १।११२।१७) ।

पुरुकुत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़पुराण के अनुसार इंद्र के एक शत्रु का नाम ।

पुरुख(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] दे० 'पुरुष' ।

पुरुखा—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष हिं०] १. दे० 'पुरखा' । २. †ईश्वर । ब्रह्म । उ०—की भौं जलहि रहै तब पुरखा । पढ़ेउ वेद यह लखेउ न मुर्खा । —कबीर सा०, पृ० ४२८ ।

पुरुजित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंतिभोज का पुत्र । यह अर्जुन का मामा था और महाभारत के युद्ध में आया था । २. विष्णु । ३. भागवत के अनुसार शशबिंदु वंशीय रुचक के पुत्र का नाम ।

पुरुदंशक—संज्ञा पुं० [सं०] हंस ।

पुरुदंशा—संज्ञा पुं० [सं० पुरुदंशस्] इंद्र ।

पुरुदु—संज्ञा पुं० [सं०] सोना । स्वर्ण [को०] ।

पुरुद्रुप्र—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम [को०] ।

पुरुनाम—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

पुरुहुह—संज्ञा पुं० [सं० [इंद्र का एक नाम [को०] ।

पुरुब†—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व दिशा । उ०—पच्छिवँ क बार पुरुब की बारी । लिखी जो जोरी होइ न न्यारी । —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३०६ ।

पुरुभोजा—संज्ञा पुं० [सं० पुरुभोजस्] मेघ । बादल ।

पुरुमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन राजा जिसका नाम ऋग्वेद में आया है । २. धृतराष्ट्र का एक पुत्र ।

पुरुलंपट—वि० [सं० पुरुलम्पट] अत्यधिक लंपट । बहुत कामी [को०] ।

पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्य । आदमी । २. नर । ३. सांख्य के अनुसार प्रकृति से भिन्न भिन्न अपरिणामी, अकर्ता और असंग चेतन पदार्थ । आत्मा । इसी के सान्निध्य से प्रकृति संसार की सृष्टि करती है । दे० 'सांख्य' । ४. विष्णु । ५. सूर्य । ६. जीव । ७. शिव । ८. पुन्नाग का वृक्ष । ९. पारा । पारद । १०. गुग्गुल । ११. घोड़े की एक स्थिति जिसमें वह अपने दोनों अगले पैरों को उठाकर पिछले पैरों के बल खड़ा होता है । जमना । सीखपाँव । १२. व्याकरण में सर्वनाम और तदनुसारिणी क्रिया के रूपों का वह भेद जिससे यह निश्चय होता है कि सर्वनाम या क्रियापद वाचक (कहनेवाले) के लिये प्रयुक्त हुआ है अथवा संबोध्य (जिससे कहा जाय) के लिये अथवा अन्य के लिये । जैसे 'मैं' उत्तम पुरुष हुआ, 'वह' प्रथम पुरुष और 'तुम' मध्यम पुरुष । १३. मनुष्य का शरीर या आत्मा । १४. पूर्वज । उ०—(क) सो सठ कोटिक पुरुष समेता । बसहिं कलप सत नरक निकेता । —तुलसी (शब्द०) । (ख) जा कुल माँहि भक्ति मम होई । सप्त पुरुष ले उधरै । —सूर (शब्द०) । १५. पति । स्वामी । १६. ज्योतिष में विषम राशियाँ (को०) । १७. ऊँचाई या गहराई की एक माप । पुरसा (को०) । १८. आँख की पुतली । नेत्र की तारिका (को०) । १९. मेरु पर्वत (को०) ।

पुरुषक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े का जमना । सीखपाँव । अलफ ।

पुरुषकार—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषार्थ । उद्योग । पौरुष ।

पुरुषकेशरी—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषकेशरिन्] १ पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष । २. नरसिंह भगवान् ।

पुरुषकेसरी—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषकेसरिन्] दे० 'पुरुषकेशरी' [को०] ।

पुरुषगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साम ।

पुरुषग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार मंगल, सूर्य और बृहस्पति ।

पुरुषघ्नी—वि० स्त्री० [सं०] पति की हत्या करनेवाली [को०] ।

पुरुषत्व—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष होने का भाव । पुंस्त्व ।

पुरुषदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरुषदन्तिका] मेदा नाम की ओषधि ।

पुरुषदघ्न—वि० [सं०] एक मनुष्य की ऊँचाई के बराबर । पुरुषप्रमाण [को०] ।

पुरुषद्विट्—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पुरुष अर्थात् विष्णुद्रोही हो [को०]।

पुरुषद्वेषिणी—संज्ञा पुं० [सं०] पति से द्वेष या घृणा करनेवाली (स्त्री०)।

पुरुषद्वेषी—वि० [सं० पुरुषद्वेषिन्] [वि० स्त्री० पुरुषद्वेषिणी] मनुष्य से द्वेष रखनेवाला।

पुरुषधौरेयक—संज्ञा पुं० [सं०] वरिष्ठ व्यक्ति। श्रेष्ठ या महान् व्यक्ति [को०]।

पुरुषनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्रानुसार हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा और पुष्य नक्षत्र।

पुरुषनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सेनापति। २. नरनाथ। राजा।

पुरुषपशु—संज्ञा पुं० [सं०] पशुवत् मनुष्य। नरपशु। क्रूर व्यक्ति [को०]।

पुरुषपुंगव—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषपुङ्गव] श्रेष्ठ पुरुष। सुप्रसिद्ध व्यक्ति [को०]।

पुरुषपुंडरीक—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषपुण्डरीक] जैनियों के मतानुसार नव वासुदेवों में सप्तम वासुदेव।

पुरुषपुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर जो गांधार की राजधानी था। आजकल का पेशावर।

पुरुषप्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मरदाना मेला तमाशा। वह खेल तमाशा जिसमें पुरुष ही जा सकते हों।

पुरुषभोग—वि० [सं०] (वह राष्ट्र या राजा) जिसके पास सेना या आदमी बहुत हों।

पुरुषमात्र—वि० [सं०] पुरुषप्रमाण। मनुष्य के बराबर [को०]।

पुरुषमानी—वि० [सं०] अपने को वीर समझनेवाला [को०]।

पुरुषमेध—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक यज्ञ जिसमें नरबलि की जाती थी।

विशेष—इस यज्ञ के करने का अधिकार केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय को था। यह यज्ञ चैत्र मास की शुक्ला दशमी से प्रारंभ होता था और चालीस दिनों में होता था। इस बीच में २३ दीक्षा, १२ उपसद् और ५ सुत्या होती थी। इस प्रकार यह ४० दिनों में समाप्त होता था। यज्ञ के समाप्त हो जाने पर यज्ञकर्ता वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करता था। इसका विधान शुक्ल यजुर्वेद के तईसवें अध्याय तथा शतपथ ब्राह्मण में है।

पुरुषराव—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष + हिं० राव] पुरुषराज। पुरुषश्रेष्ठ।

पुरुषराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष शास्त्रानुसार मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुंभ राशि।

पुरुषलिंग—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष + लिङ्ग] दे० 'पुंलिंग'।

पुरुषवर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

पुरुषवर्जित—वि० [सं०] सुनसान। वीरान [को०]।

पुरुषवार—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्रानुसार रवि, मंगल, बृहस्पति और शनिवार।

पुरुषवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. गरुड़। तार्क्ष्य। २. यक्षराज। कुबेर [को०]।

पुरुषव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

पुरुषशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मनुष्य का बनावटी सिर जिसको सेंध लगानेवाले सेंध में प्रविष्ट कराते थे [को०]।

पुरुषसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरुषसन्धि] वह संधि जो शत्रु कुछ योग्य पुरुषों को अपनी सेवा के लिये लेकर करे।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि यदि ऐसी अवस्था आ पड़े तो राजा शत्रु को इस प्रकार के लोग दे—राजद्रोही, जंगली, अपने यहाँ के अपमानित सामंत आदि। इससे राजा का इनसे पीछा भी छूट जायगा और ये शत्रु के यहाँ जाकर मौका पाकर उसकी हानि भी करेंगे।

पुरुषसिंघ—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषसिंह] दे० 'पुरुषसिंह'। उ०—अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुषसिंघ बन खेलन आए।—मानस, ३।१६।

पुरुषसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ पुरुष। मनुष्यों में सिंह की भाँति वीर व्यक्ति [को०]।

पुरुषसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के दशम मंडल के एक सूक्त का नाम जो 'सहस्रशीर्षा' से आरंभ होता है। यह सूक्त बहुत प्रसिद्ध है और इसका पाठ अनेक अवसरों पर किया जाता है।

पुरुषांग—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषाङ्ग] पुरुष की जननेंद्रिय। लिंग [को०]।

पुरुषांतर—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषान्तर] अन्य व्यक्ति। दूसरा व्यक्ति।

पुरुषांतरसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरुषान्तरसन्धि] इस शर्त पर की हुई संधि कि आपका सेनापति मेरा अमुक काम करे और मेरा सेनापति आपका अमुक काम कर देगा।

पुरुषाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. (मनुष्य खानेवाला) राक्षस। २. बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम जो आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य के अधिकार में है।

पुरुषादक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नरभक्षी राक्षस। २. कल्माषपाद का नाम।

पुरुषाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिनों में प्रथम, आदिनाथ (जैन)। २. विष्णु। ३. राक्षस।

पुरुषाधम—संज्ञा पुं० [सं०] अधम व्यक्ति। नीच पुरुष।

पुरुषापाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] घनी आबादीवाली भूमि। वि० दे० 'दुर्गापाश्रया भूमि'।

पुरुषायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणादि षोडश कला (प्रश्नोपनिषद्)। २. दे० 'पुरुषार्थ'।

पुरुषायित—संज्ञा वि० [सं०] पुरुष के सदृश आचरण या व्यवहार।

पुरुषायितबंध—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषायितबन्ध] कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का बंध या स्त्रीसंभोग की एक प्रकार जिसमें पुरुष नीचे चित लेटता है और स्त्री उसके ऊपर

लेटकर संभोग करती है। इसके कई भेद कहे गए हैं। साहित्य में इसी को 'विपरीत रति' कहा गया है।

पुरुषायुष—संज्ञा पुं० [सं०] सौ वर्ष का काल (जो मनुष्य की पूर्णायु का काल माना गया है)।

पुरुषारथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषार्थ] दे० 'पुरुषार्थ'।

पुरुषार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरुष का अर्थ या प्रयोजन जिसके लिये उसे प्रयत्न करना चाहिए। पुरुष के उद्योग का विषय। पुरुष का लक्ष्य।

विशेष—सांख्य के मत से त्रिविध दुःख की अत्यंत निवृत्ति (मोक्ष) ही परम पुरुषार्थ है। प्रकृति पुरुषार्थ के लिये अर्थात् पुरुष को दुःखों से निवृत्त करने के लिये निरंतर यत्न करती है, पर पुरुष प्रकृति के धर्म को अपना धर्म समझ अपने स्वरूप को भूल जाता है। जबतक पुरुष को स्वरूप का ज्ञान नहीं हो जाता तबतक प्रकृति साथ नहीं छोड़ती।

पुराणों के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ हैं। चार्वाक मतानुसार कामिनी-संग-जनित सुख ही पुरुषार्थ है।

२. पुरुषकार। पौरुष। उद्यम। पराक्रम। ३. पुंस्त्व। शक्ति। सामर्थ्य। बल।

पुरुषार्थी—वि० [सं० पुरुषार्थिन्] १. पुरुषार्थ करनेवाला। २. उद्योगी। ३. परिश्रमी। ४. बली। सामर्थ्यवान्।

पुरुषाशी—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषाशिन्] [स्त्री० पुरुषाशिनी] (मनुष्य खानेवाला) राक्षस।

पुरुषास्थि—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य की हड्डी।

पुरुषास्थिमाली—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषास्थिमालिन्] शिव [को०]।

पुरुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी। स्त्री [को०]।

पुरुषेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषेन्द्र] १. राजा। २. श्रेष्ठ पुरुष।

पुरुषोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरुषश्रेष्ठ। श्रेष्ठ पुरुष। २. विष्णु। ३. जगन्नाथ जिनका मंदिर उड़ीसा में है। ४. धर्मशास्त्रानुसार वह निष्पाप पुरुष जो शत्रु मित्र आदि से सर्वदा उदासीन रहे। ५. जैनियों के एक वासुदेव का नाम। ६. कृष्णचंद्र। ७. ईश्वर। नारायण। ८. अच्छा व्यक्ति या सहयोगी (को०)। ९. मलमास का महीना। अधिक मास।

पुरुषोत्तम क्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जगन्नाथपुरी।

पुरुषोत्तम मास—संज्ञा पुं० [सं०] मलमास। अधिक मास।

पुरुषोपस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] अपने स्थान पर किसी दूसरे व्यक्ति को काम करने के लिये देना। एवज देना।

पुरुहूत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

यौ०—पुरुहूतद्विष = इंद्रजीत।

पुरुहूत[2]—वि० जिसका आवाहन बहुतों ने किया हो।

पुरुहूति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाक्षायणी।

पुरुहूति[2]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

पुरूरवा—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन राजा जिसका नाम और कुछ वृत्तांत ऋग्वेद में है।

विशेष—ऋग्वेद को पुरुरवा को इला का पुत्र कहा है। पुरुरवा और उर्वशी का संवाद भी ऋग्वेद में मिलता है। पर एक मंत्र में पुरुरवा सूर्य और ऊषा के साथ स्थित भी कहा गया है जिससे कुछ लोग सारी कथा को एक रूपक भी कह दिया करते हैं।

हरिवंश तथा पुराणों के अनुसार बृहस्पति की स्त्री तारा और चंद्रमा के संयोग से बुध उत्पन्न हुए जो चंद्रवंश के आदि पुरुष थे। बुध का इला के साथ विवाह हुआ। इसी इला के गर्भ से पुरुरवा उत्पन्न हुए जो बड़े रूपवान्, बुद्धिमान् और पराक्रमी थे। उर्वशी शापवश भूलोक में आ पड़ी थी। पुरुरवा ने उसके रूप पर मोहित हो उसके साथ विवाह के लिये कहा। उर्वशी ने कहा—'मैं अप्सरा हूँ। जबतक आप मेरी तीन बातों का पालन करेंगे तभी तक मैं आपके पास रहूँगी—(१) मैं आपको कभी नंगा न देखूँ, (२) अकामा रहूँ तो आप संयोग न करें और (३) मेरे पलँग के पास दो मेढ़े बँधे रहें।' राजा ने इन बातों को मानकर विवाह किया और वे बहुत दिनों तक सुखपूर्वक रहे। एक दिन गंधर्व उर्वशी के शापमोचन के लिये दोनों मेढ़े छोड़कर ले चले। राजा नंगे उनकी ओर दौड़े। उर्वशी का शाप छूट गया और वह स्वर्ग को चली गई। पुरुरवा बहुत दिनों तक विलाप करते घूमते रहे। एक बार कुरुक्षेत्र के अंतर्गत प्लक्ष तीर्थ में हैमवती पुष्करिणी के किनारे उन्हें उर्वशी फिर दिखाई पड़ी। राजा उसे देखकर बहुत विलाप करने लगे। उर्वशी ने कहा—'मुझे आपसे गर्भ है, मैं शीघ्र आपके पुत्रों को लेकर आपके पास आऊँगी और एक रात रहूँगी।' स्वर्ग में उर्वशी के गर्भ से आयु, अमावसु, विश्वायु, श्रुतायु, दृढ़ायु, वनायु, और शतायु उत्पन्न हुए जिन्हें लेकर वह राजा के पास आई और एक रात रही। गंधर्वों ने पुरुरवा को एक अग्निपूर्ण स्थाली दी। उस अग्नि से राजा ने बहुत से यज्ञ किए। पुरुरवा की राजधानी प्रयाग में गंगा के किनारे थी। उसका नाम प्रतिष्ठानपुर था।

२. विश्वदेव। ३. पार्वण श्राद्ध में एक देवता।

पुरैन†—संज्ञा स्त्री० [सं० पुटकिनी, हिं० पुरइन] दे० 'पुरइन'। उ०—ज्यों पुरैन पर फुल्ल पद्मिनी तर चली, चले महारा दिए हंस सम युग बली। —साकेत, पृ० १३४।

पुरैथा—संज्ञा पुं० [हिं० पूरा + हाथ] हल की मूठ। परिहथा।

पुरैभा—संज्ञा स्त्री० [सं० करभ, हिं० कुरैभा] एक प्रकार की गाय। दे० 'कुरैभा'।

पुरैन—संज्ञा स्त्री० [सं० पुटकिनी] दे० 'पुरइन'।

पुरैनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पुरइन'।

पुरोगंता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० पुरोगन्तृ] दे० पुरोगामी [को०]।

पुरोग—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह (राष्ट्र या राजा) जो बिना किसी प्रकार की बाधा या शर्त के अपने पक्ष में आकर मिले।

पुरोगति—संज्ञा पुं० [सं०] श्वान [को०]।

पुरोगामिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्रगामी होने का भाव। आगे बढ़ने का भाव। उ०—इस प्रकार हम पुरोगामिता और न्याय को पूर्णतया स्वीकार करते हैं। —आ० भ० रा०, पृ० २२।

पुरोगामी¹—वि० [सं० पुरोगामिन्] [वि० स्त्री० पुरोगामिनी] अग्रगामी।

पुरोगामी²—संज्ञा पुं० १. श्वान। २. अग्रगामी व्यक्ति। ३. प्रधान व्यक्ति। नायक (को०)।

पुरोचन—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्योधन के एक मित्र का नाम।

विशेष—इसे दुर्योधन ने पांडवों को लाक्षागृह में जलाने के लिये नियुक्त किया था। भीमसेन लाक्षागृह से निकल पुरोचन के घर आग लगाकर माता और भाइयों समेत चले गए थे। वह अपने घर में जलकर मर गया।

पुरोजन्मा¹—वि० [सं० पुरोजन्मन्] पहले जनमनेवाला। जिसने पहले जन्म लिया हो (को०)।

पुरोजन्मा²—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा भाई। ज्येष्ठ भ्राता (को०)।

पुरोजव¹—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्कर द्वीप के सात खंडों में से एक खंड।

पुरोजव²—वि० १. जिसके अग्रभाग में वेग हो। २. आगे बढ़नेवाला।

पुरोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नदी की धारा या प्रवाह। २. पत्रमर्मर। पत्रशब्द। पत्तियों की खरखराहट (को०)।

पुरोडाश्, पुरोडाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. यव आदि के आटे की बनी हुई टिकिया जो कपाल में पकाई जाती थी।

विशेष—यह आकार में लंबाई लिए गोल और बीच में कुछ मोटी होती थी। यज्ञों में इसमें से टुकड़ा काटकर देवताओं के लिये मंत्र पढ़कर आहुति दी जाती थी। यह यज्ञ का अंग है।

२. हवि। ३. वह हवि या पुरोडाश जो यज्ञ से बच रहे। ४. वह वस्तु जो यज्ञ में होम की जाय। यज्ञभाग। ५. सोमरस। ६. आटे की चौंसी (चमसी ?)। ७. वे मंत्र जिनका पाठ पुरोडाश बनाते समय किया जाता है।

पुरोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] पूरे नगर में मनाया जानेवाला उत्सव (को०)।

पुरोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा।

पुरोद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] नगर के अंदर का उपवन (को०)।

पुरोध—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित।

पुरोधा—संज्ञा पुं० [सं० पुरोधस्] पुरोहित।

पुरोधानीय—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित।

पुरोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियतमा भार्या। प्यारी स्त्री।

पुरोनुवाक्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यज्ञों की तीन प्रकार की आहुतियों में एक। २. वह ऋचा जिसे पढ़कर पुरोनुवाक्या नाम की आहुति दी जाती है।

पुरोभागी—वि० [सं० पुरोभागिन्] [वि० स्त्री० पुरोभागिनी] १. अग्रभागवाला। २. दोषदर्शी। गुणों को छोड़ केवल दोषों की ओर ध्यान देनेवाला। छिद्रान्वेषी।

पुरोमारुत—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोवात। पुरवा हवा (को०)।

पुरोरवस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुरुरवा'।

पुरोवात—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व दिशा से चलनेवाली हवा। पुरवा (को०)।

पुरोवाद—संज्ञा पुं० [सं०] पहले का कथन। पूर्वकथन (को०)।

पुरोहित—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पुरोहितानी] वह प्रधान याजक जो राजा या और किसी यजमान के यहाँ अगुआ बनकर यज्ञादि श्रौतकर्म, गृहकर्म और संस्कार तथा शांति आदि अनुष्ठान करे कराए। कर्मकांड करनेवाला। कृत्य करनेवाला ब्राह्मण।

विशेष—वैदिक काल में पुरोहित का बड़ा अधिकार था और वह मंत्रियों में गिना जाता था। पहले पुरोहित यज्ञादि के लिये नियुक्त किए जाते थे। आजकल वे कर्मकांड करने के अतिरिक्त, यजमान की ओर से देवपूजन आदि भी करते हैं, यद्यपि स्मृतियों में किसी की ओर से देवपूजन करनेवाले ब्राह्मण का स्थान बहुत नीचा कहा गया है। पुरोहित का पद कुलपरंपरागत चलता है। अतः विशेष कुलों के पुरोहित भी नियत रहते हैं। उस कुल में जो होगा वह अपना भाग लेगा, चाहे कृत्य कोई दूसरा ब्राह्मण ही क्यों न कराए। उच्च ब्राह्मणों में पुरोहित कुल अलग होते हैं जो यजमानों के यहाँ दान आदि लिया करते हैं।

पुरोहिताई—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरोहित + आई (प्रत्य०)] पुरोहित का काम।

पुरोहितानी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरोहित + हिं० आनी (प्रत्य०)] पुरोहित की स्त्री।

पुरोहितिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरोहितानी (को०)।

पुरोहितिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुरोहित + इन (प्रत्य०)] पुरोहित की स्त्री। पुरोहितानी।

पुरोहिती—संज्ञा स्त्री० [सं० पुरोहित + ई (प्रत्य०)] दे० 'पुरोहिताई'। उ०—फँसा आसुरी माया में, हिंसा अथवा अपने पुरोहिती के मान की।—करुणा०, पृ० २७।

पुरौ†—संज्ञा पुं० [हिं०] पुरवट। पुर।

पुरौका—संज्ञा पुं० [सं० पुरौकस्] नगर में रहनेवाला व्यक्ति।

पुरौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूरना या सं० पूर्ति] पूर्ति करना।

पुरौनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूरना] १. समाप्त करना। पूर्ण करना। २. समाप्ति। पूर्ति।

पुर्ख(ु)†—संज्ञा पुं० [सं० पुरुष] दे० 'पुरुष'। उ०—पुर्ख अकेला वो सत सामर्थ सही, कुहन के कीन्ह सब जक्त जानी। —सं० दरिया, पृ० ७७।

पुर्जा—संज्ञा पुं० [हिं० पूरना] एक यंत्र जिसपर कलाबत्तू लपेटा जाता है।

पुर्जा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पुर्जह्] दे० 'पुरजा'।

पुर्तगाल—संज्ञा पुं० [अं०] योरप के दक्षिण पश्चिम कोने पर पड़नेवाला एक छोटा प्रदेश जो स्पेन से लगा हुआ है।

पुर्तगाली¹—वि० [हिं० पुर्तगाल + ई (प्रत्य०)] १. पुर्तगाल संबंधी। २. पुर्तगाल का रहनेवाला।

विशेष—योरप की नई जातियों में हिंदुस्तान में सबसे पहले पुर्तगाली लोग ही आए। पुर्तगाली व्यापारियों के द्वारा अकबर के समय से ही यूरोपीय शब्द यहाँ की भाषा में मिलने लगे। जैसे, गिरजा, पादरी, आलू, तंबाकू आदि का प्रचार तभी से होने लगा।

पुर्तगाली²—संज्ञा स्त्री॰ पुर्तगाल की भाषा।

पुर्तगीज—वि॰ [अं॰] पुर्तगाली। पुर्तगाल का रहनेवाला।

पुर्बला†—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'पुरबला'।

पुर्षⓅ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'पुरुष'। उ॰—अबल्ला इकल्ली। बियो पुर्ष मिल्ली।—पृ॰ रा॰, १।५६।

पुर्सांहाल—वि॰ [फ़ा॰ पुर्सां+अ॰ हाल] हाल पूछनेवाला। समाचार लेनेवाला। उ॰—अभी पारसाल तक उसका कोई पुर्साहाल नहीं था।—शराबी, पृ॰ ६।

पुर्सा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुरुष] दे॰ 'पुरसा'।

पुर्लंधरⓅ†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुरन्दर] दे॰ 'पुरंदर'।

पुल¹—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] किसी नदी, जलाशय, गड्ढे या खाईं के आर पार जाने का रास्ता जो नाव पाटकर या खंभों पर पटरियाँ आदि बिछाकर बनाया जाय। सेतु।

मुहा॰—पुल बँधना = पुल तैयार होना। पुल बाँधना = पुल तैयार करना। (किसी बात) का पुल बँधना = ढेर लगना। झड़ी बंधना। बहुत अधिकता होना। लगातार बहुत सा होना। (किसी बात का) पुल बाँधना = ढेर लगाना। झड़ी बाँधना। बहुत अधिकता कर देना। अतिशय करना। जैसे, बातों का पुल बाँधना, तारीफ का पुल बाँधना। पुल टूटना = (१) पुल गिर पड़ना। (२) बहुतायत होना। अधिकता होना। अटाला या जमघट लगना। जैसे,—देखने के लिये आदमियों का पुल टूट पड़ा।

पुल²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पुलक। रोमांच। २. शिव का एक अनुचर।

पुल³—वि॰ विपुल। बहुत सा।

पुल⁴—संज्ञा पुं॰ [तु॰] पैसा। पण [को॰]।

पुलक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. रोमांच। प्रेम, हर्ष आदि के उद्वेग से रोमकूपों (छिद्रों) का प्रफुल्ल होना। त्वक्कंप। २. एक तुच्छ धान्य। एक प्रकार का मोटा अन्न। ३. एक प्रकार का रत्न। एक नग या बहुमूल्य पत्थर। याकूत। चुनरी। महताब।

विशेष—यह भारत में कई स्थानों पर होता है पर राजपूताने का सबसे अच्छा होता है। दक्षिण में यह पत्थर विशाखपटम, गोदावरी, त्रिचिनापली और तिनावली जिलों में निकलता है। यह अनेक रंगों का होता है—सफेद, हरा, पीला, लाल, काला, चितकबरा। जितने भेद इस पत्थर के होते हैं उतने और किसी पत्थर के नहीं होते। यह देखने में कुछ दानेदार होता है। इसके द्वारा मानिक और नीलम कट सकते हैं।

४. शरीर में पड़नेवाला एक कीड़ा। ५. रत्नों का एक दोष। ६. हाथी का रातिब। ७. हरताल। ८. एक प्रकार का मद्यपात्र। ९. एक प्रकार की राई। १०. एक गंधर्व का नाम। ११. एक प्रकार का गेरू। गिरिमाटी। १२. एक प्रकार का कद।

पुलकनाⓅ—क्रि॰ अ॰ [सं॰ पुलक+ना (प्रत्य॰)] पुलकित होना। प्रेम, हर्ष आदि के कारण प्रफुल्ल होना। गद्गद होना।

पुलकस्पंद—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुलक+स्पन्द] पुलकजनित स्पंदन। पुलकित होने की स्थिति। उ॰—जग के दूषित बीज नष्ट कर, पुलकस्पंद भर खिला स्पष्टतर।—अपरा, पृ॰ ५९।

पुलकांग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुलकाङ्ग] वरुण का पाश [को॰]।

पुलकाईⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ पुलक+आई (प्रत्य॰)] पुलकित होने का भाव। गद्गद होना।

पुलकाना—क्रि॰ स॰ [सं॰ पुलक+हिं॰ आना (प्रत्य॰)] पुलकित करना। प्रफुल्लित करना। उ॰—कुसुमों ने हँसना सिखलाया मृदु लहरों ने पुलकाया।—वीणा, पृ॰ १२।

पुलकालय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कुबेर का एक नाम।

पुलकालि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पुलकावलि। हर्ष से प्रफुल्ल रोमराजि। उ॰—बीच राम गुनगन नयन जल अंकुर पुलकालि। सुकृती सुतन सुखेत्र बर बिलसत तुलसी सालि।—तुलसी (शब्द॰)।

पुलकावलि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] हर्ष से प्रफुल्ल रोम। रोमहर्ष।

पुलकित—वि॰ [सं॰] रोमांचित। प्रेम या हर्ष के वेग से जिसके रोएँ उभर आए हों। गद्गद।

पुलकी¹— [वि॰ सं॰ पुलकिन्] [वि॰ स्त्री॰ पुलकिनी] रोमांचयुक्त। हर्ष या प्रेम से गद्गद होनेवाला।

पुलकी²—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुलकिन्] १. धारा कदंब। २. कदंब।

पुलकोत्कंप—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पुलकोत्कम्प] हर्षादि से रोमांचित हो काँपना [को॰]।

पुलकोद्गम, पुलकोद्भेद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पुलक होना। रोमांच या रोमहर्ष होना [को॰]।

पुलग†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्लवग ?] अश्व। घोड़ा। उ॰—पुलग साज तिणनिजरू गुजराय।—रघु॰ रू॰, पृ॰ २४१।

पुलट†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ पलटना] दे॰ 'पलट'।

पुलटिस—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰ पोल्टिस] फोड़े, घाव आदि को पकाने या बहाने के लिये उसपर चढ़ाया हुआ अलसी, रेंड़ी आदि का मोटा लेप।

क्रि॰ प्र॰—चढ़ाना।—बाँधना।

पुलना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ √पुल्] १. चलना। उ॰—(क) जेती जउ मन माँहि, पंजर जइ तेती पुलइ।—ढोला॰, दू॰ १७१। (ख) नाम निर्गुण की गम्म कैसे लहै तात निर्गुण के पंथ पुलिया।—राम॰ धर्म॰, पृ॰ १३६। २. काँपना। कंपित होना। उ॰—छननंकि बान बजि रोम धंक। कायर पुलंत सूरा निसंक।—पृ॰ रा॰, १।६५८।

पुलपुल†—वि॰ [अनु॰] दे॰ 'पुलपुला'।

पुलपुला—वि० [अनु०] जिसके भीतर का भाग ठोस न हो। जो भीतर इतना ढीला और मुलायम हो कि दबाने से धँस जाय। जो छूने में कड़ा न हो (विशेषतः फलों के लिये)। जैसे,—ये आम पककर पुलपुले हो गए हैं।

पुलपुलाना—क्रि० स० [हिं० पुलपुला] १. किसी मुलायम चीज को दबाना। जैसे, आम पुलपुलाना। २. मुँह में लेकर दबाना। चूसना। बिना चबाए खाना। जैसे, आम को मुँह में लेकर पुलपुलाना।

पुलपुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुलपुला + हट (प्रत्य०)] पुलपुला होने का भाव। मुलायमियत।

पुलसरात—पुं० [फा० पुल + सरात] मुसलमानों के अनुसार (हिंदुओं की वैतरणी की भाँति) एक नदी का पुल जिसे मरने के उपरांत जीवों को पार करना पड़ता है। कहते हैं कि पापियों के लिये यह पुल बाल के समान पतला और पुण्यात्माओं के लिये खासी सड़क के समान चौड़ा हो जाता है। उ०—नासिक पुलसरात पथ चला। तेहि कर भौंहैं हैं दुइ पला। —जायसी (शब्द०)

पुलस्त(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुलस्त्य] दे० 'पुलस्त्य'।

पुलस्ति—संज्ञा पुं० [सं०] पुलस्त्य मुनि। उ०—सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा।—मानस, ६।२४।

पुलस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि जिनकी गिनती सप्तर्षियों और प्रजापतियों में है।

विशेष—ये ब्रह्मा के मानसपुत्रों में थे। ये विश्रवा के पिता और कुबेर और रावण के पितामह थे। विष्णुपुराण के अनुसार ब्रह्मा के कहे हुए आदिपुराण का मनुष्यों के बीच इन्होंने प्रचार किया था।

२. शिव का एक नाम।

पुलह—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि जो ब्रह्मा के मानसपुत्रों और प्रजापतियों में से हैं। ये सप्तर्षियों में हैं। २. एक गंधर्व। ३. शिव का एक नाम।

पुलहना(पु)—क्रि० अ० [सं० पल्लवन] दे० 'पलुहना'। उ०—तोहि देखे, पिउ ! पुलहै कया। उमरा चित्त, बहुरि करु मया। —जायसी (शब्द०)।

पुलाग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते करँदे के पत्तों की तरह और फल गोल होते हैं जिनमें से गिरी निकलती है। इससे तेल निकलता है। यह वृक्ष उड़ीसा में होता है।

पुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपजिह्विका [को०]।

पुलाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक कदन्न। अँकरा। २. उबाला हुआ चावल। भात। ३. भात का माड़। पीच। ४. मांसोदन। पुलाव। ५. अल्पता। संक्षेप। ६. क्षिप्रता। जल्दी।

पुलाकी—संज्ञा पुं० [सं० पुलाकिन्] वृक्ष।

पुलायित—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की एक चाल [को०]।

पुलाव—संज्ञा पुं० [सं० पुलाक, मि० फ़ा० पलाव] एक व्यंजन या खाना जो मांस और चावल को एक साथ पकाने से बनता है। मांसोदन।

पुलिंग—संज्ञा पुं० [सं० पुल्लिङ्ग] दे० 'पुंलिंग'। उ०—औरै रूप पुलिंग सों आनहु उर निरधार।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३०।

पुलिंद—संज्ञा पुं० [सं०] १. भारतवर्ष की एक प्राचीन असभ्य जाति।

विशेष—ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि विश्वामित्र के जिन पुत्रों ने शुनःशेप को ज्येष्ठ नहीं माना था वे ऋषि के शाप से पतित हो गए। उन्हीं से पुलिंद, शबर आदि बर्बर जातियों की उत्पत्ति हुई। रामायण, महाभारत, पुराण, काव्य सबमें इस जाति का उल्लेख है। महाभारत सभापर्व में सहदेव के दिग्विजय के संबंध में लिखा है कि उन्होंने अर्बुक राजाओं को जीतकर वातापिप को वश में किया और उसके पीछे पुलिंदों को जीतकर वे दक्षिण की ओर बढ़े। कुछ लोगों के अनुमान के अनुसार यदि अर्बुक को आबू पहाड़ और वात को वातापिपुरी(बादामी)मानें तो गुजरात और राजपुताने के बीच पुलिंद जाति का स्थान ठहरता है। महाभारत (भीष्मपर्व) में एक स्थान पर 'सिंधुपुलिंदका.' भी है इससे उनका स्थान सिंधु देश के आसपास भी सूचित होता है। वामनपुराण में पुलिंदों की उत्पत्ति की एक कथा है कि भ्रूणहत्या के प्रायश्चित्त के लिये इंद्र ने कालंजर के पास तपस्या की थी और उनके साथ उनके सहचर भी भूलोक में आए थे। उन्हीं सहचरों की संतति से पुलिंद हुए जो कालंजर और हिमाद्रि के बीच बसते थे। अशोक के शहबाजगढ़ी के लेख में भी पुलिंद जाति का नाम आया है।

२. वह देश जहाँ पुलिंद जाति बसती थी। ३. जहाज का मस्तूल (को०)।

पुलिंदा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पुल (= ढेर), हिं० पूला] लपेटे हुए कपड़े, कागज आदि का छोटा मुट्ठा। गड्डी। पूला। गट्ठा। बंडल। जैसे, कागज का पुलिंदा।

पुलिंदा[2]—संज्ञा स्त्री० [?] एक छोटी नदी जो ताप्ती में मिलती है। महाभारत में इसका उल्लेख है।

पुलिकेशि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चालुक्यवंशीय एक राजा जिन्होंने ईसा की छठी शताब्दी में पल्लवों की राजधानी वातापिपुरी (बादामी) को जीतकर दक्षिण में चालुक्य राज्य स्थापित किया था। २. चालुक्यवंशीय एक सबसे प्रतापी राजा जो सन् ६१० के लगभग वातापिपुरी के सिंहासन पर बैठा और जिसने सारा दक्षिण और महाराष्ट्र प्रदेश अपने अधिकार में किया।

विशेष—यह द्वितीय पुलिकेशि के नाम से प्रसिद्ध है। परम प्रतापी हर्षवर्धन, जिसकी राजसभा में बाणभट्ट थे और जिसके समय में प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्सांग भारतवर्ष आया था, इसका समकालीन था। हर्षवर्धन सारे उत्तरीय भारत को अपने अधिकार में लाया पर जब दक्षिण की ओर

उसने चढ़ाई की तब पुलिकेशि के हाथ से गहरी हार खाकर भाग आया।

पुलिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सीड़ या कीचड़ की जमीन जिस पर से पानी हटे थोड़े ही दिन हुए हों। पानी के भीतर से हाल की निकली हुई जमीन। चर। २. नदी आदि का तट। तीर। किनारा। उ०—आवत धीर समीर तें, चल्या पुलिन को जात।—घनानंद, पृ० १७८। ३. नदी के बीच पड़ी हुई रेत। ४. एक यक्ष का नाम।

पुलिनवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी [को०]।

पुलिया†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पुल] छोटा पुल।

पुलिरिक—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

पुलिश—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के एक प्राचीन आचार्य जिनके नाम से पौलिश सिद्धांत प्रसिद्ध है जो वराहमिहिरोक्त पंच सिद्धांतों में है।

विशेष—अलबरूनी ने पुलिश या पलस को यूनानी (यवन) लिखा है। कुछ इतिहासज्ञों ने पुलिश को मिस्र देश का बताया है। आजकल मूल पौलिश सिद्धांत नहीं मिलता। भटोत्पल और बलभद्र ने थोड़े से वचन उद्धृत किए हैं। उन उद्धृत वचनों से निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि पुलिश कोई विदेशी ही था।

पुलिस—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. नगर, ग्राम आदि की शांतिरक्षा के लिये नियुक्त सिपाहियों और कर्मचारियों का वर्ग। प्रजा की जान और माल की हिफाजत के लिये मुकर्रर सिपाहियों और अफसरों का दल। २. अपराधों को रोकने और अपराधियों का पता लगाकर उन्हें पकड़ने के लिये नियुक्त सिपाही या अफसर। पुलिस का सिपाही या अफसर।

यौ०—पुलिस काररवाई, पुलिस राज = आतंक। दबदबा।

पुलिसमैन—संज्ञा पुं० [अं०] पुलिस का प्यादा। पुलिस का सिपाही। कास्टेबल।

पुलिहोरा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक पकवान। उ०—विविध पंच पकवान अपारे। सक्कर पुगल और पुलिहोरा।—रघुराज (शब्द०)।

पुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] काले और भूरे रंग की एक चिड़िया जो सारे उत्तर भारत में पंजाब से लेकर बंगाल तक होती है।

पुलीस†—संज्ञा स्त्री० [अं० पुलिस] दे० 'पुलिस'। उ०—पुलीस और अदालत के अमलों ने लूट मारा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६१।

पुलीबैठ—संज्ञा पुं० [फ़ा० पील (हाथी =)+हिं० बैठना; या हिं० पूलना (=चलना)+बैठना] पीछे के दोनो पैर झुका दे। पीलवानों की एक बोली जिसको सुनकर हाथी पीछे के दोनों पैर झुका देता है। हाथीवानों की बोली।

पुलोम—संज्ञा पुं० [सं० पुलोमन्] १. एक दैत्य जिसकी कन्या शची थी। इंद्र ने युद्ध में पुलोम को मारकर उसकी कन्या शची से ब्याह किया था। २. एक राक्षस। ३. आंध्र वंश का एक राजा।

यौ०—पुलोमजित्, पुलोमद्विट्, पुलोमभिद् = इंद्र। पुलोमपुत्री = दे० 'पुलोमजा'।

पुलोमजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुलोम की कन्या इंद्राणी। शची।

पुलोमपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुलोम असुर की कन्या। इंद्रपत्नी शची [को०]।

पुलोमही—संज्ञा स्त्री० [सं०] अहिफेन। अफीम।

पुलोमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भृगु की पत्नी का नाम जो वैश्वानर नामक दैत्य की कन्या थी। च्यवन ऋषि उन्हीं के पुत्र थे।

पुलोमारि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

पुल्कस—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिय स्त्री से कही जाती है। शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् में इस जाति का उल्लेख है।

पुल्ल¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक फूल।

पुल्ल²—वि० विकसित। फुल्ल [को०]।

पुल्ला†—संज्ञा पुं० [हिं० फूल] नाक में पहनने का एक गहना।

पुल्ली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़े के सुम के ऊपर का हिस्सा।

पुवा†—संज्ञा पुं० [सं० अपूप] दे० 'पूवा', 'मालपूआ'। उ०—पुवा, सुहारी, मोदक भारी। गूझा, रसगूँझा, दधि न्यारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०६।

पुवार—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पयाल'।

पुश्क—संज्ञा स्त्री० [तु०] बिल्ली। मार्जार [को०]।

पुश्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. पृष्ठ। पीठ। पीछा। २. वंशपरंपरा में कोई एक स्थान। पिता, पितामह, प्रपितामह आदि या पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि का पूर्वापर स्थान। पीढ़ी।

यौ०—पुश्तखम = वह जिसकी पीठ खम हो। कुबड़ा। पुश्तखार। पुश्त दर पुश्त = वंशपरंपरा में। बाप के पीछे बेटा, बेटे के पीछे पोता इस क्रम से लगातार। पुश्तपनाह = पक्षपाती। मददगार। सहायक। पुश्तहा पुश्त = कई पीढ़ियों तक।

पुश्तक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पुश्त] घोड़े, गदहे, आदि का पीछे के दोनो पैरों से लात मारना। दोलत्ती।

क्रि० प्र०—झाड़ना। —मारना।

पुश्तखार—संज्ञा पुं० [फ़ा० पुश्तखार] पीठ खुजलाने का सींग या हाथीदाँत आदि का एक पंजा [को०]।

पुश्तनामा—संज्ञा पुं० [फा० पुश्तनामह्] वह कागज जिसपर पूर्वापर क्रम से किसी कुल में उत्पन्न लोगों के नाम लिखे हों। वंशावली। पीढ़ीनामा। कुरसीनामा।

पुश्तवानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पुश्त+हिं० वान (प्रत्य०)] वह आड़ी लकड़ी जो किवाड़ के पीछे पल्ले की मजबूती के लिये लगी रहती है।

पुश्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० पुश्तह्] १. पानी की रोक के लिये

या मजबूती के लिये किसी दीवार से लगातार कुछ ऊपर तक जमाया हुआ मिट्टी, ईंट, पत्थर आदि का ढेर या ढालुआँ टीला। २. पानी की रोक के लिये कुछ दूर तक उठाया हुआ टीला। बाँध। ऊची मेंड़। ३. किताब की जिल्द के पीछे का चमड़ा।

क्रि० प्र०—उठाना। —देना। —बाँधना।

४. पौने चार मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन आघात और एक खाली रहता है।

पुश्तापुश्त—क्रि० वि० [फ़ा०] पीछे के क्रम से। पश्चाद्वर्ती (को०)।

पुश्ताबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. पुश्ते की बँधाई। पुश्ता उठाने की क्रिया या भाव। २. पुश्ते का काम।

पुश्तारा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पुश्तारह्] पीठ पर उठाया जा सकनेवाला बोझ। गट्ठर। भार (को०)।

पुश्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. टेक। सहारा। आश्रय। थाम। २. सहायता। पृष्ठरक्षा। मदद।

क्रि० प्र० —करना। —होना।

३. पक्ष। तरफदारी।

क्रि० प्र०— लेना।

४. बड़ा तकिया जिसपर पीठ टिकाकर बैठते हैं। पीठ टेकने का तकिया। गावतकिया। ५. बाँध। मेड़।

पुश्तैन—वि० [फ़ा० पुश्त] पुरुषपरंपरा। वंशपरंपरा। पीढ़ी दर पीढ़ी।

पुश्तैनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पुश्त] जो कई पुश्तों। से चला आता हो। कई पीढ़ियों से चला आता हुआ। दादा परदादा के समय का पुराना। जैसे, पुश्तैनी बीमारी, पुश्तैनी नौकर। २. जो कई पुश्तों तक चला चले। आगे की पीढ़ियों तक चलनेवाला। बेटे, पोते, परपोते आदि तक लगातार चला चलनेवाला। जैसे,—उसे पुश्तैनी खिताब मिला है।

पुष[1]—वि० [सं०] पोषक। (को०)।

पुष[2]—संज्ञा पुं० [सं० पुष्य] एक नक्षत्र। दे० 'पुष्य'। उ०—काल जोगण भद्रा नही पुष नक्षत्र नई कातिक मास।—बी० रासो०, पृ० ४०।

पुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलिहारी का पौधा। कलियारी।

पुषित—वि० [सं०] १. पालण किया हुआ। पाला पोसा हुआ। २. वर्धित।

पुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] पोषण। पुष्टि (को०)।

पुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल। २. जलाशय। ताल। पोखरा। ३. कमल। ४. करछी का कटोरा। ५. ढोल, मृदंग आदि का मुँह जिसपर चमड़ा मढ़ा जाता है। ६ हाथी की सूँड़ का अगला भाग। ७. आकाश। ८. बाण। तीर। ९. तलवार की म्यान या फल। १०. पिंजड़ा। ११. पद्मकंद। १२. नृत्यकला। १३. सर्प। १४. युद्ध। १५. भाग। अंश। १६. मद। नशा। १७. भग्नपाद नक्षत्र का एक अशुभ योग जिसकी शांति की जाती है। १८. पुष्करमूल। १९. कूठ। कुष्ठोषधि। कुष्ठभेद। २०. एक प्रकार का ढोल। २१. सूर्य। २२. एक रोग। २३. एक दिग्गज। २४. सारस पक्षी। २५. विष्णु का एक नाम। २६. शिव का एक नाम। २७. पुष्कर द्वीपस्थ वरुण के एक पुत्र। २८. एक असुर। २९. कृष्ण के एक पुत्र का नाम। ३०. बुद्ध का एक नाम। ३१. एक राजा जो नल के भाई थे।

विशेष—इन्होंने नल को जूए में हराकर निषध देश का राज्य ले लिया था। पीछे नल ने जूए में ही फिर राज्य को जीत लिया।

३२. भरत के एक पुत्र का नाम। ३३. पुराणों में कहे गए सात द्वीपों में से एक।

विशेष—दधि समुद्र के आगे यह द्वीप बताया गया है। इसका विस्तार शाकद्वीप से दूना कहा गया है।

३४. मेघों का एक नायक।

विशेष—जिस वर्ष मेघों के ये अधिपति होते हैं उस वर्ष पानी नहीं बरसता और न खेती होती है।

३५. एक तीर्थ जो अजमेर के पास है।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा ने इस स्थान पर यज्ञ किया था। यहाँ ब्रह्मा का एक मंदिर है। पद्म और नारदपुराण में इस तीर्थ का बहुत कुछ माहात्म्य मिलता है। पद्मपुराण में लिखा है कि एक बार पितामह ब्रह्मा हाथ में कमल लिए यज्ञ करने की इच्छा से इस सुंदर पर्वत प्रदेश में आए। कमल उनके हाथ से गिर पड़ा। उसके गिरने का ऐसा शब्द हुआ कि सब देवता काँप उठे। जब देवता ब्रह्मा से पूछने लगे तब ब्रह्मा ने कहा—'बालकों का घातक वज्रनाभ असुर रसातल में तप करता था वह तुम लोगों का संहार करने क लिये यहाँ आना ही चाहता था कि मैंने कमल गिराकर उसे मार डाला। तुम लोगों की बड़ी भारी विपत्ति दूर हुई। इस पद्म के गिरने के कारण इस स्थान का नाम पुष्कर होगा। यह परम पुण्यप्रद महातीर्थ होगा। पुष्कर तीर्थ का उल्लेख महाभारत में भी है। साँची में मिले हुए एक शिलालेख से पता लगता है कि ईसा से तीन सौ वर्ष से भी और पहले से यह तीर्थस्थान प्रसिद्ध था। आजकल पुष्कर में जो ताल है उसके किनारे सुंदर घाट और राजाओं के बहुत से भवन बने हुए हैं। यहाँ ब्रह्मा, सावित्री, बदरीनारायण और वराह जी के मंदिर प्रसिद्ध हैं।

३६. विष्णु भगवान् का एक रूप।

विशेष—विष्णु की नाभि से जो कमल उत्पन्न हुआ था वह उन्हीं का एक अंग था। इसकी कथा हरिवंश में बड़े विस्तार के साथ आई है। पृथ्वी पर के पर्वत आदि नाना भाग इस पद्म के अंग कहे गए हैं।

पुष्करकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलपद्मिनी।

पुष्करनाडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलपद्मिनी।

पुष्करनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु (को०)।

पुष्करपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कमलपत्र ।

पुष्करपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल का पत्ता । २. एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदी बनाने के काम में आती थी ।

पुष्करपलाश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुष्करपत्र' (को०) ।

पुष्करप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मधुमक्षिका । २. मोम (को०) ।

पुष्करबीज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल का बीज (को०) ।

पुष्करमूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओषधि का मूल या जड़ जो कश्मीर देश के सरोवरों में उत्पन्न कही जाती है ।

विशेष—यह ओषधि आजकल नहीं मिलती; वैद्य लोग इसके स्थान पर कुष्ठ या कूठ का व्यवहार करते हैं ।

पुष्करव्याघ्र—संज्ञा पुं० [सं०] घड़ियाल । मगर । (को०) ।

पुष्करशिफा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्करमूल ।

पुष्करसागर—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करमूल ।

पुष्करसारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ललितविस्तर में गिनाई हुई लिपियों में से एक ।

पुष्करस्थपति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०) ।

पुष्करस्रज्—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्विनीकुमार । २. कमल के फूलों की माला (को०) ।

पुष्कराक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु (को०) ।

पुष्कराक्ष[2]—वि० कमल जैसी आँखोंवाला । कमलनेत्र ।

पुष्कराख्य—संज्ञा पुं० [सं०] सारस ।

पुष्कराग्र—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी की सूँड़ का छोर (को०) ।

पुष्करावर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] मेघों के एक विशेष अधिपति ।

पुष्कराह्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. सारस । २. पुष्करमूल (को०) ।

पुष्करिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें लिंग के अग्रभाग पर फुंसियाँ हो जाती हैं ।

पुष्करिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हथिनी । २. कमलों से भरा हुआ तालाब । ३. कमल का पौधा । ४. कमलिनी । ५. पुष्करमूल । ६. कमल का समूह । ७. स्थलपद्मिनी । ८. सौ धनुष की नाप का एक प्रकार का चौकोर तालाब (को०) ।

पुष्करी[1]—संज्ञा पुं० [सं० पुष्करिन्] हाथी ।

पुष्करी[2]—वि० पुष्करयुक्त । कमलयुक्त (को०) ।

पुष्कल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार ग्रास की भिक्षा । २. अनाज नापने का एक प्राचीन मान जो ६४ मुट्ठियों के बराबर होता था । ३. राम के भाई भरत के दो पुत्रों में से एक । ४. एक असुर । ५. एक प्रकार का ढोल । ६. एक प्रकार की वीणा । ७. शिव । ८. वरुण के एक पुत्र । ९. एक बुद्ध का नाम । १०. मेरु पर्वत का एक नाम (को०) ।

पुष्कल[2]—वि० १. बहुत । अधिक । ढेर सा । प्रचुर । २. भरापूरा । परिपूर्ण । ३. श्रेष्ठ । ४. समीपस्थ । उपस्थित । ५. पवित्र । ६. शब्द या कोलाहल से पूर्ण (को०) ।

पुष्कलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कस्तूरीमृग । २. कील । खूँटी । ३. अर्गला । ४. बौद्धभिक्षु (को०) ।

पुष्कलावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] गांधार देश की प्राचीन राजधानी ।

विशेष—विष्णुपुराण में लिखा है कि भरत के पुत्र पुष्कल ने इस नगरी को बसाया था । सिकंदर की चढ़ाई के समय में यह नगरी थी क्योंकि एरियन आदि यूनानी लेखकों ने पेकुकेले, प्युकोलेतिस आदि नामों से इसका उल्लेख किया है । एरियन ने लिखा है कि यह नगरी बहुत बड़ी थी और सिंधुनद से थोड़ी ही दूर पर थी । ईसा की सातवीं शताब्दी में आए हुए चीनी यात्री हुएन्सांग ने भी इस नगरी में हिंदू देवमंदिरों और बौद्ध स्तूपों का होना लिखा है । पेशावर से नौ कोस उत्तर स्वात और काबुल नदी के संगम पर जहाँ हस्तनगर नाम का गाँव है वहीं प्राचीन पुष्कलावती थी ।

पुष्ट[1]—वि० [सं०] १. पोषण किया हुआ । पाला हुआ । २. तैयार । मोटा ताजा । बलिष्ठ । ३. मोटा ताजा करनेवाला । बलवर्धक । जैसे,—गाजर का हलुआ बड़ा पुष्ट है । ४. दृढ़ । मजबूत । पक्का । ५. पूर्ण । पूरा (को०) । ६. गंभीर । पूर्ण ध्वनियुक्त (को०) ।

पुष्ट[2]—संज्ञा पुं० १. विष्णु । २. पोषण (को०) ।

पुष्टई—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्ट + हिं० ई (प्रत्य०)] पुष्ट करनेवाली औषध । बल-वीर्य-वर्धक औषध । ताकत की दवा ।

पुष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोटा ताजापन । मजबूती । बलिष्ठता । २. पोढ़ापन । दृढ़ता ।

पुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पोषण । २. मोटाताजापन । बलिष्ठता । ३. वृद्धि । संतति की बढ़ती । ४. दृढ़ता । मजबूती । ५. बात का समर्थन । पक्कापन । जैसे,—इस बात से तुम्हारे कथन की पुष्टि होती है । ६. सोलह मातृकाओं में से एक । ७. मंगला, विजया आदि आठ प्रकार की चारपाइयों में से एक । ८. धर्म की पत्नियों में से एक । ९. एक योगिनी । १० असगंधा । असगंध । ११. संपन्नता । धनाढ्यता । वैभव (को०) । १२. रक्षण । सहायता (को०) । १३. अभ्युदय के लिये किया जानेवाला एक धार्मिक कृत्य (को०) ।

पुष्टिकर—वि० [सं०] पुष्ट करनेवाला । बल-वीर्य-वर्धक । ताकत देनेवाला । जैसे, पुष्टिकर पदार्थों का भोजन ।

पुष्टिकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा (काशीखंड) ।

पुष्टिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक धार्मिक कृत्य जो वैभव और संपन्नता प्राप्त करने के लिये किया जाता है (को०) ।

पुष्टिकांत—संज्ञा पुं० [सं० पुष्टिकान्त] गणेश (को०) ।

पुष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल की सीप । सुतही । सीपी ।

पुष्टिकाम—वि० [सं०] अभ्युदय का इच्छुक । पुष्टि की कामना करनेवाला (को०) ।

पुष्टिकारक—वि० [सं०] पुष्टि करनेवाला । बल-वीर्य-कारक ।

पुष्टिद—वि० [सं०] पुष्टि देनेवाला । पुष्टिकारक (को०) ।

पुष्टिवृषयत्न—संज्ञा पुं० [सं०] भाग के जवे को आग से ही

सेंककर या किसी प्रकार का गरम गरम लेप करके अच्छा करने की युक्ति।

पुष्टिदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. असगंधा। असगंध। २. वृद्धि नाम की ओषधि।

पुष्टिपति—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का एक भेद।

पुष्टिप्रद—वि० [सं०] पुष्टिकारक [को०]।

पुष्टिमति—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का एक भेद।

पुष्टिमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वल्लभ संप्रदाय। वल्लभाचार्य के मतानुकूल वैष्णव भक्तिमार्ग।

पुष्टिलीला—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्टि (=पुष्टिमार्ग)+लीला] रासलीला। कृष्ण लीला। उ०—सो इन पुष्टिलीला को अनुभव कियो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७।

पुष्टिवर्धक—वि० [सं०] दे० 'पुष्टिकारक'।

पुष्टिवर्धन[1]—वि० [सं०] पुष्टि को बढ़ानेवाला। सुख संपन्नता को बढ़ानेवाला। अभ्युदय की सिद्धि करनेवाला [को०]।

पुष्टिवर्धन[2]—संज्ञा पुं० मुर्गा [को०]।

पुष्पंधय—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पन्धय] १ भ्रमर। भौंरा २. मधुमक्खी [को०]।

पुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूल। पौधों का वह अवयव जो ऋतुकाल में उत्पन्न होता है।

विशेष—दे० 'फूल'।

२. ऋतुमती स्त्री का रज। ३. आँख का एक रोग। फूला। फूली। ४ घोड़ों का एक लक्षण। चित्ती।

विशेष—जिस रंग का घोड़ा हो उससे भिन्न रंग की चित्ती को पुष्प कहते हैं। कनपटी, ललाट, सिर, कंधे, छाती, नाभि और कंठ में ऐसे चिह्न हों तो शुभ और ओठ, कान की जड़, भौं और चूतड़ पर हों तो अशुभ माने जाते हैं। ५ विकास। विकसित होना। ६. कुबेर का विमान। पुष्पक। ७. एक प्रकार का अंजन या सुरमा। ८. रसौत। ९. पुष्करमूल। १०. लवंग। ११. मांस (वाममार्गी)। १२. पुखराज। पुष्पराग (को०)। १३. नाटक में कोई ऐसी बात कहना जो विशेष रूप से प्रेम या अनुराग उत्पन्न करनेवाली हो। जैसे,—यह साक्षात् लक्ष्मी है। इसकी हथेली पारिजात के नवदल है. नहीं तो पसीने के बहाने इसमें से अमृत कहाँ से टपकता।

पुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूल। २. कुबेर का विमान।

विशेष—यह विमान आकाशमार्ग से चलता था। कुबेर को हराकर रावण ने यह विमान छीन लिया था। रावण के वध के उपरांत राम ने इसे फिर कुबेर को दे दिया।

३. आँख का एक रोग। फूला। फूली। ४. जड़ाऊ कंगन। ५. रसांजन। रसौत। ६. हीरा कसीस। ७. पीतल। ८. लोहे या पीतल का मैल। ९. मिट्टी की अँगीठी। १०. एक प्रकार का निर्विष सर्प। बिना विष का एक साँप। ११. एक पर्वत का नाम। १२. लोहे का बर्तन। लोहपात्र (को०)। १३. प्रासाद बनाने का एक प्रकार का मंडप।

विशेष—यह मंडप चौंसठ खंभों का होना चाहिए।

१४. वह खंभा जिसके कोने आठ भागों में बँटे हों।

पुष्पकरंड—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पकरण्ड] दे० 'पुष्पकरंडक'।

पुष्पकरंडक—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पकरण्डक] १. उज्जयिनी का एक पुराना उद्यान या बगीचा जो महाकाल के मंदिर के पास था। २. फूलों की डलिया (को०)।

पुष्पकरंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्पकरण्डिनी] उज्जयिनी।

पुष्पकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वसंत ऋतु। २. स्त्रियों का ऋतुकाल [को०]।

पुष्पकासीस—संज्ञा पुं० [सं०] हीरा कसीस।

पुष्पकीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूल का कीड़ा। २. भौंरा। भ्रमर।

पुष्पकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसमें केवल फूलों का क्वाथ पीकर महीना भर रहना पड़ता है।

पुष्पकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। पुष्पकेतु [को०]।

पुष्पकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्पांजन। २. कामदेव।

पुष्पगंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्पगण्डिका] लास्य के दस अंगों में से एक। बाजे के साथ अनेक छंदों में स्त्रियों द्वारा पुरुषों का और पुरुषों द्वारा स्त्रियों का अभिनय और गान। (नाट्यशास्त्र)

पुष्पगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्पगन्धा] जूही।

पुष्पगवेधुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबला।

पुष्पघातक—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस [को०]।

पुष्पचय, पुष्पचयन—संज्ञा पुं० [सं०] फूल तोड़ना। फूल चुनना [को०]।

पुष्पचाप—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। पुष्पधन्वा।

पुष्पचामर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दौना। २. केवड़ा।

पुष्पज—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्प से उत्पन्न पुष्परज। मकरंद [को०]।

पुष्पजीवी—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पजीविन्] मालाकार। माली [को०]।

पुष्पदंत—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पदन्त] १. वायुकोण का दिग्गज। २. एक प्रकार का नगरद्वार। ३. शिव का अनुचर एक गंधर्व जिसका रचा हुआ महिम्न स्तोत्र कहा जाता है।

विशेष—इस गंधर्व के विषय में कहा जाता है कि यह एक बार शिव का निर्माल्य लाँघ गया था। इससे शिव ने शाप द्वारा इसका आकाशगमन रोक दिया था। पीछे महिम्न स्तोत्र बनाकर पाठ करने से इसे खेचरत्व प्राप्त हो गया।

४. एक विद्याधर। ५. कार्तिकेय का एक अनुचर। ६. चंद्र और सूर्य (को०)।

पुष्पदंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग।

पुष्पद—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष। पेड़ [को०]।

पुष्पदाम—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पदामन्] १. पुष्पों की माला। २. एक छंद का नाम [को०]।

पुष्पद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्प का रस। मकरंद [को०]।

पुष्पद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] फूलवाला वृक्ष। केवल पुष्प का वृक्ष [को०]।

पुष्पच—संज्ञा पुं० [सं०] व्रात्य ब्राह्मण से उत्पन्न एक जाति ।

विशेष—व्रात्य ब्राह्मण की सवर्णा पत्नी से उत्पन्न संतति पुष्पच कहलाती है ।

पुष्पधनुस्—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पधनुष्] कामदेव ।

पुष्पधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पधन्वन्] १. कामदेव । मीनकेतु । २. एक रसौषध ।

विशेष—यह रससिंदूर, सीसे, लोहे, अभ्रक और वंग में धतूरा, भाँग, जेठी मधु, सेमरामूल मिलाकर पान के रस की भावना देने से बनती है और कामोद्दीपक तथा शक्तिवर्धक मानी जाती है ।

पुष्पधारण—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु (को०) ।

पुष्पध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

पुष्पनिक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर । भौंरा ।

पुष्पनिर्यास, पुष्पनिर्यासक—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्परस । मकरंद ।

पुष्पनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वस्ति की पिचकारी की सलाई ।

पुष्पपत्री—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पपत्रिन्] कामदेव ।

पुष्पपथ—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों के रज के निकलने का मार्ग । योनि । भग ।

पुष्पपदवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] योनि । भग (को०) ।

पुष्पपांडु—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पपाण्डु] एक प्रकार का साँप ।

पुष्पपिंड—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पपिण्ड] अशोक का पेड़ ।

पुष्पपुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूल की पँखड़ियों का आधार जो कटोरी के आकार का होता है । २. उक्त आकार का हाथ का चुगुल ।

पुष्पपुर—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन पाटलिपुत्र (पटना) का एक नाम ।

पुष्पपेशल—वि० [सं०] पुष्प की तरह कोमल । फूल सा मृदु ।

पुष्पप्रचय, पुष्पप्रचाय—संज्ञा पुं० [सं०] फूल चुनना (को०) ।

पुष्पप्रस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्पशय्या । फूलों का बिछौना (को०) ।

पुष्पप्रियक—संज्ञा पुं० [सं०] विजयसाल ।

पुष्पफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुम्हड़ा । २. कैथ । कपित्थ । ३. अर्जुन वृक्ष ।

पुष्पबाण—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

पुष्पभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु शिल्प में एक प्रकार का मंडप जिसमें ६२ खंभे हों ।

पुष्पभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का एक उपवन ।

पुष्पभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मलयगिरि के पश्चिम की एक नदी । (ब्रह्मवैवर्त) ।

पुष्पभव—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्परस । मकरंद (को०) ।

पुष्पभूति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सम्राट् हर्षवर्धन के पूर्व पुरुष जो शैव थे । २. कांबोज या काबुल के एक हिंदू राजा जो ईसा की सातवीं शताब्दी में राज्य करते थे ।

पुष्पमंजरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्पमञ्जरिका] नील कमलिनी ।

पुष्पमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्पमञ्जरी] १. फूल की मंजरी २. घृतकरंज । घीकरंज ।

पुष्पमाल—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्प+हिं० माल] फूलों की माला । उ०—आवत देखे श्याम मनोहर पुष्पमाल लै दौरी ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५४ ।

पुष्पमास—संज्ञा पुं० [सं०] १. वसंत ऋतु के दो महीने । वसंत ऋतु । २. चैत्र (को०) ।

पुष्पमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा ।

विशेष —दे० 'पुष्यमित्र ।'

पुष्पमृत्यु—संज्ञा पुं० [सं०] देवनल । एक प्रकार का नरकट । बड़ा नरसल ।

पुष्परक्त—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यमणि नाम के फूल का पौधा ।

पुष्परज—संज्ञा पुं० [सं० पुष्परजस्] पराग । फूलों की धूल ।

पुष्परथ—संज्ञा पुं० [सं०] टहलने घूमने आदि का रथ (को०) ।

पुष्परस —संज्ञा पुं० [सं०] मधु । मकरंद ।

पुष्परसाह्वय —संज्ञा पुं० [सं०] मधु ।

पुष्पराग—संज्ञा पुं० [सं०] एक मणि । पुखराज ।

पुष्पराज —संज्ञा पुं० [सं०] पुष्पराग । पुखराज ।

पुष्परेणु—संज्ञा पुं० [सं०] फूल की धूल । पराग ।

पुष्परोचन—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर ।

पुष्पलक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुष्कलक' ।

पुष्पलाव —संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पुष्पलावी] फूल चुननेवाला । माली ।

पुष्पलावन—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार उत्तर दिशा का एक देश ।

पुष्पलावी —संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्पलाविन्] फूल चुननेवाली । मालिन ।

पुष्पलिक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर । भौंरा ।

पुष्पलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पुरानी लिपि या लिखावट (ललितविस्तर) ।

पुष्पलिह्—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पलिह्] भ्रमर । भौंरा ।

पुष्पवती—वि० [सं०] १. फूलवाली । फूली हुई । २. रजोवती । रजस्वला । ऋतुमती । उ०—उस प्रकृतिलता के यौवन में, उस पुष्पवती के माधव का; मधुहास हुआ था वह पहला, दो रूप मधुर जो ढाल सका ।—कामायनी, पृ० ७१ । ३. महाभारत में वर्णित एक तीर्थ । ४. उठी हुई गाय (को०) ।

पुष्पवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त, कचनार, सेमल आदि का आयुर्वेदोक्त वर्ग (को०) ।

पुष्पवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पवर्मन्] द्रुपद नरेश । द्रौपदी के पिता का नाम (को०) ।

पुष्पवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्षपर्वत का नाम ।

पुष्पवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फुलवारी । फूलों का बगीचा । उपवन । उद्यान ।

पुष्पवाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] फुलवारी। फूलों का बगीचा।

पुष्पवाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूलों का बाण। २. कामदेव। ३. कुशद्वीप के एक राजा। ४. एक दैत्य।

पुष्पवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश पुराणोक्त एक नदी।

पुष्पविचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम। एक छंद का नाम [को०]।

पुष्पविमान—संज्ञा पुं० [सं० पुष्प+विमान] दे० 'पुष्पक'। उ०—पुष्पविमान सदा उजियारा। —कबीर सा०, पृ० २।

पुष्पविशिष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुष्पवाण'।

पुष्पवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलों की वर्षा। ऊपर से फूल गिरना। (मंगल उत्सव या प्रसन्नता सूचित करने के लिये फूल गिराए जाते थे)।

पुष्पवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलों की बनी हुई वेणी। फूलों से गुथी हुई वेणी [को०]।

पुष्पशकटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशवाणी।

पुष्पशकली—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का विषहीन साँप।

पुष्पशर—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

पुष्पशरासन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

पुष्पशाक—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे फूल जिनकी भाजी बनाई जाती है; जैसे, कचनाल, रासना, खैर, सेमल, सहजन, अगस्त, नीम।

पुष्पशून्य[1]—वि० [सं०] बिना फूल का। पुष्परहित।

पुष्पशून्य[2]—संज्ञा पुं० गूलर।

पुष्पशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] फूलों की माला [को०]।

पुष्पश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी।

पुष्पसमय—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत [को०]।

पुष्पसाधारण—संज्ञा पुं [सं०] वसंतकाल।

पुष्पसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूल का मधु या रस। २. फूलों का इत्र।

पुष्पसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।

पुष्पसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण में प्रसिद्ध सामवेद का एक सूत्रग्रंथ जो गोभिलरचित कहा जाता है।

पुष्पसौरभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलिहारी का पौधा। करियारी।

पुष्पस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुष्यस्नान'।

पुष्पस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] मकरंद। पुष्परस [को०]।

पुष्पस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुष्पस्नेह'।

पुष्पहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूलों का, खिलना। २. विष्णु।

पुष्पहासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला स्त्री।

पुष्पहीन[1]—वि० [सं०] बिना फूल का।

पुष्पहीन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] गूलर का पेड़।

पुष्पहीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] (स्त्री) जिसे रजोदर्शन न हो। बाँझ। बंध्या।

पुष्पांक—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पाङ्क] माधवी। अनेकार्थ। (शब्द०)।

पुष्पांजन—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पाञ्जन] एक प्रकार का अंजन जो पीतल के कसाव के साथ कुछ ओषधियों को पीसकर बनाया जाता है। वैद्यक में सब प्रकार के नेत्ररोगों पर यह चलता है।

पर्या०—पुष्पकेतु। कौसुंभ। रीतिक। रीतिपुष्प।

पुष्पांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्पाञ्जलि] फूलों से भरी अंजली या अंजली भर फूल जो किसी देवता या पूज्य पुरुष को चढ़ाए जायँ।

पुष्पांड—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पाण्ड] एक प्रकार का धान [को०]।

पुष्पांबुज—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पाम्बुज] मकरंद।

पुष्पांभस्—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पाम्भस्] एक तीर्थ।

पुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्ण की राजधानी जो अंगदेश में थी। चंपा (आजकल के भागलपुर के पास)।

पुष्पाकर—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत ऋतु।

पुष्पागम—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत काल।

पुष्पाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] बीजकोश। गर्भकेसर [को०]।

पुष्पाजीव—संज्ञा पुं०[सं०]फूलों से जिसकी जीविका हो—माली [को०]।

पुष्पाधर—संज्ञा पुं० [सं० पुष्प+अधर] फूलों के ओठ। पँखुड़ियाँ उ०—झुक कर पुष्पाधर मुसकाए। —अर्चना, पृ० ८६।

पुष्पानन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मद्य।

पुष्पापण—संज्ञा पुं० [सं०] फूलों का बाजार [को०]।

पुष्पापीड—संज्ञा पुं० [सं०] सिर पर रखी हुई या पहनी जानेवाली माला [को०]।

पुष्पायुध—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

पुष्पाराम—संज्ञा पुं० [सं०] फूलों का बगीचा [को०]।

पुष्पावचायी—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पावचायिन्] माली [को०]।

पुष्पासव—संज्ञा पुं० [सं०] फूलों से बनाया हुआ मद्य। मद्य।

पुष्पास्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ शय्या पर फूल सजाने की कला। २. फूलों की सजी हुई शय्या [को०]।

पुष्पास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

पुष्पाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ।

पुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दाँत की मैल। २. लिंग की मैल ३. अध्याय के अंत में वह वाक्य जिसमें कहे हुए प्रसंग की समाप्ति सूचित की जाती है। यह वाक्य 'इति श्री' करके प्रायः प्रारंभ होता है जैसे, 'इति श्री स्कंदपुराणे रेवाखंडे' इत्यादि।

पुष्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला [को०]।

पुष्पित[1]—वि० [सं०] १. पुष्पसंयुक्त। फूला हुआ। २. रंगबिरंगा। ३ विकसित [को०]।

पुष्पित[2]—संज्ञा पुं० १. कुशद्वीप का एक पर्वत। २. एक बुद्ध का नाम।

पुष्पिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला स्त्री।

पुष्पिताग्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्धसम वृत्त जिसके पहले और तीसरे चरण में दो नगण, एक रगण और एक यगण होता है तथा दूसरे और चौथे चरण में एक नगण, दो जगण, एक रगण और गुरु होता है। जैसे,—प्रभु सम नहि अन्य कोइ दाता। सुयश जु व्यावत तीन लोक त्राता। सकल प्रसत कामना बिहाई। हरि नित सेवहु मित्त चित्त लाई।

पुष्पी—वि० [सं० पुष्पिन्] पुष्पयुक्त। जिसमें फूल लगे हों [को०]।

पुष्पेषु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

पुष्पोत्कटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमाली राक्षस की केतुमती भार्या से उत्पन्न चार कन्याओं में से एक जो रावण और कुंभकर्ण की माता थी।

पुष्पोद्गम—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्प लगना। फूल आना [को०]।

पुष्पोद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] फुलवारी। पुष्पवाटिका।

पुष्पोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पोपजीविन्] माली [को०]।

पुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्टि। पोषण। २. फूल या सार वस्तु। ३. अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्रों में से आठवाँ नक्षत्र जिसकी आकृति बाण की सी है। सिध्य। तिष्य। ४. पूस का महीना। ५. सूर्यवंश का एक राजा। ६. कलिकाल। कलि का युग (को०)।

पुष्यनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रात्रि जिसमें बराबर पुष्य नक्षत्र रहे।

पुष्यमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] मौर्यों के पीछे मगध में शुंग वंश का राज्य प्रतिष्ठित करनेवाला एक प्रतापी राजा।

विशेष—अशोक से कई पीढ़ियों पीछे अंतिम मौर्य राजा बृहद्रथ को लड़ाई में मार पुष्यमित्र मगध के सिंहासन पर बैठा। अपने पुत्र अग्निमित्र को उसने विदिशा का राज्य दिया था। अग्निमित्र का वृत्तांत कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक में आया है। पुष्यमित्र हिंदू धर्म का अनन्य अनुयायी था। इससे बौद्धों की प्रधानता से चिढ़ी हुई प्रजा उसके सिंहासन पर बैठने से बहुत प्रसन्न हुई। वैदिक धर्म और अपने प्रताप की घोषणा के लिये पुष्यमित्र ने पाटलिपुत्र में बड़ा भारी अश्वमेध यज्ञ किया। लोगों का अनुमान है कि इस यज्ञ में भाष्यकार पतंजलि भी आए थे। ईसा से प्राय: दो सौ वर्ष पूर्व पुष्यमित्र मगध में राज्य करते थे। उसके पीछे उसका पुत्र अग्निमित्र सिंहासन पर बैठा। वि० दे० 'शुंग' ६।

पुष्ययोग—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्य नक्षत्र में चंद्रमा के रहने का समय [को०]।

पुष्यरथ—संज्ञा पुं० [सं०] क्रीड़ा रथ। घूमने, फिरने या उत्सव आदि में निकलने का रथ। (वह रथ युद्ध के काम का नहीं होता)।

पुष्यलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कस्तूरी मृग। २. क्षपणक। चँवर लिए रहने वाला जैन साधु। ३. खूँटा। कील।

पुष्यस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] विघ्नशांति के लिये एक स्नान जो पूस के महीने में चंद्रमा के पुष्य नक्षत्र में होने पर होता है।

विशेष—यह स्नान राजाओं के लिये है। कालिकापुराण और बृहत्संहिता में इस स्नान का पूरा विधान मिलता है। बृहत्संहिता के अनुसार उद्यान, देवमंदिर, नदीतट आदि किसी रमणीय और स्वच्छ स्थान पर मंडप बनवाना चाहिए और उसमें राजा को पुरोहितों और अमात्यों के सहित पूजन के लिये जाना चाहिए। पितरों और देवताओं का यथाविधि पूजन करके तब राजा पुष्यस्नान करे। जिस कलश के जल से राजा स्नान करनेवाले हों उसमें अनेक प्रकार के रत्न और मंगल द्रव्य पहले से डालकर रखे। पश्चिम ओर की वेदी पर बाघ या सिंह का चमड़ा बिछाकर उसपर सोने, चाँदी, ताँबे या गूलर की लकड़ी का पाटा रखा जाय। उसी पर राजा स्नान करे।

पुष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्य नक्षत्र [को०]।

पुष्यार्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में एक योग जो कर्क की संक्रांति में सूर्य के पुष्य नक्षत्र में होने पर होता है। यह प्राय: श्रावण में दस दिन के लगभग रहता है। २. रविवार के दिन पड़ा हुआ पुष्य नक्षत्र।

पुस—संज्ञा पुं० [अं० पुसी] प्यार से बिल्ली को पुकारने का शब्द। जैसे, आ पुस पुस !

पुसकर(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुष्कर'।

पुसकरन—संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर] मारवाड़ी ब्राह्मणों की एक शाखा। उ०—भारद्वाज गोत्र पुसकरनी सेवक जात कहावै।—पोद्दार अभि ग्रं०, पृ० ४२७।

पुसतकी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुस्तक] पुस्तक। उ०—पारेवी ज्यूँ पुसतकी, कुकव बाज बस थाप।—बाँकी ग्रं०, भा०२, पृ० ७९।

पुसपराग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुष्पराग'। उ०—पुसपराग सम कर लसैं नारी रत्नप्रकाश।—ब्रजनिधि ग्रं०, पृ० ६६।

पुसाका—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पोशाक'। उ०—खाए खुराका पहिन पुसाका।—कबीर० श०, पृ० १७।

पुसाना—क्रि० अ० [हिं० पोसना] १. पूरा पड़ना। बन पड़ना। पटना। २. अच्छा लगना। शोभा देना। उचित जान पड़ना। उ०—पथिक आपने पथ लगो इहाँ रहो न पुसाय। रसनिधि नैन सराय में बस्यो भावतो आय।—रसनिधि (शब्द०)।

पुस्टि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुष्टि] दे० 'पुष्टि' (पुष्टिमार्ग)। उ०—पुष्टि प्रजाद भजन, रस, सेवा, निज जन पोषन भरन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२६।

पुस्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गीली मिट्टी, लकड़ी, कपड़े, चमड़े, लोहे, या रत्नों आदि से गढ़, काट या छील छालकर बनाई जानेवाली वस्तु। सामान। २. बनावट। कारीगरी। ३. [स्त्री० पुस्ती] पोथी। पुस्तक। किताब। हस्तलेख।

पुस्त[2](पु)†—संज्ञा स्त्री० [फा० पुश्त] दे० 'पुश्त'।

पुस्तक—संज्ञा स्त्री० [सं०] पोथी । किताब । ग्रंथ । हस्तलेख ।

पुस्तकर्म—संज्ञा पुं० [सं० पुस्तकर्मन] १. पलस्तर करने का काम । २. रँगने का काम [को०] ।

पुस्तकाकार—वि० [सं०] पोथी के रूप का । पुस्तक के आकार का ।

पुस्तकागार—संज्ञा पुं० [सं० पुस्तक+आगार] पुस्तकों का स्थान । पुस्तकालय ।

पुस्तकालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह भवन या घर जिसमें पुस्तकों का संग्रह हो । वह घर जहाँ अनेक विषयों की पोथियाँ इकट्ठी करके रखी गई हों ।

पुस्तकालयाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुस्तकालय+अध्यक्ष] पुस्तकालय का प्रधान अधिकारी ।

पुस्तकास्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तलेख का वेष्ठन । पुस्तक का बेठन [को०] ।

पुस्तकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पोथी । पुस्तक ।

पुस्तकीय—वि० [सं० पुस्तक+ईय (प्रत्य०)] पुस्तक संबंधी । पुस्तक का । जैसे, पुस्तकीय ज्ञान ।

पुस्तवार्त—संज्ञा पुं० [सं०] जिसकी जीविका पुस्तकों पर निर्भर हो । पुस्तकें बनाकर जीविका कमानेवाला [को०] ।

पुस्तशिंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुस्तशिम्बी] एक प्रकार की सेम ।

पुस्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी पुस्तक ।

पुस्ती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पोथी । पुस्तक । किताब ।

पुस्ती[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पुश्तह् का स्त्री० या फ़ा० पुश्ती (= टेक, आश्रय)] दे० 'पुश्ती' । उ०—उनकी जिंदगी की रेलगाड़ी पूरी रफ्तार से दौड़कर समाज के विश्वास और निश्चय की मजबूत पुस्तियों से टकराकर चूर चूर हो जाती है ।—अभिशप्त, पृ० ७६ ।

पुहकर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर, प्रा० पुहकर] दे० 'पुष्कर' ।

पुहकरमूल—संज्ञा पुं० [सं० पुष्करमूल] दे० 'पुष्करमूल' ।

पुहचावना†(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पहुँचाना' । उ०—बल्यो ब्याहि संभरिधनी मंगन भए निहाल । पुहचावन सब संग भए, नृप गुन नर्वें रसाल ।—पृ० रा०, १४ । १२८ ।

पुहचना(पु)—क्रि० अ० [सं० प्र०+भू, प्रा० पहुच्च (वि० पहुत)] दे० 'पहुँचना' । उ०—ढोलइ दीतण फाड़ती, आई पुहचउ कीर ।—ढोला०, दू० ४०० ।

पुहना—क्रि० अ० [हिं० पोहना] गुँथना । उ०—भ्रमरों में मंजु मुक्ता है पुहे, माँग में जिस भाँति जाते हैं गुहे ।—साकेत, पृ० १६ ।

पुहप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुष्प] पुष्प । फूल । उ०—सुरपुर सब हरषे, पुहपनि बरषे दुंदुभि दीह बजाए ।—केशव (शब्द०) ।

पुहप्प(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुष्प' । उ०—सुदेव जयं जय नंषि पुहप्प ।—पृ० रा०, १२।३३४ ।

पुहमि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पुहमी' । उ०—सब न समात पुहमि सब हेरिय ।—ह० रासो, पृ० ७४ ।

पुहर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रहर, हिं० पहर] दे० 'पहर' । उ०—(क) पुहर पुहर प्रति आगसु हुए हर छेवस्यं पापखज माह ।—बी० रासो, पृ० ४२ । (ख) भीजइ पुहरि उलाँधियउ आवधला० रउ बहु ।—ढोला०, दू० ४२४ ।

पुहरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पहरा' । उ०—सुख सहस्रा, पुहरा दियण, कंत दिसाउरि जाइ ।—ढोला०, दू० पृ० २३१ ।

पुहवि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथिवी, प्रा० पुहुवि] दे० 'पृथ्वी' । उ०—(क) के पति आओब एहु परमान, चंपकें कएल पुहवि निरमान ।—विद्यापति, पृ० २५ । (ख) मन धन प्रवाह बहु पुहवि परि बरष्षी जेम पुरंद गति ।—पृ० रा०, १।४७२ ।

पुहवीपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पृथ्वीपति] राजा । बादशाह । उ०—पुहवीपति सुरतान सो तुम्हें रायकुमार ।—कीर्ति०, पृ० ६४ ।

पुहवै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पृथ्वीपति, प्रा० पुह+वै] पृथ्वीपति । राजा ।

पुहाना†—क्रि० स० [हिं० पोहना का प्रे० रूप] पिरोने का काम कराना । ग्रथित कराना । गुथवाना ।

पुहुप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुष्प] फूल । उ०—अक्षत पुहुप ले बिप्र भुलाई ।—कबीर सा०, पृ० १११ ।

पुहुपराग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुष्पराग' ।

पुहुपित—वि० [सं० पुष्पित; या हिं० पुहुप+इत] दे० 'पुष्पित' । उ०—पुहुपित पेखि पलास बन, तव पलास तन होइ । अब मधुमास पलास भो, सुचि जवास सम सोइ ।—स० सप्तक, पृ० २३६ ।

पुहुमि, पुहुमी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० भूमि या पृथिवी, प्रा० पुहुवी] पृथ्वी । भूमि । उ०—(क) लंक पुहुमि अस आहि न काहूँ ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६७ । (ख) जोधा आगे उलटि पुलटि यह पुहुमी करते ।—परम० प्र०, पृ० ८४ ।

यौ०—पुहुमीपति = पृथिवीपति । राजा ।

पुहुरेनु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुष्परेणु] फूल की धूल । पराग ।

पुहुवी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथिवी] भूमि । पृथ्वी ।

पूँगना(पु)—क्रि० अ० [हिं० पूजना] पूरा होना । पूजना । उ०—नव दिन पूँगा नउरतां बलि बाकुल पूजा रची ठाई ।—बी० रासो, पृ० ५० ।

पूँगरण—संज्ञा पुं० [सं० पुञ्ज (= राशि या समूह)] अस्मान्य वस्त्र । कपड़ा । (डिं०) ।

पूँगरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पोगड' । उ०—कबीर पूँगरा राम अलह का सब गुरु पीर हमारे ।—कबीर ग्रं०, पृ० २६७ ।

पूँगा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] वह कीड़ा जो सीप के भीतर होता है । सीप का कीड़ा ।

पूँगा[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोंगी (= छोटा पोंगा)] सँपेरों का बाजा । महुवर ।

पूँछ—संज्ञा स्त्री० [सं० पुच्छ] १. मनुष्य से भिन्न प्राणियों के शरीर का वह गावदुमा भाग जो गुदा मार्ग के ऊपर रीढ़ की हड्डी

की संधि में या उससे निकलकर नीचे की ओर कुछ दूर तक लंबा चला जाता है। जंतुओं, पक्षियों, कीड़ों आदि के शरीर में सिर से आरंभ मानकर सबसे अंतिम या पिछला भाग। पुच्छ। लांगूल। दुम।

विशेष—भिन्न भिन्न जीवों की पूँछें भिन्न भिन्न आकार की होती हैं। पर सभी की पूँछें उनके गुदभाग के ऊपर से ही आरंभ होती हैं। सरीसृप वर्ग के जीवों की पूँछें रीढ़ की हड्डी की सीध में आगे को अधिकाधिक पतली होती हुई चली जाती हैं। मछली की पूँछ उसके उदरभाग के नीचे का पतला भाग है। अधिकांश मछलियों की पूँछ के अंत में पर होते हैं। पक्षियों की पूँछ परों का एक गुच्छा होती है जिसका अंतिम भाग अधिक फैला हुआ और आरंभ का संकुचित होता है। कीड़ों की पूँछ उनके मध्य भाग के और पीछे का नुकीला भाग है। बिच्छू का डंक उसकी पूँछ से ही निकलता है। स्तनपायी जंतुओं में से कुछ की पूँछ उनके शेष शरीर के बराबर या उससे भी अधिक लंबी होती है, जैसे लंगूर की। इस वर्ग के प्रायः सभी जीवों की पूँछ पर बाल नहीं होते; रोएँ होते हैं। हाँ किसी किसी की पूँछ के अंत में बालों का एक गुच्छा होता है। पर घोड़े की पूँछ पर सर्वत्र बड़े बड़े बाल होते हैं।

मुहा०—(किसी की) पूँछ पकड़कर चलना = (१) किसी के पीछे पीछे चलना। किसी का पिछुआ या पिछलग्गू बनना। हर बात में किसी का अनुगमन करना। बेतरह अनुयायी होना (व्यंग्य)। (२) किसी के सहारे से कोई काम करना। सहारा लेना या पकड़ना। किसी विषय में किसी की सहायता पर निर्भर होना (व्यंग्य)। पूँछ दबाना = बहुत ही विनीत या अधीन भाव दिखाना। उ०—दुबरी कानी हीन सुवन बिन पूँछ दबाए।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११०। पूँछ हिलौअल = चापलूसी। मीठी मीठी बातें कहना। उ०—संपादक महाशय पूछहिलौअल कर सुनी बात अनसुनी करना चाहते थे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३। बड़ी पूँछ का आदमी = बहुत अधिक सम्मानित। इज्जतदार। उ०—एक बोला वह बड़ी पूँछ के आदमी हैं। दूसरे ने कहा अच्छी बे पर की उड़ाई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५०७।

२. किसी पदार्थ के पीछे का भाग। ३. पिछलग्गू। पुछल्ला। जो किसी के पीछे या साथ रहे।

मुहा०—(किसी की) पूँछ होना = पुछल्ला बनना। पिछलग्गू बनना। अंधानुयायी होना।

पूँछगच्छ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पूछपाछ'।

पूँछड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूँछ + ड़ी (प्रत्य०)] १. पूँछ। २. वह पानी जो नाले में चढ़ाव के आगे आगे चलता है।

पूँछताछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूँछना] दे० 'पूछताछ'।

पूँछना—क्रि० स० [हिं० पूछना] दे० 'पूछना'।

पूँछपाँछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूछना] दे० 'पूछपाछ'।

पूँछलतारा—संज्ञा पुं० [हिं० पुच्छल + तारा] दे० 'केतु' या 'पुच्छलतारा'।

पूँछि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० पुच्छ] दे० 'पूँछ'। उ०—ते पै बूड़े बाउरे भेंड़ पूँछि जिन्ह हाथ।—जायसी ग्रं०, पृ० ८७।

पूँजना[1]—क्रि० स० [देश०] नए बंदर को पकड़ना। (कलंदर)।

पूँजना(पु)[2]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पूजना'। उ०—जिमि सौदागर साहु मिलाही। पूँजि जोग बहु लाभ बढ़ाही।—कबीर सा०, पृ० ४४४।

पूँजी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुञ्ज] १. किसी व्यक्ति या समुदाय का ऐसा समस्त धन जिसे वह किसी व्यवसाय या काम में लगा सके। किसी की अधिकारभुक्त वह संपूर्ण सामग्री या वस्तुएँ जिनका उपयोग वह अपनी आमदनी बढ़ाने में कर सकता हो। निर्वाह की आवश्यकता से अधिक धन या सामग्री। संचित धन। संपत्ति। जमा। २. वह धन या रुपया जो किसी व्यापार या व्यवसाय में लगाया गया हो। वह धन जिससे कोई कारोबार आरंभ किया गया हो या चलता हो। किसी दूकान, कोठी, कारखाने, बैंक आदि की निज की चर या अचर संपत्ति। मूलधन। उ०—पूँजी पाई साच दिनोदिन होती बढ़ती। सतगुर के परताप भई है दौलत चढ़ती।—पलटू०, पृ० ३१।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—पूँजी खोना या गँवाना = व्यापार या व्यवसाय में इतना घाटा उठाना कि कुछ लाभ के स्थान पर पूँजी में से कुछ या कुल देना पड़े। ऐसा घाटा उठाना कि मूलधन की भी हानि हो। भारी घाटा या क्षति उठाना। पूँजीदार या पूँजीवाला = किसी व्यापार या उद्यम में जिसने धन लगाया हो। जिसने मूलधन या पूँजी लगाई हो।

३. धन। रुपया पैसा। जैसे,—इस समय तुम्हारी जेब में कुछ पूँजी मालूम होती है। ४. किसी विशेष विषय में किसी की योग्यता। किसी विषय में किसी का परिज्ञान या जानकारी। किसी विषय में किसी की सामर्थ्य या बल। (बोलचाल में व्यं०)। ५.(पु) पुंज। समूह। ढेर। उ०—रतनन की पूँजी अति राजै। कनक करधनी अति छबि छाजै।—गोपाल (शब्द०)।

पूँजीदार—संज्ञा पुं० [हिं० पूँजी + फा० दार] दे० 'पूँजीपति'।

पूँजीपति—संज्ञा पुं० [हिं० पूँजी + सं० पति] वह मनुष्य जिसके पास अधिक धन हो, जिसे उसने किसी काम में लगाया हो अथवा जिसे वह किसी काम में लगावे। पूँजीदार।

पूँजीवाद—संज्ञा पुं० [हिं० पूँजी + सं० वाद] समाज की वह अर्थव्यवस्था जिसमें अधिकाधिक लाभ पर दृष्टि रखनेवाले धनी समुदाय का, उत्पादन और वितरण के साधनों पर, आधिपत्य हो जाता है। सामाजिक क्रमविकास के अनुसार पूँजीवाद सामंतवाद के बाद का चरण है।

पूँजीवादी—वि० [हिं० पूँजीवाद] पूँजीवाद को माननेवाला। पूँजीवाद के सिद्धांत का अनुयायी।

पूँठⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ, प्रा० पुट्ठ] पीठ । उ०—पंथी उभा पाथ सिर बुगचा बाँधा पूँठ । मरना मुँह आगे खड़ा, जीवन का सब झूँठ । —कबीर (शब्द०) ।

पूँबारना†—क्रि० स० [सं० प्रबारण ?] प्रोत्साहित करना । बढ़ावा देना । ललकारना । उ०—कियो विदा जोधाँ सिरै, सूरमली पुंतार । —रा० रू०, पु० २६६ ।

पूआ—संज्ञा पुं० [सं० पूप, अपूप] एक प्रकार की पूरी जो आटे को गुड़ या चीनी के रस मे घोलकर घी में छानी जाती है । स्वाद के लिये इसमे कतरे हुए मेवे भी छोड़ते हैं । मालपुआ । एक पकवान ।

पूकारनाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पुकारना' । उ०—कहत हौं ज्ञान पूकारि करि सबन से । देत उपदेश दिल दर्द जानी ।—कबीर रे०, पु० २७ ।

पूखन¹—संज्ञा पुं० [सं० पोषण] दे० 'पोषण' । उ०—भजे न दूखन कोप छिनहिं दिन पूखन होई ।—सुधाकर (शब्द०) ।

पूखनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पूषण] सूर्य ।

पूग—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुपारी का पेड़ या फल । उ०—घोंटा क्रमुक गुवाक पुनि पूग सुपारी आहि । —अनेकार्थ०, पृ० १०१ । २. ढेरा । अकोल । ३. शहतूत का पेड़ । ४. कटहल । ५. एक प्रकार की कटोरी । ६. भाव । ७. छंद । ८. समूह । वृंद । ढेर । ९. किसी विशेष कार्य के लिये बना हुआ संघ । कंपनी ।

विशेष—काशिका में कहा गया है कि भिन्न जातियों के लोग आर्थिक उद्देश्य से जिस संघ में काम करें, वह 'पूग' कहलाता है । जैसे, शिल्पियों या व्यापारियों का पूग । याज्ञवल्क्य ने इस शब्द को एक स्थान पर बसनेवाले भिन्न भिन्न जाति के लोगों की सभा के अर्थ में लिया है ।

पूगकृत—वि० [सं०] १. स्तूप के आकार में स्थापित । स्तूपाकार किया हुआ । जो टीले के आकार का हो । २. संगृहीत । इकट्ठा किया हुआ । ढेर । राशि ।

पूगना¹—क्रि० अ० [हिं० पूजना] पूरा होना । पूजना । जैसे—मिती पूगना । उ०—सकट समाज असमंजस में रामराज काज जुग पूगनि को करतल पल भो । —तुलसी (शब्द०) ।

पूगनाⓅ²—क्रि० अ० [हिं० पहुँचना] दे० 'पहुँचना' । उ०—आरंभे अति फौज अकारी । दिल्लीपत पूगो बहवारी । —रा० रू०, पु० ५६ ।

पूगपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] पीकदान । उगालदान ।

पूगपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] पीकदान ।

पूगपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवाह संबंध स्थिर हो जाने पर दिया जानेवाला पुष्प सहित पान । पानफूल ।

पूगपोट—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी [को०] ।

पूगफल—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी ।

पूगबंध—संज्ञा पुं० [सं० पुगमबद्ध] पाकड़ । प्लक्ष ।

पूगरोट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताड़ । हिंताल ।

पूगवैर—संज्ञा पुं० [सं०] सामूहिक शत्रुता । समूह से शत्रुता । अनेक व्यक्तियों से शत्रुता [को०] ।

पूगी¹—संज्ञा पुं० [सं० पूगिन्] सुपारी का पेड़ ।

पूगी²—संज्ञा स्त्री० [सं० पूग] सुपारी ।

पूगीफल—संज्ञा पुं० [सं० पूगफल] सुपारी ।

पूग्य—वि० [सं०] सामूहिक [को०] ।

पूचलचर—वि० [हिं० पोच ?] पोच । निंदित कार्य करनेवाला । उ०—बचा हमारे आगे तुम क्या पूचलचर हो । औरतों का भुगतान सब मैं ही करता हूँ । —भारतेंदु ग्रं०, भा०३, पृ० ८१४ ।

पूछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूछना] १. पूछने का भाव । जिज्ञासा । २. खोज । चाह । जरूरत । तलब । जैसे,—आप वहाँ अवश्य जाइए, वहाँ आपकी सदा पूछ रहती है । ३. आदर । आवभगत । खातिर । इज्जत । जैसे,—तनिक भी पूछ न होने पर तो तुम्हारे मिजाज का यह हाल है, जो कुछ होती तो न जाने क्या करते । ४. माँग । खपत । जैसे,—आजकल बाजार में इसकी बड़ी पूछ है ।

पूछगछ†, **पूछगाछ**—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पूछताछ' ।

पूछताछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूछना] कुछ जानने के लिये प्रश्न करने की क्रिया या भाव । किसी बात का पता लगाने के लिये बार बार पूछना या प्रश्न करना । बातचीत करके किसी विषय में खोज, अनुसंधान या जाँच पड़ताल । जिज्ञासा । जैसे,—घंटों पूछताछ करने के बाद तब इस मामले में इतना पता चलता है ।

पूछना—क्रि० स० [सं० पृच्छण] १. कुछ जानने के लिये किसी से प्रश्न करना । कोई बात जानने की इच्छा से सवाल करना । जिज्ञासा करना । कोई बात दरियाफ्त करना । जैसे,—किसी का नाम पता पूछना, किसी चीज का दाम पूछना । २. सहायता करने की इच्छा से किसी का हाल जानने की चेष्टा करना । खोज खबर लेना । जैसे,—इतने बड़े शहर में गरीबों को कौन पूछता है ? ३. किसी व्यक्ति के प्रति सत्कार के सामान्य भाव प्रकट करना । किसी का कुशल, स्थान आदि पूछना या उससे बैठने आदि के लिये कहना । संबोधन करना । जैसे,—तुम चाहे जितनी देर यहाँ खड़े रहो, तुम्हें कोई पूछनेवाला नहीं ।

मुहा०—बात न पूछना = (१) तुच्छ जानकर बातचीत न करना । ध्यान न देना । (२) आदर न करना ।

४. आदर करना । गुण या मूल्य जानना । कद्र करना । किसी लायक समझना । आश्रय देना । जैसे,—इस शहर में तुम्हारे गुण को पूछनेवाले बहुत कम हैं । ५. ध्यान देना । टोकना । जैसे,—तुम बेखटके चले जाओ, कोई नहीं पूछ सकता ।

पूछपाछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूछना] दे० 'पूछताछ' ।

पूछरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूँछ + री (प्रत्य०)] १. दुम । २. पीछे का भाग ।

पूछाताछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूछना + अनु० ताछना] पूछने की क्रिया या भाव ।

पूछापाछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूछना + अनु० पाछना] पूछने की क्रिया या भाव ।

पूछापेखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूछना + पेखना] पूछने जाँचने की क्रिया या भाव । पूछताछ । उ०—दिग्विजय बाबू ने समझा पूछापेखी करना खामखाह की बात है। —किन्नर०, पृ० ८२ ।

पूज‡†[1]—वि० [सं० पूज्य] पूजने योग्य । पूजनीय ।

पूज[2]—संज्ञा पुं० [सं० पूज्य] देवता । (डिं०) ।

पूज(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० पूजा] १. पूजा । अर्चना । उ०—बिना नीव जहँ देहुरो बिना पूज जहँ देव । बिन बाती दीपक जहाँ बिन मूरति तहँ सेव ।—राम० धर्म०, पृ० ६१।†२, क्षत्रियों आदि मे वह गणेशपूजन जो विवाह यज्ञोपवीत आदि शुभ कर्मों के पहिले होता है । पूजा ।

पूजक—संज्ञा पुं० [सं०] पूजा करनेवाला । पूजनकर्ता । वह जो पूजन करे ।

पूजकारी†—वि० [सं० पूजा + हिं० करना] पूजा करनेवाला । अर्चना करनेवाला । पूजक । उ०—आत्माराम तजि जड़ पूजकारी । —कबीर रे०, पृ० ६ ।

पूजन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० पूजक, पूजनीय, पूजितव्य, पूज्य] १. पूजा की क्रिया । ईश्वर या किसी देवी देवता के प्रति श्रद्धा, संमान, विनय और समर्पण प्रकट करनेवाला कार्य । देवता की सेवा और वंदना । अर्चन । आराधन । २. आदर । समान । खातिरदारी । जैसे, अथितिपूजन । ३. आदर सत्कार की वस्तु ।

पूजना[1]—क्रि० सं० [सं० पूजन] १. किसी देवी देवता को प्रसन्न करने के लिये यथाविधि कोई अनुष्ठान या कर्म करना । ईश्वर या किसी देवी देवता के प्रति श्रद्धा, संमान, विनय और समर्पण का भाव प्रकट करनेवाला कार्य करना । अर्चना करना । आराधन करना । २. किसी को प्रसन्न या परितुष्ट करने के लिये कोई कार्य करना । भक्ति या श्रद्धा के साथ किसी की सेवा करना । आदर सत्कार करना । ३. वंदना करना । सिर झुकाना । बड़ा मानना । संमान करना । ४. घूस देना । रिश्वत देना । ५. नया बंदर पकड़ना । (कलंदर) ।

पूजना[2]—क्रि० अ० [सं० पूर्यते, प्रा० पुज्जति] १. पूरा होना । भरना । बराबर हो जाना । कमी न रह जाना । जैसे,—यह हानि इस जन्म में तो नहीं पूजने की । २. गहराई का भरना या बराबर हो जाना । आसपास के धरातल के समान हो जाना । जैसे, घाव पूजना, गड्ढा पूजना । ३. पटना । चुकता होना । जैसे, ऋण पूजना । ४. पूरा होना । बीतना । समाप्त होना । जैसे, वर्ष, अवधि, मियाद आदि पूजना ।

पूजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा गौरैया [को०] ।

पूजनीय—वि० [सं०] १. जिसकी पूजा करना कर्तव्य या उचित हो । पूजने योग्य । आराध्य । अर्चनीय । २. आदरणीय । संमान योग्य । उ०—पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते । सब मानिअहिं राम के नाते ।—मानस, २।७४ ।

पूजमान—वि० [हिं० पूजना+मान या सं० पूज्यमान] पूज्य । आराध्य । आदरणीय । पूजनीय ।

पूजयितव्य—वि० [सं०] पूजनीय । पूजा योग्य [को०] ।

पूजयिता—संज्ञा पुं० [सं० पूजयितृ] पूजा करनेवाला । पूजक ।

पूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईश्वर या किसी देवी देवता के प्रति श्रद्धा, संमान, विनय और समर्पण का भाव प्रकट करनेवाला कार्य । अर्चना । आराधन । २. वह धार्मिक कृत्य जो जल, फूल, फल, अक्षत अथवा इसी प्रकार के और पदार्थ किसी देवी देवता पर चढ़ाकर या उसके निमित्त रखकर किया जाता है । आराधन । अर्चा ।

विशेष—पूजा संसार की प्रायः सभी आस्तिक और धार्मिक जातियों में किसी न किसी रूप में हुआ करती है । हिंदू लोग स्नान और शिखाबंदन आदि करके बहुत पवित्रता से पूजा करते हैं । इसके पंचोपचार, दशोपचार और षोडशोपचार ये तीन भेद माने जाते हैं । गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य से जो पूजा की जाती है उसे पंचोपचार; जिसमें इन पाँचों के अतिरिक्त पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क और आचमन भी हो वह दशोपचार और जिसमें इन सबके अतिरिक्त आसन, स्वागत, स्नान, वसन, आभरण और वंदना भी हो वह षोडशोपचार कहलाती है । इसके अतिरिक्त कुछ लोग विशेषत: तांत्रिक आदि १८, ३६ और ६४ उपचारों से भी पूजा करते हैं । पूजा के सात्विक, राजसिक और तामसिक ये तीन भेद भी माने जाते हैं । जो पूजा निष्काम भाव से, बिना किसी आडंबर के और सच्ची भक्ति से की जाती है वह सात्विक; जो सकाम भाव और समारोह से की जाय वह राजसिक; और जो बिना विधि, उपचार और भक्ति के केवल लोगों को दिखाने के लिये की जाय वह तामसिक कहलाती है । पूजा के नित्य, नैमित्तिक और काम्य के तीन और भेद माने जाते हैं । शिव, गणेश, राम, कृष्ण आदि की जो पूजा प्रतिदिन की जाती है वह नित्य, जो पूजा पुत्रजन्म आदि विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट कारणों से की जाती है वह नैमित्तिक और जो पूजा किसी अभीष्ट की सिद्धि के उद्देश्य से की जाती है वह काम्य कहलाती है ।

३. आदर सत्कार । खातिर । आवभगत ।

यौ०—पूजा प्रतिष्ठा ।

४. किसी को प्रसन्न करने के लिये कुछ देना । भेंट । रिश्वत । जैसे, पुलिस की पूजा करना, कचहरी के अमलों की पूजा करना । ५. तिरस्कार । दंड । ताड़ना । प्रहार । कुटाई । जैसे,—जबतक इस लड़के की अच्छी तरह पूजा न होगी तबतक यह नहीं मानेगा ।

पूजाकर—वि० पुं० [सं०] पूजा करनेवाला [को०] ।

पूजागृह—संज्ञा पुं० [सं०] उपासनागृह । मंदिर । देवालय [को०] ।

पूजाधार—संज्ञा पुं० [सं०] पूजा की आधार रूप वस्तुएँ। देवपूजा में विधेय वस्तुएँ। जैसे, जल, विष्णुचक्र, मंत्र, प्रतिमा, शालग्राम शिलादि।

पूजापाठ—संज्ञा पुं० [सं० पूजा+पाठ] भजनपूजन। पूजा। उपासना।

पूजारा पुं†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुजारी'।

पूजार्ह—वि० [सं०] पूजा के योग्य। पूजनीय।

पूजासंभार—संज्ञा पुं० [सं० पूजासम्भार] पूजन की सामग्री। पूजा का उपकरण (को०)।

पूजित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पूजिता] १. जिसकी पूजा की गई हो। प्राप्तपूजा। आराधित। अर्चित। संमानित। आदृत। २. मान्य। स्वीकृत (को०)। ३. संस्तुत। संस्तुति किया हुआ (को०)।

पूजितपूजक—वि० [सं०] संमानित का संमान करनेवाला (को०)।

पूजितव्य—वि० [सं०] पूजा करने योग्य। पूजनीय।

पूजिल¹—संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

पूजिल²—वि० पूजनीय। पूजा योग्य।

पूजी†—संज्ञा स्त्री० [?] घोड़े के मुँह पर का साज (को०)।

पूजोपकरण—संज्ञा पुं० [सं०] पूजा की सामग्री।

पूज्य¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पूज्या] १. पूजा योग्य। पूजनीय। २. आदर योग्य। माननीय।

पूज्य²—संज्ञा पुं० १. ससुर। श्वसुर। २. आदरणीय या मान्य व्यक्ति। पूजनीय व्यक्ति।

पूज्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूज्य होने का भाव। पूजा के योग्य होना। पूजनीयता।

पूज्यपाद—वि० [सं०] जिसके पैर पूजनीय हों। अत्यंत पूज्य। परमाराध्य। अत्यंत मान्य।

पूज्यपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूजनीय की पूजा करना (को०)।

पूज्यमान¹—वि० [सं०] जिसकी पूजा की जा रही हो। पूजा जाता हुआ। सेव्यमान।

पूज्यमान²—संज्ञा पुं० सफेद जीरा।

पूटरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] ईख के रस की वह अवस्था जो उसके खाँड़ बनने से पहले होती है।

पूटीन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पुटीन'।

पूठ‡—संज्ञा पुं० [सं० पृष्ठ प्रा० पिट्ठ, पुट्ठ] १. दे० 'पुट्ठा'। २. पीठ। पीछा। उ०—आगे शिव सामा खड़ा दिया जगत कूँ पूठ।—राम० धर्म०, पृ० ५४।

पूठा¹—संज्ञा पुं० [सं० पृष्ठ] दे० 'पुट्ठा'।

पूठा पुं²—क्रि० वि० [हिं० पूठ] पीछे। पीछे पीछे। उ०—कायर जन पूठा फिरे, सुन पहुँचे कोई सूर।—दरिया०, पृ० १७।

पूठि पुं‡—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ] पीठ। उ०—देखादेखी पकरिया गई छिनक के छूटि। कोई बिरला जन ठहरे जाकी ठकोरी पूठि।—कबीर (शब्द०)।

पूड़ा—संज्ञा पुं० [सं० पूप] दे० 'पूआ'।

पूड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० पूलिका, पूरिका, पुटिका, हिं० पूरी] १. तबले या मृदंग पर मढ़ा हुआ गोल चमड़ा। २. दे० 'पूरी'।

पूणु¹—संज्ञा पुं० [हिं०] पत्थर।

पूणु†²—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णिमा] पूर्णिमा। पूर्णमासी।

पूत¹—वि० [सं०] १. पवित्र। शुद्ध। शुचि। २. निस्तुषित। साफ किया हुआ। कूट पछोरकर साफ किया हुआ (को०)। ३. निर्मित। रचित। आविष्कृत (को०)। ४. दुर्गंधयुक्त (को०)। ५. कृत प्रायश्चित्त। प्रायश्चित्त किया हुआ (को०)।

पूत²—संज्ञा पुं० [सं०] १. सत्य। २. शंख। ३. सफेद कुश। ४. पलास। ५. तिल का पेड़। ६. वह अन्न जिसकी भूसी निकाल दी गई हो। ७. जलाशय। ८. विकंकत का वृक्ष (राजनिघंटु)।

पूत³—संज्ञा पुं० [सं० पुत्र, प्रा० पुत्त] बेटा। लड़का। पुत्र। उ०—पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के।—मानस, २।५६।

पूत⁴—संज्ञा पुं० [देश०] चूल्हे के दोनों किनारों और बीच के वे नुकीले उभार जिनके सहारे पर तवा या और बरतन रखते हैं।

पूतक्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक ऋषि की स्त्री का नाम।

पूतक्रतायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रपत्नी। शची। इंद्राणी।

पूतक्रतु—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

पूतगंध—संज्ञा पुं० [सं० पूतगन्ध] काली बर्बरी तुलसी। बर्बर।

पूतड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० पूत+ड़ा (प्रत्य०)] वह छोटा बिछौना जो बच्चों के नीचे इसलिये बिछाया जाता है कि बड़ा बिछौना मल मूत्रादि से बचा रहे।

मुहा०—पूतड़ों के अमीर=जन्म के अमीर। पैदाइशी धनी या रईस। खानदानी या पुश्तैनी अमीर।

पूततृण—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कुश।

पूतदारु—संज्ञा पुं० [सं०] पलास। ढाक।

पूतद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढाक। पलास। २. खदिर। खैर का पेड़। ३. देवदार।

पूतधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] तिल।

पूतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैद्यक के अनुसार गुदा में होनेवाला एक प्रकार का रोग। २. बेताल।

पूतना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक दानवी जो कंस के भेजने से बालक श्रीकृष्ण को मारने के लिये गोकुल आई थी।

विशेष—इसने अपने स्तनों पर इसलिये विष लगा लिया था कि श्रीकृष्ण दूध पीकर उसके प्रभाव से मर जायँ। परंतु कथा है कि श्रीकृष्ण पर विष का तो कुछ प्रभाव न पड़ा उलटे उन्होंने इसका सारा रक्त चूसकर इसी को मार डाला। यह भी कथा है कि मरने के समय इसने बहुत अधिक लंबा चौड़ा शरीर धारण कर लिया था और जितनी दूर में यह गिरी उतनी दूर की जमीन धँस गई थी। बकासुर, वत्सासुर, और अघासुर नाम के इसे तीन भाई थे।

२. सुश्रुत के अनुसार एक बालग्रह या बालरोग।

विशेष—यह बालघातक रोग है। इसमें बच्चे को दिन रात में कभी अच्छी नींद नहीं आती। पतले और मैले रंग के दस्त होते रहते हैं। शरीर से कौवे की सी गंध आती है. बहुत प्यास लगती और कै होती है तथा रोंगटे खड़े रहते हैं।

३. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम। ४. एक योगी का नाम। ५. पीली हड़। ६. गंधमासी। सुगंध जटामासी।

पूतनारि—संज्ञा पुं० [सं०] पूतना को मारनेवाला, श्रीकृष्ण।

पूतनासूदन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

पूतनाहड़—संज्ञा स्त्री० [सं० पूतना + हिं० हड़] छोटी हड़।

पूतनाहन्—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण (को०)।

पूतनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पूतना—१'।

पूतपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी (को०)।

पूतपाप—वि० [सं०] पाप से मुक्त (को०)।

पूतफल—संज्ञा पुं० [सं०] कटहल। पनस।

पूतभृत—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बरतन जिसमें सोमरस रखा जाता था।

पूतमति[1]—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि पवित्र हो। शुद्धचित्त। पवित्र अंतःकरणवाला।

पूतमति[2]—संज्ञा पुं० शिव का एक नाम।

पूतर—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलीय प्राणी। जलचर। जलजीव। २. साधारण व्यक्ति। (को०)।

पूतरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पुतला] दे० 'पुतला'। उ०—और देह कागद को पूतरा पवन बस उड़धो चल्यो आवत होई।—दो सौ बावन०, भा०१, पृ० २६४।

पूतरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० पुत्र] पुत्र। लड़का। बाल बच्चा। उ०—हम पहले से भी भया, हम भी चलनेहार। हमरे पाछे पूतरा तिन भी बाँधा भार।—कबीर (शब्द०)।

पूतरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पुतली'। उ०—जैसे सूमर पूतरी चित्रकार चित्राम। मैं अनाथ ऐसे सदा तुम इच्छा सोइ राम।—राम० धर्म०, पृ० २७५।

पूता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूब। २. दुर्गा (को०)।

पूता[2]—वि० स्त्री० पवित्र। शुद्ध।

पूतात्मा[1]—वि० [सं० पूतात्मन्] जिसकी आत्मा पवित्र हो। पवित्रचित्त। शुद्ध अंतःकरणवाला।

पूतात्मा[2]—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. संत महात्मा (को०)।

पूति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पवित्रता। शुचिता। २. दुर्गंध। बदबूदार। उ०—जनम जनम तें अपावन असाधु महा, अपरस पूति सों न छाँडे अजौं छूति कों।—घनानंद, पृ०१६८। ३. गंधमार्जार। मुश्क बिलाव। ४. रोहिष सोंधिया। रोहिष तृण। ५. गंदा पानी (को०)। ६. पीब। पूय (को०)।

पूति[2]—वि० दुर्गंधयुक्त। बदबूदार (को०)।

पूतिकंटक—संज्ञा पुं० [सं० पूतिकण्टक] हिंगोट।

पूतिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्गंध करंज। काँटा करंज। पूति करंज। २. विष्ठा। पाखाना। गू।

पूतिक[2]—वि० दुर्गंधयुक्त। बदबूदार।

पूतिकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुदीना।

पूतिकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक रोग जिसमें भीतर फुंसी या क्षत होने के कारण बदबूदार पीप निकलने लगती है।

पूतिकर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] पूतिकर्ण रोग।

पूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पोय या पोई का साग। २. एक प्रकार की शहद की मक्खी। ३. बिल्ली।

पूतिकामुख—संज्ञा पुं० [सं०] घोंघा। शंबूक।

पूतिकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवदार। २ धूप सरल। सरल वृक्ष।

पूतिकाष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पूतिकाष्ठ'।

पूतिकाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गंध करंज। पूति करंज।

पूतिकीट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की शहद की मक्खी। पूतिका।

पूतिकेशर—संज्ञा पुं० [सं०] १. नागकेशर। २. मुश्क बिलाव। गंध मार्जार।

पूतिकेश्वरतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] शिवपुराण में वर्णित एक तीर्थस्थान।

पूतिगंध—संज्ञा पुं० [सं० पूतिगन्ध] १. राँगा। २. हिंगोट या गोंदी। इंगुदी। ३. गंधक। ४ दुर्गंध। बदबू।

पूतिगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० पूतिगन्धा] बकुची। बावची। सोमराजी।

पूतिगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० पूतिगन्धि] दुर्गंध। बदबू।

पूतिगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० पूतिगन्धिका] १. बावची। बकुची। २. पोय। पूतिका शाक।

पूतिघास—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में वर्णित मृग की जाति का एक जंतु।

पूतितैला—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती। मालकंगनी (को०)।

पूतिदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजपत्ता।

पूतिनस्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जिसमें श्वास अथवा नाक और मुँह से दुर्गंध निकलती है।

विशेष—सुश्रुत के मत से इस रोग का कारण गले और तालुमेल में दोषों का संचय होकर वायु को पूतिभावयुक्त या दुर्गंधित कर देता है।

पूतिनासिक—वि० [सं०] जिसे पूतिनस्य रोग हुआ हुआ हो। जिसके नाक या श्वास से दुर्गंधि निकलती हो। पूतिनस्य रोगी।

पूतिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोनापाठा। २. पीला लोध। पीतलोध्र।

पूतिपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पसरन। प्रसारिणी लता।

पूतिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गंध करज। पूति करज।

पूतिपर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] पूतिपर्ण।

पूतिपल्लवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा करेला ।

पूतिपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] गोंदी । इंगुदी वृक्ष ।

पूतिपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चकोतरा नीबू ।

पूतिफल—संज्ञा पुं० [सं०] बावची । सोमराजी ।

पूतिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बावची ।

पूतिफली—संज्ञा स्त्री० [सं०] बावची [को०] ।

पूतिभाव—संज्ञा पुं० [सं०] सड़ने की स्थिति या दशा । सड़ने का भाव या क्रिया [को०] ।

पूतिमज्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोंदी । इंगुदी वृक्ष ।

पूतिमयूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बबरी । २. बनतुलसी ।

पूतिमारुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटी बेर का पेड़ । २. बेल का पेड़ ।

पूतिमाष—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि ।

पूतिमुद्गला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोहिष सोधिया । रोहिष तृण ।

पूतिमूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छछूंदर ।

पूतिमृत्तिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम ।

पूतिमेद—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गंध खेर । अरिमेद ।

पूतियोनि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का योनि रोग ।

पूतिरक्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें नाक में से दुर्गंधियुक्त रक्त निकलता है ।

पूतिरज्जु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता ।

पूतिवक्त्र—वि० [सं०] जिसके मुँह से दुर्गंध आती हो [को०] ।

पूतिवर्बरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनतुलसी । जंगली तुलसी । काली बर्बरी ।

पूतिवात—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेल का पेड़ । बिल्व वृक्ष । २. गंदी वायु । दुर्गंधयुक्त वायु [को०] ।

पूतिवाह—संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व वृक्ष । बेल का पेड़ [को०] ।

पूतिवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सोना पाठा । श्योनाक वृक्ष ।

पूतिव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] वह फोड़ा जिसमें मवाद हो । मवाद देनेवाला फोड़ा [को०] ।

पूतिशाक—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त । बकवृक्ष ।

पूतिशारिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनबिलाव ।

पूतिसृंजय—संज्ञा पुं० [सं० पूतिसृञ्जय] १. एक प्राचीन जनपद या देश । २. उक्त देश के निवासी ।

पूती—संज्ञा स्त्री० [सं० पोत (= गट्ठा)] १. जड़ जो गाँठ के रूप में हो । २. लहसुन की गाँठ ।

पूतीक—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्गंध या काँटा करंज । २. गंधमार्जार । मुश्क बिलाव ।

पूतीकरंज—संज्ञा पुं० [सं० पूतीकरञ्ज] काँटा करंज ।

पूतीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पोय । पोई । पूतिका शाक ।

पूत्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती देवी का एक नाम । २. नागों की राजधानी ।

पूत्यंड—संज्ञा पुं० [सं० पूत्यण्ड] १. वह हिरन जिसकी नाभि से कस्तूरी निकलती है । २. एक बदबूदार कीड़ा । गंधकीट ।

पूत्रित—वि० [सं०] पूजन किया हुआ । पूजित ।

पूथ—संज्ञा पुं० [देश०] बालू का ऊँचा टीला या ढूह ।

पूथा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पूथ' ।

पूथिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूतिका शाक । पोई का साग ।

पूदना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० फुदकना] एक पक्षी जो उत्तरी भारत में पाया जाता है ।

विशेष—इसका रंग प्रायः भूरा होता है, परंतु ऋतुभेद के अनुसार कुछ कुछ बदलता रहता है । इसका शरीर प्रायः सात इंच लंबा होता है । यह जमीन पर चला करता है और घास का घोंसला बनाकर रहता है ।

पूदना[2]—संज्ञा पुं० [फा० पोदनह्, हिं० पुदीना] दे० 'पुदीना' ।

पून[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १. जंगली बादाम का पेड़ जो भारत के पश्चिमी किनारों पर होता है ।

विशेष—इसके फूल और पत्तियाँ दवा के काम आती हैं और फल में से तेल निकाला जाता है । इस वृक्ष में एक प्रकार का गोंद निकलता है ।

२. कलपून नामक वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत बनाने के काम में आती है । इसके बीजों से एक प्रकार का तेल भी निकलता है । ३ तलवार की मुठिया का नीचेवाला सिरा ।

पून[2]—संज्ञा पुं० [पुण्य, प्रा० पुन्न] दे० 'पुण्य' ।

पूनⓅ[3]—संज्ञा पुं० [सं० पूर्ण] दे० 'पूर्ण' । उ०—तैसोइ लहँगा बन्यो सिलसिलो पूर्नमासी की पून री ।—नंददास (शब्द०) ।

पूनव—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूनो] दे० 'पूनो' या 'पूर्णिमा' ।

पूनसलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूनी + सलाई] वह पतली लकड़ी जिसपर रुई की पूनियाँ कातने के लिये बनाते हैं ।

पूना—संज्ञा पुं० [देश०] १. कनपून या पून नाम का सदाबहार पेड़ । २. एक प्रकार की ईख ।

पूनाकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] तेलहन में की बची हुई सीठी । खली ।

पूनिउँ, पूनिवँⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णिमा] दे० 'पूनो' । उ०—पदमावति भय पूनिवँ कला । चौदह चाँद उवा सिंघला ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३५० ।

पूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पिञ्जिका] धुनी हुई रुई की वह बत्ती जो चरखे पर सूत कातने के लिये तैयार की जाती है ।

पूनोⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णिमा] पूर्णिमा । पूर्नमासी । शुक्ल पक्ष की पंद्रहवीं या चांद्रमास की अंतिम तिथि ।

पून्यो†—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णिमा] दे० 'पूनो' । उ०—पून्यो प्रगट नभ भा उज्यारा बुधि पिंड सरीरं ।—रामानंद०, पृ० १६ ।

पूप—संज्ञा पुं० [सं० पूप, अपूप] पूआ या मालपुआ नाम का मीठा पकवान ।

पूपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का मीठा पकवान ।

पर्या०—पूपालिका । पूपाली । पूपिका । पूलिका ।

पूपली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पूपला' ।

पूपली—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पोली नली । २. बच्चों के खेलने का काठ का बहुत छोटा खिलौना जो छोटी डंठी के आकार का होता है और जिसके दोनो सिरे कुछ मोटे होते हैं । ३. बाँस आदि में से काटी हुई वह छोटी खोखली नली जिसमें देसी पंखों की डंठी का अंतिम भाग फँसाया रहता है और जिसके सहारे पंखा सहज में चारों ओर घूमा करता है ।

पूपशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ पूप आदि पकवान रखा जाता हो ।

पूपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पूपला' (को०) ।

पूपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूप । मालपुआ ।

पूपाष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूस के कृष्णपक्ष की अष्टमी ।

विशेष—तिथितत्व के अनुसार इस दिन मालपूए से श्राद्ध किया जाना चाहिए ।

पूपिक, पूपिका—संज्ञा पुं० [सं०] पूआ, पूरी आदि पकवान ।

पूब(पु)—वि० [सं० पूर्व] पुराना । प्राचीन । पूर्व । उ०—कहँ बीर कवि चंद तुम पूब कथा कहूँ मद्धि ।—पृ० रा०, २४।४१३ ।

पूय—संज्ञा पुं० [सं०] पीप । मवाद ।

पूयखरा—संज्ञा पुं० [देश०] भोजपत्र की जाति का एक वृक्ष ।

विशेष—यह वृक्ष खसिया पहाड़ी और बरमा में होता है । इसकी छाल मनीपुर आदि के जंगली लोग खाते हैं और पानी के घड़े पर उसकी मजबूती के लिये लपेटते हैं ।

पूयका—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रेतयोनि ।

विशेष—इस प्रेतयोनि में मरने के उपरांत वे वैश्य जाते हैं जो अपने धर्म से च्युत होते हैं । कहते हैं, ऐसे प्रेतों का आहार पीप है ।

पूयकुंड—संज्ञा पुं० [सं० पूयकुण्ड] पुराणानुसार एक नरक का नाम ।

पूयन—संज्ञा पुं० [सं०] मवाद । पूय (को०) ।

पूयप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें पीप के समान मूत्र होता है, अथवा जिसमें मूत्र में से पीप के समान दुर्गंध आती है ।

पूयरक्त—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें रक्तपित्त की अधिकता अथवा माथे पर चोट आने के कारण नाक में से पीप मिला हुआ लहू निकलता है ।

पूयवह—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम ।

पूयशोणित—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग । दे० 'पूयरक्त' (को०)

पूयस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार आँखों का वह रोग जिसमें उसका संधिस्थान पक जाता है और उससे पीप बहने लगती है ।

पूयारि—संज्ञा पुं० [सं०] नीम । निंब ।

पूयालस—संज्ञा पुं० [सं०] आँखों का एक रोग जिसमें उसकी पुतली की संधि में शोथ होने के कारण वह स्थान पक जाता है और उसमें से दुर्गंधयुक्त पीप निकलती है ।

पूयालसक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पूयालस' ।

पूयोद—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम ।

पूर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दारु अगर । दाहागुरु । २. बाढ़ । ३. बाढ़ पूरा होना या भरना । व्रणसंशुद्धि । ४. प्राणायाम में पूरक की क्रिया । विशेष—दे० 'पूरक' । ५. प्रवाह । धारा । उ०—जमुना पूर परम सुखदायक । दरस परस सरसत ब्रजनायक ।—घनानंद, पृ० १८७ । ६. खाद्यविशेष । एक प्रकार का पक्वान्न (को०) । ७. जलाशय । तालाब (को०) । ८. नीबू । बिजौरा नीबू (को०) ।

पूर²—वि० [सं० पूर्ण] १. दे० 'पूर्ण' । २. वे मसाले या दूसरे पदार्थ जो किसी पकवान के भीतर भरे जाते हैं । जैसे, समोसे का पूर ।

पूर³—संज्ञा पुं० [हिं० पूला] १. घास आदि का बँधा हुआ मुट्ठा । पूला । पूलक । २. फसल की उपज की तीन बराबर बराबर राशियाँ जिनमें से एक जमींदार और दो तिहाई काश्तकार लेता है । तीकुर । तिकुर । ३. बैलगाड़ी के अगल बगल का रस्सा ।

पूरक¹—वि० [सं०] पूरा करनेवाला । जिससे किसी की पूर्ति हो ।

पूरक²—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम विधि के तीन भागो में से पहला भाग जिसमें श्वास को नाक से खींचते हुए भीतर की ओर ले जाते हैं । योगविधि से नाक के दाहिने नथने को बंद करके बाएँ नथने से श्वास को भीतर की ओर खीचना । २. बिजौरा नीबू । ३. वे दस पिंड जो हिंदुओं में, किसी के मरने पर उसके मरने की तिथि से दसवें दिन तक नित्य दिए जाते हैं ।

विशेष—कहते हैं, जब शरीर जल जाता है तब इन्हीं पिंडों से मृत व्यक्ति के शरीर की पूर्ति होती है और इसी लिये इन्हें पूरक कहते हैं । पहले पिंड से मस्तक, दूसरे से आँखें, नाक और कान, तीसरे से गला, चौथे से बाँहें और छाती इसी प्रकार अलग अलग पिंडों से अलग अलग अंगों का बनना माना जाता है ।

४. वह अंक जिसके द्वारा गुणा किया जाता है । गुणक अंक । ५. वह अंश जो किसी चीज की कमी को पूरा करने के लिये रखा जाय । जैसे, पूरक (सप्लिमेंटरी) परीक्षा ।

पूरण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. भरने की क्रिया । परिपूर्ण करने की क्रिया । २ पूरा करने की क्रिया । समाप्त या तमाम करना । ३. कान आदि में तेल आदि भरने की क्रिया । ४. अंकों का गुणा करना । अंकगुणन । ५. पूरक पिंड । दशाह पिंड । ६. मेह । वृष्टि । ७. केवटी । मोथा । ८. सेतु । पुल । ९. एक प्रकार का व्रण या फोड़ा जो वात के प्रकोप से होता है । १०. समुद्र । ११. पुनर्नवा । गदहपूरना । १२. शाल्मली वृक्ष (को०) । १३. आयुर्वेदोक्त एक तैल । विष्णु तैल (को०) । १४. एक पक्वान्न । खाद्यविशेष (को०) । १५. खींचना । आकृष्ट करना । जैसे, धनुष । १६. सज्जित करना । सजाना (को०) ।

पूरण²—वि० [सं०] १. पूरक । पूरा करनेवाला । २. संख्या-

कम बतानेवाला (को०) । ३. प्रभावकारी । ४. संतुष्टि देनेवाला (को०) ।

पूरण(पु)—वि० [सं० पूर्ण] पूरा । पूर्ण ।

पूरणहारा(पु)—वि० [सं० पूर्ण + हिं० हारा (प्रत्य०)] पूरा करनेवाला (ईश्वर) । उ०—दादू पूरणहारा पूरसी, जो चित रहसी ठाँम ।—दादू०, पृ० ३३९ ।

पूरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेमर । शाल्मली वृक्ष । २. भगवती दुर्गा का एक नाम (को०) ।

पूरणीय—वि० [सं०] भरने योग्य । परिपूर्ण करने योग्य ।

पूरन(पु)—वि० [सं० पूर्ण, हिं० पूरण] दे० 'पूर्ण' । उ०—(क) जनु चकोर पूरन ससि लोभा ।—मानस, १।२०७ । (ख) हो सु भले ही कहा कहिये हम आपने पूरन भाग लहे हो ।—घनानंद, पृ० १३९ ।

पूरनकाम(पु)—वि० [सं० पूर्णकाम] दे० 'पूर्णकाम' । उ०—(क) देउ काह तुम पूरनकामा ।—मानस, ३।२५ । (ख) श्री बसुदेव धाम अभिराम । प्रगटहिंगे प्रभु पूरनकाम ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२० ।

पूरनचंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णचन्द्र] दे० 'पूर्णचंद्र' । उ०—मनु घन पूरनचंद, दूर निकट पुनि आवहिं ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३९५ ।

पूरनपरब(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पूर्ण + पर्व] पूर्णमासी । उ०—दशरथ पूरनपरब बिधु उदित समय संजोग । जनकनगर सर, कुमुदगण तुलसी प्रमुदित लोग ।—तुलसी (शब्द०) ।

पूरनपूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्ण + हिं० पूरी] एक प्रकार की मीठी कचौड़ी ।

पूरनमासी—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णमासी] दे० 'पूर्णमासी' । उ०—पूरनमासी आदि जो मगल गाइए ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० ३ ।

पूरना[1]—क्रि० स० [सं० पूरण] १. कमी या त्रुटि को पूरा करना । किसी खाली जगह को भरना । पूर्ति करना । उ०—दादू पूरणहारा पूरसी, जो चित रहसी ठाँम । अंतर थे हरि उमगसी सकल निरंतर राम ।—दादू०, पृ० ३३९ । २. ढाँकना । किसी वस्तु को किसी वस्तु से आच्छादित कर देना । उ०—कूह कै कै कर मारे जही लखि कुंभन वारन आरन पूरत ।—शंभु (शब्द०) । ३. (मनोरथ) सफल करना । सिद्ध करना । (मनोरथ) पूर्ण करना । उ०—सिद्ध गणेश मनावहिं बिधि पूरे मन काज ।—जायसी (शब्द०) । ४. मंगल अवसरों पर आटे, अबीर आदि से देवताओं के पूजन आदि के लिये चौखूँटे क्षेत्र आदि बनाना । चौक बनाना । जैसे, चौक पूरना । उ०—साजा पाट छत्र के छाँहा । रतन चौक पूरी तेहि माहाँ ।—जायसी (शब्द०) । ५. बटना । जैसे, सेवई पूरना, तागा पूरना । ६. फूँकना । बजाना । उ०—(क) तेहि वियोग सिंगी नित पूरी । बार बार किंगरी भइ झूरी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) किंगरी गहे बजावै झूरी । भोर साँझ सिंगी निज पूरी ।—जायसी (शब्द०) ।

पूरना[2]—क्रि० अ० पूर्ण होना । भर जाना । व्याप्त हो जाना । उ०—परगट गुपुत सकल महँ पूरि रहा सो नावँ । जहँ देखौं तहँ देखौं दूसर नहिं कर आवँ ।—जायसी (शब्द०) ।

पूरनानंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णानन्द] दे० 'पूर्णानंद' । उ०—अजय अखंड एक रस परिपूरन है ताही तें परनानंद अनुभौ तै पायौ है ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२२ ।

पूरनिमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णिमा] पूर्णमासी तिथि ।

पूरब[1]—संज्ञा पुं० [सं० पूर्व] वह दिशा जिसमें सूर्य का उदय होता है । मध्याह्न से पहले सूर्य की ओर मुँह करने पर सामने पड़नेवाली दिशा । पश्चिम के विरुद्ध दिशा । पूर्व । प्राची ।

पूरब(पु)†[2]—वि० दे० 'पूर्व' ।

पूरब(पु)†[3]—क्रि० वि० दे० 'पूर्व' ।

पूरबल(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० पूरबला] १. प्राचीन समय । पुराना जमाना । २. पूर्वजन्म । इस जन्म से पहलेवाला जन्म ।

पूरबला(पु)—वि० पुं० [सं० पूर्व + हिं० ला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० पूरबली] १. प्राचीन काल का । पुराना । २. पूर्व जन्म का । पहले जन्म का । उ०—(क) कछु करनी कछु करम गति कछु पूरबला लेख । देखो भाग कबीर का दोसत किया अलेख ।—कबीर (शब्द०) । (ख) भौंरे भूली खसम को कबहु न किया विचार । सतगुर साहेब बताइया पूरबला भरतार ।—कबीर (शब्द०) । (ग) मेरो लखत नहीं यह ब्याधि है पूरबली अँग के सँग आयें । का मैं कहीं घर बाहर होत ही लागत दीठि बिलब न लागै ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

पूरबवत(पु)—क्रि० वि० [हिं० सं० पूर्ववत्] दे० 'पूर्ववत्' । उ०—हम सब सो बहु बतसर लौं पूरबवत हो जो ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५६० ।

पूरबिया†—संज्ञा पुं० [हिं० पूरब + इया (प्रत्य०)] दे० 'पूरबी' ।

पूरबी[1]—वि० [हिं० पूरब + ई (प्रत्य०)] पूरब का । पूरब संबंधी । जैसे, पूरबी दादरा, पूरबी हिंदी, पूरबी चावल आदि ।

पूरबी[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का दादरा । दे० 'पूर्वी—२' ।

पूरबी[3]—संज्ञा पुं० पूरब के रहनेवाले लोग ।

पूरबी[4]—संज्ञा स्त्री० पूर्वी नाम की रागनी । विशेष—दे० 'पूर्वी' ।

पूरयितव्य—वि० [सं०] पूरा करने के योग्य । पूरणीय ।

पूरयिता[1]—संज्ञा पुं० [सं० पूरयितृ] १. पूर्णकर्ता । पूरक । पूर्ण करनेवाला । २. विष्णु का एक नाम ।

पूरयिता[2]—वि० १. पूर्ण करनेवाला । पूरक । २. संतुष्टिकर । संतोष देनेवाला (को०) ।

पूरा—वि० पुं० [सं० पूर्ण] [वि० स्त्री० पूरी] १. जो खाली न हो । भरा । परिपूर्ण । २. जिसका अंश या विभाग न किया गया हो अथवा जिसके टुकड़े या विभाग न हुए हों । समूचा । सोलह आना । समग्र । समस्त । सकल । ३. जिसमें कोई

कमी या कसर न रह गई हो। पूर्ण। कामिल। जैसे, पूरा मर्द, पूरा अधिकार, पूरा दबाव आदि।

क्रि० प्र०—पड़ना।—उतरना।—डालना।—होना।

४. भरपूर। यथेच्छ। काफी। बहुत। जैसे—मेरे पास पूरा सामान है, डरने की कोई बात नहीं।

मुहा०—किसी बात का पूरा = (१) जिसके पास कोई वस्तु यथेष्ट या प्रचुर हो। जैसे विद्या का पूरा, बल का पूरा। (२) पक्का। दृढ़। मजबूत। अटल। जैसे, बात का पूरा, वादे का पूरा। किसी का पूरा पड़ना = कार्य पूर्ण हो जाना सामग्री न घटना। सामग्री की कमी से बाधा न आना। जैसे—(क) मैं समझता हूँ कि इतनी सामग्री से तुम्हारा सब काम पूरा पड़ जायगा। (ख) जाओ, तुम्हारा कभी पूरा न पड़ेगा।

५. संपन्न। पूर्ण। सपादित। कृत। जिसके किए जाने में कुछ कसर न रह गई हो। जैसे, काम पूरा होना। (इसका व्यवहार प्रायः 'करना' क्रिया के साथ होता है।)

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—(कोई काम) पूरा उतरना = अच्छी तरह होना। जैसा चाहिए वैसा ही होना। जैसे—काम पूरा उतर जाय तो जानें। बात पूरी उतरना = ठीक निकलना। सत्य उतरना। सच होना। जैसा कहा गया हो वैसा ही होना। दिन पूरे करना = (१) समय बिताना। किसी प्रकार कालक्षेप करना। (२) किसी अवधि तक समय बिताना। जैसे, वनवास के दिन पूरे करना। (दिन) पूरे होना = अंतिम समय निकट आना। जैसे, अब उनके दिन पूरे हो गए।

६. तुष्ट। पूर्ण। जैसे,—हमारी इच्छाएँ पूरी हो गईं।

पूराम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] विषाविल। वृक्षाम्ल। महाम्ल।

पूरि(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पूरी—१'। उ०—लुचुई पूरि सोहारी परी। एक ताती औ सुठि कोवरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० ३१३।

पूरिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] कचौड़ी (को०)।

पूरिका—संज्ञा [सं०] कचौड़ी।

पूरिणी—वि० स्त्री० [सं० पूरिन्] पूर्ण करनेवाली। तृप्त या तुष्ट करने वाली। उ०—फिर क्या तेरा धाम स्वर्ग है, जो तप बल से प्राप्य। होती है वासना पूरिणी वहीं अप्सरा प्राप्त।—हिम०, पृ० ५०।

पूरित—वि० [सं०] १. भरा हुआ। परिपूर्ण। लबालब। २. तृप्त। ३. गुणा किया हुआ। गुणित।

पूरिबला(५)—वि० पुं० [हिं० पूरब] दे० 'पूरबला'। उ०—कामी कदे न हरि भजै, जपै न केसौ जाप। राम कह्याँ थैं जलि मरै, को पूरिबला पाप।—कबीर ग्रं०, पृ० ४१।

पूरिया—संज्ञा पुं० [देश०] षाड़व जाति का एक राग जो संध्या समय गाया जाता है। इसमें पंचम स्वर वर्जित है। किसी के मत से यह भैरव राग का पुत्र और किसी के मत से संकर राग है।

पूरियाकल्याण—संज्ञा पुं० [हिं० पूरिया + कल्याण (राग)] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसके गाने का समय रात का पहला पहर है।

पूरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पूलिका, पूरिका] १. एक प्रकार का प्रसिद्ध पकवान जिसे साधारण रोटी आदि की तरह महीन बेलकर खौलते घी में छान लेते हैं। २. मृदंग, तबले, ढोल आदि के मुँह पर मढ़ा हुआ गोल चमड़ा।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।—मढ़ना।

३. घास, ज्वार आदि की पूली।

पूरी[2]—वि० स्त्री० [हिं०] 'पूरा' शब्द का स्त्रीलिंग रूप। (मुहावरों आदि के लिये दे० 'पूरा'।)

पूरी[3]—वि० [सं० पूरिन्] पूरा करनेवाला। पूर्ण करनेवाला (को०)।

पूरीकरण—संज्ञा पुं० [हिं० पूरी + करना (= करना)] १. पूरा करने का भाव। २. पूर्णता। उ०—तुम्हारी प्रेरणा से मैं ध्वनित हो उठता हूँ, और उस ध्वनि की प्रेरणा से हमारी चिरतन प्रणय कामनाएँ पूरीकरण में लीन हो जाती हैं।—चिंता, पृ० ३६।

पूरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्य। २. वैराज मनु के एक पुत्र का नाम। ३. जह्नु के एक पुत्र का नाम। ४. एक राक्षस का नाम।

पूरुजित्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

पूरुब†—संज्ञा पुं० [सं० पूर्व] दे० 'पूरब'।

पूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरुष। २. आत्मा।

पूर्ण[1]—वि० [सं०] १. पूरा। भरा हुआ। परिपूर्ण। पूरित। २. जिसे इच्छा या अपेक्षा न हो। अभावशून्य। ३. जिसकी इच्छा पूर्ण हो गई हो। आप्तकाम। परितृप्त। ४. भरपूर। जितना चाहिए उतना। यथेष्ट। काफी। ५. समूचा। अखंडित। सकल। ६. समस्त। सारा। सब का सब। ७. सिद्ध। सफल। ८. जो पूरा हो चुका हो। समाप्त। जैसे,—उसका दंड काल पूर्ण हो गया। ९. बीता हुआ। व्यतीत। अतीत (को०) १०. शक्तियुक्त।

पूर्ण[2]—संज्ञा पुं० १. एक गंधर्व का नाम। २. एक नाग का नाम। ३. बौद्ध शास्त्र के अनुसार मैत्रायणी के एक पुत्र का नाम। ४. जल। ५. विष्णु।

पूर्णअतीत—संज्ञा पुं० [सं०] ताल (संगीत) में वह स्थान जो 'सम अतीत' के एक मात्रा के बाद आता है। यह स्थान भी कभी कभी सम का काम देता है।

पूर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुर्गा। कुक्कुट। ताम्रचूड़। २. देवताओं की एक योनि। ३. चाष या चाख पक्षी (को०)। ४. दे० 'पूर्ण'।

पूर्णककुत—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णककुद्] कुहानदार बछड़ा। युवा बछड़ा। उ०—जब तक बछड़ा बड़ा नहीं हो जाता था अर्थात् उसकी पीठ पर डिल नहीं निकल आता था तबतक वह अजातककुत और युवा हो जाने पर पूर्णककुत कहलाता था।—संपूर्णानंद अभि० ग्रं०, पृ० २४६।

पूर्णकाम[1]—वि० [सं०] १. जिसे किसी बात की कामना या चाह न रह गई हो। जिसकी सारी इच्छाएँ तृप्त हो चुकी हों। आप्तकाम। २. निष्काम। कामनाशून्य।

पूर्णकाम²—संज्ञा पुं० परमेश्वर।

पूर्णकाल आधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जिसके रखने का समय पूरा हो गया हो।

पूर्णकालिक—वि० [सं० पूर्ण + कालिक] पूरे समय तक। पूरे समय का।

पूर्णकाश्यप—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धशास्त्रों के अनुसार एक प्रसिद्ध तीर्थिक। भगवान् बुद्ध ने जिन छह तीर्थिकों को पराजित किया था उनमें एक ये भी थे।

विशेष—बुद्ध से पहले ही इन्होंने अपने मत का प्रचार प्रारंभ कर दिया था और बहुत से लोग उनके अनुयायी हो गए थे। साधारण लोगों से लेकर मगध के राजा तक इनपर भक्ति और श्रद्धा रखते थे। भूटान में मिले हुए एक बौद्ध ग्रंथ के अनुसार ये उपर्युक्त छहों तीर्थिकों में प्रधान थे। ये कोई कपड़ा नहीं पहनते थे, नगे बदन घूमा करते थे, ये कहते थे, जगत् अनंत भी है और सांत भी, अक्षय भी है, क्षयशील भी, असीम भी है और ससीम भी, चित्त और देह भिन्न भी हैं और अभिन्न भी। परलोक का अस्तित्व और अनस्तित्व दोनों ही है। पर जन्म नहीं है, इस जन्म में ही जीव का शेष, ध्वंस या मृत्यु होती है। मरने के बाद फिर जन्म नहीं होता। शरीर चार भूतों से ही—क्षिति, अप, तेज और मरुत् से बना है। मृत्यु के पश्चात् वह क्रम से पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु में मिल जाता है। उनके मत से यही परमतत्व था। बुद्ध से पराजित होने का इन्हें इतना दुख हुआ था कि ये गले में बालू से भरा घड़ा बाँधकर डूब मरे। श्रावस्ती और जेतवन में बुद्ध के साथ इनकी मूर्ति भी पाई गई है।

पूर्णकुंभ—संज्ञा पुं० [पूर्णकुम्भ] १. भरा हुआ घड़ा। २. पानी से भरा हुआ वह घड़ा जो शुभ की दृष्टि से दरवाजे पर रखा जाता है। ३. दीवार में बना हुआ घड़े के आकार का छेद। ४. युद्ध की एक विशेष विधि [को०]।

पूर्णकोशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

पूर्णकोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कचौरी। २. प्राचीन काल का एक प्रकार का पकवान जो जौ के आटे का बनता था।

पूर्णकोष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा।

पूर्णगर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूरन पूरी। २. वह स्त्री जिसे शीघ्र प्रसव होने की संभावना हो। वह स्त्री जिसे शीघ्र ही संतान होनेवाली हो।

पूर्णचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णचन्द्र] पूर्णिमा का चद्रमा। अपनी सब कलाओं से युक्त चद्रमा।

यौ०—पूर्णचंद्रनिभानन = चद्रमा की तरह से मुखवाला।

पूर्णतया—क्रि० वि० [सं०] पूरी तरह से। पूर्ण रूप से।

पूर्णतः—क्रि० वि० [सं० पूर्णतस्] पूरे तौर से। पूर्णतया।

पूर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्ण का भाव। पूर्ण होना।

पूर्णतूण—वि० [सं०] जिसका तरकश बाणों से पूर्ण हो [को०]।

पूर्णदर्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वैदिक क्रिया। २. पूर्णिमा।

पूर्णपरिवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जीव जो अपने जीवन में अनेक बार अपना रूप आदि बदलता हो। जैसे, तितली।

पूर्णपर्वेंदु—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णपर्वेन्दु] पूर्णिमा। पूर्णमासी।

पूर्णपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूरा पात्र। भरा हुआ पात्र। २. पुत्रजन्मादि के उत्सव के समय पारितोषिक या इनाम के रूप में मिले हुए वस्त्र, अलकार आदि। ३. सुसंवाद लानेवालों को मिलनेवाला उपहार। अच्छी सूचना लाने पर मिलनेवाला पुरस्कार। ४. वह घड़ा जो प्राचीन काल में चावलों से भरकर होम या यज्ञ के अंत में ब्रह्मा को दक्षिणा रूप में दिया जाता था। इसमें साधारणतः २५६ मुट्ठी चावल हुआ करता था।

पूर्णप्रज्ञ¹—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि में कोई कमी या त्रुटि न हो। पूर्ण ज्ञानी। बहुत बुद्धिमान्।

पूर्णप्रज्ञ²—संज्ञा पुं० पूर्णप्रज्ञ दर्शन के कर्ता मध्वाचार्य।

विशेष—ये वैष्णव मत के संस्थापक आचार्यों में माने जाते हैं। वेदांतसूत्र पर इन्होंने 'माध्वभाष्य' नामक द्वैतपक्षप्रतिपादक भाष्य लिखा है। हनुमान और भीम के बाद ये वायु के तीसरे अवतार माने गए हैं। अपने भाष्य में इन्होंने स्वयं भी यह बात लिखी है। इनका एक नाम आनंदतीर्थ भी है।

पूर्णप्रज्ञदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] सर्वदर्शन संग्रह के अनुसार वह दर्शन जिसके प्रवर्तक पूर्णप्रज्ञ या मध्वाचार्य हैं।

विशेष—इस दर्शन का आधार वेदांतसूत्र और उसपर रामानुज कृत भाष्य है। इसके अधिकतर सिद्धांत रामानुज दर्शन के सिद्धांतों से मिलते हैं। दोनों का मुख्य अंतर ईश्वर और जीव के भेदाभेद के विषय में है। इस संबंध में रामानुज दर्शन का भेद, अभेद और भेदाभेद सिद्धांत इस दर्शन को स्वीकार नहीं है। इसके मत से जीव और ईश्वर में किसी प्रकार का सूक्ष्म या स्थूल अभेद नहीं है, किंतु स्पष्ट भेद है। उनका संबंध शरीरात्म भाव का नहीं है बल्कि सेव्य सेवक भाव का है। अंतर्यामी होने के कारण जीव ईश्वर का शरीर नहीं है, बल्कि उसका सेवक और अधीन है। ईश्वर स्वतंत्र तत्व और जीव अस्वतंत्र तत्व और ईश्वराधीन हैं। इस दर्शन के मत से पदार्थ के तीन भेद हैं—चित् (जीव), अचित् (जड़) और ईश्वर। चित् जीवपदवाच्य, भोक्ता, असंकुचित, अपरिच्छिन्न, निर्मल ज्ञानस्वरूप, नित्य, अनादि और कर्मरूप अविद्या से ढँका हुआ है। ईश्वर का आराधक और उसकी प्राप्ति उसका स्वभाव है। (आकार में) वह बाल की नोक के सौंवें भाग के बराबर है। अचित् पदार्थ दृश्यपदवाच्य, भोग्य, अचेतनस्वरूप और विकारशील हैं। फिर भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन या भरेशाकार रूप से इसके भी तीन भेद हैं। ईश्वर हरिपदवाच्य, सबका नियामक, जगत् का कर्ता, उपादान, सकलांतर्यामी, अपरिच्छिन्न और ज्ञान, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज आदि गुणों से संपन्न है।

इस दर्शन के अनुसार यह निखिल जगत् अनंत समुद्रशायी भगवान् विष्णु से उत्पन्न हुआ है। चित् और अचित् संपूर्ण पदार्थ उनके शरीररूप हैं। पुरुषोत्तम, वासुदेवादि उनकी संज्ञाएँ हैं। उपासकों को यथोचित फल देने के लिये लीलावश वे पाँच प्रकार की मूर्तियाँ धारण करते हैं। प्रथम अर्चा अर्थात् प्रतिमादि, द्वितीय विभव अर्थात् रामादि अवतार, तृतीय वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार सक्षात्कात व्यूह, चतुर्थ सूक्ष्म और संपूर्ण वासुदेव नामक परब्रह्म, पंचम अंतर्यामी सकल जीवों के नियता उपासक क्रम से पूर्व मूर्ति की उपासना द्वारा पापक्षय करके परमूर्ति की उपासना का अधिकारी होता है। अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग नाम से भगवान् की उपासना के भी पाँच प्रकार हैं। देवमंदिर का मार्जन, अनुलेपन आदि अभिगमन हैं; गंध पुष्पादि पूजा के उपकरणों का आयोजन उपादान; पूजा इज्या; अर्थानुसंधान के सहित मंत्रजप, स्तोत्रपाठ, नामकीर्तन और तत्व प्रतिपादक शास्त्रों का अभ्यास स्वाध्याय, और देवता का अनुसंधान योग है। इन उपासनाओं के द्वारा ज्ञानलाभ होने पर भगवान् उपासक को नित्यपद प्रदान करते हैं। इस पद को प्राप्त होने पर भगवान् का यथार्थ रूप में ज्ञान होता है और फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। पूर्णप्रज्ञ के मत से भगवान् विष्णु की सेवा तीन प्रकार की है अंकन, नामकरण और भजन। गरम लोहे से दागकर शरीर पर शंख, चक्र आदि के चिह्न उत्पन्न करना अंकन है; पुत्र पौत्रादि के केशव नारायण आदि नाम रखना नामकरण। भजन के कायिक, वाचिक और मानसिक भेद से तीन प्रकार हैं। फिर इनके भी कई कई भेद हैं,—कायिक के दान, परित्राण और परिरक्षण, वाचिक के सत्य, हित, प्रिय और स्वाध्याय, और मानसिक के दया, स्पृहा और श्रद्धा।

पूर्णबीज—संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू।

पूर्णभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग जिसका उल्लेख महाभारत में है।

पूर्णमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा। पूर्णमासी।

पूर्णमानस—वि० [सं०] संतुष्ट। परितुष्ट [को०]।

पूर्णमास[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णमास्] १ पूर्णिमा। २. सूर्य। ३. चंद्रमा।

पूर्णमास[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक योग जो पूर्णिमा को किया जाता था। पौर्णमास योग। २. धाता का एक पुत्र जो उसकी अनुमति नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ था।

पूर्णमासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमास की अंतिम तिथि। शुक्लपक्ष का अंतिम या पंद्रहवाँ दिन। वह तिथि जिसमें चंद्रमा अपनी सारी कलाओं से पूर्ण होता है। पूर्णिमा।

पूर्णमुख—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग जो जनमेजय के सर्पसत्र में जलाया गया था।

पूर्णमैत्रायणीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध भगवान् के अनुचरों में से एक।

विशेष—ये पश्चिम भारत के सुरपाक नामक स्थान में रहते थे। सूत्र का अभ्यास करनेवाले बौद्ध इनकी उपासना करते थे।

पूर्णयोग—संज्ञा पुं० [सं०] बाहुयुद्ध का एक भेद।

विशेष—महाभारत के अनुसार भीम और जरासंध में यही बाहुयुद्ध हुआ था।

पूर्णरथ—संज्ञा पुं० [सं०] पूरा वीर। पूर्ण योद्धा [को०]।

पूर्णलक्ष्मीक—वि० [सं०] श्री और संपत्ति से संपन्न [को०]।

पूर्णवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णवर्मन्] मगध का एक बौद्ध राजा जो सम्राट् अशोक के वंश में अंतिम था।

विशेष—गौड़राज शशांक ने बोधिगया के जिस बोधिवृक्ष को नष्ट कर दिया था उसे इसने फिर से संजीवित किया। ह्वेनसांग के भ्रमणवृत्तांत से ज्ञात होता है कि उसके आगमन के पहले ही यह सिंहासन पर बैठ चुका था।

पूर्णवर्ष—वि० [सं०] पूरे बीस वर्ष की आयु का [को०]।

पूर्णविराम—संज्ञा पुं० [सं०] लिपिप्रणाली में वह चिह्न जो वाक्य के पूर्ण हो जाने पर लगाया जाता है। वाचक के लिये सबसे बड़े विराम या ठहराव का चिह्न या संकेत।

विशेष—अँगरेजी आदि अधिकांश लिपियों में, और उन्हीं के अनुकरण पर मराठी आदि में भी, यह चिह्न एक बिंदु, . , के रूप में होता है, परंतु नागरी, बँगला आदि में इसके लिये खड़ी पाई ' । ' का व्यवहार होता है।

पूर्णविषम—संज्ञा पुं० [सं०] ताल (संगीत) में एक स्थान जो कभी कभी सम का काम देता है।

पूर्णवैनाशिक—संज्ञा पुं० [सं०] सर्वशून्यवाद को माननेवाला। सर्वशून्यवाद सिद्धांत को माननेवाला बौद्ध [को०]।

पूर्णशैल—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत जिसका उल्लेख योगिनी तंत्र में है।

पूर्णश्री—वि० [सं०] श्रीसंपन्न। सौभाग्ययुक्त [को०]।

पूर्णहोम—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्णाहुति।

पूर्णांक—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णाङ्क] १. पूर्ण संख्या। २. गणित की वह संख्या जो विभक्त न हो सके। ३. प्रश्नपत्र में निर्धारित पूरे अंक [को०]।

पूर्णांगद—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णाङ्गद] महाभारत में उल्लिखित एक नाग।

पूर्णांजलि—वि० [सं० पूर्णाञ्जलि] अंजुलि भर। जितना अंजुली में आ सके।

पूर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पंचमी, दशमी, अमावस, और पूर्णमासी की तिथियाँ। २. चंद्रमा की पंद्रहवीं कला या लेखा (को०)। ३. दक्षिण भारत की एक नदी।

पूर्णाघात—संज्ञा पुं० [सं०] ताल (संगीत) में वह स्थान जो अनाघात के उपरांत एक मात्रा के बाद आता है। कभी कभी यह स्थान भी सम का काम देता है।

पूर्णात्मावसान—संज्ञा पुं० [सं० पूर्ण+आत्मा+अवसान] आत्मा का पूर्ण उत्सर्ग। आत्मा का पूर्ण विलीनीकरण। उ०—कलाकार की प्रगति निरंतर आत्मोत्सर्ग अथवा पूर्णात्मावसान में ही है।—पा० सा० सि०, पृ० ५९।

पूर्णानंद—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णानन्द] परमेश्वर।

पूर्णानक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढोल। नगाड़ा। २. नगाड़े की ध्वनि। ३. पात्र। बर्तन। ४. चंद्रमा की किरण। ५. दे० पूर्णपात्र-२' (को०)।

पूर्णाभिलाष—वि० [सं०] जिसकी अभिलाषा पूर्ण हो गई हो। परितुष्ट। संतुष्ट (को०)।

पूर्णाभिषिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] शाक्तों का एक विशेष वर्ग (को०)।

पूर्णाभिषेक—संज्ञा पुं० [सं०] वाममार्गियों का एक तांत्रिक संस्कार। अभिषेक। महाभिषेक।

विशेष—यह संस्कार किसी नए साधक के गुरु द्वारा दीक्षित होने के समय किया जाता है और कई दिनों में पूरा होता है। इसमें अनेक क्रियाओं के उपरांत गुरु अपने शिष्य को दीक्षा देकर वाममार्ग की क्रियाओं और संस्कारों का अधिकारी बनाता है।

पूर्णामृता—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्ण + अमृता] चंद्रमा की सोलहवीं कला (को०)।

पूर्णायु¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्णायुस्] १. सौ वर्ष की आयु। सौ वर्ष तक पहुँचनेवाला जीवनकाल। २. पूरी आयु। ३. महाभारत में उल्लिखित एक गंधर्व।

पूर्णायु²—वि० १. पूरी आयुवाला। जिसने पूरी उम्र पाई हो। २. सौ वर्ष तक जीनेवाला।

पूर्णालक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पूर्णानक' (को०)।

पूर्णावतार—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐसा अवतार जो अंशावतार न हो। किसी देवता का संपूर्ण कलाओं से युक्त अवतार। षोडश कलायुक्त अवतार। २. विष्णु के वे अवतार जो अंशावतार नहीं थे।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के मत से विष्णु भगवान् के सोलहों कलायुक्त अवतार नृसिंह, राम और श्रीकृष्ण हैं।

पूर्णाश—वि० [सं०] जिसकी सभी आशाएँ पूर्ण हों (को०)।

पूर्णाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत में उल्लिखित एक नदी।

पूर्णाहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी यज्ञ की अंतिम आहुति। वह आहुति जिसे देकर होम समाप्त करते हैं। होम के अंत में दी जानेवाली आहुति। २. किसी कर्म की समाप्ति या समाप्ति के समय होनेवाली क्रिया।

पूर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा। पूर्णमासी।

पूर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिड़िया जिसकी चोंच का दोहरी होना माना जाता है। नासाच्छिन्नी पक्षी।

पूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णमासी। वह तिथि जिस दिन चंद्रमा अपने पूरे मंडल के साथ उदय होता है।

पर्या०—पौर्णमासी। चित्रा। चांद्री। पूर्णमासी। अनंता। चंद्रमाता। निरंजना। ज्योत्स्नी। इंदुमती। सिता। अनुमती। राका।

पूर्णिमासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णमासी। पूर्णिमा (को०)।

पूर्णेंदु—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णेन्दु] पूर्णिमा का चंद्रमा। पूर्ण चंद्र।

पूर्णोत्कट—संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराण में उल्लिखित एक पूर्वदेशीय पर्वत।

पूर्णोत्संग—संज्ञा पुं० [सं० पूर्णोत्सङ्ग] आंध्रवंश का एक राजा।

पूर्णोदरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी।

पूर्णोपमा—संज्ञा पुं० [सं०] उपमा अलंकार का वह भेद जिसमें उसके चारो अंग अर्थात्—उपमेय, उपमान, वाचक, और धर्म प्रकट रूप से प्रस्तुत हों। जैसे, इंद्र सो उदार है नरेंद्र मारवाड़ को, इसमें 'मारवाड़ को नरेंद्र' उपमेय, 'इंद्र' उपमान, 'सो' वाचक और 'उदार' धर्म चारों प्रस्तुत हैं।

पूर्त¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पालन। पूरा करना। २. खोदने अथवा निर्माण करने का कार्य। पुष्करिणी, सभा, वापी, बावली, देवगृह, आराम (बगीचा), सड़क आदि बनाने का काम। ३. सम्मान। पुरस्कार। इनाम (को०)।

पूर्त²—वि० १. पूरित। पूरा किया हुआ। २. ढँका हुआ। आच्छादित। छन्न। ३. पोषित। रक्षित (को०)।

पूर्तविभाग—संज्ञा पुं० [सं० पूर्त + विभाग] वह सरकारी विभाग या मुहकमा जिसका काम सड़क, नहर, पुल, मकान आदि बनवाना है। तामीर का मुहकमा।

पूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी आरंभ किए हुए कार्य की समाप्ति। २. पूर्णता। पूरापन। ३. किसी कार्य में अपेक्षित वस्तु की प्रस्तुति। किसी काम में जो वस्तु चाहिए उसकी कमी को पूरा करने की क्रिया। ४. वापी, कूप, या तड़ाग आदि का उत्सर्ग। ५. भरने का भाव। पूरण। ६. गुणा करने का भाव। गुणन।

पूर्ती¹—वि० [सं० पूर्तिन्] १. तृप्ति देनेवाला। २. इच्छा पूर्ण करनेवाला। ३. पूरित।

पूर्ती²—संज्ञा पुं० श्राद्ध।

पूर्ब¹—संज्ञा पुं० [सं० पूर्व] दे० 'पूर्व'।

पूर्ब²—वि० दे० 'पूर्व'।

पूर्बजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पूर्वज'। उ०—जिनके भाव भए पूर्बज के ते नहिं संग रहयो रे।—जग० श०, भा० २, पृ० ८७।

पूर्य¹—वि० [सं०] १. पूरा करने योग्य अथवा जिसे पूरा करना हो। पूरणीय। २. पालनीय।

पूर्य²—संज्ञा पुं० एक तृण धान्य।

पूर्व¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दिशा जिस ओर सूर्य निकलता हुआ दिखलाई देता हो। पश्चिम के सामने की दिशा। २. जैन मतानुसार सात नील, पाँच खरब, साठ अर्ब वर्ष का एक कालविभाग। ३. पूर्वज। पुरखा (को०)। ४. अगला भाग। आगे का हिस्सा (को०)।

पूर्व²—वि० [सं०] १. पहले का। जो पहले हो या रह चुका हो। २. आगे का। अगला। ३. पुराना। प्राचीन। ४. पिछला। ५. बड़ा। ६. पूर्व का। पूरब में स्थित (को०)।

पूर्व¹—क्रि॰ वि॰ पहले। पेश्तर। जैसे,—मैं इसके पूर्व ही पुस्तक दे चुका था।

पूर्वक¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पुरखा। बापदादा। पूर्वज।

पूर्वक²—वि॰ १. प्रथम। पहला। २. पहले का। पूर्ववर्ती।

पूर्वक³—क्रि॰ वि॰ [सं॰] साथ। सहित।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द प्रायः संयुक्त संज्ञा के अंत में आता है। जैसे, ध्यानपूर्वक। निश्चयपूर्वक।

पूर्वकर्म—संज्ञा पुं॰ [पूर्वकर्मन्] १. सुश्रुत के अनुसार तीन कर्मों में से पहला कर्म। रोगोत्पत्ति के पहले किए जानेवाले काम।

विशेष—शेष दो कर्म प्रधान कर्म और पश्चात् कर्म हैं।

२. पूर्व जन्मार्जित कर्म (को॰)। ३. प्राथमिक कर्म। पहला काम (को॰)।

पूर्वकल्प—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्राचीन काल। पुराना समय (को॰)।

पूर्वकाय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शरीर का पूर्व भाग। शरीर में नाभि से उपर का भाग।

पूर्वकाल¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्राचीन काल। पुराना समय (को॰)।

पूर्वकाल²—वि॰ प्राचीन काल से संबंधित। पुराने समय का (को॰)।

पूर्वकालिक—वि॰ [सं॰] १. जिसकी उत्पत्ति या जन्म पूर्वकाल में हुआ हो। पूर्वकाल जात। २. जिसकी स्थिति पूर्वकाल में रही हो। पूर्वकालीन। पूर्वकाल संबंधी।

पूर्वकालिक क्रिया—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह अपूर्ण क्रिया जिसका काल किसी दूसरी पूर्ण क्रिया के पहले पड़ता हो। जैसे, ऐसा करके वह गया।

पूर्वकालीन—वि॰ [सं॰] दे॰ 'पूर्वकालिक'।

पूर्वकृत्¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पूर्व दिशा के कर्ता सूर्य। २. पूर्व दिशा के स्वामी इंद्र (को॰)।

पूर्वकृत्²—वि॰ पहले किया हुआ (को॰)।

पूर्वकृत³—संज्ञा पुं॰ पूर्वजन्म में किया हुआ कर्म (को॰)।

पूर्वगंगा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पूर्वगङ्गा] नर्मदा नदी।

पूर्वग—वि॰ [सं॰] पूर्वगामी। २. पूर्ववर्ती (को॰)।

पूर्वगत—वि॰ [सं॰] पहले गया हुआ (को॰)।

पूर्वगामी—वि॰ [सं॰ पूर्वगामिन्] पहले गया हुआ। जो पहले चला गया हो (को॰)।

पूर्वग्रह—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पूर्व+ग्रह] वह मत जो बिना पूर्णरूप से विचार किए स्थिर कर लिया जाता है। अनिर्णीत मत।

पूर्वचित्ति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] इंद्र की एक अप्सरा का नाम।

पूर्वज¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. बड़ा भाई। अग्रज। २ ऊपर की पीढ़ियों में उत्पन्न पुरुष। पुरखा। बाप, दादा, परदादा आदि। ३. बड़ी पत्नी का ज्येष्ठ पुत्र। सबसे बड़ा पुत्र। (को॰)। चंद्रलोक में रहनेवाले दिव्य पितृगण।

पर्या॰—चंद्रगोलस्थ। स्व:तसाल। स्वधाभुज। कव्यवाहादि।

पूर्वज²—वि॰ पूर्वकाल में उत्पन्न।

पूर्वजन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पुराने समय के लोग। पुराकालीन पुरुष।

पूर्वजन्म—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पूर्वजन्मन्] वर्तमान से पहले का जन्म। पिछला जन्म।

पूर्वजन्मा—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बड़ा भाई। अग्रज।

पूर्वजा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बड़ी बहन।

पूर्वजाति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पूर्वजन्म। पिछला जन्म।

पूर्वजिन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. अतीत जिन या बुद्ध। २. मंजुश्री का एक नाम।

पूर्वज्ञान—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पूर्वजन्म का ज्ञान। पूर्वजन्म में अर्जित ज्ञान जो इस जन्म मे भी विद्यमान हो। २. पहले का ज्ञान। पूर्वार्जित ज्ञान।

पूर्वतः—क्रि॰ वि॰ [सं॰ पूर्वतस्] १. पहले से। पूर्व से। २. सामने से। आगे से।

पूर्वतन—वि॰ [सं॰] प्राचीन। पुराना (को॰)।

पूर्वत्र—क्रि॰ वि॰ [सं॰] पहले भाग मे। पहले।

पूर्वदक्षिण—वि॰ अग्निकोण संबंधी। पूर्व और दक्षिण के बीच का (को॰)।

पूर्वदक्षिणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पूर्व और दक्षिण के बीच का कोना।

पूर्वदत्त—वि॰ सं॰ पहले दिया हुआ (को॰)।

पूर्वदिक्—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पूर्वदिश्] पूरब। प्राची (को॰)।

यौ॰—पूर्वदिक्पति = पूर्व दिशा के स्वामी। इंद्र।

पूर्वदिगवदन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मेष, सिंह और धनु ये तीनों राशियाँ।

पूर्वदिगीश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. इंद्र। २. मेष, सिंह और धनु ये तीनों राशियाँ।

पूर्वदिश्य—वि॰ [सं॰] पूर्व की ओर स्थित। पूर्वी (को॰)।

पूर्वदिष्ट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह सुख दुःख आदि जो पूर्व जन्म के कर्मों के परिणाम स्वरूप भोगने पड़ें।

पूर्वदेवकृत—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पूर्व जन्म का पाप (को॰)।

पूर्वदेव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. नर और नारायण। २. असुर, जो पहले सुर थे, पीछे अपने दुष्कर्मों के कारण भ्रष्ट हो गए थे। ३. प्राचीन देवता। प्राचीन देव (को॰)। ४. पितर (को॰)।

पूर्वदेवता—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पितर (को॰)।

पूर्वदेहिक, पूर्वदैहिक—वि॰ [सं॰] पूर्व जन्म में किया हुआ (को॰)।

पूर्वनडक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] टाँग की एक एक हड्डी का नाम।

पूर्वनिरूपण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भाग्य। किस्मत।

पूर्वनिश्चित—वि॰ [सं॰] जिसकी योजना पहले तय हो चुकी हो। पहले से तय या निश्चित।

पूर्वन्याय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] किसी अभियोग में प्रत्यर्थी का यह कहना कि ऐसे अभियोग में मैं वादी को पराजित कर चुका हूँ। यह उत्तर का एक प्रकार है।

पूर्वपक्ष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. किसी शास्त्रीय विषय के संबंध में उठाई हुई बात, प्रश्न या शंका। शास्त्रविचार के

लिये किया हुआ प्रश्न या शंका। (उत्तर में जो बात कही जाती है उसे उत्तरपक्ष कहते हैं)। २. कृष्ण पक्ष। ३. अगला हिस्सा। अग्रिम पक्ष। ४. व्यवहार या अभियोग में वादी द्वारा उपस्थित बात। मुद्दई का दावा।

पूर्वपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० **पूर्वपक्षिन्**] १. वह जो पूर्वपक्ष उपस्थित करे। २. वह जो किसी प्रकार का दावा दायर करे।

पूर्वपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहले का रास्ता। पुरानी राह। २. पूर्व दिशा की ओर का पथ।

पूर्वपद—संज्ञा पुं० [सं०] समस्त पद या किसी वाक्य का प्रथम पद [को०]।

पूर्वपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह कल्पित पर्वत जिसके पीछे से सूर्य का उदय होना माना जाता है। उदयाचल।

पूर्वपाली—संज्ञा पुं० [सं० **पूर्वपालिन्**] इंद्र।

पूर्वपितामह—संज्ञा पुं० [सं०] प्रपितामह। परदादा।

पूर्वपीठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिचय। भूमिका [को०]।

पूर्वपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. पूर्वज। पुरखा [को०]।

पूर्वप्रज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अतीत का ज्ञान। २. स्मृति। याददाश्त।

पूर्वफाल्गुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों में ग्यारहवाँ नक्षत्र। दे० 'नक्षत्र'।

यौ०—**पूर्वफाल्गुनीभव** = बृहस्पति का नाम।

पूर्वबंधु—संज्ञा पुं० [सं० **पूर्वबन्धु**] प्रथम अथवा सर्वोत्तम मित्र [को०]।

पूर्वभक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रातःकाल किया जानेवाला भोजन। जलपान।

पूर्वभाद्रपद—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रों में २५ वाँ नक्षत्र। दे० 'नक्षत्र'।

पूर्वभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राधान्य। २. पूर्व सत्ता। ३. विचारों की अभिव्यक्ति। इच्छा का उद्घाटन [को०]।

पूर्वभूत—वि० [सं०] पहले का। जो पहले हुआ हो [को०]।

पूर्वभावी[1]—वि० [सं० **पूर्वभाविन्**] पहले का। पहले होनेवाला।

पूर्वभावी[2]—संज्ञा पुं० कारण। हेतु [को०]।

पूर्वमारी—वि० [सं० **पूर्वमारिन्**] पहले मरनेवाला [को०]।

पूर्वमीमांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं का एक दर्शन जिसमें कर्मकांड संबंधी बातों का निर्णय किया गया है। इस शास्त्र के कर्ता जैमिनि मुनि माने जाते हैं।

विशेष—दे० 'मीमांसा'।

पूर्वमुख—वि० [सं०] जो पूर्व की ओर मुख किए हो [को०]।

पूर्वमेघ—संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि कालिदास के मेघदूत का पूर्वार्ध [को०]।

पूर्वयक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक जिनदेव जो मणिभद्र और जलेंद्र भी कहलाते हैं।

पूर्वयाम्य—वि० [सं०] पूर्वदक्षिण का।

पूर्वरंग—संज्ञा पुं० [सं० **पूर्वरङ्ग**] वह संगीत या स्तुति आदि जो नाटक आरंभ होने से पहले विघ्नों की शांति के लिये या दर्शकों को सावधान करने के लिये नट लोग करते हैं।

पूर्वराग—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में नायक अथवा नायिका की एक अवस्था जो दोनों के संयोग होने से पहले प्रेम के कारण होती है। प्रथमानुराग। पूर्वानुराग।

विशेष—कुछ लोगों का मत है कि पूर्वराग केवल नायिकाओं मे ही होता है। नायक को देखने पर या किसी के मुँह से उसके रूप गुण आदि की प्रशंसा सुनने पर नायिका के मन में जो प्रेम उत्पन्न होता है वही पूर्वराग कहलाता है। जैसे, हंस के मुँह से नल की प्रशंसा सुनकर दमयंती में अनुराग का उत्पन्न होना। इसमें नायक से मिलने की अभिलाषा, उसके संबंध में चिंता, उसका स्मरण, सखियों से उसकी चर्चा उससे मिलने के लिये उद्विग्नता, प्रलाप, उन्मत्तता, रोग, मूर्छा और मृत्यु ये दस बातें होती हैं। पूर्वराग उसी समय तक रहता है जबतक नायक नायिका का मिलन न हो। मिलन के उपरांत उसे प्रेम या प्रीति कहते हैं।

पूर्वरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १ पहले का रूप। वह आकार या रंग-ढंग जिसमें कोई वस्तु पहले रही हो। जैसे,—इस पुस्तक का पूर्वरूप ऐसा ही था। २. किसी वस्तु का वह चिह्न या लक्षण जो उस वस्तु के उपस्थित होने के पहले ही प्रकट हो। आगमसूचक लक्षण। आसार। जैसे,—(क) बादलों का घिरना वर्षा का पूर्वरूप है। (ख) आँखों का जलना और अंग टूटना ज्वर का पूर्वरूप है। ३. व्याकरण में एक स्वर-संधि का नाम। ४. एक अर्थालंकार जिसमें विनष्ट व्यक्ति या वस्तु के अपने पहले रूप की प्राप्ति का कथन होता है।

पूर्ववत्[1]—क्रि० वि० [सं०] पहले की तरह। जैसा पहले था वैसा ही। जैसे,—आज सौ वर्ष बीत जाने पर भी वह नगर पूर्ववत् है।

पूर्ववत्[2]—संज्ञा पुं० किसी कार्य का वह अनुमान जो उसके कारण को देखकर उसके होने से पहले ही किया जाय। जैसे,—बादलों को देखकर यह अनुमान करना कि पानी बरसेगा।

पूर्ववय—संज्ञा पुं० [सं० **पूर्ववयस्**] बचपन।

पूर्ववर्ती—वि० [सं० **पूर्ववर्तिन्**] पहले का। जो पहले हो या रह चुका हो। जैसे,—(क) इस देश के अँगरेजों के पूर्ववर्ती शासक मुसलमान थे। (ख) यहाँ के पूर्ववर्ती अध्यापक ब्राह्मण थे।

पूर्ववाद—संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार शास्त्र के अनुसार वह अभियोग जो कोई व्यक्ति न्यायालय आदि में उपस्थित करे। [illegible] दावा। नालिश।

पूर्ववादी—संज्ञा पुं० [सं० **पूर्ववादिन्**] वह जो न्यायालय आदि में पूर्ववाद या अभियोग उपस्थित करे। वादी। मुद्दई।

पूर्वविद्—वि० [सं०] पुरानी बातों को जाननेवाला। इतिहास आदि का ज्ञाता।

पूर्वविहित—वि० [सं०] १. पहले जमा किया हुआ (धन)। २. पहले किया या कहा हुआ [को०]।

पूर्ववृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] इतिहास ।

पूर्वशैल—संज्ञा पुं० [सं०] उदयाचल ।

पूर्वसंचित—वि० [सं० पूर्वसञ्चित] पहले या पूर्वजन्म में संचित किया हुआ [को०] ।

पूर्वसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० पूर्वसन्ध्या] प्रात काल ।

पूर्वसक्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] जाँघ का ऊपरी जोड़ [को०] ।

पूर्वसर—वि० [सं०] सामने या आगे जानेवाला [को०] ।

पूर्वसाहस—संज्ञा पुं० [सं०] तीस प्रकार के दंडों में से प्रथम दंड । सबसे बड़ा दंड [को०] ।

पूर्वस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहले की दशा । पूर्व की दशा ।

पूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूर्व दिशा । पूरब । २. ग्यारहवाँ नक्षत्र । दे० 'पूर्वाफाल्गुनी' ।

पूर्वाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] घर में रखी जानेवाली पवित्र अग्नि । आवसथ्य ।

पूर्वाचल—संज्ञा पुं० [सं०] उदयाचल । उदयगिरि [को०] ।

पूर्वानुभूत—वि० [सं० पूर्व + अनुभूत] पूर्व में अनुभूत किया हुआ । उ०—कल्पना के बल से अपने पूर्वानुभूत संस्कारों का सहयोग लेकर, जीवन में अदृश्य, अश्रुत एवं अननुभूत पदार्थों का ....सर्जन करता रहता है ।—शैली०, पृ० २१ ।

पूर्वाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] उदयगिरि [को०] ।

पूर्वानुराग—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रेम जो किसी के गुण सुनकर अथवा उसका चित्र या रूप देखकर उत्पन्न होता है । अनुराग या प्रेम का आरंभ । दे० 'पूर्वराग' ।

विशेष—साहित्य में पूर्वानुराग या पूर्वराग उस समय तक माना जाता है, जब तक प्रेमी और प्रेमिका का मिलन न हो । मिलने के उपरांत उसे प्रेम या प्रीति कहते हैं ।

पूर्वान्ह—संज्ञा पुं० [सं० पूर्वाह्न] दे० 'पूर्वाह्न' ।

पूर्वापर[1]—क्रि० वि० [सं०] आगे पीछे ।

पूर्वापर[2]—वि० आगे का और पीछे का । अगला और पिछला ।

पूर्वापर[3]—संज्ञा पुं० पूर्व और पश्चिम ।

पूर्वापर्य—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वापर का भाव ।

पूर्वाफाल्गुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों में ग्यारहवाँ नक्षत्र ।

विशेष—इसका आकार पलँग की तरह माना जाता है और इसमें दो तारे हैं । इसके अधिष्ठाता देवता यम कहे गए हैं और इसका मुँह नीचे की ओर माना जाता है । विशेष—दे० 'नक्षत्र' ।

पूर्वाभाद्रपद—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रों में पचीसवाँ नक्षत्र ।

विशेष—इसका मुँह नीचे की ओर माना गया है और इसमे दो नक्षत्र हैं । विशेष—दे० 'नक्षत्र' ।

पूर्वाभाद्रपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों में पचीसवाँ नक्षत्र । दे० 'नक्षत्र' ।

पूर्वाभास—संज्ञा पुं० [सं० पूर्व+आभास] वह साधारण ज्ञान जो पहले ही प्राप्त हो जाय । पूर्वज्ञान ।

पूर्वाभिमुख—वि० [सं०] पूरब की ओर मुँह किए हुए [को०] ।

पूर्वाभिषेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का मंत्र । २. पूर्व या पहले का स्नान (को०) ।

पूर्वाभ्यास—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहले का अनुभव या अभ्यास । वह अभ्यास जो किसी कार्य को व्यावहारिक रूप में परिणत करने के पहले किया जाय । जैसे, नाटक का पूर्वाभ्यास (को०) ।

पूर्वाराम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बौद्ध संघ या मठ ।

पूर्वार्जित[1]—वि० [सं०] पहले प्राप्त किया हुआ । पूर्वप्राप्त ।

पूर्वार्जित[2]—संज्ञा पुं० पैतृक संपत्ति [को०] ।

पूर्वार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी पुस्तक का पहला आधा भाग । शुरू का आधा हिस्सा । २. शरीर का ऊपरी भाग (को०) । ३. किसी वस्तु का प्रारंभिक अर्धांश ।

पूर्वार्द्ध्य—वि० [सं०] जो पूर्वार्ध से उत्पन्न हुआ हो । पूर्वार्ध संबंधी । पूर्वार्ध का ।

पूर्वार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पूर्वार्द्ध' ।

पूर्वावेदक—संज्ञा पुं० [सं०] जो अभियोग उपस्थित करे । वादी । मुद्दई ।

पूर्वाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मचर्य आश्रम [को०] ।

पूर्वाषाढ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पूर्वाषाढ़ा' ।

पूर्वाषाढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों में बीसवाँ नक्षत्र ।

विशेष—इसमें चार तारे हैं तथा इसका आकार सूप का सा और अधिष्ठाता देवता जल माना जाता है । विशेष—दे० 'नक्षत्र' ।

पूर्वाह्न—संज्ञा पुं० [सं०] दिन का पहला आधा भाग । सबेरे से दोपहर तक का समय ।

पूर्वाह्णिक[1]—वि० [सं०] पूर्वाह्न संबंधी । पूर्वाह्न का ।

पूर्वाह्निक—संज्ञा पुं० दे० 'पूर्वाह्न' ।

पूर्वाह्निक—संज्ञा पुं० [सं०] वह कृत्य जो दिन के पहले भाग में किया जाता हो । जैसे, स्नान, संध्या, पूजा आदि ।

पूर्वी[1]—वि० [सं० पूर्वीय] पूर्व दिशा से संबंध रखनेवाला । पूरब का ।

यौ०—पूर्वी घाट । पूर्वी द्वीपसमूह = भारतवर्ष के पूरब में स्थित द्वीपों का समूह जिनमें जावा, सुमात्रा और बोर्नियो आदि हैं ।

पूर्वी[2]—संज्ञा पुं० १. पूरब में होनेवाला एक प्रकार का चावल । २. एक प्रकार का दादरा जो बिहार प्रांत में गाया जाता है और जिसकी भाषा बिहारी होती है । ३. संपूर्ण जाति का एक राग जिसके गाने का समय संध्या है ।

विशेष—कुछ लोगों के मत से यह श्री राग की रागिनी है और कुछ लोग इसे भैरवी और गौरी अथवा देवगिरि, गौड़ और गौरी से मिलकर बनी हुई संकर रागिनी भी मानते हैं और इसके गाने का समय दिन में २५ दंड से २८ दंड तक बताते हैं ।

पूर्वीघाट—संज्ञा पुं० [हिं० पूर्वी+घाट] दक्षिण भारत के पूर्वी किनारे पर का पहाड़ों का सिलसिला जो बालासोर से कन्याकुमारी तक चला गया है और वहाँ पश्चिमी घाट के अंतिम अंश से मिल गया है। इसकी औसत ऊँचाई लगभग १५०० फुट है।

पूर्वीण—वि० [सं०] १. प्राचीन। २. पैतृक [को०]।

पूर्वेतर—वि० [सं०] पूर्व से भिन्न का। पश्चिमी [को०]।

पूर्वेद्यु[1]—संज्ञा पुं० [सं० पूर्वेद्युस्] १. वह श्राद्ध जो अगहन, पूस, माघ और फाल्गुन के कृष्णपक्ष की सप्तमी तिथि को किया जाता है। २. प्रातःकाल। सबेरा।

पूर्वेद्यु[2]—क्रि० वि० गत दिन। बीते दिन [को०]।

पूर्वोक्त—वि० [सं०] पहले कहा हुआ। जिसका जिक्र पहले आ चुका हो।

पूर्वोत्तर—वि० [सं०] उत्तरपूर्वी।

पूर्वोत्तरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व और उत्तर के बीच की दिशा। ईशान कोण।

पूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूला। मुट्ठा। २. एक प्रकार का पकवान्न [को०]।

पूलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूँज आदि का बँधा हुआ मुट्ठा। पूल। २. एक पकवान। पूलिका (को०)।

पूला—संज्ञा पुं० [सं० पूलक] [स्त्री० अल्पा० पूली] १. मूँज आदि का बँधा हुआ मुट्ठा। पूलक। २. एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो देहरादून और सहारनपुर के आस पास के जंगलों में पाया जाता है।

विशेष—बसंत ऋतु में इसकी सब पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इसकी छाल के भीतरी भाग के रेशों से रस्से बनाए जाते हैं। इसकी पत्तियों का व्यवहार ओषधि रूप में होता और इसकी छाल से चीनी साफ की जाती है।

पूलाक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुलाक' [को०]।

पूलाणो पु—वि० [सं० पूर्णिमा] पूर्णिमा का। पूनो का। पूर्णिम। उ०—चंद पूलाणो बनो गयो, खीर की तौलड़ी कुँ रहइ सेर। —बी० रासो, पृ० ७२।

पूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पूआ (पकवान)।

पूलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] मलाबार प्रदेश में रहनेवाली एक मुसलमान जाति।

पूली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूला का अल्पा०] छोटा पूला।

पूली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पूला] पूला नामक वृक्ष जिसके रेशों से रस्से बनाते हैं। विशेष—दे० 'पूला—२'।

पूलोकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मलाबार प्रदेश की एक सभ्यताहीन जंगली जाति।

पूल्य—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न का निस्तत्व दाना। अनाज का खोखला दाना [को०]।

पूवा—संज्ञा पुं० [सं० पूप] दे० 'पूआ'।

पूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहतूत का पेड़। २. पौष मास। ३. रेवती नक्षत्र (को०)।

पूषक—संज्ञा पुं० [सं०] शहतूत का पेड़। २. शहतूत का फल।

पूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. पुराणानुसार बारह आदित्यों में से एक। ३. एक वैदिक देवता जिनकी भावना भिन्न भिन्न रूपों में पाई जाती है। कहीं वे सूर्य के रूप में (लोकलोचन), कहीं पशुओं के पोषक के रूप में, कहीं वनरक्षक के रूप में और कहीं सोम के रूप में पाए जाते हैं। ४. पृथिवी। धरा (को०)।

पूषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

पूषदंतहर—संज्ञा पुं० [सं० पूषदन्तहर] शिव के अंश से उत्पन्न वीरभद्र का नाम जिसने दक्ष के यज्ञ के समय सूर्य का दाँत तोड़ा था।

पूषध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र।

पूषभासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की नगरी अमरावती का एक नाम। इंद्रपुरी।

पूषमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] गोभिल का एक नाम।

पूषा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दाहिने कान की एक नाड़ी का नाम। २. पृथ्वी। ३. चंद्रमा की तीसरी कला (को०)।

पूषा[2]—संज्ञा पुं० [सं० पूषण] सूर्य। दे० 'पूषण'।

पूषात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २ इंद्र का एक नाम (को०)। ३. कर्ण। अंगदेश का राजा कर्ण (को०)।

पूषाभासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रपुरी। अमरावती।

पूषारि, पूषासुहृत्—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

पूस—संज्ञा पुं० [सं० पौष, पूष] हेमंत ऋतु का दूसरा चांद्रमास जिसकी पूर्णमासी तिथि को पुष्य नक्षत्र पड़ता है। अगहन के बाद और माघ के पहले का महीना। उ०—घरहिं जमाई लौं घट्यो खरो पूस दिनमान।—बिहारी (शब्द०)।

पृक्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] असबरग नाम का गंध द्रव्य जिसका व्यवहार ओषधों में भी होता है।

पृक्त[1]—वि० [सं०] १. मिश्रित। मिला हुआ। २ संपृक्त। संपर्क में आया हुआ। ३. पूर्ण। भरा हुआ [को०]।

पृक्त[2]—संज्ञा पुं० संपत्ति। धन [को०]।

पृक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संबंध। लगाव। २. स्पर्श। छूना।

पृक्थ—संज्ञा पुं० [सं०] संपत्ति। धन। [को०]।

पृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पृक्षस्] अन्न। अनाज।

पृच्छक—वि० [सं०] १. पूछनेवाला। प्रश्न करनेवाला। उ०—प्रश्न जु कृष्णकथा की जहाँ। वक्ता, श्रोता, पृच्छक तहाँ। —नंद० ग्रं०, पृ० २२०। २. जिज्ञासु। जानने की इच्छा रखनेवाला।

पृच्छन—संज्ञा पुं० [सं०] पूछना। जानना [को०]।

पृच्छना—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूछना । जिज्ञासा करना । (जैन) ।

पृच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रश्न । सवाल । जानकारी के लिये प्रश्न २. भविष्य संबंधी जिज्ञासा [को०] ।

पृच्छ्य—वि० [सं०] जो पूछने योग्य हो ।

पृछकⓊ†—वि० [सं० पृच्छक] दे० 'पृच्छक' । उ०—सुन मो पृछक तोहि सगुन को आधीन एक वा..... होइगो । पै जो मन चाहि है सो तेरो काज होयगो । —पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८४ ।

पृणाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा पशु जो जवान हो । जवान मादा पशु [को०] ।

पृतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेना । फौज । २. प्रतिपक्षी योद्धा [को०] ।

पृतना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेना का एक विभाग जिसमें २४३ हाथी, २४३ रथ, ७२६ घुड़सवार और १२१५ पैदल सिपाही होते हैं । उ०—घह घह मार मार सबद अपार फैल्यो इत उत चहूँ पर पृतना करै बिहद । —गोपाल (शब्द०) । २. सेना । फौज । ३. युद्ध । लड़ाई ।

पृतनानी—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृतना नामक सेना के विभाग का अफसर । २. सेनापति ।

पृतनापति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पृतनानी' ।

पृतनायु—वि० [सं०] विपक्षी । द्वेषी । प्रतिरोधी [को०] ।

पृतनाषाट्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

पृतनासाह—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

पृतन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेना । फौज ।

पृतन्यु—वि० [सं०] जो युद्ध करना चाहता हो । जो लड़ने के लिये तैयार हो ।

पृथक्—वि० [सं० पृथक्, पृथग्] भिन्न । अलग । जुदा ।

पृथक्करण—संज्ञा पुं० [सं०] अलग करने का काम । विश्लेषण ।

पृथक्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पृथक्करण' ।

पृथक्क्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही पिता परंतु भिन्न माता से उत्पन्न संतान ।

पृथक्चर—वि० [सं०] अकेला या अलग चलनेवाला [को०] ।

पृथक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथक् या अलग होने का भाव । अलहदगी । अलगाव ।

पृथक्त्व—संज्ञा पुं० [सं०] पृथक् होने का भाव । अलगाव ।

पृथक्त्वचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता ।

पृथक्पिंड—संज्ञा पुं० [सं० पृथक्पिण्ड] दूर का वह संबंधी जो अलग पिंडदान करता है [को०] ।

पृथगात्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विरक्ति । वैराग्य । २. भेद । अंतर । ३. विशेषता । विशिष्टता (को०) ।

पृथगात्मा[1]—वि० [सं०] पृथक् । भिन्न । विशिष्ट [को०] ।

पृथगात्मा[2]—संज्ञा पुं० जीवात्मा [को०] ।

पृथगात्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशिष्ट्य से पूर्ण । विशिष्टतायुक्त ।

पृथग्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूर्ख । बेवकूफ । २. नीच व्यक्ति । कमीना आदमी । ३. पापी ।

पृथग्बीज—संज्ञा पुं० [सं०] भिलावाँ ।

पृथग्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथक्ता । भिन्नता । २. अवस्थांतर । भिन्न अवस्था [को०] ।

पृथग्रूप, पृथग्विध—वि० [सं०] भिन्न रूप और आकृति का । नाना प्रकार का [को०] ।

पृथमीⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथवी] दे० 'पृथ्वी' । उ०—प्रथम अंश ते माया भयऊ । शुक्ल बीज पृथमी महँ ठएऊ ।—कबीर सा०, पृ० ९१२ ।

पृथवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पृथ्वी' ।

पृथा—संज्ञा पुं० [सं०] कुंतिभोज की कन्या कुंती का दूसरा नाम ।

यौ०—पृथापति । पृथासुत, पृथासूनु, पृथानंदन = दे० 'पृथातनय' ।

पृथाज—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथा या कुंती के पुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन आदि । २. अर्जुन का पेड़ ।

पृथातनय—संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम (विशेषतः अर्जुन) ।

पृथापति—संज्ञा पुं० [सं०] पृथा के पति । राजा पांडु [को०] ।

पृथिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोजर । कनखजूरा [को०] ।

पृथिवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पृथ्वी' ।

यौ०—पृथिवीकंप । पृथिवीक्षित् । पृथिवीनाथ, पृथिवीपरिपालक, पृथिवीभुजंग = राजा । नरेश । पृथिवीभृत् = पर्वत । धरणीधर । पृथिवीमंडल = भूमंडल । पृथिविरुह = पृथिवी पर पैदा होनेवाले वृक्ष । पृथिवी लोक ।

पृथिवीकंप—संज्ञा पुं० [सं० पृथिवीकम्प] दे० 'भूकंप' ।

पृथिवीक्षित्—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

पृथिवीजय—संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम ।

पृथिवीतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

पृथिवीपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋषभ नामक ओषध । २. नृपति । राजा । ३. यम ।

पृथिवीपाल—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

पृथिवीप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र [को०] ।

पृथिवीभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

पृथिवीलोक—संज्ञा पुं० [सं०] मर्त्यलोक [को०] ।

पृथिवीश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

पृथिवीशुक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

पृथी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथिवी] दे० 'पृथ्वी' । उ०—कहै कबीर वह सकस तहकीक कर, राम का नाम जो पृथी लाया ।—कबीर रे०, पृ० १५ ।

पृथी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वेणु के पुत्र राजर्षि पृथु का एक नाम ।

पृथीनाथⓊ—संज्ञा पुं० [सं० पृथिवी, हिं० पृथी+सं० नाथ] पृथिवी का स्वामी राजा ।

पृथीपति(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पृथी + सं० पति] पृथ्वीपति । राजा । उ०—कोटि परब्ब खरब्ब असंख्य, पृथीपति होन की चाह जगैगी ।—संतवाणी०, भाग २, पृ० १२१ ।

पृथु[1]—वि० [सं०] १. चौड़ा । विस्तृत । २. बड़ा । महान् । ३. अधिक । अगणित । असंख्य । ४. कुशल । चतुर । प्रवीण । ५. स्थूल । मोटा (को०) । ६. प्रभूत । प्रचुर (को०) ।

पृथु[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक हाथ का मान । दो बालिश्त की लंबाई । २. अग्नि । ३. विष्णु । ४. शिव का एक नाम । ५. एक विश्वेदेवा का नाम । ६. चौथे मन्वंतर के एक सप्तर्षि का नाम । ७. पुराणानुसार एक दानव का नाम । ८ तामस मन्वंतर के एक ऋषि का नाम । ९. इक्ष्वाकु वंश के पाँचवें राजा का नाम जो त्रिशंकु का पिता था । १०. राजा वेणु के पुत्र का नाम ।

विशेष—पुराणों में कहा है कि जब राजा वेणु मरे, तब उनके कोई संतान नहीं थी । इसलिये ब्राह्मण लोग उनके हाथ पकड़कर हिलाने लगे । उस समय उन हाथों में से एक स्त्री और एक पुरुष उत्पन्न हुआ । ब्राह्मणों ने उस पुरुष का नाम 'पृथु' रखा और उस स्त्री को उनकी पत्नी बनाया । इसके उपरांत सब ब्राह्मणों ने मिलकर पृथु का राज्याभिषेक किया और उन्हें पृथ्वी का स्वामी बनाया । उस समय पृथ्वी में से अन्न उत्पन्न होना बंद हो गया जिससे सब लोग बहुत दुःखी हुए । उनका दुःख देखकर पृथु ने पृथ्वी पर चलाने के लिये कमान पर तीर चढ़ाया । यह देखकर पृथ्वी गौ का रूप धारण करके भागने लगी और जब भागती भागती थक गई तब फिर पृथु की शरण में आई और कहने लगी कि ब्रह्मा ने पहले मुझपर जो ओषधियाँ आदि उत्पन्न की थीं, उनका लोग दुरुपयोग करने लगे, इसलिये मैंने उन सबको अपने पेट में रख लिया है । अब आप मुझे दुहकर वे सब ओषधियाँ निकाल लें । इसपर पृथु ने मनु को बछड़ा बनाया और अपने हाथ पर पृथ्वीरूपी गौ से सब ओषधियाँ दुह लीं । इसके उपरांत पंद्रह ऋषियों ने भी बृहस्पति को बछड़ा बनाकर अपने कानों में वेदमय पवित्र दूध दुहा और तब दैत्यों, दानवों गंधर्वों, अप्सराओं, पितरों, सिद्धों, विद्याधरों, खेचरों, किन्नरों, मायावियों, यक्षों, राक्षसों, भूतों और पिशाचों आदि ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार सुरा, आसव, सुंदरता, मधुरता, कव्य, अणिमा आदि सिद्धियाँ, खेचरी विद्या, अंतर्धान विद्या, माया, आसव, बिना फन के साँप, बिच्छू आदि अनेक पदार्थ दुहे । इसके उपरांत पृथु ने संतुष्ट होकर पृथ्वी को 'दुहिता' कहकर संबोधन किया और तब उसके बहुत से पर्वतों आदि को तोड़कर इसलिये सम कर दिया जिसमें वर्षा का जल एक स्थान पर रुक न जाय, और तब उसपर अनेक नगर और गाँव आदि बसाए । पृथु ने ९९ यज्ञ किए थे । जब वे सौवाँ यज्ञ करने लगे तब इंद्र उनके यज्ञ का घोड़ा लेकर भागे । पृथु ने उनका पीछा किया । इंद्र ने अनेक प्रकार के रूप धारण किए थे, जिनसे जैन, बौद्ध और कापालिक आदि मतों की सृष्टि हुई । पृथु ने इंद्र से अपना घोड़ा छीनकर उसका नाम 'विजिताश्व' रखा । पृथु उस समय इंद्र को भस्म करना चाहते थे, पर ब्रह्मा ने आकर दोनों में मेल करा दिया । यज्ञ समाप्त करके पृथु ने सनत्कुमार से ज्ञान प्राप्त किया और तब वे अपनी स्त्री को साथ लेकर तपस्या करने के लिये वन में चले गए । वहीं उन्होंने योग के द्वारा अपने इस भोगशरीर का अंत किया ।

पृथु[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काला जीरा । २. हिंगुपत्री । ३. अहिफेन । अफीम ।

पृथुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिड़वा । २. पुराणानुसार चाक्षुष मन्वतर का एक देवगण । ३. बालक । लड़का । ४ हिंगुपत्री ।

पृथुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री ।

पृथुकीर्ति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पृथा (या वसुदेव ?) की एक छोटी बहन का नाम ।

पृथुकीर्ति[2]—वि० जिसकी कीर्ति बहुत अधिक हो ।

पृथुकोल—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा बेर ।

पृथुग—संज्ञा पुं० [सं०] चाक्षुष मन्वंतर के देवताओं का एक भेद ।

पृथुग्रीव—वि० [सं०] मोटी गरदनवाला (को०) ।

पृथुच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का डाभ । २. हाथीकंद ।

पृथुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथु होने का भाव । २. पृथुत्व । विस्तार । फैलाव ।

पृथुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पृथुता' ।

पृथुदर्शी—वि० [सं० पृथुदर्शिन्] दूरदर्शी (को०) ।

पृथुपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल लहसुन । २. हाथीकंद ।

पृथुपलाशिका—संज्ञा पुं० [सं०] कचूर ।

पृथुपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] जिसके हाथ बहुत लंबे या घुटनों तक हों । आजानुबाहु ।

पृथुबीजक—संज्ञा पुं० [सं०] मसूर (को०) ।

पृथुभैरव—संज्ञा [सं०] बौद्धों के एक देवता का नाम ।

पृथुयशा—वि० [सं० पृथुयशस्] जिसकी ख्याति दूर दूर तक फैली हो । सुप्रसिद्ध (को०) ।

पृथुरोमा—संज्ञा पुं० [सं० पृथुरोमन्] पृथुलोमा । मछली ।

पृथुल—वि० [सं०] १. मोटा ताजा । २. दीर्घाकार । भारी । बड़ा । उ०—पीवर मांसल अंस, पृथुल उर, लंबी बाँहें ।—साकेत, पृ० ४१४ । ३. बहुत । ढेर । अधिक ।

यौ०—पृथुलनयन, पृथुललोचन = बड़ी बड़ी आँखोंवाला । आयत नेत्रोंवाला । पृथुलवक्षा = चौड़े सीनेवाला । पृथुलविक्रम = अत्यंत पराक्रमी शूरवीर ।

पृथुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री ।

पृथुलाक्ष—वि० [सं०] बड़ी बड़ी आँखोंवाला (को०) ।

पृथुलोमा—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथुलोमन्] १. मछली । २. ज्योतिष में मीन राशि ।

पृथुशिंब—संज्ञा पुं० [सं० पृथुशिम्ब] १. सोनापाठा । २. पीली [illegible] ।

पृथुशिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काली जोंक।

पृथुशृंगक—संज्ञा पुं० [सं० पृथुशृङ्गक] मेढ़ा।

पृथुशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़। पर्वत।

पृथुश्रवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पृथुश्रवस्] १. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम। २. पुराणानुसार नवें मनु के एक पुत्र का नाम। ३. एक नाग (को०)।

पृथुश्रवा[2]—वि० १. अत्यधिक प्रसिद्ध। २. बड़े कानोंवाला। जिसके कान बड़े हों।

पृथुश्रोणी—वि० स्त्री० [सं०] भारी नितबोंवाली।

पृथुसंपद्—वि० [सं० पृथुसम्पत्] धनी। संपत्तिशाली (को०)।

पृथुस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० पृथुस्कन्ध] सूअर।

पृथूदक—संज्ञा पुं० [सं०] सरस्वती नदी के दक्षिण तट पर का एक प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ।

विशेष—पुराणों में कहा है कि राजा पृथु ने अपने पिता वेणु के मरने पर यहीं उनकी अंत्येष्टि क्रिया की थी और बारह दिनों तक अभ्यागतों को जल पिलाया था। इसी से इसका यह नाम पड़ा। आजकल इस स्थान को पोहोआ कहते हैं।

पृथूदर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढ़ा। मेष। २. जिसका पेट बहुत बड़ा हो। बड़े पेटवाला।

पृथ्वींद्र—संज्ञा पुं० [सं० पृथ्वीन्द्र] राजा (को०)।

पृथ्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सौर जगत् का वह ग्रह जिसपर हम सब लोग रहते हैं। वह लोकपिंड जिसपर हम मनुष्य आदि प्राणी रहते हैं।

विशेष—सौर जगत् में यह ग्रह दूरी के विचार से सूर्य से तीसरा ग्रह है। (सूर्य और पृथ्वी के बीच में बुध और शुक्र ये दो ग्रह और हैं)। इसकी परिधि लगभग २५००० मील और व्यास लगभग ८००० मील है। इसका आकार नारंगी के समान गोल है और इसके दोनों सिरे जिन्हें ध्रुव कहते हैं कुछ चिपटे हैं। यह दिन रात में एक बार अपने अक्ष पर घूमती है और ३६५ दिन ६ घंटे ९ मिनट अर्थात् एक सौर वर्ष में एक बार सूर्य की परिक्रमा करती है। सूर्य से यह ९,३०, ००,००० मील की दूरी पर है। जल के मान से इसका घनत्व ५.६ है। इसके अपने अक्ष पर घूमने के कारण दिन और रात होते हैं और सूर्य की परिक्रमा करने के कारण ऋतुपरिवर्तन होता है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि इसका भीतरी भाग भी प्रायः ऊपरी भाग की तरह ही ठोस है। पर अधिकांश लोग यही मानते हैं कि इसके अंदर बहुत अधिक जलता हुआ तरल पदार्थ है जिसके ऊपर यह ठोस पपड़ी उसी प्रकार है जिस प्रकार दूध के ऊपर मलाई रहती है। इसके अंदर की गरमी बराबर कम होती जाती है जिससे इसके ऊपरी भाग का घनत्व बढ़ता जाता है। इसमें पाँच महाद्वीप और पाँच महासमुद्र हैं। प्रत्येक महाद्वीप में अनेक देश और अनेक प्रायद्वीप आदि हैं। समुद्रों में दो बड़े और अनेक छोटे छोटे द्वीप तथा द्वीपपुंज भी हैं।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार सारे सौर जगत् का उपादान पहले सूक्ष्म ज्वलंत नीहारिका के रूप में था। नीहारिका मंडल के अत्यंत वेग से घूमने से उसके कुछ अंश अलग हो होकर मध्यस्थ द्रव्य की परिक्रमा करने लगे। ये ही पृथक् हुए अंश पृथ्वी, मंगल, बुध आदि ग्रह हैं जो सूर्य (मध्यस्थ द्रव्य) की परिक्रमा कर रहे हैं। ज्वलत वायुरूप पदार्थ ठंढा होकर तरल ज्वलंत द्रव्य रूप मे आया, फिर ज्यो ज्यों और ठंढा होता गया उसपर ठोस पपड़ो जमती गई। उपनिषदों के अनुसार परमात्मा से पहले आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। मनु के अनुसार महत्तत्व, अहंकार तत्व और पंचतन्मात्राओं से इस जगत् की सृष्टि हुई है। प्राय. इसी से मिलता जुलता सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम कई पुराणों आदि में भी पाया जाता है। (विशेष—दे० सृष्टि)। इसके अतिरिक्त पुराणों मे पृथ्वी की उत्पत्ति के संबंध मे अनेक प्रकार की कथाएँ भी पाई जाती हैं। कहीं कहीं यह कथा है कि पृथ्वी मधुकैटभ के मेद से उत्पन्न हुई जिससे उसका नाम 'मेदिनी' पड़ा। कहीं लिखा है कि बहुत दिनों तक जल में रहने के कारण जब विराट् पुरुष के रोमकूपों मे मैल भर गई तब उस मैल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। पुराणों में पृथ्वी शेषनाग के फन पर, कछुए की पीठ पर स्थित कही गई है। इसी प्रकार पृथ्वी पर होनेवाले उद्भिदों, पर्वतों और जीवों आदि की उत्पत्ति के संबंध में भी अनेक कथाएँ पाई जाती हैं। कुछ पुराणों मे इस पृथ्वी का आकार तिकोना, कुछ में चौकोर और कुछ में कमल के पत्ते के समान बतलाया गया है पर ज्योतिष के ग्रंथों में पृथ्वी गोलाकार ही मानी गई है।

पर्या०—अचला। अदिति। अनंता। अवनी। आद्या। इडा। इरा। इला। उर्वरा। उर्वी। कु। क्ष्मा। क्षमा। क्षिति क्षोणी। गो। गोत्रा। जगती। ज्या। धरणी। धरती। धरा। धरित्री। धात्री। निश्चला। पारा। भू। भूमि। मही। मही। मेदिनी। रत्नगर्भा। रत्नावती। रसा। वसुंधरा। वसुधा। वसुमती। विपुला। श्यामा। सहा। स्थिरा। सागरमेखला।

२. पंच भूतों या तत्वों में से एक जिसका प्रधान गुण गंध है, पर जिसमें गौण रूप से शब्द, स्पर्श रूप और रस ये चारों गुण भी हैं। विशेष—दे० 'भूत'। ३. पृथ्वी का वह ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टी और पत्थर आदि का है और जिसपर हम सब लोग चलते फिरते हैं। भूमि। जमीन। धरती। (मुहा० के लिये दे० 'जमीन')। ४. मिट्टी। ५. सत्रह अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमे ८, ९, पर यति और अंत मे लघु गुरु होते हैं। जैसे,—जु राम छवि कंकणी, निरखि आरसी संयुता। लगाय हिय सो धरी कर न दूर पृथ्वीसुता। ६. हिंगुपत्री। ७. काला जीरा। ८. सोंठ। ९. बड़ी इलायची।

पृथ्वीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ी इलायची। २. छोटी इलायची। ३. काला जीरा। ४. हिंगुपत्री।

पृथ्वीकुरबक—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मदार या आक ।

पृथ्वीखात—संज्ञा पुं० [सं०] गुफा । गुहा [को०] ।

पृथ्वीगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश ।

पृथ्वीगृह—संज्ञा पुं० [सं०] गुफा ।

पृथ्वीज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँभर नमक । २. वृक्ष । पेड़ (को०) । ३. मंगल ग्रह (को०) ।

पृथ्वीज[2]—वि० जो पृथ्वी से उत्पन्न हुआ हो ।

पृथ्वीतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता [को०] ।

पृथ्वीतल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमीन की सतह । वह धरातल जिसपर हम लोग चलते फिरते हैं । २. संसार । दुनिया ।

पृथ्वीधर—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत । पहाड़ ।

पृथ्वीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

पृथ्वीपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

पृथ्वीपाल—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

पृथ्वीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह ।

पृथ्वीमंडल—संज्ञा पुं० [सं० पृथिवीमण्डल] भूमंडल [को०] ।

पृथ्वीश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ।

पृथ्वीसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानकी । सीता । उ०—जु राम छबि कंकणै निरखि आरसी संयुता । लगाय हिय सो धरी कर न दूर पृथ्वीसुता ।—(शब्द०) ।

पृदाकु—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँप । २. बिच्छू । ३. बाघ । ४. चीता । ५. हाथी । ६ वृक्ष । पेड़ ।

पृश्नि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुतप नामक राजा की रानी का नाम । २. चितले रंग की गाय । चितकबरी गाय । ३. पिठवन । ४. रश्मि । किरण । ५. पृथिवी । धरती (को०) । ६. कृष्ण की माता देवकी का नाम (को०) ।

पृश्नि[2]—संज्ञा पुं० १. अनाज । २. वेद । ३. पानी । जल । ४. अमृत या दुग्ध । ५. एक प्राचीन ऋषि का नाम । ६. वामन । बौना (को०) ।

पृश्नि[3]—वि० १. जिसका शरीर दुबला पतला हो । २. सफेद रंग का । ३. चितकबरा । ४. साधारण । मामूली । ५. छोटे कद का । ह्रस्वकाय (को०) ।

पृश्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुंभी ।

पृश्निगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

पृश्निधर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०] ।

पृश्निपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन लता ।

पृश्निभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

पृश्निशृंग—संज्ञा पुं० [सं० पृश्निशृङ्ग] १. विष्णु । २. गणेश ।

पृश्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुंभी ।

पृषत्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चितला हिरन । चीतल पाढ़ा । २. राजा द्रुपद के पिता का नाम । ३. एक प्रकार का साँप । ४. रोहित नाम की मछली । ५. बूँद । ६. दाग । धब्बा (को०) ।

पृषत्[2]—वि० १. चितकबरा । २. सिक्त । छिड़का हुआ (को०) ।

पृषत—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'पृषत्' । २. वायु का वाहन । पवन की सवारी [को०] ।

पृषतांपति—संज्ञा पुं० [सं० पृषताम्पति] वायु । पवन [को०] ।

पृषताश्व—संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

पृषत्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाण । २. गोल धब्बा [को०] ।

पृषदंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. शिव [को०] ।

पृषदश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । हवा । २. महाभारत के अनुसार एक राजर्षि का नाम । ३. भागवत के अनुसार विरूपाक्ष के पुत्र का नाम । ४. शिव (को०) ।

पृषदाज्य—संज्ञा पुं० [सं०] दही मिला हुआ घी ।

पृषद्ध्र—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम ।

पृषद्बल—संज्ञा पुं० [सं०] वायु का घोड़ा [को०] ।

पृषद्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेनका की कन्या का नाम ।

पृषभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पुरी । वृषभाषा । अमरावती का एक नाम ।

पृषाकरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तौलने का बाट ।

पृषातक—संज्ञा पुं० [सं०] दही मिला हुआ घी ।

पृषोदर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

पृषोदर[2]—वि० जिसका पेट छोटा हो ।

पृषोद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा उपवन या बाग [को०] ।

पृष्ट[1]—वि० [सं०] १. पूछा हुआ । जो पूछा गया हो । २. सिक्त । सींचा हुआ (को०) ।

पृष्ट[2]—संज्ञा पुं० प्रश्न । जिज्ञासा । पूछताछ [को०] ।

पृष्टि[1]—संज्ञा पुं० [सं० पृष्ठ] दे० 'पृष्ठ' ।

पृष्टहायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी । हस्ती । २. एक प्रकार का अन्न [को०] ।

पृष्टि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूछने की क्रिया या भाव । पूछताछ । २. पिछला भाग । ३. स्पर्श (को०) । ४. प्रकाश किरण (को०) ।

पृष्टि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्टि (= पिछला भाग)] पृष्ठ । पीठ । उ०—दोऊ कर पुनि फेरि पृष्टि पीछे करि आवय ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४३ ।

पृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीठ । २. किसी वस्तु का वह भाग या तल जो ऊपर की ओर हो । ऊपरी तल । ३. पीछे का भाग । पीछा । ४. पुस्तक के पन्ने का एक ओर का तल । ५. पुस्तक का पन्ना । पन्ना । ६. मकान की छत (को०) । ७. चरम । शेष (को०) ।

पृष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] पिछला भाग । पीठ की ओर का हिस्सा ।

पृष्ठग—वि० [सं०] (घोड़े आदि पर) सवार । चढ़ा हुआ (को०) ।

पृष्ठगामी—वि० [सं० पृष्ठगामिन्] अनुयायी । विश्वासपात्र [को०] ।

पृष्ठगोप—संज्ञा पुं० [सं०] वह सैनिक जो सेना के पिछले भाग की रक्षा के लिये नियुक्त हो ।

पृष्ठग्रंथि¹—वि॰ [सं॰ पृष्ठग्रन्थि] कुबड़ा [को॰]।

पृष्ठग्रंथि²—संज्ञा स्त्री॰ कुबड़ [को॰]।

पृष्ठग्रह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] घोड़ों का एक रोग।

पृष्ठचक्षु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पृष्ठचक्षुस्] १. केकड़ा। २. रीछ। भालू।

पृष्ठज—वि॰ [सं॰] पीठ पर उत्पन्न। बाद का पैदा [को॰]।

पृष्ठतः—क्रि॰ वि॰ [सं॰ पृष्ठतस्] १. पीछे। पीठ पीछे। २. पीछे से। ३. पीठ की ओर। पीछे की ओर। ४. पीठ पर। ५. गोपनीय ढंग से। छिपकर [को॰]।

पृष्ठतःप्रथित—संज्ञा पुं॰ [सं॰] खड्ग चलाने का एक ढंग। तलवार का एक हाथ।

पृष्ठतल्पन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] हाथी की पीठ पर की बाहरी पेशियाँ [को॰]।

पृष्ठताप—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मध्याह्न। दोपहर [को॰]।

पृष्ठदृष्टि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रीछ। भालू।

पृष्ठदेश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पिछला भाग [को॰]।

पृष्ठपर्णी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पिठवन लता।

पृष्ठपाती—वि॰ [सं॰ पृष्ठपातिन्] १. पृष्ठानुयायी। अनुगंता। २. नियंत्रक। ३. निरीक्षणरत। सावधान (को॰)।

पृष्ठपोषक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पीठ ठोंकनेवाला। २. सहायक। मददगार।

पृष्ठपोषण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मदद। सहायता। प्रोत्साहन।

पृष्ठफल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] किसी पिंड के ऊपरी भाग का क्षेत्रफल।

पृष्ठभंग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पृष्ठभङ्ग] युद्ध का एक ढंग जिसमें शत्रु सेना का पिछला भाग आक्रमण करके नष्ट किया जाता है।

पृष्ठभाग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पीठ। पुश्त। २. पिछला भाग।

पृष्ठभूमि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. मकान की ऊपरी छत या मंजिल। २. दे॰ 'पृष्ठिका'। बाद की घटनाओं या परिस्थितियों का विश्लेषण करने में सहायक पूर्व की घटनाएँ, अनुभव, ज्ञान या शिक्षा।

पृष्ठमर्म—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पृष्ठमर्म्मन्] सुश्रुत के अनुसार पीठ पर के चौदह मर्मस्थान।

विशेष—इनपर आघात लगने से मनुष्य मर सकता है, अथवा उसका कोई अंग बेकाम हो जाता है। ये सब स्थान गरदन से चूतड़ तक मेरुदंड के दोनों ओर युग्म संख्या में हैं और इन सबके अलग अलग नाम हैं।

पृष्ठमांसाद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जो पीठ पीछे किसी की बुराई करता हो। चुगलखोर।

पृष्ठमांसादन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पीठ पीछे किसी की निंदा करना। चुगली करना।

पृष्ठयान—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (घोड़े आदि पर) सवारी करना [को॰]।

पृष्ठलग्न—वि॰ [सं॰] अनुयायी। पीछे लगा रहनेवाला। पिछलग्गू [को॰]।

पृष्ठवंश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रीढ़।

पृष्ठवाट्—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पृष्ठवाह्] दे॰ 'पृष्ठवाह्य' [को॰]।

पृष्ठवास्तु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक मकान के ऊपर बना हुआ मकान अथवा एक खंड के ऊपर दूसरे खंड पर बना हुआ मकान।

पृष्ठवाह्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह पशु जिसकी पीठ पर बोझ लादा जाता हो। लदुवा बैल।

पृष्ठशृंग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पृष्ठशृङ्ग] जंगली बकरा [को॰]।

पृष्ठशृंगी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पृष्ठशृङ्गिन्] १. मेढ़ा। २. भैसा। ३. हिजड़ा। षंड। नामर्द। ४. भीमसेन का एक नाम।

पृष्ठानुग—वि॰ [सं॰] पीछे चलनेवाला। अनुयायी [को॰]।

पृष्ठानुगामी—वि॰ [सं॰ पृष्ठानुगामिन्] दे॰ 'पृष्ठानुग'।

पृष्ठाशय—वि॰ [सं॰] पीठ के बल सोनेवाला [को॰]।

पृष्ठास्थि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पीठ की हड्डी रीढ़।

पृष्ठिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. पिछला भाग। पिछला हिस्सा। २. मूर्ति, चित्र, विवरण आदि में सबसे पीछे का वह भाग जो अंकित दृश्य या घटना का आश्रय होता है। पृष्ठभूमि। (अं॰ बैकग्राउंड) दे॰ 'पृष्ठभूमि'।

पृष्ठेमुख—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

पृष्ठोदय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ज्योतिष में मेष, वृष, कर्क, धन, मकर और मीन ये छह राशियाँ जिनके विषय में यह माना जाता जाता है कि ये पीठ की ओर से उदय होती हैं।

पृष्ठ्य¹—वि॰ [सं॰] पृष्ठ संबंधी। पीठ का।

पृष्ठ्य²—संज्ञा पुं॰ वह घोड़ा जिसकी पीठ पर बोझा लादा जाता हो।

पृष्ठ्यस्तोम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] यज्ञ का षडाह्निक नामक एक समय-विभाग। षटक्रतु या छह एकाह।

पृष्ठ्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १.सामान ढोनेवाली घोड़ी। २. वेदी के उपर का किनारा।

पृष्ठ्यावलंब—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पृष्ठ्यावलम्ब] यज्ञ का पाँच दिन का एक समयविभाग। यज्ञ के कुछ विशिष्ट पाँच दिन।

पृष्णि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. पैर की एँड़ी। २. प्रकाशकिरण [को॰]।

पृष्णिपर्णी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पिठवन लता।

पेंजूष—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पेञ्जूष, पिञ्जूष] कान का मैल। खूँठ। पिंजूष [को॰]।

पेंट—संज्ञा पुं॰ [अं॰] रंग।

पेंटर—संज्ञा पुं॰ [अं॰] १. चित्रकार। मुसव्वर। २. रंग भरने-वाला। रंगसाज।

पेंटिंग—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] १. चित्रकारी। मुसव्वरी। २. रंग भरने का काम। रंगसाजी।

पेंड—संज्ञा पुं॰ [सं॰ पेण्ड] मार्ग। रास्ता। पैंड़ा [को॰]।

पेंडुलम—संज्ञा पुं॰ [अं॰] दीवार में लगानेवाली घड़ी में हिलने-वाला टुकड़ा जो उसकी गति का नियंत्रण करता है। घड़ी का लटकन। लंगर।

पेंशन—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] दे॰ 'पेन्शन'।

पेंशनर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'पेन्शनर'।

पेंस—संज्ञा पुं० [अं०] एक अंग्रेजी सिक्का। पेनी।

पेंसिल—संज्ञा स्त्री [अं०] दे० 'पेनसिल'।

पें[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] पें पें का शब्द, जो रोने, बाजा फूंकने आदि से निकलता है।

पें[2]—अव्य० [हिं०] दे० 'पै'। उ०—पें निमित्त गिरद्वीप तड पुछकर मुख हरि सार।—नंद० ग्रं०, पृ० ६८।

पेंग[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पटेंग, पट (=पटड़ा)+वेग अथवा सं० प्लवङ्ग] हिंडोले या झूले का झूलते समय एक ओर से दूसरी ओर को जाना।

मुहा०—पेंग मारना = झूले पर झूलते समय उसपर इस प्रकार जोर पहुँचाना जिसमें उसका वेग बढ़ जाय और दोनों ओर वह दूर तक झूले। उ०—भौजाइन बैठाय पेंग मारत देवर गन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १०। पेंग बढ़ाना या बढ़ाना = दे० 'पेंग मारना'। पेंग बढ़ना = जोर बढ़ना। अधिकता होना। उ०—अब सुनिए कि नशेबाजी के पेंग बढ़े पहले तो सिर्फ एक कोठी से लेन देन शुरू हुआ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५३।

पेंग[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

पेंगिया मैना—संज्ञा स्त्री० [हिं० पेंग+मैना] एक प्रकार की मैना (पक्षी) जिसे सतभैया भी कहते हैं। दे० 'सतभइया'।

पेंघट—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसका शरीर मटमैले रंग का, आँखें लाल और चोंच सफेद होती है।

पेंघा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पेंघट'।

पेंच—संज्ञा पुं० [फा० पेच] चालबाजी। चक्कर। दे० 'पेंच' उ०—सावधान हो पेंच न खैयो रहियो आप सँभारी।—चरण० बानी०, पृ० ६७।

पेंचक—संज्ञा पुं० [सं० पेचक] दे० 'पेचक'।

पेंचकश -संज्ञा पुं० [फ़ा० पेचकश] दे० 'पेचकश'।

पेंच का घाट—संज्ञा पुं० [हिं० पेंच+घाट] जहाजों के ठहरने का पक्का घाट। (लश०)।

पेंजनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पैजनी'।

पेंठ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पैंठ'।

पेंड़[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सारस पक्षी जिसकी चोंच पीली होती है।

पेंड़[2]—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड] १. दे० 'पेड़'। उ०—हलंत पेंड रच्चयो प्रछन्न नील कच्चयो।—पृ० रा०, २५।१३३। २. दे० 'पेंड़'। उ०—नर्षामिषं ओरं कव्विय चोरं कालकोरं कलकरी। आहुट्ठ पेंड़ मोम पंडं, छोडि छंड उरवरी।—पृ० रा०, २।२२४।

पेंड़ना—क्रि० सं० [देश०] दे० 'बेड़ना'।

पेंड़की[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० पण्डुक] १. पंडुक पक्षी। फाखता। २. सुनारों का वह औजार जिससे फूंककर वे आग सुलगाते हैं। फुंकनी।

पेंड़की[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पिराक] पिराक या गुझिया नाम का पकवान्न। दे० 'गुझिया'।

पेंडुली‡—संज्ञा स्त्री० [सं० पिच्छिका] ककड़ी। पिंडिया।

पेंदर†—संज्ञा पुं० [हिं० पेंदा या पेड़] पेड़।

पेंदा—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड] [स्त्री० अल्पा० पेंदी] किसी वस्तु का निचला भाग जिसके आधार पर वह ठहरती या रखी जाती हो। बिल्कुल निचला भाग। जैसे, लोटे का पेंदा। जहाज का पेंदा।

मुहा०—पेंदे के बल बैठना = (१) चूतड़ देकर बैठना। पलथी मारकर बैठना। (व्यंग्य)। (२) हार मानना। दबना। पेंदे का हलका = जिसका विकास न किया जा सके। ओछा।

पेंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पेंदा] १. किसी वस्तु का निचला भाग।

मुहा०—बे पेंदी का लोटा = अस्थिर व्यक्ति। ढुलमुल नीति का व्यक्ति। ऐसा व्यक्ति जो कभी एक पक्ष का अनुयायी हो, कभी दूसरे का।

२. गुदा। गाँड़। ३. तोप या बंदूक की कोठी। ४. गाजर या मूली आदि की जड़।

पेंना†—वि० [हिं०] दे० 'पैना'। उ०—भौंहें कुटिल कमान सी सर से पेंनें नैन।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४२५।

पेंहटुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० पेठा या पिच्छिका (=ककरी)] १. कचरी या पेठा नामक लता। २. इस लता का फल जो कुंदरू के आकार का होता है और जिसकी तरकारी तथा कचरी बनती है। विशेष—दे० 'कचरी'।

पे—संज्ञा स्त्री० [अं०] तनखाह। वेतन। महीना। जैसे,—इस महीने की पे तुम्हें मिल गई।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—लेना।

पेआन(५)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाण, प्रा० पयाण] दे० 'प्रयाण'। उ०—ब्रह्मलोक ब्रह्म असथाना। तहाँ काल फिरि करे पेआना।—सं० दरिया, पृ० ४।

पेउशा†—संज्ञा पुं० [सं० पीयूष] दे० 'पेउसी'।

पेउस†—संज्ञा पुं० [सं० पीयूष, पेऊस] दे० 'पेउसी'।

पेउसरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० पीयूष, प्रा० पेऊस] दे० 'पेउसी'।

पेउसी†—संज्ञा स्त्री० [सं० पीयूष, प्रा० पेऊस+ई (प्रत्य०)] १. ब्याई हुई गाय या भैंस का पहले दिन का अथवा पहले सात दिन का दूध जो बहुत गाढ़ा और कुछ पीले रंग का होता है। यह दूध पीने के योग्य नहीं होता। इसे तेली भी कहते हैं। २. एक प्रकार का पकवान जो उक्त दूध में सोंठ और शक्कर आदि डालकर पकाया और जमाया जाता है। यह स्वादिष्ट और पुष्टिकर होता है। इंदर। इन्नर।

पेखक(५)—संज्ञा पुं० [सं० प्रेक्षक, प्रा० पेक्खक] देखनेवाला। दर्शक। उ०—व्योम विमानन विबुध बिलोकत खेलक पेखक छाँह छए।—तुलसी (शब्द०)।

पेखन(५)—संज्ञा पुं० [सं० प्रेक्षण, प्रा० पेक्खण, पु० हिं० पेखन] १. देखने की क्रिया। प्रेक्षण। २. वह जो कुछ देखा जाय।

तमाशा। दृश्य। उ०—प्रभु पेखन तुम देखनिहारे। विधि हरि संभु नचावनि हारे।—मानस, २।१२७।

पेखना†Ⓟ²—क्रि० स० [सं० प्रेक्षण, प्रा० पेक्खण] देखना। अवलोकन करना। उ०—अमकण सहित श्याम तनु देखे। कहँ दुख समउ प्राणपति पेखे।—तुलसी (शब्द०)।

पेखनाⓅ³—संज्ञा पुं० [सं० प्रेक्षण] १. वह जो कुछ देखा जाय। दृश्य। उ०—रंगभूमि आएँ दसरथ के किसोर हैं। पेखनो सो पेखन चले हैं पुर नर नारि बारे बूढ़े अंध पंगु करत निहोर हैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३०६। २. देखने का भाव। प्रेक्षण। उ०—सखि सबको मन हरि लेति, ऐन मैन मनो पेखनो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८५।

पेगंबर†—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैगामबर, पैगबर] दे० 'पैगंबर।' उ०—जाप का पेगंबर आप का दरियाव। ताप का सेस ज्वाल दाप का कुरराव।—रा० रू०, पृ० ६७।

पेग—संज्ञा पुं० [अं०] उतनी शराब जितनी एक बार में सोडावाटर डालकर पीते हैं। शराब का गिलास। शराब का प्याला। जैसे,—एक ओर साहब लोग बैठे हुए पेग पर पेग उड़ा रहे थे।

पेग²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैंग] दे० 'पेंग'। उ०—लेत खरी पेगें छबि छाजैं उसकन मैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३९०।

पेच—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. घुमाव। फिराव। लपेट। फेर। चक्कर। २. उलझन। झंझट। बखेड़ा। कठिनता। उ०—कागज करम करतूति के उठाय धरे पचि पचि पेच मे परे हैं प्रेतनाह अब।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—डालना। पड़ना।

विशेष—उक्त दोनों अर्थों में कहीं कहीं लोग इसको स्त्रीलिंग भी बोलते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने एक स्थान पर इसका व्यवहार स्त्रीलिंग में ही किया है। यथा—सोचत जनक पोच पेच परि गई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१३।

३. चालाकी। चालबाजी। धूर्तता।

क्रि० प्र०—पड़ना।—चलना।

४. पगड़ी का फेरा। पगड़ी की लपेट।

क्रि० प्र०—कसना।—बाँधना।—देना।

५. किसी प्रकार की कल। यंत्र। मशीन। जैसे, रुई का पेच। ६. यंत्र का कोई विशेष अंग जिसके सहारे कोई विशेष कार्य होता हो। मशीन का पुरजा। ७ यंत्र का वह विशेष अंग जिसको दबाने, घुमाने या हिलाने आदि से वह यंत्र अथवा उसका कोई अंश चलता या रुकता हो।

क्रि० प्र०—घुमाना।—चलाना।—दबाना।

मुहा०—पेच घुमाना = ऐसी युक्ति करना जिससे किसी के विचार या कार्य आदि का रुख बदल जाय। तरकीब से किसी का मन फेरना। पेच हाथ में होना = किसी के विचारों को परिवर्तन करने की शक्ति होना। प्रवृत्ति आदि बदलने का सामर्थ्य होना।

८. वह कील या काँटा जिसके नुकीले आधे भाग पर चक्करदार गड़ारियाँ बनी होती हैं और जो ठोककर नहीं बल्कि घुमाकर जड़ा जाता है। स्क्रू।

क्रि० प्र०—कसना।—खोलना।—जड़ना।—निकालना।

९. पतंग लड़ने के समय दो या अधिक पतंगों के डोर का एक दूसरे में फँस जाना।

क्रि० प्र०—डालना।

मुहा०—पेच काटना = दूसरे की गुड्डी या पतंग की डोर में अपनी डोर फँसाकर उसकी डोर काटना। गुड्डी या पतंग काटना। पेच लड़ाना = दूसरे की पतंग काटने के लिये उसकी डोर में अपनी डोर फँसाना। पेच छुटाना = दो पतंगों की फँसी हुई डोर का अलग अलग हो जाना।

१०. कुश्ती में वह विशेष क्रिया या घात जिससे प्रतिद्वंद्वी पछाड़ा जाय। कुश्ती में दूसरे को पछाड़ने की युक्ति। उ०—इक एक पुहुमि पछार देत उछारि पुनि उठि जाय। रहु सावधान बखान करि पुनि गँसन पेच लगाय।—रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चलना।—मारना।—लगाना।

११ युक्ति। तरकीब।

क्रि० प्र०—निकालना।

१२. तबले के किसी परन या ताल के बोल में से कोई एक टुकड़ा निकालकर उसके स्थान पर ठीक उतना ही बड़ा दूसरा कोई टुकड़ा लगा देना।

क्रि० प्र०—लगाना।

१३. एक प्रकार का आभूषण जो टोपी या पगड़ी में सामने की ओर खोंसा या लगाया जाता है। सिरपेच। १४. सिरपेच की तरह का एक प्रकार का आभूषण जो कानों में पहना जाता है। गोशपेच। उ०—गोशपेच कुंडल कलँगी सिरपेच पेच पेचन ते खैंचि बिन बैंचे वारि आयो है।—पद्माकर (शब्द०)। १५. पेचिश। पेट का मरोड़। दे० 'पेचिश'।

क्रि० प्र०—उठना। पड़ना।

१६. दे० 'पेचताब'।

पेचक¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. बटे हुए तागे की गोली या गुच्छी। २. बटा तथा लपेटा हुआ महीन तागा जिससे कपड़े सीते हैं।

पेचक²—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पेचिका] १. उल्लू पक्षी। २. जूँ। ३. बादल। ४. पलंग। चारपाई। ५. हाथी की पूँछ की जड़। ६. सड़क पर का विश्रामालय (को०)।

पेचकश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. बढ़इयों और लोहारों आदि का वह औजार जिससे वे लोग पेच (स्क्रू) जड़ते अथवा निकालते हैं।

विशेष—यह आगे से चपटा और कुछ नुकीला लोहा होता है जिसके पिछले भाग में पकड़ने के लिये दस्ता जड़ा रहता है।

२. लोहे का बना हुआ वह घुमावदार पेच जिसकी सहायता से बोतल का काग निकाला जाता है।

विशेष—इसे पहले घुमाते हुए काग में धँसाते हैं और जब वह कुछ अंदर चला जाता है तब ऊपर की ओर खींचते हैं जिससे काग बोतल के बाहर निकल आता है।

पेचकी—संज्ञा पुं० [सं० पेचकिन्] हाथी [को०]।

पेचताब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह क्रोध जो विवशता आदि के कारण प्रकट न किया जाय। वह गुस्सा जो मन ही मन में रह जाय और निकाला न जा सके।

क्रि० प्र०—खाना।

पेचदार¹—वि० [फ़ा०] १. जिसमें कोई पेच लगा हो। जिसमें कोई कल लगी हो। पेचवाला। २. जिसमें कोई उलझाव हो। उलझाववाला। कठिन। दे० 'पेचीला'।

पेचदार²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का कसीदे का काम जिसमें काढ़ते समय फंदे लगाए जाते हैं।

पेचना—क्रि० स० [फ़ा० पेच] दो चीजों के बीच में उसी प्रकार की एक तीसरी चीज इस प्रकार घुसेड़ देना जिससे साधारणतः वह दिखाई न पड़े। इस प्रकार लगाना जिसमें पता न लगे।

पेचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पेच] चिकन या कामदानी के काम में एक सीधी लकीर पर काढ़ा हुआ कसीदा।

पेचपाच—संज्ञा पुं० [फ़ा० पेच + अनु० पाच] दे० 'पेच'। उ०—छोड़ दे पेचपाच की आदत। बीच का खींचतान कर दे कम। —चुभते०, पृ० ३४।

पेचवाँ(प)—संज्ञा पुं० [हिं०] पगड़ी आदि की लपेट पर का एक आभूषण। पेच। उ०—कर साफ अतर से मुखड़े पर, बेतरह पेचवाँ डाली है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३९३।

पेचवान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. बड़ी सटक जो फर्शी या गुड़गुड़ी में लगाई जाती है। २. बड़ा हुक्का।

पेचा†—संज्ञा पुं० [सं० पेचक] [स्त्री० पेची] उल्लू पक्षी।

पेचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] उल्लू पक्षी की मादा।

पेचिल—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी [को०]।

पेचिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. पेट की वह पीड़ा जो आँव होने के कारण होती है। मरोड़। २. आँव के कारण ऐंठन होने से बार बार पाखाना जाने का रोग (को०)।

पेचीदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. पेचीला होने का भाव। घुमावदार होने का भाव। २. उलझाव।

पेचीदा—वि० [फ़ा० पेचीदह्] १. जिसमें बहुत कुछ पेच हो। पेचदार। २. जो टेढ़ा मेढ़ा और कठिन हो। उलझावदार। मुश्किल। ३. लिपटा हुआ (को०)।

पेचीला—वि० [हिं० पेच + ईला (प्रत्य०)] १. जिसमें बहुत पेच हों। घुमाव फिरावबाला। २. जो टेढ़ा मेढ़ा और कठिन हो। उलझावदार। मुश्किल।

पेचु, पेचुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक शाक [को०]।

पेचुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का शाक।

पेज¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पेय] रबड़ी। बसौंधी।

पेज²—संज्ञा पुं० [अं०] १. पुस्तक का पृष्ठ। वरक। सफहा। पन्ना। २. सेवक। अनुचर। विशेषकर वह अनुचर जो किसी बड़े मर्यादावाले या ऐश्वर्यशाली व्यक्ति की सेवा में रहता है। जैसे,—दिल्ली दरबार के अवसर पर दो देशी नरेशों के पुत्रों को महाराज जार्ज के पेज बनने का सम्मान प्रदान किया गया था जो महाराज का जामा पीछे से उठाए हुए चलते थे। ३. वह बालक या युवा व्यक्ति जो किसी व्यवस्थापिका परिषद् के अधिवेशन में सदस्यों और अधिकारियों की सेवा में रहता है।

पेज³—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञा, प्रा० पइज्जा, अप० पइज्ज, हिं० पैज] पैज। प्रतिज्ञा। उ०—बल को भीम, पेज को परशुराम, वाचा को युधिष्ठिर तेज प्रताप को भान। —अकबरी०, पृ० १०६।

पेट¹—संज्ञा पुं० [सं० पेट (= थैला)] १. शरीर में थैले के आकार का वह भाग जिसमें पहुँचकर भोजन पचता है। उदर।

विशेष—बहुत ही निम्न कोटि के जीवों में गले के नीचे का प्रायः सारा भाग पेट का ही काम देता है। कुछ जीव ऐसे भी होते हैं जिनमें किसी प्रकार की पाचन क्रिया होती ही नहीं और इसलिये उनमे पेट भी नहीं होता। पर उच्च कोटि के जीवों के शरीर के प्रायः मध्य भाग में थैले के आकार का एक विशेष अंग होता है जिसमें पाचन रस बनता और भोजन पचता है। मनुष्यों और चौपायों आदि में यह अंग पसलियों के नीचे और जननेंद्रिय से कुछ ऊपर तक रहता है। पाचक रस बनाने और भोजन पचानेवाले सब अंग; जैसे, आमाशय, पक्वाशय, जिगर, तिल्ली, गुरदे आदि इसी के अंतर्गत रहते हैं। इसी के नीचे का भाग कटोरे के आकार का होता है जिसमें आँतें और मूत्राशय रहता है। कुछ जीवों, जैसे पक्षियों आदि, में एक के बदले दो पेट होता है।

मुहा०—पेट आना = दस्त आना। (बच०)। पेट का कुत्ता = जो केवल भोजन के लालच से सब काम करता हो। केवल पेट के लिये सब कुछ करनेवाला। पेट कटना = खाने को कम मिलना। भूखे पेट रहना। उ०—पेट कटता देख जब री पीटकर। लोग पीटा ही करेंगे छातियाँ।—चुभते० पृ० ६६। पेट काटना = बचाने के लिये कम खाना। जान बूझकर कम खाना जिसमें कुछ बचत हो जाय। पेट का धंधा = (१) भोजन बनाने का प्रबंध। रसोई बनाने का झंझट। (२) रोजी रोजगार ढूँढ़ने का प्रबंध। जीविका का उपाय। (३) हलका कामकाज। मेहनत मजदूरी। पेट का पानी न पचना = रहा न जाना। रह न सकना। जैसे,—बिना सब हाल कहे तुम्हारे पेट का पानी न पचेगा। पेट का पानी हिलना = परिश्रम होना। मिहनत पड़ना। उ०—हिल गए दिल भी न हिलना चाहिए। चाहें हिल क्यों पेट का पानी

हिले ।—चुभते०, पृ० ५७ । पेट का पानी न हिलना = कुछ परिश्रम न पड़ना । जरा भी मिहनत या तकलीफ न होना । पेट का हलका = क्षुद्र प्रकृति का । ओछे स्वभाव का । जिसमें गंभीरता न हो । पेट की आग = भूख । उ०—आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की ।—तुलसी (शब्द०) । पेट की आग बुझाना = पेट में भोजन भोजन पहुँचाना । भूख दूर करना । उ०—काम हैं सूझ बूझ का करते । पेट की आग जो बुझाते हैं ।—चोखे०, पृ० ३८ । पेट की बात = गुप्त भेद । भेद की बात । उ०—पेट की बात जानना है तो पेट में पैठ क्यों नही जाते ।—चुभते०, पृ० ५३ । पेट की मार देना या मारना = भूखा रखना । भोजन न देना । पेट के लिये दौड़ना = रोजी या जीविका के लिये उद्योग और परिश्रम करना । पेट के हाथ बिकना = पेट के लिये कोई भी काम करना । आजीविकार्थ कोई भी बुरा भला काम करने के लिये बाध्य होना । उ०—बड़ों एक है । और पेट के हाथ तो बिकी हुई है । कुछ ठिकाना है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४२६ । पेट को धोखा देना = दे० 'पेट काटना' । पेट खलाना = (१) अत्यत दीनता दिखालाना । उ०—राम सुभाव सुने तुलसी प्रभु सों कही बारक पेट खलाई ।—तुलसी (शब्द०) । (२) भूखे होने का संकेत करना । पेट को लगना = भूख लगना । पेट गड़ना = अपच के कारण पेट में दर्द होना । पेट गुड़ गुड़ाना = बादी के कारण आँतों में गुड़गुड़ शब्द होना । पेट में वायु का विकार होना । पेट चलना = दस्त होना । बार बार पाखाना होना । पेट छँटना = (१) पेट साफ हो जाना । पेट का मल निकल जाना । (२) पेट की मोटाई का कम होना । दुबला हो जाना । पेट छूटना = दस्त होना । पेट जलना = (१) अत्यंत भूख लगना । (२) अत्यंत असंतुष्ट या क्रुद्ध होना । पेट जारी होना = दस्त लगना । दस्तों की बीमारी हो जाना । पेट दिखाना = (१) भूखे होने का संकेत करना । (२) पेट के रोग की पहचान कराना । पेट के रोग का निदान करना । †पेट देना = अपना गूढ़ भेद या विचार किसी को बतलाना । अपने मन की बात बतलाना । उ०—अपने पेट दियो तैं उनको नाकबुद्धि तिय सबै कहैं री ।—सूर (शब्द) पेट पकड़ना या पकड़े फिरना = परेशान होना । बहुत दुःखी या तंग होना । व्याकुल होना । पेट पाटना = जो कुछ मिल जाय उसी से पेट भर लेना । भूख के मारे खाद्य या अखाद्य का विचार छोड़कर खा लेना । पेट पानी होना = पतले दस्त आना । पेट पाल पालकर पलना = पेट भरकर जीना । केवल खाने कमाने में लगे रहना । उ०—सब दिनों पेट पाल पाल पले, मोहता मोह का रहा मेवा ।—चोखे०, पृ०४ । पेट पालना = कठिनता से खाने भर को कमा लेना । जीवन निर्वाह करना । उ०—बेबसों को लपेट चित पट कर, पालना पेट मुँह पिटाना है ।—चोखे०, पृ० २१ । पेट पीठ एक हो जाना या पेट पीठ से लग जाना = (१) बहुत दुबला हो जाना (२) बहुत भूखे होना । पेट फूलना = (१) किसी बात को जानने या कहने के लिये अथवा किसी पदार्थ को पाने आदि के लिये व्याकुल होना । किसी बात के लिये बहुत अधिक उत्सुक होना । बहुत अधिक हंसने के कारण पेट में हवा भर जाना (जिसके कारण और अधिक हँसा न जा सके) । (३) पेट में वायु का प्रकोप होना । पेट बाँधना = भूखे रहना । भूख शांत करने के लिये पेट में कुछ न डालना । उ०—आपका सेवक भी पेट बांधकर सेवा नहीं करता ।—किन्नर०, पृ० ८ । पेट भरना = किसी प्रकार आजीविका चलना । कठिनाई से आजीविका चलाना । पेट मारना = (१) दे० 'पेट काटना' । (२) आत्मघात करना । आत्महत्या करना । उ०—हाथ जो आ जाय सोने की छुरी, पेट तो है मारता कोई नहीं ।—चोखे०, पृ० २५ । पेट मारकर मर जाना = आत्मघात करना । उ०—पेटी ना दिखाओ कोऊ पेट मारि मरिहैं ।—(शब्द०) । पेट में आँत न मुह में दाँत = वह जो बहुत बुड्ढा हो । अत्यंत वृद्ध । पेट मुँह चलना = हैजा होना । उ०—दूसरे ही दिन मठ के एक साधु का पेट मुंह चलने लगा । —मैला०, पृ० ४९ । पेट में खलबली पड़ना = (१) चिंता होना । फिक्र होना (२) व्याकुलता होना । घबराहट होना । पेट में चूहों का कलाबाजी खेलना = दे० 'पेट में चूहे दौड़ना' । पेट में चींटे की गिरह होना = बहुत कम खाना । थोड़ा भोजन करना । पेट में डाढ़ी होना = बचपन ही में बहुत बुद्धिमान् होना । पेट में डालना = खा जाना । पेट में पाँव होना = अत्यंत छली या कपटी होना । चालबाज होना । पेट में बल पड़ना = इतनी हँसी आना कि पेट में दर्द सा होने लगे । (कोई वस्तु) पेट में होना = अधिकार या चंगुल में होना । गुप्त रूप से पास में होना । जैसे—तुम्हारी पुस्तक इन्हीं लोगों के पेट में है । पेट मोटा होना = धन बढ़ना । पूँजी बढ़ना । नाजायज ढग से संपत्ति की वृद्धि होना । उ०—जो निकल पावे निकाले पेट से । दिन ब दिन है पेट मोटा हो रहा ।—चुभते०, पृ० ४० । पेट मोटा हो जाना = बहुत घूसखोर हो जाना । अधिक रिश्वत लेने लगना । पेट लगना या लग जाना = भूख से पेट का अंदर धंस जाना । पेट से पाँव निकालना = (१) किसी अच्छे आदमी का बुरा काम करने लग जाना । कुमार्ग में लगना । (२) बहुत इतराना । उ०—बहुत थानेदारी के बल पर न रहिएगा । देखा कि औरतें हो औरतें घर में हैं तो पेट से पांव निकाले ।—फिसाना०, भा० ३. पृ० २३१ । (कोई वस्तु) पेट से निकालना = किसी के द्वारा उड़ाई या छिपाकर रखी हुई वस्तु को प्राप्त करना । हजम की हुई चीज पाना ।

२. गर्भ । हमल ।

यौ०—पेटपोंछना ।

मुहा०—पेट गदराना = गर्भ के लक्षण प्रकट होना । गर्भवती होने के चिह्न दिखाई देना । पेट गिरना = गर्भ गिरना । गर्भपात होना । पेट गिराना = गर्भ नष्ट करना । पेट गिरवाना = गर्भपात कराना । पेटचोही = वह स्त्री जिसके गर्भ हो, परंतु लक्षित न होता हो । गर्भवती होने पर भी जिसके

गर्भ के लक्षण दिखाई न पड़ें। पेट छँटना = प्रसूता के गर्भाशय का अच्छी तरह साफ हो जाना। पेट ठंडा रहना = बच्चों का सुख देखना। संतान का जीवित रहना। पेट दिखाना = दाई से यह निश्चित कराना कि गर्भ है या नहीं। गर्भ होने या न होने की परीक्षा कराना। पेट फुलाना या फुला देना = गर्भवती कर देना। पेट फूलना = गर्भ रह जाना। पेट रखना = गर्भवती कर देना। पेट रखाना = किसी से संभोग कराके गर्भवती होना। पेट रखवाना = (१) गर्भवती होना। (२) गर्भवती होने की प्रेरणा करना। पेट रहना = गर्भ स्थित होना। गर्भ रहना। हमल रहना। पेटवाली = गर्भवती। पेट से होना = गर्भवती होना।

३. पेट के अंदर की वह थैली जिसमें खाद्य पदार्थ रहता और पचता है। पचौनी। ओझर। ४. चक्की के पाटों का वह तल जो दोनों को जोड़ने से भीतर पड़े। ५. सिल आदि का वह भाग जो कूटा हुआ और खुरदरा रहता है और जिसपर रखकर कोई चीज पीसी जाती है। ६. अंतःकरण। मन। दिल। उ०—पेटकी चवाइन के पेट की न पाई मैं।—ठाकुर (शब्द०)।

मुहा०—पेट में चूहे कूदना = दे० 'पेट में चूहे दौड़ना'। पेट में चूहे छूटना = दे० 'पेट में चूहे दौड़ना'। उ०—एक प्यादा बोला यहाँ पेट में चूहे छूटे हुए हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७६। पेट में चूहे दौड़ना = (१) बहुत भूख लगना। (२) व्याकुल या चिंतित होना। व्यग्रता या खलबली होना। पेट में घुसना = भेद लेने के लिये मित्र बनना। रहस्य जानने के लिये मेल बढ़ाना। पेट में चूहों का डंड पेलना = दे० 'पेट में चूहे दौड़ना'। उ०—ख्वाब में डूबा चमकता हो सितारा। पेट में डंड पेलते चूहे, जबाँ पर लफ्ज प्यारा।—कुकुर०, पृ० ५। पेट में छुरी घुसेड़ना = हत्या करना। जान लेना। उ०—काम हो काल के उखेड़े जो, तो घुसेड़े न पेट में छूरी।—चुभते०, पृ० ५४। पेट में डालना = (१) कोई बात अपने मन में रखना। भेद प्रकट न होने देना। उ०—बात जो भेद डाल दे उसको, जो सकें डाल पेट में डालें।—चुभते०, पृ० ५३। (२) भोजन का नाम करना। भोजन के रूप में कोई अत्यंत तुच्छ वस्तु लेना। (३) जल्दी जल्दी भोजन करना। शीघ्रता से खाना। (४) अरुचिपूर्वक खाना। बेस्वाद भोजन करना। पेट में बैठना या पैठना = दे० 'पेट में घुसना'। उ०—जो चले काम पेठ में पैठे, तो न तलवार पेट में डालें।—चुभते०, पृ० ५४। पेट में भरा पड़ा रहना = मन में होना या रहना। उ०—न जाने कहाँ का खटराग पेट में भरा पड़ा है।—चुभते० (दो दो बातें), पृ० ६। पेट में होना = मन में होना। ज्ञान में होना। जैसे, कोई बात पेट में होना।

७. पोली वस्तु के बीच का या भीतरी भाग। किसी पदार्थ के अंदर का वह स्थान जिसमें कोई चीज भरी जा सके। जैसे, बड़े पेटे की बोतल। ८. बंदूक या तोप में का वह स्थान जहाँ गोली या गोला भरा जाता है। ९. गुंजाइश। समाई। १०. रोजी। जीविका। जैसे,—पेट के लिये सभी को कुछ न कुछ काम करना पड़ता है।

पेट² संज्ञा पुं० [हिं० पेट] रोटी का वह पार्श्व जो पहले तवे पर डाला जाता है।

पेट³—संज्ञा पुं० [सं०] १. थैला। २. पिटारा। संदूक। ३. समूह। राशि। ढेर। ४. उँगलियों के साथ खुली हुई हाथ की हथेली। थप्पड़। झापड़ [को०]।

पेटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिटारा। मंजूषा। उ०—रघुबीर यश मुकुता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे।—तुलसी (शब्द०)। २. समूह। ढेर।

पेटकैयाँ‡—क्रि० वि० [हिं० पेट + कैयाँ (प्रत्य०)] पेट के बल।

पेटनटⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] पेट के लिये दर दर नाचनेवाला। उदरपूर्ति के लिये नट का काम करनेवाला व्यक्ति।

पेटपरस्त— वि० [सं० पेट + फ़ा परस्त] पेट की चिंता में लीन रहनेवाला। उदरंभर। पेटार्थी। उ०—परबस कायर कूर आलसी अंधे पेटपरस्त। सूझता कुछ न बसंत माँहि ये भी शराब औ मस्त।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० ३६७।

पेटपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं० पेट + पूजा] भोजन करना। खाना खाना।

पेटपोंछना—संज्ञा पुं० [सं० पेट + पोंछना] अंतिम संतान। वह संतान जिसके उपरांत और कोई संतान न हो।

पेटपोसुआ‡—संज्ञा पुं० [सं० पेट + हिं० पोसना] दे० 'पेटू'।

पेटरिया‡—संज्ञा स्त्री० [सं० पेटाल + हिं० इया (प्रत्य०)] दे० 'पिटारी'।

पेटल—वि० [हिं० पेट + ल (प्रत्य०)] बड़े पेटवाला। जिसका पेट बड़ा हो। तोंदल।

पेटा¹—संज्ञा पुं० [हिं० पेट] १. किसी पदार्थ का मध्य भाग। बीच का हिस्सा। २. तफसील। ब्योरा। पूरा विवरण। ३. बड़ा टोकरा। ४. सीमा। हद।

मुहा०—पेटे में आना = सीमा में आना। हद में पड़ना। पेटे में पड़ना = लगभग होना।—जैसे,—खर्च सौ रुपये के पेटे में पड़ेगा।

५. घेरा। वृत्त। †६. गर्भ। हमल। पेट। ७. नदी के बहने का मार्ग। ८. नदी का पाट।

मुहा०—पेटे में आना = डूब जाना। पानी में लीन हो जाना।

९. पशुओं की अँतड़ी। १०. पतंग या गुड्डी की डोर का झोल। उड़ती हुई गुड्डी की डोर का वह अंश जो बीच में कुछ ढीला होकर लटक जाता है।

मुहा०—पेटा छोड़ना = उड़ती हुई गुड्डी का डोर बीच में से लटक या झूल जाना। पेटा तोड़ना = उड़ती हुई गुड्डी की बीच में लटकती या झूलती हुई डोर तोड़ना।

पेटा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पेट³' [को०]।

पेटाक—संज्ञा पुं० [सं०] झोला। थैला। बक्स [को०]।

पेटाग्निⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० पेट + अग्नि, प्रा० अग्गि] पेट की

ज्वाला। भूख। उ०—जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस, खाए टूक सबके विदित बात दुनी सों।—तुलसी (शब्द०)।

पेटार्थू†—वि० [हिं० पेटार्थू] दे० 'पेटार्थ'।

पेटार(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० पेटक] पिटारा। उ०—तिल चारो पानिप सलिल अलक फंद पल जार। मन पच्छी गहि कै किते डारे श्रवण पेटार।—मुबारक (शब्द०)।

पेटार[2]—वि० १. पेटू। २. (ऐसा पात्र) जिसमें अधिक वस्तु अँट सके। बड़े पेट का (पात्र)।

पेटारा—संज्ञा पुं० [सं० पेटाकक] दे० 'पिटारा'। उ०—कनक किरीट कोटि पलँग पेटारे पीठ, काढ़त कहार सब जरे भरे भारहीं।—तुलसी (शब्द०)।

पेटारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पेटारा] दे० 'पिटारी'। उ०—(क) नाम मंथरा मंदमति चेरि केकई केरि। अजस पिटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बिसहर नावहिं पीठ हमारी। औ घर मूँदहि घालि पेटारी।—जायसी (शब्द०)।

पेटारी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पेटिका] १. एक प्रकार का वृक्ष। पिटारी या पेटिका वृक्ष। २. दे० 'पिटारी'।

पेटार्थी—वि० [सं० पेट + अर्थिन्] जो पेट भरने को ही सब कुछ समझता हो। भुक्खड़। पेटू।

पेटार्थू—वि० [सं० पेट + अर्थिन्] पेटार्थी।

पेटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिटारी नाम का वृक्ष। २. संदूक। पेटी। ३. छोटी पिटारी।

पेटिया—संज्ञा स्त्री० [सं० पेट + हिं० इया (प्रत्य०), गुज० पेटियुं (= सीधा, एक समय का आहार)] सीधा। सिद्धा। एक पेट का आहार। उ०—तब भंडारी सों कह्यो जो आज मोंको दोय पेटिया दीजियो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ११३।

पेटी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] संदूकची। छोटा संदूक।

पेटी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पेट] १. छाती और पेड़ू के बीच का स्थान। पेट का वह भाग जहाँ तिवली पड़ती है। उ०—पेटी सुछबि लपेटी भल भल पाइ। पकरसि काम बनेठी राखु छिपाइ।—रहीम (शब्द०)।

मुहा०—पेटी पड़ना = तोंद निकलना।

२. कमर में बाँधने का तसमा। कमरबंद। ३. चपरास।

मुहा०—पेटी उतारना = पुलिस के सिपाही का मुअत्तल या बरखास्त किया जाना।

४. हज्जामों की किसबत जिसमें वे कैंची, छुरा आदि रखते हैं। ५. वह डोरा जो बुलबुल की कमर में उसे हाथ पर बैठाने के लिये बाँधते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।

पेटीकोट—संज्ञा स्त्री० [अं०] लहँगे की तरह का एक वस्त्र जिसे स्त्रियाँ धोती या साड़ी के अंदर पहनती हैं।

पेटीबूर्जुआ—संज्ञा पुं० [अं०] निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति। जो निम्न मध्यवर्ग का हो। उ०—जो कला क्रांतिवाद या पदार्थवाद मूलक उपयोगितावाद में व्यक्त होती है वही कला है, बाकी सब पेटी बूर्जुआ या बूर्जुआ भावुकता है तो मैं आपसे कहता हूँ कि हम न केवल झूठ बोलते हैं वरन् आत्मप्रवंचना भी करते हैं।—कुंकुम (भू०), पृ० ८।

पेटू—वि० [हिं० पेट] १. जिसे सदा पेट भरने की ही फिक्र रहे। पेटार्थी। २. जो बहुत अधिक खाता हो। भुक्खड़।

पेटेंट—वि० [अं०] १. किसी आविष्कारक के आविष्कार के संबंध में सरकार द्वारा की हुई रजिस्टरी जिसकी सहायता से वह आविष्कारक ही अपने आविष्कार से आर्थिक लाभ उठा सकता है। दूसरे किसी को उसकी नकल करके आर्थिक लाभ उठाने का अधिकार नहीं रह जाता।

विशेष—यह रजिस्टरी नए प्रकार की मशीनों, यंत्रों, युक्तियों या औषधों आदि के संबंध में होती है। ऐसी रजिस्टरी के उपरांत उस आविष्कार पर एकमात्र आविष्कारक का ही अधिकार रह जाता है।

२. (वह आविष्कार या पदार्थ आदि) जिसकी इस प्रकार रजिस्टरी हो चुकी हो।

पेट्रन—संज्ञा पुं० [अं०] संरक्षक। पृष्ठपोषक। सरपरस्त। जैसे,—वे सभा के पेट्रन हैं।

पेट्रोल—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक खनिज तेल जिसकी शक्ति से कारें, मोटरें और हवाई जहाज आदि चलते हैं।

पेठ—संज्ञा पुं० [हिं० पैठ] 'पैठ'।

पेठा—संज्ञा पुं० [देश०] १. सफेद रंग का कुम्हड़ा। विशेष—दे० 'कुम्हड़ा'। २. पेठे की बनी एक मिठाई। कोहँड़ापाग।

पेड—वि० [अं०] १. जो चुका दिया गया हो। जो चुकता कर दिया गया हो। २. जिसका महसूल, कर या भाड़ा आदि दे दिया गया हो। 'बैरिंग' या 'बैरंग' का उलटा।

पेड़—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड] १. वृक्ष। दरख्त। विशेष—दे० 'वृक्ष'।

मुहा०—पेड़ लगना = वृक्ष का किसी स्थान पर जड़ पकड़ना। पौधे आदि का जमना। पेड़ लगाना = वृक्ष या पौधे आदि को किसी स्थान पर जमाना।

२. आदि कारण। मूल कारण (क्व०)।

पेड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पंडुक'। उ०—एक जोड़ा पेड़की का डाल पर बैठा सिकुड़ जुड़।—निशा०, पृ० ३७।

पेड़ना‡—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पेरना'। उ०—अभी जेहलखाना में कोल्हू पेड़ते रहते।—मैला०, पृ० २५८।

पेड़ा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा संदूक। बड़ी पिटारी (को०)।

पेड़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड] १. खोवा और खाँड़ से बनी हुई एक प्रसिद्ध मिठाई जिसका आकार गोल और चिपटा होता। २. गुँधे हुए आटे की लोई।

पेड़ाइत—संज्ञा पुं० [हिं० पैंड़ा ?] बटमार। मार्ग में लूट खसोट करनेवाला। उ०—आवा बुखी भगति है लोहर बाड़ा

माहिं। परगट पेड़ाइत बसैं तहँ संत काहे कौं जाँहिं। दादू०, पृ० ६६१।

पेड़ार†—संज्ञा पुं० [सं० पिचड] एक प्रकार का वृक्ष।

पैडिल—संज्ञा स्त्री० [अं०] साइकिल का वह भाग जिसपर पैर रखकर चलाया जाता है। पाँवदान।

पेड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० पिण्ड] १. वृक्ष की पींड़। पेड़ का तना। धड़। कांड। २. मनुष्य का धड़। शरीर का ऊपरी भाग। ३. पान का पुराना पौधा। जैसे, पेड़ी का पान। ४. पुराने पौधे के पान। वह पान जो पुराना तोड़ा हुआ तो न हो, पर पुराने पौधों में बाद में हुआ हो। उ०—हौं तुम्ह नेह पियर भा पानू। पेड़ी हुँत सोनरास बखानू।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५। ५. वह कर जो प्रति वृक्ष पर लगाया जाय। ६ वह खेत जिसमे पहले ऊख बोया गया हो और जो फिर जौ या गेहूँ बोने के लिये जोता जाय। ७. एक बार का काटा हुआ नील का पौधा। ८. दे० 'पेंड़ी'।

पेड़ू—संज्ञा [हिं० पेट] १. नाभि और मूत्रेंद्रिय के बीच का स्थान। उपस्थ। २. गर्भाशय।

मुहा०—पेड़ू की आँच = (१) किसी पुरुष के साथ स्त्री का वह प्रेम जो केवल कामवासना के कारण हो। (२) स्त्री की कामवासना।

पेण†—संज्ञा पुं० [देश०] पीना साँप। उ०—मैं रिणछोड़ सके मुख आया। पेण जाँण नींद बस पाया।—रा० रू०, पृ० २५८।

पेत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुधा। पीयूष। २. घृत। घी। ३. छाग या मेष (को०)।

पेद्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पिद्दी'।

पेदूर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बड़ा जंगली पेड़ जिसके पत्ते हर साल झड़ जाते हैं।

विशेष—इसकी लकड़ी भीतर से सफेद और बहुत मजबूत होती है। यह मेज, कुरसियाँ, अलमारियाँ और नावें बनाने तथा इमारत के काम में आती है। इसकी जड़, पत्ते और फूल ओषधि रूप में भी काम आते हैं। यह पेड़ मदरास और बंगाल में अधिकता से होता।

पेन¹—संज्ञा स्त्री० [अं० पेन्] कलम। लेखनी।

पेन²—संज्ञा स्त्री० [अं० पेइन] पीड़ा। दर्द। वेदना।

पेन³—संज्ञा पुं० [देश०] लसोड़े की जाति का एक वृक्ष जो गढ़वाल में होता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है। इसे 'कूम' भी कहते हैं।

पेनशनिया—संज्ञा पुं० [अं० पेन्शन] वह जिसे पेंशन मिलती हो। पेंशन पानेवाला। पेंशनर।

पेनाना(५)‡—क्रि० स० [हिं० पहिनाना, पैन्हाना] दे० 'पहनाना'। उ०—लाल कमली बोढ़े पेनाए, वेसु हरि ये कैसे बनाए।—बस्लभी०, पृ० १०१।

पेनिसिलिन—संज्ञा स्त्री० [अं०] एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत प्रतिजीवाणु (ऐंटीबायोटिक) वर्ग की प्रमुख ओषधि जिसका प्रयोग मुख्यतः अंतःपेशी (इंट्रामस्कुलर) इंजेक्शन के रूप में किया जाता है। टिकिया के रूप में खाने तथा मलहम के रूप में लगाने में भी इसका व्यवहार होता है।

विशेष—लंदन सेंट मेरी चिकित्सालय के प्रो० अलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने सन् १६२८ में संवर्धन पट्टिकाओं (कल्चर प्लेटों) का सामान्य परीक्षण करते समय आकस्मिक रूप से इसका पता लगाया था। परंतु इसके वास्तविक संघटन, गुण और शक्तियों का सही ज्ञान दस वर्षों बाद प्राप्त हुआ। यह एक प्रकार की फफूँद या भुकड़ी है जिसके संपर्क में आने पर अनेक दुस्साध्य रोगों के जनक और वाहक रोगाणु तत्काल नष्ट हो जाते हैं और रोग दूर हो जाता है। पेनिसिलिन का आविष्कार चिकित्सा जगत् में वर्तमान शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। दुष्टव्रण, पृष्ठव्रण, न्यूमोनियाँ, उपदंश, सुजाक आदि अनेक असाध्य समझे जानेवाले रोगों की चिकित्सा में पेनिसिलिन रामबाण सिद्ध हुई है। फ्लेमिंग महोदय को इसके आविष्कार के उपलक्ष में 'सर' की उपाधि और नोबेल पुरस्कार मिला था।

पेनी—संज्ञा स्त्री० [अं०] इंगलैंड में चलनेवाला ताँबे का सिक्का जो एक शिलिंग का बारहवाँ भाग होता है। यह भारत के प्रायः तीन (अब प्रायः पाँच) पैसों के बराबर मूल्य का होता है।

पेनीवेट—संज्ञा पुं० [अं०] एक अँगरेजी तौल जो लगभग १० रत्ती के बराबर होती है।

पेन्शन—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह मासिक या वार्षिक वृत्ति जो किसी व्यक्ति अथवा उसके परिवार के लोगों को उसकी पिछली सेवाओं के कारण दी जाय।

विशेष—जो लोग कुछ निश्चित समय तक किसी राजकीय (जैसे, शासन, सेना आदि) विभाग में काम कर चुकते हैं, उन्हें वृद्धावस्था में, नौकरी से अलग होने पर, कुछ वृत्ति दी जाती है जो उनके वेतन के आधे के लगभग होती है। सेना विभाग के कर्मचारियों के मारे जाने पर उनके परिवारवालों को; अथवा किसी राज्य को जीत लेने पर उस राजकुल के लोगों और उनके वंशजों को भी इसी प्रकार कुछ वृत्ति दी जाती है। इसी प्रकार की वृत्तियाँ पेन्शन कहलाती हैं।

क्रि० प्र०—देना। —पाना। —मिलना। —लेना।

पेन्शनर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसे पेन्शन मिलती हो। पेन्शन पानेवाला व्यक्ति।

पेन्स—संज्ञा पुं० [अं०] पेनी का बहुवचन। विशेष दे० 'पेनी'।

पेन्सिल—संज्ञा स्त्री० [अं०] लिखने का एक प्रसिद्ध साधन जिससे बिना दावात या स्याही के ही लिखा जाता है।

विशेष—यह प्रायः सुरमे, सीसे, रंगीन खड़िया या इसी प्रकार की और किसी सामग्री की बनी हुई पतली लंबी सलाई होती है। जो या तो कलम के आकार की गोल लंबी लकड़ी

के अंदर लगी हुई होती है और या किसी धातु के खाने में अटकाई हुई होती है।

पेन्हाना[1]—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'पहनाना'।

पेन्हाना[2]—क्रि० अ० [स० पयःस्रवन, प्रा० पह्नवन] दुहते समय गाय, भैंस आदि के थन में दूध उतरना जिससे थन फूले या भरे जान पड़ते हैं। उ०—तेइ तृण हरित चरै जब गाई। —भाव बच्छ सिसु पाय पेन्हाई। —तुलसी (शब्द०)।

पेपर—संज्ञा पुं० [अं०] १. कागज। २. दस्तावेज। तमस्सुक, सनद या और कोई लेख जो कागज पर लिखा हो। ३. समाचारपत्र। संवादपत्र। अखबार। ४. वह छपा हुआ पत्र या पर्चा जिसमें परीक्षार्थियों से एक या अधिक प्रश्न किए गए हों। प्रश्नपत्र। जैसे,—इस बार मैट्रिकुलेशन का अंग्रेजी का पेपर बहुत कठिन था। ५. प्रामिसरी नोट। सरकारी कागज। जैसे, गवर्नमेंट पेपर। ६. लेख। निबंध। प्रबंध।

पेपरमिंट—संज्ञा पुं० [अं० पिपरमिंट] दे० 'पिपरमिंट'।

पेपरमिल—संज्ञा पुं० [अं०] कागज तैयार करनेवाली मिल, कारखाना या संस्थान।

पेपरवेट—संज्ञा पुं० [अं०] शीशा, पत्थर या धातु का वह साधन, जिसे कागजों पर उड़ने से रोकने के लिये रखा जाता है।

पेमⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० प्रेम, प्रा० प्रेम] दे० 'प्रेम'। उ०—राम सुपेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलिकलुष गलानी। —तुलसी (शब्द०)।

पेमचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ०—पेमचा डरिया औ चौधारी। साम, सेत, पीयर, हरियारी। —जायसी ग्रं०, पृ० १४५।

पेमा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो ब्रह्मपुत्र, गंगा और इरावदी (बरमा) तथा बंबई के जलाशयों में पाई जाती है। इसकी लंबाई ८ इंच होती है।

पेमेंट—संज्ञा पुं० [अं०] मूल्य देना। चुकाना। बेबाकी भुगतान। जैसे,—(क) तीन तारीख हो गई; अभी तक पेमेंट नहीं हुआ। (ख) बैंक ने पेमेंट बंद कर दिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

पेय[1]—वि० [सं०] १. पीने योग्य। जिसे पी सकें। २. जो पान किया जाय।

पेय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीने की वस्तु। वह चीज जो पीने के काम में आती हो। जैसे, पानी, दूध, शराब, आदि। २. जल। पानी। ३. दूध। दुग्ध।

पेया—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में चावलों की बनी हुई एक प्रकार की लपसी।

विशेष—यह किसी के मत से ग्यारह गुने, किसी के मत से चौदह गुने और किसी के मत से पंद्रह गुने पानी में पकाकर तैयार की जाती है। यह स्वेद और अग्निजनक तथा भूख, प्यास, ग्लानि, दुर्बलता और कुष्ठ रोग की नाशक मानी जाती है। २. मौड़। ३. आदी। अदरक। ४. सोआ नामक साग। ५. सौंफ।

पेयान†—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाण] दे० 'प्रयाण'। उ०—ज्ञानदीपक ग्रंथ संपूरन कीन्हा। तब ही काल पेयाना दीन्हा। सं० दरिया, पृ० ४१।

पेयु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। अनल। २. सूर्य। दिवाकर। ३. सागर। समुद्र (को०)।

पेयूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दूध जो गौ के बच्चा देने के सात दिन बाद तक निकलता है। ऐसा दूध स्वाद में अच्छा नहीं होता और हानिकारक होता है। पेउसी। २. अमृत। ३. ताजा घी।

पेरज—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'पेरोज' (को०)।

पेरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांडव नृत्य का एक प्रकार (को०)।

पेरना[1]—क्रि० स० [सं० पीडन] १. दो भारी तथा कड़ी वस्तुओं के बीच में डालकर किसी तीसरी वस्तु को इस प्रकार दबाना कि उसका रस निकल आवे। जैसे, कोल्हू में तेल पेरना। उ०—(क) ज्यों किसान बेलन में ऊखहि। पेरत लेत निचोरि पियूखहि। —निश्चल (शब्द०)। (ख) भूली भूल कर्म कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारन पेरो।—तुलसी (शब्द०)। २. कष्ट देना। बहुत सताना। उ०—जेहि बालि बली बर सो बर पेरयो।—केशव (शब्द०)। ३. किसी काम में बहुत देर लगाना। आवश्यकता से बहुत अधिक विलंब करना। ४. किसी वस्तु को किसी यंत्र में डालकर घुमाना। †५. बोना। उ०—हुआ बोई च हासिल जो पेरी अभी। —दक्खिनी०, पृ० ९०।

पेरनाⓅ[2]—क्रि० स० [स० प्रेरण] १. प्रेरणा करना। चलाना। उ०—वे किरीट दशकंधर केरे। आवत बालितनय के पेरे।—तुलसी (शब्द०)। २. भेजना। पठाना। उ०—राठोड़ जुड़ती देख राणा, पेरियो भीम अंगज प्रमाणो।—रा० रू०, पृ० ७३।

पेरनाⓅ[3]—क्रि० अ० [हिं० पैरना] दे० 'पैरना'। उ—सूरदास तैसें वे लोचन, कृपा जहाज बिना क्यों पेरैं।—सूर०, १०। १७८५।

पेरली—संज्ञा स्त्री० [?] तांडव नृत्य का एक भेद।

विशेष—इसमें अंगविक्षेप अधिक होता है और अभिनय कम। इसे देशी' भी कहते हैं। इसका पेरणी नाम से भी उल्लेख है।

पेरवा†—संज्ञा पुं० [हिं० पेरना] वह जो कोल्हू आदि में कोई चीज पेरता हो। पेरनेवाला।

पेरवाह†—संज्ञा पुं० [हिं० पेरना] दे० 'पेरवा'।

पेरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पीला] एक प्रकार की मिट्टी जिससे दीवार, घर इत्यादि पोतने का काम लिया जाता है। इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए होता है। पोतनी मिट्टी।

पेरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड] दे० 'पेड़ा'।

पेरा[3]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तंत्रवाद्य जो खरबूजे के आकार का होता था (को०)।

पेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पीली] पीले रंग की रँगी हुई धोती जो विवाह में वर या वधू को पहनाई जाती है। इसे पियरी भी कहते हैं।

पेरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सागर। समुद्र। २. सूर्य। ३. अग्नि। आग। ४. वह जो रक्षा करे। ५. वह जो पूर्ति करे। पूरा करनेवाला। ५. मेरु नामक पर्वत। स्वर्ण पर्वत मेरु (को०)।

पेरोज—संज्ञा पुं० [सं०] नीलमणि। फीरोजा [को०]।

पेरोल—संज्ञा पुं० [अं०] वचन। शब्द। वचन पर विश्वास करके निश्चित अवधि के लिये कारामुक्ति।

पेल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जाना। गमन। २. अंडकोष [को०]।

पेलक—संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोष [को०]।

पेलड़—संज्ञा पुं० [सं० पेल (=अंडकोष)] दे० 'पेल्हड़'।

पेलना¹—क्रि० स० [सं० पीडन] १. दबाकर भीतर घुसाना। जोर से भीतर ठेलना या धँसाना। दबाना। उ०—विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम, पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष को।—केशव (शब्द०)। २. ढकेलना। धक्का देना। उ०—(क) गिरि पहाड़ पर्वत कहँ पेलहिं। वृक्ष उचारि झारि मुख मेलहिं।—जायसी (शब्द०)। (ख) स्वामि काज इद्रासन पेलों।—जायसी (शब्द०)। ३. टाल देना। अवज्ञा करना। उ०—(क) जो न कियो परिनै पन पेलि, पषाण परै पुहुमीपति के पन।—रघुराज (शब्द०)। (ख) मोरेहु भरत न पेलिहहिं, मन सहुँ राम रजाइ। करिय न सोच सनेह बस, कहेउ भूप बिलखाइ।—तुलसी (शब्द०)। (ग) जनक सुता परिहरी अकेली। आयहु तात वचन मम पेली।—तुलसी (शब्द०)। (घ) प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयउँ यहाँ समाज सकेली।—तुलसी (शब्द०)। ४. त्यागना। हटाना। फेंकना। उ०—राज महाल को बालक पेलि कै पालत लालत खूसर को।—तुलसी (शब्द०)। ५. जबरदस्ती करना। बल प्रयोग करना। उ०—कह्यो युवराज बोलि बानर समाज आज खाहु फल सुनि पेलि पैठे मधुबन में।—तुलसी (शब्द०)। ६. प्रविष्ट करना। घुसेड़ना। ७. गुदामैथुन करना। (बाजारू)। ८. दे० 'पेरना'।

पेलना²—क्रि० स० [सं० प्रेरणा] १. आक्रमण करने के लिये सामने छोड़ना। ढीलना। आगे बढ़ाना। उ०—(क) कुंभस्थल कुच दोउ मयमंता। पैलो सौंहँ सँभारहु कंता।—जायसी। (शब्द०) (ख) जौं लहि बार्वाहं ऊसका खेलहु। हस्तिहि केर जूह सब पेलहु।—जायसी (शब्द०)। (ग) (इतनी) बात के सुनते ही गजपाल ने गज पेला, ज्यों वह बलदेव जी पर टूटा, त्यों उन्होंने हाथ घुमाय एक थपेड़ा ऐसा मारा……।—लल्लू (शब्द०)। २. (पु)बिताना। गुजारना। उ०—आतिथ्य विनय विवेक कौतुक समय पेलिअ सब्बहिं।—कीर्ति०, पृ० २८। ३. भेजना। पठाना। उ०—मैं मेले रे मैं मेले। परचंड बसूं दिस पेले।—रघु० रू०, पृ० १५६।

पेलव—वि० [सं०] १. कोमल। मृदु। २. कृश। दुर्बल। क्षीण। ३. विरल [को०]।

पेलवाना—क्रि० स० [हिं० पेलना का सकर्मक रूप] पेलने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को पेलने में प्रवृत्त करना। दे० 'पेलना'।

पेला¹—संज्ञा पुं० [हिं० पेलना] १. तकरार। झगड़ा। उ०—कहा कहत तुममों मैं ग्वारिनि।……लीन्हें फिरति रूप त्रिभुवन को ऐ नौखी बनजारिनि। पेला करति देत नहिं नीके तुम हो बड़ी बँजारिनि। सूरदास ऐसो गथ जाके ताके बुद्धि पसारिनि।—सूर (शब्द०) २. अपराध। कसूर। ३. आक्रमण। धावा। चढ़ाई। उ०—करयो गढ़ा कोटा पर पेला। जहाँ सुनै छत्रसाल बुँदेला।—लाल (शब्द०) ४. पेलने की क्रिया या भाव।

पेला²—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बाघ [को०]।

पेलास—संज्ञा पुं० [अं०] मंगल और बृहस्पति के बीच का एक ग्रह जो सूर्य से २८½ करोड़ मील की दूरी पर है।

विशेष—चार वर्ष आठ मास में यह ग्रह सूर्य की परिक्रमा करता है। आकार में यह ग्रह चंद्रमा से छोटा है। सन् १८०२ ई० में डाक्टर आलवर्ज ने पहले पहल इसका पता लगाया था।

पेली—संज्ञा पुं० [सं० पेलिन्] घोड़ा [को०]।

पेलू—संज्ञा पुं० [हिं० पेलना + ऊ (प्रत्य०)] १. पेलनेवाला। वह जो पेलता हो। २. पति। खाविंद। ३. जार। उपपति। ४. वह जो गुदाभंजन करता हो। (बाजारू)। ५. जबरदस्त। बलवान।

पेले—अव्य० [हिं०] दे० 'पहले'। उ०—साहब इधर? हमने पेले कहा।—भस्मावृत०, पृ० ६५।

पेल्हड़—संज्ञा पुं० [पेल या पेलक] अंडकोष। पोता।

पेवंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'पैवंद'। उ०—पाँच पेवंद की बनी रे गुदड़िया, तामें हीरा लाल लगाया।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ४३।

पेवँ—संज्ञा पुं० [सं० प्रेम] प्रीति। प्रेम। उ०—दायज बसन मणि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी। दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पियारी पेवँ की।—तुलसी (शब्द०)।

पेवक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० पीना] दे० 'पियक्कड़'।

पेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० पीत] १. पीले रंग की बुकनी। २. पीली रज। रामरज।

पेवर—संज्ञा पुं० [सं० पीत] पीला रंग।

पेवस—संज्ञा पुं० [सं० पेयूष] १. हाल की ब्याई गाय या भैंस का दूध। २. दे० 'पेउसी'।

पेवसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पेवस + ई] दे० 'पेवस'।

पेश¹—क्रि० वि० [फ़ा०] सामने। आगे। संमुख।

मुहा०—पेश आना = (१) बर्ताव करना। व्यवहार करना। (२) घटित होना। सामने आना। होना। पेश करना =

सामने रखना। दिखलाना। संमुख उपस्थित कर देना। (२) भेंट करना। नजर करना। पेश जाना या चलना = वश चलना। अधिकार या जोर चलना। (किसी से) पेश पाना = जीतना। बाजी, होड़, मुकाबिले आदि में बढ़ना। कृतकार्य होना।

पेश[२]—संज्ञा पुं० [सं० पेशस्] १. वैदिक काल का लहँगे की तरह का एक प्रकार का पहनावा जो नाचने के समय पहना जाता था और जिसमें सुनहला काम बना होता था। २. आकार। रूप। स्वरूप (को०)। ३. सोना (को०)। ४. कांति। चमक। प्रभा। (को०)। ५. आभूषण। सजावट (को०)।

पेशकब्ज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पेशकब्ज़] कटारी।

पेशकश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. नजर। भेंट। उपहार। २. सौगात। तोहफा। उ०—कौन भयो ऐसो नृपति को हुँहै यहि भाय। जाके डर गज पेशकश दिग्गज देत पठाय।—गुमान (शब्द०)।

पेशकार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] २. किसी दफ्तर का वह कार्यकर्ता जो उस दफ्तर के कागज पत्र अफसर के सामने पेश करके उनपर उसकी आज्ञा लेता है। हाकिम के सामने कागज पत्र पेश करके उसपर हाकिम की आज्ञा लिखनेवाला कर्मचारी। पेश करने या उपस्थित करनेवाला व्यक्ति।

पेशकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पेशकार का पद या स्थान। २. पेशकार का काम।

पेशखेमा—संज्ञा पुं० [फा० पेश + अ० खैमह्] १. सेना की खेमा, तंबू आदि वह आवश्यक सामग्री जो उसके किसी स्थान पर पहुँचने से पहले उसके सुभीते के लिये भेजी जाती है। फौज का वह सामान जो पहले से ही आगे भेज दिया जाय। २. फौज का वह अगला हिस्सा जो आगे आगे चलता है। हरावल। ३. किसी बात या घटना का पूर्व लक्षण।

पेशगाह—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ आँगन। अजिर। २. दरबार। राजसभा [को०]।

पेशगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह धन या रकम जो किसी को किसी काम के करने के लिये उस काम के करने से पहले ही दे दी जाय। पुरस्कार या मजदूरी आदि का वह अंश जो काम होने से पहले ही दिया जाय। अगौढ़ी। अगाऊ। अग्रिम धन।

पेशगोई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पेशीनगोई। भविष्यवाणी। [को०]।

पेशतर—क्रि० वि० [फा०] पहले। पूर्व।

पेशताक—संज्ञा स्त्री० [फा० पेशताक] एक प्रकार की मेहराब जो अच्छी इमारतों में दरवाजे के ऊपर और आगे की ओर निकली हुई बनाई जाती है।

पेशदस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'पेशकार'।

पेशदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह अनुचित कार्य जो किसी पक्ष की ओर से पहले हो। छेड़खानी। जबरदस्ती। ज्यादती।

पेशदामन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सेवक। नौकर [को०]।

पेशबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चारजामे में लगा हुआ वह दोहरा बंधन जो घोड़े के गर्दन पर से लाकर दूसरी ओर बाँध दिया जाता है।

विशेष—इस बंधन के कारण चारजामा घोड़े की दुम की ओर नहीं खिसक सकता।

पेशबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. पहले से किया हुआ प्रबंध या बचाव की युक्ति। पूर्वचिंतित युक्ति। २. षड्यंत्र। छल कपट। धोखा।

पेशराज—संज्ञा पुं० [फ़ा० पेश + हिं० राज (= मकान बनानेवाला)] वह मजदूर जो राज मेमार के लिये पत्थर ढोकर लाता हो। पत्थर ढोनेवाला मजदूर।

विशेष—कहीं कहीं पेशराज लोग ईंटों की चुनाई आदि का भी काम करते हैं।

पेशरौ—वि० [फ़ा०] १. अग्रगामी। २. पथप्रदर्शक। ३. सेनाग्र भाग। हरावल।

पेशल[१]—वि० [सं०] १. मनोमुग्धकारी। मनोहर। सुंदर। २. चतुर। प्रवीण। ३. धूर्त। चालाक। ४. कोमल। मृदु। ५. क्षीण। कृश। तनु। जैसे, कटि (को०)।

पेशल[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २. सौंदर्य। लावण्य। सुंदरता (को०)।

पेशलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुंदरता। सौंदर्य। खूबसूरती। २. सुकुमारता। नजाकत। ३. धूर्तता। चालाकी।

पेशवा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. नेता। सरदार। अग्रगण्य। उ०—पेशवा भी किए इमाम तुम्हें, ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें।—कबीर सा०, पृ० ९८०। २. महाराष्ट्र राज्य के प्रधान मंत्रियों की उपाधि।

विशेष—मुसलमानों के राज्यकाल मे दक्षिण की मुसलमानी रियासतों के प्रधान मंत्री 'पेशवा' कहलाते थे। पर उस समय तक यह शब्द अधिक प्रसिद्ध नही हुआ था। इसके उपरांत शिवाजी के प्रधान मंत्री भी पेशवा ही कहे जाने लगे। यद्यपि आगे चलकर शिवाजी ने यह शब्द उठा दिया था, तथापि कुछ दिनों के बाद फिर इसका प्रचार हो गया और धीरे धीरे यह शब्द 'प्रधान मंत्री' का पर्याय सा हो गया। आगे चलकर जब शिवाजी के राजवंश का ह्रास होने लगा, तब ये पेशवा लोग ही महाराष्ट्र साम्राज्य के अधीश्वर हुए। कई एक पेशवाओं के समय में महाराष्ट्र साम्राज्य की शक्ति बहुत बढ़ गई थी।

पेशवाई[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी माननीय पुरुष के आने पर कुछ दूर आगे चलकर स्वागत करना। अगवानी।

पेशवाई[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पेशवा + ई (प्रत्य०)] १. पेशवाओं की शासनकला। २. पेशवा का पद या कार्य।

पेशवाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पेशवाज़] वेश्याओं या नर्तकियों का वह घाघरा जो वे नाचते समय पहनती हैं। इसका घेरा कुछ अधिक होता है और इसमें प्रायः जरदोजी का काम बना

रहता है। उ०—कहीं है सबै सुंदरी बार नारी, कहीं पेश-वाजें सजे साज भारी। —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७०२।

पेशा—संज्ञा पुं० [फा० पेशह्] वह कार्य जो मनुष्य नियमित रूप से अपनी जीविका उपार्जित करने के लिये करता हो। कार्य। उद्यम। व्यवसाय। जैसे, वकालत का पेशा, हलवाई का पेशा, मजदूरी का पेशा।

मुहा०—पेशा करना या कमाना = कसब कमाना। वेश्यावृत्ति करना। रंडी बनकर जीविका उपार्जित करना। (बाजारू)।

पेशानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. ललाट। भाल। कपाल। माथा। उ०—नहीं है जाहिदों को मैं सेंती काम। लिखा है उनकी पेशानी में सिर का।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० १९। २. किस्मत। प्रारब्ध। भाग्य। ३. किसी पदार्थ का ऊपरी और आगे का भाग।

मुहा०—पेशानी का खत = ललाट की लिखावट। भाग्यरेखा। पेशानी पर बल आना या बल पकड़ना = क्रोध की स्थिति में ललाट पर के चमड़े का खिंचना। त्योरी चढ़ना।

पेशाब—संज्ञा पुं० [फ़ा०, तुल० सं० प्रस्राव] १. मूत। मूत्र।

यौ०—पेशाबखाना।

मुहा०—पेशाब करना = (१) मूतना। (२) अत्यंत तुच्छ समझना। पेशाब की राह बहा देना = रंडीबाजी में खर्च कर देना। पेशाब निकल पड़ना या खता होना = अत्यंत भयभीत होना। इतना डरना कि पेशाब निकल जाय। पेशाब बंद होना = (१) मूत्र का उतरना रुक जाना। (२) अत्यंत भयभीत हो जाना। (किसी के) पेशाब का चिराग जलना या पेशाब से चिराग जलना—अत्यंत प्रतापी होना। अत्यंत प्रभावशाली या विभवशाली होना।

२. वीर्य। धातु। ३. संतान। औलाद।

पेशाबखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० पेशाबखानह्] वह स्थान जहाँ लोग मूत्र त्याग करते हों। पेशाब करने की जगह।

पेशावर[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] किसी प्रकार का पेशा करनेवाला। व्यवसायी।

पेशावर[2]—संज्ञा पुं० [फा० पेश+आवर (= आगे लानेवाला)। तुल० सं० पुरुषपुर] भारत की पश्चिमी सीमा का एक प्रसिद्ध नगर।

पेशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पेशी'[2] (को०)।

पेशिका—संज्ञा पुं० [सं०] अंडा।

पेशी[1]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. हाकिम के सामने किसी मुकदमे के के पेश होने की क्रिया। मुकदमे की सुनवाई।

यौ०—पेशी का मुहर्रिर = वह मुहर्रिर जो मुकदमे के कागज पत्र पढ़कर हाकिम को सुनावे। पेशकार। मिसिलख्वाँ।

२. सामने होने की क्रिया या भाव।

पेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वज्र। २. तलवार की म्यान। ३. अंडा। ४. जटामासी। ५. पकी हुई कली। ६. प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल। ७. एक प्राचीन नदी का नाम। ८. एक राक्षसी का नाम। एक पिशाची का नाम। ९. चमड़े की वह थैली जिसमें गर्भ रहता है। १०. शरीर के भीतर मांस की गुलथी या गाँठ।

विशेष—आधुनिक शरीर विज्ञान के अनुसार शरीर के भीतर मांसतंतुओं की बहुत सी छोटी बड़ी गुल्थियाँ या लच्छे से होते हैं जो कुछ सूत्रों के द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं। इन सूत्रों को हटाने पर ये मांस के टुकड़े अलग अलग किए जा सकते हैं। इस प्रकार जो टुकड़े बिना चीरे फाड़े सहज में अलग किए जा सकें उन्हीं को पेशी या मांसपेशी कहते हैं। पेशियों में विशेषता यह होती है कि वे सुकड़ती और फैलती हैं। अनेक पेशियों के संयोग से शरीर में के पुट्ठे आदि बनते हैं। ये पेशियाँ अनेक आकार और प्रकार की होती हैं। कोई छोटी, कोई बड़ी, कोई पतली, कोई मोटी, कोई लंबी और कोई चौड़ी होती है। मांसपेशियों के बीच बीच में झिल्लियाँ रहती हैं। ये पेशियाँ सहज में अपने स्थान से हटाई नहीं जा सकतीं क्योंकि ये कहीं न कहीं अपने नीचे रहनेवाली हड्डी से जुड़ी रहती हैं। इन्हीं पेशियों की सहायता से शरीर के अंग हिलते डोलते हैं। अंगों का संचालन, प्रसारण, संकोचन, स्थितिस्थापन आदि इन्हीं पेशियों की सहायता से होता है। जैसे, कोई पेशी मुँह खोलने के समय होंठ को ऊपर उठाती है, कोई हाथ उठाने में सहायक होती है, कोई उसे मर्यादा से आगे बढ़ने से रोकती है, कोई गरदन को अधिक झुकने नहीं देती, कोई पेट के भीतर के किसी यंत्र को दबाए रखती है, और कोई मल अथवा मूत्र के त्यागने अथवा रोकने में सहायता देती है। कभी कभी शरीर के एक ही काम के लिये अनेक पेशियों की भी सहायता होती है। कुछ पेशियाँ ऐसी होती हैं जो इच्छा करते ही हिलाई डुलाई जा सकती हैं और कुछ ऐसी होती हैं जो इच्छा करने पर भी अपने स्थान से नहीं हट सकतीं। शरीर की सभी पेशियों का संबंध मस्तिष्क अथवा उसके निचले भाग के गतिवाहक सूत्रों से होता है। आधुनिक शरीर विज्ञान के ग्रंथों में यह बतलाया गया है कि शरीर के किस अंग में कितनी पेशियाँ हैं। कुल पेशियों कि संख्या भी निश्चित है। हमारे यहाँ वैद्यक में इन पेशियों को प्रत्यंग में माना है और उनकी संख्या ५०० बतलाई गई है। यद्यपि यह संख्या आधुनिक शरीर विज्ञान में बतलाई हुई संख्या के लगभग ही है, तथापि दोनों के ब्योरे में बहुत अधिक अंतर है।

११. पादुका। पादत्राण (को०)। १२. आच्छादन। ढक्कन (को०)। १३. अच्छा पका चावल (को०)। १४. फलों का आवरण या छिलका (को०)।

पेशीकोश, पेशीकोष—संज्ञा पुं० [सं०] अंडा (को०)।

पेशीनगोई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] भविष्यकथन। भविष्यवाणी।

पेश्तर—क्रि० वि० [फ़ा०] पहले। पूर्व। पेशतर।

पेष—संज्ञा पुं० [सं०] पीसने या चूर्ण करने की क्रिया। पीसना (को०)।

पेषक—वि० [सं०] पेषण करनेवाला। पीसनेवाला (को०)।

पेषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीसना । २. तिबारा मूहड़ । ३. वह वस्तु जिससे कोई चीज पीसी या चूर्ण की जाय । खरल (को०) । ४. खलिहान । खलधान्य (को०) ।

पेषणि, पेषणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिल, खरल, चक्की आदि जिसपर कोई चीज पीसी जाय ।

पेषना¹—क्रि० स० [सं० प्रेक्षण, प्रेक्षण] दे० 'पेखना' । उ०—पखावली के पेषणे, सब जगत भुलाना । —कबीर ग्रं०, पृ० १४१ ।

पेषना²—संज्ञा पुं० दे० 'पेखना' ।

पेषाक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पेषणी' (को०) ।

पेषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वज्र ।

पेषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिशाचिनी ।

पेषीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] पीसना । चूर्ण करना ।

पेस¹—वि० [फ़ा०] दे० 'पेश' । उ०—(क) हेतुमान सहित बखानै 'हेतु' ताको नाम, चारो फल आठो सिद्धि दीबे ही को पेस है । —दूलह (शब्द०) । (ख) मेवात धनी आए महेम, मोहिल्ल दुनापुर दिए पेस ।—पृ० रा० १।४२२ ।

पेसकबज(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पेशक़ब्ज़] कटारी । उ०—तहँ चली चोर छुरी बगुरदा पेसकबजे अरिन सों ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११ ।

पेसकस—संज्ञा पुं० [फ़ा० पेशकश] दे० 'पेशकश' । उ०—पेसकसै भेजत इरान फिरगान पति ।—भूषण ग्रं०, पृ० ५० ।

पेसबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० पेशबंद] दे० 'पेशबंद' । उ०—साजत पेसबंद मद पूजी । हीरन जटित हैकलैं दूजी ।—हम्मीर०, पृ० १ ।

पेसल—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पेशल' ।

पेसवाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पेसवा + ई (प्रत्य०)] दे० 'पेशवाई' । उ०—साहजादे देखे हिम्मत निवाहु । दुरग का भाई पेसवाई दुरंग साहु । —रा० रू०, पृ० ११५ ।

पेस्टल—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की रंग की बत्ती, जिससे चित्र बनाए जाते हैं ।

यौ०—पेस्टल कलर=पेस्टल रंग । पेस्टल ड्राइंग = वह चित्र जो पेस्टल रंग से बना हो (को०) ।

पेस्टल रंग—संज्ञा पुं० [अं० पेस्टल+हिं० रंग] पेस्टल की बत्ती । पेस्टल ।

पेस्वर—वि० [सं०] १. चलनेवाला । गतिशील । २. विनाशक । ध्वंसक (को०) ।

पेहँटा—संज्ञा स्त्री० [देश०] कचरी नाम की लता का फल जो कुंदरू के आकार का होता है और जिसकी तरकारी तथा कचरी बनती है । विशेष—दे० 'कचरी—१' ।

पेहँटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पेहँटा' ।

पेहँटुल—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पेहँटा' ।

पेहला(पु)†—वि० [हिं० पहला] दे० 'पहला' । उ०—कुँवर रमई राजा भोज की । पेहलई श्रावण खेलाबा जाई । —बी० रासो, पृ० १०८ ।

पैंग—वि० [सं० पैङ्ग] १. मूषक संबंधी । २. पिंग वर्ण का (को०) ।

पैंगल—संज्ञा पुं० [सं० पैङ्गल] पिंगल का पुत्र या अंतेवासी । २. पिंगल प्रणीत ग्रंथ (को०)

पैंगल्य—संज्ञा पुं० [सं० पैङ्गल्य] पिंग वर्ण । पिंगल रंग (को०) ।

पैंगि—संज्ञा पुं० [सं० पैङ्गि] निरुक्त के निर्माता महर्षि यास्क (को०) ।

पैंजूष—संज्ञा पुं० [सं० पैञ्जूष] श्रवणेंद्रिय । कान (को०) ।

पैंट—संज्ञा पुं० [अं०] पायजामे की तरह एक पोशाक । पतलून ।

पैंडपातिक—वि० [सं० पैण्डपातिक] पिंड अर्थात् भिक्षादि से जीवनयापन करनेवाला (को०) ।

पैंडिक्य—संज्ञा पुं० [सं० पैण्डिक्य] भिक्षा वृत्ति । भैक्ष्य जीविका ।

पैंडिन्य—संज्ञा पुं० [सं० पैण्डिन्य] भिक्षावृत्ति । भैक्ष्य जीविका भिक्षा द्वारा प्राप्त वस्तु (को०) ।

पैंकड़ा¹—संज्ञा पुं० [हिं० पायँ+कड़ा] १. पैर का कड़ा । २. बेड़ी ।

पैंकड़ा²—संज्ञा पुं० [?] ऊँट की नकेल ।

पैंग¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पेंग' । उ०—एक बेर निज ओर पैंग की होत ऊँचाई । सम्हारि न सकी सयानि सरकि प्रीतम उर आई । —रत्नाकर, भा०१, पृ० १३ ।

पैंग†²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पग' । उ०—विश्व हमारा दिन दिन घिरकर सँकरा होता आता है । प्राणों का आहत पंछी दो पैग नहीं उड़ पाता है ।—चिता, पृ० ५४ ।

पैंच¹—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रत्यञ्चा, प्रतञ्ची] धनुष की डोरी ।

पैंच²—संज्ञा स्त्री० [सं० पिच्छ] मोर की पूँछ ।

पैंचा†³—संज्ञा पुं० [देश०] हाथ फेर । हेर फेर । लेन देन । पलटा ।

यौ०—पैंच उधार=हेर फेर । पलटा ।

पैंचना—क्रि० स० [देश०] १. अनाज फटकना । पछोरना । २. पलटना । फेरना ।

पैंचा—संज्ञा पुं० [देश०] हथ उधार । हेर फेर । पलटा ।

यौ०—पैंचा पैंचा=हेर फेर । हेरा फेरी । उलट पुलट ।

पैंजना—संज्ञा पुं० [हिं० पायँ+अनु० झन, झन] [स्त्री० अल्पा० पैंजनी] पैर का एक आभूषण जो कड़े के आकार का पर उससे मोटा और खोखला होता है । इसके भीतर कंकड़ियाँ पड़ी रहती हैं जिससे चलने मे यह बजता है ।

पैंजनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पैंजनी—१' । उ०—कटि तट किंकिनि, पैंजनि पाइन । चलत घुटुरवनि तिनके चाइनि ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४५ ।

पैंजनियाँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पैंजनी' ।

पैंजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पायँ+अनु० झन, झन] १. स्त्रियों और बच्चों का एक गहना जो कड़े की तरह पैर में पहना जाता है ।

विशेष—यह खोखला होता है और इसके भीतर कंकड़ियाँ पड़ी

रहती है जिसे चलने में वह झन झन बजता है। घोड़ों के पैर में भी उन्हें कभी कभी पहनाते हैं।

२. छगड़ या बैलगाड़ी के पहिए के आगे की वह टेढ़ी लकड़ी जिसके छेद में से धुरा निकला रहता।

पैंठ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पण्यस्थान, प्रा॰ पण्पट्ठा; अप॰ पईट्ठ अथवा सं॰ पण्य, प्रा॰ पवण्ण (बणिज)+अप॰ ठाय<प्रा॰ ठावा, <सं॰ स्थान; अथवा देशी पइटठावा] १. हाट। बाजार। उ॰—लेना हो सो लेइ ले उठी जात है पैंठ।—कबीर (शब्द॰)। २ हट्टी। दुकान। उ॰—ऊधो ब्रज में पैंठ करी।—सूर (शब्द॰) ३. वह दिन जिस दिन हाट लगती हो। बाजार का दिन। ४. दूसरी हुंडी जो महाजन पहली हुंडी के खो जाने पर लिख देता है।

पैंठौर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पैंठ+ठौर] दुकान। हाट। उ॰—ऐसी वस्तु अनूपम मधुकर मन जिनि आनहु और। ब्रजवनिता के नाहिं काम को है तुम्हरे पैंठौर।—सूर (शब्द॰)।

पैंड़—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पायँ+ड (प्रत्य॰) या सं॰ पादद्दण्ड, प्रा॰ पायडण्ड] १. चलने में एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर पैर रखना। डग।

क्रि॰ प्र॰—भरना।

मुहा॰—पैंड़ भरना = (१) किसी देवता या तीर्थ की ओर पैर नापते चलना। (२) इस प्रकार शपथ खाना। जैसे,—तू सच बोलता है तो गंगा की ओर चार पैंड़ भर आ।

२. एक स्थान से उठाकर जितनी दूरी पर पैर रखा जाय उतनी दूरी। डग। पग। कदम। उ॰—तीन पैंड़ धरती हौं पाऊँ परन कुटी इक छाऊँ।—सूर (शब्द॰)। ३. पथ। मार्ग। रास्ता। पगडंडी। उ॰—ब्रजमोहन दैहै दरस पियासियाँ पैंडरा उडीकौं अँखियाँ।—घनानंद, पृ॰ ४८४।

पैंड़ा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पैंड़] १. रास्ता। पथ। मार्ग।

मुहा॰—पैंड़े परना = पीछे पड़ना। तंग करने के लिये साथ लगे फिरना। बार बार तंग करना। उ॰—मानत नाहिं हटकि हारी हम पैंड़े परे कन्हाई।—सूर (शब्द॰)।

२. घुड़सार। अस्तबल। ३. प्रणाली। रीति। उ॰—गोकुल गाँव को पैंड़ो न्यारो (शब्द॰)।

पैंड़ायता—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ पैंड़ा] दे॰ 'पैड़ाइत'। उ॰—पाँच पैंडायता प्रगट पैंडा दिया तास के बीच कोई संत जीया।—राम॰ धर्म॰, पृ॰ २८१।

पैंड़िया—संज्ञा पुं॰ [देश॰] कोल्हू में गन्ने भरनेवाला।

पैंड़ो—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] प्रणाली। रीति। दे॰ 'पैंड़ा'। उ॰—सुंदर कोउ न जानि सकै यह गोकुल गाँव कै पैंड़ो ही न्यारो।—सुंदर॰ ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ६४३।

पैंत⑤†[१]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पणकृत, प्रा॰ पणाइत] १. दाँव। बाजी। उ॰—(क) माँगे पैंत पावत पचारि पातकी प्रचंड काल की करालता भले को होतु पोच है।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) चोर पैठ अस सेंध सँवारी। जुआ पैंत जस लाव जुआरी।—जायसी (शब्द॰)। २. जुआ खेलने का पाँसा। उ॰—प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधि बस सुढर ढरे हैं।—तुलसी (शब्द॰)।

पैंत[२]—संज्ञा पुं॰ [?] सात की संख्या (दलाल)।

पैंतरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'पैतरा'।

पैंतरी⑤—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ पग+तरी] पनही। पैतरी। उ॰—वा के पग की पैंतरी, मेरे तन को चाम।—कबीर सा॰, पृ॰ ५।

पैंतालिस[१]—वि॰ [सं॰ पञ्चचत्वारिंशत्, प्रा॰ पंचचत्तालीसति, अप॰ पंचतालीस] जो गिनती में चालीस से पाँच अधिक हो। चालीस और पाँच।

पैंतालिस[२]—संज्ञा पुं॰ चालीस से पाँच अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४५।

पैंतालीस[१]—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'पैंतालिस'।

पैंती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ पवित्री, प्रा॰ पवित्ती, पइत्ती] १. कुश को ऐंठकर बनाया हुआ छल्ला जिसे श्राद्धादि कर्म करते समय उँगली मे पहनते हैं। पवित्री। २. ताँबे या बिलोह की अँगूठी जो पवित्रता के लिये अनामिका मे पहनी जाती है।

पैंतीस[१]—वि॰ [सं॰ पञ्चत्रिंशत्, प्रा॰ पञ्चत्तिसति, अप॰ पंचतीस] जो गिनती में तीस से पाँच अधिक हो। तीस और पाँच।

पैंतीस[२]—संज्ञा पुं॰ तीस से पाँच अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३५।

पैंधना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ पहनना] धारण करना। पहनना। उ॰—नख सिख ले सब भूखन बनाई। बसन झलाझलि पैंधे आई।—सं॰ दरिया, पृ॰ ३।

पैंफलेट—संज्ञा पुं॰ [अं॰] कुछ पन्नों की छोटी सी पुस्तक जिसमें किसी सामयिक विषय पर विचार किया गया हो। पुस्तिका। पर्चा।

पैंयाँ⑤‡—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ पायँ] पैर। पाँव।

पैंसठ[१]—वि॰ [सं॰ पञ्चषष्टि, प्रा॰ पंचसट्ठि] जो गिनती में साठ से पाँच अधिक हो। साठ और पाँच।

पैंसठ[२]—संज्ञा पुं॰ साठ से पाँच अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६५।

पै⑤†[१]—अव्य [सं॰ परम्] १. पर। परंतु। लेकिन। उ॰—बरजत बार बार हैं तुमको पै तुम नेक न मानी।—सूर (शब्द॰)। २. निश्चय। अवश्य। जरूर। उ॰—सुख पाइहैं कान सुनें बतियाँ कल आपुस में कछु पै कहिहैं।—तुलसी (शब्द॰)। ३. पीछे। अनंतर। बाद। उ॰—(क) ऊधो! स्याम कहा पावैंगे प्रान गए पै आए।—सूर (शब्द॰)। (ख) कमल भानु देखे पै हँसा।—जायसी (शब्द॰)।

यौ॰—जो पै = यदि। अगर। उ॰—जो पै रहनि राम सों नाहीं। तौ नर खर कूकर सूकर से जाय जियत जग माहीं।—तुलसी (शब्द॰)। तौ पै = तो फिर। तब अवश्य ही।

उ०—होते जो न, संभु रानी ! पद बरदानी तेरे तो पै कौन सुनतो कहानी दीनजन की ।—चरणचंद्रिका (शब्द०) ।

पै[२]—[हिं० पास, पहँचा सं० प्रति, प्रा० पडि, पइ] १. पास। समीप। निकट। उ० (क) परतिज्ञा राखी मनमोहन फिर ता पै पठयो।—सूर (शब्द०)। (ख) ता पै कही बहुत बिधि सों हम नेकु न दीनों कान।—सूर (शब्द०)। २. प्रति। ओर। तरफ। उ०—सरसीरुह लोचन मोचत नीर चितै रघुनायक सीय पै है।—तुलसी (शब्द०)।

पै[३]—प्रत्य० [सं० उपरि, हिं० ऊपर] १. अधिकरण सूचक एक विभक्ति। पर। ऊपर। उ०—(क) चढ़े अश्व पै वीर धाए सबै (शब्द०)। (ख) कोपि चढ़े दशकंठ पै राम निशाचर सेन हिए हहरी।—शंकर (शब्द०)। (ग) बिहारी पै वारोंगी मालती भाँवरी।—हितहरिवंश (शब्द०)। २. कारण सूचक विभक्ति। से। द्वारा। उ० दीनदयाल कृपालु कृपानिधि का पै कह्यो परै।—सूर (शब्द०)।

पै[४]—संज्ञा स्त्री० [सं० आपत्ति(= दोष, भूल)] दोष। ऐब। नुक्स।
क्रि० प्र०—धरना।—निकालना।

पै[५]—संज्ञा पुं० [सं० पय] दे० 'पय'। उ०—तन को तरसाइबो कौने बदी मन तो मिलिगो पै मिले जल जैसो।—ठाकुर०, पृ० २१।

पै[६]—संज्ञा पुं० [सं० पद, पाद, प्रा० पय, पाय या फ़ा०] पाँव। पैर। उ०—सा अंग बाल उतकंठ करि पै लग्गी परदच्छि फिरि।—पृ० रा, २१।३५५।

पै[७]—संज्ञा पुं० [देश०] माड़ी देने की क्रिया। कलफ चढ़ाना।
क्रि० प्र०—करना।

पैकंबर†—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैग़ंबर] दे० 'पैगंबर'। उ०—पीर पैकंबर सबै सिधाए, मुहम्मद सिरषे रहन न पाए।—सुंदर ग्रं०, भा० २ पृ० ८४७।

पैकड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पैकड़'। उ०—मेरी पग का पैकड़ा, मेरी गल की फाँसी।—कबीर सा०, पृ० ७७।

पैकर[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैकार (= इकट्ठा करनेवाला)] कपास से रुई इकट्ठी करनेवाला।

पैकर[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैकर] १. देह। शरीर। जिस्म। २. आकृति। शक्ल। उ०—उसी मसीह की पैकर की आमद, आमद है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८६।

पैकरमा(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० परिक्रमा] दे० 'परिक्रमा'। उ०—दै पैकरमा सीस नवाऊँ सुनि सुनि बचन अघाऊँ जी।—चरण० बानी, पृ० ६६।

पैकरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँय+कड़ा] पैरी। पाँव में पहनने का एक गहना।

पैकहिन†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दाई। बच्चा उत्पन्न करनेवाली स्त्री। उ०—नवाँ महीना जब लागे, सासु सोवै अँगना हो, ललना, पीरा कब उठ जाय, पैकहिन बुलवायव हो।—शुक्ल० अभि० ग्रं०, पृ० १५६।

पैकाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] तीर का नोक। बाण की अनी। उ०—तीरे मिजगाँ बरसते हैं मुकर्रर। आवे पैकाँ का इस तरफ है हाल।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २०।

पैका(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पैकार ?] पैसा। दमड़ी। उ०—गाँठि मैं न पैका कोऊ भयो रहै साहूकार, बातनि ही मुहर रुपैया गनि गाहिए।—सुंदर ग्रं०, भा०२, पृ० ४६४।

पैकान—संज्ञा पुं० [फा०] १. बाण की नोक या अनी। २. बरछी की नोक (को०)।

पैकार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. थोड़ी पूँजी का रोजगारी। छोटा व्यापारी। फेरीवाल। फुटकर बेचनेवाला। २. युद्ध। लड़ाई। उ०—हुआ कैल आमादा पैकार को। न माना न जाना जहाँदार को।—कबीर मं०, पृ० ६८।

पैकारी—संज्ञा पुं० [फा० पैकार] दे० 'पैकार'। उ०—पूँजी नामु निरंजनु राता। सभु पैकारी सचे माता।—प्राण०, पृ० १७५।

पैकी—संज्ञा पुं० [सं० पायिक (= हरकारा, फेरी लगानेवाला]) मेले तमाशे आदि में घूम घूमकर लोगों को हुक्का पिलानेवाला।

पैकेट—संज्ञा पुं० [अं०] पुलिंदा। मुट्ठा। छोटी गठरी।
क्रि० प्र०—बाँधना।—भेजना।
मुहा०—पैकेट लगाना = डाकघर में बाहर भेजने के लिये कोई पुलिंदा देना।

पैक्ट—संज्ञा पुं० [अं०] दो पक्षों में किसी विषय पर होनेवाला कौल करार। प्रण। शर्त। जैसे, बंगाल का हिंदू मुसलिम पैक्ट।

पैखरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पँखरी] दे० 'पंखुड़ी'। उ०—अवधू सहस दल अब देख। सेत रंग जहँ पैखरी छबि अब ओर बिसेख।—चरण० बानी, पृ० १२१।

पैखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० पाखानह्] दे० 'पाखाना'।

पैगंबर—संज्ञा पुं० [फ़ा० पयगामबर, पैग़ंबर] मनुष्यों के पास ईश्वर का संदेसा लेकर आनेवाला। धर्मप्रवर्तक। जैसे, मूसा, ईसा, मुहम्मद।

पैगंबरी—संज्ञा स्त्री० [फा० पैग़ंबरी] १. पैगंबर होने का भाव। २. पैगंबर का कार्य या पद। ३. एक प्रकार का गेहूँ।

पैगंबरी—वि० पैगंबर संबंधी।

पैग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पदक, प्रा० पअक, पग] डग। कदम। फाल। उ०—पैग पैग पर कुआँ बावरी। साजी बैठक और पाँवरी।—जायसी ग्रं०, पृ० ११।

पैगाम—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैग़ाम] बात जो कहला भेजें। संदेसा। संदेश। उ०—कासिद की जबाँ से उसके आगे। पैगाम व सलाम कुछ न निकला।—कविता कौ०, भा०४, पृ ४०। २. विवाह संबंध बात जो कही या कहलाई जाय।
मुहा०—पैगाम डालना = संबंध करने का संदेसा भेजना। संबंध करने की बातचीत करना।

पैगामबर—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैग़ामबर] संदेशवाहक । दूत [को०] ।

पैगामी—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैग़ामी] वह जो दूत का काम करे [को०] ।

पैगोडा—संज्ञा पुं० [बरमी] बौद्ध मंदिर ।

पैज पु[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिज्ञा > प्रतिज्ञा, प्रा० पतिज्ञा, अप० पइज्जाँ] १. प्रतिज्ञा । प्रण । टेक । हठ । उ०—(क) पैज करी हनुमान निशाचर मारि सीय सुधि लाऊँ । —सूर (शब्द०) । (ख) पैज करि कही हरि तोहि उबारौं । —सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—बाँधना ।

२. प्रतिद्वंद्विता । होड़ । किसी के विरोध में किया हुआ हठ । रीस । लागडाट । जिद । जैसे,—कुछ नहीं वह मेरी पैज से वहाँ जा रहा है ।

मुहा०—पैज पड़ जाना = प्रतिद्वंद्विता हो जाना । चलाचली हो जाना । लागडाट हो जाना ।

पैज[2]—संज्ञा पुं० [सं० पद्य, प्रा० पज्ज] पैतरा ।

क्रि० प्र०—करना ।

पैजनिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पैंजनी' ।

पैजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पैंजनी' ।

पैजा—संज्ञा पुं० [सं० पाद हिं० पाय + सं० श्रट, हिं० जड़] लोहे का कड़ा जो किवाड़ के छेद में इसलिये पहनाया रहता है जिसमें किवाड़ उतर न सके । पायना ।

पैजामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैजामह्] दे० 'पायजामा' ।

पैजार—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैज़ार] जूता । पनही । जोड़ा । उ०—काल के सिर पैजार मारि के पार उतरना ।—पलटू०, पृ० ८४ ।

यौ०—जूती पैजार = जूते से मारपीट । जूता चलाना । लड़ाई झगड़ा ।

पैझना† -क्रि० अ० [सं० प्रविष्य, प्रवेश] प्रवेश । करना । पैठना । उ०—रहै इकउ शब्दु निरवाणु । दरगहि पैझै पति परवाणु ।—प्राण०, पृ० १०१ ।

पैटन—संज्ञा पुं० [अं०] ढाँचा । स्वरूप । उ०—यह फूल कभी अप्रीतिकर या तुम्हारे पैटर्न से बेमेल नहीं होगा यही मानती हूँ ।—नदी०, पृ० ३५७ ।

पैट्रोमैक्स—संज्ञा पुं० [अं०] छोटी गैस, जिसका आकार लालटेन की तरह होता है । लालटेन गैस । उ०—बड़े कमरे में पैट्रोमैक्स जल रहा था ।—वो दुनियाँ, पृ० ६७ ।

पैठ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रविष्ट, प्रा० पइट्ठ] १. घुसने का भाव । प्रवेश । दखल ।

यौ०—घुस पैठ ।

२. गति । पहुँच । आना जाना । जैसे,—इस दरबार में उनकी पैठ नहीं है ।

पैठ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैंठ] दे० 'पैंठ' ।

पैठना—क्रि० अ० [हिं० पैठ+ना (प्रत्य०)] घुसना । प्रविष्ट होना । प्रवेश करना । किसी वस्तु के भीतर या बीच में जाना । जैसे, घर में पैठना, पानी में पैठना । उ०—चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

पैठाना—क्रि० स० [हिं० पैठना] प्रवेश कराना । घुसाना । भीतर ले जाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

पैठार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० पैठ + आर (प्रत्य०)] १. पैठ । प्रवेश उ०—असगुन होहिं नगर पैठारा रटहिं कुभाँति कुखेत करारा ।—तुलसी (शब्द०) । २. प्रवेशद्वार । फाटक । दरवाजा । मुहाना ।

पैठारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैठार] १. पैठ । प्रवेश । २ गति । पहुँच ।

पैठी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैठ] बदला । एवज ।

पैठीनसि—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्मृतिकार ऋषि [को०] ।

पैड—संज्ञा पुं० [अं०] १. सोख्ता या स्याहीसोख कागज की गड्डी । २. छोटी मुलायम गद्दी । जैसे इंक पैड । ३. पत्र आदि लिखने के लिये कागजों की एक प्रकार की कापी । जैसे, लेटर पैड ।

पैडिक—वि० [सं०] पिडिका या पिटिका संबंधी । फुंसी संबंधी [को०] ।

पैड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैर] १. वह जिसपर पैर रखकर ऊपर चढ़ें । सीढ़ी । जैसे, हर की पैड़ी । २. कुएँ पर चरसा खींचनेवाले बैलों के चलने के लिये बना हुआ ढालवाँ रास्ता । ३. वह स्थान जहाँ सिंचाई के लिये जलाशय से पानी लेकर ढालते हैं । पौदर ।

पैतरा—संज्ञा पुं० [सं० पदान्तर, प्रा० पयांतर] १. पटा । तलवार चलाने या कुश्ती लड़ने में घूम फिरकर पैर रखने की मुद्रा । वार करने का ठाट ।

मुहा०—पैतरा बदलना = पटा चलाने या कुश्ती लड़ने में ढब के साथ इधर उधर पैर रखना । पैतरा भाँजना = घूमते हुए पैर रखना और हाथ घुमाना ।

यौ०—पैतरेबाजी = धोखेबाज । चालबाज । धूर्त । पैतरेबाजी = धोखेबाजी । चालाकी ।

२. धूल पर पड़ा हुआ पदचिह्न । पैर का निशान । खोज ।

पैतरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैतरा] रेशम फेरने की परेती ।

पैतरी —संज्ञा स्त्री [सं० पद + हिं० तरी] जूती । पनही ।

पैतल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पैदल' । उ०—पाँच पायक पेख पैतल मान का गढ़ लीए ।—राम० धर्म०, पृ० १५५ ।

पैतला—वि० [हिं० पायँ + तल] उथला । छिछला । पायाब । पैथला ।

पैतलाय—वि० [?] सत्रह । १७ । (दलाल) ।

पैताना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पायँता' ।

पैतामह—वि० [सं०] पितामह संबंधी ।

पैतामहिक—वि० [सं०] पितामह से प्राप्त (धन आदि) ।

पैतृक[1]—वि० [सं०] १. पितृ संबंधी । २. पुश्तैनी । पुरखों का । जैसे, पैतृक भूमि, पैतृक संपत्ति ।

पैतृक[2]—संज्ञा पुं० पितरों के लिये किया जानेवाला एक श्राद्ध [को०] ।

पैतृमत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अविवाहित स्त्री का पुत्र । २. महान् व्यक्ति का पुत्र [को०] ।

पैतृष्वसेय, पैतृष्वसीय—संज्ञा पुं० [सं०] फुफेरा भाई [को०] ।

पैत्त—वि० [सं०] पित्तज । पित्त से उत्पन्न ।

पैत्तल—वि० [सं०] पीतल का बना हुआ [को०] ।

पैत्तिक—वि० [सं०] पित्त संबंधी । पित्त का । पित्त से उत्पन्न ।

पैत्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अँगूठे और तर्जनी के बीच का भाग । पितृतीर्थ । २. पितृ संबंधी श्राद्ध आदि । ३. पितरों के लिये पवित्र दिन, मास या वर्ष (को०) ।

पैत्र[2]—वि० १. पितरों से संबंधित (श्राद्ध आदि) ।

पैत्र्य—वि० [सं०] पितृ संबंधी ।

पैथला†—वि० [हिं० पावँ + थल] उथला । छिछला । पायाब ।

पैद(पु)—क्रि० वि० [हिं० पैदल] दे० 'पैदल' । उ०—दोय लक्ख पैद चहूँ गढ़न कीय ।—हु० रासो, पृ० ६० ।

पैदर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पैदल' । उ०—बिस सहस पैदर तुम लिख्खहु । गौरज गंमन मम रज रष्खहु ।—प० रासो०, पृ० १३७ ।

पैदल[1]—वि० [सं० पादतल, प्रा० पायतल] जो पाँव पाँव चले । जो सवारी आदि पर न हो । पैरों से चलनेवाला । जैसे, पैदल सिपाही, पैदल सेना ।

पैदल[2]—क्रि० वि० पावँ पावँ । पैरों से । सवारी आदि पर नहीं । जैसे, पैदल चलना, पैदल घूमना ।

पैदल[3]—संज्ञा पुं० १. पावँ पावँ चलना । पादचारण । जैसे, पैदल का रास्ता, पैदल का सफर । २. पैदल सिपाही । पावँ पावँ चलनेवाला योद्धा । पदाति । जैसे,—उसके साथ ५ हजार सवार और बीस हजार पैदल थे । ३. शतरंज में वह नीचे दरजे की गोटी जो सीधा चलती और आड़ा मारती है ।

पैदा[1]—वि० [फ़ा०] १. उत्पन्न । जन्मा हुआ । प्रसूत । जो पहले न रहा हो, नया प्रकट हुआ हो । जैसे, लड़का पैदा होना, अनाज पैदा होना । २. प्रकट । आविर्भूत । घटित । उपस्थित । जैसे, झगड़ा पैदा होना । ३. प्राप्त । अर्जित । हासिल । कमाया हुआ । जैसे, रुपया पैदा करना, कमाल पैदा करना ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

पैदा‡[2]—संज्ञा स्त्री० आय । आमदनी । अर्थागम । लाभ । जैसे,—उस नौकरी में बड़ी पैदा है ।

पैदाइश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] उत्पत्ति । जन्म ।

पैदाइशी—वि० [फ़ा०] १. जन्म का । जब से जन्म हुआ तभी का । बहुत पुराना । जैसे, पैदाइशी रोग । २. स्वाभाविक । प्राकृतिक । जैसे,—यह हुनर पैदाइशी होता है ।

पैदावार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अन्न आदि जो खेत में बोने से प्राप्त हो । उपज । फसल । जैसे,—इस खेत की पैदावार अच्छी नहीं है ।

पैदावारी‡—संज्ञा स्त्री० [फा० पैदावार] 'पैदावार' ।

पैदाश(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पैदाइश] दे० 'पैदाइश' । उ०—कहता हूँ मैं मरियम का पैदाश अव्वल । करूँ जिक्र ईसा का पीछे नकल ।—दक्खिनी०, पृ० ३५० ।

पैधा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पाधा' । उ०—गुरमुखि पैधा शब्द हजूरा ।—प्राण०, पृ० १६७ ।

पैन[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाह, हिं० पवाह] १ नाली । २. पनाला ।

पैन[2]—वि० [सं० पैण (= घिसना), हिं० पैना] दे० 'पैना' । उ०—मोसों क्यों न कहै कहा मैन हनै सर पैन । राजिव नैन बसे कहा नहिं आए रंग ऐन ।—स० सप्तक, पृ० २३५ ।

पैनणा†—संज्ञा पुं० [हिं० पहनना] दे० 'पहनना' । उ०—खाणा पीणा पैनणा मन की खुशी खुमार ।—प्राण०, पृ० २८५ ।

पैना[1]—वि० [सं० पैण (= घिसना, टेना)] [वि० स्त्री० पैनी] जिसकी धार बहुत पतली या काटनेवाली हो । चोखा । धारदार । तीक्ष्ण । तेज । उ०—परनारी, पैनी छुरी कबहुँ न लावो अंग (शब्द०) ।

पैना[2]—संज्ञा पुं० १. हलवाहों की बैल हाँकने की छोटी छड़ी । २. लोहे का नुकीला छड़ । अंकुश ।

पैना[3]—संज्ञा पुं० [?] धातु गलाने का मसाला ।

पैना†[4]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पैन[1]' ।

पैनाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैना + ई (प्रत्य०) पैनापन । उ०—खाँड़े चाहि पैनि पैनाई । बार चाहि पातरि पतराई ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२६ ।

पैनाक—वि० [सं०] पिनाक संबंधी ।

पैनाना†[1]—क्रि० स० [हिं० पैना] छुरे आदि की धार को रगड़कर पैनी करना । चोखा । करना । टेना ।

पैनाना(पु)[2]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पहनाना' । उ०—सिरि छुरि पैधा प्रभि पैनाया ।—प्राण०, पृ० ११२ ।

पैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीनता । मोटापा । २. घनापन [को०] ।

पैन्हना‡—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पहनना' ।

पैप्पल—वि० [सं०] पीपल की लकड़ी का बना हुआ [को०] ।

पैप्पलाद—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद की एक शाखा [को०] ।

पैमक—संज्ञा स्त्री० [?] कलाबत्तू की बनी हुई एक प्रकार की सुनहरी गोट जिसे अँगरखे, टोपी आदि के किनारे पर लगाते हैं । लेस ।

पैमाइश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मापने की क्रिया या भाव । माप । जैसे, जमीन या खेत की पैमाइश ।

पैमाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह वस्तु (छड़, डंडा, सूत, डोरी, बरतन आदि) जिससे कोई वस्तु मापी जाय । मापने का औजार । मानदंड ।

पैमाल(पु)‡—वि० [फ़ा० पामाल] दे० 'पामाल' । उ०—काम दल

जीत कर कोष पैमाल कर, परम सुख धाम तहँ सुर्त मेले।—
कबीर श०, भा० १, पृ० ६७।

पैयाँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० पायँ] पायँ। पैर। उ०—गुरु पैयाँ लागौं नाम लखा दीजो रे।—धरम० श०, पृ० १६।

पैया¹—संज्ञा पुं० [सं० पाय्य (=निकृष्ट)] १. बिना सत का अनाज का दाना। मारा छूछा दाना। खोखला दाना। उ०—मातु पिता कहँ सब धन तेरो मोरे लेखे पछोरल पैया।—कबीर (शब्द०)। २. तुच्छ। दीन हीन।

पैया²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह पूरबी बंगाल, चटगाँव और बरमा में बहुत होता है। इसमें बड़े बड़े फल लगते हैं जो खाए जाते हैं। बंसलोचन भी इस बाँस में बहुत निकलता है। यह बाँस बहुत सीधा जाता है और गाँठें भी इसमें दूर दूर पर होती हैं। चटगाँव में इसकी चटाइयाँ बहुत बनती हैं। घरों में भी यह लगता है। इसे मुलीमतगा और तराई का बाँस भी कहते हैं।

पैया‡³—संज्ञा पुं० [हिं० पहिया] दे० 'पहिया'।

पैया(पु)⁴—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पाँव'। उ०—दास गरीब बरस भए, पैयन लगी जो लाय।—कबीर मं० पृ० ५८८।

पैर¹—संज्ञा पुं० [सं० पद + दण्ड, प्रा० पयदंड, अप० पयँड] १. वह अंग या अवयव जिसपर खड़े होने पर शरीर का सारा भार रहता है और जिससे प्राणी चलते फिरते हैं। गतिसाधक अंग। पाँव। चरण।

विशेष—दे० 'पाँव'। पैर शब्द से कभी कभी एड़ी से पंजे तक का भाग ही समझा जाता है।

मुहा०—पैर छूटना = मासिक धर्म अधिक होना। रजःस्राव अधिक होना। पैर की जूती = अत्यंत तुच्छ। दासी। सेविका। उ०—खैर, पैर की जूती जोरू, न सही एक, दूसरी आती, पर जवान लड़के की सुध कर साँप लोटते फटती छाती।—ग्राम्या, पृ० २६। (और मुहा० दे० 'पाँव' शब्द)।

२. धूल आदि पर पड़ा हुआ पैर का चिह्न। पैर का निशान। जैसे,—बालू पर पड़े हुए पैर देखते चले जाओ।

पैर²—संज्ञा पुं० [हिं० पायल, पायर] १ वह स्थान जहाँ खेत से कटकर आई हुई फसल दाना झाड़ने के लिये फैलाई जाती है। खलियान। २ खेत से कटकर आए डंठल सहित अनाज का अटाला।

पैर³—संज्ञा पुं० [सं० प्रदर] प्रदर रोग।

पैर उठान—संज्ञा पुं० [हिं० पैर + उठाना] कुश्ती का एक पेच जिसमें बाँया पैर आगे बढ़ाकर बाएँ हाथ से जोड़ की छाती पर धक्का देते और उसी समय दहने हाथ से उसके पैर के घुटने को उठाकर और बायाँ पैर उसके दहने पैर में अड़ाकर फुरती से उसे अपनी ओर खींचकर चित कर देते हैं।

पैरगाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैर + गाड़ी] वह हलकी गाड़ी जो बैठे बैठे पैर चलाने से चलती है। जैसे, बाइसिकिल, ट्राइसिकिल।

पैरना¹—क्रि० अ० [सं० प्लवन, प्रा० पवण, हिं० पौरना] तैरना। पानी के ऊपर हाथ पैर चलाते हुए जाना। उ०—(क) पैरत थाके केसवा सूझै वार न पार।—संतवाणी०, पृ० ६६। (ख) पैरवार दृग ललन के पैर न पावत पार।—स० सतक पृ० ३५३।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—पैरा हुआ = पारंगत। दक्ष। निपुण।

पैरना†²—क्रि० स० [हिं० पहिरना] दे० 'पहनना'। उ०—हरे रंग की अँगिया जो पैरे, जाइ रीझै संवरवार।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ८७७।

पैरवाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैर + फ़ा० बाज + ई (प्रत्य०)] नृत्य में पैरों की कुशल गति। उ०—नाच में इनके न तो कोई गति है, न तोड़ा, न कोई पैरवाजी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५५।

पैरवार(पु)—वि० [हिं० पैरना + वार (प्रत्य०)] पैरनेवाला। तैरनेवाला। उ०—रूपसिंधु मुख रावरो लसै अनूप अपार। पैरवार दृग ललन के पैर न पावत पार।—स० सतक, पृ० ३५३।

पैरवी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. कदम बा कदम चलना। अनुगमन। अनुसरण। २. आज्ञापालन। ३. पक्ष का मंडन। पक्ष लेना। किसी बात के अनुकूल प्रयत्न। कोशिश। दौड़धूप। जैसे, मुकदमे की पैरवी करना, किसी के लिये पैरवी करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

पैरवीकार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पैरवी करनेवाला।

पैरहन—संज्ञा पुं० [फा०] चोंगे की तरह का एक लंबा पहनावा। उ०—खड़ा रहूँ दरबार तुम्हारे ज्यों घर का बंदाजादा। नेकी की कुलाह सिर दीए, गले पैरहन साजा।—संतवाणी०, पृ० १०३।

पैरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० पैर] १. आया हुआ कदम। पड़े हुए चरण। पौरा। जैसे,—बहू का पैरा न जाने कैसा है कि जबसे आई है कोई सुख से नहीं है। २. एक प्रकार का कड़ा जो पैर में पहना जाता है। ३. किसी ऊँची जगह चढ़ने के लिये लकड़ियों के बल्ले आदि रखकर बनाया हुआ रास्ता। उ०—मन गरुवो कुच गिरिन पै सहजै पहुँचि सकै न। याही तें लै डीठि के पैरे बाँधत नैन।—स० सप्तक, पृ० १६१।

पैरा²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की दक्खिनी कपास जिसके पेड़ बहुत दिनों तक रहते हैं।

विशेष—इसके डंठल लाल रंग के होते हैं। रूई इसकी बहुत साफ नहीं होती, उसमें कुछ ललाईपन या भूरापन होता है। यह कपास मध्यभारत से लेकर मदरास तक होती है।

पैरा³—संज्ञा पुं० [सं० पिटक, प्रा० पिडा] लकड़ी का खाना जिसमें सोनार अपने काँटे बाट रखता है।

पैरा⁴—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पयाल'।

पैरा⁵—संज्ञा पुं० [अं०] १. लेख का उतना अंश जितने में कोई एक बात पूरी हो जाय और जो इसी प्रकार के दूसरे अंश से कुछ जगह छोड़कर अलग किया गया हो।

विशेष—जिस पंक्ति पर एक पैरा समाप्त होता है, दूसरा पैरा उस पंक्ति को छोड़कर और किनारे से कुछ हटाकर आरंभ किया जाता है।

५. टिप्पणी। छोटा नोट। जैसे,—संपादक ने इस विषय पर एक पैरा लिखा है।।

पैराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैरना, √पैर+आई (प्रत्य०)] १. पैरने या तैरने की क्रिया या भाव। २. तैरने की कला। ३. तैरने की मजदूरी।

पैराउ, पैराऊⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० पैरना] दे० 'पैराव'। उ०—(क) ग्रीषम हूँ रितु मैं भरी हुई कूल पैराउ। बारे जल की बहति है नदी तिहारे गाउ।—मति० ग्रं०, पृ० ४४६। (ख) बरनी बरषे बादल भीजें भीट भया पैराऊ। हंस उड़ाने ताल सुखाने चहले बीधा पाऊ।—कबीर (शब्द०)।

पैराक—संज्ञा पुं० [हिं० पैरना] १. तैरनेवाला। तैराक। † २. चतुर। कुशल। प्रवीण। उ०—सज असि भाण पैराक वप वप साजिया। गयण छिबता माहा भयानक गाजिया।—रघु० रू०, पृ० १८८।

पैराकी†—वि० [हिं० पैरना] १. चतुर। प्रवीण। उ०—जिण साथ पैराकी जंगारा, भ्रव प्रक्रम दीख्या भ्रंगारा।—रघु० रू०, पृ० १५८।

पैराग्राफ—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'पैरा'।

पैराना—क्रि० स० [हिं० पैरना का प्रे० रूप] पैरने का काम कराना। तैराना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

पैराराⓅ†—वि० [हिं० पैरना+आरा (प्रत्य०)] पैरनेवाले। पैराक। तैरनेवाले। तैराक। उ०—धन दग मतवारे पैरारे। चितवन बीच सिंधु ग्र ढारे।—इंद्रा०, पृ० ४५।

पैराव—संज्ञा पुं० [हिं० पैरना+आव (प्रत्य०)] इतना पानी जिसे केवल तैरकर ही पार कर सकें। डुबाव।

पैराशूट—संज्ञा पुं० [अं०] एक बहुत बड़ा छाता जिसके सहारे बैलून (गुब्बारा) धीरे धीरे जमीन पर उतरता और गिरकर टूटता फूटता नहीं।

पैरी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैर] १. पैर में पहनने का एक चौड़ा गहना जो फूल या काँसे का बनता है और जिसे नीच जाति की स्त्रियाँ पहनती हैं। २. अनाज के कटे हुए पौधे जो दाँयने के लिये फैलाए जाते हैं। ३. अनाज के सूखे पौधों पर बैल चलाकर और डंडा मारकर दाना झाड़ने की क्रिया। दाँवने का काम। दवाँई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

४. भेड़ों के बाल कतरने का काम। ५. पैड़ी। सीढ़ी। ६. Ⓟ पैड़ी। पीढ़ी। पुश्त (लाक्ष०)। उ०—तिनकी तरैं पैरी प्रवास सुवास तें फिरि नहिं फिरै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १५।

पैरेखना†—क्रि० स० [सं० परीक्षण] दे० 'परेखना'।

पैरोकार—संज्ञा पुं० [फ़ा० पैरवीकार] दे० 'पैरवीकार'।

पैरोल—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'पेरोल'।

पैल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत में वर्णित एक ब्राह्मण जिन्होंने वेदव्यास के संहिता विभाग करने पर ऋग्वेद का अध्ययन किया था।

पैल‡[२]—अव्य० [अप० पह्ल] दे० 'पहले'। उ०—भावी करूँगा तेरा तमाशा। पैल तेरी गुडी काढ़ूँगा।—दक्खिनी०, पृ० ६०।

पैल†[३]—संज्ञा पुं० [सं० पृथुल या हिं० फैलना] अधिकता। बहुतायत। उ०—मीज रीफ भेली भली, पावस पाणी पैल।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ८।

पैलगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पायँ+लगना] प्रणाम। अभिवंदन। पालागन।

पैलग्गी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पैलगी'।

पैलनाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० पैरना] तैरना। पैरना। उ०—मोह पवन झकोर दारुन दूर पैलव तीर।—चरण० बानी, पृ० ६०।

पैलव—वि० [सं०] १. पीलू के पेड़ का। २. पीलू संबंधी। ३. पीलू की लकड़ी का बना हुआ।

पैला†[१]—संज्ञा पुं० [हिं० पैली] १. नाँद के आकार का मिट्टी का बरतन जिससे दूध दही ढाँकते हैं। बड़ी पैली। उ०—स्याम सब भाजन फोरि पराने। हाँक देत पैठत हैं पैला नेकु न मनहिं डराने।—सूर (शब्द०)। २. चार सेर अनाज नापने की डलिया। चार सेर नाप का बरतन।

पैला[२]—क्रि० वि० [देशी पहिल्ल, अप० पइल, हिं० पहला] १. पहले। उ०—ओण भलक्की जामगी, पैले दग्गी नाल।—रा० रू०, पृ० ३१०। २. उस ओर। उस पार। परला।

पैली†[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० पातिली, प्रा० पाइली] १. मिट्टी का एक चौड़ा बरतन जिसमें अनाज या तेल रखते हैं। २. अनाज या तेल नापने का मिट्टी का बरतन।

पैलीⓅ[२]—वि० स्त्री० [हिं० परली] उस ओर का। दूसरी ओर का। परली। उ०—सतगुरु काढ़े केस गहि डूबत इहि संसार। दादू नाव चढ़ाइ करि, कीए पैली पार।—दादू०, पृ० ४।

पैबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. कपड़े आदि का वह छोटा टुकड़ा जो किसी बड़े कपड़े आदि का छेद बंद करने के लिये जोड़कर सी दिया जाता है। चकती। थिगली। जोड़।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—पैबंद लगाना = (१) बात में बात जोड़ना। मेल मिलाना। जैसे,—सारा लेख उनका लिखा है बीच बीच में आप भी पैबंद लगाए हैं। (२) अधूरी या बिगड़ी हुई बात में नई बात जोड़कर उसे पूरा करना या सुधारना।

२. किसी पेड़ की टहनी काटकर उसी जाति के दूसरे पेड़ की

टहनी में जोड़कर बाँधना जिससे फल बढ़ जायँ या उनमें नया स्वाद आ जाय।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. मेल जोल का आदमी। इष्ट मित्र। संबंधी।

पैवंदी'—वि० [फ़ा०] १. पैवंद लगाकर पैदा किया हुआ। कलम और पैवंद द्वारा बड़ा और मीठा बनाया हुआ (फल)। कलमी। जैसे, पैवंदी बेर।

यौ०—पैवंदी मूँछ = चिपकाई हुई मरोड़दार मूँछ।

२. वर्णसंकर। दोगला।

पैवंदी²—संज्ञा पुं० बड़ा आँड़ू। शफतालू।

पैवस्त, पैवस्ता—वि० [फ़ा० पैवस्तह्] (जल, दूध, घी आदि द्रव पदार्थ) जो भीतर घुसकर सब भागों में फैल गया हो। जिसने भीतर बाहर फैलकर तर कर दिया हो। सोखा हुआ। समाया हुआ। जैसे, सिर में तेल पैवस्त होना, दूध का रोटी में पैवस्त होना। उ०—चमत्कृत चीजों से वह आरास्ता और पैवस्ता है। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१४।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

पैशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेशलता। कोमलता। २. कुशलता। कौशल (को०)।

पैशाच'—वि० [सं०] १. पिशाच संबंधी। पिशाच का। पिशाच का बनाया या किया हुआ। २. पिशाच देश का। जैसे, पैशाच भाषा।

पैशाच²—संज्ञा पुं० १ पिशाच। २. एक आयुधजीवी संघ का नाम। एक लड़ाका दल। ३. एक प्रकार का हीन विवाह। दे० 'पैशाच विवाह'।

पैशाचकाय—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में कहे हुए कायों (शरीरों) में एक जो 'राजस काय' के अंतर्गत है।

विशेष—जूठा खाने की रुचि, स्वभाव का तीखापन, दु:साहस, स्त्रीलोलुपता और निर्लज्जता 'पैशाच काय' के लक्षण हैं।

पैशाच विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के विवाहों में से एक जो सोई हुई कन्या का हरण करके या मदोन्मत्त कन्या को फुसलाकर छल से किया गया हो।

विशेष—स्मृतियों में इस प्रकार का विवाह बहुत निंदनीय कहा गया है।

पैशाचिक—वि० [सं०] पिशाच संबंधी। पिशाचों का। राक्षसी। घोर और बीभत्स। जैसे, पैशाचिक कांड, पैशाचिक कर्म।

पैशाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिशाच देश की भाषा। एक प्रकार की प्राकृत भाषा।

विशेष—कहा जाता है कि गुणाढ्य की 'बड्डकहा' इसी भाषा में थी।

२. किसी धार्मिक कृत्य पर दी जानेवाली भेंट (को०)। ३. रात्रि। रात (को०)।

पैशाच्य—संज्ञा पुं० [सं०] पिशाच होने का भाव। क्रूरता। निर्दयता (को०)।

पैशुन—संज्ञा पुं० [सं०] पिशुनता। चुगलखोरी।

पैशुन्य—संज्ञा पुं० [सं०] पिशुनता। चुगलखोरी।

पैष्ट—वि० [सं०] पिष्ट से निर्मित। आटा आदि का बना हुआ (को०)।

पैष्टिक'—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो, चावल आदि अन्नों को सड़ाकर बनाया हुआ। मद्य। २. आटे आदि का तैयार पदार्थ, रोटी आदि (को०)।

पैष्टिक²—वि० आटे का बना हुआ। आटे का (को०)।

पैष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पैष्टिक। यवादि अन्न निर्मित सुरा।

पैसना†—क्रि० अ० [सं० प्रविश, प्रा० पइस + हिं० ना (प्रत्य०)] घुसना। पैठना। प्रवेश करना। उ०—(क) मेरे हित करिबे हरि कैसे। कुत्सित उदर दरी में पैसे।—नंद० ग्रं०, पृ० २१६। (ख) देवाले पैसि अंबिका दरसे वर्णी भाव हित प्रीति घणी। बेलि०, दू० १०८।

पैसरा†—संज्ञा पुं० [सं० परिश्रम] जंजाल। झंझट। बखेड़ा। प्रयत्न। व्यापार। उ०—ऐसो है हरि पूजन ताता। पुनि पैसरे केरि नहिं बाता।—विश्राम (शब्द०)।

पैसा—संज्ञा पुं० [सं० पाद, प्रा० पाय (= चौथाई) + अंश, प्रा० अंस, या सं० पदांश] १ ताँबे का सबसे अधिक चलता सिक्का जो पहले आने का चौथा और रुपए का चौसठवाँ भाग होता था। पाव आना। तीन पाई का सिक्का।

विशेष—अब स्वतंत्र भारत में दशमिक प्रणाली के सिक्के का प्रचलन हो गया है, जिसमें पैसा दशमिक प्रणाली के आधार पर रुपए का सौवाँ भाग होता है और आजकल यह सिक्का अलमूनियम का होता है।

२. रुपया पैसा। धन। दौलत। माल। जैसे,—उसके पास बहुत पैसा है। उ०—साईं या संसार में मतलब का व्यवहार। जब तक पैसा पास में तबतक है सब यार।—गिरिधर (शब्द०)।

मुहा०—पैसा उठना = धन खर्च होना। पैसा उड़ाना = धन व्यर्थ नष्ट करना। फजूलखर्ची करना। पैसा कमाना = धन उपार्जित करना। रुपया पैदा करना। पैसा डूबना = लगा हुआ रुपया नष्ट होना। घाटा होना। पैसा खो ले आना = खूब धन खींच ले आना। पैसा ओकर उठाना = किसी देवता की पूजा की मनौती करके अलग पैसा निकालकर रखना। पैसे का पचास होना = अत्यंत साधारण होना। सस्ते मोल बिकना। उ०—गुरुआ तो सस्ता भया पैसा केर पचास। राम नाम को बेचिके, करे सिष्य की आस।—कबीर सा० सं०, पृ० १५।

पैसार†—संज्ञा पुं० [हिं० पैसना] १. पैठ। प्रवेश। उ०—अमरपुर में अलख फूलें, तहाँ कर पैसार।—धरनी०, पृ० ३३। २. भीतर जाने का मार्ग। प्रवेशद्वार।

पैसारना—क्रि० स० [हिं० पैसार] घुसना। प्रवेश करना। पैठना।

पैसारी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैसार] पैठ। पैसार। प्रवेश। उ०—आय नगर पैसारी कीन्हा। घर पूछे के चिन्हन कीन्हा।—कबीर सा०, पृ० ४२३।

पैसिंजर गाड़ी—संज्ञा स्त्री० [अं० पैसिंजर + हिं० गाड़ी] मुसाफिरों को ले जानेवाली रेलगाड़ी । यात्री गाड़ी ।

पैसेवाला—संज्ञा पुं० [हिं० पैसा + वाला (प्रत्य०)] १. धनवान । मालदार । धनी । २. सराफ । ३. पैसा बेचनेवाला । बट्टे पर रेजगी देनेवाला । बट्टेवाला ।

पैहचाननाⓟ†—क्रि० स० [हिं० पहचानना] दे० 'पहचानना' । उ०—उपजी प्रीति काम अंतर गत, तब नागर नागरि पैहचानी । —पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३५ ।

पैहचाना, पैहच्चाना‡—क्रि० स० [प्रा०, अप० पहुच] दे० 'पहुँचाना' । उ०—(क) पथी एक संदेसडउ ढोलइ लग पैहचाइ । —ढोला०, दू० १२३ । (ख) लग ढोलइ पैहच्चाई । —ढोला०, दू० ११८ ।

पैहम—क्रि० वि० [फ़ा०] अनवरत । लगातार । निरंतर । बराबर । उ०—कि चश्मे खूँ चकाँ से लख्ते दिल पैहम निकलते हैं । —भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० ८४८ ।

पैहरनाⓟ† —क्रि० स० [हिं० पहिरना] दे० 'पहनना' । उ०—पैहर न आछी चूनड़ी । —बी० रासो, पृ० ५५ ।

पैहरा—संज्ञा पुं० [देश०] कपास के खेत में रूई इकट्ठी करनेवाला । पैकर । बनिया ।

पैहरावना†—क्रि० स० [हिं० पहिराना] दे० 'पहनाना' । उ०—सेत बनाइ भाइ नव उपजत रीझि रसाल माल पैहरावत । —पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३११ ।

पैहारी—वि० [सं० पयस + आहारी] केवल दूध पीकर रहनेवाला (साधु) ।

पैहेरना‡—क्रि० स० [हिं० पहिरना] दे० 'पहनना' । उ०—सोचे न्हाइ बैठी पैहेरि पट सुंदर, जहाँ फुलवारी तहँ सुखवत अलकैं । —पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १९२१ ।

पों—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. लंबी नाल या भोंपे को फूँकने से निकला हुआ शब्द । २. लंबी नाल के आकार का एक बाजा जिसमें फूँकने से 'पों' शब्द निकलता है । भोंपा । ३. अधोवायु निकलने का शब्द ।

मुहा०—पों बोलना = (१) हार मानना । थककर बैठ रहना । (२) दीवाला निकलना । कुछ न हो जाना ।

पोंकना¹—क्रि० अ० [पों से अनु०] १. पतला पाखाना करना । २. अत्यंत भयभीत होना । बहुत डरना ।

पोंकना²—संज्ञा पुं० चौपायों को पतला दस्त होने का रोग ।

पोंकना³—वि० १. पोंकनेवाला । पतला मल करनेवाला । बार बार पतला मल करनेवाला । २. डरपोक । डरपोक ।

पोंका—संज्ञा पुं० [देश०] बड़ा फतिंगा जो पौधों पर उड़ता फिरता है । बोंका ।

पोंगलⓟ—संज्ञा पुं० [सं० पृथुक] बालक । शिशु । बच्चा ।

पोंगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोंगा] १. दे० 'पोंगी' । २. वह नरिया जो दीवारा चाक पर से बनाकर उतारी गई हो (कुम्हार) ।

पोंगा¹—संज्ञा पुं० [सं० पुटक (= भीतरी खोखला)] [स्त्री० अल्पा० पोंगी] १. बाँस की नली । बाँस का खोखला पोर । २. टीन आदि की बनी हुई लंबी खोखली नली जिसमें कागज पत्र रखते हैं । चोंगा । ३. पौध की नली ।

पोंगा²—वि० १. पोला । २. मूर्ख । बुद्धिहीन । अहमक । उ०—बिमला ने कहा 'हँसी नहीं' मैं उस ब्राह्मण को पतियाती हूँ । वह तो पोंगा ही है—किंतु वह जाय या न जाय ।—गदाधर सिंह (शब्द०) ।

पोंगापंथी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोंगा + सं० पंथी] मूर्खों का कार्य । मूर्खतापूर्ण कार्य ।

पोंगापंथी²—वि० मूर्खतापूर्ण कार्य करनेवाला ।

पोंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोंगा + ई (प्रत्य०)] छोटी पोली नली । २. नरकुल की एक नली जिसपर जुलाहे तागा लपेटकर ताना या भरनी करते हैं । ३. चार या पाँच अंगुल की बाँस की पोली नली जो बाँस के बीजने की डाँडी में लगी होती है । हाँकनेवाले इसे पकड़कर बीजने को घुमाते हैं । ४. तुमड़ी बजाने की तुमड़ी । ५. ऊख या बाँस आदि में दो गाँठों के बीच का प्रदेश या भाग ।

पोंचनाⓟ—क्रि० अ० [प्रा० अप० पहुच्च] दे० 'पहुँचना' । उ०—अर्जी लिखी फौजदार के पोंचे जिलिबदार, जाके देख दरबार चोपदार के कहिने ।—दक्खिनी०' पृ० ४६ ।

पोंछ†—संज्ञा स्त्री० [सं० पुच्छ] दे० 'पूँछ' ।

पोंछन—संज्ञा पुं० [हिं० पोंछना] किसी लगी हुई वस्तु का वह बचा अंश जो पोंछने से निकले ।

पोंछना¹—क्रि० स० [सं० प्रोञ्छन, प्रा० पोंछन] लगी हुई गीली वस्तु को जोर से हाथ या कपड़ा आदि से फेरकर उठाना या हटाना । काछना । जैसे, आँख से आँसू पोंछना, कागज पर पड़ी स्याही पोंछना, कटोरे में लगा हुआ घी पोंछकर खा जाना, नहाने के बाद गीला बदन पोंछना । उ०—(क) सुनि के उतर आँसु पुनि पोंछे । कौन पंख बाँधा बुधि ओछे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पोंछि डारे अंजन अँगोछि डारे अंगराग, दूर कीने भूषण, उतारि अंग अंग ते ।—रघुनाथ (शब्द०) । २. पड़ी हुई गर्द, मैल आदि को हाथ या कपड़ा जोर से फेरकर दूर करना । रगड़कर साफ करना । जैसे,—कुर्सी पर गर्द पड़ी है पोंछ दो । पैर पोंछकर तब फर्श पर आओ । उ०—मानहु बिधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबे काज । दग पग पोंछन को किए भूषन पायंदाज ।—बिहारी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना।

यौ०—झाड़ पोंछ ।

विशेष—जो वस्तु लगी या पड़ी हो तथा जिसपर कोई वस्तु लगी या पड़ी हो, अर्थात् आधार और आधेय दोनों इस क्रिया के कर्म होते हैं । जैसे, कटोरा पोंछना, पैर में लगी गर्द पोंछना कटोरे में लगा घी पोंछना, पैर पोंछना । झटके से साफ करने को झाड़ना और रगड़कर साफ करने को पोंछना कहते हैं ।

पोंछना²—संज्ञा पुं० [स्त्री० पोंछनी] पोंछने का कपड़ा । वह कपड़ा जो पोंछने के लिये हो ।

पौंट—संज्ञा पुं० [अं० प्वाइंट] अंतरीप । (लश०) ।

पौंटा†—संज्ञा पुं० [देश०] नाक का मल ।

पौंटा—संज्ञा पुं० [अं० प्वाइंट] रस्से का सिरा या छोर । (लश०) ।

पौंटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली ।

पौंढ़ना†—क्रि० अ० [हिं० पौढ़ना] दे० 'पौढ़ना' । उ०—रूप चंद मदा के घर पोढ़े हैं ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६३ ।

पौंनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पवन, हिं० पौन] दे० 'पवन' । उ०—नृप दीन हुल्यौ बहु चित्त चितं । सुहृल्या अनु पौंनय पीप पतं ।—पृ० रा० १।११४ । (ख) छोई उपमा कविचद कवे । सजे मनों पौंन पवंग रये ।—पृ० रा०, २७।३२ ।

पौंहचना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पहुँचना' । उ०—पौंहचे मारण, प्राणियाँ, जल थल अंबर आय । —बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४४ ।

पौंहचाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पहुँचाना' । उ०—जानकी रहौला अठै मो जनक रे । जनक रै कर्नां पोंहचाय जावाँ । —रघु० रू०, पृ० १०५ ।

पो—वि० [सं०] शुद्ध । पवित्र । स्वच्छ (को०) ।

पोआ—संज्ञा पुं० [सं० पुत्रक] १. साँप का बच्चा । संपोला । २. कीड़ा । उ०—मधुक ना बुझ भाल के कहे मंद, पोआ पियइ कीहा कुसुम मकरंद । —विद्यापति, पृ० ६३ ।

पोआना—क्रि० स० [हिं० 'पोना' का प्रे० रूप] १. पोने का काम कराना । २. गीले आटे की लोई को पोले रोटी के रूप में बना बनाकर पकानेवाले को सेंकने के लिये देना । जैसे, रोटी पोआना ।

संयो० क्रि०—देना । —लेना ।

पोआरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुआल' ।

पोइट्री—संज्ञा स्त्री० [अं०] काव्य । कविता । उ०—पोइट्री में बोलती थी, प्रोज में बिलकुल अड़ी । —कुकुर०, पृ० १६ ।

पोइणी, पोइन—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्मिनी, प्रा०, पउमिणी, अप०, राज० पोयण, पोइण] कमलिनी । पद्मिनी । उ०—(क) जल पोइणिप छाइयउ, कहउ त पूगल जाँहि । —ढोला०, दू० २४५ । (ख) रंभ खंभ तहे भरे फुल्लि पोइन सुभ्रुत्व नर ।—पृ० रा०, १३।१६ ।

पोइया¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पोयपह्] घोड़े की दो दो पैर फेंकते हुए दौड़ । सरपट चाल ।

मुहा०—पोइयाँ जाना = दोनों पैर फेंकते हुए दौड़ना ।

पोइया²—संज्ञा स्त्री० [सं० पोदिकी, हिं० पोय, पोई] एक लता । दे० 'पोई' ।

पोइस¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० पोयह्, हिं० पोइया] सरपट चाल । दौड़ । उ०—रे मन जनम अकारथ खोइस । .. .कामधाम सो आनि बनैहै देखि देखि मुख रोइस । सूर स्याम बिनु कौन छुड़ावै चले जाहु भाई पोइस । —सूर (शब्द०) ।

पोइस²—अव्य० [फ़ा० पोस] देखो । हटो । बचो ।

विशेष—बच्चे, खच्चर आदि लेकर चलनेवाले लोगों को छू जाने से बचने के लिये 'पोश' 'पोस' या 'पोइस पोइस' पुकारते चलते हैं ।

पोई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पूतिका या पोदिक] एक लता जिसकी पत्तियों का लोग साग खाते हैं ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पान की सी गोल पर दल की मोटी होती हैं । इसमें छोटे छोटे फलों के गुच्छे लगते हैं जिन्हें पकने पर चिड़ियाँ खाती हैं । पोई दो प्रकार की होती है—एक काले डंठल की, दूसरी हरे डंठल की । बरसात में यह बहुत उपजती है । पत्तियो का लोग साग खाते हैं । एक जंगली पोई भी होती है जिसकी पत्तियाँ लंबोतरी होती हैं । इसका साग अच्छा नहीं होता । पोई की लता में रेशे होते हैं जो रस्सी बटने के काम मे आते हैं । वैद्यक में पोई नरम, रुचिकारक, कफवर्धक और निद्राजनक मानी गई है ।

पर्या०—उपोदकी । कलंबी । पिच्छिला । मोहिनी । विशाला । मदशाका । पूतिका ।

पोई²—संज्ञा स्त्री० [सं० पोत] १. नरम कल्ला । अंकुर । २. ईख का कल्ला । ईख की आँख ।

मुहा०—पोई फूटना = ईख में अंकुर निकलना ।

३. गेहूँ, ज्वार, बाजरे आदि का नरम और छोटा पौधा ।जई । ४. गन्ने का पोर ।

पोई³—संज्ञा स्त्री० [सं० प्लुत या फ़ा० पोयह्] घोड़े की एक प्रकार की चाल । दे० 'पोइया¹' ।

पोक†—संज्ञा पुं० [सं० पोष>पोख] दे० 'पोख', 'पोष' । उ०—अंडा पालै काछुई, बिन थन राखै पोक । यौं करता सबकी करै, पालै तीनिउ लोक ।—कबीर सा० सं०, पृ० ८१ ।

पोकना¹—संज्ञा पुं० [देश०] महुए का पका हुआ फल ।

पोकना²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पोंकना' ।

पोकना³—क्रि० अ० दे० 'पोंकना' ।

पोकला†— वि० [देश०] १. पुलपुला । नाजुक । कमजोर । २. पोला । खोखला । ३ निःसार । तत्वहीन । तत्वशून्य ।

पोकारना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पुकारना' । उ०—सहज बर्ष बहुत निर्धारा । आगम सत्य कबीर पोकारा ।—कबीर सा०, पृ० ६३५ ।

पोख—संज्ञा पुं० [सं० पोष] पालने पोसने का संबंध या लगाव । पोष । उ०—कबिरा पाँच पखेरुआ राखा पोख लगाय । एक जो आया पारधी ले गया सबै उड़ाय ।—कबीर (शब्द०) ।

पोखनरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोखना + नरी] ढरकी के बीच का गड्ढा जिसमें नरी लगाकर जुलाहे कपड़ा बुनते हैं ।

पोखना¹—क्रि० स० [सं० पोषण] पालना । पोसना । उ०—अरे कलानिधि निरदई कहा नयो यह बाय । पोखत अमिय सिखा कलन जग बिरहिन देत जराय ।—रसनिधि (शब्द०) ।

पोखना²—क्रि० अ० गाय भैंस आदि का बच्चा देने का समय समीप

आने पर, हाथ पैर आदि का ढीला पड़ जाना और मन का ऊब जाना। थसकना।

पोखर—संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर, प्रा० पुक्खर, पोक्खर] १. तालाब। पोखरा। २. पटेबाजी में एक वार जो प्रतिपक्षी की कमर पर दाहिनी ओर होता है।

पोखरा—संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर, प्रा० पुक्खर, पोक्खर] [स्त्री० अल्पा० पोखरी] वह जलाशय जो खोदकर बनाया गया हो। तालाब। सागर। उ०—पाँच भीट कै पोखरा हो, जा में दस द्वार।—कबीर श०, भा० २, पु० ५२।

पोखराज—संज्ञा पुं० [सं० पुष्पराज] दे० 'पुखराज'।

पोखरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोखरा] छोटा पोखरा। तलैया।

पोखारⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पोखरा'।—उ०—अजर अबीर कुमकुमा केसरि उमग्यो प्रेम पोखार।—भीखा श०, पृ० ४६।

पोगंड—संज्ञा पुं० [सं० पोगण्ड] १. पाँच से दस वर्ष तक की अवस्था का बालक।

विशेष—कुछ लोग ५ से १५ तक पोगंड मानते हैं।

२. वह जिसका कोई अंग छोटा, बड़ा या अधिक हो। जैसे, छह उँगलियाँ होना, बायाँ हाथ दाहने से छोटा होना।

पोगर—संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर, प्रा० पुक्कर, पोक्कर] हाथी का मुख। हाथी की सूँड़ का अग्र भाग। उ०—तिहि ठाम आइ उहि हस्तिनी। बोर लियौं पोगर सुनिम।—पृ० रा० २७।१६।

पोच¹—वि० [फा० पूच] १. तुच्छ। क्षुद्र। बुरा। निकृष्ट। नीच। उ०—(क) मिट्यो महा मोह जी को छूट्यो पोच सोच, सी को जान्यो अवतार भयो पुरुष पुरान को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भलो पोच कह राम को मोको नरनारी। बिगरे सेवक स्वान सो साहेब सिर गारी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए।—तुलसी (शब्द०)। (घ) कहिहहिं जग पोच न सोच कछू फल लोचन आपनो तौ लहिहैं।—तुलसी (शब्द०)। (च) कौन सुनै काके श्रवण काकी सुरति संकोच। कौन निडर कर आपको को उत्तम को पोच।—सूर (शब्द०)। (छ) प्रीति भार लै हिए न सोचू। वही पंथ भल होय कि पोचू।—जायसी (शब्द०)। २. अशक्त। क्षीण। हीन।

पोच²—संज्ञा स्त्री० दे० 'पोची'।

पोचारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पुचारा'।

पोचीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोच] निचाई। हेठापन। बुराई। उ०—यदपि मों तें कै कुमातु तें होइ आई अति पोची। सन्मुख गए सरन राखहिंगे रघुपति परम सँकोची।—तुलसी (शब्द०)।

पोछना—क्रि० स० [सं० प्रोञ्छन] दे० 'पोंछना'। उ०—कुमकुम केर चोरि अछि फाउछि कौतन भेलि ए पोछी।—विद्यापति, पृ० १०५।

पोजीशन—संज्ञा स्त्री० [अं० पोजीशन] पद। ओहदा। स्थान। उ०—आखिर आदमी को कुछ तो अपने पोजीशन का ख्याल करना चाहिए।—मान०, भा० १, पृ० ८५।

पोट¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पोट] १. गठरी। पोटली। बकुचा। मोटरी। उ०—(क) पहले बुरा कमाय के बाँधी विषय की पोट। कोटि कर्म फिरे पलक में जब आयो हरि ओट।—कबीर (शब्द०)। (ख) खुलि खेलो ससार में बाँधि सकै नहिं कोय। घाट जगाती क्या करै सिर पै पोट न होय।—(शब्द०)। २. ढेर। अटाला। जैसे, दुःख की पोट, पानी की पोट।

पोट²—संज्ञा स्त्री० [सं० पृष्ठ, हिं० पुट्ठ] पुस्तक के पन्नों की वह जगह जहाँ से जुजबंदी या सिलाई होती है।

पोट³—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रोत (=वस्त्र)] मुर्दे के ऊपर की चादर। कफन के ऊपर का कपड़ा।

पोट⁴—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर की नीवँ। २. मेल। मिलान।

पोटक—संज्ञा पुं० [सं०] नौकर। भृत्य। सेवक। [को०]।

पोटगल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नरसल। नरकट। २. काश। काँस। ३. मछली। ४. एक प्रकार का साँप।

पोटनाⓅ—क्रि० स० [हिं० पुट] १. समेटना। बटोरना। उ०—(क) ऐसो पोटि ओठ रस लेत। हठ सों परसि भरहि नख देत।—गुमान (शब्द०)। (ख) पोटि मट्ठू तट ओठ कटी के लपेटि पटी सो कटी पटु छोरत।—देव (शब्द०)। २. हथियाना। पंजे में करना। फुसलाना। बात में लाना। उ०—ललिता के लोचन मिचाइ चद्रभागा सों, दुगइबे कों ल्याई वे वहाई 'दास' पोटि पोटि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १४२।

पोटरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० पोट्टली] दे० 'पोटली'।

पोटल—संज्ञा पुं० [सं०] पोटली। पोटरी [को०]।

पोटलक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पोटलिका] पोटली। पोटरी [को०]।

पोटला—संज्ञा पुं० [सं० पोटलक] बड़ी गठरी।

पोटली—संज्ञा स्त्री० [सं० पोट्टली] १. छोटी गठरी। छोटा बकुचा। २. भीतर किसी वस्तु को रखकर बटोरकर बाँधा हुआ कपड़ा आदि। जैसे,—(क) अनाज को पोटली में बाँधकर ले चला। (ख) सूजन पर नीम की पोटली बनाकर सेंको।

पोटा¹—वि० [सं० प्लुत ?] तराबोर। उ०—मेह सुजल पोटी महीं, सावण करता सैल।—बाँकी० ग्रं०, भा० २ पृ० ७।

पोटा²—संज्ञा पुं० [सं० पुट (=थैली) अथवा देशी, पोट्ट, मरा०, पोट (=पेट)] [स्त्री० अल्पा० पोटी] १. पेट की थैली। उदराशय।

मुहा०—पोटा तर होना = पास में धन होने से प्रसन्नता और निश्चिंतता होना। पास में माल रहने से बेफिक्री होना।

२. कलेजा। साहस। सामर्थ्य। पित्ता। जैसे,—किसका पोटा है जो उनके विरुद्ध कुछ कर सके। ३. समाई। औकात। बिसात। ४. आँख की पलक। ५. उँगली का छोर।

पोटा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पोत] १. चिड़िया का बच्चा जिसे पर न निकले हों। गेदा। २. अंकुर। उ०—गाजी माँहि भया कुछ धीरज पोटा सा दरसाया।—दरिया० बानी, पृ० ६६।

यौ०—बैनी पोटे।

पोटा[2]—संज्ञा पुं० [?] नाक का मल या श्लेष्मा।

क्रि० प्र०—बहना।

पोटा[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्त्री जिसमें पुरुष के से लक्षण हों। नृलक्षणा स्त्री। पुरुषलक्षणों से युक्त। जैसे, दाढ़ी या मूँछ के स्थान पर बाल उगना। २. दासी। ३. घड़ियाल।

पोटाश, पोटास—संज्ञा पुं० [अं० पोटाश] वह क्षार जो पहले जलाए हुए पौधों की राख से निकाला जाता था, पर अब कुछ खनिज पदार्थों से प्राप्त होता है।

विशेष—पौधों की राख को पानी में घोलकर निथारते हैं फिर उस निथरे हुए पानी को औटाते हैं जिससे क्षार गाढ़ा होकर नीचे जम जाता है। चुकंदर की सीठी (चीनी निकालने पर बची हुई) और भेड़ों के ऊन से भी पोटास निकलता है। शोरा, जवाखार आदि पोटास ही हैं। पोटास औषध और शिल्प में काम आता है।

पोटिक—संज्ञा पुं० [सं०] पिटिका। फोड़ा [को०]।

पोटी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोटा] दे० 'पोटा'।

पोटी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा नक्र। बड़ा घड़ियाल। २. गुह्य। गुदा [को०]।

पोटैशियम साइनाइड—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अत्यंत जहरीला श्वेत और स्वच्छ पदार्थ जो कच्ची धातु से सोने को अलग करने और कीड़े मारने आदि के काम में आता है।

पोट्टल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पोटल'।

पोट्टलिका, पोट्टली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पोटली। गठरी [को०]।

पोठी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली। उ०—पोठी नाले के बाहर आकर उछल रही थी।—रति० पृ० ११४।

पोतु—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपाल का अस्थितल। खोपड़ी के ऊपरी भाग की हड्डी [को०]।

पोढ़[पु]†—वि० [सं० प्रौढ, प्रा० पोढ] दे० 'पोढ़ा'। उ०—(क) मान न करसि, पोढ़ कर लाड़ू। मान करत रिस माने चाँड़ू।—जायसी ग्रं०, पृ० १३१। (ख) मोही सुरति पोढ़ पद तारी। देख भाव लखि सूरति निहारी।—घट०, पृ० २७१।

पोढ़ा—वि० [सं० प्रौढ, प्रा० पोढ] [स्त्री० पोढ़ी] १. पुष्ट। दृढ़ मजबूत। उ०—कहीं लटका साँप पिटारी है कहीं बिकती खाट खटोला है। जब देखा खूब तो आखिर को ना पोढ़ी खाट न चरखा है।—नजीर (शब्द०)। २. दृढ़। कड़ा। कठिन। कठोर। उ०—दीन्ही हेर धीर नहिं पोढ़ा। कंतन हेर कीन्ह जिय पौढ़ा।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—जी पोढ़ा करना—जी कड़ा करना। चित्त को दृढ़ करना जिससे भय, पीड़ा दुःख आदि से विचलित न हो।

पोढ़ाना†[1]—क्रि० अ० [हिं० पोढ़] १ दृढ़ होना। मजबूत होना। २. पक्का पड़ना।

पोढ़ाना[2]—क्रि० स० दृढ़ करना। पक्का करना। पढ़ाना।

पोढ़ाना[3]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पौढ़ाना'। उ०—गाढ़े की ठाकुर जी को पोढ़ाइ बाहिर की टहल सो पहोंचि प्रसाद लै मुरारीदास सोवते।—दो सौ बावन०, भाग १, पृ० १०२।

पोत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पशु पक्षी आदि का छोटा बच्चा। २. छोटा पौधा। ३ वह गर्भस्थ पिंड जिसपर झिल्ली न चढ़ी हो।

यौ०—पोतज = जो जरायुज न हो।

४. दस वर्ष का हाथी का बच्चा। ५. घर की नींव। ६ कपड़ा। पट। ७. कपड़े की बुनावट। जैसे, जैसे—इस कपड़े का पोत अच्छा नहीं है। ८. नौका। नाव। ९. जहाज।

यौ०—पोतधारी। पोतप्लव = मल्लाह। माझी। पोतभंग = पोत का टूटना। पोतरथ = पतवार। पोतवणिक। पोतवाह।

पोत[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रोता, प्रा० पोता] १. माला या गुरिया का दाना। २. काँच की गुरिया का दाना। यह अनेक रंगों का होता है और कोदों के दाने के बराबर होता है। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ इसे तागे में गूँथकर गले में पहनती हैं। इसे लोग छड़ी और नैच आदि पर भी लपेटते हैं। उससे सोनार गहनों को भी साफ करते हैं। उ०—(क) पतिव्रता मैली भली गले काँच की पोत। सब सखियन में देखिए ज्यों सूरज की जोत।—कबीर (शब्द०)। (ख) झीना कामरि काज कान्ह ऐसी नहिं कीजै। काँच पोत गिर जाइ नंद घर गयो न पूँजै।—सूर (शब्द०)। (ग) फिरि फिरि कहा सिखावत मौन।···यह मत जाइ तिन्हैं तुम सिखवो जिनही यह मत सोहत। सूर आज लौं सुनी न देखी पोत सूतरी पोहत।—सूर (शब्द०)।

पोत[3]—संज्ञा पुं० [सं० प्रवृत्ति, प्रा० पउत्ति] १ ढंग। ढब। प्रवृत्ति। उ०—नीच हिए हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत। ज्यों ज्यों माथे मारिए त्यों त्यों ऊँचे होत।—बिहारी (शब्द०)। २. बारी। दाँव। पारी। अवसर। ओसरी।

मुहा०—पोत पूरा करना = कमी पूरी करना। ज्यों त्यों करके किसी काम को पूरा करना। पोत पूरा होना = कमी पूरी होना। ज्यों त्यों करके किसी काम का पूरा होना।

पोत[4]—संज्ञा पुं० [फ़ा० फोता] जमीन का लगान। मुकर।

पोतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'पोत'। २. बच्चा। शिशु। उ०—जो सब पातक पोतक डाकिनि।—मानस २। १३२। ३. महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

पोतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूतिका। पोई नाम की लता।

पोतड़ा—संज्ञा पुं० [सं० पोत = (कपड़ा)] वह कपड़ा जो बच्चों के चूतड़ों के नीचे रखा जाता है। गंतरा। उ०—रेशम हंदा पोतड़ा पावलिए पोढ़ाय।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० २७।

यौ०—पोतड़ों के रईस = खानदानी अमीर।

पोतदार—संज्ञा पुं० [हिं० पोत + दार] १. वह पुरुष जिसके पास लगान कर का रुपया रखा जाय। खजानची। २. पारखी। वह पुरुष जो खजाने में रुपया परखने का काम करता हो।

पोतधारी—संज्ञा पुं० [सं० पोतधारिन्] जहाज का मालिक [को०]।

पोतन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पवित्र। स्वच्छ। शुद्ध।

पोतन[2]—वि० पवित्र करनेवाला।

पोतनहर†[1]—संज्ञा स्त्री० [पोतन + हर (प्रत्य०)] १. वह बरतन जिसमें घर पोतने के लिये मिट्टी घोलकर रखी हो। २. वह स्त्री जो घर पोते या घर पोतने का काम करती हो।

पोतनहर[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पोत+नाल] आँत। अँतड़ी।

पोतना[1]—क्रि० स० [सं० प्लुत, प्रा० पुत्त+हिं० ना (प्रत्य०) अथवा सं० पोतन (= पवित्र)] १. किसी गीले पदार्थ को दूसरे पदार्थ पर फैलाकर लगाना। गीली तह चढ़ाना। चुपड़ना। जैसे, रोगन पोतना, तेल पोतना, चूना पोतना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. किसी गीले या सूखे पदार्थ को किसी वस्तु पर ऐसा लगाना कि वह उसपर जम जाय। जैसे, कालिख पोतना, अबीर पोतना, मिट्टी पोतना, धूल पोतना, रंग पोतना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

३. किसी स्थान को मिट्टी, गोबर, चूने आदि से लीपना। चूने मिट्टी, गोबर आदि का गीला लेप चढ़ाकर किसी स्थान को स्वच्छ करना। जैसे, घर पोतना, आँगन पोतना। उ०—(क) सोमरूप भल भयो पसारा। धवलसिरी पोतहिं घर बारा।—जायसी (शब्द०)। (ख) पोता मँडप अगर औ चंदन। देव भरा अरगज औ बंदन।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

पोतना[2]—संज्ञा पुं० वह कपड़ा जिससे कोई चीज पोती जाय। पोतने का कपड़ा। पोता।

पोतरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पोथी'। उ०—परवत मेरी पोतरी, श्री सिरजोर निदान।—रा० रू०, पृ० ३३२।

पोतला—संज्ञा पुं० [हिं० पोतना] परांठा। तवे पर घी पोतकर सेंकी हुई चपाती।

पोतवाणिक—संज्ञा पुं० [सं० पोतवणिज्] वह व्यापारी जो समुद्र से व्यापार करता हो [को०]।

पोतवाह—संज्ञा संज्ञा पुं० [सं०] नाविक। नाव चलानेवाला [को०]।

पोतवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० पोत+वाहिनी] जहाजों का बेड़ा।

उ०—चलोगी चंपा, पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लादकर राजरानी सी जन्मभूमि के अंक में?—आकाश०, पृ० १४।

पोता[1]—संज्ञा पुं० [सं० पौत्र,+प्रा० पोत्त] बेटे का बेटा। पुत्र का पुत्र। उ०—तुम्हारे पोते से हमारी पोती का ब्याह होय तो बड़ा आनंद है।—लल्लू (शब्द०)।

पोता[2]—संज्ञा पुं० [सं० पोतृ>पोता] १. यज्ञ में सोलह प्रधान ऋत्विजों में से एक। २. पवित्र वायु। वायु। ३. विष्णु।

पोता[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० फोतह्] १. पोत। लगान। भूमिकर। २. अंडकोष।

पोता[4]—संज्ञा पुं० [हिं०] कलेजा। साहस। पित्ता। दे० 'पोटा'[2]। उ०—क्यों धरते धर धीर सबे भट होत कछू बल काहू के पोते।—हनुमान (शब्द०)।

पोता[5]—संज्ञा पुं० [हिं० पोतना] १. पोतने का कपड़ा। कूची जिससे घरों में चूना फेरा जाता है। २. घुली हुई मिट्टी जिसका लेप दीवार आदि पर करते हैं।

मुहा०—पोता फेरना = (१) दीवार आदि पर चूने मिट्टी आदि का लेप करके सफाई करना। (२) चौका लगाना। चौपट करना। (३) सफाई कर देना। सब कुछ लूट ले जाना।

३. मिट्टी के लेप पर गीले कपड़े का पुचारा जो भबके से अर्क उतारने में बरतन के ऊपर दिया जाता है। उ०—नैन नीर सों पोता किया। तस मद चुवा बरा जस दिया।—जायसी ग्रं०, पृ० ६५।

पोता[6]—संज्ञा पुं० [सं० पोत] १५ या १६ अंगुल लंबी एक प्रकार की मछली जो हिंदुस्तान की प्रायः सब नदियों में मिलती है।

पोताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोतना] दे० 'पुताई'।

पोताच्छादन—संज्ञा पुं० [सं०] तंबू। छोलदारी। डेरा।

पोताधान—संज्ञा पुं० [सं०] झाँवर। मछलियों के बच्चों का समूह।

पोताध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पोत + अध्यक्ष] जहाज का स्वामी। उ०—किसके लिये? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा नायक। अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।—आकाश०, पृ० ३।

पोतारनाⓊ†—क्रि० स० [सं० प्रोत्साहन] उत्साहित करना। प्रोत्साहन देना। उ०—उण वेला उदाहुरे, तोले चंद्र प्रहास। रजपूतां पोतारियां, भुज धारियां अकास।—रा० रू०, पृ० २४३।

पोतारा—संज्ञा पुं० [हिं० पोतना] दे० 'पुतारा'।

पोतारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुतारा] पोतने का कपड़ा।

पोतास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कपूर। बरास। भीमसेनी कपूर। विशेष—दे० 'कपूर'।

पोतीⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पोत'। उ०—गर पोति जोति बिचारि, ससि चरन फंदय डारि।—पृ० रा०, १४।१५०।

पोतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पोई की बेल। २. वस्त्र। कपड़ा।

पोतिया[1]—संज्ञा पुं० [सं० पोत] १. वह कपड़े का टुकड़ा जिसे साधु पहनते हैं या जिसे पहनकर लोग नहाते हैं। २. वह छोटी थैली जिसे लोग पास में लिए रहते और जिसमें चूना, तंबाकू, सुपारी आदि रखते हैं। छोटा बटुआ।

पोतिया—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का खिलौना।

पोती[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोता] पुत्र की पुत्री। बेटे की बेटी।

पोती[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोतना] १. मिट्टी का लेप जो हँड़िया की

पेंदी पर इसलिये चढ़ाया जाता है जिसमें अधिक आँच न लगे। २. पानी का वह पुतारा जो मद्य चुवाते समय बरतन पर फेरा जाता है। इससे भभके से उठी हुई भाप उस बरतन में जाकर ठंढी हो जाती है और मद्य के रूप में टपकती है। ३. पुतारा देने की क्रिया।

पोती[२]—संज्ञा स्त्री० [देशी] शीशा (को०)।

पोत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नावों का समूह (को०)।

पोत्र[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूअर का थूथन। २. वज्र। ३. एक यज्ञपात्र जो पोता नामक याजक के पास रहता है। ४. नाव। पोत। ५. नाव का डाँड़। ६. हल की नोक या फाल (को०)। ७. वस्त्रखंड। कपड़ा। वस्त्र (को०)।

पोत्र[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० पोत्री, पोती] दे० 'पौत्र'। उ०—पुत्र बने पौत्रे बहुत प्रत दिसे सपरवार। —प्राण०, पृ० २४७।

पोत्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

पोत्री—संज्ञा पुं० [सं० पोत्रिन्] सूअर।

पोथ—संज्ञा पुं० [सं०] आघात। प्रहार (को०)।

पोथकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नेत्ररोग जिसमें आँख में खुजली और पीड़ा होती है, पानी बहता है और सरसों के बराबर छोटी छोटी लाल लाल फुंसियाँ निकल आती हैं।

पोथा—संज्ञा पुं० [सं० पुस्तक, प्रा० पुत्थअ, पोत्थअ हिं० पोथी] १. कागजों की गड्डी। २. बड़ी पोथी। बड़ी पुस्तक (व्यंग या विनोद)। जैसे,—तुम इतना बड़ा पोथा लिए क्या फिरते हो ?।

पोथिया[१]—संज्ञा पुं० [सं० पोतिया] दे० 'पोतिया'।

पोथिया[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० पुस्तिका, प्रा० पोत्थिआ, पोतथिया] दे० 'पोथी'।

पोथी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० पुस्तिका, प्रा० पोत्थिआ] पुस्तक। उ०—पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोइ। एकै अक्षर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होइ। —कबीर (शब्द०)।

यौ०—पोथीखाना = ग्रंथागार। पुस्तकालय। जिस स्थान पर सिर्फ किताबें रखी जायँ। उ०—बड़ी कठिनाइयों के बाद राज्य पुस्तकालय के पोथीखाना में सूरसागर की एक प्रति दो खंडों में मिली—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १२०। पोथी पंडित = ऐसा पठित व्यक्ति जिसे केवल पुस्तकीय ज्ञान हो, व्यावहारिक ज्ञान न हो। उ०—पुराने आचार्यों से इस प्रकार का विनोद कोई बड़ा उस्ताद ही कर सकता था, निरा पोथीपंडित कभी ऐसा करने की हिम्मत न करता। —बा० इ० क०, पृ० ६८८।

पोथी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोत (= गड्डा)] लहसुन की गाँठ।

पोद[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पौद'। उ०—इसकी पोद थोड़े दिन पहले एक मनोहर बाग से उखाड़कर सूरत में लगाई गई थी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १२।

पोदना—संज्ञा पुं० [अनु० फुदकना] १. छोटी चिड़िया। उ०—कुछ लाल चिड़े पोदने पिद्दे ही न खुश थे। चिड़की भी समझती थी उसे आँख का तारा। —नजीर (शब्द०)। २. छोटे डील डौल का पुरुष। नाटा आदमी। ठिगना आदमी।

मुहा०—पोदना सा = बहुत छोटा सा। जरा सा।

पोदीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० पोदीनह्] दे० 'पुदीना'।

पोद्दार[१]—संज्ञा पुं० [सं० पोत, हिं० पोत + दार] १. वह मनुष्य जो गाँजे की जातियाँ उसके स्त्री० और पुं० भेद तथा खेती के ढंग जानता हो।

पोद्दार[२]—स्त्री० पुं० [फ़ा० फोतहदार, हिं० पोतदार] १. दे० 'पोतदार।' २. मारवाड़ी वैश्यों का एक वर्ग।

पोना[१]—क्रि० स० [सं० पूप, हिं० पूआ + ना (प्रत्य०)] गीले आटे की लोई को हाथ से दबा दबाकर घुमाते हुए रोटी के आकार में बढ़ाना। गीले आटे की चपाती गढ़ना। जैसे, आटा पोना, रोटी पोना। २. रोटी पकाना। उ०—(क) तुमहिं ग्रबै जेइँय घर पोई। कमल न भेंटहिं, भेंटहिं कोई।—जायसी (शब्द०)। (ख) सूर आँखि मजीठ कीनी निपट काँची पोय। —सूर (शब्द०)।

पोना[२]—क्रि० स० [सं० प्रोत, प्रा० पोइअ हिं० पोव + ना (प्रत्य०)] पिरोना। गूथना। पोहना। उ०—(क) हरि मोतियन की माल है पोई काँचे धाग। जतन करो झटका घना टूटे की कहुँ लाग।—कबीर (शब्द०)। (ख) कंचन को कठुला मनि मोतिनि बिच बघनहँ रह्यो पोइ (री)। देखत बनै, कहत नहिं आवै उपमा कों नहिं कोइ (री) ।—सूर०, १०।१४८। (ग) दिनकर कुल मनि निहारि प्रेम मगन ग्राम नारि परसपर कहैं सखि अनुराग ताग पोऊ। तुलसी यह ध्यान सुधन जा दिन मानि लाभ सधन कृपन ज्यों सनेह सोहिए सुनेह जोऊ।—तुलसी (शब्द०)।

पोना[३]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पौना'।

पोप—संज्ञा पुं० [अं०] ईसाइयों के कैथलिक संप्रदाय का प्रधान धर्मगुरु।

विशेष—इसका प्रधान स्थान यूरोप में इटली राज्य का रोम नगर है। चौदहवीं शताब्दी तक संसार के सभी ईसाई धर्मावलंबी राज्यों पर पोप का बड़ा प्रभाव था। पंद्रहवीं शताब्दी में लूथर नामक एक नए संप्रदायस्थापक की शिक्षा से पोप का अधिकार घटने लगा, पर पुराने कैथलिक संप्रदाय के माननेवालों में पोप का अभी वैसा ही आदर है। उनका अभिषेक आदि उसी प्रकार किया जाता है जैसे महाराजाओं का होता है।

यौ०—पोपलीला—धार्मिक आडंबर। झूठा प्रदर्शन। ढोंग।

पोपला—वि० [हिं० पुलपुला] [वि० स्त्री० पोपली] १. जो भीतर के भराव के कम होने या न रहने के कारण पचक गया हो। पचका और सुकड़ा हुआ। २. बिना दाँत का। जिसमें दाँत न हों। जैसे, बुड्ढी का पोपला मुँह। ३. जिसके मुँह में दाँत न हों। जैसे पोपला बुड्ढा।

पोपलाना—क्रि० अ० [हिं० पोपला + ना (प्रत्य०)] पोपला होना। उ०—डाढ़ी नाक याक मा मिलगै बिना दाँत मुँह अस पोपलान। ढाढ़िहि पर बहि बहि आवति है कबौं तमाखू जो फाँकन।—प्रताप (शब्द०)।

पोपली—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोपला] आम की गुठली घिसकर बनाया हुआ बाजा जिसे लड़के बजाते हैं।

पोपो†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] मलत्याग करने की इंद्रिय । गुदा ।

पोम†—संज्ञा पु० [सं० पद्म, प्रा०पउम, पोम] [स्त्री० पोमिन, पोमिनि, पोमिनी] दे० 'पद्म' ।

पोमाना(ु)†—क्रि० प्र० [सं० प्रफुल्ल या सं० पद्म, प्रा० पउम, पोम] फूलना । गर्व करना । पुंसत्व का अभिमान करना । उ०—पापड़ फोड़ पोमावही मन में मावड़ियाँह ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २,पृ०१६ ।

पोमिन(ु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्मिनी, प्रा० पोमिणी] दे० 'पद्मिनी' । उ०—पोमिन बन नहिं चरहि नहिन संचरहि कुमुद बन । ईव पेत परहरहि जोर पर हुय विरत्त मन ।—पृ० रा०, ६ । १०१ ।

पोय†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पोई' ।

पोयण(ु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० पुरइन या प्रा० पोमिए] कमल । पुरइन । उ०—मेवाणों तिण मांह पोयण फूल प्रताप सी ।—अकबरी०, पृ० ४४ ।

पोया—संज्ञा पुं० [सं० पोत] १. वृक्ष का नरम पौधा । २. बच्चा । ३. साँप का छोटा बच्चा । सँपोला ।

पोर¹—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्व] १. उँगली की गाँठ या जोड़ जहाँ से वह झुक सकती है । २. उँगली में दो गाँठों या जोड़ों के बीच की जगह । उँगली का वह भाग जो दो गाँठों के बीच हो । ३. ईख, बाँस, नरसल, सरकंडे आदि का वह भाग जो दो गाँठों के बीच हो । उ०—(क) प्रीति सीखिए ईख सो पोर पोर रस होय । (शब्द०) (ख) पोर पोर तन आपनो अनत बिधायो जाय । तब मुरली नंदलाल पै भई सुहागिन आय । —स० सप्तक पृ० २१० ।

यौ०—पोर पोर = पोर पोर में ।

४. रीढ़ । पीठ । उ०—मनमोहन खेलत चौगान । द्वारावती कोट कंचन में रच्यो रुचिर मैदान । यादव वीर बराए इक इक, इक हलधर, इक आपनी ओर । निकसे सबै कुँवर असवारी उच्चश्रवा के पोर ।—सूर (शब्द०) ।

पोर²—संज्ञा पुं० [?] जहाज की रखवाली या चौकसी करने-वाले कर्मचारी या मल्लाह । (लश०) ।

पोरसा(ु)—संज्ञा पुं० [सं० पुरुषत्व] पुरुष । स्वामी । उ०—(क) सतगुरु पारस पोरसा आखै अभय भंडार ।—रज्जब०, पृ० १० । (ख) पारस नह नह पोरसो, पातर राखै पास । —बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३ ।

पोरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोर] १. लकड़ी का मंडलाकार टुकड़ा । लकड़ी का गोल कुंदा । २. कुंदे की तरह मोटा आदमी ।

पोरिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोर + इया (प्रत्य०)] चाँदी का एक गहना जो हाथ पर की उँगलियों की पोरों में पहना जाता है । यह छल्ले का सा होता है, पर इसमें घुँघरू के गुच्छे या झब्बे लगे रहते हैं ।

पोरिया†²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पौरिया' । उ०—सो पोरिया नै प्रभुन कों खबरि करी ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६६ ।

पोरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कड़ी मिट्टी ।

पोरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्व, हिं० पोर] दे० 'पोर' । उ०—हिला सहज विश्वास हृदय का अंगुलियों की कँपी पोरियाँ ।—हंस०, पृ० २५ ।

पोरी†³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पौरी' । उ०—अब सिंघ द्वार की पोरी पर बैठिबे को कौन कों आज्ञा करत हो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१८ ।

पोरुआ—संज्ञा पुं० [हिं० पोर + उआ (प्रत्य०)] पोरिया । पौरिया ।

पोर्च—संज्ञा पुं० [अं०] बरामदा । दालान ।

पोर्चुगीज—वि० [अं०] दे० 'पुर्तगीज' ।

पोर्ट—संज्ञा पुं० [पुर्त० पोर्टो] १. अंगूर से बनी हुई एक प्रकार की शराब ।

विशेष—यह भभके से नहीं चुआई जाती, अंगूर के रस को धूप में सड़ाकर बनाई जाती है । इसमें मादकता नाम मात्र की होती है, इससे इसका सेवन पुष्टई के रूप में लोग करते हैं । इसे द्राक्षासव कह सकते हैं ।

२. समुद्र या नदी के किनारे वह स्थान जहाँ जहाज माल उतारने या लादने या मुसाफिर उतारने या चढ़ाने के लिये बराबर आकर ठहरते हैं । बंदर । बंदरगाह । जैसे, कलकत्ता पोर्ट । ३. समुद्र के किनारे, खाड़ी या नदी के मुहाने पर बना हुआ या प्राकृतिक स्थान जहाँ जहाज तूफान से अपनी रक्षा कर सकते हैं ।

पोर्टर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो बोझ ढोता हो । विशेषकर रेलवे स्टेशन और जहाज के डक पर मुसाफिरों का माल असबाब ढोनेवाला । रेलवे कुली । डक कुली । जैसे,—उस दिन बंबई के विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन के पोर्टरों में गहरी मार पीट हो गई ।

पोल¹—संज्ञा पुं० [हिं० पोला] १. शून्य स्थान । अवकाश । खाली जगह । जैसे, ढोल के भीतर पोल । २. खोखलापन । भराव का अभाव । सारहीनता । अंतःसारशून्यता ।

यौ०—पोलदार = जिसमें पोल या खोखलापन हो । पोला । खोखला । पोलपाल = खोखलापन । जो भीतर से एकदम खाली हो । उ०—ये सब पोलपाल कर लेखा । मिथ्या पढ़ै कहै बिन देखा ।—घट०, पृ० ५६२ ।

मुहा०—(किसी की) पोल खुलना = भीतरी दुरवस्था प्रगट हो जाना । छिपा हुआ दोष या बुराई प्रगट हो जाना । भंडा फूटना । (किसी की) पोल खोलना = भीतरी दुरवस्था प्रगट करना । छिपे हुए दोष या बुराई को प्रगट करना । भंडा फोड़ना ।

पोल²—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का फुलका । २. राशि । पुंज (को०) । ३. मान । परिमाण (को०) ।

पोल³—संज्ञा पुं० [सं० प्रतोली, प्रा० पओली] १. कहीं जाने का

फाटक। प्रवेशद्वार। दरवाजा। उ०—(क) पोल जड़े रवि पेखतां ओलें चढ़िया दीह। मिटै न अंदल जोधपुर बीबां चढे न दीह।—रा० रू०, पृ० २५७। (ख) रावली पोले आविया —बी० रासो, पृ० ६१। २. आँगन। सहन।

पोल⁴—संज्ञा पुं० [अं०] १. लकड़ी या लोहे आदि का बड़ा लट्ठा या खंभा। २. जमीन की एक नाप जो ५ गज की होती है। ३. वह ५॥ गज की जरीब जिससे जमीन नापते हैं। ४. ध्रुव।

पोल†⁵—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्व] दे० 'पोरे'। उ०—पोल पोल अगरा जग लूटी।—प्राण०, पृ० १३०।

पोलक—संज्ञा पुं० [हिं० पूला] लंबे बाँस के छोरे पर बरछी में बँधा हुआ पयाल जिसे लूक की तरह जलाकर बिगड़े हाथी को डराते हैं।

पोलच—संज्ञा पुं० [हिं० पोल] १. वह परती भूमि जो पिछले वर्ष रबी बोने के पहले जोती गई हो। जोनाल। २. वह ऊसर या बंजर भूमि जिसे जुते या टूटे तीन वर्ष हो गए हों

पोलचा—संज्ञा पुं० [हिं० पोल] दे० 'पोलच'।

पोला¹—वि० [हिं० फूलना या सं० पोल (= फुलका)] [स्त्री० पोली] १ जो भीतर से भरा न हो। जिसके भीतर खाली जगह हो। जो ठोस न हो। खोखला। जैसे, पोला बाँस, पोली नली। २. अंतःसारशून्य। निःसार। तत्वहीन। तुच्छ। उ०—है प्रभु मेरो ही सब दोस।···बेष बचन बिराग, मन अघ अोगुनन को कोस। राम प्रीति प्रतीति पोली कपट करतब ठोस।—तुलसी (शब्द०)। ३. जो भीतर से कड़ा न हो। जो दाब पड़ने से नीचे धँस जाय। पुलपुला। उ०—पर हाथी बुद्धिमान होते हैं, बहुधा पोला स्थान देखकर चलते हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

पोला²—संज्ञा पुं० [हिं० पूला] १. सूत का लच्छा जो परेती पर लपेटने से बन जाता है। २. गट्ठर। पूला। उ०—तब राजा और रानी दोनों नंगे पाँव होकर घास का पोला अपने सिर पर धरकर एक अँगोछी अपने अपने गले में डाले आकर सत्य गुरु के चरणों पर गिरे।—कबीर मं०, पृ० ५०६।

पोला³—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जो मध्यप्रदेश में बहुत होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी भीतर से बहुत सफेद और नरम निकलती है जिससे उसपर खुदाई का काम बहुत अच्छा होता है। वजन में भी यह भारी होती है। हल आदि खेती के सामान भी उससे बनाए जाते हैं। इसकी भीतरी छाल में रेशे होते हैं जो रस्सी बनाने के काम आते हैं। पेड़ बरसात में बीजों से उगता है।

पोलाद—संज्ञा पुं० [फ़ा० फ़ौलाद] दे० 'फौलाद'।

पोलारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोल] छेनी के आकार का एक छोटा औजार जिससे सोनार खोरिया, कंगन, घुंघरू आदि के दानों को फिरफिरे में रखकर ढालते हैं। यह तीन चार अंगुल का होता है और इसकी नोक पर छोटा सा गोल दाना बना रहता है।

पोलाव—संज्ञा पुं० [हिं० पुलाव] दे० 'पुलाव'। उ०—कलिया नान पोलाव पेट भरि खाय कै।—पलटू०, पृ० ६७।

पोलिंद—संज्ञा पुं० [सं० पौलिन्द] जहाज का मस्तूल (को०)।

पोलिंग बूथ—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ कौंसिल आदि के निर्वाचन या चुनाव के अवसर पर वोट लिए जाते हैं। मतदानकक्ष।

पोलिंग स्टेशन—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ कौंसिल या म्युनिसिपल्टी निर्वाचन के अवसर पर लोगों के वोट लिए और दर्ज किए जाते हैं। मतदानकेंद्र।

पोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फुलका। रोट। पूरी (को०)।

पोलिटिकल—वि० [अं०] राज्यप्रबंध संबंधी। शासन संबंधी। राजनीतिक। जैसे, पोलिटिकल काम, पोलिटिकल चाल।

पोलिटिकल एजेंट—संज्ञा पुं० [अं०] वह राजपुरुष जो दूसरे राज्य में अपने राज्य की ओर से उसके स्वत्व और व्यापारादि की रक्षा के लिये रहता है। राजप्रतिनिधि।

पोलिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पोला] एक पोला गहना जिसे स्त्रियाँ पैरों में पहनती हैं।

पोलिया²—संज्ञा पुं० [हिं० पौर, राज० पोल] दे० 'पौरिया'।

पोलिश—वि० [अं०] पोलैंड से संबंधित। पोलैंड का।

पोली¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] जंगली कुसुम या बर्रे जिसका तेल अफरीदी मोमजामा बनाने के काम में आता है।

पोली²—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की पूरी। पूआ। फुलका (को०)।

पोलो—संज्ञा पुं० [अं०] चौगान की तरह का एक अँगरेजी खेल जो घोड़े पर चढ़कर खेला जाता है।

पोवना†—क्रि० स० [हिं० पोहना] दे० 'पोना'। उ०—अपने दग कोरनि डोरनि में मन को मनुका मनु पोवतु है।—अनुराग बाग (शब्द०)।

पोश—प्रत्य० [फा०] ढकनेवाला। छिपानेवाला जैसे, ऐबपोश।

पोशाक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पहनने के कपड़े। वस्त्र। परिधान। पहनावा। उ०—कीन्हे हैं पोशाक कारी, अंग राग कज्जल को, लोहे के विभूषण, त्यों दूषण हथ्यार हैं।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—पोशाक बढ़ाना = कपड़े उतारना।

विशेष—यह शब्द फारस से नहीं आया है, यहीं हिंदुस्तान में बना है।

पोशाकी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक कपड़ा जो गाढ़े से बारीक और तनजेब से मोटा होता है। २. अच्छा कपड़ा। पोशाक।

पोशिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लिबास। कपड़ा। पहनावा। उ०—जिसे तूने अजर जामा पिन्हाना। हुवस उसको न पोशिश परनियाँ पर।—कबीर मं०, पृ ४४४।

पोशीदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गुप्ति। छिपाव।

पोशीदा—वि० [फ़ा० पोशीदह्] गुप्त। छिपा हुआ।

पोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पोषण। पुष्टि। उ०—पादप ते इहि सींचते, पावै अंग अंग पोष। पुरवला ज्यों बरनदे सब

आशिवों संतोष। —प्रियावास (शब्द०)। २. अभ्युदय। उन्नति। ३. आधिक्य। वृद्धि। बढ़ती। ४. धन। ५. तुष्टि। संतोष। उ०—तेहि को होइ नाद पै पोषा। तब परि हूँकै होइ संतोषा। —जायसी (शब्द०)। (ख) कोऊ आवे भाव लै कोऊ लै आवै अभाव। साधु दोऊ को पोष दे, भाव न गिनै अभाव। —कबीर (शब्द०)।

पोषक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. पालक। पालनेवाला। २. वर्धक। बढ़ानेवाला। ३. सहायक।

पोषण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० पोषित, पुष्ट, पोषणीय, पोष्य] १. पालन। २. वर्धन। बढ़ती। ३. पुष्टि। ४. सहायता। जैसे, पुष्टपोषण।

पोषध—संज्ञा पुं० [सं० उपवसथ > उपोषथ > पोषध] उपवासव्रत (बौद्ध)।

पोषन(पु)—वि० [सं० पोषण] पोषण करनेवाला। उ०—पुष्टि प्रजाद भजन, रस, सेवा, निज जन पोषन भरन। —नंद० ग्रं०, पृ० ३२६।

पोषना—क्रि० स० [सं० पोषण] पालना। पोषण करना। उ०—(क) का मैं कीन जो काया पोषी। दोष मोहिं आपुनि निर्दोषी। —जायसी (शब्द०)। (ख) माधव जू जो जन ते बिगरै। तउ कृपालु करुनामय केशव प्रभु नहिं जीय धरै। जैसे जननि जठर अंतरगत सुत अपराध करै। तोऊ जतन करै अरु पोषै निकसै अंक भरै। —सूर०, १।११७। (ग) राम सुप्रेमहिं पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी। —तुलसी (शब्द०)। (घ) अजमेर चित्तौड़ जु बोलि विप्र पोष्या जाचक सतोष्या। —ह० रासो, पृ० ३३।

पोषयित्ता—वि० [सं० पोषयितृ] दे० 'पोषिता'।

पोषयित्नु—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल। कोयल [को०]।

पोषर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर] दे० 'पोखर'। उ०—डोलत बिपुल बिहंग बन, पियत पोषरनि बारि। —तुलसी ग्रं०, पृ० १०६।

पोषित—वि० [सं०] पाला हुआ।

पोषिता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० पोषितृ] पोषक। पोषण प्रदान करनेवाला। भरणपोषण करनेवाला [को०]।

पोषी—वि० [सं० पोषिन्] पोषक। पालक। भरणपोषण करनेवाला [को०]।

पोष्टा[1]—वि० [सं० पोष्टृ] पालनेवाला।

पोष्टा[2]—संज्ञा पुं० कंजा। करंज।

पोष्य[1]—वि० [सं०] पालने योग्य। पालनीय। जिसका पालन पोषण कर्तव्य हो।

विशेष—माता, पिता, गुरु, पत्नी, संतान, अभ्यागत, शरणागत इत्यादि पोष्य वर्ग में हैं।

पोष्य[2]—संज्ञा पुं० भृत्य। नौकर। दास।

पोष्यपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. बालक। पुत्र के समान पाला हुआ लड़का। २. दत्तक पुत्र।

पोष्यवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] माता, पिता, गुरु आदि जिनका पालन करना कर्तव्य है। दे० 'पोष्य[1]'।

पोष्यसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पोष्यपुत्र' [को०]।

पोस[1]—संज्ञा पुं० [सं० पोष] पालने की कृतज्ञता। पालनेवाले के साथ प्रेम या हेलमेल। जैसे,—कुत्ते बहुत पोस मानते हैं; तोते पोस नहीं मानते। २. तुष्टि। संतोष। उ०—कोऊ आवै भाव लै, कोउ लै आवै अभाव। साधु दोऊ को पोस दे, भाव न गिनै अभाव। —कबीर (शब्द०)।

पोस†[2]—संज्ञा पुं० [सं० पौष] पौष महीना। पूस का मास। उ०—देखी सखी हिव लागै छइ पोस। —बी० रासो, पृ० ६७।

पोस(पु)[3]—वि० [सं० पुष्ट] पुष्ट। श्रेष्ठ। उ०—बरनत हैं उल्लास सो, सकल सुकवि मति पोस। —भूषण ग्रं०, पृ० ६१।

पोस(पु)[4]—संज्ञा पुं० [फ़ा० पोश] चादर। बिछावन। उ०—लगी मिठाई रासि हुहूँ दिसि दीपक धरे कतारी। बिछी पलँग पयफेनु मैनु सम पोस परयो रुचिकारी। —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५।

पोसत(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० पोस्त] अफीम का ढोढ़ या डोडा। पोस्त। उ०—पोसत माँहि अफीम है वृक्षन में मधु जानि। देह माँहि यों आतमा सुंदर कहत बखानि। —सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७८१।

पोसती(पु)—वि० [फ़ा० पोस्ती] अफीमची। दे० 'पोस्ती'। उ०—जैसे काहू पोसती की पाग परी भूमि पर, हाथ लै के कहै एक पाग मैं तो पाई हौ। —सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५८१।

पोसन—संज्ञा पुं० [सं० पोषण] पालन। रक्षा। उ०—मधुरा हूँ तें गए, सखी री! अब हरि कारे कोसन। यह अचरज है अति मेरे जिय, यह छाँड़न वह पोसन। —सूर (शब्द०)।

पोसना—क्रि० स० [सं० पोषण] १. पालना। रक्षा करना। उ०—राम सुस्वामि कुसेवक मों सो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। —तुलसी (शब्द०)। २. (पशु को) आहार आदि देकर अपनी रक्षा में रखना। दाना पानी देकर रखना। जैसे, कुत्ता पोसना। ३. आवृत करना। आच्छादित करना। ४. पोंछना।

पोसपोन—वि० [अं० पोस्टपोन] दे० 'पोस्टपोन'।

पोसाख(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पोशाक'। उ०—मावड़िया बीठां फुरै, बत हिय माँहि पयट्ठ। पुरुष तणी पोसाख कर, बाई आँगण बयट्ठ। —बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २०।

पोस्ट—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. जगह। स्थान। २. पद। ३. नौकरी ४. डाकखाना। ५. स्तंभ।

पोस्टआफिस—संज्ञा पुं० [अं०] डाकघर। डाकखाना।

पोस्टकार्ड—संज्ञा पुं० [अं०] एक मोटे कागज का टुकड़ा जिसपर पत्र लिखकर खुला भेजते हैं।

पोस्टपोन—वि० [अं० पोस्टपोन] जो कुछ समय के लिये रोक दिया जाय। जिसका समय बढ़ा दिया जाय। मुलतवी। स्थगित। जैसे,—मामला पोस्टपोन हो गया।

पोस्टबाक्स—संज्ञा पुं० [अं०] डाक रखने की पेटी। डाक रखने का थैला।

पोस्टबैग—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'पोस्ट बाक्स'।

पोस्टमार्टम—संज्ञा पुं० [अं० पोस्टमारटम] १. मृत्यु का कारण आदि निश्चित करने के लिये मरने के बाद किसी प्राणी के शरीर की चीरफाड़। २. वह परीक्षा जो किसी प्राणी की लाश को चीर फाड़कर की जाय।

पोस्टमास्टर—संज्ञा पुं० [अं०] डाकघर का सबसे बड़ा कर्मचारी। डाकघर का अधिकारी।

पोस्टमैन—संज्ञा पुं० [अं०] डाकिया। इधर उधर चिट्ठी बाँटनेवाला। चिट्ठीरसाँ।

पोस्टर—संज्ञा पुं० [अं०] छपी हुई बड़ी नोटिस या विज्ञापन जो दीवारों पर चिपकाया जाता है। प्लैकर्ड। जैसे,—सेवासमिति ने शहर भर में पोस्टर लगवा दिए थे जिसमें यात्रियों को धूर्तों से सावधान रहने को कहा गया था।

क्रि० प्र०—चिपकना।—चिपकाना।—निकालना।—लगना।—लगाना।

पोस्टरइंक—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की छापे की स्याही जो लकड़ी के अक्षर छापने में काम आती है।

पोस्टल—वि० [अं०] पोस्ट संबंधी। डाक संबंधी।

पोस्टल आर्डर—संज्ञा पुं० [अं०] डाकघर से मिलनेवाला निश्चित मूल्य का छपा हुआ प्रमाणपत्र या कागज जिसको किसी भी डाकखाने से भुनाया जा सकता है।

पोस्टल गाइड—संज्ञा पुं० [अं०] वह पुस्तक जिसमें डाक द्वारा चिट्ठी, पारसल आदि भेजने के नियम और डाकघरों के नाम आदि रहते हैं।

पोस्टेज—संज्ञा स्त्री० [अं०] डाक द्वारा चिट्ठी, पारसल आदि भेजने का महसूल।

पोस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. छिलका। बक्कल। बकला। २. खाल। चमड़ा। ३. अफ़ीम के पौधे का डोंड़। ४. अफीम का पौधा। पोस्ता।

पोस्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० पोस्त] एक पौधा जिसमें से अफीम निकलती है।

विशेष—यह पौधा दो ढाई हाथ ऊँचा होता है। पत्तियाँ भाँग या गाँजे की पत्तियों की तरह कटावदार पर बहुत बड़ी और सुंदर होती हैं। डंठलों में रोइयाँ सी होती हैं। फागुन चैत में पौधा फूलने लगता है। पौधे के बीचोबीच से एक लंबी पतली नाल (डंठी) ऊपर की ओर जाती है जिसके सिरे पर चार पाँच पँखड़ियों का कटोरे के आकार का बहुत सुंदर गोल फूल बनता है। फारस और हिंदुस्तान में जो पोस्ता बोया जाता है उसका फूल भी सफेद और बीज के दाने भी सफेद होते हैं। पर रूम के राज्य में जो पोस्ता होता है उसके फूल ऊदी रंग के और दाने काले होते हैं। बहुत चटकीले लाल फूलवाले पौधे को ही 'गुलेलाला' कहते हैं जिसकी सुंदरता का फारसी के कवियों ने इतना वर्णन किया है और जो शोभा के लिये बगीचों में लगाया जाता है। फूल के बीच में एक घुंडी सी होती है जिसमें इधर उधर की किरनों के सिरों पर पुं० पराग होता है। पंखड़ियों के झड़ जाने पर घुंडी बढ़कर डोडे (ढेंढ) के रूप में हो जाती है। इसी को पोस्ते का डोडा या ढेंढ़ कहते है।

डोडा तीन चार अंगुल का होता है। डोडे के कुछ बढ़ जाने पर उसमें लोहे की नहरनी से खड़ा चीरा या पाँछ लगा देते हैं। पाँछ लगने से उसमें से हलके गुलाबी रंग का दूध निकलता है जो दूसरे दिन लाल रंग का होकर जम जाता है। यही जमा हुआ दूध अफीम है। एक डोडे से तीन चार बार दूध पोंछकर निकाला जा सकता है। फूल की पखड़ियों को भी लोग मिट्टी के गरम तवे पर इकट्ठा करके गोल रोटी के रूप में जमाते हैं जिसे पत्तर कहते हैं। सूखे डोडों से राई के से सफेद सफेद बीज निकलते हैं जो पोस्ते के दाने कहलाते हैं और खाए जाते हैं। पोस्ते की जाति के २५ या २६ पौधे होते हैं। पर उनमे से अफीम नहीं निकलती। वे शोभा के लिये बगीचो में लगाए जाते है।

पोस्ती—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वह जो नशे के लिये पोस्ते के डोडे को पीसकर पीता हो। उ०—पोस्ती पड़े कुएँ में तो यहीं चैन है। २. आलसी आदमी। ३. गुड़िया के आकार का कागज का एक खिलौना जिसके पेंदे में मिट्टी का ठोस गोल पिंड सा भरा रहता है। पेंदे से ऊपर की ओर यह गावदुम होता जाता है। यह सदा खड़ा ही रहता है, लेटाने से या ऊपर से गिरने से तुरंत खड़ा हो जाता है। इसे मतवाला या खड़े खाँ भी कहते हैं।

पोस्तीन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. गरम और मुलायम रोएँवाले समूर आदि कुछ जानवरो की खाल का बना हुआ पहरावा जिसे पामीर, तुर्किस्तान, मध्य एशिया के लोग पहनते हैं। २. खाल का बना हुआ कोट जिसमें नीचे की ओर बाल होते हैं। उ०—सर्द मुल्कवाले सदा ऊनी कपड़े और पोस्तीनों में लिपटे रहते है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

पोहना[1]†—क्रि० स० [सं० प्रोत, प्रा० पोइय हिं० पोय+ना (प्रत्य०)] १. पिरोना। गूँथना। उ०—(क) लटकन ललकि रहे मुख ऊपर पँचरग मणिगण पोहे री। मानहुँ गुरु शनि शुक्र एक ह्वै लाल भाल पर सोहे री।—सूर (शब्द०)। (ख) जुगुति बेधि पुनि पोहियहि रामचरित वर ताग। पहिरहिं सज्जन विमल उर सोभा अति अनुराग।—तुलसी (शब्द०)। २. छेदना। उ०—इक एक सिर सरनिकर छेदे नभ उड़त इमि सोहही। जनु कोपि दिनकर करनिकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहही।—तुलसी (शब्द०)। ३. लगाना। पोतना। उ०—भरोसो कान्ह को है मोंहि। सुनहि जसोदा कत तपति भय तू जनि व्याकुल होहि। पहिलैं पूतना कपट रूप करि आइ स्तनवि बिष पोहि। वैसी प्रबल सु हैं दिन बालक मारि दिखायी तोहि।—सूर०, १०। २२७५। ४. गड़ना। धुसाना। धँसाना। चलाना। उ०—सत्य, [illegible] पिय बात तुम्हारी। मो सों तुम [illegible] की [illegible]

है वह प्यारी।......सखी करी यह बात बनाई प्रबल दिखाई मोहिं। सूर स्याम यह प्रान पियारी उर मैं राखी पोहि।—सूर०, १०। २४१३। (ख) के मधुपावलि मंजु लसे अरविंद लगी मकरंदहि पोहे।—बेनी (शब्द०)। ५. पीसना। घिसना। ६. दे० 'पोना'।

पोहना²—वि० [स्त्री० पोहनी] घुसनेवाला। भेदनेवाला। उ०—यह धार अंग सी सोहनी, धार सैन्य मधि पोहनी। जुग धार धार श्रुति में विदित मृत्युपास मनमोहनी।—गोपाल (शब्द०)।

पोहमीⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पुहमी'। उ०—जहाँ पोहमी पवन नहिं जल अकाश।—तुरसी श०, पृ० १४५।

पोहर†¹—संज्ञा पुं० [हिं० पोहा] १. वह स्थान जहाँ पशु चराए जाते हैं या चरते हैं। चरहा। २. चरहा। घास या पशुओं के चरने का चारा। चरी।

पोहरⓤ—संज्ञा पुं० [सं० प्रहर] दे० 'पहर'। उ०—कारण बिण जग सूं करे, आठ पोहर उपगार।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ४७।

पोहराⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पहरा'। उ०—न को पिंड पोहरा न को चोर लागै। न को रैण सूता न को दिन्न जागै।—राम० धर्म०, पृ० १३३।

पोहा†—संज्ञा पुं० [सं० पशु] पशु। चौपाया।

पोहिया†—संज्ञा पुं० [हिं० पोहा + इया] चरवाहा।

पोहोपⓤ—संज्ञा पुं० [सं० पुष्प] पुहुप। फूल। पुष्प। उ०—इकपा पोहोप चढ़ाऊँ पूजा मनसा सेवा कीजै।—रामानंद०, पृ० २७।

पौंड—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'पाउंड'।

पौंडरीक¹—संज्ञा पुं० [सं० पौण्डरीक] १. स्थलपद्म। पुंडरी। २. एक प्रकार का कुष्ट जिसमें कमल के पत्ते के रंग का सा वर्ण हो जाता है। ३. एक यज्ञ का नाम।

पौंडरीक²—वि० [वि० स्त्री० पौण्डरीकी] पुंडरीक संबंधी। पुंडरीक निर्मित [को०]।

पौंडरीय, पौंडरीयक—संज्ञा पुं० [सं० पौण्डरीय, पौण्डरीयक] दे० 'पुंडर्य' [को०]।

पौंडर्य—संज्ञा पुं० [सं० पौण्डर्य] स्थलपद्म।

पौंड्र¹—वि० [सं० पौण्ड्र] १. पुंड्र देश का। २. पुंड्र देश का निवासी या राजा।

पौंड्र²—संज्ञा पुं० १. भीमसेन के शंख का नाम। २. मोटा गन्ना। पौंढ़ा। पौंडा। ३. पुंड्र देश (बिहार का एक भाग)। ४. पुंड्र देश के वसुदेव का पुत्र जो 'मिथ्या वासुदेव' कहलाया। दे० 'पौंड्रक'। ५. मनु के अनुसार एक जाति जो पहले क्षत्रिय थी पर पीछे संस्कारभ्रष्ट होकर वृषलत्व को प्राप्त हो गई थी। दे० 'पुंड्र—६'।

पौंड्रक—संज्ञा पुं० [सं० पौण्ड्रक] १. एक प्रकार का मोटा गन्ना। पौंढ़ा। २. एक पतित जाति। दे० 'पुंड्र—६'।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण में इसी जाति को कौंडिका (कलवारिन) और वैश्य से उत्पन्न एक संकर जाति लिखा है।

३. पुंड्र देश का एक राजा।

विशेष—यह जरासंध का संबंधी था। इसके पिता का नाम भी वसुदेव था, इससे यह अपने को वासुदेव कहता था। राजसूय यज्ञ के समय भीम ने इसे हराया था। श्रीकृष्ण के समान यह भी अपना रूप बनाए रहता था। नारद के द्वारा श्रीकृष्ण की महिमा सुनकर यह बहुत क्रुद्ध हुआ और कहने लगा, मेरे अतिरिक्त और दूसरा वासुदेव है कौन। इसने एकलव्य आदि वीरों को लेकर द्वारका पर चढ़ाई की पर कृष्ण के हाथ से मारा गया।

पौंड्रवत्स—संज्ञा पुं० [सं० पौण्ड्रवत्स] वेद की एक शाखा का नाम।

पौंड्रवर्धन—संज्ञा पुं० [पौण्ड्रवर्धन] पुंड्रवर्धन नगर।

पौंड्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पौंडा नाम का गन्ना। २. एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि। ३. लवा नाम का पक्षी। ४. पौंड्रिक नामक देश।

पौंश्चलीय—वि० [सं०] पुंश्चली संबंधी। कुलटा संबंधी। कुलटा का [को०]।

पौंश्चलेय—संज्ञा पुं० [सं०] पुंश्चली या कुलटा का पुत्र [को०]।

पौंश्चल्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुलटापन। व्यभिचार [को०]।

पौंसवन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुंसवन' [को०]।

पौंस्न¹—वि० [सं०] मानवीय। मानव के उपयुक्त। [को०]।

पौंस्न²—संज्ञा पुं० मनुष्यता। पुरुषता। मानवता [को०]।

पौंचा—संज्ञा पुं० [हिं० पाँच] साढ़े पाँच का पहाड़ा।

पौंछनाⓤ†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पोंछना'। उ०—बचन छोरि छती लपटाए। पौंछत सुंदर अंग सुहाए।—नंद० ग्रं०, पृ० २५५।

पौंडई¹—वि० [हिं० पौंढा] पौंढ़े के रंग का। गन्नई।

पौंडई—संज्ञा पुं० एक रंग जो पौंढ़े के रंग से मिलता जुलता होता है।

विशेष—इसमें २० सेर टेसु का रंग और १½ छटाँक हलदी पड़ती है। रंग पीलापन लिए हरा होता है। इसे गन्नई भी कहते हैं।

पौंढ़नाⓤ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पौरना'। उ०—पौंढ़त पौंढ़त भव जले काहू पार न पावा।—धरम० श०, पृ० ७१।

पौंढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० पौण्ड्रक] एक प्रकार की बड़ी और मोटी जाति की ईख या गन्ना।

विशेष—इसका छिलका कुछ कड़ा होता है पर इसमें रस बहुत अधिक होता है। यह ईख अधिकतर चूसने के काम में आती है। लोग इसके रस से गुड़, चीनी आदि नहीं बनाते। पौंढ़ा दो प्रकार का होता है—सफेद और काला। सुश्रुत ने पौंढ़े को शीतल और पुष्ट कहा है। कहते हैं कि पौंढ़ा पहले पहल इस देश में चीन से आया।

पर्या०—मोदक। कंदक। प्रसपोरक। कांतार। काष्ठेक्षु। सूचिपत्रक। नैपाल। नीलपोर (काला गन्ना)।

पौँढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पौरी'।

पौँढ़ना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पौढ़ना'।

पौँरना†—क्रि० अ० [सं० प्लवन] तैरना। पैरना।

पौँराको(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० पौरना] तैरनेवाला। तैराक। उ०—निर्गुन त्रिविध धार प्रति बाँकी। बूड़ि मुए सब सम पौराकी।—स० दरिया, पृ० २०।

पौँरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पौरी'।

पौँरिया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पौरिया'।

पौँहन(पु)†—संज्ञा पुं० [?] स्तुतिपाठ करनेवाला। उ०—पौहन बखाने बनवाम मुख आने सुनो, साहिब के साहिबो के पगोरो म पाइते।—सुंदर ग्रं० (जीवनी), भा० १, पृ० ६४।

पौ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रपा, प्रा० पवा] पौसाला। पौसला। प्याऊ।

पौ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० पाद, प्रा० पाय, पवा (= किरन) या सं० प्रभा] किरन। प्रकाश की रेखा। ज्योति।

मुहा०—पौ फटना = सबेरे का उजाला दिखाई पड़ना। सबेरा होना। तड़का होना। उ०—पौ फाटी, पगार हुआ, जागे जीया जून। सब काहू को देत है चोंच समाना चून।—कबीर (शब्द०)।

पौ[3]—संज्ञा पुं० [सं० पाद, प्रा० पाव, पाअ] १. पैर। उ०—पौ परि बारहिं बार मनाएउ। सिर सों खेलि पैत जिउ लाएउ।—जायसी ग्रं०, पृ० १३७। २. जड़। मूल। उ०—पौ बिनु पत्र, करह बिनु तूबा, बिनु जिभ्या गुन गावै।—कबीर (शब्द०)।

पौ[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० पद, प्रा० पय (= कदम, डग)] पाँसे की एक चाल या दावँ।

विशेष—फेंकने पर जब ताक आता है या दस, पचीस, तीस आते हैं तब पौ होती है।

मुहा०—पौ बारह पड़ना = जीत का दाँव पड़ना। पौ बारह होना = (१) जीत का दाँव पड़ना। (२) जीत होना। बन आना। भाग्य खुलना। लाभ का खूब अवसर मिलना। जैसे,—यहाँ तो सदा पौ बारह है।

पौआ—संज्ञा पुं० [सं० पाद] दे० 'पौवा'।

पौगंड[1]—संज्ञा पुं० [सं० पौगण्ड] पाँच वर्ष से दस वर्ष तक की अवस्था।

पौगंड[2]—वि० बालोचित। बालकों के अनुरूप (को०)।

पौगंडक—संज्ञा पुं० [सं० पौगण्डक] दे० 'पौगंड'।

पौठ—संज्ञा स्त्री० [सं० पर्यस्त, प्रा० पयट्ट] जोत की एक रीति जिसके अनुसार प्रति वर्ष जोतने का अधिकार नियमानुसार बदलता रहता है। बारी बारी गाँव के सब किसानों की जोत में खेत आता रहता है। भेजबारी।

पौढ़ना[1]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पौढ़ना'।

पौढ़ना(पु)[2]—क्रि० अ० [सं० प्लवन] दे० 'पौरना'। उ०—जाव प्रटक माने नहीं, पौढ़े जल धारा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १४।

पौडर—संज्ञा पुं० [अं० पाउडर] १. चूर्ण। बुकनी। २. एक चूर्ण जिसे लोग मुँह पर मलते हैं। उ०—सुभग कज,......पौडर से कर मुख रंजित।—ग्राम्या०, पृ० ८३।

पौढ़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँव+ड़ी (प्रत्य०)] १. लकड़ी का मोढ़ा जिसपर मदारी बंदर को नचाते समय बिठाता है।

मुहा०—पौढ़ी पर टिकना = पौढ़ी पर बैठना। मोढ़े पर बैठना। (मदारी)।

†२. अध्याय। परिच्छेद।

पौढ़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कड़ी मिट्टी।

पौढ़ना—क्रि० अ० [सं० प्रलोठन ? प्रा० पलुट्ट, देशी पयट्ट] १. सोना। शयन करना। उ०—(क) महलन माहीं पौढ़ते परिमल अंग लगाय। छत्रपती की छाक में गदहा लोटे जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि पर उर जलजाता।—तुलसी (शब्द०)। २. लेटना। शयन की मुद्रा में होना। उ०—(क) ले सर ऊपर खाट बिछाई। पौढ़ी दोऊ कंत गर लाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) दूरहि ते देखे बलवीर। अपने बालसखा जु सुदामा मलिन बसन अरु छीन शरीर। पौढ़े हुते प्रयंक परम रुचि रुक्मिणि चमर डुलावति तीर। उठि अकुलाय अगमने लीने मिलत नैन भरि आए नीर।—सूर (शब्द०)।

पौढ़ाना—क्रि० स० [हिं० पौढ़ना] १. डुलाना। झुलाना। इधर से उधर हिलाना। २. लेटाना। उ०—एक बार जननी अन्हवाए। करि सिंगार पालन पौढ़ाए।—तुलसी (शब्द०)। ३. सुलाना। शयन कराना। उ०—(क) सेज रुचिर रचि राम उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चारो भ्रातन श्रमित जानि कै जननी तब पौढ़ाए। चापत चरण जननि अब अपनी कछुक मधुर स्वर गाए।—सूर (शब्द०)।

पौढ़ारना(पु)—क्रि० स० [हिं० पौढ़ाना] दे० 'पौढ़ाना'। उ०—तापर नूर पौढारियो, दक्षिन चरण चितु लाय।—प० रासो, पृ० ११०।

पौण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० पवन, प्रा० पवण] दे० 'पौन'।

पौण्य—वि० [सं०] १. पुण्यकर्मकारक। धार्मिक। २. पवित्र। शुद्ध। सच्चा।

पौतन—संज्ञा पुं० [सं०] एक जनपद।

पौतव—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार बिक्री का माल तौलनेवाला। बया। डंडीदार। २. एक परिमाण। माप। तौल (को०)।

पौतवाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिलीय अर्थशास्त्रानुसार माप की तौल की निगरानी रखनेवाला अधिकारी।

पौतवापचार—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार उचित से कम तौलना। डंडी मारना।

पौताना‡—संज्ञा पुं० [सं० पाद, प्रा० पाव+संस्थान, प्रा० थाण हिं० पैताना] १. दे० 'पैताना'। २. जुलाहों के करघे में लकड़ी का एक औजार।

विशेष—यह चार अंगुल लंबा और चौकोर होता है। इसके बीच में छेद होता है जिसमें रस्सी लगाकर इसे पौसर में बाँध देते हैं। कपड़ा बुनते समय यह करघे के गड्ढे में लटकता रहता है। इसे पैर के अँगूठे में फँसाकर ऊपर नीचे उठाते और दबाते हैं जिससे राछ पौसर आदि दबते और उठते हैं।

पौतिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मधु।

पौतिनासिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] पीनस रोग।

पौत्तलिक—वि० [सं०] १. पुतली का। पुतली संबंधी। २. प्रतिमा-पूजक। मूर्तिपूजक।

पौत्तलिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० पौत्तलिक+हिं० ता (प्रत्य०)] पुतलियों की पूजा। मूर्तिपूजा। (अं० आइडोलेटरी)। उ०—इधर अंग्रेजों के आने पर ईसाइयों के आंदोलन के बीच जो ब्रह्मोसमाज बंगाल में स्थापित हुआ उसमें भी 'पौत्तलिकता' का भय कुछ कम न रहा।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १२५।

पौत्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्तिका नाम की मधुमक्खी का मधु। यह मधु घी के समान होता है और प्रायः नैपाल से आता है।

पौत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पौत्री] लड़के का लड़का। पोता।

पौत्रिकेय—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रिका का पुत्र। लड़की का लड़का जो अपने नाना की संपत्ति का उत्तराधिकारी हो।

पौत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुत्र की पुत्री। पोती। २. दुर्गा (को०)।

पौद१—संज्ञा स्त्री० [सं० पोत] १. छोटा पौधा। नया निकलता हुआ पेड़। २. वह कोमल छोटा पौधा जो एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाया जा सके।

क्रि० प्र०—जमाना। - लगाना।

३. संतान। वंश।

पौद२—संज्ञा स्त्री० [हिं० पावँ+पट] वह वस्त्र जो बड़े लोगों के मार्ग में इसलिये बिछाया जाता है कि वे उसपर से होकर चलें। पाँवड़ी। पाँवड़ा। उ०—(क) सबै बड़भागी अनुरागी प्रभु पाहुन के, चाहन सौं बात कहैं सबके बिलास की। चले उपरोध मनो पौद लगी आनँद की, औध आय गई औध गई बनवास की।—हनुमान (शब्द०)। (ख) गोपुर ते अंतःपुर द्वारा। लगी पौद विस्तार अपारा।—रघुराज (शब्द०)।

पौदन्य—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नगर का नाम जहाँ अश्मक राजा की राजधानी थी।

पौदर—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँव+डालना या धरना] १. पैर का चिह्न। २. वह राह जो पैर की रगड़ से बन गई हो। पगडंडी। ३. कुएँ के पास की वह ढालवाँ और कुछ चौड़ी जमीन जिसपर मोट या पुरवट खींचने के समय बैल आते जाते हैं। ४. वह राह जिसपर होकर कोल्हू खींचनेवाला बैल घूमता या आता जाता है।

पौदा—संज्ञा पुं० [सं० पोत] १. नया निकला हुआ पेड़। वह पेड़ जो अभी बढ़ रहा हो। २ छोटा पेड़। क्षुप। गुल्म आदि।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. रेशम या सूत का फुँदना जिसे बुलबुल की पेटी में बाँध देते हैं।

पौद्गलिक—वि० [सं०] १. पुद्गलसंबंधी। द्रव्य या भूत। २. जीव संबंधी। ३. विषयानुरक्त। स्वार्थी।

पौध†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पौद'।

पौधन—संज्ञा स्त्री० [सं० पयस्+आधान] मिट्टी का वह बरतन जिसमें खाना रखकर परोसा जाता है।

पौधा—संज्ञा पुं० [सं० पोत] १. नया निकलता हुआ पेड़। वह पेड़ जो अभी बढ़ रहा हो। उगता हुआ नरम पेड़। २. छोटा पेड़, क्षुप, गुल्म आदि। जैसे, आम का पौधा, नील का पौधा।

क्रि० प्र०—लगाना।

पौधि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० पौध] दे० 'पौद'। उ०—प्रेम की सी पौधि प्यारी सुलन अनौधि दुख औधि दिन बीते कहो कैसे धीर धरिहौं।—देव (शब्द०)।

पौनःपुनिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पौनःपुनिकी] जो बार बार हो। फिर फिर होनेवाला।

पौनःपुन्य—संज्ञा पुं० [सं०] बार बार होने का भाव। किसी चीज का लगातार होना [को०]।

पौन१—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० पवन] १. वायु। हवा। उ०—तुव अस सीतल पौन परसि चटकी गुलाब की कलियाँ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २७२।

यौ०—पौन का पूत=(१) हनुमान। (२) नाग। सर्प (वेग के कारण)।

२. जीव। प्राण। जीवात्मा। उ०—नौ द्वारे का पींजरा तामें पंछी पौन। रहने को आचरज है गए अचंभा कौन।—कबीर (शब्द०)। ३. प्रेतात्मा। प्रेत। भूत।

मुहा०—पौन चलाना या मारना=जादू करना। टोना चलाना। मूठ चलाना। प्रयोग करना। पौन बिठाना=(किसी पर) भूत करना। किसी के पीछे प्रेत लगाना।

पौन२—वि० [सं० पाद+ऊन=पादोन, प्रा० पाओन] एक में से चौथाई कम। तीन चौथाई। जैसे,—पौन घंटे में आएँगे।

पौन३—संज्ञा पुं० [सं० पवन] ठगण का एक भेद जिसमें पहले गुरु पीछे लघु होते हैं।

पौनरुक्त, पौनरुक्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. आवृत्ति। बार बार उक्त होना। २. व्यर्थता। अनुपयुक्तता [को०]।

पौनर्णव—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लकी तंत्र के अनुसार एक प्रकार का सन्निपात ज्वर जिसमें रोगी लंबी साँसें लेता है और पीड़ा से बहुत तलफता है।

पौनर्नव—वि० [सं०] पुनर्नवा संबंधी। पुनर्नवा का [को०]।

पौनर्भव१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पौनर्भवा] १. पुनर्भू (पुनः

विवाह करनेवाली स्त्री) संबंधी । पुनर्भू का । २. पुनर्भू से उत्पन्न ।

पौनर्भव²—संज्ञा पुं० १. पुनर्भू से उत्पन्न पुत्र ।

विशेष—यह धर्मशास्त्र में सात प्रकार (बटाधर के मत से १२ प्रकार) के पुत्रों में अंतिम माना गया है ।

२. वह पति जिसके साथ विधवा का या पति से परित्यक्ता स्त्री का पुनर्विवाह हो ।

पौनर्भवा—संज्ञा पुं० [सं०] वह कन्या जिसका किसी के साथ एक बार विवाह संस्कार हो गया हो और फिर दूसरी बार दूसरे के साथ विवाह किया जाय ।

विशेष—कश्यप ने सात प्रकार की पौनर्भवा कन्याएँ मानी हैं, (१) वाचादत्ता, (२) मनोदत्ता, (३) कृत कौतुकमंगला (जिसे कंकण आदि बँधे हों), (४) उदकस्पर्शिता (संकल्पपूर्वक दी हुई) (५) पाणिगृहीतिका, (६) अग्निपरिगता, और (७) पुनर्भूप्रभवा ।

पौना¹—संज्ञा पुं० [सं० पाद + ऊन, प्रा० पाव + ऊन = पाऊन] पौन का पहाड़ा ।

पौना²—संज्ञा पुं० [हिं० पौना] [स्त्री० अल्पा० पौनी] काठ या लोहे की बड़ी करछी जिसका सिरा गोल और चिपटा होता है । इसके द्वारा आग पर चढ़े कड़ाह में से पूरियाँ, कचौरियाँ आदि निकालते हैं ।

पौनार—संज्ञा स्त्री० [सं० पद्म + नाल, प्रा० पउमनाल] कमल के फूल की नाल या डंठल ।

विशेष—कमल की नाल बहुत नरम और कोमल होती है, उसके ऊपर महीन महीन रोइयाँ या काँटे से होते हैं ।

पौनारि, पौनारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पौनार' । उ०—(क) पहुँचहि छपी कमल पौनारी । जंघ छिपा कदली होइ बारी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) चंदन गाभ की भुजा सँवारी । जनु सो बेल कमल पौनारी ।—जायसी (शब्द०)

पौनिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पावना] दे० 'पौनी¹' ।

पौनिया²—संज्ञा [हिं० पौन] कपड़ा जिसका थान पौन थान के बराबर होता है और अर्ज भी कुछ कम होता है ।

पौनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० पावना] १. गाँव में वे काम करनेवाले जिन्हें अनाज की राशि में से कुछ अंश मिलता है । २. नाई बारी, धोबी आदि काम करनेवाले जो विवाह आदि उत्सवों पर इनाम पाते हैं । उ०—काढ़ी कोरा कापर हो अरु काढ़ो घी को मौन । जाति पाँति पहिराइ के सब समधि छतीसी पौनि ।—सूर (शब्द०) । (ख) चली पौनि सब गोहने फूल डार लै हाथ । बिस्वनाथ कइ पूजा पद्मावति के साथ ।—जायसी (शब्द०) ।

पौनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० पौना] छोटा पौना ।

पौनी³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पूनी' । उ०—आप लोग जो हमको पुराना इतिहास सुनाते हैं उसमें युद्ध क्या रेशम की डोरों और कपास की पौनियों से हुआ करते थे ?—काँसी०, पृ० ९७ ।

पौने—वि० [हिं० पौना] किसी संख्या में से चौथाई भाग कम । किसी संख्या का तीन चौथाई । जैसे, पौने दो, पौने आठ इत्यादि ।

विशेष—इसका प्रयोग संख्यावाचक शब्दों के साथ होता है ।

मुहा०—पौने चार सेर = बनियों की बोलचाल में एक रुपए में पंद्रह सेर की बिक्री । पौने सोलह आना = बहुत अधिक अंश । अधिकांश । बहुत सा । उ०—परंतु ध्यान से देखने से उन लोगों की बातों में पौने सोलह आना झूठ निकलता है ।—दुर्गाप्रसाद (शब्द०) । पौने सोलह आने = अधिक अंश में । प्रायः । जैसे,—तुम्हारी बात पौने सोलह आने ठीक निकली ।

पौमान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पवमान] १. दे० 'पवमान' । २. जलाशय । उ०—दासी दास अप्सरा नाना । बाग तड़ाग विविध पौमाना ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

पौरंदर¹—संज्ञा पुं० [सं० पौरन्दर] ज्येष्ठा नक्षत्र का नाम ।

पौरंदर²—वि० [वि० स्त्री० पौरन्दरी] पुरंदर संबंधी । इंद्र संबंधी [को०] ।

पौरंध्र—वि० [सं० पौरन्ध्र] स्त्रियों से संबंधित । स्त्रियों का [को०] ।

पौर¹—वि० [सं०] १. पुर संबंधी । नगर का । २. नगर में उत्पन्न । ३. पेटू । उदरभरि । ४. पूर्व दशा या काल में उत्पन्न ।

यौ०—पौरकन्या = नागरिक कन्याएँ । पौरकार्य = नगर संबंधी काम काज । नागरिकों का काम । पौरजन । पौरजानपद = नगर और जनपद के निवासी । पौरमुख्य = पौरवृद्ध । पौरयोषित = दे० पौरस्त्री । पौरलोक । पौरवृद्ध । पौरसख्य । पौरस्त्री ।

पौर²—संज्ञा पुं० १. रोहिष या रूसा नाम की घास । २. पुरु राजा का पुत्र । ३. नखी नामक गंध द्रव्य । नख । ४. पुरवासी व्यक्ति । नागरिक (को०) ।

पौर³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पौरि', 'पौरी' ।

पौरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर के बाहर का उपवन । पाईं बाग । २. नगर के पास का उपवन (को०) ।

पौरकुत्स—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

पौरगीय—वि० [सं०] पूर्वजन्म संबंधी ।

पौरजन—संज्ञा पुं० [सं०] नागरिक । नगर निवासी [को०] ।

पौरना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'पैरना' ।

यौ०—पौरनहार = पैरनेवाला । तैराक । उ०—अस्तुति वारिधि अगम अपारा । कोउ न जगत महँ पौरन हारा ।—विश्राम० पृ० ३ ।

पौरलोक—संज्ञा पुं० [सं०] नागरिक । पुरजन [को०] ।

पौरव¹—वि० [सं०] [स्त्री० पौरवी] पुरु के वंश का । पुरु से उत्पन्न ।

पौरव²—संज्ञा पुं० १. पुरु का वंशज । पुरु की संतति । २. महाभारत में वर्णित उत्तरपूर्व का एक देश । ३. उक्त देश का निवासी । ४. उक्त देश का राजा ।

पौरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. युधिष्ठिर की एक स्त्री का नाम ।

२. वसुदेव की एक स्त्री का नाम । ३. संगीत में एक मूर्च्छना । इसका सरगम इस प्रकार है—ध, नि, स, रे, ग, म, प, । प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे ।

पौरवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रमुख नागरिक । २. वयोवृद्ध [को०] ।

पौरस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पौरुष] पुरुषार्थ । पौरुष । उ०—जिण रवि सूं रक्षा जग जांणं । पौरस अंस वंश प्रगटाणं ।—रा० रू०, पृ०, ८ ।

पौरसख्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्रता जो एक ही नगर या ग्राम में रहने से परस्पर होती है ।

पौरसी(पु)—वि० [हिं० पौरस + ई (प्रत्य०)] पौरुषयुक्त । जिसमें पौरुष हो । उ०—बोल पठायो खान तहव्वर । उठे पौरसी पूत अकब्बर ।—रा० रू० पृ० १४ ।

पौरस्त्य—वि० [सं०] १. पूर्वी । पूरब का । २. सबसे आगे का । ३. प्रथम । आगे होनेवाला [को०]

पौरस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अंतःपुर में रहनेवाली स्त्री । २. पुर या नगर की स्त्री ।

पौरांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० पौराङ्गना] पौरस्त्री [को०] ।

पौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० पैर] आया हुआ कदम । पड़े हुए चरण । पैरा । जैसे,—बहू का पौरा न जाने कैसा है, जब से आई है घर में कोई सुखी नहीं है ।

मुहा०—पौरा उठना=समाप्त होना । अस्तित्व न रहना । उ०—अब यहाँ से भी मजूरिनों का पौरा उठा ही समझो ।—शराबी, पृ० ७६

पौराण—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पौराणी] १. पुराणों में कहा या लिखा हुआ । २. पुराण संबंधी । ३. पुरा काल का । प्राचीन (को०) ।

पौराणिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पौराणिकी] १. पुराणवेत्ता । २. पुराणपाठी । ३. पुराण संबंधी, पुराण का । जैसे. पौराणिक कथा । ४. पूर्वकालीन । प्राचीन काल का ।

पौराणिक—संज्ञा पुं० अठारह मात्रा के छंदों की संज्ञा ।

पौरान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पुराण] दे० 'पुराण' । उ०—इक ब्रह्म पोष सम करत घोष । पौरान प्रगट इक बचत मोष । —पृ० रा० ६ । ४४

पौरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतोली, प्रा० पओली] दे० 'पौरी' । उ०—(क) आतुर जाय पौरि भयो ठाढ़ो कह्यो पौरिया जाई । —सूर (शब्द०) । (ख) पौरिनु परे पहरुवा ऐसे । अति मादक मद पीए, जैसे ।—नंद ग्रं०, पृ० २१० ।

पौरिदार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० पौरि + फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'पौरिया' । उ०—कामकदला के घर आवा । पौरिदार सों बात जनावा ।—हिं० क० का०, पृ० २१८ ।

पौरिया—संज्ञा पुं० [हिं० पौरी] द्वारपाल । ड्योढ़ीदार । दरबान । उ०—(क) अति आतुर नृप मोहिं बुलायो । कौन काज ऐसी अँटक्यो है मन मन सोच बढ़ायो । आतुर जाय पौरि भयो ठाढ़ो कह्यो पौरिया जाई । सुनत बुलाय महल महँ लीनो सुफलक सुत गयो धाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) काहि इन न विरोधिए गुरु, पंडित, कवि, यार । बेटा, बनिता, पौरिया, यज्ञ करावनहार ।—गिरधर (शब्द०) ।

पौरिष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पौरुष] दे० 'पौरुष' । उ०—जीतैं कौण बुधिबल पौरिष, रुचि अपनी तै सरनि लीये । —दादू०, पृ० ६२७ ।

पौरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतोली, प्रा० पओली] घर के भीतर का वह भाग जो द्वार में प्रवेश करते ही पड़े और थोड़ी दूर तक लंबी कोठरी या गली के रूप में चला गया हो । ड्योढ़ी । उ०—(क) सेए सीताराम नहिं भजे न शंकर गौरि । जनम गँवायो बादि ही परत पराई पौरि ।—तुलसी (शब्द०) (ख) राजा ! इक पंडित पौरि तुम्हारी ।—सूर (शब्द०) । (ग) चाह भरी अति रिस भरी बिरह भरी सब बात । कोरि सँदेसे दुहुन के चले पौरि लौं जात ।—बिहारी (शब्द०) । (घ) पौरि लौं खेलन जाती न तौ इन आलिन के मत में परती क्यों ?—देव (शब्द०) ।

पौरी†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पैर] सीढ़ी । पैड़ी । उ०—का बरनौं अस ऊँच तुखारा । दुइ पौरी पहुँचे असवारा ।—जायसी (शब्द०) ।

पौरी†[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाँव + री] खड़ाऊँ । उ०—पायन पहिरि लेहु सब पौरी । काँट धँसै न गड़ै अँकरौरी ।—जायसी (शब्द०) ।

पौरुकुत्स—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुकुत्स के गोत्र में उत्पन्न पुरुष ।

पौरुकुत्सि—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुकुत्स का पुत्र ।

पौरुक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] पुनर्वचन । पुनःकथन । दोहराना ।

पौरुख†—संज्ञा पुं० [सं० पौरुष] पौरुष । पुरुषार्थ । बल । शक्ति । उ०—भाग्य पर वह भरोसा करता है जिसमें पौरुख नहीं होता ।—काया० पृ० २४६ ।

पौरुमद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सामगान ।

पौरुमद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सामगान ।

पौरुमीढ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सामगान ।

पौरुष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरुष का भाव । पुरुषत्व । पुंसत्व । २ पुरुष का कर्म । पुरुषार्थ । ३. बलवीर्य । पराक्रम । साहस । मरदानगी । ४. उद्योग । उद्यम । कर्मण्यता । जैसे,—अपने पौरुष का भरोसा रखो, दूसरे की कमाई पर न रहो । ५. गहराई या ऊँचाई की एक माप । पुरसा । ६. उतना बोझ जितना एक आदमी उठा सके । ७. पुरुष की लिंगेंद्रिय (को०) । ८. शुक्र । वीर्य (को०) । ९. सूर्य घड़ी (को०) ।

पौरुष[2]—वि० पुरुष संबंधी । पुरुष की पूजा करनेवाला [को०] ।

पौरुषिक—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषपूजक । पुरुष की पूजा करनेवाला [को०] ।

पौरुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री [को०] ।

पौरुषेय[1]—वि० [सं०] १. पुरुष संबंधी । पुरुष का । २. पुरुषकृत । आदमी का किया हुआ । ३. आध्यात्मिक ।

पौरुषेय[2]—संज्ञा पुं० १. पुरुष का विकार । २. पुरुष का समूह । जनसमुदाय । ३. पुरुष का कर्म । मनुष्य का काम । ४. रोज की मजदूरी या काम करनेवाला मजदूर । ५. पुरुषहत्या । पुरुषवध (को०) ।

पौरुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. साहस । २. पुरुषत्व ।

पौरुहूत—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुहूत या इंद्र का अस्त्र । वज्र ।

पौरू—संज्ञा स्त्री० [देश०] भूमि का एक भेद । एक प्रकार की मिट्टी या जमीन जिसके कई भेद होते हैं ।

यौ०—पौरू केहरा = एक प्रकार की मिट्टी । यह मिट्टी सफेद रंग की होती है और इसके ऊपर पतली पपड़ी सी जम जाती है जिससे रेह और सज्जी बन सकती है । इस भूमि में रबी और खरीफ दोनों फसलें होती हैं । पौरू केहरा अमीर = एक मिट्टी । इसका रंग सफेदी लिए पीला होता है और इसमें फसल अधिक वर्षा में उपजती है । पौरू कौड़िया = मिट्टी की एक किस्म । यह मिट्टी ललाई लिए होती है । यह न गीली होने से लसीली होती है और न सूखने पर फटती है । इसमें खरीफ की फसल अच्छी होती है और पानी देने से इसमें रबी की फसल भी होती है । पौरू भूसी = भूरे रंग की मिट्टी । यह भूरे रंग की होती है । इसमें रबी नहीं उपज सकती । पौरू दुरसन = इसकी मिट्टी कहीं ललाई और कहीं कालापन लिए होती है । इसमें रबी की फसल अच्छी होती है पर खरीफ के लिये पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है ।

पौरेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. नगर के समीप का स्थान, देश, ग्राम आदि । २. नागर । नागरिक (को०) ।

पौरोगव—संज्ञा पुं० [सं०] पाकशालाध्यक्ष ।

पौरोडाश—संज्ञा पुं० [स्त्री०] १. पुरोडाश से संबंधित वस्तु, व्यक्ति, मंत्र आदि । २. एक मंत्र जिसका उच्चारण पुरोडाश के निर्माण के समय किया जाता है (को०) ।

पौरोडाशिक—संज्ञा पुं० [सं०] पौरोडाश मंत्र का उच्चारण करनेवाला पुरोहित (को०) ।

पौरोधस—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोधा या पुरोहित का पद (को०) ।

पौरोभाग्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोष देखना । दोषदर्शन । २. ईर्ष्या । द्वेष । डाह । ३. दुष्कृत्य । शरारत भरा कार्य (को०) ।

पौरोहित्य—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहिताई । पुरोहित का कर्म ।

पौर्णदर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक कृत्य ।

पौर्णमास—संज्ञा पुं० [सं०] एक याग या इष्टिका जो पूर्णिमा के दिन होती थी ।

पौर्णमासिक—वि० [सं०] १. पूर्णमासी से संबंधित । २. पूर्णिमासी के दिन होनेवाला (को०) ।

पौर्णमासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णमासी ।

विशेष—यज्ञों में प्रतिपद्युक्ता पूर्णमासी का ही ग्रहण होता है । दो प्रकार की पूर्णमासी मानी गई है—एक पूर्वा जिसे पंचदशी भी कहते हैं, दूसरी उत्तरा जिसे प्रतिपद्युक्ता कहते हैं ।

पौर्णमास्य—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्णिमा को होनेवाला यज्ञ आदि ।

पौर्णमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा ।

पौर्णिम—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यासी । वैरागी (को०) ।

पौर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा (को०) ।

पौर्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्त कार्य । पूर्त ।

पौर्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्त का साधक कर्म ।

पौर्व—वि० [सं०] १. अतीत से संबंधित । अतीत का । २. पूर्व से संबंधित । पूर्व का । ३. परंपरागत । परंपराप्राप्त (को०) ।

पौर्वदेहिक, पौर्वदैहिक—वि० [सं०] पूर्वजन्म से संबंधित । पूर्वजन्म में किया हुआ (को०) ।

पौर्वात्य—वि० [सं०] पूर्वी । पूर्व से संबंधित । पूर्व का । उ०—हिंदी के आधुनिक समीक्षकों में पौर्वात्य पद्धति के आधार पर शास्त्रीय पद्धति की व्याख्या करनेवाले हैं । —आलोचना०, पृ० 'क' ।

पौर्वापर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्व और पर अर्थात् आगे और पीछे का भाव । २. अनुक्रम । सिलसिला

पौर्वापौरुषिक—वि० [सं०] वंशपरंपरागत । पुश्तैनी ।

पौर्वाह्णिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पौर्वाह्णिकी] पूर्वाह्णसंबंधी ।

पौर्विक—वि० [सं०] पूर्व में होनेवाला ।

पौल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पौर' । उ०—निज पौल के पार क्रार नित उठ उठ आवै ।—तुलसी० श०, पृ० १०४ ।

पौलस्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूर्पणखा ।

पौलस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पौलस्त्यी] १. पुलस्त्य का पुत्र या उनके वंश का पुरुष । २. कुबेर । ३. रावण, कुंभकर्ण और विभीषण । ४. चंद्र ।

पौलस्त्यी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूर्पणखा ।

पौला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० पाव, पाउ + ला (प्रत्य०)] एक प्रकार का खड़ाऊँ जिसमें खूँटी नहीं होती. छेद में बँधी हुई रस्सी में अँगूठा फँसा रहता है । उ०—पौला पहिरि के हर जोतै और सुथना पहिरि निरावै । कहैं घाघ ये तीनों भकुआ सिर बोझा औ गावै ।—घाघे (शब्द०) ।

पौलि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. थोड़ा भुना हुआ जौ सरसों आदि । २. फुलका । रोटी ।

पौलि[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पौली' । उ०—करि मनुहारी कुमर दोउ, उतरे पौलि सुद्वार ।—ह० रासो, पृ० ६१ ।

पौलिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पौरिया' ।

पौलिश—वि० [यू० पाउलस एलेक्जैंड्रिनस] पुलिश कृत (ज्योतिष का एक सिद्धांत) । पुलिश संबंधी ।

पौली—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाव, पाउ + ली (प्रत्य०)] १. पैर का वह भाग जो खड़े होने पर जमीन से भाड़ा लगा रहता है एड़ी से लेकर उँगलियों तक का भाग। उतना पैर जितने में जूता, खड़ाऊँ आदि पहनते हैं। २. पैर का निशान जो धूल, गीली मिट्टी आदि पर पड़ जाता है। पदचिह्न।

पौलुषि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुलु वंश में उत्पन्न पुरुष। २. सत्ययज्ञ नामक एक ऋषि जो पुलु ऋषि के वंश में उत्पन्न हुए थे। इनका नाम शतपथ ब्राह्मण में आया है।

पौलोम—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पौलोमी] १. पुलोमा ऋषि का अपत्य या पुत्र। २. कौशीतक उपनिषद् के अनुसार दैत्यों की एक जाति का नाम। ३. इंद्र (को०)।

पौलोमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्राणी। २. भृगु महर्षि की पत्नी का नाम।

पौल्कस[1]—वि० [सं०] पुल्कस (एक संकर जाति) जाति संबंधी।

पौल्कस[2]—संज्ञा पुं० पुल्कस जाति का मनुष्य।

पौल्याⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० पौल] दे० 'पौरिया'। उ०—रावली पोले आवीया, पौल्या देगी बधावउँ जाइ। —बी० रासो०, पृ० ६१।

पौवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० पाद, पादक हिं० पाव] १. एक सेर का चौथाई भाग। सेर का चतुर्थांश। उ०—मोहन मेरा राम नाम, मैं रामहिं को बनजारा हो। राम नाम का करौं बनिज मैं हरि मोरा बढ़वारा हो। सहस नाम को करौं पसारा दिन दिन होत सवाई हो। कान तराजू सेर तिनपौवा उह किन ढोल बजाई हो।—कबीर (शब्द०)। २. मिट्टी या काठ आदि का एक बरतन जिसमें पाव भर पानी, दूध आदि आ जाय। ३. पान जो २६२ ढोली हो। २६२ ढोली पान। (तंबोली)। †४. एक तरह का खड़ाऊँ। उ०—पौवा अबर अधार को चलत सो पाँव पिराय।—मीरा श०, पृ० ६६।

पौष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह महीना जिसमें पूर्णमासी पुष्य नक्षत्र में हो। पूस। २. एक उत्सव या पर्व (को०)। ३. संघर्ष। लड़ाई (को०)।

पौषनाⓅ—क्रि० स० [सं० पोषण] दे० 'पोसना'। उ०—भूधर भूधर के जल के धर देत महार चराचर पौषै। —सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४१२।

पौषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूस महीने की पूर्णिमा। पूष की पूर्णिमा २. पुष्य नक्षत्रयुक्त रात्रि [को०]।

पौष्कर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्कर मूल। २. पदम की जड़। भीसा। भसीड़। ३. एरंड का मूल। ४. स्थलपद्म।

पौष्कर[2]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पौष्करी] पुष्कर संबंधी। नील वर्ण कमल से संबंधित [को०]।

पौष्कर मूल—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्कर मूल।

पौष्कर सादि—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वैयाकरण ऋषि का नाम जिनके मत का उल्लेख महाभाष्य में है। २. पुष्करसद् नाम के ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

पौष्करिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा पोखरा। छोटा तालाब। पुष्करिणी।

पौष्कल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक साम का नाम। २. एक प्रकार का अन्न (को०)।

पौष्कल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. संपूर्णता। भरा पूरापन। पूर्ण विकसित स्थिति। २. आधिक्य। बहुलता (को०)।

पौष्टिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पौष्टिकी] पुष्टिकारक। बलवीर्य-दायक। जैसे, पौष्टिक औषध।

पौष्टिक[2]—संज्ञा पुं० १. वह कर्म जिससे धन जन आदि की वृद्धि हो। २. वह कपड़ा जो मुंडन के समय सिर पर डाल दिया जाता है।

पौष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरु नाम के राजा की एक स्त्री।

पौष्ण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रेवती नक्षत्र।

पौष्ण[2]—वि० पूषा देवता संबंधी। सूर्य संबंधी। पूषा देवता का (चरु आदि)।

पौष्प[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० पौष्पी] पुष्प संबंधी। फूल का। पुष्पनिर्मित।

पौष्प[2]—संज्ञा पुं० १. फूलों का निकाला हुआ मद्य। २. पुष्परेणु। फूल की धूल। पराग।

पौष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] कुसुमांजन।

पौष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुष्पपुर या पाटलिपुत्र। २. फूलों से बननेवाली एक शराब (को०)।

पौसरा—पुं० [हिं०] दे० 'पौसला'।

पौसला—संज्ञा स्त्री० [सं० पयःशाला] १. वह स्थान जहाँपर पानी पिलाया जाता है। वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण को धर्मार्थ जल पिलाया जाता है। प्याऊ। सबील। २. प्यासों को पानी पिलाने का प्रबंध।

क्रि० प्र०—बैठाना। —चलाना।

पौसाकⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पोशाक'। उ०—कबहुँ गौर दुति बाल बपु रजत अभूषन अंग। पंच नदी पौसाक तन धरे किए सोइ ढंग।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० २१४।

पौसार—संज्ञा स्त्री० [हिं० पावँ+सार] लकड़ी का एक डंडा जो ताने और राछ के नीचे लगा रहता है। यह करघे के भीतर रहता है। इसी को पैर से दबाकर राछ को ऊँचा नीचा करते हैं।

पौसेरा—संज्ञा पुं० [हिं० पाव + सेर] पाव सेर की तौल।

पौहकरⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० पुष्कर] पुष्कर तीर्थ। उ०—आया पौहकर नेम ले मधकर हुर कुल मोड़।—रा० रू०, पृ० ४५।

पौहर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्रहर'। उ०—बीसल दे तीणी रंजीयो। च्यार पौहर नीतु बिलसइ भोग।—बी० रासो, पृ० ३०।

पौहराⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पहरा'। उ०—माहु ज्यांरा मारवी, पोहरा जिकां पड़ंत। बिन पौहरे बाहर बसै सादूली बसबंत।—बाँकी० ग्रं०, भा०१, पृ० ३१।

पौहा‡—संज्ञा पुं० [सं० पशु] पशु । जानवर । उ०—पक रही फसल लद रहे चना से बूँट पड़ी है हरी मटर । तोमन को साग और पौहों को हरा, भरी पूरी धरती ।—मिट्टी०, पृ० ४४ ।

पौहारी—संज्ञा पुं० [सं० पयस (=दूध) + आहारी] वह जो केवल दूध ही पीकर रहे (अन्न आदि न खाय) । जैसे, पौहारी बाबा ।

प्यंड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड] दे० 'पिंड' । उ०—प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई । वाके आदि अरु अंत न होई ।—कबीर ग्रं०, पृ० १४१ ।

प्यंडर(पु)—वि० [सं० पाण्डुर] दे० 'पांडुर—२' । उ०—प्यंडर केस कुसुम भये धोला सेत पलटि गइ बानी ।—कबीर ग्रं०, पृ० २२१ ।

प्यौर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] धान, कोदो के डंठल जिनसे दाना अलग कर दिया गया हो । पयाल । पयार । पुआर । उ०—जाड़े के दिनों में किसी गरम कोड़े के चारों ओर प्यौर बिछा बिछा के अपने परिजनों के साथ······सब बैठ कथा कह कह दिन बिताते हैं—श्यामा०, पृ० ४४ ।

प्याऊ—संज्ञा पुं० [सं० प्रपा, हिं० प्याना (=पिलाना) + ऊ (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण को पानी पिलाया जाता है । पौसरा । सबील ।

प्याज—संज्ञा पुं० [फ़ा० प्याज़ या पियाज़] एक प्रसिद्ध कंद जो बिलकुल गोल गाँठ के आकार का होता है और जिसके पत्ते पतले लंबे और सुगंधराज के पत्तों के आकार के होते हैं ।

विशेष—इसकी गाँठ में ऊपर से नीचे तक केवल छिलके ही छिलके होते हैं । यह कंद प्रायः सारे भारत में होता है और तरकारी या मांस के मसाले के काम में आता है । कहीं कहीं इसका उपयोग औषधों आदि में भी होता है । यह बहुत अधिक पुष्ट माना जाता है । इसकी गंध बहुत उग्र और अप्रिय होती है जिसके कारण इसका अधिक व्यवहार करनेवालों के मुँह और कभी कभी शरीर या पसीने से भी विकट दुर्गंध निकलती है । इसी लिये हिंदुओं में इसके खाने का बहुत अधिक निषेध है । यह बहुत दिनों तक रखा जा सकता है और कम सड़ता है ।

वैद्यक के अनुसार इसके गुण प्रायः लहसुन के समान ही हैं । वैद्यक में इसे मांस और वीर्यवर्धक, पाचक, सारक, तीक्ष्ण, कंठशोधक, भारी, पित्त और रक्तवर्धक, बलकारक, मेधाजनक, आँखों के लिये हितकारी रसायन, तथा जीर्णज्वर, गुल्म, अरुचि, खाँसी, शोथ, आमदोष, कुष्ठ, अग्निमांद्य, कृमि, वायु और श्वास आदि का नाशक माना जाता है । इसमें से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो उत्तेजक और वेदनानाशक माना जाता है । प्याज को कुचलने से जो रस निकलता है वह बिच्छू आदि के काटे हुए स्थान पर लगाया भी जाता है और मूर्छा के समय उसे सुँघाने से चेतना आती है ।

पर्या०—सुकंदक । लोहितकंद । तीक्ष्णकंद । उष्ण । मुख-दूषण । शूद्रप्रिय । कृमिघ्न । मुखगंधक । बहुपत्र । विश्वगंध । रोचन । पलांडु ।

प्याजी[1]—वि० [फ़ा०] प्याज के रंग का । हलका गुलाबी ।

प्याजी[2]—संज्ञा पुं० [देश०] काले रंग का एक प्रकार का दाना जो प्रायः गेहूँ के साथ उत्पन्न होता और उसी के दानों के साथ मिल जाता है । भुनभुना । विशेष दे० 'भुनभुना' ।

प्यादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० पयादह्] १. पदाति । पैदल । सेना का पैदल सिपाही । २. दूत । हरकारा । ३. शतरंज के खेल में एक गोटी ।

यौ०—प्यादापा = पैदल चलनेवाला । प्यादापाई = पैदल या बिना सवारी के चलना ।

प्यान[1]—वि० [सं०] मोटा । स्थूल । पीन [को०] ।

प्यान(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाण, हिं० पयान] दे० 'प्रयाण' । उ०—दिया लता न प्यान किया, मंदर भया उजार । मर गए ते मर गए बाँचे बाँचनिहार ।—कबीर बी० (शिशु०), पृ० २१६ ।

प्याना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पिलाना' ।

प्यायन[1]—वि० [सं०] शक्तिवर्धक । शक्ति या वृद्धिवाला [को०] ।

प्यायन[2]—संज्ञा पुं० वृद्धि । वर्धन । बढ़ना [को०] ।

प्यायित—वि० [सं०] १. जो बढ़ गया हो । वृद्धिप्राप्त । २. जो मोटा हो गया हो । ३. शक्ति या पुष्टि प्राप्त [को०] ।

प्यार[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रीति, प्रिय अथवा प्रियक] १ मुहब्बत । प्रेम । चाह । स्नेह । २. वह स्पर्श, चुंबन, संबोधन आदि जिससे प्रेम सूचित हो । प्यार जताने की क्रिया । जैसे, बच्चों को प्यार करना ।

मुहा०—प्यार का खिलौना = बालक शिशु । बच्चा । उ०—प्यार कर प्यार के खिलौने को, कौन दिल में पुलक नहीं छाई ।—चोखे०, पृ० १३ ।

प्यार[2]—संज्ञा पुं० [सं० पियाल] अचार या पियार नाम का वृक्ष जिसका बीज चिरौंजी है ।

यौ०—प्यार मेवा = पियाल मेवा । चिरौंजी ।

प्यारा—वि० [सं० प्रिय] [वि० स्त्री० प्यारी] १. जिसे प्यार करें । जो प्रिय हो । प्रेमपात्र । प्रीतिपात्र । प्रिय । २. जो अच्छा लगे । जो भला मालूम हो । ३. जो छोड़ा न जाय । जिसे कोई अलग करना न चाहे । जैसे,—प्राण सबको प्यारा होता है । ४. महँगा । अधिक मूल्यवान् ।

प्यारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० प्यारी] प्यारी । प्रिया । उ०—मोची सखि तुम कोटिक पठवो प्यारि न मानै आप ।—नंद ग्रं०, पृ० ३६८ ।

प्याला—संज्ञा पुं० [फ़ा० प्यालह्, पियालह्] [स्त्री० अल्पा० प्याली] १. एक विशेष प्रकार का छोटा कटोरा जिसका ऊपरी भाग या मुँह नीचेवाले भाग या पेंदे की अपेक्षा कुछ अधिक चौड़ा होता है और जिसका व्यवहार साधारणतः

जल, दूध या शराब आदि पीने में होता है। छोटा कटोरा। बेला। जाम।

मुहा०—प्याला पीना या लेना = मद्य पीना। शराब पीना। प्याला देना = मद्य पिलाना। शराब पिलाना। प्याला भरना या लबरेज होना = आयु का पूर्ण होना। दिन पूरा होना।

२. जुलाहों का मिट्टी का वह बरतन जिसमें वे नरी भिगोते हैं। ३. गर्भाशय।

मुहा०—प्याला बहना = गर्भपात होना। गर्भ गिरना।

४. भीख माँगने का पात्र। कासा। खप्पर। ५. तोप या बंदूक में वह गड्ढा या स्थान जिसमें रंजक रखते हैं।

प्यावना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पिलाना', 'प्याना'। उ०—कमल नैन कौं अति भावत है, मथ मथ प्यावत पैया।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३४।

प्यावनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० प्यावना] पिलाने का कार्य। पिलाना। उ०—मैयन की वह गर लपटावनि। चूमनि मधुर पयोधर प्यावनि।—नंद० ग्रं०, पृ० २४५।

प्यास—संज्ञा स्त्री० [सं० पिपासा] मुँह और गले के सूखने से होनेवाली वह अनुभूति जो शरीर के जलीय पदार्थ के कम हो जाने पर होती है। जल पीने की इच्छा। तृषा। तृष्णा। पिपासा।

विशेष—शरीर के सभी अंगों में कुछ न कुछ जल का अंश होता है जिससे सब अंगों की पुष्टि होती रहती है। जब यह जल शरीर के काम में आने के कारण घट जाता है तब सारे शरीर में एक प्रकार की सुस्ती मालूम होने लगती है और गला तथा मुँह सूखने लगता है। उस समय जल पीने की जो इच्छा होती है उसी का नाम प्यास है। जीवों के लिये भूख की अपेक्षा प्यास अधिक कष्टदायक होती है क्योंकि जल की आवश्यकता शरीर के प्रत्येक स्नायु को होती है। भोजन के बिना मनुष्य कुछ अधिक दिनों तक जी सकता है पर जल के बिना बहुत ही थोड़े समय में उसका जीवन समाप्त हो जाता है। जो लोग प्यास के मारे मरते हैं वे प्रायः मरने से पहले पागल हो जाते हैं।

मुहा०—प्यास बुझाना = जल पीकर तृष्णा को शांत करना। प्यास लगना = प्यास मालूम होना। पानी पीने की इच्छा होना।

२. किसी पदार्थ आदि की प्राप्ति की प्रबल इच्छा। प्रबल कामना।

प्यासा—वि० [सं० पिपासित या पिपासु] जिसे प्यास लगी हो। जो पानी पीना चाहता हो। तृषित। पिपासायुक्त।

प्युनिटिव पुलिस—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह अतिरिक्त पुलिस दल जो किसी नगर या गाँव में, वहाँ वालों के दुष्ट आचरण अर्थात् नित्य उपद्रव आदि करने के कारण, निर्दिष्ट अवधि के लिये तैनात किया जाता है और जिसका खर्च गाँववालों से ही दंड स्वरूप लिया जाता है।

प्यून—संज्ञा पुं० [अं०] प्यादा। सिपाही। चपरासी। हरकारा।

प्यूनबुक—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह डायरी या रजिस्टर जिसमें पत्रादि चढ़ाए जाते हैं और उसे चपरासी लेकर जिसका पत्र होता है उसे देता है और पानेवाले का हस्ताक्षर उस डायरी या रजिस्टर पर ले लेता है।

प्यूनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'पूनी'।

प्यूस—संज्ञा पुं० [सं० पीयूष] दे० 'पेवस'।

प्यूसी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० प्यूस] दे० 'पेवसी'।

प्योⓅ**†**—संज्ञा पुं० [हिं० पिय, पिउ] पति। स्वामी। खाविंद। उ०—एकही दर्पन देखि कहै तिय नीके लगो पिय प्यो कहै प्यारी। देव सु बालम बाल को बाद बिलोकि भई बलि हौं बलिहारी।—देव (शब्द०)।

प्योरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. रुई की मोटी बत्ती। २. एक प्रकार का पीला रंग।

प्योसर—संज्ञा पुं० [सं० पीयूष] हाल की ब्याई हुई गौ का दूध। उ०—सब हेरि धरी है साठी। लै उपर उपर ते काढ़ी। अति प्योसर सरिस बनाई। तेहि सोंठ मिरच रुचिताई।—सूर (शब्द०)।

प्योसार†—संज्ञा पुं० [सं० पितृशाला] स्त्री के लिये पिता का गृह। पीहर। मायका। उ०—परत फिराय पयोनिधि भीतर सरिता उलट बहाई। मनु रघुपति भयभीत सिंधु पत्नी प्योसार पठाई।—सूर (शब्द०)।

प्यौंदा†—संज्ञा पुं० [हिं० पैवंद] दे० 'पैवंद'।

प्यौⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पिय'। उ०—जा तिय को परदेसु तें आयो प्यौ मतिराम।—मति० ग्रं०, पृ० ३१८।

प्यौरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० प्रिय] १. पति। स्वामी। २. प्रियतम। उ०—हम हारीं कै कै हहा पाइनु पारयो प्यौरु। लेहु कहा अजहूँ किए तेह तरेरयो त्यौरु।—बिहारी (शब्द०)।

प्यौसरी—संज्ञा पुं० [हिं० प्योसर] दे० 'पेवसी'।

प्यौसार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्योसार'। उ०—तू भँवर बम्यो बैठयो रहिजो, चल बस मेरे प्योसार।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८७७।

प्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपसर्ग जो क्रियाओं में संयुक्त होने पर 'आगे', 'पहले', 'सामने', 'दूर' का अर्थ देता है, विशेषणों में संयुक्त होने पर 'अधिक', 'बहुल', 'अत्यधिक' का अर्थ देता है, जैसे, प्रकृष्ट, प्रमत्त आदि और संज्ञा शब्दों में संयुक्त होने पर 'प्रारंभ' (प्रयाण), 'उत्पत्ति' (प्रभव, प्रपौत्र), 'लंबाई' (प्रबालमूलिक), 'शक्ति' (प्रभु), 'आकांक्षा' (प्रार्थना), 'स्वच्छता' (प्रसन्न जल), 'तीव्रता' (प्रकर्ष), 'अभाव' या 'वियोग' (प्रोषित, प्रपर्ण वृक्ष), आदि का अर्थ देता है।

प्रकंप—संज्ञा पुं० [सं० प्रकम्प] थरथराहट। कँपकँपी।

प्रकंपन¹—संज्ञा पुं० [सं० प्रकम्पन] १. कँपकँपी। थरथराहट। २. वायु। हवा। ३. महावात। आँधी (को०)। ४. एक नरक का नाम। ५. एक राक्षस का नाम।

प्रकंपन²—वि० हिलानेवाला। जो कंप उत्पन्न करे।

प्रकंपमान—वि० [सं० प्रकम्पमान] जो थरथराता हो। अत्यंत हिलता हुआ।

प्रकंपित—वि० [सं० प्रकम्पित] १. काँपता हुआ। कंपायमान। २. हिलता हुआ। ३. कंपित। कँपाया हुआ (को०)।

प्रकंपी—वि० [सं० प्रकम्पिन्] काँपता हुआ। हिलता झूलता हुआ। काँपने या हिलनेवाला (को०)।

प्रकच—वि० [सं०] जिसके सर के बाल खड़े हों। ऊर्ध्वकेश (को०)।

प्रकट¹—वि० [सं०] १. जो सामने आया हो। जो प्रत्यक्ष हुआ हो। जाहिर। जैसे,—इस नगर में प्लेग प्रकट हुआ है। २. उत्पन्न। आविर्भूत। जैसे,—इतने में वहाँ एक राक्षस प्रकट हुआ। ३. स्पष्ट। व्यक्त। जाहिर।

प्रकट²—अव्य० स्पष्टतः। प्रकाश्य रूप से। सबके सामने (को०)।

प्रकटता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रकट + हिं० ता (प्रत्य०)] स्पष्टता। दृष्टिगोचर होने का भाव। उ०—घनैश्वर्गिक घटा सी छा रही थी। प्रणय घटिका प्रकटता पा रही थी।—साकेत, पृ० ५४।

प्रकटन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकट होने की क्रिया।

प्रकटना—क्रि० अ० [सं० प्रकट + हिं० ना (प्रत्य०)] प्रकट होना प्रादुर्भूत होना। दिखाई देना।

प्रकटित—संज्ञा पुं० [सं०] जो प्रकट हुआ हो। प्रकट किया हुआ।

प्रकटीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकट या अभिव्यक्त होने का भाव। प्रकट करना (को०)।

प्रकटीभवन—संज्ञा पुं० [सं०] अभिव्यक्त होना। जाहिर होना। प्रकट होना।

प्रकथन—संज्ञा पुं० [सं०] व्यक्त करना। घोषित करना। बताना (को०)।

प्रकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. अगुरु। अगर नामक गंध द्रव्य। २. पुंज। समूह। राशि। ३ खिला हुआ फूल या स्तवक। ४. सहारा। मदद। सहायता। ५. अधिकार। ६. खूब काम करनेवाला। वह जो किसी काम में बहुत होशियार हो। ७. समादर। सत्कार (को०)। ८. अपनयन। अपहरण। नारी अपहरण (को०)। ९. प्रक्षालन। संक्षालन। मार्जन (को०)। १०. रीति। परिपाटी परंपरा (को०)।

प्रकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्पन्न करना। अस्तित्व में लाना। २. किसी विषय को समझने या समझाने के लिये उसपर वाद विवाद करना। जिक्र करना। वृत्तांत। ३. प्रसंग। विषय। ४. किसी ग्रंथ के अंतर्गत छोटे छोटे भागों में से कोई भाग। किसी ग्रंथ आदि का वह विभाग जिसमें किसी एक ही विषय या घटना आदि का वर्णन हो। परिच्छेद। अध्याय। ५. वह वचन जिसमें कोई कार्य अवश्य करने का विधान हो। ६. अवसर। काम। समय (को०)। दृश्य काव्य के अंतर्गत रूपक के दस भेदों में से एक।

विशेष—साहित्यदर्पण के अनुसार इसमें सामाजिक और प्रेम संबंधी कल्पित घटनाएँ होनी चाहिए और प्रधानतः शृंगार रस ही रहना चाहिए। जिस प्रकरण की नायिका वेश्या हो वह 'शुद्ध' प्रकरण और जिसकी नायिका कुलवधू हो वह 'संकीर्ण प्रकरण' कहलाता है। नाटक की भाँति इसका नायक बहुत उच्च कोटि का पुरुष नहीं होता; और न इसका आख्यान कोई प्रसिद्ध ऐतिहासिक या पौराणिक वृत्त होता है। संस्कृत के मृच्छकटिक, मालतीमाधव आदि 'प्रकरण' के ही अंतर्गत हैं।

प्रकरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकरण के समान नाटिका।

प्रकरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रासंगिक कथावस्तु। प्रकरी (को०)।

प्रकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का गान। २. नाटक में प्रयोजनसिद्धि के पाँच साधनों में से एक जिसमें किसी एक देशव्यापी चरित्र का वर्णन होता है। ३. नाटकीय वेशभूषा (को०)। ४. किसी जमीन का खुलता हिस्सा। आँगन (को०)। ५. चौराहा। चत्वर (को०)। ६. प्रासंगिक कथावस्तु के दो भेदों में से एक। वह कथावस्तु जो थोड़े काल तक चलकर रुक जाती या समाप्त हो जाती है। प्रासंगिक कथावस्तु का दूसरा भेद 'पताका' है।

प्रकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्कर्ष। उत्तमता। २. अधिकता। बहुतायत। ३. श्रेष्ठता। सर्वोच्चता (को०)। ४. शक्ति। बल (को०)। ५. विशिष्टता। विशेषता (को०)। ६. विस्तार (को०)।

प्रकर्षक¹—वि० [सं०] उत्कर्ष करनेवाला।

प्रकर्षक²—संज्ञा पुं० कामदेव की आख्या (को०)।

प्रकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकर्ष। उत्कर्ष। महत्ता। वैभव। २. अधिकता। ३. खींचना। अलग करना (को०)। ४. आकुलता। व्यग्रता। विह्वलता (को०)। ५. हल चलाना। कर्षण (को०)। ६. लंबाई। विस्तार (को०)। ७. कोड़ा। चाबुक (को०)। ८. उधार दिए गए धन का अधिक ब्याज लेना (को०)।

प्रकर्षणीय—वि० [सं०] जो उत्कर्ष करने के योग्य हो। प्रकर्षण के योग्य।

प्रकर्षित—वि० [सं०] १. खींचा हुआ। २. जो (धन आदि) ब्याज के रूप में अधिक प्राप्त या वसूल हो (को०)।

प्रकर्षी¹—वि० [सं० प्रकर्षिन्] १. उत्कर्षप्राप्त। प्रकर्षयुक्त। २. आगे ले चलनेवाला।

प्रकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कला (समय) का साठवाँ भाग।

यौ०—प्रकलाविद् = (१) अबोध। अज्ञ। अज्ञान (२) व्यापारी। वणिक्।

प्रकल्पक—वि० [सं०] उपयुक्त स्थान पर स्थित (को०)।

प्रकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चित करना। स्थिर करना।

प्रकल्पित—वि० [सं०] १. निश्चित किया हुआ। स्थिर किया हुआ। २. बनाया हुआ। निर्मित (को०)।

प्रकल्पिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की प्रहेलिका।

प्रकल्प्य—वि० [सं०] निश्चित करने योग्य। स्थिर करने योग्य (को०)।

प्रकशा—संज्ञा पुं० [सं०] १. कशाघात । कोड़े से मारना । २. पीड़ा देना । कष्ट पहुँचाना । ३. दे० 'प्रकशी' ।

प्रकशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूक नामक रोग जिसमें पुरुषों की मूत्रेंद्रिय सूज आती है और जो इंद्रिय को बढ़ानेवाली ओष- धियों का प्रयोग करने से होता है ।

प्रकांड[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रकाण्ड] १. स्कंध । वृक्ष का तना । २. शाखा । डाल । ३. वृक्ष । पेड़ । ४. बाहु का ऊपरी भाग । बाँह का ऊपरी हिस्सा ।

प्रकांड[2]—वि० १. बहुत बड़ा । २. बहुत विस्तृत । ३. उत्तम । उत्कृष्ट । प्रशस्त ।

प्रकांडर—संज्ञा पुं० [सं० प्रकाण्डर] वृक्ष । पेड़ [को०] ।

प्रकाम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कामना । इच्छा ।

प्रकाम[2]—वि० १. यथेष्ट । यथेप्सित । काफी । पूरा । २ काम- वासनायुक्त । रसिक । कामुक [को०] ।

यौ०—प्रकामभुक् = इच्छानुकूल खानेवाला । यथेष्ट भोजन करनेवाला ।

प्रकामाभिराम—वि० [सं० प्रकाम + अभिराम] अत्यंत सुंदर । अति मनोहर । उ०—आपके 'प्रियप्रवास', 'चोखे चौपदे'— रचनाओं से प्रकामाभिराम पटुता तो प्रकट हो ही चुकी है । —रस क०, पु० १ ।

प्रकाम्बोद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक देवता ।

प्रकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेद । किस्म । जैसे,—(क) मनुष्य कई प्रकार के होते हैं । (ख) चार प्रकार के फल । २. तरह । भाँति । जैसे,—इस प्रकार यह काम न होगा । ३. विशेषता । वैशिष्ट्य । भेद (को०) । ४. सदृशता । समानता । बराबरी ।

प्रकार[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राकार] चहार दीवारी । परकोटा । घेरा । जैसे,—(क) बिशद राजमंदिर मणिमंडित मंजुल आठ प्रकारा ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) तीनि प्रकार प्रजा निवसत चौथे मँह रघुकुल वीरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

प्रकारांतर—क्रि० वि० [सं० प्रकार + अन्तर] भिन्न प्रकार से । दूसरी तरह से । अन्य रूप में ।

प्रकारी(पु)—वि० [सं० प्रकार + हिं० ई (प्रत्य०)] प्रकार का । किस्म का । प्रकारवाला । उ०—सुंदर भोजन विविध प्रकारी ।—नंद० ग्रं०, पृ० २११ ।

प्रकाश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके भीतर पड़कर चीजें दिखाई पड़ती हैं । वह जिसके द्वारा वस्तुओं का रूप नेत्रों को गोचर होता है । दीप्ति । आभा । आलोक । ज्योति । चमक । तेज ।

विशेष—वैज्ञानिकों के अनुसार जिस प्रकार ताप (ऊष्मा) शक्ति का एक रूप है उसी प्रकार प्रकाश भी । प्रकाश कोई द्रव्य नहीं है जिसमें गुरुत्व हो । प्रकाश पड़ने पर भी किसी वस्तु की उतनी ही तौल रहेगी जितनी अँधेरे में थी । प्रकाश के संबंध में इधर वैज्ञानिकों का यह सिद्धांत (विद्युच्चुंबकीय सिद्धांत) है कि प्रकाश एक प्रकार की तरंगवत् गति है जो किसी ज्योतिष्मान् पदार्थ के द्वारा ईथर या आकाशद्रव्य में उत्पन्न होती है और चारों ओर बढ़ती है । जल में यदि पत्थर फेंका जाय तो जहाँ पत्थर गिरता है वहाँ जल में क्षोभ उत्पन्न होता है, जिससे तरंगें उठकर चारों ओर बढ़ने लगती हैं । ठीक इसी प्रकार ज्योतिष्मान् पदार्थ द्वारा ईथर या आकाशद्रव्य में जो क्षोभ उत्पन्न होता है वह प्रकाश की तरंगों के रूप में चलता है । यह आकाशद्रव्य विभु या सर्वव्यापक पदार्थ है, जो जिस प्रकार ग्रहों और नक्षत्रों के बीच अंतरिक्ष में सर्वत्र भरा है उसी प्रकार ठोस से ठोस वस्तुओं के परमाणुओं और अणुओं के बीच में भी । अतः प्रकाश का वाहक यथार्थ में यही आकाशद्रव्य समझा जाता है । प्रकाशतरंगों की गति कल्पनातीत अधिक है । वे एक सेकंड में १८६२७२ मील या ९३१३६ कोस के हिसाब से चलती हैं । प्रकाश की जो किरनें निकलती हैं, यद्यपि वे सब की सब एक ही गति से गमन करती हैं तथापि तरंगों की लंबाई के कारण उनमें भेद होता है । तरंगें भिन्न भिन्न लंबाई की होती हैं । इससे किसी एक प्रकार की तरंगों से बनी हुई किरनें दूसरे प्रकार की तरंगों से बनी हुई किरनों से भिन्न होती हैं । यही भेद रंगों के भेद का कारण है । (दे० 'रंग') । जैसे जिस तरंग की लंबाई .००००१६ इंच होती है वह बैंगनी रंग देती है, जिसकी लंबाई .००००२४ इंच होती है वह लाल रंग देती है । इसी प्रकार अनंत भेद हैं, जिनमें से कुछ ही हमारी चक्षुरिंद्रिय को ग्राह्य हैं । पहले न्यूटन आदि पुराने तत्वविदों ने प्रकाश को कणिकामय वस्तु के रूप में माना था, पर पीछे वह विद्युच्चुंबकीय तरंगों के रूप का माना गया; परंतु प्रकाश संबंधी कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जिनका समाधान विद्युच्चुंबकीय तरंग सिद्धांत से नहीं हो सकता है । अतः एक दूसरे सिद्धांत 'क्वांटम सिद्धांत' का सहारा लेना पड़ा है । इस सिद्धांत में एक नवीन प्रकार की कणिका का प्रतिपादन हुआ है । इसे 'फ़ोटॉन' नाम दिया गया है । यह कणिका द्रव्य नहीं है । यह पुंजित ऊर्जा है । प्रत्येक फोटॉन में ऊर्जा का परिमाण प्रकाशतरंग की आवृत्ति का अनुपाती होता है । इस फोटॉन सिद्धांत से उन सभी घटनाओं का पूरा पूरा समाधान हो जाता है जिनका विद्युच्चुंबकीय तरंग सिद्धांत से न हो सका था । दूसरे शब्दों में न्यूटन द्वारा प्रतिपादित कणिका सिद्धांत का यह नवीन कणिकामय रूप है ।

२. विकास । स्फुटन । विस्तार । अभिव्यक्ति । ३. प्रकटन । प्रकट होना । गोचर होना । देखने में आना । ४. प्रसिद्धि । ख्याति । ५. स्पष्ट होना । खुलना । साफ समझ में आना । ६. घोड़े की पीठ पर की चमक । ७. हास । हँसी ठट्ठा । ८. किसी ग्रंथ या पुस्तक का विभाग । ९. धूप । घाम । १०. कांस्य धातु (को०) ।

प्रकाश[2]—वि० १ प्रकाशित । जगमगाता हुआ । दीप्त । २. विकसित । स्फुटित । ३. प्रकट । प्रत्यक्ष । गोचर । ४. अति प्रसिद्ध । ख्यात । सर्वत्र जाना सुना हुआ । ५. स्पष्ट । समझ में आया हुआ ।

प्रकाशक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रकाशिका] १. व्यक्त करनेवाला। प्रकाश करनेवाला। २. द्योतित। ३. प्रसिद्ध। ख्यात। प्रकट।

प्रकाशक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो प्रकाश करे। जैसे, सूर्य। २. वह जो प्रकट करे। प्रसिद्ध करनेवाला। जैसे, ग्रंथ प्रकाशक, समाचारपत्र प्रकाशक। ३. काँसा। ४. महादेव का एक नाम। ५. सूर्य (को०)।

यौ०—प्रकाशकज्ञाता = ताम्रचूड़। मुर्गा।

प्रकाशकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० प्रकाशकर्तृ] सूर्य (को०)।

प्रकाशकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रकाशक'।

प्रकाशक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] खुले आम खरीद (को०)।

प्रकाशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकाश का भाव या धर्म।

प्रकाशधृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] धृष्ट नायक के दो भेदों में से एक। वह नायक जो प्रकट रूप से धृष्टता करे, झूठी सौगंध खाय, नायिका के साथ साथ लगा फिरे, सबके सामने संकोच त्याग कर हँसी ठट्ठा करे, झिड़कने आदि पर भी न माने।

प्रकाशन¹—वि० [सं०] प्रकाश करनेवाला। चमकीला। दीप्तिवान्।

प्रकाशन²—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु का एक नाम। २. प्रकाशित करने का काम। प्रकाश में लाने का काम। ३. किसी पुस्तक के छप जाने पर उसको सर्वसाधारण में प्रचलित करने का काम। जैसे, पुस्तक प्रकाशन। पत्र प्रकाशन।

यौ०—प्रकाशनाधिकार = पुस्तकादि के प्रकाशन का वार्तनामा। दे० 'कापीराइट'।

प्रकाशनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी (को०)।

प्रकाशमान—वि० [सं०] १. चमकता हुआ। चमकीला। प्रकाशयुक्त। २. प्रसिद्ध। मशहूर।

प्रकाशवान्—वि० [सं० प्रकाशवत्] दे० 'प्रकाशमान'।

प्रकाशवाह—संज्ञा पुं० [सं० प्रकाश + वाह] प्रकाश लानेवाला, सूर्य। उ०—विस्तृत कर जन मन पथ, वाहित कर जीवन रथ, बन प्रकाशवाह, हरे अंधकार लोकायन! —अनिमा, पु० १३४।

प्रकाशवियोग—संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार वियोग के दो भेदों में से एक। वह वियोग जो सबपर प्रकट हो जाय।

प्रकाशसंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार संयोग के दो भेदों में से एक। वह संयोग जो सबपर प्रकट हो जाय।

प्रकाशात्मक—वि० [सं०] चमकीला। आभामय (को०)।

प्रकाशात्मा¹—संज्ञा पुं० [सं० प्रकाशात्मन्] १ सूर्य। २ विष्णु। ३. शिव (को०)।

प्रकाशात्मा²—वि० चमकीला। ज्योतिमय (को०)।

प्रकाशित—वि० [सं०] १. जिसमें से प्रकाश निकल रहा हो। चमकता हुआ। उ०—यह रतन दीप हरि प्रेम को सदा प्रकाशित जग रहै। —भारतेंदु ग्रं०, पु० ४६६। २. जिसपर प्रकाश पड़ रहा हो। चमकता हुआ। ३. जो प्रकाश में आ चुका हो। विज्ञापित। प्रकट। जैसे,—यह पुस्तक हाल ही में प्रकाशित हुई है।

प्रकाशी—संज्ञा पुं० [सं० प्रकाशिन्] वह जिसमें प्रकाश हो। चमकता हुआ।

प्रकाश्य¹—वि० [सं०] १. प्रगट करने योग्य। जाहिर करने योग्य। २. व्यक्त। प्रकट।

प्रकाश्य²—संज्ञा पुं० प्रकाश। ज्योति। चमक।

प्रकाश्य³—क्रि० वि० प्रकट रूप से। स्पष्टतया। नाटक में 'स्वगत' का उलटा।

प्रकासⓟ—संज्ञा पुं० [सं० प्रकाश] दे० 'प्रकाश'। उ०—पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका। —मानस, ७।३१ (ख) सो वैष्णव बिना उनके आगे अपनो धर्म कैसे प्रकास करे। —दो सौ बावन०, भा० १, पु० १०३।

प्रकासकⓟ—वि०, संज्ञा पुं० [सं० प्रकाशक] दे० 'प्रकाशक'। उ०—(क) सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई। —मानस, १।११७। उ०—सघन घने उडुगनि गगनि अगनित करत उदोत। परम प्रकासक पै निसा निसानाथ तैं होत। —स० सप्तक, पृ० ३६८।

प्रकासनाⓟ—क्रि० स० [सं० प्रकाश] प्रकाश करना। प्रकट करना। जाहिर करना। उ०—सुनि उद्धव सब बात प्रकासी। तुम बिन दुखित रहत ब्रजबासी। —विश्राम (शब्द०)।

प्रकासिकाⓟ—वि० स्त्री० [सं० प्रकाशिका] प्रकाशित करनेवाली। प्रकट करनेवाली। उ०—पुन्य प्रकासिका पाप विनासिका हीय हुलासिका सोहत कासिका। —भारतेंदु ग्रं० भा० १, पु० २८१।

प्रकास्यⓟ—वि० [सं० प्रकाश्य] दे० 'प्रकाश्य¹'। उ०—जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। —मानस, १।११७।

प्रकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिखेरना। छीटना। विकीर्ण करना। २. मिलाना। मिश्रण (को०)।

प्रकिरतीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रकृति] दे० 'प्रकृति'—३.। उ०—पुरुष प्रकिरती पदवी पाई। सुद्ध सरगुन रचन पसारा है। —कबीर श०, भा० १, पु० ६१।

प्रकीनⓟ—वि० [सं० प्रकीर्ण] फैला हुआ। उ०—बनि बानि प्रकीन कपान बनं। —पृ० रा०, २६।२७।

प्रकीर्ण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्गंधवाला करंज। पूतिकरंज। २. अध्याय। प्रकरण। ३. चँवर। ४. पागल। ५. उद्दंड। उच्छृंखल। ६. फुटकर कविता। ७. अनेक प्रकार की फुटकल वस्तुओं का संकलन (को०)। ८. विस्तार। फैलाव (को०)। ९. विकीर्ण करना। बिखेरना। छितराना (को०)।

प्रकीर्ण²—वि० १. फैला हुआ। विस्तृत। २. बिखरा हुआ। छितराया हुआ। अस्तव्यस्त। क्षुब्ध। ३. मिला हुआ। मिश्रित ४. तरह तरह का। अनेक प्रकार का।

प्रकीर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चँवर। २. अध्याय। प्रकरण। ३. विस्तार। ४. वह जिसमें तरह तरह की चीजें मिली हों। फुटकर। जैसे, प्रकीर्णक कविता; प्रकीर्णक पुस्तकमाला। ५. पाप जिसके प्रायश्चित्त का ग्रंथों में उल्लेख न हो।

फुटकर पाप । ६. फुटकल संग्रह । ७. तुरंगम । अश्व । घोड़ा (को०) । ८. घोड़ों के सिर पर लगनेवाली कलगी (को०) ।

प्रकीर्णकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

प्रकीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जोर जोर से कीर्तन करना । २. यश गान करना । ३. घोषणा करना ।

प्रकीर्तना—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाम निर्देश करना । नामलेना । उल्लेख करना (को०) ।

प्रकीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रकीर्ति] १. घोषणा । २. प्रसिद्धि । ख्याति ।

प्रकीर्तित—वि० [सं०] १. कथित । घोषित । २. प्रथित । प्रसिद्ध । ख्यात । ३. प्रशंसित (को०) ।

प्रकीर्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रकीर्या] १. दुर्गंधवाला करंज । २. रीठा करंज ।

प्रकीर्य[2]—वि० [सं०] प्रकिरण के योग्य । बिखेरने योग्य (को०) ।

प्रकुच—संज्ञा पुं० [सं० प्रकुञ्च] आठ तोले या एक पल का मान ।

प्रकुज—संज्ञा पुं० [सं० प्रकुञ्ज] दे० 'प्रकुच' ।

प्रकुथित—वि० [सं०] दूषित । दूषणयुक्त (को०) ।

प्रकुपित—वि० [सं०] १. जिसका प्रकोप बहुत बढ़ गया हो । जैसे, प्रकुपित कफ । २. हिलाया हुआ । कंपित । क्षोभित (को०) । ३ जो बहुत क्रुद्ध हो । उ०—पहुँचे पुर में प्रकुपित होकर धन्वी लक्ष्मण चारुचरित्र ।—साकेत, पृ० ३८७ ।

प्रकुप्त—वि० [सं०] दे० 'प्रकुपित' ।

प्रकुल—संज्ञा पुं० [सं०] साँचे मे ढला हुआ शरीर । सौंदर्ययुक्त शरीर (को०) ।

प्रकुष्मांडी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रकुष्माण्डी] दुर्गा (को०) ।

प्रकूष्मांडी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रकूष्माण्डी] दुर्गा (को०) ।

प्रकृत[1]—वि० [सं०] १. जो विशेष रूप से किया गया हो । आरब्ध । २. वास्तविक । यथार्थ । असली । सच्चा । ३. जो बनाया गया हो । पूरा किया हुआ । रचा हुआ । ४. जिसमें किसी प्रकार का विकार न हुआ हो । विकाररहित । अविकृत । ५. प्रकरणप्राप्त । प्रसंगप्राप्त (को०) । ६. अपेक्षित । आकांक्षित । इच्छित (को०) । ७. स्वभाववाला । प्रकृतिवान् । ८. नियुक्त (को०) ।

प्रकृत[2]—संज्ञा पुं० श्लेष अलंकार का एक भेद ।

प्रकृतता—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकृत होने का भाव । २. यथार्थता । असलियत ।

प्रकृतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकृत होने का भाव । २. यथार्थता । असलियत ।

प्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वभाव । मूल या प्रधान गुण जो सदा बना रहे । तासीर । जैसे,—आलू की प्रकृति गरम है । २. प्राणी की प्रधान प्रवृत्ति । न छूटनेवाली विशेषता । स्वभाव । मिजाज । जैसे,—वह बड़ी खोटी प्रकृति का मनुष्य है । ३. जगत् का मूल बीज । वह मूल शक्ति अनेक रूपात्मक जगत् जिसका विकास है । जगत् का उपादान कारण । कुदरत ।

विशेष—सांख्य में पुरुष और प्रकृति से अतिरिक्त और कोई तीसरी वस्तु नहीं मानी गई है । जगत् प्रकृति का ही विकार अर्थात् अनेक रूपों में प्रवर्तन है । प्रकृति की विकृति या परिणाम ही जगत् है । जिस प्रकार एकरूपता या निर्विशेषता से परिणाम द्वारा अनेकरूपता की ओर सर्गोन्मुख गतिहोती है उसी प्रकार फिर अनेकरूपता से क्रमशः उस एकरूपता की ओर गति होती है जिसे साम्यावस्था, प्रलयावस्था या स्वरूपावस्था कहते हैं । प्रथम प्रकार की गतिपरंपरा को विरूप परिणाम और दूसरी प्रकार की गतिपरंपरा को स्वरूप परिणाम कहते हैं । स्वरूपावस्था में प्रकृति अव्यक्त रहती है, व्यक्त होने पर ही वह जगत् कहलाती है । इन्हीं दोनों परिणामों के अनुसार जगत् बनता और बिगड़ता रहता है । प्रकृति के परिणाम का क्रम इस प्रकार कहा गया है—प्रकृति से महत्तत्व (बुद्धि), महत्तत्व से अहंकार, अहंकार से पंचतन्मात्र (शब्द तन्मात्र, रस तन्मात्र इत्यादि), पंचतन्मात्र से एकादश इंद्रिय (पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेंद्रिय और मन) और उनसे फिर पंचमहाभूत । इस प्रकार ये चौबीसों तत्व जिनसे संसार बना है प्रकृति ही के परिणाम हैं । जो क्रम कहा गया है वह विरूप परिणाम का है । स्वरूप परिणाम का क्रम उलटा होता है, अर्थात् उसमें पंचमहाभूत एकादश इंद्रिय रूप में, फिर इंद्रिय तन्मात्र रूप में, तन्मात्र अहंकार रूप में—इसी क्रम से सारा जगत् फिर नष्ट होकर अपने मूल प्रकृति रूप में आ जाता है । विशेष दे०—'सांख्य' ।

४. राजा, आमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दंड और मित्र इन सात अंगों से युक्त राष्ट्र या राज्य ।

विशेष—इसी को शुक्रनीति में 'सप्तांग राज्य' कहा है । उसमें राजा की सिर से, आमात्य की आँख से, मित्र की कान से, कोश की मुख से, दंड या सेना की भुजा से, दुर्ग की हाथ से और जनपद की पैर से उपमा दी गई है ।

५. राज्य के अधिकारी कार्यकर्ता जो आठ कहे गए हैं । विशेष दे० 'अष्ट प्रकृति' । ५. परमात्मा (को०) । ६. नारी । स्त्री (को०) । ७. स्त्री या पुरुष की जननेंद्रिय (को०) । ८. माता । जननी (को०) । ९. माया (को०) । १०. कारीगर । शिल्पकार । ११. एक छंद जिसमें २१, २१ अक्षर प्रत्येक चरण में हों (को०) । १२. प्रजा (को०) । १३. पशु । जंतु (को०) । १४. व्याकरण में वह मूल शब्द जिसमें प्रत्यय लगाते हैं । १५. जीवनक्रम (को०) । १६. (गणित में) निरूपक । गुणक (को०) । १७. चराचर जगत् (को०) । १८. सृष्टि के मूलभूत पाँच तत्व । पंचमहाभूत (को०) ।

प्रकृतिज—वि० [सं०] जो प्रकृति या स्वभाव से उत्पन्न हुआ हो।

प्रकृतिपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] राज्यमंत्री। मंत्री [को०]।

प्रकृतिभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वभाव। २. संधि का वह नियम जिसमें दो पदों के मिलने से कोई विकार नहीं होता।

प्रकृतिमंडल—संज्ञा पुं० [सं० प्रकृतिमण्डल] राज्य के स्वामी, भामात्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल इन सातों अंगों का समूह। २. प्रजा का समूह।

प्रकृतिमान्—वि० [प्रकृतिमत्] १. स्वाभाविक। नैसर्गिक। सहज। २. मात्विक विचार का [को०]।

प्रकृतिलय—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति में मिल जाना। प्रलय होना [को०]।

प्रकृतिवशित्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति को अधिकार में लाने या रखने की शक्ति।

प्रकृतिशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें प्राकृतिक बातों (जैसे, जीव, पशु, वनस्पति, भूगर्भ आदि) का विचार किया जाय।

प्रकृतिसिद्ध—वि० [सं०] स्वाभाविक। प्राकृतिक। नैसर्गिक।

प्रकृतिसुभग—वि० [सं०] नैसर्गिक सुंदर। स्वभावत सुंदर [को०]।

प्रकृतिस्थ—वि० [सं०] १. जो अपनी प्राकृतिक अवस्था में हो। अपने स्वभाव में स्थित। अपनी मामूली हालत में। २. स्वाभाविक। नैसर्गिक।

प्रकृतिस्थ सूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तरायण उल्लंघन करके आया हुआ सूर्य।

प्रकृतीश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति अर्थात् प्रजा का स्वामी। राजा। शास्ता [को०]।

प्रकृत्यजीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] साधारण या स्वाभाविक अजीर्ण।

प्रकृत्या—क्रि० वि० [सं०] प्रकृति से। स्वभावतया [को०]।

प्रकृष्ट—वि० [सं०] १. मुख्य। प्रधान। खास। २. उत्तम। श्रेष्ठ। ३. आकृष्ट। खिंचा हुआ। ४. खींचा या बढ़ाया हुआ (को०)।

प्रकृष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्तमता। उत्कृष्टता। श्रेष्ठता। मुख्यता। २. दीर्घता (को०)।

प्रकोट—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहरपनाह। परिखा। परकोटा। २. बुर्ज।

प्रकोथ—संज्ञा पुं० [सं०] सड़ना। दूषित होना [को०]।

प्रकोप—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत अधिक कोप। २. क्षोभ। ३. चंचलता। ४. किसी रोग की प्रबलता। बीमारी का अधिक और तेज होना। जैसे,—आजकल शहर में हैजे का बहुत प्रकोप है। ५. शरीर के वात, पित्त आदि का किसी कारण से बिगड़ जाना जिससे रोग उत्पन्न होता है। जैसे,—उनको पित्त के प्रकोप के कारण ज्वर हुआ है। ६. आक्रमण। हमला (को०)। ७. विद्रोह।

प्रकोपक—संज्ञा पुं० [सं०] किसी भूमि या धन का धर्मात्मा के हाथ से अधर्मी के हाथ में आना। अधर्मी का लाभ (जिससे जनता को खेद या रोष हो)।

प्रकोपण—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रकोपन' [को०]।

प्रकोपन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी के प्रकोप को बढ़ाना। उत्तेजित करना। २. गुस्सा करना। नाराज होना। बिगड़ना। ३. क्षोभ। ४ वात, पित्त आदि का कोप। विशेष—दे० 'प्रकोप'। ५ चंचलता।

प्रकोपन²—वि० [सं०] प्रकोप करानेवाला। क्षुब्ध करनेवाला। प्रकुपित करनेवाला [को०]।

प्रकोपित—वि० [सं०] उत्तेजित किया हुआ। क्षुब्ध। कुपित [को०]।

प्रकोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोहनी के नीचे का भाग। २. बड़े दरवाजे के पास की कोठरी। सदर फाटक के पास की कोठरी। ३. बड़ा आँगन जिसके चारों ओर इमारत हो।

प्रकोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] इमारत के सदर फाटक के पास का कक्ष या कमरा [को०]।

प्रकोष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

प्रक्कार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्राकार] दे० 'प्राकार'। उ०—वर विहार प्रक्कार विपन वाटिका बिराजिय।—पृ० रा०, १८।१४।

प्रक्खर¹—वि० [सं०] अत्यंत तीक्ष्ण, तीव्र या उग्र [को०]।

प्रक्खर²—संज्ञा पुं० १. घोड़े या हाथी के रक्षार्थ उन्हें पहनाने का कवच। पाखर। अश्वकवच। २. खच्चर। ३. श्वान। कुत्ता [को०]।

प्रक्रंता—वि० [सं० प्रक्रन्तृ] १. उपक्रम करनेवाला। आरंभकर्ता। २. दमन करनेवाला। ३. स्वायत्त करनेवाला। वश में करनेवाला [को०]।

प्रक्रति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'प्रकृति'-३। उ०—आदि अगम अविकार एक ईस्वर अविनासी। पछै प्रक्रति तत पच विविध सुर ईस जवासी।—रा० रू०, पृ० ७।

प्रक्रती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'प्रकृति'। उ०—प्रक्रती पुरुष्षं।—पृ० रा०, २४।४०३।

प्रक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रम। सिलसिला। २. वह उपाय जो किसी कार्य के आरंभ में किया जाय। उपक्रम। ३. अतिक्रम। उल्लंघन। ४ अवसर। मौका।

प्रक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अच्छी तरह घूमना। खूब भ्रमण करना। २. पार करना। ३. आरंभ करना। ४. अग्रसर होना। आगे बढ़ना।

प्रक्रमणीय—वि० [सं०] प्रक्रम के योग्य। उपक्रम योग्य [को०]।

प्रक्रमभंग—संज्ञा पुं० [सं० प्रक्रमभङ्ग] साहित्य में एक दोष जो उस समय होता है जब किसी वर्णन में आरंभ किए हुए क्रम आदि का ठीक ठीक पालन नहीं होता।

प्रक्रांत¹—वि० [सं० प्रक्रान्त] १. आरंभ किया हुआ। २. कथित किया हुआ। ३. प्रसंगप्राप्त। प्रकरणप्राप्त। ४. विक्रमशाली। वीर। शूर [को०]।

प्रक्रांत²—संज्ञा पुं० १. यात्रारंभ। यात्रा का उपक्रम। २. प्रश्न या वाद का विषय [को०]।

प्रक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकरण । २. क्रिया । युक्ति । तरीका । ३. राजाओं का चँवर, छत्र आदि का धारण । ४ प्रकृष्ट कर्म । अच्छा कार्य (को०) । ५. उच्च पद या स्थान (को०) । ६. विशेष अधिकार (को०) । ७. ग्रंथ का कोई अध्याय या विभाग । जैसे, उणादि प्रक्रिया (को०) । ८. किसी ग्रंथ का प्रारंभिक परिचयात्मक अंश या अध्याय (को०) । ९. (व्याकरण) शब्द या प्रयोग का साधन या विधि (को०) । १०. (वैद्यक) उपचार में ओषधिनिर्देश । नुसखा (को०) ।

प्रक्रीड—संज्ञा पुं० [सं०] क्रीडा । खेलकूद (को०) ।

प्रक्लिन्न—वि० [सं०] १ आर्द्र । तर । गीला । २. तृप्त । संतुष्ट । ३. दयार्द्र । ४. सड़ा या गला हुआ (को०) ।

प्रक्लिन्नवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग जिसमें आँख की पलकें बाहर से सूज जाती है और आँखों में कीचड़ भर जाता है । विशेष दे०—'क्लिन्नवर्त्म' । २. वह मार्ग जो जल के कारण गीला हो

प्रक्लेद—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रता । नमी । तरी ।

प्रक्लेदन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] तर करना । गीला करना । भिगोना ।

प्रक्लेदन[2]—वि० आर्द्र करनेवाला (को०) ।

प्रक्लेदी—वि० [सं० प्रक्लेदिन्] तर करनेवाला । आर्द या गीला करनेवाला (को०) ।

प्रक्वण, प्रक्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] वीणा की ध्वनि (को०) ।

प्रक्वाथ—संज्ञा पुं० [सं०] उबलना (को०) ।

प्रच्छ(पु)—वि० [सं० पृच्छक] पूछनेवाला । प्रश्नकर्ता । उ०—कल्प कलहंस कोकि क्षीरनिधि छवि प्रच्छ हिमगिरि प्रभा प्रभु प्रगट पुनीत है ।—केशव (शब्द०) ।

प्रक्षपण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रक्षयण' (को०) ।

प्रक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय । नाश । बरबादी ।

प्रक्षयण—संज्ञा पुं० [सं०] बरबाद करना । नाश करना ।

प्रक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] घोडे की पाखर । दे० 'प्रक्खर' ।

प्रक्षरण—संज्ञा पुं० [सं०] झरना । बहना ।

प्रक्षाम—वि० [सं०] दग्ध । जला या झुलसा हुआ (को०) ।

प्रक्षाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रायश्चित्त । २. दे० 'प्रक्षालन' ।

प्रक्षालन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल से साफ करने की क्रिया । धोना । २. जल जिससे कोई चीज साफ की जाय (को०) । ३. शुद्ध करने की वस्तु । शुद्धि का साधन (को०) । ४. स्वच्छ या साफ करना (को०) ।

प्रक्षालनिक—संज्ञा पुं० [सं० प्रक्षालनिन्] पैर या चरण धोनेवाला विशेषतः अतिथियों के (को०) ।

प्रक्षालित—वि० [सं०] धोया हुआ । साफ किया हुआ । २. प्रायश्चित्त किया हुआ (को०) ।

प्रक्षाल्य—वि० [सं०] धोने या साफ करने के योग्य ।

प्रक्षिप्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंका हुआ । २. डाला हुआ । ३. ऊपर का बीतर जोड़ा हुआ (को०) । ३. जोड़ा या मिलाया हुआ (को०) । ४. ऊपर से बढ़ाया हुआ । पीछे से मिलाया हुआ । जैसे,—(क) रामायण में लवकुश कांड प्रक्षिप्त है । (ख) इस पुस्तक में एक प्रकरण प्रक्षिप्त है ।

प्रक्षीण[1]—वि० [सं०] १. नष्ट । विध्वस्त । २ अंतर्हित । लुप्त । गायब (को०) ।

प्रक्षीण[2]—संज्ञा पुं० नष्ट होने या करने का स्थान । विनाशस्थल (को०) ।

प्रक्षीबित—वि० [सं०] मदहोश । नशे में मत्त (को०)

प्रक्षुण्ण—वि० [सं०] १. निर्दलित । मर्दित । २. चूर्ण किया हुआ । चूरा किया हुआ । ३. आघातित । ४. प्रचोदित । प्रेरित (को०) ।

प्रक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना । डालना । २. छितराना । बिखराना । ३. मिलाना । बढाना । ४. वह पदार्थ जो औषध आदि में ऊपर से डाला जाय । ५. गाड़ी या रथ का बक्स (को०) । ६. क्षेपक । प्रक्षिप्त अंश (को०) । ७. वह मूल धन जो किसी व्यापारिक समाज या संस्था का प्रत्येक सदस्य लगा दे । हिस्सेदारों की अलग अलग लगाई हुई पूँजी ।

प्रक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना । २. ऊपर से मिलाना । ३. जहाज आदि का चलाना । ४. निश्चित करना ।

प्रक्षेपणीय—वि० [सं०] प्रक्षेपण के योग्य (को०) ।

प्रक्षेपलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षर लिखने की एक विशेष रीति ।

प्रक्षोभ, प्रक्षोभण—संज्ञा पुं० [सं०] १. घबराहट । बेचैनी । २. कंपन । हिलना डुलना (को०) ।

प्रक्ष्वेडन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रक्ष्वेडना] जनरव । १. शोरगुल । हल्ला । २. लोहे का बाण (को०) ।

प्रक्ष्वेडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अस्पष्ट नाद । कलरव । २. गर्जन । गंभीर नाद (को०) ।

प्रक्ष्वेडित[1]—वि० [सं०] कोलाहलयुक्त । शोरगुल से भरा हुआ ।

प्रक्ष्वेडित[2]—संज्ञा पुं० अस्पष्ट ध्वनि । रव । कलकल (को०) ।

प्रक्ष्वेदन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रक्ष्वेदना] नाराच । बाण (को०) ।

प्रखर[1]—वि० [सं०] १. तीक्ष्ण । प्रचंड । जैसे, सूर्य की प्रखर किरण । २. धारदार । चोखा । पैना । ३. कठोर । कड़ा । रूक्ष (को०) ।

प्रखर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खच्चर । २. कुत्ता । ३. घोड़े की पाखर ।

प्रखरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रखर होने की क्रिया या भाव । तेजी ।

प्रखल—वि० [सं०] बहुत बड़ा दुष्ट ।

प्रखाद—वि० [सं०] खाने या निगलनेवाला (को०) ।

प्रख्य[1]—वि० [सं०] १. श्रेष्ठ । वरिष्ट । २. प्रत्यक्ष । व्यक्त । परिस्फुट ३. सदृश । समान । तुल्य । (समासांत में प्रयुक्त) जैसे, अमृतप्रख्य, शशांकप्रख्य (को०) ।

प्रख्य[2]—संज्ञा पुं० बृहस्पति । गुरु । सुराचार्य (को०) ।

प्रख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विख्याति । प्रसिद्धि । २. समता । बराबरी । ३. उपमा । ४. प्रभा । कांति । दीप्ति (को०) । ५. इंद्रियग्राह्यता । वेद्यता । गोचरता (को०) ।

प्रख्यात—क्रि० वि० [सं०] १. जिसे सब लोग जानते हों । प्रसिद्ध ।

मशहूर। विख्यात। २. प्रसन्नतायुक्त। सुखी (को०)। ३. ज्ञापित (को०)।

प्रख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रख्यात होने का भाव। प्रसिद्धि। विख्याति। २. वेत्ता। गोचरता। इंद्रियग्राह्यता (को०)।

प्रख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूचना। खबर। वृत्त। २. खबर देना। सूचना देने का काम। ३. ग्रहण या अनुभव करना [को०]।

प्रख्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसिद्ध करना। ख्यात करना। २. संचारित करना। संचारण। ३. समाचार। सूचना [को०]।

प्रख्यापित—वि० [सं०] जिसको ख्यात किया गया हो। जिसकी प्रसिद्धि की गई हो। जिसके संबंध में कहा गया हो। उ०—वे नए से नए और अधिक भड़कीले, प्रचारित एवं प्रख्यापित वादों से प्रभावित नहीं होते।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १४२

प्रगंड—संज्ञा पुं० [सं० प्रगण्ड] कंधे से लेकर कोहनी तक का भाग।

प्रगंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्ग आदि का प्राकार जिसपर बैठकर दूर दूर की चीजें देखते हैं। बाहरी दीवार।

प्रगंध—संज्ञा पुं० [सं० प्रगन्ध] दवन पापड़ा।

प्रगट—वि० [सं० प्रकट] दे० 'प्रकट'।

प्रगटन—संज्ञा पुं० [सं० प्रकटन] दे० 'प्रकटन'।

प्रगटना†[1]—क्रि० अ० [सं० प्रकटन] प्रगट होना। सामने आना। जाहिर होना। उ०—प्रगटत दुरत करत छल भूरी।—मानस, ३।२१।

प्रगटना[2]—क्रि० स० व्यक्त करना। प्रकट करना। उ०—प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा।—मानस ३।२१।

प्रगटाना†—क्रि० स० [सं० प्रकटन, हिं० प्रगटना का सक० रूप] प्रकट करना। जाहिर करना।

प्रगटित—वि० [सं० प्रकटित] दे० 'प्रकटित'। उ०—जो कोइ जोति ब्रह्ममय, रसमय सबकी आइ। सो प्रगटित निज रूप करि, इहि तिसरे अध्याइ।—नंद ग्रं०, पृ० १३१।

प्रगट्टना(पु)[1]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'प्रगटना'। उ०—तिमिर तुमिल तुरकान प्रबल दिसि बिदिस प्रगट्टत।—मति० ग्रं०, पृ० ३६७।

प्रगट्टना(पु)[2]—क्रि० स० दे० 'प्रगटाना'। उ०—'मतिराम' एक दाता तिमनि जमजस अमल प्रगट्टियउ।—मति० ग्रं०, पृ० ३६४।

प्रगडड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रकट, प्रा० प्रगड, हिं० पगरा या फा० पगाह (=सवेरा)] । प्रातःकाल का समय। सूर्य का प्रकाश। तड़का। सवेरा। पगरा। उ०—पुगल आइ प्रगडउ करइ, करइ मारवणि दाइ।—ढोला०, दू० ३८७।

प्रगत—वि० [सं०] १. आगे गया हुआ। गत। २. जो पृथक् या दूर हो। अलग। पृथक् [को०]।

यौ०—प्रगतजानु, प्रगतजानुक=जिसके घुटने एक दूसरे से अधिक अंतराल पर हों। धनुषाकार आगे की ओर जिसकी जानु निकली हो।

प्रगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आगे बढ़ना। तरक्की। उन्नति [को०]।

प्रगतिवाद—संज्ञा पुं० [सं० प्रगति+वाद] १. वह सिद्धांत जिसमें साहित्य को सामाजिक विकास का साधन माना जाता है। २. सामान्य जनजीवन को साहित्य में व्यक्त करने का सिद्धांत। एक साहित्यिक विचारधारा, जिसमें सामाजिक यथार्थ और मार्क्स के आर्थिक क्षेत्र में प्रतिपादित सिद्धांतों के लिये विशेष आग्रह रहता है।

विशेष—प्रगतिवाद का आरंभ सन् १९४० के पूर्व ही हो गया था। सामाजिक और आर्थिक उत्पीड़न संबंधी प्रगतिवादी विचारों ने साहित्यकारों को सहज रूप से अपनी ओर आकृष्ट किया, फलतः श्रमिकों, कृषकों और सामाजिक उत्पीड़ितों को केंद्र बनाकर साहित्य की रचना हुई। साहित्यिक विचारधारा के अतिरिक्त प्रगतिवाद जनांदोलन के रूप में भी पनपा और सारे संसार को इसने प्रभावित किया। इस रूप में इसने मानवमुक्ति के लिये संघर्ष किया, अव्यावहारिक प्राचीन संस्कारों और रूढ़ियों के निराकरण तथा समाज की वर्गस्थिति को समाप्त करने की चेष्टा की।

प्रगतिवादी[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रगति+वादिन्] प्रगतिवाद का अनुयायी।

प्रगतिवादी[2]—वि० १. प्रगतिवाद के सिद्धांत पर चलनेवाला। प्रगतिवादी विचारधारा को माननेवाला। २. प्रगतिवाद संबंधी। ३. प्रगतिवाद के सिद्धांत पर आधृत।

प्रगतिशील—वि० [हिं० प्रगति+सं० शील] १. बराबर आगे बढ़नेवाला। उन्नतिशील। २. सुधारवादी। ३. जो प्रगतिवाद का अनुयायी हो। ४. प्रगतिवाद संबंधी। ५. प्रगतिवाद के सिद्धांत पर आधारित।

प्रगम—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वानुराग। प्रथम प्रेम। प्रेमी और प्रेमिका में अनुराग का प्रथम उदय [को०]।

प्रगमन—संज्ञा पुं० [सं०] वि० प्रगमनीय] १. आगे बढ़ना। २. उन्नति। तरक्की। ३. झगड़ा। लड़ाई। ४. दे० 'प्रगम'। ५. वह भाषण जिसमें कोई अच्छा उत्तर दिया गया हो। अनूठा या माकूल जवाब।

प्रगर्जन, प्रगर्जित—संज्ञा पुं० [सं०] गरजना। गर्जन। चिल्लाहट [को०]।

प्रगल्भ—वि० [सं०] १. चतुर। होशियार। २. प्रतिभाशाली। संपन्न बुद्धिवाला। ३. उत्साही। साहसी। हिम्मती। ४. समय पर ठीक उत्तर देनेवाला। हाजिरजवाब। ५. निर्भय। निडर। ६. बोलने में संकोच न रखनेवाला। बकवादी। ७. गंभीर। भरापूरा। ८. प्रधान। मुख्य। ९. निर्लज्ज। बेहया। धृष्ट। १. उद्धत। जिसमें नम्रता न हो। ११. अभिमानी। १२. पुष्ट। प्रौढ़।

प्रगल्भता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धिमत्ता। होशियारी। २. प्रतिभा। बुद्धि की संपन्नता। ३. उत्साह। ४. हाजिरजवाबी। वाक्चातुरी। ५. निर्भयता। संकोच का अभाव। ६. गंभीरता। ७. प्रधानता। मुख्यता। ८. निर्लज्जता। बेहयाई। धृष्टता। ९. उद्धतता। १०. अभिमान। ११.

धृष्टता। प्रौढ़ता। १२. बकवाद। व्यर्थ की बातचीत। १३. सामर्थ्य। शक्ति। अध्यवसाय।

प्रगल्भवचना—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] मध्या नायिका के चार भेदों में से एक। वह नायिका जो बातों ही बातों में अपना दुःख और क्रोध प्रकट करे और उलाहना दे।

प्रगल्भा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. दे॰ 'प्रौढ़ा' (नायिका)। २. धृष्ट स्त्री। कर्कशा स्त्री (को॰)। ३. दुर्गा का एक नाम (को॰)।

प्रगसनाⓅ†—क्रि॰ अ॰ [सं॰ प्रकाश] प्रकट होना। प्रकाशित होना। व्यक्त होना।

प्रगाढ़¹—वि॰ [सं॰ प्रगाढ] १. बहुत अधिक। जैसे, प्रगाढ़ संकट। २. गाढ़ा या गहरा। जैसे, प्रगाढ़ निद्रा। ३. कड़ा। कठोर। घना। ४. अच्छी तरह डुबाया या तर किया हुआ (को॰)। ५. शक्तिशाली। दृढ़ (को॰)। ६. बहुत आगे बढ़ा हुआ (को॰)।

प्रगाढ़²—संज्ञा पुं॰ १. तपस्या। तपश्चरण। २. अभाव। कष्ट। दुःख। कठिनाई [को॰]।

प्रगाढ़ता—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रगाढता] १. तीव्रता। अधिकता। २. गंभीरता। गहराई। उ॰—साहित्यकार के जीवन और साहित्य में वह जितनी प्रगाढ़ता से अंतर्भुक्त रहेगा।—इति॰ आलो॰, पृ॰ २४। ३. कठिनता। कठिनाई।

प्रगाता—वि॰, संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रगातृ] गानेवाला। अच्छा गायक।

प्रगामी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रगामिन्] वह जो गमन करता हो। गंता। जानेवाला।

प्रगायी—वि॰, संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रगायिन्] अच्छा गानेवाला। उत्कृष्ट गायक। प्रगाता।

प्रगासⓅ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'प्रकाश'। उ॰—अजपा जपै जीभ्या बिना यह मूल प्रगास परसि लीजे।—सं॰ दरिया, पृ॰ ६६।

प्रगासनाⓅ—क्रि॰ स॰ [हिं॰ प्रगासना] प्रकाशित करना। प्रगट करना। उ॰—बीसल रास प्रगासता। नाल्ह कहइ जिणि आवइ हो छोडि।—बी॰ रासो, पृ॰ ३।

प्रगीत¹—वि॰ [सं॰] १. गाया हुआ। जो गाया गया हो। २. गायक। गानेवाला [को॰]।

प्रगीत²—संज्ञा पुं॰ १ गीत। गाना (को॰)। २. आधुनिक काव्यों में लिखे गए वे गीत जो काव्य होने के साथ ही अत्यधिक गेय होते हैं।

प्रगीति—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का छंद।

प्रगुण—वि॰ [सं॰] १. चतुर। दक्ष। होशियार। २. प्रकृष्ट गुणोंवाला। उत्तम गुणवान्। ३. सरल। अकुटिल। सीधा। अनुकूल।

प्रगुणन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. क्रमयुक्त करना। व्यवस्थित करना। २. सरल या अनुकूल करना [को॰]।

प्रगुणित—वि॰ [सं॰] १. व्यवस्थित। समीकृत। २. चिकना या सीधा किया हुआ। अनुकूल किया हुआ [को॰]।

प्रगुणी—वि॰ [सं॰ प्रगुणिन्] गुणवान्।

प्रगुण्य—वि॰ [सं॰] १. विशेष। अधिक। २. उत्कृष्ट। उत्तम [को॰]।

प्रगृहीत—वि॰ [सं॰] १. जो अच्छी तरह ग्रहण किया गया हो। २. जिसका उच्चारण बिना संधि के नियमों का ध्यान रखे किया जाय।

प्रगृह्य¹—वि॰ [सं॰] १. जो ग्रहण करने के योग्य हो। २. जो बिना संधि के नियमों का ध्यान रखे उच्चारण करने के योग्य हो।

प्रगृह्य²—संज्ञा पुं॰ १. स्मृति। २. वाक्य।

प्रगे—क्रि॰ वि॰ [सं॰] प्रातः। तड़के। सबेरे [को॰]।

यौ॰—प्रगेनिश, प्रगेशय = सुबह होने पर भी जो सोता रहे।

प्रगेतन—वि॰ [सं॰] प्रातःकालीन। सुबह किया जानेवाला [को॰]।

प्रग्रह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. ग्रहण करने या पकड़ने का भाव या ढंग। धारण। २. लड़ने का एक प्रकार। ३. सूर्य अथवा चंद्रमा के ग्रहण का आरंभ। ४. आदर। सत्कार। ५. अनुग्रह। कृपा। ६. उद्धता। ७. बाग। लगाम। ८. किरण। ९. रस्सी। डोरी। विशेषतः तराजू आदि में बँधी हुई डोरी। १०. नेता। मार्गदर्शक। ११. किसी ग्रह के साथ रहनेवाला छोटा ग्रह। उपग्रह। १२. बाँह। हाथ। १३. बँधुवा। कैदी। १४. कर्णिकार वृक्ष। कनियारी। १५. इंद्रियदमन। इंद्रियनिग्रह। १६. सोना। सुवर्ण। १७. विष्णु। १८. एक प्रकार का अमलतास। १९. नियमन (को॰)। २०. घोड़े आदि पशुओं को साधना।

प्रग्रहण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. ग्रहण करने की क्रिया या भाव। धारण। २. सूर्य आदि के ग्रहण का आरंभ। ३. घोड़े आदि पशुओं को साधना। ४. तराजू आदि की डोरी। ५. नियमन (को॰)। ६. बंधन (को॰)। ७. नेतृत्व करना। अगुआ बनना (को॰)। ८. लगाम। बाग।

प्रग्राह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. तराजू आदि की डोरी। २. लगाम। बाग। ३. ग्रहण। धारण। लेना (को॰)।

प्रग्रिहⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ परिग्रह] दे॰ 'परिग्रह'।

प्रग्रीव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. किसी मकान के चारों तरफ का वह घेरा जो लट्ठे या बाँस आदि गाड़कर बनाया जाता है। २. झरोखा। छोटी खिड़की। ३. अस्तबल। ४. वृक्ष का ऊपरी भाग। ५. आमोद प्रमोद करने का स्थान। रंगभवन। ६. रँगा हुआ शिरोगृह या प्रासादशिखर (को॰)।

प्रघटⓅ—वि॰ [सं॰ प्रकट, हिं॰ प्रगट] दे॰ 'प्रकट'।

प्रघटक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सिद्धांत। नियम। विधि।

प्रघटनाⓅ—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ प्रघट+ना] दे॰ 'प्रगटना'।

प्रघटा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] किसी शास्त्र के संबंध में जानकारी की प्रारंभिक छोटी छोटी बातें [को॰]।

यौ॰—प्रघटाविद् = प्रघटा का जानकार। साधारण जानकार।

प्रघट्टक¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. सिद्धांत। नियम। विधि। २. प्रकरण। परिच्छेद।

प्रघट्टक²Ⓟ—वि॰ [सं॰ प्रकट, हिं॰ प्रगट, प्रघट] प्रगट करनेवाला।

खोलनेवाला। प्रकाश करनेवाला। उ०—भट्ट प्रघट्टक कहुँ न दिखाहीं। द्वैताद्वैत कथा परिखाहीं।—(शब्द०)।

प्रघण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बरामदा। अलिंद। २. लोहे का मुदगर। ३ ताँबे का घड़ा।

प्रघण[2]—वि० [सं० प्रघन] अत्यधिक। बहुत अधिक। उ०—मह जाय पेखे छाह निरमल प्रघण हिम पाणी। —रघु० रू०, पृ० १६१।

प्रघन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रघण'।

प्रघल(प)†—वि० [सं० प्रबल, या प्र+घन] १. उद्दंड। उद्धत। प्रगल्भ। २. अत्यधिक। घना। उ०—प्रघल दल बल रीझ इक पल सकल बगसे स्याम।—रघु० रू०, पृ० २२८।

प्रघस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक दैत्य जो रावण की सेना का मुख्य सेनानायक था और जिसे हनुमान ने प्रमदावन उजाड़ने के समय मारा था। २. दैत्य। राक्षस। ३. पेटूपन। अधिक भक्षण। खब्बूपन (को०)।

प्रघस[2]—वि० भक्षक। खानेवाला।

प्रघसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

प्रघाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रघण' (को०)।

प्रघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. आघात। मारना। २. युद्ध। संघर्ष। ३. पानी बहने का मार्ग। ४ किसी वस्त्र का हाशिआ या किनारा (को०)।

प्रघान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रघण' (को०)।

प्रघास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चातुर्मास्य याग।

प्रघुण—संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि। अभ्यागत। पाहुना (को०)।

प्रघूर्ण[1]—वि० [सं०] १. घूमता हुआ। घूमनेवाला। २. चक्कर लगाता हुआ (को०)।

प्रघूर्ण[2]—संज्ञा पुं० अतिथि (को०)।

प्रघोर—वि० [सं०] अति कठिन। बहुत अधिक कठिन।

प्रघोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वनि। शोर। २. प्रबल शोर। जोर की आवाज (को०)।

प्रचंड[1]—वि० [सं० प्रचण्ड] [वि० स्त्री० प्रचंडा] १. बहुत अधिक तीव्र। तेज। बहुत तीखा। उग्र। प्रखर। २. बहुत अधिक वेगवान्। प्रबल। ३ भयंकर। ४. कठिन। कठोर। ५. दुस्सह। असह्य। ६ बड़ा। भारी। ७. पुष्ट। बलवान्। ८. बहुत गरम। ९. प्रतापी।

यौ०—प्रचंडघोण = बड़ी नासिकावाला। प्रचंडमूर्ति = भीमकाय। प्रचंडभैरव। प्रचंडसूर्य = प्रज्वलित सूर्य से युक्त।

प्रचंड[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक गण। २. सफेद कनेर।

प्रचंडता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रचण्डता] १. प्रचंड होने का भाव। तेजी। तीखापन। प्रबलता। उग्रता। २. भयंकरता।

प्रचंडत्व—संज्ञा पुं० [सं० प्रचण्डत्व] दे० 'प्रचंडता'।

प्रचंड भैरव—संज्ञा पुं० [सं० प्रचण्ड भैरव] नाटक एक का भेद। व्यायोग (को०)।

प्रचंडमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं० प्रचण्डमूर्ति] वरना वृक्ष।

प्रचंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रचण्डा] १. सफेद दूब जिसके फूल सफेद होते हैं। २. दुर्गा। चंडी। ३. दुर्गा की एक सखी।

प्रचई(प)—संज्ञा स्त्री० [सं० परिचय] परिचय देनेवाली वस्तु।

प्रचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जो प्रस्थित हो। चली हुई सेना। प्रस्थित चमू (को०)।

प्रचक्षा—संज्ञा पुं० [सं० प्रचक्षस्] बृहस्पति (को०)।

प्रचपल—वि० [सं०] अत्यंत चपल, अस्थिर या आकुल (को०)।

प्रचय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेदपाठ विधि में एक प्रकार का स्वर जिसके उच्चारण के विधानानुसार पाठक को अपना हाथ नाक के पास ले जाने की आवश्यकता पड़ती है। २. बीजगणित में एक प्रकार का संयोग। ३. समूह। झुंड। उ०—धर्मदास सुनियो चितलाई। लोक प्रचय अब देउँ बताई।—कबीर सा०, पृ० ९९४। ४. राशि। ढेर। ५. वृद्धि। बढ़ती। ६. लकड़ी आदि की सहायता से फूल या फल एकत्र करना।

प्रचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मार्ग। रास्ता। २. रिवाज। रीति। परंपरा (को०)।

प्रचरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. विचरण। चलना। फिरना। २. प्रचलित होना। प्रचारयुक्त होना (को०)। ३. प्रारंभ। शुरुआत (को०)।

प्रचरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्रुवा (को०)।

प्रचरना(प)†—क्रि० अ० [सं० प्रचार] १. प्रचारित होना। चलना। फैलना। उ०—यहू देश मे प्रचरो पूरो। नास्तिक वाद भयो सब दूरो।—रघुराज (शब्द०)। २. छा जाना। फैलना। पड़ना। उ०—लुब्धि कोस पंचह प्रचर परे सुराहल अति।—पृ० रा०, १९।५४४।

प्रचरित—वि० [सं०] १. प्रचलित। चलता हुआ। चालू। अभ्यस्त (को०)। २. गया हुआ (को०)।

प्रचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रम। रीति। विधि। सरणि (को०)।

प्रचल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो बहुत अधिक चंचल हो। २. मोर। मयूर।

प्रचल[2]—वि० १. चंचल। अस्थिर। २. प्रचलित। चालू। ३. ठीक चलता हुआ। खूब चलनेवाला (को०)।

प्रचलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा।—(सुश्रुत)।

प्रचलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चलन। प्रचार। २. हिलना डोलना। चलना फिरना (को०)। ३. पलायन। अपसरण। विरक्षण (को०)।

प्रचला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह निद्रा जो बैठे या खड़े हुए मनुष्य को आती है। २. वह पाप कर्म जिसके उदय से ऐसी निद्रा आती है। ३. सरट। कृकलास (को०)।

प्रचलाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शराघात। बाण का प्रहार। २. मोर की बर्हि या पूँछ। ३. सर्प। साँप (को०)।

प्रचलाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षा की तीव्र झड़ी (को०)।

प्रचलाकी—संज्ञा पुं० [सं० प्रचलाकिन्] मयूर। मोर (को०)।

प्रचलायन—संज्ञा पुं० [सं०] निद्रा के कारण सिर का झुक पड़ना [को०]।

प्रचलायित—वि० [सं०] १. लुढ़कता हुआ। २. नींद आने के कारण जिसका सिर झुक गया हो [को०]।

प्रचलित[1]—वि० [सं०] १. जारी। चलता हुआ। जिसका चलन हो। जैसे, प्रचलित प्रथा, प्रचलित सिक्का, प्रचलित नाम। २. हिलता या काँपता हुआ (को०)। ३. गतिमय। गतिशील (को०)। ४. विह्वल। आकुल। संभ्रांत (को०)।

प्रचलित[2]—संज्ञा पुं० प्रस्थान। प्रयाण [को०]।

प्रचाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथ से कोई चीज इकट्ठा करना। २. राशि। ढेर। ३. वृद्धि। अधिकता। दे० 'प्रचय'।

प्रचायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रचायिका] १. वह जो चयन करे। २. वह जो इकट्ठा करे। संग्रह करनेवाला। ३. ढेर लगानेवाला।

प्रचायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. फूलों का एकत्र करना। पुष्पचयन। २. फूल एकत्र करनेवाली स्त्री [को०]।

प्रचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु का निरंतर व्यवहार या उपयोग। चलन। रवाज। जैसे,—(क) आजकल अँगरखे का प्रचार कम हो गया है। (ख) इस ग्रंथ का बहुत अधिक प्रचार है। २. प्रसिद्धि। ३. प्रकाश। ४. घोड़ों की आँख का एक रोग जिसमें आँखों के आसपास का मांस बढ़कर दृष्टि रोक लेता है। यह मांस काट डाला जाता है। ५. जाना। चलना। घूमना (को०)। ६. प्रगट होना। आना (को०)। ७. व्यवहार। आचार (को०)। ८. खेलने का मैदान। अभ्यास करने का स्थान (को०)। ९. चरागाह (को०)। १०. मार्ग। पथ (को०)। ११. सार्वजनिक घोषणा या विज्ञापन। (को०)। १२. गति। संचार। क्रियात्मकता (को०)।

प्रचारक—वि० [सं०] [वि०स्त्री० प्रचारिणी] फैलानेवाला। किसी वस्तु का चलन बढ़ानेवाला। प्रचार करनेवाला।

प्रचारकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] व्याख्यानों, उपदेशों, पुस्तिकाओं और विज्ञापनों आदि के द्वारा किसी मत या सिद्धांत के प्रचार करने का ढंग या काम। प्रोपैगंडा। जैसे,—हिंदू महासभा की ओर से हरिहर क्षेत्र के मेले में बहुत अच्छा प्रचार कार्य हुआ।

प्रचारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. छितराना। बिखेरना [को०]।

प्रचारनाⓅ†—क्रि० स० [सं० प्रचारण] १. प्रचार करना। फैलाना। २. ललकारना। सामना करने के लिये बुलाना। उ०—इंद्र धाय तब असुर प्रचारयो। कियो युद्ध पै असुर न मारयो।—सूर (शब्द)। ३. सुलगाना। आग को प्रज्वलित करना। उ०—योग अगिनि जब हिए प्रचारी। पल महँ कीन्ह भसम रिपि जारी।—चित्रा०, पृ० ५१।

प्रचारित—वि० [सं०] १. फैलाया हुआ। २. प्रचार किया हुआ। ३. जिसका प्रचार किया गया हो।

प्रचारी—वि० [सं० प्रचारिन्] १. घूमने फिरनेवाला। २. दिखाई देनेवाला। ३. व्यवहार करनेवाला। चेष्टा करनेवाला [को०]।

प्रचाल—संज्ञा पुं० [सं०] वीणा का वह अंग जहाँ से तूँबा संयुक्त होता है [को०]।

प्रचालित—वि० [सं०] जिसका प्रचलन किया गया हो। जो चलाया गया हो।

प्रचित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसका संग्रह किया गया हो। वह जो चुना गया हो। २. दंडक छंद का एक भेद।

प्रचित[2]—वि० १. चयन किया हुआ। एकत्र किया हुआ। संगृहीत। संग्रह किया हुआ। २. भरा हुआ। परिपूर्ण। ३. अनुदात्त [को०]।

प्रचुर[1]—वि० [सं०] १. बहुत। अधिक। विपुल। जैसे, प्रचुर धन। २. पूर्ण। भरापूरा। जैसे, प्रचुरपुरुष (= जनाकीर्ण)। ३. बड़ा। विशाल (को०)।

प्रचुर[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्र० + √चुर् (= चोरी)] वह जो चोरी करे। चोर।

यौ०—प्रचुरपुरुष = चोर। तस्कर।

प्रचुरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचुर होने का भाव। ज्यादती। अधिकता।

प्रचुरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रचुरता' [को०]।

प्रचूरⓅ—वि० [सं० प्रचुर] दे० 'प्रचुर'। उ०—एक तूँ एक तूँ पवन प्रचूरा। एक तूँ एक तूँ फिरत बघूरा।—सुंदर ग्रं०, पृ० ८६८।

प्रचेंनⓅ—वि० [सं० प्रचंड] दे० 'प्रचंड' उ०—सुन श्रवन समक्ष न बैन, आवृत्त धाय प्रचेंन।—पृ० रा०, १३।७४।

प्रचेतसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कायफल। २. प्रचेता की कन्या।

प्रचेता[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रचेतस्] १. एक प्राचीन स्मृतिकार ऋषि का नाम। २. वरुण का एक नाम। ३. बारहवें प्रजापति का नाम। ४. पुराणानुसार पृथु के परपोते और प्राचीनबर्हि के दस पुत्र जिन्होंने दस हजार वर्ष तक समुद्र के भीतर रहकर कठिन तपस्या की और विष्णु से प्रजासृष्टि का वर पाया था। दक्ष उन्हीं के पुत्र थे।

प्रचेता[2]—वि० १. चुनने या चयन करनेवाला। २. बुद्धिमान्। होशियार। चतुर।

प्रचेता[3]—संज्ञा पुं० [सं० प्रचेतृ] सारथि। रथचालक [को०]।

प्रचेय—वि० [सं०] १. जो चयन करने योग्य हो। जो चुनने या संग्रह करने योग्य हो। २. जो ग्रहण करने योग्य हो। ग्राह्य। ३. वृद्धि करने योग्य (को०)।

प्रचेल—संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

प्रचेलक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा।

प्रचेलक[2]—वि० बहुत अधिक चलनेवाला।

प्रचोद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रचोदन'।

प्रचोदक—वि० [सं०] प्रेरणा करनेवाला। उत्तेजित करनेवाला।

प्रचोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेरणा। उत्तेजना। २. आज्ञा। ३. आज्ञा देना। आदेश देना (को०)। ४. कायदा। कानून। नियम। ५. प्रेषण (को०)।

प्रचोदनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंटकारी। भटकटैया (को०)।

प्रचोदित—वि० [सं०] १. जिसे प्रेरणा की गई हो। प्रेरित। जो उत्तेजित किया गया हो। प्रोत्साहित। २. आदिष्ट। आज्ञप्त। निर्देशित (को०)। ३. जिसकी घोषणा की गई हो। घोषित (को०)। ४. प्रेषित (को०)।

प्रचोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटकारी। कटेहरी। कटेरी। भटकटैया।

प्रचोदी—वि० [सं० प्रचोदिन्] प्रोत्साहित करनेवाला। प्रेरित करने वाला (को०)।

प्रचौ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० परिचय] दे० 'परिचय'। उ०—जैमलहरा जोणता जिसड़ो, साच प्रचौ पूरिवो सही।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १४५।

प्रच्छक—वि० [सं०] पूछनेवाला। प्रश्न करनेवाला।

प्रच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंबल। २. बेठन। लपेटने या आच्छादित करने का कपड़ा। ३. चोगा।

यौ०—प्रच्छदपट = आच्छादन करने या ढकने का वस्त्र। जैसे, ओहार, चादर, आदि।

प्रच्छन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रश्न करना। पूछना। जिज्ञासा करना। जानकारी लेना (को०)।

प्रच्छना—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूछना। प्रश्न करना।

प्रच्छन्न[1]—वि० [सं०] १. ढका हुआ। लपेटा हुआ। २. छिपा हुआ। गुप्त। गोपनीय।

यौ०—प्रच्छन्नतस्कर = गुप्त चोर। प्रच्छन्नचारी = छिपे तौर से काम करनेवाला। गुप्तचर।

प्रच्छन्न[2]—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त द्वार। छिपा द्वार। चोर दरवाजा। २. झरोखा। खिड़की। गवाक्ष। (को०)।

प्रच्छन्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रच्छन्न होने का भाव। गोपनीयता। छिपाव। उ०—इस प्रच्छन्नता का उदाहरण कविकर्म का एक मुख्य अंग है।—आचार्य०, पृ० १४६।

प्रच्छर्दक—वि० [सं०] वमन करानेवाला। जिससे वमन हो। उलटी लानेवाला। वमनकारक (को०)।

प्रच्छर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँस की वायु को नाक के रास्ते बाहर निकालना। रेचन। २. वमन। कै। ३. औषधादि जिससे वमन हो। वमन करानेवाली वस्तु (को०)।

प्रच्छर्दिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह वस्तु जिससे वमन हो। वमन करानेवाली औषध। २. वमन का रोग। कै।

प्रच्छादक[1]—वि० [सं०] छिपाने, आच्छादित या आवृत करनेवाला। ढकनेवाला।

प्रच्छादक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रच्छेदक' (को०)।

प्रच्छादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रच्छादित] १. ढाँकने का भाव। ढाँकना। २. छिपाने का भाव। निगूहन। ३. आँख की पलक। ४. उत्तरीय वस्त्र।

यौ०—प्रच्छादन पट = दे० 'प्रच्छद पट'।

प्रच्छादित—वि० [सं०] १. ढँका हुआ। आवृत। २. छिपा हुआ। गुप्त। गोपित (को०)।

प्रच्छान—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार घाव चीरने का एक प्रकार। २. घाव चीरना। फस्द लगाना (को०)।

प्रच्छाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. घनी छाया। २. घनी छायावाला स्थान (को०)।

प्रच्छालन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रक्षालन] दे० 'प्रक्षालन'।

प्रच्छालना(पु)—क्रि० स० [प्रक्षालन] दे० 'पखारना'।

प्रच्छिल—वि० [सं०] शुष्क। सूखा। जलरहित (को०)।

प्रच्छेदक—संज्ञा पुं० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक। प्रियतम को अन्य नायिका में आसक्त जानकर प्रेमविच्छेद के अनुताप से तप्तहृदया नायिका का वीणा के साथ गाना। (नाट्यशास्त्र)।

प्रच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रच्छेद्य] छेदने या काटने की क्रिया। छोटे छोटे टुकड़ों में काटना।

प्रच्यव—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रगति। विकास। २. हटना। पीछे हटना। ३. क्षरण। पतन। पात। भ्रंश (को०)।

प्रच्यवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षरण। झरना। बहना या रसना। २. हटना (को०)। ३. हानि (को०)।

प्रच्यावन—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिससे प्रच्यवन हो या जिसके द्वारा प्रच्यवन हो (को०)।

प्रच्यावित—वि० [सं०] किसी देश या स्थान से हटाया या भगाया हुआ (को०)।

प्रच्युत—वि० [सं०] १. गिरा हुआ। अपने स्थान से हटा हुआ। २. मार्गच्युत। पथभ्रष्ट (को०)। ३. क्षरित। चूआ हुआ। झरा हुआ (को०)। ४. निर्वासित। देश से निकलता या भगाया हुआ (को०)।

प्रच्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने स्थान से गिरने या हटने का भाव। २. हानि। नुकसान (को०)।

प्रछन(पु)—क्रि० वि० [सं० प्रच्छन्नम्] छिपे तौर पर। प्रच्छन्न रूप से। गुप्त रूप से। उ०—ताम हंस आयो समवि कह्यो कहो सविवत्त। चाहुआन आयो प्रछन मिलन चान हर सित्त।—पृ० रा०, २५।२६३।

प्रछारना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन, हिं० प्रच्छालना, प्रछालना] धोना। प्रक्षालन करना। उ०—कनक नीर कर सु मुख धोयौ, तकि के चरन प्रछारा।—जग० श०, भा० १, पृ० ११।

प्रछालना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रक्षालन] प्रक्षालन करना। धोना। उ०—पुनि उठे तबहि ततकाला। जल में मुख हाथ प्रछाला।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ पृ० १३३।

प्रछेद(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्वेद] पसीना। प्रस्वेद।

प्रछंक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पर्यंक] पलग। पर्यंक। उ०—(क) प्रछंक जु जोई तलप्प सु सोई।—पृ० रा०, ६१।६७। (ख) दुष दिय दुष्य प्रछंक सँजोइय।—पृ० रा०, ६१।५६।

प्रजंघ—संज्ञा पुं० [सं० प्रजङ्घ] १. रावण की सेना का एक मुख्य राक्षस जिसे अंगद ने मारा था। २. एक कपि का नाम (को०)।

प्रजंघा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रजङ्घा] उरु या जाँघ का निचला भाग (को०)।

प्रजंतⓅ‡—अव्य [सं० पर्यन्त] दे० 'पर्यंत'। उ०—राधा जल बिहरति सखियनि सँग। ग्रीव प्रजंत नीर में ठाढ़ी, छिरकति जल अपने अपने रँग।—सूर०, १०।१७५३।

प्रज—संज्ञा पुं० [सं०] पति। खाविंद। शौहर (को०)।

प्रजटीⓅ—वि० [सं० प्र+जटित] जटित। एकत्रित। सज्जित। उ०—तम तम तामसी तमोगुन सी तोयद सी नीलम जटान पाटी जटा प्रजटी सो है।—पजनेस०, पृ० ६।

प्रजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भधारण करने के लिये (पशुओं का) मैथुन। जोड़ा खाना। २. पशुओं के गर्भधारण करने का समय। ३. लिंग। पुरुषेंद्रिय। ४. संतान उत्पन्न करने का काम। ५. जनक। जन्म देनेवाला।

प्रजनक—वि० [सं० प्रजनन] [वि० स्त्री० प्रजनिका] उत्पन्न करनेवाला। जन्म देनेवाला। जनक। उ०—पहले जो भावात्मक निस्संग, एक ही ऋषिकंठ से निकला हुआ था, वह बाद को समुदाय के आनंद का प्रजनक हुआ।—गीतिका (भू०), पृ० १।

प्रजनन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. संतान उत्पन्न करने का काम। २. जन्म। ३. लिंग। पुरुषेंद्रिय (को०)। ४. योनि। ५. शुक्र। वीर्य (को०)। ६ दाई का काम। धात्रीकर्म (सुश्रुत)। ७. जन्म देनेवाला। पिता। जनक। ८. पशुकर्म। जोड़ा खाना (को०)। ९. संतति (को०)।

प्रजनन[2]—वि० प्रजनन करनेवाला। पैदा करनेवाला (को०)।

प्रजनयिता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० प्रजनयितृ] दे० 'प्रजनक'।

प्रजनिका—संज्ञा पुं० [सं०] माता।

प्रजनिष्णु—वि० [सं०] १. प्रजनन करनेवाला। उपजाऊ। २. बढ़नेवाला। जैसे, फसल (को०)।

प्रजनुक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह जो संतान उत्पन्न करता हो। २. शरीर। देह (को०)।

प्रजनू—संज्ञा स्त्री० [सं०] योनि। भग (को०)।

प्रजन्यⓅ—संज्ञा पुं० [सं० पर्जन्य] दे० 'पर्जन्य-१'। उ०—नीरद, छीरद, अबुवह, बारिद, जलद प्रजन्य।—नंद० ग्रं०, पृ० ११०।

प्रजय—संज्ञा पुं० [सं०] विजय। जय। जीत (को०)।

प्रजरंत—वि० [सं० प्रज्वलत्>प्रजरंत] जलता हुआ। प्रज्वलित।

प्रजरनाⓅ—क्रि० अ० [सं० (प्रत्य०) प्र+हिं० जरना, या सं० √प्रज्वल्] अच्छी तरह जलना। उ०—प्रजरति नीर गुलाब के पिय की बात सिराति।—बिहारी (शब्द०)।

प्रजलनाⓅ—क्रि० अ० [सं० प्रज्वलन] दे० 'प्रजरना' उ०—(क) जल महि पावक प्रजल्यउ पुंज प्रकाश। कँवल प्रफुल्लित भइले अधिक सुवास।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३७८। (ख) खानखाना नबाब दे, खाँडे आग खिवंत। जलवाला नर प्राजले तृणवाला जीवंत।—अकबरी०, पृ० १४२।

प्रजल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यर्थ की या इधर उधर की बात। गप। २. वह बात जो अपने प्रिय को प्रसन्न करने के लिये की जाय।

प्रजल्पन—संज्ञा पुं० [सं०] बातचीत। गपशप।

प्रजल्पित—वि० [सं०] जिसके विषय में बात की जा चुकी हो (बातचीत)। जो (वार्तालाप) कथित हो। (को०)।

प्रजवन—वि० [सं०] गतिशील। तेज (को०)।

प्रजवित—वि० [सं०] १. प्रेरित। चालित। २. आहत (को०)।

प्रजवी[1]—वि० [सं० प्रजविन्] गतिशील। तीव्र गतिवाला।

प्रजवी[2]—संज्ञा पुं० दूत। चर। संवादवाहक (को०)।

प्रजहित—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराण। २. गार्हपत्य अग्नि।

प्रजांतक—संज्ञा पुं० [सं० प्रजा+अंतक] यम।

प्रजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संतान। औलाद। २. वह जनसमूह जो किसी एक राजा के अधीन या एक राज्य के अंतर्गत रहता हो। ३. राज्य के निवासी। रिआया। रैयत। ४. प्रजनन। उत्पत्ति। उत्पादन (को०)। ५. शुक्र। वीर्य (को०)। ६. प्राणधारी। प्राण। जीव (को०)। ७. भारतीय गाँवों में छोटी जातियों के वे लोग जो बिना वेतन पाए ही काम करते हैं।

विशेष—ऐसे लोगों को कभी किसी उत्सव पर अथवा ब्याह आदि में कुछ पुरस्कार दे दिया जाता है। नाऊ, बारी, भाट, नट, लोहार, कुम्हार, चमार, धोबी इत्यादि की गिनती 'प्रजा' में होती है।

प्रजाकाम—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पुत्र का अभिलाषी हो। जिसे पुत्र की इच्छा हो। पुत्रेप्सु।

प्रजाकार—संज्ञा पुं० [सं०] प्रजा उत्पन्न करनेवाले, ब्रह्मा। प्रजापति।

प्रजागर—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. प्राण। ३. जागरण। जगना। ४. नींद न आने का रोग। ५. सुरक्षा करनेवाला। रक्षक जन (को०)। ६. सावधानी। सतर्कता (को०)।

प्रजागरण—संज्ञा पुं० [सं०] जागना। जागरण (को०)।

प्रजागरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

प्रजागरूक—वि० [सं०] अच्छी तरह जागा हुआ। पूर्णतः सावधान या सचेत (को०)।

प्रजागुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रजारक्षण। जनता की रक्षा (को०)।

प्रजातंतु—संज्ञा पुं० [सं० प्रजातन्तु] १. संतान। औलाद। २. वंश। कुल। वंशपरंपरा।

प्रजातंत्र—संज्ञा पुं० [सं० प्रजातन्त्र] वह शासनव्यवस्था जिसमें कोई राजा न होता हो, बल्कि राज्यपरिचालन के लिये

प्रजा द्वारा कोई एक व्यक्ति चुन लिया जाता हो। वह शासनव्यवस्था जो जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि द्वारा परिचालित हो।

विशेष—ऐसी व्यवस्था में उस चुने हुए व्यक्ति को प्राय: राजा के समान अधिकार प्राप्त होते हैं, और वह प्रजा की चुनी हुई किसी सभा या समिति आदि की सहायता से कुछ निश्चित समय तक शासन का सब प्रबंध करता है। गणतंत्र।

प्रजातंत्रवादी—वि० [हिं० प्रजातन्त्र + वादी] प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था को माननेवाला। प्रजातंत्र का अनुयायी।

प्रजात—वि० [सं०] उत्पन्न [को०]।

प्रजातांत्रिक—वि० [सं० प्रजातान्त्रिक] प्रजातंत्र से संबंधित। प्रजातंत्र का।

प्रजाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसको बालक उत्पन्न हुआ हो। प्रसूतिका। जच्चा।

प्रजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पादन। प्रजनन। २. प्रजनन-शक्ति। ३. संतति। संतान। प्रजा [को०]।

प्रजाद—वि० [सं०] संतानदाता। संतति देनेवाला [को०]।

प्रजादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भदा नाम की ओषधि जिससे बाँझपन दूर होता है।

प्रजादान—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी। रजत।

प्रजाद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य का एक नाम। २. प्रजा या संतान उत्पन्न करने का साधन या उपाय।

प्रजाधर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

प्रजाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रजापति। २. सूर्य।

प्रजानती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंडिता। विदुषी [को०]।

प्रजानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. मनु। ३. दक्ष। ४. राजा।

प्रजानिषेक—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भाधान [को०]।

प्रजाप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा [को०]।

प्रजापति[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला। वह जिसने सृष्टि उत्पन्न की है। सृष्टिकर्ता।

विशेष—वेदों और उपनिषदों से लेकर पुराणों तक में प्रजापति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। वैदिक काल में प्रजापति एक वैदिक देवता थे और वे ब्रह्मा के पुत्र तथा सृष्टिकर्ता माने जाते थे। तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति सृष्टि को उत्पन्न करने के उपरांत माया के वश में होकर भिन्न भिन्न शरीरों में बँध गए थे और देवताओं ने एक अश्वमेध यज्ञ करके उन्हें शरीरों से मुक्त किया था। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि प्रजापति ने अपनी उषा नाम की कन्या के साथ संभोग किया था जिससे मृग नक्षत्र की उत्पत्ति हुई थी और वे स्वयं तथा उषा दोनों मिलकर रोहिणी नामक नक्षत्र के रूप में परिवर्तित हो गए थे। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि इंद्र ने प्रजापति से सूक्ष्म आत्मज्ञान तथा वैरोचन ने स्थूल आत्मज्ञान प्राप्त किया था। पुरुषमेध यज्ञ में प्रजापति के आगे पुरुष की बलि दी जाती है। पुराणों में ब्रह्मा के पुत्र अनेक प्रजापतियों का उल्लेख है। कहीं वे दस प्रजापति कहे गए हैं—(१) मरीचि। (२) अत्रि। (३) अंगिरा। (४) पुलस्त्य। (५) पुलह। (६) क्रतु। (७) प्रचेता। (८) वशिष्ठ। (९) भृगु। (१०) नारद। और कहीं इन इक्कीस प्रजापतियों का उल्लेख है—(१) ब्रह्मा। (२) सूर्य। (३) मनु। (४) दक्ष। (५) भृगु। (६) धर्मराज। (७) यमराज। (८) मरीचि। (९) अंगिरा। (१०) अत्रि। (११) पुलस्त्य। (१२) पुलह। (१३) क्रतु। (१४) वशिष्ठ। (१५) परमेष्ठी। (१६) विवस्वान्। (१७) सोम। (१८) कर्दम। (१९) क्रोध। (२०) अर्वाक् और (२१) क्रीत।

२ ब्रह्मा। ३. मनु। ४. राजा। ५. सूर्य। ६. अग्नि। आग। ७. विश्वकर्मा। ८. पिता। बाप। ९. घर का मालिक या बड़ा। वह जो परिवार का पालन पोषण करता हो। १०. एक तारा। ११. जामाता। दामाद। १२. एक प्रकार का यज्ञ। १३. साठ संवत्सरों में से पाँचवाँ संवत्सर। १४. विष्णु का एक नाम (को०)। १५. आठ प्रकार के विवाहों में से एक प्रकार का विवाह। विशेष—दे० 'प्राजापत्य'। १६. लिंगेंद्रिय।

प्रजापति[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौतम बुद्ध को पालनेवाली गौतमी का नाम।

प्रजापाल, प्रजापालक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रजा का पालन करनेवाला—राजा।

प्रजापालन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रजा का पालन करना [को०]।

प्रजापालि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

प्रजापाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजपद। राजा का पद [को०]।

प्रजायी—वि० [सं० प्रजायिन्] [वि० स्त्री० प्रजायिनी] उत्पन्न करनेवाला। पैदा करनेवाला [को०]।

प्रजायिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता।

प्रजारना[पु]†—क्रि० स० [सं० (प्रत्य०) प्र + हिं० जारना] अच्छी तरह जलाना। उ०—(क) बाजहि ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) प्रबल प्रजारि सो करत छार।—पृ० रा०, ६।७४। २. उद्दीप्त करना। जलाना। उ०—विकसत नव बल्ली कुसुम निकसत परिमल पाय। परसि प्रजारति बिरह हिय बरसि रहे की बाय।—बिहारी (शब्द०)।

प्रजावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भाई की स्त्री। २. बड़े भाई की स्त्री। ३. प्रियव्रत राजा की स्त्री का नाम। ४. बहुत से लड़कों की माता। वह स्त्री जिसे कई संतानें हों। ५. गर्भवती स्त्री।

प्रजावृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] संतानों की बढ़ती। संततिवृद्धि [को०]।

प्रजाव्यापार—संज्ञा पुं० [सं०] प्रजा का हितचिंतन या देख रेख [को०]।

प्रजासत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शासन व्यवस्था जिसमें किसी देश के निवासियों या प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधि ही शासन

और न्याय आदि का सारा प्रबंध करते हैं। प्रजा द्वारा संचालित राज्यप्रबंध। प्रजातंत्र।

प्रजासत्ताक—वि० [सं० प्रजा+सत्ता+क (प्रत्य०)] दे० 'प्रजातांत्रिक'।

प्रजासत्तात्मक—वि० [सं० प्रजा+सत्ता+आत्मक] प्रजातांत्रिक। प्रजासत्ताक।

प्रजासृक्—संज्ञा पुं० [सं० प्रजासृज्] पितामह। ब्रह्मा [को०]।

प्रजाहित—संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

प्रजाहृदय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम [को०]।

प्रजित्—संज्ञा पुं० [सं०] विजेता। विजय करनेवाला।

प्रजिन—संज्ञा पुं० [सं०] हवा। वायु। [को०]।

प्रजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] जीविका। रोजी।

प्रजुरा(पु)†—वि० [सं० प्रज्वलित] दे० 'प्रज्वलित'। उ०—प्रजुरा बन्ही करे प्राजा।—रघु० रू०, पृ० २०७।

प्रजुरना(पु)—क्रि० अ० [सं० प्रज्वलन] दे० 'प्रजरना'। उ०—प्रजुरे पतिसाहि सु कोप कियं। मनु ज्वाल बिसाल सुघृत दियं।—ह० रासो, पृ० ४६।

प्रजुलित(पु)—वि० [सं० प्रज्वलित] दे० 'प्रज्वलित'। उ०—परति भाय चहुँ ओर ते प्रज्वलित बेदिन माँहि। —शकुंतला, पृ० ९०।

प्रजेप्सु—वि० [सं०] संतान की कामनावाला। संतान का इच्छुक। पुत्रेप्सु [को०]।

प्रजेश, प्रजेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. प्रजापति।

प्रजेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रजेश] दे० 'प्रजेश'। उ०—लगे कहन हरिकथा रसाला। दक्ष प्रजेस भए तेहि काला।—मानस, १।६०।

यौ०—प्रजेसकुमारी = दक्षकन्या। सती। उ०—एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी।—मानस, १।६०।

प्रजोग—संज्ञा पुं० [सं० प्रयोग] दे० 'प्रयोग।

प्रज्जरना(पु)—क्रि० अ० [हि० प्रजरना] जल उठना। भभक उठना। प्रज्वलित होना। उ०—(क) प्रज्जरिग रोस मैवात इंद।—पृ० रा०, ८।४। (ख) प्रज्जरिग सोम सुनि श्रवन दूत।—पृ० रा०, ८।११।

प्रज्जाल(पु)—वि० [सं० प्रज्वलित] जलता हुआ। प्रज्वलित। धधकता हुआ। उ०—प्रज्जाल माल हिंचाल हूलि कलि कलाप कलि उल्लहिय।—पृ० रा०, ३२।१५४।

प्रज्झटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३६ मात्राएँ होती हैं। इसे पद्धरी, पद्धटिका, प्रज्झलय और प्रज्वलिया भी कहते हैं।

प्रज्ञ[1]—वि० [सं०] १. जिसकी बुद्धि या ज्ञान प्रकृष्ट हो। मतिमान। २. जानकार। ज्ञाता।

प्रज्ञ[2]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रज्ञा] विद्वान् व्यक्ति। जानकार आदमी।

प्रज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पांडित्य। विद्वत्ता।

प्रज्ञप्त—वि० [सं०] १. ज्ञात। संसूचित। २. निश्चित। निर्धारित। जैसे, बैठने का स्थान (को०)।

प्रज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जताने का भाव। ज्ञात कराने की क्रिया या भाव। २. सूचना। ३. संकेत। इशारा। ४. ज्ञान। प्रकृष्ट बुद्धि। ५. दे० 'प्रज्ञप्ती'। ६. प्रतिज्ञा। करार। कौल (को०)।

प्रज्ञप्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की एक विद्यादेवी।

प्रज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि। ज्ञान। ज्ञप्ति। मति। २. एकाग्रता। ३. सरस्वती। ४. विदुषी। पंडिता (को०)। ५. वासना या संस्कार (को०)।

प्रज्ञाकाय—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के आचार्य मंजुघोष का एक नाम।

प्रज्ञाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

प्रज्ञाचक्षु[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रज्ञा+चक्षुस्] १. धृतराष्ट्र। २. बुद्धिरूपी नेत्र। ज्ञानरूपी नेत्र। ज्ञाननेत्र।

प्रज्ञाचक्षु[2]—वि० १. बुद्धिमान। २. ज्ञानी। ३. सूर। अंधा। क्योंकि उनकी बुद्धी ही आँख का काम करती है (व्यंग्य में भी)।

प्रज्ञात—वि० [सं०] १. ज्ञात। समझा हुआ। २. विवेचित। ३. स्पष्ट। साफ। ४. प्रसिद्ध। विख्यात [को०]।

प्रज्ञान[1]—संज्ञा पुं० (सं०) १. बुद्धि। ज्ञान। २. चिह्न। निशान। ३. चैतन्य। ४. विद्वान् पुरुष।

प्रज्ञान[2]—वि० विवेकी। ज्ञानवान् [को०]।

प्रज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष रूप से कहना या जताना। बतलाना [को०]।

प्रज्ञापन पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्रनीति के अनुसार वह पत्र जो प्राचीन काल में राजा की ओर से याज्ञिकों या ऋत्विजों को बुलाने के लिये भेजा जाता था।

प्रज्ञापारमिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध ग्रंथों के अनुसार दस पारमिताओं (गुणों की पराकाष्ठा) में से एक जिसे गौतम बुद्ध ने अपने मर्कट जन्म में प्राप्त किया था। उ०—रूप की तारुण्यमयी प्रतिमा, प्रज्ञापारमिता की गरिमा।—लहर, पृ० ३४।

प्रज्ञामय—संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान्। पंडित।

प्रज्ञाल—वि० [सं०] प्रज्ञावाला। विद्वान् [को०]

प्रज्ञावाद—संज्ञा पुं० [सं०] विद्वत्तापूर्ण कथन। ज्ञानोक्ति [को०]।

प्रज्ञावान—वि० [सं० प्रज्ञावत्, प्रज्ञावान्] बुद्धिमान। ज्ञानी [को०]।

प्रज्ञावृद्ध—वि० [सं०] बुद्धि में बढ़ाचढ़ा। ज्ञानवृद्ध [को०]।

प्रज्ञासहाय—वि० [सं०] बुद्धिमान। ज्ञानवान्। विद्वान् [को०]।

प्रज्ञाहीन—वि० [सं०] अज्ञानी। मूर्ख [को०]।

प्रज्ञिल—वि० [सं०] बुद्धिमान्। प्रज्ञी [को०]।

प्रज्ञी—वि० [सं० प्रज्ञिन्] [वि०स्त्री० प्रज्ञिनी] प्रज्ञावाला। बुद्धिमान्। ज्ञानी [को०]।

प्रज्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रज्वलनीय, प्रज्वलित] जलने की क्रिया। जलना।

प्रज्वलित—वि० [सं०] १. जलता हुआ। धधकता हुआ। दहकता हुआ। २. द्योतित। दीप्त। चमकीला (को०)। ३. बहुत स्पष्ट। बहुत साफ।

प्रज्वालिका—संज्ञा पुं० [?] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं।

प्रज्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुखार की गर्मी। २. एक गंधर्व का नाम।

प्रज्वालन—क्रि० स० [सं०] जलाना। दहकाना।

प्रडीन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चारों ओर उड़ना। उड्डयन का एक प्रकार। २. उड़ना। उड़ान (को०)।

प्रण[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिज्ञा, प्रा० पइण्णा, या सं० पण (= मोल, बाजी)] किसी काम को करने के लिये किया हुआ अटल निश्चय। प्रतिज्ञा।

मुहा०—प्रण पालना = प्रण पूरा करना। प्रतिज्ञा निभाना।

प्रण[2]—वि० [सं०] पुराना। प्राचीन।

प्रणख—संज्ञा पुं० [सं०] नाखून के आगे का भाग।

प्रणत[1]—वि० [सं०] १ बहुत झुका हुआ। २. प्रणाम करता हुआ। ३ नम्र। दीन। ४. वक्र। टेढ़ामेढ़ा (को०)। ५. दक्ष। कुशल (को०)।

यौ०—प्रणतकाय=झुके हुए शरीर का। जिसका शरीर नम्र या वक्र हो।

प्रणत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रणाम करनेवाला व्यक्ति। २. दास। सेवक। ३ भक्त। उपासक।

यौ०—प्रणतपाल।

प्रणतपाल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रणतपालिका] दीनों, दासों या भक्त जनों का पालन करनेवाला। दीनरक्षक।

प्रणतपालक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रणतपाल।

प्रणति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रणाम। प्रणिपात। दंडवत। २. नम्रता। ३. विनती। अनुनय।

प्रणदन—संज्ञा पुं० [सं०] जोर की आवाज। गर्जन (को०)।

प्रणदित—वि० [सं०] १. गर्जित। शब्दित। २. गुंजित (को०)।

प्रणधि—संज्ञा पुं० [सं० प्रणिधि] दूत। उ०—प्रणधि, दूत, जासूस प छवि पावत हलकार।—नंद० ग्रं०, पृ० १०८।

प्रणपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रणति, या प्रणिपात] दे० 'प्रणिपात'। उ०—सुंदर सतगुरु वंदिए नमस्कार प्रणपति।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६६।

प्रणमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. झुकना। २. प्रणाम करना। दंडवत या नमस्कार करना।

प्रणमना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रणमन] प्रणाम करना। उ०—(क) प्रणमूँ हनुमंत अंजनीपूत।—बी० रासो, पृ० १०१। (ख) सदगुरु प्रणव किशोर सचिव अमरेश सवाई।—रघु० रू०, पृ० ४।

प्रणम्य—वि० [सं०] प्रणाम करने के योग्य। वंदनीय।

प्रणय—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रीतियुक्त प्रार्थना। २. प्रेम। उ०—द्रवित दोनों ही हुए पाकर प्रणय का ताप।—शकु०, पृ० ६। ३. विश्वास। भरोसा। ४. निर्वाण। मोक्ष। ५. श्रद्धा। ६. प्रसव। स्त्री का संतान उत्पन्न करना। ७. इच्छा। आकांक्षा (को०)। ८. अनुग्रह। उदारता। दया। कृपा (को०)। ९. नेता। नायक (को०)। १०. निदर्शन। पथप्रदर्शन (को०)।

यौ०—प्रणयकलह। प्रणयकुपित। प्रणयकोप। प्रणयपेशल = प्रेमार्द्र। प्रणयप्रकर्ष = प्रेमाधिक्य। प्रेम का अतिरेक। प्रणयभंग। प्रणयमान = प्रेमजन्य मान या ईर्ष्यादि। प्रणयवचन। प्रणयविघात, प्रणयविहति = मैत्री टूटना। प्रेम में व्याघात होना।

प्रणयकलह—संज्ञा पुं० [सं०] नायक और नायिका का वह कलह जो प्रेमोद्भूत हो। झगड़ा (को०)।

प्रणयकुपित—वि० [सं०] प्रेमसंबंधी कलह से क्रुद्ध या रुष्ट (को०)।

प्रणयकोप—संज्ञा पुं० [सं०] प्रणयकलह। प्रणयजन्य रूठना। मान (को०)।

प्रणयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. रचना। बनाना। करना। २. लिखना। लेखन। निबद्ध करना (को०)। ३. लाना। ले आना (को०)। ४. ले जाना (को०)। ५. वितरण। बाँटना (को०)। ६. (दंड आदि) देना। लगाना। ७. निर्माण। रचना (को०)। ८. होम आदि के समय अग्नि का एक संस्कार।

प्रणयनीय—वि० [सं०] प्रणयन के योग्य (को०)।

प्रणयभंग—संज्ञा पुं० [सं० प्रणयभङ्ग] १. प्रेमसबंध समाप्त होना। प्रीतिभंग। २. अविश्वसनीयता (को०)।

प्रणयविमुख—वि० [सं०] प्रेम से विमुख होना। प्रेमसंबंध न रखना (को०)।

प्रणयाकुल—वि० [सं० प्रणय + आकुल] प्रेमविह्वल। कामातुर। उ०—श्याम चिरैया का जोड़ा प्रणयाकुल हो रहा था।—अस्मावृत०, पृ० ११।

प्रणयार्थी—वि० [सं० प्रणयार्थिन्] [वि० स्त्री० प्रणयार्थिनी] प्रणय की कामना करनेवाला। प्रेमाभिलाषी। उ०—प्रणयार्थियों की कमी न होने से, उसे उनकी परवाह न थी।—पिंजरे०, पृ० २३।

प्रणयिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुरक्ति। प्रीति। आसक्ति (को०)।

प्रणयिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह जिसके साथ प्रेम किया जाय। प्रेमिका। २. स्त्री। पत्नी।

प्रणयी[1]—[सं० प्रणयिन्] [स्त्री० प्रणयिनी] १. जिसके साथ प्रेम हो। प्रेम करनेवाला। प्रेमी। २. स्वामी। पति। ३. उपासक। सेवा करनेवाला। पूजक (को०)।

प्रणयी[2]—वि० [सं०] १. प्रणययुक्त। प्रेमयुक्त प्रेमी। २. घनिष्ठ। जिगरी (को०)।

प्रणव—संज्ञा पुं० [सं०] १. ओंकार। ब्रह्मबीज। ओंकार मंत्र।

२. त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) । ३. परमेश्वर । ४. एक प्रकार का मृदंग,पटह या ढोल (को०) ।

प्रणवक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रणव । ॐकार [को०] ।

प्रणवना—क्रि० स० [सं० प्रणमन] प्रणाम करना । नमस्कार करना । श्रद्धा और नम्रतापूर्वक किसी के सामने झुकना । उ०—(क) पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना । पर अघ सुनै सहस दस काना ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्रणवौं पवनकुमार खलवनपावक ज्ञानघन ।—तुलसी (शब्द०) ।

प्रणष्ट—वि० [सं०] दे० 'प्रणाश', 'प्रनष्ट' ।

प्रणस—वि० [सं०] जिसकी नासिका बड़ी हो । दीर्घघोण [को०] ।

प्रणाडिका, प्रणाडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रणाली' [को०] ।

प्रणाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत जोर से होनेवाला शब्द । २. वह शब्द जो आनंद के साथ मुंह से निकले । आनंदध्वनि । ३. कर्णनाद नाम का रोग जिसमें कानों में तरह तरह की गूंज सुनाई देती है । ४. आर्त पुकार । गुहार (को०) । ५. शोरगुल । चिल्लाहट । हल्ला (को०) । ६. हर्षनाद का स्वर । जयध्वनि (को०) । ७. घोड़े की हिनहिनाहट । हेषा । ह्लेषा (को०) ।

प्रणाम—संज्ञा पुं० [सं०] १. झुकना । नत होना । २. श्रद्धा की अभिव्यक्ति करना । हाथ जोड़ना । विनीत होना । ३. लेटकर दंडवत करना [को०] ।

प्रणामांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करना । [को०] ।

प्रणामी—संज्ञा पुं० [सं० प्रणामिन्] १. प्रणाम करनेवाला । नमन करनेवाला । झुकनेवाला । २. प्रणाम के साथ दी जानेवाली भेंट ।

प्रणायक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मार्ग दिखलाता हो । नेता । २. सेनानायक ।

प्रणाय्य—वि० [सं०] १. प्रीतिपात्र । प्रिय । २. विश्वस्त । ठीक । दुरुस्त । ३. अवांछित । असंमत । अयोग्य । ४. विरक्त । निस्पृह । ५. साधु [को०] ।

प्रणाल—संज्ञा पुं० [सं०] जल निकलने का मार्ग । पनाला ।

प्रणालिका—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी निकलने का मार्ग । परनाली । नाली । २. बंदूक की नली ।

प्रणाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी निकलने का मार्ग । नाली । उ०—पर, ओ मानस के जल, मत बह नयन प्रणाली से तू छल छल ।—अपलक, पृ० ७ । २. रीति । चाल । परिपाटी । प्रथा । ३. पद्धति । ढंग । तरीका । कायदा । ४. द्वार । ५. परंपरा । ६. वह छोटा जलमार्ग जो जल के दो बड़े मार्गों को मिलाता हो ।

प्रणाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश । बरबादी । २. मृत्यु । मौत । ३. भागना । लुप्त होना ।

प्रणाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश करने की क्रिया या भाव । २. विनाश । बरबादी ।

प्रणाशी—संज्ञा पुं० [सं० प्रणाशिन्] [स्त्री० प्रणाशिनी] नाश करनेवाला । वह जो नष्ट करे ।

प्रणिंसित—वि० [सं०] चुंबित [को०] ।

प्रणिधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. रखा जाना । २. प्रयत्न । ३. समाधि (योग) । ४. अत्यंत भक्ति । अति आधिक उपासना । ५. ध्यान । चित्त की एकाग्रता । ६. किसी कर्म के फल का त्याग । ७. अर्पण । ८ भक्ति । उ०—ईश्वर क्या है उसे विश्व में प्राप्त जिसे प्रभु का प्रणिधान ।—साकेत, पृ० ३८८ । ९. भावी जन्म के संबंध में किसी प्रकार की प्रार्थना । १०. प्रवेश । गति । ११. उपयोग । प्रयोग । व्यवहार ।

प्रणिधायी—वि० [सं० प्रणिधायिन्] प्रणिधान करनेवाला । दूत का प्रेषण या नियोजन करनेवाला [को०] ।

प्रणिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेदिया । गुप्तचर । गोइंदा । २. प्रार्थना । ३. माँगना । ४. भेद लेना । रहस्य जानना (को०) । ५. पीछे पीछे चलनेवाला । अनुगत । अनुचर (को०) । ६. अवधान । ध्यान । सावधानी (को०) । ७. हाथी को हाँकने की एक विधि (को०) । ८. चर या जासूस भेजना [को०] ।

प्रणिधेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुप्तचर भेजना । २. उपयोग । प्रयोग । नियोजन [को०] ।

प्रणिनाद—संज्ञा पुं० [सं०] गंभीर ध्वनि । घोर निनाद [को०] ।

प्रणिपतन—संज्ञा पुं० [सं०] २. प्रणाम । २. पैर पड़ना ।

प्रणिपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रणाम । २. पैरों पर गिरना ।

प्रणिहित—वि० [सं०] १. जिसकी स्थापना की गई हो । स्थापित । २. मिला हुआ । मिश्रित । ३. पाया हुआ । प्राप्त । ४. रखा हुआ । सौंपा हुआ । ५. गुप्त रूप से ज्ञात (को०) । ६. सतर्क । सचेष्ट (को०) । ७. समाधिस्थित । समाधिस्थ (को०) । ८. कृतनिश्चय । कृतसंकल्प (को०) ।

प्रणी—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर ।

प्रणीत[1]—वि० [सं०] १. रचित । बनाया हुआ । तैयार किया हुआ । निर्मित । उ०—कोट कलशों पर प्रणीत विहग हैं; ठीक जैसे रूप वैसे रंग हैं ।—साकेत, पृ० ५ । २. संस्कृत । सुधारा हुआ । सशोधित । ३. भेजा हुआ । ४. लाया हुआ । ५. फेंका हुआ । ६. पास पहुँचाया हुआ । ७. जिसका मंत्र से सस्कार किया गया हो । ८. विहित (को०) । ९ (बंद आदि) लगाया हुआ । आरोपित (को०) ।

प्रणीत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जल जिसका मंत्र से संस्कार किया गया हो । २. यज्ञ के मंत्र से संस्कृत की हुई अग्नि । ३. अच्छी तरह पकाया हुआ भोजन ।

प्रणीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह जल जो यज्ञ के कार्य के लिये वेदमंत्रों को पढते हुए कुएँ से निकाला जाता है और मंत्रों के उच्चारण सहित छानकर रखा जाता है । २. वह पात्र जिसमें उपर्युक्त जल रखा जाता है ।

प्रणीय—संज्ञा पुं० [सं०] वह वैदिक मंत्र जिससे किसी चीज का संस्कार किया जाय ।

प्रणुत—वि० [सं०] स्तुत । प्रशंसित [को०] ।

प्रणुत्त[२]—वि० [सं०] १. भगाया या हटाया हुआ। २. निकाला हुआ। निष्कासित [को०]।

प्रणुन्न—वि० [सं०] १. फेंका हुआ। प्रेरित। २. प्रेषित। भेजा हुआ। ३. काँपता या हिलता हुआ। ४. जो गति में लाया गया हो। ५. भगाया या हटाया हुआ [को०]।

प्रणेजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्नान करने का जल। नहाने का पानी। २. स्नान करना। नहाना। ३. धोना। पखारना। प्रक्षालन [को०]।

प्रणेता—संज्ञा पुं० [सं० प्रणेतृ] [स्त्री० प्रणेत्री] १. निर्माण करनेवाला। बनानेवाला। कर्ता। २. रचयिता। लेखक। जैसे, पुस्तकप्रणेता। ३. नेता। अगुआ (को०)। ४. किसी मत या वाद का प्रवर्तक (को०)। ५. वादक (को०)।

प्रणेय—वि० [सं०] १. जिसके लौकिक संस्कार हो चुके हों। २. अधीन। वशवर्ती। ३. जिसका नेतृत्व या पथप्रदर्शन किया जाय (को०)। ४. करने योग्य। अनुष्ठेय संपन्न करने योग्य (को०)। ५. ले जाने योग्य। जो ले जाया जाय। प्रापणीय (को०)।

प्रणोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेरण। संचालन। निर्देशन। २. प्रेषण। भेजना (को०)।

प्रणोदित—वि० [सं०] १. प्रेरित। प्रोत्साहित। २. निर्देशित। ३. संचालित। उ०—वीर राजपूत योद्धाओं की कहानियों से वह सदा प्रणोदित हुए हैं।—प्रेम० और गोर्की, पृ० १०३।

प्रतंग्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिज्ञा] दे० 'प्रतिज्ञा'। उ०—श्री महराज के काम चाहे प्रतंग्या के निबाह।—रा० रू०, पृ० १५०।

प्रतंचा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रत्यञ्चा] दे० 'प्रत्यंचा'। उ०—रहैं खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरैं खन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२४।

प्रत†—अव्य० [हिं०] दे० 'प्रति'। उ०—श्री राजा धृतराष्ट्र संजे प्रत पूछत है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८३।

प्रतउत्तर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रति + उत्तर हिं०] जवाब। प्रत्युत्तर। उ०—प्रतउत्तर कर जोर कहि, सुनहु पंगु महराज।—पृ० रासो, पृ० १७१।

प्रतक्ख(पु)—वि० [सं० प्रत्यक्ष] दे० 'प्रत्यक्ष'। उ०—चमली समली चारती, आणि प्रतक्ख उगायो सुर।—बी० रासो०, पृ० १६।

प्रतग्गू(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्रतिज्ञा'। उ०—सुतर बड़ग्गू सार मग्गू जन प्रतग्गू राव ए।—राम० धर्म०, पृ० २८१।

प्रतच्छ(पु)†—वि० [सं० प्रत्यक्ष] दे० 'प्रत्यक्ष'। उ०—आन्यो नहि कहि तप किए यह फल होत प्रतच्छ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११७।

प्रतच्छि(पु)†—वि० [सं० प्रत्यक्ष] दे० 'प्रत्यक्ष'। उ०—प्रतच्छि बिरह के सुनि अब लच्छिन। चकित होत तहँ बड़े बिचच्छिन।—नंद० ग्रं०, पृ० १६२।

प्रतत—वि० [सं०] १. तना या फैला हुआ। विस्तृत। लंबा चौड़ा। २. आवृत। ढका हुआ।

प्रतति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विस्तार। फैलाव। २. लता। वल्ली (को०)।

प्रत्न—वि० [सं०] पुराना। प्राचीन।

प्रतना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पृतना] चमू। वाहिनी। पृतना। उ०—प्रतना ध्वजनी वाहिनी चमू बरूथिनि ऐन।—अनेकार्थ०, पृ० १०५।

प्रतनु—वि० [सं०] १. क्षीण। दुबला। उ०—प्रतनु शरबिंदु वर, पद्म जलबिंदु पर, स्वप्न जागृति सुघर।—अपरा, पृ० १२। २. बारीक। सूक्ष्म। ३ बहुत छोटा। अत्यल्प। ४. तुच्छ।

प्रतप—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की गर्मी। सूर्य का ताप [को०]।

प्रतपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आतपत्र। छाता। छत्र [को०]।

प्रतपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपाना। तप्त करना। २. उत्ताप। ताप। गरमी।

प्रतपना(पु)—क्रि० अ० [सं० प्रतपन] तपना। प्रभुत्व स्थापित होना। धातक फैलना। उ०—हूहड़ तणौ तखत छत्रधारी। रायपाल प्रतपै रोसारी।—रा० रू०, पृ० १३।

प्रतप्त—वि० [सं०] १. तपाया हुआ। जो बहुत गरम किया गया हो। २. पीड़ित। जो बहुत सताया गया हो [को०]।

प्रतबिंब(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिबिम्ब] दे० 'प्रतिबिंब'। उ०—तरणातप टाप बगुत्तरय। प्रतबिंब चमकत पक्खरयं।—रा० रू०, पृ० ८१।

प्रतमक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दमा।

प्रतमाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] कटारी। (डिं०)।

प्रतर—संज्ञा पुं० [सं०] पार करना। तरण करना [को०]।

प्रतर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क। वाद विवाद। २. अनुमान। सोचना विचारना। ३. खोजना। खोजना।

प्रतर्कण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वादविवाद करना। तर्क करना। २. संदेह (को०)। ३. तर्क शास्त्र (को०)।

प्रतर्कना—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतर्कण] ऊहापोह। संशय। संदेह। तर्क।

प्रतर्क्य—वि० [सं०] तर्कनीय। तर्क करने योग्य। कल्पनीय [को०]।

प्रतर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १. काशी का एक प्रख्यात राजा।

विशेष—यह राजा दिवोदास का पुत्र था और इसका विवाह मदालसा के साथ हुआ था। यह राजा रामचंद्र जी के समय में था।

२ एक प्राचीन ऋषि का नाम। ३. विष्णु। ४. ताड़ना। ताड़न। ५. ताड़ना करनेवाला।

प्रतल—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथ की हथेली। पंजा। २. सप्त अधोलोक में से एक। पाताल के सातवें भाग का नाम।

प्रतष(पु)—वि० [सं० प्रत्यक्ष] दे० 'प्रत्यक्ष'। उ०—भजिया भजिया तणी, दोखै प्रतष दुसाल।—रघु० रू०, पृ० ४१।

प्रतान[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपतानक नामक रोग जिसमें बार बार मूर्छा आती है। २. एक प्राचीन ऋषि का नाम। ३. बेल। लता। उ०—ललती विलसी बल्लरी फल्ली लता प्रतान।

—अनेकार्थ०, पृ० ८८ । ४. रेखा या लतातंतु । ५. प्रस्तार । विस्तार (को०) ।

प्रतान[2]—वि० [सं०] १. विस्तृत । लंबा चौड़ा । २. रेशेदार । जिसमें रेशे हों ।

प्रतानिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] फैलनेवाली लता । वल्ली (को०) ।

प्रतानी—वि० [सं० प्रतानिन्] [वि० स्त्री० प्रतानिनी] १. फैलनेवाला । विस्तृत होनेवाला । फैला हुआ । २. रेशेदार । जिसमें रेशे हों (को०) ।

प्रताप—संज्ञा पुं० [सं०] १. पौरुष । मरदानगी । वीरता । २. बल, पराक्रम आदि महत्व का ऐसा प्रभाव जिसके कारण उपद्रवी या विरोधी शांत रहें । तेज । इकबाल । ३. मदार का पेड़ । ४. रामचंद्र के एक सखा का नाम । ५. युवराज का छत्र । ६. ताप । गरमी ।

प्रतापन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीडन । कष्ट पहुँचाना । २ कुंभीपाक नरक । ३. विष्णु । ४. शिव (को०) ।

प्रतापन[2]—वि० क्लेश देनेवाला । कष्ट देनेवाला ।

प्रतापवान्[1]—वि० [सं० प्रतापवत्] [वि० स्त्री० प्रतापवती] प्रतापयुक्त । जिसमें प्रताप हो । इकबालमंद ।

प्रतापवान्[2]—संज्ञा पुं० १. विष्णु । २. शिव का नाम (को०) ।

प्रतापस—संज्ञा पुं० [सं०] १. सफेद मदार । २ महान् तपस्वी (को०) ।

प्रतापी[1]—वि० [सं० प्रतापिन्] १. प्रतापवान् । इकबालमंद । जिसका प्रताप हो । २. सतानेवाला । दुःखदायी ।

प्रतापी —संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र के एक सखा का नाम । उ०—दुवन प्रताप तहाँ, परम प्रतापी राम बचन उचारे हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

प्रतारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वंचक । ठग । २. धूर्त । चालाक ।

प्रतारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वंचना । ठगी । २. धूर्तता ।

प्रतारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतारण । वंचना । ठगी ।

प्रतारित—संज्ञा पुं० [सं०] जो ठगा गया हो ।

प्रतिंचा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रत्यञ्चा या पतञ्चिका] धनुष की डोरी । ज्या । चिल्ला ।

प्रति[1]—अव्य० [सं०] एक उपसर्ग जो शब्दों के आरंभ में लगाया जाता है और निम्नांकित अर्थ देता है—१. विरुद्ध । विपरीत । जैसे, प्रतिकूल, प्रतिकार । २. सामने । जैसे, प्रत्यक्ष । ३. बदले में । जैसे, प्रत्युपकार, प्रतिहिंसा, प्रतिध्वनि । ४. हर एक । एक एक । जैसे, प्रत्येक, प्रतिदिन, प्रतिक्षण । उ०—कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं । चारु चरित नाना बिधि करहीं ।—मानस १।१४० । ५. समान । सदृश । जैसे प्रतिनिधि, प्रतिकृति । प्रतिलिपि । ६. मुकाबले का । जोड़ का । जैसे, प्रतिभट, प्रतिवादी, प्रत्युत्तर । इसके अतिरिक्त कहीं कहीं यह उपसर्ग 'ऊपर', 'अंश', 'अवभास' आदि का भी अर्थ देता है ।

प्रति[2]—अव्य० १. सामने । मुकाबिले में । २. ओर । तरफ । लक्ष्य किए हुए । जैसे, किसी के प्रति श्रद्धा रखना ।

प्रति[3]—संज्ञा स्त्री० १. नकल । कापी । २. एक ही प्रकार की कई वस्तुओं में अलग अलग एक एक वस्तु । अदद । जैसे,—इस पुस्तक की दस प्रतियाँ ले लो ।

प्रतिउत्तर—संज्ञा पुं० [सं० प्रति + उत्तर, प्रत्युत्तर] दे० 'प्रत्युत्तर' । उ०—प्रति उत्तर उकपति न दिय त्रिया क्रोध मन मानि । —पृ० रासो, पृ० १० ।

प्रतिकंचुक—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिकञ्चुक] शत्रु । दुश्मन ।

प्रतिक—वि० [सं०] एक कार्षापण में क्रीत । एक कार्षापण मूल्य का (को०) ।

प्रतिकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिशोध । बदला । २. प्रतिरोध । विरोध । ३. क्षतिपूर्ति । ४. फैलाव । विस्तीर्णता (को०) ।

प्रतिकरणीय—वि० [सं०] १ जिसका प्रतिकार किया जाय । २. जो प्रतिरोध करने योग्य हो (को०) ।

प्रतिकर्तव्य—वि० [सं०] १. जो चुकाया जाय (जैसे, ऋण आदि) । २. जिसका प्रतिकार किया जाय । ३. (रोगादि) जिसकी चिकित्सा की जाय (को०) ।

प्रतिकर्ता—वि० पुं० [सं० प्रतिकर्तृ] १. प्रतिशोध करनेवाला । प्रतिकार करनेवाला । २. क्षतिपूर्ति करनेवाला (को०) ।

प्रतिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिकर्मन्] १. वेश । भेष । २. प्रतीकार । बदला । ३. वह कर्म जो किसी दूसरे के द्वारा प्रेरित हो । किसी कार्य के होने पर होनेवाला कार्य । किसी काम के जवाब में होनेवाला काम । ४. शरीर को सँवारना । अंगकर्म ।

प्रतिकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थान पर करना । एकत्र करना । संयोजन (को०) ।

प्रतिकशा—वि० [सं०] कशाघात को न माननेवाला (घोड़ा) । सरकश (को०) ।

प्रतिकष—संज्ञा पुं० [सं०] १. नेता । २. सहायक । ३. दूत । वार्ताहर । चर (को०) ।

प्रतिकामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सपत्नी । सौत ।

प्रतिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुतला । प्रतिरूप मूर्ति । चित्र । २. शत्रु । अरि । ३. लक्ष्य । शरव्य (को०) ।

प्रतिकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कार्य जो किसी कार्य को रोकने, दबाने अथवा उसका बदला चुकाने के लिये किया जाय । प्रतीकार । बदला । जवाब । किसी बात का उचित उपाय । जैसे,—(क) खाने से धूप का प्रतिकार हो जाता है । (ख) आप अपने पाप का कुछ प्रतिकार कीजिए । उ०—दाँत पीसकर, ओंठ काटकर, करता है वह क्रुद्ध प्रहार । पर हँस हँसकर ही प्रभु सबका करते हैं पल में प्रतिकार ।—साकेत, पृ० ३६३ । २ चिकित्सा । इलाज । ३. एक प्रकार की संधि जिसमें कृत उपकार के बदले उपकार किया जाय (को०) । ४. साहाय्य । सहायता (को०) ।

प्रतिकारक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिकार करनेवाला । बदला चुकानेवाला ।

प्रतिकारी—वि० [सं० प्रतिकारिन्] प्रतिकार करनेवाला । प्रतिरोध करनेवाला [को०] ।

प्रतिकार्य—वि० [सं० प्रतिकार्य्य] जो प्रतिकार करने के योग्य हो । जिसका प्रतिकार किया जा सके ।

प्रतिकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिरूप । प्रतीकाश । २. सादृश्य । तुल्यता [को०] ।

प्रतिकितव—संज्ञा पुं० [सं०] जुआरी के मुकाबले में जुआ खेलनेवाला जुआरी । जुआरी का जोड़ ।

प्रतिकुंचित—वि० [सं० प्रतिकुञ्चित] टेढ़ा । झुका हुआ [को०] ।

प्रतिकूप—संज्ञा पुं० [सं०] परिखा । खाई ।

प्रतिकूल[1]—वि० [सं०] १. जो अनुकूल न हो । खिलाफ । उलटा । विरुद्ध । विपरीत । २. कष्टकर । अरुचिकर (को०) । ३. हठी । दुराग्रही (को०) ।

यौ०—प्रतिकूलकारी, प्रतिकूलकृत, प्रतिकूलचारी = विरुद्ध आचरण या काम करनेवाला । प्रतिकूलदर्शन = जिसका दर्शन अप्रिय या अशुभ हो । प्रतिकूलप्रवर्ती । प्रतिकूलवाद । प्रतिकूलवृत्ति = विरोधी ।

प्रतिकूल[2]—संज्ञा पुं० १. वह जो विरोध या प्रतिकूलता करे । प्रतिपक्षी । विरोधी । २. विरोध । प्रतिरोध (को०) ।

प्रतिकूलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिकूल आचरण । प्रतिकूल होने का भाव या क्रिया । विरोध । विपरीतता ।

प्रतिकूलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिकूलता' ।

प्रतिकूलप्रवर्ती—वि० [सं० प्रतिकूलप्रवर्तिन्] १. (पोत) जो गलत मार्ग पर हो । २. (जीभ) जो अनुचित बोले [को०] ।

प्रतिकूलवाद—संज्ञा पुं० [सं०] विरोध । खंडन । २. शत्रुता [को०] ।

प्रतिकूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौत । सपत्नी ।

प्रतिकूलिक—वि० [सं०] शत्रु । विरोधी [को०] ।

प्रतिकृत[1]—वि० [सं०] १. जिसका बदला हो चुका हो । जिसके जवाब या बदले में कोई बात की जा चुकी हो । २. जिसका उपाय किया जा चुका हो । जिसके विरुद्ध प्रयत्न किया जा चुका हो ।

प्रतिकृत—संज्ञा पुं० १. विरोध । २. हरजाना । क्षतिपूर्ति [को०] ।

प्रतिकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रतिमा । प्रतिमूर्ति । २. तसवीर । चित्र । ३. प्रतिबिंब । छाया । ४. बदला । प्रतीकार । ५. पूजा ।

प्रतिकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] जो प्रतिकार करने के योग्य हो ।

प्रतिकृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो बहुत ही निंदित या बुरा हो । निकृष्ट । २. दो बार का जोता हुआ खेत ।

प्रतिकोप—संज्ञा पुं० [सं०] किसी विरोध के प्रति क्रोध का होना [को०] ।

प्रतिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिकूल कार्य । विपरीत आचार । विपरीत क्रम [को०] ।

प्रतिक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रति+क्रान्ति] एक क्रांति के विरोधस्वरूप होनेवाली दूसरी क्रांति । उ०—इस तरह बुलहुर की क्रांति दबा दी गई और प्रतिक्रांति का पल्ला भारी रहा ।—किन्नर०, पृ० २० ।

प्रतिक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रतिकार । बदला । २. एक ओर कोई क्रिया होने पर उसके परिणामस्वरूप दूसरी ओर होनेवाली क्रिया । ३. सजावट । संस्कार । ४. शमन या निवारण का उपाय ।

प्रतिक्रियावादी—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिक्रिया + वादिन्] किसी कार्य के विरोध में कार्य करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

प्रतिक्रुष्ट—वि० [सं०] दीन । दया करने योग्य [को०] ।

प्रतिक्रूर—वि० [सं०] प्रतिकार में क्रूर । अत्यंत निर्दय [को०] ।

प्रतिक्रोध—संज्ञा पुं० [सं०] वह क्रोध जो किसी के क्रोध करने पर उत्पन्न हो [को०] ।

प्रतिक्षण—क्रि० वि० [सं०] हर दम । हर क्षण । निरंतर ।

प्रतिक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक । रक्षा करनेवाला ।

प्रतिक्षिप्त[1]—वि० [सं०] १. रोका हुआ । २. फेंका हुआ । ३. भेजा हुआ । ४. निंदित । ५. अपवादग्रस्त (को०) । ६. बुलाकर वापस किया हुआ (को०) । ७. स्पर्धा के कारण किसी के द्वारा तिरस्कृत (को०) । ८. जिसे क्षति या चोट पहुँचाई गई हो (को०) ।

प्रतिक्षिप्त—संज्ञा पुं० ओषधि । दवा [को०] ।

प्रतिक्षुत—संज्ञा पुं० [सं०] छींक । छिक्का [को०] ।

प्रतिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना । २. रोकना । ३. तिरस्कार । ४. होड़ । स्पर्धा (को०) ।

प्रतिक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिक्षेप' [को०] ।

प्रतिखुर—संज्ञा पुं० [सं०] वह मूढ़ गर्भ जिसमें बालक हाथ पैर बाहर निकालकर अपने धड़ और सिर से योनि मार्ग को रोक दे ।

प्रतिख्यात—वि० [सं०] बहुत प्रसिद्ध ।

प्रतिख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत अधिक प्रसिद्धि ।

प्रतिगत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वापस होना । लौटना । २. पक्षियों की एक प्रकार की गति । पक्षियों का आगे पीछे इधर उधर उड़ना ।

प्रतिगत[2]—वि० १. लौटा हुआ । जो वापस आया हो । २. भूला हुआ । विस्मृत (को०) । ३. इधर उधर या आगे पीछे की ओर उड़ता हुआ (को०) ।

प्रतिगमन—संज्ञा पुं० [सं०] वापस आना । लौटना [को०] ।

प्रतिगर्जना—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी गर्जन या हुंकार के उत्तर में गरजना [को०] ।

प्रतिगर्हित—वि० [सं०] निंदित । अपवादयुक्त [को०] ।

प्रतिगामिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिगामी होने का भाव । वापस लौटने या पीछे जाने की स्थिति । उ०—प्रगतिवादी बंधुओं की प्रगतिशीलता, जैसा मैं कह चुका, वास्तव में प्रतिगामिता है ।—प्र० सा०, पृ० ७६

प्रतिगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा पहाड़ । पहाड़ी । २. वह जो देखने में पहाड़ के समान हो ।

प्रतिगृह—अव्य० [सं०] प्रत्येक घर में । घर घर [को०] ।

प्रतिगृहीत—वि० [सं०] १. जो ले लिया गया हो । अंगीकृत । २. जो ग्रहण कर लिया गया हो । ३. विवाहित (को०) ।

प्रतिगृहीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पाणिग्रहण किया गया हो । धर्मपत्नी ।

प्रतिगृह्य—वि० [सं०] जो ग्रहण करने योग्य हो । लेने लायक ।

प्रतिगेह—अव्य० [सं०] दे० 'प्रतिगृह' ।

प्रतिग्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिज्ञा] दे० 'प्रतिज्ञा' ।

प्रतिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वीकार । ग्रहण । २. उस दान का लेना जो ब्राह्मण को विधिपूर्वक दिया जाय । इस प्रकार का दान लेना ब्राह्मण के छह कर्मों में से एक है । ३. पकड़ना । अधिकार में लाना । ४. पाणिग्रहण । विवाह । जैसे, दारप्रतिग्रह । ५. ग्रहण । उपराग । ६. स्वागत । अभ्यर्थना । ७. विरोध करना । मुकाबला करना । ८. उत्तर देना । जवाब देना । ९. सेना का पिछला भाग । १०. उगालदान । पीकदान । ११. अनुग्रह । भेंट । उपहार (को०) । १२. श्रवण करना । सुनना (को०) । १३. स्वीकरण (को०) । १४. कर्तन करनेवाला । काटने छाटनेवाला । जैसे, केशप्रतिग्रह = नापित (को०) । १५. ग्रहण करनेवाला । वह जो ग्रहण करे । ग्रहीता (को०) ।

प्रतिग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिग्रह । विधिपूर्वक दिया हुआ दान भेंट आदि लेना । २. आदान । ग्रहण । स्वीकार (को०) । ३. विवाह । पाणिग्रहण (को०) । ४. पात्र । बर्तन (को०) ।

प्रतिग्रही—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिग्रहिन्] प्रतिग्रह लेनेवाला । दान लेनेवाला ।

प्रतिग्रहीता—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिग्रहीतृ] १. दान ग्रहण करने या लेनेवाला । प्रतिग्राही । २. पति (को०) ।

प्रतिग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिग्रह । ग्रहण करना । लेना । २. पीकदान । उगालदान ।

प्रतिग्राहक—वि० संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिग्रह लेनेवाला । दान लेनेवाला ।

प्रतिग्राही—वि० संज्ञा पुं० [सं० प्रतिग्राहिन्] दान लेनेवाला । उ०—प्रतिग्राही जीवै नहीं दाता नरकै जाय ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १४८ ।

प्रतिग्राह्य—वि० [सं०] ग्रहण करने योग्य । लेने लायक । स्वीकरणीय ।

प्रतिघ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रोध । गुस्सा । २. मारना । ३. मारपीट । लड़ाई । ४. मूर्छा । बेहोशी । ५. रुकावट । विरोध । बाधा । ६. शत्रु । दुश्मन ।

प्रतिघ[2]—वि० १. रुकावट डालनेवाला । बाधक । विरोधी । २. प्रतिकूल । विरुद्ध । शत्रुता करनेवाला ।

प्रतिघात—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह आघात जो किसी दूसरे के आघात करने पर किया जाय । २. वह आघात जो एक आघात लगने पर आपसे आप उत्पन्न हो । टक्कर । ३. रुकावट । बाधा । ४. दूरीकरण । निवारण (को०) । ५. मारना । मारण (को०) ।

प्रतिघातक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिघात करनेवाला । शत्रु । बैरी । प्रतिघाती ।

प्रतिघातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जान से मार डालना । प्राणघात । हत्या । २. बाधा । रुकावट । निवारण ।

प्रतिघाती[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिघातिन्] [स्त्री० प्रतिघातिनी] प्रतिघात करनेवाला । शत्रु । बैरी । दुश्मन । ढकेलनेवाला । प्रतिद्वंद्वी ।

प्रतिघाती[2]—वि० १. मुकाबला करनेवाला । विरोध करनेवाला । प्रतिद्वंद्वी । २. टक्कर मारनेवाला ।

प्रतिघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर । बदन ।

प्रतिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुसेना । परचक्र [को०] ।

प्रतिचक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] अवलोकना । देखना ।

प्रतिचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिचन्द्र] आकाशीय उत्पात । चंद्राभास [को०] ।

प्रतिचार—संज्ञा पुं० [सं०] बनाव । सजाव । शृंगार । प्रसाधन [को०] ।

प्रतिचारित—वि० [सं०] प्रचारित । विज्ञापित । घोषित [को०] ।

प्रतिचारी—वि० [सं० प्रतिचारिन्] अभ्यास करनेवाला । मश्क करनेवाला [को०] ।

प्रतिचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिचिन्तन] फिर से विचार करना । पुनर्विचार ।

प्रतिचिकीर्षा—स्त्री० [सं०] प्रतिकार या विरोध करने की इच्छा [को०] ।

प्रतिचोदित—वि० [सं०] प्रेरित । उकसाया हुआ । उत्तेजित [को०] ।

प्रतिच्छंद—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिच्छन्द] आकार । मूर्ति । प्रतिमा । बिंब [को०] ।

प्रतिच्छंदक—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिच्छन्दक] दे० 'प्रतिच्छंद' ।

प्रतिच्छदन—संज्ञा पुं० [सं०] आवरण । आच्छादन [को०] ।

प्रतिच्छन(पु)—क्रि० वि० [सं० प्रति + क्षण] प्रत्येक क्षण । हर समय । उ०—साहि तनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुंदुभि बाजै ।—भूषण ग्रं०, पृ० २७ ।

प्रतिच्छन्न—वि० [सं०] १. आवृत । आच्छादित । २. छिपा हुआ । अप्रकट । गुप्त [को०] ।

प्रतिच्छवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिच्छाया । प्रतिबिंब । परछाईं । उ०—अरुण जलज के शोण कोण थे, नव तुषार के बिंदु भरे । मुकुर चूर्ण बन रहे प्रतिच्छवि, कितनी साथ लिए बिखरे । —कामायनी, पृ० ३७९ ।

प्रतिच्छाया† — संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतीक्षा] दे० 'प्रतीक्षा'।

प्रतिच्छाया — संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चित्र। तस्वीर। २. मिट्टी पत्थर आदि की बनी हुई मूर्ति। ३. परछाईं। प्रतिबिंब।

प्रतिच्छायिका — संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रतिच्छाया [को०]।

प्रतिच्छायित — वि० [सं०] प्रतिच्छाया युक्त। चित्रित। प्रतिबिंबित। उ० —चिर निराशा नीरधर से, प्रतिच्छायित अश्रु सर में। मधुप मुखर मरंद मुकुलित मैं सजल जलजात रे मन।—कामायनी, पृ० २१७।

प्रतिच्छेद — संज्ञा पुं० [सं०] १. बाधा। रुकावट। विरोध। २. छेदन करना। खंडित करना [को०]।

प्रतिछवि — संज्ञा पुं० [सं० प्रति + हिं० छवि] दे० 'प्रतिच्छवि'। उ०— तू बहती सरिता के जलपर, देख रहा अपनी प्रतिछवि नर। —मधुज्वाल, पृ० ६६।

प्रतिछाँई — संज्ञा । [हिं०] दे० 'प्रतिच्छाया'—३।

प्रतिछाँह — संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'प्रतिच्छाया'—३।

प्रतिछाँहीं — संज्ञा स्त्री० [सं० प्रति + हिं० छाँह] दे० 'प्रतिछाया'।

प्रतिछाया — संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिच्छाया] प्रतिबिंब। परछाहीं।

प्रतिजंघा — संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिजङ्घ] जाँघ का अगला भाग।

प्रतिजन्म — संज्ञा पुं० [सं०] पुनः जनमना। फिर पैदा होना [को०]।

प्रतिजन्य — वि० [सं०] प्रतिकूल। विरोधी। वैरी। विरुद्ध [को०]।

प्रतिजल्प — संज्ञा पुं० [सं०] परामर्श। संमति। सलाह।

प्रतिजल्पक — संज्ञा पुं० [सं०] १. आदरणीय, अनुकूल या योग्य कथन। परामर्श। २. नम्र पर वक्र उत्तर [को०]।

प्रतिजागर — संज्ञा पुं० [सं०] १. खूब अच्छी तरह ध्यान देना। खूब होशियार रखना। सचेत रहना। सावधान रहना। २. रक्षा।

प्रतिजागरण — संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिजागर' [को०]।

प्रतिजिह्वा — संज्ञा स्त्री० [सं०] गले के अंदर की घंटी। कौवा। छोटी जीभ।

प्रतिजिह्विका — संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रतिजिह्वा' [को०]।

प्रतिजीवन — संज्ञा पुं० [सं०] फिर से जन्म होना। नया जन्म।

प्रतिज्ञता — संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिज्ञ + हिं० ता (प्रत्य०)] प्रतिज्ञा लेने का भाव। उ०—जिसके अर्थ बहुत कुछ आत्मत्याग, देशानुराग, दृढ़प्रतिज्ञता आदि गुणों की आवश्यकता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३७।

प्रतिज्ञांतर — संज्ञा पुं० [सं० प्रतिज्ञान्तर] तर्क में एक निग्रह स्थान। विशेष—दे० 'निग्रहस्थान'।

प्रतिज्ञा — संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भविष्य में कोई कर्तव्य पालन करने, कोई काम करने या न करने आदि के संबंध में दृढ़ निश्चय। वह दृढ़तापूर्ण कथन या विचार जिसके अनुसार कोई कार्य करने या न करने का दृढ़ संकल्प हो। किसी बात को अवश्य करने या कभी न करने के संबंध में वचन देना। प्रण। जैसे—भीष्म ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं आजन्म विवाह न करूँगा। २. शपथ। सौगंद। कसम। ३. अभियोग। दावा। ४. न्याय में अनुमान के पाँच खंडों या अवयवों में से पहला अवयव। वह वाक्य या कथन जिससे साध्य का निर्देश होता है। उस बात का कथन जिसे सिद्ध करना हो। ५. स्वीकार। स्वीकरण। अंगीकरण (को०)।

प्रतिज्ञात[1] — वि० [सं०] १. जिसके संबंध में प्रतिज्ञा की जा चुकी हो। स्वीकार किया हुआ। २. करने या हो सकने योग्य। साध्य।

प्रतिज्ञात[2] — संज्ञा पुं० प्रतिज्ञा। वादा। वचन [को०]।

प्रतिज्ञातार्थ — संज्ञा पुं० [सं०] वक्तव्य। कथन [को०]।

प्रतिज्ञान — संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वीकृति। स्वीकरण। राजीनामा। २. प्रतिज्ञा। वादा। वचन [को०]।

प्रतिज्ञापत्र, प्रतिज्ञापत्रक — संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसपर कोई प्रतिज्ञा लिखी हो। वह कागज जिसपर शर्तें लिखी हों। इकरारनामा।

प्रतिज्ञापालन — संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा पूरी करना। प्रण पूरा करना। वचन निभाना [को०]।

प्रतिज्ञाभंग — संज्ञा पुं० [सं० प्रतिज्ञाभङ्ग] वादा पूरा न करना। वचन न निभाना [को०]।

प्रतिज्ञाविरोध — संज्ञा पुं० [सं०] न्याय के अनुसार एक प्रकार का निग्रहस्थान। दे० 'निग्रहस्थान'।

प्रतिज्ञाविवाहित — वि० [सं०] जिसकी शादी हो गई हो [को०]।

प्रतिज्ञासंन्यास — संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का निग्रह स्थान। दे० 'निग्रहस्थान'।

प्रतिज्ञाहानि — संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का निग्रहस्थान। विशेष—दे० 'निग्रहस्थान।

प्रतिज्ञेय — संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो प्रतिज्ञा करने में समर्थ हो। प्रतिज्ञा कर सकने योग्य। २. वह जो स्तुति या प्रशंसा करे। स्तुति करनेवाला। प्रशंसा करनेवाला।

प्रतितंत्र — संज्ञा पुं० [सं० प्रतितन्त्र] अपने मत से विरुद्ध मत का शास्त्र। वह शास्त्र जिसके सिद्धांत अपने शास्त्र के सिद्धांतों के प्रतिकूल हों।

प्रतितंत्रसिद्धांत — संज्ञा पुं० [सं० प्रतितन्त्रसिद्धान्त] वह सिद्धांत जो कुछ शास्त्रों में हो और कुछ में न हो। जैसे, मीमांसा में 'शब्द' को नित्य माना है, परंतु न्याय में वह अनित्य माना जाता है।

प्रतितर — संज्ञा पुं० [सं०] १. नाव का डाँड़। नाव खेने का बल्ला। २. नाव को खेनेवाला। कर्णधार। केवट।

प्रतिताल, प्रतितालक — संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का एक प्रकार जिसमें कांतार, समराव्य, वैकुंठ और वांछित ये चारों ताल हैं।

प्रतिताली — संज्ञा स्त्री० [सं०] दरवाजे की चाभी। कुंजी। ताली [को०]।

प्रतितुलन — संज्ञा पुं० [सं० प्रति + तुलन] तुलना। समता। संतुलन। समानीकरण। उ०—जिन जातियों के इतिहास में इन दोनों

प्रवृत्तियों का प्रतितुलन बराबर होता रहता है।—प्रा० इ० क०, पृ० ६०६।

प्रतितूणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें गुदा अथवा मूत्राशय से पीड़ा उठकर पेट तक पहुँचती है।

प्रतिदृप्त—वि० [सं० प्रतिदृप्त] अविश्वस्त। अविनयी। धृष्ट [को०]।

प्रतिदत्त—वि० [सं०] १. लौटाया हुआ। वापस किया हुआ। २. बदले में दिया हुआ।

प्रतिदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. ली या रखी हुई चीज को लौटाना। वापस करना। २. एक चीज लेकर दूसरी चीज देना। परिवर्तन। विनिमय। बदला।

प्रतिदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. संघर्ष। युद्ध। लड़ाई। २. चीरना। फाड़ना [को०]।

प्रतिदिवा—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिदिवन्] १. सूर्य। रवि। २. दिवस। दिन [को०]।

प्रतिदूत—संज्ञा पुं० [सं०] वह दूत जो बदले में भेजा जाय [को०]।

प्रतिदृष्ट—वि० [सं०] १. देखा हुआ। अवलोकित। दृष्टिगत। २. प्रसिद्ध। ख्यात [को०]।

प्रतिदृष्टांतसम—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिदृष्टान्तसम] न्याय में एक प्रकार की जाति।

प्रतिदेय—वि० [सं०] १. जो प्रतिदान करने योग्य हो। जो बदलने या लौटाने योग्य हो। २. जो (वस्तु आदि) क्रय करके फिर लौटाई जाय (को०)।

प्रतिद्वंद्व—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिद्वन्द्व] १. दो समान व्यक्तियों का विरोध। बराबरवालों का झगड़ा। २. विरोधी। शत्रु (को०)।

प्रतिद्वंद्विता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिद्वन्द्विता] बराबरवाले की लड़ाई। समान बल या बुद्धिवाले व्यक्ति का विरोध। अपने से समान व्यक्ति का विरोध। १. प्रतिद्वंद्वी होने का भाव।

प्रतिद्वंद्वी[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिद्वन्द्विन्] बराबरी का विरोधी। मुकाबले का लड़नेवाला। शत्रु।

प्रतिद्वंद्वी[2]—वि० १. प्रतिकूल। विरोधी। २. शत्रुतापूर्ण [को०]।

प्रतिधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आलेख्य [को०]।

प्रतिधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. रखना। स्थापित करना। २. निराकरण [को०]।

प्रतिधावन—संज्ञा पुं० [सं०] आक्रमण। हमला [को०]।

प्रतिधि—संज्ञा पुं० [सं०] संध्या के समय पढ़ा जानेवाला एक प्रकार वैदिक स्तोत्र।

प्रतिधुनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिध्वनि] दे० 'प्रतिध्वनि'। उ०—केइ अपनी प्रतिधुनि सों अरें। गारि देहिं बहुरयो हँसि परें। नंद० ग्रं०, २६०।—

प्रतिध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह शब्द जो (उत्पन्न होने पर) किसी बाधक पदार्थ से टकराने के कारण लौटकर अपने उत्पन्न होने के स्थान पर फिर से सुनाई पड़ता है। अपनी उत्पत्ति के स्थान पर फिर से सुनाई पड़नेवाला शब्द। प्रतिनाद। प्रतिशब्द। प्रतिश्रुत। गूँज। आवाज। बाजगश्त। जैसे,—(क) दूर की पहाड़ी से मेरी पुकार की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी। (ख) उस गुंबद के नीचे जो कुछ कहा जाय, उसकी प्रतिध्वनि बराबर सुनाई पड़ती है।

विशेष—वायु में क्षोभ होने के कारण लहरें उठती हैं जिनसे शब्द की उत्पत्ति होती है। जब इन लहरों के मार्ग में दीवार या चट्टान आदि की तरह का कोई भारी बाधक पदार्थ आता है तब ये लहरें,उससे टकराकर लौटती हैं जिनके कारण वह शब्द फिर उस स्थान पर सुनाई पड़ता है जहाँ से वह उत्पन्न हुआ था। यदि वायु की लहरों को रोकनेवाला पदार्थ शब्द उत्पन्न होने के स्थान के ठीक सामने होता है तब तो प्रतिध्वनि उत्पन्न होने के स्थान पर ही सुनाई पड़ती है। पर यदि वह इधर उधर होता है तो प्रतिध्वनि भी इधर या उधर सुनाई पड़ती है। यदि लगातार बहुत से शब्द किए जायँ तो सब शब्दों की प्रतिध्वनि साफ नहीं सुनाई पड़ती; पर शब्दों की समाप्ति पर अंतिम शब्द की प्रतिध्वनि बहुत ही साफ सुनाई पड़ती है। जैसे, यदि किसी बहुत बड़े तालाब के किनारे या किसी बड़े गुंबद के नीचे खड़े होकर कहा जाय 'हाथी या घोड़ा' तो प्रतिध्वनि में 'घोड़ा' बहुत साफ सुनाई देगा। साधारणतः प्रतिध्वनि उत्पन्न होने में एक सेकंड का नवाँ अंश लगता है, इसलिये इससे कम अंतर पर जो शब्द होंगे उनकी प्रतिध्वनि स्पष्ट नहीं होगी। शब्द की गति प्रति सेकंड लगभग ११२५ फुट है, अतः जहाँ बाधक स्थान शब्द उत्पन्न होने के स्थान से (११२५ का $\frac{1}{18}$ वाँ अंश) ६२ फुट से कम दूरी पर होगा, वहाँ प्रतिध्वनि नहीं सुनाई पड़ेगी। सबसे अधिक स्पष्ट प्रतिध्वनि उसी शब्द की होती है जो सहसा और जोर का होता है। प्रायः बहुत बड़े बड़े कमरों, गुंबदों, तालाबों, कूपों, नगर के परकोटों, जंगलों, पहाड़ों और तराइयों आदि में प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। किसी किसी स्थान पर ऐसा भी होता है कि एक ही शब्द की कई कई प्रतिध्वनियाँ होती हैं।

२. शब्द से व्याप्त होना। गूँजना। ३. दूसरों के भावों या विचारों आदि का दोहराया जाना। जैसे,—उनके व्याख्यान में केवल दूसरों की उक्तियों की प्रतिध्वनि ही रहती है।

प्रतिध्वनित—वि० [सं०] प्रतिध्वनि से परिपूर्ण। गुंजित [को०]।

प्रतिध्वान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिध्वनि'।

प्रतिध्वानित—वि० [सं०] गुंजित। प्रतिध्वनित [को०]।

प्रतिनंदन—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिनन्दन] १ वह अभिनंदन जो आशीर्वाद देते हुए किया जाय। २. स्वागत करना (को०)। ३. धन्यवाद देना (को०)। ४. बधाई देना (को०)।

प्रतिनप्ता—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिनप्तृ] प्रपौत्र। पुत्र का पौत्र [को०]।

प्रतिनमस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] नमस्कार के बदले में किया गया नमस्कार। प्रत्यभिवादन।

प्रतिनव—वि० [सं०] नया। ताजा। नूतन [को०]।

प्रतिना—संज्ञा स्त्री० [सं० पृतना] दे० 'पृतना'।

प्रतिनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिनाडी] छोटी नाड़ी। उपनाड़ी।
विशेष—दे० 'नाड़ी'।

प्रतिनाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिध्वनि'।

प्रतिनादित—वि० [सं०] गुंजित। प्रतिध्वनित। [को०]।

प्रतिनायक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटकों और काव्यों आदि में नायक का प्रतिद्वंद्वी पात्र। जैसे, रामायण में राम का प्रतिनायक रावण है।

प्रतिनाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें नाक के नथनों में कफ रुकने से श्वास चलना बंद हो जाता है।

प्रतिनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिमा। प्रतिमूर्ति। २. वह व्यक्ति जो किसी दूसरे की ओर से कोई काम करने के लिये नियुक्त हो। दूसरों का स्थानापन्न होकर काम करनेवाला।

विशेष—(क) हमारे यहाँ प्राचीन काल से धार्मिक कृत्यों आदि के लिये प्रतिनिधि नियुक्त करने की प्रथा है। यदि कोई मनुष्य नित्य या नैमित्तिक आदि कर्म आरंभ करने के उपरांत बीच में ही असमर्थ हो जाय तो वह उसकी पूर्ति के लिये किसी दूसरे व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि स्वरूप नियुक्त कर सकता है। (ख) आजकल साधारणतः सर्वसाधारण की ओर से सभाओं आदि में, विचार प्रकट करने और मत देने के लिये, अथवा किसी राज्य या बड़े आदमी की ओर से किसी बात का निर्णय करने के लिये लोग प्रतिनिधि बनाकर भेजे जाते हैं।

३. जमानतदार। प्रतिभू। जामिन (को०)। ४. प्रतिबिंब (डिं०)। ५. वह वस्तु या द्रव्य जो किसी वस्तु के अभाव में प्रयुक्त हो (को०)।

प्रतिनिधित्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिनिधि होने की क्रिया या भाव। प्रतिनिधि होने का काम।

प्रतिनियत—वि० [सं०] १. दृढ़। कपटरहित। स्थिर। २. पूर्वनिश्चित। पहले से तै किया हुआ [को०]।

प्रतिनियम—[संज्ञा] पुं० [सं०] १. अलग अलग व्यवस्था। २. सामान्य नियम। सामान्य व्यवस्था [को०]।

प्रतिनिर्जित—वि० [सं०] १ स्वकार्यप्रयुक्त। अपने काम में प्रयुक्त। २. जीता हुआ। विजित [को०]।

प्रतिनिर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रतिनिर्देश्य] फिर से कहना। दुबारा कहना [को०]।

प्रतिनिर्यातन—संज्ञा पुं० [सं०] वह अपकार जो किसी अपकार के बदले में किया जाय।

प्रतिनिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रतिनिवर्तित] १. लौटना। वापस होना। २. निवारण। वारण [को०]।

प्रतिनिवासन—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध भिक्षुओं के पहनने का एक वस्त्र।

प्रतिनिविष्ट—वि० [सं०] जो स्थिर या दृढ़ हो [को०]।

यौ०—प्रतिनिविष्ट मूर्ख = महामूर्ख। जड़मति।

प्रतिनिष्क्रय—संज्ञा पुं० [सं०] बदला [को०]।

प्रतिनोद—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे करना। दूर हटाना [को०]।

प्रतिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा शांतनु के पिता का नाम।

प्रतिपक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रु। वैरी। दुश्मन। २. प्रतिवादी। उत्तर देनेवाला। ३. सादृश्य। समानता। बराबरी। ४. विरोधी पक्ष। विरुद्ध दल। विरुद्ध पक्ष। दूसरे फरीक की बात।

प्रतिपक्ष[2]—वि० समान। सदृश [को०]।

प्रतिपक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विरोधिता। बाधा। विरोध।

प्रतिपक्षित—वि० [सं०] १. प्रतिपक्ष का। विरोधी दल में गया हुआ। २. न्याय में (वह हेतु) जो सत्प्रतिपक्ष दोष से युक्त हो [को०]।

प्रतिपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिपक्षिन्] विपक्षी। विरोधी। शत्रु।

प्रतिपच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिपक्ष] दे० 'प्रतिपक्ष'।

प्रतिपच्छी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिपक्षिन्] दे० 'प्रतिपक्षी'। उ०—प्रतिपच्छी को मान मारि अपनौ विस्तारै।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११२।

प्रतिपत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'प्रतिपद'।

यौ०—प्रतिपत्तूर्य = एक प्रकार का बाजा। नगाड़ा।

प्रतिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति। पाना। २. ज्ञान। ३. अनुमान। ४. देना। दान। ५. कार्य रूप में लाना। ६. प्रतिपादन। निरूपण। किसी विषय का निर्धारण। ७. प्रमाणपूर्वक प्रदर्शन। जी में बैठाना। ८. मानना। स्वीकृति कायल होना। ९. पदप्राप्ति। धाक। प्रतिष्ठा। साख। १०. आदरसत्कार। ११. प्रवृत्ति। १२. निश्चय। दृढ़ विचार। १३. परिणाम। १४. गौरव। १५. ढंग। तरीका (को०)। १६. संवाद (को०)।

प्रतिपत्तिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिपत्तिकर्मन्] श्राद्ध आदि में वह कर्म जो सबके अंत में किया जाय। सबके पीछे किया जानेवाला कर्म।

प्रतिपत्तिदक्ष—वि० [सं०] कार्यसंपादन में चतुर [को०]।

प्रतिपत्तिपटह—संज्ञा पुं० [सं०] वह ढोल जिसे बजवाने का अधिकार केवल अभिजात वर्ग के लोगों (सरदारों) को था।

प्रतिपत्तिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] संमतिभेद। मतभेद [को०]।

प्रतिपत्तिमान्—वि० [सं० प्रतिपत्तिमत्] १. प्रतिपत्तियुक्त। बुद्धिमान। २. चतुर। कार्य में दक्ष। ३. प्रतिष्ठित। मशहूर। ख्यात [को०]।

प्रतिपत्तिविशारद—वि० [सं०] चतुर। कुशल [को०]।

प्रतिपत्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेली।

प्रतिपद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मार्ग। रास्ता। २. आरंभ। ३. पक्ष की पहली तिथि। प्रतिपदा। परिवा। ४. बुद्धि। समझ। ५. श्रेणी। पंक्ति। ६. प्राचीन काल का एक प्रकार

का बड़ा ढोल। ७. अग्निप्रवेश (को०)। ८. प्रारंभ के श्लोक। शुरू के छंद (को०)। ९. अग्नि की जन्मतिथि।

प्रतिपद—क्रि० वि० [सं०] पद पद पर। प्रत्येक पग पर [को०]।

प्रतिपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की पहली तिथि। प्रतिपद्। परिवा।

प्रतिपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिपदा [को०]।

प्रतिपन्न—वि० [सं०] १. अवगत। जाना हुआ। २. अंगीकृत। स्वीकृत। अपनाया हुआ। ३. प्रचंड। ४. प्रमाणित। साबित। निश्चित। स्थापित। निर्धारित। निरूपित। ५. भरा पूरा। ६. शरणागत। ७. संमानित। जिसकी प्रतिष्ठा की गई हो। ८. प्राप्त। जो मिला हो। ९. पराभवग्रस्त। पराभूत (को०)। १०. प्रारंभित। जो प्रारंभ किया गया हो (को०)। ११. कृत। किया हुआ (को०)।

प्रतिपन्नक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रों के अनुसार श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत ये चार पद।

प्रतिपन्नत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिपन्न होने का भाव।

प्रतिपर्ण शिफा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी। द्रवंती।

प्रतिपाण—संज्ञा पुं० [सं०] जुए में प्रतिपक्षी का रखा हुआ दाँव। बदले में लगाई हुई बाजी।

प्रतिपात—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी क्षति की पूर्ण पूर्ति। नुकसान का पूरा बदला या हरजाना।

प्रतिपादक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह समझाने या कहनेवाला। प्रतिपादन करनेवाला। २. प्रतिपन्न करनेवाला। ३. निर्वाह करनेवाला। ४. उत्पादक। उत्पन्न करनेवाला। ५. देनेवाला। प्रदायक (को०)। ६. पुरस्कृत करनेवाला। उन्नायक (को०)।

प्रतिपादन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अच्छी तरह समझाना। भली-भाँति ज्ञान कराना। प्रतिपत्ति। २. निष्पादन। निरूपण। किसी बात का प्रमाणपूर्वक कथन। ३. प्रमाण। सबूत। ४. उत्पत्ति। ५. दान। ६. पुरस्कार। ७. वापस करना। प्रत्यर्पण (को०)। ८. आरंभण। उपक्रमण (को०)।

प्रतिपादनमान—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार बहुत अधिक वेतन या जागीर आदि देकर प्रतिष्ठा बढ़ाना।

प्रतिपादयिता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० प्रतिपादयितृ] १. अध्यापक। शिक्षक। २. देनेवाला। प्रदाता। ३. प्रतिपादक। निर्देशक। प्रवर्तक [को०]।

प्रतिपादित—वि० [सं०] १. जिसका प्रतिपादन हो चुका हो। जो अच्छी तरह कह या समझा दिया गया हो। २. जिसका निश्चय हो चुका हो। निर्धारित। निरूपित। ३. जो दिया गया हो। ४. उत्पादित। उद्भूत (को०)।

प्रतिपाद्य—वि० [सं०] १. प्रतिपादन के योग्य। निरूपण करने के योग्य। कहने के योग्य। समझाने के योग्य। २. देने के योग्य।

प्रतिपाप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह कठोर और पापरूप व्यवहार जो किसी पापी के साथ किया जाय।

प्रतिपाप[2]—वि० बुराई के बदले बुराई करनेवाला [को०]।

प्रतिपार(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिपाल] दे० 'प्रतिपाल'। उ०—ध्रुव जन प्रह्लाद रटत कुंती के कुँअर रटत। द्रुपदसुता रटत नाथ, नाथन प्रतिपार री।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२३।

प्रतिपारना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रतिपालन] प्रतिपालन करना। पालना।

प्रतिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पालन करे। पालन या रक्षण करनेवाला। पोषक। रक्षक। उ०—जो नहिं करतै, भावती रूप, भूप प्रतिपाल।—स० सप्तक, पृ० १८४।

प्रतिपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पालनकर्ता। पालन पोषण करनेवाला। पोषक। रक्षक। उ०—बाले बचन नीति प्रतिपालक।—मानस० ५।५०। २. राजा। नरेश।

प्रतिपालन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पालन करने की क्रिया या भाव। पालन। २. रक्षा करने की क्रिया या भाव। रक्षण। उ०—बहु बिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हो। परम कृपालु ज्ञान तोहिं दीन्हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५२४। ३. निर्वाह। तामील।

प्रतिपालना(पु)†—क्रि० स० [सं० प्रतिपालन] १. पालन पोषण करना। पालना। उ०—एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू।—मानस, २।१००। २. रक्षा करना। बचाना। ३. निर्वाह करना। तामील करना। उ०—प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिर आइहौं।—मानस, २।१५१।

प्रतिपालनीय—वि० [सं०] प्रतिपालन के योग्य। प्रतिपाल्य [को०]।

प्रतिपालित—वि० [सं०] १. पालन किया हुआ। २. रक्षित। ३. जिसका अभ्यास किया गया हो (को०)। ४. जिसका अनुगमन या निर्वाह किया गया हो (को०)।

प्रतिपाल्य—वि० [सं०] १. पालन करने योग्य। जिसका पालन करना उचित या धर्म हो। २. रक्षा करने के योग्य। जिसकी रक्षा करना उचित हो।

प्रतिपित्सु—वि० [सं०] किसी वस्तु को पाने के लिये इच्छुक [को०]।

प्रतिपिष्ट—वि० [सं०] १. चूर्णित। निष्पिष्ट। चर्षित। २. पीड़ित। निर्दलित। ३. परस्पर एक दूसरे द्वारा प्रहरित या आघातित (को०)।

प्रतिपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पुरुष जो किसी दूसरे पुरुष के स्थान पर होकर काम करे। प्रतिनिधि। २. वह पुतला जो प्राचीन काल में चोर लोग घुसने के पहले घर में फेंका करते थे। (जब इस प्रतिपुरुष के फेंकने पर घर के लोग किसी प्रकार का शोर नहीं करते थे, तब चोर घर में घुसते थे।) ३. सहकारी। वह जो साथ में काम करे।

प्रतिपुस्तक—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी मूल ग्रंथ की प्रतिलिपि [को०]।

प्रतिपूजक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिपूजन करनेवाला। अभिवादन करनेवाला।

प्रतिपूजन—संज्ञा पुं० [सं०] अभिवादन प्रत्यभिवादन। साहब सलामत।

प्रतिपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिपूजन। अभिवादन।

प्रतिपूज्य—वि० [सं०] जो अभिवादन करने पर, अभिवादन किए जाने के योग्य हो।

प्रतिपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिपुरुष'।

प्रतिपोषक—संज्ञा पुं० [सं०] सहायता करनेवाला। समर्थक। मदद करनेवाला।

प्रतिप्रणाम—संज्ञा पुं० [सं०] प्रणाम के बदले में किया जानेवाला प्रणाम। प्रतिनमस्कार। प्रत्यभिवादन (को०)।

प्रतिप्रत्त—वि० [सं०] प्रत्यर्पित (को०)।

प्रतिप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वापस करना। प्रतिदान। २. वह जो विवाह आदि में दिया हुआ हो (को०)।

प्रतिप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] अत्रि वंश के एक ऋषि का नाम।

प्रतिप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिबिंब। परछाँही।

प्रतिप्रयाण—संज्ञा पुं० [सं०] वापस होना। लौटना (को०)।

प्रतिप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रश्न के बदले में किया जानेवाला प्रश्न। २. उत्तर। जवाब (को०)।

प्रतिप्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी अवसर पर कोई ऐसे काम के लिये स्वच्छंदता जो और अवसरों पर निषिद्ध हो। जिस बात का एक स्थान पर निषेध किया गया हो, उसी का किसी विशेष अवसर के लिये विधान। किसी बात के लिये एक स्थान पर निषेध और दूसरे स्थान पर आज्ञा। जैसे, रविवार शुक्रवार, द्वादशी को श्राद्ध में तर्पण करने का निषेध है। पर अयन, विषुव, संक्रांति या ग्रहण के समय अथवा तीर्थस्थान में रविवार, शुक्रवार, द्वादशी को भी तिल से श्राद्ध करने की आज्ञा है।

प्रतिप्रसूत—वि० [सं०] १. जिसके विषय में और स्थानों में तो निषेध हो पर किसी विशेष स्थान में विधान हो। जिसके विषय में प्रतिप्रसव हो। २. पुनः संभावित (को०)।

प्रतिप्रस्थाता—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिप्रस्थातृ] सोमयाजी १६ ऋत्विजों में से छठा ऋत्विज्।

प्रतिप्रस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु या विरोधी पक्ष से मिल जाना (को०)।

प्रतिप्रहार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रत्याघात' (को०)।

प्रतिप्राकार—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्ग के बाहर की ओर का प्राकार। बाहरी परकोटा।

प्रतिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] प्रत्युपकार। उपकार के बदले की सेवा या कृपा (को०)।

प्रतिप्लवन—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे की ओर कूदना या प्लवन (को०)।

प्रतिफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिबिंब। छाया। २. परिणाम। नतीजा। ३. वह बात जो किसी बात का बदला देने या लेने के लिये की जाय।

प्रतिफलन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिफल' (को०)।

प्रतिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बावची। बकुची।

प्रतिफलित—वि० [सं०] १. प्रतिबिंबित। प्रतिच्छायित। उ०—भगवान मरीचिमाली की किरणें अनेक वस्तुओं पर प्रतिफलित होती हैं। —रसकलश, पृ० १७। २. प्रतिकृत। प्रतिशोधित (को०)।

प्रतिफुल्लक—वि० [सं०] फूला हुआ। पुष्पित। प्रफुल्ल (को०)।

प्रतिबंध—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिबन्ध] १. रोक। रुकावट। अटकाव। २. विघ्न। बाधा। ३. बदोबस्त। प्रबंध। ४. निराशा। आशाभंग। नैराश्य (को०)। ५. संबंध। संपर्क। लगाव (को०)। ६ बंधन। बाँधना। बाँधने की क्रिया या भाव। ८. (दर्शन०) सदा बना रहनेवाला अविच्छेद्य संबंध (को०)।

प्रतिबंधक—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिबन्धक] १. वह जो रोकता हो। रोकनेवाला। २. बाधा डालनेवाला। विघ्न करनेवाला। ३. वृक्ष। पेड़। ४. शाखा (को०)।

प्रतिबंधकता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिबन्धकता] १. रुकावट। रोक। अड़चन। २. विघ्न। बाधा।

प्रतिबंधवान्—वि० [सं० प्रतिबन्धवत्] प्रतिबंधयुक्त (को०)।

प्रतिबंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिबन्धि] दे० 'प्रतिबंधी'।

प्रतिबंधी[1]—वि० [सं० प्रतिबन्धिन्] १. बाधक। अवरोधक। २. बाँधनेवाला। ३. बाधाओं से ग्रस्त। कठिनाई से भरा हुआ (को०)।

प्रतिबंधी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिबन्धी] १. वह आपत्ति या इतराज जो समान रूप से दोनों पक्षों पर लागू हो। २. आपत्ति। इतराज। विरोध (को०)।

प्रतिबंधु—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिबन्धु] वह जो बंधु के समान हो।

प्रतिबद्ध—वि० [सं०] १. बँधा हुआ। २. जिसमें किसी प्रकार का प्रतिबंध हो। जिसमें कोई रुकावट हो। ३. जिसमें कोई बाधा डाली गई हो। ४. नियमित। ५. निसर्गतः। संबद्ध या संयुक्त। पूर्णतः अविच्छेद्य। जैसे, धूम और अग्नि (को०)। ६. खचित। जड़ा या पिरोया हुआ (को०)। ७. दूर या अलग किया हुआ। दूरीकृत (को०)। ८. निराश। हताश (को०)।

प्रतिबल[1]—वि० [सं०] १. समर्थ। शक्त। २. बराबर की ताकतवाला। शक्ति में समान।

प्रतिबल[2]—संज्ञा पुं० १. शत्रुसेना के भिन्न भिन्न अंगों का सामना करने की शक्ति या सामान।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि हस्तिसेना का मुकाबला करनेवाली हस्तियंत्र, शकटगर्भ, कुंत, प्रास, शस्त्र आदि से युक्त सेना है। जिस सेना में पाषाण, लकुट (लाठियाँ), कवच, कचग्रहणी आदि अधिक हों, वह रथ सेना के मुकाबले के लिये ठीक है, इत्यादि।

२. शत्रु। दुश्मन। वैरी (को०)।

प्रतिबाधक—वि० [सं०] १. बाधा करनेवाला। बाधक। रोकनेवाला। २. कष्ट पहुँचानेवाला। पीड़ा देनेवाला।

प्रतिबाधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विघ्न। बाधा। २. पीड़ा। कष्ट।

प्रतिबाधित—वि० [सं०] १. हटाया या रोका हुआ। निवारित। २. बाधित। बाधायुक्त। पीड़ित (को०)।

प्रतिबाधी—वि० [सं० प्रतिबाधिन्] १. बाधक। बाधा डालनेवाला। २. विरोधी। शत्रु। प्रतिकूल [को०]।

प्रतिबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँह का अगला भाग। २. पुराणानुसार श्वफल्क के एक पुत्र और अक्रूर के भाई का नाम।

प्रतिबिंब—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिबिम्ब] १. परछाईं। छाया। २. मूर्ति। प्रतिमा। ३. चित्र। तसवीर। ४. शीशा। दर्पण। उ०—हँसे हँसत अनरसे अनरसत प्रतिबिंबन ज्यों झाईं। —तुलसी (शब्द०)। ५. झलक।

प्रतिबिंबक—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिबिम्बक] परछाईं के समान पीछे पीछे चलनेवाला। अनुगामी।

प्रतिबिंबन—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिबिम्बन] १. प्रतिबिंब करने की क्रिया या स्थिति। २. प्रतिच्छायित होना। ३. तुलना। समता [को०]।

प्रतिबिंबवाद—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिबिम्बवाद] १. वेदांत का वह सिद्धांत जिसके अनुसार यह माना जाता है कि जीव वास्तव में ईश्वर का प्रतिबिंब मात्र है। २. एक साहित्यिक विचारधारा।

प्रतिबिंबित—वि० [सं० प्रतिबिम्बित] १. जिसका प्रतिबिंब पड़ता हो। जिसकी परछाँहीं पड़ती हो। २. जो परछाँहीं के कारण दिखाई पड़ता हो। ३. जो झलकता हो। जो कुछ स्पष्ट रूप से व्यक्त होता हो। जिसका आभास मिलता हो।

प्रतिबिंबी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिबिम्ब+हि० ई (प्रत्य०)] दर्पण। शीशा। उ०—प्रतिबिंबी आदरस पुनि मुकुर सुकर तिय लेत।—अनेकार्थ०, पृ० ३६।

प्रतिबीज—वि० [सं०] जिसका बीज नष्ट हो गया हो। जिसकी उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो गई हो।

प्रतिबुद्ध—वि० [सं०] १. जागा हुआ। २. जो जाना हुआ हो। प्रसिद्ध। ३. जिसकी उन्नति हुई हो। उन्नत। ४. प्रफुल्ल। विकसित (को०)।

प्रतिबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विपरीत बुद्धि। उलटी समझ। २. प्रतिबोध। जागरण (को०)।

प्रतिबेंबु—संज्ञा पुं० [हिं०] छाया। प्रतिबिंब। परछाईं। उ०—जेव प्रतिबेंबु समनि में भासे प्रतिमा को गुन गैऊ।—सं० दरिया, पृ० १४७।

प्रतिबोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. जागरण। जागना। २. ज्ञान। समझ। ३. स्मृति या स्मरण।

प्रतिबोधक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो प्रतिबोध करावे। २. जगानेवाला। ज्ञान उत्पन्न करनेवाला। ४. शिक्षा देनेवाला। ५. तिरस्कार करनेवाला।

प्रतिबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जगाना। ज्ञान उत्पन्न कराना।

प्रतिब्यंब(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्रतिबिंब'। उ०—झलकंत बगतर टोप झिलै। रस चाहु निसा प्रतिब्यंब रलै।—रा० रू०, पृ० ३१।

प्रतिभट—संज्ञा पुं० [सं०] १. बराबर का योद्धा। समान शक्तिवाला योद्धा। उ०—जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता।—मानस, १।१८०। २. वह जिससे युद्ध होता हो। मुकाबला करनेवाला। उ०—प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा।—मानस, १।१८२। ३. शत्रु। वैरी। दुश्मन।

प्रतिभटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैर। शत्रुता। दुश्मनी।

प्रतिभय[1]—वि० [सं०] भयंकर।

प्रतिभय[2]—संज्ञा पुं० भय। डर।

प्रतिभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि। समझ। २. वह असाधारण मानसिक शक्ति जिसकी सहायता से मनुष्य आपसे आप, विशेष प्रयत्न किए बिना ही, किसी काम में बहुत अधिक योग्यता प्राप्त कर लेता और दूसरों से आगे बढ़ जाता है। असाधारण बुद्धिबल या योग्यता जिसकी अभिव्यक्ति बहुधा साहित्य, कला या विज्ञान आदि में होती है।

यौ०—प्रतिभाशाली। प्रतिभावान्।

३. दीप्ति। चमक। (क्व०)। ४. उपयुक्तता। औचित्य (को०)।

प्रतिभाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

प्रतिभात—वि० १. चमकीला। ज्योतिर्मय। २. ज्ञात। समझा हुआ। उ०—किंतु भूप को हाय न यह कुछ ज्ञात था, काश्यप दर्शन योगमात्र प्रतिभात था।—शकुं०, पृ० ४६।

प्रतिभान—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्धि। समझ। २. प्रभा। चमक। ३. प्रतीत होना। जान पड़ना (को०)। ४. प्रगल्भता (को०)।

प्रतिभानवान्—वि० [सं०] १. प्रतिभान या प्रतिभायुक्त। २. द्युतिमान्। ३. प्रगल्भ (को०)।

प्रतिभानु—संज्ञा पुं० [सं०] सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

प्रतिभान्वित—वि० [सं०] जिसमें प्रतिभा हो। प्रतिभाशाली।

प्रतिभामुख—वि० [सं०] १. प्रत्युत्पन्न मति। कुशाग्रबुद्धि। २. धृष्ट। प्रगल्भ [को०]।

प्रतिभावान्—वि० [सं० प्रतिभावत्] १. प्रतिभान्वित। प्रतिभाशाली। जिसमें प्रतिभा हो। २. दीप्तिमान्। चमकदार। ३. प्रगल्भ (को०)।

प्रतिभाशाली—वि० [सं० प्रतिभाशालिन्] [वि० स्त्री० प्रतिभाशालिनी] जिसमें प्रतिभा हो। प्रतिभायुक्त।

प्रतिभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्तर। जवाब। २. वह जो किसी उत्तर के उत्तर में कहा जाय। प्रत्युत्तर। वादी का कथन। मुद्दई का बयान।

प्रतिभासंपन्न—वि० [सं० प्रतिभासम्पन्न] जिसमें प्रतिभा हो। प्रतिभाशाली।

प्रतिभास—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकृति। आकार। २. भ्रम। धोखा। मिथ्याज्ञान। ३. प्रकाश। चमक।

प्रतिभासन—संज्ञा पुं० [सं०] जान पड़ना। प्रतीत होना। द्योतित होना। व्यक्त होना।

प्रतिभाहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रतिभा की हानि। बुद्धिहीनता। बुद्धि का अभाव। २. प्रकाश पर द्युति का अभाव। अंधकार। अँधेरा (को०)।

प्रतिभिन्न—वि० [सं०] १. विभक्त। जो अलग हो गया हो। विभाजित। २. जिसका भेदन किया गया हो (को०)।

प्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार शास्त्र में वह व्यक्ति जो ऋण देनेवाले (उत्तमर्ण) के सामने ऋण लेनेवाले (अधमर्ण) की जमानत करे। जमानत में पड़नेवाला। जामिन। जामिन।

प्रतिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभेद। अंतर। फर्क। २. आविष्कार। रहस्य का स्पष्टीकरण (को०)।

प्रतिभेदन—संज्ञा [सं०] १. विभाग करना। भेद उत्पन्न करना। २. खोलना। ३. विदीर्ण करना। फाड़ना (को०)।

प्रतिभोग—संज्ञा पुं० [सं०] उपभोग।

प्रतिभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] विहित आहार (को०)।

प्रतिमडक—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिमण्डक] मालक राग का एक भेद।

प्रतिमडल—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिमण्डल] सूर्य आदि चमकते हुए मंडल का घेरा। परिवेश।

प्रतिमंडित—वि० [सं० प्रतिमण्डित] अलंकृत। मंडित (को०)।

प्रतिमंत्रित—वि० [सं० प्रतिमन्त्रित] मंत्र से पवित्र किया हुआ।

प्रतिम—अव्य० [सं०] समान। सदृश।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार केवल यौगिक में, शब्द के अंत में होता है। जैसे, मेघप्रतिम = मेघ के समान।

प्रतिमत—संज्ञा पुं० [सं० प्रति + मत] भिन्न मत। विरोधी मत। उ०—यदि हम काव्य संबंधी इन विविध संप्रदायों के उक्त प्रारंभिक निरूपणों को उनका मत मानें तो वे द्वितीय स्थिति के विवेचन प्रतिमत कहे जा सकते हैं।—न० सा० न० प्र०, पृ. २३।

प्रतिमर्श—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की शिरोबस्ति जो नस्य के पाँच भेदों के अंतर्गत है।

विशेष—प्रतिमर्श प्रायः प्रातःकाल सोकर उठने के समय, नहाने धोने, या दिन को सोकर उठने के उपरांत अथवा संध्या समय किया जाता है। इसमें ओषधियाँ डालकर पकाया हुआ घी नाक के नथनों में चढ़ाया जाता है जिससे नाक का मल निकल जाता है, दाँत मजबूत होते हैं, आँखों की ज्योति बढ़ती है, और शरीर हलका हो जाता है। भिन्न भिन्न समय के प्रतिमर्श का भिन्न भिन्न परिणाम बतलाया गया है।

प्रतिमल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] विरोधी मल्ल। प्रतिस्पर्धी योद्धा (को०)।

प्रतिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी की वास्तविक अथवा कल्पित आकृति के अनुसार बनाई हुई मूर्ति या चित्र आदि। अनुकृति। २. मिट्टी, पत्थर या धातु आदि की बनी हुई देवताओं की मूर्ति जिसकी स्थापना या प्रतिष्ठा करके पूजन किया जाता हो। देवमूर्ति। ३. प्रतिबिंब। छाया। ४. हाथियों के दाँत पर का पीतल या ताँबे आदि का बंधन। ५. तौलने का बाट। बटखरा। माप। ६. प्रतीक। चिह्न (को०)। ७. साहित्य का एक अलंकार जिसमें किसी मुख्य पदार्थ या व्यक्ति की स्थापना का वर्णन होता है। जैसे,—'हौं जीवित हौं जगत में अब यही आधार। प्रानपिया उनिहार यह ननदी वदन अधार'। इसमें विदेश गए हुए पति के अभाव में नायिका ने पति के समान आकृतिवाली ननद को ही उसका स्थानापन्न बनाया है, इसलिये यह प्रतिमा अलंकार है।

यौ०—प्रतिमागत = चित्र या मूर्ति में स्थित। प्रतिमाचंद्र = चंद्रमा का प्रतिबिंब। प्रतिमापरिचारक = मूर्ति की सेवा करनेवाला। पुजारी। प्रतिमापूजन, प्रतिमापूजा = मूर्तिपूजा।

प्रतिमान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिबिंब। परछाँही। २. हाथी का मस्तक। हाथी के दोनों बड़े दाँतों के बीच का स्थान। ३. समानता। बराबरी। ४. दृष्टांत। उदाहरण। ५. प्रतिनिधि। ६. बटखरा। मान। बाट (को०)। ७. विरोधी। शत्रु। दुश्मन (को०)। ८. चित्र। अनुकृति। मूर्ति। प्रतिमा (को०)।

प्रतिमानीकरण—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिमान+करण] प्रतिमान स्थिर करना। स्वरूप या व्यवस्था निश्चित करना। कसौटी उपस्थित करना।

प्रतिमाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] माया के उत्तर में माया। इंद्रजाल या जादू का जवाबी जादू (को०)।

प्रतिमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्मरण शक्ति का परिचय देने के लिये दो आदमियों का एक दूसरे के पीछे लगातार श्लोक या कविता पढ़ना।

विशेष—कभी कभी एक के श्लोक का अंतिम अक्षर लेकर दूसरा उसी अक्षर से आरंभ करनेवाला श्लोक पढ़ता है। उसे अत्याक्षरी कहते हैं। जो आगे नहीं कह सकता उसकी हार समझी जाती है।

प्रतिमास—अव्य० [सं०] प्रत्येक महीने में। हर महीने।

प्रतिमास्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। २. इस देश का निवासी।

प्रतिमित—वि० [सं०] १. जिसका अनुकरण किया गया हो। जिसकी नकल की गई हो। २. जिसकी तुलना की गई हो। ३. प्रतिबिंबित। प्रतिच्छायित (को०)।

प्रतिमुक्त—वि० [सं०] १. पहना हुआ (कपड़ा आदि)। २. जिसका त्याग कर दिया गया हो। जो छोड़ दिया गया हो। ३. जो बँधा हुआ हो। ४. जो फेंका हुआ हो। प्रक्षिप्त (को०)। ५. मुक्त। स्वतंत्र किया हुआ (को०)।

प्रतिमुख¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटक की पाँच अंगसंधियों में से एक जिसमें विलास, परिसर्प, नर्म (परिहास), प्रशमन, विरोध, पर्युपासन, पुष्प, वज्र, उपन्यास और वर्णसंहार

आदि का वर्णन होता है। २. किसी चीज का पीछे का भाग। ३. प्रश्न का उत्तर (को०)।

प्रतिमुख[2]—वि० १. सामने खड़ा हुआ। संमुख उपस्थित। २. नजदीक। निकटस्थ। समीप [को०]।

प्रतिमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुहर का चिह्न [को०]।

प्रतिमूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी की आकृति को देखकर बनाई हुई मूर्ति या चित्र आदि। प्रतिमा।

प्रतिमूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का चूहा।

प्रतिमोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ति। मोक्ष की प्राप्ति।

प्रतिमोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिमोक्ष'।

प्रतिमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खोलना। बंधन से मुक्त करना। २. प्रतिकार। बदला (को०)।

प्रतिमोचित—वि० [सं०] बंधनमुक्त। मुक्त किया हुआ [को०]।

प्रतियत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. लालच। प्राप्ति या लाभ की इच्छा। २. उपग्रह। ३. कैदी। बंदी। ४. संस्कार। ५. प्रयत्न। चेष्टा। उद्योग। (को०)। ६. रचना। निर्माण (को०)। ७. प्रतीकार (को०)। ८. निग्रह (को०)।

प्रतियाग—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो किसी विशेष उद्देश्य से किया जाय [को०]।

प्रतियातन—संज्ञा पुं० [सं०] बदला लेना। प्रतिशोध [को०]।

प्रतियातना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रतिमा। मूर्ति। २. तुल्य या समान पीड़ा (को०)।

प्रतियान—संज्ञा पुं० [सं०] लौटना। वापस आना।

प्रतियाम—क्रि० वि० [सं०] प्रत्येक पहर। हर समय। उ०—कामना काम प्रतियाम मानव सहे, विश्व होकर रहे स्वर्ग का सुस्थान।—आराधना, पृ० ३४।

प्रतियुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] बराबरी का युद्ध।

प्रतियुत—वि० [सं०] संयुक्त। बँधा हुआ [को०]।

प्रतियूथप—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पक्ष के हाथियों के समूह का नायक [को०]।

प्रतियोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रुता। विरोधी पदार्थों का संयोग। २. वह जिससे किसी पदार्थ का परिणाम नष्ट हो जाय। मारक। ४. वह उद्योग जो फिर से किया जाय। पुनरुद्योग। ५. सहयोग। सहायता।

प्रतियोगिता—[सं०] १. प्रतिद्वंद्विता। चढ़ा ऊपरी। मुकाबला। २. विरोध। शत्रुता।

प्रतियोगी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिस्सेदार। शरीक। २. शत्रु। विरोधी। वैरी। ३. सहायक। मददगार। ४. साथी। ५. बराबरवाला। जोड़ का। प्रतिद्वंद्वी।

प्रतियोगी[2]—वि० १. मुकाबले का। बराबरी का। २. मुकाबला करनेवाला। सामना करनेवाला।

प्रतियोद्धा—संज्ञा पुं० [सं० प्रतियोद्धृ] १. शत्रु। विरोधी। २. मुकाबिले का। बराबर का लड़नेवाला।

प्रतियोध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतियोद्धा' [को०]।

प्रतियोधन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतियुद्ध' [को०]।

प्रतियोधी—संज्ञा पुं० [सं० प्रतियोधिन्] दे० 'प्रतियोद्धा' [को०]।

प्रतिरंभ—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिरम्भ] दे० 'प्रतिलंभ' [को०]।

प्रतिरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षा। हिफाजत।

प्रतिरक्षा—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षा। हिफाजत।

प्रतिरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बराबरी का लड़नेवाला। वह जो मुकाबला करे, विशेषतः रथी। २. पुराणानुसार यदुवंशी वज्राश्व के पुत्र का नाम।

प्रतिरव—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिध्वनि। २. प्राण। ३. झगड़ा। मतभेद [को०]।

प्रतिरसित—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिध्वनि।

प्रतिराज—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु राजा।

प्रतिरात्र—क्रि० वि० [सं०] हर रात। प्रत्येक रात [को०]।

प्रतिरुद्ध—वि० [सं०] १. अवरुद्ध। रुका हुआ। २. फँसा हुआ। अटका हुआ। घिरा हुआ। बाधित।

प्रतिरूप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रतिमा। मूर्ति। २. तसवीर। चित्र। ३. प्रतिनिधि। ४. वह जो रूप, आकार आदि में किसी के तुल्य हो (को०)। ५. महाभारत के अनुसार एक दानव का नाम।

प्रतिरूप[2]—वि० १. समान। एकरूप। वैसा ही। २. सुंदर। ३. उपयुक्त। अनुकूल। ४. संमुख। सामने। अभिमुख [को०]।

प्रतिरूपक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिच्छाया। प्रतिबिंब। २. चित्र। मूर्ति [को०]।

प्रतिरूपक —वि० सं० दे० 'प्रतिरूप'।

प्रतिरोद्धा—वि० [सं० प्रतिरोद्धृ] १. विरोधी। शत्रुता करनेवाला। २. बाधा डालनेवाला। रोकनेवाला।

प्रतिरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरोध। २. रुकावट। रोक। बाधा। ३. तिरस्कार। ४. प्रतिबिंब। ५. चोरी। डकैती (को०)। ६. प्रतिबंध (को०)। ७. घेरना। घेर लेना (को०)।

प्रतिरोधक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रतिरोधिका] १. वह जो प्रतिरोध करे। रोकने या बाधा डालनेवाला। बाधक। २. चोर, ठग, डाकू आदि। ३. विरोधी। वह जो विरोध करे (को०)। ४. घेरने या आवृत करनेवाला।

प्रतिरोधक[2]—वि० रोकनेवाला। अवरोध करनेवाला। बाधक।

प्रतिरोधन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिरोध करने की क्रिया या भाव।

प्रतिरोधित—वि० [सं०] जो रोका गया हो। जिसमें बाधा डाली गई हो।

प्रतिरोधी—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिरोधिन्] दे० 'प्रतिरोधक'।

प्रतिरोपित—वि० [सं०] जो पुनः रोपा गया हो, जैसे पौधा ।

प्रतिलंभ—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिलम्भ] १. बुरी चाल । कुरीति । २. दोष । कलंक । इलजाम । ३. प्राप्ति । लाभ । ४. निंदा । दुर्वचन । कुवाच्य । गाली ।

प्रतिलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्म । चिह्न [को०] ।

प्रतिलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मालव राग का एक भेद । २. लाभ । प्राप्ति । पाना । फिर से प्राप्त करना । उ०—जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ।—मानस ६ ।

प्रतिलिखित—वि० [सं०] उत्तरित । जिसका उत्तर दिया गया हो [को०] ।

प्रतिलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] लेख की नकल । किसी लिखी हुई चीज की नकल । जैसे,—उस पत्र की एक प्रतिलिपि मेरे पास भी आई है ।

प्रतिलोम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमीना मनुष्य । नीच आदमी । २. कौटिल्य के अनुसार 'उपाय' में बताई हुई युक्तियों से उलटी युक्ति । कौटिल्य ने इसके १५ भेद बतलाए हैं ।

प्रतिलोम[2]—वि० १. प्रतिकूल । विपरीत । २. जो नीचे से ऊपर की ओर गया हो । जो सीधा न हो । उलटा । ३. नीच । ४. अनुलोम का उलटा । ५. वाम । बायाँ (को०) ।

प्रतिलोमक[1]—वि० [सं०] विपरीत । उलटा [को०] ।

प्रतिलोमक[2]—संज्ञा पुं० उलटा क्रम । विपरीत क्रम । [को०]

प्रतिलोमज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके पिता और माता दोनों अलग अलग जाति के हों । वर्णसंकर । २. नीच वर्ण के पुरुष और उच्च वर्ण की कन्या से उत्पन्न संतान । जैसे,—

सूत—क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न ।
वैदेहिक—वैश्य ,, ,, ,, ,, ,, ,, ।
चांडाल—शूद्र ,, ,, ,, ,, ,, ,, ।
मागध—वैश्य ,, ,, क्षत्रिया ,, ,, ,, ।
क्षत्ता—शूद्र ,, ,, ,, ,, ,, ,, ।
आयोगव—,, ,, ,, वैश्या ,, ,, ,, ।

प्रतिलोम विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह विवाह जिसमें पुरुष नीच वर्ण का और स्त्री उच्च वर्ण की हो ।

प्रतिवक्ता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवक्तृ] १ उत्तर देनेवाला । २. विधि आदि की व्याख्या करनेवाला [को०] ।

प्रतिवच—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवचस्] दे० 'प्रतिवचन' [को०] ।

प्रतिवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्तर । जवाब । २. प्रतिध्वनि ।

प्रतिवनिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सपत्नी । सौत [को०] ।

प्रतिवत्सर—० क्रि वि० [सं०] प्रत्येक वर्ष । हर साल । प्रति वर्ष ।

प्रतिवर्णिक—वि० [सं०] समान रंगवाला । तुल्य । सदृश [को०] ।

प्रतिवर्तन, प्रतिवर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] लौट आना । वापस आना । उ०—दोनों का समुचित प्रतिवर्तन जीवन में शुद्ध विकास हुआ ।—कामायनी, पृ० ७६ ।

प्रतिवर्धी—वि० [सं० प्रतिवर्धिन्] जोड़ । बराबरी का [को०] ।

प्रतिवसथ—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव । ग्राम ।

प्रतिवस्तु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समान वस्तु । सदृश वस्तु । २. वह वस्तु जो बदले में दी जाय । ३. (साहित्य में) उपमान । [को०] ।

प्रतिवस्तूपम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्रतिवस्तूपमा' उ०—वाक्यन को जुग होत जहँ, एकै अरथ समान । जुदो जुदो करि भाषिए प्रतिवस्तूपम जान ।—भूषण ग्रं० पृ० ११ ।

प्रतिवस्तूपमा—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें उपमेय और उपमा के साधारण धर्म का वर्णन अलग अलग वाक्यों मे किया जाय । जैसे, सोहत भानु प्रताप सों लसत चाप सों शूर ('तापेन भ्राजते सूर्यः शूरश्चापेन राजते'—चंद्रालोक, ५ । ४८) । यहाँ दोहे का पूर्वार्ध उपमान वाक्य है और उत्तरार्द्ध उपमेय । एक मे 'सोहत' और दूसरे में 'लसत' शब्द द्वारा साधारण धर्म कहा गया है ।

प्रतिवहन—संज्ञा पुं० [सं०] उलटी ओर ले जाना । विरुद्ध दिशा में ले जाना ।

प्रतिवाक—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिवाच्] उत्तर । जवाब [को०] ।

प्रतिवाक्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिवचन' ।

प्रतिवाक्य[2]—वि० उत्तर देने योग्य । जवाब देने लायक [को०] ।

प्रतिवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी उत्तर को सुनकर कही हुई बात । प्रत्युत्तर ।

प्रतिवात—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेल का पेड़ । २. विपरीत वायु । सामने की हवा (को० ।

प्रतिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह बात जो किसी दूसरी बात अथवा सिद्धांत का विरोध करने के लिये कही जाय । वह कथन जो किसी मत को मिथ्या ठहराने के लिये हो । विरोध । खंडन । जैसे,—अनेक पत्रों ने उस समाचार का प्रतिवाद किया है । २. विवाद । बहस । ३. उत्तर । जवाब ।

प्रतिवादक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिवाद करनेवाला । वह जो प्रतिवाद करे ।

प्रतिवादिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रतिवाद का भाव । २. प्रतिवादी का धर्म ।

प्रतिवादी—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवादिन्] १. वह जो प्रतिवाद करे । प्रतिवाद या खंडन करनेवाला । २. वह जो किसी बात में तर्क करे । ३. वह जो वादी की बात का उत्तर दे । प्रतिपक्षी ४. शत्रु । विरोधी (को०) ।

प्रतिवाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ओषधियों का वह चूर्ण जो किसी काढ़े आदि में डाला जाय । २. कल्क । ३. धातु को भस्म करने का काम । ४ चूर्ण । बुकनी ।

प्रतिवार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दूर रखना । रक्षा करना । बचाना [को०] ।

प्रतिवार[2]—क्रि० वि० [सं०] प्रतिदिन । रोज रोज [को०] ।

प्रतिवारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोकना । मना करना । २. शत्रु का हाथी (को०) ।

प्रतिवारित—वि० [सं०] रोका हुआ । निवारित किया हुआ [को०] ।

प्रतिवार्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्युत्तर संवाद या समाचार [को०] ।

प्रतिवास—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुगंध । सुवास । खुशबू । २. पड़ोस । समीप का निवास ।

प्रतिवासर—क्रि० वि० [सं०] हर दिन । रोज रोज [को०] ।

प्रतिवासरिक—वि० [सं०] प्रतिदिन का । नित्य का । दैनिक ।

प्रतिवासित—वि० [सं०] जो बसाया गया हो । जो आबाद किया गया हो [को०] ।

प्रतिवासिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पड़ोस का निवास या रहना । प्रतिवास का भाव ।

प्रतिवासी—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवासिन्] [स्त्री० प्रतिवासिनी] पड़ोस में रहनेवाला । पड़ोसी ।

प्रतिवासुदेव—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार विष्णु या वासुदेव के नौ शत्रु जो नरक में गए थे। इनके नाम इस प्रकार हैं—(१) अश्वग्रीव, (२) तारक, (३) मोदक, (४) मधु, (५) निशुंभ, (६) बलि, (७) प्रह्लाद, (८) रावण और (९) जरासंध ।

प्रतिवाह—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार अक्रूर के एक भाई का नाम ।

प्रतिवाहु—संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव का नाम ।

प्रतिविंध्य—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिविन्ध्य] द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न युधिष्ठिर के पुत्र का नाम ।

प्रतिविंब—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिबिम्ब] दे० 'प्रतिबिंब' ।

प्रतिविघात—संज्ञा पुं० [सं०] प्रत्याघात । निवारण । रोकना (को०) ।

प्रतिविधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतीकार । उ०—प्रतिविधान मैं क्या करूँ बता, इस अनर्थ का भी कहीं पता ।—साकेत, पृ० ३१४ । २. चौकसी । एहतियात । सावधानी (को०) ।

प्रतिविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतीकार ।

प्रतिविधित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विरोध या बदले की इच्छा [को०] ।

प्रतिविधित्सु—वि० [सं०] प्रतिकारेच्छु ।

प्रतिविरुद्ध—वि० [सं०] विरोधी । विद्रोही [को०] ।

प्रतिविशिष्ट—वि० [सं०] १ अत्युत्तम । सर्वोत्तम । २. असाधारण अच्छा या बुरा [को०] ।

प्रतिविष—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या पदार्थ जिससे विष का असर दूर हो [को०] ।

प्रतिविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वितुला । अतिविषा । अतीस ।

प्रतिविष्णु—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के प्रतिद्वंद्वी राजा मुचकुंद का एक नाम ।

प्रतिविष्णुक—संज्ञा पुं० [सं०] मुचकुंद नामक फूल का पौधा ।

प्रतिविहित—वि० [सं०] निवारित [को०] ।

प्रतिवीत—वि० [सं०] आच्छादित । आवृत । ढँका या दबाया हुआ [को०] ।

प्रतिवीर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिपक्षी योद्धा । विरोधी व्यक्ति [को०] ।

प्रतिवीर्य—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवीर्य्य] वह जिसमें प्रतिरोध करने के लिये यथेष्ट बल हो ।

प्रतिवृष—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुपक्षीय साँड । बैल ।

प्रतिवेदित—वि० [सं०] जाना या जनाया हुआ । ज्ञात ।

प्रतिवेदी—वि० [सं०] जानने समझनेवाला । ज्ञाता ।

प्रतिवेल—क्रि० वि० [सं०] हर समय । प्रति काल [को०] ।

प्रतिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. पड़ोस । २. घर के सामने या पास का घर । पड़ोस का मकान ।

प्रतिवेशी—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवेशिन्] [स्त्री० प्रतिवेशिनी] पड़ोस में रहनेवाला । पड़ोसी ।

प्रतिवेश्म[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवेश्मन्] दे० 'प्रतिवेश' ।

प्रतिवेश्म[2]—क्रि० वि० [सं०] घर घर । मकान मकान [को०] ।

प्रतिवेश्य—संज्ञा पुं० [सं०] पड़ोसी [को०] ।

प्रतिवैर—संज्ञा पुं० [सं०] बदला । वैर का प्रतिशोध [को०] ।

प्रतिव्यूढ—वि० [सं०] व्यूहबद्ध । अपने अपने निर्धारित क्रम के अनुसार स्थित [को०] ।

प्रतिव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यूह का निर्माण । व्यूहन । २. झुंड । समूह [को०] ।

प्रतिशंका—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिशङ्का] वह शंका जो बराबर बनी रहे ।

प्रतिशब्द—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिध्वनि । गूँज ।

प्रतिशम—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश । २. मुक्ति ।

प्रतिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कामना की सिद्धि की इच्छा से देवता के स्थान पर खाना पीना छोड़कर पड़ा रहना । धरना देना ।

प्रतिशयित—वि० [सं०] प्रतिशयन करनेवाला । कामनासिद्धि के लिये धरना देनेवाला [को०] ।

प्रतिशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शाखा से निकली हुई शाखा । प्रशाखा [को०] ।

प्रतिशाप—संज्ञा पुं० [सं०] शाप के बदले में दिया जानेवाला शाप [को०] ।

प्रतिशासन—संज्ञा पुं० [सं०] भृत्य आदि को भेजना । किसी कार्य से सेवक या अपने से छोटे को बुलाकर भेजना । २. आदेश देना । आज्ञा देना । ३. विरोधी शासन या दूसरे का शासन [को०] ।

प्रतिशास्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भृत्यादि द्वारा समाचार भेजना [को०] ।

प्रतिशिष्ट—वि० [सं०] १. प्रसिद्ध । विख्यात । २. अस्वीकृत । प्रत्याख्यात । निराकृत । ३. प्रेषित । भेजा हुआ (दूत आदि) ।

प्रतिशिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिष्य का शिष्य ।

प्रतिशीन—वि० [सं०] तरल । पिघला हुआ । चूनेवाला । क्षरणशील [को०] ।

प्रतिशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] निष्क्रय [को०] ।

प्रतिशोध—संज्ञा पुं० [सं० प्रति+शोध] वह काम जो किसी बात का बदला चुकाने के लिये किया जाय। बदला।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द इस अर्थ में नहीं मिलता। हिंदी में बँगला से आया हुआ जान पड़ता है।

प्रतिश्या, प्रतिश्यान—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रतिश्याय'।

प्रतिश्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुकाम। सरदी। २. पीनस रोग।

प्रतिश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] परिश्रम। मेहनत।

प्रतिश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ यज्ञ होता है। यज्ञशाला। २. सभा। ३. स्थान। ४. निवास। गृह। घर ५. आसरा। सहारा। आश्रय (को०)। ६. वादा। वचन (को०)। ७. सहायता। मदद (को०)।

प्रतिश्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] स्वीकृति। मंजूरी।

प्रतिश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंगीकार। स्वीकृति। मंजूरी। २. प्रतिज्ञा। ३. प्रतिध्वनि [को०]।

प्रतिश्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रवण करना। सुनना। २. प्रतिज्ञा। ३. मंजूरी देना। स्वीकार करना। ४. बनाए रखना। रक्षा करना [को०]।

प्रतिश्रुत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रतिश्रुति'।

प्रतिश्रुत—वि० [सं०] स्वीकार किया हुआ। मंजूर किया हुआ। प्रतिज्ञात।

प्रतिश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रतिध्वनि। २. प्रतिज्ञा। इकरार। ३. रजामंदी। मंजूरी। स्वीकृति। अनुमति। ४. वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

प्रतिश्रुत्का—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक देवता।

प्रतिश्रोता—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिश्रोतृ] अनुमति देनेवाला। मंजूर करनेवाला।

प्रतिषिद्ध—वि० [सं०] जिसके विषय में प्रतिषेध किया गया हो। निषिद्ध। २. खंडित (को०)।

प्रतिषेद्धा—वि०, संज्ञा पुं० [सं० प्रतिषेद्धृ] प्रतिषेध करनेवाला। प्रतिषेधक [को०]।

प्रतिषेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. निषेध। मनाही। उ०—प्रतिषेध आपका भी न सुनूँगा रण में।—साकेत, पृ० २१९। २. खंडन। ३. एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमे किसी प्रसिद्ध निषेध या अंतर का इस प्रकार उल्लेख किया जाय जिससे उसका कुछ विशेष अर्थ निकले। जैसे, सिय कंकण को छोरिबो धनुष तोरिबो नाहिं'। यहाँ यह तो सिद्ध ही है कि धनुष तोड़ना और बात है, और कंकण खोलना और बात। पर इस कथन से यहाँ यह तात्पर्य है कि आप धनुष तोड़ने में वीर हो सकते हैं, पर यह वीरता कंकण खोलने में काम न आवेगी।

प्रतिषेधक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिषेध करनेवाला। मना करनेवाला। रोकनेवाला।

प्रतिषेधन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिषेध करने की क्रिया या स्थिति [को०]।

प्रतिषेधाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिषेध या निषेध करनेवाले शब्द या वर्ण [को०]।

प्रतिषेधोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद। निषेध द्वारा तुलना [को०]।

प्रतिष्क—संज्ञा पुं० [सं०] दूत। चर।

प्रतिष्कश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुफिया। गुप्तचर। दूत। २. कोड़ा। चाबुक [को०]।

प्रतिष्कष—संज्ञा पुं० [सं०] चाबुक। चमड़े का कोड़ा [को०]।

प्रतिष्कस—संज्ञा पुं० [सं०] चर। दूत [को०]।

प्रतिष्टंभ—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिष्टम्भ] १. स्तब्ध या निश्चल होने की क्रिया या भाव। २ प्रतिबंध। रोक [को०]।

प्रतिष्टब्ध—वि० [सं०] स्तंभित। रुका या रोका हुआ [को०]।

प्रतिष्ठ[1]—वि० [सं०] प्रसिद्ध। प्रख्यात। मशहूर।

प्रतिष्ठ[2]—संज्ञा पुं० जैनियों के अनुसार सुपार्श्व नामक अर्हत के पिता का नाम।

प्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्थापना। रखा जाना। २. स्थिति। ठहराव। ३. देवता की प्रतिमा की स्थापना। ४. स्थान। जगह। ५. मानमर्यादा। गौरव। ६. प्रख्याति। प्रसिद्धि। ७. यश। कीर्ति। ८. आदर। सत्कार। इज्जत। ९. मंदिरों की वृत्ति। आश्रय। ठिकाना। १०. यज्ञ की समाप्ति। ११. शरीर। १२. पृथ्वी। १३. व्रत का उद्यापन। १४. एक प्रकार का छंद। १५. चार वर्णों का वृत्त। १६. वह उपहार जो वर का बड़ा भाई वधू को देता है। १७. पैर। पाद (को०)। १८. निवास। घर (को०)। १९. संस्कार विशेष (को०)। २०. परिधि। सीमा (को०)।

प्रतिष्ठाता—वि० [सं० प्रतिष्ठातृ] प्रतिष्ठित करनेवाला। नींव डालनेवाला। उ०—स्पितन बरथुस्त्र, अवेस्ता मत का प्रतिष्ठाता उससे पहले ही हुआ था।—प्रा० भा०, प०, पृ० ७४।

प्रतिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थापित या प्रतिष्ठित करने की क्रिया। रखना। बैठाना। स्थापन। २. देवमूर्ति की स्थापना। ३. जड़। नींव। मूल। ४. पदवी। ५. स्थान। जगह। ६. वह कृत्य जो व्रत आदि की समाप्ति पर किया जाय। व्रत आदि का उद्यापन। ७. संस्थान। ८. कोई व्यापारिक संस्था या संघटन। ९. दे० 'प्रतिष्ठानपुर'।

प्रतिष्ठानपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक नगर।

विशेष—यह नगर गंगा यमुना के संगम पर वर्तमान झूँसी नामक स्थान के आस पास था। पहले चंद्रवंशी राजा पुरूरवा की राजधानी यहीं थी। यहाँ समुद्रगुप्त और हर्षगुप्त ने एक किला बनवाया था जिसका गिरा पड़ा खँडहर अबतक वर्तमान है।

२. गोदावरी के तट पर महाराष्ट्र देश का एक प्राचीन नगर जो राजा शालिवाहन की राजधानी था।

प्रतिष्ठापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो किसी की प्रतिष्ठा का सूचक हो। प्रतिष्ठा करने के लिये दिया जानेवाला पत्र। सम्मानपत्र।

प्रतिष्ठापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता आदि की मूर्ति स्थापित करने का काम । २. स्थापित करना । प्रतिष्ठित करना ।

प्रतिष्ठापना—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिष्ठापन] स्थापित करना । नींव डालना । स्थापना । उ०—पुराने लोग 'सामान्य' की प्रतिष्ठापना उस विरोध के विरुद्ध कर गए थे जो मनुष्य की सर्वभूत सामान्यता को नहीं मानता था ।—काव्यशास्त्र, पृ० १४ ।

प्रतिष्ठापयिता—वि० संज्ञा पुं० [सं० प्रतिष्ठापयितृ] प्रतिष्ठापन करनेवाला संस्थापक [को०] ।

प्रतिष्ठापित—वि० [सं०] जिसका प्रतिष्ठापन किया गया हो [को०] ।

प्रतिष्ठावान्—वि० [सं० प्रतिष्ठावत्] जिसकी प्रतिष्ठा हो । इज्जतदार ।

प्रतिष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आधार । नींव । मूल [को०] ।

प्रतिष्ठित[1]—वि० [सं०] १. जिसकी प्रतिष्ठा हुई हो । आदरप्राप्त । इज्जतदार । जैसे—(क) हिंदी का प्रतिष्ठित पत्र । (ख) चार प्रतिष्ठित सज्जन । २. जिसकी प्रतिष्ठा की गई हो । जो स्थापित किया गया हो । जैसे,—वहाँ शिव जी की एक मूर्ति प्रतिष्ठित की गई है । ३. पूर्ण । परिसमाप्त (को०) । ४. पदाभिषिक्त । पदासीन । ५. निश्चित (को०) । ६. प्राप्त । पाया हुआ (को०) । ७. जीवन में स्थापित । विवाहित (को०) ।

प्रतिष्ठित[2]—संज्ञा पुं० १ विष्णु । २. कच्छप । कूर्म (को०) ।

प्रतिष्ठिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थापित करने या होने का भाव या कार्य । प्रतिष्ठान ।

प्रतिसंकाश—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिसङ्काश] सादृश्य । तुल्यता [को०] ।

प्रतिसंक्रम—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिसङ्क्रम] १. प्रतिच्छाया । प्रतिबिंब । २. प्रलय । नाश [को०] ।

प्रतिसंक्रांत—वि० [सं० प्रतिसङ्क्रान्त] प्रतिबिंबित [को०] ।

प्रतिसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिसङ्ख्या] १. चेतना । २. सांख्यानुसार ज्ञान का एक भेद ।

प्रतिसंख्यानिरोध—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिसंख्यानिरोध] वैनाशिक बौद्ध दार्शनिकों के अनुसार बुद्धिपूर्वक भावपदार्थ का नाश ।

प्रतिसंगी—वि० [सं० प्रतिसङ्गिन्] साथ लगा, रहनेवाला । निरंतर साथ रहनेवाला [को०] ।

प्रतिसंचर—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिसञ्चर] १. पुराणानुसार प्रलय का एक भेद । २. पीछे जाना (को०) । ३. अपसरण । संचार (को०) । ४. नित्य आगमन का स्थान (को०) ।

प्रतिसंदेश—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिसन्देश] उत्तर । जवाब [को०] ।

प्रतिसंधान—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिसन्धान] १. अनुसंधान । ढूँढ़ना । खोजना । २. साथ साथ जोड़ना । मिलाना । ३. दो युगों का संक्रांति या संधि काल (को०) । ४. आत्मनियंत्रण । आवेशादि को वशीभूत कर लेना (को०) । ५. स्तवन । स्तुति । प्रशंसा (को०) । ६. स्मृति । स्मरण । अनुचिंतन (को०) । ७. औषधि । उपचार । उपाय (को०) ।

प्रतिसंधानिक—संज्ञा पुं० [प्रतिसन्धानिक] राजाओं आदि की स्तुति करनेवाला । मागध ।

प्रतिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिसन्धि] १. वियोग । बिछोह । २. अनुसंधान । ढूँढ़ना । ३. पुनर्जन्म (को०) । ४. परिसमाप्ति (को०) । ५. दो युगों का संक्रांति काल (को०) ।

प्रतिसंधित—वि० [सं० प्रतिसन्धित] दृढ़ीकृत । स्थिरीकृत [को०] ।

प्रतिसंधेय—वि० [प्रतिसन्धेय] १. प्रतिसंधि के योग्य । अनुसंधेय । २. प्रतीकार्य ।

प्रतिसंलयन—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्णतः विरक्ति या एकांतवास करना [को०] ।

प्रतिसंलीन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिसंलयन [को०] ।

प्रतिसंविद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी विषय का पूर्ण ज्ञान [को०] ।

प्रतिसंवेदक—वि० [सं०] किसी विषय का सांगोपांग ज्ञान करानेवाला । विषय की पूर्ण जानकारी देनेवाला [को०] ।

प्रतिसंवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] अनुभव । परीक्षण [को०] ।

प्रतिसंस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] मैत्रीपूर्ण उपचार या आदर संमान [को०] ।

प्रतिसंहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. वापस लेना । २. कम करना । संक्षिप्त करना । ३. त्यागना । ४. समेटना । मिलाना । समर्पण [को०] ।

प्रतिसंहृत—वि० [सं०] १. वापस लिया हुआ । २. कम या संक्षिप्त किया हुआ । ३. परीक्षित [को०] ।

प्रतिसम—वि० [सं०] १. जो देखने में समान न हो । २. मुकाबले का । बराबरीवाला (को०) ।

प्रतिसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेवक । नौकर । २. सेना का पिछला भाग । ३. ब्याह में पहनने का कंकण । ४. कंकण नाम का गहना । ५. जादू का मंत्र । ६. जख्म का भर आना । ७. माला । ८. प्रातःकाल । सबेरा । ९. रक्षक । देखरेख करनेवाला व्यक्ति (को०) । १०. वह सूत्र जो रक्षा की दृष्टि से मणिबंध या गले में पहना जाता है । रक्षासूत्र [को०] ।

प्रतिसर—वि० अनुवर्ती । अस्वतंत्र । पराधीन [को०] ।

प्रतिसरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु पर या उसके सहारे उठँगना या लेटना [को०] ।

प्रतिसरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेविका । दासी । २. तल्पा । पट्टी ।

प्रतिसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार वे सब सृष्टियाँ जो रुद्र, विराटपुरुष, मनु, दक्ष और मरीचि आदि ब्रह्मा के मानसपुत्रों ने उत्पन्न की थी । २. प्रलय । ३. पुराणों का वह अंश जिसमें प्रतिसर्ग अर्थात् सृष्टि प्रलय का वर्णन होता है (को०) ।

प्रतिसर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रुद्र का नाम । (वैदिक) । २. विवाह के समय हाथ में बाँधा जानेवाला कंगन ।

प्रतिसव्य—वि० [सं०] जो सव्य अर्थात् अनुकूल न हो । विपरीत । प्रतिकूल [को०] ।

प्रतिसांधानिक—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिसान्धानिक] मागध । प्रतिसंधानिक [को०] ।

प्रतिसामंत—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिसामन्त] शत्रु । दुश्मन । अरि [को०] ।

प्रतिसारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूर हटाना । अलग करना । २.

सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का अग्निकार्य जिसमें गरम घी या तेल आदि की सहायता से कोई स्थान जलाया जाता है। बवासीर, भगंदर, अर्बुद रोगों में यह विधेय है। ३. इस कार्य में प्रयुक्त होनेवाला उपकरण या औजार (को०)। ४. मसूड़ों में से बहनेवाला खून बंद करने के लिये, उनकी सूजन दूर करने के लिये अथवा यों ही मुँह साफ करने के लिये किसी प्रकार का चूर्ण या अवलेह आदि लेकर उँगली से दाँतों या मसूड़ों आदि पर मलने की क्रिया। मंजन।

प्रतिसारणीय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की क्षारपाकविधि जो कुष्ट, भगंदर, दाद, कुष्ठव्रण, झाँई, मुहाँसे और बवासीर आदि में अधिक उपयोगी होती है।

प्रतिसारणीय[2]—वि० [सं०] प्रतिसारण के योग्य। हटाकर दूसरे पर ले जाने के योग्य।

प्रतिसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की शक्ति जिसका मंत्र धारण करने से सब प्रकार की विघ्नबाधाओं का दूर होना माना जाता है।

प्रतिसारित—वि० [सं०] १. अपवारित। दूरीकृत। २. मरहम पट्टी किया हुआ (को०)।

प्रतिसारी—वि० [सं०] विरोध या उलटी दिशा में जानेवाला (को०)।

प्रतिसीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यवनिका। परदा।

प्रतिसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य का मंडल या घेरा। २. आकाश में होनेवाला एक प्रकार का उत्पात जिसमें सूर्य के सामने एक और सूर्य निकला हुआ दिखाई देता है। ३. गिरगिट।

प्रतिसूर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृकलास। २. दे० 'प्रतिसूर्य' (को०)।

प्रतिसृष्ट—वि० [सं०] १. प्रेषित। भेजा हुआ। २. प्रत्याख्यात। निराकृत। ३. अनुष्ठित। दत्त। प्रदत्त। ४. क्षीब। मत्त। मतवाला (को०)।

प्रतिसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रु की सेना। दुश्मन की फौज।

प्रतिसोमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिरेटा नाम की बेल। महिषवल्ली। छिरहटा।

प्रतिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिस्कन्ध] पुराणानुसार कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

प्रतिस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूसरे की स्त्री। परकीया। परस्त्री (को०)।

प्रतिस्नात—वि० [सं०] नहाया हुआ। कृतस्नान। जो नहा चुका हो (को०)।

प्रतिस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रभाव जो किसी के प्रेम करने पर व्यक्त हो। प्रेम का प्रतिदान (को०)।

प्रतिस्पंदन—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिस्पन्दन] स्पंदन। स्फुरण (को०)।

प्रतिस्पर्द्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी काम में दूसरे से बढ़ जाने की इच्छा या उद्योग। लाग डाँट। चढ़ा ऊपरी। २. झगड़ा।

प्रतिस्पर्द्धी—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिस्पर्द्धिन्] १. वह जो प्रतिस्पर्धा करे। मुकाबला या बराबरी करनेवाला। २. उद्दंड। विद्रोही।

प्रतिस्पर्धा—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिस्पर्द्धा'।

प्रतिस्फालन—संज्ञा पुं० [सं०] फैलाव। विस्तार।

प्रतिस्याय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिश्याय'।

प्रतिस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें नाक में से पीला या सफेद रंग का बहुत गाढ़ा कफ निकलता है।

प्रतिस्वन, प्रतिस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिध्वनि। प्रतिशब्द (को०)।

प्रतिहंता—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिहन्तृ] १. रोकनेवाला। बाधक। २. मुकाबले में खड़ा होकर मारनेवाला।

प्रतिहत—वि० [सं०] १. अवरुद्ध। रुका या रोका हुआ। २. हटाया हुआ। ३. फेंका हुआ। ४. गिरा हुआ। ५. निराश। ६. कुंठित। जो कोठ हो गया हो। जैसे, दाँत (को०)। ७. अपने शत्रु के द्वारा पीछे हटाया हुआ (सैन्य)।

विशेष—कौटिल्य ने प्रतिहत सेना को हतप्रवेग सेना से अच्छा कहा है, क्योंकि यह छिन्न भिन्न भाग को फिर से जोड़कर युद्ध के योग्य हो सकती है।

यौ०—प्रतिहतधी, प्रतिहतमति = (१) विरोधी। (२) जिसकी मति अवरुद्ध हो। अवरुद्ध ज्ञान।

प्रतिहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रोकने या हटाने की चेष्टा। २. वह आघात जो किसी के आघात करने पर किया जाय। प्रतिघात। ३. टक्कर। ४. क्रोध। गुस्सा। ५. कुंठा। नैराश्य (को०)।

प्रतिहनन—संज्ञा पुं० [सं०] बदले में आघात करना। प्रत्याघात (को०)।

प्रतिहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनाश। बरबादी। २. निवारण। हटाना (को०)।

प्रतिहर्ता—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिहर्तृ] १. यज्ञ में उद्गाता का सहायक। यज्ञादि में १६ ऋत्विजों में से बारहवाँ ऋत्विज। २. वह जो विनाश करे। ३. वह जो निवारण करे या हटावे।

प्रतिहस्त, प्रतिहस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिनिधि।

प्रतिहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्वारपाल। दरबान। ड्योढ़ीदार। उ०—प्राण! प्रतीक्षा में प्रकाश औ, प्रेम बने प्रतिहार।—युगवाणी, पृ० ६१।

यौ०—प्रतिहारभूमि = वह स्थान जहाँ प्रतिहार बैठता है। ड्योढ़ी। प्रतिहाररक्षी = द्वाररक्षिका। प्रतिहारी।

२. द्वार। दरवाजा। ड्योढ़ी। ३. प्राचीन काल का एक राजकर्मचारी जो सदा राजाओं के पास रहा करता था और जो राजाओं को सब प्रकार के समाचार आदि सुनाया करता था। बहुधा पढ़े लिखे ब्राह्मण या राजवंश के लोग इस पद पर नियुक्त किए जाते थे। ४. चोबदार। नकीब। ५. सामवेद गान का एक अंग। ६. मायावी। ऐंद्रजालिक। बाजीगर। ७. एक प्रकार की संधि। दे० 'प्रतीहार—२'। ८. इंद्रजाल। बाजीगरी (को०)। ९. हटाना। पीछे करना। निवारण करना (को०)। १०. पुराण के अनुसार परमेष्ठी के पुत्र (को०)।

प्रतिहारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्रजाल दिखानेवाला। बाजीगर। २. वह प्रतिहार जो कामकाज करता हो। ३. बुलावा देनेवाला या आमंत्रण करनेवाला राज्याधिकारी।

विशेष—शुक्रनीति में लिखा है कि जो मनुष्य अस्त्र शस्त्र चलाने में कुशल हो, दृढांग हो, आलसी न हो और जो नम्र होकर दूसरों को बुला सके वह इस पद के योग्य होता है।

प्रतिहारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्वार। दरवाजा। २. द्वार आदि में प्रवेश करने की आज्ञा।

प्रतिहारतर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का अस्त्र जिसका उपयोग दूसरों के चलाए हुए अस्त्रों को निष्फल करने के लिये होता है।

प्रतिहारत्व—संज्ञा पुं० [सं०] ड्योढ़ीदारी। प्रतिहार या द्वारपाल का काम या पद।

प्रतिहारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिहारिन्] [स्त्री० प्रतिहारिणी] द्वारपाल। डेवढ़ीदार। द्वाररक्षक। उ०—आकर 'लघु कुमार आते हैं' बोली नत हो प्रतिहारी। 'आवें' कहा भरत ने, तत्क्षण आए वे धन्वाधारी।—साकेत, पृ० ३७२।

प्रतिहारी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वार की रक्षा करनेवाली महिला। द्वारपालिका [को०]।

प्रतिहार्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजाल। जादूगरी। बाजीगरी [को०]।

प्रतिहार्य[2]—वि० जिसका प्रतिहार या निवारण किया जाय। जो पीछे हटाया जाय [को०]।

प्रतिहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. कनेर। २. सफेद कनेर। ३. हँसी के बदले में हँसी (को०)।

प्रतिहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० प्रतिहिंसित] १. वह हिंसा जो किसी हिंसा का बदला चुकाने के लिये की जाय। बैर निकालना। २. बैर चुकाना। बदला लेना।

प्रतिहिंसित—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिहिंसा' [को०]।

प्रतिहित—वि० [सं०] रखा हुआ। स्थापित [को०]।

प्रतीक्षक—संज्ञा पुं० [सं० प्रतीक्षक] विदेह नाम का एक देश [को०]।

प्रतीक[1]—वि० [सं०] १. प्रतिकूल। विरुद्ध। २. जो नीचे से ऊपर की ओर गया हो। उलटा। विलोम।

प्रतीक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पता। चिह्न। निशान। २. किसी पद्य या गद्य के आदि या अंत के कुछ शब्द लिखकर या पढ़कर उस पूरे वाक्य का पता बतलाना। ३ अंग। अवयव। ४. मुख। मुँह। ५. आकृति। रूप। सूरत। ६. प्रतिरूप। स्थानापन्न वस्तु। वह वस्तु जिसमें किसी दूसरी वस्तु का आरोप किया गया हो। ७. प्रतिमा। मूर्ति। ८. वसु के पुत्र और ओघवान के पिता का नाम। ९. मरु के पुत्र का नाम। १०. परवल। ११. अंश। भाग। हिस्सा (को०)। १२. किसी वस्तु का सामने का हिस्सा (को०)। १३. लालटेन। दीपक (को०)। १४. प्रतिलिपि। प्रतिलेख (को०)।

प्रतीकवाद—संज्ञा पुं० [सं० प्रतीक + वाद] आधुनिक काव्य का एक आंदोलन या सिद्धांत, जिसमें काव्यरचना का मुख्य आधार प्रतीक अनुध्वनिमूलक स्वर आदि होते हैं।

विशेष—प्रतीकवाद का आरंभ सन् १८८६ में फ्रांस में कवि जीन मोरेयास के प्रतीकवाद (सिंबोलिज्म) विषयक घोषणापत्र के प्रकाशित होने के साथ होता है। यह उन्नीसवीं शताब्दी के स्थूल काव्यसिद्धांतों के विरोध में उत्पन्न हुआ था। प्रतीकवादियों का सिद्धांत था कि प्रतीकों के माध्यम से वे अधिक संवेद्य काव्य का निर्माण कर सकते हैं। अतः यह काव्य स्थूल घटनाओं को गोपन प्रतीतियों के रूप में व्यक्त करता है। प्रतीकवाद आधुनिक युग का प्रमुख साहित्यिक आंदोलन है।

प्रतीकार—संज्ञा पुं० सं० [सं०] १. वह काम जो किसी के किए हुए अपकार का बदला चुकाने अथवा उसे निष्फल करने के लिये किया जाय। प्रतिकार। बदला। उ०—अगर जयनाथ होते तो उन्हें कुछ न कुछ प्रतीकार अवश्य करना पड़ता।—रति०, पृ० १३। २. चिकित्सा। इलाज। दे० 'प्रतिकार'।

प्रतीकारसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतीकारसन्धि] कामंदकीय नीति के अनुसार वह संधि जो उपकार के बदले में उपकार करने की शर्त करके की जाय; जैसी राम और सुग्रीव के बीच हुई थी।

प्रतीकार्य—वि० [सं०] जो प्रतीकार के योग्य हो। निष्फल करने के योग्य। बदला चुकाने या व्यर्थ करने के लायक।

प्रतीकाश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिकाश' [को०]।

प्रतीकोपासना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी विशेष पदार्थ में (जैसे, सूर्य, ईश्वर के नाम, मन इत्यादि) व्यापक ब्रह्म की भावना करके उसे पूजना और यह मानना कि हम उसी ब्रह्म की पूजा करते हैं। २. किसी के प्रतीक की उपासना। प्रतिमादि का पूजन।

प्रतीक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतीक्षक' [को०]।

प्रतीक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो प्रतीक्षा करता हो। आसरा देखनेवाला। २. वह जो पूजा अर्चन करता हो। पूजा करनेवाला। पूजक।

प्रतीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। २. कृपादृष्टि। मेहरबानी की नजर। ३. अपेक्षा। आशा। उम्मीद (को०)। ४. आदर। संमान। इज्जत (को०)। ५. प्रतिज्ञा, वचन आदि पूर्ण करना (को०)। ६. देखना। ध्यान देना (को०)।

प्रतीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी व्यक्ति अथवा काल के आने या किसी घटना के होने के आसरे में रहना। किसी कार्य के होने या किसी के आने की आशा में रहना। आसरा। इंतजार। प्रत्याशा। जैसे,—(क) मैं एक घंटे से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। (ख) वे इस मास की समाप्ति की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उ०—डूब बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ। जिए उर्मिला करे प्रतीक्षा, सहे सभी घर बैठ।—साकेत, पृ० ३१८। २. किसी का भरण पोषण करना। प्रतिपालन। ३. पूजा। ४. संमान (को०)। ५. ध्यान देना। विचार करना (को०)।

प्रतीक्षित—वि० [सं०] १. जिसकी प्रतीक्षा की जाय। जिसकी

इंतजारी हो। २. विचारित। अवलोकित या ध्यान। ३. जिसकी पूजा की जाय। पूजित। आदृत। संमानित [को०]।

प्रतीक्षी—संज्ञा पुं० [सं० प्रतीक्षिन्] वह जो प्रतीक्षा करे। प्रतीक्षा करनेवाला।

प्रतीक्ष्य—वि० [सं०] १, जिसकी प्रतीक्षा की जाय। जिसका आसरा देखा जाय। उ०—मिलनावधि ही प्रतीक्ष्य थी।—साकेत, पृ० ३३६। २. दे० 'प्रतीक्षित'।

प्रतीघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह आघात जो किसी के आघात करने पर हो। २. वह आघात जो एक आघात लगने पर आपसे आप उत्पन्न हो। टक्कर। ३. रुकावट। बाधा। दे० 'प्रतिघात'।

प्रतीघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिघ्न'।

प्रतीची—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम दिशा।

प्रतीचीन—वि० [सं०] १. पश्चिम दिशा का। पश्चिम संबंधी। पश्चिमी। पछाहीं। २. जिसने मुँह फेर लिया हो। पराङ्मुख।

प्रतीचीपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. समुद्र [को०]।

प्रतीचीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. पश्चिम दिशा के स्वामी, वरुण। २. समुद्र (को०)।

प्रतीच्य—वि० [सं०] १. प्रतीची दिशा का। पश्चिमी। २. गायब। लुप्त। अदृष्ट (वैदिक)।

प्रतीच्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुलस्त्य की माता [को०]।

प्रतीच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण करनेवाला। ग्राहक [को०]।

प्रतीजना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'पतीजना'। उ०—नाहिं प्रतीजै यहि संसारा। द्रव्यक चोट कठिन कै मारा।—कबीर बी० (शिशु), पृ० ६७।

प्रतीत—वि० [सं०] १. ज्ञात। विदित। जाना हुआ। जैसे,—ऐसा प्रतीत होता है कि इस वर्ष अच्छी वर्षा होगी। २. प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर। ३. प्रसन्न। खुश। ४. समानित। आदरयुक्त। संमानपूर्ण (को०)। ५. विद्वान्। ज्ञानी (को०)। ६. जिसका दृढ़ निश्चय या संकल्प हो (को०)। ७. गया हुआ। प्रस्थित। गत (को०)। ८. विश्वस्त। जिसपर विश्वास किया गया हो (को०)।

प्रतीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ज्ञान। जानकारी। २. दृढ़ निश्चय। विश्वास। यकीन। ३. प्रसिद्धि। ख्याति। ४. आनंद। प्रसन्नता। ५. आदर। संमान। ६. प्रस्थान (को०)।

प्रतीत्त—वि० [सं०] परावर्तित। लौटाया हुआ। वापस किया हुआ [को०]।

प्रतीत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. आराम। २. सांत्वना [को०]।

प्रतीत्यसमुत्पाद—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और दुःख ये बारहों पदार्थ जो उत्तरोत्तर संबद्ध हैं।

विशेष—अविद्या से संस्कार, संस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नामरूप क्रमशः उत्पन्न होते हैं। यही परंपरा जन्ममरण और दुःख का कारण है। इससे यह 'द्वादश निदान' के नाम से प्रसिद्ध है। इन सबका बोध महात्मा बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करने के समय किया था। इन सब निदानों की व्याख्या आदि के संबंध में महायान और हीनयान मतवालों में बहुत मतभेद है।

प्रतीनाह—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वजा। निशान। झंडा [को०]।

प्रतीप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिकूल घटना। आशा के विरुद्ध फल। २. वह अर्थालंकार जिसमें उपमेय को उपमान के समान न कहकर उलटा उपमान को उपमेय के समान कहते हैं अथवा उपमेय द्वारा उपमान का तिरस्कार वर्णन करते हैं। जैसे,—(क) पायँन से गुललाला जपादल पुंज बँधूक प्रभा बिथरैं हैं। मैथिली आनन से अरविंद कलाधर आरसी जानि परैं हैं। (ख) पाहुन! जिय जनि गरब बहु हौं ही कठिन अपार। चित दुर्जन के देखिए तोसे लाख हजार। (ग) करत गरब तू कल्पतरु! बड़ी सु तेरी भूल। या प्रभु की नीकी नजर तकु तेरे ही तूल।—(शब्द०)। ३. वह जो विरोधी हो। शत्रु। दुश्मन (को०)। ४. शांतनु के पिता और भीष्म के दादा का नाम (को०)।

प्रतीप[2]—वि० १. प्रतिकूल। उलटा। जैसे, प्रतीपगमन, प्रतीपतरण। २. विरोधी (को०)। ३. बाधक (को०)। ४. हठी। जिद्दी (को०)।

प्रतीपक—वि० [सं०] प्रतिकूल। विरुद्ध [को०]।

प्रतीपग—वि० [सं०] विपरीत जानेवाला। प्रतिकूल। विरोधी [को०]।

प्रतीपगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीछे जाना। प्रतिगमन [को०]।

प्रतीपगमन—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे जाना। प्रतीपगति [को०]।

प्रतीपगामी—वि० [सं० प्रतीपगामिन्] १. उलटा जानेवाला। २. विरुद्ध कार्य करनेवाला [को०]।

प्रतीपतरण—संज्ञा पुं० [सं०] धारा के विरुद्ध खेना या तैरना [को०]।

प्रतीपदर्शिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देखते ही मुँह फेर लेनेवाली नई स्त्री या नववधू। २. नारी। महिला। स्त्री (को०)।

प्रतीपवचन—संज्ञा पुं० [सं०] विरोध। खंडन। प्रतिकूल या विपरीत कथन [को०]।

प्रतीपविपाकी—वि० [सं० प्रतीपविपाकिन्] उलटा फल देनेवाला। जिसका फल उलटा या विपरीत हो [को०]।

प्रतीपी—वि० [सं० प्रतीपिन्] १. विरुद्ध। प्रतिकूल। २. दयारहित। निर्दय [को०]।

प्रतीपोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के कथन के विरुद्ध कहना। विरुद्धकथन। खंडन।

प्रतीयमान—वि० [सं०] १. जान पड़ता हुआ। २. व्यंजना द्वारा प्रकट होता हुआ। ध्वनि या व्यंग्य द्वारा प्रकट होता हुआ। जैसे, प्रतीयमान अर्थ।

प्रतीर—संज्ञा पुं० [सं०] किनारा। तट। उ०—पूरी निर्मल नीर से बह रही थी पास ही मालिनी। वृक्षाली जिसके प्रतीर पर थी, भूरि प्रभा शालिनी।—शकुं०, पृ० १६।

प्रतीवृता(पु)—वि० स्त्री० [सं० पतिव्रता, पुं० हिं० पतिवृता] दे० 'पतिव्रता' उ०—जोगी कहै प्रतीवृता ! सुरोस हुई नव्यंत। ग्रीव वारी आक्यो छह मास वसात।—बी० रासो, पृ० ६४।

प्रतीवाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह औषध जो पीने के लिये काढ़े आदि में मिलाया जाय। २. दैवी उपद्रव। ३. फेंकने की क्रिया। ४. किसी चीज को बदलने के लिये उसे किसी दूसरी चीज में मिलाना। धातु आदि का मिश्रण करना।

प्रतीवेश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिवेश। पड़ोस।

प्रतीवेशी—संज्ञा पुं० [सं० प्रतीवेशिन्] पड़ोस में रहनेवाला। पड़ोसी।

प्रतीवेश्य—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन देश का का नाम।

प्रतीष्ट—वि० [सं०] स्वीकृत। प्राप्त [को०]।

प्रतीह—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार परमेष्ठी के एक पुत्र का नाम जिसका जन्म सुवर्चला के गर्भ से हुआ था।

प्रतीहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'प्रतिहार'। २. संधि का एक भेद। वह मेल या संधि जो कोई यह कहकर करता है कि पहले मैं तुम्हारा काम कर देता हूँ पीछे तुम मेरा करना।

प्रतीहारी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिहारी'।

प्रतीहारी[2]—संज्ञा स्त्री० द्वाररक्षिका। प्रतिहारी।

प्रतीहास—संज्ञा पुं० [सं०] कनेर।

प्रतुंदक—संज्ञा पुं० [सं० प्रतुन्दक] जीवक नाम का साग।

प्रतुद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वे पक्षी जो अपना भक्ष्य चोंच से तोड़कर खाते हैं। २. कोंचने या भेदन का उपकरण। वह जिससे कोई वस्तु तोड़ी या भेदी जाय (को०)।

प्रतुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] संतोष। संतुष्टि। तृप्ति [को०]।

प्रतूणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्नायु की दुर्बलता से होनेवाला एक रोग जिसमें गुदा से पीड़ा उत्पन्न होकर अँतड़ियों तक पहुँचती है।

प्रतूद—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख ऋग्वेद में है।

प्रतूर्ण, प्रतूर्त—वि० [सं०] वेगवान। तीव्र [को०]।

प्रतेक(पु)—वि० [सं० प्रत्येक] दे० 'प्रत्येक'। उ०—पल्लव पुहुप प्रतेक पैग मैं कछु लगि आवत।—रत्नाकर, भा०१, पृ० १२।

प्रतूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिस्तर। गद्दा। तोशक [को०]।

प्रतोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैना। औगी। अंकुश। २. चाबुक। कोड़ा। हंटर। ३. एक प्रकार का सामगान।

प्रतोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह चौड़ा रास्ता जो नगर के मध्य से होकर निकला हो। चौड़ी सड़क। शाहराह। राजपथ। २. वीथी। गली। कूचा। ३. दुर्ग का वह द्वार जो नगर की ओर हो। ४. फोड़ों आदि पर पट्टी बाँधने का एक ढंग। इस ढंग की पट्टी ठोड़ी आदि पर बाँधी जाती है। ५. इस ढंग से बाँधी हुई पट्टी। ६. किले के नीचे होकर जानेवाला रास्ता।

प्रतोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. संतोष। तुष्टि। २. पुराणानुसार स्वायंभू मनु के एक पुत्र का नाम।

प्रतोषना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रतोषण] प्रतोष देना। संतोष देना। समझाना बुझाना। आश्वस्त करना। उ०—राम प्रतोषी मातु सब कहि विनीत बर बैन।—राम०, १।३६२।

प्रत्त—वि० [सं०] १. प्रदत्त। दिया हुआ। उपहृत। २. विवाह में प्रदत्त [को०]।

प्रत्न—वि० [सं०] १. पुराना। प्राचीन। २. परंपराप्राप्त। परंपरागत (को०)।

प्रत्नतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें प्राचीन काल की बातों का विवेचन हो। पुरातत्व।

प्रत्यंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यङ्ग] १. शरीर का कोई अप्रधान या गौण अंग। २. विभाग। खंड। परिच्छेद। ३. प्रत्येक अंग। हर एक अवयव। ४. एक अस्त्र का नाम (को०)।

प्रत्यंग[2]—क्रि० वि० प्रत्येक अंग में। हरएक अवयव में [को०]।

प्रत्यंगिरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यङ्गिरस्] पुराणानुसार चाक्षुष मन्वंतर के अंगिरस के पुत्र एक ऋषि का नाम।

प्रत्यंगिरा[2]—संज्ञा स्त्री० १. सिरस का पेड़। २. बिसखोपरा। ३. तांत्रिकों की एक देवी का नाम।

प्रत्यंच—संज्ञा स्त्री० [सं० पतञ्चिका] धनुष की डोरी जिसमें लगाकर बाण छोड़ा जाता है। चिल्ला।

प्रत्यंचा—संज्ञा स्त्री० [हिं० प्रत्यञ्च] दे० 'प्रत्यंच'। उ०—वाम पाणि में प्रत्यंचा है, पर दक्षिण में एक जटा।—साकेत, पृ० ३६७।

प्रत्यंचित—वि० [सं० प्रत्यञ्चित] पूजित। अर्चित। सम्मानित [को०]।

प्रत्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यञ्जन] १. आँख में अंजन लगाकर उसे अच्छा करना। २. लेपन करना।

प्रत्यंत—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यन्त] १. म्लेच्छों के रहने का देश। २. सीमा (को०)।

प्रत्यंतपर्वत—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यन्तपर्वत] वह छोटा पहाड़ जो किसी बड़े पहाड़ के पास हो।

प्रत्यक्—क्रि० वि० [सं०] १. पीछे। विपरीत दिशा में। २. पश्चिम। ३. विरोध में (को०)। ४. पहले। पूर्व काल में (को०)।

प्रत्यक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'प्रत्यक्ष'। उ०—औरउ कष्ट करै अतिसै करि प्रत्यक आतम तत्व न पेषै। सुंदर भूलि गयो निज रूपहिं है कर कंकण दर्पण देषै।—सुंदर ग्रं०, भा०२, पृ० ५८६।

प्रत्यक्चेतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. योग के अनुसार वह पुरुष जिसकी चित्तवृत्ति बिलकुल निर्मल हो चुकी हो, जिसको आत्मज्ञान हो चुका हो और जो प्रणव आदि का जप करके अपना

स्वरूप पहचानने में समर्थ हो चुका हो। अंतरात्मा। ३. परमेश्वर।

प्रत्यक्पर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दंती वृक्ष। मूसाकानी २. अपामार्ग। चिचड़ा।

प्रत्यक्पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रत्यक्पर्णी'।

प्रत्यक्श्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती वृक्ष। मूसाकानी।

प्रत्यक्ष¹—वि० [सं०] १. जो देखा जा सके। जो आँखों के सामने हो। उ०—स्वप्न था वह जो देखा, देखूँगी फिर क्या अभी ? इस प्रत्यक्ष से मेरा परित्राण कहाँ अभी।—साकेत, पृ० ३०७। २. जिसका ज्ञान इंद्रियों के द्वारा हो सके। जो किसी इंद्रिय की सहायता से जाना जा सके। ३. सुस्पष्ट। साफ (को०)।

प्रत्यक्ष²—संज्ञा पुं० चार प्रकार के प्रमाणों में से एक प्रमाण जो सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।

विशेष—गौतम ने न्यायसूत्र में कहा है कि इंद्रिय के द्वारा किसी पदार्थ का जो ज्ञान होता है, वही प्रत्यक्ष है। जैसे, यदि हमें सामने आग जलती हुई दिखाई दे अथवा हम उसके ताप का अनुभव करें तो यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि 'आग जल रही है'। इस ज्ञान में पदार्थ और इंद्रिय का प्रत्यक्ष संबंध होना चाहिए। यदि कोई यह कहे कि 'वह किताब पुरानी है' तो यह प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है; क्योंकि इसमें जो ज्ञान होता है, वह केवल शब्दों के द्वारा होता है, पदार्थ के द्वारा नहीं, इसलिये यह शब्दप्रमाण के अंतर्गत चला जायगा। पर यदि वही किताब हमारे सामने आ जाय और मैली कुचैली या फटी हुई दिखाई दे तो हमें इस बात का अवश्य प्रत्यक्ष ज्ञान हो जायगा कि 'वह किताब पुरानी है'। प्रत्यक्ष ज्ञान किसी के कहे हुए शब्दों द्वारा नहीं होता, इसी से उसे अव्यपदेश्य कहते हैं। प्रत्यक्ष को अव्यभिचारी इसलिये कहते हैं कि उसके द्वारा जो वस्तु जैसी होती है उसका वैसा ही ज्ञान होता है। कुछ नैयायिक इस ज्ञान के करण को ही प्रमाण मानते हैं। उनके मत से 'प्रत्यक्ष प्रमाण' इंद्रिय है, इंद्रिय से उत्पन्न ज्ञान 'प्रत्यक्ष ज्ञान' है। पर अव्यपदेश्य पद से सूत्रकार का अभिप्राय स्पष्ट है कि वस्तु का जो निर्विकल्पक ज्ञान है वही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

नवीन ग्रंथकार दोनों मतों को मिलाकर कहते हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञान के करण अर्थात् प्रत्यक्ष तीन प्रमाण हैं—(१) इंद्रिय, (२) इंद्रिय का संबंध और (३) इंद्रियसंबंध से उत्पन्न ज्ञान। पहली अवस्था में जब केवल इंद्रिय ही करण हो तो उसका फल वह प्रत्यक्ष ज्ञान होगा जो किसी पदार्थ के पहले पहल सामने आने से होता है। जैसे, वह सामने कोई चीज दिखाई देती है। इस ज्ञान को 'निर्विकल्पक ज्ञान' कहते हैं। दूसरी अवस्था में यह जान पड़ता है कि जो चीज सामने है, वह पुस्तक है। यह 'सविकल्पक ज्ञान' हुआ। इस ज्ञान का कारण इंद्रिय का संबंध है। जब इंद्रिय के संबंध से उत्पन्न ज्ञान करण होता है, तब वह ज्ञान कि यह किताब अच्छी है अथवा बुरी है, प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। यह प्रत्यक्ष ज्ञान ६ प्रकार का होता है—(१) चाक्षुष प्रत्यक्ष, जो किसी पदार्थ के सामने आने पर होता है। जैसे, यह पुस्तक नई है। (२) श्रावण प्रत्यक्ष, जैसे, आँखें बंद रहने पर भी घंटे का शब्द सुनाई पड़ने पर यह ज्ञान होता है कि घंटा बजा। (३) स्पर्श प्रत्यक्ष, जैसे बरफ हाथ में लेने से ज्ञान होता है कि वह बहुत ठंढी है। (४) रासायन प्रत्यक्ष, जैसे, फल खाने पर जान पड़ता है कि वह मीठा है अथवा खट्टा है। (५) घ्राणज प्रत्यक्ष, जैसे, फूल सूँघने पर पता लगता है कि वह सुगंधित है और (६) मानस प्रत्यक्ष जैसे, सुख, दुःख, दया आदि का अनुभव।

प्रत्यक्ष³—क्रि० वि० आँखों के आगे। सामने। जैसे, प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ रहा है कि उस पार पानी बरसता है।

प्रत्यक्षज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रत्यक्ष दर्शन से प्राप्त ज्ञान। वह ज्ञान जो प्रत्यक्ष दर्शन से प्राप्त हो। चाक्षुष प्रमाण।

प्रत्यक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्यक्ष होने का भाव।

प्रत्यक्षत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रत्यक्षता'।

प्रत्यक्षदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] साक्षी। प्रत्यक्षदर्शी [को०]।

प्रत्यक्षदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यक्षदर्शिन्] वह जिसने प्रत्यक्ष रूप से कोई घटना देखी हो। साक्षी। गवाह।

प्रत्यक्षफल —वि० [सं०] जिसका परिणाम स्पष्ट हो। जिसका नतीजा साफ हो।

प्रत्यक्षभोग—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु का उपयोग उसके स्वामी की जानकारी में करना [को०]।

प्रत्यक्षलवण—संज्ञा पुं० [सं०] वह नमक जो भोजन पक चुकने पर बाद में अलग से डालने के लिये दिया जाय। खाद्य पदार्थ में पकने के समय डाले हुए नमक के अतिरिक्त पीछे से दिया जानेवाला नमक।

विशेष—शास्त्रों में श्राद्ध आदि अवसरों पर इस प्रकार नमक देने का निषेध है।

प्रत्यक्षवाद—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यक्ष + वाद] वह सिद्धांत जिसमें प्रत्यक्ष प्रमाण को ही माना जाय। इंद्रियजन्य ज्ञान को सत्य माननेवाला सिद्धांत। उ०—इस कठोर प्रत्यक्षवाद की समस्या बड़ी कठिन होती है।—स्कंद०, पृ० ५।

प्रत्यक्षवादी—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यक्षवादिन्] [स्त्री० प्रत्यक्षवादिनी] वह व्यक्ति जो केवल प्रत्यक्ष प्रमाण माने, और कोई प्रमाण न माने। वह मनुष्य जो इंद्रियजन्य ज्ञान को ही सत्य माने. जैसे, चार्वाक।

प्रत्यक्षविधान—संज्ञा पुं० [सं०] वह (विधि आदि) जो स्पष्ट हो। वह जिसका विधान प्रत्यक्ष रूप से हो [को०]।

प्रत्यक्षविहित —वि० [सं०] सीधे या प्रत्यक्ष रूप से उपयुक्त या आस्वाद्य [को०]।

प्रत्यक्षसिद्ध—वि० [सं०] जो प्रत्यक्ष या चाक्षुष प्रमाण से सिद्ध हो। उ०—युवराज ! यह अनुमान नहीं है, यह प्रत्यक्षसिद्ध है। —स्कंद०, पृ० ६।

प्रत्यक्षी—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यक्षिन्] व्यक्तिगत रूप से देखनेवाला साक्षी। प्रत्यक्ष या साक्षात् द्रष्टा। वह व्यक्ति जिसने प्रत्यक्ष रूप से देखा हो [को०]।

प्रत्यक्षीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] आँखों से दिखला देना। इंद्रिय द्वारा ज्ञान करा देना। सामने लाकर प्रत्यक्ष करा देना। उ०—इन स्थलों के वर्णन में हमें हाट, बाट, नदी, निर्झर, ग्राम, जनपद इत्यादि न जाने कितने पदार्थों का प्रत्यक्षीकरण मिलता है।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ३।

प्रत्यक्षीकृत—वि० [सं०] जिसका प्रत्यक्षीकरण हुआ हो। जो आँखों से देखा गया हो [को०]।

प्रत्यक्षीभूत—वि० [सं०] जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हुआ हो। जो प्रत्यक्ष हुआ हो।

प्रत्यग—संज्ञा पुं० [सं०] 'प्रत्यक्' का समासगत रूप।

प्रत्यगत पु—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यागत] कुश्ती का एक पेच। प्रत्यागत। उ०—जे मल्लयुद्धहि पेच बत्तिस गतहु प्रत्यगतादि।—रघुराज (शब्द०)।

प्रत्यगात्मा—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यगात्मन्] व्यापक ब्रह्म। परमेश्वर।

प्रत्यगाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम दिशा [को०]।

यौ०—प्रत्यगाशापति = पश्चिम दिशा के स्वामी, वरुण।

प्रत्यग्या पु—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञा] दे० 'प्रतिज्ञा'। उ०—अचरज देखि राजा तब रहा। मिली प्रत्यग्या जो गुन कहा।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० १८६।

प्रत्यग्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार उपरिचर वसु के एक पुत्र का नाम।

प्रत्यग्र[2]—वि० १. नया। ताजा। २. शुद्ध। पवित्र (को०)।

प्रत्यग्रगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रत्यग्रगन्धा] स्वर्णयूथिका। सोनजूही।

प्रत्यग्रथ—[सं०] दक्षिण पांचाल या अहिच्छत्र नामक देश। विशेष—दे० 'अहिच्छत्र'।

प्रत्यग्रवय—वि० [सं०] यौवन से परिपूर्ण। जो भरी या चढ़ती जवानी में हो [को०]।

प्रत्यक् मुख—वि० [सं०] पश्चिम की ओर मुँह किए हुए [को०]।

प्रत्यच्छ—वि० [सं० प्रत्यक्ष] दे० 'प्रत्यक्ष'। उ०—श्रीठाकुर जी प्रत्यच्छ मुरारीदास सों बार्ता करते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १००।

प्रत्यध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वात रोग।

प्रत्यनंतर—वि० [सं० प्रत्यनन्तर] सन्निकट। समीपवर्ती। प्रत्यासन्न [को०]।

प्रत्यनीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कविता का वह अर्थालंकार जिसमें किसी के पक्ष में रहनेवाले या संबंधी के प्रति किसी हित या अहित का किया जाना वर्णन किया जाय। जैसे, (क) तो मुख छबि सों हारि जग भयो कलंक समेत। सरद इंदु अरविंद मुख अरविंदन दुख देत।—मतिराम (शब्द०)।(ख) अपने अँग के जानि कै जोबन नृपति प्रबीन। स्तन मन नैन नितंब को बड़ो इजाफा कीन।—बिहारी (शब्द०)। (ग) तै जीत्यो निज रूप तें मदन बैर यह मान। बेधत तुव अनुरागिनी, इक सँग पाँचो बान।—(शब्द०)। २. शत्रु। दुश्मन ३. प्रतिपक्षी। विरोधी। मुकाबला करनेवाला। ४. प्रतिवादी। ५. विघ्न। बाधा।

प्रत्यनुमान—संज्ञा पुं० [सं०] तर्क में वह अनुमान जो किसी दूसरे के अनुमान का खंडन करते हुए किया जाय।

प्रत्यपकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह अपकार जो किसी अपकार के बदले में किया जाय।

प्रत्यभिज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह ज्ञान जो किसी देखी हुई चीज को, अथवा उसके समान किसी और चीज को, फिर से देखने पर हो। स्मृति की सहायता से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान। २ वह अभेद ज्ञान जिसके अनुसार ईश्वर और जीवात्मा दोनों एक ही माने जाते हैं। ३. कश्मीर का एक शैव दर्शन या शैवाद्वैतवाद। दे० 'प्रत्यभिज्ञादर्शन'।

प्रत्यभिज्ञात—वि० [सं०] जाना हुआ। पहचाना हुआ [को०]।

प्रत्यभिज्ञादर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] माहेश्वर संप्रदाय का एक दर्शन जिसके अनुसार भक्तवत्सल महेश्वर ही परमेश्वर माने जाते हैं।

विशेष—इस दर्शन में तंतु आदि जड़ पदार्थों को पट आदि कार्यों का कारण न मानकर केवल महेश्वर को सारे जगत् का कारण माना है, और कहा है कि जिस प्रकार ऋषि आदि बिना स्त्रीसंयोग के ही मानसपुत्र उत्पन्न करते हैं; उसी प्रकार महादेव भी जड़ जगत् की किसी वस्तु की सहायता के बिना ही केवल अपनी इच्छा से जगत् का निर्माण करते हैं। इस मत के अनुसार किसी कार्य का कारण महेश्वर के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। महेश्वर को न तो कोई सृष्टि करने के लिये नियुक्त या उत्तेजित करता है और न उसे किसी पदार्थ की सहायता की आवश्यकता होती है। इसी लिये उसे स्वतंत्र कहते हैं। जिस प्रकार दर्पण में मुख दिखाई देता है, उसी प्रकार जगदीश्वर में प्रतिबिंब पड़ने के कारण सब पदार्थ दिखाई देते हैं। जिस प्रकार बहुरूपिए तरह तरह का रूप धारण करते हैं उसी प्रकार महेश्वर भी स्थावर जंगम आदि का रूप धारण करते हैं और इसी लिये यह सारा जगत् ईश्वरात्मक है। महेश्वर ज्ञाता और ज्ञान स्वरूप है, इसलिये घट पट आदि का जो ज्ञान होता है, वह सब भी परमेश्वर स्वरूप ही है। इस दर्शन के अनुसार मुक्ति के लिये पूजापाठ और जपतप आदि की कोई आवश्यकता नहीं; केवल प्रत्यभिज्ञा या इस ज्ञान की आवश्यकता है कि ईश्वर और जीवात्मा दोनो एक ही हैं। इस प्रत्यभिज्ञा की प्राप्ति होते ही मुक्ति का होना माना जाता है। इसी लिये इसे प्रत्यभिज्ञा दर्शन कहते हैं। इस दर्शन के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं माना जाता है। इसी लिये इस मत के लोग कहते हैं कि जिस मनुष्य में ज्ञान और क्रियाशक्ति है वही परमेश्वर है; और जिसमें ज्ञान और क्रियाशक्ति नहीं है, वह परमेश्वर नहीं है। परमेश्वर सब स्थानों में और स्वतः प्रकाशमान है। जीवात्मा

में परमात्मा का प्रकाश होने पर भी जबतक यह ज्ञान न हो कि ईश्वर के ईश्वरता आदि गुण हममें भी हैं; तबतक मुक्ति नहीं हो सकती। यही जीवात्मा और परमात्मा के संबंध में इस दर्शन का सिद्धांत है। पदार्थनिर्णय के संबंध में प्रत्यभिज्ञा दर्शन और रसेश्वर दर्शन के मत आपस में मिलते जुलते हैं।

प्रत्यभिज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १. सदृश वस्तु को देखकर किसी पहले देखी हुई वस्तु का स्मरण हो आना। स्मृति की सहायता से होनेवाला ज्ञान। २. पहचान। स्मारक वस्तु या चिह्न।

प्रत्यभिज्ञेय—वि० [सं०] पहचान के योग्य। प्रत्यभिज्ञान के योग्य। जानने योग्य। उ०—किंतु जो भी हो, निजी तुम प्रश्न मेरे, प्रेय प्रत्यभिज्ञेय।—हरी घास०, पृ० १५।

प्रत्यभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार वह अभियोग जो अभियुक्त अपने वादी अथवा अभियोग लगानेवाले पर लगावे। किसी के अभियोग लगाने पर उलटे उसपर अभियोग लगाना। वह अभियोग जो अभियुक्त अभियोग चलानेवाले पर चलावे। मुद्दालेह का मुद्दई पर भी दावा करना।

विशेष—व्यवहार शास्त्र के अनुसार ऐसा करना वर्जित है। अभियुक्त जब तक अपने आपको निर्दोष न प्रमाणित कर ले तब तक उसे वादी पर कोई अभियोग लगाने का अधिकार नहीं है।

प्रत्यभिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह आशीर्वाद जो किसी पूज्य या बड़े का अभिवादन करने पर मिले।

प्रत्यभिवादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रत्यभिवाद'।

प्रत्यमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। दुश्मन।

प्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्वास। एतबार। यकीन। उ०—यदि पूरा प्रत्यय न हो तुम्हें इस जन पर, तो चढ़ सकते हैं राजदूत तो घन पर।—साकेत, पृ० २३७। २. प्रमाण। सबूत। उ०—प्रभु की नाममुद्रिका देकर परिचय, प्रत्यय, धैर्य दिया।—साकेत, पृ० ३८९। ३. विचार। खयाल। भावना। ४. ज्ञान। बुद्धि। समझ। ५. व्याख्या। शरह। ६. कारण। हेतु। ७. आवश्यकता। जरूरत। ८. प्रख्याति। प्रसिद्धि। ९. चिह्न। लक्षण। १०. निर्णय। फैसला। ११. संमति। राय। १२. स्वाद। जायका। १३. सहायक। मददगार। १४. विष्णु का एक नाम। १५. वह रीति जिसके द्वारा छंदों के भेद और उनकी संख्या जानी जाय।

विशेष—छंदःशास्त्र में ९ प्रत्यय हैं—(१) प्रस्तार, (२) सूची, (३) पाताल, (४) उद्दिष्ट, (५) नष्ट, (६) मेरु, (७) खंडमेरु, (८) पताका और (९) मर्कटी।

१६. व्याकरण में वह अक्षर या अक्षरसमूह जो किसी धातु या मूल शब्द के अंत में, उसके अर्थ में कोई विशेषता उत्पन्न करने के उद्देश्य से लगाया जाय। जैसे, 'बड़ा' (शब्द) अथवा 'लड़ना' के 'लड़' (धातु) के अंत में जोड़ा जानेवाला 'आई' शब्दसमूह (जिसके जोड़ने से 'बड़ाई' या 'लड़ाई' 'शब्द' बनता है) प्रत्यय है।

विशेष—इसी प्रकार मूर्खता में 'ता' बड़कपन में 'पन', शीतल में 'ल', दयालु में 'लु', अक्षरशः में 'शः' बिकाऊ में 'आऊ', उठान में 'आन', घुमाव में 'आव' आदि प्रत्यय हैं। उपसर्ग क्रियापदों या शब्दों के आदि में और प्रत्यय अंत में लगता है अत: इसे परसर्ग भी कहते हैं।

१७. छेद। छिद्र। रंध्र (को०)।

प्रत्ययकारी—वि० [सं० प्रत्ययकारिन्] विश्वास उत्पन्न करनेवाला। समझदारी से युक्त (को०)।

प्रत्ययकारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुद्रा। मुहर। विश्वासदायक चिह्न (को०)।

प्रत्ययत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्रमाणत्व। उ०—जो असत् है उसका प्रत्ययत्व नहीं है।—संपूर्णानंद अभि० ग्रं०, पृ० ३६१।

प्रत्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतीति होना। प्रतीत होना (को०)।

प्रत्ययप्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह जमानतदार जो किसी को महाजन से यह कहकर कर्ज दिलावे कि मैं इसे जानता हूँ, यह बड़ा ईमानदार, साधु और विश्वास करने के योग्य है।

प्रत्ययवाद—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यय+वाद] एक दार्शनिक सिद्धांत जिसमें यह माना जाता है कि हमारा समस्त ज्ञान विचारों से उत्पन्न है, भौतिक जगत् के पदार्थों से नहीं। आइडियलिज्म। उ०—यह हमारा जर्मन दार्शनिकों के प्रत्ययवाद से मिला जिसके प्रवर्तक काट थे।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ७९।

प्रत्ययसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य शास्त्र में महत्तत्व या बुद्धि से उत्पन्न सृष्टि।

प्रत्ययाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी या रेहन जो रुपया वसूल होने के इतमिनान या साख के लिये रखा जाय।

प्रत्ययित—वि० [सं०] १. जिसे विश्वास हुआ हो। विश्वस्त। २. आप्त (को०)।

प्रत्ययी—वि० [सं० प्रत्ययिन्] १. विश्वास करनेवाला। भरोसा रखनेवाला। २. विश्वास करने योग्य। विश्वसनीय (को०)।

प्रत्यरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नाभि जिसमें चक्र या पहिए की अराएँ दृढ़ करने के लिये जड़ी जाती हैं (को०)।

प्रत्यर्क—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रतिसूर्य।

प्रत्यर्थ[1]—वि० [सं०] उपयोगी। लाभकर।

प्रत्यर्थ[2]—संज्ञा पुं० १. उत्तर। जवाब। २. विरोध। शत्रुता (को०)।

प्रत्यर्थक, प्रत्यर्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। विरोधी (को०)।

प्रत्यर्थी—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यर्थिन्] १. प्रतिवादी। मुद्दालेह। २. शत्रु। दुश्मन।

प्रत्यर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] मिला हुआ धन किसी को देना। दान में पाया हुआ धन फिर दान करना।

प्रत्यर्पित—वि० [सं०] वापस किया हुआ। लौटाया हुआ (को०)।

प्रत्यवनेजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुनः प्रक्षालन। फिर धोना। २. पुनरावमन (को०)।

प्रत्यवमर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुसंधान करना। पता लगाना। अच्छे बुरे का विचार करना।

प्रत्यवमर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रत्यवमर्श'।

प्रत्यवर—संज्ञा पुं० [सं०] जो सबसे अधिक निकृष्ट हो। सबसे खराब। निकृष्टतम।

प्रत्यवरूढि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रत्यवरोह'-१,-२।

प्रत्यवरोध, प्रत्यवरोधन—संज्ञा पुं०[सं०]बाधा। अड़चन। रोक [को०]।

प्रत्यवरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. अवरोहण। उतरना। २. सीढ़ी। ३. वैदिक काल का एक प्रकार का गृह्य उत्सव जो अगहन मास में होता था।

प्रत्यवरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रत्यवरोह'।

प्रत्यवलोकन—संज्ञा पुं० [सं०] पर्यवेक्षण। देखना। निरीक्षण। दर्शन। उ०—स्पष्ट ही केवल यात्रा का प्रत्यवलोकन काफी नहीं है।—नदी०, पृ० ८।

प्रत्यवसान—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन। खानापीना।

प्रत्यवसित—वि० [सं०] १ खाया पिया हुआ। २. जिसने पुराना (बुरा) जीवन ग्रहण कर लिया हो [को०]।

प्रत्यवस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यवस्कन्द] दे० 'प्रत्यवस्कंदन' [को०]।

प्रत्यवस्कंदन—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यवस्कन्दन] व्यवहार शास्त्र के अनुसार प्रतिवादी का वह उत्तर जो वादी के कथन का खंडन करने के लिये दिया जाय। जवाबदावा। जवाबदेही।

प्रत्यवस्थाता—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यवस्थातृ] १. विरोधी। शत्रु। २. प्रतिपक्ष। प्रतिवादी। मुद्दालेह [को०]।

प्रत्यवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. हटाना। अलग करना। २. शत्रुता। विरोध [को०]।

प्रत्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. संहार। मार डालना। २. प्रलय। विनाश (को०)। ३. लड़ने के लिये तैयार सैनिकों को लड़ने से रोकना।

प्रत्यवाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पाप या दोष जो शास्त्रों में बतलाए हुए नित्य कर्म के न करने से होता है। २. उलटफेर। भारी परिवर्तन। ३. जो नहीं है उसका न उत्पन्न होना या जो है उसका न रह जाना। ४. विघ्न। बाधा (को०)। ५. पाप (को०)। ६. दुरदृष्ट। दुर्भाग्य (को०)। ७ निर्दिष्ट कर्म के विरुद्ध आचरण (को०)।

प्रत्यवेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी बात को बहुत अच्छी तरह देखना, समझना या जाँचना। भली भाँति जानना।

प्रत्यवेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों में पाँच प्रकार के बोध या ज्ञान में से एक का नाम [को०]।

प्रत्यवेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रत्यवेक्षण' [को०]।

प्रत्यश्मा—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यश्मन्] गेरू। गैरिक धातु।

प्रत्यष्ठीला—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का वात रोग जिसमें नाभि के नीचे पेड़ू में एक गुठली सी हो जाती है जिसमें पीड़ा होती है। यदि गुठली में पीड़ा न हो तो उसे 'वातष्ठीला' कहते हैं। गुठली मलमूत्र के द्वार रोक देती है जिसके कारण रोगी मलमूत्र का त्याग नहीं कर सकता। उ०—और जो गाँठ तिरछी प्रगट भई होय तो उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं।—माधव०, पृ० १४६।

प्रत्यस्तमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. समाप्ति। अंत। खातमा। २. अस्तमन। (सूर्य का) डूबना या अस्त होना [को०]।

प्रत्याकरण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिक्रिया। प्रत्याख्यान। उ०—शायद इसी का प्रत्याकरण हो जो पीछे मेरे लिये जरूरी हो पड़ता है।—सुखदा, पृ० ५४।

प्रत्याकार—संज्ञा पुं० [सं०] खड्गकोश। म्यान [को०]।

प्रत्याक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] आक्रमण के विरोध में आक्रमण। एक पक्ष से आक्रमण हो जाने के बाद प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरे पक्ष से आक्रमण।

प्रत्याख्यात—वि० [सं०] १. अस्वीकृत। २. निषिद्ध। रोका हुआ। ३. अतिक्रमित। आगे बढ़ा हुआ। ४. दूरीकृत। अलग किया हुआ। ५. सूचित। प्रख्यात। ख्यात। प्रसिद्ध [को०]।

प्रत्याख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १. खंडन। २. निराकरण।

प्रत्यागत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैतरे का एक प्रकार। उ०—गत प्रत्यागत में और प्रत्यावर्तन में दूर वे चले गए।—लहर, पृ० ७३। २. कुश्ती का एक पेच।

प्रत्यागत[2]—वि० जो लौट आया हो। वापस आया हुआ।

प्रत्यागति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीछे लौटना। वापस होना [को०]।

प्रत्यागम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रत्यागमन' [को०]।

प्रत्यागमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लौट आना। वापसी। २. दोबारा आना। पुनरागमन।

प्रत्याघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोट के बदले की चोट। वह आघात जो किसी आघात के बदले में हो। २. टक्कर।

प्रत्याचार—संज्ञा पुं० [सं०] सद्व्यवहार। अनुकूल व्यवहार [को०]।

प्रत्यादान—संज्ञा पुं० [सं०] पुनः ले लेना। फिर से ले लेना। पुनः-प्राप्ति [को०]।

प्रत्यातप—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ घाम बराबर रहती हो। सूर्यातपयुक्त स्थान [को०]।

प्रत्यादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिसूर्य'।

प्रत्यादिष्ट—वि० [सं०] १. संस्तुत। स्वीकृत। २. अस्वीकृत। निराकृत। ३. पृथक् किया हुआ। अलग किया हुआ। ४. चेताया हुआ। सावधान किया हुआ। ५. घोषित। सूचित। ६. विजित। हराया हुआ [को०]।

प्रत्यादेय—संज्ञा पुं० [सं०] 'आदेय' से उलटा लाभ। वह लाभ जो लौटाना पड़े।

विशेष—कौटिल्य ने इसे बुरा कहा है, केवल कुछ विशेष अवस्थाओं में ही ठीक बताया है।

प्रत्यादेयाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह भूमि जिसको लौटा देना पड़े।

प्रत्यादेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. खंडन। २. निराकरण। ३. आकाशवाणी। ४. आज्ञा। आदेश (को०)। ५. चेतावनी

(को०) । ६. निवारण (को०) । ७. अमिदा करने, हेय बनाने या हटानेवाला (को०) ।

प्रत्याधान—संज्ञा पुं० [सं०] वस्तुओं को जमा रखने की जगह । वह स्थान जहाँ वस्तुएँ जमा की जायँ । आगार (को०) ।

प्रत्याध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वात रोग जिसमें पेट फूलता है और नाभि के ऊपर कुछ पीड़ा होती है । उ०—और वही रोग आमाशय में उत्पन्न होय तो उसको प्रत्याध्मान कहते हैं ।—माधव०, पृ० १४५ ।

प्रत्यानयन—संज्ञा पुं० [सं०] वापस लाना । फिर से प्राप्त करना (को०) ।

प्रत्यानीत—वि० [सं०] वापस लाया हुआ । पुनः प्राप्त (को०) ।

प्रत्यापत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लौटना । वापसी । वापस होना । २. विरक्ति होना । वैराग्य (को०) ।

प्रत्याम्नान[1]—वि० [सं०] प्रतिनिधित्व करनेवाला । प्रतिनिधि (को०) ।

प्रत्याम्नाय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. निगमन । अनुमान वाक्य का पाँचवाँ अवयव । २. प्रतिनिधि (को०) ।

प्रत्याय—संज्ञा पुं० [सं०] राजस्व । कर ।

प्रत्यायक—वि० [सं०] १. विश्वास देनेवाला । विश्वासदायक । २. व्याख्या करनेवाला ।

प्रत्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. (वधू को) घर ले आना । विवाह करना । २. (सूर्य का) अस्त होना । ३. विश्वास पैदा करना । ४. व्याख्या करना (को०) ।

प्रत्यायित—संज्ञा पुं० [सं०] वह दूत या प्रतिनिधि जो पूर्णतः विश्वस्त हो (को०) ।

प्रत्यारंभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुनः शुरू करना । पुनरारंभ । २. निरोध । निषेध । निवारण (को०) ।

प्रत्यार्द्र—वि० [सं०] स्वच्छ । नूतन । ताजा (को०) ।

प्रत्यालीढ[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यालीढ] धनुष चलानेवालों के बैठने का एक प्रकार जिसमें वे धनुष चलाने के समय बायाँ पैर आगे बढ़ा देते हैं और दाहिना पैर पीछे खींच लेते हैं ।

प्रत्यालीढ[2]—वि० खाया हुआ । भुक्त ।

प्रत्यावर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] लौट आना । वापस आना । उ०—गत प्रत्यागत में और प्रत्यावर्तन में दूर के चले गए ।—लहर, पृ० ७३ ।

प्रत्याशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आशा । उम्मेद । भरोसा ।

प्रत्याशी—वि० [सं० प्रत्याशिन्] १. आशा करनेवाला । इच्छुक । चाहनेवाला । उ०—स्त्री का हृदय था; एक दुलार का प्रत्याशी, उसमें कोई मलिनता न थी ।—तितली, पृ० ८३ । २. (चुनाव में) उम्मीदवार ।

प्रत्याश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ आश्रय लिया जाय । पनाह लेने की जगह ।

प्रत्याश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] पुनः श्वास लेना । फिर से साँस लेना (को०) ।

प्रत्याश्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] ढाढ़स । धैर्य । सांत्वना (को०) ।

प्रत्याश्वस्त—वि० [सं०] आश्वासन प्राप्त । आश्वस्त । जिसे सांत्वना दी गई हो (को०) ।

प्रत्यासंकलित—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यासङ्कलित] पक्ष और विपक्ष की बातों को मिलाकर विचार करना (को०) ।

प्रत्यासंग—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्यासङ्ग] संबंध । संयोग । लगाव (को०) ।

प्रत्यासत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निकटता । सामीप्य । नजदीकी । २. दे० 'आसत्ति' । ३. निकट संबंध (को०) । ४. प्रसन्नता । उत्फुल्लता (को०) ।

प्रत्यासन्न—वि० [सं०] पास आया हुआ । निकट पहुँचा हुआ ।

यौ०—प्रत्यासन्नमरण । प्रत्यासन्नमृत्यु = जिसकी मृत्यु निकट हो । जो मरणासन्न हो ।

प्रत्यासर—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना का पिछला भाग । २. एक के बाद दूसरा व्यूह के क्रम से संयोजित सेना । वह सैन्यस्थिति जिसमें एक के बाद दूसरा व्यूह हो (को०) ।

प्रत्यासार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रत्यासर' ।

प्रत्यास्वर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य जो डूबने के बाद पुनः उगा हो ।

प्रत्यास्वर[2]—वि० पुनः लौटनेवाला । जैसे, सूर्य । २. पुनः दीप्त । पुनः द्योतित होनेवाला (को०) ।

प्रत्याहत—वि० [सं०] प्रतिरोधित । निवारित । हटाया हुआ (को०) ।

प्रत्याहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्रियनिग्रह । प्रत्याहार । २. हटाना । पीछे करना । ३. निग्रहण (को०) ।

प्रत्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. योग के आठ अंगों में से एक अंग जिसमें इंद्रियों को उनके विषयों से हटाकर चित्त का अनुसरण किया जाता है । जैसे, यदि आँखें किसी सुंदर रूप पर बुरे भाव से जा पड़ें तो उन्हें वहाँ से हटाकर अपने चित्त को शांत करना । इसका अभ्यास बहुत ही कठिन माना जाता है । इंद्रियनिग्रह । उ०—प्रत्याहार धारना ध्यानं, लै समाधि लावै ठिकठौना ।—सुंदर ग्रं०, भा २, पृ० ८६२ । २. प्रलय । सृष्टि का विनाश (को०) । ३. हटाना । पीछे करना (को०) । ४. संक्षेप । सारसंग्रह (को०) । ५. निग्रह करना । निग्रहण (को०) । ६. व्याकरण में विभिन्न वर्ण-समूह को अभीप्सित रूप से संक्षेप में ग्रहण करने की पद्धति या संकेत । जैसे, 'अण्' से अ इ उ और अच् से समस्त स्वर वर्ण—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए और ओ, इत्यादि ।

प्रत्याहूत—वि० [सं०] वापस बुलाया हुआ (को०) ।

प्रत्याहृत—वि० [सं०] १. वापस लिया हुआ । फिर से प्राप्त किया हुआ । २. निगृहीत । जिसका निग्रह किया गया हो । ३. हटाया या पीछे खींचा हुआ (को०) ।

प्रत्युक्त—वि० [सं०] उत्तरित । जिसका जवाब दिया गया हो । उत्तर में कहा हुआ (को०) ।

प्रत्युक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवाब । उत्तर ।

प्रत्युच्चार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रत्युच्चारण' ।

प्रत्युच्चारण—संज्ञा पुं० [सं०] पुनरुक्ति । पुनः कथन (को०) ।

प्रत्युज्जीवन—संज्ञा पुं० [सं०] मरे हुए व्यक्ति का फिर से जी उठना। पुनर्जीवन।

प्रत्युत¹—संज्ञा पुं० [सं०] किसी दूसरे के पक्ष का खंडन या अपने पक्ष का मंडन करने के लिये विपरीत भाव। विपरीतता।

प्रत्युत²—अव्य० बल्कि। वरन्। इसके विरुद्ध। जैसे,—वे लोग माने नहीं प्रत्युत और भी आगे बढ़ने लगे।

प्रत्युत्क्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह उद्योग जो कोई कार्य आरंभ करने के लिये किया जाय। २. वह आक्रमण जो युद्ध के समय सबसे पहले हो। ३. युद्ध का उपक्रम। लड़ाई की तैयारी (को०)।

प्रत्युत्क्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रत्युत्क्रान्ति] दे० प्रत्युत्क्रम (को०)।

प्रत्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर मिलने पर दिया हुआ उत्तर। जवाब का जवाब।

प्रत्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी बड़े या पूज्य के आने पर उसके स्वागत और आदर के लिये आसन छोड़कर उठ खड़ा होना। अभ्युत्थान। २. शत्रु आदि का सामना करने के लिये उठकर खड़ा होना (को०)। ३. लड़ाई की तैयारी करना (को०)। ४. किसी काम को करने की व्यवस्था करना (को०)।

प्रत्युत्थित—वि० [सं०] जो मिलने या सामना करने के लिये उठ खड़ा हुआ हो (को०)।

प्रत्युत्पन्न—वि० [सं०] १. जो फिर से उत्पन्न हुआ हो। २. जो ठीक समय पर उत्पन्न हुआ हो।

यौ०—प्रत्युत्पन्नबुद्धि, प्रत्युत्पन्नमति = (१) जो तुरंत ही कोई उपयुक्त बात या काम सोच ले। ठीक समय पर जिसकी बुद्धि काम कर जाय। तत्पर बुद्धिवाला। (२) ठीक समय पर काम देनेवाली बुद्धि। अवसर पड़ते ही उपयुक्त कार्य कर दिखानेवाली बुद्धि। उ०—उसके साथी अपनी हास्योद्दीपक उक्तियों और प्रत्युत्पन्नमति के लिये प्रसिद्ध थे।—अकबरी०, पृ० २३।

प्रत्युत्पन्नार्थ कृच्छ्र—वि० [सं०] (राज्य या राष्ट्र) जो अर्थसंकट में पड़ गया हो, अर्थात् जिसके शासन का खर्च आमदनी से न सधता हो।

प्रत्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] विरोधी उदाहरण। विपरीत उदाहरण (को०)।

प्रत्युद्गत—वि० [सं०] १. आसन से उठकर किसी के आदरार्थ आगे बढ़ा हुआ। २. विरोध में गया हुआ (को०)।

प्रत्युद्गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रत्युद्गमन' (को०)।

प्रत्युद्गम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रत्युद्गमन' (को०)।

प्रत्युद्गमन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के आने पर उसका स्वागत करने के लिये उठकर खड़ा हो जाना। अभ्युत्थान।

प्रत्युद्गमनीय¹—वि० [सं०] १. सामने या पास रखने योग्य। २. संमान के योग्य। पूज्य।

प्रत्युद्गमनीय²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का वस्त्र (अधोवस्त्र और उत्तरीय) जो प्राचीन काल में यज्ञों में या भोजन के समय पहना जाता था।

प्रत्युद्गार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वायु रोग।

प्रत्युद्धरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. फिर से प्राप्त करना। २. फिर से उठाना (को०)।

प्रत्युद्यम—संज्ञा पुं० [सं०] विरोधी प्रयत्न। प्रतिक्रिया। प्रतिरोध (को०)।

प्रत्युपकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह उपकार जो किसी उपकार के बदले में किया जाय। एक भलाई के बदले में की जानेवाली दूसरी भलाई।

प्रत्युपकारी—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्युपकारिन्] उपकार का बदला देनेवाला। वह जो किसी उपकार के बदले में उपकार करे।

प्रत्युपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] उपदेश के परिवर्तन में कथित उपदेश। राय के बदले में राय (को०)।

प्रत्युपन्न—वि० [सं०] दे० 'प्रत्युत्पन्न' (को०)।

प्रत्युपमान—संज्ञा पुं० [सं०] १. सदृश की प्रतिमूर्ति या रूप। उपमान का उपमान। २. उपमान। प्रतिमान (को०)।

प्रत्युपलब्ध—[सं०] पुनःप्राप्त। फिर से प्राप्त (को०)।

प्रत्युपस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] पड़ोस। परोस (को०)।

प्रत्युपस्थित—वि० [सं०] १. पहुँचा या अभी आया हुआ। २. उपस्थित (को०)।

प्रत्युप्त—वि० [सं०] १. जटित। खचित। बैठाया हुआ। २. उप्त। बोया हुआ (को०)।

प्रत्युलूक—संज्ञा पुं० [सं०] १. काक। कौआ। २. उलूक के समान एक पक्षी (को०)।

प्रत्युष—संज्ञा पुं० [सं० प्रत्युषः, प्रत्युषस्] प्रभात। तड़का।

प्रत्यूढ—वि० [सं०] १. प्रत्याख्यात। निराकृत। २. तिरस्कृत। उपेक्षित। ३. अतिक्रमित। ४. आच्छादित। आवृत। निगूढ़ (को०)।

प्रत्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभात। तड़का। प्रातःकाल। २. सूर्य। ३. एक वसु का नाम।

प्रत्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] विघ्न। बाधा। उ०—कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक। होइ घुनाक्षर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक।—मानस, ७।११८।

प्रत्येक—वि० [सं०] समूह अथवा बहुतों में से हर एक, अलग अलग। जैसे,—(क) प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है। (ख) प्रत्येक बालक को एक एक नारंगी दो। (ग) प्रत्येक पत्र पर दस्तखत करो।

प्रत्येकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्रत्येक का भाव या धर्म।

प्रत्येकबुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम। पच्चेक बुद्ध।

प्रथन—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का गुल्म। २. विस्तार। ३. प्रकाश में लाने की क्रिया या भाव। ४. बिखराना। बिखेरना (को०)। ५. फेंकना (को०)। ६. बिखराने या फैलाने का स्थान (को०)।

प्रथम¹—वि० १. गणना में जिसका स्थान सबसे पहले हो। जो गिनती में सबसे पहले आवे। पहला। आदि का। अव्वल। उ०—एक मोहनहि अगनित तरनि तकति प्रथमहि डीठि

घँकवारि मैं भरति कसि । —घनानंद, पृ० ४७६ । २. सर्वश्रेष्ठ । सबसे अच्छा । ३. प्रधान । मुख्य ।

यौ०—प्रथम पुरुष ।

प्रथम[2]—क्रि० वि० [सं०] पहले । पेश्तर । आगे । आदि मे ।

प्रथमक—वि० [सं०] पहला । प्रथम [को०] ।

प्रथमकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. सबसे अच्छा ढंग या उपाय । २. प्रधान या मुख्य नियम [को०] ।

प्रथमकवि—संज्ञा पुं० [सं०] आदि कवि । वाल्मीकि । उ०—प्रथम कवि का ज्यों सुंदर छंद ।—कामायनी, पृ० ४५ ।

प्रथमकल्पिक—वि० [सं०] जो साधना की प्रथम सीढ़ी पर हो [को०] ।

प्रथमकारक—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण मे 'कर्ता' (कारक) ।

विशेष—दे० 'कर्ता' ।

प्रथमकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद फूल के अगस्त का वृक्ष । श्वेत अगस्त ।

प्रथमज—वि० [सं०] १. जो पहले उत्पन्न हुआ हो । जिसका जन्म पहले हुआ हो । २ जो सबसे पहले गर्भ से उत्पन्न हुआ हो । ३ बड़ा । ज्येष्ठ ।

प्रथमतः—क्रि० वि० [सं० प्रथमतम्] पहले से । सबसे पहले ।

प्रथमदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] पहली बार देखना [को०] ।

प्रथमधार—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहली वर्षा । प्रथम वृष्टि [को०] ।

प्रथमनवनीत—संज्ञा पुं० [सं०] वह दूध जो गाय के ब्याने के सौ दिन बीत जाने पर दुहा जाता है [को०] ।

प्रथमनिर्दिष्ट—वि० [सं०] जिसका उल्लेख या कथन पहले हुआ हो । पूर्वकथित [को०] ।

प्रथमपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्तम पुरुष' ।

प्रथममंगल—संज्ञा पुं० [सं० प्रथममङ्गल] बहुकल्याण या शुभ [को०] ।

प्रथमयौवन—संज्ञा पुं० [सं०] युवावस्था का प्रथम चरण । चढ़ती जवानी [को०] ।

प्रथमरात्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात का पहला पहर [को०] ।

प्रथमवयस्—संज्ञा पुं० [सं०] बालकाल । बाल्यावस्था [को०] ।

प्रथमवयसी—वि० [सं० प्रथमवयसिन्] नई उम्र का । छोटी अवस्थावाला [को०] ।

प्रथमवसति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूल निवास । मूल स्थान [को०] ।

मूलवित्ता—स्त्री० [सं०] पहली स्त्री । पहली पत्नी [को०] ।

प्रथमसाहस—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन व्यवहार शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का साहस दंड जिसमे २५० पण तक जुरमाना होता था । यह दंड साधारण अपराधों के लिये होता था ।

प्रथमस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वेदमंत्र उच्चारण करने के समय सबसे नीचा या धीमा स्वर ।

प्रथमस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सामगान ।

प्रथमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मदिरा । शराब । (तांत्रिक) । उ०—(क) कृष्णदेव बलदेव सुजानी । प्रथमा पिवत सदा ज्यों पानी ।—निश्चल (शब्द०) । (ख) सकल पिए प्रथमा मतिवारे । पूजत शक्ति मगन मन सारे ।—निश्चल (शब्द०) । २. व्याकरण का कर्ता कारक ।

प्रथमार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पहले का आधा भाग । शुरू का आधा । पूर्वार्द्ध ।

प्रथमार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वार्ध । शुरू का आधा ।

प्रथमाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार के आश्रमों में पहला, ब्रह्मचर्याश्रम [को०] ।

प्रथमी(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथिवी] दे० 'पृथ्वी' ।

प्रथमेतर—वि० [सं०] पहले के अतिरिक्त । दूसरा [को०] ।

प्रथमोदित—वि० [सं०] पहले कहा हुआ । प्रथम कथित [को०] ।

प्रथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रीति । रिवाज । प्रणाली । नियम । २. ख्याति । प्रसिद्धि ।

प्रथागत—वि० [सं० प्रथा + गत] रीति के अनुसार । परंपरानुसार । परंपराप्राप्त । उ०—यह धर्म की बेड़ी नहीं है, कदापि नहीं, प्रथागत पतिव्रत भी नहीं ।—मान०, भा० १, पृ० ३१२ ।

प्रथित[1]—वि० [सं०] १. प्रख्यात । मशहूर । २. परंपरागत । रीति के अनुकूल । ३. प्रचलित । ४. दिखाया हुआ । प्रदर्शित (को०) । ५. विस्तृत (को०) ।

प्रथित[2]—संज्ञा पुं० १. पुराणानुसार स्वारोचिष मनु के पुत्र का नाम । २. विष्णु (को०) ।

प्रथिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ख्याति । प्रसिद्धि ।

प्रथिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रथिमन्] चौड़ाई । विस्तार । फैलाव [को०] ।

प्रथिवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । धरा [को०] ।

प्रथी‡—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथ्वी] दे० 'पृथ्वी' । उ०—प्रथी वायु गेनाय तेजंस वालं ।—पृ० रा०, १।३९४ ।

प्रथु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. दे० 'पृथु' ।

प्रथु(पु)[2]—वि० [सं० पृथु] स्थूल । दे० 'पृथु' । उ०—प्रथुल, प्रासु, परिणाह, प्रथु, भारत तुंद विशाल ।—नंद ग्रं०, पृ० ८७ ।

प्रथुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] चिवड़ा [को०] ।

प्रथुक(पु)[2]—वि० [हिं०] दे० 'पृथक' । उ०—अवर पंच सामंत सथ । दीनो प्रथुक पथार ।—पृ० रा०, ५८।२१७ ।

प्रथुरोम(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथुलोमन्] दे० 'पृथुलोमा' । उ०—सफरी अनमिष मत्स तिमि प्रथुरोमा पाठीन ।—अनेकार्थ०, पृ० ८० ।

प्रथुल(पु)—वि० [सं० पृथुल] दे० 'प्रथुल' । उ०—प्रथुल, प्रासु, परिणाह, प्रथु, भरत तुंद विशाल । दीर्घ स्वास जो भरत बलि, का कथन है बाल ।—नंद० ग्रं०, पृ० ८७ ।

प्रथ्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथिवी] दे० 'पृथ्वी' । उ०—जिनकी देह छाया नहि होई । सर्व प्रथ्वी प्रमानिक सोई ।—कबीर सा०, पृ० ९३५ ।

प्रद—वि० [सं०] देनेवाला । जो दे । दाता ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग सदा यौगिक शब्दों के अंत में होता है । जैसे, मोक्षप्रद, आनंदप्रद, कामप्रद ।

प्रदक्खणा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रदक्षिणा] दे० 'प्रदक्षिण' । उ०—वे प्रदक्खणा दस्वें चढ़े । उस नगरी सम सोभी पढ़े ।—प्राण०, पृ० २७४ ।

प्रदक्षिण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] देवपूजन आदि के समय देवमूर्ति आदि को दाहिनी ओर कर, भक्तिपूर्वक उसके चारों ओर घूमना । परिक्रमा । उ०—उभय घरी महँ दीन्ह मैं सात प्रदक्षिण धाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—साधारण बोलचाल में इस शब्द के साथ केवल 'करना' क्रिया का ही प्रयोग होता है । पर कहीं कहीं, और विशेषतः कविता में इसके साथ 'लगना', 'देना' आदि क्रियाओं का भी व्यवहार होता है जैसा ऊपर के उदाहरण से प्रकट है ।

यौ०—प्रदक्षिणक्रिया = परिक्रमा । प्रदक्षिण । प्रदक्षिणपट्टिका = आँगन । अँगना ।

प्रदक्षिण[2]—वि० १. समर्थ । योग्य । २. दाहिनी ओर स्थित (को०) । ३. अनुकूल । विनम्र (को०) । ४. शुभ । मंगल । सुलक्षण (को०) ।

प्रदक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रदक्षिण'[1] ।

प्रदक्षिणार्चि—वि० [सं०] जिसकी लपट या ज्वाला दाहिनी ओर हो (अग्नि) ।

प्रदग्ध—वि० [सं०] अच्छी तरह दग्ध या जला हुआ [को०] ।

प्रदच्छिन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रदक्षिण] परिक्रमा । प्रदक्षिण । उ०—कीन्ह प्रणाम प्रदच्छिन लाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

प्रदत्त[1]—वि० [सं०] जो दिया जा चुका हो । दिया हुआ ।

प्रदत्त[2]—संज्ञा पुं० एक गंधर्व का नाम ।

प्रदर—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्त्रियों का एक रोग जिसमे उनके गर्भाशय से सफेद या लाल रंग का लसदार पानी सा बहता है, जिसमें कभी कभी दुर्गंध भी होती है ।

विशेष—इसमें रोगी स्त्री को वेदना होती है और उसका शरीर दिन पर दिन सूखता जाता है । जिसमें स्राव सफेद रंग का होता है उसे श्वेत और जिसमें लाल रंग का होता है उसे रक्त प्रदर कहते हैं । वैद्यक के अनुसार यह रोग मद्यपान, गर्भपात, अधिक मैथुन, शोक, उपवास आदि के कारण होता है । यह रोग प्रायः संतान उत्पन्न होने के उपरांत हुआ करता है ।

२. बाण । तीर । ३. फोड़ने या तोड़ने का भाव । ४. छिद्र । संध । दरार (को०) । ५. सेना का इतस्ततः होना । सेना का अस्तव्यस्त होना (को०) ।

प्रदर्प—संज्ञा पुं० [सं०] प्रचंड अभिमान । अत्यधिक घमंड । उ०—सुंदर प्रदर्प दर्प उन्नत उत्तंग जुग्म कैधों कुच आकृत अनंग कर ढारे री ।—घनानंद०, पृ० १६ ।

प्रदर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. रूप । आकार आकृति । २. आदेश । निर्देश [को०] ।

प्रदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिखलानेवाला । समझानेवाला । वह जो कोई चीज दिखलावे । जैसे, पथप्रदर्शक । २. वह जो दर्शन करे । दर्शक । । ३. गुरु । ४. सिद्धांत । वाद । मत (को०) । ५. अनागतदर्शी । भविष्यवक्ता (को०) ।

प्रदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिखलाने का काम । २. दे० 'प्रदर्शनी' । ३. समझाना । व्याख्या करना (को०) । ४. संकेत । इशारा (को०) । ५. उदाहरण (को०) । ६. भविष्यवाणी (को०) । ७. रूप । आकार (को०) ।

प्रदर्शनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ तरह तरह की चीजें लोगों को दिखलाने के लिये रखी जायें । नुमाइश । जैसे, कृषिप्रदर्शनी, शिल्पप्रदर्शनी, कपड़ों की प्रदर्शनी ।

प्रदर्शित—वि० [सं०] १. जो दिखलाया गया हो । दिखलाया हुआ । २. समझाया हुआ । सिखाया हुआ : बताया हुआ (को०) ।

प्रदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० प्रदर्शिन्] वह जो देखता हो । दर्शक । २. दिखानेवाला । प्रदर्शक (को०) ।

प्रदल—संज्ञा पुं० [सं०] बाण । तीर ।

प्रदव—संज्ञा पुं० [सं०] ताप । दाह । ज्वलन [को०] ।

प्रदव्य—संज्ञा पुं० [सं०] दावाग्नि [को०] ।

प्रदाता[1]—वि० [सं० प्रदातृ] दाता । देनेवाला ।

प्रदाता[2]—संज्ञा पुं० १. वह जो खूब दान देता है । बहुत बड़ा दानी । २. इंद्र । ३. वह जो विवाह में कन्यादान करता है (को०) । ४. ४ विश्वेदेवा के अंतर्गत एक देवता का नाम ।

प्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] देने की क्रिया । देना । उ०—तुम अन्य प्रदान करो, न करो ।—अर्चना, पृ० ४४ । २. दान । बखशीस । ३. विवाह । शादी । ४. अंकुश । सृणि । ५. बलि । नैवेद्य [को०] । ६. प्रत्याख्यान । खंडन (को०) ।

प्रदानक—संज्ञा पुं० [सं०] उपहार । भेंट । दान [को०] ।

प्रदानकृपण—वि० [सं०] देने में हीला करनेवाला । कंजूस [को०] ।

प्रदानशूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोधिसत्व का नाम । २. बहुत बड़ा दानी । दानवीर (को०) ।

प्रदाय—संज्ञा पुं० [सं०] भेंट । प्रदानक । उपहार [को०] ।

प्रदायक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रदायिका] देनेवाला । जो दे ।

प्रदायी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० प्रदायिन्] [स्त्री० प्रदायिनी] देनेवाला । जो दे ।

प्रदाव—संज्ञा पुं० [सं०] दावाग्नि । जंगल की आग ।

प्रदाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्वर आदि के कारण अथवा और किसी कारण शरीर में होनेवाली जलन । दाह ।

विशेष—प्रदाह कभी सारे शरीर में, कभी किसी अंग में जैसे, मूत्रेंद्रिय, सिर या फेफड़े, और कभी किसी अंग के बहुत ही

थोड़े अंश में होता है। ज्वर आदि का प्रदाह सारे शरीर में और व्रण आदि होने से पहले किसी थोड़े से स्थान में होता है। शरीर के अंदर किसी प्रकार का आघात या उपद्रव होने, स्नायु में किसी प्रकार की उत्तेजना आदि होने अथवा और किसी प्रकार का आघात होने पर प्रदाह उत्पन्न होता है। कभी कभी जहरीले जानवरों के काटने या अधिक गरमी पहुँचने के कारण भी प्रदाह होता है। जिस स्थान पर प्रदाह होता है उस स्थान पर कभी कभी सूजन आदि भी हो जाती है, या वहाँ से कुछ तरल पदार्थ निकलने लगता है।

२. विनाश। बरबादी। विध्वंस। प्रलय (को०)।

प्रदिक्—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रदिश्] दे० 'प्रदिशा' [को०]।

प्रदिग्ध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष प्रकार से पका हुआ मांस।

प्रदिग्ध[2]—वि० स्निग्ध किया हुआ। तेल या घी से चुपड़ा। चिकना किया हुआ।

प्रदिव्य—वि० [सं०] दे० 'दिव्य'। उ०—प्रथम प्रदिव्य मुद मंजित अभीत छिद्र ध्रुव विक्रमा प्रपन्न गुन प्रतिकर कुंद।—पज० मैस०, पृ० २४।

प्रदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रदिश्] दो मुख्य दिशाओं के बीच का कोना। कोण। विदिशा।

प्रदिष्ट—वि० [सं०] १. प्रदर्शित। संकेतित। २. निर्देशित। आदेशित। ३. स्थिर किया हुआ। नियत किया हुआ [को०]।

प्रदिष्टाभय—वि० [सं०] जिसे राज्य की ओर से रक्षा का वचन मिला हो। राज्य द्वारा संरक्षित।

प्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीपक। दीया। चिराग। २. रोशनी। प्रकाश। ३. वह जिससे प्रकाश हो। ४. संपूर्ण जाति का एक राग जिसे गाने का समय तीसरा पहर है। किसी किसी के मत से यह दीपक राग का एक पुत्र है।

विशेष—ग्रंथादि के अंत में लगने पर इसका अर्थ व्याख्या करने या स्पष्ट करनेवाला और वंश या कुलवाचक शब्दों के साथ लगने पर ज्योतित करनेवाला, रोशन करनेवाला अर्थ देता है। जैसे, काव्यप्रकाशप्रदीप, काव्यप्रदीप, वंशप्रदीप, कुलप्रदीप।

प्रदीपक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रदीपिका] १. प्रकाशक। प्रकाश में लानेवाला। प्रकाशित करनेवाला। २. उद्दीप्त करनेवाला। उकसानेवाला (को०)। ३. नौ प्रकार के विषों में से एक प्रकार का भयंकर स्थावर विष जिसके सूँघने मात्र से मनुष्य मर जाता है।

विशेष—यह विष के एक पौधे की जड़ है जिसके पत्ते खजूर के से होते हैं और जो समुद्र के किनारे बहुतायत से पैदा होता है। इसे प्रदीपन भी कहते हैं।

प्रदीपति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रदीप्ति] दे० 'प्रदीप्ति'।

प्रदीपन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश करने का काम। उजाला करना। २. उज्वल करना। चमकाना। ३. एक प्रकार का भयंकर विष जिसे प्रदीपक भी कहते हैं। विशेष—दे० 'प्रदीपक'।

प्रदीपन[2]—वि० १. प्रज्वलित करनेवाला। २. प्रकाशित करनेवाला। ३. उत्तेजित करनेवाला। उत्तेजक [को०]।

प्रदीपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा दीपक। २. एक रागिनी जो किसी किसी के मत से दीपक राग की स्त्री है। ३. व्याख्या। भाष्य (को०)।

प्रदीप्त—वि० [सं०] १. जलता हुआ। जगमगाता हुआ। जिसमें प्रकाश हो। प्रकाशवान्। प्रकाशित। २. जिसमें दीप्ति हो। उज्वल। चमकदार। चमकीला। ३. उठाया हुआ। फैलाया हुआ (को०)। ४. उत्तेजित। जगाया हुआ (को०)।

प्रदीप्तप्रज्ञ—वि० [सं०] तीक्ष्णबुद्धि। जिसकी बुद्धि तेज हो [को०]।

प्रदीप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रोशनी। प्रकाश। २. चमक। आभा।

प्रदीषणा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्रदक्षिण'। उ०—धन्य दीहाड़उ आज को। देई प्रदीषणा लागइ छइ पाई।—बी० रासो०, पृ० ६६।

प्रदुमन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रद्युम्न] दे० 'प्रद्युम्न'। उ०—कृष्ण के भयो प्रदुमन बारा।—कबीर सा०, पृ० ४७।

प्रदुष्ट—वि० [सं०] १. बिगड़ा हुआ। भ्रष्ट। २. बुरा। दुष्ट। पापी। ३. विषयी। कामुक [को०]।

प्रदूषक—वि० [सं०] १. नष्ट करनेवाला। २. दूषित करनेवाला।

प्रदूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नष्ट करना। चौपट करना। २. दूषित करना। दोषयुक्त करना (को०)।

प्रदूषित—वि० [सं०] भ्रष्ट। बिगड़ा हुआ। विकृत [को०]।

प्रदृप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्व। अभिमान। प्रदर्प [को०]।

प्रदेय[1]—वि० [सं०] १. जो देने योग्य हो। दान करने योग्य। देने (या विवाह करने) के योग्य (कन्या)।

प्रदेय[2]—संज्ञा पुं० वह जो कुछ उपहार में दिया जाय। भेंट। नजर।

प्रदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी देश का वह बड़ा विभाग जिसकी भाषा, रीतिव्यवहार, जलवायु, शासनपद्धति आदि उसी देश के अन्य विभागों की इन सब बातों से भिन्न हों। प्रांत। सूबा। २. स्थान। जगह। मुकाम। ३. अँगूठे के अगले सिरे से लेकर तर्जनी के अगले सिरे तक की दूरी। छोटा बित्ता या बालिश्त। ४. अंग। अवयव। ५. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की तंत्र युक्ति। ६. दीवार। ७. संज्ञा। नाम। ८. दिखाना। निर्देश करना (को०)। ९. व्याकरण में उदाहरण या निदर्शन। उदाहरण या दृष्टांत द्वारा स्पष्टीकरण (को०)।

प्रदेशकारी—संज्ञा पुं० [सं० प्रदेशकारिन्] योगियों का एक संप्रदाय।

प्रदेशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो कुछ किसी बड़े या राजा को उपहार के रूप में दिया जाय। भेंट। नजर। २. परामर्श। उपदेश। सलाह (को०)। ३. दिखलाना। दिखावा (को०)।

प्रदेशनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगूठे के पास की उँगली। तर्जनी।

प्रदेशित—वि० [सं०] दिखलाया हुआ [को०] ।

प्रदेशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रदेशनी' ।

प्रदेशी—वि० [सं०] प्रदेश संबंधी । प्रदेश का ।

प्रदेशीय—वि० [सं०] प्रदेश का । प्रदेश से संबंधित ।

प्रदेष्टा—संज्ञा पुं० [सं० प्रदेष्टृ] प्रदेशविशेष के कर की वसूली का प्रबंध करनेवाला और चोर, डाकुओं आदि को दंड देकर शांति रखनेवाला अधिकारी ।

विशेष—इसका कार्य आजकल के कलक्टर के कार्य से मिलता जुलता होता था ।

प्रदेह—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह औषध या लेप आदि जो फोड़े पर, उसे दबाने के लिये लगाया जाय । २. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का व्यंजन ।

प्रदोष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. संध्याकाल । रजनीमुख । सूर्य के अस्त होने का समय ।

विशेष—कुछ लोग रात के पहले पहर को भी प्रदोष कहते हैं ।

२. वह अँधेरा जो संध्या समय होता है । ३. त्रयोदशी का व्रत जिसमें दिन भर उपवास करके संध्या समय शिव का पूजन करके तब भोजन करना होता है । यह व्रत प्रायः पुत्र की कामना से किया जाता है । ४. अव्यवस्था (को०) । ५. बड़ा दोष । भारी अपराध ।

प्रदोष[2]—वि० दुष्ट । पाजी ।

प्रदोषक—वि० [सं०] प्रदोष काल में उत्पन्न [को०] ।

प्रदोहन—स्त्री० पुं० [सं०] दोहन करना । दुहना [को०] ।

प्रद्धटिका—संज्ञा स्त्री० [?] दे० 'पज्झटिका' ।

प्रद्यु—संज्ञा पुं० [सं०] पुण्य जिससे उत्तम लोक स्वर्ग की प्राप्ति होती है [को०] ।

प्रद्युतित—वि० [सं०] द्योतित । प्रकाशित । प्रज्वलित [को०] ।

प्रद्युम्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव । कंदर्प । २. श्रीकृष्ण के बड़े पुत्र का नाम । ३. नड्वला के गर्भ से उत्पन्न मनु के एक पुत्र का नाम । ४. वैष्णवों के अनुसार चतुर्व्यूहात्मक विष्णु के एक अंश का नाम । (शेष तीन अंशों के नाम वासुदेव, संकर्षण और अनिरुद्ध हैं ।)

प्रद्युम्न[2]—वि० अत्यंत बली । बहुत बड़ा वीर ।

प्रद्युम्नक—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव । कंदर्प [को०] ।

प्रद्योत—संज्ञा पुं० [सं०] १. किरण । रश्मि । दीप्ति । आभा । २. चमक । ३. प्रकाशित करना या होना । ४. एक यक्ष का नाम । ५. उज्जैनी के प्राचीन नरेश का नाम (को०) ।

प्रद्योतन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. चमक । दीप्ति । ३. चमकना । द्योतित होना ।

प्रद्योतन[2]—वि० चमकीला । चमकनेवाला ।

प्रद्रव[1]—वि० [सं०] तरल । द्रव [को०] ।

प्रद्रव[2]—संज्ञा पुं० दौड़ना । भागना । पलायन [को०] ।

प्रद्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १. भागना । दौड़ना । पलायन करना । २. तेजी से दौड़ना या भागना [को०] ।

प्रद्रावी—वि० [सं० प्रद्राविन्] दौड़नेवाला । भागनेवाला । पलायनशील [को०] ।

प्रद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] द्वार के आस पास या आगे का भाग । दरवाजे का अगला भाग ।

प्रद्वेष, प्रद्वेषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रुता । वैर । दुश्मनी २. घृणा ।

प्रद्वेषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार दीर्घतमा ऋषि की स्त्री का नाम ।

प्रधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके पास बहुत अधिक धन हो । २. युद्ध । लड़ाई । ३. दारण । विदारण (को०) । ४. युद्ध में लूट का धन (को०) ५. विध्वंस । विनाश (को०) ।

प्रधमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैद्यक में वह क्रिया जिसमें कोई औषध या चूर्ण आदि नाक के रास्ते, जोर से सुँघाकर ऊपर चढ़ाया जाय । २. वैद्यक में एक प्रकार की सुँघनी ।

प्रधर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रधर्षण' ।

प्रधर्षक—वि० [सं०] १. आक्रमण करनेवाला । कष्ट देनेवाला । सतानेवाला । २. बलात्कार करनेवाला । सतीत्व नष्ट करनेवाला (को०) ।

प्रधर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रधर्षक] १. अपमान । अनादर । २. जबरदस्ती किसी स्त्री का सतीत्व भंग करना । बलात्कार । ३. आक्रमण ।

प्रधर्षित—वि० [सं०] १. जिसपर आक्रमण किया गया हो । २. जिसका अनादर किया गया हो । ३. (वह स्त्री) जिसके साथ बलात्कार किया गया हो । ३. उद्दंड । उद्धत । अभिमानी (को०) ।

प्रधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो कश्यप को ब्याही गई थी ।

प्रधान[1]—वि० [सं०] १. मुख्य । खास । २. सर्वोच्च । श्रेष्ठ ।

प्रधान[2]—संज्ञा पुं० १. नेता । मुखिया । सरदार । २. सचिव । मंत्री । वजीर । ३. संसार का उपादान कारण । प्रकृति । ४. बुद्धि । समझ । ५. ईश्वर । परमात्मा । ६. सेनाध्यक्ष । महापात्र । ७. एक राजर्षि का नाम । ८. प्रकृति (को०) ।

प्रधानक—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार बुद्धि तत्व ।

प्रधानकर्म—संज्ञा पुं० [सं० प्रधानकर्म्मन्] सुश्रुत के अनुसार तीन प्रकार के कर्मों में से एक कर्म जो रोग की उत्पत्ति हो जाने पर किया जाता है ।

प्रधानतः—क्रि० वि० [सं० प्रधानतस्] प्रधान रूप से । मुख्य रूप से । मुख्यतया [को०] ।

प्रधानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रधान होने का भाव, धर्म, कार्य या पद ।

प्रधानधातु—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के सब धातुओं में से प्रधान शुक्र और वीर्य ।

प्रधानपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. राज्य या शासन आदि का प्रमुख व्यक्ति । २. शिव [को०] ।

प्रधानसभिक—संज्ञा पुं० [सं०] द्यूतगृह का मुखिया । जुआघर का प्रधान [को०] ।

प्रधानमंत्री—संज्ञा पुं० [सं० प्रधानमन्त्रिन्] किसी देश, राज्य या राष्ट्र का वह प्रमुख व्यक्ति जो सभी मंत्रियों से बड़ा होता है तथा शासन का प्रधान संचालक होता है ।

प्रधानांग—संज्ञा पुं० [सं० प्रधानाङ्ग] १. मुख्य अवयव । प्रधान अंग । २. राज्य का प्रसिद्ध व्यक्ति [को०] ।

प्रधानात्मा—संज्ञा पुं० [सं० प्रधानात्मन्] विष्णु [को०] ।

प्रधानाध्यापक—संज्ञा पुं० [सं०] किसी शिक्षासंस्था का मुख्य शिक्षक जो अध्यापन के साथ संस्था की व्यवस्था भी करता है ।

प्रधानामात्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रधान मंत्री । मंत्रिसमूह में प्रधानताप्राप्त मंत्री ।

प्रधानी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०प्रधान+ई (प्रत्य०)] प्रधान का पद या कर्म ।

प्रधानोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्धेप्सु । वीर । २. लब्धप्रतिष्ठ । अत्यंत प्रसिद्ध । विश्रुत [को०] ।

प्रधारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षण । गुप्ति । २. धारण करना [को०] ।

प्रधारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मस्तिष्क को किसी एक ओर या किसी विषय पर जमाना [को०] ।

प्रधावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । हवा । २. धावक । दौड़नेवाला (को०) । ३. मलना । साफ करना (को०) ।

प्रधावित—वि० [सं०] दौड़ता हुआ । तीव्र गति से युक्त । उ०—भूले हुए क्लेश को, हो रहे प्रधावित तुम्हारे तीर्थ देश को ।—बापू, पृ० १६ ।

प्रधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहिए का धुरा । २. कुआँ (को०) । ३. मंडल । चक्र (को०) । ४. खंड । विच्छेद (को०) ।

प्रधी[१]—वि० [सं०] प्रकृष्ट बुद्धिवाला । अत्यधिक चतुर [को०] ।

प्रधी[२]—संज्ञा स्त्री० प्रकृष्ट मति । उत्कृष्ट बुद्धि [को०] ।

प्रधीर—वि० [सं०] धीरधारी । धैर्यवान् । धैर्यशील । उ०—ओछे अंक निकस उरोज उकसन लागे हियरस पीकर को पजन प्रधीरें जे ।—पजनेस०, पृ० ५ ।

प्रधूपित—वि० [सं०] १. तप्त । तपाया हुआ । २. दीप्त । चमकता हुआ । ३. जिसे संताप या दुःख हुआ हो । ४. सुवासित । धूपित (को०) ।

प्रधूपिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह दिशा जिधर सूर्य बढ़ रहा हो । २. कष्टपीड़ित । दुःख में पड़ी हुई नारी (को०) ।

प्रधूमित—वि० [सं०] धुएँ से भरा हुआ । भीतर ही भीतर जलनेवाला [को०] ।

प्रध्मापित—वि० [सं०] वायु से पूरित किया हुआ । फूँका हुआ । बजाया हुआ [को०] ।

प्रध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] विशिष्ट ध्यान या चिंतन । गंभीर चिंतन । प्रगाढ़ चिंतन [को०] ।

प्रधृष्ट—वि० [सं०] १. धर्षित । अपमानित । तिरस्कृत । २. उद्दंड । घमंडी । उद्धत [को०] ।

प्रध्मापन—संज्ञा पुं० [सं०] वायु के आवागमन को ठीक रखने के लिये श्वास नली को ठीक करने का उपचार या प्रक्रिया [को०] ।

प्रध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश । विनाश । नष्ट हो जाना । २. सांख्य के मत से किसी वस्तु की अतीत अवस्था ।

विशेष—सांख्य मतवाले यह नहीं मानते कि किसी वस्तु का नाश नहीं होता है । इसलिये वे किसी पदार्थ की अतीत अवस्था को ही प्रध्वंस कहते हैं ।

प्रध्वंसक—वि० [सं०] विनाशक । नाश करनेवाला ।

प्रध्वंसाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय के अनुसार पाँच प्रकार के अभावों में से एक प्रकार का अभाव । वह अभाव जो किसी वस्तु के उत्पन्न होकर फिर नष्ट हो जाने पर हो ।

प्रध्वंसित—वि० [सं०] विनष्ट । बरबाद [को०] ।

प्रध्वंसी—संज्ञा पुं० [सं० प्रध्वंसिन्] १. नाश करनेवाला । वह जो नष्ट करे । २. नष्ट होनेवाला । क्षयशील । नाशशील [को०] ।

प्रध्वस्त[१]—वि० [सं०] जो नष्ट हो गया हो । जिसका प्रध्वंस हो चुका हो ।

प्रध्वस्त[२]—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार का मंत्र ।

प्रन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रण] दे० 'प्रण' ।

प्रनत(पु)†—वि० [सं० प्रणत] दे० 'प्रणत' । उ०—सरनागत आरत प्रनतनि को दै दै अभयपद ओर निबाहैं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१३ ।

यौ०—प्रनतपाल । प्रनतपालक । प्रनतपालिका = दे० प्रणतपाली ।

प्रनति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रणति] दे० 'प्रणति' ।

प्रनप्ता—संज्ञा पुं० [सं० प्रनप्तृ] नाती का पुत्र । परनाती । पनाती [को०] ।

प्रनमन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रणमन] दे० 'प्रणमन' ।

प्रनमना(पु)†—क्रि० स० [सं० प्रणमन] दे० 'प्रणमना' ।

प्रनय(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रणय] दे० 'प्रणय' । उ०—(क) प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी ।—मानस, ३।२१ । (ख) राव रंक सब एक से लगत प्रनय रस सोत ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३१८ ।

प्रनयाम(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्राणायाम] दे० 'प्राणायाम' । उ०—बैसाख मास फल पूरन जोग जुक्ति प्रनयाम ।—पोद्दार० अ०, पृ० ४३ ।

प्रनर्तित—वि० [सं०] १. कंपायमान किया हुआ । कंपित । २. झुलाया हुआ । ३. नृत्य करता हुआ । नाचता हुआ [को०] ।

प्रनवⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० प्रणव] दे० 'प्रणव'।

प्रनवनाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'प्रणवना'। उ०—(क) प्रनवों दीनबंधु दिनदानी।—मानस, १।१५। (ख) प्रनवों सबनि कपट छल त्यागे।—मानस, १।१४ (ग) प्रथमहिं प्रनऊँ प्रेममय, परम जोति जो आहि।—नंद ग्रं०, पृ० ११७।

प्रनष्ट—वि० [सं०] १. गायब। लुप्त। अदृश्य। २. नष्ट भ्रष्ट। बुरी तरह नष्ट। ३. भगा हुआ। पलायित [को०]।

प्रनाम—संज्ञा पुं० [सं० प्रणाम] दे० 'प्रणाम'। उ०—गुरहिं प्रनाम मनहिं मन कीन्हा।—मानस, १।२६१। (ख) कौसल्या कल्यानमय मूरति करत प्रनामु। सगुन सुमंगल काज सुभ कृपा करहिं सिय रामु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९३।

प्रनामीⓅ†[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रणामिन्] प्रणाम करनेवाला। जो प्रणाम करे।

प्रनामी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रणाम + हिं० ई (प्रत्य०)] वह धन या दक्षिणा जो गुरु, ब्राह्मण या गोस्वामी आदि को शिष्य या भक्त लोग प्रणाम करने के समय देते हैं। प्रणामी।

प्रनायक—वि० [सं०] १. नेतारहित। नायकविहीन। २. नायकों में श्रेष्ठ या प्रधान [को०]।

प्रनारⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रनाल] प्रणाली। पनारा। उ०—कज्जल प्रमान प्रब्बत ठरघौ रसधार सुठ्ठंत जलु। कंचन प्रनार ह्वै सुरभविक इह ओपम दीसंत बलु।—पृ० रा०, ७।१४४।

प्रनाल—संज्ञा पुं० [सं०] प्रणाली। पनारा। परनाला। उ०—उनं छिद्र कालं, रचिजा प्रनालं। बहै धार वग्गं, निनारंध रग्गं।—पृ० रा०, १।६४२।

प्रनालिका†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रणालिका] रीति। पद्धति। सरणि। प्रणाली। उ०—सब श्रीगुसाईं जी आप कृपा करिकै नित्य की तथा बरस दिन की सब उत्सवन को प्रकार प्रनालिका लिखि पठाए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २४८।

प्रनालीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रणाली'।

प्रनाशन—संज्ञा पुं० [सं० प्रणाशन] दे० 'प्रणाशन'।

प्रनासन—संज्ञा पुं० [सं० प्रणाशन] दे० 'प्रणाशन'।

प्रनिघातन—संज्ञा पुं० [सं०] हत्या। वध [को०]।

प्रनिपातⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० प्रणिपात] दे० 'प्रणिपात'।

प्रनृत्त[1]—वि० [सं०] जो नृत्य करता हो। नाचनेवाला। नर्तक [को०]।

प्रनृत्त[2]—संज्ञा पुं० नाच। नृत्य [को०]।

प्रपंच—संज्ञा पुं० [सं० प्रपञ्च] १. पाँच तत्वों का उत्तरोत्तर अनेक भेदों में विस्तार। संसार। सृष्टि। भवजाल। उ०—विधि प्रपंच गुन अवगुन साना।—तुलसी (शब्द०)। २. एक से उत्तरोत्तर अनेक होने का क्रम। विस्तार। फैलाव। ३. सांसारिक व्यवहारों का विस्तार। दुनिया का जंजाल। उ०—(क) परमारथी प्रपंच वियोगी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सपने होइ भिखारि नृप रंक नाकपति होय। जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोय।—तुलसी (शब्द०)। ४. बखेड़ा। झंझट। झगड़ा। झमेला। उ०—देहु, कि लेहु अजस करि नाहीं। मोहिं न बहुत प्रपंच सुहाहीं।—तुलसी (शब्द०)। ५. आडंबर। ढोंग। छल। धोखा। उ०—रचि प्रपंच भूपहि अपनाई। रामतिलक हित लगन धराई।—तुलसी (शब्द०)। ६. विपर्यास। प्रतिकूलता। वैपरीत्य (को०)। ७. राशि। संचय। पुंज (को०)। ८. व्याख्या। विस्तार। विश्लेषण (को०)। ९. नाटक में परिहासजनक कथन। असंगत या भोंडा कथन (को०)।

प्रपंचक—वि० [सं० प्रपञ्चक] १. दिखानेवाला। प्रदर्शन करनेवाला २. विकास करनेवाला। ३. सांगोपांग व्याख्या करनेवाला। विस्तार से विदर्शित करानेवाला [को०]।

प्रपंचन—संज्ञा पुं० [सं० प्रपञ्चन] [वि० प्रपंचित] विस्तार बढ़ाना। तूल देना।

प्रपंचबुद्धि—वि० [सं० प्रपञ्चबुद्धि] धूर्त। धोखेबाज [को०]।

प्रपंचवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आडंबर या ढोंग से भरी बात। २. विस्तृत बातचीत। ब्योरे की बात [को०]।

प्रपंचित—वि० [सं० प्रपञ्चित] १. जो विस्तृत किया गया हो। फैलाया या विस्तार किया हुआ। २. भ्रमयुक्त। ३. जिससे भूल हुई हो। प्रतारित। जो छला गया हो।

प्रपंची—वि० [सं० प्रपञ्चिन्] १. प्रपंच रचनेवाला। २. छली। कपटी। ढोंगी। आडंबर फैलानेवाला। ३. झगड़ालू। बखेड़िया।

प्रपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष का सिरा या छोर, जैसे, पक्षिव्यूहबद्ध सेना का [को०]।

प्रपतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उड़ जाना। २. नीचे गिरना। पतन। ३. वह स्थान जिसपर से कोई वस्तु गिरे। ४. मृत्यु। नाश। समाप्ति। ५. चट्टान। ६. आक्रमण [को०]।

प्रपतित—वि० [सं०] १. उड़ा हुआ। जो उड़ गया हो। २. गिरा हुआ। नीचे आया हुआ। ३. नष्ट। बरबाद। ४. मरा हुआ। मृत [को०]।

प्रपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनन्य शरणागत होने की भावना। अनन्य भक्ति। उ०—वैष्णव ग्रंथन सकल पढ़ायो। पुनि प्रपत्ति को मर्म सुनायो।—रघुराज (शब्द०)।

प्रपथ—वि० [सं०] शिथिल। थका माँदा।

प्रपथ्य—वि० [सं०] जो विशेष हित करे। अत्यंत हितकर [को०]।

प्रपथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हड़।

प्रपद—संज्ञा पुं० [सं०] पैर का अगला भाग।

प्रपदन—संज्ञा पुं० [सं०] पहुँच। पैठ। प्रवेश [को०]।

प्रपदीन—वि० [सं०] प्रपद संबंधी। पैर के पंजे का। पैर के अगले भाग से संबद्ध [को०]।

प्रपन्न—वि० [सं०] १. प्राप्त। २. आया हुआ। पहुँचा हुआ।

३. शरण में आया हुआ। शरणागत। आश्रित। ४. कष्टग्रस्त। दीन। दुखी (को०)।

प्रपलायन—संज्ञा पुं० [सं०] भाग जाना। पलायन करना [को०]।

प्रपलायित—वि० [सं०] १. भागा हुआ। भगू। भगोड़ा। २. पराजित। हारा हुआ [को०]।

प्रपन्नाड़—संज्ञा पुं० [सं० प्रपन्नाड] चक्रमर्दक। चकवँड़।

प्रपर्ण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गिरा हुआ पत्ता।

प्रपर्ण[2]—वि० (पेड़ आदि) जो पत्तों से रहित हो [को०]।

प्रपलायी—वि० [सं०] १. भगू। भगोड़ा। भागनेवाला [को०]।

प्रपलाश—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रपर्ण'।

प्रपा—संज्ञा पुं० [सं०] १. पौसरा। प्याऊ। वह स्थान जहाँ प्यासों को पानी पिलाया जाता है। २. कूप। कूआँ (को०)। ३. जलप्रणाली (को०)। ४. पशुओं के जल पीने का हौज (को०)। ५. यज्ञशाला।

प्रपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घाव आदि का पकना। २. दाह। जलन। प्रदाह [को०]।

प्रपाठ, प्रपाठक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेद के अध्यायों का एक अंश। २. श्रौत ग्रंथों का एक अंश।

प्रपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. हस्ताग्र। हाथ का अगला सिरा। २. हथेली [को०]।

प्रपांडु—वि० [सं० प्रपाण्डु] अत्यधिक श्वेत [को०]।

प्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहाड़ या चट्टान का ऐसा किनारा जिसके नीचे कोई रोक न हो। खड़ा किनारा जहाँ से गिरने पर कोई वस्तु बीच में न रुक सके। भृगु। अतट। २. एक प्रकार की उड़ान। ३. एकबारगी नीचे गिरना। ४. ऊँचे से गिरती हुई जलधारा। निर्झर। झरना। दरी। ५. एकाएक। हमला। आकस्मिक आक्रमण (को०)। ६. किनारा। तट (को०)।

प्रपातन—संज्ञा पुं० [सं०] जमीन आदि पर गिराना या नीचे की ओर फेंकना [को०]।

प्रपातांबु—संज्ञा पुं० [सं० प्रपाताम्बु] प्रपात का जल। झरने का पानी [को०]।

प्रपाती—संज्ञा पुं० [सं० प्रपातिन्] वह पर्वत या शिला जिसके आगे कोई रोक न हो [को०]।

प्रपाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सड़क। मार्ग [को०]।

प्रपादिक—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

प्रपान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्याऊ। पौसला। २. एक पेय (को०)।

प्रपानक—संज्ञा पुं० [सं०] फलों के गूदे, रस आदि को पानी में घोलकर नमक, मिर्च, चीनी आदि देकर बनाई हुई पीने की वस्तु। पन्ना। उ०—अनेक सुंदर और स्वादिष्ट पेय पदार्थों से बने हुए प्रपानक रस का आनंद वह पा सकता है।—रस क०, पृ० १६।

प्रपापालिका—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्त्री जो पौसरा चलाती हो [को०]।

प्रपालन—संज्ञा पुं० [सं०] पालन। पोषण। रक्षण [को०]।

प्रपाली—संज्ञा पुं० [सं० प्रपालिन्] बलदेव का एक नाम।

प्रपिता—संज्ञा पुं० [सं० प्रपितामह] दे० 'प्रपितामह'। उ०—हमारा प्रपिता अनभिज्ञनायक माया चक्का में पड़ा डुबकियाँ खा रहा है।—कबीर मं०, पृ० २१५।

प्रपितामह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रपितामही] १. परदादा। दादा का बाप। बाप का दादा। २. परब्रह्म। ३. कृष्ण (को०)।

प्रपितामही—संज्ञा स्त्री० [सं०] परदादी।

प्रपितृव्य—संज्ञा पुं० [सं०] परदादा का भाई।

प्रपीड़क—संज्ञा पुं० [सं० प्रपीडक] सतानेवाला। बहुत कष्ट देनेवाला। २. पीसने या दबानेवाला।

प्रपीड़न—संज्ञा पुं० [सं० प्रपीडन] [वि० प्रपीडित] १ बहुत अधिक कष्ट देना। २. दबाना। ३. धारक औषध।

प्रपीत—वि० [सं०] वायुपूरित। स्फीत। फैला हुआ [को०]।

प्रपीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीना। पान करना [को०]।

प्रपीन—वि० [सं०] दे० 'प्रपीत' [को०]।

प्रपील(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पिपीलक] दे० 'पिपीलक'। उ०—सुबंत रोम राजयं। प्रपील पंति छाजयं।—पृ० रा०, २५।३२६।

प्रपुंज—संज्ञा पुं० [सं० प्रपुञ्ज] बड़ा समूह। भारी झुंड। उ०—विकसित कमलावली चले प्रपुंज चंचरीक, गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।—तुलसी (शब्द०)।

प्रपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रपुत्री] पुत्र का पुत्र। पोता।

प्रपुनाड़—संज्ञा पुं० [सं० प्रपुनाड] दे० 'प्रपुन्नाट'।

प्रपुन्नड़—संज्ञा पुं० [सं० प्रपुन्नड] दे० 'प्रपुन्नाट'।

प्रपुन्नाट—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रमर्दक। चकवँड़।

प्रपुन्नाड़—संज्ञा पुं० [सं० प्रपुन्नाड] दे० 'प्रपुन्नाट'।

प्रपुन्नाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रपुन्नाट'।

प्रपूरक—वि० [सं०] १. पूरा करनेवाला। पूर्ण करनेवाला। २. संतुष्ट करनेवाला [को०]।

प्रपूरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. भरना। पूर्ण करना। संतुष्ट करना। तुष्ट करना। ३. संबद्ध करना। लगाना। ४. झुकाना। जैसे धनुष [को०]।

प्रपुराण—वि० [सं०] अत्यंत पुराना। बहुत काल का [को०]।

प्रपूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंटकारी। कटेरी। भटकटैया।

प्रपूरित—वि० [सं०] पूर्ण। भरा हुआ [को०]।

प्रपूर्ण—वि० [सं०] पूर्ण। भरा हुआ। युक्त। उ०—द्वादश कलाओं से प्रपूर्ण जन जनपद।—तुलसी०, पृ० ६।

प्रपूर्वग—संज्ञा पुं० [सं०] १. परब्रह्म। ईश्वर। २. अश्विनीकुमार का नाम [को०]।

प्रपौंडरीक—संज्ञा पुं० [सं० प्रपौण्डरीक] पौंडरीक। पुंडरी का पौधा।

प्रपौत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रपौत्री]। पड़पोता। पुत्र का पोता। पोते का पुत्र।

प्रपौत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] परपोती । पुत्र की पोती । पोते की पुत्री ।

प्रप्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] सृजन [को०] ।

प्रफुटना—क्रि० अ० [सं० प्र + स्फुटन] दे० 'प्रफुलना' ।

प्रफुलित(पु)—वि० [हिं० प्रफुलना] दे० 'प्रफुल्ल' । उ०—प्रफुलित पंकज आए षटपद हिये यूं हरषावियौ ।—रघु० रू०, पृ० १२६ ।

प्रफुलना(पु)—क्रि० अ० [सं० प्रफुल्ल] फूलना । खिलना । विकसित होना ।

प्रफुला(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रफुल्ल (=खिला हुआ)] १. कुमुदिनी । कुंई । उ०—प्रफुला हार हिए लसै सन की बेंदी भाल । राखति खेत खरी खरी खरे उरोजन बाल ।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—पं० हरिप्रसाद ने इस दोहे का जो संस्कृत अनुवाद आर्या छंद में किया है । उसमें यही अर्थ लिया है—लसित कुमुदिनीमाला ग्रामीणा क्षण कुसुमतिलकभाला । उन्नत पयोधरेयं रक्षित बालोत्थिता क्षेत्रम् ।

२. कमलिनी । कमल । उ०—छूवैगा जो, तू रे ! भवँर कहुँ याको तनक हू । करौं तोको बंदी पकरि प्रफुला के उदर में । —लछमणसिंह (शब्द०) ।

प्रफुलित(पु)—वि० [सं० प्रफुल्ल] १. खिला हुआ । कुसुमित । उ०—मुख देखत शोभा एक आवत मनो राजीव प्रकाश । अरुण आगमन देखिके प्रफुलित भए हुलास ।—सूर (शब्द०) । २. प्रफुल्ल । आनंदित । उ०—अँगुरिन में अंगुरी कर हिए । प्रफुलित फिरे संग हरि लिए ।—लल्लू (शब्द०) । ३. जागृत । उ०—मलयागिरि बासी हू पवन काम अभिनि प्रफुलित करत । —ब्रज० ग्रं०, पृ० १०१ ।

प्रफुल्त—वि० [सं०] खिला हुआ । विकसित । प्रफुल्ल [को०] ।

प्रफुल्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विकास । प्रफुल्ल होना [को०] ।

प्रफुल्ल—वि० [सं०] १. विकासयुक्त । खिला हुआ । विकसित । प्रस्फुटित । जैसे, प्रफुल्ल कुसुम । २. कुसुमित । फूला हुआ । जिसमें फूल लगे हों । ३. खुला हुआ । जो मुँदा हुआ न हो जैसे, प्रफुल्ल नेत्र । ४. प्रसन्न । हँसता हुआ । आनंदित । जैसे, प्रफुल्ल वदन ।

यौ०—प्रफुल्लनयन । प्रफुल्लनेत्र । प्रफुल्ललोचन । प्रफुल्लवदन ।

प्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० प्रबन्ध] १. प्रकृष्ट बंधन । बाँधने की डोरी आदि । २. बँधान । कई वस्तुओं या बातों का एक में ग्रथन । योजना । ३. पूर्वापर संगति । बँधा हुआ सिलसिला । ४. एक दूसरे से संबद्ध वाक्यरचना का विस्तार । लेख या अनेक संबद्ध पद्यों में पूरा होनेवाला काव्य । निबंध । उ०—दुर-जोधन अवतार हुप सत सावित सकबंध । आरंभ सम किय भुवन मँह ताते चंद्र प्रबंध ।—प० रासो, पृ० १ ।

विशेष—फुटकर पद्यों को प्रबंध नहीं कहते, प्रकीर्णक कहते हैं ।

५. आयोजन । उपाय । ६. व्यवस्था । बंदोबस्त । इंतजाम । उ०—हते इंद्र अति कोह के और किए प्रबंध । नँदनंदहु को लखत नहिं ऐसो मति को अंध ।—व्यास (शब्द०) ।

प्रबंधक—वि० संज्ञा पुं० [सं० प्रबन्धक] प्रबंधकर्ता । प्रबंध करनेवाला [को०] ।

प्रबंधकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रबन्धकल्पना] १. प्रबंधरचना । संदर्भरचना । २. ऐसा प्रबंध जिसमें थोड़ी सी सत्य कथा में बहुत सी बात ऊपर से मिलाई गई हो ।

प्रबंधकाव्य—संज्ञा पुं० [सं० प्रबन्धकाव्य] काव्य का एक भेद जो मुक्तक काव्य के विपरीत है और जिसमें जीवन की घटनाओं का क्रमबद्ध उल्लेख किया जाता है, जैसे रामचरितमानस । उ०—कहीं तो प्रबंधकाव्य और कहीं मुक्तककाव्य के कृत्रिम विभेद खड़े कर सूरदास जी की हेठी दिखाई गई है । —पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १०७ ।

प्रबंधन—संज्ञा पुं० [सं० प्रबन्धन] १. प्रकृष्ट बंधन । डोरी आदि बाँधने की वस्तु । २ बाँधने का कार्य । बाँधना [को०] ।

प्रबु(पु)†[१]—संज्ञा पुं० [सं० प्रभु] प्रभु । स्वामी । मालिक । ईश्वर । उ०—साधु संग कबहूँ नहिं कीन्हा, नहिं कीरति प्रब गाई । जन नानक, में नही कोउ गुन, राखि लेहु सरनाई ।—संत वाणी०, भा० २, पृ० ६० ।

प्रब[२]—संज्ञा पुं० [सं० पर्व, पुं० हिं० प्रब्ब] दे० 'पर्व' ।

प्रबच्छति प्रेयसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'प्रवत्स्यत्प्रेयसी' । उ०—कही प्रबच्छति प्रेयसी, आगतपतिका बाम । —मति० ग्रं०, पृ० २६४ ।

प्रबभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०] ।

प्रबर्ह—वि० [सं०] सर्वोत्कृष्ट । सर्वश्रेष्ठ । सर्वप्रधान [को०] ।

प्रबल[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रबला] १. बलवान् । प्रचंड । २. जोर का । तेज । तुंद । उग्र । उ०—कबहुँ प्रबल चल मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।—तुलसी (शब्द०) । ३. कष्टकर । हानिकर । खतरनाक (को०) । ४. भारी । घोर । महान् । उ०—लपट झपट झहराने हहराने बात भहराने भट परयो प्रबल परावनो ।—तुलसी (शब्द०) । ५. हानिकर । नुकसानदेह (को०) ।

प्रबल[२]—संज्ञा पुं० १. एक दैत्य का नाम । २. पल्लव । कोंपल [को०] ।

प्रबला[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी नाम की ओषधि ।

प्रबला[२]—वि० स्त्री० १. बहुत बलवती । २. प्रचंडा ।

प्रबह्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहेली । प्रहेलिका । बुझौवल [को०] ।

प्रबाधक—वि० [सं०] १. विरोध करनेवाला । हटानेवाला । २. सतानेवाला । कष्टकर । ३. अलग रखने या रोकनेवाला । पीछे रखनेवाला । ४. अस्वीकार करनेवाला । न माननेवाला [को०] ।

प्रबाधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कष्ट देना । सताना । २. अस्वीकार करना । न मानना । ३. अलग रखना । दूर रखना [को०] ।

प्रबाधित—वि० [सं०] १. सताया हुआ । पीड़ित । २. बलपूर्वक आगे किया हुआ । आगे बढ़ाया हुआ [को०] ।

प्रबाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पल्लव। कोंपल। उ०—रसाल का वृक्ष अपने विशाल हाथों को पिप्पल के चंचल प्रबालों से मिलाता है। —श्यामा०, पृ० ४१। २. दे० 'प्रवाल।'

प्रबालक—संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष।

प्रबालपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त कमल। लाल कमल [को०]।

प्रबालफल—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन।

प्रबालभस्म—संज्ञा पुं० [सं० प्रबालभस्मन्] मूँगे का भस्म जो एक ओषधि है [को०]।

प्रबालवर्ण—वि० [सं०] मूँगे के रंग का लाल [को०]।

प्रबालिक—संज्ञा पुं० [सं०] जीवशाक।

प्रबास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रवास] दे० 'प्रवास'। उ०—कहि पूरब अनुराग अरु मान प्रबास विचारि। रस सिंगार बियोग के तीन भेद निरधारि।—मति० ग्रं०, पृ० ३५०।

प्रबाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाह] दे० 'प्रवाह'। उ०—कवि मतिराम जाकी चाह ब्रजनारिन को, देह अँसुवान की प्रबाह भीजियतु है।—मति० ग्रं०, पृ० २८३।

विशेष—यह शब्द पुंलिंग है, पर उदाहरण में कवि ने स्त्रीलिंग प्रयोग किया है।

प्रबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ का अगला भाग। पहुँचा।

प्रबाहुक—अव्य० [सं०] १. सीध में। एक लाइन में। २. समतल में। सतह के बराबर।

प्रबिसना(पु)—क्रि० अ० [सं० प्रविश्] दे० 'प्रविसना'। उ०—दधि दूब हरद भरि कनक थार। बहु गीत करत प्रबिसंत बाल।—ह० रासो, पृ० ३२।

प्रबीन(पु)—वि० [सं० प्रवीण] दे० 'प्रवीण'। उ०—सोच करो जिन होहु सुखी मतिराम प्रबीन सबै नर नारी। मंजुल बंजुल कुंजन में घन, पुंज सखी ! ससुरारि तिहारी।—मति० ग्रं०, पृ० २६०।

प्रबीर(पु)—वि० [सं० प्रवीर] दे० 'प्रवीर'।

प्रबुद्ध[1]—वि० [सं०] १. प्रबोध युक्त। जागा हुआ। २. होश में आया हुआ। जिसे चेत हुआ हो। ३. पंडित। ज्ञानी। ४. विकसित। प्रफुल्ल। खिला हुआ। ५. सजीव (को०)।

प्रबुद्ध[2]—संज्ञा पुं० १. नव योगेश्वरों में से एक योगेश्वर। २. ऋषभदेव के एक पुत्र जो भागवत के अनुसार परम भागवत थे।

प्रबुध—संज्ञा पुं० [सं०] महान् संत। श्रेष्ठ महात्मा [को०]।

प्रबोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. जागना। नींद का टूटना। २. यथार्थ ज्ञान। पूर्ण बोध। ३. सांत्वना। आश्वासन। ढाढ़स। तसल्ली। दिलासा। उ०—आनंदघन हित बरस बरस पद परस प्रबोध प्रसादहि दीजै।—घनानंद, पृ० ३४४।

क्रि० प्र०—करना।

४. चेतावनी।

क्रि० प्र०—देना।

५. महाबुद्ध की एक अवस्था। ६. विकास। खिलना। ७. सुगंध को पुनः तेज करना। गंध दीप्त करना (को०)। ८. व्याख्या करना। सुस्पष्ट करना। विस्तृत करना (को०)।

प्रबोधक[1]—वि० [सं०] १. जगानेवाला। २. चेतानेवाला। ३. समझानेवाला। ज्ञानदाता। ४. सांत्वना देनेवाला। ढाढ़स बँधानेवाला।

प्रबोधक[2]—संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जिसका काम राजा को जगाना हो। राजा को जगानेवाला। स्तुतिपाठक [को०]।

प्रबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जागरण। जागना। २. जगाना। नींद से उठाना। ३. यथार्थ ज्ञान। बोध। चेत। ४. बोध कराना। जताना। ज्ञान देना। चेत कराना। समझाना बुझाना। ५. विकास या विकसित करने का कार्य। ६. सांत्वना या सांत्वना देने का कार्य। ७. गंध को दीप्त करना (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

प्रबोधनप्रणाली—संज्ञा पुं० [सं० प्रबोधन + प्रणाली] अध्यापन की एक विधि [को०]।

प्रबोधना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रबोधन] १. जगाना। नींद से उठाना। २. सजग करना। सचेत करना। होशियार करना। जताना। ३. समझाना बुझाना। मन में बात बिठाना। उ०—(क) कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्ह मातु परितोष। लगे पबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष।—तुलसी (शब्द०)। (ख) प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा।—तुलसी (शब्द०)। ४. सिखाना। पाठ पढ़ाना। पट्टी पढ़ाना। उ०—सखिन सिखावन दीन, सुनत मधुर परिणाम हित। तेइ कछु कान न कीन, कुटिल प्रबोधी कूबरी।—तुलसी (शब्द०)। ५. ढाढ़स देना। तसल्ली देना। उ०—(क) कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरज धरहु प्रबोधेसि रानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जननी ब्याकुल देखि प्रबोधत धीरज करि नीके जदुराई। सूर श्याम को नेकु नहीं डर जनि रोवै, तू जसुमति माई।—सूर (शब्द०)।

प्रबोधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्लपक्ष की एकादशी जिस दिन विष्णु भगवान् सोकर उठते हैं। देवोत्थान एकादशी। २. जवासा। धमासा।

प्रबोधित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रबोधिता] १. जो जगाया गया हो। जागा हुआ। २. जिसका प्रबोध किया गया हो। ३. ज्ञानप्राप्त।

क्रि प्र०—करना।—होना।

प्रबोधिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में (स ज स ज ग) सगण, जगण फिर सगण, जगण और अंत में गुरु होता है। इसे सुनंदिनी और मंजुभाषिणी भी कहते हैं। दे० 'सुनंदिनी'।

प्रबोधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कार्तिक शुक्ल एकादशी। पुराणानुसार इस दिन भगवान् विष्णु सोकर उठते हैं। २. जवासा।

प्रब्ब(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पर्व] दे० 'पर्व'। उ०—फिर पुच्छी पुच्छि

राज नृप, कहो चंद कवि सब्ब। होतु सुकातिक मास महिं, दीपमालिका प्रब्ब।—पृ० रा०, २३।१।

प्रब्बत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पर्वत] दे० 'पर्वत'। उ०—(क) धरि कच्छ रूप सक्रप्पं।...धरि मंद प्रब्बत पुठ्ठयं।—पृ० रा०, २।१०६। (ख) सिर बाइ बाइ नरनाह तब प्रब्बत सम प्रब्बत भिरे।—पृ० रा०, ७.८२।

प्रभंग—संज्ञा पुं० [सं० प्रभङ्ग] १. तोड़ना। विदलित करना। २. पूर्णतः पराजय। ३. वह जो तोड़े फोड़े या विदलित करे [को०]।

प्रभंजन¹—संज्ञा पुं० [सं० प्रभञ्जन] १. तोड़ फोड़। उखाड़ पछाड़। नाश। उ०—त्रिविधि प्रभंजन चलि सुरभि करत प्रभंजन धीर। तन मन गंजन अलि प्रभृत बिन मनरंजन बीर।—स० सप्तक, पृ० २५०। २. प्रचंड वायु। महावात। आँधी। ३. हवा। वायु। उ०—त्रिविध प्रभंजन चलि सुरभि करत प्रभंजन धीर।—स० सप्तक, पृ० २५०।

यौ०—प्रभंजनसुत = हनुमान।

४. मणिपुर का राजा (महाभारत)।

प्रभंजन²—वि० नष्ट करनेवाला। तोड़फोड़ करनेवाला [को०]।

प्रभ—वि० [सं०] प्रभायुक्त। प्रकाशमय। चमकदार (समासांत में प्रयुक्त) जैसे, नीलांजनप्रभ। उ०—जहाँ चहकते विहग, बदलते क्षण क्षण विद्युत्प्रभ घन।—ग्राम्या, पृ० १६।

प्रभग्न—वि० [सं०] १. तोड़ा हुआ। चूर चूर किया हुआ। २. पराजित [को०]।

प्रभत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभ ?] प्रभुत्व। प्रशंसा। श्रेष्ठता। शोभा। शाबाशी। उ०—बस गाजो जीम कहै हम बाँको कड़वा बोल्यां प्रभत किसी।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १०३।

प्रभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] नीम।

प्रभद्रक¹—संज्ञा पुं० [सं०] पंद्रह अक्षरों का एक वर्णवृत्त। दे० 'प्रभद्रिका'।

प्रभद्रक²—वि० अत्यंत सुंदर। अतीव सलोना [को०]।

प्रभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी लता।

प्रभद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंद्रह अक्षरों की वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में नगण, भगण फिर जगण और अंत में रगण होता है। जैसे,—निज गुण रामचंद्र दससीस ढाइ हैं।

प्रभव—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्पत्ति का कारण। उत्पत्तिहेतु। २. उत्पत्तिस्थान। आकर। ३. जन्म। उत्पत्ति। ४. सृष्टि। संसार। ५. जल का निर्गम स्थान। वह स्थान जहाँ से कोई नदी आदि निकले। उद्गम। ६. प्रभाव। पराक्रम। ७. साठ संवत्सरों में एक संवत्सर। इस संवत्सर में वृष्टि अधिक होती है और प्रजा निरोग और सुखी रहती है। ८. विष्णु का एक नाम (को०)। ९. मूल (को०)। १०. वृद्धि। सौभाग्य। उदय। अभ्युदय (को०)।

प्रभवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्पत्ति। २. आकर। ३. मूल। ४. अधिष्ठान।

प्रभविता—संज्ञा पुं० [सं० प्रभवितृ] प्रभु। प्रधान शासक [को०]।

प्रभविष्णु¹—वि० [सं०] १. प्रभावशील। प्रभावशाली। उ०—व्यक्ति को समाज में सफल, आनंदपूर्ण, प्रभविष्णु एवं कलात्मक जीवन जीने की कला सीखना होगा।—स० दर्शन, पृ० ११०। २. शक्तियुक्त। ताकतवर। समर्थ। शक्त (को०)।

प्रभविष्णु²—संज्ञा पुं० १. प्रभु। स्वामी। अधीश्वर। २. विष्णु।

प्रभविष्णुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभावित करने की शक्ति। प्रभावात्मकता। दूसरों पर असर डालने का सामर्थ्य। उ०—पूर्ण प्रभविष्णुता के लिये काव्य में हम भी सत्वगुण की सत्ता आवश्यक मानते हैं।—रस०, पृ० ६६।

प्रभांजन—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभाञ्जन] शोभांजन। सहजन का पेड़।

प्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीप्ति। प्रकाश। आभा। चमक। २. किरण। रश्मि। ३. सूर्य का बिंब। ४. सूर्य की एक पत्नी। ५. एक अप्सरा का नाम। ६. एक द्वादशाक्षर वृत्ति जिसे मंदाकिनी भी कहते हैं। ७. दुर्गा (को०)। ८. कुबेर की पुरी। अलका (को०)। ८. एक गोपी का नाम (को०)। ९. स्वर्भानु की कन्या का नाम जो नहुष की माता थी (को०)।

यौ०—प्रभाकर। प्रभाकरी। प्रभाकीट। प्रभापल्लवित = प्रभा से व्याप्त। जिसपर प्रभा फैली हो। प्रभाप्रभु। प्रभाप्ररोह = प्रकाशरश्मि। प्रभाभिद् = अत्यंत दीप्त। प्रभामंडल। प्रभालेपी।

प्रभाउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रभाव] दे० 'प्रभाव'। उ०—तिमिर ग्रसित सब लोक ओक लखि दुखित दयाकर। प्रगट कियो अद्भुत प्रभाउ भागवत विभाकर।—नंद० ग्रं०, पृ० ४।

प्रभाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. चंद्रमा। ३. अग्नि। ४. मदार का पौधा। आक। ५. समुद्र। ६. एक नाग का नाम। ७. मार्कंडेय पुराण के अनुसार आठवें मन्वंतर के देवगण के एक देवता। ८. एक प्रसिद्ध मीमांसक। ९. कुशद्वीप के एक वर्ष का नाम। १०. शिव का एक नाम (को०)। ११. एक रत्न। पद्म राग (को०)।

प्रभाकरवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] स्थाण्वीश्वर (थानेसर) के एक राजा जो विक्रम संवत् ६०० के पूर्व राज्य करते थे।

विशेष—इन्हीं के पुत्र महाप्रतापी हर्षवर्द्धन हुए जिनकी राजधानी कान्यकुब्ज थी और जिनके सभाकवि बाणभट्ट थे। ये सूर्योपासक थे।

प्रभाकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बोधिसत्वों की तृतीय अवस्था जो प्रमुदिता और विमला के उपरांत प्राप्त होती है।

प्रभाकीट—संज्ञा पुं० [सं०] खद्योत। जुगनू।

प्रभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. विभाग का विभाग। २. भिन्न का भिन्न। जैसे, ½ का ⅓ इत्यादि।

प्रभात¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रातःकाल। सबेरा। २. एक देवता जो सूर्य और प्रभा से उत्पन्न माना गया है।

यौ०—प्रभातकरणीय = वे कार्य जिन्हें प्रातःकाल करना उचित

हो। प्रातःकालीन कृत्य। प्रभातकल्प = प्रभात सा। सुबह की तरह। प्रभातकाल = सुबह। सवेरा। प्रभातप्राय = दे० 'प्रभातकल्प'।

प्रभात[2]—वि० जो स्पष्ट, साफ या द्योतित होने लगा हो [को०]।

प्रभातफेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभात+हिं० फेरी] प्रातःकालीन सामूहिक भ्रमण जो धार्मिक या किसी अन्य उत्सव को मनाने के उद्देश्य से किया जाता है। इस अवसर पर भजन, कीर्तन अथवा उद्देश्यबोधक नारे भी लगाते हैं।

प्रभाती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रत्यूष और प्रभास नामक वसुओं की माता (महाभारत)। २. एक प्रकार का गीत जो प्रातःकाल गाया जाता है। ३. दतुअन। दातुन। दंतधावन।

प्रभान—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योति। दीप्ति। प्रकाश।

प्रभापन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकाशयुक्त करना। प्रकाशित करना। दीप्तियुक्त करना [को०]।

प्रभापाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व।

प्रभापूर्य—वि० [सं०] १. प्रभापूर्ण। दीप्तिमान्। कांतियुक्त। २. ज्योतित या दीप्त करनेवाला। दीप्ति या प्रभा भरनेवाला। उ०—भारत के नभ का प्रभापूर्य। शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य।—तुलसी०, पृ० ३।

प्रभामंडल—संज्ञा पुं० [सं० प्रभामण्डल] प्रकाशचक्र। प्रकाश का घेरा [को०]।

प्रभाय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रभाव, प्रा० पहाव, पहाय, पभाव] दे० 'प्रभाव'। उ०—श्रीपति कृपा प्रभाय, सुखी बहुविबस निरंतर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १।

प्रभारक—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग।

प्रभालेपी—वि० [सं० प्रभालेपिन्] १. प्रभामंडित। ज्योति से आवृत। २. जिससे ज्योति निकलती हो। जो चमक देता हो [को०]।

प्रभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. उद्भव। प्रादुर्भाव। २. सामर्थ्य। शक्ति। कोई बात पैदा कर देने की ताकत। असर। जैसे,—मंत्र का बड़ा प्रभाव है। उ०—सुकदेव कह्यो सुनो हो राव। जैसो है हरिभक्ति प्रभाव।—सूर (शब्द०)। ३. महिमा। माहात्म्य। ४. इतना मान या अधिकार कि जो बात चाहे कर या करा सके। साख या दबाव। जैसे,—राजा के दरबार में उसका बहुत कुछ प्रभाव है। ५. अंतःकरण को किसी ओर प्रवृत्त करने का गुण। ६. प्रवृत्ति पर होनेवाला फल या परिणाम। असर। जैसे,—उसपर शिक्षा का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—जमना।

७. मार्कंडेय पुराण में वर्णित स्वारोचिष मनु के एक पुत्र जो कलावती के गर्भ से उत्पन्न थे। ८. प्रभा के गर्भ से उत्पन्न सूर्य के एक पुत्र। ९. सुग्रीव के एक मंत्री का नाम। १०. कोष और दंड से उत्पन्न राजतेज। प्रताप (को०)। ११. विस्तार (को०)।

प्रभावक—वि० [सं०] प्रमुख। शक्तिशाली। प्रधान। प्रभाववाला [को०]।

प्रभावकर—वि० [सं०] प्रभाव डालनेवाला। प्रभावक।

प्रभावज[1]—वि० [सं०] प्रभाव से उत्पन्न। प्रभावजात।

प्रभावज[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का रोग जो देवता, ऋषि, वृद्धादि के शाप या ग्रहादि के हेरफेर से उत्पन्न होता है। २. एक प्रकार की राजशक्ति जो कोष और दंड के रूप में व्यक्त होती है।

प्रभावती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महाभारत के अनुसार सूर्य की पत्नी का नाम। २. तेरह अक्षरों का एक छंद जिसे 'रुचिरा' कहते हैं। ३. शिव के एक गण की वीणा का नाम। ४. कुमार के एक अनुचर मातृगण का नाम। ५. महाभारत के अनुसार अंग देश के राजा चित्ररथ की रानी। ६. प्रभाती नाम का एक राग या गीत। ७. संगीत में एक श्रुति (को०)।

प्रभावती—वि० स्त्री० प्रभावाली। कांतिमती।

प्रभावन—वि० [सं०] १. प्रमुख। प्रधान। २. प्रभावशाली। प्रभावक। ३. रचनात्मक। ४. स्पष्ट करनेवाला। प्रगट करनेवाला [को०]।

प्रभावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] उद्भावना। प्रकाश।

प्रभाववाद—संज्ञा पुं० [सं० प्रभाव+वाद] काव्य का प्रधान गुण हृदय को प्रभावित करना है यह माननेवाला साहित्यिक मत या सिद्धांत। (अं० इम्प्रेशनिज्म)।

प्रभाववादी—संज्ञा पुं० [सं० प्रभाव+वादिन्] वह जो प्रभाववाद का सिद्धांत मानता हो। उ०—प्रभाववादियों के अनुसार किसी काव्य की ऐसी आलोचना कि 'यहाँ रूपक का निर्वाह बहुत अच्छा हुआ है, यहाँ यतिभंग है, यहाँ रसविरोध है, यहाँ पूर्णास है, यहाँ च्युतसंस्कृति या पतत्प्रकर्ष है', कोई आलोचना नहीं।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ९२।

प्रभाववान्—वि० [सं० प्रभाववत्] १. शक्तिशाली। प्रतापी। २. असरदार। प्रभावित करनेवाला [को०]।

प्रभावान्—वि० [सं० प्रभावत्] प्रभायुक्त। दीप्तिमय [को०]।

प्रभावान्वित—वि० [सं०] १. प्रभावित। २. प्रभावमय। प्रभावयुक्त [को०]।

प्रभावान्विति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभावित होने की स्थिति। प्रभाव की अन्विति। असर।

प्रभावित—वि० [सं०] जिसने प्रभाव ग्रहण किया हो। जिसपर प्रभाव पड़ा हो। उ०—हैं समाज सुख साधक दुख बाधक ए। देश प्रेम प्रसाद प्रभावित करहरे।—पारिजात, पृ० ७।

प्रभावी—वि० [सं० प्रभाविन्] [स्त्री० प्रभाविनी] प्रभावान्। शक्तिशाली। २. प्रभावित करनेवाला। असरदार [को०]।

प्रभावोत्पादक—वि० [सं० प्रभाव+उत्पादक] प्रभाव उत्पन्न करनेवाला। प्रभावशील। उ०—इन रचनाओं में उनकी शैली के अनुरूप ही उनके विचार भी अधिक स्पष्ट एवं प्रभावोत्पादक हो गए हैं।—युगांत (भू०), पृ० 'च'।

प्रभाष—संज्ञा पुं० [सं०] एक वसु का नाम।

प्रभास[1]—वि० [सं०] पूर्ण प्रभायुक्त।

प्रभास[2]—संज्ञा पुं० १. दीप्ति। ज्योति। २. एक प्राचीन तीर्थ जिसे सोम तीर्थ भी कहते हैं। गुजरात में सोमनाथ का मंदिर इसी तीर्थ के अंतर्गत था। ३. एक वसु। ४. कुमार का एक अनुचर गण। ५. अष्टम मन्वंतर का एक देवगण। ६. जैनों के एक गणाधिप का नाम (को०)।

प्रभासन—संज्ञा पुं० [सं०] दीप्ति। ज्योति।

प्रभासना(पु)—क्रि० अ० [सं० प्रभासन] प्रकाशित होना। भासित होना। दिखाई पड़ना। उ०—जागृत में जु प्रपंच प्रभासत सो सब बुद्धि बिलास बन्यो है।—निश्चल (शब्द०)।

प्रभासी—वि० [सं० प्रभास] प्रकाशित या व्यक्त करनेवाला। उ०—भृगू लत्त गत्तं प्रभासी प्रभुत्तं। मनी नीलसीतं कटी पट्ट पीतं।—पृ० रा०, २।३६।

प्रभास्वर—वि० [सं०] अधिक दीप्तिमान्। अत्यंत चमकीला [को०]।

प्रभिन्न[1]—वि० [सं०] १. पूर्ण भेदयुक्त। २. बँटा हुआ। विभक्त। टुकड़े टुकड़े किया हुआ (को०)। ३. अलग किया हुआ। पृथक् किया हुआ (को०)। ४. विकसित। खिला हुआ (को०)। ५. बदला हुआ। परिवर्तित (को०)। ६. विकृत किया हुआ (को०)। ७. ढीला या शिथिल किया हुआ (को०)। ८. मद में आया हुआ। मदोन्मत्त (को०)।

प्रभिन्न[2]—संज्ञा पुं० मतवाला हाथी।

प्रभिन्नकरट—वि० [सं०] (हाथी) जिसके गंडस्थल से मद चू रहा हो [को०]।

प्रभिन्नांजन—संज्ञा पुं० [सं० प्रभिन्नाञ्जन] एक प्रकार का अंजन जो तेल में तैयार किया जाता है [को०]।

प्रभीत—वि० [सं०] अत्यंत भयभीत।

प्रभु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो अनुग्रह या निग्रह करने में समर्थ हो। जिसके हाथ में रक्षा, दंड और पुरस्कार हो। अधिपति। नायक। २. जिसके आश्रय में जीवन निर्वाह होता हो। जो रोजी चलाता हो। स्वामी। मालिक। ३. ईश्वर। भगवान्। ४. श्रेष्ठ पुरुष का संबोधन। जैसे, प्रभो! अपराध क्षमा करो। ५. शब्द। ६. पारद। पारा। ७. बंबई प्रांत के कायस्थों की उपाधि। ८. विष्णु। उ०—प्रभुवन की मूरत दूध ना पीवत, सीर पछार नामा रोवत।—दक्खिनी०, पृ० १९। ९. शिव (को०)। १०. ब्रह्मा (को०)। ११. इंद्र (को०)। १२. सूर्य (को०)। १३. अग्नि (को०)।

प्रभु[2]—वि० १. शक्तिशाली। बलवान्। २. योग्य। समर्थ। पर्याप्त। ३. प्रतिस्पर्धी। बराबरीवाला। ४. स्थायी। शाश्वत [को०]।

प्रभुअ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रभुत्व ?] प्रभुत्व। प्रभाव। उ०—अगपत हित मुखखुद दत्त अति जिम, प्रभुअ हुवत दिन रयणपत।—रघु० रू०, पृ० १२१।

प्रभुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ाई। महत्व। उ०—प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू।—मानस, २।१९। २. हुकूमत। शासनाधिकार। उ०—प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३. वैभव। ४. साहिबी। मालिकपन।

प्रभुताई—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभुता + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'प्रभुता'। उ०—अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जान नहिं पाई।—मानस, ३।२।

प्रभुत्त(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रभुत्व] दे० 'प्रभुत्व'। उ०—भृगू लत्त गत्तं प्रभासी प्रभुत्तं।—पृ० रा०, २।३६।

प्रभुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभुता।

प्रभुभक्त[1]—वि० [सं०] स्वामी की सच्ची सेवा करनेवाला। नमकहलाल।

प्रभुभक्त[2]—संज्ञा पुं० अच्छी नस्ल का घोड़ा [को०]।

प्रभुराई(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रभु + हिं० राय] ईश्वर। भगवान्। उ०—यह कहि गुप्त भए प्रभुराई।—कबीर सा०, पृ० ४५५।

प्रभुशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोष और सेना का बल।

प्रभुसत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभु + सत्ता] राज्य या देश पर अखंड और अनुल्लंघ्य शासन का अधिकार। पूर्ण अधिकार।

प्रभुसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कार्य जो प्रभुशक्ति से सिद्ध हो।

प्रभू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रभु] दे० 'प्रभु'। उ०—चल्यो गयो तह विप्र क्षिप्र गति कतहुँ न अटक्यो। प्रभू जान बहुमन्य, पौरिया पायनि लटक्यो।—नंद० ग्रं०, पृ० २०४।

प्रभूत[1]—वि० [सं०] १. जो अच्छी तरह हुआ हो। भूत। २. उद्गत। निकला हुआ। उत्पन्न। ३. उन्नत। ४. प्रचुर। बहुत अधिक। बहुत ज्यादा।

प्रभूत[2]—संज्ञा पुं० पंचभूत। तत्व। उ०—राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जल हू थल छाई। मानो प्रताप हुतासन धूम सो केसवदास अकास न माई। मेटि कै पच प्रभूत किधौं विधि रेनुमयी नव रीति चलाई। दुःख निवेदन को भव भार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई।—केशव (शब्द०)।

प्रभूतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अधिकता। बहुतायत। २. राशि। अंबार। ढेर [को०]।

प्रभूतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रभूतता' [को०]।

प्रभूतांश—संज्ञा पुं० [सं० प्रभूत+अंश] अधिक अंश। अधिक मात्रा। उ०—'सवर्णो सा' कहने का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि पूर्ण सवर्णी तो नहीं होता, किंतु प्रभूतांश में उससे मिलता जुलता है।—संपूर्णानंद अभि० ग्रं०, पृ० २०७।

प्रभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पत्ति। २. शक्ति। ३. प्रचुरता। अधिकता। ज्यादती।

प्रभूष्णु—वि० [सं०] योग्य। शक्तिशाली। क्षम [को०]।

प्रभृत(पु)—संज्ञा स्त्री० या पुं० [सं० परभृत] कोकिल। परभृत। उ०—त्रिविध प्रभंजन चलि सुरभि करत प्रभंजन धीर। तन मन गंजन अलि प्रभृत बिन मनरंजन बीर।—स० सप्तक, पृ० २५०।

प्रभृति[1]—अव्य [सं०] इत्यादि। आदि। वगैरह।

प्रभृति[2]—संज्ञा स्त्री० आरंभ। शुरुआत। आदि। जैसे, इंद्रप्रभृति देवता।

विशेष—अधिकतर बहुब्रीहि समास में इसका प्रयोग प्राप्त होता है।

प्रभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेद। विभिन्नता। २. स्फोटन। फोड़कर निकलना। ३. उद्गम स्थान (को०)। ४. विभाग। अंतर (को०)।

प्रभेदक—वि० [सं०] १. फाड़नेवाला। टुकड़े टुकड़े करनेवाला। २. पृथक् करनेवाला। अलग करनेवाला [को०]।

प्रभेदन—वि० [सं०] दे० 'प्रभेदक' [को०]।

प्रभेदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेधने या छेदने का एक अस्त्र।

प्रभेव—पुं० [सं० प्र+भेद, प्रा० भेव] प्रभेद। भेद। भिन्नता।

प्रभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] गिरना। पतन। पात [को०]।

प्रभ्रंशथु—संज्ञा पुं० [सं०] पीनस रोग।

प्रभ्रंशित—१. वि० [सं०] फेंका या गिराया हुआ। २. वंचित। विनाकृत। वियुक्त। ३. अलग किया हुआ। निकाला हुआ [को०]।

प्रभ्रंशी—वि० [सं० प्रभ्रंशिन्] गिरनेवाला। अलग होनेवाला [को०]।

प्रभ्रष्ट[1]—वि० [सं०] १. गिरा हुआ। २. टूटा हुआ।

प्रभ्रष्ट[2]—संज्ञा पुं० दे० 'प्रभ्रष्टक' [को०]।

प्रभ्रष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] शिखावलंबिनी माला। सिर से लटकती हुई माला।

प्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] पहिए का बाहरी हिस्सा या बाहरी हिस्से का खंड [को०]।

प्रमंथ—संज्ञा पुं० [सं० प्रमन्थ] लकड़ी जिससे अग्नि पैदा करते हैं [को०]।

प्रम—वि० [सं० परम] १. श्रेष्ठ। प्रधान। उ०—इस रसवाल थयी प्रम प्रंसी। —रा० रू०, पृ० १४। २. परम। अत्यंत। उ०—मधुर अजोध्या ओपा मंडल। एतो आद धाम प्रम उज्वल।—रा० रू०, पृ० ३६३।

प्रमग्न—वि० [सं०] डूबा हुआ। लीन। निमग्न [को०]।

प्रमणा—वि० [सं० प्रमणस्] दे० 'प्रमना' [को०]।

प्रमत—वि० [सं०] १. सोचा हुआ। विचारित। २. होशियार। चालाक। चतुर [को०]।

प्रमति—संज्ञा पुं० [सं०] १. च्यवन ऋषि के एक पुत्र का नाम। २. वह जिसकी बुद्धि उत्कृष्ट हो। प्रकृष्ट मतिवाला [को०]।

प्रमत्त—वि० [सं०] १. उन्मत्त। मतवाला। मस्त। नशे में चूर। उ०—पीछे पूर्वकथा प्रमत्त जन को है याद आती न क्यों। —शकुं०, पृ० २१। २. पागल। विक्षिप्त। बावला। ३. जिसकी बुद्धि ठिकाने न हो। जो सावधान या सचेत न हो। जो खबरदार न हो। असावधान। ४. त्रुटि या भूल करनेवाला (को०)। ५. करणीय कार्य को न करनेवाला (को०)।

यौ०—प्रमत्तगीत = प्रमाद या असावधानता से गाया हुआ गीत। प्रमत्तचित्त = प्रमत्त चित्त का। प्रमादी। लापरवाह।

प्रमत्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मस्ती। २. पागलपन। ३. असावधानता। लापरवाही (को०)।

प्रमथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मथन या पीड़ित करनेवाला। वह जो मथन करे। २. शिव के एक प्रकार के गण या पारिषद जिनकी संख्या ३६ करोड़ बताई गई है।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि प्रमथों में से कुछ तो भोगविमुख, योगी और त्यागी हैं और कुछ कामुक, भोगपरायण और शिव की क्रीड़ा में सहायक हैं। प्रमथ बहुत बड़े मायावी कहे गए हैं।

यौ०—प्रमथनाथ। प्रमथपति। प्रमथाधिप। प्रमथेश्वर।

३. घोड़ा। अश्व। ४. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

प्रमथन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मथना। २. पीड़ित करना। दुःख पहुँचाना। क्लेश देना। यंत्रणा देना। ३. नष्ट करना। क्षति पहुँचाना (को०)। ४. वध करना। नाश करना।

प्रमथनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

प्रमथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हरीतकी। हड़। २. पीड़ा।

प्रमथाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। प्रमथनाथ।

प्रमथालय—संज्ञा पुं० [सं०] दुःख या यंत्रणा का स्थान। नरक।

प्रमथित[1]—वि० [सं०] १. खूब मथा हुआ। २. पीड़ित किया हुआ (को०)। ३. कुचला, रौंदा या नष्ट किया हुआ (को०)। ४. जिसका वध किया गया हो। मारा हुआ (को०)।

प्रमथित[2]—संज्ञा पुं० मट्ठा, जिसमें ऊपर से पानी न मिला हो।

प्रमथी—वि० [सं० प्रमथिन्] नष्ट करनेवाला [को०]।

प्रमथेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

प्रमद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मतवालापन। उ०—प्रमद आलस से मिला है। —अर्चना, पृ० १०६। २. धतूरे का फल। ३. हर्ष। आनंद।

यौ०—प्रमदकानन। प्रमदवन।

४. एक प्रकार का दान। ५. वसिष्ठ के एक पुत्र का नाम।

प्रमद[2]—वि० मत्त। मतवाला।

प्रमदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. परलोक को न माननेवाला। नास्तिक। २. वह जो कामी हो। कामुक। भोगी।

प्रमदकानन—संज्ञा पुं० [सं०] वह उपवन या वन जिसमें नरेश और रानियाँ आनंदोत्सव मनाती हैं। प्रमोदवन [को०]।

प्रमदन—संज्ञा पुं० [सं०] विषय की कामना। कामेच्छा [को०]।

प्रमदवन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रमदकानन। क्रीडोद्यान।

प्रमदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. युवती स्त्री। सुंदरी स्त्री। २. मालकंगनी। प्रियंगु। ३. एक वृत्त। एक छंद (को०)। ४. कन्या राशि (को०)।

यौ०—प्रमदाकानन, प्रमदावन = क्रीडोद्यान। प्रमदाजन। प्रमदाशाजन = स्त्री। महिला। प्रमदा।

प्रमद्वर—वि० [सं०] असावधान। बेपरवाह। असावधान [को०]।

प्रमन—वि० [सं० प्रमनस्, प्रमना] १. हर्षयुक्त। प्रसन्न। उ०—कासासाँकर का [illegible] सोभा [illegible] निर्मित प्रमन [illegible]

गुंजन, पृ० ६४। २. सावधान। सजग। उ०—हैं वहीं मल्लपति, वानरेंद्र सुग्रीव प्रमन।—अपरा, पृ० ४४।

प्रमना—वि० [सं० प्रमनस्] हर्षयुक्त। प्रसन्न।

प्रमन्यु[1]—वि० [सं०] १. बहुत क्रुद्ध। २. दुखी। संत्रस्त (को०)।

प्रमन्यु[2]—संज्ञा पुं० अति क्रोध। अत्यंत कोप।

प्रमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृत्यु। मौत। २ वध। घातन। हिंसन। ३. पतन। नाश। विनाश [को०]।

प्रमर्दन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अच्छी तरह मर्दन। अच्छी तरह मलना दलना। २. खूब कुचलना। रौंदना। ३. दमन करना। नष्ट करना। ४. विष्णु।

प्रमर्दन[2]—वि० मर्दन करनेवाला।

प्रमर्दित—वि० [सं०] कुचला हुआ। रौंदा हुआ। दलित [को०]।

प्रमर्दिता—वि० [सं० प्रमर्दितृ] कुचलनेवाला। रौंदनेवाला। दलनेवाला [को०]।

प्रमर्दी—वि० [सं० प्रमर्दिन्] दे० 'प्रमर्दिता'।

प्रमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चेतना। ज्ञान। बोध। २. शुद्ध बोध। यथार्थ ज्ञान। जहाँ जैसी बात है वहाँ वैसा अनुभव (न्याय)। ३. नींव। ४. माप।

प्रमाण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कारण या मुख्य हेतु जिससे ज्ञान हो। वह बात जिससे किसी दूसरी बात का यथार्थ ज्ञान हो। वह बात जिससे कोई दूसरी बात सिद्ध हो। सबूत।

विशेष—प्रमाण न्याय का मुख्य विषय है। गौतम ने चार प्रकार के प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द। इंद्रियों के साथ संबंध होने से किसी वस्तु का जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष है। लिंग (लक्षण) और लिंगी दोनों के प्रत्यक्ष ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान को अनुमान कहते हैं। (दे० न्याय)। किसी जानी हुई वस्तु के सादृश्य द्वारा दूसरी वस्तु का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है वह उपमान कहलाता है। जैसे, गाय के सदृश ही नील गाय होती है। आप्त या विश्वासपात्र पुरुष की बात को शब्द प्रमाण कहते हैं। इन चार प्रमाणों के अतिरिक्त मीमांसक, वेदांती और पौराणिक चार प्रकार के और प्रमाण मानते हैं—ऐतिह्य, अर्थापत्ति, संभव और अभाव। जो बात केवल परंपरा से प्रसिद्ध चली आती है वह जिस प्रमाण से जानी जाती है उसको ऐतिह्य प्रमाण कहते हैं। जिस बात के बिना किसी देखी या सुनी बात के अर्थ में आपत्ति आती हो उसके लिये अर्थापत्ति प्रमाण है। जैसे, मोटा देवदत्त दिन को नहीं खाता, यह जानकर यह मानना पड़ता है कि देवदत्त रात को खाता है क्योंकि बिना खाए कोई मोटा हो नहीं सकता। व्यापक के भीतर व्याप्य—अंगी के भीतर अंग—का होना जिस प्रमाण से सिद्ध होता है उसे संभव प्रमाण कहते हैं। जैसे, सेर के भीतर छटाँक का होना। किसी वस्तु का न होना जिससे सिद्ध होता है वह अभाव प्रमाण है। जैसे चूहे निकलकर बैठे हुए हैं इससे बिल्ली यहाँ नहीं है। पर नैयायिक इन चारों को अलग प्रमाण नहीं मानते, अपने चार प्रमाणों के अंतर्गत मानते हैं। और किन किन दर्शनों में कौन कौन प्रमाण गृहीत हुए हैं यह नीचे दिया जाता है।—

चार्वाक—केवल प्रत्यक्ष प्रमाण।

बौद्ध—प्रत्यक्ष और अनुमान।

सांख्य—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।

पातंजल—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।

वैशेषिक—प्रत्यक्ष और अनुमान।

रामानुज पूर्णप्रज्ञ—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।

धर्मशास्त्र में किसी व्यवहार या अभियोग के निर्णय में चार प्रमाण माने गए हैं—लिखित (दस्तावेज), भुक्ति (कब्जा), साक्ष्य (गवाही) और दिव्य। प्रथम तीन प्रकार के प्रमाण मानुष कहलाते हैं।

२. एक अलंकार जिसमें आठ प्रमाणों में से किसी एक का कथन होता है। जैसे अनुमान का उदाहरण—घन गर्जन दामिनि दमक धुरवागम धावंत। आयो बरषा काल अब ह्वै है बिरहिनि अंत।

विशेष—प्रायः सब अलंकारवालों ने केवल अनुमान अलंकार ही माना है, प्रत्यक्ष आदि और प्रमाणों को अलंकार नहीं माना है। केवल भोज ने आठ प्रमाणों के अनुसार प्रमाणालंकार माना है जिनका अनुकरण अप्पय दीक्षित ने (कुवलयानंद में) किया है। काव्यप्रकाश आदि में प्रत्यक्ष आदि को लेकर प्रमाणालंकार नहीं निरूपित हुआ है।

३. सत्यता। सचाई। उ०—कान्ह जू कैसे दया के निधान हो जानो न काहू के प्रेम प्रमानहि।—दास (शब्द०)। ४. निश्चय प्रतीति। दृढ़ धारणा। यकीन। उ०—अंतरजामी राम सिय तुम सर्वज्ञ सुजान। जो फुर कहहु तो नाथ मम कीजिय वचन प्रमान।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जो तुम तजहु, भजहुँ न आन प्रभु यह प्रमान मन मोरे। मन, वच, कर्म नरक सुरपुर जहँ जहँ रघुबीर निहोरे।—तुलसी (शब्द०)। ५. मर्यादा। थाप। साख। मान। आदर। ठीक ठिकाना। उ०—बिनु पुरुषारथ जो बकै ताको कौन प्रमान। करनी जंबुक जून ज्यों गरजन सिंह समान।—दीनदयाल गिरि (शब्द०)। ६. प्रामाणिक बात या वस्तु। मानने की बात। आदर की चीज। उ०—रण मारि अक्षकुमार बहु बिधि इंद्रजित सों युद्ध कै। अति ब्रह्म शस्त्र प्रमाण मनि सो वश्य भो मन शुद्ध कै।—केशव (शब्द०)। ७. इयत्ता। हद। मान। निर्दिष्ट परिमाण, मात्रा या संख्या। अंदाज। जैसे,—इसका प्रमाण ही इतना, इतना बड़ा या यह होता है। उ०—(क) कौन है तू, कित जाति चली, बलि, बीती निसा अधिराति प्रमानै।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) अतल, वितल अरु सुतल तलातल और महातल जान। पाताल और रसातल मिलि कै सातो भुवन प्रमान।—सूर (शब्द०)। ८. शास्त्र। ९. मूलधन। १०. प्रमाणपत्र। आदेशपत्र। उ०—रामलखन जू सों बोलि कह्यो कुलपूज्य आयो है प्रमान हौं तो जनक पै जायहौं।—हनुमान (शब्द०)। ११. विष्णु का एक नाम (को०)। १२. एकत्व। एका (को०)। १३. नियम (को०)।

प्रमाण२—वि० १. सत्य । प्रमाणित । चरितार्थ । ठीक घटता हुआ । उ०—(क) बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान । आइ पाय पुनि देखिहौं मन जनि करसि गलान ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मिलहिं तुमहिं जब सप्त ऋषीसा । तब जानेउ प्रमान बागीसा ।—तुलसी (शब्द०) । २. मान्य । माना जानेवाला । स्वीकार योग्य । ठीक । उ०—(क) कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन अनु बान । नाइ रामपद कमल सिर बोले गिरा प्रमान ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कहि भेज्यों सु नवाब जो सो सब सुनी सुजान । कही, कि कहो नवाब सों हमको सबै प्रमान ।—सूदन (शब्द०) । ३. परिमाण में तुल्य । बड़ाई आदि में बराबर । उ०—पन्नग प्रचंड पति प्रभु की पनच पीन पर्वतारि पर्वत प्रमान पावई ।—केसव (शब्द०) ।

प्रमाण३—अव्य० अवधि या सीमासूचक शब्द । पर्यंत । तक । उ०—(क) कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं । सत जोजन प्रमान लै धावौं ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जनु छीन मडल कीन सबकी आँख तेहि छन ढँपि गई । तेहि तानि कान प्रमान शब्द महान बरनी कँपि गई । —गोपाल (शब्द०) ।

प्रमाणक१—वि० [सं०] परिमाण, मान या विस्तार का (समासांत में प्रयुक्त) ।

प्रमाणक२—संज्ञा पुं० दे० 'प्रमाण' (को०) ।

प्रमाणकुशल—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा तर्क करनेवाला ।

प्रमाण कोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रमाण मानी जानेवाली बातों या वस्तुओं का घेरा । जैसे, आचारनिर्णय में तंत्र प्रमाण कोटि में नहीं है ।

प्रमाणज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । २. वह जो प्रमाण अप्रमाण का जानकार हो । प्रमाण को जाननेवाला [को०] ।

प्रमाणतः—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाणतस्] प्रमाणपूर्वक । प्रमाण के अनुकूल [को०] ।

प्रमाणदृष्ट—वि० [सं०] प्रमाण के रूप में उपस्थित करने योग्य शास्त्रादि संगत । प्रमाण कोटि का [को०] ।

प्रमाणना—क्रि० स० [सं० प्रमाण + हिं० ना (प्रत्य०)] दे० 'प्रमानना' ।

प्रमाणपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लिखा हुआ कागज जिसपर का लेख किसी बात का प्रमाण हो । सार्टिफिकेट ।

प्रमाणपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके निर्णय को मानने के लिये दोनों पक्ष के लोग तैयार हों ।

प्रमाणप्रवीण—वि० [सं०] तर्क में कुशल [को०] ।

प्रमाणभूत—वि० [सं०] प्रामाणिक । प्रमाण स्वरूप [को०] ।

प्रमाणवचन, प्रमाणवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रामाणिक कथन । प्रमाणभूत कथन । [को०] ।

प्रमाणशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] तर्क शास्त्र [को०] ।

प्रमाणसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नाप करने का सूत [को०] ।

प्रमाणाधिक—वि० [सं०] अत्यंत अधिक । २. परिमाण से ज्यादा [को०] ।

प्रमाणिक—वि० [सं०] दे० 'प्रामाणिक' ।

प्रमाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगस्वरूपिणी वृत्त का दूसरा नाम । इस छंद के प्रत्येक चरण में एक जगण, एक रगण, एक लघु और एक गुरु होते हैं । जैसे—नमामि भक्त वत्सलं । कृपालु शील कोमलं । भजामि ते पदांबुजं । अकामिनां स्वधामदं ।—तुलसी (शब्द०) ।

प्रमाणित—वि० [सं०] प्रमाण द्वारा सिद्ध । साबित । निश्चित । सत्य ठहराया हुआ ।

प्रमाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रमाणिका या नगस्वरूपिणी छंद का नाम ।

प्रमाणीक—वि० [सं० प्रामाणिक] दे० 'प्रामाणिक' । उ०—क्षमावंत भारी । दयावंत ऐसे, प्रमाणीक आगे भए संत जैसे ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २५६ ।

प्रमाणीकृत—वि० [सं०] प्रमाण रूप से जिसका स्वीकार किया गया हो । जो प्रमाण रूप से निश्चित हो ।

प्रमातव्य—वि० [सं०] मारने योग्य । वध्य ।

प्रमाता—संज्ञा पुं० [सं० प्रमातृ] १. वह जो प्रमा ज्ञान को प्राप्त करे । वह जिसे प्रमा ज्ञान हो । प्रमाणों द्वारा प्रमेय के ज्ञान को प्राप्त करनेवाला । उ०—प्रमाता जीव भी प्रकृत है, क्योंकि वह भी अपरा प्रकृत है ।—कंकाल, पृ० १८ । २. ज्ञान का कर्ता आत्मा या चेतन पुरुष । ३. विषय से भिन्न विषयी । द्रष्टा । साक्षी । ४. असैनिक न्यायाधीश । दीवानी मजिस्ट्रेट । व्यवहार या विधि के अनुसार दंड देनेवाला अधिकारी (को०) ।

प्रमातामह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रमातामही] परनाना [को०] ।

प्रमातामही—संज्ञा स्त्री० [सं०] परनानी ।

प्रमातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] चेतनता । ज्ञेयता । प्रमाता होने की स्थिति, क्रिया या भाव । उ०—परंतु उसके प्रमातृत्व का उपशम नहीं होता ।—संपूर्णानंद अभि० ग्रं०, पृ० १४८ ।

प्रमात्र—संज्ञा पुं० [सं०] निर्दिष्ट संख्या ।

प्रमाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मथन । २. दुःख देना । पीड़न । ३. किसी स्त्री से उसकी इच्छा के विरुद्ध संभोग । ४. ध्वंस । नाश करना । मारना । ५. प्रतिद्वंद्वी को भूमि पर पटककर उसपर चढ़ बैठना और धस्सा देना । ६. बलपूर्वक हरण । छीन खसोट । ७. महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । ८. शिव के एक गण का नाम । ९. स्कंद के अनुचर का नाम ।

प्रमाथिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम ।

प्रमाथी१—वि० [सं० प्रमाथिन्] [वि० स्त्री० प्रमाथिनी] १. मथनेवाला । २. क्षुब्ध करनेवाला । दुःखदायी । ३. पीड़ित करनेवाला । नाश करनेवाला । प्रमाथ करनेवाला ।

प्रमाथी¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामायण के अनुसार एक राक्षस का का नाम। यह खर का साथी था। २. एक यूथपति बंदर जो रामचंद्र जी की सेना में था। ३. बृहत्संहिता के अनुसार बृहस्पति के ऐंद्र नामक तीसरे युग का दूसरा संवत्सर। यह निकृष्ट माना गया है। ४. वह औषध जो मुख, आँख, कान आदि छिद्रों से कफादि के संचय को हटा दे। ५. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

प्रमाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी कारण से कुछ को कुछ जानना और कुछ का कुछ करना। वह अनवधानता जो किसी कारण से हो। भूल। चूक। भ्रम। भ्रांति। २. अंतःकरण की दुर्बलता। ३. योगशास्त्रानुसार समाधि के साधनों की भावना न करना। या उन्हें ठीक न समझना। यह नौ प्रकार के अंतरायों में चौथा है। इससे साधक को चित्तविक्षेप होता है। ४. लापरवाही। भयंकर भूल (को०)। ५. मद। नशा। उन्माद (को०)। ६. विपत्ति। संकट (को०)।

प्रमादवान्—वि० [सं० प्रमादवत्] १. नशे में चूर। मदोन्मत्त। २. पागल। विक्षिप्त। ३. लापरवाह। असावधान [को०]।

प्रमादिक—वि० [सं०] प्रमादशील। भूलचूक करनेवाला।

प्रमादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह कन्या जिसे किसी ने दूषित कर दिया हो। २. असावधान या लापरवाह महिला (को०)।

प्रमादित—वि० [सं०] जिसका उपहास हुआ हो। हेय। तिरस्कृत। उपेक्षित [को०]।

प्रमादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंडोल राग की एक सहचरी का नाम।

प्रमादी¹—वि० [सं० प्रमादिन्] [वि० स्त्री० प्रमादिनी] १. प्रमादयुक्त। असावधान रहनेवाला। भूलचूक करनेवाला। २. मस्त। क्षीब। मतवाला (को०)। ३. पागल। विक्षिप्त (को०)।

प्रमादी²—संज्ञा पुं० १. बृहस्पति के शक्राग्निदैवत नामक दशम युग का दूसरा संवत्सर। इसमें लोग आलसी रहते हैं, क्रांतियाँ होती हैं और लाल फूल के पेड़ों के बीज नष्ट हो जाते हैं। २. वह जो पागल या बावला हो।

प्रमादोन्मत्त—वि० [सं० प्रमाद + उन्मत्त] प्रमाद या अनवधानता। उ०—हमारे भाई मूर्खतांध और प्रमादोन्मत्त अचेत हो। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६६।

प्रमानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाण] १. इयत्ता। सीमा। प्रमाण। उ०—(क) अपनी गाँठि को द्रव्य भेंट की लाखों जैसी सक्ति हुती सो ता प्रमान काढत भए।—दो सौ बावन०, भा १, पृ० २२१। २. सबूत। उ०—प्रगटत है पूरब की करनी, तजु मन सोच अजान। सुरदास गुन कहँ लग बरनों, विधि के अंक प्रमान।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ६७।

विशेष—इस शब्द के अन्य अर्थ और उदाहरण 'प्रमाण'¹ में देखिए।

प्रमानना—क्रि० स० [सं० प्रमाण+हिं० ना (प्रत्य०)] १. प्रमाण मानना। सत्य मानना। ठीक समझना। उ०—(क) नंद गोप वृषभानु जसोदा सबहि गोप कुल जानो। करी उपाय बची जी चाही मेरो बचन प्रमानो।—सूर (शब्द०)। (ख) बोले बचन तबहि अकुलानो। सुनहु राम मन बचन प्रमानो।—पद्माकर (शब्द०)। २. प्रमाणित करना। साबित करना। सबूत देना। उ०—यहि अनुमान प्रमानियत तिय तन जोबन जोति। ज्यों मेहँदी के पात में अलख ललाई होति।—पद्माकर (शब्द०)। ३. स्थिर करना। ठहराना। निश्चित करना। करार देना। उ०—(क) जोगीश्वर वपु धरि हरि प्रगटे जोग समाधि प्रमान्यो।—सूर (शब्द०)। (ख) जासु सुना नृपतिहि छवि लीनी। यह अनीति जाके सँग कीनी। जाने तदपि बुरो नहिं मान्यो। ब्याह तुम्हारो शुद्ध प्रमानो।—लक्ष्मण (शब्द०)।

प्रमानीⓅ—वि० [सं० प्रामाणिक] मानने योग्य। प्रमाण योग्य। माननीय। उ०—गुरु बोले शिव की सुनि बानी। शंकर को मत परम प्रमानी।—निश्चल (शब्द०)।

प्रमापक¹—वि० [सं०] प्रमाणित करनेवाला।

प्रमापक²—संज्ञा पुं० दे० 'प्रमाण' (को०)।

प्रमापण—संज्ञा पुं० [सं०] मारण। नाश।

प्रमापयिता—वि० [सं० प्रमापयितृ] [वि० स्त्री० प्रमापयित्री] १. घातक। नाशकारक। २. अनिष्टकारक। हानि पहुँचानेवाला।

प्रमापित—वि० [सं०] ध्वस्त। नष्ट। हत [को०]।

प्रमापी—वि० [सं०] मारने या ध्वस्त करनेवाला [को०]।

प्रमायु—वि० [सं०] नाशशील। क्षर। ध्वंसशील

प्रमायुक—वि० [सं०] दे० 'प्रमायु'।

प्रमार्जक—वि० [सं०] १. पोंछनेवाला। साफ करनेवाला। २. हटानेवाला। दूर करनेवाला।

प्रमार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धोना। साफ करना। २. पोंछना। झाड़ना। ३. हटाना। दूर करना। निवृत्त करना।

प्रमित—वि० [सं०] १. परिमित। २. निश्चित। ३. अल्प। थोड़ा। ४. जिसका यथार्थ ज्ञान हुआ हो। प्रमाणों द्वारा जिसको प्रमा नामक ज्ञान प्राप्त हुआ हो। ५. ज्ञात। विदित। अवगत। ६. अवधारित। प्रमाणित।

प्रमिताक्षरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक द्वादशाक्षर वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सगण, जगण, और अंत में दो सगण होते हैं। उ०—हरषाय जाय सिय पाँय परी। ऋषिनारि सूँघि सिर गोद धरी। बहु अंग राग अंग अंग रये। बहु भाँति ताहि उपदेश दये।—केशव (शब्द०)।

प्रमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह यथार्थ ज्ञान जो प्रमाण द्वारा प्राप्त हो। प्रमा।

प्रमीढ—वि० [सं० प्रमीढ] १. गाढ़ा। घना। २. मूत्र होकर निकला हुआ।

प्रमीत—वि० [सं०] १. मृत। मरा हुआ। २. यज्ञ के लिये मारा हुआ (पशु)। ३. नष्ट। विलीन। उ०—अपनी जर्जर—वीणा के सबके से तारों का संगीत।

जिसमें प्रतिदिन क्षणभंगुर जय बुदबुद होते रहे प्रमीत।
—इत्यलम्, पृ० २५।

प्रमीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हनन। वध। २. मृत्यु।

प्रमीलन—संज्ञा पुं० [सं०] निमीलन। मूँदना।

प्रमीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंद्रा। २. थकावट। शैथिल्य। ग्लानि। ३. मुद्रण। मूँदना। ४. अर्जुन की एक स्त्री का नाम जो एक स्त्रीराज्य की रानी थी (को०)।

प्रमीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] निद्रा। नींद (को०)।

प्रमीलित—वि० [सं०] जिसकी आँखें बंद हों (को०)।

प्रमीली[1]—वि० [सं० प्रमीलिन्] [वि० स्त्री० प्रमीलिनी] निमीलित करनेवाला। आँखें मुँदानेवाला।

प्रमीली[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य।

प्रमुक्त—वि० [सं०] १. जो मुक्त कर दिया गया हो। जिसके बंधन ढीले कर दिए गए हों। उ०—सौरभ प्रमुक्त प्रेयसी के हृदय से हो तुम प्रति देश युक्त।—अनामिका, पृ० २१। २. स्वतंत्र। मुक्त (को०)। ३. त्यागा हुआ। परित्यक्त (को०)। ४. फेंका हुआ। प्रक्षिप्त (को०)।

प्रमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुक्तता। स्वतंत्रता (को०)।

प्रमुख[1]—क्रि० वि० [सं०] १. संमुख। सामने। आगे। २. उस समय। तत्काल।

प्रमुख[2]—वि० १. प्रथम। पहला। २. मुख्य। प्रधान। श्रेष्ठ। ३. मान्य। प्रतिष्ठित। अगुआ।

प्रमुख[3]—अव्य० इससे आरंभ करके और और। इन मुख्यों के अतिरिक्त और और। इत्यादि। वगैरह। उ०—बंधुक सुमन अरुण पद पंकज अंकुश प्रमुख चिह्न धरि आए।—सूर (शब्द०)।

प्रमुख[4]—संज्ञा पुं० १. आदि। आरंभ। २. समूह। ३. पुन्नाग। ४. मुख (को०)। ५. सम्मानयुक्त व्यक्ति। आदरणीय व्यक्ति (को०)। ६. अध्याय, परिच्छेद आदि का आरंभ (को०)।

प्रमुग्ध—वि० [सं०] १. चेतनारहित। २. मूढ़। हतबुद्धि। ३. अत्यंत सुंदर। अतीव सलोना (को०)।

प्रमुच—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रमुचि'।

प्रमुचि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

प्रमुचु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रमुचि'।

प्रमुद्—वि० [सं० प्रमुद्] हृष्ट। आनंदित।

प्रमुदा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रमदा] दे० 'प्रमदा'। उ०—प्रमुदा प्रान समान नहीं बिसरत एक छिन।—पृ० रा०, १।३७०।

प्रमुदित—वि० [सं०] हर्षित। आनंदित। प्रसन्न। उ०—(क) प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगल चार।—मानस, २।२३। (ख) तब मंत्रायन विषै सुभट अंत्रिम नै जे बचन कहे ते रावी असखान प्रमुदित हो कही के थाँको क्षत्रिय धर्म सच्यो है।—प० रासो, पृ० ६६।

यौ०—प्रमुदितवदन = प्रसन्नमुख। प्रमुदितहृदय = आंतरिक आनंदयुक्त। प्रसन्नचित्त।

प्रमुदितवदना—संज्ञा स्त्री० [सं०] बारह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसे मंदाकिनी भी कहते हैं। दे० 'मंदाकिनी'।

प्रमुषित—वि० [सं०] १. ले लेना। चुरा लेना। २. अचेत। मूढ़। हतबुद्धि [को०]।

प्रमुषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की प्रहेलिका (को०)।

प्रमूकना(पु)—[सं० प्रमुञ्चन, प्रमोचन] छोड़ना। मुक्त करना। उ०—गात सँवारण में गमे, ऊमर काय अजाण। भाखर प्राण प्रमूकभो, लाज हुती मन आण।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४३।

प्रमूढ़—वि० [सं०] १. अत्यंत मूर्ख। जड़। बेवकूफ। २. व्याकुलित। भ्रमित। चकराता हुआ (को०)।

प्रमूढ़ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिरगी आने के पूर्व का एक लक्षण जिसमें इंद्रियाँ शिथिल होने लगती हैं।—माधव०, पृ० १३०।

प्रमृत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरण। मृत्यु। २. मनु के अनुसार हल जोतकर जीविका करने का काम। कृषि।

विशेष—हल चलने में मिट्टी में रहनेवाले बहुत से जीव मर जाते हैं इससे उसे मृत कहते हैं।

प्रमृत[2]—वि० १. दृष्टि की सीमा से दूर। ओझल। २. मरा हुआ। मृत। निष्प्राण। ३. ढँका हुआ। आवृत [को०]।

प्रमृष्ट—वि० [सं०] १. निरस्त। २. मार्जित। चमकाया हुआ। माँजा धोया। पोंछा हुआ।

प्रमेय[1]—वि० [सं०] १. जो प्रमाण का विषय हो सके। वह जिसका बोध करा सकें। २. जिसका मान बताया जा सके। जिसका अंदाज करा सकें। ३. अवधार्य। अवधारण योग्य। जिसका निर्धारण कर सकें।

प्रमेय[2]—संज्ञा पुं० १. वह जो प्रमा या यथार्थ ज्ञान का विषय हो। वह जिसका बोध प्रमाण द्वारा करा सकें। वह वस्तु या बात जिसका यथार्थ ज्ञान हो सके।

विशेष—ज्ञान का विषय बहुत सी वस्तुएँ हो सकती हैं पर न्याय दर्शन में गौतम ने उन्हीं वस्तुओं को प्रमेय के अंतर्गत लिया है जिनके ज्ञान से मोक्ष या अपवर्ग की प्राप्ति होती है। ये बारह हैं—आत्मा, शरीर, इंद्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्ग। यद्यपि वैशेषिक के द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष और समवाय सब पदार्थ ज्ञान के विषय हैं तथापि न्याय में गौतम ने बारह वस्तुओं का ही प्रमेय के अंतर्गत विचार किया है।

२. परिच्छेद।

प्रमेसर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० परमेश्वर] दे० 'परमेश्वर'। उ०—पूरण पुरस प्रमाण प्रमेसर। सुकवि सधार वार प्रमेस्वर।—रा० रू०, पृ० ४।

प्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें मूत्रमार्ग से शुक्र तथा शरीर की और धातुएँ निकला करती हैं। धातु गिरने का रोग।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार दिन को सोने, काम न करने, बराबर आलस्य में पड़े रहने, शीतल स्निग्ध वस्तुएँ और मीठी वस्तुएँ बहुत अधिक खाने से यह रोग हो जाता है। हाथ पैर में जलन, शरीर का भारी रहना, मूत्र श्वेत और मीठा लिए होना, आलस्य और प्यास, तालू, दाँत, जीभ आदि में मैल जमना, प्रमेह के पूर्वलक्षण हैं। वैद्यक में २० प्रकार के प्रमेह गिनाए गए हैं जिनमें से उदकमेह, इक्षुमेह, सांद्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, शुक्रमेह, सिकतामेह, शीतमेह, शनैर्मेह और लालमेह तो कफज हैं; क्षारमेह, नीलमेह, कालमेह, हरिद्रामेह, मांजिष्ठमेह और रक्तमेह पित्तज हैं और वसामेह, मज्जामेह, क्षौद्रमेह और हस्तिमेह वातज हैं। सब प्रकार के प्रमेह चिकित्सा न होने पर मधुमेह हो जाते हैं जिसमें मिठास लिए मधु सा गाढ़ा मूत्र निकलता है। इस रोग मे रोगी या तो बहुत दुर्बल हो जाता है या बहुत मोटा। इस प्रकार सूजाक और बहुमूत्र प्रमेह रोग के अंतर्गत ही आ जाते हैं यद्यपि डाक्टरी चिकित्सा में ये भिन्न भिन्न रोग माने गए हैं।

प्रमेही—वि० [सं० प्रमेहिन्] प्रमेह रोग युक्त।

प्रमोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुक्ति। मोक्ष। छुटकारा। २. त्याग। छोड़ना। फेंकना।

प्रमोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्र या सूर्य ग्रहण की समाप्ति (को०)।

प्रमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अच्छी तरह मोचन। अच्छी तरह छुड़ाना। २. खूब हरण करना।

प्रमोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोमुखा। एक प्रकार की ककड़ी। गोमा ककड़ी।

प्रमोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. हर्ष। आनंद। प्रसन्नता। उ०—चहूँ कोद बाढ़चो प्रमोद आनद पयोद बरसत दंपति सोभासंपति बिसतारी।—घनानंद, पृ० ४२६। २. सुख। ३. बृहस्पति के पहले युग के चौथे वर्ष का नाम। (यह शुभ माना जाता है)। ४. एक सिद्धि का नाम। दे० 'प्रमोदा'। ५. कुमार के एक अनुचर का नाम। ६. एक नाग का नाम। ७. उत्कृष्ट या तीव्र सुगंध (को०)। ८. एक प्रकार का चावल (को०)।

प्रमोदक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जड़हन।

प्रमोदन¹—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का नाम।

प्रमोदन²—वि० हर्षकारक।

प्रमोदवन—संज्ञा पुं० [सं० प्रमोद+वन] आनंदवन। क्रीड़ास्थल। उ०—नए गाँव की तरफ से देखा प्रमोदवन।—कुकुर०, पृ० ५८।

प्रमोदसदृक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की औषध जो गाढ़े दही और चीनी में मिर्च, पीपल, लौंग, कपूर मलकर उसमें अनार के पके दाने डालकर बनती है। इससे दीपन होता है तथा थकावट और प्यास दूर होती है।

प्रमोदा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] सांख्य के अनुसार आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक।

विशेष—यह आधिदैविक दुःखों के नष्ट होने पर प्राप्त होती है।

प्रमोदा²—वि० स्त्री० [सं० प्रमोद] प्रमुदिता। आनंदिता। उ०—छीनूँगी निधि नहीं किसी सौभागिनि, पुण्य प्रमोदा की। लाल वारना नहीं कहीं तू, गोद गरीब यशोदा की। —हिम०, पृ० ५६।

प्रमोदित¹—वि० [सं०] प्रमोदयुक्त। आनंदित। हर्षित।

प्रमोदित²—संज्ञा पुं० कुबेर।

प्रमोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिंगिनी।

प्रमोदी—वि० [सं० प्रमोदिन्] १. हर्षजनक। २. हर्षयुक्त।

प्रमोधना—क्रि० स० [सं० प्रबोधन, हिं० प्रबोधना] समझाना। उ०—सतगुर बपुरा क्या करे, जे सिष ही माँहि चूक। भावै त्यूँ प्रमोधि लै, ज्यू, बंसि बजाई फूक।—कबीर ग्रं०, पृ० ३।

प्रमोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोह। २. मूर्छा।

प्रमोहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोहित करना। २. वह अस्त्र जिसके प्रयोग से शत्रुदल में प्रमोह की उत्पत्ति हो।

प्रमोहित—वि० [सं०] १. मूढ़। मूर्ख। २. घबड़ाया हुआ। स्तब्ध (को०)।

प्रमोही—वि० [सं० प्रमोहिन्] मोहजनक।

प्रम्लान—वि० [सं०] १. मुरझाया हुआ। सूखा हुआ। जैसे, प्रम्लान कुसुम। २. मैला। गंदा (को०)।

प्रम्लोचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा।

प्रयंक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० पर्यङ्क] 'पर्यंक'।

प्रयंत(पु)¹—अव्य० [सं० पर्यन्त] दे० 'पर्यंत'। उ०—काम काल के लोक में मारे जात सुजान। सुंदर ब्रह्मा आदि है कीट प्रयंत बखान।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ० ७०६।

प्रयत²—वि० [सं०] १. पवित्र। संयत। उ०—नहीं जानती थी माँ! तेरी प्रयत प्रभा की प्रथम किरन। मुझको इतना गौरव देगी छूकर मेरा म्लान वदन।—वीणा, पृ० ५१। २. नम्र। दीन। ३. प्रयत्नशील। ४. वशी। इंद्रियों को वश मे करनेवाला (को०)।

प्रयतात्मा—वि० [सं० प्रयतात्मन्] संयत आत्मावाला। जितेंद्रिय। संयमी।

प्रयति—संज्ञा स्त्री० [सं०] संयम।

प्रयत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह क्रिया जो किसी कार्य को, विशेषतः कुछ कठिन कार्य को, पूरा करने के लिये की जाय। किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये की जानेवाली क्रिया। विशेष यत्न। प्रयास। अध्यवसाय। चेष्टा। कोशिश। जैसे,—बिना प्रयत्न के कुछ भी नहीं प्राप्त हो सकता। २ न्यायसूत्र के अनुसार आत्मा के छह गुणों अथवा साधनचिह्नों में से एक। प्राणियों की क्रिया। जीवों का व्यापार।

विशेष—नैयायिकों के अनुसार प्रयत्न तीन प्रकार के होते हैं—प्रवृत्ति, निवृत्ति, और जीवनयोनि। ग्रहण का व्यापार

प्रवृत्ति है, त्याग का व्यापार निवृत्ति। ये दोनों इच्छा और द्वेषपूर्वक होते हैं। श्वास प्रश्वास आदि व्यापार जो इच्छा और द्वेषपूर्वक नहीं होते जीवनयोनि प्रयत्न कहलाते हैं।

३. वर्णों के उच्चारण में होनेवाली क्रिया।

विशेष--उच्चारण प्रयत्न दो प्रकार का होता है—आभ्यंतर और बाह्य। ध्वनि उत्पन्न होने के पहले वागिंद्रिय की क्रिया को आभ्यंतर प्रयत्न कहते हैं और ध्वनि के अंत की क्रिया को बाह्य प्रयत्न कहते हैं। आभ्यंतर प्रयत्न के अनुसार वर्णों के चार भेद हैं—(१) विवृत—जिनके उच्चारण में वागिंद्रिय खुली रहती है, जैसे, स्वर। (२) स्पृष्ट—जिनके उच्चारण में वागिंद्रिय का द्वार बंद रहता है, जैसे, 'क' से 'म' तक २५ व्यंजन। (३) ईषत् विवृत—जिनके उच्चारण में वागिंद्रिय कुछ खुली रहती है, जैसे य र ल व। (४) ईषत् स्पृष्ट- श ष स ह। बाह्य प्रयत्न के अनुसार दो भेद हैं अघोष और घोष। अघोष वर्णों के उच्चारण में केवल श्वास का उपयोग होता है। कोई नाद नहीं होता, जैसे—क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ, श ष और स। घोष वर्णों के उच्चारण में केवल नाद का उपयोग होता है—शेष व्यंजन और सब स्वर।

प्रयत्नपक्ष—संज्ञा पुं० [सं० प्रयत्न+पक्ष] प्रयत्न या उद्योग का पहलू। लोकरंजन के लिये की जानेवाली क्रियाओं का कलाप। उ०—साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को ग्रहण करनेवाले कुछ ऐसे कवि भी होते हैं जिनका मन सिद्धावस्था या उपयोग पक्ष की ओर नहीं जाता, जैसे भूषण।—रस०, पृ० ५६।

प्रयत्नवान्—वि० [सं० प्रयत्नवत्] [वि० स्त्री० प्रयत्नवती] प्रयत्न में लगा हुआ।

प्रयत्नशील—वि० [सं०] प्रयत्न में लगा हुआ। प्रयत्नवान्।

प्रयत्नशैथिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] साधारण लोग जिस प्रकार आसन मारकर बैठते हैं उसे शिथिल अर्थात् दूर करके योग में कही हुई रीतियों के अनुसार आसन पर जप करना। (योग)।

प्रयसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता को समझाने के लिये नियत किया था।

प्रयस्त—वि० [सं०] १. पकाया हुआ। सिझाया हुआ। २. मसालेदार। जिसमें मसाले पड़े हों। ३. उत्सुक। जिज्ञासु। ४. बिखरा हुआ (को०)।

प्रयाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत से यज्ञों का स्थान। २. एक प्रसिद्ध तीर्थ जो गंगा यमुना के संगम पर है।

विशेष—जान पड़ता है जिस प्रकार सरस्वती नदी के तट पर प्राचीन काल में बहुत से यज्ञादि होते थे उसी प्रकार आगे चलकर गंगा जमुना के संगम पर भी हुए थे। इसी लिये प्रयाग नाम पड़ा। यह तीर्थ बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है और यहाँ के जल से प्राचीन राजाओं का अभिषेक होता था। इस बात का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। वन जाते समय श्रीरामचंद्र प्रयाग में भारद्वाज ऋषि के आश्रम पर होते हुए गए थे। प्रयाग बहुत दिनों तक कोशल राज्य के अंतर्गत था। अशोक आदि बौद्ध राजाओं के समय यहाँ बौद्धों के अनेक मठ और विहार थे। अशोक का स्तंभ अबतक किले के भीतर खड़ा है जिसमें समुद्रगुप्त की प्रशस्ति खुदी हुई है। फाहियान नामक चीनी यात्री सन् ४१४ ई० में आया था। उस समय प्रयाग कोशल राज्य में ही लगता था। प्रयाग के उस पार ही प्रतिष्ठान नामक प्रसिद्ध दुर्ग था जिसे समुद्रगुप्त ने बहुत दृढ़ किया था। प्रयाग का अक्षयवट बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध चला आता है। चीनी यात्री हुएन्साग ईसा की सातवीं शताब्दी में भारतवर्ष में आया था। उसने अक्षयवट को देखा था। आज भी लाखों यात्री प्रयाग आकर इस वट का दर्शन करते हैं जो सृष्टि के आदि से माना जाता है। वर्तमान रूप में जो पुराण में मिलते हैं उनमें मत्स्यपुराण बहुत प्राचीन और प्रामाणिक माना जाता है। इस पुराण के १०२ अध्याय से लेकर १०७ अध्याय तक में इस तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन है। उसमें लिखा है कि प्रयाग प्रजापति का क्षेत्र है जहाँ गंगा और यमुना बहती हैं। साठ सहस्र वीर गंगा की और स्वयं सूर्य जमुना की रक्षा करते हैं। यहाँ जो वट है उसकी रक्षा स्वयं शूलपाणि करते हैं। पाँच कुंड हैं जिनमें से होकर जाह्नवी बहती है। माघ महीने में यहाँ सब तीर्थ आकर वास करते हैं। इससे उस महीने में इस तीर्थवास का बहुत फल है। संगम पर जो लोग अग्नि द्वारा देह विसर्जित करते हैं वे जितने रोम हैं उतने सहस्र वर्ष स्वर्ग लोक में वास करते हैं। मत्स्य पुराण के उक्त वर्णन में ध्यान देने की बात यह है कि उसमें सरस्वती का कहीं उल्लेख नहीं है जिसे पीछे से लोगों ने त्रिवेणी के भ्रम से मिलाया है। वास्तव में गंगा और जमुना की दो ओर से आई हुई दो धाराओं और एक दोनों की सम्मिलित धारा से ही त्रिवेणी हो जाती है।

३. यज्ञ (को०)। ४. इंद्र (को०)। ५. घोड़ा (को०)।

प्रयागभव—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

प्रयागवाल—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाग + वाला (प्रत्य०)] प्रयाग तीर्थ का पंडा।

प्रयाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिक्षा माँगना। २. प्रार्थना करना। गिड़गिड़ाना [को०]।

प्रयाज—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शपौर्णमास यज्ञ के अंतर्गत एक अंग यज्ञ।

प्रयाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. गमन। प्रस्थान। जाना। यात्रा। कूच। रवानगी। उ०—वैसी आज्ञा, उठा विभीषण, यह कह उसने किया प्रयाण। जैसा इसी में तात, मुझे भी मिले पुलस्त्य कुल का कल्याण।—साकेत, पृ० १९१। २. युद्धयात्रा। चढ़ाई। ३. आरंभ। किसी काम का छिड़ना। ४. संसार से विदाई। मृत्यु (को०) ५. घोड़े की पीठ (को०)। ६. किसी जानवर का पिछला भाग (को०)।

प्रयाणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. यात्रा। प्रस्थान। प्रयाण। २. गमन। गतिशीलता [को०]।

प्रयाणकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जाने का समय यात्रा का समय। २. इस लोक से प्रस्थान का समय। मृत्यु का समय।

प्रयाणपटह—संज्ञा पुं० [सं०] युद्धयात्रा में प्रस्थानकाल के समय बजनेवाला नगाड़ा। धौंसा [को०]।

प्रयाणपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण में कावेरी नदी के तट पर एक प्राचीन तीर्थ जिसका माहात्म्य स्कंदपुराण में वर्णित है।

प्रयाणभंग—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाणभङ्ग] यात्राभंग। यात्रा करते समय बीच में रुकना [को०]।

प्रयाणसमय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रयाणकाल'।

प्रयात[1]—वि० [सं०] १. गत। गया हुआ। २. मृत। मरा हुआ। ३. सोया हुआ।

प्रयात[2]—संज्ञा पुं० १. खूब चलने या जानेवाला। २. वह जो खूब चले अथवा जाय। ३. ऊंचा किनारा जिसपर से गिरने से कोई वस्तु एकदम नीचे चली जाय। करार। भृगु। ३. रात्रियुद्ध (को०)।

प्रयान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रयाण] दे० 'प्रयाण'। उ०—बिचारी वियोगिनी वनिताओं के प्रान प्रयान करने लगे।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० १०।

प्रयापण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रयापणीय, प्रयापित, प्रयाप्य] १. प्रस्थान कराना। भगाना। चलता करना। २. आगे जाना।

प्रयापन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रयापण' [को०]।

प्रयापित—वि० [सं०] १. आगे बढ़ाया हुआ। आगे किया हुआ। २. भेजा हुआ। प्रेरित किया हुआ [को०]।

प्रयाम—संज्ञा पुं० [सं०] १. देश या काल संबंधी दीर्घता। लंबाई। २. संयम। बँधा हुआ आचरण। ३. अभाव। दुष्काल। दुष्प्राप्यता। महँगी। किसी वस्तु के अभाव के कारण ग्राहकों की होड़। ४. कदर।

प्रयाल(पु)—संज्ञा पुं० [?देश०] म्यान। कोश। उ०—जीभ भली तालू के तरें। खरग भली प्रयाल में धरें।—इंद्रा०, पृ० ८२।

प्रयाला—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रियाला] दाख। उ०—गुड़ा, प्रयाला, गोस्तनी, चारुफला पुनि सोइ। —नंद० ग्रं०, पृ० ४।

प्रयास—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रयत्न। उद्योग। कोशिश। २. श्रम। मेहनत। उ०—बिनु प्रयास रघुनाथ उहाए।—तुलसी (शब्द०)। ३. इच्छा।

प्रयासी—वि० [सं० प्रयास + ई (प्रत्य०)] १. प्रयास करनेवाले। श्रमी। उद्योगी। २. काव्यप्रतिभा रहित। कला विरहित। (लाक्ष०)। उ०—ये ऊहा के बल पर कारीगरी के मजमून बाँधने के प्रयासी कवि न थे।—आचार्य०, पृ० १३३।

प्रयुक्त[1]—वि० [सं०] १. अच्छी तरह जोड़ा हुआ। पूर्ण रूप से युक्त। २. अच्छी तरह मिला हुआ। संमिलित। ३. जिसका खूब प्रयोग किया गया हो। जो खूब काम में लाया गया हो। व्यवहार में आया हुआ। ४. जो किसी काम में लगाया गया हो। प्रेरित। ५. प्रकृष्ट ममाविष्ट (को०)। ६. निंदायुक्त। अत्यंत निंदित (को०)। ७. सूद पर दिया हुआ। (धन) जो ब्याज पर दिया गया हो (को०)। ८. चलाया या फेंका हुआ। प्रेरित। जैसे, मंत्र, शास्त्र, आदि। ९. निकाला हुआ। खींचकर बाहर किया हुआ। जैसे म्यान से असि आदि (को०)।

यौ०—प्रयुक्तसंस्कार = चमकाया हुआ। साफ किया हुआ (रत्नादि)।

प्रयुक्त[2]—संज्ञा पुं० कारण। हेतु (को०)।

प्रयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रयोजन। लक्ष्य। उद्देश्य। २. प्रयोग। ३. प्रेरणा। ४. परिणाम। फल (को०)। ५. उद्योग। चेष्टा। प्रयत्न (को०)।

प्रयुत[1]—वि० [सं०] १. खूब मिला हुआ। २. मिला जुला। गड़बड़। अस्पष्ट। ३. सहित। समेत। ४. दस लाख।

प्रयुत[2]—संज्ञा पुं० दस लाख की संख्या।

प्रयुतेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] स्कंदपुराण मे वर्णित एक तीर्थ।

प्रयुत्सु—संज्ञा पुं० [सं०] १. योद्धा। २. भेड़ा। ३. संन्यासी। ४. इंद्र। ५. वायु।

प्रयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध। संग्राम। २. वह जो प्रचंड युद्धकारी हो [को०]।

प्रयोक्ता—संज्ञा पुं० [सं० प्रयोक्तृ] १. प्रयोगकर्ता। जैसे, शब्दप्रयोक्ता। उ०—बिना प्रयोक्ता के हुए, यहाँ भोग भी रोग।—साकेत, पृ० २५२। २. नियोजित करनेवाला। ३. ऋण देनेवाला। उत्तमर्ण। महाजन। ४. प्रधान अभिनय करनेवाला। सूत्रधार। ५. बाण चलानेवाला। कमनैत (को०)। ६. प्रेरक। प्रेरणा प्रदान करनेवाला (को०)। ७. माध्यम। वाहक (को०)।

प्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. आयोजन। अनुष्ठान। साधन। किसी कार्य मे योग। किसी काम में लगना। २. किसी काम में लाया जाना। व्यवहार। इस्तेमाल। बरता जाना। जैसे, बल का प्रयोग करना, बिजली का प्रयोग करना, जल का प्रयोग करना, शब्द का प्रयोग करना। उ०—रस है बहुत परतु सखि, विष है विषम प्रयोग।—साकेत, पृ० २५२। ३ प्रक्रिया। अमल। क्रिया का साधन। विधान। जैसे,—(क) उस वैज्ञानिक ने रसायन के बहुत से प्रयोग दिखाए। (ख) केवल पुस्तक पढ़ने से व्यवहार ज्ञान न होगा, प्रयोग देखो।

यौ०—प्रयोगज्ञ। प्रयोगचतुर। प्रयोगनिपुण। प्रयोगविधि = प्रयोग बतानेवाली पद्धति या प्रयोग करने की विधि। प्रयोगवीर्य = प्रयोग की शक्ति। प्रयोगशाला। प्रयोगशास्त्र = कल्पसूत्र।

४. तांत्रिक उपचार या साधन जो बारह कहे जाते हैं—मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण, कामनाशन, स्तंभन, वशीकरण, आकर्षण, बंदिमोचन, कामपूरण और वाक्प्रसारण।

५. अभिनय। नाटक का खेल। स्वाँग भरना। ६. रोगी के दोषों तथा देश, काल और अग्नि का विचारकर औषध की व्यवस्था। उपचार। ७. यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान का बोध करनेवाली विधि। पद्धति। ८. दृष्टांत। निदर्शन। ९. साम, दंड आदि उपायों का अवलंबन। १०. धन की वृद्धि के लिये ऋणदान। रुपया बढ़ने के लिये सूद पर दिया जाना। ११. घोड़ा। १२. अनुमान के पाँचों अवयवों का उच्चारण। १३. प्रक्षेपण। फेंकना (को०)। १४. प्रारंभ। शुरुआत (को०)। १५. परिणाम। फल (को०)। १६. संमिश्रण। संबद्धता (को०)।

प्रयोगज्ञ—वि० [सं०] दे० 'प्रयोगनिपुण'।

प्रयोगतः—अव्य० [सं० प्रयोगतस्] १. प्रयोग की दृष्टि से। २. परिणामतः। ३. कार्य की दृष्टि से। कार्यतः। ४. प्रयोगानुसार [को०]।

प्रयोगनिपुण—वि० [सं०] कुशल अभ्यासी [को०]।

प्रयोगवाद—संज्ञा पुं० [सं० प्रयोग + वाद] आधुनिक काव्य की एक विशिष्ट धारा।

विशेष—प्रयोगवाद अंग्रेजी शब्द एक्सपेरिमेंटलिज्म की छाया है जिसमें नए मार्गों का अन्वेषण तथा शिल्प और विषय दोनों को नवीनता प्राप्त होती है। यह वाद मुख्यतः प्राचीन काव्यधारा की परंपरा—छंद, भाव, विषय, भाषा आदि का विरोध करता है। विषय और शिल्प दोनों क्षेत्रों में विदेशी कवियों का प्रभाव प्रयोगवाद पर बहुत अधिक है। विषय की दृष्टि से प्रयोगवादी कवि किसी एक सिद्धांत के अनुवर्ती नहीं हैं।

प्रयोगातिशय—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक में प्रस्तावना का एक भेद जिसमें प्रयोग करते करते सूत्रधार व्याज से (आपसे आप) दूसरे ही प्रकार का प्रयोग कौशल से हो जाता हुआ दिखाया जाय और उसी प्रयोग का आश्रय करके पात्र प्रवेश करें। जैसे, कुंदमाला नाम के संस्कृत नाटक में सूत्रधार ने नृत्य के लिये अपनी भार्या को बुलाने के प्रयोग द्वारा सीता और लक्ष्मण का प्रयोग सूचित किया और उस प्रयोग का अवलंबन करके सीता और लक्ष्मण ने प्रवेश किया।

प्रयोगार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वह गौण कार्य जिससे मुख्य कार्य की सिद्धि हो। प्रत्युत्क्रम।

प्रयोगार्ह—वि० [सं०] जिसका प्रयोग किया जाय। प्रयोग के योग्य।

प्रयोगार्हता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रयोग की उपयोगिता या व्यावहारिकता। २. प्रयोग में आने की योग्यता या शक्ति।

प्रयोगी[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रयोगिन्] प्रयोग करनेवाला व्यक्ति। व्यवहार में लानेवाला। अनुष्ठानकर्ता।

प्रयोगी[2]—वि० १. प्रयोक्ता। जो प्रयोग करे। २. प्रेरक। ३. लक्ष्य या उद्देश्यवाला। उद्देश्ययुक्त [को०]।

प्रयोग्य—संज्ञा पुं० [सं०] सवारी में जोता जानेवाला घोड़ा या कोई अन्य जानवर। सवारी खींचनेवाला पशु [को०]।

प्रयोजक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रयोगकर्ता। अनुष्ठान करनेवाला। २. काम में लगानेवाला। प्रोत्साहक। प्रेरक। ३. नियंता। व्यवस्था रखनेवाला। इंतजाम रखनेवाला। ४. वह जिसके सामने किसी के पास धन जमा किया जाय या जो अपने सामने किसी से किसी के यहाँ धन जमा करावे। ५. कार्य रूप में करके दिखानेवाला। प्रदर्शन करनेवाला (नाटक)। ६. ग्रंथादि का लेखक। लेखक (को०)। ७. आरंभक। संस्थापक। प्रवर्तक (को०)। ८. शास्ता। व्यवस्थाकार (को०)।

प्रयोजक—वि० १. काम में नियुक्त करनेवाला। २. प्रेरक। ३. प्रभावशाली (को०)। ४. कारणभूत [को०]।

प्रयोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्य। काम। अर्थ। जैसे,—तुम्हारा यहाँ क्या प्रयोजन है? २. उद्देश्य। अभिप्राय। मतलब। गरज। आशय।

विशेष—न्याय में जो सोलह पदार्थ माने गए हैं उनमें 'प्रयोजन' चौथा है। जिस उद्देश्य से प्रवृत्ति होती है उसका नाम है प्रयोजन। तत्त्वदृष्टि से आत्यंतिक दुःखनिवृत्ति ही संसार में मुख्य प्रयोजन है, शेष सब गौण प्रयोजन हैं। जैसे, भोजन के लिये हम रसोई पका रहे हैं, इससे भोजन करना एक प्रयोजन है, रसोई पकाने के लिये ईंधन आदि इकट्ठा करते हैं इनसे रसोई बनाना भी प्रयोजन हुआ। पर जब हम इस बात का विचार करते हैं कि भोजन क्यों करते हैं तो क्षुधा के दुःख की निवृत्ति मुख्य प्रयोजन ठहरती है और शेष प्रयोजन गौण हो जाते हैं। इसी प्रकार संसार में जितने प्रयोजन हैं सांसारिक निवृत्ति के आगे वे गौण ठहरते हैं।

३. उपयोग। व्यवहार। उ०—यह वस्तु तुम्हारे किस प्रयोजन की है। ४. लाभ। फायदा (को०)।

प्रयोजनवती लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लक्षणा जो प्रयोजन द्वारा वाच्यार्थ से भिन्न अर्थ प्रकट करे।

विशेष—लक्षणा दो प्रकार की होती है, प्रयोजनवती और रूढि। 'बहुत सी तलवारें मैदान में आ गईं' इस वाक्य में यदि हम तलवार का अर्थ तलवार ही करके रह जाते हैं तो अर्थ में बाधा पड़ती है। इससे प्रयोजनवश हमें तलवार का अर्थ तलवारबंद सिपाही लेना पड़ता है। अतः जिस लक्षणा द्वारा यह अर्थ लिया वह प्रयोजनवती हुई। पर कुछ लक्ष्यार्थ रूढ़ हो गए हैं। जैसे 'कार्य में कुशल'। कुशल का शब्दार्थ कुश इकट्ठा करनेवाला होता है, पर यह शब्द दक्ष या निपुण के अर्थ में रूढ़ हो गया है। इस प्रकार का अर्थ रूढि लक्षणा द्वारा प्रकट होता है।

प्रयोजनवान्—वि० [सं० प्रयोजनवत्] [वि० स्त्री० प्रयोजनवती] १. प्रयोजन रखनेवाला। मतलब रखनेवाला। २. मतलबी। स्वार्थी (को०)। ३. उपयोगी। हितकर। उपयुक्त (को०)।

प्रयोजनीय—वि० [सं०] [संज्ञा स्त्री० प्रयोजनीयता, प्रयोज्यता] काम का। मतलब का। प्रयोग के लायक।

प्रयोजनीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रयोज्यता'।

प्रयोज्य[1]—वि० [सं०] १. प्रयोग के योग्य। काम में लाने लायक। बरतने लायक। २. काम में लगाए जाने योग्य। नियुक्त करने योग्य। प्रेरित करने योग्य। ३. आचरण योग्य। कर्तव्य।

प्रयोज्य[2]—संज्ञा पुं० १. प्रेष्य भृत्य। नौकर। २. वह धन जो किसी काम में लगाया जाय।

प्रयोज्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रयोजनीयता। व्यावहारिकता।

प्ररक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षण। रक्षा [को०]।

प्ररुदित—वि० [सं०] बहुत अधिक रोता हुआ [को०]।

प्ररुह्—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर को बढ़नेवाला (अंकुर, कल्ला, पौधा आदि।)

प्ररूढ़—वि० [सं० प्ररूढ] १. पूरी तरह उगा हुआ। पूर्ण विकसित। २. अंकुरित। उत्पन्न। ३. जिसकी जड़ गहरी हो। बद्धमूल। ४. लंबा उगा हुआ, जैसे केश [को०]।

प्ररूढ़ि—वि० [सं० प्ररूढि] बढ़ना। बढ़ाव। बाढ़। वृद्धि [को०]।

प्ररूपण—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० प्ररूपणा] १. आज्ञापन (जैन)। २. समझाना (को०)।

प्ररोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुचि संपादन। रुचि दिलाना। चाह पैदा करना। शौक पैदा करना। २. मोहित करना। ३. उत्तेजित करना। ४. दे० 'प्ररोचना'।

प्ररोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुचि संपादन। चाह या रुचि उत्पन्न करने की क्रिया। २. उत्तेजना। बढ़ावा। ३. नाटक के अभिनय में प्रस्तावना के बीच, सूत्रधार, नट, नटी आदि का नाटक और नाटककार की प्रशंसा में कुछ कहना जिससे दर्शकों को रुचि उत्पन्न हो। ४. अभिनय के बीच आगे आनेवाली बात का रुचिकर रूप में कथन।

प्ररोपन—संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ाना। ऊपर उठाना।

प्ररोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. आरोह। चढ़ाव। २. ऊपर की ओर निकलना। उगना। जमना। ३. उत्पत्ति। ४. अंकुर। अंखुआ। कल्ला। ५. नंदीवृक्ष। तुन का पेड़। ६. प्रकाश किरण (को०)। ७. संतान। संतति (को०)। ८. गंड। अर्बुद (को०)।

प्ररोहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आरोह। चढ़ाव। २. भूमि से निकलना। उगना। जमना। ३. उत्पत्ति। ४. अंखुआ। अंकुर (को०)।

प्ररोहभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] उर्वरा भूमि। उपजाऊ जमीन। वह भूमि जहाँ घास पौधे उगें।

प्ररोहशाखी—संज्ञा पुं० [सं०] वे वृक्ष जिनकी कलम लगाने से लग जाय।

प्ररोही—वि० [सं० प्ररोहिन्] १. उगने या जमनेवाला। उत्पन्न होनेवाला। २. अभिवर्धनशील। बढ़नेवाला [को०]।

प्रलंघन—संज्ञा पुं० [सं० प्रलङ्घन] १. कूदना। २. कूदने की क्रिया या भाव [को०]।

प्रलंब[1]—वि० [सं० प्रलम्ब] १ नीचे की ओर दूर तक लटकता हुआ। उ०—अतिहि लचीली अति प्रलंब बिन रोग।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७१। २. लंबा। अधिक लंबा। उ०—कुंद इंदु बर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनि चीरा।—मानस, १।१०६। ३. टँगा हुआ। टिका हुआ। ४. निकला हुआ। किसी ओर को बढ़ा हुआ। ५. काम में ढीला। शिथिल। सुस्त।

प्रलंब[2]—संज्ञा पुं० १. लटकाव। झुलाव। २. शाखा। डाल। टहनी। ३. लतांकुर। टुनगा। ४. खीरा। ५. रांगा। ६. काम में शिथिलता या टालटूल। व्यर्थ का विलंब। ७. पयोधर। स्तन। ८. एक प्रकार का हार। ९. गाथा (को०)। १०. एक दानव जिसे बलराम ने मारा था। उ०—जय जय जय बलभद्र बीर धरी गंभीर अविलंब प्रलंब हारी।—घनानंद, पृ० ५५०।

विशेष—श्रीमद्भागवत् में कथा है कि एक बार कृष्ण बलराम गोपों के बालकों के साथ खेल रहे थे। प्रलंबासुर भी गोपवेश में उनके साथ मिलकर खेलने लगा। लड़के यह कहकर कुश्ती लड़ने लगे कि जो हारे वह जीतनेवाले को कंधे पर बिठाकर चले। प्रलंब हारा और बलराम को कंधे पर लेकर भागने लगा। पर बलराम का भार इतना अधिक हो गया कि वह आगे न चल सका। अंत में उसने अपना रूप प्रकट किया और थोड़ी देर युद्ध करके बलराम के हाथ से मारा गया।

यौ०—प्रलंबघ्न = प्रलंबमथन। प्रलंबभुज = प्रलंबबाहु। प्रलंबहा = बलराम।

प्रलंबक—संज्ञा पुं० [सं० प्रलम्बक] सुगंध तृण।

प्रलंबन—संज्ञा पुं० [सं० प्रलम्बन] अवलंबन। सहारा लेना। लटकना।

प्रलंबबाहु—वि० [सं० प्रलम्बबाहु] जिसकी भुजाएँ लंबी हों। लंबी बाहोंवाला। आजानुबाहु।

प्रलंबमथन—संज्ञा पुं० [सं० प्रलम्बमथन] बलराम।

प्रलंबहा—संज्ञा पुं० [सं० प्रलम्बहन्] बलराम [को०]।

प्रलंबांड—वि० [सं० प्रलम्बाण्ड] जिसका अंडकोष लटकता हुआ हो। बड़े अंडकोषवाला [को०]।

प्रलंबित—वि० [सं० प्रलम्बित] खूब नीचे तक लटकाया हुआ।

प्रलंबी—वि० [सं० प्रलम्बिन्] [वि० स्त्री० प्रलंबिनी] १. दूर तक लटकनेवाला। लंबा। २. अवलंबन करनेवाला। सहारा लेनेवाला।

प्रलंभ—संज्ञा पुं० [सं० प्रलम्भ] १. लाभ। प्राप्ति। मिलना। २. छल। धोखा।

प्रलंभन—संज्ञा पुं० [सं० प्रलम्भन] [वि० प्रलब्ध] १. लाभ होना। प्राप्ति होना। २. छल। धोखा।

प्रलकाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रलयकाल] दे० 'प्रलयकाल'। उ०—जगे प्रलकाल भयानक भूत। इसे दुह दंति भिरे अवधूत।—पृ० रा०, ६।१५८।

प्रलपन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रलपित] १. कहना। कथन। २. बकवाद करना। प्रलाप। बकना। ३. विलपना। दुखड़ा रोना। विलाप (को०)।

प्रलपित¹—वि० [सं०] कहा हुआ। कथित [को०]।

प्रलपित²—संज्ञा पुं० वार्ता। कथन। बात। प्रलपन [को०]।

प्रलब्ध—वि० [सं०] १. जिसे धोखा दिया गया हो। जो छला गया हो। २. पकड़ा हुआ। लिया हुआ (को०)।

प्रलयंकर—वि० [सं० प्रलयङ्कर] [वि० स्त्री० प्रलयंकरी] प्रलयकारी। सर्वनाशकारी।

प्रलय—संज्ञा पुं० [सं०] १. लय को प्राप्त होना। विलीन होना। न रह जाना। २. भू आदि लोकों का न रह जाना। संसार का तिरोभाव। जगत् के नाना रूपों का प्रकृति में लीन होकर मिट जाना।

विशेष—पुराणों में संसार के नाश का वर्णन कई प्रकार से आया है। कूर्म पुराण के अनुसार प्रलय चार प्रकार का होता है—नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यंतिक। लोक में जो बराबर क्षय हुआ करता है वह 'नित्य प्रलय' है। कल्प के अंत में तीनों लोकों का जो क्षय होता है वह नैमित्तिक या 'ब्राह्म प्रलय' कहलाता है। जिस समय प्रकृति के महदादि विशेष तक विलीन हो जाते हैं उस समय 'प्राकृतिक प्रलय' होता है। ज्ञान की पूर्णावस्था प्राप्त होने पर ब्रह्म या चित् में लीन हो जाने का नाम 'आत्यंतिक प्रलय' है। विष्णु पुराण में 'नित्य प्रलय' का उल्लेख नहीं है। ब्राह्म और प्राकृत प्रलयों के वर्णन पुराणों में एक ही प्रकार के हैं। अनावृष्टि द्वारा चराचर का नाश, बारह सूर्यों के प्रचंड ताप से जल का शोषण और सब कुछ भस्म होना, फिर लगातार घोर वृष्टि होना और सब जलमय हो जाना, केवल प्रजापति का या विष्णु का रह जाना वर्णित है। एक हजार चतुर्युग का ब्रह्मा का एक दिन और उतने ही की एक रात होती है इसी रात में वह प्रलय होता है जिसे 'ब्राह्म प्रलय' कहते हैं। प्राकृतिक प्रलय में, पहले जल पृथ्वी के गंधगुण को विलीन करता है जिससे पृथ्वी नहीं रह जाती, जल रह जाता है। फिर जल का गुण जो रस है उसे अग्नि विलीन कर लेती है जिससे जल नहीं रह जाता, अग्नि रह जाती है। फिर वायु तेज को भी विलीन कर लेती है और वायु ही रह जाती है; फिर वायु का गुण जो स्पर्श है उसे आकाश विलीन कर लेता है और केवल आकाश ही रह जाता है जिसका गुण शब्द है। फिर यह शब्द भी अहंकार तत्व में और अहंकार तत्व महत्तत्व में और अंत में महत्तत्व भी प्रकृति में लीन हो जाता है।

नैयायिक दो प्रकार के प्रलय मानते हैं—खंडप्रलय और महाप्रलय। पर नव्य न्यायवाले महाप्रलय नहीं मानते। सांख्य के अनुसार सृष्टि और प्रलय दोनों प्रकृति के परिणाम हैं। प्रकृति का परिणाम दो प्रकार का होता है—स्वरूप परिणाम और विरूप परिणाम। प्रकृति के उत्तरोत्तर विकार द्वारा जो विरूप परिणाम होता है उससे सृष्टि होती है और सृष्टि का जो फिर उलटा परिणाम प्रकृति के स्वरूप की ओर होने लगता है उससे प्रलय होता है। जब सत्व सत्व में, रजस् रजस् में, तमस् तमस् में मिल जाता है तब प्रलय होता है। स्वरूप परिणाम जब होने लगता है उस समय पहले महाभूत पंचतन्मात्र में विलीन होते हैं, फिर पंचतन्मात्र और एकादश इंद्रियाँ अहंकार तत्व में, फिर यह अहंकार महत्तत्व में और अंत में महत्तत्व भी प्रकृति में लीन हो जाता है। उस समय एकमात्र प्रकृति ही रह जाती है। इस प्रकार संसार अपने मूल कारण प्रकृति में लय को प्राप्त हो जाता है

३. साहित्य में एक सात्विक भाव जिससे किसी वस्तु में तन्मय होने से पूर्व स्मृति का लोप हो जाता है। ४. मूर्छा। बेहोशी। ५. मृत्यु। नाश (को०)। ६. ओंकार (को०)। ७. व्यापक संहार या विनाश (को०)।

प्रलयकर—वि० [सं०] दे० 'प्रलयंकर'।

प्रलयकारी—वि० [सं० प्रलयकारिन्] दे० 'प्रलयंकर'।

प्रलयकाल—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय का समय। वह समय जब समस्त संसार का नाश हो।

प्रलयजलधर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल के मेघ। प्रलय के समय के बादल [को०]।

प्रलयपयोधि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय के समय का समुद्र।

प्रलयागिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रलय + अग्नि] प्रलयंकर आग। अत्यंत भयंकर और विनाशकारी अग्नि। उ०—दहकत ज्वाला सो महि कैसी। अति दुस्सह प्रलयागिनि जैसी।—कबीर सा०। पृ० ४३६।

प्रललाट—वि० [सं०] जिसका ललाट चौड़ा हो। प्रशस्त ललाटवाला [को०]।

प्रलव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अच्छी तरह काटना। पूर्ण रूप से छेदन। २. टुकड़ा। धज्जी। ३. लेश। लव।

प्रलवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] काटने का औजार [को०]।

प्रलाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. कहना। बकना। कथन। २. दुःखपूर्ण रुदन। दुखड़ा रोना (को०)। ३. निरर्थक वाक्य। व्यर्थ की बकवाद। अनाप शनाप बात। पागलों की सी बड़बड़।

विशेष—ज्वर आदि के वेग में लोग कभी कभी प्रलाप करते हैं। वियोगियों की दस दशाओं में एक प्रलाप भी है।

प्रलापक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी अनाप शनाप बकता है, उसके शरीर में पीड़ा और कंप होता है। उसका चित्त ठिकाने नहीं रहता। २. प्रलाप करनेवाला। बकवादी (को०)।

प्रलापहा—संज्ञा पुं० [सं० प्रलापहन्] कुलथी़ांजन। एक प्रकार का अंजन।

प्रलापी—वि० [सं० प्रलापिन्] [वि० स्त्री० प्रलापिनी] प्रलाप करनेवाला । व्यर्थ बकनेवाला । बंड बंड बकनेवाला । उ०—सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी ।—मानस, ६।२५ ।

प्रलापु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रलाप] दे० 'प्रलाप' । उ०—सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु । विद्यमान रन पाय रिपु, कायर करहिं प्रलापु ।—मानस, १।२७४ ।

प्रलिप्त—वि० [सं०] लिप्त । लिपा हुआ । लगा हुआ [को०] ।

प्रलीन—वि० [सं०] १. समाया हुआ । तिरोहित । २. विनष्ट । नष्ट । प्रलयप्राप्त (को०) । ३. छिपा हुआ । लीन । निमग्न । (को०) । ४. चेष्टाशून्य । जड़वत् ।

प्रलीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रलय । नाश । विलीनता । तिरोभाव । २. चेष्टानाश । जड़त्व ।

प्रलीनेंद्रिय—वि० [सं० प्रलीनेन्द्रिय] जिसकी इंद्रियाँ चेष्टारहित हों । शिथिल इंद्रियोंवाला [को०] ।

प्रलुंठित—वि० [सं०] १. भूमि पर पतित । गिरा हुआ । २. उछलता कूदता हुआ (को०) ।

प्रलुप्त—वि० [सं०] जो लुप्त किया गया हो [को०] ।

प्रलुब्ध—वि० [सं०] लुब्ध । लालच में पड़ा हुआ [को०] ।

प्रलुब्धा—वि० स्त्री० [सं०] वह (स्त्री) जो अनुचित रूप से प्रेम करती हो [को०] ।

प्रलून—वि० [सं०] काटा हुआ । कर्तित ।

प्रलेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी गीली दवा को पीड़ित अंग पर चढ़ाने की क्रिया । अंग पर कोई गीली दवा छोपना या रखना । २. लेप । पुल्टिस ।

प्रलेपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लेप करनेवाला । २. एक प्रकार का जीर्ण ज्वर ।

विशेष—यह ज्वर वात, कफ से उत्पन्न होता है । इसमें पसीने के संसर्ग से चमड़ा लिपा हुआ अर्थात् भीगा सा रहता है और ज्वर बहुत थोड़ा थोड़ा रहता है । यह ज्वर अत्यंत कष्टसाध्य है ।

प्रलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] लेप करने की क्रिया । पोतने का काम ।

प्रलेप्य¹—वि० [सं०] लेप करने योग्य ।

प्रलेप्य²—संज्ञा पुं० कुंचित केश । घुँघराले बाल ।

प्रलेह—संज्ञा पुं० [सं०] मांस का एक व्यंजन जो मांस के छोटे छोटे खंड काटकर घी में तलकर बनाया जाता है । कोरमा ।

प्रलेहन—संज्ञा पुं० [सं०] चाटना ।

प्रलै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रलय] दे० 'प्रलय' । उ०—मेरे जान मेरी जान लेन पाछें आवति है सूल लिएँ कोप भरी प्रलै कपाली सी ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४६१ ।

प्रलोक—संज्ञा पुं० [सं० परलोक] दे० 'परलोक' । उ०—लोक प्रलोक सबै मिलै देव इंद्र हू होइ । सुंदर दुरलभ संत जन क्यों करि पावै कोइ । —सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७४४ ।

प्रलोठन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूमि पर लुढ़कना । २. उछलना । कूदना [को०] ।

प्रलोप—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वंस । नाश ।

प्रलोभ—संज्ञा पुं० [सं०] लालच । अत्यंत लोभ ।

प्रलोभक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलोभन देनेवाला । लालच देनेवाला ।

प्रलोभन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोभ दिखाना । लालच दिखाना । किसी को किसी ओर प्रवृत्त करने के लिये उसे लाभ की आशा देने का काम । जैसे,—तुम उसके प्रलोभन में मत आना । २. वह वस्तु जिससे लालच उत्पन्न हो । ललचानेवाली वस्तु (को०) ।

प्रलोभनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रेत । बालू [को०] ।

प्रलोभित—वि० [सं०] प्रलोभ में आया हुआ । ललचाया हुआ । मुग्ध । मोहित ।

प्रलोभी—वि० [सं० प्रलोभिन्] प्रलोभ में फँसनेवाला । लुब्ध ।

प्रलोल—वि० [सं०] १. अत्यंत चंचल । २. उत्तेजित । अत्यंत कंपित । लुब्ध [को०] ।

प्रलौ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रलय प्रा० पलव] दे० 'प्रलय' । उ०—चंपै न सीम साहाब सक, चक चकि चर करिहौं प्रलौ । पृ० रा०, १३।३१ ।

प्लवंग, प्लवंगम—संज्ञा पुं० [सं० प्लवङ्ग, प्लवङ्गम] १. बंदर । २. पक्षी [को०] ।

प्रवंचक—संज्ञा पुं० [सं० प्रवञ्चक] वंचन करनेवाला । भारी ठग । धोखेबाज । भारी धूर्त । उ०—तोड़ा गया पुल प्रत्यावर्तन के पथ में अपने प्रवंचकों से । —लहर, पृ० ५६ ।

प्रवंचन—संज्ञा पुं० [सं० प्रवञ्चन] धोखा देना । ठगना । वंचना (को०)।

प्रवंचना—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रवञ्चना] छल । ठगपना । धूर्तता ।

प्रवंचित—वि० [सं० प्रवञ्चित] जो ठगा गया हो । जिसने धोखा खाया हो ।

प्रबंध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रबन्ध] दे० 'प्रबंध । निबंध । उ०—कविमधि कहेव सो छंद प्रबंदे अविगति जेहि पहिचानी ।—सं० दरिया, पृ० १३६ ।

प्रवक्ता—संज्ञा पुं० [सं० प्रवक्तृ] १. अच्छी तरह बोलने या कहनेवाला । २. वेदादि का उपदेश देनेवाला । अच्छी तरह समझाकर कहनेवाला ।

प्रवग—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी ।

प्रवचन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रवचनीय] १. अच्छी तरह समझाकर कहना । अर्थ खोलकर बताना । २. व्याख्या । ३. वेदांग ।

प्रवचनपटु—वि० [सं०] सुवक्ता । बातचीत में कुशल [को०] ।

प्रवचनीय¹—वि० [सं०] बताने या समझाकर कहने योग्य ।

प्रवचनीय²—संज्ञा पुं० प्रवक्ता । अच्छी तरह समझाकर कहनेवाला ।

प्रवच्छतिप्रेयसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रवत्स्यत्प्रेयसी] दे० 'प्रवत्स्यत्पतिका' । उ०—होनहार पिय के बिरह, बिकल होय जो बाल । ताहि प्रवच्छतिप्रेयसी बरनत बुद्धि बिसाल ।—मति० ग्रं०, पृ० ३१५ ।

प्रवज्यावसित—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रव्रज्यावसित'।

प्रवट—संज्ञा पुं० [सं०] गोधूम। गेहूँ।

प्रवण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रमशः नीची होती हुई भूमि। ढाल। उतार। २. पहाड़ का किनारा। ३. चौराहा। ४. उदर। पेट। ५. क्षण। ६. प्रकृति।

प्रवण[2]—वि० १. ढालुवाँ। जो क्रमशः नीचा होता गया हो। २. झुका हुआ। नत। ३. किसी बात की ओर ढला हुआ। प्रवृत्त। रत। ४. नम्र। विनीत। ५. व्यवहार में खरा। जो कुटिल न हो। सीधा हिसाब रखनेवाला। ६. उदार। दूसरे की बात सुनने और माननेवाला। ७. अनुकूल। मुवाफिक। ८. स्निग्ध। ९. लंबा। १०. निपुण। ११. वक्र। टेढ़ा। तिर्यक् (को०)। १२. सीधा खड़ा। जिससे गिरने पर कहीं टिकान न मिले। जैसे, पहाड़ का खड़ा किनारा (को०)।

प्रवणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रवण होने का भाव।

प्रवत्स्यत्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रवत्स्यती, प्रवत्स्यंती] जो परदेस जानेवाला हो। जो यात्रा पर जानेवाला हो [को०]।

प्रवत्स्यत्पतिका—[सं०] वह नायिका जिसका पति विदेश जानेवाला हो।

विशेष—मुग्धा, मध्या और स्वकीया, परकीया आदि भेदों से इसके भी कई भेद हो जाते हैं।

प्रवत्स्यत्प्रेयसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रवत्स्यत्पतिका'।

प्रवत्स्यद्भर्तृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रवत्स्यत्पतिका।

प्रवदन—संज्ञा पुं० [सं०] घोषणा।

प्रवप—वि० [सं०] बहुत मोटा। स्थूलकाय [को०]।

प्रवपण—संज्ञा पुं० [सं०] मुंडन संस्कार। मुंडन क्रिया [को०]।

प्रवयण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुने हुए कपड़े का ऊपरी भाग। २. कशा। कोड़ा। चाबुक [को०]।

प्रवया—वि० [सं० प्रवयस्] १. वृद्ध। बूढ़ा। २. पुराना [को०]।

प्रवर[1]—वि० [सं०] १. श्रेष्ठ। बड़ा। मुख्य। प्रधान। जैसे, वीरप्रवर। उ०—देखें वे, हँसते हुए प्रवर, जो रहे देखते सदा समर।—अनामिका, पृ० ११६। २. सर्वप्रधान। सबसे ज्येष्ठ (को०)।

यौ०—प्रवर समिति।

प्रवर[2]—संज्ञा पुं० १. किसी गोत्र के अंतर्गत विशेष प्रवर्तक मुनि। जैसे, जमदग्नि गोत्र के प्रवर्तक ऋषि जमदग्नि, और्व और वशिष्ठ; गर्ग गोत्र के गार्ग्य, कौस्तुभ और मांडव्य इत्यादि। २. संतति। ३. अगर की लकड़ी। ४. आवरण। आच्छादन (को०)। ५. शरीर का ऊपरी वस्त्र। उपरना। दुपट्टा (को०)। ६. आवाहन। पुकार (को०)। ७. यज्ञ के समय अग्नि का आवाहन (को०)।

प्रवरगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] मगध देश के एक पर्वत का प्राचीन नाम। इसे आजकल 'बराबर पहाड़' कहते हैं।

प्रवरजन—संज्ञा पुं० [सं०] गुणी व्यक्ति। अच्छे गुणवाला व्यक्ति [को०]।

प्रवरकल्याण—[सं०] अत्यंत सुंदर। बहुत खूबसूरत [को०]।

प्रवरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का आवाहन। २. वर्षा ऋतु के अंत में होनेवाला बौद्धों का एक उत्सव।

प्रवरललिता—संज्ञा स्त्री० [सं०प्रवरललित] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में यगण, मगण, नगण, सगण, रगण और एक गुरु होता है। जैसे,—यमी नासै रागादिक सकल जंजाल भाई। यही है मेरे ना प्रवरललिता ताहि आई। अहो, मेरे मीता यदि चहहु संसार जीता। तजी सारे रागा भजहु अवहा राम सीता।

प्रवरवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनीकुमार।

प्रवरसमिति—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रवर = समिति] किसी विशेष विषय पर गंभीर विचार के बाद सुनिश्चित मत व्यक्त करने के लिये बनाई हुई समिति।

प्रवरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अगुरु। अगर की लकड़ी। २. दक्षिण की एक छोटी नदी जो गोदावरी में मिलती है। इसका नाम पयोष्णा भी मिलता है।

प्रवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. होमाग्नि। हवन करने की अग्नि। २. विष्णु का एक नाम (को०)। ३. सोम याग संबंधी एक उत्सव (को०)।

प्रवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्यारंभ। ठानना। उ०—जब रन होत प्रवर्त रचत अरि हृदय गर्त नव।—गोपाल (शब्द०)। २. एक प्रकार के मेघ। ३. गोल आकार का एक प्राचीन आभूषण (अथर्व०)।

प्रवर्तक—संज्ञा पुं० [पुं०] १. किसी काम को चलानेवाला। संचालक। कोई बात ठानने या उठानेवाला। २. आरंभ करनेवाला। चलानेवाला। अनुष्ठान या प्रचार करनेवाला। जारी करनेवाला। जैसे, मतप्रवर्तक, धर्मप्रवर्तक। उ०—किसी उक्ति की तह में उसके प्रवर्तक के रूप में यदि कोई भाव या मार्मिक अंतर्वृत्ति छिपी है तो काव्य की सरसता पाई जायगी।—रस०, पृ० ३६। ३. काम में लगानेवाला। प्रवृत्त करनेवाला। प्रेरित करनेवाला। ४. उभारनेवाला। उकसानेवाला। ५. गति देनेवाला। ६. निकालनेवाला। ईजाद करनेवाला। ७. नाटक में प्रस्तावना का वह भेद जिसमें सूत्रधार वर्तमान समय का वर्णन करता हो और उसी का संबंध लिए पात्र का प्रवेश हो। ८ न्याय करनेवाला। विचार करनेवाला। पंच।

प्रवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रवर्तित, प्रवर्तनीय, प्रवर्त्य] १. कार्य आरंभ करना। ठानना। २. कार्य का संचालन। काम को चलाना। ३. प्रचार करना। जारी करना। ४. उत्तेजना। प्रेरणा। उकसाना। उभारना। ५. प्रवृत्ति। उ०—विघ्न और बाधा की दशा में प्रेम काम करता हुआ नहीं दिखाई देता, एक ओर करुणा और दूसरी ओर क्रोध का प्रवर्तन ही देखा जाता है।—रस०, पृ० ७७।

प्रवर्तना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रवृत्तिदान। प्रवृत्त करने की क्रिया।

उत्तेजना। प्रेरणा। २. किसी काम में लगाने या नियुक्त करने की क्रिया। नियोजन।

प्रवर्तयिता—वि० [सं० प्रवर्तयितृ] प्रवर्तन करनेवाला [को०]।

प्रवर्तित—वि० [सं०] १. ठाना हुआ। आरब्ध। २. चलाया हुआ। ३. निकाला हुआ। ४. उत्पन्न। पैदा। ईजाद किया हुआ। ५. उभारा हुआ। उत्तेजित। प्रेरित। ६. ज्वलित। जलाया हुआ। प्रज्वलित (को०)। ७. सूचित (को०)। ८. शुद्ध किया हुआ। पवित्र (को०)।

प्रवर्ती[1]—वि० [सं० पर + वर्तिन्] बाद का। परवर्ती। उ०—इतना कहने के बाद मैं इस अध्याय के प्रवर्ती भाग पर आता हूँ। शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ७२।

प्रवर्ती[2]—वि० [सं० प्रवर्तिन्] प्रवर्तन करनेवाला [को०]।

प्रवर्द्धक—वि० [सं०] बढ़ानेवाला। वृद्धिकारक। उ०—प्रबल भाव सदैव ही प्रतिपक्ष का। है प्रवर्द्धक वीर जन के बल का।—शकु०, पृ० ४३।

प्रवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] विवर्द्धन। बढ़ती। वृद्धि।

प्रवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] घनघोर वर्षा। जोर की वर्षा [को०]।

प्रवर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्षा। बारिश। उ०—जिस प्रवर्षण भूमि उर्वर, जिस तपन मरु धूम धूसर, जिस पवन लहरा दिगंतर, ज्ञान तेरा ही वहीं है।—आराधना, पृ० ३५। २. बरसात की पहली वर्षा (को०)। ३. किष्किंधा के समीप का एक पर्वत जिसपर श्रीराम और लक्ष्मण ने निवास किया था।

प्रवर्षी—वि० [सं० प्रवर्षिन्] [वि० स्त्री० प्रवर्षिणी] १. वृष्टि करनेवाला। वर्षा करनेवाला। २. बौछार करनेवाला। जैसे बाणों की [को०]।

प्रवर्ह—वि० [सं०] प्रधान। श्रेष्ठ।

प्रवलाकी—संज्ञा पुं० [सं० प्रवलाकिन्] १. मोर। मयूर। २. साँप। सर्प।

प्रवसथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रस्थान। २. प्रवास।

प्रवसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विदेश में जाना या रहना। बाहर जाना। २. मृत्यु (को०)।

प्रवह—संज्ञा पुं० [सं०] १. खूब बहाव। २. कुंड जिसमें नाली द्वारा जल जाय। ३. सात वायुओं में से एक वायु।

विशेष—यह वायु आवह वायु के ऊपर है और इसी के द्वारा ज्योतिष्क पिंड आकाश में स्थित हैं।

४. वायु। पवन (को०)। ५. अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक। ६. घर, नगर आदि से बाहर निकलना।

प्रवहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ले जाना। २. कन्या को ब्याह देना। ३. छोटा परदेदार रथ। बहली। ४. डोली। ५. नाव। पोत।

प्रवहणीनिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] कामगर लोगों का संस्थान [को०]।

प्रवहमान—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रवहमाना] प्रवाहयुक्त। बहता हुआ। प्रवाहित। उ०—(क) प्रवहमान थे निम्न देश में, शीतल शत शत निर्झर ऐसे। —कामायनी, पृ० २५८। (ख) प्रवहमान पार्वत्य नदियों का मार्ग भिन्न किया था। —प्रा० भा० प०, पृ० ५८।

प्रवहमानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रवाहित होने का भाव। प्रवाहशीलता।

प्रवह्लि, प्रवह्लिका,—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहेली।

प्रवह्ली, प्रवह्लीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रहेलिका [को०]।

प्रवाण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाण] हदबंदी। सीमा। अवधि। दे० 'प्रमाण'। उ०—राजा सोमंत दल प्रवाँणी, यूँ सिधा सोमंत सुधि बुधि की वाँणी।—गोरख०, पृ० २४।

प्रवाँन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाण] दे० 'प्रमाण-१' उ०—भक्ति योग अब सुनहु सयाना। बुद्धि प्रवाँन जु करौं बखाना। —सुंदर० ग्रं०, भा०१ पृ० ६५।

प्रवाँनना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रमाणन, पुहिं० प्रमानना] दे० 'प्रमानना'। उ०—अज्ञान अपेक्षा ज्ञान बंध की अपेक्षा मोक्ष, द्वैत की अपेक्षा सु तौ अद्वैत प्रवाँनिए।—सुंदर०, ग्रं०, भा०२, पृ० ६६५।

प्रवाक—संज्ञा पुं० [सं०] घोषणा करनेवाला।

प्रवाच—वि० [सं०] १. बहुत बोलनेवाला। इधर उधर की हाँकनेवाला। २. शेखी बघारनेवाला। ३. युक्तिपटु। अच्छी बहस करनेवाला।

प्रवाचक—वि० [सं०] १. अच्छा वक्ता। वाग्मी। वाक्पटु। २. अर्थव्यंजक। अर्थवाचक।

प्रवाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अच्छी तरह कहना। घोषणा। २. नाम। अभिधान। उपाधि (को०)।

प्रवाच्य[1]—वि० [सं०] १. अच्छी तरह कहने योग्य। २. निंदनीय।

प्रवाच्य[2]—संज्ञा पुं० साहित्यिक कृति या रचना [को०]।

प्रवाड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रवाद, हिं० पँवाड़ा, पवाड़ा, पवारा] दे० 'पवाड़ा'। उ०—(क) पढ़ै सु कवि जो वंश प्रवाड़ा। हुवै वतीत आव दीहाड़ा।—रा० रू०, पृ० १२। (ख) दीसै नाहर देखियाँ सह, प्रवाड़ा साथ।—बाँकी० ग्रं०, भा०१, पृ० २६।

प्रवाण—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र का अंचल बनाना या सज्जित करना [को०]।

प्रवाणि, प्रवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जुलाहों की ढरकी या भरनी [को०]।

प्रवात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हवा का झोंका। तेज हवा। उ०—पर अंत को अशात ही के मेघ तो वे क्षण में प्रवात से विधुर गए आकाश खुल गया।—श्यामा०, पृ० ७। २. स्वच्छ या ताजा वायु (को०)। ३. वह स्थान जहाँ खूब हवा हो। ४. ढाल। उतार। प्रवण।

प्रवात²—वि० हवा से हिलता हुआ। झोंके खाता हुआ। जिसमें तीव्र वायु लगती हो।

प्रवातसार—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

प्रवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. परस्पर वाक्य। बातचीत। २. कहना। बोलना। व्यक्त करना (को०)। ३. चुनौती। ललकार (को०) ४. वह बात जो लोगों के बीच फैली हुई हो पर जिसके ठीक होने का निश्चय न हो। जनश्रुति। जनरव। ५. झूठी बदनामी। अपवाद।

प्रवादक—वि० [सं०] बाजा बजानेवाला (को०)।

प्रवादी—वि० पुं० [सं० प्रवादिन्] प्रवाद करनेवाला (को०)।

प्रवानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० प्रमाण] दे० 'प्रमाण'। उ०—(क) सो भुज कंठ कि तव असि घोरा, सुनु सठ असि प्रवान पन मोरा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना।—मानस, १।१२३।

प्रवार—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रवर। २. वस्त्र। आच्छादन। ३. उत्तरीय वस्त्र। चादर या दुपट्टा।

प्रवारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निषेध। २. काम्यदान। वह दान जो किसी कामना से किया जाय। ३. कमनीय वस्तुओं का दान। उत्तम वस्तुओं का दान (को०)। ४. इच्छापूर्ति। कामना पूरी करना (को०)। ५. महादान (को०)। ६. आच्छादन। प्रवार (को०)। ७. वर्षा ऋतु बीतने पर होनेवाला बौद्धों का एक उत्सव।

प्रवाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूँगा। विद्रुम। २. किशलय। कोंपल। कोमल पत्ता। ३. वीणादंड। सितार या तँबूरे की लकड़ी।

प्रवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपना घर या देश छोड़कर दूसरे देश में रहना। विदेश में रहना। परदेश का निवास। २. विदेश।

यौ०—प्रवासगत = विदेश गया हुआ। प्रवासपर = प्रवास में आसक्त। प्रवासस्थ, प्रवासस्थित = प्रवास पर गया हुआ।

प्रवासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रवासित, प्रवास्य] १. देश या पुर से बाहर निकालना। देशनिकाला। २. वध। ३. प्रवास। बाहर रहना (को०)।

प्रवासित—वि० [सं०] १. देश से निकाला हुआ। २ हत। मारा हुआ।

प्रवासी—वि० [सं० प्रवासिन्] [वि० स्त्री० प्रवासिनी] विदेश में निवास करनेवाला। परदेस में रहनेवाला।

प्रवास्य—वि० [सं०] जो देश से निकाले जाने के योग्य हो। जिसे देशनिकाला देना उचित हो।

प्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल। स्रोत। पानी की गति। बहाव। २. बहता हुआ पानी। धारा। ३. कार्य का बराबर चला चलना। काम का जारी रहना। ४. चलता हुआ काम। व्यवहार। ५. झुकाव। प्रवृत्ति। ६. अच्छा वाहन या घोड़ा। ७. चलता हुआ क्रम। तार। सिलसिला। जैसे, वाणी का प्रवाह। ८. तालाब। झील (को०)। ९. उत्तम घोड़ा (को०)।

प्रवाहक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अच्छी तरह वहन करे। अच्छी तरह वहन करनेवाला। २. राक्षस।

प्रवाहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रवाहित] १. ढोया जाना। २. बहाया जाना।

प्रवाहणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मलद्वार में सबसे ऊपर की कुंडली जो मल को बाहर फेंकती है।

प्रवाहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहानेवाली। २. अतीसार या ग्रहणी रोग का एक भेद। ३. बहनेवाली अर्थात् नदी। सरिता जिसमें प्रवाह रहता है। उ०—

प्रवाहित—वि० [सं०] १. जो बहाया गया हो। २. जो ढोया गया हो।

प्रवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी (को०)।

प्रवाही¹—वि० [सं० प्रवाहिन्] [वि० स्त्री० प्रवाहिनी] १. बहानेवाला। २. प्रवाहवाला। बहनेवाला। ३. तरल। द्रव।

प्रवाही²—संज्ञा स्त्री० [सं०] बालुका। बालू। रेत।

प्रविकट—वि० [सं०] अत्यंत विस्तृत। विशाल (को०)।

प्रविकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] खींचना। आकर्षण। तानना (को०)।

प्रविकीर्ण—वि० [सं०] १. बिखरा हुआ। छितरा हुआ। २. अलग अलग। विघटित (को०)।

यौ०—प्रविकीर्णकामा = वह औरत जिसके अनेक प्रेमी हों।

प्रविख्यात—वि० [सं०] १. प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर। २. आदृत। आदरणीय। संमानित (को०)।

प्रविख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसिद्धि। ख्याति।

प्रविग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] संधिभंग।

प्रविचय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुसंधान। खोज। २. परीक्षण। परीक्षा।

प्रविचार—संज्ञा पुं० [सं०] विवेक। विचारणा। विवेचन (को०)।

प्रविचित—वि० [सं०] सिद्ध। परीक्षित (को०)।

प्रविचेतन—संज्ञा पुं० [सं०] बोध। समझ। ज्ञान (को०)।

प्रवितत—वि० १. फैला हुआ। अत्यंत विस्तृत। २. बिखरा हुआ। अस्तव्यस्त। जैसे, बाल (को०)।

प्रविदार—संज्ञा पुं० [सं०] खुलना। स्फोट। (को०)

प्रविदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्ण रूप से विदारण। २. ३. भीड़भाड़। जनसंमर्द (को०)। ४. स्फुटन। खिलना। खुलना। (को०)।

प्रविद्ध—वि० [सं०] फेंका हुआ। क्षिप्त। अपाकृत (को०)।

प्रविद्रुत—वि० [सं०] अस्तव्यस्त या तितर बितर किया हुआ। भगाया हुआ (को०)

प्रविधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. विचार करना। २. कार्य रूप में परिणत करना। ३. वह साधन जो काम में लाया गया हो (को०)।

प्रविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] विधि। ढंग। तरीका।

प्रविक्षिप्त—वि० [सं०] १. फेंका हुआ। उत्क्षिप्त। २. कंपित। क्षुब्ध [को०]।

प्रविपल—संज्ञा पुं० [सं०] विपल का लघुतम अंश [को०]।

प्रविर—संज्ञा पुं० [सं०] पीतकाष्ठ। एक प्रकार का चंदन।

प्रविरत—वि० [सं०] हटा हुआ। विरत [को०]।

प्रविरल—वि० [सं०] १. जो बहुत बड़े अंतराल के कारण अलग हो गया हो। अलग। पृथक्। २. बहुत कम। अत्यल्प।

प्रविलय, प्रविलयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिघलना। २. पूर्णतः लय या समाप्त हो जाना [को०]।

प्रविवर—संज्ञा पुं० [सं०] पदुमकाठ या पदम वृक्ष। पदमख। विशेष—दे० 'पदम'।

प्रविविक्त—वि० [सं०] १. पूर्णतः निर्जन। पूर्णतः एकाकी। २. निशित। तीक्ष्ण। तीव्र। तिग्म। (को०)। ३. अलग। विच्छिन्न। पृथक् (को०)।

प्रविवेक—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्णतः निर्जन स्थान। पूरी तौर से निर्जनता [को०]।

प्रविश्लेष—संज्ञा पुं० [सं०] अलगाव। विभक्तता [को०]।

प्रविषण्ण—वि० [सं०] निराश। खिन्न [को०]।

प्रविषय—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्र। प्रसर [को०]।

प्रविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीस। अतिविषा।

प्रविष्ट—वि० [सं०] घुसा हुआ। पैठा हुआ। भीतर पहुँचा हुआ। उ०—*प्रिय, प्रविष्ट हो, द्वार मुक्त है, मिलन योग तो नित्य युक्त है।*—साकेत, पृ० ३११।

प्रविसना(पु)—क्रि० अ० [सं० √प्रविश्] घुसना। पैठना। उ०—प्रविसि नगर कीजै सब काजा।—तुलसी (शब्द०)।

प्रविसृत—वि० [सं०] १. दौड़ा हुआ। अपलायित। २. साहसी। हिम्मतवर। उग्र [को०]।

प्रविस्तर, प्रविस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] फैलाव। घेरा [को०]।

प्रवीण—वि० [सं०] १. अच्छा गाने, बजाने या बोलनेवाला। २. निपुण। कुशल। दक्ष। चतुर। होशियार।

प्रवीणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निपुणता। चतुराई। कुशलता।

प्रवीत(पु)—वि० [सं० पवित्र ?] पवित्र। उ०—बाँ महाराणी उच्चरै, सुहड़ां सबो सचीत। परवाही जब धार दे, अमणा धार प्रवीत।—रा० रू०, पृ० १०।

प्रवीन(पु)[1]—वि० [सं० प्रवीण] दे० 'प्रवीण'।

प्रवीन(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्र + वीणा] अच्छी वीणा। सुंदर वीणा।

प्रवीर[1]—वि० [सं०] सुभट। श्रेष्ठ योद्धा। अच्छा वीर। भारी योद्धा। बहादुर। उ०—शेर पंचनद का प्रवीर रणजीत सिंह आज मरता है देखो।—लहर, पृ० ६१। २. उत्तम। श्रेष्ठ।

प्रवीर[2]—संज्ञा पुं० १. भौत्य मनु के एक पुत्र। २. वह जो सर्वश्रेष्ठ वीर हो (को०)। ३. माहिष्मती के राजा नीलध्वज के पुत्र जो ज्वाला के गर्भ से उत्पन्न थे।

विशेष—इनकी कथा जैमिनी भारत में इस प्रकार है। जब युधिष्ठिर का अश्वमेध का घोड़ा माहिष्मती में पहुँचा तब राजकुमार प्रवीर बहुत सी स्त्रियों को लिए एक उपवन में क्रीड़ा कर रहे थे। अपनी प्रेयसी मदनमंजरी के कहने से राजकुमार घोड़े को पकड़ लाए। घोर युद्ध हुआ जिसमें नीलध्वज हारने लगे। सूर्य नीलध्वज के जामाता थे और वर देने के कारण उन्हीं के घर रहते थे। सूर्य के समझाने पर नीलध्वज ने घोड़े को अर्जुन को लौटाना चाहा। पर उनकी स्त्री उन्हें धिक्कारने लगी और उसने युद्ध करने के लिये उत्तेजित किया। युद्ध में प्रवीर तथा और बहुत से राजवंश के लोग मारे गए। तब नीलध्वज ने घोड़े को वापस कर दिया। इसपर ज्वाला क्रुद्ध होकर अपने भाई के पास चली गई और उसे अर्जुन से युद्ध करने के लिये उभारने लगी। जब भाई ने भी उसे अपने यहाँ से भगा दिया तब वह नौका पर चढ़कर गंगा पार कर रही थी। गंगा देवी को उसने बहुत फटकारा कि तुमने अपने सात पुत्रों को डुबा दिया और तुम्हारे आठवें पुत्र भीष्म की यह गति हुई कि अर्जुन ने शिखंडी को सामने करके उसे मार डाला। इसपर गंगादेवी ने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि ६ महीने में अर्जुन का सिर कटकर गिर पड़ेगा। यह सुनकर ज्वाला प्रसन्न होकर आग मे कूद पड़ी और अर्जुन के वध की इच्छा से तीक्ष्ण बाण होकर बभ्रुवाहन के तूणीर में आ विराजी। यह कथा महाभारत में नहीं है।

प्रवृत—वि० [सं०] चुना हुआ। चयन किया हुआ [को०]।

प्रवृत्त[1]—वि० [सं०] १. प्रवृत्तिविशिष्ट। किसी बात की ओर झुका हुआ। रत। तत्पर। लगा हुआ। जैसे, किसी कार्य में प्रवृत्त होना। २. प्रस्तुत। उद्यत। तैयार। ३. जिसकी उत्पत्ति या प्रारंभ हुआ हो। उत्पन्न। आरब्ध। ४. लगाया हुआ। नियुक्त। ५. निश्चित (को०)। ६. बाधा रहित। निर्बाध (को०)। ७. निर्विवाद (को०)। ८. वर्तुलाकार (को०)। ९. बहता हुआ। प्रवाहित (को०)।

प्रवृत्त[2]—संज्ञा पुं० १. एक गोलाकार आभूषण। २. क्रिया। व्यापार। कार्य [को०]।

प्रवृत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. रंगमंच पर प्रवेश करना। २. एक मात्रावृत्त [को०]।

प्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रवाह। बहाव। २. झुकाव। मन का किसी विषय की ओर लगाव। लगन। जैसे,—*उसकी प्रवृत्ति व्यापार की ओर नहीं है।* ३. वार्ता। वृत्तांत। हाल। बात। ४. यज्ञादि व्यापार। ५. न्याय में एक यत्न विशेष।

विशेष—वाणी, बुद्धि और शरीर से कार्य के आरंभ को प्रवृत्ति कहते हैं। राग द्वेष भले बुरे कामों में प्रवृत्त कराते हैं। इष्टसाधनता ज्ञान प्रवृत्ति का और द्विष्टसाधनता ज्ञान निवृत्ति का कारण होता है।

६. प्रवर्तन । काम का चलना । ७. सांसारिक विषयों का ग्रहण । संसार के कामों में लगाव । दुनिया के धंधे में लीन होना । निवृत्ति का उलटा । ८. उत्पत्ति । प्रारंभ । ९. शब्दार्थबोधक शक्ति (को०) । १०. भाग्य । किस्मत । (को०) । ११. उज्जयिनी का एक नाम (को०) १२. (गणित में) गुणक । गुणक अंक (को०) । १३. हाथी का मद ।

यौ०—प्रवृत्तिज्ञ । प्रवृत्तिनिमित्त = प्रवृत्ति का कारण । किसी विशिष्ट अर्थ में शब्दप्रयोग का कारण । प्रवृत्तिपराङ्मुख = जिसकी समाचार देने में रुचि न हो । प्रवृत्तिपुरुष = गुप्तचर । प्रवृत्तिमार्ग = भौतिक जीवन के कार्यव्यापारों में आसक्ति । प्रवृत्तिलेख = मार्गदर्शन करानेवाला । आलेख । प्रवृत्तिविज्ञान ।

प्रवृत्तिज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] जासूस । खुफिया [को०] ।

प्रवृत्तिविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] बाह्य पदार्थों से प्राप्त ज्ञान । (बौद्ध दर्शन) ।

प्रवृद्ध¹—वि० [सं०] १. वृद्धियुक्त । खूब बढ़ा हुआ । २. प्रौढ़ । खूब पक्का । ३. विस्तृत । खूब फैला हुआ । विशाल । ४. उग्र । घमंडी । गर्विष्ठ (को०) ।

प्रवृद्ध²—संज्ञा पुं० १. तलवार के ३२ हाथों में से एक जिसे प्रसृत भी कहते हैं । इनमें तलवार की नोक से शत्रु का शरीर छू भर जाता है । २. अयोध्या के राजा रघु का एक पुत्र जो गुरु के शाप से १२ वर्ष के लिये राक्षस हो गया था ।

प्रवेक—वि० [सं०] उत्तम । प्रधान ।

प्रवेग—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृष्ट वेग । तीव्र गति [को०] ।

प्रवेट—संज्ञा पुं० [सं०] यव । जौ ।

प्रवेण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बकरा । (वाल्मीकि रामायण) ।

प्रवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेणी । केशविन्यास । २. हाथी की पीठ पर का रंगबिरंगा झूल । ३. एक नदी । (महाभारत) । ४. धारा का प्रवाह । जलादि का बहाव (को०) ।

प्रवेता—संज्ञा पुं० [सं० प्रवेतृ] सारथी । रथवान ।

प्रवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञात कराना, व्यक्त या जाहिर करना [को०] ।

प्रवेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाण का छोड़ा जाना । २. एक विशेष प्रकार की माप [को०] ।

प्रवेप, प्रवेपक, प्रवेपथु, प्रवेपन—संज्ञा पुं० [सं०] कंपन । कांपना । हिलना डोलना [को०] ।

प्रवेरित—वि० [सं०] इधर उधर फेंका हुआ । इतस्ततः क्षिप्त या विकीर्ण [को०] ।

प्रवेल—संज्ञा पुं० [सं०] पीली मूँग ।

प्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतर्निवेश । भीतर जाना । घुसना । पैठना । दखल । २. गति । पहुँच । रसाई । जैसे,—वहाँ तक उनका प्रवेश नहीं है । ३. किसी विषय की जानकारी । जैसे—न्यायशास्त्र में उनका ऐसा प्रवेश नहीं है । ४. द्वार । ५. नाटक में किसी पात्र का रंगमंच पर प्रवेश (को०) । ६. उद्देश्योन्मुखता (को०) । ७. किसी लग्न या राशि में सूर्य का गमन (को०) । ८. आना । उपस्थित होना जैसे रात । (को०) । १०. व्यवहार । उपयोग (को०) । ११. पद्धति । ढंग (को०) । १२. आय । आगम (को०) ।

प्रवेशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रवेश करनेवाला । २. नाटक के अभिनय में वह स्थल जहाँ कोई पात्र दो अंकों के बीच की घटना का (जो दिखाई न गई हो) परिचय अपने वार्तालाप द्वारा देता है ।

प्रवेशद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] प्रवेश करने का मार्ग [को०] ।

प्रवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रविष्ट, प्रवेशनीय, प्रवेशित, प्रवेश्य] १. भीतर जाना । घुसना । पैठना । २. सिंहद्वार । ३. ले जाना । प्रवेश कराना । पहुँचाना (को०) । ४. स्त्रीप्रसंग । रतिक्रिया । संभोग (को०) ।

प्रवेशनिषेध—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के आने या प्रवेश को निषिद्ध ठहराने का आदेश ।

प्रवेशना(पु)—क्रि० अ०, क्रि० स० [सं० प्रवेशन] दे० 'प्रवेसना' ।

प्रवेशपत्र—संज्ञा पुं० [प्रवेश+पत्र] १. वह प्रमाणपत्र जिसके आधार पर संबद्ध स्थान या कार्यक्रम में भाग लिया जा सकता है । टिकट । २. वह प्रमाणपत्र जिसके आधार पर विदेशयात्रा की जाती है और जो विदेश में प्रवेश करते समय अधिकारियों को दिखाया जाता है ।

प्रवेशशुल्क—संज्ञा पुं० [सं०] वह द्रव्य जो किसी स्थान या संस्था में प्रवेश का अधिकार पाने के लिये दिया जाय ।

प्रवेशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह पत्र, चिट्ठी या चिह्न जिसे दिखाकर कहीं प्रवेश करने पाएँ । २. प्रवेश के लिये दिया जानेवाला धन । दाखिला ।

प्रवेशित—वि० [सं०] १. प्रवेश कराया हुआ । घुसाया या पैठाया हुआ । २. पहुँचाया हुआ [को०] ।

प्रवेश्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्रानुसार देश के भीतर आनेवाला माल । आयात ।

प्रवेश्य²—वि० [सं०] प्रवेश के योग्य । जिसमें प्रवेश हो सके । २. जिसका प्रवेश कराया जाय । ३. जो बजाया जाय, जैसे वाद्य आदि [को०] ।

प्रवेश्यशुल्क—संज्ञा पुं० [सं०] देश के भीतर आनेवाले माल का महसूल । आयात कर ।

प्रवेष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० परिवेश] परिधि । मंडल । घेरा ।

प्रवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाहु । २. बाहु का निचला भाग । पहुँचा । ३. हाथी के दाँत पर का मांस । हाथी का मसूड़ा । ४. हाथी की पीठ का मांसल भाग जिसपर सवारी होती है । ५. हाथी की झूल (को०) ।

प्रवेष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] दाहिना हाथ ।

प्रवेष्टा—संज्ञा पुं० [सं० प्रवेष्टृ] १. प्रवेश करनेवाला । २. प्रवेश करानेवाला (को०) ।

प्रवेसनाⓅ¹—क्रि० अ० [सं० प्रवेश] प्रवेश करना। घुसना। पैठना। उ०—सो सिय मम हित लागि दिनेसा। घोर बननि महँ कीन्ह प्रवेसा।—रामाश्वमेध (शब्द०)।

प्रवेसना²—क्रि० स० प्रविष्ट करना। घुसाना।

प्रव्यक्त—वि० [सं०] स्फुट। व्यक्त। प्रकट [को०]।

प्रव्यक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आविष्करण। प्रकाशन। व्यक्ति [को०]।

प्रव्याहरण—संज्ञा पुं० [सं०] बोलने, भाषण करने या वाद करने का स्थान [को०]।

प्रव्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाषण। कथन। उक्ति। २. वाद का बढ़ना। कथन या भाषण का जारी रहना। ३. ध्वनि। आवाज। शब्द। रव [को०]।

प्रव्याहृत—वि० [सं०] १. भविष्य के रूप में कथित। २. उक्त। कथित [को०]।

प्रव्रजन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रव्रजित] १. घर बार छोड़कर प्रव्रज्या या सन्यास लेना। २. बाहर जाना। परदेश जाना (को०)।

प्रव्रजित¹—वि० [सं०] १. संन्यासी। २. गृहत्यागी।

प्रव्रजित²—संज्ञा पुं० १. सन्यासी। वह व्यक्ति जिसने चतुर्थ आश्रम ग्रहण कर लिया हो। २. बौद्ध या जैन भिक्षु का एक शिष्य। ३. संन्यास आश्रम। चतुर्थ आश्रम [को०]।

प्रव्रजिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जटामासी। २. गोरखमुंडी। ३. तपस्विनी। तापसी (को०)।

प्रव्रज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संन्यास। भिक्षाश्रम। २. जाना। बाहर जाना। विदेशगमन (को०)। ३. तृतीय आश्रम। वानप्रस्थ (को०)।

क्रि० प्र०—ग्रहण करना।—लेना।

प्रव्रज्यावसित—संज्ञा पुं० [सं०] जो संन्यास ग्रहण करके उससे च्युत हो गया हो।

विशेष—प्रव्रज्याभ्रष्ट व्यक्ति को प्रायश्चित्त करना होता है। पर प्रायश्चित्त करने पर भी उसके साथ खानपान का व्यवहार नहीं रखना चाहिए।

प्रव्रज्याव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] नेपाली बौद्धों के यहाँ का एक संस्कार जो हिंदुओं के यज्ञोपवीत के ढंग पर होता है।

प्रव्रश्चन—संज्ञा पुं० [सं०] कुल्हाड़ी जिससे लकड़ी काटी जाय। काठ काटने की कुल्हाड़ी [को०]।

प्रव्राज्—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यासी [को०]।

प्रव्राज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत नीची जमीन। २. संन्यास।

प्रव्राजक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रव्राजिका] संन्यासी [को०]।

प्रव्राजन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रव्रजन'।

प्रशंसⓅ¹—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रशंसा] दे० 'प्रशंसा'।

प्रशंस²—वि० [सं० प्रशंस्य] प्रशंसा के योग्य। उ०—(क) गए जहाँ हंस तीन बागो सो प्रशंस देखि जानि के बँधाए राजा पास लैके आए हैं।—प्रियादास (शब्द०)। (ख) मंत्री प्रसिद्ध प्रशंस तू।—पूर्ण (शब्द०)।

प्रशंसक—वि० [सं०] १. प्रशंसा करनेवाला। स्तुति करनेवाला। २. खुशामदी। चाटुकार।

प्रशंसन—संज्ञा पुं० [सं०] वि० प्रशंसनीय, प्रशंसित, प्रशंस्य] १. गुणकीर्तन। गुणों का वर्णन करते हुए स्तुति करना। सराहना। तारीफ करना। २. धन्यवाद। साधुवाद।

प्रशंसनाⓅ¹—क्रि० स० [सं० प्रशंसन] सराहना। गुणानुवाद करना। बखानना। तारीफ करना। उ०—(क) रचि लक्ष्य विविध प्रकार मुनिवर तिन्हैं भेदन को कहैं। अरु हस्त-लाघव देखि सुतन प्रशंसि उर आनंद गहैं।—लवकुशचरित्र (शब्द०)। (ख) ताके पुत्र अनूपम आही। वेद पुराण प्रशंसत जाही।—सबलसिंह (शब्द०)।

प्रशंसना²—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रशंसा। प्रशंसन।

प्रशंसनीय—वि० [सं०] सराहने योग्य। स्तुत्य [को०]।

प्रशंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुणवर्णन। स्तुति। बड़ाई। श्लाघा। तारीफ। २. कीर्ति। ख्याति। प्रसिद्धि (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—प्रशंसालाप = प्रशंसा। श्लाघा। प्रशंसामुखर = उच्च स्वर से गुण वर्णन करनेवाला। प्रशंसोपमा।

प्रशंसित—वि० [सं०] जिसकी प्रशंसा हुई हो। प्रशंसायुक्त। सराहा हुआ।

प्रशंसी—वि० [सं० प्रशंसिन्] दे० 'प्रशंसक' [को०]।

प्रशंसोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमालंकार का एक भेद जिसमें उपमेय की अधिक प्रशंसा करके उपमान की प्रशंसा द्योतित की जाती है। जैसे,—जो शशि शिव सिर धरत हैं सो तव बदन समान।

प्रशंस्य—वि० [सं०] प्रशंसा करने योग्य। प्रशंसनीय।

प्रशक्य—वि० [सं०] १. शक्ति भर करनेवाला। २. किया जाने योग्य। जो किया जा सके।

प्रशस्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी। सरिता [को०]।

प्रशस्वा, प्रशावा—संज्ञा पुं० [सं० प्रशस्वन्, प्रशास्वन्] समुद्र।

प्रशम—संज्ञा पुं० [सं०] १. शमन। उपशम। शांति। २. निवृत्ति। नाश। ध्वंस। भागवत के अनुसार रतिदेव के पुत्र का नाम।

प्रशमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शमन। शांति। २. नाशन। ध्वंस करना। ३. मारण। वध। ४. प्रतिपादन। ५. दान (को०)। ६. दबाना। वश में करना। स्थित करना। ७. सत्राजित के भाई का नाम। ८. अस्त्रप्रहार।

प्रशमित—वि० [सं०] जो शांत हो। जो नीरव हो। उ०—प्रशमित है वातावरण, नमितमुख सांध्यकमल।—अपरा, पृ० ३८।

प्रशल—संज्ञा पुं० [सं०] हेमंत ऋतु। दे० 'प्रसल' [को०]।

प्रशस्त¹—वि० [सं०] १. प्रशंसनीय। सुंदर। २. जिसकी प्रशंसा

की गई हो (को०)। ३. श्रेष्ठ। उत्तम। भव्य। ४. विस्तृत। व्यापक। उ०—अकबर कालीन कवियों के लिये काव्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया था।—अकबरी०, पृ० ७। ५. स्वच्छ साफ। चौड़ा। जैसे, प्रशस्त ललाट (को०)।

प्रशस्त²—संज्ञा पुं० संज्ञा स्त्री० करजोड़ी नाम की जड़ी। हत्थाजोड़ी।

प्रशस्तपाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य जिनका वैशेषिक दर्शन पर 'पदार्थधर्मसंग्रह' नामक ग्रंथ अबतक मिलता है। इसे कुछ लोग वैशेषिक का भाष्य मानते हैं।

प्रशस्ताद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम। बृहत्संहिता के मत से यह देश ज्येष्ठा, पूर्वा, मूल और शतभिष के अधिकार में है। २. एक पर्वत (को०)।

प्रशस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रशंसा। स्तुति। २. वह प्रशंसासूचक वाक्य जो किसी को पत्र लिखते समय पत्र के आदि में लिखा जाता है। सरनामा। ३. किसी की प्रशंसा में लिखी गई कविता (को०)। ४. राजा की ओर से एक प्रकार के आज्ञापत्र जो पत्थरों की चट्टानों या ताम्रपत्रादि पर खोदे जाते थे और जिनमें राजवंश और कीर्ति आदि का वर्णन होता था। ५. वर्णन। विवरण (को०)। ६. प्राचीन पुस्तकों के आदि और अंत की कुछ पंक्तियाँ जिनसे पुस्तक के कर्ता, विषय, कालादि का परिचय मिलता हो।

प्रशस्य—वि० [सं०] १. प्रशंसा के योग्य। प्रशंसनीय। २. श्रेष्ठ। उत्तम।

प्रशांत¹—वि० [सं० प्रशान्त] १. चंचलतारहित। स्थिर। २. शांत। निश्चल वृत्तिवाला। ३. मृत। मरा हुआ (को०)। ४. वशीकृत वश में लाया हुआ। सधाया हुआ (को०)।

यौ०—प्रशांतकाम = जिसकी कामनाएँ पूरी हो गई हों। संतुष्ट। प्रशांतचित्त = जिसका चित्त शांत हो। शांतचित्त। प्रशांतचेष्ट = जिसने प्रयत्न करना छोड़ दिया हो। जिसकी चेष्टा शांत हो गई हो। प्रशांतबाध = जिसकी सब बाधाएँ दूर हो गई हों।

प्रशांत²—संज्ञा पुं० एक महासागर जो एशिया के पूर्व एशिया और अमरीका के बीच में है। (आधुनिक भूगोल)।

प्रशांतात्मा—वि० [सं० प्रशान्तात्मन्] जिसका चित्त शांत हो। प्रशांतचित्त [को०]।

प्रशांतोर्ज—वि० [सं० प्रशान्तोर्ज] जिसकी शक्ति शांत या क्षीण हो गई हो [को०]।

प्रशांति—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रशान्ति] १. शांति। २. स्थिरता। ३. शमन (को०)।

प्रशाख—वि० [सं०] १. जिसकी कई शाखाएँ हों। जिसकी फैली हुई शाखाएँ हों। २. (वह भ्रूण) जिसके निर्माण का पाँचवाँ महीना हो। जबतक भ्रूण में हाथ और पैर बन जाते हैं [को०]।

प्रशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शाखा की शाखा। टहनी। पतली शाखा।

प्रशाखिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी टहनी।

प्रशासक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शासन करनेवाला। शास्ता। उ०—ऐसे वयोवृद्ध विद्वान्, अथक कार्यकर्ता और अनुभवी प्रशासक के आदरार्थ जो प्रयास मध्यप्रदेश साहित्य समिति द्वारा किया जा रहा है, उसका मैं स्वागत करता हूँ।—शुक्ल अभि० ग्रं० (संदेश), पृ० १। २. आचार्य। उपदेष्टा।

प्रशासकीय—वि० [सं०] प्रशासन से संबंधित। प्रशासन का।

प्रशासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्तव्य की शिक्षा जो शिष्य आदि को दी जाय। २. शासन।

प्रशासित—वि० [सं०] १. जिसका अच्छा शासन किया गया हो। २. शिक्षित। ३. आक्रांत। आविष्ट (को०)।

प्रशासिता—संज्ञा पुं० वि० [सं० प्रशासितृ] १. शासनकर्ता। शासक। २. सलाह देनेवाला। परामर्शदाता (को०)।

प्रशास्ता—संज्ञा पुं० [सं० प्रशास्तृ] १. होता का सहकारी एक ऋत्विक् जिसे मैत्रावरुण भी कहते हैं। २. ऋत्विक्। ३. मित्र। ४. शासनकर्ता। राजा। शासक।

प्रशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक याग का नाम। २. प्रशास्ता का कर्म। ३. प्रशास्ता के सोमपान करने का पात्र।

प्रशिक्षण—संज्ञा पुं० [सं० प्र (उप०) + शिक्षण] किसी कार्य को कुशलतापूर्वक करने के लिये दी जानेवाली शिक्षा। शिक्षण। शिक्षा।

प्रशिथिल—वि० [सं०] १. अत्यंत ढीला। २. अत्यंत दुर्बल या पतला। अत्यंत सूक्ष्म या कृश [को०]।

प्रशिष्ट—वि० [सं०] दे० 'प्रशासित' [को०]।

प्रशिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनुशासन। शिक्षा। उपदेश। २. आदेश। आज्ञा।

प्रशिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिष्य का शिष्य। २. परंपरागत शिष्य।

प्रशिस्—संज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा। अनुशासन।

प्रशीत—वि० [सं०] शीत से जमा हुआ [को०]।

प्रशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्रता। शुद्धता। स्वच्छता [को०]।

प्रशुश्रुक्—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकीय रामायण के अनुसार मरु देश के एक राजा का नाम।

प्रशून—वि० [सं०] सूजा हुआ [को०]।

प्रशोचन—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक की एक क्रिया का नाम जिसमें रोगी के व्रणादि को जला देते हैं। दागना।

प्रशोथ—संज्ञा पुं० [सं०] सूजना। फूलना। सूजी [को०]।

प्रशोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोखना। सुखाना। २. एक राक्षस जो बच्चों में सुखंडी रोग फैलाता है।

प्रश्चोतन, प्रश्च्योतन—संज्ञा पुं० [सं०] चूना। टपकना। रिसना। अंतस्राव [को०]।

प्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी के प्रति ऐसे वाक्य का कथन जिससे कोई बात जानने की इच्छा सूचित हो। पूछताछ। जिज्ञासा। सवाल। जैसे,—पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए तब कुछ कहिए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. वह वाक्य जिससे कोई बात जानने की इच्छा प्रकट हो। सवाल। पूछने की बात। ३. विचारणीय विषय। ४. एक उपनिषद्।

विशेष—यह अथर्ववेदीय उपनिषद् मानी जाती है। इसमें ६ प्रश्न हैं और प्रत्येक प्रश्न के सात से सोलह तक मंत्र हैं। सब मिलाकर ६७ मंत्र हैं। इसमें प्रजापति से सृष्टि की उत्पत्ति का विषय अलंकारों द्वारा बताया गया है और अद्वैत मत निरूपित हुआ है। प्रथम प्रश्न कात्यायन जी करते हैं कि यह प्रजा कहाँ से उत्पन्न हुई। इसका उत्तर विस्तार से दिया गया है। दूसरा प्रश्न भार्गव वैदर्भि का है कि कौन देवता प्रजा का पालन करते हैं और कौन अपना बल दिखाते हैं। इसके उत्तर में प्राण नाम का देवता बड़ा बताया गया है क्योंकि उसके बल से सब इंद्रियाँ अपना अपना कार्य करती हैं। तीसरा प्रश्न अश्वलायन जी करते हैं कि प्राण किस प्रकार बड़ा है और किस प्रकार उसका संबंध बाह्य और अंतरात्मा से है। चौथा प्रश्न सौर्य्यायणी गार्ग्य ने किया है कि पुरुषों में कौन सोता है, कौन जागता है, कौन स्वप्न देखता है, कौन सुख भोगता है। उत्तर में पुरुष की तीनों अवस्थाएँ दिखाकर आत्मा सिद्ध की गई है। पाँचवाँ प्रश्न शैब सत्यकामा ने ओंकार के अर्थ और उपासना के संबंध में किया है। छठा प्रश्न सुकेशा भरद्वाज का है कि सोलह कलाओंवाला पुरुष कौन है।

५. भविष्य की जिज्ञासा। ६. किसी ग्रंथादि का कोई छोटा अंश (को०)। ७. दे० 'बेदल'।

प्रश्नकथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी कहानी जिसमें प्रश्न हो [को०]।

प्रश्नदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहेली। बुझौवल।

प्रश्नपत्र—संज्ञा पुं० [सं० प्रश्न + पत्र] वह पत्र जिसपर परीक्षार्थियों से पूछे जानेवाले प्रश्न अंकित रहते हैं। परचा।

प्रश्नवादी—संज्ञा पुं० [सं० प्रश्नवादिन्] ज्योतिषी [को०]।

प्रश्नविवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुक्ल यजुर्वेदसंहिता के अनुसार प्राचीन काल के विद्वानों का एक भेद जो भावी घटनाओं के विषय में प्रश्नों का उत्तर दिया करते थे। २. पंच। सरपंच।

प्रश्नव्याकरण—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक शास्त्र का नाम।

प्रश्नातीत—वि० [सं० प्रश्न + अतीत] जिससे प्रश्न न किया जा सके। जिसके पास प्रश्न न पहुँच सके।—उ०—आज तुम भरराज प्रश्नातीत।—साकेत, पृ० ११६।

प्रश्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलकुंभी। २. महाभारत के अनुसार एक ऋषि।

प्रश्नी—वि० [सं० प्रश्निन्] प्रश्न पूछनेवाला। जिज्ञासु [को०]।

प्रश्नोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सवाल जवाब। प्रश्न और उत्तर। संवाद। २. पूछताछ। ३. वह काव्यालंकार जिसमें प्रश्न और उत्तर रहते हैं।

प्रश्नोपनिषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद्। विशेष दे० 'प्रश्न'-४।

प्रश्रब्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वास। भरोसा [को०]।

प्रश्रय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शिथिलता। ढिलाई। ढीलापन [को०]।

प्रश्रय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. आश्रयस्थान। २. टेक। सहारा। आधार। ३. विनय। नम्रता। शिष्टता। ४. स्नेह। प्रणय। अनुराग (को०)। ५. महाभारत में वर्णित धर्म से उत्पन्न एक देवता।

प्रश्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] सौजन्य। शिष्टाचरण। विनय। नम्रता। दे० 'प्रश्रय'।

प्रश्रयी—वि० [सं० प्रश्रयिन्] १. शिष्ट। सुजन। भलामानुस। २. शांत। नम्र। विनीत।

प्रश्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक पर्वत।

प्रश्रित—वि० [सं०] विनीत।

प्रश्लथ—वि० [सं०] १. ढीलाढाला। शिथिल। २. शक्तिहीन। क्लांत [को०]।

प्रश्लिष्ट—वि० [सं०] १. मिलाजुला। २. संधिप्राप्त। ३. विचारयुक्त। युक्तियुक्त। सयुक्तिक (को०)।

प्रश्लेष—संज्ञा पुं० [सं०] घनिष्ट संबंध। २. संधि होने में स्वरों का परस्पर मिल जाना।

प्रश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वायु जो नथने से बाहर निकलती है। बाहर आती हुई साँस। २. वायु के नथने से बाहर निकलने की क्रिया।

प्रष्टव्य—वि० [सं०] १. पूछने योग्य। २ पूछने का। जिसे पूछना हो। जैसे, प्रष्टव्य बात।

प्रष्टा—वि० [सं० प्रष्टृ] पूछनेवाला। प्रश्नकर्ता।

प्रष्टि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह घोड़ा या बैल जो तीन घोड़ों के रथ या तीन बैलों की गाड़ी में आगे जोता जाता है। २. दाहिनी ओर का घोड़ा या बैल। ३. तिपाई।

प्रष्टि[2]—वि० पास खड़ा हुआ। पास का। पार्श्वस्थ।

प्रष्ठ[1]—वि० [सं०] १. अग्रगामी। अगुवा। २. आगे की ओर स्थित (को०)। ३. प्रधान। प्रमुख। श्रेष्ठ (को०)।

यौ०—प्रष्ठवाह = कृषि कर्म में शिक्षित युवा बैल।

प्रष्ठ[2]—अव्य० [सं० पृष्ठ] पीछे। उ०—श्री गुरु मेरे इष्ट प्रष्ठ औरे पहिचानूँ।—नट०, पृ० १०।

प्रष्ठौही—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो पहलेपहल गाभिन हुई हो।

प्रसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रसङ्ख्या] १. सब संख्याओं का योग। जोड़। कुल। मीजान। टोटल। २. चिंता। मनन।

प्रसंख्यान—संज्ञा पुं० [सं० प्रसङ्ख्यान] १. सम्यक् ज्ञान। सत्य ज्ञान। २. आत्मानुसंधान। ध्यान। ३. गणना (को०)। ४. प्रसिद्धि। ख्याति (को०)। ५. प्राप्ति। उपलब्धि। अदायगी (को०)।

प्रसंग—संज्ञा पुं० [सं० प्रसङ्ग] १. मेल। संबंध। लगाव। संगति। २. बातों का परस्पर संबंध। विषय का लगाव। अर्थ की संगति। जैसे,—शब्दार्थ पूरा न जानकर भी वे प्रसंग से अर्थ लगा लेते हैं। ३. व्याप्तिरूप संबंध। ४. स्त्री-पुरुष-संयोग। जैसे, स्त्रीप्रसंग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५. अनुरक्ति। लगन। ६. बात। वार्ता। विषय। उ०—(क) अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु। अब सोइ कहौं प्रसंग सब सुमिरि उमा वृषकेतु।—तुलसी (शब्द)। ७. उपयुक्त संयोग। अवसर। मौका। उ०—तब तें सुधि कछु नाहीं पाई। बिनु प्रसंग तहँ गयो न जाई।—सूर (शब्द०) ८. हेतु। कारण। उ०—करिहहिं विप्र होम मख सेवा। तेहि प्रसंग सहजहि बस देवा।—तुलसी (शब्द०)। ९. विषयानुक्रम। प्रस्ताव। प्रकरण। १०. विस्तार। फैलाव। उ०—कर सर धनु, कटि रुचिर निषंग। प्रिया प्रीति प्रेरित बन बीथिन बिचरत कपट कनकमृग संग। भुज बिसाल, कमनीय कंध उर श्रमसीकर सोहै साँवरे अंग। मनु मुकुतामणि मरकत गिरि पर लसत ललित रवि किरन प्रसंग।—तुलसी (शब्द०)। ११. अनुचित संबंध (को०)। १२. सारांश (को०)। १३. प्राप्ति। उपलब्धि (को०)।

प्रसंगयान—संज्ञा पुं० [सं० प्रसङ्गयान] कामंदकीय नीति के अनुसार किसी स्थान पर चढ़ाई करने की बात प्रसिद्ध कर किसी दूसरे स्थान पर चढ़ाई कर देना।

प्रसंगप्राप्त—वि० [सं० प्रसङ्ग+प्राप्त] वह जिसकी चर्चा आ गई हो। वह जिसका जिक्र हो रहा हो। प्रासंगिक। उ०—प्रसंगप्राप्त साधारण सभी वस्तुओं का वर्णन कवि का कर्तव्य है।—रस०, पृ० १०१।

प्रसंगविध्वंस—संज्ञा पुं० [सं० प्रसङ्गविध्वंस] मानमोचन के छह उपायों में से एक। झूठा भय दिखाकर मानिनी के चित्त में भ्रम उपजाकर उसका मान छुड़ाना। प्रसंगविभ्रंश।

प्रसंगविभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं० प्रसङ्गविभ्रंश] मानमोचन के छह उपायों में अंतिम। प्रसंगविध्वंस।

प्रसंगसम—संज्ञा पुं० [सं० प्रसङ्गसम] न्याय में जाति के अंतर्गत एक प्रकार का प्रतिषेध जो प्रतिवादी की ओर से होता है। इसमें प्रतिवादी कहता है कि साधन का भी साधन कहो और इस प्रकार वादी को उलझन में डालना चाहता है। जैसे, वादी ने कहा—

प्रतिज्ञा—शब्द अनित्य है।
हेतु—क्योंकि वह उत्पन्न होता है।
उदाहरण—जैसे घट।

इसपर प्रतिवादी कहता है कि यदि घट के उदाहरण से शब्द अनित्य ठहराते हो तो यह भी साबित करो कि घट अनित्य है। फिर जब वादी घट की अनित्यता का हेतु देता है तब प्रतिवादी कहता है कि उस हेतु का भी हेतु दो। इस प्रकार का प्रतिषेध 'प्रसंगसम' कहलाता है।

प्रसंगासन—संज्ञा पुं० [सं० प्रसङ्गासन] कामंदकीय नीति के अनुसार किसी दूसरे पर चढ़ाई करने के गुप्त उद्देश्य से शत्रु के साथ संधि करके चुपचाप बैठना।

प्रसंगी—वि० [सं० प्रसङ्गिन्] १. प्रसंगयुक्त। २. अनुरक्त। ३. आकस्मिक (को०)। ४. गौण। अमुख्य (को०)। ५. सहवास करनेवाला (को०)।

प्रसंघ[1]—वि० [सं० प्रसङ्घ] श्रेणीबद्ध।

प्रसंघ[2]—संज्ञा पुं० १. भारी भीड़। बहुत बड़ा समूह [को०]।

प्रसंजन—संज्ञा पुं० [सं० प्रसञ्जन] १. युक्त करना। लगाना। मिलाना। २. काम में लाना। उपयोग में लाना [को०]।

प्रसंध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्र+सन्धि] शरीर के संधिस्थल। शरीर के अवयवों का जोड़। उ०—कत जुगल सुंदर चमर करि है सोभा रुचिर प्रसंध है।—रा० रू०, पृ० ३६८।

प्रसंधान—संज्ञा पुं० [सं० प्रसन्धान] संधि। योग।

प्रसंन—वि० [सं० प्रसन्न] दे० 'प्रसन्न'। उ०—छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन बर देहु।—मानस १।१०१।

प्रसंस(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रशंसा] दे० 'प्रशंसा'। उ०—अब बहु धर्मसील को बंस। सो पुनि तुम करि भले प्रसंस।—नंद० ग्रं०, पृ० २१८।

प्रसंसक(पु)—वि० [सं० प्रशंसक] प्रशंसा करनेवाला। स्तुति करनेवाला। उ०—बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं।—मानस, १।३१६।

प्रसंसना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रशंसन] प्रशंसा करना। बड़ाई करना। दे० 'प्रशंसना'। उ०—बहु बिधि उमहिं प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान।—मानस, १।१२०।

प्रसंसा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रशंसा] दे० 'प्रशंसा'। उ०—सुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।—मानस, २।१३०।

प्रस(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श, हिं० परस] दे० 'स्पर्श'। उ०—कूच विहांणे ऊगते, सोच चले गढ़ कोट। उरे सबदां वेस प्रस, जथा गिरंदां ओट।—रा० रू०, पृ० १५६।

प्रसक्त—वि० [सं०] १. संश्लिष्ट। लगा हुआ। २. जो बराबर लगा रहे। न छोड़नेवाला। सदा का। ३. संबद्ध। आसक्त। ४. प्रस्तावित। ५. स्थायी। नित्य (को०)। ६. प्राप्त। मिला हुआ (को०)। ७. खुला हुआ। व्यक्त। स्फुटित (को०)। ८. दे० 'प्रयुक्त' (को०)।

प्रसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रसंग। संपर्क। २. अनुमिति। ३. आपत्ति। ४. व्याप्ति। ५. प्राप्ति। उपलब्धि (को०) ६. अध्यवसाय। प्रयत्न। चेष्टा (को०)।

प्रसज्य—वि० [सं०] १. जो संबद्ध किया जाय। २. संभव। मुमकिन। ३. जिसे प्रयोग में लाया जाय। जो प्रयुक्त किया जाय [को०]।

प्रसज्यप्रतिषेध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का निषेध जिसमें विधि की अप्रधानता और निषेध की प्रधानता होती है। जैसे,

अतिरात्र यज्ञ में षोडशी नामक सोमरसपूर्ण पात्र को ग्रहण न करे।

प्रसतान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्थान] दे० 'प्रस्थान'। उ०—तम मग आखियो प्रसतान मृत ससबिर तणों।—रघु० रू०, पृ० १२१।

प्रसताव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्ताव] दे० 'प्रस्ताव'। उ०—प्रसताव भाव तिन कहि उचार। जोगिनिय बोल भावीतबार। पहराइ वेस बदलाय भेस। इम कियो राजद्वारह प्रवेस।—पृ० रा०, ६।३७३।

प्रसति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रसृति] प्रसृति। प्रसार। फैलाव। उ०—प्रति कृष कुचनि प्रसति, बाहुबांन न करै विषम।—पृ० रा०, ११।१५१।

प्रसत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रसन्नता। २. निर्मलता। शुद्धि।

प्रसत्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिपत्ति। प्राप्ति।

प्रसत्वा—संज्ञा पुं० [सं० प्रसत्वन्] १. धर्म। २. प्रजापति।

प्रसद्द(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रति+शब्द, प्रशब्द] प्रतिध्वनि। जोर की आवाज। उ०—सुनिब सूर नर हुक्क धक्क बज्जी आवद्दिदसि। नरन सद्द कानन प्रसद्द (सिंह) किन्नो सु क्रोध ग्रसि।—पृ० रा०, १७।६।

प्रसन(पु)— वि० [सं० प्रसन्न] दे० 'प्रसन्न'। उ०—(क) प्रसन भयो किन्नो सुंदर स्यामा, सदा बसो वृंदावन धामा।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१। (ख) सब कारज सिधि लहै, प्रसन जासों जग बंदन।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४२७।

प्रसन्न[1]—वि० [सं०] १. संतुष्ट। तुष्ट। २. खुश। हर्षित। प्रफुल्ल ३. अनुकूल। उचित। ४. निर्मल। स्वच्छ। ५. शांत (को०)। ६. कृपालु (को०)।

यौ०—प्रसन्नकल्प। प्रसन्नजल = प्रसन्नसलिल। प्रसन्नमुख = प्रसन्नवदन। प्रसन्नवदन। प्रसन्नसलिल।

प्रसन्न[2]—संज्ञा पुं० महादेव।

प्रसन्न‡[3]—वि० [फ़ा० पसंद] मनोनीत। पसंद। उ०—(क) उनके इस कर्म को विद्वान लोग प्रसन्न नहीं करते।—दयानंद (शब्द०)। (ख) मैं इस बात को मानता हूँ पर यह पूछता हूँ कि क्या कोई जो अँगरेजी जानता हो इस बात को प्रसन्न करेगा कि केवल एक लिपि प्रचलित होवे? कभी नहीं।—सरस्वती (शब्द०)।

प्रसन्नकल्प—वि० [सं०] १. प्रसन्न के तुल्य या समान। शांत तुल्य २. सत्यप्राय (को०)।

प्रसन्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तुष्टि। संतोष। २. प्रफुल्लता। हर्ष। आनंद। ३. अनुग्रह। कृपा। प्रसाद। ४. स्वच्छता। निर्मलता। शुद्धि। ५. सुस्पष्टता। व्यक्तता (को०)।

प्रसन्नवदन—वि० [सं०] जिसका मुख प्रसन्न हो। जिसके चेहरे से प्रसन्नता टपकती हो। उ०—हे सखा, विभीषण बोले वाम प्रसन्नवदन।—अपरा, पृ० ४४।

प्रसन्नसलिल—वि० [सं०] जिसका जल निर्मल या स्वच्छ हो (को०)।

प्रसन्नांध—संज्ञा पुं० [सं० प्रसन्नान्ध] घोड़े का एक रोग जिसमें उसकी आँख देखने में तो ज्यों की त्यों रहती है पर उसे दिखाई नहीं पड़ता। यह असाध्य रोग है और अच्छा नहीं होता।

प्रसन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह मद्य जो खींचने में पहले उतरता है। वैद्यक में इसे गुल्म, वात, अर्श, शूल और कफनाशक माना है। २. प्रसन्न करना (को०)।

प्रसन्नात्मा[1]—वि० [सं० प्रसन्नात्मन्] जो सदा प्रसन्न रहे। प्रसन्नांतःकरण। आनंदी।

प्रसन्नात्मा[2]—संज्ञा पुं० विष्णु।

प्रसन्नित(पु)†—वि० [सं० प्रसन्न+हिं० इत (प्रत्य०)] आनंदित। हर्षित। खुश। उ०—निशि दिन करेहु नयन लखि काजा। जाते रहै प्रसन्नित राजा।—जायसी (शब्द०)।

प्रसन्नेरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मदिरा।

प्रसभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जबर्दस्ती। बलात्कार (को०)।

प्रसभ[2]—क्रि० वि० १. बलपूर्वक। हठात्। २. अत्यधिक। ३. साग्रह। पुनः पुनः। सनिर्बंध (को०)।

प्रसभदमन—संज्ञा पुं० [सं०] बलपूर्वक दमन करना। बलात् वशवर्ती कर लेना (को०)।

प्रसभहरण—संज्ञा पुं० [सं०] जबर्दस्ती छीन लेना या हर लेना (को०)।

प्रसयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँधने की रज्जु। २. जाल। फंद (को०)।

प्रसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. आगे बढ़ना। बढ़ना। विस्तार। २. फैलना। फैलाव। प्रसार। ३. दृष्टि का फैलाव। आँख की पहुँच। ४. वेग। तेजी। ५. समूह। राशि। ६ वैद्यक शास्त्रानुसार वात पित्तादि प्रकृतियों का संचार या घटाव बढ़ाव। ७ व्याप्ति। ८. प्रकर्ष। प्रधानता। प्रभाव। ९. युद्ध। १०. नाराच नामक अस्त्र। ११. प्रलय। विनाश (को०)। १२. वीरता। साहस। १३. बाढ़। बढ़िया। १४. एक प्रकार का पौधा जो भूमि के ऊपर फैलता है। १५. अवकाश। अवसर (को०)। १६. एक प्रकार का नृत्य (को०)।

प्रसरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रसरणीय, प्रसरित] १, आगे बढ़ना। २. खिसकना। सरकना। ३. फैलना। फैलने की क्रिया या भाव। फैलाव। ४. व्याप्ति। ५. विस्तार। ६. उत्पत्ति। ७. अपने काम में प्रवृत्त होना। ८. स्वभाव की मधुरता (को०)। ९. सेना का लूटपाट के लिये इधर उधर फैलना।

प्रसरणशील—वि० [सं० प्रसरण+शील] [वि० स्त्री० प्रसरणशीला] जो फैल सके। फैलनेवाला। उ०—जिसकी प्रसरणशीला प्रतिभा विभूति से विवर्धमान।—संपूर्णानंद अभि० ग्रं०, पृ० ११२।

प्रसरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रसरण। फैलाव। पसार। २. शत्रु को चारों ओर से घेरना [को०]।

प्रसरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारणी लता। गंधाली। परसन।

प्रसरित—वि० [सं०] १. फैला हुआ। पसरा हुआ। २. विस्तृत। ३. आगे को बढ़ा हुआ। स्थान से आगे को खसका हुआ।

प्रसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. निक्षेपण। किसी चीज को ऊपर से छोड़ना। गिराना। २. वर्षण। बरसाना।

प्रसर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निक्षेप। गिराना। डालना। २. वर्षण। बरसाना।

प्रसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. गमन। २. यज्ञार्थ 'सदस' में जाना (को०)। ३. एक प्रकार का सामगान।

प्रसर्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सहकारी ऋत्विज्। २. वह दर्शक जो यज्ञ में बिना बुलाए आया हो।

प्रसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसरण। गमन। जाना। २. खिसकना। ३. घुसना। पैठना। ४. सेना का चारों ओर फैलना। ५. शरण का स्थान। रक्षास्थान। ६. गति। चलने का भाव या कार्य। ७. यज्ञार्थ 'सदस' में जाना। (को०)।

प्रसर्पणी—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रसरणी'—२ [को०]।

प्रसर्पी—वि० [सं० प्रसर्पिन्] १. रेंगनेवाला। २. गतिशील। ३. यज्ञ की सभा में आनेवाला।

प्रसल—संज्ञा पुं० [सं०] हेमंत ऋतु।

प्रसवती—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रसवन्ती] वह स्त्री जिसे प्रसववेदना हो। प्रसवपीड़ाग्रस्त स्त्री [को०]।

प्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बच्चा जनने की क्रिया। जनन। प्रसूति। २. जन्म। उत्पत्ति। ३. अपत्य। बच्चा। संतान। ४. फल। ५. फूल। ६. वृद्धि। बढ़ती। ७. निकास। ८. आदेश। आज्ञा (को०)।

यौ०—प्रसवकाल। प्रसवगृह = प्रसूतिगृह। सौरी। प्रसवधर्मी[1]। प्रसवपीड़ा = प्रसव की व्यथा। प्रसवबंधन। प्रसववेदना। प्रसवव्यथा = प्रसव के समय स्त्री को होनेवाली पीर या पीड़ा। प्रसवस्थली। प्रसवस्थान।

प्रसवक—संज्ञा पुं० [सं०] पियार का वृक्ष। चिरौंजी का पेड़।

प्रसवकाल—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति का समय। जनन का अवसर।

प्रसवधर्मी—वि० [सं० प्रसवधर्मिन्] १. प्रसव करनेवाला। पैदा करनेवाला। २. उपजाऊ। फलप्रद [को०]।

प्रसवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रसवनीय] बच्चा जनना। बच्चा पैदा करना।

प्रसवना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० प्रसवन] पैदा होना। उत्पन्न होना।

प्रसवना(पु)[2]—क्रि० स० उत्पन्न करना। पैदा करना।

प्रसवबंधन—संज्ञा पुं० [सं० प्रसवबन्धन] वह पतला सींका जिसके सिरे पर पत्ता या फूल लगता है। नाल।

प्रसवस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] माँ [को०]।

प्रसवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ प्रसव कराया जाता है। प्रसूतिगृह। २. घोंसला। नीड़ [को०]।

प्रसविता[1]—वि० [सं० प्रसवितृ] [वि० स्त्री० प्रसवित्री] जन्म देनेवाला उत्पादक। उत्पन्न करनेवाला।

प्रसविता[2]—संज्ञा पुं० पिता। जनक। बाप।

प्रसवित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता [को०]।

प्रसविनी—वि० स्त्री० [सं०] उत्पन्न करनेवाली। जननेवाली। उ०—वीर कन्यका, वीर प्रसविनी, वीरवधू जग जानी। हरिश्चंद्र (शब्द०)।

प्रसवी—वि० [सं० प्रसविन्] [वि० स्त्री० प्रसविनी] १. प्रसवशील। २. उत्पादक। प्रसव करनेवाला। जन्म देनेवाला। उत्पन्न करनेवाला।

प्रसव्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बाईं ओर से परिक्रमा करना। प्रदक्षिण का उलटा।

प्रसव्य[2]—वि० १. प्रतिकूल। २. वामवर्ती। बायाँ। वाम भाग में स्थित (को०)। ३. प्रसवनीय। ४. अनुकूल (को०)।

प्रसह—संज्ञा [सं०] दे० 'प्रसाह' [को०]।

प्रसह—संज्ञा पुं० [सं०] १ पक्षियों का एक भेद। वे पक्षी जो झपट्टा मारकर अपना भक्ष्य या शिकार पकड़ते हैं। शिकारी चिड़िया। जैसे, कौआ, गीध, बाज, उल्लू, चील, नीलकंठ इत्यादि।

विशेष—वैद्यक में इन पक्षियों का मांस उष्णवीर्य बताया गया है और कहा गया है कि जो इसका मांस खाते हैं उन्हें शोष, भस्मक और शुक्रक्षय रोग हो जाता है।

२. अमलतास का पेड़। ३. विरोध। प्रतिरोध [को०]।

प्रसहन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंसक पशु। २. आलिंगन। ३. सहन। क्षमा। सहनशीलता। ४. पराभव करना। पराभूत करना (को०)। ५. प्रतिरोध। अवरोध (को०)।

प्रसहन[2]—वि० सहनशील।

प्रसहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटाई। बृहती।

प्रसह्य—क्रि० वि० [सं०] हठात्। बलपूर्वक [को०]।

प्रसह्यचौर—संज्ञा पुं० [सं०] जबरदस्ती माल छीननेवाला।

प्रसह्यहरण—संज्ञा पुं० [सं०] जबरदस्ती हर ले जाना। जैसे क्षत्रिय कन्याओं का हरण करते थे।

प्रसातिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अणुव्रीहि। सावाँ।

प्रसाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसन्नता। २. अनुग्रह। कृपा। मिहरबानी। ३. निर्मलता। स्वच्छता। सफाई। ४. स्वास्थ्य। ५. वह वस्तु जो देवता को चढ़ाई जाय। ६. वह पदार्थ जिसे देवता या बड़े लोग प्रसन्न होकर अपने भक्तों या सेवकों को दें। देवता या बड़े की देन। जैसे,—यह सब आप ही का प्रसाद है। उ०—यह मैं तोही मैं लखी भगति अपूरब बाल। लहि प्रसाद माला जु भौ तन कदंब की माल।—बिहारी (शब्द०)। ७. देवता, गुरुजन आदि को देने पर बची हुई वस्तु जो काम में लाई जाय। ८. भोजन। (साधु और साधु)।

मुहा०—प्रसाद पाना = खाना। भोजन करना। उ०—तृण शय्या औ अल्प रसोई पाओ स्वल्प प्रसाद। पैर पसार चलो निद्रा लो मेरा आशीर्वाद—श्रीधर (शब्द०)।

९. काव्य का एक गुण। जिसकी भाषा स्वच्छ और साधु हो, जिसमें समस्त पद कम हों, और जटिल ग्रामीण शब्द न आए हों और सुनने के साथ ही जिसका भाव श्रोता की समझ में आ जाय। १०. शब्दालंकार के अंतर्गत एक वृत्ति। कोमला वृत्ति। ११. धर्म की पत्नी मूर्ति से उत्पन्न एक पुत्र।

यौ०—प्रसादपट्ट = सम्मानार्थ राजा द्वारा प्रदत्त शिरोवस्त्र। प्रसादपट्टक = राजा की कृपा को द्योतित करनेवाला शासनपत्र। प्रसादपराङ्मुख। प्रसादपात्र = अनुग्रह का पात्र। कृपापात्र। प्रसादस्थ।

प्रसाद(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं० प्रासाद] दे० 'प्रासाद'। उ०—ग्रह प्रसाद (तोरन) कलंग छत्र जंग्रह सकटावे।—पृ० रा०, ७।१७१।

प्रसादक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रसादिका] १. अनुग्रहकारक। २. निर्मल। ३ प्रसन्न करनेवाला। ४. प्रीतिकर।

प्रसादक²—संज्ञा पुं० १. प्रसाद। २. देवधन। ३. बथुए का साग। ४. कौटिल्य के अनुसार देश या धन आदि का अधार्मिक के हाथ से निकलकर किसी धार्मिक के पास जाना। धार्मिक पुरुष का लाभ जिससे जनता को प्रसन्नता होती है।

प्रसादन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसन्न करना। २. निर्मल करना। स्वच्छ करना (को०)। ३. राजकीय शिविर। राजा का खेमा (को०)। ४. अन्न।

प्रसादन²—वि० प्रसन्न करनेवाला। प्रसन्नता देनेवाला। स्वच्छ, निर्मल या शुद्ध करनेवाला।

प्रसादना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेवा। परिचर्या। २. स्वच्छ, निर्मल या प्रसन्न करना (को०)।

प्रसादना(पु)²—क्रि० स० [सं० प्रसादन] प्रसन्न करना। उ०—बहु भाँति बधारे जो या व्रज मे अति आनन ओप अनूप कला। द्विजदेव जु चंद्रिका की छबि जाकी प्रसादि रही सिगरी अचला। निरख्यो जब तें इन नैनचकोरन बीतत ज्यों जुग एक पला। चहुँधा, सखि, चाँदनी चौक में डोलत चंद अमंद सों नंदलला।—द्विजदेव (शब्द०)।

प्रसादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रसादना'¹।

प्रसादनीय(पु)— वि० [सं०] प्रसन्न करने योग्य।

प्रसादपराङ्मुख—वि० [सं०] १. जो किसी की कृपा की परवाह न करे। २. जो किसी का पक्ष लेने से विमुख हो गया हो (को०)।

प्रसादपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो कृपा पाता हो। कृपापात्र।

प्रसादस्थ—वि० [सं०] १. अनुकूल। कृपालु। दयालु। २. प्रसन्न। हृष्ट (को०)।

प्रसादांत—वि० [सं० प्रसाद + अन्त, तुल० अं० कामेडी] जिसका अंत हर्षकारी हो। हास्यप्रधान। प्रहसनात्मक। उ०—हमने नाटक के तीन वर्ग किए हैं दुःखांत, सुखांत और प्रसादांत।—हिं० ना०, पृ० २१।

प्रसादिनी—वि० [सं० प्रसाद + हिं० इनि (प्रत्य०)] प्रसन्न करनेवाली। अनुग्रह करनेवाली। उ०—विचर रही निर्मम प्रवाष तुम विश्वविषादिनि, लोकप्रसादिनि।—रजत०, पृ० ७९।

प्रसादी¹—वि० [सं० प्रसादिन्] १. प्रसन्न करनेवाला। २ प्रीति करनेवाला। प्रीतिकर। ३. शांत। ४. अनुग्रह करनेवाला। कृपा करनेवाला। ५. निर्मल। स्वच्छ।

प्रसादी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० प्रसाद + ई] १. देवताओं को चढ़ाया हुआ पदार्थ। २. नैवेद्य। ३. वह पदार्थ जो पूज्य और बड़े लोग छोटों को दें। बड़ों की देन। उ०—तब श्री गुसाईं जी अपने प्रसादी उपरैना उढ़ायो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १११। ४. देवता को बलि चढ़ाए हुए पशु का मांस।

प्रसाधक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रसाधिका] १. भूषक। अलंकृत करनेवाला। २. संपादक। निर्वाह करनेवाला। संपादन करनेवाला। ३. राजाओं को वस्त्र आभूषणादि पहनानेवाला।

प्रसाधक²—संज्ञा पुं० वह सेवक जो राजा या स्वामी को वस्त्राभूषणादि पहनाने के कार्य पर नियुक्त हो [को०]।

प्रसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेष। २. अलंकार। शृंगार। ३. कंघी। ४. संपादन। ५. महाबला लता।

प्रसाधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंघी। दंतपत्रिका।

प्रसाधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निवार धान। २. प्रसाधन करनेवाली स्त्री (को०)।

प्रसाधित—वि० [सं०] १. सँवारा हुआ। सजाया हुआ। २. सुसंपादित। ३. सिद्ध। प्रमाणित (को०)।

प्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. विस्तार। फैलाव। पसार। २. संचार। ३. गमन। ४. निर्गम। निकास। ५. इधर उधर जाना। फिरना। ६. कौटिल्य अर्थशास्त्रानुसार युद्ध के समय वह सहायता जो जंगल आदि पड़ने से प्राप्त हो जाय। ७. खोलना। जैसे, मुख प्रसार (को०)। ८. फेंकना। उत्क्षेपण। जैसे, धूलि प्रसार (को०)। ९. क्रय विक्रय की दूकान। व्यापारी की दूकान। बनिए की दूकान (को०)।

प्रसारक—वि० [सं०] फैलानेवाला। विस्तृत करनेवाला।

प्रसारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रसारित, प्रसार्य्य] १. फैलाना। पसारना। विस्तृत करना।

विशेष—वैशेषिक में जो पाँच प्रकार के कर्म कहे गए हैं उनमें एक कर्म यह भी है।

२. बढ़ाना ३. शत्रु को चारों ओर से घेरना (को०)। ४. खोलना। प्रदर्शित करना (को०)। ५. संप्रसारण। व्याकरण में य् व् र् ल् का इ उ ऋ एवं लृ में बदलना (को०)।

प्रसारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंधप्रसारिणी नाम की लता। २. दे० 'प्रसारिणी'-५ [को०]।

प्रसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंधप्रसारिणी लता। २. लजालु।

मार्जनी । ३. (संगीत में) मध्यम स्वर की चार श्रुतियों में दूसरी श्रुति । ४. देवधान्य । ५. शत्रु को चारों ओर से घेरना (को०) ।

प्रसारित—वि० [सं०] १. फैलाया हुआ । पसारा हुआ । २. बेचने के लिये प्रदर्शित या रखा हुआ (को०) ।

प्रसारी—वि० [सं० प्रसारिन्] [वि० स्त्री० प्रसारिणी] १. फैलनेवाला । २. फैलानेवाला (को०) ।

प्रसार्य, प्रसार्य्य—वि० [सं०] फैलाने योग्य । प्रसारणीय ।

प्रसाह्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वीर्य । शक्ति । २. इंद्र का एक नाम (को०) ।

प्रसाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. आत्मशासन । २. वश में करना (को०) ।

प्रसित¹—संज्ञा पुं० [सं०] पीब । मवाद ।

प्रसित²—वि० १. बँधा हुआ । आबद्ध । २. लगा हुआ । आसक्त । ३. अतीव स्पष्ट । अत्यंत साफ (को०) ।

प्रसिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रस्सी । २. रश्मि । ३. ज्वाला । लपट । ४. जाल (को०) । ५. आक्रमण । हमला (को०) । ६. पहुँच । सीमा (को०) । ७. श्रेणी । क्रम । सिलसिला (को०) । ८. शक्ति । प्रभाव । ९. पथ । मार्ग (को०) । १०. उत्क्षेपण । फेंकना (को०) ।

प्रसिद्ध—वि० [सं०] १. भूषित । अलंकृत । २. ख्यात । विख्यात । मशहूर ।

प्रसिद्धक—संज्ञा पुं० [सं०] एक विदेहवंशी राजा जो मरु का पुत्र था ।

प्रसिद्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ख्याति ।

प्रसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ख्याति । २. भूषा । बनाव सिंगार । ३. सफलता । सिद्धि (को०) ।

प्रसिध(पु)—वि० [सं० प्रसिद्ध] दे० 'प्रसिद्ध' । उ०—दिष्षेसु नयन पुहकरि प्रसिध कियो पाप इन भ्रूब करि ।—पृ० रा० १।५८१ ।

प्रसीदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा उपवन । छोटी वाटिका (को०) ।

प्रसुत¹—वि० [सं०] दबाकर निचोड़ा हुआ ।

प्रसुत²—संज्ञा पुं० एक संख्या का नाम ।

प्रसुप्त¹—वि० [सं०] १. सोया हुआ । निद्रित । २. खूब सोया हुआ । ३. अक्रिय । निष्क्रिय (को०) । ४. जिसमें संज्ञा न हो । संज्ञाहीन (को०) । ५. मुँदा हुआ । असुटित (पुष्प आदि) ।

प्रसुप्त²—संज्ञा पुं० [सं०] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद या अवस्था जिसमें किसी क्लेश की चित्त में सूक्ष्म रूप से अवस्थिति तो रहती है, पर उसमें कोई कार्य करने की शक्ति नहीं रहती ।

प्रसुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गाढ़ी नींद । नींद । उ०—इस प्रसुप्ति से जगा रही जो बता, प्रिया सी है वह कौन ?—अपरा, पृ० ११० । २. संज्ञाहीनता । संवेदनहीनता (को०) । ३. निष्क्रियता । निश्चेष्टता (को०) ।

प्रसू¹—वि० स्त्री० [सं०] जननेवाली । उत्पन्न करनेवाली । जैसे, वीरप्रसू = वीर (पुत्र) पैदा करनेवाली ।

प्रसू²—संज्ञा स्त्री० १. माता । जननी । २. घोड़ी । ३. लता । बल्ली (को०) । ४. नरम घास । अंकुर । ५. कुश । ६. केला ।

प्रसूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अश्वगंधा । असगंध । २. घोड़ी (को०) ।

प्रसूत¹—वि० [सं०] [स्त्री० प्रसूता] १ उत्पन्न । संजात । पैदा । २. प्रसव किया हुआ । पैदा किया हुआ (को०) । ३. उत्पादक ।

प्रसूत²—संज्ञा पुं० १. कुसुम । फूल । २. चाक्षुष मन्वंतर के एक देवगण का नाम । ३. एक रोग का नाम जो स्त्रियों को प्रसव के पीछे होता है । इसमें प्रसूता को ज्वर होता है और दस्त आते हैं ।

प्रसूत†³—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्वेद] एक रोग का नाम जिसमें रोगी के हाथ और पैर से पसीना छूटा करता है ।

प्रसूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बच्चा जननेवाली स्त्री । वह जिसने बच्चा जना हो । जच्चा । २. घोड़ी ।

प्रसूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रसव । जनन । २. उद्भव । उ०—तुलसी सूझो सकल विधि रघुबर प्रेम प्रसूति ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९७ । ३. कारण । प्रकृति । ४. उत्पत्तिस्थान । ५. संतति । अपत्य । ६. जिस स्त्री ने प्रसव किया हो । प्रसूता । ७. दक्ष प्रजापति की स्त्री का नाम जिनसे सती का जन्म हुआ था ।

यौ०—प्रसूतिगृह । प्रसूतिज । प्रसूतिज्वर । प्रसूतिवायु ।

प्रसूतिका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिस को बच्चा हुआ हो । प्रसूता ।

प्रसूतिका²—संज्ञा पुं० [सं०] दुःख ।

प्रसूतिगृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ बच्चे का जन्म हो । सौरी ।

प्रसूतिज—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसव से उत्पन्न होनेवाली पीड़ा । प्रसववेदना (को०) ।

प्रसूतिज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो प्रसव के बाद स्त्री को आने लगता है । दे० 'प्रसूत'²—३ ।

प्रसूतिवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वायु जो प्रसववेदना के समय गर्भ में उत्पन्न होती है (को०)

प्रसून¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्प । फूल । उ०—लाल गुलाब प्रसून कौं अब न चलावै फेरि । परी लाल के गात में खरी खरोंटै हेरि ।—स० सप्तक, पृ० २४० ।

यौ०—प्रसूनबाण, प्रसूनशर = कामदेव । प्रसूनरसअभवा = फूलों की शर्करा । चीनी जो पुष्प से बनाई गई हो ।

२. फल ।

प्रसून²—वि० उत्पन्न । जात । पैदा ।

प्रसूनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूल । मुकुल । २. कली । ३. एक प्रकार का कदंब (को०) ।

प्रसूनांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रसूनाञ्जलि] दे० 'पुष्पांजलि' ।

प्रसूनेषु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव (को०) ।

प्रसृत¹—वि० [सं०] १. फैला हुआ । २. प्रवृत्त । बढ़ा हुआ । ३. विनीत । ४. भेजा हुआ । गया हुआ । अर्पित । ५. जाता हुआ ।

लीन। तत्पर। नियुक्त। ६. प्रचलित। ७. इंद्रियलोलुप। लंपट। ८. तीव्र। तेज (को०)। ९. पका हुआ। पक्व (को०)। १०. प्रदर्शित। व्यक्त किया हुआ (को०)। ११. उपयुक्त अर्थ जाननेवाला। सुकमार्गगामी (को०)। १२. लंबा (को०)।

प्रसृत²—संज्ञा पुं० १. गहरी की हुई हथेली। अर्धांजलि। २. हथेली भर का मान। पसर। दो पल का मान।

प्रसृतज—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्रकार का पुत्र जो व्यभिचार से उत्पन्न हो। जैसे, कुंड और गोलक।

प्रसृता—संज्ञा स्त्री [सं०] जाँघ (को०)।

प्रसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. फैलाव। विस्तार। २. संतति। संतान। ३. अर्धांजलि। गहरी की हुई हथेली। ४. सोलह तोले के बराबर का एक मान। पसर। ५. आगे बढ़ना। अग्रगामिता (को०)।

प्रसृत्वर—वि० [सं०] चारों ओर फैलनेवाला या फैला हुआ (को०)।

प्रसृष्ट—वि० [सं०] १. उत्पन्न। २. त्यक्त। परित्यक्त। ३. निर्बंध। स्वच्छंद। प्रतिबंधहीन (को०)।

प्रसृष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. युद्ध का एक दाँव। २. अंगुलियाँ जो फैलाई गई हों। फैलाई हुई उँगलियाँ (को०)।

प्रसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेचन। सींचना। २. निचोड़। निसोत। ३. छिड़काव। ४. द्रव पदार्थ का वह अंश जो रस रसकर निचुड़े या टपके। पसेव। ५. एक असाध्य रोग। पेशाब के साथ मनी आने का रोग। जिरियान। (सुश्रुत)। चरक के अनुसार मुँह से पानी छूटना और नाक से श्लेष्मा गिरना। ७. वमन। कै (को०)। ८. सुवा या चमचा का अग्रभाग या कटोरी (को०)।

प्रसेकी—संज्ञा पुं० [सं० प्रसेकिन्] सुश्रुत के अनुसार एक रोग का व्रण जिसमें से पीप निकलता रहे (को०)।

प्रसेद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्वेद] पसीना। उ०—(क) हरि हित मेरो कन्हैया। देहरी चढ़त परत गिरि गिरि करपल्लव जो गहत है री मैया। भक्ति हेतु जसुदा के आए चरण धरणि पर धरैया। जिनहि चरण छलिबो बलि राजा नखप्रसेद गंगा जो बहैया।—सूर (शब्द०)। (ख) देखत तेरे नैन है तन प्रसेद सो बोर। या में तेरी ओर कहु या कछु मेरी ओर ?—रसनिधि (शब्द०)।

प्रसेदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी वाटिका। प्रसीदिका (को०)।

प्रसेन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रसेनजित'।

प्रसेनजित—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत् के अनुसार सत्यभामा के पिता सत्राजित् के एक भाई का नाम।

विशेष—प्रसेनजित के पास एक मणि 'स्यमंतक' नाम की थी (विशेष देखिए स्यमंतक शब्द)। जिसे पहनकर वह एक दिन शिकार खेलने गया। वहाँ एक सिंह उसे मार मणि लेकर चला। मार्ग में जांबवान् ने सिंह को मार मणि छीन ली। सत्राजित् ने प्रसेनजित् के न आने पर कृष्णचंद्र पर यह अपवाद लगाया कि उन्होंने प्रसेन को मणि के लोभ से मार डाला। कृष्णचंद्र इस अपवाद को मिटाने के लिये जंगल में गए। उन्होंने मार्ग में प्रसेन और उसके घोड़े को मरा पाया। आगे चलने पर सिंह भी मरा हुआ मिला। ढूँढ़ते हुए वे आगे बढ़े और एक गुफा में उन्हें जांबवान् मिला। उसने अपनी कन्या जांबवती को मणि के साथ कृष्णचंद्र को अर्पित किया। कृष्णचंद्र मणि और जांबवती को लेकर आए और उन्होंने सत्राजित् को मणि देकर अपना कलंक मिटाया।

प्रसेव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रसेवक'।

प्रसेवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीन की तूँबी। २. सूत की थैली। थैला। ३. थैली बनानेवाला पुरुष। ४. चमड़े का थैला या कुप्पी (को०)।

प्रस्कंदन—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्कन्दन] १. झपट। फलाँग। २. वह जगह जहाँ से फलाँग ली जाय (को०)। ३. शिव। महादेव। ४. विरेचन। जुलाब। ५. अतीसार।

प्रस्कंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रस्कन्दिका] १. अतीसार। २. विरेचन। जुलाब (को०)।

प्रस्कण्व—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक संध्योपासना में प्रयुक्त सूर्योपस्थान मंत्र के एक ऋषि का नाम।

प्रस्कन्न¹—वि० [सं०] १. पतित। समाज का नियम भंग करनेवाला। २. गिरा हुआ। ३. कूदा हुआ (को०)। ४. परास्त। पराजित। हारा हुआ (को०)।

प्रस्कन्न²—संज्ञा पुं० १. घोड़े के एक रोग का नाम।

विशेष—इस रोग से घोड़े की छाती भारी हो जाती, शरीर स्तब्ध हो जाता है और वह चलते समय कुबड़े की तरह हाथ पैर बटोरकर चलता है।

२. जातिच्युत व्यक्ति (को०)। ३. वह जो पाप करता हो। पापी आदमी (को०)।

प्रस्कुंद—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्कुन्द] १. सहायता। सहारा। अवलंब। २. गोल आकृति की वेदी (को०)।

प्रस्खलन—संज्ञा पुं० [सं०] स्खलन। पतन।

प्रस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पत्थर। २. डाभ या कुश का पूला। ३. पत्ते आदि का बिछावन। ४. बिछावन। ५. चौड़ी सतह। सम तल। ६. चमड़े की थैली। ७. मणि। रत्न (को०)। ८. प्रस्तार। ९. एक ताल का नाम। १०. ग्रंथ आदि का परिच्छेद (को०)।

प्रस्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिछाना। फैलाना। २. बिछावन। बिछौना। ३. आसन। पीठ (को०)।

प्रस्तरणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आसन। पीठिका। २. शय्या (को०)।

प्रस्तरभेद—संज्ञा पुं० [सं०] पखान भेद।

प्रस्तरयुग—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तर+युग] ऐतिहासिक क्रम में वह समय जब मानव ने पत्थरों के औजार तथा अन्य सामान बनाकर उनका उपयोग करना सीखा था। उ०—उन युग-स्थितियों का आज दृश्यपट परिवर्तित। प्रस्तरयुग की सभ्यता हो रही अब अवसित।—ग्राम्या, पृ० ६०।

प्रस्तरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्वेत दूर्वा। २. गोजिह्वा।

प्रस्तरोपल—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रकांत मणि ।

प्रस्तव—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्तुति या प्रार्थनापरक गीत । २. अनुकूल अवसर [को०] ।

प्रस्तवन—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्ताव] प्रस्तुतीकरण । उपस्थित करने का भाव ।

प्रस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] १. फैलाव । विस्तार । २. आधिक्य । वृद्धि । ३. घास या पत्तियों का बिछौना । ४. परत । पटल । तह । ५. सीढ़ी । ६. समतल । चौड़ी सतह । ७. घास का जंगल । ८. छंदशास्त्र के अनुसार नौ प्रत्ययों में पहला जिससे छंदों के भेद की संख्या और रूपों का ज्ञान होता है । यह दो प्रकार का होता है, वर्णप्रस्तार और मात्राप्रस्तार । ९. शय्या । बिछावन (को०) । १०. फैलाना । आवृत करना । ढकना (को०) ।

प्रस्तारपंक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रस्तारपङ्क्ति] एक वैदिक छंद जो पंक्ति छंद का एक भेद है । इसके पहले और दूसरे चरणों में बारह अक्षर और तीसरे चौथे में आठ आठ अक्षर होते हैं ।

प्रस्तारी[१]—वि० [सं० प्रस्तारिन्] फैलानेवाला । प्रस्तारकर्ता [को०] ।

प्रस्तारी[२]—संज्ञा पुं० नेत्र का एक रोग [को०] ।

प्रस्तार्यर्म—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तार्यर्मन्] आँख का एक रोग जिसमें आँख के ढेले पर चारों ओर लाल या काले रंग का मांस बढ़ आता है । वैद्यक में इसकी उत्पत्ति सन्निपात के प्रकोप से मानी गई है ।

प्रस्ताव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अवसर । २. प्रसंग । छिड़ी हुई बात । ३. प्रकरण । विषय । ४. अवसर पर कही हुई बात । जिक्र । चर्चा । उ०—जीवन नाटक का अंत कठिन है मेरा, प्रस्ताव मात्र में जहाँ अधैर्य अँधेरा । —साकेत, पृ० १३५ । ५. सभा या समाज में उठाई हुई बात । सभा के सामने उपस्थित मंतव्य (आधुनिक) ।

क्रि० प्र०—करना ।—पास करना ।—होना ।—पारित करना । —पारित होना ।

६. प्रकृष्ट स्तवन (को०) । ७. कथा या विषय के पूर्व का वक्तव्य प्राक्कथन । भूमिका । विषयपरिचय । ८. सामवेद का एक अंश जो प्रस्तोता नामक ऋत्विक् द्वारा प्रथम गाया जाता है ।

प्रस्तावक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी विषय को किसी सभा में संमति या स्वीकृति के लिये उपस्थित करे । प्रस्ताव उपस्थित करनेवाला । जैसे,—प्रस्तावक ने ही अपना प्रस्ताव उठा लिया ।

प्रस्तावन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रस्तावित] १. प्रस्ताव करने की क्रिया । २. प्रस्ताव करने का भाव ।

प्रस्तावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आरंभ । २. किसी विषय या कथा को आरंभ करने के पूर्व का वक्तव्य । प्राक्कथन । भूमिका । उपोद्घात । जैसे, पुस्तक की प्रस्तावना । ३. नाटक में आख्यान या वस्तु के अभिनय के पूर्व विषय का परिचय देने, इतिवृत्त सूचित करने आदि के लिये उठाया हुआ प्रसंग ।

विशेष—सूत्रधार, नट, नटी, विदूषक, पारिपार्श्विक के परस्पर कथोपकथन के रूप में प्रस्तावना होती है, जिसमें कभी कभी कवि का परिचय, सभा की प्रशंसा आदि भी रहती है । भरत मुनि के अनुसार प्रस्तावना पाँच प्रकार की कही गई है—उद्घातक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक और अवगलित ।

प्रस्तावित—वि० [सं०] १. जिसके लिये प्रस्ताव हुआ हो । जिसके लिये प्रस्ताव किया गया हो । २. आरंभ किया हुआ । जो शुरू किया गया हो । आरब्ध (को०) । ३. वर्णित । उक्त । जो कहा गया हो । कथित (को०) ।

प्रस्ताव्य—वि० [सं०] प्रस्ताव करने योग्य ।

प्रस्तिर—संज्ञा पुं० [सं०] तृण या पत्ते की शय्या । घास पत्ते आदि का बिछावन ।

प्रस्तीत, प्रस्तीम—वि० [सं०] १. ध्वनि या आवाज करता हुआ । ध्वनित । २. एकत्रित । संहत [को०] ।

प्रस्तुत[१]—वि० [सं०] १. जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो । २. जो कहा गया हो । उक्त । कथित । ३. जिसकी चर्चा छेड़ी गई हो । जिसकी बात उठाई गई हो । प्रसंगप्राप्त । प्रासंगिक । उ०—पर मैं उन्हें प्रस्तुत विषय मानता हूँ; जिनपर अप्रस्तुत विषयों का उत्प्रेक्षा आदि द्वारा आरोप हो सकता है ।—रस०, पृ० ११२ । ४. प्रतिपन्न । प्राप्त । उपस्थित । सामने आया हुआ । जो सामने हो । ५. उद्यत । तैयार । ६. निष्पन्न । जो किया गया हो । संपादित । ७. उपयुक्त ।

प्रस्तुत[२]—संज्ञा पुं० १. विचाराधीन प्रसंग । वह विषय जो विचाराधीन हो । २. उपमेय [को०] ।

प्रस्तुतांकुर—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तुताङ्कुर] एक काव्यालंकार । प्रस्तुतालंकार ।

प्रस्तुतालंकार—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तुतालङ्कार] एक अलंकार जिसमें एक प्रस्तुत के संबंध में कोई बात कहकर उसका अभिप्राय दूसरे प्रस्तुत के प्रति घटाया जाता है । जैसे, 'क्यों अलि ! मालति छाँड़ि गयो कटीली केतकी' में प्रस्तुत भौंरे को सामने रखकर प्रस्तुत नायक के प्रति उपालंभ किया गया है ।

प्रस्तुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रशंसा । स्तुति उ०—प्रस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू । प्रगटेउ विषमबान झषकेतू ।—मानस, १।८३ । २. प्रस्तावना । ३. उपस्थिति । ४. निष्पत्ति । तैयारी ।

प्रस्तुतीकरण—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तुत+करण] प्रस्तुत करने का भाव उपस्थित करना । उ०—पौराणिक कथाओं का प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण और मनुजता की अलौकिकता के ऊपर स्थापना आदि अनेक तत्व हिंदी कवियों के नवीन प्रयोगों के परिचायक हैं ।—हिं० का० प्र०, पृ० १०८ ।

प्रस्तोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का सामगान । २. संजय के पुत्र का नाम ।

प्रस्तोता—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्तोतृ] १. एक सामवेदी ऋत्विक् जो यज्ञों में पहले सामगान का आरंभ करता है । २. वह जो स्तवन

करे। प्रस्तवन करनेवाला व्यक्ति। ३. प्रस्ताव करनेवाला। प्रस्तुत करनेवाला। रजिस्ट्रार। जैसे, संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रस्तोता।

प्रस्तोभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

प्रस्थंपच—वि० [सं० प्रस्थम्पच] माप या तौल में एक प्रस्थ पकानेवाला [को०]।

प्रस्थ[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहाड़ के ऊपर की चौरस भूमि। अधित्यका। टेबुललैंड। २. वह मैदान जो बराबर या समतल हो। ३. प्राचीन काल का एक मान।

विशेष—यह दो प्रकार का होता था, एक तौलने का, दूसरा मापने का। इसके मान में मतभेद है, कोई चार कुडव का प्रस्थ मानते हैं कोई दो शराव का। बहुतों के मत से एक आढक का चतुर्थांश प्रस्थ होता है। वमन, विरेचन और शोणितमोक्षण में साढ़े तेरह पल का प्रस्थ माना जाता है। कुछ लोग इसे छह पल का और कुछ लोग द्रोण का षोडशांश मानते हैं।

४. पहाड़ों का ऊँचा किनारा। ५. वह भाग जो ऊपर बहुत उठा हो। ६. विस्तार। ७. कोई वस्तु जो एक प्रस्थ मान की हो [को०]।

प्रस्थ[२]—वि० १. जानेवाला। यात्रा करनेवाला। २. फैलानेवाला। ३. प्रकृष्ट रूप से स्थित। दृढ़ (को०)।

प्रस्थकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] मरुवा।

प्रस्थपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरुवे का पौधा। २. छोटे पत्तों की तुलसी। ३. जंबीरी नीबू।

प्रस्थभुक्—वि० [सं०] एक प्रस्थ अन्न खानेवाला [को०]।

प्रस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक देश जो उस समय सुशर्मा नामक राजा के अधिकार में था।

प्रस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. गमन। यात्रा। रवानगी। २. विजय के लिये सेना या राजा की यात्रा। कूच। ३. पहनने के कपड़े आदि जिसे लोग यात्रा के मुहूर्त पर घर से निकालकर यात्रा की दिशा में कहीं पर रखवा देते हैं। उ०—तिथि नखत गुरुवार कहीजै। सुदिन साधि प्रस्थान धरीजै।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—यह ऐसी दशा में किया जाता है जब कोई ठीक मुहूर्त पर यात्रा नहीं कर सकता।

क्रि० प्र०—धरना।—रखना। करना।

४. मार्ग। ५. उपदेश की पद्धति या उपाय। ६. वैखरी वाणी के भेद जो अठारह हैं, यथा—४ वेद, ४ उपवेद, ६ वेदांग, पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र। ७. मरण। मृत्यु (को०)। ८. प्रेषण। भेजना (को०)। ९. विधि। ढंग। तरीका (को०)। १०. निम्न श्रेणी का नाटक (को०)। ११. धार्मिक निकाय। धार्मिक संप्रदाय (को०)। १२. आगमन। आना (को०)।

प्रस्थानत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रस्थानत्रयी' [को०]।

प्रस्थानत्रयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवद्गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र। [को०]।

प्रस्थानदुंदुभि—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रस्थानदुन्दुभि] कूच का डंका [को०]।

प्रस्थानी—वि० [हिं० प्रस्थान + ई] जानेवाला। प्रस्थान करनेवाला। उ०—उठे सुनत हरि उद्धव वानी। मे पुनि शुकप्रस्थ प्रस्थानी।—सबलसिंह (शब्द०)।

प्रस्थानीय—वि० [सं०] प्रस्थान योग्य।

प्रस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रस्थापित, प्रस्थापी, प्रस्थाप्य] १. प्रस्थान कराना। भेजना। २. प्रेरण। दूतादि के काम में नियुक्त करना। ३. स्थापन। ४. सिद्ध करना। प्रमाणित करना। (को०)। ६. व्यवहार में लाना। काम में लाना (को०)। ७. जानवरों को चुरा ले जाना (को०)।

प्रस्थापना—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेजना। रवाना करना। प्रेषण [को०]।

प्रस्थापित—वि० [सं०] १. अच्छी तरह स्थापित। २. प्रेषित। भेजा हुआ। ३. आगे की ओर किया या बढ़ाया हुआ। ४. अनुष्ठित। जैसे, कोई उत्सव आदि (को०)।

प्रस्थायी—वि० [सं० प्रस्थायिन्] जो भविष्य में प्रस्थान करनेवाला हो।

प्रस्थावा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्थान] चलना। गमन। उ०—भएउ इंद्र कर आयसु प्रस्थावा यह सोइ। कबहूँ काहु के प्रभुता कबहूँ काहु कै होइ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५२।

प्रस्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमड़ा। २. पुदीना।

प्रस्थित—वि० [सं०] १. ठहरा हुआ। टिका हुआ। स्थिर। २. दृढ़। ३. जो गया हो। गत। ४. जो जाने को तैयार हो। गमनोद्यत।

प्रस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रस्थान। यात्रा। २. विशेष स्थिति।

प्रस्न[१]—संज्ञा पुं० [सं०] स्नानपात्र।

प्रस्न(पु)[२]—संज्ञा पुं० [सं० प्रश्न] दे० 'प्रश्न'। उ०—ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ।—मानस ७।५५।

प्रस्नव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहना। प्रवाह। प्रस्राव। २. धारा। जैसे दूध की। ३. अश्रु। आँसू। ४. मूत्र (को०)।

प्रस्निग्ध—वि० [सं०] १. जिसमें बहुत अधिक चिकनाई हो। २. बहुत अधिक कोमल (को०)।

प्रस्नुत—वि० [सं०] बहनेवाला। टपकनेवाला। क्षरणशील। प्रस्रवित होनेवाला [को०]।

यौ०—प्रस्नुतस्तनी=वह स्त्री जिसके स्तनों से वात्सल्य के कारण दुग्धस्राव हो।

प्रस्नुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नतोहू। पोते की स्त्री।

प्रस्नेय—वि० [सं०] (जल आदि) जो स्नान के योग्य हो।

प्रस्पंदन—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्पन्दन] फड़कना। कंपन (को०)।

प्रस्पर्धी—वि० [सं० प्रस्पर्धिन्] प्रतिद्वंद्वी। प्रतिस्पर्धी [को०]।

प्रस्फुट—वि० [सं०] १. विकसित। खिला हुआ। २. प्रकट। स्पष्ट। साफ। ज्ञात।

प्रस्फुटन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खिलना। विकसित होना। २. प्रकट होना। स्पष्ट होना। अभिव्यक्त होना। उ०—बहुधा देखा

जाता है कि विरुद्ध संसर्ग से ही किसी अनुकूल भाव का प्रस्फुटन होता है।—पोद्दार अभि ग्रं०, पृ० १०२ ।

प्रस्फुटित—वि० [सं०] विकसित । प्रस्फुट ।

प्रस्फुरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निकलना । २. प्रकाशित होना । ३. कंपन । फड़कना (को०) । ४. स्पष्ट या व्यक्त होना (को०) ।

प्रस्फुरित—वि० [सं०] कंपित । फड़कता हुआ । हिलता हुआ ।

यौ०—प्रस्फुरिताधर = जिसके होठ हिल रहे हों । कुछ कहने के लिये जिसका अधर फड़क रहा हो ।

प्रस्फोटन—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु का इस प्रकार एकबारगी खुलना या फूटना कि उसके भीतर के पदार्थ वेग से बाहर निकल पड़ें । जैसे, ज्वालामुखी का प्रस्फोटन । २. फोड़ निकालना । ३. विकसित होना या करना । खिलना या खिलाना । ४. पीटना । ठोंकना । ताड़न । ५. फटकना (अन्न आदि) । ६. सूप ।

प्रस्मृत—वि० [सं०] विस्मृत । भूला हुआ [को०] ।

प्रस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विस्मृत करना । भूल जाना [को०] ।

प्रस्यद—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्यन्द] टपकना । चूना । बहना । द्रवित होना ।

प्रस्यंदन—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्यन्दन] दे० 'प्रस्यंद' [को०] ।

प्रस्यंदी—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्यन्दिन्] वर्षा की झड़ी । वर्षा की फुहार [को०] ।

प्रस्रंस—संज्ञा पुं० [सं०] (गर्भ का) पतन । भ्रंश । गिरना ।

प्रस्रंसन—संज्ञा पुं० [सं०] द्रवणशील वस्तु । द्रावक वस्तु [को०] ।

प्रस्रंसिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का योनिरोग जिसमें प्रसंग के समय रगड़ से योनि बाहर निकल आती है और गर्भ नहीं ठहरता ।

प्रस्रंसी—संज्ञा पुं० [सं० प्रस्रंसिन्] [स्त्री० प्रस्रंसिनी] १. पतनशील । गिरनेवाला । २. अकाल ही में गिरनेवाला (जैसे, गर्भ) ।

प्रस्रव—संज्ञा पुं० [सं०] चूना । टपकना । २. प्रवाह । धारा । ३. स्तनों से बहता हुआ दूध । ४. मूत्र । ५. पकते हुए चावल का उबलकर बहनेवाला माँड़ । ६. छलकते या गिरते हुए आँसू [को०] ।

प्रस्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल आदि (द्रव पदार्थों) का टपक टपककर या गिर गिरकर बहना । २. किसी स्थान से निकल निकलकर बहता हुआ पानी । सोता । ३. किसी स्थान से गिरकर बहता हुआ पानी । प्रपात । झरना । निर्झर । ४. पसीना । ५. स्तनों से टपकता हुआ दूध । ६. माल्यवान् पर्वत । ७. पेशाब करना (को०) । ८. झरने के जल से बना हुआ कुंड (को०) ।

प्रस्रवणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार बीस प्रकार की योनियों में एक ।

विशेष—इसे दुष्प्रजायिनी भी कहते हैं । इसमें से पानी सा निकलता रहता है । इस योनिवाली स्त्री को संतान होने में बड़ा कष्ट होता है ।

प्रस्रवी—वि० [सं० प्रस्राविन्] [स्त्री० प्रस्राविणी] १. स्रवित होता हुआ । चूनेवाला । २. दूध देनेवाला । ३. जिसमें अधिक दूध हो [को०]

प्रस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षरण । झरना । बहना । २. बहाव । ३. प्रस्रवण । ४. पेशाब । मूत्र । ५. पकते हुए चावल का उबलकर बहनेवाला माँड़ (को०) ।

प्रस्रुत—वि० [सं०] झड़ा हुआ । गिरा हुआ ।

प्रस्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] झरना । गिरना [को०] ।

प्रस्वन,प्रस्वान—संज्ञा पुं० [सं०] जोर का शब्द । ऊँचा स्वर ।

प्रस्वाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वस्तु जिसके प्रयोग से निद्रा आवे । २. सोना । शयन करना (को०) । ३. स्वप्न । सपना (को०) । ४. एक अस्त्र का नाम जिसके प्रयोग से शत्रु को युद्धस्थल में निद्रा आ जाती है ।

प्रस्वापक—वि० [सं०] १. सुलानेवाला । नींद लानेवाला । २. मारक । मृत्यु देनेवाला [को०] ।

प्रस्वापन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रस्वाप' ।

प्रस्वापिनी—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र की एक स्त्री का नाम ।

प्रस्वार—संज्ञा पुं० [सं०] ओंकार । ॐ ।

प्रस्विन्न—वि० [सं०] जिसे पसीना आ गया हो । प्रस्वेदयुक्त [को०] ।

प्रस्वीकरण—संज्ञा पुं० [सं० (उप०) प्र + स्वीकरण] स्वीकारना । स्वीकृति देना ।

प्रस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना ।

प्रस्वेदित[1]—वि० [सं०] १. जिसे पसीना आ गया हो । २. प्रस्वेदयुक्त । २. पसीना लानेवाला । गर्म [को०] ।

प्रस्वेदित[2]—वि० [सं०] पसीने से तर । प्रस्वेद से आर्द्र [को०] ।

प्रहंतव्य—वि० [सं० प्रहन्तव्य] वध करने योग्य । वध्य [को०] ।

प्रह(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रभा] १. प्रभा । चमक । दीप्ति । उ०—पहु विन पुकार पहु उप्परिग । सु प्रह पहक फुट्टी कहन ।—पृ० रा०, ६१।१६५८ । २. पौ । उ०—प्रह फूटी दिस पुंडरी, हणहणिया हय थट्ट ।—ढोला०, दू० ६०२ ।

प्रहणन—संज्ञा पुं० [सं०] मारना । वध । हनन [को०] ।

प्रहणेमि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रहनेमि । चंद्रमा ।

प्रहत[1]—वि० [सं०] १. हत । निहत । मारा हुआ । २. प्रताड़ित । पीटा हुआ । ३. फैलाया हुआ । प्रसारित । उ०—बहता है साथ गत गौरव का दीर्घकाल प्रहत तरंग कर ललित तरल ताल ।—अनामिका, पृ० १८६ । ४. आघातित । (नगाड़ा आदि) जिसपर आघात किया गया हो (को०) । ५. पराजित हारा हुआ (को०) । ६. शिक्षित । पठित (को०) ।

प्रहत[2]—संज्ञा पुं० १. पासे आदि का फेंकना । २. वार । ठोकर । प्रहार ।

प्रहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] धक्का । आघात [को०] ।

प्रहनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

प्रहर—संज्ञा पुं० [सं०] पहर। दिन रात के आठ सम भागों में से एक भाग। पहरा। उ०—इस स्वप्न में भी चार प्रहर के चार स्वप्न हैं।—श्यामा०, पृ० ३।

प्रहरक—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो पहरे पर हो और घंटा बजाता हो। घड़ियाली।

प्रहरकुटुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रहर कुटुम्बी] प्रकंपुष्पी।

प्रहरखना(पु)—क्रि० अ० [सं० प्रहर्षण] हर्षित होना। आनंदित होना। उ०—जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरखे मुनि समुदाई।—तुलसी (शब्द०)।

प्रहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरना। हरण करना। छीनना। २. अस्त्र। उ०—वीर प्रहरणों से प्रभुवर के रण में रिपुगण मरते थे।—साकेत, पृ० ३७६। ३. युद्ध। ४. प्रहार। वार। ५. मारना। आघात पहुँचाना। ६. फेंकना। ७. हटाना। दूर करना। ८. स्त्रियों की सवारी के लिये एक प्रकार का परदेवाला रथ। बहली। ६. गाड़ी में बैठने की जगह। १०. मृदंग के बारह प्रबंधों में एक।

प्रहरणकलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौदह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, एक भगण, फिर एक नगण और अंत में लघु गुरु होते हैं। जैसे,—भहि हरि जनमे अमन दलन को प्रहरण कलि काटन दुख जन को।

प्रहरणकलिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रहरणकलिका'।

प्रहरणीय¹—वि० [सं०] १. प्रहरण के योग्य। २. आक्रमण या प्रहार करने योग्य। ३. क्षेपणीय [को०]।

प्रहरणीय²—संज्ञा पुं० अस्त्र। आयुध [को०]।

प्रहरत् —संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा। वीर [को०]।

प्रहरषन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] एक अलंकार। दे० 'प्रहर्षण—२।'

प्रहरी—वि० [सं० प्रहरिन्] १. पहर पहर पर घंटा बजानेवाला। घड़ियाली। २. पहरेवाला। पहरुवा। पहरा देनेवाला। उ०—बना हुआ है प्रहरी जिसका उस कुटीर में क्या धन है, जिसकी रक्षा में रत इसका तन है, मन है, जीवन है।—पंचवटी, पृ० ६।

प्रहर्ता—वि० [सं० प्रहर्तृ] [वि० स्त्री० प्रहर्त्री] १. प्रहार करनेवाला। २. योद्धा।

प्रहर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. हर्ष। आनंद। २. पुरुषेंद्रिय का उत्तेजित होना (को०)।

प्रहर्षण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. आनंद। २. एक अलंकार जिसमें कवि बिना उद्योग के अनायास किसी के वांछित पदार्थ की प्राप्ति का वर्णन करता है। जैसे,—प्राण पियारो मिल्यो सपने में भई तब नेसुक नींद निहोरे। कंत को आयबो त्योंहीं जगाय सखी कह्यो बोलि पियूष निचोरे। यों मतिराम बढ्यो उर में सुख बाल के बालम सों दृग जोरे। ज्यों पट में अति ही चटकीलो चढ़ै रँग तीसरी बार के बोरे।—मतिराम (शब्द०)। ३. बुध नामक ग्रह। ४. मनोवांछित वस्तु की प्राप्ति (को०)।

प्रहर्षण²—वि० आनंदित करनेवाला। हर्षप्रद [को०]।

प्रहर्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हरिद्रा। हलदी। २. तेरह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में मगण फिर नगण, फिर जगण, रगण और अंत में एक गुरु होता है। (म न ज र ग)। तीसरे और दसवें वर्ण पर यति होती है। जैसे,—बैसो ही विरचहु रास हे कन्हाई, सरब प्रहर्षिणी जुन्हाई।

प्रहर्षिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रहर्षणी'।

प्रहर्षित—वि० [सं०] १. प्रसन्न। हर्षित। आनंदित। २. कठोर या कड़ा। अकड़ा हुआ; जैसे बेंत (को०)। ३. संभोग के लिये उत्तेजित किया हुआ (को०)।

प्रहर्षुल—संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह [को०]।

प्रहलाद(पु)—संज्ञा, पुं० [सं० प्रह्लाद] दे० 'प्रह्लाद—१'। उ०—प्रहलाद उद्धार कियो पूरन पद जाम्हुव।—पृ० रा०, २।२१३।

प्रहसंती—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रहसन्ती] १. जूही। २. वासंती। ३. प्रकृष्ट अंगारधानी। अच्छी अँगेठी। ४. वह जो हँस रही हो या प्रफुल्ल हो।

प्रहसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हँसी। दिल्लगी। परिहास। चुहल। खिल्ली। ३. उपहास या साधिक्षेप रचना (को०)। ४. एक प्रकार का काव्यमिश्र नाट्य।

विशेष—यह रूपक के दस भेदों में है। इस खेल में नायक कोई राजा, धनी, ब्राह्मण या धूर्त होता है और अनेक पात्र रहते हैं। खेल भर में हास्यरस प्रधान रहता है। पहले के प्रहसनों में एक ही अंक होता था पर अब लोग कई अंकों का प्रहसन लिखते हैं। जैसे, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति और अंधेर नगरी आदि। इस प्रकार के नाटक प्रायः कुरीतिसंशोधन के लिये बनाए और खेले जाते हैं।

प्रहसित¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक बुद्ध का नाम। २. हास्य।

प्रहसित²—वि० हँसता हुआ [को०]।

प्रहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. चपत। थप्पड़। हस्तक। उँगलियों सहित फैलाई हुई हथेली। २. रामायण के अनुसार रावण के एक सेनापति का नाम।

प्रहाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. परित्याग। २. चित्त की एकाग्रता। ध्यान। ३. प्रयत्न। उद्योग। प्रयास [को०]।

प्रहाणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परित्याग। २. हानि। नाश। ३. कमी। घाटा। हानि।

प्रहान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रहाण] दे० 'प्रहाण'।

प्रहानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रहाणि] दे० 'प्रहाणि'।

प्रहाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] संदेशवाहक। दूत [को०]।

प्रहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. आघात। वार। चोट। मार। २. वध। हत्या। हनन। मारण (को०)। ३. युद्ध। रण (को०)। ४. गले का हार (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

प्रहारक—वि० [सं०] प्रहार करनेवाला । मारनेवाला ।

प्रहारण—संज्ञा पुं० [सं०] काम्य दान । मनचाहा दान ।

प्रहारना(पु)—क्रि० स० [सं० प्रहार] १. मारना । आघात पहुँचाना । आघात करना । उ०—(क) मन महँ मारा मनकरी, सका न पाँच प्रहारि । सील साँच सरधा नहीं, अजहूँ इंद्रि उघारि ।—कबीर (शब्द०) । (ख) दीन्हीं डारि सैल तें भू पर पुनि भीतर डारघो । डारि अगिन में जलन मारघो नाना भाँति जल प्रहारघो ।—सूर (शब्द०) । २. मारने के लिये चलाना । फेंकना । उ०—(क) वृत्रासुर पर वज्र प्रहारघो । तिन तिरसूल इंद्र पर मारघो ।—सूर (शब्द०) । (ख) तब दुहुँ आइन वज्र प्रहारा । करि तापर पुनि लातन मारा ।—पद्माकर (शब्द०) । (ग) आजु राम श्याम को प्रहारि बान मारिहौं । उग्रसेन सीस काटि भूमि बीच डारिहौं ।—गोपाल (शब्द०) ।

प्रहारवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मांसरोहिणी लता ।

प्रहारार्त[1]—वि० [सं०] जो आघात से घायल हो गया हो ।

प्रहारार्त[2]—संज्ञा पुं० घाव से उत्पन्न तीव्र पीड़ा [को०] ।

प्रहारित(पु)†—वि० [सं० प्रहार] जिसपर प्रहार हो । प्रताड़ित ।

विशेष—मनुष्य के शरीर में मुष्टिप्रहार आदि से प्रहारित स्थान का मांस दूषित होकर शोथ उत्पन्न करता है ।

प्रहारी[1]—वि० [सं० प्रहारिन्] [वि० स्त्री० प्रहारिणी] १. मारनेवाला । प्रहार करनेवाला । २. चलानेवाला । मारनेवाला । छोड़नेवाला । ३. नष्ट करनेवाला । दूर करनेवाला । भंजन करनेवाला । जैसे, गर्वप्रहारी ।

प्रहारी[2]—संज्ञा पुं० सर्वश्रेष्ठ योद्धा । प्रधान योद्धा [को०] ।

प्रहारुक—वि० [सं०] बलपूर्वक हरण करनेवाला । जबरदस्ती छीननेवाला ।

प्रहार्य—वि० [सं०] १. प्रहार करने योग्य । २. हरण योग्य ।

प्रहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. अट्टहास । जोर की हँसी । ठहाका । गहरी हँसी । २. नट । ३. शिव । ४. कार्तिकेय का एक अनुचर । ५. उपेक्षा । तिरस्कार (को०) । ६. व्यंग्य कथन । कटूक्ति ७. रंगों की चमक (को०) । ८. सोमतीर्थ का एक नाम । दे० 'प्रभास'—२ ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द 'प्रभास' का प्राकृत रूप जान पड़ता है ।

प्रहासक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति या वस्तु जो हँसाए [को०] ।

प्रहासी[1]—वि० [सं० प्रहासिन्] १. खूब हँसानेवाला । २. खूब हँसनेवाला । ३. चमकीला । द्योतित । चमकनेवाला [को०] ।

प्रहासी[2]—संज्ञा पुं० विदूषक । मसखरा [को०] ।

प्रहि—संज्ञा पुं० [सं०] कूप । कूआँ [को०] ।

प्रहित[1]—वि० [सं०] १. प्रेरित । २. फेंका हुआ । क्षिप्त । ३. फटका हुआ । निष्कासित । ४. उपयुक्त । ठीक (को०) । नियुक्त (को०) ।

प्रहित[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का साग । २. सूप । पकी हुई दाल ।

प्रहीण[1]—वि० [सं०] १. परित्यक्त । २. अक्षित । फका हुआ (को०) । ३. समाप्त । नष्ट (को०) ।

प्रहीण[2]—संज्ञा पुं० विनाश । हानि [को०] ।

यौ०—प्रहीणजीवित=मृत । मरा हुआ । प्रहीणदोष ।

प्रहीणदोष—वि० [सं०] निष्पाप । पापरहित [को०] ।

प्रहुत—संज्ञा पुं० [सं०] बलिवैश्वदेव । भूतयज्ञ ।

प्रहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आहुति । उत्तम आहुति ।

प्रहृत[1]—वि० [सं०] १. फेंका हुआ । चलाया हुआ । २. पसारा हुआ । फैलाया हुआ । उठाया हुआ । ३. मारा हुआ । प्रताड़ित । ४. पीटा हुआ । ठोंका हुआ ।

प्रहृत[2]—संज्ञा पुं० १. प्रहार । चोट । आघात । २. एक गोत्रकार ऋषि का नाम ।

प्रहृष्ट—वि० [सं०] १. अत्यंत प्रसन्न । आह्लादित । २. उठा हुआ । खड़ा । जैसे, रोम ।

यौ०—प्रहृष्टचित्त, प्रहृष्टमना = आनंदित । प्रफुल्ल । प्रहृष्टमुख = प्रहृष्टवदन । प्रहृष्टरूप = जिसे देखने से प्रसन्नता हो । जो प्रसन्न दिखाई दे । प्रहृष्टरोमा = जिसके बाल, रोएँ आदि खड़े हों ।

प्रहृष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ । काक [को०] ।

प्रहृष्टात्मा—वि० [सं० प्रहृष्टात्मन्] प्रसन्नचित्त । आनंदित [को०] ।

प्रहेणक—संज्ञा पुं० [सं०] लपसी । प्रहेलक ।

प्रहेति—संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम । यह हेति का भाई था ।

प्रहेलक—संज्ञा पुं० [सं०] १ लपसी । प्रहेणक । २. पहेली । प्रहेलिका (को०) । ३. वह मिष्ठान्न जो उत्सवादि में वितरित किया जाय (को०) ।

प्रहेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आनंदपूर्ण क्रीड़ा । स्वच्छंद विलास [को०] ।

प्रहेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रहेलिका' [को०] ।

प्रहेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहेली । बुझौवल ।

प्रह्रत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रीति ।

प्रह्राद—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'प्रह्लाद' । २. एक नाग का नाम ।

प्रह्रास—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीण होना । क्षय [को०] ।

प्रह्व—वि० [सं०] प्रसन्न । आनंदित ।

प्रह्लत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रीति । आनंद । प्रसन्नता [को०] ।

प्रह्लन्न—वि० [सं०] प्रसन्न । खुश [को०] ।

प्रह्लन्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रह्लत्ति' ।

प्रह्लाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. आमोद । आनंद । २. एक दैत्य जो राजा हिरण्यकशिपु का पुत्र था ।

विशेष—यह बचपन ही से बड़ा भगवद्भक्त था । हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को ईश्वर की भक्ति से विचलित करने के लिये अनेक प्रयत्न किए और बहुत कष्ट पहुँचाया पर वह विचलित न हुआ । अंत में भगवान ने नरसिंह रूप धारण कर प्रह्लाद की रक्षा की और

हिरण्यकशिपु को मार डाला। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन और पौत्र बलि था।

३. एक देश का नाम। ४. एक नाग का नाम। ५. ध्वनि। आवाज (को०)। ६. चावल की एक जाति।

प्रह्लादक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रह्लादिका] आह्लादित करनेवाला। आनंदित करनेवाला [को०]।

प्रह्लादन¹—संज्ञा पुं० [सं०] आह्लादित करना। प्रसन्न करना।

प्रह्लादन²—वि० आनंददायक। आह्लादक

प्रह्लादित—वि० [सं०] आनंदित। हर्षित। प्रफुल्लित।

प्रह्लादी—वि० [सं० प्रह्लादिन्] आनंदित होनेवाला। प्रसन्न होनेवाला [को०]।

प्रह्व—वि० [सं०] १. विनीत। नम्र। २. झुका हुआ। ढालुआँ। ३. आसक्त।

प्रह्वण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रदर्शन के लिये झुकना। सम्मानार्थ नम्र होना [को०]।

प्रह्वल—संज्ञा पुं० [सं०] सौंदर्ययुक्त देह। सुंदर शरीर।

प्रह्वलिका, प्रह्वलीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहेली।

प्रह्वांजलि—वि० [सं० प्रह्वाञ्जलि] हाथ जोड़कर सिर झुकाए हुए (को०)।

प्रह्वाय्य—वि० [सं०] नम्र। झुका हुआ [को०]।

प्रह्वाय—संज्ञा पुं० [सं०] आह्वान। अभिनिमंत्रण। आवाहन [को०]।

प्रांग—संज्ञा पुं० [सं० प्राङ्ग] एक प्रकार का छोटा पणव या ढोल [को०]।

प्रांगण—संज्ञा पुं० [सं० प्राङ्गण] १. मकान के बीच या सामने का खुला हुआ भाग। आँगन। सहन। २. एक प्रकार का ढोल। पणव।

प्रांगन—संज्ञा पुं० [सं० प्राङ्गण] दे० 'प्रांगण'।

प्रांजन—संज्ञा पुं० [सं० प्राञ्जन] १. अंजन या रंग। २. प्राचीन काल का एक प्रकार का लेप या रंग जो बाण पर लगाया जाता था।

प्रांजल—वि० [सं० प्राञ्जल] १. सरल। सीधा। २. सच्चा। ईमानदार। ३. बराबर। समान। जो ऊँचा नीचा न हो।

प्रांजलता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राञ्जलता] प्रांजल होने का भाव। सरलता। सीधापन [को०]।

प्रांजलि¹—वि० [सं० प्राञ्जलि] जो अंजलि बाँधे हो। अंजलिबद्ध।

प्रांजलि²—संज्ञा पुं० १. सामवेदियों का एक भेद। २. अंजलि। अँजली।

प्रांजलिक, प्रांजली—वि० [सं० प्राञ्जलिक, प्राञ्जलिन्] दे० 'प्रांजलि' [को०]।

प्रांत—संज्ञा पुं० [सं० प्रान्त] [वि० प्रांतिक] १. अंत। शेष। सीमा। २. किनारा। छोर। सिरा। उ०—अधरों के प्रांतों पर खेलती रेखाएँ, सरल तरंग भंग लेती हुई हास्य की। —अनामिका, पृ० ३७। ३. ओर। दिशा। तरफ। ४. किसी देश का एक भाग। खंड। प्रदेश। जैसे, संयुक्त प्रांत, पंजाब प्रांत। ५. एक ऋषि का नाम। ६. इस ऋषि के गोत्र के लोग। ७. कोना (जैसे आँख का)।

यौ०—प्रांतग। प्रांतचर = दे० 'प्रांतग'। प्रांतदुर्ग। प्रांतनिवासी = दे० 'प्रांतग'। प्रांतपति = प्रदेशपति। राज्यपाल। गवरनर। प्रांतपुष्पा। प्रांतभूमि। प्रांतविरस = प्रारंभ मे सरस पर अंत में रसहीन या बेरस। प्रांतवृत्ति। प्रांतशून्य = दे० 'प्रांतरशून्य' प्रांतस्थ।

प्रांतग—वि० [सं०] १. सीमा पर रहनेवाला। जो प्रांत में या सरहद पर रहता हो। २. पास रहनेवाला। समीपस्थ (को०)।

प्रांततः—क्रि० वि० [सं० प्रान्ततस्] सीमा या हद से होता हुआ। छोर से होकर [को०]।

प्रांतदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं० प्रान्तदुर्ग] वह दुर्ग जो नगर के किनारे प्राचीर के बाहर हो। नगर के परकोटे के बाहर का दुर्ग।

प्रांतपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रान्तपुष्पा] १. एक फूल का नाम। २. इस फूल का पौधा।

प्रांतभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रान्तभूमि] १. किसी पदार्थ का अंतिम भाग। किनारा। छोर। २. योगशास्त्र के अनुसार समाधि, जो योग की अंतिम सीमा मानी जाती है। ३. सीढ़ी।

प्रांतभूमौ—क्रि० वि० [सं० प्रान्तभूमौ] अंत में। आखीर में [को०]।

प्रांतर—संज्ञा पुं० [सं० प्रान्तर] १. दो स्थानों के बीच का लंबा मार्ग जिसमें जल या वृक्षों आदि की छाया न हो। २. दो गावों के बीच की भूमि। उ०—कहीं खड़े थे खेत, कहीं प्रांतर पड़े; शून्य सिंधु के द्वीप गाँव छोटे बड़े।—साकेत, पृ० १२६। ३. दो प्रदेशों के बीच का शून्य स्थान। अवकाश। ४. जंगल। ५. वृक्ष के बीच का खोखला अंश।

प्रांतरशून्य—वि० [सं० प्रान्तरशून्य] दो स्थानों के बीच का पेड़ और छाया आदि से रहित लंबा रूखा मार्ग [को०]।

प्रांतवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रान्तवृत्ति] क्षितिज।

प्रांतयन—संज्ञा पुं० [सं० प्रान्तायन] प्रांत नामक ऋषि के गोत्र के लोग।

प्रांतिक—वि० [सं० प्रान्तिक] १. प्रांत संबंधी। प्रांतीय। २. प्रदेशी। ३. किसी एक देश या प्रांत से संबंध रखनेवाला। उ०—भाषा के बिना न रहता अन्य भाव प्रांतिक।—अपरा, पृ० ६४।

प्रांतीय—वि० [सं० प्रान्तीय] प्रांत या प्रदेश से संबंध रखनेवाला। प्रांतिक। जैसे, युक्तप्रांतीय सम्मेलन।

प्रांतीयता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रान्तीय + ता] प्रांत के प्रति अत्यधिक मोह। प्रांत के प्रति पक्षपातपूर्ण भाव।

प्रांशु¹—वि० [सं०] [संज्ञा प्रांशुता] ऊँचा। उच्च।

प्रांशु²—संज्ञा पुं० १. वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम। २. विष्णु। ३. लंबा व्यक्ति। वह जो ऊँचा हो (को०)।

प्रांशुप्राकार—वि० [सं०] जिसकी दीवाल लंबी और ऊँची हो [को०]।

प्रांशुलभ्य—वि० [सं०] लंबे व्यक्ति के द्वारा प्राप्य। जहाँ तक लंबा व्यक्ति ही पहुँच सके [को०]।

प्रांसु—वि० [सं० प्रांशु] दे० 'प्रांशु'। उ०—प्रथुल प्रांसु परिनाह पृथु आयत तुंग बिसाल।—अनेकार्थ०, पृ० ४०।

प्राइम मिनिस्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी राज्य या देश का प्रधान मंत्री। वजीर आजम। २. भारत गणराज्य के केंद्रीय शासन का प्रधान मंत्री।

प्राइमर—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी भाषा की वह प्रारंभिक पुस्तक जिसमें उस भाषा की वर्णमाला आदि दी गई हो। २. किसी विषय की वह प्रारंभिक पुस्तक जिसमें उस विषय का ज्ञान प्राप्त करनेवालों के लिये साधारण मोटी मोटी बातें दी गई हों।

प्राइमरी—वि० [अं०] प्रारंभिक। प्राथमिक। जैसे,—प्राइमरी एजुकेशन, प्राइमरी पाठशाला, प्राइमरी शिक्षा, प्राइमरी स्कूल, आदि।

प्राइमरी स्कूल—संज्ञा पुं० [अं० प्राइमरी + स्कूल] प्राथमिक पाठशाला। प्रारंभिक पाठशाला।

प्राइवेट¹—वि० [अं०] जिसका संबंध केवल किसी व्यक्ति से हो। निज का। व्यक्तिगत। जैसे,—यह सम्मेलन का नहीं बल्कि मेरा प्राइवेट काम है। २. जो सार्वजनिक न हो, बल्कि निज के संबंध का हो। जैसे, प्राइवेट जीवन, प्राइवेट सभा। ३. जो सर्वसाधारण से छिपाकर रखा जाय। गुप्त। जैसे,—मैं आज आपसे एक बहुत प्राइवेट बात करना चाहता हूँ।

प्राइवेट²—संज्ञा पुं० [अं०] पलटन का सिपाही। सैनिक। जैसे, प्राइवेट जेम्स।

प्राइवेट सेक्रेटरी—संज्ञा पुं० [अं०] वह कर्मचारी या लेखक जो किसी की निज की चिट्ठी पत्री आदि लिखने के लिये नियुक्त हो। किसी बड़े आदमी का निज का मंत्री या सहायक। खास नवीस। खास कलम।

प्राक्¹—वि० [सं०] १. पहले का। अगला। २. पूर्व का।

प्राक्²—संज्ञा पुं० पूर्व। पूरब।

प्राक्³—अव्य०, पहले। पूर्व में।

विशेष—व्याकरण के अनुसार 'प्राच्' शब्द का 'च्' समस्त पदों में 'क्' 'ग्' 'ङ्' आदि रूपों में हो जाता है, जैसे, प्राक्कर्म, प्राग्भाव, प्राङ्मुख आदि।

प्राकट्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकट या व्यक्त होने का भाव [को०]।

प्राकरणिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्राकरणिकी] १. प्रकरण या विषय से संबंधित। प्रकरणप्राप्त। २. उपमेय [को०]।

प्राकथ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

प्राकर्षिक¹—वि० [सं०] जिसको प्राथमिकता दी जाय। तरजीह देने लायक।

प्राकर्षिक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्त्रियों के बीच में नाचनेवाला पुरुष। २. वह पुरुष जिसकी जीविका दूसरों की स्त्रियों से चलती हो। परदारोपजीवी।

प्राकाम्य—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के ऐश्वर्यों या सिद्धियों में से एक। इच्छा का अनभिघात।

विशेष—कहते हैं, इस ऐश्वर्य के प्राप्त हो जाने पर मनुष्य की इच्छा का व्याघात नहीं होता। वह जिस वस्तु की इच्छा करता है वह उसे तुरंत प्राप्त हो जाती है। वह इच्छा करने पर जमीन में समा सकता है या आसमान में उड़ सकता है।

पर्या०—अपसर्ग। साध्वसानुमति।

प्राकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दीवार जो नगर, किले आदि की रक्षा के लिये उनके चारों ओर बनाई जाती है। परकोटा। कोट। चहारदीवारी।

पर्या०—वरण। वप्र। शाल। साल।

२. घेरा। बाड़।

प्राकारधरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राकार के ऊपर की भूमि [को०]।

प्राकारस्थ—वि० [सं०] परकोटे के भीतर का। प्राकार पर या प्राकार में स्थित।

प्राकारीय—वि० [सं०] १. प्राकारयोग्य। चहारदीवारी के लायक। २. प्राकार से घिरा हुआ [को०]।

प्राकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'प्रकाश'। २. एक आभूषण (को०)।

प्राकाश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकीर्ति। यश। २. प्रकाश का भाव। ३. प्रसिद्ध या ख्यात होना। ४. चमक। ज्योति।

प्राकृत¹—वि० [सं०] १. प्रकृति से उत्पन्न या प्रकृति संबंधी। २. स्वाभाविक। नैसर्गिक। ३. भौतिक। ४. स्वाभाविक। सहज। ५. साधारण। मामूली। ६. संसारी। लौकिक। ७. नीच। असंस्कृत। अनपढ़। ग्रामीण। फूहड़।

प्राकृत²—संज्ञा स्त्री० १. बोलचाल की भाषा जिसका प्रचार किसी समय किसी प्रांत में हो अथवा रहा हो। उ०—जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरिकथा बखाने।—तुलसी (शब्द०)। २. एक प्राचीन भाषा जिसका प्रचार प्राचीन काल में भारत में था और जो प्राचीन संस्कृत नाटकों आदि में स्त्रियों, सेवकों और साधारण व्यक्तियों की बोलचाल में तथा अलग ग्रंथों में पाई जाती है। भारत की बोलचाल की भाषाएँ बोलचाल की प्राकृतों से बनी हैं।

विशेष—हेमचंद्र ने संस्कृत को प्राकृत की प्रकृति कहकर सूचित किया है कि प्राकृत संस्कृत से निकली है, पर प्रकृति का यह अर्थ नहीं है। केवल संस्कृत का आधार रखकर प्राकृत व्याकरण की रचना हुई है। पर अनुमान है कि ईसवी सन् से प्रायः ३०० वर्ष पहले यह भाषा प्राकृत रूप में आ चुकी थी। उस समय इसके पश्चिमी और पूर्वी दो भेद थे। यह पूर्वी प्राकृत ही पाली भाषा के नाम से प्रसिद्ध हुई (दे० 'पाली')। बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ इस मागधी या पाली भाषा की बहुत अधिक उन्नति हुई, क्योंकि पहले उस धर्म के सभी ग्रंथ इसी भाषा में लिखे गए। धीरे धीरे प्राचीन प्राकृतों के विकास से आज से प्रायः १००० वर्ष पहले देश-भाषाओं का जन्म हुआ था। जिस प्रकार संस्कृत भाषा का सबसे पुराना रूप वैदिक भाषा है, उसी प्रकार प्राकृत भाषा

का भी जो पुराना रूप मिलता है उसे आर्ष प्राकृत कहते हैं। कुछ बौद्ध तथा जैन विद्वानों का मत है कि पाणिनि ने इस आर्ष प्राकृत का भी एक व्याकरण बनाया था। पर कुछ लोगों को यह संदेह है कि कदाचित् पाणिनि के समय प्राकृत भाषा का जन्म ही नहीं हुआ था।

मार्कंडेय ने प्राकृत के इस प्रकार भेद किए हैं—(१) भाषा (महाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राच्या, आवंती, मागधी, अर्द्धमागधी), (२) विभाषा (शाकारी, चांडाली, शाबरी, आभीरी, टाक्की, औड्री, द्राविड़ी), (३) अपभ्रंश, और (४) पैशाची। चूलिका पैशाची आदि कुछ निम्न श्रेणी की प्राकृतें भी हैं। सबसे प्राचीन काल में मागधी की भाषा पाली के नाम से साहित्य की ओर अग्रसर हुई। बौद्ध ग्रंथ पहले इसी भाषा में लिखे गए। यह मागधी व्याकरणों की मागधी से पृथक् और प्राचीन भाषा है। पीछे जैनों के द्वारा अर्द्धमागधी और महाराष्ट्री का आदर हुआ। महाराष्ट्री साहित्य की प्राकृत हुई जिसके एक कृत्रिम रूप का व्यवहार संस्कृत के नाटकों में हुआ। इन प्राकृतों से आगे चलकर और घिसकर जो रूप हुआ वह अपभ्रंश कहलाया। इसी अपभ्रंश के नाना रूपों से आजकल की आर्य शाखा की देशभाषाएँ निकली हैं। इसके अतिरिक्त ललितविस्तर में एक प्रकार की और प्राकृत मिलती है जो संस्कृत से बहुत कुछ मिलती जुलती है। प्राकृत भाषा में द्विवचन नहीं है और उसकी वर्णमाला में ॠ ॠ लृ लॄ ऐ और औ स्वर तथा श ष और विसर्ग नहीं हैं।

३. पराशर मुनि के मत से बुध ग्रह की सात प्रकार की गतियों में पहली और उस समय की गति जब वह स्वाती, भरणी और कृत्तिका में रहता है। यह चालीस दिन की होती है और इसमें आरोग्य, वृष्टि, धान्य की वृद्धि और मंगल होता है।

प्राकृतज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार वह ज्वर जो वर्षा, शरद या हेमंत ऋतु में, ऋतु के प्रभाव से होता है।

विशेष—कहते हैं, वर्षा, शरद और हेमंत ऋतुओं में क्रमशः वात, पित्त और कफ की प्रधानता होती है और उसी समय मनुष्य पर वातादि की प्रधानता से ऐसा ज्वर आक्रमण करता है।

प्राकृतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्राकृत होने का भाव या धर्म।

प्राकृतदोष—संज्ञा पुं० [सं०] वात, पित्त और कफ नामक प्रकृतियों के प्रकोप से उत्पन्न दोष जो वर्षा, शरद और हेमंत ऋतुओं में यथाक्रम उत्पन्न होता है।

प्राकृतप्रलय—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जिसका प्रभाव प्रकृति तक पर पड़ता है, अर्थात् जिसमें प्रकृति भी ब्रह्म या परमात्मा में लीन हो जाती है।

प्राकृतमानुष—संज्ञा पुं० [सं०] साधारण व्यक्ति [को०]।

प्राकृतमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वभावसिद्ध मित्र। २. वह राजा जिसका राज्य प्राकृत शत्रु के बाद हो।

प्राकृतशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्राकृतारि'।

प्राकृतारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वाभाविक शत्रु। स्वभावसिद्ध दुश्मन। २. वह राजा जिसका राज्य किसी अन्य राज्य से लगा हो।

प्राकृताभास—वि० स्त्री० [सं० प्राकृत + आभास] जिसमें वर्ण और वाक्य का विन्यास प्राकृत की झलक लिए हो। जिसकी बनावट प्राकृत भाषा के आधार पर हो। उ०—इस प्रकार अपभ्रंश या प्राकृताभास हिंदी में रचना होने का पता हमें विक्रम की सातवीं शताब्दी में मिलता है।—इतिहास, पृ० ६।

प्राकृतिक[1]—वि० [सं०] १. जो प्रकृति से उत्पन्न हुआ हो। २. प्रकृति के विकार। ३. प्रकृति संबंधी। प्रकृति का। ४. स्वाभाविक। सहज। उ०—इसी प्रकार शिशिर में दुशाला ओढ़े 'गुलगुली गिलमें, गलीचा' बिछाकर बैठे हुए रईस से धूप में खपरैल पर बैठी बदन चाटती हुई बिल्ली में अधिक प्राकृतिक भाव है।—रस०, पृ० १४३। ५. साधारण। मामूली। ६. भौतिक। ७. सांसारिक। लौकिक। ८. नीच।

प्राकृतिक[2]—संज्ञा पुं० दे० 'प्राकृतप्रलय'।

प्राकृतिक चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राकृतिक + चिकित्सा] वह चिकित्सा पद्धति जिसमें प्रकृतिजन्य साधनों (जैसे मिट्टी, पानी आदि) से चिकित्सा की जाती है।

प्राकृतिक भूगोल—संज्ञा पुं० [सं०] भूगोल विद्या का वह अंग जिसमें भौगोलिक तत्वों का तुलनात्मक दृष्टि से विचार होता है।

विशेष—भूगर्भ शास्त्र से इसमें यह अंतर है कि भूगर्भ शास्त्र तो पृथ्वी की बनावट के प्राचीन इतिहास से संबंध रखता है; पर इस शास्त्र में उसकी वर्तमान स्थिति तथा भिन्न भिन्न प्राकृतिक अवस्थाओं का वर्णन होता है। इस विद्या में यह बतलाया जाता है कि पर्वत, समुद्र, नदियाँ, द्वीप और महाद्वीप आदि किस प्रकार बनते हैं, पहाड़ों की ऊँचाई और समुद्रों की गहराई कितनी है, समुद्र में ज्वार भाटा किस प्रकार आता है, पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों में प्राणियों और वनस्पतियों आदि का किस प्रकार विभाग हुआ है, वातावरण का तापमान कहाँ किस प्रकार और कितना घटता बढ़ता है, और किस प्रकार ऋतुपरिवर्तन होता है, और नदियों तथा झीलों आदि की सृष्टि किस प्रकार होती है, आदि आदि।

प्राक्कथन—संज्ञा पुं० [सं०] (किसी पुस्तक की) भूमिका या प्रस्तावना।

प्राक्कर्म—संज्ञा पुं० [सं० प्राक्कर्मन्] १. पूर्वकर्म। २. अदृष्ट। भाग्य।

प्राक्कल्प—संज्ञा पुं० [सं०] पुराकल्प। पूर्वकल्प।

प्राक्काल—संज्ञा पुं० [सं०] गत समय। प्राचीन काल [को०]।

प्राक्कालिक, प्राक्कालीन—वि० [सं०] पुराकालीन। पहले का। प्राचीन काल से संबंधित। प्राचीन काल का [को०]।

प्राक्कूल—संज्ञा पुं० [सं०] वह कुश जिसका अगला भाग पूर्व की ओर किया गया हो।

प्राक्कृत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व में किया हुआ कर्म। कर्म जो पूर्व जन्म में कृत हो।

प्राक्कृत[2]—वि० पूर्व काल या जन्म में कृत।

प्राक्केवल—वि० [सं०] जो पहले से ही जिस रूप में प्रकट रहा हो।

प्राक्चरण—संज्ञा पुं० [सं० प्राक्चरणा] भग। योनि।

प्राक्चिर—क्रि॰ वि॰ [सं॰] ठीक समय पर। अधिक देर होने के पूर्व [को॰]।

प्राक्छाय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] जिस समय छाया पूर्व की ओर पड़ती हो। अपराह्न काल।

प्राक्तन[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह कर्म जो पहले किया जा चुका हो और आगे जिसका शुभ और अशुभ फल भोगना पड़े। भाग्य। प्रारब्ध।

प्राक्तन[2]—वि॰ प्राचीन। पुराना। पहले का।

प्राक्तूल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'प्रक्कूल'।

प्राक्पद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] समास में पूर्व पद [को॰]।

प्राक्प्रवण—वि॰ [सं॰] पूरब की ओर झुकाववाला या ढालुवाँ [को॰]।

प्राक्प्रहार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पहला आक्रमण। प्रथम आघात [को॰]।

प्राक्फल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कटहर।

प्राक्फल्गुनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'प्राक्फाल्गुनी'।

प्राक्फाल्गुन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बृहस्पति ग्रह।

प्राक्फाल्गुनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पूर्व फाल्गुनी नक्षत्र।

यौ॰—प्राक्फाल्गुनीभवबृहस्पति ग्रह।

प्राक्संध्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ प्राक्सन्ध्या] वह संधिकाल जो दिन आरंभ में हो। सूर्योदय के समय का संधिकाल। सवेरा।

प्राक्सवन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रातःकालीन उदकदान, या हवन यज्ञ [को॰]।

प्राक्सी—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] वह लेख जिसके द्वारा किसी संस्था का कोई सदस्य किसी दूसरे सदस्य आदि को अपना प्रतिनिधि नियत करके उसे अपनी ओर से उपस्थित होकर संमति प्रदान करने का अधिकार देता है। प्रतिनिधिपत्र। २. प्रतिनिधि। वह व्यक्ति जो किसी दूसरे व्यक्ति के स्थान पर उसका कर्तव्य पालन करे।

प्राक्सौमिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह कर्तव्य जो यजमान को सोमयाग के पूर्व कर लेना चाहिए। जैसे, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, पशुयाग।

प्राक्स्रोता—वि॰ [सं॰ प्राक्स्रोतस्] पूरब की ओर बहनेवाला [को॰]।

प्राखर्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रखरता। तीक्ष्णता। तेजी।

प्राग(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्रयाग] तीर्थराज प्रयाग। उ॰—कासी प्राग द्वारिका मथुरा, कहँ कहँ फिर दौरायौ।—जग॰ श॰, पृ॰ ११७।

प्रागट्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰ प्राकट्य] दे॰ 'प्राकट्य'। उ॰—सो हरि जी तो सुरंगी सखी को प्रागट्य है।—दो सौ बावन॰, भा॰ १, पृ॰ १५१।

प्रागनुराग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पूर्वानुराग।

प्रागभाव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वह अभाव जिसके पीछे उसका प्रतियोगी भाव उत्पन्न होता है। किसी विशेष समय के पूर्व न होना। जैसे, घट, वस्त्र बनने के पूर्व नहीं थे। इस प्रकार के अभाव को वैशेषिक शास्त्र में प्रागभाव कहते हैं। वैशेषिक दर्शन में यह पाँच प्रकार के अभावों में पहला माना गया है। २. वह पदार्थ जिसका आदि न हो पर अंत हो। अनादि। सांत पदार्थ।

प्रागभिहित—वि॰ [सं॰] पूर्वोक्त। पूर्वकथित [को॰]।

प्रागल्भ्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. प्रगल्भता। धीरता। २. वीरता। ३. साहस। ४. निर्भयता। ५. घमंड। ६. चतुरता। ७. प्रधानता। प्रबलता।

प्रागार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रासाद। भवन। महल।

प्रागुक्ति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पूर्वकथन। बात जो पहले कही गई हो [को॰]।

प्रागुत्तर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'प्रागुत्तरा'।

प्रागुत्तरा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पूर्व और उत्तर के बीच की दिशा। ईशान कोण।

प्रागुदीची—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पूर्व और उत्तर के बीच की दिशा। ईशान कोण।

प्रागैतिहासिक—वि॰ [सं॰] इतिहास से पूर्व का। उस समय से पूर्व का जहाँ से इतिहास उपलब्ध होता है। उ॰—वह समस्या यह है कि प्राचीन ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक कथानकों और भावधाराओं को हम आज किस रूप में अपनाएँ।—नया॰, पृ॰ १७।

प्राग्ज्योतिष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] महाभारत आदि के अनुसार कामरूप देश।

विशेष—प्राग्ज्योतिष देश आसाम में है। महाभारत के समय में यहाँ का राजा भगदत्त था और वह चीन और किरात की सेना लेकर महाभारत संग्राम में आया था। यह देश अपनी राजधानी प्राग्ज्योतिष के नाम से प्रख्यात है जिसे अब गोहाटी कहते हैं। यहाँ देवी योगनिद्रा का प्रधान स्थान है। पौराणिक दृष्टि से यह स्थान बहुत ही पवित्र और सर्वतोभद्रा नामक लक्ष्मी का निवासस्थान माना जाता है। कहते हैं, नरकासुर की राजधानी यहीं थी। रामायण में लिखा है कि इस देश की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर को कुश के पुत्र अमूर्तरय ने बसाया था।

प्राग्ज्योतिषपुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्राग्ज्योतिष देश की राजधानी जिसे अब गोहाटी कहते हैं। रामायण के अनुसार इस नगर को कुश के पुत्र अमूर्तरय ने बसाया था।

प्राग्दक्षिणा—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दक्षिण और पूर्व के बीच की दिशा। दक्षिणपूर्व।

प्राग्देश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पूर्व की ओर के देश। पूरब के देश [को॰]।

प्राग्द्वार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पूरब की ओर का दरवाजा [को॰]।

प्राग्बोधि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक पर्व का नाम।

प्राग्भक्त—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. भोजन करने के पहले औषध खाना। २. सुश्रुत के अनुसार औषध खाने के दस समयों में से एक। दवा खाने के लिये भोजन करने से पहले का समय।

विशेष—सुश्रुत में लिखा है कि जो औषध भोजन करने के पहले

खाया जाता है वह कै के रास्ते बाहर नहीं निकलता, खाया हुआ अन्न बहुत अच्छी तरह पचाता है और बल बढ़ाता है। बुड्ढों, बालकों, स्त्रियों और दुर्बलों आदि के लिये ऐसे ही समय दवा खाने का विधान है।

प्राग्भरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मतानुसार सिद्धशिला का एक नाम।

प्राग्भव—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म (को०)।

प्राग्भार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत के आगे का भाग। २. किसी वस्तु का अगला भाग या सिरा। ३. उत्पत्ति। उत्कर्ष। ४. राशि। ढेर। बाढ़ [को०]।

प्राग्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत के आगे का भाग। २. उत्कर्ष। उन्नति। ३. पूर्व जन्म।

प्राग्र—संज्ञा पुं० [सं०] चरम बिंदु [को०]।

प्राग्रसर—वि० [सं०] १. श्रेष्ठ। २. प्रथम। पहला।

प्राग्रहर—संज्ञा पुं० [सं०] मुख्य। श्रेष्ठ।

प्राग्राट—संज्ञा पुं० [सं०] पतला। दही। मठा।

प्राग्र्य—वि० [सं०] श्रेष्ठ। बड़ा।

प्राग्वंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञशाला में वह घर जिसमें यजमानादि रहते हैं। यह घर हविर्गृह के पूर्व ओर होता है। २. विष्णु ३. पूर्व वंश। पहले का वंश।

प्राग्वचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार मन्वादि महर्षियों के वचन। २. पूर्व का निश्चय। पहले का निर्णय (को०)।

प्राग्वर्ती—वि० [सं० प्राक्+वर्तिन्] पूर्व का। प्रारंभ का। शुरू का।

प्राग्वाट—संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार प्राचीन काल के एक नगर का नाम।

विशेष—यह नगर यमुना और गंगा के बीच में था। भरत जी केकय से अयोध्या आते समय इस नगर में से होकर आए थे।

प्राग्वृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] पहले की घटना। पहले का हालचाल [को०]।

प्राग्वृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ववृत्त। प्राग्वृत्त।

प्राघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. भारी आघात। कड़ी चोट। २. युद्ध। समर (को०)।

प्राघार—संज्ञा पुं० [सं०] चूना। टपकना। क्षरण [को०]।

प्राघुण, प्राघूर्णक, प्राघुणिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे०, 'प्राघूण' [को०]।

प्राघूण—संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि। मेहमान। पाहुना।

प्राघूणिक—दे० पुं० [सं०] अतिथि। मेहमान।

प्राघूर्ण, प्राघूर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्राघूण' या 'प्राघूणिक'।

प्राघूर्णिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्राघूर्ण'।

प्राङ्न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] वह विवाद जो पहले किसी न्यायालय में निर्णीत हो चुका हो। किसी विवाद का पहले भी किसी न्यायालय में उपस्थित होकर निर्णीत हो चुकना।

विशेष—व्यवहारशास्त्र के अनुसार यह अभियोग का एक प्रकार का उत्तर है जिसके उपस्थित होने पर यह विवाद नहीं चल सकता। यह उत्तर उसी समय दिया जा सकता है जब उपस्थित विवाद के संबंध में पहले ही न्यायालय में निर्णय हो चुका हो। अर्थात् प्रतिवादी कह सकता है कि पहले इस विवाद का निर्णय हो चुका है, फिर से इसका निर्णय होने की आवश्यकता नहीं।

प्राङ्मुख—वि० [सं०] जिसका मुँह पूर्व दिशा की ओर हो। पूर्वाभिमुख।

प्राचंड्य—संज्ञा पुं० [सं० प्राचण्ड्य] प्रचंडता। तीव्रता। उग्रता। भयंकरता [को०]।

प्राच्—वि० [सं०] [स्त्री० प्राची] पूर्व।

प्राचार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा।

प्राचार—वि० [सं०] प्रचलित परंपरा या नियम के विरुद्ध [को०]।

प्राचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. आचार्य। गुरु। शिक्षक। २. विद्वान्। पंडित।

प्राचिका—संज्ञा पुं० [सं०] १. डाँस की जाति की एक प्रकार की जंगली मक्खी। २. श्येन। बाज (को०)।

प्राची—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूर्व दिशा। पूरब। उ०—पूरन ससि प्राची उदै बिहरनि रुचि कीनी।—घनानंद, पृ० ४५५। २. वह दिशा जो देवता के या अपने आगे की ओर हो। ३. जल आँवला।

प्राचीन[1]—वि० [सं०] १. जो पूर्व देश में उत्पन्न हुआ हो। पूरब का। २. जो पूर्व काल में उत्पन्न हुआ हो। पिछले जमाने का। पुराना। पुरातन। ३. वृद्ध। बुड्ढा।

यौ०—प्राचीनकल्प = पुरा कल्प। प्राचीनगाथा = पुराना इतिहास। पुरानी कथा। प्राचीनतिलक। प्राचीनपनस। प्राचीनबर्हिष। प्राचीनमत = पुराना विश्वास। पहले से चला आता मत। प्राचीनमूल।

प्राचीन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्राचीर'।

प्राचीन काव्यमिश्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह दृश्य काव्य जिसकी रचना प्राचीन काल में हुई हो और जिसका अभिनय भी प्राचीन काल में होता रहा हो।

विशेष—इसके पाँच भेद हैं— (१) नाट्य, (२) नृत्य, (३) नृत्त, (४) तांडव और (५) लास्य।

प्राचीनकुल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जिन्हें आयांतरतम और प्राचीनगर्भ भी कहते हैं।

प्राचीनगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जिनको प्राचीनकुल और आयांतरतम भी कहते हैं।

प्राचीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन होने का भाव। पुरानापन। जैसे—इस पुस्तक की प्राचीनता में कोई संदेह नहीं हो सकता।

प्राचीनतिलक—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

प्राचीनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन होने का भाव। प्राचीनता। पुरानापन।

प्राचीनपनस—संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पेड़ ।

प्राचीनबर्हि—संज्ञा पुं० [सं० प्राचीनबर्हिस्] १. इंद्र । २. एक प्राचीन राजा का नाम ।

विशेष—अग्निपुराणानुसार यह अग्निगोत्रीय राजा हविर्धान के पुत्र थे और प्रजापति कहलाते थे । प्रचेतागण इनके पुत्र थे ।

प्राचीनमूल—वि० [सं०] जिसका जड़ या मूल पूर्व ओर हो [को०] ।

प्राचीनयोग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

प्राचीनशाला—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराना घर । २. पूर्व दिशा का घर ।

प्राचीना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाठा । २. रास्ना ।

प्राचीना[2]—वि० स्त्री० [सं० प्राचीन का स्त्रीलिंग रूप] जो प्राचीन हो ।

प्राचीनामलक—संज्ञा पुं० [सं०] पानी आमला । जल आमला ।

प्राचीनावीत—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञोपवीत धारण करने का एक प्रकार जिसमें बायाँ हाथ यज्ञोपवीत से बाहर रहता और यज्ञोपवीत दाहिने कंधे पर रहता है । यह उपवीत का उलटा है । इस प्रकार का यज्ञोपवीत पितृकार्य में धारण किया जाता है । पितृसव्य । सव्य ।

प्राचीनावीती—वि० [सं० प्राचीनावीतिन्] जो प्राचीनावीत यज्ञोपवीत धारण किए हो । सव्य ।

प्राचीनोपवीत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्राचीनावीत' ।

प्राचीपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

प्राचीर—संज्ञा पुं० [सं०] नगर या किले आदि के चारों ओर उसकी रक्षा के उद्देश्य से बनाई हुई दीवार । चहारदीवारी । शहर पनाह । परकोटा ।

प्राचीरवती—वि० [सं० प्राचीर+वत+ई (प्रत्य०)] प्राचीरयुक्त । चहारदीवारी से आवृत । उ०—मैंने नयनोन्मीलन करके इधर उधर, सब ओर निहारा; पर लोचनगत हुई मुझे तो यह प्राचीरवती दृढ़ कारा ।—अपलक, पृ० ७६ ।

प्राचुर्य—संज्ञा पुं० [सं० प्राचुर्य,प्राचुर्य्य] १. प्रचुर होने का भाव । अधिकता । प्रचुरता । बहुतायत । २. राशि । ढेर (को०) ।

प्राचेतस—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रचेतागण जो प्राचीनबर्हि के पुत्र थे और जिनकी संख्या दस थी । २. वाल्मीकि मुनि का नाम ३. प्रचेता के अपत्य या वंशज । ४. विष्णु । ५. दक्ष । ६. मनु का पैतृक नाम (को०) । ७. वरुण के पुत्र का नाम ।

प्राच्य[1]—वि० [सं०] १. पूर्व देश या दिशा में उत्पन्न । पूर्व का । २. पूर्वीय । पूर्व संबंधी । जैसे, प्राच्य सभ्यता, प्राच्य विद्या महार्णव । ३. पूर्व काल का । पुराना । प्राचीन ।

प्राच्य[2]—संज्ञा पुं० शरावती नदी के पूर्व का देश ।

प्राच्यक—वि० [सं०] पूर्वी । पूरब का [को०] ।

प्राच्यभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्वी या पुरानी भाषा [को०] ।

प्राच्यवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैताली वृत्ति के एक भेद का नाम जिसके सब पादों में चौथी और पाँचवीं मात्रा मिलकर गुरु हो जाती है । जैसे,—हर हर भज आम आठहूँ । तज सबै भरम रे करो यही । तन मन धन दे लगा सबै । पाइहौ परम धाम ही सही ।

प्राच्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व के ऋषियों के गोत्र में उत्पन्न पुरुष ।

प्राछित,प्राछित्त(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रायश्चित्त] दे० 'प्रायश्चित्त' । उ०—(क) जिहि बिरंचि रचि जिन प्रपंच को प्राछित कीन्ह्यौ ।—रत्नाकर, भा०१, पृ० ५५ । (ख) चौदह नेम सँभाले नित्त । लागे दोष करै प्राछित्त ।—अर्ध०, पृ० ५४ ।

प्राजक—संज्ञा पुं० [सं०] सारथी । रथ चलानेवाला ।

प्राजन—संज्ञा पुं० [सं०] कोड़ा । चाबुक [को०] ।

प्राजहित—संज्ञा पुं० [सं०] गार्हपत्य अग्नि ।

प्राजापत—संज्ञा पुं० [सं०] प्रजापति का धर्म या भाव ।

प्राजापत्य[1]—वि० [सं०] १. प्रजापति संबंधी । २. प्रजापति से उत्पन्न । ३. प्रजापति निमित्तक ।

प्राजापत्य[2]—संज्ञा पुं० १. आठ प्रकार के विवाहों में चौथा ।

विशेष—इस विवाह में कन्या का पिता वर और कन्या को एकत्र कर उनसे यह प्रतिज्ञा कराता है कि हम दोनों मिलकर गार्हस्थ्य धर्म का पालन करेंगे; और फिर दोनों की पूजा करके वर को अलंकारयुक्त कन्या का दान करता है । ऐसे विवाह को काम भी कहते हैं ।

२. एक व्रत का नाम जो बारह दिन का होता है ।

विशेष—इस व्रत में पहले तीन दिन तक सायंकाल २२ ग्रास, फिर तीन दिन तक प्रातःकाल २६ ग्रास, फिर तीन दिन तक अयाचित अन्न २४ ग्रास खाकर अंत के तीन दिन उपवास करना पड़ता है । धर्मशास्त्रों में इस व्रत का विधान प्रायश्चित्त में किया गया है ।

३. रोहिणी नक्षत्र । ४. यज्ञ । ५. प्रयाग का नाम । ६. विष्णु का नाम (को०) । ७. पितृलोक ।

प्राजापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक इष्टि का नाम ।

विशेष—यह इष्टि प्रव्रज्याश्रम या संन्यासाश्रम ग्रहण के समय की जाती है । इस यज्ञ में सर्वस्व दक्षिणा में दे दिया जाता है ।

२. वैदिक छंदों के आठ भेदों में एक भेद ।

प्राजिक—संज्ञा पुं० [सं०] बाज नामक पक्षी ।

प्राजिता—संज्ञा पुं० [सं० प्राजितृ] सारथी ।

प्राजी—संज्ञा पुं० [सं० प्राजिन्] एक प्रकार का पक्षी । श्येन ।

प्राजेश—संज्ञा सं० [सं०] १. रोहिणी नक्षत्र । २. वह चरु आदि पदार्थ जो प्रजापति देवता के लिये हो ।

प्राज्ञंमन्य, प्राज्ञंमानी—संज्ञा पुं० [सं० प्राज्ञम्मन्य, प्राज्ञम्मानिन्] दे० 'प्राज्ञमानी' [को०] ।

प्राज्ञ[1]—वि० [सं०] [स्त्री० प्राज्ञा, प्राज्ञी] १. बुद्धिमान् । समझदार । चतुर । २. विज्ञ । पंडित । विद्वान् । उ०—प्राकृत की

नहिं मेरे विषै कछु स्वप्न सुती नहिं मेरैं विषै है। नाहिं सुषोपति मेरे विषै पुनि विश्व हु तैजस प्राज्ञ पर्व है।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१६। ३. मूर्ख। बेवकूफ।

प्राज्ञ²—संज्ञा पुं० १. वेदांतसार के अनुसार जीवात्मा। २. पुराणानुसार कल्किदेव के बड़े भाई का नाम। ३. चतुर मनुष्य। बुद्धिमान व्यक्ति (को०)। ४. एक प्रकार का शुक या तोता (को०)।

प्राज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्राज्ञत्व' (को०)।

प्राज्ञत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. चतुराई। बुद्धिमत्ता। २. पांडित्य। विज्ञता। ३. मूर्खता। बेवकूफी।

प्राज्ञमन्य—वि० [सं०] दे० 'प्राज्ञमानी'।

प्राज्ञमान—संज्ञा पुं० [सं०] प्राज्ञ व्यक्ति का आदर (को०)।

प्राज्ञमानी—संज्ञा पुं० [सं० प्राज्ञमानिन्] वह जिसे अपने पांडित्य का अभिमान हो। जो अपने आपको विद्वान् या बुद्धिमान समझता हो।

प्राज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुद्धि। समझ। उ०—प्राज्ञा अभिमानी जु व्याकृत जगगुण रुपा। ईश्वर तहँ केवल भोग आनंद स्वरूपा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६८। २. चतुरा स्त्री। विदुषी स्त्री।

प्राज्ञी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य की भार्या का नाम। २. विद्वान् की स्त्री (को०)। ३. चतुरा या विदुषी स्त्री (को०)।

प्राज्य—वि० [सं०] १. प्रचुर। अधिक। बहुत। २. जिसमें बहुत घी पड़ा हो। ३. विशाल (को०)। ४ उच्च। ऊँचा (को०)।

प्राड्विवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो व्यवहारशास्त्र का ज्ञाता हो और विवादों आदि का निर्णय करता हो। न्याय करनेवाला। न्यायाधीश।

विशेष—प्राचीन काल में जो राजा स्वयं न्याय नहीं करते थे वे विद्वान् ब्राह्मणों को प्राड्विवाक या न्यायाधीश के पद पर नियुक्त कर देते थे। वे ही सब झगड़ों का फैसला किया करते थे।

२. वह जो दूसरों के अभियोग आदि चलाता या उनका उत्तर देता हो। वकील।

प्राड्विवेक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्राड्विवाक'।

प्राणंत—संज्ञा पुं० [सं० प्राणन्त] १. वायु। हवा। २. रसांजन।

प्राणंती—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राणन्ती] १. क्षुधा। भूख। २. हिचका। हिचकी। ३. छींक।

प्राण्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्राण' (को०)।

प्राण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। हवा। २. शरीर की वह वायु जिससे मनुष्य जीवित रहता है। उ०—कह कथा अपनी इस प्राण से, उड़ गए मधु सौरभ प्राण से।—साकेत, पृ० २१७।

विशेष—हिंदुओं के शास्त्रों में भेदभेद से दस प्रकार के प्राण माने गए हैं जिनके नाम प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकिल, देवदत्त और धनंजय हैं। इनमें पहले पाँच (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) मुख्य हैं, और पंचप्राण कहलाते हैं। ये सबके सब मनुष्य के शरीर के भिन्न भिन्न स्थानों में काम किया करते हैं और उनके प्रकोप करने से मनुष्य के शरीर में अनेक प्रकार के रोग उठ खड़े होते हैं। इन सबमें प्राण सबसे प्रधान और मुख्य है। जिस वायु को हम अपने नथने द्वारा साँस से भीतर ले जाते हैं उसे प्राण कहते हैं। इसी पर मनुष्य, पशु आदि जतुओं का जीवन है। इस वायु का मुख्य स्थान हृदय माना गया है। प्राण धारण करने ही के कारण साँस लेनेवाले जंतुओं को प्राणी कहते हैं। मरने पर श्वास प्रश्वास, या वायु का गमनागमन बंद हो जाता है; इसलिये लोगों का कथन है कि मरने पर प्राण निकल जाते हैं। शास्त्रों में आँख, कान, नाक, मुँह, नाभि, गुदा, मूत्रेंद्रिय और ब्रह्मरंध्र आदि प्राणों के निकलने के मार्ग माने गए हैं। लोगों का कथन है कि मरने के समय मनुष्य के शरीर से जिस इंद्रिय के मार्ग से प्राण निकलते हैं, वह कुछ अधिक फैल जाती है और ब्रह्मरंध्र से निकलने पर खोपड़ी चिटक जाती है। लोगों का विश्वास है कि जिस मनुष्य के प्राण नाभि से ऊपर के मार्गों से निकलते हैं उसकी सद्गति होती है और जिसके प्राण नाभि से नीचे के मार्गों से निकलते हैं उसकी दुर्गति या अधोगति होती है। ब्रह्मरंध्र से प्राण निकलनेवाले के विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसे निर्वाण या मोक्ष पद प्राप्त होता है। प्राण शब्द का प्रयोग प्राय. बहुवचन में ही होता है।

३. जैन शास्त्रानुसार पाँच इंद्रियाँ; मनोबल, वाक्‌बल, और कायबल नामक त्रिविध बल तथा उच्छ्‌वास, विश्वास और वायु इन सबका समूह। ४. श्वास। साँस। ५ छांदोग्य ब्राह्मण के अनुसार प्राण, वाक्, चक्षु, श्रोत्र और मन। ६. वाराहमिहिर और आर्यभट्ट आदि के अनुसार काल का वह विभाग जिसमें दस दीर्घ मात्राओं का उच्चारण हो सके। यह विनाडिका का छठा भाग है। ७. पुराणानुसार एक कल्प का नाम जो ब्रह्मा के शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन पड़ता है। ८. बल। शक्ति। ९. जीवन। जान। उ०—(क) अगद दीख दसानन बैसा। सहित प्राण कज्जल गिरि जैसा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) प्राण दिए धन जायँ दिए सब। केशव राम न जाहिं दिए अब।—केशव (शब्द०)। (ग) ए रे मेरे प्राण कान्ह प्यारे के चलावन में तब तो चले न अब चाहत किते चले।—पद्माकर (शब्द०)।

यौ०—प्राणआधार या प्राणाधार। प्राणप्रिय। प्राणप्यारा। प्राणनाथ। प्राणपति, इत्यादि।

विशेष—इस शब्द के साथ अंत में पति, नाथ, कांत आदि शब्द समस्त होने पर पद का अर्थ प्रेमी या पति होता है।

मुहा०—प्राण उड़ जाना = (१) होश हवास जाता रहना। बहुत घबराहट हो जाना। हक्का बक्का हो जाना। जैसे,—उसके देखने ही से उसमें के बच्चों का प्राण उड़ गया।—गदाधरसिंह (शब्द०)। (२) डर जाना। भयभीत होना।

प्राण आना या प्राणों में प्राण आना = घबराहट या भय कम होना। चित्त कुछ ठिकाने होना। हवास ठिकाने होना। प्राण या प्राणों का गले तक आना = मरने पर होना। मरणासन्न होना। उ०—ठाने मठान जेठानिनहूँ सब लोगन हूँ अकलंक लगाए। सासु खरी गहि गौंस खरी ननदीन के बोल न जात गिनाए। एती सही जिनके लए मैं सखी तैं कहि कौने कहाँ बिलमाए। आय गले लगे प्राण पै कैसेहूँ कान्हर आज अजौं नहिं आए।—(शब्द०)। प्राण या प्राणों का मुँह को आना या चले आना = (१) मरने पर होना। (२) अत्यंत दुःख होना। बहुत अधिक हार्दिक कष्ट होना। जैसे,—हाय हाय इसकी बातों से तो प्राण मुँह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। प्राण या प्राणों के लाले पड़ना = प्राणों की चिंता होना। प्राणरक्षा की परवा होना। जैसे,—ब्राह्मणों के प्राणों के लाले पड़ रहे थे।—प्रेमघन०, पृ० ३०६। प्राण खाना = बहुत तंग करना। बहुत सताना। प्राण छूटना, जाना या निकलना = जीवन का अंत होना। मरना। प्राण डालना = जीवन प्रदान करना। जीवन का संचार करना। प्राण त्यागना, तजना या छोड़ना = मरना। प्राण देना = मरना। किसी पर या किसी के ऊपर प्राण देना = (१) किसी के किसी काम से बहुत दुखी या रुष्ट होकर मरना। (२) किसी को बहुत अधिक चाहना। प्राणों से भी बढ़कर चाहना। प्राण नहों में समाना = भयभीत होना। आशंकित होना। प्राण निकलना = (१) मर जाना। मरना। (२) भय से होश हवास जाता रहना। घबरा जाना। भयभीत होना। प्राण पयान होना = प्राण निकलना उ०—प्राण पयान होत को राखा। कोयल को चातक मुख भाखा।—जायसी (शब्द०)। प्राणों पर आ पड़ना = जीवन का संकट में पड़ना। जान जोखिम होना। बड़ी कठिनाई पड़ना। उ०—बन बहि जाय ना कहूँ यों आई आँखिन ते, उमगि अनोखी घटा बरसति नेह की। कहै पद्माकर चलावै खान पान की को, प्राणन परी है आनि दहकति देह की।—पद्माकर (शब्द०)। प्राण या प्राणों पर खेलना = ऐसा काम करना जिसमें जान जाने का भय हो। प्राणों को संकट में डालना। उ०—तुम तो अपने ही मुख झूठे। ·········· हमसों मिले बरष द्वादस दिन चारिक तुम सों तूठे। सूर आपने प्राणन खेलैं ऊधो खेलौ कठे।—सूर (शब्द०) प्राण या प्राणों पर बीतना = (१) जीवन संकट में पड़ना। जान जोखिम होना। जैसे,—ऐसे समय जब कि क्षण क्षण बेटो के प्राण पर बीत रही है।—तोताराम (शब्द०)। (२) जान निकल जाना। मर जाना। प्राण बचाना = (१) जीवन की रक्षा करना। जान बचाना। (२) जान छुड़ाना। पीछा छुड़ाना। प्राण मुट्ठी में या हथेली पर लिए रहना = जीवन को कुछ न समझना। प्राण देने पर उतारू रहना। जैसे,—रात दिन जीजायस गाती हैं और अवधि की आस किए प्राण मूठी में लिए हैं।—लल्लू (शब्द०)। प्राण रखना = (१) जिलाना। जीवन देना। (२) जान बचाना। जीवन की रक्षा करना। प्राण लेना = मार डालना। जान लेना। उ०—बलनिकेत साकेत चल्यो निज विजय हेतु चढ़ि। प्रेतराज सम समर खेत पर प्राण लेन चढ़ि।—गोपाल (शब्द०)। प्राण हरना = (१) मारना। मार डालना। उ०—कौन के प्राण हरैं हम, यों इन कारन लागि मतो चहैं बूझन।—(शब्द०)। (२) अधिक दुख देना। उ०—मिलत एक दारुण दुख देहीं। बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं।—तुलसी (शब्द०)। प्राण हारना = (१) मर जाना। उ०—सब जल तजे प्रेम के नाते।·········समुझत मीन नीर की बातें तजत प्राण हठि हारत। जानि कुरंग प्रेम नहिं त्यागत यदपि ब्याध शर मारत।—सूर (शब्द०)। (२) साहस टूट जाना। उत्साह न रह जाना। प्राण या प्राणों से हाथ धोना = जान देना। मर जाना। प्राण सा आना = उत्साहित होना। सजीव होना।

१०. वह जो प्राणों के समान प्यारा हो। परम प्रिय। ११. वैवस्वत मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि। १२. हरिवंश के अनुसार धर नामक वसु के एक पुत्र का नाम। १३. मकार वर्ण। १४. एक साम का नाम। १५. ब्रह्म। १६. ब्रह्मा। १७. विष्णु। १८. धाता के पुत्र का नाम। १९. अग्नि। आग। २०. एक गंध द्रव्य (को०)। २१. मूलाधार में रहनेवाली वायु।

प्राणअधार[१]—संज्ञा पुं० [सं० प्राण+आधार] १ वह जो प्राणों के समान प्यारा हो। बहुत प्रिय व्यक्ति। उ०—(क) अब ही और की और होति कछु लागे बार, ताते मैं पाती लिखी तुम प्राणअधारा।—सूर (शब्द०)। (ख) अपने ही गेह मधुपुरी आवन देवकी प्राणअधारा हो। असुर मारि सुर साध बढ़ावन व्रजजन सुखदातारा हो।—सूर (शब्द०)। २. पति। स्वामी।

प्राणअधार[२]—वि० प्रिय।

प्राणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवक वृक्ष। २. जीव। प्राणी। ३. एक प्रकार का सुगंधित गोंद। बोल (को०)।

प्राणकर—वि० [सं०] जिससे शरीर का बल बढ़े। शक्तिवर्धक। पौष्टिक।

प्राणकष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वह दुःख जो प्राण निकलते समय होता है। मरने के समय की पीड़ा।

प्राणकांत—संज्ञा पुं० [सं० प्राणकान्त] १. प्रिय व्यक्ति। प्यारा। २. पति। स्वामी।

प्राणकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह कष्ट जो मरने के समय होता है। प्राणकष्ट।

प्राणग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] नासिका। नाक।

प्राणघात—संज्ञा पुं० [सं०] मार डालना। हत्या। वध।

प्राणघातक—वि० [सं०] प्राण लेनेवाला। मार डालनेवाला [को०]।

प्राणघ्न—वि० [सं०] (वह विष आदि) जिससे प्राण निकल जायँ। प्राण लेनेवाला (जहर आदि)।

प्राणचय—संज्ञा पुं० [सं०] बल या शक्ति की वृद्धि [को०]।

प्राणच्छिद्—वि० [सं०] प्राणघाती। प्राण लेनेवाला [को०]।

प्राणच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] हत्या। वध।

प्राणजीवन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणाधार। २. परम प्रिय व्यक्ति। अत्यंत प्रिय मनुष्य। उ०—रघुनाथ पियारे आजु रहो हो। चारि याम बिश्राम हमारे छिन छिन मीठे बचन कहो हो। वृथा होइ वर वचन हमारो री कैकेयी जीव कल से रहो हो। आतुर ह्वै अब छाड़ि कोशलपुर प्राणजीवन कित चलन चहो हो।—सूर (शब्द०)।

प्राणजीवन²—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु, जो प्राणों की रक्षा करते हैं।

प्राणत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राण छोड़ देना। आत्मघात करना। २. मर जाना। मरण। मृत्यु।

प्राणत¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैन शास्त्रानुसार एक देवता, जो कल्पभव नामक वैमानिक देवताओं के अंतर्गत हैं। २. वायु। हवा। ३. श्वास वायु। ४. प्रजापति। ५. तीर्थ। पवित्र स्थान।

प्राणत²—वि० बलवान्। हृष्ट पुष्ट। ताकतवाला।

प्राणदंड—संज्ञा पुं० [सं० प्राणदण्ड] किसी को हत्या अथवा इसी प्रकार के दूसरे अपराध के बदले में मार डालना। मौत की सजा।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—होना।

प्राणद¹—वि० [सं०] १. प्राणदाता। जो प्राण दे। २. प्राणों की रक्षा करनेवाला।

प्राणद²—संज्ञा पुं० १. जल। पानी। २. रक्त। खून। ३. जीवक नामक वृक्ष। ४. विष्णु।

प्राणदयित¹—संज्ञा पुं० [सं०] पति [को०]।

प्राणदयित²—वि० प्राणप्रिय [को०]।

प्राणदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हरीतकी। हरें। २. ऋद्धि नामक ओषधि।

प्राणदाता—संज्ञा पुं० [सं० प्राणदातृ] १. किसी को बचाने में प्राण देनेवाला। २. प्राणों की रक्षा करनेवाला। प्राणद।

प्राणदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राण देना। २. किसी को मरने या मारे जाने से बचाना।

प्राणदायक—वि० [सं० प्राण + दायक] प्राण देनेवाला। जीवनदायक। उ०—अनेक धार्मिक आचार्यों ने जिन प्राणदायक सत्यों का अपने जीवन में साक्षात्कार किया था।—संपूर्णानंद अभि० ग्रं०, पृ० १६।

प्राणदुरोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्राणद्यूत' [को०]।

प्राणद्यूत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जान पर खेलना। अपने को ऐसी स्थिति में डालना। २. जीवन का मोह छोड़कर युद्ध करना।

प्राणद्रोह—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के प्राण लेने का प्रयत्न करना [को०]।

प्राणधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो हृदय का सर्वस्व हो। अत्यंत प्रिय व्यक्ति। प्यारा। उ०—अंगन के बारे कन्हैया छाड़ि दे सखियाँ। बार बार कहे मात यशोमति रनियाँ। नेक रही माखन देउँ मेरे प्राणधनियाँ। वारि जिन करो बलि जाउँ हो निधनी के धनियाँ।—सूर (शब्द०)।

प्राणधार¹—वि० [सं०] प्राणवाला। जिसमें प्राण हो। जीवित।

प्राणधार²—संज्ञा पुं० प्राणी। प्राणधारी। जीव।

प्राणधारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन धारण करने का भाव या क्रिया। २. प्राण धारण करने का संबल (को०)। ३. शिव।

प्राणधारी¹—वि० [सं० प्राणधारिन्] १. जीवित। प्राणयुक्त। २. जो साँस लेता हो। चेतन।

प्राणधारी²—संज्ञा पुं० प्राणयुक्त। व्यक्ति। प्राणी। जंतु। जीव।

प्राणन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन। २. चेष्टा करना। हिलना डोलना जिससे जीवित होने का प्रमाण मिले। ३. जल। पानी। ४. गला। गर्दन (को०)।

प्राणनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्राणनाथा] १. प्रिय व्यक्ति। प्यारा। प्रियतम। २. पति। स्वामी। ३. यमराज। यम (को०)। ४. एक संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य का नाम।

विशेष—ये जाति के क्षत्रिय थे और औरंगजेब के समय में हुए थे। हिंदुओं और मुसलमानों के धर्म की एकता पर इनके ग्रंथ मिलते हैं। कहते हैं कि पन्ना के राजा छत्रसाल इनके शिष्य थे। कबीर, नानक आदि के समान ये भी आजन्म साधु होकर हिंदू और मुसलमान धर्म की एकता के संबंध में उपदेश देते रहे। इनके संप्रदाय के लोग बुंदेलखंड में बहुत हैं। ये लोग मूर्तिपूजा नहीं करते और प्राणनाथ के ग्रंथों की बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। इस संप्रदाय में प्रवेश करते समय इस संप्रदायवालों के साथ चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान एक साथ बैठकर खाना पड़ता है और सब बातों में हिंदू और मुसलमान अपने अपने पूर्वजों के आचार व्यवहार मानते हैं। हिंदू मुसलमान दोनों मत के लोग इस संप्रदाय में दीक्षा ग्रहण करते हैं।

प्राणनाथी—संज्ञा पुं० [सं० प्राणनाथ + हिं० ई] १. प्राणनाथ के संप्रदाय का पुरुष। २. स्वामी प्राणनाथ का चलाया हुआ संप्रदाय।

प्राणनाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणों का नष्ट हो जाना या कर देना। हत्या या मृत्यु। जैसे,—कल एक नाव डूब जाने के कारण कई आदमियों का प्राणनाश हुआ।

प्राणनाशक—वि० [सं०] प्राण लेनेवाला। मार डालनेवाला।

प्राणनिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम।

प्राणपण—संज्ञा पुं० [सं० प्राण + पण (= द्यूत या बाजी] प्राण की बाजी। जीवन का दाँव। उ०—फिर भी लड़े थे हम निज प्राणपण से।—लहर, पृ० ५६।

प्राणपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. आत्मा। २. हृदय। ३. पति। स्वामी। ४. प्रिय व्यक्ति। प्यारा। उ०—करि मन नंदनंदन ध्यान। सेउ चरन सरोज सीतल तजि विषयरस पान।···सूर श्री गोपाल की छबि दृष्टि भरि भरि लेहि। प्राणपति की निरखि सोभा पलक परन न देहि।—सूर (शब्द०)। ५. चिकित्सक। वैद्य। हकीम (को०)।

प्राणपणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्वनि। आवाज (को०)।

प्राणपन—संज्ञा पुं० [सं० प्राणपण] दे० 'प्राणपण'। उ०—वे किसी दीन प्राणी की रक्षा प्राणपन से कर सकते हैं। —रंगभूमि, भा०२, पृ० ५५०।

प्राणपरिक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] अपने या किसी के प्राण की बाजी लगाना (को०)।

प्राणपरिक्षय—वि० [सं०] जिसका जीवन खत्म हो रहा हो। मरणासन्न (को०)।

प्राणपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] प्राण धारण करना। जन्म लेना।

प्राणपरिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी मृत पुरुष की आत्मा को किसी जीवित पुरुष के शरीर में बुलाना। (मिस्मेरिज़्म)।

प्राणपूरक—वि० [सं० प्राण+पूरक] जीवन भरनेवाला। उत्साह भरनेवाला। जीवंत। प्राणमय। उ०—उनके वर्णन में ऐसी स्वाभाविकता और प्राणपूरक प्रवीणता रहती है कि पाठक साँस बंद करके उनके किसी उपन्यास को तबतक पढ़ता जाता है जबतक पुस्तक समाप्त न हो जाय।—प्रेम० और गोर्की, पृ० १२६।

प्राणप्यारा—संज्ञा पुं० [हिं० प्राण+प्यारा] [स्त्री० प्राणप्यारी] १. प्रियतम। अत्यंत प्रिय व्यक्ति। उ०—प्राणन की हानि सी दिखान सी लगी है हाय कौन गुन जानि मान कीन्हों प्राणप्यारे सों।—पद्माकर (शब्द०)। २. पति। स्वामी। उ०—खानपान पीछे करति सोवति पिछले छोर। प्राणपियारे ते प्रथम जगति भावती भोर।—पद्माकर (शब्द०)।

प्राणप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राण धारण कराना। २. हिंदू धर्मशास्त्रों के अनुसार किसी नई बनी हुई मूर्ति को मंदिर आदि में स्थापित करते समय मंत्रों द्वारा उसमें प्राण का आरोप करना।

विशेष—साधारणतः जबतक किसी मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा न हो ले तबतक वह मूर्ति पूजा के योग्य नहीं होती और उसकी गणना साधारण धातु, मिट्टी या पत्थर आदि में होती है। प्राणप्रतिष्ठा के उपरांत ही उस मूर्ति में देवता का आना माना जाता है।

प्राणप्रद—वि० [सं०] १. प्राणदाता। जो प्राण दे। २. प्राण की रक्षा करनेवाला। ३. स्वास्थ्यवर्धक। शरीर का स्वास्थ्य और बल आदि बढ़ानेवाला।

प्राणप्रदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक ओषधि।

प्राणप्रदायक—वि० [सं०] प्राणदाता। प्राणप्रद।

प्राणप्रयाण—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणों का जाना। मृत्यु (को०)।

प्राणप्रिय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्राणप्रिया] जो प्राण के समान प्रिय हो। प्रियतम।

प्राणप्रिय[2]—संज्ञा पुं० १. अत्यंत प्रिय व्यक्ति। प्राणप्यारा। २. पति।

प्राणबल्लभ—संज्ञा पुं० [सं० प्राणवल्लभ] दे० 'प्राणवल्लभ'।

प्राणभक्ष—वि० [सं०] केवल हवा पर जीवित रहनेवाला। केवल हवा पीकर रहनेवाला (को०)।

प्राणभास्वान्—संज्ञा पुं० [सं० प्राणभास्वत्] समुद्र (को०)।

प्राणभूत—वि० [प्राण+भूत] जीवनरूप। प्राणवत्।

प्राणभृत्[1]—वि० [सं०] १. प्राण धारण करनेवाला। २. प्राणपोषक।

प्राणभृत्[2]—संज्ञा पुं० १. जीव। प्राणी। २. विष्णु।

प्राणमय—वि० [सं०] प्राण संयुक्त। जिसमें प्राण हों।

प्राणमय कोश—संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत के अनुसार पाँच कोशों में से दूसरा।

विशेष—यह पाँच प्राणों से जिन्हें प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान कहते हैं, बना हुआ माना जाता है। वेदांतसार में पाँचों कर्मेंद्रियों को भी प्राणमय कोश के अंतर्गत माना है। इसी प्राणमय कोश से मनुष्य को सुखदु:खादि का बोध होता है। सूक्ष्म प्राण सारे शरीर में फैलकर मन को सुख दु:ख का ज्ञान कराते हैं। यही कोश बौद्ध ग्रंथों में वेदना स्कंध माना गया है।

प्राणमोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणों का जाना। मृत्यु। २. आत्महनन। आत्महत्या (को०)।

प्राणयम—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम।

प्राणयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्वास प्रश्वास के आने जाने की क्रिया। साँस का आना जाना। २. भोजनादि जो जीवन के साधनभूत हैं। वे व्यापार जिनसे मनुष्य जीवित रहता है।

प्राणयोग—संज्ञा पुं० [सं० प्राण+योग] दे० 'प्राणायाम'। उ०—प्रथम प्राणयोग को साधा। कारज सिद्ध को बाहेर राखा। —कबीर सा०, पृ० ८७७।

प्राणयोनि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर। २. वायु। हवा।

प्राणयोनि[2]—संज्ञा स्त्री० प्राण का मूल। जीवन का मूल (को०)।

प्राणरंध्र—संज्ञा पुं०[सं० प्राणरन्ध्र] १ नासिका। नाक। २. मुख। मुँह।

प्राणरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणायाम। २. जीवन का खतरा (को०)। ३. एक नरक (को०)।

प्राणरोधन—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम।

प्राणवंत—सं० [सं० प्राणवत्] जीवंत। सजीव। उ०—जनता के मानस को जिसने प्राणवंत, उत्साहित और आनंदित बनाया है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६४८।

प्राणवत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सप्राण या जीवित होने का भाव (को०)।

प्राणवध—संज्ञा पुं० [सं०] हत्या। प्राणघात। जान से मार डालना।

प्राणवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्राणवल्लभा] १. वह जो बहुत प्यारा हो। अत्यंत प्रिय। २. स्वामी। पति।

प्राणवान्—संज्ञा पुं० [सं० प्राणवत्] [स्त्री० प्राणवती] वह जिसमें प्राण हों। प्राणी। जीव।

प्राणवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राण। उ०—प्राणवायु पुनि कहुँ समावै। ताको इत उत पवन चलावै।—सूर (शब्द०)। २. जीव। प्राणी।

प्राणविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपनिषदों का वह प्रकरण जिसमें प्राण का वर्णन है ।

प्राणविनाश, प्राणविप्लव, प्राणवियोग—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा का शरीर से वियुक्त होना । मृत्यु [को०] ।

प्राणवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राण, अपान, उदान आदि पंचप्राणों का कार्य ।

प्राणव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणनाश । मृत्यु ।

प्राणशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपनिषदों के अनुसार एक सूक्ष्म शरीर जो मनोमय माना गया है । इसी को विज्ञान और क्रिया का हेतु मानते हैं । २. परमेश्वर ।

प्राणशोषण—संज्ञा पुं० [सं०] बाण ।

प्राणसंकट—संज्ञा पुं० [सं० प्राणसङ्कट] वह कष्ट जो प्राणों पर हो । जान जोखिम ।

प्राणसंगिनी—संज्ञा स्त्री० [प्राण + सङ्गिनी] स्त्री । पत्नी । उ०—प्रेयसी, प्राणसंगिनी नाम, शुभ रत्नावली सरोज दाम । —तुलसी०, पृ० २७ ।

प्राणसंदेह—संज्ञा पुं० [सं० प्राणसन्देह] जीवन की आशंका । वह अवस्था जिसमें जान जाने का डर हो ।

प्राणसंन्यास—संज्ञा पुं० [सं० प्राणसंन्यास] मृत्यु । मौत ।

प्राणसंभूत—संज्ञा पुं० [सं० प्राणसम्भूत] वायु । हवा ।

प्राणसभृत्—संज्ञा पुं० [सं० प्राणसम्भृत] वायु ।

प्राणसंयम—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम ।

प्राणसंवाद—संज्ञा पुं० [सं०] उपनिषद् का वह प्रकरण जिसमें श्रेष्ठता दिखाने के लिये प्राण का ग्यारह इंद्रियों के साथ विवाद कराया गया है और अंत में सबसे प्राण की श्रेष्ठता स्वीकार कराई गई है ।

प्राणसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन की आशंका । प्राणसंकट । २. मरणासन्नता ।

प्राणसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदों के पढ़ने का एक क्रम ।

विशेष—इसमें एक साँस में जहाँतक अधिक हो सके पाठ किया जाता है ।

प्राणसद्म—संज्ञा पुं० [सं० प्राणसद्मन्] शरीर । देह [को०] ।

प्राणसम—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्राणसमा] १. वह जो प्राण के समान प्रिय हो । २. पति [को०] ।

प्राणसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल । शक्ति । ताकत । २. वह जिसमें बहुत बल हो । बलिष्ठ । ताकतवर ।

प्राणसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनसूत्र ।

प्राणहंता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० प्राणहन्तृ] प्राणघातक । घातक प्राण लेनेवाला ।

प्राणहर[1]—वि०[सं०] १. मारक । नाशक । घातक । प्राण लेनेवाला । २. बलनाशक । शक्ति नष्ट करनेवाला ।

प्राणहर[2]—संज्ञा पुं० विष आदि जिससे प्राण निकल जाते हों ।

प्राणहारक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वत्सनाभ ।

प्राणहारक[2]—वि० प्राण लेनेवाला । प्राणनाशक ।

प्राणहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अवस्था जिसमें प्राणों पर संकट हो । जान जोखिम ।

प्राणहारी—संज्ञा पुं० [सं० प्राणहारिन्] [स्त्री० प्राणहारिणी] प्राण लेनेवाला । प्राणनाशक ।

प्राणांत—संज्ञा पुं० [सं० प्राणान्त] मरण । प्राणनाश । मृत्यु ।

प्राणांतक—वि०, संज्ञा पुं० [सं० प्राणान्तक] प्राण लेनेवाला । जान लेनेवाला । घातक । जैसे, प्राणांतक कष्ट होना ।

प्राणांतिक[1]—वि० [सं० प्राणान्तिक] १. घातक । प्राण लेनेवाला । जीवन के अंत तक रहनेवाला । जीवन पर्यंत रहनेवाला । ३. खतरनाक (को०) ।

प्राणांतिक—संज्ञा पुं० वध । हत्या [को०] ।

प्राणाग्निहोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन के समय पहले पाँच ग्रास निकालकर एक एक ग्रास को 'प्राणाय स्वाहा', 'अपानाय स्वाहा', 'व्यानाय स्वाहा', 'उदानाय स्वाहा' और 'समानाय स्वाहा' इस प्रकार एक एक मंत्र पढ़कर खाने की क्रिया ।

प्राणाघात—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीड़ा । कष्ट । २. हिंसा । हत्या । मार डालना ।

प्राणाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजचिकित्सक [को०] ।

प्राणातिपात—संज्ञा पुं० [सं०] जीवहिंसा । जान से मार डालना ।

प्राणातिपात विरमण—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मतानुसार अहिंसा व्रत ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है—द्रव्य प्राणातिपात विरमण और भाव प्राणातिपात विरमण । इस व्रत के पाँच अतिचार हैं, । वध, बंध, छेदविच्छेद अतिभारारोपण और भोगव्यवच्छेद ।

प्राणात्मा—संज्ञा पुं० [सं० प्राणात्मन्] प्राण । लिंगात्मा । जीवात्मा ।

प्राणात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणनाश । मृत्यु । २. मृत्युकाल । मरने का समय । ३. प्राण जाने का डर । जान जोखिम (को०) ।

प्राणाद—वि० [सं०] प्राणनाशक ।

प्राणाधार[1]—वि० [सं०] अत्यंत प्रिय । प्यारा ।

प्राणाधार[2]—संज्ञा पुं० १. प्रेमपात्र । २. पति । स्वामी । ३. जीवन का आधार । जीवन का सहारा । उ०—जन्म जन्मों की मेरी साध, पूरा हो मेरी प्राणाधार । जीवन का सहारा । —मधुज्वाल, पृ० ७४ ।

प्राणाधिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्राणाधिका] १. प्राणों से अधिक प्रिय । बहुत प्यारा । २. अत्यधिक शक्तियुक्त (को०) ।

प्राणाधिक[2]—संज्ञा पुं० पति । स्वामी ।

प्राणाधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] पति । स्वामी ।

प्राणाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणों के अधिष्ठाता देवता । आत्मन् ।

प्राणापहारकता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राण + अपहारक + ता (प्रत्य०)] किसी के प्राण ले लेने का भाव । उ०—वक्ता के उक्त शब्द प्रयोग द्वारा अनंतादेवी की क्रूरता, दुष्टता, निर्ममता एवं प्राणापहारकता आदि का आभास मिलता है ।—शैली, पृ० १७५ ।

प्राणापान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राण और अपान वायु । २. अश्विनीकुमार ।

प्राणाबाध—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणसंशय ।

प्राणायतन—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणों के निकलने का प्रधान स्थान या मार्ग ।

विशेष—याज्ञवल्क्य संहिता में दोनों कान, नाक के दोनों छेद, दोनों आँखें, गुदा, लिंग और मुख के द्वार ये प्राण निकलने के नौ प्रधान मार्ग गिनाए गए हैं । इन्हीं मार्गों से प्राणियों के शरीर से मृत्यु के समय प्राण निकलते हैं ।

प्राणायन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञानेंद्रिय [को०] ।

प्राणायाम—संज्ञा पुं० [सं०] योग शास्त्रानुसार योग के आठ अंगों में चौथा ।

विशेष—श्वास और प्रश्वास की गति के विच्छेद को पतंजलि दर्शन में प्राणायाम माना है । बाहर की वायु को भीतर ले जाना श्वास और भीतर की वायु को बाहर फेंकना प्रश्वास है । इन दोनों प्रकार की वायुओं की गतियों को प्रयत्नपूर्वक धीरे धीरे कम करने का नाम प्राणायाम है । इसकी तीन वृत्तियाँ मानी गई हैं—बाह्य, आभ्यंतर और स्तंभ । इन्हीं तीनों को रेचक, पूरक और कुंभक भी कहते हैं । भीतर की वायु को बाहर फेंकना रेचक, बाहर की वायु को भीतर ले जाना पूरक और भीतर खींची हुई वायु को उदरादि में भरना कुंभक कहलाता है । इसके अतिरिक्त एक और वृत्ति है जिसे बाह्याभ्यंतर विषयाक्षेपी कहते हैं । इसमें श्वास प्रश्वास की बाह्य और आभ्यंतर दोनों वृत्तियों का निरोध करके उसे रोक देते हैं । इन चारों वृत्तियों के देश काल और संख्या के भेद से दीर्घ और सूक्ष्म नामक दो दो भेद होते हैं । योग शास्त्र में प्राणायाम की बड़ी महिमा है । पतंजलि ने इसका फल यह माना है कि इससे प्रकाश का आवरण क्षीण होता है और धारणा में, जो योग का छठा अंग है, योग्यता होती है । प्राण के निरोध से चित्त की चंचलता निवृत्त होती है और फिर योगी को प्रत्याहार सुगम होता है । योगाभ्यास के लिये यह प्रधान कर्म माना गया है । इसके अतिरिक्त प्राणायाम संध्या का एक अंग है । शास्त्रों में इसे सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ तप माना है और कहा गया है कि प्राणायाम करने से सब प्रकार के पाप नष्ट होते हैं ।

प्राणायामी—वि० [सं० प्राणायामिन्] प्राणायाम करनेवाला । जो प्राणायाम करे ।

प्राणाय्य—वि० [सं०] योग्य । उपयुक्त ।

प्राणावरोध—संज्ञा पुं० [सं०] प्राण का अवरोध होना । श्वास का रुकना ।

प्राणासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रानुसार एक प्रकार का आसन ।

प्राणाहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वे पाँच ग्रास जो भोजन के पूर्व 'प्राणाय स्वाहा', 'अपानाय स्वाहा', 'व्यानाय स्वाहा', 'समानाय स्वाहा' और 'उदानाय स्वाहा' मंत्र से खाए जाते हैं । इसे प्राणाग्निहोत्र भी कहते हैं ।

प्राणि—संज्ञा पुं० [सं० प्राणिन्, प्राणी] 'प्राणी' ।

प्राणिक—वि० [सं० प्राण + इक (प्रत्य०)] प्राण संबंधी । प्राणों की । उ०—मौखिक आग नहीं यह, कायिक आग नहीं यह प्राणिक आग नहीं, न मानसिक आग रही यह ।—अतिमा, पृ० ८१ ।

प्राणिजात—संज्ञा पुं० [सं०] पशु वर्ग । जीव जगत् [को०] ।

प्राणित—वि० [सं०] जो जीवित रखा गया हो । जिसमें प्राण संचार किया गया हो [को०] ।

प्राणिद्यूत—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार वह बाजी जो भेड़े, तीतर, घोड़े आदि जीवों की लड़ाई या दौड़ आदि पर लगाई जाय ।

पर्या०—समाह्वय । साह्व ।

प्राणिपीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राणिपीडा] पशुओं को सताना [को०] ।

प्राणिमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राणिमातृ] गर्भदात्री नाम का क्षुप ।

प्राणियोधन—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं को लड़ाना [को०] ।

प्राणिवध—संज्ञा पुं० [सं०] जीवहिंसा ।

प्राणिहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशुओं को चोट पहुँचाना या मारना [को०] ।

प्राणिहिता—संज्ञा पुं० [सं०] १. पादुका । खड़ाऊँ । २. जूता ।

प्राणी[1]—वि० [सं० प्राणिन्] प्राणधारी । जिसमें प्राण हों ।

प्राणी[2]—संज्ञा पुं० १. जंतु । जीव । २. मनुष्य । ३. व्यक्ति । जैसे, तुम्हारे घर में कितने प्राणी हैं ?

प्राणी[3]—संज्ञा स्त्री० पुं० पुरुष या स्त्री ।

मुहा०—दोनों प्राणी=दंपति । स्त्री पुरुष ।

विशेष—किसी किसी प्रांत में पुरुष अपनी स्त्री के लिये और स्त्री अपने पति के लिये 'प्राणी' शब्द का व्यवहार करते हैं ।

प्राणीत्य—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ज । ऋण [को०] ।

प्राणेश—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्राणेशा] १. पति । स्वामी । २. प्यारा । प्रेमी व्यक्ति । ३. वायु (को०) ।

प्राणेशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पत्नी । २. प्रिया ।

प्राणेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्राणेश्वरी] १. पति । स्वामी । २. प्रेमी व्यक्ति । बहुत प्यारा । ३. वायु (को०) ।

प्राणेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पत्नी । २. प्रिया ।

प्राणोत्क्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्राणोत्सर्ग' ।

प्राणोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] प्राण जाना । मृत्यु [को०] ।

प्राणोद्बोधन—संज्ञा पुं० [सं० प्राण + उद्बोधन] प्राणों को उद्बुद्ध करना या प्रेरणा देना । उ०—यह जमाना राष्ट्र के लिये प्राणोद्बोधन का था । —सुनीता, पृ० २१ ।

प्राणोपहार—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन । आहार । खाना ।

प्रातः[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रातर्] सवेरा । प्रभात । तड़का ।

प्रातः[2]—अव्य० सवेरे । तड़के । प्रभात के समय [को०] ।

प्रातःकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जो प्रातःकाल किया जाता हो। सबेरे किए जानेवाले कृत्य। जैसे, शौच, स्नान, संध्योपासन आदि।

प्रातःकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रात के अंत में सूर्योदय के पूर्व का काल। यह तीन मुहूर्त का माना गया है।

विशेष—जिस समय सूर्य उदय होने को होता है, उससे डेढ़ दो घंटा पहले पूर्व दिशा में कुछ प्रकाश दिखाई पड़ने लगता है और ऊपर के नक्षत्रों का रंग फीका पड़ना प्रारंभ होता है। तभी से इस काल का आरंभ माना जाता है।

२. सबेरे का समय। सूर्योदय के कुछ देर बाद तक का समय।

प्रातःकार्य—संज्ञा पुं० [सं० प्रातःकार्य्य] वह काम जिसे प्रातःकाल करने का विधान है। प्रातःकृत्य। जैसे, शौच, स्नान, संध्योपासन आदि।

प्रातःकालिक—वि० [सं०] प्रातःकाल संबंधी। प्रातःकाल का (को०)।

प्रातःकालीन—वि० [सं०] प्रातःकाल संबंधी। प्रातःकाल का।

प्रातःकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रातःकार्य'।

प्रातःसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह संध्या जो प्रातःकाल में की जाय। २. रात्रि का अंतिम और दिन का प्रारंभिक दंड।

प्रातःसवन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रधान सवनों या सोमयागों में से पहला सवन।

प्रातःस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्नान जो प्रातःकाल में किया जाय। सबेरे का स्नान।

प्रातःस्नायी—वि० [सं० प्रातःस्नायिन्] जो प्रातःकाल स्नान करता हो। सबेरे नहानेवाला।

प्रातःस्मरण—संज्ञा [सं०] प्रातःकाल के समय ईश्वर, देवतादि के नामों का स्मरण या जप आदि करने की क्रिया या भाव। सबेरे के समय ईश्वर का भजन करना।

प्रातःस्मरणीय—वि० [सं०] जो प्रातःकाल स्मरण करने के योग्य हो। श्रेष्ठ। पूज्य।

प्रात[1]—अव्य० [सं० प्रातः] सबेरे। तड़के। प्रभात के समय। उ०—(क) एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृण पात। कहहिं गँवाइय छिनकु श्रम, गवनब अबहिं कि प्रात।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बनमाली दिसि सैन कै ग्वाली चाली बात। चाली जमुना जाउँगी काली पूजन प्रात।—शृं० स० (शब्द०)।

प्रात[2]—संज्ञा पुं० सबेरा। प्रातःकाल। सूर्योदय के पूर्व का काल। उ०—(क) प्रात भए सब भूप, बनि बनि मंडप में गए। जहाँ रूप अनुरूप, ठौर ठौर सब सोभिजै।—केशव (शब्द०)। (ख) साँझ भए जाय नयन ठौरहि ठहँ सोवति। करत दुःख की हानि प्रात लौं रोवति रोवति।—श्रीधर (शब्द०)।

प्रातकृत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रातःकृत्य] दे० 'प्रातःकार्य'। उ०—प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथ राजु दीख प्रभु जाई। मानस, २।१०५।

प्रातक्रिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रातःक्रिया] दे० 'प्रातकर्म'। उ०—प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ।—मानस, २।३५८।

प्रातनाथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रातः + नाथ] सूर्य। उ०—सूर छिप्यो पश्चिम प्रकाश्यो शशि प्राची दिशि, चकवाक बिछुरे चकोर सुख पायो है। कुमुदिनी फूली कुंद मूँदे भौंर बाँधे बीच, प्रातनाथ बूड़ो मानों कालकूट खायो है। आधी राति बीती सब सोए जिय जान आन, राक्षसी प्रभंजनी प्रभाव सो जनायो है। बीजु्री सी फुरी भाँति छुरी हाथ छुरी लोह छुरी ढीठ जुरी देखि प्रनद लजायो है।—हनुमान (शब्द०)।

प्रातमाघ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रातः + माघ] माघ मास का प्रभात। उ०—बिहसित नगर मन प्रसन्न साथ। सिर द्रवत उदक जिम प्रातमाघ।—पृ० रा०, ११५०१।

प्रातर्[1]—अव्य० [सं०] प्रभात। सबेरे।

प्रातर्[2]—संज्ञा पुं० पुष्पार्ण और प्रभा के पुत्र, एक देवता का नाम।

प्रातर—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

प्रातरनुवाक—संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के अंतर्गत वह अनुवाक् जो प्रातःसवन नामक कर्म में पढ़ा जाता है।

प्रातरभिवादन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातःकाल का प्रणाम। वह अभिवादन जो प्रातःकाल सोकर उठने के समय किया जाय।

प्रातरशन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रातराश' (को०)।

प्रातरह्न—संज्ञा पुं० [सं०] दोपहर के पहले का समय। पूर्वाह्न।

प्रातराश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातः का हलका भोजन। जलपान। कलेवा। उ०—खाने के कमरे में जा आलो की प्रतीक्षा किए बिना प्रातराश करना आरंभ कर दिया।—ज्ञानदान, पृ० १७३।

प्रातराहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आहुति जो प्रातःकाल दी जाय। अग्निहोत्र का द्वितीयांश।

प्रातर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतर्दन के गोत्र में उत्पन्न पुरुष। प्रतर्दन का अपत्य।

प्रातर्भोक्ता—संज्ञा पुं० [सं० प्रातर्भोक्तृ] कौआ।

प्रातश्चंद्रद्युति—वि० [सं० प्रातश्चन्द्रद्युति] निष्प्रभ। मलिन। निस्तेज (को०)।

प्रातस्तन, प्रातस्त्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रातस्तनी] प्रातःकाल से संबंधित। प्रातःकाल का (को०)।

प्रातस्तिवर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

प्रातस्सवन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रातःसवन' (को०)।

प्राति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अँगूठे और तर्जनी के बीच का स्थान। पितृ तीर्थ। २. भरना। पूर्ति (को०)।

प्रातिकंठिक—वि० [सं० प्रातिकण्ठिक] गला पकड़नेवाला।

प्रातिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा या जपा का पेड़।

प्रातिकामी—संज्ञा पुं० [सं० प्रातिकामिन्] १. सेवक नौकर। २. दुर्योधन के एक दूत का नाम।

प्रातिकूलिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रातिकूलिकी] [संज्ञा प्रातिकूलिकता] विरुद्ध। विपरीत (को०)।

प्रातिकूल्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिकूल होने का भाव (को०)।

प्रातिजनीन—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रातिजनीनी] १. शत्रु के विरुद्ध उपयुक्त। २. प्रत्येक के लिये उपयुक्त। सार्वजनीन [को०]।

प्रातिदैवसिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रातिदैवसिकी] प्रतिदिन होनेवाला [को०]।

प्रातिनिधिक[१]—वि० [सं० प्रतिनिधि] प्रतिनिधित्व से युक्त। जैसे,—प्रातिनिधिक संस्था।

प्रातिनिधिक[२]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिनिधि [को०]।

प्रातिपक्ष—वि० [सं०] १. विपरीत। विरुद्ध। शत्रु संबंधी। शत्रु का। शात्रव [को०]।

प्रातिपक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुता। दुश्मनी [को०]।

प्रातिपथिक—संज्ञा पुं० [सं०] राहगीर। यात्री [को०]।

प्रातिपद—वि० [सं०] १. प्रारंभिक। आरंभ का। २. प्रतिपदा से संबंधित [को०]।

प्रातिपदिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. संस्कृत व्याकरण के अनुसार वह अर्थवान् शब्द जो धातु न हो और न उसकी सिद्धि विभक्ति लगने से हुई हो। जैसे, पेड़, अच्छा आदि।

विशेष—प्रातिपदिक के अंतर्गत ऐसे नाम, सर्वनाम, तद्धितांत कृदंत और समासांत पद आते हैं जिनमें कारक की विभक्तियाँ न लगाई गई हों। व्याकरण में उनकी 'प्रातिपदिक' संज्ञा केवल विभक्तियों को लगाकर उनसे सिद्ध पद बनाने के लिये की गई है।

प्रातिपीय—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम। २. एक ऋषि का नाम जो गोत्रप्रवर्तक थे।

प्रातिपेय—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

प्रातिभ[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार उन पाँच प्रकार के उपसर्गों या विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न जो योगियों के योग में हुआ करता है।

विशेष—यह विघ्न प्रतिभा के कारण हुआ करता है और इसमें योगी के मन में सब वेदों और शास्त्रों आदि के अर्थ और अनेक प्रकार की विद्याओं तथा कलाओं आदि का ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है।

२. वह जिसमें प्रतिभा हो। प्रतिभाशाली।

प्रातिभ[२]—वि० १. प्रतिभा से संबंधित। प्रतिभा का। २. बौद्धिक। मानसिक। ३ प्रतिभायुक्त [को०]।

प्रातिभाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिभू का भाव। जमानत। जामिनी। २. वह धन जो प्रतिभू या जामिन को देना पड़े।

प्रातिभाव्य ऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो किसी की जमानत पर लिया गया हो।

प्रातिभासिक—वि० [सं०] १. प्रतिभास संबंधी। अनुरूपक। २. जो वास्तव में न हो पर भ्रम के कारण भासित हो। जैसे, रज्जु में सर्प का ज्ञान प्रातिभासिक है। ३. जो व्यावहारिक न हो।

प्रातिरूपिक—वि० [सं०] समान रूप का। नकली। बिनावटी [को०]।

प्रातिलोमिक—वि० [सं०] १. आनुलोमिक का उलटा। प्रतिलोम से उत्पन्न। २. विरक्त। विरुद्ध। ३. अप्रीतिकर। जो अच्छा न जान पड़े।

प्रातिलोम्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिलोम का भाव। २. विरुद्धता। ३. प्रतिकूलता।

प्रातिवेशिक—संज्ञा पुं० [सं०] पड़ोसी। प्रतिवेशी।

प्रातिवेश्मक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रातिवेश्मिकी] पड़ोसी।

प्रातिवेश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पड़ोस। २. पड़ोसी। ३. वह पड़ोसी जिसका द्वार अपने द्वार के ठीक सामने हो। आनुवेश्य का उलटा।

प्रातिवेश्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पड़ोसी।

प्रातिशाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह ग्रंथ जिसमें वेदों की किसी शाखा के स्वर, पद, संहिता, संयुक्त वर्ण इत्यादि के उच्चारण आदि का निर्णय किया गया हो।

विशेष—वेदों की प्रत्येक शाखा की संहिताओं पर एक एक प्रातिशाख्य थे और उनके कर्ताओं के मत का उल्लेख यथास्थान मिलता है। पर आजकल इस विषय के केवल पाँच छह ग्रंथ मिलते हैं।

प्रातिसीम—संज्ञा पुं० [सं०] पड़ोसी। प्रतिवेशी [को०]।

प्रातिस्विक—वि० [सं०] १. अपना। निज का। २. अपना अपना। प्रत्येक का। यथाक्रम पृथक् पृथक्। ३. जिसमें कुछ असाधारणता हो।

प्रातिहंत्र—संज्ञा पुं० [सं० प्रातिहन्त्र] प्रतीकार। बदला। प्रतिशोध [को०]।

प्रातिहत—संज्ञा पुं० [सं०] स्वरित।

प्रातिहर्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिहर्ता का कर्म। प्रतिहर्ता का भाव। प्रतिहर्तापन।

प्रातिहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाग का खेल करनेवाला। मायावी। जादूगर। २. द्वारपाल। प्रतिहार।

प्रातिहारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रातिहार' [को०]।

प्रातिहारिक[१]—वि० [सं०] प्रतिहार संबंधी।

प्रातिहारिक[२]—संज्ञा पुं० १. द्वारपाल। २. लाग का खेल करनेवाला। जादूगर। मायावी।

प्रातिहार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्वारपाल का काम। २. माया। लाग। इंद्रजाल।

प्रातीतिक—वि० [सं०] १. जिसकी प्रतीति केवल चिंता या कल्पना के द्वारा मन में होती हो। जो केवल कल्पना और चिंतन से भासमान होता हो। प्रातिभासिक। २. जिसकी प्रतीति स्वयं किसी को हो।

प्रातीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतीप का अपत्य। २. प्रतीप के पुत्र शांतनु नरेश।

प्रातीपक—वि० [सं०] १. प्रतिकूल आचरण करनेवाला। विरुद्धाचारी। २. विपरीत। उलटा।

प्रातृद—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

प्रात्यंतिक—संज्ञा पुं० [सं० प्रात्यन्तिक] १. वह राज्य जो सीमाप्रांत में हो। ऐसा राज्य जो दो राज्यों की सीमा के मध्य में हो। २. सीमा की रक्षा के लिये नियुक्त पुरुष।

प्रात्यक्ष—वि० [सं०] प्रत्यक्ष संबंधी।

प्रात्यप्रथि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिपथ के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

प्रात्ययिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मिताक्षरा के अनुसार तीन प्रकार के प्रतिभू में से दूसरा। वह जो किसी की पहचान करके उसका प्रतिभू बने।

प्रात्ययिक[2]—वि० विश्वासदायक। विश्वस्त [को०]।

प्रात्यह्निक—वि० [सं०] दैनिक। प्रतिदिन का।

प्राथमकल्पिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह विद्यार्थी जिसने अभी वेदाध्ययन प्रारंभ ही किया हो। २. वह योगी जिसने अभी योगाभ्यास शुरू किया हो [को०]।

प्राथमिक—वि० [सं०] १. पहले का। जो पहले उत्पन्न हुआ हो। २. प्रारंभिक। आदिम। ३. जो पहली बार हुआ हो (को०)।

प्राथम्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम का भाव। प्रथमता। पहलापन।

प्रादक्षिण्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रदक्षिण संबंधी।

प्रादानिक—वि० [सं०] जो दान करने के योग्य हो।

प्रादीपिक—संज्ञा पुं० [सं०] घर या खेत आदि में आग लगानेवाला।

विशेष—कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार जो लोग इस अपराध में पकड़े जाते थे, उनको जीते जी जलाने का दंड दिया जाता था।

प्रादुराक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्र प्रवरकार एक ऋषि का नाम।

प्रादुर्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. आविर्भाव। प्रकट होना। अस्तित्व में आना। तिरोभाव का उलटा। २. विकास। ३. उत्पत्ति। ४. देवताओं का आविर्भाव होना (को०)।

प्रादुर्भूत—वि० [सं०] १. आविर्भूत। प्रकटित। जिसका प्रादुर्भाव हुआ हो। २. विकसित। निकला हुआ। ३. उत्पन्न।

प्रादुर्भूतमनोभवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार मध्या के चार भेदों में एक।

विशेष—इसके मन में काम का पूरा प्रादुर्भाव होता है और कामकला के समस्त चिह्न प्रकट होते हैं। जैसे,—आजु मैं देखि है गोपसुता इक होइ न ऐसि अहीर की जाई। देखति ही रहिए दुति देह की देखतै औरन देखि सुहाई। एकहि अंक बिलोकनि ऊपर वारौ बिलोक बिलोक निकाई। केसवदास कलानिधि सो वह बूझिहै काम कि मेरो कन्हाई।

प्रादुष्करण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी अप्रकट वस्तु को प्रकट करने का भाव। प्रदर्शन। उत्पादन। प्रकटीकरण। २. दृष्टिगोचरकरण। दिखलाना।

प्रादुष्कृत—वि० [सं०] १. जिसका प्रादुष्करण हुआ हो। जो प्रकट किया गया हो। २. प्रदर्शित। जो दिखलाया गया हो।

प्रादुष्कृत्य—वि० [सं०] १. उत्पाद्य। २. प्रकट करने योग्य। जो दिखलाने के योग्य हो।

प्रादुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रादुर्भाव।

प्रादेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अँगूठे से प्रारंभ कर तर्जनी तक की लंबाई का एक मान।

विशेष—यह अँगूठे की नोक से लेकर तर्जनी की नोक तक का होता था और नापने के काम आता था।

२. तर्जनी और अँगूठे के बीच का भाग। ३. प्रदेश। स्थान।

प्रादेशन—संज्ञा पुं० [सं०] दान। भेंट [को०]।

प्रादेशिक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० प्रादेशिकी] १. प्रदेश संबंधी। किसी एक प्रदेश का। प्रांतिक। २. प्रसंगगत। प्रसंगानुसार। विषयानुसार। ३. सीमित स्थानगत (को०)।

प्रादेशिक[2]—संज्ञा पुं० १. सामंत। जमींदार या सरदार आदि। २. सूबेदार।

प्रादेशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्जनी।

प्रादेशी—वि० [सं० प्रादेशिन्] प्रादेश मात्र लंबा। बित्ते भर का। जिसकी लंबाई एक बित्ता हो [को०]।

प्रादोष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रादोषी] प्रदोष संबंधी। प्रदोष का। प्रदोष से संबंध रखनेवाला।

प्रादोषिक—वि० [सं०] [स्त्री० प्रादोषिकी] प्रदोष का [को०]।

प्राधनिक[1]—वि० [सं०] लड़ाका। योद्धा।

प्राधनिक[2]—संज्ञा पुं० युद्ध का उपकरण। लड़ाई का सामान।

प्राधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कश्यप की एक स्त्री और दक्ष की एक कन्या का नाम।

विशेष—पुराणों में इसे गंधर्वों और अप्सराओं की माता बतलाया गया है।

प्राधानिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्राधानिकी] १. प्रधान। श्रेष्ठ। २. प्रधान संबंधी। ३. मूल प्रकृति से संबद्ध।

प्राधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रधानता। श्रेष्ठता। २. मुख्यता। ३. मूल प्रकृति। मूल कारण। निदान।

प्राधिकरण—संज्ञा पुं० [सं० प्र (उप०) + अधिकरण] विशेष अधिकारप्राप्त व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह।

प्राधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० प्र (उप०) + अधिकारी] सत्ताप्राप्त व्यक्ति। विशेष अधिकारी। (अं० अथारिटी)।

प्राधिकृत—वि० [सं० प्र (उप०) + अधिकृत] अधिकारपूर्ण। साधिकार। उ०—राज्य विधान सभा द्वारा पारित किए जानेवाले विधेयक और अन्य बातें राज्य की भाषा में ही हों किंतु उनके साथ ही प्राधिकृत और प्रामाणिक अनुवाद भी रहें।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ७३।

प्राधीत—वि० [सं०] जिसने काफी अध्ययन किया हो। पूर्ण शिक्षित। अत्यंत शिक्षित [को०]।

प्राधीन†—वि० [सं० पराधीन] दे० 'पराधीन'। उ०—हे प्रभु मेरे बंदी छोरा। हौं प्राधीन दास मैं तोरा।—कबीर सा०, पृ० ८१।

प्राध्ययन—वि० [सं०] अध्ययन। पढ़ना [को०]।

प्राध्यापक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रधान अध्यापक। वरिष्ठ अध्यापक। (अं० प्रोफेसर)।

प्राध्व¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. लंबी राह। बहुत बड़ा रास्ता। २. जिस वस्तु पर सवार होकर लोग लंबी यात्रा करें। सवारी। ३. पहर। ४. विनय। ५. बंध। ६. परिहास। क्रीड़ा (को०)।

प्राध्व²—वि० १. दूर का। लंबा। २. झुका हुआ। प्रवृत्त। ३. बँधा हुआ। बद्ध। ४. अनुकूल। ५. यात्रा पर गया हुआ [को०]।

प्राध्वन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सड़क। २. नदी का गर्भ।

प्राध्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष की शाखा। पेड़ की डाल।

प्रान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्राण] दे० 'प्राण'। उ०—जय जय दशरथ कुल कमल भान। जय कुमुद जनन शशि प्रजा प्रान।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—प्रान तजना = मरना। उ०—प्रिय बिछुरन को दुसह दुख हरखि जात प्योसार। दुरजोधन लौं देखियत तजत प्रान इहि बार।—बिहारी (शब्द०)। प्रान नहों में समाना = आशंकित होना। भयभीत होना। जैसे,—जब से इसे खबर है मेरे प्रान नहों में समाए हुए हैं।—मान०, भा० ५, पृ० ६। प्रान रखना = जिलाना। जीवन देना। उ०—अबला करौं तन राखी प्राना। सुनि हँसि बोलेउ कृपानिधाना।—तुलसी (शब्द०)। प्रान सा पाना = सजीव होना। उत्साहित होना। उ०—नंद महर घर जब सुत जायो। सुनतहि सबन प्रान सो पायो।—नंद० ग्रं०, पृ० २३३।

विशेष—अन्य मुहावरे तथा अर्थों के लिये दे० 'प्राण' शब्द।

प्रानअधार(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्राण + आधार] वह जो प्राण के समान प्यारा हो। बहुत प्रिय व्यक्ति। उ०—बारिहु चक फिरौं मैं खोजत दंड नाहि थिर बार। होइकै भस्म पवन सँग धाओ जहाँ प्रान अधार।—जायसी (शब्द०)।

प्राननाथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्राणनाथ] दे० 'प्राणनाथ—१'। उ०—भावे सो करो तो उदास भाव प्राननाथ, साथ लै चलो कैसे लोक लाज बहिनो।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४५८।

प्रानपियारा(पु)—वि० [सं० प्राणप्रिय] दे० 'प्राणप्यारा'। उ०—प्रानपियारो चल्यों जब तै, तबतै कछु और ही रीति निहारी। पीरी जनावति अंगन मैं, कहि पीर जनावत काहे न प्यारी।—मति० ग्रं०, पृ० २९५।

प्रानप्रिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राणप्रिया] अत्यंत प्यारी। प्राणप्यारी। उ०—प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी।—मानस, २।२५।

प्रानराम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्राण + राम] प्राण। उ०—प्रानराम जब निकसन लागे उलट गई दूनों नैन पुतरिया।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३।

प्रानायाम(पु) संज्ञा पुं० [सं० प्राणायाम] दे० 'प्राणायाम'। उ०—प्रानायाम साधे सुद्ध प्रान होयँ ताके मरे, बावरे भए रे प्रान प्राननाथ साथ ही।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११०।

प्रानी—संज्ञा पुं० [सं० प्राणी] दे० 'प्राणी'।

प्रानेस(पु) संज्ञा पुं० [सं० प्राणेश] पति। स्वामी। उ०—बामा भामा कामिनी कहि बोलो प्रानेस। प्यारी कहत खिसात नहिं पावस चलत बिदेस।—बिहारी (शब्द०)।

प्रानेसुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्राणेश्वर] दे० 'प्राणेश्वर'। उ०—ब्रजबन रस सबही तें न्यारो। मुरलीधर प्रानेसुर प्यारो।—घनानंद, पृ० २२७।

प्राप—वि० [सं०] जिस तक पहुँचा जा सके। प्राप्य [को०]

प्रापक—वि० [सं०] १. प्राप्ति संबंधी। २. पानेवाला। जो पाने योग्य हो। ३. प्राप्त होनेवाला। ४. प्राप्त करनेवाला।

प्रापण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रापणीय, प्राप्य, प्राप्त] १. प्राप्ति। मिलना। २. प्रेरण। ३. ले आना। ४. संदर्भ। हवाला (को०)।

प्रापणिक—संज्ञा पुं० [सं०] सौदा या माल बेचनेवाला।

प्रापणीय—वि० [सं०] १. जो मिलने योग्य हो। प्राप्य। २. पहुँचाने या ले जाने लायक।

प्रापत(पु)—वि० [सं० प्राप्त] दे० 'प्राप्त—१'। उ०—कौनहु भाँत जोग करि कोई। तुव पद पंकज प्रापत होई।—नंद० ग्रं०, पृ० २२६।

प्रापति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्राप्ति] दे० 'प्राप्ति'। उ०—सुदृढ़ प्रेम भक्ति प्रापति करै। इक बिरोध इहि बिधि बिस्तरै।—नंद० ग्रं०, पृ० २१७।

प्रापत्त(पु)—वि० [सं० प्राप्त] दे० 'प्राप्त—४'। उ०—कीअंत अमुन सुंदरि बिसाल। प्रापत्त बट्ट सत बरष बाल।—पृ० रा०, २।३६७।

प्रापना(पु)†—क्रि० स० [सं० प्रापण] प्राप्त होना। मिलना।

प्रापित—वि० [सं०] १. जो ले आया गया हो। २. जिसे प्राप्त कराया गया हो। ३. प्राप्त। पाया हुआ [को०]।

प्रापी—वि० [सं० प्रापिन्] १. प्राप्त करनेवाला। जिसे कुछ मिले। २. पहुँचनेवाला (समासांत में)।

प्राप्त—वि० [सं०] १. लब्ध। प्रत्यापित। २. उत्पन्न। ३. समुपस्थित। उ०—भरत, अपराधी भरत, है प्राप्त।—साकेत, पृ० १८६। ४. पाया हुआ। जो मिला हो। ५. जड़ा हुआ। भोगा हुआ (को०)। ६. पूर्व किया हुआ (को०)। ७. उचित। ठीक (को०)।

प्राप्तकारी—वि० [सं० प्राप्तकारिन्] उचित कार्य करनेवाला [को०]।

प्राप्तकाल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोई काम करने योग्य समय। २. उपयुक्त काल। उचित समय। ३. मरण योग्य काल। ४. वर्तमान समय। वह समय जो चल रहा हो। उ०—अतीत काल की वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति जो हमारा रागात्मक भाव होता है, वह प्राप्तकाल की वस्तुओं और

व्यक्तियों के प्रति हमारे भावों को तीव्र भी करता है और उनका ठीक ठीक अवस्थान भी करता है।—रस०, पृ० १४१।

प्राप्तकाल²—वि० समयप्राप्त। जिसका काल आ गया हो।

प्राप्तजीवन—वि० [सं०] जो रोग आदि के कारण मरते मरते बचा हो। जिसको नई जिंदगी हुई हो।

प्राप्तदोष—वि० [सं०] जिसने कोई दोष या अपराध किया हो। दोषी।

प्राप्तपंचत्व—वि० [सं० प्राप्त पञ्चत्व] जो पंचत्व प्राप्त कर चुका हो। मरा हुआ। मृत।

प्राप्तप्रसवा—वि० स्त्री० [सं०] (स्त्री) जो बच्चा जनने को हो। आसन्नप्रसवा [को०]।

प्राप्तबीज—वि० [सं०] जो बोया हुआ हो [को०]।

प्राप्तबुद्धि—वि० [सं०] १. चतुर। बुद्धिमान्। २. जो बेहोश होने के बाद फिर होश में आया हो।

प्राप्तभार—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बोझ ढोता हो (पशु आदि)।

प्राप्तभाव¹—वि० [सं०] १. बुद्धिमान। होशियार। २. सुंदर [को०]।

प्राप्तभाव²—संज्ञा पुं० जवान बैल [को०]।

प्राप्तमनोरथ—वि० [सं०] जिसने अपना लक्ष्य या ईप्सित प्राप्त कर लिया हो [को०]।

प्राप्तयौवन—वि० [सं०] जिसका यौवनकाल आ गया हो। जवान।

प्राप्तरूप—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. विद्वान्। पंडित। २. रूपवान्। सुंदर। ३. मनोहर। आकर्षक (को०)। ४. ठीक। उपयुक्त (को०)।

प्राप्तर्तु—वि० स्त्री० [सं० प्राप्त+ऋतु] वह कन्या जो ऋतुमती हो चुकी हो [को०]।

प्राप्तवर—वि० [सं०] जिसे वर प्राप्त हो चुका हो। जिसे वरदान मिल चुका हो। उ०—प्रवसन्न भी हूँ प्रसन्न मैं प्राप्तवर, प्राप्त सब द्वार पर।—अपरा, पृ० २५।

प्राप्तव्य—वि० [सं०] जो मिलने को हो। मिलनेवाला। प्राप्य।

प्राप्तव्यवहार—वि० [सं०] जो अपना कार्य सम्हालने के योग्य हो गया हो। बालिग [को०]।

प्राप्तार्थ¹—वि० [सं०] सफल [को०]।

प्राप्तार्थ²—संज्ञा पुं० वह वस्तु जो प्राप्त हो गई हो [को०]।

प्राप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपलब्धि। प्रापण। मिलना। २. पहुँच। ३. अधिगम। अर्जन। ४. उदय। ५. अणिमादि आठ प्रकार के ऐश्वर्यों में से एक जिससे वांछित पदार्थ मिलता है अथवा सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। ६. फलित ज्योतिष के अनुसार चंद्रमा का ग्यारहवाँ स्थान, जिसे लाभ भी कहते हैं। ७. भाग्य। ८. व्याप्ति। प्रवेश। प्रवृत्ति। ९. जरासंध की एक पुत्री का नाम जो कंस से ब्याही थी। १०. काम की पत्नी का नाम। ११. आय। आमदनी। १२. मेल। संगति। १३. लाभ। फायदा। १४. समिति। संघ। १५. नाटक का सुखद उपसंहार। फलागम।

प्राप्तिसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह प्रत्यवस्थान या आपत्ति जो हेतु और साध्य को ऐसी अवस्था में, जब दोनों प्राप्य हों, अविशिष्ट बतलाकर की जाय।

विशेष—यह एक प्रकार की जाति है। जैसे, एक मनुष्य कहता है कि पर्वत वह्निमान् है, क्योंकि वह धूमवान् है, जैसे, पाकगृह। इसपर वादी के इस कथन पर कि पर्वत धूमवान् है, क्योंकि वह वह्निमान् है जैसे, पाकगृह; प्रतिवादी यह आपत्ति करता है कि जहाँ जहाँ अग्नि है क्या वहाँ धूम सदा रहता है अथवा कभी नहीं भी रहता। यदि सर्वत्र रहता है तो साध्य और साधक में कोई अंतर नहीं, फिर तो धूम अग्नि का वैसे ही साधक हो सकता है जैसे अग्नि धूम का। इसे प्राप्तिसम जाति कहते हैं।

प्राप्त्याशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु की प्राप्ति की आशा। २. नाटक की पाँच अवस्थाओं में से तीसरी अवस्था जिसमें फलप्राप्ति की आशा रहती है, पर आशंकाएँ और विघ्न बाधाएँ भी मार्ग में आती हैं। उ०—आगे चलकर उस फल की प्राप्ति की आशा होने लगती है, जिसे प्राप्त्याशा कहते हैं। —सा० दर्पण पृ० १३४।

प्राप्य—वि० [सं०] १. पाने योग्य। प्राप्त करने योग्य। प्राप्तव्य। २. गम्य। ३. जो पहुँच में हो। जिसतक पहुँच हो सकती हो। ४. जो मिल सके। मिलने योग्य।

प्राप्यकारी—संज्ञा पुं० [सं० प्राप्यकारिन्] इंद्रिय जो किसी विषय तक पहुँचकर उसका ज्ञान कराती है।

विशेष—न्यायदर्शन के अनुसार ऐसी इंद्रिय केवल आँख ही है, पर वेदांतदर्शन में कहा है कि कान में भी यह गुण है।

प्राप्यरूप—वि० [सं०] जिसे प्राप्त करना प्रायः आसान हो [को०]।

प्राबल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रबलता। तेजी। २. प्रधानता। ३. ताकत। शक्ति (को०)।

प्रावालिक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रवाल का व्यापार करनेवाला पुरुष।

प्राबोधक, प्राबोधिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभातकाल। उषःकाल। २. वह पुरुष जो राजाओं को उनकी स्तुति सुनाकर जगाने के लिये नियुक्त हो।

विशेष—प्राचीन काल में यह काम करने के लिये मगध देश के लोग नियुक्त किए जाते थे जिन्हें मागध कहते थे।

प्राभंजन¹—संज्ञा पुं० [सं० प्राभञ्जन] स्वाति नक्षत्र।

प्राभंजन²—वि० १. प्रभंजन या वायु देवता संबंधी। २. जो वायु देवता के द्वारा अधिष्ठित हो।

प्राभंजनि—संज्ञा पुं० [सं० प्राभञ्जनि] १. हनुमान। २. भीष्म [को०]।

प्राभव—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभुत्व। अधिकार। २. श्रेष्ठता। प्रधानता।

प्राभवत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभुता। प्रभुत्व। २. सर्वप्रधानता। विभुत्व [को०]।

प्राभाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो प्रभाकर के मत का मानने

वाला हो। ९. मीमांसा के आचार्य प्रभाकर से संबद्ध विचार, मत आदि (को०)।

प्राभातिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्राभातिकी] प्रभात संबंधी। सबेरे का।

प्राभासिक—वि० [सं०] प्रभास देश संबंधी। प्रभास देश का।

प्राभृत, प्राभृतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपहार। नजर। २. घूस। रिश्वत (को०)।

प्रामणाँ‡—संज्ञा पुं० [हिं० पाहुना] दे० 'पाहुना'। उ०—करतब नह राजी कृपण, राजा रूपैयाँह। कदको दास कुटंबियाँ, प्रामणाँ पइयाँह।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३५।

प्रामति—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दसवें मन्वंतर में होनेवाले एक ऋषि का नाम जो उस समय के सप्तर्षियों में होंगे।

प्रामधि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रामति'।

प्रामाणिक[1]—वि० [सं०] १. जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो। २. माननीय। मानने योग्य। ३. ठीक। सत्य। ४. शास्त्रसिद्ध। ५. हेतुक। ६. जो प्रमाणों को मानता हो। ७. प्रमाण संबंधी (को०)। ८. प्रमाणरूप। प्रमाणस्वरूप (को०)। ९. शास्त्रज्ञ।

प्रामाणिक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यापारियों का मुखिया। २. प्रमाण को जानने माननेवाला। न्यायशास्त्र का ज्ञाता। ३. एक जातीय उपाधि।

प्रामाण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रमाणता। प्रमाण का भाव। २. मान मर्यादा। ३. विश्वास कराने की योग्यता या शक्ति। विश्वसनीयता।

प्रामाण्यवादी—वि० [सं० प्रामाण्यवादिन्] जो प्रमाण में विश्वास करता हो (को०)।

प्रामादिक—वि० [सं०] १. प्रमादजनित। २ दोषयुक्त। दूषित। जिसमें दोष हो। उ०—जिन्हें प्रामादिक तर्क-प्रमाण-शून्य ... समझकर ... विद्वान् उपेक्षा के ही साथ सुनते आए हैं।—रस क०, पृ० १३।

प्रामाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मद्‌सा। २. त्रुटि। गलती। भूल (को०)। ३. पागलपन। उन्माद।

प्रामित्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋण। कर्ज। २. मरण। मृत्यु (को०)।

प्रामिसरी नोट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'प्रामीसरी नोट'।

प्रामीसरी नोट—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह लेख या पत्र जिसपर लिखनेवाला अपना हस्ताक्षर करके यह प्रतिज्ञा करे कि मैं अमुक पुरुष को, या जिसे वह आज्ञा या अधिकार दे, या जिसके पास यह लेख हो, किसी नियत समय पर, या जब वह माँगे या जब वह उसे दिखलावे, तब इतना रुपया दे दूँगा। हुंडी। २. वह सरकारी कागज या ऋणपत्र जिसमें सरकार अपनी प्रजा से कुछ ऋण लेकर यह प्रतिज्ञा करती है कि मैंने इतना ऋण लिया और इसका सूद इस हिसाब से इस लेख के मालिक को दिया करूँगी।

विशेष—इसकी अवधि निश्चित रहती है। ऐसी हुंडी का सरकारी खजाने से बराबर समय समय पर सूद मिला करता है; और जब उस हुंडी का नियत समय पूरा हो जाता है, तब सरकार से उसका रुपया भी मिल सकता है। ऐसी हुंडी या नोट मालिक बीच में ही बेचना चाहे तो दूसरे आदमियों के हाथ बेच भी सकता है। ऐसी हुंडी या नोट का भाव बराबर घटा बढ़ा करता है।

प्रामोद—वि० [सं०] मनोज्ञ। मनोहारी।

प्रामोदक, प्रामोदिक—वि० [सं०] दे० 'प्रामोद'।

प्रायः[1]—वि० [सं०] १. विशेषकर। बहुधा। अकसर। जैसे,—सावन में प्रायः पानी बरसता है। २. लगभग। करीब करीब। जैसे,—उनके यहाँ मेरे प्रायः ५०० रु० बाकी होंगे।

विशेष—इसका प्रयोग शब्द के अंत में होता है।

प्रायः[2]—क्रि० वि० अक्सर। सामान्यतया (को०)।

प्राय[1]—वि० [सं०] १. लगभग। जैसे, प्रायद्वीप। २. समान। तुल्य। जैसे,—मृतप्राय। ३. पूर्ण।

प्राय[2]—संज्ञा पुं० १. अनशनादि तप जिससे मनुष्य शक्तिहीन होकर मृतक के तुल्य हो जाता या मर जाता है। २. मृत्यु। जैसे, प्रायगत। ३. अवस्था। उम्र। ४. अधिकता। बाहुल्य (को०)।

प्रायगत—वि० [सं०] जिसके मरने में अधिक विलंब न हो। जो मर रहा हो। आसन्नमृत्यु।

प्रायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। स्थानांतर गमन। २. एक शरीर त्यागकर दूसरे शरीर में जाना। शरीरपरिवर्तन। ३. जन्मांतर। ४. अनशन व्रत द्वारा शरीरत्याग। ५. वह पथ्य या आहार जो अनशन व्रत की समाप्ति पर ग्रहण किया जाता है। पारण। ६. प्रवेश। प्रारंभ। ७. जीवनपथ। जीवितावस्था। ८. शरण लेना (को०)। ९. एक प्रकार का खाद्य पदार्थ जो दूध में मिलकर बनता था।

प्रायणीय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोमप याग में पहली सुत्या के दिन का कर्म। २. प्रारंभिक कर्म। उदनीय का उलटा। ३. सोम याग का प्रथम दिवस (को०)।

प्रायणीय[2]—वि० प्रारंभ संबंधी। प्रारंभिक। जैसे, प्रायणीय याग, प्रायणीय कर्म, प्रायणीयातिरात्र, प्रायणीयेष्टि इत्यादि।

प्रायत्य—संज्ञा पुं० [सं०] पवित्रता। पूतता। शुद्धता (को०)।

प्रायदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] साधारण घटना, जो प्रायः देखने में आती हो। साधारण सी बात।

प्रायद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० प्रायोद्वीप] स्थल का वह भाग या अंश जो तीन ओर पानी से घिरा हो और केवल एक ओर किसी बड़े स्थल से मिला हो। प्रायोद्वीप।

प्रायभव—वि० [सं०] जो साधारण रीति से अथवा प्रायः होता हो। साधारण।

प्रायवृत्त—वि० [सं०] जो बिलकुल गोल या वर्तुलाकार न हो पर बहुत कुछ गोल हो। अंडाकार।

प्रायशः—क्रि० वि० [सं० प्रायशस्] प्रायः। बहुधा। अकसर।

प्रायश्चित्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. शास्त्रानुसार वह कृत्य जिसके करने से मनुष्य के पाप छूट जाते हैं। उ०—मैं जिऊँ लोकापवाद निमित्त, तब न होगा तनिक प्रायश्चित्त।—साकेत, पृ० ११०।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है एक व्रत दूसरा दान। शास्त्रों मे भिन्न भिन्न प्रकार के कृत्यों का विधान है। किसी पाप में व्रत का, किसी में दान का, किसी में व्रत और दान दोनों का विधान है। लोक में भी समाज के नियमविरुद्ध कोई काम करने पर मनुष्य को समाज द्वारा निर्धारित कुछ कर्म करने पड़ते हैं जिससे वह समाज में पुन: व्यवहार योग्य होता है। इस प्रकार के कृत्यों को भी प्रायश्चित्त कहते हैं।

२. जैनियों के मतानुसार वे नौ प्रकार के कृत्य जिनके करने से पाप की निवृत्ति होती है—(१) आलोचन, (२) प्रतिक्रमण, (३) आलोचन प्रतिक्रमण, (४) विवेक, (५) व्युत्सर्ग, (६) तप, (७) छेद, (८) परिहार, (९) उपस्थान और (१०) दोष।

क्रि० प्र०—लगना।

प्रायश्चित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रायश्चित्त'।

प्रायश्चित्तिक—वि० [सं०] १. प्रायश्चित्त के योग्य। प्रायश्चित्तार्ह। २. प्रायश्चित्त संबंधी।

प्रायश्चित्ती—वि० [सं० प्रायश्चित्तिन्] १. प्रायश्चित्त के योग्य। २. जो प्रायश्चित्त करे। प्रायश्चित्त करनेवाला।

प्रायश्चित्तीय—वि० [सं०] प्रायश्चित्त संबंधी।

प्रायाणिक[1]—वि० [सं०] प्रयाण संबंधी। यात्रा संबंधी।

प्रायाणिक[2]—संज्ञा पुं० शंख, चँवर आदि मंगल द्रव्य जो यात्रा के समय आवश्यक होते हैं।

प्रायात्रिक—वि० [सं०] दे० 'प्रायाणिक [को०]।

प्रायास—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का वैदिक नाम।

प्रायिक—वि० [सं०] प्राय: होनेवाला। जो बहुधा या अधिकता से होता हो।

प्रायुद्धेषी—संज्ञा पुं० [सं० प्रायुद्धेषिन्] अश्व। घोड़ा [को०]।

प्रायोगिक—वि० [सं०] जो नित्य काम में आता हो। जिसका प्रयोग नित्य होता हो।

प्रायोज्य[1]—वि० [सं०] प्रयोग में आनेवाला। जिससे प्रयोजन चलता हो।

प्रायोज्य[2]—संज्ञा पुं० मिताक्षरा आदि धर्मशास्त्रों के अनुसार वह वस्तु जिसका काम किसी को नित्य पड़ता हो। जैसे, पढ़नेवाले को पुस्तकादि का, कृषक को हल बैल आदि का, योद्धा को अस्त्र शस्त्र का इत्यादि।

विशेष—ऐसी वस्तुएँ शास्त्रों मे विभाजनीय नहीं मानी गई हैं, विभाग के समय वे उसी को मिलती है जिसके प्रयोजन की हों अथवा जो उन्हें व्यवहार में लाता रहा हो या जिसकी उनसे जीविका चलती हो।

प्रायोदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] सर्वमान्य देवता। वह देवता जिसे सब मानते हों।

प्रायोद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रायद्वीप'।

प्रायोपगमन—संज्ञा पुं० [सं०] आहार त्याग कर मरने पर उद्यत होना। अनशन व्रत द्वारा प्राण परित्याग करने का प्रयत्न। भूखों मरकर जान देना।

प्रायोपयोगिक—वि० [सं०] प्राय: उपयोग में आनेवाला। सामान्य। साधारण [को०]।

प्रायोपविष्ट—वि० [सं०] जिसने प्रायोपवेश व्रत किया हो।

प्रायोपवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अनशन व्रत जो प्राण त्यागने के निमित्त किया जाता है। २. अन्न और जल त्याग कर मरने के लिये तैयार होकर बैठना।

प्रायोपवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रायोपवेश'।

प्रायोपवेशनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रायोपवेशन। अनशन व्रत।

प्रायोपवेशी—वि० [सं० प्रायोपवेशिन्] [वि० स्त्री० प्रायोपवेशिनी] प्रायोपवेशन व्रत करनेवाला।

प्रायोपेत—वि० [सं०] प्रायोपवेशन व्रत का व्रती। प्रायोपवेश व्रत करनेवाला।

प्रायोभावी—वि० [सं० प्रायोभाविन्] जो प्राय: होता हो [को०]।

प्रायोवाद—संज्ञा पुं० [सं०] कहावत [को०]।

प्रारभ—संज्ञा पुं० [सं० प्रारम्भ] १. आरंभ। शुरू। २. आदि।

प्रारंभण—संज्ञा पुं० [प्रारम्भण] [वि० प्रारब्ध] आरंभण। प्रारंभ करना। शुरू करना।

प्रारंभिक—वि० [सं०] १. प्रारंभ संबंधी। प्रारंभ का। २. आदिम। ३. प्राथमिक।

प्रारब्ध[1]—वि० [सं०] आरंभ किया हुआ।

प्रारब्ध[2]—संज्ञा पुं० १. तीन प्रकार के कर्मों में से वह जिसका फल-भोग आरंभ हो चुका हो। २. भाग्य। किस्मत। जैसे,—जो प्रारब्ध में होगा वही मिलेगा। ३. वह कार्य आदि जो आरंभ कर दिया गया हो।

प्रारब्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आरंभ। शुरू। २. हाथी के बाँधने की रस्सी या खूँटा।

प्रारब्धी—वि०[सं० प्रारब्धिन्] भाग्यवाला। भाग्यवान्। किसमतवर।

प्रारूप—संज्ञा पुं० [सं०(उप०) + प्र(= आरंभ, आदि) + रूप अथवा प्राक् + रूप] किसी योजना, प्रस्ताव, विधेयक आदि का वह प्राथमिक रूप जिसमें आगे आवश्यक होने पर संशोधन आदि किया जा सके। मसौदा। प्राथमिक रूप। प्रालेख।

प्रारोह—संज्ञा पुं० [सं०] अंकुर। प्ररोह [को०]।

प्रार्जयिता—वि० [सं० प्रार्जयितृ] [वि० स्त्री० प्रार्जयित्री] दान करनेवाला। दानी।

प्रार्जुन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।

प्रार्ण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रधान ऋण। मुख्य ऋण [को०]।

प्रार्थक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रार्थिका] प्रार्थना करनेवाला। प्रार्थी।

प्रार्थन—संज्ञा पुं० [सं०] याचन । याचना । प्रार्थना करना । माँगना ।

प्रार्थना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी से कुछ माँगना । याचना । चाहना । जैसे,—मैंने उनसे एक पुस्तक के लिये प्रार्थना की थी । २. किसी से नम्रतापूर्वक कुछ कहना । विनती । विनय । निवेदन । जैसे,—मेरी प्रार्थना है कि अब आप यह झगड़ा मिटा दें । ३. इच्छा । आकांक्षा । स्पृहा (को०) । ४. तंत्रसार के अनुसार एक मुद्रा का नाम ।

विशेष—इस मुद्रा में दोनों हाथों के पंजों की उँगलियों को फैलाकर एक दूसरे पर इस प्रकार रखते हैं कि दोनों हाथों की उँगलियाँ यथाक्रम एक दूसरे के ऊपर रहती हैं । इस प्रकार हाथ जोड़कर उँगलियों को सीधे और सामने की ओर करके हृदय के पास ले जाते हैं और वहाँ इस प्रकार रखते हैं कि दोनों कलाई की संधि छाती के संधिमध्य में रहती है ।

प्रार्थना[2]—क्रि० स० [सं० प्रार्थन] प्रार्थना करना । विनती करना । उ०—हरिवल्लभ सब प्रार्थना जिन चरण रेणु आशा धरी ।—नाभादास (शब्द०) ।

प्रार्थनापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें किसी प्रकार की प्रार्थना लिखी हो । निवेदनपत्र । अर्जी ।

प्रार्थनाभंग—संज्ञा पुं० [सं० प्रार्थनाभङ्ग] याचना स्वीकार न होना [को०] ।

प्रार्थनासमाज—संज्ञा पुं० [सं०] एक नवीन समाज या संप्रदाय ।

विशेष—इस मत के अनुयायी दक्षिण में बंबई की ओर अधिक हैं । इस मत के सिद्धांत ब्राह्मसमाज से मिलते जुलते हैं । इस मत के लोग जाति पाँति का भेदभाव नहीं मानते और न मूर्तिपूजा आदि करते हैं ।

प्रार्थनासिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा का पूरा होना । अभिलाषा-प्राप्ति [को०] ।

प्रार्थनीय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] द्वापर युग का एक नाम ।

प्रार्थनीय[2]—वि० प्रार्थना करने योग्य । निवेदन करने के योग्य । याचनीय ।

प्रार्थयितव्य—वि० [सं०] माँगने योग्य । प्रार्थना करने के योग्य । याचनीय ।

प्रार्थयिता—संज्ञा पुं० [सं० प्रार्थयितृ] १. प्रार्थना करनेवाला । माँगनेवाला । याचक । २. प्रणय की कामना करनेवाला । प्रणयी [को०] ।

प्रार्थित[1]—वि० [सं०] १. जो माँगा गया हो । याचित । २. जिसपर आक्रमण किया गया हो । आक्रांत (को०) । ३. जो मार दिया गया हो । जिसकी हिंसा कर दी गई हो (को०) । ४. जिसे आघात पहुँचाया गया हो (को०) । ५. जिसकी इच्छा की गई हो । आकांक्षित (को०) ।

प्रार्थित[2]—संज्ञा पुं० इच्छा [को०] ।

प्रार्थितदुर्लभ—वि० [सं०] जो इच्छित हो या जिसकी इच्छा की गई हो पर जिसका पाना कठिन हो [को०] ।

प्रार्थी—वि० [सं० प्रार्थिन्] [वि० स्त्री० प्रार्थिनी] १. माँगनेवाला । प्रार्थना करनेवाला । याचक । २. निवेदक । निवेदन करनेवाला । ३. प्रार्थनाशील । इच्छुक ।

प्रार्थ्य—वि० [सं०] प्रार्थना के योग्य । याचनीय ।

प्रालंब—संज्ञा पुं० [सं० प्रालम्ब] १. रस्सी आदि के ढंग की वह वस्तु जो किसी ऊँची वस्तु में टँगी और लटकती हो । २. वह माला जो गर्दन से छाती तक लटकती हो । हार । ३. मोतियों का हारनुमा एक आभूषण (को०) । ४. स्तन । कुच (को०) । ५. एक प्रकार का कद्दू या तुंबी (को०) ।

प्रालंबक—संज्ञा पुं० [सं० प्रालम्बक] दे० 'प्रालंब' [को०] ।

प्रालंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रालम्बिका] गले में पहनने का सोने का हार । सोने की माला ।

प्राल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'पलाल' ।

प्रालब्ध—संज्ञा पुं० [सं० प्रारब्ध] दे० 'प्रारब्ध' ।

प्रालेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिम । तुषार । उ०—व्यस्त बरसने लगा अश्रुमय यह प्रालेय हलाहल नीर ।—कामायनी, पृ० १३ । २. बर्फ । ३. भूगर्भशास्त्रानुसार वह समय जब अत्यंत हिम पड़ने के कारण उत्तरीय ध्रुव पर सब पदार्थ नष्ट हो गए और वहाँ शीत की इतनी अधिकता हो गई कि अब कोई जंतु या वनस्पति वहाँ नहीं रह सकती ।

यौ०—प्रालेयकर = हिमकर । चंद्रमा । प्रालेयपर्वत, प्रालेयभूधर = हिमालय । प्रालेयरश्मि । प्रालेयशैल ।

प्रालेयरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर (को०) ।

प्रालेयशैल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय [को०] ।

प्रालेयांशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिमांशु । चंद्रमा । २. कपूर ।

प्रालेयाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय ।

प्रावट—संज्ञा पुं० [सं०] यव । जौ ।

प्रावण—संज्ञा पुं० [सं०] कुदाल । खनित्र । फावड़ा [को०] ।

प्रावधान—संज्ञा पुं० [सं० प्र (उप०) + अवधान] नियम । कानून । व्यवस्था । उ०—उसके एक प्रावधान में बहुत कुछ ऐसा कहा गया है कि केंद्र और राज्यों में भी पाँच वर्षों तक अंग्रेजी को ही प्रशासनीय भाषा के रूप में जारी रखना होगा ।—शुक्ल० अभि० ग्रं०, पृ० ७१ ।

प्रावर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीर । चहारदारी । २. उत्तरीय । उपरना । ३. एक देश का नाम (को०) ।

प्रावर(पु)[2]—वि० चारो ओर । चतुर्दिक् । उ०—दोइ घरी दिन चढ़त रहि, चल्यौ दिली पुर माँह । प्रति उज्जल अस्तंभ वर प्रावर छिति उछाह । पृ० रा०, २४।१००।

प्रावरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रच्छादन । ढकन । २. उत्तरीय वस्त्र । ओढ़ने का वस्त्र । चादर ।

प्रावरणीय—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तरीय । ओढ़ने का वस्त्र (को०) ।

प्रावार—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कपड़ा जो प्राचीन काल में

बनता था और बहुमूल्य होता था। २. उत्तरीय वस्त्र। ३. प्रच्छादन। आच्छादन आवरण (को०)। ४. एक जनपद का नाम (को०)।

प्रावारक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर से ओढ़ने का वस्त्र। प्रावार [को०]।

प्रावारकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उल्लू।

प्रावारकीट—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े में लगनेवाला एक प्रकार का श्वेत कीड़ा।

प्रावारिक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रावार या उत्तरीय बनानेवाला [को०]।

प्रावालिक—वि० [सं०] प्रवाल या मूँगे का व्यापारी [को०]।

प्रावासिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रावासिकी] प्रवास के उपयुक्त [को०]।

प्राविट(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रावृट्] पावस। वर्षाऋतु। उ०—प्राविट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे।—मानस, ६।४५

प्राविन्न—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के आश्रम मे रहना। रक्षण का आश्रय प्राप्त करना।

प्राविष्ट्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्रौंचद्वीप के एक खंड का नाम। (केशव)।

प्रावीण्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रवीणता। कुशलता। नैपुण्य।

प्रावृट्—संज्ञा पुं० [सं० प्रावृष्] वर्षा ऋतु। पावस। उ०—प्रावृट में तव प्रागण घन गर्जन से हर्षित।—ग्राम्या, पृ० ५७।

प्रावृट्काल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल [को०]।

प्रावृडत्यय—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा का समाप्तिकाल। शरद ऋतु।

प्रावृत¹—संज्ञा पुं० [सं०] ओढ़ने का कपड़ा। आच्छादन।

प्रावृत²—वि० १. अच्छी तरह आवृत या घिरा हुआ। आच्छादित।

प्रावृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राचीर। घेरा। २. मल जो आत्मा की दृक् और दृक्शक्ति को आच्छादित करता है। (जैन)। ३. आड़। रोक।

प्रावृत्तिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रावृत्तिका] वह दूत जो एक स्थान के समाचार को दूसरे स्थान में पहुँचाने का काम करता हो। एलची।

प्रावृत्तिक²—वि० १. अमुख्य। गौण। २. जिसे पूर्णतः सूचित हो। जानकार [को०]।

प्रावृष—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रावृट्। वर्षा ऋतु।

प्रावृषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रावृष'।

प्रावृषायणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केवाँच। २. बिषखोपरा।

प्रावृषिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

प्रावृषिक²—वि० १. जो वर्षाऋतु में उत्पन्न हो। २. वर्षाऋतु संबंधी।

प्रावृषिज¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह तीक्ष्ण वायु जो वर्षाऋतु में चलती है। झंझावात।

प्रावृषिज²—वि० जो वर्षा ऋतु में उत्पन्न हो [को०]।

प्रावृषीण—वि० [सं०] १. वर्षाकाल में उत्पन्न होनेवाला। २. वर्षाकाल संबंधी।

प्रावृषेण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईति। २. कदंब। ३. धारा कदंब। ४. वह कर जो वर्षाऋतु में दिया जाता हो। ५. कुटज। कुरैया। ६. प्रचुरता। अधिकता।

प्रावृषेण्य—वि० वर्षाकाल में उत्पन्न। वर्षाकाल का। वर्षा ऋतु संबंधी। २. वर्षा में देय (को०)।

प्रावृषेण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केवाँच। २. लाल पुनर्नवा।

प्रावृषेय¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम।

प्रावृषेय²—वि० [स्त्री० प्रावृषेयी] वर्षाकाल में होनेवाला।

प्रावृष्य¹—वि० [सं०] जो वर्षाकाल में हो।

प्रावृष्य²—संज्ञा पुं० १. वैदूर्य। २. कुटज। ३. धाराकदंब। ४. विकंटक।

प्रावेण्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ऊनी वस्त्र।

प्रावेशन—संज्ञा पुं० [सं० १ वह जो प्रवेश के अवसर पर दिया या किया जाय। २. प्रवेशन का कार्य। प्रवेश करना। ३. कारखाना। संस्थान (को०)।

प्रावेशिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रावेशिकी] १. प्रवेश का साधनभूत। जिसके कारण प्रवेश मिले। प्रवेश करने में सहायता देनेवाला। २. प्रवेश संबंधी (को०)। ३. प्रवेश करना जिसका स्वभाव हो (को०)।

प्राव्रज्य—संज्ञा पुं० [सं०] :' 'प्राव्राज्य' [को०]।

प्राव्राज्य¹—वि० [सं०] प्रव्रज्या संबंधी।

प्राव्राज्य²—संज्ञा पुं० १. सन्यास जीवन। संन्यास। २. इतस्ततः चंक्रमण या परिभ्रमण [को०]।

प्राश्—संज्ञा स्त्री० [सं०] भोजन। आहार [को०]।

प्राश्—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन करना। स्वाद लेना। चखना। २. भोजन। आहार [को०]।

प्राशक—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन करनेवाला। भोक्ता। भक्षक। खानेवाला [को०]।

प्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खाना। भोजन। २. चखना। जैसे, अन्नप्राशन। ३. खिलाना। चखाना (को०)।

प्राशनीय¹—वि० [सं०] प्राशन के योग्य। खाने के योग्य। चखने के योग्य।

प्राशनीय²—संज्ञा पुं० आहार। भोजन [को०]।

प्राशस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रशस्तता। प्रशस्त होने का भाव। २. वैशिष्ट्य। विशिष्टता (को०)।

प्राशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रशास्ता नामक ऋत्विज का काम। २. प्रशास्ता का भाव।

प्राशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'प्राशास्ता'। २. सरकार। शासन [को०]।

प्राशित¹—वि० [सं०] भक्षित। खाया हुआ। चखा हुआ।

प्राशित²—संज्ञा पुं० १. पितृयज्ञ। तर्पण। २. भक्षण।

प्राशित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञों में पुरोडाश आदि में से काटकर निकाला हुआ वह छोटा टुकड़ा जो ब्रह्मोद्देश से अलग करके

प्राशित्राहरण नामक यज्ञपात्र में रखा जाता है। यह भाग जौ या पीपल के गोदे बराबर निकाला जाता और प्रायः नोक की ओर से काटा जाता है। २. दे० 'प्राशित्राहरण'। ३. खाद्य पदार्थ। खाने योग्य कोई वस्तु (को०)।

प्राशित्राहरण—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के एक पात्र का नाम।

विशेष—यह पात्र गोकर्ण के आकार का होता है और इसी में प्राशित्र रखा जाता है।

प्राशी—वि० [सं० प्राशिन्] [वि० स्त्री० प्राशिनी] प्राशन करनेवाला। खानेवाला। भक्षक।

प्राशु[1]—वि० [सं०] त्वरित। शीघ्र। तुरत।

प्राशु[2]—संज्ञा पुं० १. खाना। भक्षण। भोजन। २. वह जो सोम खाता है। ३. वृत्रासुर का एक शत्रु [को०]।

प्राश्निक—वि० [सं०] १. सभ्य। सभा की कारंवाई करनेवाला। २ प्रश्नकर्ता। पूछनेवाला। ३. परीक्षक। ४. निर्णयकर्ता। निर्णायक (को०)।

प्राश्नीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

प्राश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्कप्रकाश के अनुसार वे पशु जो गाँव में रहते हैं। जैसे, गाय, बकरी, भेड़ा आदि। २. प्राशन करने योग्य पदार्थ।

प्रासंग—संज्ञा पुं० [सं० प्रासङ्ग] १. हल का जुआ या जुआठा जिसमें नए बैल निकाले जाते हैं। २. तराजू। तुला। ३. तराजू की डंडी।

प्रासंगिक[1]—वि० [सं० प्रासङ्गिक] १. प्रसंग संबंधी। प्रसंग का। २. प्रसंग द्वारा प्राप्त। प्रसंगागत।

प्रासंगिक[2]—संज्ञा पुं० कथावस्तु के दो भेदों में से एक। गौण कथावस्तु।

विशेष—इससे आधिकारिक या मूल कथावस्तु का सौंदर्य बढ़ता है और मूल कार्य या व्यापार के विकास में सहायता मिलती है। इसके दो भेद कहे गए हैं—पताका और प्रकरी।

प्रासंग्य—संज्ञा पुं० [सं० प्रासङ्ग्य] जुआ वहन करनेवाला [को०]।

प्रास—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का भाला। बरछी। भाला। वर्छास्त्र।

विशेष—इसमें सात हाथ लंबी बाँस की छड़ लगती है और दूसरी नोक पर लोहे का नुकीला फल रहता है। इसका फल बहुत तेज होता है जिसपर स्तवक चढ़ा रहता है। इसे वर्छास्त्र भी कहते हैं।

२. फेंकना। प्रक्षेपण (को०)। ३. अनुप्रास (को०)।

प्रासक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रास नामक अस्त्र। २. पासक। पाँसा।

प्रासन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] फेंकना।

प्रासन[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्राशन] दे० 'प्राशन'।

प्रासहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पत्नी का नाम [को०]।

प्रासाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन वास्तुविद्या के अनुसार लंबा, चौड़ा, ऊँचा और कई भूमियों का पक्का या पत्थर का घर जिसमें अनेक शृंग, शृंखला, अंडकादि हों तथा अनेक द्वारों और गवाक्षों से युक्त त्रिकोण, चतुष्कोण, आयत, वृत्त शालाएँ हों।

विशेष—आकृति के भेद से पुराणों में प्रासाद के पाँच भेद किए गए हैं—चतुरस्र, चतुरायत, वृत्त, वृत्ताय और अष्टास्र। इनका नाम क्रम से वैराज, पुष्पक, कैलास, मालक और त्रिविष्टप है। भूमि, अंडक, शिखरादि की न्यूनाधिकता के कारण इन पाँचों के नौ नौ भेद माने गए हैं। जैसे, वैराज के मेरु, मंदर, विमान, भद्रक, सर्वतोभद्र, रुचक, नंदन, नंदिवर्धन और श्रीवत्स; पुष्पक के वलभी, गृहराज, शालागृह, मंदिर, विमान, ब्रह्ममंदिर, भवन, उत्तंभ और शिबिकावेश्म; कैलास के वलय, दुंदुभि, पद्म, महापद्म, भद्रक, सर्वतोभद्र; रुचक, नंदन, गुवाक्ष या गुवावृत्त; मालव के गज, वृषभ, हंस, गरुड़, सिंह, भूमुख, भूधर, श्रीजय और पृथिवीधर, और त्रिविष्टप के वज्र, चक्र, मुष्टिक या बभ्रु, वक्र, स्वस्तिक, खड्ग, गदा, श्रीवृक्ष और विजय। पुराणों में केवल राजाओं और देवताओं के गृह को प्रासाद कहा है।

२. बहुत बड़ा मकान। महल। उ०—वे प्रासाद रहें न रहें, पर, अमर तुम्हारा यह साकेत।—साकेत, पृ० ३७१। ३. महल की चोटी। ४. कोठे के ऊपर की छत। ५. बौद्धों के संघाराम में वह बड़ी शाला जिसमें साधु लोग एकत्र होते हैं। ६. मंदिर। देवालय (को०)। ७. दर्शकों के लिये बना हुआ स्थान (को०)।

प्रासादकुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर।

प्रासादगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] महल का भीतरी भाग [को०]।

प्रासादप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदिर में मूर्ति की स्थापना [को०]।

प्रासादमंडना—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रासादमण्डना] प्राचीन काल का एक प्रकार का रंग जिससे प्रासाद के ऊपर रँगाई होती थी।

विशेष—यह पीला या लाल होता था और इसकी रँगाई बहुत दिनों तक टिकती थी।

प्रासादशायी—वि० [सं० प्रासादशायिन्] महल में सोनेवाला [को०]।

प्रसादशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रासादशृंग'।

प्रासादशृंग—संज्ञा पुं० [सं० प्रासादशृङ्ग] महल या मंदिर का सर्वोच्च स्थान। चोटी [को०]।

प्रासादिक—वि० [सं०] १. दयालु। कृपालु। २. सुंदर। अच्छा। ३. जो प्रसाद में दिया जाय। ४. प्रसाद संबंधी। ५. प्रसाद गुण संबंधी। प्रसाद गुण का। उ०—काव्य का जो प्रासादिक रूप, दिखाया तुमने मनोभिराम। कहाँ से लाकर भरी अनूप, छटा उसमें स्वर्गीय ललाम।—सागरिका, पृ० ५७।

प्रासादीय—वि० [सं०] प्रासाद संबंधी। प्रासाद का।

प्रासिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके पास प्रास हो। प्रासधारी। बरछी बरदार।

प्रास्नु—संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घश्वास। गहरी साँस।

प्राशुक (पु)—वि० [सं० प्रांशु या प्राशु] १. अशुद्ध। अधिक। विशेष।

२. शीघ्रतापूर्वक । चटपट । उ०—चाकी हाड उचार करि लेहि कचौरी सेर । यह प्राशुक भोजन करहिं नित उठि सांझ सबेर ।—प्रर्घ०, पृ० ११ ।

प्रासूतिक—वि० [सं०] प्रसूति से संबंधित [को०] ।

प्रासेव—संज्ञा पुं० [सं०] वह रस्सी जो घोड़े के साज में संमिलित हो ।

प्रास्कण्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम ।

प्रास्त—वि० [सं०] फेंका हुआ । प्रक्षिप्त । २. निर्वासित । बहिष्कृत [को०] ।

प्रास्तारिक—वि० [सं०] १. जिसका व्यवहार प्रस्तार में हो । २. प्रस्तार संबंधी ।

प्रास्ताविक— वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रास्ताविकी] १. भूमिका रूप में काम आनेवाला । सूचनात्मक । २. परिचयात्मक । जैसे, प्रास्ताविक वचन, प्रास्ताविक विलास । समयानुकूल । ३. संगत । समीचीन [को०] ।

प्रास्तुत्य—संज्ञा पुं० [सं०] विचार या बहस के अंतर्गत होना । विचारणीय होना [को०] ।

प्रास्थानिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री०. प्रास्थानिकी] वह पदार्थ जो प्रस्थान के समय मंगलकारक माना जाता हो । जैसे, शंख की ध्वनि, दही, मछली आदि ।

प्रास्थानिक[2]—संज्ञा पुं० यात्रा की तैयारी [को०] ।

प्रास्थिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रास्थिकी] १. प्रस्थ संबंधी । २. जिसमें एक प्रस्थ अन्नादि अँट जाय । ३. एक प्रस्थ द्वारा बोने योग्य (को०) । ४. जो प्रस्थ के हिसाब से खरीदा गया हो । ५. पाचक ।

प्रास्थिक[2]—संज्ञा पुं० भूमि । जमीन ।

प्रास्पेक्टस—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह छपा हुआ पत्र जिसमें आरंभ होनेवाले किसी बड़े कार्य का पूरा पूरा विवरण और उसकी कार्यप्रणाली आदि दी हो । विवरणपत्र । जैसे, जानबीमा कंपनी का प्रास्पेक्टस, बैंक का प्रास्पेक्टस । २. वह पुस्तक या पुस्तिका जिसमें शिक्षा का पाठ्यक्रम या पूरा ब्यौरा हो । विवरण पत्रिका ।

प्रास्रवण—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रास्रवणी] स्रोत संबंधी । झरने से संबद्ध [को०] ।

प्राह—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य की शिक्षा देना [को०] ।

प्राहारिक—संज्ञा पुं० [सं०] पहरुआ । चौकीदार ।

प्राहुण,प्राहुणक—संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि । मेहमान । पाहुना । उ०—जोबन जायइ प्राहुणउ, बेगहरउ घर आय ।—ढोला०, दू० १३४ ।

प्राहुना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्राहुणक] मेहमान । पाहुना । उ०—चिभंग राय रावर चवी प्राहुन्ना भग्गा फिरे ।—पृ० रा०, ६६।२६० ।

प्राह्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दिन का पूर्व भाग । दोपहर के पूर्व का समय [को०] ।

प्राह्णेतन—वि० [सं०] दिन के पूर्वभाग में होनेवाला या उससे संबंधित [को०] ।

प्राह्लाद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रह्लाद अर्थात् विरोचन की सतान ।

प्रिंटर—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह जो किसी छापेखाने मे रहकर छापने का काम करता हो । मुद्रण करनेवाला । छापनेवाला । २. वह जो किसी छापेखाने में छपनेवाली चीजों की छपाई का जिम्मेदार हो । मुद्रक ।

प्रिंटिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] छापने का काम । छपाई । मुद्रण ।

प्रिंटिंग इंक—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह स्याही जो प्रेस में सीसे के टाइप (अक्षर) से छापने के काम में आती है । टाइप के छापने की स्याही । यह कच्ची और पक्की दो प्रकार की तथा अनेक रंगों की होती है ।

प्रिंटिंग प्रेस—संज्ञा स्त्री० [अं०] सीसा आदि धातु के ढले हुए या लकड़ी के अक्षर या टाइप छापने की वह कल जो हाथ से चलाई जाती है । हैंड प्रेस । दे० 'प्रेस' ।

प्रिंटिंग मशीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] सीसे धातु के अक्षर या टाइप छापने की वह कल जो साधारण हाथ की कल की अपेक्षा बहुत अधिक काम करती है और जो हाथ तथा इंजिन दोनों से चलाई जा सकती है । दे० 'प्रेस ।

प्रिंस—संज्ञा पुं० [अं०] १. राजा । नरेश । २. युवराज । राजकुमार । शाहजादा । ३. राजपरिवार का कोई व्यक्ति । ४. सरदार । सामंत ।

प्रिंस आफ वेल्स—संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड के राजा के ज्येष्ठ पुत्र की पदवी । इंगलैंड का युवराज ।

प्रिंसिपल—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी बड़े विद्यालय या कालिज आदि का प्रधान अधिकारी । प्रधानाचार्य । २. वह मूल धन जो किसी को उधार दिया गया हो और जिसके लिये ब्याज मिलता हो ।

प्रिआ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रिया] दे० 'प्रिया' । उ०—अस जानि संसय तजहु गिरिजा सवदा संकर प्रिआ ।—मानस, १।९८।

प्रिथिमी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० पृथ्वी] पृथ्वी । जमीन । उ०—जौं नहिं सीस पेम पथ लावा । सो प्रिथिमी महँ काहे क आवा ।—जायसी (शब्द०) ।

प्रियंकर[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रियङ्कर] एक दानव का नाम ।

प्रियंकर[2]—वि० १ दया दिखानेवाला । २. स्नेह करनेवाला । स्नेहवान । ३. अनुकूल [को०] ।

प्रियंकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रियङ्करी] १. सफेद कटेरी । २. बड़ी जीवंती । ३. असगंध ।

प्रियंकार—वि० [सं० प्रियङ्कार] दे० 'प्रियंकर' [को०] ।

प्रियंगु—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रियङ्गु] १. कँगनी नाम का अन्न। २. राजिका। ३. पिप्पली। पीपल। ४. कुटकी। ५. राई।

प्रियंगू—संज्ञा पुं० [सं० प्रियङ्गु] दे० 'प्रियंगु'।

प्रियंदद—वि० [सं० प्रियन्दद] प्रिय वस्तु देनेवाला। ईप्सित वस्तु देनेवाला [को०]।

प्रियंवद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेचर। आकाशचारी। पक्षी। २. एक गंधर्व का नाम।

प्रियंवद[2]—वि० [स्त्री० प्रियंवदा] प्रिय वचन कहनेवाला। मीठा बोलनेवाला। प्रियभाषी।

प्रियंवदा—संज्ञा [स्त्री०] १. अभिज्ञान शाकुंतल में शकुंतला की एक सखी। २. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, भगण, जगण और रगण (III, SII, ISI, SIS) होता है और ४-४ पर यति होती है। जैसे—न भज रे हरिजु सों कबों नरा। जिहि भजे हर विधी सुनिर्जरा।

प्रिय[1]—पुं० [सं०] [स्त्री० प्रिया] १. स्वामी। पति। २. जामाता। जँवाई। दामाद। कन्या का पति। ३. कार्तिकेय। स्वामि कार्तिक। ४. एक प्रकार का हिरन। ५. जीवक नाम की ओषधि। ६. ऋद्धि। ७. धर्मात्मा और मुमुक्षुओं को प्रसन्न करनेवाला और सबकी कामना पूरी करनेवाला, ईश्वर। ८. कँगनी। ९. हित। भलाई। १०. बेंत। ११. हरताल। १२. धारा कदंब।

प्रिय[2]—१. जिससे प्रेम हो। प्यारा। २. जो भला जान पड़े। मनोहर। ३. महँगा। खर्चीला (को०)।

प्रियक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीतसालक। पियासाल नाम का वृक्ष। २. कदम का पेड़। ३. कँगनी नामक अन्न। ४. केसर। ५. धारा कदंब। ६. चितकबरा हिरन जिसके रोएँ रंग-बिरंगे, मुलायम, बड़े और चिकने होते हैं। चित्र मृग। ७. शहद की मक्खी। ८. भ्रमर। भौंरा (को०)। ९. एक पक्षी।

प्रियकर—वि० १. आनंद देनेवाला। २. हितकर (को०)।

प्रियकलत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पति जो अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता हो [को०]।

प्रियकांक्षी—वि० [सं० प्रियकाङ्क्षिन्] भला चाहनेवाला। हितकारी। शुभाभिलाषी।

प्रियकाम—संज्ञा पुं० [सं०] भला चाहनेवाला। हितकारी। शुभ-चिंतक।

प्रियकारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रियकाम'।

प्रियकारी[1]—वि० [सं० प्रियकारिन्] यथापूर्ण व्यवहार करनेवाला।

प्रियकारी[2]—संज्ञा पुं० १. मित्र। २. हितकारी [को०]।

प्रियकृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रिय करनेवाला मित्र। २. विष्णु का एक नाम।

प्रियजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सगा संबंधी। २. प्रिय व्यक्ति।

प्रियजात—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का एक नाम।

प्रियजानि—पुं० [सं०] दे० 'प्रियकलत्र' [को०]।

प्रियजीव—संज्ञा पुं० [सं०] सोनापाठा।

प्रियतम[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रियतमा] सबसे अधिक प्यारा। प्राणों से भी बढ़कर प्रिय।

प्रियतम[2]—संज्ञा पुं० १. स्वामी। पति। २. प्यारा। अत्यंत प्रिय व्यक्ति। ३. मोरशिखा नाम का वृक्ष।

प्रियतमता—संज्ञा स्त्री० [सं०प्रियतम + ता (प्रत्य०)] अतीव प्रियता। अत्यंत प्रिय होने का भाव। उ०—भूतल प्रियता का प्रियतमता समता नूतन। —अपरा, पृ० २१२।

प्रियतमा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पत्नी। २. प्रिया [को०]।

प्रियतमा[2]—वि० सबसे अधिक प्यारी। अत्यंत प्रिय (स्त्री)।

प्रियतर—वि० [सं०] अत्यंत प्रिय [को०]।

प्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रिय होने का भाव।

प्रियतोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिससे प्रिय संतुष्ट हो। २. एक प्रकार का रतिबंध।

प्रियत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्रिय होने का भाव।

प्रियद—वि० [सं०] जो प्रिय वस्तु दे।

प्रियदत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

प्रियदर्श—वि० [सं०] दे० 'प्रियदर्शन'।

प्रियदर्शन[1]—वि० [सं०] [स्त्री० प्रियदर्शना] जो देखने में प्यारा लगे। शुभदर्शन। सुंदर।

प्रियदर्शन[2]—संज्ञा पुं० १. खिरनी का पेड़। २. तोता। ३. एक गंधर्व का नाम।

प्रियदर्शी[1]—वि० [सं० प्रियदर्शिन्] सबको प्रिय देखने या समझनेवाला। सबसे स्नेह करनेवाला। मनोहर।

प्रियदर्शी[2]—संज्ञा पुं० अशोक की एक उपाधि। अशोक का नाम।

प्रियदेवन—वि०[सं०]द्यूतक्रीड़ा का प्रेमी। जिसे जुए से प्रेम हो [को०]।

प्रियधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० प्रियधन्वन्] शिव।

प्रियनिवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] सुसमाचार [को०]।

प्रियपात्र—वि० [सं०]जिसके साथ प्रेम किया जाय। प्रेमपात्र। प्यारा।

प्रियबादिनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रियवादिनी] राजवल्ली। उ०—अंबिष्टा प्रियबादिनी, राजपुत्रिका आहि। —नंद० ग्रं०, पृ० १०३।

प्रियब्रत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रियव्रत] प्रियव्रत। उ०—मतिराम कहत प्रियव्रत प्रताप मैं, प्रबल बल पुंज, पारवहि चारौं वन मैं। —मति० ग्रं०, पृ० ३७३।

प्रियभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] मधुर वचन बोलना। ऐसी बात कहना जो प्रिय लगे।

प्रियभाषी—वि० [सं० प्रियभाषिन्] [स्त्री० प्रियभाषिणी] मधुर वचन बोलनेवाला। मीठी बात कहनेवाला।

प्रियमंडन—वि० [सं० प्रियमण्डन] जिसे आभूषण, शृंगार प्रिय हो [को०]।

प्रियमधु—संज्ञा पुं० [सं०] १. बलराम का एक नाम। २. वह जिसे मदिरा प्यारी हो (को०)।

प्रियमेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम। २. भागवत के अनुसार अजमीढ़ के एक पुत्र का नाम।

प्रियरण—वि० [सं०] युद्धप्रिय। वीर [को०]।

प्रियरूप—वि० [सं०] मनोहर। सुंदर।

प्रियवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रियवल्ली] दे० 'प्रियवर्णी'।

प्रियवक्ता—वि० [सं० प्रियवक्तृ] १. प्रिय वचन बोलनेवाला। मधुरभाषी। २. चापलूस (को०)।

प्रियवचन[1]—वि० [सं०] मीठी बात करनेवाला। मधुरभाषी।

प्रियवचन[2]—संज्ञा पुं० १. कृपापूर्ण शब्द। २. प्रिय लगनेवाली बात [को०]।

प्रियवर—वि० [सं०] अति प्रिय। प्यारों में श्रेष्ठ। सबसे प्यारा।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः पत्रों आदि में संबोधन के रूप में होता है।

प्रियवर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कँगनी नाम का अन्न।

प्रियवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियवर्णी [को०]।

प्रियवादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

प्रियवादिन्—वि० स्त्री० [सं०] मधुर बोलनेवाली।

प्रियवादी—संज्ञा पुं० [सं० प्रियवादिन्] [स्त्री० प्रियवादिनी] प्रिय बोलनेवाला। मधुरभाषी। मीठा बोलनेवाला।

प्रियव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वायंभुव मनु के एक पुत्र का नाम जो उत्तानपाद का भाई था। पुराणों के अनुसार इसके रथ दौड़ाने से पृथ्वी में जो गड्ढे हुए, वे ही पीछे समुद्र हो गए। २. वह जिसे व्रत प्रिय हो।

प्रियशालक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियासाल।

प्रियश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० प्रियश्रवस्] परमेश्वर का एक नाम।

प्रियसंगमन—संज्ञा पुं० [सं० प्रियसङ्गमन्] १. वह स्थान जहाँ प्रिय और प्रिया का मिलन हो। अभिसार का स्थान। संकेत स्थान। २. वह स्थान जहाँ अदिति और कश्यप का मिलन हुआ था।

प्रियसंदेश—संज्ञा पुं० [सं० प्रियसन्देश] १. खुशखबरी। अच्छा संदेशा। २. चंपा का पेड़।

प्रियसंप्रहार—वि० [सं० प्रियसम्प्रहार] मुकदमा लड़ने का शौकीन। मुकदमेबाज [को०]।

प्रियसख—संज्ञा पुं० [सं०] १ खैर का पेड़। २. प्रिय मित्र (को०)।

प्रियसत्य—वि० [सं०] १. जिसे सत्य प्रिय हो। २. सत्य होने पर भी प्रिय [को०]।

प्रियसालक—संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल नामक वृक्ष।

प्रियसुहृद्—संज्ञा पुं० [सं०] अंतरंग मित्र। दिली दोस्त [को०]।

प्रियस्वप्न—वि० [सं०] १. जिसे निद्रा प्रिय हो। २. आलस्ययुक्त। आलसी [को०]।

प्रियांबु—संज्ञा पुं० [सं० प्रियाम्बु] १. आम का पेड़। २. आम का फल। ३. वह जिसे जल बहुत प्रिय हो।

प्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नारी। स्त्री। २. भार्या। पत्नी। जोरू। ३. इलायची। ४. मल्लिका। चमेली। ५. मदिरा, शराब। ६. प्रेमिका स्त्री। माशूका। ७. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में रगण (SIS) होता है, इसका दूसरा नाम मृगी है। ८. १४ मात्रा का एक छंद। जैसे, तब लंकनाथ रिसाय कै। ९. कँगनी। १०. समाचार। खबर (को०)।

प्रियाख्य—वि० [सं०] प्रिय। प्यारा।

प्रियाख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] सुखद समाचार। शुभ समाचार [को०]।

प्रियातिथि—वि० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार करनेवाला [को०]

प्रियात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार पसह जाति का एक पक्षी।

प्रियात्मा—संज्ञा पुं० [सं० प्रियात्मन्] वह जिसका चित्त उदार और सरल हो।

प्रियान्न—संज्ञा पुं० [सं०] महँगा खाद्य पदार्थ [को०]।

प्रियापाय—संज्ञा पुं० [सं०] प्रिय वस्तु की हानि। प्रिय वस्तु का विश्लेष या अभाव [को०]।

प्रियाप्रिय[1]—वि० [सं०] प्रिय और अप्रिय। रुचिकर और अरुचिकर (भावना आदि)।

प्रियाप्रिय[2]—संज्ञा पुं० अनुकूलता और प्रतिकूलता। हित और अहित [को०]।

प्रियार्ह[1]—वि० [सं०] १. प्रेम या कृपा के योग्य। २. सुशील। सुप्रिय [को०]।

प्रियार्ह[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

प्रियाल—संज्ञा पुं० [सं०] चिरौंजी का पेड़। प्रियाल।

प्रियाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख। द्राक्षा।

प्रियाव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय + हिं० आव (= आना)] आमंत्रण युक्त संबोधन। हे प्रिय, तूँ आ। उ०—बाबहियउ नइ बिरहिणी, दुहुवाँ एक सहाव। जब ही बरसइ घण घणउ, तबही कहइ प्रियाव।—ढोला०, दू० २७।

प्रियासु—वि० [सं०] जिसे प्राण प्रिय हो। जिसे जीवन प्रिय हो [को०]।

प्रियाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कँगनी नामक अन्न।

प्रियैषी—वि० [सं० प्रियैषिन्] १. प्रिय की इच्छा करनेवाला। २. किसी को प्रसन्न करने या किसी की सेवा करने का इच्छुक। ३. मैत्रीपूर्ण। स्नेहपूर्ण [को०]।

प्रियोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाटुकारिता से भरी उक्ति। प्रिय लगनेवाली बात। चापलूसी [को०]।

प्रिविलेज लीव—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह छुट्टी जो, सरकारी तथा किसी गैर सरकारी संस्था या कंपनी के नौकर, कुछ निर्दिष्ट अवधि तक काम कर चुकने के बाद, पाने के अधिकारी या हकदार होते हैं।

प्रिवीकौंसिल—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी बड़े शासक को शासन

के काम में सहायता देनेवाले कुछ चुने हुए लोगों का वर्ग। २. इंगलैंड में वहाँ के राजा को परामर्श देनेवालों का वर्ग या परिषद्।

विशेष—इसका संगठन १५ वीं शताब्दी में हुआ था। इस वर्ग में या तो कुछ पुराने पदाधिकारी और या राजा के चुने हुए कुछ लोग रहते हैं। आजकल इसमें राजकुल से संबंध रखनेवाले लोग, बड़े बड़े सरकारी कर्मचारी रईस और पादरी आदि संमिलित हैं, जिनकी संख्या २०० से ऊपर है। इस वर्ग के दो विभाग हैं। एक विभाग शासनकार्य में राजा को परामर्श देता है जिनके नाम के साथ राइट आनरेबुल की उपाधि रहती है, और दूसरे विभाग में न्याय विभाग के सर्वप्रधान कर्मचारी होते हैं। कौंसिल का यह दूसरा विभाग अपील के काम के लिये अंगरेजी राज्य भर में अंतिम न्यायालय है और यहीं अंतिम निर्णय होता है। शासन कार्यों में अब प्रिवी कौंसिल का विशेष महत्व नहीं रह गया और उसका स्थान प्राय: मंत्रिमंडल ने ले लिया है।

प्री[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रीति। प्रेम। २. कांति। चमक। ३. इच्छा। ४. तृप्ति। ५. तर्पण।

प्री[2](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय] दे० 'प्रियतम'। उ०—बलि मालवणी बीनवइ, हुं प्री दासी तुज्झ। का चिंता चित अंतरे सा प्री दाखउ मुज्झ।—ढोला०, दू० २३६।

प्रीअंक—संज्ञा पुं० [सं० प्रियक] कदंब। कदम। (अनेकार्थ०)।

प्रीऊ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय] प्रियतम। प्यारा। उ०—बाबहिया निलपंखिया बाढत दइ दइ लूण। प्रिउ मेरा मइँ प्रीउ की तूँ प्रिउ कहइ स कूण।—ढोला०, दू० ३३।

प्रीछित(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० परीक्षित] दे० 'परीक्षित'।

प्रीण—वि० [सं०] १. पुराना। २. पहले का। पूर्ववर्ती। ३. जो प्रसन्न हो। प्रीतियुक्त।

प्रीणन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसन्न करना। २. वह जो संतोष दे या प्रसन्न करे (को०)।

प्रीणस—संज्ञा पुं० [सं०] गैंड़ा। खड्गी (को०)।

प्रीणित—वि० [सं०] प्रसन्न। हर्षयुक्त (को०)।

प्रीत[1]—वि० [सं०] प्रीतियुक्त। प्रसन्न। हर्षित। तुष्ट।

प्रीत[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रीति:] दे० 'प्रीति'। उ०—कठिन पड़े सुख दुख सहै, प्रीत निभावै ओर।—धरम० श०, पृ० ७६।

प्रीतड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० प्रीत+ड़ी (प्रत्य०)] प्रीति। स्नेह। उ०—परब्रह्म सौं प्रीतड़ी सुंदर सुमिरन सार।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६७८।

प्रीतम—संज्ञा पुं० [सं० प्रियतम] १. पति। भर्ता। स्वामी। उ०—डाढी जइ प्रीतम मिलइ यूँ दाझवियां जाइ।—ढोला०, दू० ११८। २ वह जिससे प्रेम या स्नेह हो। प्यारा। उ०—सुरत सज मिली जहाँ प्रीतम प्यारा।—तुरसी श०, पृ० २१।

यौ०—प्रीतम गवनी = दे० 'प्रवत्स्यत्पतिका'। उ०—पिय ही चित चिंता परि कहिए। सो तिय प्रीतमगवनी कहिए।—नंद० ग्रं०, पृ० १५८।

प्रीतमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रियतमा] प्रेमिका। प्रियतमा। उ०—मानस भएउ प्रीतमा ठाऊँ। भूलि भएउ सुमिरन की नाऊँ।—इंद्रा०, पृ० १६३।

प्रीतात्मा—संज्ञा पुं० [सं० प्रीतात्मन्] शिव का एक नाम।

प्रीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह सुख जो किसी इष्ट वस्तु को देखने या पाने से होता है। तृप्ति। २. हर्ष। आनंद। प्रसन्नता। ३. प्रेम। स्नेह। प्यार। मुहब्बत। ४. मध्यम स्वर की चार श्रुतियों में से अंतिम श्रुति। ५. काम की एक पत्नी का नाम जो रति की सौत थी।

विशेष—कहते हैं कि किसी समय अनंगवती नाम की एक वेश्या थी जो माघ में विभूतिद्वादशी का विधिपूर्वक व्रत करने के कारण दूसरे जन्म में कामदेव की पत्नी हो गई थी। मत्स्य पुराण में इसका आख्यान है।

६. फलित ज्योतिष के २७ योगों में से दूसरा योग।

विशेष—इस योग में सब शुभ कर्म किए जाते हैं। इस योग में जन्म ग्रहण करने से मनुष्य नीरोग, सुखी, विद्वान् और धनवान् होता है।

७. कृपा। दया (को०)। ८. अभिलाषा। आकांक्षा। वाञ्छा (को०)। ९. अनुकूलता। सख्य। हितबुद्धि (को०)। १० अनुरंजन। प्रसादन (को०)।

प्रीतिकर—वि० [सं०] प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला। प्रेमजनक।

प्रीतिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० प्रीतिकर्मन्] मैत्री अथवा प्रेम का कार्य। कृपापूर्ण कार्य।

प्रीतिकारक—वि० [सं०] दे० 'प्रीतिकर'।

प्रीतिकारी—वि० [सं० प्रीतिकारिन्] दे० 'प्रीतिकर'।

प्रीतिजुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनिरुद्ध की पत्नी उषा का नाम।

प्रीतिद्—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रीतिद्‌] कामदेव का एक नाम (को०)।

प्रीतिद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विदूषक। भाँड़।

प्रीतिद[2]—वि० सुख या प्रेम उत्पन्न करनेवाला।

प्रीतिदत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेमपूर्वक दिया हुआ दान। २. वह पदार्थ जो सास अथवा ससुर अपने पुत्र या पुत्रवधू को, या पति अपनी पत्नी को भोग के लिये दे।

प्रीतिदान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेम या मैत्रीवश दिया हुआ उपहार। प्रमोपहार (को०)।

प्रीतिदाय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रीतिदान'।

प्रीतिपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] जिसके साथ प्रीति की जाय। प्रेमभाजन। प्रेमी।

प्रीतिभोज—संज्ञा पुं० [सं०] वह भोज या खान पान जिसमें मित्र और बंधु आदि प्रेमपूर्वक संमिलित हों।

प्रीतिमान्—वि० [सं० प्रीतिमत्] १. प्रेम रखनेवाला। जिसमें प्रेम हो। २. प्रसन्न। हर्षित (को०)। ३. अनुकूल (को०)।

प्रीतिव—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेम ।

प्रीतिरीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेमपूर्ण व्यवहार । परस्पर का प्रेम संबंध । प्रणयभाव ।

प्रीतिवर्द्धन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।

प्रीतिवर्द्धन[2]—वि० प्रेम बढ़ानेवाला । आनंदवर्धक ।

प्रीतिवर्धन—संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'प्रीतिवर्द्धन' ।

प्रीतिविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेम के आधार पर होनेवाला विवाह । प्रेम विवाह [को०] ।

प्रीतिस्निग्ध—वि० [सं०] प्रेम के कारण आर्द्र, जैसे, आँखें [को०] ।

प्रीती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रीति] दे० 'प्रीति' । उ०—तिनकी तुम भाव प्रीती सहित सेवा करियो ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७६ ।

प्रीत्यर्थ—अव्य० [सं०] १. प्रीति के कारण । प्रसन्न करने के वास्ते । जैसे, विष्णु के प्रीत्यर्थ दान करना । २. लिये । वास्ते ।

प्रीमियम—संज्ञा पुं० [अं०] वह रकम जो जीवन या दुर्घटना आदि का बीमा कराने पर उस कंपनी को, जिसके यहाँ बीमा कराया गया हो, निश्चित समयों पर दी जाती है । किश्त । विशेष—'दे० बीमा' ।

प्रीमियर—संज्ञा पुं० [अं०] प्रधान मंत्री । वजीर आजम ।

प्रीय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय] दे० 'प्रिय' । उ०—उद्दित अधान सुभ गातनह जेम जलधि पुन्निम बढहि । हुलसंत होय वे प्रीय त्रिय जिम सुजोति जनिता चढहि ।—पृ० रा०, १.३८४।

प्रीव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय] दे० 'प्रिय' । उ०—पंच सखी मीली बइठी चई आई । निगुणी ! गुण होई तो प्रीव पधुं जाई ।—बी० रासो, पृ० ३८ ।

प्रुषित—वि० [सं०] १. सिक्त । सिंचित । प्रोक्षित । २. तापक । दाहक । ज्वलित [को०] ।

प्रुष्ट—वि० [सं०] जला हुआ । जो जल गया हो । दग्ध ।

प्रुष्व(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्षा ऋतु या काल । २. सूर्य । ३. शिर । ४. जल की बूँद [को०] ।

प्रुष्व[2]—वि० तप्त । ऊष्म । गरम [को०] ।

प्रूफ—संज्ञा पुं० [अं] १. किसी बात को ठीक ठहराने के लिये दिया जानेवाला प्रमाण । सबूत । २. किसी छपनेवाली चीज का वह नमूना जो उसके छपने से पहले अशुद्धियाँ आदि दूर करने के लिये तैयार किया जाता है । ३. किसी वस्तु का असर होने से पूरा बचाव ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों के उत्तर पद के रूप में हुआ करता है । जैसे, वाटर प्रूफ, फायर प्रूफ आदि । वाटर प्रूफ से ऐसे पदार्थ का बोध होता है जिसके संबंध में इस बात की परीक्षा हो चुकी होती है कि उसपर जल नहीं ठहर सकता अथवा जल का कोई प्रभाव नहीं हो सकता । जैसे, वाटरप्रूफ कपड़ा । इसी प्रकार फायर प्रूफ ऐसे पदार्थ को कहते हैं जिसकी अग्नि का प्रकोप सहन करने की परीक्षा हो चुकी होती है । जैसे, लोहे का फायर प्रूफ संदूक, प्रूफ, चिमनी, इमारत का फायर प्रूफ सामान ।

प्रूफरीडर—संज्ञा पुं० [अं० प्रूफ+रीडर] प्रूफ को पढ़कर अशुद्धियाँ दूर करनेवाला । प्रूफ पाठक । प्रूफ शोधक ।

प्लम—संज्ञा पुं० [?] सीसे आदि का बना हुआ लट्टू के आकार का वह यंत्र जिसे समुद्र में डुबाकर उसकी गहराई नापते हैं ।

विशेष—यह रस्सी के एक सिरे में, जिसपर नाप के निशान लगे होते हैं, बाँधकर समुद्र में डाला जाता है । और इस प्रकार उसकी गहराई नापी जाती है । कभी कभी इसके नीचे के अंश में कुछ ऐसी व्यवस्था रहती है जिससे समुद्र की तह के कुछ कंकड़ पत्थर, बालू या घोंघे आदि भी उसके साथ लगकर ऊपर चले आते हैं जिससे समुद्र की गहराई के साथ ही साथ इस बात का भी पता लग जाता है कि यहाँ की नीचे की जमीन कैसी है ।

प्रेंख[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रेङ्ख] १. झूलना । पेंग लेना । २. एक प्रकार का सामगान ।

प्रेंख[2]—वि० १. जो काँप रहा हो । २. हिलता या झूलता हुआ ।

प्रेंखण—संज्ञा पुं० [सं० प्रेङ्खण] १. अच्छी तरह हिलना या झूलना । २. झूला जिस पर झूलते हैं । ३. अठारह प्रकार के रूपकों में से एक प्रकार का रूपक ।

विशेष—इस रूपक में सूत्रधार, विष्कंभक और प्रवेशक आदि की आवश्यकता नहीं होती और इसका नायक नीच जाति का हुआ करता है । इसमें प्ररोचना और नांदी नेपथ्य में होता है और यह एक अंक में समाप्त होता है । इसमें वीररस की प्रधानता रहती है ।

प्रेंखणकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रेङ्खणकारिका] नाचनेवाली । नर्तकी [को०] ।

प्रेंखा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रेङ्खा] १. हिलना । २. झूलना । झूला । ३. यात्रा । भ्रमण । ४. नृत्य । नाच । ५. एक प्रकार का गृह (को०) । ६. घोड़े की चाल ।

प्रेंखित—वि० [सं० प्रेङ्खित] झूला हुआ । काँपा हुआ [को०] ।

प्रेंखोल—संज्ञा पुं० [सं० प्रेङ्खोल] दे० 'प्रेंखोलन' [को०] ।

प्रेंखोलन—संज्ञा पुं० [सं० प्रेङ्खोलन] १. झूलना । २. हिलना । ३. काँपना ।

प्रेक्षक—वि० संज्ञा पुं० [सं०] देखनेवाला । दर्शक ।

प्रेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख । २. देखने की क्रिया । ३. दृश्य । नजारा (को०) । ४. खेल, तमाशा, अभिनय आदि (को०) ।

प्रेक्षणक—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टिविषय । दृश्य । प्रदर्शन [को०] ।

प्रेक्षणकूट—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुतली । आँख का डेला [को०] ।

प्रेक्षणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तमाशा देखने की शौकिन स्त्री [को०] ।

प्रेक्षणीय—वि० [सं०] १. देखने के योग्य । दर्शनीय । २. देखने में सुंदर । ३. विचार योग्य । विचारणीय (को०) ।

प्रेक्षणीयक—संज्ञा पुं० [सं०] दृश्य । नजारा [को०] ।

प्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देखना । २. नाच तमाशा देखना । ३. दृश्य । नजारा (को०) । ४. कोई भी नाटक तमाशा आदि (को०) ५. किसी विषय की अच्छी और बुरी बातों का विचार करना । ६. दृष्टि । निगाह । ७. वृक्ष की शाखा । डाल । ८. शोभा । ९. प्रज्ञा । बुद्धि ।

प्रेक्षाकारी—वि० [सं० प्रेक्षाकारिन्] विचार कर काम करनेवाला । विवेकशील [को०] ।

प्रेक्षागार—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजाओं आदि के मंत्रणा करने का स्थान । मंत्रणागृह । २. प्रेक्षागृह ।

प्रेक्षागृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजाओं आदि के मंत्रणा करने का स्थान । मंत्रणागृह । २. थियेटर या नाट्य मंदिर में वह स्थान जहाँ दर्शक लोग बैठकर अभिनय देखते हैं । नाट्यशाला में दर्शकों के बैठने का स्थान ।

प्रेक्षाप्रपंच—संज्ञा पुं० [सं०] रूपक का अभिनय । नाटक ।

प्रेक्षावान्—वि० [सं० प्रेक्षावत्] ज्ञानी । विवेकी । चतुर [को०] ।

प्रेक्षावेतन—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्रानुसार लैसंस लेने का महसूल या फीस ।

प्रेक्षासंयम—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार सोने से पहले यह देख लेना कि इस स्थान पर जीव आदि तो नहीं है ।

प्रेक्षासमाज—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेक्षक समूह । दर्शकवृंद [को०] ।

प्रेक्षास्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रेक्षागृह' ।

प्रेक्षित—वि० [सं०] देखा हुआ ।

प्रेक्षिता—वि० [सं० प्रेक्षितृ] देखनेवाला । दर्शक [को०] ।

प्रेक्षी[१]—संज्ञा पुं० [सं० प्रेक्षिन्] बुद्धिमान् । समझदार ।

प्रेक्षी[२]—वि० १. देखनेवाला । दर्शक । २. सावधानी से देखनेवाला । ३. (किसी के जैसी) आँखें या दृष्टि रखनेवाला । जैसे मृगप्रेक्षणी [को०] ।

प्रेक्ष्य—वि० [सं०] दे० 'प्रेक्षणीय' [को०] ।

प्रेण—संज्ञा पुं० [सं०] १. गमित । चाल । २ प्रेरणा करना ।

प्रेत[१]—वि० [सं०] मृत । मरा हुआ । गतप्राण [वि०] ।

प्रेत[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरा हुआ मनुष्य । मृतक प्राणी । २. पुराणानुसार वह कल्पित शरीर जो मनुष्य को मरने के उपरांत प्राप्त होता है ।

विशेष—पुराणों में कहा है कि जब मनुष्य मर जाता है और उसका शरीर जला दिया जाता है तब वह आतिवाहिक या लिंग शरीर धारण करता है; और जब उसके उद्देश्य से पिंड आदि दिया जाता है, तब उसे प्रेत शरीर प्राप्त होता है । इसी प्रेत शरीर को भोग शरीर भी कहते हैं । यह शरीर मरने के उपरांत सपिंडी होने तक रहता है; और तब वह अपने कर्म के अनुसार स्वर्ग या नरक में जाता है । जिन लोगों की श्राद्ध आदि या ऊर्ध्व दैहिक क्रिया नहीं होती, वे प्रेतावस्था में ही रहते हैं । कुछ लोग अपने कर्म के अनुसार ऊर्ध्व दैहिक क्रिया हो जाने पर भी प्रेत ही बने रहते हैं । पुराणों में यह भी कहा है कि जो लोग आहुति नहीं देते, तीर्थ-यात्रा नहीं करते, विष्णु की पूजा नहीं करते, दान नहीं देते, पराई स्त्री हर लाते हैं, झूठे या निर्दय होते हैं, मादक पदार्थों का सेवन करते हैं, अथवा इसी प्रकार के और कुकर्म करते हैं, वे प्रेत होकर सदा दुःख भोगते हैं । यह भी कहा गया है कि प्रेतों का निवास मल, मूत्र आदि गंदे स्थानों में रहता है और वे निर्लज्ज होते तथा अपवित्र पदार्थ खाते हैं ।

३. पितर (को.) । ४. नरक में रहनेवाला प्राणी । ५. पिशाचों की तरह की एक कल्पित देवयोनि जिसके शरीर का रंग काला, शरीर के बाल खड़े और स्वरूप बहुत ही विकराल माना जाता है ।

यौ०—भूत प्रेत ।

६. भयंकर आकृतवाला व्यक्ति । वह व्यक्ति जिसकी आकृति विकराल हो । ७. वह व्यक्ति जो बिना थके लगातार काम करता जाय । ८. बहुत ही चालाक और कंजूस आदमी ।

प्रेतकर्म—संज्ञा पुं० [सं० प्रेतकर्मन्] हिंदुओं में दाह आदि से लेकर सपिंडी तक का वह कर्म जो मृतक के उद्देश्य से किया जाता है । प्रेतकार्य ।

प्रेतकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रेतकर्म' ।

प्रेतकृत्य—संज्ञा सं० [सं०] दे० 'प्रेतकर्म' ।

प्रेतगत—वि० [सं०] मरा हुआ । मृत [को०] ।

प्रेतगृह—संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान । मसान । मरघट । २. मृत शरीरों के रखे या गाड़े जाने आदि का स्थान ।

प्रेतगेह(५)—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रेतगृह' ।

प्रेतगोप—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेत का रक्षक । मृत शरीर का रक्षक [को०] ।

प्रेतचारी—संज्ञा पुं० [सं० प्रेतचारिन्] महादेव । शिव ।

प्रेततर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] वह तर्पण जो किसी के मरने के दिन से सपिंडी के दिन तक उसके निमित्त किया जाता है ।

विशेष—साधारण तर्पण से इसमें यह अंतर है कि यह केवल मृतक के उद्देश्य से किया जाता है और केवल सपिंडी के दिन तक होता है । इस तर्पण के साथ और पितरों का तर्पण नहीं हो सकता ।

प्रेतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रेतत्व' ।

प्रेतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेत का भाव या धर्म 'प्रेतता' ।

प्रेतदाह—संज्ञा पुं० [सं०] मृतक के जलाने आदि का कार्य ।

प्रेतदेह—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार किसी मृतक का वह कल्पित शरीर जो उसके मरने के समय से सपिंडी तक उसकी आत्मा को प्राप्त रहता है ।

विशेष—इस शरीर की उत्पत्ति उन पिंडों से होती है जो सपिंडी के दिन तक नित्य दिए जाते हैं । कहते हैं कि यह शरीर एक वर्ष तक बना रहता है और उसके उपरांत उसे भोगदेह प्राप्त होता है ।

प्रेतधूम—संज्ञा पुं० [सं०] चिता में से निकलनेवाला धूँआँ। वह धूँआ जो मृतक को जलाने से निकलता है।

प्रेतनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैतरणी नदी।

प्रेतनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेतपति। यमराज [को०]।

प्रेतनाह—संज्ञा पुं० [सं० प्रेतनाथ] यमराज।

प्रेतनिर्यातक—संज्ञा पुं० [सं०] धन लेकर प्रेत का दाह आदि करनेवाला। मुरदाफरोश।

प्रेतनिर्हारक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मृतक को उठाकर श्मशान तक ले जाय।

प्रेतनी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रेत + हिं० नी (प्रत्य०)] भूतनी। चुड़ैल।

प्रेतपक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] चांद्र आश्विन का कृष्ण पक्ष। पितृपक्ष।

प्रेतपक्ष[2]—वि० दे० 'पितृपक्ष'।

प्रेतपटह—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो किसी के मरने के समय बजाया जाता था।

प्रेतपति—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज।

प्रेतपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह बर्तन जो श्राद्ध में काम आता है [को०]।

प्रेतपावक—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रकाश जो प्रायः दलदलों, जंगलों या कब्रिस्तानों में रात के समय चलता हुआ दिखाई पड़ता है और जिसे लोग भूतों और पिशाचों की लीला समझते हैं। छलावा। लुक। उ०—उभय प्रकार प्रेतपावक ज्यों धन दुख प्रद श्रुति गायो।—तुलसी (शब्द०)।

प्रेतपिंड—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न आदि का बना हुआ वह पिंड जो मृतक के उद्देश्य से उसके मरने के दिन से लेकर सपिंडी के दिन तक नित्य दिया जाता है और जिसके विषय में यह माना जाता है कि इससे प्रेतदेह बनती है।

प्रेतपुर—संज्ञा पुं० [सं०] यमपुर। यमालय।

प्रेतभाव—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु [को०]

प्रेतभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्मशान [को०]

प्रेतमेध—संज्ञा पुं० [सं०] मृतक के उद्देश्य से होनेवाला श्राद्ध।

प्रेतयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसके करने से प्रेतयोनि प्राप्त होती है।

प्रेतराक्षसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।

विशेष—कहते हैं कि जहाँ तुलसी रहती है, वहाँ भूत प्रेत नहीं आते। इसी से उसका यह नाम पड़ा है।

प्रेतराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. यमराज। २. महादेव। शिव।

प्रेतलोक—संज्ञा पुं० [सं०] यमपुर। यमालय।

प्रेतवन—संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान। मरघट।

प्रेतवाहित—वि० [सं०] प्रेताविष्ट। भूतबाधा पीड़ित [को०]

प्रेतविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतक का दाह आदि करना।

प्रेतविमाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंच प्रेत के विमानवाली भगवती।

प्रेतशरीर—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रेतदेह'।

प्रेतशुद्धि, प्रेतशौच—संज्ञा स्त्री० [सं०] संबंधी के मरणाशौच से शुद्ध होना [को०]।

प्रेतश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के मरने की तिथि से एक वर्ष के अंदर होनेवाले सोलह श्राद्ध जिनमें सपिंडी, मासिक और षाण्मासिक आदि श्राद्ध संमिलित है।

प्रेतहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. संनिकट संबंधी जन (को०)। २. मृत शरीर को उठाकर श्मशान आदि तक ले जानेवाला। मुरदा उठानेवाला।

प्रेता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री प्रेत। पिशाची। २. भगवती कात्यायिनी का एक नाम।

प्रेतात्मिका—वि० [सं० प्रेत + आत्मिका] प्रेत से संबंधित। उ०—मुझे ऐसा लगा जैसे कोई प्रेतात्मिका छाया किसी रहस्यमय लोक से आ धमकी हो।—जिप्सी, पृ० २५।

प्रेताधिप—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज।

प्रेतान्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जो प्रेत के उद्देश्य से दिया जाय।

प्रेतायन—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम। [को०]।

प्रेतावास—संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान [को०]

प्रेताशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवती का एक नाम। २. मृतकों को खानेवाली।

प्रेताशौच—संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच जो हिंदुओं में किसी के मरने पर उसके संबंधियों आदि को होता है। मरने का अशौच। सूतक।

प्रेतास्थि—संज्ञा पुं० [सं०] मुर्दे की हड्डी।

यौ०—प्रेतास्थिधारी।

प्रेतास्थिधारी—संज्ञा पुं० [सं० प्रेतास्थिधारिन्] मुरदों की हड्डियों माला पहननेवाले, रुद्र।

प्रेति—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरण। मरना। २. गमन। जाना। पलायन (को०)। ३. अन्न। अनाज। आहार। भोजन।

प्रेतिक—संज्ञा पुं० [सं०] मृतक। प्रेत।

प्रेतिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रेत + हिं० नी (प्रत्य०)] प्रेत की स्त्री। प्रेतनी। पिशाचिनी।

प्रेती—संज्ञा पुं० [सं० प्रेत + हिं० ई (प्रत्य०)] प्रेत की उपासना करनेवाला। प्रेतपूजक। उ०—प्रजापति कहँ पूजै जोई। तिनकर वास यक्षपुर होई। भूती भूतहि यक्षी यक्षन प्रेती प्रेतन रक्षी रक्षन।—गोपाल (शब्द०)।

प्रेतीवाल—संज्ञा पुं० [देश०] वह मनुष्य जो कभी खास अपने लिये और कभी अपने मालिक के लिये काम करे। (बाजारू)।

प्रेतीवाला—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'प्रेतीवाल'।

प्रेतोपधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि का एक नाम।

प्रेतेश, प्रेतेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज।

प्रेतोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद या पागलपन जिसके विषय में यह माना जाता है कि यह प्रेतों के कोप से होता है।

विशेष—इस उन्माद में रोगी का शरीर काँपता है और उसका खाना पीना छूट जाता है। लंबी लंबी साँसें आती हैं, वह घर से निकल निकलकर भागता, है, लोगो को गालियाँ देता है और बहुत चिल्लाता है।

प्रेत्य—संज्ञा पुं० [सं०] लोकांतर। परलोक। अमुत्र।

प्रेत्यजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रेत्यभाव' (को०)।

प्रेत्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जन्म लेकर मरने और मरकर जन्म लेने की परंपरा जो मुक्ति न होने के समय तक चलती है। बार बार जन्म लेना और मरना। (दर्शन)।

प्रेत्यभाविक—वि० [सं०] प्रेत्यभाव या इहलोक संबंधी।

प्रेत्वा—संज्ञा पुं० [सं० प्रेत्वन्] १. वायु। २. इंद्र (को०)।

प्रेप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्त करने की इच्छा। २. इच्छा। कामना। ३. कल्पना। धारणा (को०)।

प्रेप्सु—वि० [सं०] १. प्राप्त करने का इच्छुक। २. अनुमान करनेवाला। धारणा करनेवाला। ३. देने का इच्छुक (को०)।

प्रेम—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मनोवृत्ति जिसके अनुसार किसी वस्तु या व्यक्ति आदि के संबंध मे यह इच्छा होती है कि वह सदा हमारे पास या हमारे साथ रहे, उसकी वृद्धि, उन्नति या हित हो अथवा हम उसका भोग करें। वह भाव जिसके अनुसार किसी दृष्टि से अच्छी जान पड़नेवाली किसी चीज या व्यक्ति को देखने, पाने, भोगने, अपने पास रखने अथवा रक्षित करने की इच्छा हो। स्नेह। मुहब्बत। अनुराग। प्रीति।

विशेष—परम शुद्ध और विस्तृत अर्थ मे प्रेम ईश्वर का ही एक रूप माना जाता है। इसलिये अधिकांश धर्मों के अनुसार प्रेम ही ईश्वर अथवा परम धर्म कहा गया है। हमारे यहाँ शास्त्रों में प्रेम अनिर्वचनीय कहा गया है और उसे भक्ति का दूसरा रूप और मोक्षप्राप्ति का साधन बतलाया है। मुमुक्षुओं के लिये शुद्ध प्रेमभाव का ही विधान है। शास्त्रों में, और विशेषत: वैष्णव साहित्य में, इस प्रेम के अनेक भेद किए गए हैं। साहित्य मे प्रेम, रति या प्रीति के तीन प्रकार माने गए हैं—(१) उत्तम, वह जिसमें प्रेम सदा एक सा बना रहे। जैसे, ईश्वर के प्रति भक्त का प्रेम। (२) मध्यम, जो अकारण हो। जैसे, मित्रों का प्रेम और (३) अधम, जो केवल स्वार्थ के कारण हो।

२. स्त्री जाति और पुरुष जाति के ऐसे जीवों का, पारस्परिक स्नेह जो बहुधा रूप, गुण, स्वभाव, सान्निध्य अथवा कामवासना के कारण होता है। प्यार। मुहब्बत। प्रीति। जैसे—(क) वे अपनी स्त्री से अधिक प्रेम करते हैं। (ख) उस विधवा का एक नोकर के साथ प्रेम था। ३. केशव के अनुसार एक अलंकार। ४. माया और लोभ। ५. कृपा। दया। उ०—अतिहि आनंद कंद वानि हूँ सुनावै। सतगुरु जब दया आनि प्रेम हूँ लगावै।—गुलाल ०, पृ०, २५। ६. क्रीड़ा। नर्म (को०)। ७. हर्ष। आनंद (को०)। ८. विनोद (को०)। ९. वायु। हवा (को०)। १०. इंद्र (को०)।

प्रेमकर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं०] प्रीति करनेवाला। प्रेमी।

प्रेमकलह—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेम के कारण हँसी दिल्लगी या झगड़ा करना।

प्रेमगरबिता⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रेम + गर्विता] दे० 'प्रेमगर्विता'। उ०—निज नायक के प्रेम कौ गरब जनावै बाल। प्रेमगरबिता कहत हैं तासौं सुमति रसाल।—मति० ग्रं०, पृ० २९२।

प्रेमगर्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में वह नायिका जो अपने पति के अनुराग का अहंकार रखती हो। वह स्त्री जिसे इस बात का अभिमान हो कि मेरा पति मुझे बहुत चाहता है। उ०—आँगन मैं पुतरी ह्वै रहै हियरा मैं हरा ह्वै सबै रस लूटै। अंगन संग बसै अँगराग ह्वै, जीव तें जीवनमूरि न टूटै। देव जू प्यारे के न्यारे सबै गुन, मो मन मानिक तें नहिं छूटै। और तियान तें तौ बतियाँ करै, मो छतियाँ तें छिनो जनि छूटै।—देव (शब्द०)।

प्रेमजल—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रस्वेद। पसीना। २. प्रेम के कारण आँखों से निकलनेवाले आँसू। प्रेमाश्रु।

प्रेमजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मरीचि ऋषि की पत्नी का नाम।

प्रेमद⑤—संज्ञा पुं० [सं० प्रिय + मद] प्रेम का नशा। प्रेममद। उ०—कहवाँ मृग नैनी वह बाला। प्रेमद दीन्ह कीन्ह मतवाला।—इंद्रा०, पृ० ११।

प्रेमनीर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेम के कारण आँखों से निकलनेवाले आँसू। प्रेमाश्रु।

प्रेमपातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेम के आवेग में रोना। २. वह आँसू जो प्रेम के कारण आँखों से निकले। ३. नेत्र जिससे अश्रु गिरें (को०)।

प्रेमपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिससे प्रेम किया जाय। माशूक।

प्रेमपाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेम का फंदा या जाल।

प्रेमपुत्तलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्यारी स्त्री। २. पत्नी। भार्या।

प्रेमपुलक—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रोमांच जो प्रेम के कारण होता है।

प्रेमप्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं०] वीणा आदि के शब्दों से जिनसे राग रागिनी निकलती है, प्रेम करना। (जैन)।

प्रेमबंध, प्रेमबंधन—संज्ञा पुं० [सं० प्रेमबन्ध, प्रेमबन्धन] प्रेम अथवा स्नेह का बंधन (को०)।

प्रेमभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार श्रीकृष्ण की वह भक्ति जो बहुत प्रेम के साथ की जाय।

प्रेमभगति⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रेम + हिं० भगति < सं० भक्ति] दे० 'प्रेमभक्ति' उ०—प्रेमभगति जल बिनु रघुराई।—मानस, ७।४९।

प्रेमभाव—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेम का भाव। स्नेह। प्रेम [को०]।

प्रेमल—वि० [सं० प्रेम + हिं० ल (प्रत्य०)] प्रेमी स्वभाववाला। स्नेही। सहृदय। उ०—इन स्वामी को कष्ट से मैं कैसे बचाऊँ इतने उदार, इतने निश्छल, इतने प्रेमल।—सुखदा, पृ० १११।

प्रेमलक्षणाभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैष्णव मतानुसार प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण के चरणों की भक्ति करना।

प्रेमलेश्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों के अनुसार वह वृत्ति जिसके अनुसार मनुष्य विद्वान्, दयालु विवेकी होता और निस्वार्थ भाव से प्रेम करता है।

प्रेमवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पत्नी। २. प्रेमिका [को०]।

प्रेमवारि—संज्ञा पुं० [सं०] वह आँसू जो प्रेम के कारण निकले। प्रेमाश्रु।

प्रेमविह्वल—वि० [सं० प्रेम+विह्वल] प्रेम से व्याकुल। प्रेममय। उ०—भर अमृतआग आज कर दो प्रेमविह्वल हृदयदल, आनंद पुलकित हों सकल तव चूम कोमल चरणतल।—अनामिका, पृ० ३३।

प्रेमांकुर—संज्ञा पुं० [सं० प्रेम + अंकुर] प्रेम का अंकुर। प्रेम का सूत्रपात। प्रेम की प्रारंभिक अवस्था। उ०—उगा रहा उर में प्रेमांकुर।—गीतिका, पृ० १५।

प्रेमांजली—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रेम + अञ्जलि] प्रेम से जुड़े हुए हाथ, प्रेमभावपूर्ण अंजलि। उ०—आराधना, प्रार्थना, पूजा, प्रेमांजली, विलाप, कलाप। 'तेरा' हूँ, तेरे चरणों में हूँ, पर कहाँ पसीजे आप।—हिम०, पृ०८८।

प्रेमा—संज्ञा पुं० [सं० प्रेमन्] १. स्नेह। २. स्नेही। ३. वासव। इंद्र। ४. वायु। ५. उपजाति वृत्त का ग्यारहवाँ भेद, जिसके पहले, दूसरे और चौथे चरण में (ज त ज ग ग) ।S। SS। ।S। SS और तीसरे चरण में (त त ज ग ग) SS। SS। SS होता है।

प्रेमाक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार आक्षेप अलंकार का एक भेद जिसमें प्रेम का वर्णन करने में ही उसमें बाधा पड़ती दिखाई जाती है। जैसे, यदि नायक से नायिका यह कहे कि 'हमारा मन तुम्हें कभी छोड़ने को नहीं चाहता; पर जब तुम उठकर जाना चाहते हो, तब हमारा मन तुमसे आगे ही चल पड़ता है।' तो यह प्रेमाक्षेप हुआ क्योंकि इसमें पहले तो यह कहा गया है कि हमारा मन तुम्हें कभी छोड़ने को नहीं चाहता, पर नायिका के इस कथन में उस समय बाधा पड़ती है, जब वह यह कहती है कि 'जब तुम उठकर जाना चाहते हो तब हमारा मन (तुमको छोड़कर) तुमसे आगे ही चल पड़ता है।' (कविप्रिया)।

प्रेमाख्यान, प्रेमाख्यानक—संज्ञा पुं० [सं०] सूफी कवियों की वह काव्यमय रचना जिसमें नायक नायिका के प्रेम की कथा वर्णित हो।

प्रेमाख्यानी—वि० [सं० प्रेमाख्यान + ई (प्रत्य०)] प्रेमाख्यान से संबंधित। प्रेमकथा संबंधी। उ०—गोस्वामी जी ने एक दूसरी काव्यपरंपरा का अनुसरण करते हुए कथा को 'प्रेमाख्यानी रंग (रोमैंटिक टर्न) देने के लिये'''धनुषयज्ञ के प्रसंग में 'फुलवारी' के दृश्य का सन्निवेश किया।'—आचार्य०, पृ० १११।

प्रेमात्मक—वि० [सं० प्रेम + आत्मक] प्रेम संबंधी। प्रेम का। उ०—प्रेमात्मक रहस्यवाद और विरह की उदात्त कल्पना सूफी सिद्धांतों की देन है।—हिंदी काव्य०, पृ० ८४।

प्रेमानंद—संज्ञा पुं० [सं० प्रेम + आनन्द] प्रेम का आनंद। प्रेम में अनुभूत आनंद। उ०—यद्यपि प्रेमदशा के भीतर सुखात्मक और दुःखात्मक दोनों प्रकार के भाव पाए जाते हैं पर काव्य में 'प्रेमानंद' शब्द पड़ता है, 'प्रेमापन्न' नहीं।—रस०, पृ० ७४।

प्रेमानल—संज्ञा पुं० [सं० प्रेम + अनल] प्रेम की आग। प्रेमाग्नि। उ०—तुझको न भले भाता हो प्रेमी का यह पागलपन। उर उर में दहक रहा पर तेरे प्रेमानल का कण।—मधुज्वाल, पृ० ११।

प्रेमापन्न—वि० [सं० प्रेम + आपन्न] प्रेम से पीड़ित। प्रेम में व्याकुल। प्रेम की पीड़ा से दुखी। उ०—पर काव्य में प्रेमानंद शब्द ही पड़ता है; प्रेमापन्न नहीं। इससे 'प्रेम आनंद स्वरूप है' यह लोकधारणा प्रकट होती है, जो साहित्य मीमांसकों को भी मान्य है।—रस०, पृ० ७४।

प्रेमालाप—संज्ञा पुं० [सं०] वह बातचीत जो प्रेमपूर्वक हो। परस्पर प्रेमी जनों की बातचीत। उ०—विहग युग्म ही विह्वल सुख से आप। पंखों से प्रिय पंख मिला करते हैं प्रेमालाप।—युगवाणी, पृ० ७१।

प्रेमालिंगन—संज्ञा पुं० [सं० प्रेम + आलिङ्गन] १. प्रेमपूर्वक गले लगाना। २. कामशास्त्र के अनुसार नायक और नायिका का एक विशेष प्रकार का आलिंगन।

प्रेमाश्रु—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेम के आँसू। वे आँसू जो प्रेम के कारण आँखों से निकलते हैं।

प्रेमास्पद—संज्ञा पुं० [सं० प्रेम + आस्पद] प्रिय। प्रेमी। उ०—मधुर चाँदनी सी तंद्रा जब फैली मूर्छित मानस पर, तब अभिन्न प्रेमास्पद उसमें अपना चित्र बना जाता।—कामायनी, पृ० १८०।

प्रेमिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो प्रेम करता हो। प्रेम करनेवाला। प्रेमी।

प्रेमी[1]—संज्ञा पुं० [सं० प्रेमिन्] १. वह जो प्रेम करता हो। प्रेम करनेवाला। चाहनेवाला। अनुरागी। २. आशिक। आसक्त।

प्रेमी[2]—वि० प्रेमपूर्ण। स्नेहपूर्ण [को०]।

प्रेमोत्कर्ष—संज्ञा पुं० [सं० प्रेम + उत्कर्ष] प्रेम की उच्चता। प्रेम की प्रबलता। प्रेम का आधिक्य। उ०—उसी प्रकार उदारता, वीरता, त्याग, दया, प्रेमोत्कर्ष इत्यादि कर्मों और मनोवृत्तियों का सौंदर्य भी मन में जगाती है।—रस०, पृ० ३१।

प्रेयस्मार्ग—संज्ञा पुं० [सं० प्रेयस्मार्ग] वह मार्ग जो मनुष्य को सांसारिक विषयों में फँसाता है। अविद्यामार्ग।

प्रेय¹—संज्ञा पुं० [सं० प्रेयस्] एक प्रकार का अलंकार जिसमें कोई भाव किसी दूसरे भाव अथवा स्थायी का अंग होता है।

प्रेय²—वि० प्रिय। प्यारा।

प्रेयर—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. प्रार्थना। स्तुति। २. ईश्वरप्रार्थना।

प्रेयस्¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्रेयसी] सबसे प्यारा। बहुत प्यारा। प्रियतम।

प्रेयस्²—संज्ञा पुं० १. प्यारा व्यक्ति। प्रियतम। २. पति (को०)। ३. प्रिय मित्र (को०)। ४. चापलूसी (को०)।

प्रेयान्—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रेयस्' (को०)।

प्रेयसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्त्री जिसके साथ प्रेम किया जाय। प्यारी स्त्री। प्रेमिका। २. पत्नी। स्त्री (को०)।

प्रेरक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेरणा करनेवाला। उत्तेजना देने या दबाव डालनेवाला। किसी काम में प्रवृत्त करनेवाला। २. भेजनेवाला (को०)। ३. निर्देश करनेवाला (को०)।

प्रेरकता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रेरक + ता (प्रत्य०)] प्रेरणा देने का भाव। उ०—शास्त्रनहू कछु प्रेरकता कहि उलटो दियो भुलाई। सब मैं मिल्यो सबन सों न्यारो कैसे यह न बुझाई। —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४१।

प्रेरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी को किसी काम में लगाना। कार्य में प्रवृत्त करना। २. फेंकना। प्रक्षेपण (को०)। ३. भेजना। प्रेषण (को०)। ४. आदेश। निर्देश (को०)। ५. सक्रियता। परिश्रमशीलता (को०)।

प्रेरणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी को किसी कार्य में लगाने की क्रिया। कार्य में प्रवृत्त या नियुक्त करना। दबाव डालकर या उत्साह देकर काम में लगाना। उत्तेजना देना। २. दबाव। जोर। धक्का। झटका। ३. फेंकना (को०)। ४. भेजना। प्रेषण (को०)। ५. आदेश। निर्देश (को०)। ६. सक्रियता। परिश्रमशीलता (को०)।

प्रेरणार्थक क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रिया का वह रूप जिससे क्रिया के व्यापार के संबंध में यह सूचित होता है कि वह किसी की प्रेरणा से कर्ता के द्वारा हुआ है। जैसे,—लिखना का प्रेरणार्थक रूप है लिखाना या लिखवाना; देना का दिलाना या दिलवाना; पढ़ना का पढ़वाना।

प्रेरणीय—वि० [सं०] प्रेरणा करने के योग्य। किसी काम के लिये प्रवृत्त या नियुक्त करने के योग्य।

प्रेरना⁊†—क्रि० स० [सं० प्रेरणा] १. प्रेरणा करना। चलाना। २. भेजना। पठाना। उ०—(क) तब उस शुद्ध आचारवाले काकुत्स्थ ने दुष्टों का प्रेरा हुआ दूषण न सहा।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०)। (ख) भूतन बान प्रेरि रघुबीरा। बिरह बिबस भा सिथिल सरीरा।—रामाश्वमेध (शब्द०)।

प्रेरयिता—संज्ञा पुं० [सं० प्रेरयितृ] [स्त्री० प्रेरयित्री] १. प्रेरणा करनेवाला। उभाड़नेवाला। २. भेजनेवाला। ३. आज्ञा देनेवाला।

प्रेरित—वि० [सं०] १. जो किसी कार्य के लिये प्रेरित या नियुक्त किया गया हो। २. भेजा हुआ। प्रचालित। प्रेषित। ३. ढकेला हुआ। धक्का दिया हुआ।

प्रेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेरणा। २. पीड़ा। कष्ट (को०)।

प्रेषक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेजनेवाला। २. प्रेरक।

प्रेषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रेरणा करना। २. भेजना। रवाना करना।

प्रेषणीय—वि० [सं०] १. भेजने योग्य। २. प्रेरित करने योग्य। ३. दूसरे तक पहुँचाने लायक। दूसरे के मन में जमाने योग्य। उ०—उसे प्रेषणीय बनाने के लिये—दूसरों के हृदय तक पहुँचाने के लिये—भाषा का सहारा लेना पड़ता है।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १०४।

प्रेषणीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेषित होने का भाव। दूसरे के हृदय तक पहुँचने की स्थिति। उ०—उनकी रचनाएँ स्वांतःसुखाय हैं, पर उनमें प्रेषणीयता बहुत है।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० २३६।

प्रेषना⁊—क्रि० स० [सं० प्रेषण] प्रेषित करना। भेजना।

प्रेषित¹—वि० [सं०] १. प्रेरित। प्रेरणा किया हुआ। २. भेजा हुआ। रवाना किया हुआ। ३. निर्वासित (को०)।

प्रेषित²—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सारे, रेग, गम, मप, पध धनि, निसा। सानि, निध, धप, पम, मग, गरे, रेसा।

प्रेषितव्य—वि० [सं०] जो प्रेषण करने के योग्य हो।

प्रेष्ठ¹—वि० [सं०] [स्त्री० प्रेष्ठा] अतिशय प्रिय। प्रियतम। बहुत प्यारा।

प्रेष्ठ²—संज्ञा पुं० पति। प्रियतम (को०)।

प्रेष्ठतमा—वि० स्त्री० [सं० प्रेष्ठ + तम] सबसे अधिक प्रिय। सर्वाधिक प्रिय। उ०—प्रेष्ठतमा नायिका के साथ इस···सुखोपभोग के लिये वह कितना उत्कंठित है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १४४।

प्रेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह जो बहुत प्यारी हो। अत्यंत प्रिय स्त्री। २. जाँघ।

प्रेष्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दास। सेवक। २. दूत। ३. सेवा (को०)।

प्रेष्य²—वि० १. जो प्रेषण करने के योग्य हो। जिसे भेजा जाय।

प्रेष्यजन—संज्ञा पुं० [सं०] नौकर समूह। दाससमुदाय (को०)।

प्रेष्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दासत्व। २. दूतत्व।

प्रेष्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] दासत्व। गुलामी (को०)।

प्रेष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। सेविका (को०)।

प्रेस—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह कल जिससे कोई चीज दबाई या कसी जाय। पेंच। २. हाथ से चलाने की वह कल जिससे छपाई

का काम होता है। छापने की कल। ३. वह स्थान जहाँ पुस्तकों आदि की छपाई का काम होता हो। छापाखाना।

मुहा०—(किसी चीज का) प्रेस में होना = (किसी चीज की) छपाई का काम जारी रहना। छपना। जैसे, अभी वह पुस्तक प्रेस में है।

यौ०— प्रेस ऐक्ट। प्रेस कम्यूनिक। प्रेस मशीन। प्रेस रिपोर्टर।

प्रेस ऐक्ट—संज्ञा पुं० [अं०] वह कानून जिसके द्वारा छापाखानेवालों के अधिकारों और स्वतंत्रता आदि का नियंत्रण होता है।

विशेष—ऐसा कानून उनको उच्छृंखल होने, राजकीय अथवा सामाजिक नियमों को तोड़ने, अथवा इसी प्रकार के और काम करने से रोकता है। जो छापाखानेवाले ऐसे नियमों का भंग करते हैं, उन्हें इसी कानून के द्वारा दंड दिया जाता है।

प्रेस कम्यूनिक—संज्ञा पुं० [अं० प्रेस + कम्यूनिक] किसी विषय के संबंध में वह सरकारी विज्ञप्ति या वक्तव्य जो अखबारों को छापने के लिये दिया जाता है। जैसे,—सरकार ने प्रेस कम्यूनिक निकाला है कि अफसरों को डालियाँ आदि नजर न करें।

प्रेसमैन—संज्ञा पुं० [अं०] छापे की कल चलानेवाला मनुष्य। वह जो प्रेस पर कागज छापता हो।

प्रेस रिपोर्टर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'रिपोर्टर'—१।

प्रेसिडेंट—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी सभा या समिति आदि का प्रधान। सभापति। अध्यक्ष। २. राष्ट्रपति। जैसे, अमेरिका के प्रेसिडेंट का निर्वाचन।

प्रेसिडेंसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. प्रेसिडेंट का पद या कार्य। सभापति का ओहदा या काम। २. ब्रिटिश भारत में शासन के सुबीते के लिये कुछ निश्चित प्रदेशों या प्रांतों का किया हुआ विभाग जो एक गवर्नर या लाट की अधीनता में होता था। बंगाल प्रेसिडेंसी, मदरास प्रेसिडेंसी और बंबई प्रेसिडेंसी ये तीन प्रेसिडेंसियाँ उस समय भारत में थीं।

प्रेस्क्रिप्शन—संज्ञा सज्ञा पुं० (अं०) रोगी के लिये डाक्टर की लिखी हुई औषध या दवा। औषध या दवा का पुरजा। नुसखा। उ०—डाक्टरी प्रेस्क्रिप्शन के एक अत्यंत कड़वे मिक्सचर की तरह उस भाव को चुपचाप एक घूँट में पी गया।—संन्यासी, पृ० ४३६।

प्रेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रिय का भाव। स्नेह। प्रेम। २. कृपा। दया।

प्रैयव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो प्रियव्रत के वंश में हो।

प्रैष—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्लेश। कष्ट। दुःख। २. मर्दन। ३. उन्माद। पागलपन। ४. प्रेषण। भेजना। ५. वह शब्द या वाक्य जिसमें किसी प्रकार की आज्ञा हो।

प्रैषिक—वि० [सं०] आदेश माननेवाला (जैसे नौकर)।

प्रैष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दास। सेवक। २. दासत्व।

प्रोंछन—संज्ञा पुं० [सं० प्रोञ्छन] १. मिटाना। पोंछना। २. बचे हुए अंश का चुनना (को०)।

प्रोंठ—संज्ञा पुं० [सं० प्रोष्ठ] पीकदान। उगालदान।

प्रोक्त[1]—वि० [सं०] कथित। कहा हुआ। २. पूर्वोक्त। पूर्वसूचित (को०)।

प्रोक्त[2]— क्रि० वि० कथित या सूचना होने के बाद [को०]।

प्रोक्लेमेशन—संज्ञा पुं० [अं०] १. राजाज्ञा या सरकारी सूचनाओं का प्रचार। घोषणा। एलान। २. ढिंढोरा। डुग्गी।

प्रोक्ष—वि० [सं० परोक्ष] दे० 'परोक्ष'। उ०—देह ई को बंध मोक्ष देह ई प्रप्रोक्ष प्रोक्ष, देह ई किया कर्म, शुभाशुभ ठाम्यो है।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ० ५६१।

प्रोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] पानी छिड़कना। २. यज्ञ में वध के पहले बलिपशु पर पानी छिड़कना। ३. पानी का छींटा। ४. वध। हिंसा। हत्या। ५. विवाह की परिछन नामक रीति। ६. श्राद्ध आदि में होनेवाला एक संस्कार।

प्रोक्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यज्ञ का वह पात्र जिसमें पशु पर छिड़कनेवाला जल रहता है। २. कुश की मुद्रिका जो होमादि के समय अनामिका में धारण की जाती है।

प्रोक्षणीय[1]—वि० [सं०] प्रोक्षण कार्य के योग्य। छिड़का जानेवाला [को०]।

प्रोक्षणीय[2]—संज्ञा पुं० प्रोक्षण कार्य में प्रयुक्त जल। वह जल जो छिड़का जाय [को०]।

प्रोक्षित[1] —वि० [सं०] १. सींचा हुआ। २. जल का छींटा मारा हुआ। ३. वध किया हुआ। मारा हुआ। ४. बलिदान किया हुआ।

प्रोक्षित[2]—संज्ञा पुं० वह मांस जो यज्ञ के लिये संस्कृत किया गया हो।

विशेष—ऐसा मांस खाने में किसी प्रकार का दोष नहीं माना जाता है।

प्रोक्षितव्य—वि० [सं०] जो प्रोक्षण के योग्य हो।

प्रोग्राम—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी सभा, समाज, नाटक, संगीत अथवा व्यक्ति के होनेवाले कार्यों की सिलसिलेवार सूची। होनेवाले कार्यों आदि का निश्चित क्रम। कार्यक्रम। उ०—वरच, यात्रा के प्रोगाम का निर्माण ही कठिन था।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३२। २. वह पत्र जिसमें इस प्रकार का कोई क्रम या सूची हो। कार्यक्रमसूचक पत्र।

प्रोच्चंड—वि० [सं० प्रोच्चण्ड] अत्यंत भयंकर। अत्यंत प्रचंड [को०]।

प्रोच्छून—वि० [सं०] १. फैला हुआ। विस्तृत। २. सूजा हुआ [को०]।

प्रोज—संज्ञा पुं० [अं०] गद्य। उ०—पोइट्री में बोलती थी प्रोज में बिलकुल भद्दी।—कुकुर०, पृ० १६।

प्रोज्जासन—संज्ञा पुं० [सं०] हत्या। वध [को०]।

प्रोज्ज्वल—वि० [सं० (उप०) प्र + उज्ज्वल] दीप्त। ज्योतिर्मय। प्रगट। स्पष्ट। उ०—उसके भीतर का पुरुष प्रोज्ज्वल हुआ।—सुनीता, पृ० २४७।

प्रोज्झन—संज्ञा पुं० [सं०] त्याग। दूरीकरण [को०]।

प्रोज्झित—वि० [सं०] त्यक्त। तिरस्कृत [को०]।

प्रोटीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक पदार्थ जो प्राणियों और पौधों की शरीररक्षा के लिये आवश्यक होता है । इसमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन और नाइट्रोजन तथा थोड़ा गंधक रहता है ।

प्रोटेस्टेंट—संज्ञा पुं० [अं०] ईसाइयों का एक संप्रदाय ।

विशेष—इसका आरंभ यूरोप में सोलहवीं शताब्दी में उस समय हुआ था जब लूथर ने ईसाई धर्म का संस्कार आरंभ किया था । इस संप्रदाय के लोग रोमन कैथोलिक संप्रदायवालों का और साथ ही पोप के प्रबल अधिकारों का विरोध और मूर्तिपूजा आदि का निषेध करते हैं । कुछ दिनों तक इस मत की बहुत प्रबलता थी, और अब भी ईसाई देशों में इस संप्रदाय के लोगों की संख्या अधिक है ।

प्रोढ़[1]—वि० [सं०] दे० 'प्रौढ़' [को०]

प्रोढ़[2]—संज्ञा पुं० [सं० प्रौढ या देश०] एक प्रकार का डिंगल गीत । इसे सोरठिया भी कहते हैं । उ०—विषम चले सम विषम चले सम पद चहुं ढालों चुणजे, सुध अखरोट मंझ सरसावे गीत प्रोढ सो गुणजी ।—रघु० रू०, पृ० ८२ ।

प्रोढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रौढ़ा' ।

प्रोढ़ि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रौढ़ि' ।

प्रोत[1]—वि० [सं०] १. किसी में अच्छी तरह मिला हुआ । २. सीया या गाँठ दिया हुआ । गूँथा हुआ । ३. छिपा हुआ । घुसा हुआ । प्रविष्ट (को०) । ४. खचित । जड़ा हुआ (को०) ।

प्रोत[2]—संज्ञा पुं० वस्त्र । कपड़ा ।

प्रोत्कंठ—वि० [सं० प्रोत्कण्ठ] २. अत्यधिक उत्कंठित [को०] ।

प्रोत्कट—वि० [सं०] बहुत बड़ा । अत्यंत महान् ।

प्रोत्कट भृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रिय नौकर । २. ऊँचा पदाधिकारी ।

प्रोत्कर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सर्वप्रधान । सर्वोत्कृष्ट । सर्वश्रेष्ठ [को०] ।

प्रोत्तुंग—वि० [सं० प्रोत्तुङ्ग] बहुत ऊँचा [को०] ।

प्रोत्तेजित—वि० [सं०] अत्यंत उत्तेजित । उत्तेजना से भरा हुआ । भड़काया हुआ । उ०—इसके उद्धार करने की प्रबल इच्छा से प्रोत्तेजित मंडली ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७० ।

प्रोत्थित—वि० [सं०] आधार पर रखा या टिका हुआ । उठाया हुआ । ऊँचा किया हुआ ।

प्रोत्फल—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ की जाति का एक वृक्ष ।

प्रोत्फुल्ल—वि० [सं०] अच्छी तरह खिला हुआ । विकसित ।

प्रोत्सारण—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्त होना । पिंड छुड़ाना । हटाना । दूर करना [को०] ।

प्रोत्सारित—वि० [सं०] १. हटाया हुआ । अलग किया हुआ । पिंड छुड़ाया हुआ । २. उत्साहित किया हुआ । उकसाया हुआ । ३. छोड़ा हुआ । परित्यक्त । ४. दिया हुआ । प्रदत्त [को०] ।

प्रोत्साह—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक उत्साह या उमंग ।

प्रोत्साहक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] उत्साह बढ़ानेवाला । हिम्मत बँधानेवाला ।

प्रोत्साहकता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रोत्साहक + ता (प्रत्य०)] प्रोत्साहन का भाव । उत्साह । उ०—उल्लास या प्रोत्साहकता के संपर्क से शैली में एक प्रकार का बल, एक प्रकार का ओज उत्पन्न हो जाता है ।—शैली, पृ० ८६ ।

प्रोत्साहन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्रोत्साहित] खूब उत्साह बढ़ाना । हिम्मत बँधाना । उत्तेजित करना ।

प्रोत्साहित—वि० [सं०] खूब उत्साहित । (जिसका) उत्साह खूब बढ़ाया गया हो । (जो) खूब उत्तेजित किया गया हो । (जिसकी) हिम्मत खूब बँधाई गई हो ।

प्रोत्सिक—वि० [सं०] अत्यंत अभिमानी । बड़ा घमंडी [को०] ।

प्रोथ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़े की नाक या नाक के आगे का भाग । २. सूअर का थूथन । ३. कमर । ४. नाभि के नीचे का भाग । पेड़ू । ५. स्त्री का गर्भाशय । ६. गड्ढा । गर्त । गड़हा । ७. कटि का पश्चाद्भाग । नितंब । स्फिक् (को०) । ८. वस्त्र । शाटक । साड़ी । ९. भीषण । भय । (को०) । १०. पथिक । यात्री (को०) ।

प्रोथ[2]—वि० १. स्थापित । रखा हुआ । २. भीषण । भयानक । ३. विख्यात । प्रसिद्ध । मशहूर । ४. यात्रा पर गया हुआ (को०) ।

प्रोथथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़े का हिनहिनाना । २. अश्व की नाक या थूथन (को०) ३. सूकर का थूथन (को०) ।

प्रोथी—संज्ञा पुं० [सं० प्रोथिन्] घोड़ा । अश्व । (डिं०) ।

प्रोदक—वि० [सं०] आर्द्र । गीला । तर [को०] ।

प्रोदर—वि० [सं०] बड़े पेटवाला । तुंदिल [को०] ।

प्रोद्गत—वि० [सं०] आगे को निकला हुआ । उन्नत । प्रलंब [को०] ।

प्रोद्गीर्ण—वि० [सं०] अपाकृत । निःसृत [को०] ।

प्रोद्घुष्ट—वि० [सं०] ध्वनित होनेवाला । जोर की ध्वनि करनेवाला ।

प्रोद्घोषण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रोद्घोषणा] १. घोषणा करना । २. जोर की ध्वनि करना [को०] ।

प्रोद्दीप्त—वि० [सं०] जलता हुआ । प्रज्वलित ।

प्रोद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर उठाना । उद्धार करना [को०] ।

प्रोद्भिन्न—वि० [सं०] १. भेद कर बाहर निकला हुआ । २. अंकुरित [को०] ।

प्रोद्यत—वि० [सं०] १. उठाया हुआ । २. सक्रिय । उद्योगी [को०] ।

प्रोनोट—संज्ञा पुं० [अं०] वह कागज जिसे कर्ज की शर्तों के साथ लिखकर कर्ज लेनेवाला महाजन को देता है ।

प्रोन्नत—वि० [सं०] १. बहुत ऊँचा । २. आगे को निकला हुआ । ३. शक्तिशाली । बली [को०] ।

प्रोपैगैंडा—संज्ञा पुं० [अं०] १. व्याख्यान, उपदेश, विज्ञापन, पुस्तिका, समाचारपत्र आदि के द्वारा किसी मत या सिद्धांत के प्रचार करने का ढंग या काम । प्रचार कार्य । जैसे,—(क) आजकल कांग्रेस की ओर से विदेशों में अच्छा प्रोपैगैंडा हो रहा है । (ख) आर्यसमाजियों ने वहाँ मिशनरियों के विरुद्ध प्रोपैगैंडा किया ।

प्रोपोज—क्रि० स० [अं०] १. तजवीज करना । २. प्रस्ताव करना ।

प्रोपोजल—संज्ञा पुं० [अं०] प्रस्ताव ।

प्रोप्राइटर—संज्ञा पुं० [अं०] मालिक । स्वामी । अध्यक्ष ।

प्रोफेसर—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी विषय का पूर्ण ज्ञाता । भारी पंडित या विद्वान् । २. किसी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय आदि का अध्यापक । वह जो किसी कालिज आदि में शिक्षक हो ।

प्रोफेसरी—संज्ञा स्त्री० [अं० प्रोफेसर + हिं० ई (प्रत्य०)] प्राध्यापन । पढ़ाने का कार्य । उ०—उन्नाव में उनकी खासी अच्छी जमींदारी है, और प्रोफेसरी से उन्हें जो कुछ मिलता है वह एक तरह से बाते में ही समझो ।—संन्यासी, पृ० ३७६ ।

प्रोबेशन—संज्ञा पुं० [अं०] वह परीक्षा या जाँच जो किसी व्यक्ति के कार्य के संबंध में निर्धारित की जाय । यह देखना कि यह व्यक्ति अमुक कार्य कर सकेगा या नहीं । काम करने की योग्यता के संबंध में जाँच । जैसे,—अभी तो वे तीन महीने के लिये प्रोबेशन पर रखे गए हैं; यदि ठीक तरह से काम करेंगे तो स्थायी रूप से उनकी नियुक्ति हो जायगी ।

प्रोबेशनरी—वि० [अं०] १. प्रोबेशन के संबंध का । योग्यता की जाँच से संबंध रखनेवाला । २. जो कुछ निर्धारित समय तक इस शर्त पर रखा जाय कि यदि संतोषजनक कार्य करेगा तो स्थायी रूप से रख लिया जाएगा ।

प्रोमिसरी नोट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'प्रामीसरी नोट' ।

प्रोमोशन—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी पदाधिकारी का अपने पद से ऊँचे पद पर नियुक्त किया जाना । तरक्की । २. विद्यार्थी का किसी कक्षा में से आगे की कक्षा में भेजा जाना । दर्जा चढ़ना ।

प्रोयनाⓅ¹—क्रि० सं० [हिं० पिरोना] बेधना । उ०—सँग लसक्कर-खान रा, प्रोया सेल प्रमांण ।—रा० रू०, पृ० १४२ ।

प्रोलेतेरियट—संज्ञा पुं० [अं० प्रोलिटेरियट] सर्वहारा वर्ग । श्रमिक वर्ग । मजदूर श्रेणी ।

प्रोलेतेरियन—वि० [अं० प्रोलिटेरियन] सर्वहारा वर्ग से संबंधित । सर्वहारा वर्ग का । उ०—ईसा द्वारा प्रचारित कम्यूनिज्म में और मार्क्स द्वारा प्रचारित प्रोलेतेरियन क्रांति के स्वरूपों में बहुत अंतर था ।—जिप्सी, पृ० २१५।

प्रोवाइसचांसलर—संज्ञा पुं० [अं०] उपकुलपति । वाइसचांसलर या या कुलपति का सहायक अधिकारी ।

प्रोल्लाघित—वि० [सं०] १. निरामय । नीरुज । २. दृढांग । पुष्ट-शरीर [को०] ।

प्रोल्लासी—वि० [सं० प्रोल्लासिन्] देदीप्यमान । कांतियुक्त [को०] ।

प्रोल्लेखन—संज्ञा पुं० [सं०] खुरचना । कुरेदना [को०] ।

प्रोष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक दुःख या कष्ट । संताप । दाह ।

प्रोषक—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक देश का नाम ।

प्रोषित—वि० [सं०] १. जो विदेश में गया हो । प्रवासी । जैसे, प्रोषितपति आदि । २. दूरगत । दूर गया हुआ [को०] ।

प्रोषितनायक, प्रोषितपति—संज्ञा पुं० [सं०] वह नायक जो विदेश में अपनी पत्नी के वियोग से विकल हो । विरही नायक ।

प्रोषितपतिका (नायिका)—संज्ञा स्त्री० [सं०] पति के विदेश जाने से दुःखित स्त्री । प्रवत्स्यत्प्रेयसी । वह नायिका जो अपने पति के परदेश में होने के कारण दुखी हो । विदेश गए हुए व्यक्ति की शोकातुर स्त्री या प्रेमिका ।

विशेष—साहित्य में इसके मुग्धा, मध्या, स्वकीया, परकीया आदि अनेक भेद माने गए हैं ।

प्रोषितप्रेयसी—संज्ञा स्त्री० [सं० दे० प्रोषितपतिका'।

प्रोषितभर्तृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रोषितपतिका' ।

प्रोषितभार्य—संज्ञा पुं० [सं० प्रोषितभार्य] वह नायक जो अपनी भार्या के विदेश जाने के कारण दुःखी हो ।

प्रोषितमरण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रवास में मरण । विदेश में मृत्यु [को०] ।

प्रोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की मछली । सौरी । २. गो । गाय । ३. बैल । वृषभ (को०) । ४. महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम जो दक्षिण में था ।

प्रोष्ठपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्र । २. भाद्रपद मास । भादों का महीना ।

प्रोष्ठपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्र ।

प्रोष्ठपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद मास की पूर्णिमा ।

प्रोष्ठपाद—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्र ।

प्रोष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौरी नाम की मछली ।

प्रोष्ण—वि० [सं०] जो बहुत गरम हो । अत्यंत उष्ण ।

प्रोसीडिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी सभा या समिति के अधिवेशन में संपन्न हुए कार्यों का लेखा या विवरण । कार्यविवरण । जैसे,—गत अधिवेशन की प्रोसीडिंग पढ़ी गई ।

प्रोसीडिंग बुक—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह बही या किताब जिसमें किसी सभा या समिति के अधिवेशनों में संपन्न हुए कार्यों का विवरण लिखा जाता है । कार्यविवरण पुस्तक । जैसे, प्रोसीडिंग बुक में यह बात लिखी जानी चाहिए ।

प्रोसेशन—संज्ञा पुं० [अं०] धूमधाम की सवारी । जुलूस । शोभायात्रा । जैसे,—महासभा के प्रेसिडेंट का प्रोसेशन बड़ी धूमधाम से निकला ।

प्रोह¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी का पैर । २. तर्क । ३. पर्व ।

प्रोह²—वि० १. बुद्धिमान् । चतुर । २. तार्किक । तर्क या विचार करनेवाला (को०) ।

प्रोहित†—संज्ञा पुं० [सं० पुरोहित] दे० 'पुरोहित' । उ०—गुरु नृप, गुरु माता पिता, गुरु प्रोहित, गुरु छद । बिह्फे गुरु दीरघ गुरु, सब के गुरु गोविंद ।—मंद० ग्रं०, पृ० ७४ ।

प्रौढ़¹—वि० [सं० प्रौढ] [वि० स्त्री० प्रौढ़ा] १. अच्छी तरह बढ़ा

हुआ। २. जिसकी अवस्था अधिक हो चली हो। जिसकी युवावस्था समाप्ति पर हो। ३. पक्का। पुष्ट। मजबूत। दृढ़। ४. पुराना। ५. गंभीर। गूढ़। ६. निपुण। होशियार। चतुर। ७ घना। सघन। भरा हुआ। परिपूर्ण। (को०)। ८. उद्धत। प्रगल्भ। अभिमानी (को०)। ९. विलासी (को०)। १०. विरुद्ध (को०)। ११. उठाया या ऊपर किया हुआ। १२. तर्कित। विरोध किया हुआ (को०)। १३. बड़ा। महान् (को०)। १४. व्यस्त। लीन (को०)।

प्रौढ़²—संज्ञा पुं० तांत्रिकों का चौबीस अक्षरों का एक मंत्र।

प्रौढ़जलद—संज्ञा पुं० [सं० प्रौढजलद] घने बादल (को०)।

प्रौढ़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रौढ़ता] प्रौढ़ होने का भाव। प्रौढ़त्व।

प्रौढ़त्व—संज्ञा पुं० [सं० प्रौढत्व] प्रौढ़ होने का भाव। प्रौढ़ता।

प्रौढ़पाद—संज्ञा पुं० [सं० प्रौढपाद] पैर के दोनों तलुए जमीन पर रखकर बैठना। उकड़ूँ बैठना।

विशेष—शास्त्रों में इस प्रकार बैठकर, भोजन, स्नान, तर्पण, पूजन, अध्ययन आदि कार्य करने का निषेध है।

प्रौढ़पुष्प—वि० [सं० प्रौढपुष्प] पूर्णतः विकसित। पूरा खिला हुआ (को०)।

प्रौढ़मताधिकार—संज्ञा पुं० [सं० प्रौढ़ + मत + अधिकार] प्रजातांत्रिक शासन की वह व्यवस्था जिसमें प्रत्येक प्रौढ़ (बालिग) माने गए व्यक्ति को चुनाव में अपना मत देने का अधिकार होता है।

प्रौढ़मनोरमा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रौढमनोरमा] सिद्धांतकौमुदी की एक टीका या व्याख्या।

प्रौढ़वाद—संज्ञा पुं० [सं० प्रौढवाद] दृढ़ कथन। प्रबल उक्ति (को०)।

प्रौढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रौढा] १. अधिक वयसवाली स्त्री। वह स्त्री जिसे जवान हुए बहुत दिन हो चुके हों। २. साहित्य में एक नायिका। वह नायिका जो कामकला आदि अच्छी तरह जानती हो।

विशेष—साधारणतः ३० वर्ष से ५० या ५५ वर्ष तक की आयु-वाली स्त्री प्रौढ़ा मानी जाती है। भावप्रकाश के अनुसार ऐसी स्त्री वर्षा और वसंत ऋतु में संभोग करने के योग्य होती है। साहित्य में इसके रतिप्रीता और आनंदसंमोहिता ये दो भेद माने गए हैं। मानभावानुसार धीरा, अधीरा और धीरा-धीरा ये तीन भेद तथा स्वाभावानुसार अन्यसुरतदुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता और मानवती ये तीन भेद माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त स्वकीया, परकीया और सामान्या ये तीन भेद इसमें लगते हैं।

प्रौढ़ाअधीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रौढाअधीरा] वह प्रौढ़ा नायिका जो अपने नायक में विलाससूचक चिह्न देखने पर प्रत्यक्ष कोप करे। वह प्रौढ़ा जिसमें अधीरा नायिका के लक्षण हों।

प्रौढ़ाधीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रौढाधीरा] वह प्रौढ़ा नायिका जो अपने नायक में विलाससूचक चिह्न देखने पर प्रत्यक्ष कोप न करके व्यंग्य से कोप प्रकट करे। ताना देकर कोप प्रकट करनेवाली प्रौढ़ा।

प्रौढ़ाधीराधीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रौढाधीराधीरा] साहित्य में वह नायिका जो अपने नायक में परस्त्रीगमन के चिह्न देखने पर कुछ प्रत्यक्ष और कुछ व्यंग्यपूर्वक कोप प्रकट करे। वह प्रौढ़ा जिसमें धीराधीरा के गुण हों।

प्रौढ़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रौढि] १. सामर्थ्य। शक्ति। २. धृष्टता। ढिठाई। ३. प्रौढ़ता। ४. वादविवाद। ५. पूर्ण वृद्धि (को०)।

यौ०—प्रौढ़िवाद = प्रौढ़वाद।

प्रौढ़ोकति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रौढोक्ति] एक अलंकार। दे० 'प्रौढ़ोक्ति'। उ०—प्रौढ़ोकति तासों कहत, भूषन कवि विरदैत। भूषन ग्रं०, पृ० ६०।

प्रौढ़ोक्ति—संज्ञा पुं० [सं० प्रौढोक्ति] १. अलंकार विशेष जिसमें उत्कर्ष का जो हेतु नहीं है वह हेतु कल्पित किया जाय। २. दृढ़ कथन। हठोक्ति। ३. गूढ़ रचना। किसी बात को बहुत बढ़ाकर कहना।

प्रौण—वि० [पुं०] प्रवीण। चतुर। होशियार (को०)।

प्रौष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] सौरी मछली।

प्रौष्ठपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर के निधिरक्षकों में से एक का नाम। २. भाद्रमास का नाम। भादों। प्रोष्ठपद।

प्रौष्ठपदिक—संज्ञा सं० [सं०] भाद्रपद। भादों।

प्रौष्ठपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रमास की पूर्णिमा।

प्रौह—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रोह'।

प्लक—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का कमर के नीचे का भाग।

प्लक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाकर नाम का वृक्ष। पिलखन। २. पुराणानुसार सात कल्पित द्वीपों में से एक द्वीप का नाम।

विशेष—कहते हैं, यह जंबुद्वीप के चारों ओर है। और दो लाख योजन विस्तृत है। इसमें शांतभय, शिशिर, सुखोदय, आनंद, शिव, क्षेमक और ध्रुव नामक सात वर्ष और गोमेद, चंद्र, नारद, दुंदुभि, सोमक, सुमना और वैभ्राजक नाम के सात पर्वत माने जाते हैं। भागवत में इसके वर्षों का नाम शिव, वयस, सुभद्र, शांत, क्षेम, अमृत और अभय तथा पर्वतों का नाम मणिकूट, वज्रकूट, इंद्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल लिखा है। विष्णुपुराण के अनुसार अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, क्रमु, अमृता और सुकृता नाम की सात नदियाँ हैं, पर भागवत में उनका नाम अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभात, ऋतंभरा और सत्यंभरा दिया है। कहते हैं, इस द्वीप में युगव्यवस्था नहीं है, इसमें सदा त्रेतायुग बना रहता है। यहाँ चातुर्वर्ण्य का नियम है। इस द्वीप में प्लक्ष का एक बहुत बड़ा वृक्ष है, इसी से इसे प्लक्षद्वीप कहते हैं। ३. अश्वत्थ वृक्ष। पीपल। ४. बड़ी खिड़की या दरवाजा। ५. पार्श्वस्थ या पिछला दरवाजा (को०) ६. द्वार के पास की भूमि (को०)। ७. एक तीर्थ का नाम।

प्लक्षजाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती नदी का एक नाम।

प्लक्षतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

प्लक्षप्रस्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्लक्षराज'।

प्लक्षराज—संज्ञा पुं० [सं०] उस स्थान का नाम जहाँ से सरस्वती नदी निकलती है।

प्लक्षसमुद्रवाचका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती नदी [को०]।

प्लक्षादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती नदी।

प्लक्षावतरण—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक स्थान का नाम जहाँ से सरस्वती नदी निकलती है।

प्लक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

प्लवंग—संज्ञा पुं० [सं० प्लवङ्ग] १. वानर। बंदर। २. साठ संवत्सरों मे से इकतालीसवाँ संवत्सर। ३. मृग। हरिन। ४. प्लक्ष। पाकर।

प्लवंगम—संज्ञा पुं० [सं० प्लवङ्गम] एक छंद जिसके प्रत्येक पाद में ८ + १३ के विराम से २१ मात्राएँ, आदि का वर्ण गुरु और अंत में १ जगण और १ गुरु होता है। २. बंदर। वानर। कपि। ३. मेंढक।

प्लवंगमेंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान [को०]

प्लव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. साठ संवत्सरों में से पैंतीसवाँ संवत्सर। २. मुरगा। ३. उछलकर या उड़कर जानेवाले पक्षी आदि। ४. कारंडव पक्षी। ५. मेंढक। ६. बंदर। ७. भेड़। ८ चांडाल (डिं०)। ९. शत्रु। दुश्मन। १०. नागरमोथा। ११. मछली पकड़ने का जाल या काठ का पाटा। १२. नहाना। १३. तैरना। १४. नदी की बाढ़। १५. एक प्रकार का बगला। १६. कोई जलपक्षी। १७. शब्द। आवाज। १८. प्लक्ष। १९ गोपाल करंज। २०. छोटी नौका। बाँस, तृण आदि से बनी नाव। उडुप (को०)। २१. प्लक्ष का वृक्ष। (को०)। २२. ढाल। उतार (को०)। २३. कुदाना। उछाल (को०)। २४. वापस होना या लौटना (को०)। २५. प्रोत्साहन (को०)।

प्लव[2]—वि० १. तैरता हुआ। २. झुकता हुआ। ३. क्षणभंगुर। ४. कूदता या उछलता हुआ (को०)। ५. विशिष्ट। श्रेष्ठ। उत्कृष्ट (को०)।

प्लवक[1]—वि० [सं०] १. तैरनेवाला। पैराक। २. संतरणोपजीवी, जैसे मल्लाह (को०)।

प्लवक[2]—संज्ञा पुं० १. तलवार की धार पर नाच करनेवाला पुरुष। २. मेंढक। ३. पाकर वृक्ष। ४. चांडाल (को०) ५. वानर। कपि (को०)।

प्लवग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिरस का पेड़। २. बंदर। उ०—कपि, शाखामृग, बलीमुख, प्लवग, कीस, लंगूर। बानर के कर नारियर, दयो बिधाता क्रूर। नंद० ग्रं०, पृ० ९३। ३. मेंढक। ४. हरिन। ५. जलपक्षी। ६. सूर्य का सारथी।

प्लवग[2]—वि० १. कूदनेवाला। उछलनेवाला। २. तैरनेवाला।

यौ०—प्लवगराज = कपिराज। सुग्रीव। प्लवगेंद्र = हनूमान।

प्लवगति—संज्ञा पुं० [सं०] मेंढक [को०]।

प्लवगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या राशि या लग्न [को०]।

प्लवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. उछलना। कूदना। २. तैरना। ३. बाढ़। जलप्लावन (को०)। ४. उड़ना (को०)। ५. घोड़े की एक चाल (को०)। ६. ढालवाँ जमीन (को०)।

प्लवन[2]—वि० नत। नीचे की ओर झुका हुआ [को०]। ढालू। ढालवाँ [को०]।

प्लवर्ग—संज्ञा पुं० १. अग्नि। आग। २. जलपक्षी।

प्लवाका—संज्ञा पुं० [सं०] नाव [को०]।

प्लविक—संज्ञा पुं० [सं०] नाव से पार करनेवाला केवट। माँझी [को०]।

प्लवित—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैरना। तैरना। २. कूदना। उछलना [को०]।

प्लविता—वि० [प्लवितृ] [वि० स्त्री० प्लवित्री] तैरनेवाला। तैराक।

प्लांचेट—संज्ञा पुं० [अं०] मेस्मेरेज्म पर विश्वास रखनेवालों के काम की पान के आकार की लकड़ी की एक छोटी तख्ती।

विशेष—इसके चौड़े भाग के नीचे दो पाए मढ़े हुए होते हैं। जिनके नीचे छोटे छोटे पहिए लगे हुए होते हैं और आगे की नोक की ओर एक छेद होता है जिसमें एक पेंसिल लगा दी जाती है। कहते हैं, जब एक या दो आदमी उस तख्ती पर धीरे से अपनी उँगलियाँ रखते हैं तब वह खसकने लगती है और उसमें लगी हुई पेंसिल से लकीरें, अक्षर, शब्द और वाक्य बनते हैं, जिनसे लोग अपने प्रश्नों का उत्तर निकाला करते हैं, अथवा गुप्त भेदों का पता लगाया करते हैं। इसका आविष्कार ईसवी १८५५ में हुआ था और इसके संबंध में कुछ दिनों तक लोगों में बहुत से झूठे विश्वास थे।

प्लाईवुड—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की हलकी लकड़ी जो तीन विभिन्न प्रकार की पतली लकड़ियों को मशीन से दबाकर बनाई जाती है। उ०—इसके अतिरिक्त सेमल, शीशम और सागौन से प्लाईवुड बनाने का उद्योग भी उल्लेखनीय है।—अभि० ग्रं०, पृ० १५।

प्लाक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाकर का फल। २. प्लक्ष का भाव।

प्लाक्ष[2]—वि० प्लक्ष संबंधी। प्लक्ष का।

प्लाक्षायन—संज्ञा पुं० [सं०] प्लक्षि के गोत्र में उत्पन्न।

प्लाट—संज्ञा पुं० [अं०] १. इमारत बनाने या खेती आदि करने के लिये जमीन का टुकड़ा। २. ऐसी जमीन का बना हुआ नक्शा। ३. कोई कार्य करने का निश्चित किया हुआ ढंग। मनसूबा। ४. उपन्यास, नाटक या काव्य आदि की वस्तु या मुख्य कथाभाग। वस्तु। ५. गुप्त और हानि करनेवाली कारंवाई। षड्यंत्र। साजिश।

प्लाटफार्म—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्लेटफार्म'।

प्लान—संज्ञा पुं० [अं० प्लैन] दे० 'प्लैन'।

प्लाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ गोता। डुबकी। २. परिपूर्णता। ३. जल

का उमड़कर बहना (को०)। ४. उछाल। कूर्दन (को०)। ५. किसी तरल पदार्थ को छानना (को०)।

प्लावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाढ़। सैलाब। जैसे जलप्लावन। उ०—नीचे प्लावन की प्रलय धार, ध्वनि हर हर।—तुलसी०, पृ० ४। २. खूब अच्छी तरह धोना। बोर। ३. किसी चीज को ऊपर फेंकना। ४. जल का उमड़कर बहना (को०)। ५. तैरना। ६. विस्तार। दीर्घ करना। जैसे, स्वरों का।

प्लावित[1]—वि० [सं०] १. जो जल में डूब गया हो। पानी में डूबा हुआ। २. दीर्घकृत। दीर्घोच्चारित, जैसे, स्वर (को०)।

प्लावित[2]—संज्ञा पुं० बाढ़। जलप्लावन (को०)।

प्लाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युक्तिकल्पतरु के अनुसार १४४ हाथ लंबी, १८ हाथ चौड़ी और १४½ हाथ ऊँची नाव या जहाज।

प्लावी[1]—वि० [सं० प्लाविन्] १. फैलनेवाला। २. बहनेवाला [को०]।

प्लावी[2]—संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

प्लाव्य—वि० [सं०] जल में डुबाने के योग्य। जो जल में डुबाया जाय।

प्लाशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरुष के मूत्रेंद्रिय की जड़ के पास की नाड़ी।

प्लाशुक—वि० [सं०] जो शीघ्र पक जावे। शीघ्र तैयार होनेवाला।

प्लास्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १. डाक्टरी के अनुसार वह ओषधि जो शरीर के किसी रुग्ण अंग पर उसे अच्छा करने के लिये लगाई जाय। औषधलेप।

क्रि० प्र०—लगाना।—चढ़ाना।

२. ईंटों आदि की दीवारों पर लगाने के लिये सुर्खी चूने आदि का गाढ़ा लेप। पलस्तर।

प्लास्टर आफ पेरिस—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अँगरेजी मसाला जो बहुत ठोस और कड़ा होता है और जो धातु, चीनी, पत्थर और शीशे आदि के पदार्थों को जोड़ने और मूर्तियाँ आदि बनाने के काम में आता है।

विशेष—जिस अवस्था में जोड़ने या छेद आदि बंद करने में और मसाले काम नहीं आते उस अवस्था में वह बहुत उपयोगी होता है। ज्योंही वह जल में मिलाकर कहीं लगाया जाता है त्योंही वह दृढ़तापूर्वक बैठ जाता और फैलकर संधियों आदि को भरने लगता है। प्लेस्टर ऑफ पेरिस।

प्लास्तर—संज्ञा पुं० [अं० प्लास्टर] दे० 'प्लास्टर'।

प्लिहा—संज्ञा पुं० [सं० प्लिहन्] दे० 'प्लीहा' [को०]।

प्लीडर—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह जो वकालत करता हो। वकील। २. किसी का पक्ष लेकर वादविवाद करनेवाला।

प्लीह—संज्ञा स्त्री० [सं० प्लीहन्] दे० 'प्लीहा'। उ०—विदाही और अभिष्यंदी वस्तु खाय तो प्लीह (तापतिल्ली) होय।—माधव०, पृ० १६१।

प्लीहघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] रोहड़ा वृक्ष।

प्लीहशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] प्लीहघ्न। रोहड़ा वृक्ष।

प्लीहा—संज्ञा स्त्री० [सं० प्लीहन्] पेट की तिल्ली। बरवट।

विशेष—दे० 'तिल्ली'। २. वह रोग जिसमें रोगी की तिल्ली बढ़ जाती है। दे० 'तिल्ली'।

प्लीहाकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग का नाम जो कान के पास होता है।

प्लीहारि—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ।

प्लीहार्णवरस—संज्ञा पुं० [सं०] प्लीहा के एक औषध का नाम।

विशेष—ईंगुर, गंधक, सोहागा, अभ्रक और विष आठ आठ तोले लेकर और उसमें चार चार तोला मिर्च और पीपल मिलाकर छह छह रत्ती की गोलियाँ बनाई जाती हैं। यह निर्गुंडी के रस और मधु के साथ दी जाती है।

प्लीहाविद्रधि—संज्ञा पुं० [सं०] तिल्ली का एक रोग जिसमें रुक रुककर साँस आती है।

प्लीहाशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] रोहड़ा।

प्लीहोदर—संज्ञा पुं० [सं०] प्लीहा रोग। तिल्ली। उ०—अब प्लीहोदर के लक्षण कहता हूँ तू सुन।—माधव०, पृ० १९५।

प्लीहोदरी—वि० [सं० प्लीहोदरिन्] [वि० स्त्री० प्लीहोदरिणी] जिसे प्लीहा रोग हुआ हो। प्लीहा रोगग्रस्त।

प्लुष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। आग। २. गृहादि का जलना (को०)। ३. स्नेह। प्रेम। ४. तेल। स्नेह

प्लुत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़े की एक चाल का नाम जिसे पोई कहते हैं। २. टेढ़ी चाल। उछाल। ३. स्वर का एक भेद जो दीर्घ से भी बड़ा और तीन मात्रा का होता है। ४. वह ताल जो तीन मात्राओं का हो। (संगीत)।

प्लुत[2]—वि० १. कंपगति युक्त। जो काँपता हुआ चले। २. प्लावित। ३. तराबोर। ४. जिसमें तीन मात्राएँ हों।

प्लुतगति[1]—वि० [सं०] जो कूद कूदकर चलता हो।

प्लुतगति[2]—संज्ञा पुं० खरगोश [को०]।

प्लुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उछल कूद की चाल। २. जल आदि का उमड़कर बहना (को०)। ३. फैल जाना। फैलना। ४. घोड़े की एक चाल जिसे पोई कहते हैं। ५. वह वर्ण जो तीन मात्राओं से बोला गया हो।

प्लुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाह। जलना। २. पूर्ति। ३. स्नेह। प्रेम।

प्लुष्ट—वि० [सं०] दग्ध। जला हुआ।

प्लेंट—संज्ञा पुं० [अं०] वह आवेदनपत्र जो किसी दीवानी अदालत में किसी पर नालिश या दावा करते समय दिया जाता है और जिसमें दावे के संबंध में अपना सब वक्तव्य रहता है। अर्जीदावा।

प्लेइंग कार्ड—संज्ञा पुं० [अं०] ताश।

प्लेग—संज्ञा पुं० [अं०] १. भयंकर और संक्रामक रोग जिसकी

फैलने पर बहुत अधिक शोथ भरते हैं। ताऊन। २. एक संक्रामक रोग जो प्रायः जाड़े में फैलता है।

विशेष—इसमें रोगी को बहुत तेज ज्वर आता है और जाँघ या बगल में गिलटी निकल आती है। यह रोग प्रायः ३-४ दिन में ही रोगी के प्राण ले लेता है और कभी कभी इसके १०० में से ६०—६५ तक रोगी मर जाते हैं। कहते हैं, छठी शताब्दी में यह रोग पहले पहल लेवांट से युरोप में गया था और वहीं से अनेक देशों में फैला। इधर सन् १९०० से भारत में इसका विशेष प्रकोप था पर अब कम हो गया है।

प्लेट—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी धातु का पत्तर या पतला पीटा हुआ टुकड़ा। चादर। २. छिछली थाली। तश्तरी। रिकाबी। ३. सोने चाँदी आदि का बना हुआ प्याला या किसी प्रकार की तख्ती जो किसी (विलायती) खेल में बाजी जीतनेवाले को पुरस्कार और प्रमाण के रूप में दी जाय। जैसे, घुड़दौड़ का प्लेट, क्रिकेट का प्लेट। ४. धातु का बना हुआ वह चौड़ा पत्तर जिसपर कोई लेख आदि खुदा या बना हो। यह कई कामों में आता है। जैसे, दरवाजे या साइनबोर्ड की जगह लगाने के लिये, लेखों आदि के चित्र छापने के लिये, पुस्तकों आदि की जिल्द पर नाम आदि का ठप्पा करने के लिये। ५. फोटो लेने का वह शीशा जो प्रकाश में पहुँचते ही अपने ऊपर पड़नेवाली छाया को स्थायी रूप से ग्रहण कर लेता है। पीछे से इसी शीशे से फोटो चित्र छापे और तैयार किए जाते हैं।

प्लेटफार्म—संज्ञा पुं० [अं०] १. कोई चौकोर और समतल चबूतरा, विशेषतः किसी इमारत आदि में इस उद्देश्य से बना चबूतरा कि उसपर खड़े होकर लोग वक्तृता या उपदेश दें। २. रेलवे स्टेशनों पर बना हुआ वह ऊँचा और बहुत लंबा चबूतरा जिसके सामने आकर रेलगाड़ी खड़ी होती है और जिसपर से होकर यात्री रेल पर चढ़ते या उससे उतरते हैं।

प्लेयर—संज्ञा पुं० [अं०] खिलाड़ी। उ०—खुदा ने मुझे वैसा 'प्लेयर' नहीं बनाया जैसा तुम्हें दोस्त।—चंद०, पृ० ६२।

प्लैंटर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो विदेश में जमीन लेकर (चाय, गन्ने, नील आदि की) खेती करता हो। बड़े पैमाने में खेती करनेवाला।

विशेष—हिंदुस्तान में 'प्लैंटर' शब्द से गोरे प्लैंटरों का ही बोध होता है; जैसे,—टी प्लैंटर (चाय बगान का साहब), इंडिगो प्लैंटर (निलहा गोरा या साहब) आदि।

प्लैकर्ड—संज्ञा पुं० [अं०] छपा हुआ बड़ा नोटिस या विज्ञापन जो प्रायः दीवारों आदि पर चिपकाया जाता है। पोस्टर। जैसे,—दीवारों पर थिएटर, सिनेमा आदि के रंग बिरंगे प्लैकर्ड लगे हुए थे।

क्रि० प्र०—चिपकना।—चिपकाना।—लगना।—लगाना।

प्लैटिनम—संज्ञा पुं० [अं०] चाँदी के रंग की एक प्रसिद्ध बहुमूल्य धातु जो अठारहवीं शताब्दी के मध्य में दक्षिण अमेरिका से युरोप गई थी।

विशेष—यह धातु शुद्ध रूप में नहीं पाई जाती और इसमें कई धातुओं का कुछ न कुछ मेल रहता है। यह प्रायः सब धातुओं से अधिक भारी होती है और इसके पत्तर पीटे या तार खींचे जा सकते हैं। यह आग से नहीं पिघल सकती, बिजली अथवा कुछ रासायनिक क्रियाओं की सहायता से गलाई जाती है। इसमें मोरचा नहीं लगता और न इसपर तेजाबों आदि का कोई प्रभाव होता है। इसी लिये बिजली के तथा और अनेक रासायनिक कार्यों में इसका व्यवहार होता है। रूस में कुछ दिनों तक इसके सिक्के भी चलते थे। दक्षिण अमेरिका के अतिरिक्त यह युराल पर्वत तथा बोर्नियो द्वीप में भी पाई जाती है।

प्लैन—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी बननेवाली इमारत का रेखाचित्र या नक्शा। ढाँचा। खाका। जैसे,—मकान का प्लैन म्युनिसिपैलिटी में दाखिल कर दिया है। मंजूरी मिलते ही काम में हाथ लग जायगा। २. किसी काम को करने का विचार या आयोजन। बंदिश। मनसूबा। तजवीज। योजना। स्कीम। जैसे,—तुमने यहाँ आकर मेरा सारा प्लैन बिगाड़ दिया।

प्लैनचट—संज्ञा पुं० [अं० प्लांचेट] दे० 'प्लांचेट'।

प्लोत—संज्ञा पुं० [सं०] १. पट्टी। घाव पर बाँधने की पट्टी (को०)। २. कपड़ा (को०)। ३. पित्त का विकार जो मुँह से गिरता है।

प्लोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कफ से जल जाना। २. दाह। जलन। पित्तविकार।

प्लोषण[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्लोषणी] जलनेवाला। जैसे, मदनप्लोषण। दहकनेवाला।

प्लोषण[2]—संज्ञा पुं० जलन। दाह। [को०]।

प्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूख। बुभुक्षा। २. खाना। खाद्य वस्तु [को०]।

प्सात—वि० [सं०] १. भूखा। बुभुक्षित। २. भक्षित। खाया हुआ [को०]।

प्सान—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन। २. खाना। खाद्यपदार्थ।

प्सुर—वि० [सं०] १. सुंदर। सलोना। प्यारा। २. रूप या आकारयुक्त [को०]।